भुशुण्डि रामायण

पूर्व खण्ड

संपादक

डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह

एम०ए०, पी-एच०डी०, डी० लिट्०

आचार्य तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

सह-संपादक

पं० जनार्दन शास्त्री पाण्डेय

एम०ए०, साहित्याचार्य

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

प्राक्कथन (अंग्रेजी)

डॉ० वी० राघवन्

अवकाशप्राप्त प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

प्रकाशक
विश्वविद्यालय प्रकाशन
चौक, वाराणसी–१

© डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह

Rs. 100-00

प्रथम संस्करण : १९७५ ई०

मुद्रक
विश्वनाथ भार्गव
मनोहर प्रेस, वाराणसी–१

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
(क)	Introduction—Dr. V. Raghavan	१–२१
(ख)	प्रस्तावना	१–६२
(ग)	कथा-वस्तु	१–३८
१.	राम-स्तुति	१
२.	राम के परात्पर-स्वरूप-विषयक देवताओं की जिज्ञासा	२
३.	राम का स्वरूप-निरूपण	४
४.	भुशुण्डि चरित	६
५.	गरुड़ द्वारा राम का साक्षात्कार-लाभ	९
६.	हनुमान का राम-दर्शन	१२
७.	हनुमान का राम-स्तवन	१७
८.	आदिरामायण कथावतारण	२१
९.	राम-माहात्म्य	२२
१०.	राम-जन्म	२५
११.	वेदों द्वारा राम-स्तुति	३३
१२.	राम जन्मोत्सव	३४
१३.	नामकरण संस्कार तथा राम सहस्रनाम वर्णन	३८
१४.	सीता सहस्रनाम	४५
१५.	लक्ष्मण सहस्रनाम	५३
१६.	भरत-शत्रुघ्न का नामकरण एवं चारों भाइयों की बाल-लीला	६०
१७.	नारद से रामजन्म की सूचना पाकर उन्हें मारने के लिए रावण द्वारा राक्षसों की नियुक्ति : उनके भय से दशरथ का बालकों को सरयू पार गोप-प्रदेश में भेजना	६३
१८.	राम का बालचरित	६८
१९.	कौशल्या का विश्वरूप दर्शन	७२
२०.	सुनीथ का उद्धार	७५
२१.	वत्सचारण-लीला	८०
२२.	इन्द्रमान भंग	८७
२३.	गोपियों को वरदान	९२
२४.	राम की विहार-लीला	९७
२५.	राम की रासलीला	१०३
२६.	दण्डकारण्यवासी मुनियों द्वारा रामस्तुति	१६५
२७.	जल-विहार	१६९
२८.	वन-विहार	१७४

विषय	पृष्ठ
२९. राम के अद्भुत चरित, गोपियों का विस्मय और सीता द्वारा समाधान	१७७
३०. राम का भाइयों सहित गोप-प्रदेश से अयोध्या के लिए प्रस्थान : गोपियों का विलाप एवं प्रबोधन	१८४
३१. शिव का राम की रसमयी लीलाओं के दर्शनार्थ अयोध्या आगमन : गोपियों को शाप	१९८
३२. रामगीता महोपाख्यान	२०१
३३. गोप तथा गोपियों द्वारा राम-स्तुति	२६६
३४. राम का युवराजपद प्राप्ति	२७२
३५. राम द्वारा सरयू स्नान करते समय लुप्त दशरथ का वरुणलोक से आनयन	२७६
३६. छायासुर वध	२७८
३७. वसन्तोत्सव	२८१
३८. सीता का पक्षी द्वारा राम के पास अपना चित्र भेजना	२८४
३९. राम के दूतरूप में राजपुत्रों का व्रज आगमन	२८९
४०. विरह-विह्वल गोपियों का राजपुत्रों से संवाद	२९६
४१. राजपुत्रों का अयोध्या प्रत्यागमन	३००
४२. राजपुत्रों को राम का उपदेश	३०२
४३. विश्वामित्र का अयोध्या आगमन और राम-लक्ष्मण का उनके साथ प्रस्थान	३०८
४४. विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा	३११
४५. विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का मिथिलागमन	३१५
४६. धनुर्भंग	३२०
४७. परशुराम से भेंट	३२४
४८. राम-विवाह	३३९
४९. रसालवन की शापित वल्लरियों का उद्धार	३४१
५०. रामनाम का महत्त्व एवं उसके कीर्तन का फल	३६०
५१. श्रीराम माहात्म्य	३६३
५२. शेष की पराभक्तिपूर्ण राम-स्तुति	३६५
५३. शेष की वर-प्राप्ति	३६८
५४. राम यौवराज्य-प्रतिष्ठा	३७०
५५. दशरथ-अश्वमेध में राम का वैकुण्ठ से अग्नि लाना	३७५
५६. राम का ऐश्वर्यगुण व्याख्यान	३७८
५७. राम का वीर्यगुण व्याख्यान	३८८
५८. राम का यशोगुण व्याख्यान	३९४
५९. राम का श्रीगुण व्याख्यान	४०३
६०. राम का ज्ञानगुण व्याख्यान	४०९
६१. राम का वैराग्यगुण व्याख्यान (सीता वनवास)	४१९

विषय		पृष्ठ
६२.	द्विज गवानयन	४३९
६३.	मातुलोद्धार	४५७
६४.	दशरथ की तीर्थयात्रा (अवधमंडल तथा मगध के तीर्थ, उनका माहात्म्य)	४७५
६५.	दशरथ की तीर्थयात्रा (सरयू पार गोप-प्रदेश में राम की बाल-लीला के पुण्यस्थल)	४८७
६६.	दशरथ की तीर्थयात्रा (नैमिषारण्य, प्रयाग, पुष्कर, गंगासागर, शृंगवेरपुर, हरिद्वार, गलता, महाकालेश्वर, अवन्ती, नर्मदा, सहस्रधारा, प्रभास, द्वारका आदि)	४९५
६७.	दशरथ की तीर्थयात्रा (उत्तराखण्ड के तीर्थ—काश्मीर-मंडल, बदरिकाश्रम, मानसरोवर, केदार, कैलाश, विष्णुपदी, यमुनोत्री आदि)	५२०
६८.	दशरथ की तीर्थयात्रा (ब्रजप्रदेश के तीर्थ)	५२९
६९.	दशरथ की तीर्थयात्रा (यमुनोत्पत्ति)	५६२
७०.	दशरथ की तीर्थयात्रा (कैकेयी सहित दशरथ का ब्रजागमन)	५८९
७१.	दशरथ की तीर्थयात्रा (डाकिनी वृत्त)	६२१
७२.	दशरथ की तीर्थयात्रा (आदि ब्रजभ्रमण—वन, कुंज, गोवर्द्धन, ज्योतिर्लिङ्गेश्वर आदि का दर्शन)	६२३
७३.	दशरथ की तीर्थयात्रा (ब्रजप्रदेश में राम की गोचारण-लीला का श्रवण)	६२९
७४.	दशरथ की तीर्थयात्रा (ब्रज में राम के बाल-लीला स्थलों का दर्शन)	६५२
७५.	दशरथ की तीर्थयात्रा (कालियदमन-लीला श्रवण)	६७२
७६.	दशरथ की तीर्थयात्रा (ब्रज के गोचारण-स्थलों तथा मुनि आश्रमों का दर्शन)	६७६
७७.	दशरथ की तीर्थयात्रा (गोधन पूजा)	६८७
७८.	दशरथ की तीर्थयात्रा (सुकंठ द्वारा राम के कैशोर चरित का वर्णन)	६९६
७९.	दशरथ की तीर्थयात्रा (सखियों के साथ राम की माधुर्य-लीला)	७०७
८०.	दशरथ की तीर्थयात्रा (राम का कुंजभवन में रहस्यपूर्ण परिणय)	७१६
८१.	दशरथ की तीर्थयात्रा (पराशक्ति सहजा का चरित्र-श्रवण—शिव द्वारा सहजा-स्तुति)	७२५
८२.	दशरथ की तीर्थयात्रा (सहजा-चरित)	७४५
८३.	दशरथ की तीर्थयात्रा (सहजा-राम केलि)	७५५
८४.	दशरथ की तीर्थयात्रा (सहजा के साथ राम की रासलीला)	७६५
८५.	दशरथ की तीर्थयात्रा (चीरहरण लीला)	७७५
८६.	दशरथ की तीर्थयात्रा (महारास)	७८२
८७.	दशरथ तीर्थयात्रा (उपासना, ज्ञान, लीलादि तत्त्वों का निरूपण)	७९१
८८.	दशरथ तीर्थयात्रा (सहजोत्पत्ति तथा लीलाधाम माहात्म्य)	८११
८९.	दशरथ की तीर्थयात्रा (राम की ब्रजांगनाओं के साथ क्रीड़ा)	८१८
९०.	दशरथ की तीर्थयात्रा (राम की रहस्य-लीला)	८२४

विषय	पृष्ठ
९१. दशरथ की तीर्थयात्रा (मिथिलावासी ब्राह्मण सूरिशर्मा और उसकी पुत्री चन्द्रावती की कथा)	८२०
९२. दशरथ तीर्थयात्रा (रावण द्वारा भेजे गये राक्षसों का वध)	८३०
९३. दशरथ तीर्थयात्रा (राम की द्वादशवर्षीय आदि ब्रजलीला का सुमित तथा सुकंठ द्वारा वर्णन)	८४६
९४. दशरथ तीर्थयात्रा (दशरथ का आदि ब्रज में राम के विहार, रास, रति, दानलीला, मानलीला, संकेतादि स्थलों तथा कुंजों का दर्शन, ब्रज से नैमिष, वाराणसी, गया, महेन्द्राचल, श्रीपर्वत, श्रीरंगम्, वेंकटगिरि, कांची, रामेश्वर, कन्याकुमारी, अमरकंटक, द्वारका, प्रभासादि तीर्थों से होते हुए गंधमादन पर्वत पर गमन)	८५४
९५. दशरथ तीर्थयात्रा (विशालाक्षी उपाख्यान)	८६७
९६. दशरथ तीर्थयात्रा (हिमालयस्थ तीर्थों—कूर्माचल, नेपाल तथा मोरंग का दर्शन, कामाक्षा होते हुए मिथिला गमन और जनक द्वारा आतिथ्य)	९००
९७. दशरथ तीर्थयात्रा (सहजा-पूजा-विधान)	९१२
९८. दशरथ तीर्थयात्रा (शुकदेव के पथ-प्रदर्शन में मथुरा-मण्डल के तीर्थों का दर्शन)	९३४
९९. दशरथ तीर्थयात्रा (दशरथ का मुनियों के साथ दण्डकक्षेत्र होते हुए अयोध्या आगमन)	९५६
१००. दशरथ की तीर्थयात्रा (अयोध्या में ऋषि-आश्रमों की स्थापना)	९६६
१०१. प्रमोदवनवास महिमा	९७३

शुद्धि पट्टिका

पृ०	श्लो०	अशुद्धिः	शुद्धिः
३२	५७	भवनो परात्मा	भवनः परात्मा
२९९	२	दृगस्त्रणि	दृगश्रूणि
३००	१४	राघन्वेन्द्र	राघवेन्द्र
३३४	३२	पृथिवीप्येषा	पृथिवीह्येषा
३३५	५१	सुर्द्धरम्	सुदुर्धरम्
३९९	पृष्ठ शीर्षक	चतुवति	चतुर्नवति
४१८	कॉलोफन	नामव्याख्यानं	ज्ञान-व्याख्यानम्
४८१	७४	अभ्यासे	अभ्याज्ञे
६१०	२७१	समुभिताः	समुत्भिताः
६१२	३०३–४	अनृता पिहिताः	अनृतापिहिताः
६१३	३०९	पुरापुंसा	पुरा पुंसा
६१३	३१४	वहुस्यां	वहु स्यां
६१५	३३५	कालेऽपि	कालोऽपि
६२०	४०७	विहाय	विहार
६५५	४७	सपत्सदनं	संपत्सदनं
६५५	४७	सदारमनिकेतम	सदारामनिकेतनं
८४८	२१	भूरणि	भूरीणि
८५४	११०	नैमित्तिझी	नैमित्तिकी
८६५	१२९	–न्नमुत्तम	–न्नमुत्तमम्
८८०	२३	तंधातु	तं धातु
८८०	२५	-पुलकाटय	पुलकाढ्य

English Introduction

In connection with my study of the *Rāmāyaṇa*-versions in India and Greater India, I had long been after the *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa* and I was glad to know some time back from Sri.P.D. Modi of Vishwavidyalaya Prakashan, Varanasi, that he was bringing out an edition of this text by Dr. Bhagavati Prasad Singh, Head of the Hindi Department of the Gorakhpur University. I am glad to have this opportunity of writing an Introduction in English to this publication of the first Book of the *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa*

I came across, during my work on the *New Catalogus Catalogorum*, this work with a variety of intriguing names and noted some data on it under the titles *Ādi-Rāmāyaṇa* (*NCC*. I. Revised edn. p. 22) and Kāka Bhuśuṇḍi (*Ibid*. III. p. 296). Mss. of the text show other titles also, *Bṛhad-Rāmāyaṇa* and *Mahā-Rāmāyaṇa*.

There is a text called *Citrakūṭamāhātmya* in 16 chapters in which also Kāka Bhuśuṇḍi appears; it deals with the places in and around Mt. Citrakūṭa sanctified by Rāma's association; actually a few sacred places in Deccan and South India are also included here. From the analysis, descriptions and colophons of its mss.,[1] we find that it is in three dialogue-frames, Atri-Bharata, Pārvatī-Śiva and Bhuśuṇḍi-Śāṇḍilya; Bhuśuṇḍi figures as the speaker and although the name Ādi-Rāmāyaṇa occurs among the titles of the text, it would appear to be a text not forming part of our present *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa* spoken by Brahmā to Bhuśuṇḍi.

There are numerous variations on the Rāma-story in the Rāmāyaṇas in the regional languages, but there are such variations in Sanskrit sources themselves. These latter fall into two classes, the Sister Epic and the Purāṇas[2] on the one hand, and on the other texts which call themselves *Rāmāyaṇas*, and which, alongside of the work of Vālmīki, claim to be either Vālmīki's own work or of others like Brahmā. The better known among these other *Rāmāyaṇas* in Sanskrit are the *Adbhuta*, the *Ānanda* and the *Adhyātma Rāmāyaṇas*;[3] but there are also others not known even so much and the *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa* is one such.

---

1. IO. 3704. RASB.V. 3208, Hpr. II. 64
2. See my 'The Greater Rāmāyaṇa' All-India Kasiraja Trust, Varanasi, 1973.
3. On these I have delivered recently some lectures in the University of Bombay.

To understand the variations that are found in Rāmāyaṇas in the Indian regional languages as well as in versions in Greater India,[1] it is necessary to canvas the material in all the versions in Sanskrit. The *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa* is of interest in this respect as the name of Bhuśuṇḍi appears in several places in Sanskrit literature, and above all, the *Rāmacaritamānasa* of Tulasīdas was influenced by the *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa*. It appears from Tulasī's words in the beginning that he was drawing upon Kāka Bhuśuṇḍi's version. To Tulasi, Bhuśuṇḍi was a well-established 'Rāma-bhakta' and he refers to Rāma as 'Bhuśuṇḍi mana mānasa hamsa !' (Book I) and to Kāka Bhuśuṇḍi as "most proficient in the path of Rāmabhakti"–'Rāma-bhakti patha parama pravīṇa' (Book VI) and one eternally engaged in reciting the story of Rāma. The framework of the narration of Rāma-story and Rāma-devotion as given by Kāka Bhuśuṇḍi to Garuḍa and the story that Kāka Bhuśuṇḍi was a sage cursed by sage Lomaśa to become a Crow because of his importunate questionings on doctrinal matters, are all to be found in the latter part of the Uttarakāṇḍa of the *Rāmacaritamānasa*.

In the beginning of the present text of the *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa*, which is given as the narration of Brahmā, Bhuśuṇḍi's story occurs first (ch.4). Bhuśuṇḍa was born of Sūrya and Kālakaṇṭakī, the terrible sister of Kāla; he took the form of a ferocious Crow, vanquished the mount of Viṣṇu, Garuḍa. He was becoming a menace to the world of the Gods and they represented the danger from him to Brahmā. Brahmā advised Bhuśuṇḍa that it was unbecoming of him to indulge like that in violence and spoke to him about the greatness of Rāma and devotion to Rāma. In the course of this instruction, Brahmā mentions what Garuḍa was taught on the same subject by Hanumān and exhorts Bhuśuṇḍa to cultivate devotion to Rāma[2]. Then on the request of the Bird, Brahmā proceeds to narrate the story of Rāma.

Because of this, this narrative is called *Brahmā-Bhuśuṇḍa-samvāda* and *Brahma-Rāmāyāṇa* and *Ādi-Rāmāyaṇa*.

The work is the product of the age in which the doctrine of Bhakti on one hand and the cult of Rāma-bhakti on the other were at their

---

1. I have dealt with these in my 'Rāmāyaṇa in Greater India', South Gujarat University, Surat, 1975.

2. In book VI. 1 of the *Yogavāsiṣṭha*, Chs. 14–26, a totally different story of Bhuśuṇḍa is given. Alambusā, one of the members of the Mātṛ- gaṇa group attending upon Śiva has a Crow as her vehicle. The Swans of the other members of the group and this Crow give birth to twenty one Crows, the Chief of which is Bhuśuṇḍa. Bhuśuṇḍa lives an exemplary saintly life in a corner of Mt. Meru and in answer to Vasiṣṭha's questions, gives an exposition of spiritual life and *sādhana*.

peak in the North, especially in the area centering round Banaras. Whatever had come to be associated with the highly developed and popular form of Kṛṣṇa-worship, came to be extended to Rāma also. In fact, the whole ideology and episodes of Kṛṣṇa appear duplicated in the present version of the Rāmāyaṇa, which may therefore be legitimately called a *Rāma-Bhāgavata.*

Rāma is the full and Supreme Being and it is of Rāma that Balarāma and Kṛṣṇa are partial manifestations. Using the very statement in the *Bhāgavata,*

एते त्वंशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् । I. 3.28

our text says :

रामस्य बलकृष्णाद्याः सर्वेऽप्यंशाः सनातनाः । I.vi. 32
यस्यांशा मत्स्यकूर्माद्याः बलकृष्णादयस्तथा । ix. 8
एते चांशकलाश्चैव रामस्तु भगवान् स्वयम् । ix. 18
न रामात्परतस्तत्त्वं वेदैरपि निचीयते । ix. 19
परं ब्रह्म स्वयं रामः सच्चिदानन्दविग्रहः । ix. 23
बलकृष्णादयः सर्वेऽप्यवतारपदं गताः ।
अवतारी स्वयं रामः—II ix.28

Rāma is the 'Ādi-Nārāyaṇa' (vi.22)

This Supreme Being called Rāma has two forms, the Supreme one abiding in His own place called *Sītāloka* and the other one abiding in *Cilloka*, otherwise called Ayodhyā.

सीतालोकं परं स्थानं चिन्मयानन्दलक्षणम् ।
कोसलाख्यं पुरं नित्यं चिल्लोक इति कीर्तितम् ॥

Sītā is His natural 'Śakti', His bliss-aspect, Sahajānandinī; and Rādhā, Rukmiṇī etc. are only her other forms.

या ते शक्तिः सहजानन्दिनीयं
सीतेति नाम्नी जगतां शोकहन्त्री ।
तस्या अंशा एव ते सत्यभामा-
राधा-रुक्मिण्यादयः कृष्णदाराः ॥ vi. 6.

The two, Rāma and Sītā, constitute but one entity.

रामस्य चापि सीतायाः मिथस्तादात्म्यसूचकम् ।
यथा रामस्तथा सीता तथा श्रीसहजा मता ॥ vii. 26-7.

The next stage in this *Rāma-māhātmya* is the assimilation of the personality of Rāma completely to that of Kṛṣṇa, particularly as a *Rasika,* as the embodiment of Bliss and the object of Supreme enjoyment for all devotees. vi. 12 says :

नमस्ते रसिकेन्द्राय शृङ्गाररसमूर्तये ।

For the delectation of the devotees, Rāma puts forth many *līlās*:

रसास्वादाय साधूनां लीलाया राघवस्य च । vii.21.

The next step in this process of assimilation to the Kṛṣṇa-ideology is the equation of the river Sarayū with Yamunā and the conception of a parallel to the *Bṛndāvana*, the *Pramodavana* on the banks of the Sarayū where Rāma is said to be in eternal sport.

प्रमोदवनमध्यस्थां कोसलां सरयूं तथा । vi.27

He is sporting here from under an Aśoka tree, in the company of His Sakhī, Sahajānandinī-Sītā and myriad other women.

प्रमोदविपिने स्थित्वा संप्रयुक्तस्तदाज्ञया ।
तदंशभूता अन्याश्च रामाः संमोदयिष्यति ॥ ix. 5-6

The *Sītā-loka* where His higher form abides is called *Sītā-Vaikuṇṭha* and the *Pramodavana* on the Sarayū is called *Rāma-Vaikuṇṭha*.

तत्परस्तस्य वै रूपं सीतावैकुण्ठसंज्ञकम् ।
रामवैकुण्ठसंज्ञं तु प्रमोदवनमुदाहृतम् ॥ ix. 26.

With whom is Rāma in eternal sport here? And what is the sport He is enjoying? The sport is *Rāsa*-dance and those that are in this eternal *Rāsa-līlā* with Him, besides His primary Śakti Sahajānandinī (Sītā) are, as in the Kṛṣṇa-manifestation, Gopīs or Ābhīra or cowherd women. This leads us on to the complete 'bhāgavatisation' of the *Rāmāyaṇa*. The *Bhāgavata* is not only closely followed but its motifs on the one hand and the expressions on the other are reproduced:

1. As the incarnation of Rāma is narrated in Ch. x here, the description of Kṛṣṇa's Avatāra in the *Bhāgavata* X-i.2-4 is kept by the author in his mind. x.4 here is a close echo of *Bhāgavata* X.i.3.9,10,12.

2. As Rāma manifests Himself Daśaratha and Kauśalyā sing his praise (x. 8–28) in terms of the hymns of the Gods and of Vāsudeva and Devakī in the *Bhāg.*, X-i. 2–3. Many phrases and words here in the two works are close to each other. Kṛṣṇa's reply to Vāsudeva and Devakī in *Bhāgavata* X-i. 3-32-45 is embodied here in Kauśalyā's address to Rāma x.29 ff.

3. This is followed by a hymn to Rāma by the *Śrutis* (Vedas) (xi.1–3) which is a brief imitation of the elaborate and tough *Śruti-Gītā* of the *Bhāgavata*. (X. 87).

4. The Upajāti and Anuṣṭubh verses which open Ch. xii and describe the auspicious circumstances attending Rāma's birth cannot but remind one of the verses describing the similar situation in *Bhāg.* X-i.3.

5. In Ch. xvii Nārada takes the trouble of going to Laṅkā and appraising Rāvaṇa of the birth of Rāma who is to kill him according to the divine plan. Rāvaṇa immediately orders his emissaries to go out and terrorise the Gods and the pious men. Daśaratha becomes afraid and sends his three queens and their four sons to the other banks of Sarayū and hides them in the hamlets of cowherds (xvii. 22ff). The place is called here too *Vraja* (xix. 4). The counterparts of Nandagopa and Yaśodā are the chief of cowherds (Gavendra) called Sukhita and Maṅgalyā.

Rāvaṇa like Kaṁsa, keeps sending demons of different forms to do away with Rāma; and surprisingly the same train of demons come, do the same things as in the *Bhāgavata*, and get killed at Rāma's hands: *Pūtanā*, (xvii. 24–45, the ch. itself being called *Pūtanā-vadha*), a demon who enters Rāma's bedstead (xviii. 2–6), a hurricane demon (Vātyāsura, xviii. 7ff.) and so on.

6. As the place where Rāma is kept is also a *Vraja*, like that of Kṛṣṇa, Rāma also is described as playing with the cowherd lasses, *Gopīs*, and indulging in pranks like stealing curd and butter, in the manner of Kṛṣṇa. xix. 9. The well-known verse on Kṛṣṇa कस्तूरीतिलकं ete. which is found in the *Kṛṣṇakarṇāmṛta* (II. 109) is given here in two verses in a shorter metre :

कस्तूरीतिलकविराजिभालदेशो
मुक्तास्रङ्मणिगलचारुकण्ठहारः ।
नासाग्रे पृथुगजमौक्तिकं दधानो
बिभ्राणः करकमलेन मञ्जुवेणुम् ॥
चूडालः करयुगहेमकङ्कणश्रीः
श्रीखण्डद्रवमकरीविरोचिगात्रः ।
गोपालीमनसि विवर्धयन् मनोजं
कुर्वाणो दधिनवनीतचौर्यलीलाम् ॥ xix. 8-9

In these and other terms the Gopīs complain about the pranks of Rāma and Lakṣmaṇa.

7. Instead of the mud that Kṛṣṇa is alleged to have eaten, it is complained here that Rāma ate Badarī fruits, and when his mother asked him about it, he opened his mouth and the mother saw within her little son's mouth the whole universe. (xviii. 19–29).

8. Ch.xx. The breaking of the pots of milk, butter and curd, Rāma being bound by the foster-mother by a rope which is always insufficient in length, his moving about dragging the tree to which he was tied, all of which are after the episode of *Dāmodara* and *Yamalārjuna-*

bhañjana of Kṛṣṇa. The tree that fell assumed the original form of the Brahman Sunītha who had been cursed to become a tree for holding *Jñāna* to be higher than *Bhakti*.

9. Corresponding to the Indra-festival, its prohibition by Kṛṣṇa and Kṛṣṇa's promulgation of the worship of Govardhana and Indra flooding the Vraja with rains, we have here the episode of a Vaiṣṇava-yāga started by Daśaratha and his queens, and Indra pouring down rains to spoil it. (Ch. xxii). Instead of holding up a mountain as Kṛṣṇa did, Rāma held up his huge umbrella and protected the whole Vraja from the rains. Parallel to the *Govindapaṭṭābhiṣeka* of the *Bhāgavata*, there is here a hymn to Rāma by Kāmadhenu and the humbled Indra bathing Rāma in Kāmadhenu's milk.

10. Ch. xxiii. Rāma and Lakṣmaṇa tending the cows of Pramoda-vana, along with its cowherd boys; the appearance of the demon in the form of an ass and his death; then taking the cows to the Sarayū waters at a spot where the waters were poisoned by a snake, and the counterpart of the episode of Kāliya in the *Bhāg*.

11. Also here the episode of Rāma teaching a lesson to sages engaged in sacrifices and blessing their wives (*Cf. Bhāg*. X. i. 23); and the episode of saving the Vraja from the forest-fire (*Bhāg*. X. i. 19).

12. If the Gopīs observed the Kātyāyanī-vrata in the *Bhāg*. (X. i. 22) to obtain Kṛṣṇa as their Lord, the womenfolk of Pramoda-vana learn a love-mantra from Durvāsas and repeat it with due austerities. What follows is the counterpart of the *Rāsalīlā* of the *Bhāg*; as Rāma was an *Ekapatnī-vrata* in that incarnation, all the womenfolk had to become Sītā for this purpose. (Chs. xxiii, xxiv). xxiv. 5 in Mandākrāntā describing Rāma in this sport is a replica of *Bhāg*. X. i. 21. 5. The name Rāma and its etymology given by Vālmīki are aptly used here by the text : रामो रमयतां वरः (7). In xxv. Brahmā explains to Bhuśuṇḍa the inner truth of Rāma's *Rāsalīlā* and its close relation to Kṛṣṇa.

13. Ch. xxvi. Rāma-Rāsa continued; *viraha* (separation) between Rāma and Sītā and Rāma's consequent suffering. Dūtīs approach Rāma and speak to him of the pangs of separation of the womenfolk and appeal to Rāma to come to their help. Rāma says that he would first wait for Sītā and after his marriage with her, he would come to these women. Sītā manifests herself.

Ch. xxvii. A description of the Śarat season, as in the *Bhāg*. follows; Rāma plays on the flute, sings and calls for Sītā. Ch. xxviii, Sītā's appearance and Rāma's sports with her.

14. A second and longer hymn on Rāma by the *Vedas* and the *Upaniṣads* then occurs (xxix); this is sung at dawn for rousing Rāma and Sītā from their slumber.

15. xxx-xxxi. Sītā disappears; Rāma's sports with the other women. xxxi. 1 is a close imitation of *Bhāg.* X.i. 29.1; other verses here have also their parallel in the *Bhāg.* A further whole Ch. is closely modelled on the corresponding one in the *Bhāg.* Rāma's words dissuading the women and their reply to him are after the model in the *Bhāg.* Like Kṛṣṇa, Rāma suddenly disappears from their midst and they search for him, addressing the trees etc. The text closely follows the incidents in its prototype here. xxxii. 1 opens with the same expression as *Bhāg.* X-i. 30.1. Ch. xxxiii gives the counterpart of the *Gopikā-gītā* (*Bhāg.* X.i. 31), the lament of the separated women. Ch. xxxiv, Rāma appearing again before them, with Sītā by his side. They all go to the sands of Sarayū and enjoy themselves in the *Rāsa*-dance again (xxxv). Verse xxxv. 54 गोपीं गोपीमन्तरा रामचन्द्रो रामं रामं चान्तरा गोपनार्यः, is after the *Kṛṣṇakarṇāmṛta* verse – अङ्गनामङ्गनामन्तरे माधवः (II. 35) etc. and along with the earlier imitation of the verse कस्तूरीतिलकं provides a clue to the date of the text.

16. xxxvi. The sages of the Daṇḍaka forest praise Rāma and long to enjoy him and Rāma assures them that their longing will be fulfilled in his next Avatāra as Kṛṣṇa.

17. xxxvii, xxxviii. Rāma's sports with the women in the waters and the woods (*Jala-krīḍā* and *Vanakrīḍā*).

18. xl. Daśaratha sends word that Rāma and the brothers are required to come back to Ayodhyā so that their marriages might be celebrated. There is here a description of the feelings of the cowherds of Pramodavana on the impending separation from Rāma, which is also after a similar description in the *Bhāg.*

19. Then follows a section entitled *Rāmagītā* (xliii–lix) in which Rāma gives a discourse on Bhakti to the womenfolk of Pramodavana who are deeply affected by his impending departure. The discourse is naturally modelled after the *Bhagavadgītā*, has the same 18 chapters and has many passages reminiscent of the *Bhagavadgītā* and the *Upaniṣads*. *Prema* is given as the greatest *Yoga* (xlvi. 7). Image-worship is described in xlvii. Ch. xlviii gives a list of 108 names of Rāma's Śakti called Sahajā who is the same as Sītā and says that She is the daughter of a cowherd couple on the Sarayū bank, Nandana and Rājanī (43) and that a cowherd named Kuśala to whom she belonged, offered her to him (Rāma) out of devotion (44). Ch. xlix is a replica of the *Vibhūtiyoga*

chapter of the *Bhagavadgītā* and has numerous echoes from that chapter of the *Gītā*. Then follows in the same chapter a *Viśvarūpadarśana* of Rāma by the women whom Rāma blesses with the divine vision. They see the Rāma of Pramodavana in all his glory. In the next chapter is described their vision of the transcendent (*aprākṛta*) form of Rāma; the hymn of the Gopīs here again has echoes of Arjuna's *Viśvarūpa-stuti* in the *Gītā*. The Lord blesses them saying that his permanent abode on earth – where he is in eternal Līlā – is Pramodavana, that he will go for a time to finish the work of restoration of Dharma ordained for the Rāma–incarnation and come back, and that during his absence they should all remain there immersed in him without the sense of differentiation (*abheda*) (41). Rāma then explains the many forms he assumes for helping his seekers in their contemplation (li-lii). The story in then given of the penance done formerly by Nandana, Gavendra, Sukhita and their wives Rājanī and Maṅgalyā of the Pramodavana which led to Lord and the His Śakti appearing there as their children. (liii). The pre-history of the 16,000 women of the Pramodavana (liv) who were originally the sages of Daṇḍakāraṇya is then told (lv). Ch. lvi continues the story and makes express mention of the Kṛṣṇa-avatāra and the Gopīs observing Kātyayānī-vrata to obtain Kṛṣṇa as their Lord and the episode of the Lord taking away their clothes. The counterpart in the Rāma-incarnation of each thing in the Kṛṣṇa-incarnation is also mentioned. In fact, all of them in the Pramodavana, and later in the Vṛndāvana, are the Gods of heaven (Devas) (lvi-lvii). Ch. lviii sets forth the *dharmas* to be done by Vaiṣṇavas or the devotees of Viṣṇu, pilgrimage, service in Viṣṇu-shrines, baths, gifts ete. In Ch. lix, the contemplation of the Lord within one's heart, according to the *Dahara-vidyā* of the *Chāndogya Upaniṣad* is expatiated upon. With this, the *Rāmagītā* which began in Ch. 43 ends and it is called in the colophon *Rāmagītā-Upaniṣat-samhitā*. It extends to the same number of 18 chapters as the *Bhagavadgītā*. With concluding hymns on Rāma by Sukhita, the chief of the cowherds, and the other cowherds, Rāma's life in Pramodavana comes to an end.

From Ch. lxi, the *Rāmayāṇa*–story proper begins. Rāma and the brothers have returned from the Pramodavana. Daśaratha already knew that Rāma has come to destroy Rāvaṇa and other Rākṣasas. Rāma is referred to as the Supreme Brahman in Upaniṣadic terms (xli. 5–14). We may note only deviations or additional ideas not found in Vālmīki:

1. In the early chapters on the birth of the four sons to Daśaratha, we are told twice (xii. 30; xv. 1) that Lakṣmaṇa was the *second* son and Bharata the *third* (xvi. 1) and Śatrughna the *fourth* (xvi. 10).

2. That Lakṣmaṇa is the manifestation of *Śeṣa* is expressly stated (xv. 2).

3. The four brothers are equated with the four Vyūhas; Rāma-Vāsudeva, Lakṣmaṇa-Saṅkarṣaṇa, Bharata-Pradyumna and Śatrughna-Aniruddha (xv and xvi).

4. Ch. lxii. Daśaratha goes to Sarayū for bath and is carried away by an aquatic animal. Rāma dives into the waters, is received there and honoured by Varuṇa and comes out with Daśaratha. This is after the episode of Nanda being carried away by Varuṇa's emissaries and Kṛṣṇa bringing him back, *Bhāg.* X.i. 28.

5. Ch. lxiii. Daśaratha celebrates along with his sons, the spring festival on the banks of Sarayū when a demon named Chāyāsura casts a shroud of darkness in which everybody except Rāma is thrown into a swoon. Rāma kills the demon.

6. The Vasanta festival continues (Chs. lxiv, lxv). Rāma sees an unusual bird of great beauty, the like of which is not found in creation. In the conversation between the bird and Rāma, Rāma says that he abides eternally in the Pramodavana, but has also to carry out the work of the avatāra which has now to be attended to. The bird then flies to Mithilā and before Sītā there-already immersed in thoughts of Rāma-drops a picture of Rāma. The bird gradually drags Sītā to a secluded place in the garden and asks her to give a picture of hers to be conveyed to Rāma. Sītā does so. The episode is evidently inspired by the romance of Nala and Damayantī.

7. Five chapters that follow (66-70) hark back to Pramodavana and its cowherds who are affected deeply by the departure of Rāma. Three princes from Rāma's side go there and console them. This section is a replica of the visit of Akrūra to Gokula and the words of comfort that he spoke to the Gopas and Gopīs in the *Bhāgavata*. Expressions in the two texts run close in this episode also.

8. On the return of the princes from Pramodavana, there is an additional matter which should be noted. Rāma gives a philosophical discourse to the princes (ch.LXX) and as part of this, Rāma narrates a dialogue between Bharata and Śāṇḍilya; the point to be noted here is that this concerns the future incident of Bharata refusing the kingdom and preferring the life of a recluse attending upon Rāma's Sandals. (lxx. 18 ff.). Sage Śāṇḍilya gives Bharata a philosophical discourse, embodying expressions from the Upaniṣads (lxx.22,-*Mahānārāyaṇa*) and exhorting Bharata to adore within his heart Rāma, the Supreme Being. Śāṇḍilya's teachings include the repetition of Rāma's Name and its efficacy (28). The wearing of marks or the replica (mudrā) of Rāma is also emphasised (36).

9. After Viśvāmitra comes and takes Rāma and Lakṣmaṇa and the three are proceeding, we have, in the manner of the *Bhāg.*, a demon in the form of an ass introduced as attacking Rāma (ch. lxxii). It is after Rāma's killing of this Gardabha-asura, that the demoness Tāḍakā comes. Curiously a line occurs here mentioning her two sons as having already been dealt with by Rāma ! (13) Rāma kills some of the demons who come to ruin Viśvāmitra's sacrifice and drive away some (LXXIII). Lakṣmaṇa expresses his wonder at Rāma's prowess but Rāma says that it was Lakṣmaṇa's power that entered Rāma and destroyed the demons, for Lakṣmaṇa was Samkarṣaṇa and Kāla ! 27, 30); in truth, as far as he Rāma himself was concerned, there was neither trouble with demons nor any pleasure with gods (29). Echoing *Bhagavadgītā* V. 18, , the text then says that good or bad, Rāma sees everything with an equal eye (31). The text adds that Viśvāmitra's sacrificial austerities went on for *years* and Rāma stayed on protecting them from the demons (32 ff.).

10. A new idea introduced here is what is found in some versions in regional languages like Tamil and Hindi and in some Greater Indian versions, namely, the meeting of Rāma and Sītā before the breaking of the bow. Our text makes Rāma and Lakṣmaṇa stroll in the garden outside Mithilā where Sītā comes to worship *Ambikā* in the Śiva temple (LXXV). Rukmiṇī in the *Bhāg.*, we may recall, refers to the custom of worshipping Ambikā by girls to be married. Rāma expresses his infatuation for her, refers to her being his Śakti in Pramodavana, and to her coming Svayamvara at which he is going to win her hand.

11. Earlier, when describing the birth of the four sons to Daśaratha, there is no mention at all of the putrakāmeṣṭi sacrifice by Ṛśyaśṛṅga but suddenly now, when introducing Rāma to Janaka, Viśvāmitra describes the four boys as the 'good fortune of Ṛśyaśṛṅga' ! (LXXVI. 24). Again the Ṛśyaśṛṅga-episode is referred to in the exchanges with Paraśurāma (LXXVII. 46). Also all the four girls in Janaka's house are straightaway mentioned by Viśvāmitra as suitable brides for the four boys (26).

12. In the confrontation with Paraśurāma, the new idea to be noted is that he sends first a messenger to *Janaka* to convey his protest and anger with regard to Rāma breaking Śiva's bow. Paraśurāma, after his prolonged outburst against Rāma, finally realises that Rāma is the Supreme Being.

13. After the marriage and as *Yuvarāja*, Rāma is said to spend a thousand years. In the middle here, there is a story of the *Creepers* in the *Rasālavana* (mango-grove) next to the Pramodavana having been

originally heavenly damsels born of Brahmā's mind and waiting to be relieved of their curse and restoration to their original status by Rāma. (LXXX-LXXXV).

14. The mission of destroying demons or of blessing devotees is but incidental to the *avatāra*; Rāma's primary nature is to be in eternal and blissful *līlā* (LXXXVI. 4-6); He is just *Prema* and *Ānanda*. (12)

15. XCI. Ādi Nārāyaṇa tests Rāma by carrying away the sacrificial fires of Daśaratha; Rāma visits Ādi Nārāyaṇa and brings the fires back.

16. Rāma's *Yauvarājya* is very elaborately described; the greatness of Rāma's Name, his personality as Supreme Being and his prowess are all described. In connection with the last (Ch.XCIII), the *future* exploits of Rāma are touched upon, his making the Sea submissive, his building the Causeway and taking the monkeys across for the conquest of Laṅkā, his destruction of Rāvaṇa, his killing of Vālin, Hanumān's prowess and devotion and obedience to Rāma. The whole section is on the *Ṣāḍguṇya*, the six qualities, of Rāma as *Bhagavān*. Ch. XCIV includes a long learned hymn on Rāma by the Śrutis, set in Advaitic terms and composed in long metres.

17. When describing the sixth quality of *Vairāgya* (ch. XCVII), the text narrates the *future* story of Rāma allowing Sītā, in her pregnant state, to go to the forests and stay some time with the womenfolk of the hermitages, presenting them clothes, ornaments etc. Lakṣmaṇa takes Sītā and leaves her there. When Sītā is having a pleasant sojourn in the hermitages, one of the hermit ladies tells Sītā that there has been going around a rumour that Rāma was told by his court-clown (Vidūṣaka) that although the people praised Rāma for all that he was and had done, they yet expressed some dissatisfaction with his taking back his wife who had been in captivity in Rāvaṇa's palace and that Sītā's sojourn in the forest might be due to this. Sītā is sad to hear this but Vālmīki consoles Sītā that Rāma who is the Supreme Being is above all this and that She Sītā is his Supreme Śakti and should not think of these small things. A lady messenger Kauśikī goes from Sītā to Rāma and she finds Rāma unaffected. This future story is strangely brought in during Rāma's *yauvarājya* to illustrate his quality of *Vairāgya*.

18. Another exploit of Rāma as Yuvarāja. The Brahmins complain that tigers from forests had eaten their cows; Rāma restores their cows. (XCVIII)

19. Daśaratha and Vasiṣṭha realise that young Rāma is none else than the Supreme Being (XCIX). Rāma then, along with Lakṣmaṇa, goes to the other worlds to bring back those of his side who were dead in their battle with the Rākṣasas in Viśvāmitra's hermitage.

20. Now begins a series of chapters devoted to Daśaratha's pilgrimage (*Tīrthāyatrā*). Finding that Rāma, as yuvarāja, is looking after the kingdom well, old Daśaratha undertakes visits to several holy spots, waters, shrines etc. This section extends from ch. 101 to 145, almost to the end of the Book and covers the holy spots of Ayodhyā, those on the Sarayū and the Gaṅgā, Banaras, Naimiśāraṇya, etc. Some holy places and rivers of South India are also mentioned : Śrīparvata mountain, a Ṛṣabhādri in Pāṇḍyadeśa (103. 118), Kāverī, Kanyākumārī on the sea, Gokarṇa, Veṇā, Godāvarī, Kṛṣṇa-veṇā, Varadā, Payoṣṇī, Daṇḍakāraṇya, Śūrpāraka, Saptagodāvara, Tuṅgāraṇya. Then Mt. Kālañjara, Citrakūṭa and Mandākinī, Śṛṅgaberapura, Prayāga; then Puṣkara, Kurukṣetra and Gangādvāra. All this Vasiṣṭha describes to Daśaratha and recommends to the King for his visits.

A further series of holy places follows: Jambūmārga and cities nearby; Ujjain, Narmadā, Oṁkāreśvara (Māndhātā), Prabhāsa, Dvārāvati and other spots of Saurāṣṭra; then the tīrthas of Brahmāvarta and Kurukṣetra; then of Kashmir and of the Himālayan regions; then Yamunā and Mathurā and its holy spots; and in this connection an elaborate account of Yamunā's stories is given and it is to be noted that a description of her relations with Kṛṣṇa, the next incarnation, is also given here. Daśaratha then goes to Pramodavana where Rāma is in eternal sport and which is called *Ādi-vraja*, the original of the Vraja of Kṛṣṇa-avatāra.

21. In ch. cxix, there is the repetition of the episode of the festival to Indra being vetoed by Rāma and the latter asking the cowherds to worship Brahmans, the devotees of Viṣṇu and the mountain there, which is an echo of the Govardhana-uddharaṇa story in the *Bhāg*. This and other stories of Rāma are recalled and told to Daśaratha who is on a visit to Pramodavana. The accounts sometimes bring in descriptions of other incarnations of Rāma like the Narasiṁha (ch. cxiii). Many stories of Rāma's līlās as Lover and Rasika of Pramodavana are also told to Daśaratha, including the Gopī-vastrāpaharaṇa by Rāma comparable to the one by Kṛṣṇa (Ch. cxxviii), the *Rāsalīlā* that follows (chs. cxxix–cxxx) and so on. It may be noted that the *Rāsalīlā* passages here in ch. cxxx (esp.vv.73,74) are after the manner of the *Gītagovinda*. The imitation of the *Bhāg*. is also very palpable (vv. 63, 104, 105).

22. Ch. cxxvii gives a list of 36 delicacies which are served to Daśaratha during his stay in the Vraja (vv. 11–18); several of these are *vernacular* names and provide a clue to the date of the composition. Another list of 56 dishes, dear to Rāma and served to Daśaratha follows (vv. 19–27) which is also full of *vernacular* names.

23. The episodes of Rāvaṇa's demon-emissaries attacking Rāma in the Vraja and Rāma killing them are narrated to Daśaratha.

24. In an interim dialogue between Brahmā and Sarasvatī, it is said that these early, boyhood *lilās* of Rāma for twelve years in *Pramodavana* were '*Rahasyas*', secrets, and Vālmīki did not write about these in his epic. Reference is made in this connection to these Brahma-Bhusuṇḍi narratives and some others of this kind (ch. CXXXVI).

25. Daśaratha is given a resume of the Rāmāyaṇa-story after Rāma left the Vraja. After the marriage with Sītā and the return of the boys from Mithilā upto Daśaratha's pilgrimage, which had taken place, the things which are to happen are told :

i. Rāma's proposed coronation, Kaikeyī's two boons, Rāma going to the forest and reaching Citrakūṭa.

ii. A new idea : Rāma shooting two arrows assuring protection to the Sages of the forest against Virādha and other Rākṣasas and the two arrows coming into Pramodavana; the two arrows turning into Rāma and Lakṣmaṇa and their flashing lustre turning into Sītā.

iii. Killing of Virādha and reaching Pañcavaṭī; the Śūrpaṇakhā-episode and destruction of Khara and his hosts.

iv. Rāvaṇa hearing of this and sending Mārīca as a deer; Rāvaṇa carrying off Sītā, *not the real* Sītā but only her '*Chāyā*', her real person having been deposited in *Gārhapatya Fire* (CXXXVI. 102–3).

जहार रावणस्तूर्णं सीतां छायामयीं स्त्रियम् ।
सीता तु गार्हपत्याग्नौ प्रविष्टा श्रीः स्वयंभवा ॥

v. Rāma's separation from Sītā and his killing of Rāvaṇa and making Vibhīṣaṇa King of Laṅkā; his receiving the real Sītā from Fire (v. 106); and return to Ayodhyā with all his allies.

26. Daśaratha's further pilgrimage and his visits to rivers Sarayū, Kauśikī, and Gomatī; then Brahmāvarta, Naimiśāraṇya, Prayāga, Harikṣetra, Śoṇa, Vārāṇasī, Gayā, Confluence of Gaṅgā and the Sea, Kapilāśrama, Hāṭakeśavara. Puruṣottama (Pūri), Mt. Mahendra (shrine of Paraśurāma), Sapta Godāvara, Veṇā and Kṛṣṇa, Pampā, Bhīmarathī, the Shrine of Mahāsena (Kumāra), Śrīparvata; then in Tamil Country (v. 35). Veṅkaṭādri (Tirupati), Kāmakoṭi-city with Śiva and Viṣṇu Kāñcīs (v. 36), Kāverī, Śrīraṅga, Ṛṣabhādri, Harikṣetra, Madhurai (where Rāma sported with Tamil women v. 41), Setu, Kṛtamālā, Tāmraparṇī, Malaya, Kanyā Kumārī, Anantapura (Trivandrum) and other sacred places of Kerala, Gokarṇa, the shrine of Āryā (Mūkāmbikā ?); then Tapatī; (the geographical order is irregular); Payoṣṇī, Nīrvindhyā,

Daṇḍakāraṇya, Narmadā, Māhiṣmatī, Amarakaṇṭaka, Ambikāvana, Sarasvatī; then places in Saurāṣṭra and Kathiawar: Prabhāsa, Dehotsarga, Somanātha, Dvārakā [1], (a statement again that Rāma is the Avatārī, Kṛṣṇa etc. His Avatāras, Rādhā etc. replicas of Sītā; so also Yamunā of Sarayū and so on--vv. 97–100).

There is an actual reference to *Śuka* and the *Bhāgavata Purāṇa* (v. 108).

Daśartha's further Tīrthayātrā : Sindhu (Indus), Kashmir, Kurukṣetra, Sarasvatī, Pṛthūdaka, Yamunā, Gaṅgādvāra, Viśālā, Kedāra, Badarī; interim story of Viśālā and her relation with Rāma (Ch. CXXXIX).

Ch. CXL. Daśaratha moves east : Kūrmācala, Nepāla, Kāmarūpa; then back to Mithilā. Long conversation with Janaka in Mithilā; expatiation on the greatness of Sītā, the Sītā–Gāyatrī–mantra, her worship etc. It is with the strength of Her Mantra that Rāma and Lakṣmaṇa got an adamantine body in the battle and conquered Rāvaṇa and others (CXLII. 93–4). Sītā *Raseśvarī* (v. 227).

Daśaratha then comes to Mathurā and the sacred spots there. Śuka is made here to speak to Daśaratha on the greatness of Rāma (CXLIII. 36 ff). The love of the sages and Rāma's promise that they will become Gopīs in Bṛndāvana and enjoy him repeated once more. The spots in Bṛndāvana sanctified by Kṛṣṇa and his *līlās* told to Daśaratha !

Daśaratha meeting Paraśurāma and hearing the praise of Rāma from him.

Daśaratha returns to Ayodhyā after these long pilgrimages (CXLV) and is overjoyed to meet Rāma and others. Curiously, among the many sages whom Daśaratha introduces to Rāma, Śuka is also mentioned. Daśaratha reports on his pilgrimages and Rāma blesses the sages who are to enjoy him.

The chapter (CXLVI) and the first Book Pūrvakhaṇḍa end with a reference to Rāma as the embodiment of the Supreme Bliss mentioned in the *Taittirīyopaniṣad*.

The critical review of the contents of the first Book given above is based on the edition of that book now offered. There are three more books, *Khaṇḍas*, *Paścima*, *Dakṣiṇa* and *Uttara*. The story from Sītā's marriage to return of Rāma to Ayodhyā with her is dealt with in Book II. The

1. Five gems of Saurāṣṭra are mentioned (v. 86): Rivers, Women, Horses, Dvārakā and Somanātha.

departure to the forests and return to Ayodhyā after Rāvaṇa's end is dealt with in Book III. Book IV describes the later life and Rāma's return to his original abode. The more noteworthy points in the account as seen in Books II, III and IV may be added on the basis of the resume of the story (*Kathāsāra*) furnished in Hindi by the Editor. A detailed critical account will have to wait till these remaining Books are published.

The second book, the *Paścima-Khaṇḍa*, starts with the story of the marriage of Rāma and Sītā. The noteworthy points here are :

1. The Queen of Mithilā, *Sunayanā*, prays to Goddess Lakṣmī who incarnates in four forms in the former's house. This evidently refers to the three other sisters who are married to the three brothers of Rāma.

2. Having heard of Sītā's beauty, Rāma sends her a bird-messenger and Sītā sends him her picture, through the same bird.

3. Rāma meets Sītā first in the garden, where, as in the case of Rukmiṇī in the *Bhāgavata*, Sītā had come to worship Ambikā as a preliminary to the marriage.

4. Rāvaṇa attends the Svayamvara.

5. When Daśaratha started exercising his mind over his age and the transfer of the Kingdom, one alternative he thought of,—which does not occur in any other version—is the division of the Kingdom equally among the four sons, but he prefers the time-honoured family practice of bestowing it on his eldest son.

6. Indra is worried that if the coronation goes through, the gods' plan to put an end to Rāvaṇa will be frustrated. So through Brahmā's intercession, Sarasvatī goes to Ayodhyā and makes Mantharā and Kaikeyī ask for the two boons. This is seen in the *Adhyātma Rāmāyaṇa*.

7. The crow which harasses Sītā in the forest is mentioned straight away as Jayanta.

8. Even before his coming back with Rāma's sandals, i.e. as soon as he hears of Rāma's departure to the forest, Bharata refuses to stay in the palace and takes his abode in a hermitage on the banks of the *Tamasā*; it is from there that he performs the obsequies of Daśaratha.

9. When Bharata is conducting the administration of Ayodhyā with Rāma's sandals from Nandigrāma, Bakāsura and Rāvaṇa feel jealous of the prosperity of the Kingdom and plan to steal Rāma's sandals. The two come there in person but do not succeed.

10. When Rāma is in Citrakūṭa, the Gopīs of Pramodavana go with their cattle to Rāma and spend a lot of time with him. Rāma and Sītā (Sahajā) and the Gopīs enjoy the *Rāsa*-dance.

11. It is after seeing Rāma well-established in the forests, amidst the sages, that Rāvaṇa goes on a series of severe penance, worshipping Śiva at Ujjain, Kāśi, Gaṅgāsāgara, Hāṭakeśvara and Kailāsa. Śiva gives Rāvaṇa boons with which he brings the whole world under him. Rāvaṇa goes on his victory compaign but is humiliated at the hands of Kārtavīrya at Māhiṣmatī. Rāvaṇa then goes again to Kailāsa and brings Śiva's Liṅga and consecrates it in Laṅkā.

12. Even when he is in Citrakūṭa, Rāma is attacked by demons and he kills them.

13. After Rāma reaching Atri's hermitage the cowherds of Pramodavana, unable to see Rāma anymore, return.

14. At Pañcavaṭī Rāma spends twelve years, worshipping at Ambikeśa Mahādeva's temple there.

15. Rāma knows that the golden deer is a deceit of the Rākṣasas and tells Sītā that she who had given up a Kingdom should not be tempted by this. Sītā presses Rāma to go after the deer.

16. The line drawn by Lakṣmaṇa which Sītā should not cross is mentioned.

17. Sītā leaves her real self in the Fire before Rāvaṇa takes hold of her.

18. Rāvaṇa takes her *on his shoulder.*

19. The date of this event is Māgha Śukla Caturdaśī.

20. Kabandha informs Rāma not only of Sugrīva as worthy of Rāma's friendship but gives all particulars about Rāvaṇa and his abode. As regards Sugrīva, Kabandha adds that Sugrīva *wants Vālin's kingdom and wife Tārā.*

21. The popular tradition that Śabarī offered Rāma fruits she had already tasted and found good, is given. She does not go to heaven. Rāma asks her to stay on doing her penance till Kṛṣṇāvatāra when Rāma will accept her as one of the Gopīs. The sages of the forest are said to have become jealous of Śabarī with the result there was famine and Agastya had to bring water there by his powers and make the sages beg Śabarī's pardon.

22. The trees which Rāma is asked by Sugrīva to shoot at are said to have not one but a few serpents and Rāma is said to kill them too.

23. Dundubhi's carcass is thrown afar by Rāma, not with the tip of his toe, but with the *tip of his arrow.*

24. After the first encounter with Vālin, Sugrīva returns wounded and Rāma touches his body to relieve him of all pain and Rāma himself puts a garland on his neck to distinguish him.

25. Rāma is said more than once to regret his having killed Vālin either for his own selfish purpose or for no sufficient reason.

26. When Lakṣmaṇa goes to Kiṣkindhā to pull up indolent Sugrīva, Rāma with his divine form, visits Laṅkā and in the Aśokavana with Sītā and the Gopīs of Pramodavana who gather there, has his third *Rāsalīlā*.

In the *Ānanda Rāmāyaṇa* (Book I), Rāma is said to be enjoying at this time the company of Sītā in her Sāttvic form in Rāma's own body.

27. In Laṅkā, Hanumān is said to see Vibhīṣaṇa's house and the *Tulasī* plants there.

28. Hanumān does not come back to Sītā to take leave of her before he starts on his return flight.

29. The stones of the *Setu* stood on the waters because of Rāma-Nāma which Nala kept reciting. The bridge took *four days* to build; it started on *Pauṣa Kṛṣṇa Daśamī*, and was completed on *Trayodaśī*.

30. They take *three days* to cross over to the Laṅkā-side.

31. The siege of Laṅkā is for *eight days*.

32. On first sighting Rāvaṇa at a distance in his palace, Rāma is said to shoot and shatter his parasol and fly-whisk (*chatra-cāmara*). The *Adhyātma Rāmāyaṇa* has this.

33. The battle actually starts on *Pauṣa Kṛṣṇa Trayodaśī*.

34. The date of Aṅgada's mission is given as *Māgha Śukla Prathamā*.

35. Aṅgada meets Sītā after his mission and encounter with Rāvaṇa and brings Rāma news of Sītā's suffering.

36. The date of the battle with Indrajit is *Vaiśākha Kṛṣṇa Navamī*. This was the 10th day of the battle and on the 11th day, there was one day's respite.

37. There is an interesting dialogue here between Sugrīva and Rāma. Sugrīva asks, "you have promised to give Laṅkā to Vibhīṣaṇa; if Rāvaṇa surrenders and asks for your pardon, what wlll you do ?" Rāma replies, "I will give him Ayodhyā."

Now, the great Rāma-singer and the foremost Karnatic music composer Tyāgarāja has embodied this idea in a song of his in Rāga Kāpi Nārāyaṇī, 'Sarasa Sāma Dāna' describing Rāma as an adept in all the four policies of Sāma, Dāna, Bheda and Daṇḍa, as adopted by him in the battle against Rāvaṇa.

38. Kumbhakarṇa first tells Rāvaṇa that Rāma is the Supreme Being. His fight lasts five full days. *Phālguna Amāvāsyā* was Kumbhakarṇa's funeral.

39. *Caitra Kṛṣṇa Dvitīyā* was the date of Indrajit's sacrifice. Although Lakṣmaṇa does the fighting, Rāma is brought in to touch the fallen fighters on his side and bring them back to life with his ambrosial touch.

40. Indrajit falls on *Caitra Kṛṣṇa Caturdaśī*. Sulocanā is mentioned as Indrajit's wife; Rāma first offers to revive Indrajit for her but she wants only Rāma's blessings; and she then mounts the pyre with her husband's body. Indrajit and Sulocanā are blessed by Rāma and they are born as a Gopa pair in the Kṛṣṇa-incarnation.

41. Rāvaṇa's own fight was from *Caitra Śukla Prathamā* to *Aṣṭamī*.

42. Because of Ekādaśī intervening, the battle is said to stop for a day.

43. Strangely Kubera's *Puṣpaka* is said to come to help Rāma in the battle. Rāma is said to fight from the *Puṣpaka*.

44. Rāma's *Brahmāstra* becomes tenfold and falls on the ten heads of Rāvaṇa and destroys him.

45. Vibhīṣaṇa first declines the Kingdom, preferring Rāma's devotion and service. Rāma makes Vibhīṣaṇa a *Cirañjīvin* and bestows the Kingdom on him.

46. Lakṣmaṇa is sent, not Hanumān or Vibhīṣaṇa, to meet and bring Sītā.

47. The dead monkeys are revived not by Indra's *amṛta*, but by the ambrosial look of Sītā.

48. At Sītā's request, Rāma receives Trijaṭā.

49. Rāma leaves for Ayodhyā on the *Puṣpaka* on *Vaiśākha Śukla Pañcamī* and as mentioned in Vālmīki, on *Pañcami*, they arrive at Bharadvāja's *āśrama*.

50. The coronation was on *Saptamī*.

The Uttarakāṇḍa story :

51. Sītā is pregnant and wants to go the hermitages in the forest and give presents to the hermit-women there and obtain their blessings. Rāma agrees, although reluctantly, as he does not like to be separated from her.

Although any gossip among people in Ayodhyā is not mentioned here as the reason for Sītā's going, later when Sītā is happily enjoying her time in the hermitages, a hermit tells her one day that there has

been some talk that some villain referred in Rāma's assembly to Sītā's stay in Rāvaṇa's place and this might have made Rāma send Sītā away.

52. Regarding the final stages of Rāma's sojourn on earth, as narrated here, we may note :

(a) When *Kāla* (Time) comes at Brahmā's instance and sees Rāma, Rāma tells *Kāla* that His (Rāma's) *Līlā* is beyond all *Kāla* and *Māyā* and therefore there is no end to his *Līlā*. Kāla reports this to Brahmā.

(b) When *Kāla* comes a second time, he sees Rāma and Sītā as one person, an ardhanārīśvara.

(c) When Durvāsas comes and Lakṣmaṇa peeps in to report, Lakṣmaṇa sees Rāma in his terrible *Viśvarūpa*.

(d) Rāma gives a discourse on Viṣṇu Bhakti in 18 chapters to Durvāsas.

(e) Rāma addresses Lakṣmaṇa as inseparable from him as Lakṣmaṇa is Saṅkarṣaṇa Śeṣa. Rāma asks Lakṣmaṇa to stay on at the Sarayū-bank, doing meditation.

(f) Then after a time, Rāma announces his decision to leave for his permanent abode and asks all those who want to come along with him to follow. His brothers and associates and the Gopas and Gopīs, all leave with him.

Except for the ideas noted above, the narrative of the story follows the course of events as seen in Vālmīki.

The *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa* is also a source of information on literature on *Rāma-bhakti* and versions of the Rāma-story oriented to *Madhura-bhakti*. In 1.9.14, Brahmā first refers to Vālmīki's version and then to another text on the Rāmāyaṇa-story called *Rāmānukrīḍā* which, from the name, seems to deal with the boyhood sports of Rāma on the model of those of Kṛṣṇa. A little later in the same chapter (vv. 29–30), *Rāmāyaṇas* spoken by *Hayagrīva*, *Vālmīki*, *Brahmā*, *Bhuśuṇḍi* and *Vasiṣṭha* are mentioned and the text adds : the above are but a fraction; Rāmāyaṇa is endless : '*Rāmāyaṇam anantakam*'. Ch. 25, vv. 13–23 give Brahmā, Śuka, Śeṣa and Sītā as the custodians of Rāma-story. The recipients of the story are Bhuśuṇḍi, Parīkṣit, Earth, Lakṣmaṇa and Hanumān (13–16). Śuka gave to Parīkṣit; Śeṣa to Earth, Sītā to Lakṣmaṇa and Lakṣmaṇa to Hanumān. The texts associated with these are said to be five *Saṃhitās* : Of these that of Bhuśuṇḍi is in 36,000 verses; another is in 40,000, the third in one lakh and that of Hanumān, in one lakh and preserved in *Vāyuloka*. The *Brahmasaṃhitā* i.e. the *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa* incorporates matter from all these. 1.94.33 mentions Vālmīki, Hayagrīva, Hanumān, Agastya, and Śeṣa. 137–87 refers to Atri's narration of Rāma-story.

Chapter 136, vv. 46–49 speak of the *Rāma-caritas* spoken by Vālmīki, Agastya, Hayagrīva, Śiva, Hanumān, Vāyu (?), Lakṣmaṇa (?), Sītā (?) and other sages. At the very end of the work (4th Book) the following are mentioned as having successively given this Rāma-story : Rāma to Sītā in Pramodavana; Sītā to Lakṣmaṇa; Lakṣmaṇa to Bharata; Rāma to Hanumān; Hayagrīva to Agastya, Agastya to Brahmā; and Brahmā to Bhuśuṇḍi. In the *Citrakūṭamāhātmya* the sages *Bharadvāja*, *Atreya*, *Sutīkṣṇa*, *Śāṇḍilya* and *Agastya* figure as interlocutors. In the *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa* the framework is : Brahmā describes to Bhuśuṇḍi, Bhuśuṇḍi to Dālbhya and Dālbhya to Lomaśa (I. 136. 72–73).

In the *Bhuśuṇḍi* and the *Uttarakāṇḍa* of Tulasī's *Rāmacaritamānasa*, two other names *Garuḍa* and *Lomaśa* figure. Lomaśa on Rāma occurs in the *Mahābhārata* (Vana, Tīrtha-yātrā) and the *Padmapurāṇa*, *Pātālakhaṇḍa*.[1] The vista of such Rāma-works is enlarged considerably by the Editor of the present text who mentions in his Introduction : *Śivasamhitā*, *Lomaśa-saṁhitā*, *Sadāśivasamhitā* *Satyopākhyāna*, *Bṛhatkosalakhaṇḍa*, etc. which, in the manner of the *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa*, expatiate on Rāma's boyhood, sports in Pramodvana, his *Rāsalīlā* etc.

These works on *Rāmabhakti* are not based on Rāmānuja's philosophy as has been assumed by some. They are, on the other hand, outspoken in their Advaitic character but as in the case of the *Bhāgavata*, Bopadeva and Madhusūdana Sarasvatī, this Advaita is integrated with fervent Bhakti of the *Madhura*-type. In I. 9, 20-21, the *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa* mentions the *Vedānta*, *Brahma Sūtras*, etc. In I. 44. 12 ff. Upaniṣads are quoted[2] and the Advaitic conception of the Supreme Brahman, the lower Brahman, the appearance of multiplicity etc. are set forth. In ch. 110, vv. 301 ff where the treatment is quite Śāstraic, the Advaitic ontology is set forth, Auḍulomi's view in the *Vedānta Sūtras* that, on the end of the embodied existence, the individual soul becomes one with the Supreme, *Sadyomukti* or immediate release etc. are mentioned. Earlier, in ch. 94, vv. 49-58, couched in the same technical language, Kṛṣṇa Dvaipāyana, his *Vedānta Sūtras*, Ekadaṇḍī Sannyāsa without Śikhā and Yajñopavīta, and *Advaita* are spoken of (52). The expression 'Nirguṇa' also occurs.

The standpoint of the *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa*, as already mentioned, is synthetic, Advaita being integrated to *Madhura-bhakti*. Rāma is called *Rasika* and Sītā Raseśvarī (142. 227). Rāma is said to be of the form of *Prema* (Love) and *Ānanda* (86. 12). In another place, *Premānanda* is given as greater than *Brahmānanda* (110-334). At the same time the idea of *Parā Bhakti* and *Nirguṇa Bhakti* is also given

1. See my 'The Greater Rāmayaṇa' pp. 10-49. There is a lot more in Hindi.

2 Upaniṣads are used often and in 59, *Daharavidyā* is described.

(7.22; 45-3). While the lower *bhakti* is of 3, 9, 27 or 81 kinds, *Nirguṇa Bhakti* is only one (45. 3). *Jñāna* with *Bhakti* and Sevā is considered as the means (110. 357). The naming of Sītā or the Śakti of Rāma with whom Rāma is in eternal sport as *Sahajā* or *Sahajānandinī* betrays Tāntrik influence.

The four forms of Viṣṇu, Vāsudeva, Sankarṣaṇa, Pradyumna and Aniruddha are thrice referred to but only in a general way and never in the way of the *Pāñcarātra*. In ch. 16, the four brothers are also called by these four names, in Kṛṣṇa's story in ch. 56; the four forms occur again, and also in ch. 110, v. 353. But even as the word *Pāñcarātra* does not occur anywhere, the word 'Vyūha' for these four forms is completely absent.

As already noted, the *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa* is composed under the inspiration of the *Bhāgavata* but as the date of that Purāṇa is not certain, we may seek other evidences for the date of the *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa*. The lower limit is clear, viz. A. D. 1574, the date of the composition of the *Rāmacaritamānasa* which was influenced by the *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa*. As for the upper limit, we may take two texts, the *Gita-govinda* whose impress the text bears in a clear manner: 130. 73-4, describing the sports of Rāma with the Gopīs, and the *Kṛṣṇakarṇāmṛta* of Līlāśuka; the well-known verses there describing Kṛṣṇa 'Kastūrī-tilakam' etc. is put into two verses in a shorter metre (18. 8, 9) and in the description of the *Rāsalīlā* , the verse 'Anganām anganām antare Mādhavaḥ' of Līlāśuka is imitated (35-54). The *Gitagovinda* belongs to the 12th century A.D. and Līlāśuka's date is most probably C. 1300 A.D. The *Bhuuśṇḍi Rāmāyaṇa* may therefore be placed in the 14th century A.D.

The *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa* is written, as already said, under the inspiration of the *Bhāgavata* but it does not ignore Sanskrit grammar as the *Bhāgavata* does in a big way;the lapses in the *Bhuśuṇḍi Rāmāyaṇa* are very few. The main defect is that it is prolix and in the description of Rāma's boyhood sports, it gives them once in the normal sequence of events and repeats them fully later when Daśaratha, during his visit to Pramodavana, is shown the places where the various *līlās* were displayed by Rāma. Command of language and poetic capacity are also prominent in the descriptions of persons, places, seasons, festivals etc.

The Editor has used four mss., and as he says, the mss. do not show much difference. He is to be congratulated not only for his editorial work but also for bringing to light this work which occupies an important place in Rāma and Rāmāyaṇa literature. It is hoped that he will bring out soon the other Books of the text.

V. RAGHAVAN

MADRAS

प्रस्तावना

भारतीय वाङ्मय में रामायण रचना की एक विशिष्ट परंपरा है। इस विशाल देश के दीर्घकालीन इतिहास में रामचरित पर आधृत जितना प्रचुर एवं विविधरूपात्मक साहित्य लिखा गया है वह उसके लोकाकर्षण का श्रेष्ठतम प्रमाण है। युगों-युगों में राष्ट्र के सांस्कृतिक जीवनदर्शन के अन्यतम प्रतीक के रूप में राम की जीवनगाथा समकालीन मनोभावों से संवलित हो जनजीवन में नवचेतना का संचार एवं चिरंतन मूल्यों की स्थापना करती रही है। रामकथा के विकास के तीनों स्तरों—ऐतिहासिक, साहित्यिक तथा साम्प्रदायिक—में विरचित रामायणों के अनुशीलन से उपर्युक्त उपपत्ति की यथार्थता सिद्ध होती है। महर्षि वाल्मीकि ने दाशरथि राम की गाथा लिखी; भास, कालिदास और कुमारदास ने मानवीय संवेगों से संपृक्त महामानव राम का चरित्रांकन किया तथा कंबन, कृत्तिवास एवं तुलसी की वैष्णव-भक्ति से आप्लावित वाणी ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी शैली में लोकतत्त्वों से परिप्लुत ब्रह्म राम की अवतारलीला का वृत्त प्रस्तुत किया। भुशुण्डि रामायण रामकथा की इस विशाल परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

हस्तलेखों की खोज

इस महान् ग्रंथ के अनुसंधान की ओर मेरी प्रवृत्ति का उन्मेष बड़े ही आकस्मिक रूप में हुआ। १९५१ ई० में मैंने 'उन्नीसवीं शती का रामकाव्य—विशेषतः महात्मा 'बनादास का अध्ययन' शीर्षक विषय पर पी० एच० डी० उपाधि के लिए कार्य करना प्रारम्भ किया। उससे सम्बद्ध सामग्री संकलित करने के निमित्त मैं अयोध्या के मन्दिरों तथा व्यक्तिगत पुस्तकालयों का आलोड़न करने लगा। एक दिन मुझे महात्मा रामचरणदास का 'राम नवरत्न सार संग्रह' नामक ग्रंथ नयेसखा बाबा हनुमानशरण के संग्रह में प्राप्त हुआ। उसमें एक स्थान पर 'भुशुण्डि रामायण' से उद्धरण दिया हुआ था।[1] इसके पूर्व मैंने इस ग्रंथ का नाम भी नहीं सुना था। श्री रामदास गौड़ द्वारा 'हिन्दुत्व' में दी गयी अप्राप्य रामायणों की सूची में भी इसका उल्लेख नहीं था। उक्त ग्रंथ में प्राप्त उद्धरण से भुशुण्डि रामायण के अस्तित्व में मेरा विश्वास जगा। इसी प्रसंग में एक दिन संयोगवश मैं लक्ष्मण-किला-पुस्तकालय (अयोध्या) देखने गया। वहाँ के तत्कालीन वयोवृद्ध महन्त रामदेवदासजी से उक्त ग्रंथ की चर्चा की। उन्होंने हँसते हुए कहा, "भैया! भुशुण्डि रामायण की पोथी मेरे यहाँ है किन्तु वह पूजा में रहती है, बेठन में बँधी भगवान के सामने रखी है। वहाँ से हटायी नहीं जा सकती। आपको पढ़ने के लिए प्राप्त नहीं हो सकती। हाँ, दर्शन कर सकते हैं।" यह कहकर उन्होंने मुझे उसका दर्शन कराया। मेरे संतोष के लिए बेठन खोलकर महन्तजी ने उसका प्रथम पृष्ठ दिखा दिया जिसके ऊपर 'अथ श्रीमदादिरामायण पूर्वखंड (पुस्तकालय श्री लक्ष्मण-किला) और भीतर हाशिये पर 'भु० पू०' लिखा था। जिज्ञासा करने पर महन्तजी ने कहा, 'इसका नाम तो भुशुण्डि रामायण है जैसे भु० पू० (भुशुण्डि रामायण, पूर्वखंड) से स्पष्ट है किन्तु यह

१. राम नवरत्न सार संग्रह, पृ० २७।

आदि रामायण के नाम से भी जाना जाता है। यह साधना का ग्रंथ है। केवल दीक्षित भक्तों को दिखाया जाता है। सामान्य लोगों के काम का नहीं है।" इसके बाद उन्होंने पुस्तक पूर्ववत् वेष्टित कर दी। इस कृपा से कृतकृत्य हो मैं आगे कुछ कहने का साहस न कर सका। बाबाजी ने कहा, 'इसको देखने बहुत लोग आते हैं किन्तु मैं दूर से देखने को कह देता हूँ। खोलता नहीं। कुछ दिन पहले एक अंगरेज आये थे। उन्हें भी नहीं दिखाया।' इस परिस्थिति में ग्रंथ को देखने का सुयोग मिल गया, यही क्या कम है? यह सोचकर अपने भाग्य की सराहना करता हुआ मैं घर चला आया। बाबाजी के सिद्धान्तप्रेम और दृढ़ता से मैं परिचित हो गया था। इसलिए इच्छा रखते हुए भी मैं उनसे ग्रंथ के अध्ययन की सुविधा देने का प्रस्ताव न कर सका।

इसके बाद जब भी मैं अयोध्या जाता तो महन्तजी से अवश्य मिलता और हर बार वे कृपापूर्वक उस ग्रंथ का दर्शन करा देते थे। इस प्रकार कई वर्ष बीत गये। बाबा रामदेवदासजी का साकेतवास हो गया। उनके उत्तराधिकारी सीतारामशरण जी हुए। गद्दी से पुराना संबंध होने के कारण मेरे कार्य-क्षेत्र से वे भलीभाँति परिचित थे। बाबा रामदेवदास के अंतेवासी होने से पहले उन्होंने कई बार उनसे मेरी भेंट करायी थी। मैंने उनसे भी पुस्तक देखने की बात कही। वे सहमत हो गये और मन्दिर में ही बैठकर मुझे पुस्तक देखने की अनुमति दे दी। मैंने उस दिन कुछ नोट लिये, फिर घर चला आया।

बलरामपुर के पास एक गाँव में बाबाजी की खेती होती थी। मैं उन दिनों वहीं कालेज में प्राचार्य था। वे अपने फार्म पर आते-जाते हुए मेरे यहाँ पधारते थे। इससे उत्तरोत्तर घनिष्ठता बढ़ती गयी। एक दिन बलरामपुर में मेरे घर पर ठहरने के समय बाबाजी ने कहा, 'आपको यहाँ से बार-बार पुस्तक देखने के लिए अयोध्या जाने में कठिनाई होती है, अतः अब मैं ऐसा प्रबन्ध करूँगा कि आप घर पर लाकर उसका अध्ययन कर सकें।' यह कहकर वे अयोध्या चले गये। यह बात आश्विन के कृष्णपक्ष के अन्त में हुई थी। उसके कुछ ही दिनों बाद उन्होंने एक शिष्य द्वारा मेरे पास संदेश कहला भेजा "पुस्तक मिल जायगी आकर ले जाइए।" उस दिन आश्विन शुक्ला सप्तमी थी (२४ अक्टूबर, १९५५)। मैं तत्काल अयोध्या चला गया। बाबाजी उपस्थित थे। उन्होंने वेठन में बँधा हुआ सम्पूर्ण हस्तलेख प्रसन्नतापूर्वक दे दिया। मैं कृतार्थ हो गया।

भुशुण्डि रामायण का हस्तलेख प्राप्त हो जाने पर जिज्ञासानिवृत्ति के लिए मैं पहले उसे आद्योपान्त देख गया। प्रति खंडित थी। फिर भी उससे मुझे यह पता लग गया कि शृंगारी रामोपासना का वह प्रमुख उपजीव्य ग्रंथ है। पी० एच० डी० के लिए काम करते हुए शृंगारी रामभक्ति का विशाल साहित्य मेरे देखने में आया था। प्रस्तुत ग्रंथ में निरूपित रामचरित में रसिक रामोपासना के सिद्धान्तों की गहरी व्याप्ति देखकर मेरी इच्छा इसी को डी० लिट्० का शोध-विषय बनाने की हुई। इस धारणा से मैंने उक्त ग्रंथ की अन्य प्रतियों की खोज आरम्भ की। भगवदनुग्रह से अयोध्या में ही श्रावण कुंज के महन्त सरयूशरणजी के पास दो प्राचीनतर एवं सम्पूर्ण प्रतियाँ उपलब्ध हो गयीं। एक सं० १७७९ में मथुरा में लिपिबद्ध हुई थी और दूसरी रीवाँ में सं० १८९९ में। इन तीन हस्तलेखों के मिल जाने से मुझे अपार संतोष हुआ। किन्तु उसकी अन्य पांडुलिपियों का अनुसंधान चलता

रहा। कालान्तर में ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ोदा में एक और प्रति का पता चला। वहाँ के अधिकारियों के स्वाभाविक सौजन्य से मुझे सम्पादन कार्य के लिए वह प्रति सुलभ हो गयी। इन चार प्रतियों के आधार पर 'पूर्वखंड' का सम्पादन किया गया। बिहार के रोहतास जिले के समहूता नामक गाँव में एक और प्रति विद्यमान बतायी जा रही है। इसी प्रकार जयपुर में भी एक हस्तलेख प्राप्त होने की सूचना मिली है। इन दोनों में से यदि कोई प्राप्त हो गया तो उसका अगले तीन खण्डों के पाठ-निर्धारण में समुचित उपयोग हो जायगा। उक्त चारों प्रतियों का अनुशीलन करने पर ज्ञात हुआ कि उनमें पाठभेद बहुत कम है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उनकी पूर्वज प्रति एक ही रही होगी। अयोध्या के संतों के अनुसार भुशुण्डि रामायण की लक्ष्मणकिला वाली प्रति महात्मा जानकीवरशरण कुलू (काश्मीर) से लाये थे। उन्होंने सं० १९२० से १९३३ के बीच पश्चिमोत्तर भारत का पर्यटन किया था। इस यात्रा में उन्होंने कुछ वर्ष काश्मीर में भी बिताये थे। साम्प्रदायिक परम्परा के अनुसार वे रसिक रामभक्त थे। भुशुण्डि रामायण में माधुर्य रामभक्ति का प्रतिपादन देखकर इसकी ओर उनका आकर्षित होना स्वाभाविक था। उसकी प्रतिलिपि उन्होंने किस प्रकार प्राप्त की, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। उसका लिपिकाल सं० १९२१ है। मूल प्रति कहाँ गयी, इसका पता नहीं। रीवाँ तथा मथुरावाली प्रति वह हो नहीं सकती कारण कि वह अयोध्या की ही एक दूसरी सख्य-सम्प्रदाय की गद्दी से सम्बद्ध है। वह पूर्ण है जब कि लक्ष्मणकिला की प्रति खंडित है। यह तथ्य भी उक्त प्रतियों के विभिन्न स्रोतों से सम्बद्ध होने का द्योतक है। किन्तु जब तक मूल प्रति प्राप्त नहीं हो जाती तब तक उपर्युक्त मान्यता की उपयोगिता केवल इस दृष्टि से है कि शैवागम के प्रसिद्ध केन्द्र काश्मीर में प्राप्त होने से उसके स्वरूप-निर्माण में तद्देशीय समसामयिक अध्यात्मसाधनाओं का भी प्रभाव संभावित है।

भुशुण्डि रामायण की उपर्युक्त पाण्डुलिपियों के साथ उसी नाम की एक अन्य रामायण से उद्धृत 'श्रीसीताराम युगलसहस्रनाम' नामक ग्रंथ पर भी विचार कर लेना समीचीन होगा। इसकी पाण्डुलिपि मुझे महाराजा बलरामपुर के निजी पुस्तकालय में प्राप्त हुई थी। इसमें $३\frac{1}{2}'' \times १\frac{1}{2}''$ आकार के ७९ पत्र हैं, प्रति पृष्ठ में मात्र तीन पंक्तियाँ हैं और छंद संख्या कुल १३१ है। ग्रन्थ की पुष्पिका इस प्रकार है :—

"इति श्री भुशुण्डी रामायणे ब्रह्मानारद संवादे बालकांडे द्वासीतिरध्यायः ॥१२॥
इति श्रीसीतारामजुगल सहस्रनाम संपूर्णम्। शुभमस्तु ॥ श्री श्री ॥"

इसके अंतर्गत नारद के प्रश्न करने पर ब्रह्मा द्वारा 'सीताराम युगलसहस्रनाम' की जपविधि तथा उसके ऋषि, मंत्र, बीज, शक्ति, अंगन्यास, करन्यास आदि का वर्णन है। सहस्रनाम के अंतर्गत ही रचयिता ने सारा रामचरित कह डाला है। अंत में फलश्रुति दी गयी है—

सीताराम सहस्रनाम युगलं सद्वैष्णावानां धनम्।
ये शृण्वन्ति पठन्ति पूजनपराः रामैक तादात्मनः॥
ते भक्ताः कवयो धनाढ्य सुखिनो सत्पुत्र मानावराः।
वाजीवारणसैन्यकाधिपतयो विस्तार कीर्त्यायुतः॥

सीताराम सहस्रनाम युगलं श्रोताथवापाठकः ।
श्रद्धाभक्तियुतेन शुद्धमनसा देवादिभिर्वंदितः ॥
तस्यैवं भवति ध्रुवं हृदि हरिः संशक्तियुक्तस्थितः ।
कृत्यांशापनिवारकः कुलपतिर्वैकुण्ठदायं भजेत् ॥
गंगा स्नान तडाग कूप खननादानाद्गया पिंडदात् ।
तीर्थानामटनात् प्रयागकरणादश्वादि संपद प्रदात् ॥
यत्पुण्यं लभते हयाऽध्वरकृते चांद्रायणानां व्रतात् ।
सीताराम सहस्रनाम पठनात्तत्सर्वदां प्राप्यते ॥[1]

ग्रन्थकार ने इसकी रचना सीताराम विवाह के अवसर पर शाखोच्चार के रूप में शतानन्द तथा वशिष्ठ द्वारा की गयी बतायी है । इसलिए राम की माधुर्य-लीला के उपासकों के लिए यह विशेष रूप से मननीय कहा गया है—

श्रीसीतारामयोर्दिव्यं माधुर्य चरितं वरं ।
सहस्रनाम युगलं यदभूत्परिणयोत्सवे ॥[2]
सुदेयं सदुपासकान् प्रेमभक्ति समन्वितान् ।
इदं सर्वस्व परमं न देयं चान्यमार्गिणः ॥[3]

नामों के वर्णन में सीताराम की शृंगारी लीलाओं को प्रमुखता दी गयी है । प्रमोद-वन में उनके द्वारा रचाये गये रास तथा अनेक प्रकार की अन्य माधुर्यपरक क्रीड़ाओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है—

उर्वी कन्या सुकेशी च मंजुघोषादिवेष्ठिता ।
प्रमोदारण्यरामेषु रमो नृत्यपरायणाः ॥
प्रमोदारण्य रसिका प्रमोदारण्य भाषिता ।
प्रमोदारण्य नटनः प्रमोदारण्यकेलि कृत् ॥
प्रमोदवन पुष्पान्या प्रमोदवनगामिनी ।
प्रमोदवन हर्षाढ्यः प्रमोदारण्य रास कृत ॥[4]

इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि श्रीसीताराम युगल सहस्रनाम नामक यह ग्रन्थ जिस 'भुशुण्डि रामायण' का अंश बताया गया है, वह भी प्रस्तुत 'भुशुण्डि रामायण' की भाँति शृंगारी रामोपासना का ही कोई अन्य ग्रन्थ रहा होगा । आलोच्य ग्रन्थ से उसे भिन्न मानने के कई कारण हैं :—

१. प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राप्त राम और सीता के सहस्रनाम संदर्भित ग्रन्थ के 'युगल सहस्रनाम' से सर्वथा भिन्न हैं ।

---

१. श्रीसीताराम युगल सहस्रनाम, छं० १२९, १३०, १३१ ।
२. वही छं० ५ ।
३. वही, छं० १२९ ।
४. वही, छं० १२, १३, १४ ।

२. प्रस्तुत ग्रन्थ पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर इन चार खण्डों में विभाजित है, किन्तु श्रीसीताराम युगल 'सहस्रनाम' वाला 'भुशुण्डिरामायण' जैसा उसकी पुष्पिका से प्रकट है, काण्डों में विभाजित प्रतीत होता है क्योंकि यह सहस्रनाम बालकाण्ड का अंश कहा गया है।

३. प्रस्तुत ग्रन्थ में वर्णित ''सहस्रनाम' में राम-कृष्ण तथा सीता-राधा की लीलाओं का समन्वित वर्णन है। किन्तु नवप्राप्त ग्रन्थ में मात्र रामावतार की लीलाओं का उल्लेख है।

४. प्रस्तुत ग्रन्थ में सहजा को राम की पराशक्ति माना गया है। किन्तु 'श्रीसीताराम युगल सहस्रनाम' में उनका नाम तक नहीं आया है।

इन विभिन्नताओं को देखते हुए मेरा यह अनुमान है कि 'श्रीसीताराम युगल सहस्रनाम' का अंगी ग्रन्थ 'भुशुण्डि रामायण' रसिक रामभक्ति से सम्बद्ध होते हुए भी प्रस्तुत 'भुशुण्डि रामायण' से पृथक् कोई अन्य रचना है, जिसका संधान अब तक नहीं मिल सका है। यह भी असंभव नहीं कि अनेक स्तोत्रों तथा सहस्रनामों की भाँति किसी सम्प्रदायनिष्ठ मनस्वी ने धर्म भावना से प्रेरित होकर 'युगल सहस्रनाम' को रचना करके महत्त्व अक्षुण्ण रखने तथा श्रद्धालुओं को आकृष्ट करने के उद्देश्य से उसे परंपराप्रसिद्ध 'भुशुण्डि रामायण' से सम्बद्ध कर दिया हो। किन्तु यह अनुमान ही है। संभव है भविष्य में निर्दिष्ट प्रति के प्राप्त हो जाने पर यह निराधार सिद्ध हो जाये।

आलोच्य ग्रन्थ की पाण्डुलिपियों के प्राप्ति-स्थलों के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि उत्तरी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में शृंगारी रामभक्तों के बीच इसका व्यापक प्रचार था। इस प्रसंग में यह प्रश्न स्वतः उठता है कि यदि गोस्वामी तुलसीदासजी की परवर्ती रामभक्ति धारा में माधुर्योपासना का स्वर ही सर्वाधिक सशक्त रहा है और प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना भी उसी दृष्टिकोण से हुई है तो फिर रसिक साधना के साथ ही इसका भी लोकव्यापी प्रचार क्यों नहीं हुआ ? यह समस्या मैंने स्वयं ग्रन्थोपलब्धि के समय विद्यमान सम्प्रदाय के मान्य वयोवृद्ध आचार्यों—श्रीरामकिशोरशरण, महात्मा विदेहजाशरण और जयपुर मन्दिर के महन्त श्रीराजकिशोरीवरण के समक्ष रखी थी। समाधान के रूप में उन सबों का यह कहना था कि पूर्वाचार्यों ने रामचरित के माधुर्यपक्ष को गोप्य माना है और उसके लोक-प्रचार का कड़े शब्दों में निषेध किया है। भगवान् राम की माधुर्यकेलि साधकों की मानसीपूजा का विषय है, प्रकट अथवा व्यावहारिक उपासना का नहीं। इसीलिए अगस्त्यसंहिता, हनुमत्संहिता और कोशलखण्ड ऐसे मान्य ग्रन्थों का भी लोक-प्रचार न हो सका। श्रीकृष्णचरित में रास, अवतार-लीला का एक अविभाज्य अंग है, किन्तु रामचरित में वह मात्र नित्य अथवा अवतारी-लीला का। आगे चलकर मुझे इस तथ्य के समर्थन में भुशुण्डिरामायण के अन्तर्गत ही कतिपय उल्लेख प्राप्त हो गये। कथा के उपसंहार में ब्रह्मा इस दिव्य चरित को समाधि की दशा में दैवी स्फुरण द्वारा उपलब्ध बताकर उसे अत्यंत गोपनीय रखने का आदेश देते हुए कहते हैं—

इति ते सर्वमाख्यातं भुशुण्ड क्रमतोमया।
आदि रामायणं नाम श्रीरामचरितं शुभम्॥
एतत्कल्पभवं चापि कल्पांतरभवं तथा।
समाधावुपलब्धं यत्सारं सारं विमृश्य च॥

इदं ते गुह्यवद्धीर्यं न प्रकाश्यं कथंचन ।
प्रभोरेवाज्ञयाप्रोक्तं रामस्यकरुणांबुधेः ।।[१]

हनुमत्संहिता में भी राम की माधुर्यलीला को गुह्यात्गुह्यतर माना गया है—

विभीषणाद्याश्च ये साध्या वैष्णवा वैष्णवी तथा ।
सर्वेषामप्यलभ्यं यत्माधुर्यं जानकीपतेः ।।
रसिकानां हृदाह्लाद कारिणीं पावनी कथाम् ।
कथयंति महात्मानः प्राप्नुवन्ति हरेर्पदं ।।
साधुपृष्ठोऽसि ब्रह्मर्षे मनसैवेति निश्चितम् ।
गुह्याद्गुह्यतरं दिव्यं तवप्रीत्या वदाम्यहम् ।।
पावनं सर्वसाधूनां रसिकानां च जीवनम् ।
न देयं कस्यचिदेतत्प्राणात्प्रियतरं महत् ।।[२]

मेरा विचार है कि राम की रासलीला तथा अन्य प्रसंगों में चित्रित घोर श्रृंगारी चेष्टाओं को ये वैष्णव-भक्त सामाजिक नैतिकता की दृष्टि से अनुचित और आराध्य के लोकप्रतिष्ठित मर्यादापुष्ट स्वरूप के विपरीत समझते थे । इसलिए उनके प्रकाशन पर कड़े प्रतिबन्ध लगाये गये । यद्यपि विलासिता के ऐसे स्थूल तथा उन्मुक्त चित्रण कृष्ण के रास तथा अन्य लीला-वर्णनों में, भागवत एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण में, भरे पड़े हैं । किन्तु लीलावतार होने से वहाँ लोक तथा परलोक दोनों दृष्टियों से उसे अभिनन्दनीय मान लिया गया था । राम की अवतार-लीला में ऐश्वर्य की प्रधानता थी । इसलिए उनकी मर्यादित लीलाएँ ही प्रकाश्य कही गयीं । यहाँ माधुर्य गोप्य था अतः वीतराग तथा साधनानिष्ठ महापुरुषों के लिए भी उसकी साधना दुरूह बताई गयी—

श्रुतं रामस्य माहात्म्यं तव वक्त्रान्महाकवे ।
ऐश्वर्यमतुलं तेजः प्रभावं परमात्मनः ।।
माधुर्यं गोपनीयं च यदलभ्यं सुरासुरैः ।
ब्रह्मावेदविदांश्रेष्ठ कपिलोनारदस्तथा ।।[3]
अस्याधिकारणे लोके केऽपि केऽपि महामुने ।
अतः सर्वप्रयत्नेन गोपनीयं सदैव हि ।।[४]

'श्री सीताराम युगल सहस्रनाम' में भी राम की श्रृंगारी लीलाओं की रहस्यमयता का प्रतिपादन किया गया है—

इदं ते कथितं वत्स श्री सीतारामयोः शुभं ।
सहस्रनाम युगलं भावुकानां मनोज्ञहं ।।
तस्मात्प्रयत्नेन भो वत्स ! वैष्णवानां महद्धनम् ।
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नन्तः ।।[५]

---

१. भुशुण्डि रामायण, उत्तरखण्ड ६२, ५३, ५४, ५५ ।

२. हनुमत्संहिता २।७, १०, ११, १३ ।

३. वही, १।३ ।

४. वही, २६।५६ ।

५. श्री सीताराम युगल सहस्रनाम—छं० १२५, १२६ ।

इसके फलस्वरूप यह ग्रन्थ केवल रसिक सम्प्रदाय के मर्मीसाधकों के बीच एक सीमित क्षेत्र में ही पढ़ा-सुना जाता था। विद्वानों एवं रामकथा के प्रेमियों की दृष्टि से वह निरन्तर ओझल रहा। ग्रंथस्वामी इसे साम्प्रदायिक रहस्य के रूप में सुरक्षित रखते रहे इसलिए प्रकाशित करने का प्रश्न नहीं उठा। मैंने स्वयं जब इसके सम्पादन की योजना बनायी तो कुछ प्रतिष्ठित सम्प्रदायाचार्यों ने गोपनीय साम्प्रदायिक साधना के तत्त्वों को सार्वजनिक सम्पत्ति बनाने के इस प्रयास का तीव्र विरोध किया किन्तु पर्याप्त विमर्श के अनन्तर इसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में आश्वस्त होकर वे शान्त हो गये। प्रकृत ग्रंथ की उपलब्धि और प्रचार-विषयक यह वृत्त देने का प्रयोजन मात्र इतना है कि भुशुण्डि रामायण के अद्यावधि अप्रकाशित रहने के कारण स्पष्ट हो जाए।

ग्रंथ का नाम तथा रचयिता

भुशुण्डि रामायण के प्राप्त हस्तलेखों में इसके तीन नाम और दिये गये हैं—आदि रामायण, ब्रह्म रामायण तथा भुशुण्डि रामायण। ब्रह्मा ने ब्राह्मकल्प में समाधि की स्थिति में स्फुरित रामचरित की अवतारणा इसके माध्यम से की[1] इसलिए आदि रामायण, परात्पर ब्रह्म राम के अवतार तथा अवतारी चरित्र का प्रकाशक होने से ब्रह्म रामायण और भुशुण्डि की जिज्ञासा निवृत्ति के निमित्त निर्मित होने से भुशुण्डि रामायण नाम की सार्थकता प्रतिपादित की गयी है। इन तीनों में से भुशुण्डि रामायण नाम ही अधिक लोकप्रचलित है। 'युगल सहस्रनाम', 'राम नवरत्न सार संग्रह', 'रामचरितमानस की निगमागमी टीका' आदि में यही नाम उल्लिखित है और संत-समाज में भी यह इसी नाम से प्रसिद्ध है। मेरी सम्मति में अन्य दो नामों के अप्रचलित होने का कारण उनके द्वारा भ्रान्ति प्रसार की संभावना थी। आदि रामायण के रूप में वाल्मीकि रचित प्रबन्धकाव्य चिरप्रतिष्ठित[2] है और 'ब्रह्म रामायण' नाम रखने से उसे राम के सगुण

---

१. आदि रामायणं नाम श्री रामचरितं शुभम् ॥
किंचित्समाधवालोक्य प्रवक्ष्यामि प्रयत्नतः।
अवतार चरित्रं च मूल चरितमेव च ॥
एकीकृत्य लभेद्यत्र प्रवक्ष्यते मया द्विज ॥
एवं मया भुशुण्डाय प्रोक्तं तत्संहितामयम्।
आदि रामायणं नाम ब्राह्मे कल्पे विनिर्मितम् ॥
तच्छ्रूयतां सुराः सर्वे श्री रामचरितं शुभम् ॥
भु० रा० पूर्वखंड ७।२९–३२

२. हिन्दुत्व [पृ० १३७] में इसके अतिरिक्त एक और 'आदि रामायण' की चर्चा आयी है। यह 'महारामायण' के नाम से भी जाना जाता है। इस ग्रंथ की जो विषय-सूची दी गयी है उससे प्रकट होता है कि इसकी भी रचना श्रृंगारी रामभक्ति परम्परा के किसी विद्वान ने की थी। अनेक प्रसंगों में इसके वर्णन भुशुण्डि रामायण से मिलते-जुलते हैं। इधर 'महारामायण' के जो अंश स्फुट प्रसंगों के रूप में उपलब्ध हुए हैं उनमें श्रृंगारी रामभक्ति का निरूपण पाया जाता है। किन्तु कथाभाग अप्राप्य है। बाबू रामदास गौड़ ने इस पूरे ग्रंथ को अप्राप्त बताया है। मेरा अनुमान है कि आदि रामायण नाम से प्रसिद्ध उक्त रचना भुशुण्डि रामायण की ही परम्परा का कोई श्रृंगारी रामचरित काव्य रहा होगा।

चरित के स्थान पर उनकी निर्गुणलीला का प्रतिपादक समझे जाने का खतरा था। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रंथ के तत्त्वों के वक्ता-श्रोता परम्परा से प्रसृत होने की प्रक्रिया प्रचलित राम-चरितों से सर्वथा भिन्न है। उसके अनुसार यह कथा सर्वप्रथम राम ने सीता को प्रमोदवन में सुनायी फिर सीता ने लक्ष्मण और लक्ष्मण ने भरत को बताया। इसे ही राम के मुख से कभी हनुमान ने सुना। फिर वही कथा ब्रह्मा ने हयग्रीव और मुनियों ने अगस्त्य से प्राप्त की। भुशुण्डि को ब्रह्मा तथा धरणी को शेष द्वारा राम का वही रहस्यपूर्ण चरित सुनने को मिला।[1] इसी परम्परा से भुशुण्डि रामायण के अतिरिक्त दो अन्य ग्रंथों का भी अवतरण हुआ। ये हैं- -हनुमत्संहिता और ब्रह्मसंहिता[2]। उपर्युक्त परम्परा में विरचित रामचरित काव्यों अथवा सिद्धान्त ग्रंथों में से अब तक केवल हनुमत्संहिता और ब्रह्मसंहिता उपलब्ध हो सके हैं किन्तु उनमें से एक के परम्परया प्राप्त तथा भुशुण्डि रामायण में निर्दिष्ट आकार में बड़ा अन्तर है। इतर परम्पराओं में लिखी गयी रामायणों के सम्बन्ध में कोई तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। 'हिन्दुत्व' में दिये गये रामायणों की सूची यदि विश्वसनीय मानी जा सके तो अगस्त्य रामायण को इसी परम्परा में निर्मित कहा जा सकता है।[3]

रचनाकार

छत्तीस हजार श्लोकों के इस विशाल ग्रंथ का परितः अनुशीलन करने पर भी कहीं और किसी भी रूप में इसके निर्माता का संधान नहीं मिलता। प्रतीत होता है कि उस महापुरुष ने कथा के वक्ता ब्रह्मा के विराट् व्यक्तित्व में ही अपनी काव्य-प्रतिभा के लोकोत्तर प्रकाश को लय कर दिया। इस प्रकार व्यास, वाल्मीकि एवं शुकदेव के नाम पर पुराण, स्मृति एवं गाथाओं की रचना करनेवाले आत्मलयी साहित्यकारों की भक्तिभागीरथी में एक और श्रद्धादीप प्रवाहित हुआ।

कथा-संयोजन

आलोच्य ग्रंथ में सम्पूर्ण रामकथा चार खण्डों में विभक्त है—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर। पूर्वखंड में राम के जन्म से लेकर युवराज पद पर प्रतिष्ठित होने तक का वृत्त प्रस्तुत किया गया है। पश्चिम खंड में विवाह और उसके उपरान्त अयोध्या आगमन की कथा है। दक्षिण खंड में राम वनगमन से लेकर राज्याभिषेक तक और उत्तरखंड में राम की परिकरों एवं प्रजा के साथ नित्यधाम यात्रा का वर्णन है। इनके अतिरिक्त रामराज्य की सम्पन्नता, सीता-वनवास, लक्ष्मण की तिरोधान लीला, दशरथ की तीर्थयात्रा, रावण की दिग्विजय यात्रा और सहस्रार्जुन से उसका युद्ध, चित्रकूट में राम की विहार लीला, सीता जन्मोपाख्यान, सरयू जन्म-कथा, मन्दाकिनी की उत्पत्ति, पादुका राज्य-वर्णन, आभीरों की चित्रकूट यात्रा, विष्णु का मोहिनी रूपधारण, रावण-तप, मेघनाद की इन्द्रविजय आदि कथाएँ प्रसंगवश कहीं क्रम से और कहीं परिस्थितिवश क्रम का बिना ध्यान रखे, चारों खंडों में सन्निविष्ट मिलती हैं।

इस सम्बन्ध में एक बात विशेष ध्यान देने की यह है कि पूर्वखंड में चित्रित राम

---

१. भु० रा० उत्तर० ६३।५६, ५७, ५८।

२. भु० रा० पूर्व० १०१।२०, २१, २२।

३. हिन्दुत्व, पृ० ३८।

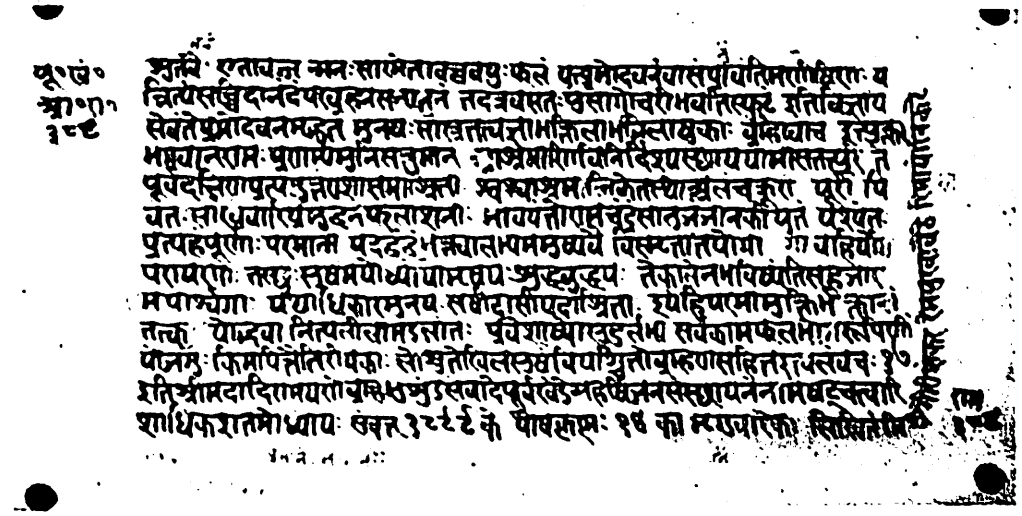

म० १८९९ के हस्तलिखित 'भुशुण्डि रामायण' (रीवाँ)
का अंतिम पृष्ठ

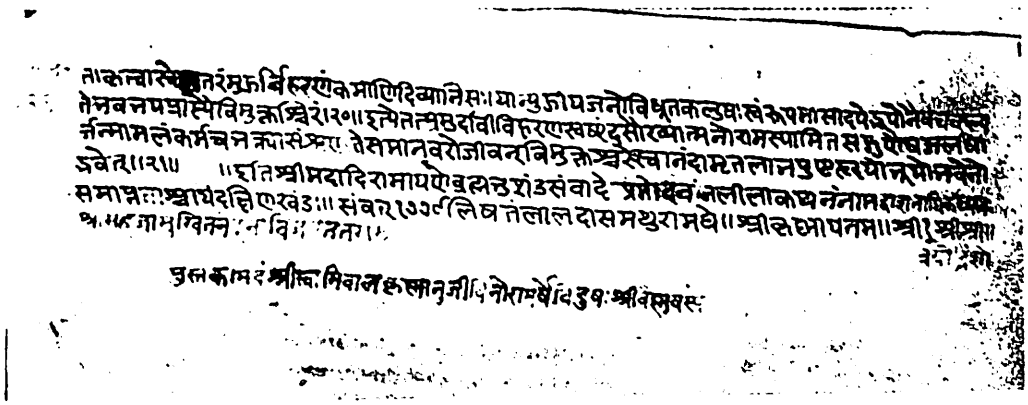

सं० १७७९ के हस्तलिखित 'भुशुण्डि रामायण' (मथुरा)
का अंतिम पृष्ठ

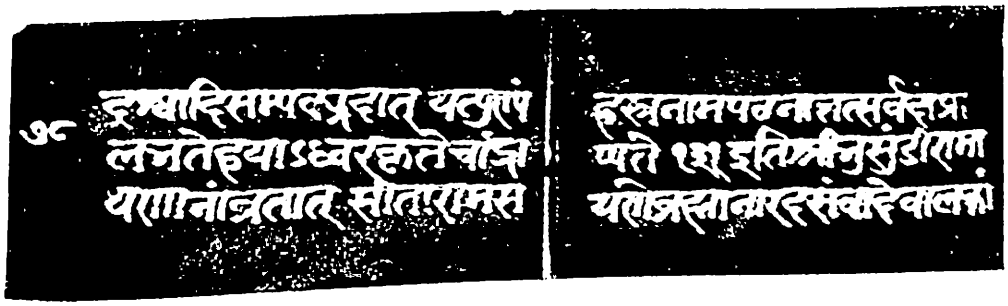

'भुशुण्डि रामायण' (बलरामपुर) के बालकांडांतर्गत
सीताराम युगल सहस्रनाम
का अंतिम पृष्ठ

सं० १९०० के हस्तलिखित 'भृशुंगिड रामायण' (अयोध्या)
का अंतिम पृष्ठ

की बाल तथा कैशोर लीलाएँ श्रीमद्भागवत के आदर्श पर ही वर्णित हैं। कहीं-कहीं तो रामनाम हटा देने पर वे कृष्ण की व्रजलीलाओं के सर्वथा मेल में आ जाती हैं। रचयिता ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अयोध्या के समीप सरयू के उस पार गोप-प्रदेश की कल्पना की है। राक्षसों के भय से विवाह के पूर्व तक चारों भाइयों का बाल्य-जीवन वहीं व्यतीत होता है। राम गोपों और गोपिकाओं से इस प्रकार स्थापित घनिष्ठ सम्बन्ध का आद्योपान्त निर्वाह करते हैं। सहजा नाम की गोपी उनकी स्वात्म-शक्ति के रूप में कृष्ण-कथा की राधा के समान ही समादृत है।

साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के कारण शृंगारी रामोपासना के उपजीव्य विविध कथाप्रसंगों की योजना से अनेक स्थलों पर मूलकथा आच्छादित और उसका प्रवाह बाधित हो गया है। इसके फलस्वरूप कहीं-कहीं कथासूत्र लुप्त होता सा प्रतीत होने लगता है।

प्रचलित रामायणों में विशेष रूप में अध्यात्म्य रामायण से इसकी कथावस्तु का साम्य दिखायी देता है फिर भी उपक्रम, उपसंहार तथा उपबृंहण में ऐसी अनेक मौलिक उद्भावनाएँ हैं जिनसे पूरी कथा आदि से अन्त तक अत्यंत आकर्षक हो गयी है।

भेद केवल दार्शनिक मान्यताओं का है। अध्यात्म्य रामायण अद्वैतदर्शन से परितः प्रभावित है। यह उसके कथा तथा उपदेश भाग में प्राप्त सैद्धांतिक उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है। किन्तु भुशुण्डि रामायण श्रीसम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का पोषक है। भगवान की रसात्मिका लीलाओं के उद्भावन तथा संयोजन में रचयिता की वृत्ति विशेष रूप से रमी है। उसने रामकथा के परंपरागत प्रसंगों में यथावसर बड़े ही महत्त्वपूर्ण संशोधन एवं परिवर्धन किये हैं जिससे व्यक्तिस्वभाव एवं सामाजिक मनोविज्ञान के भीतर उसकी गहरी पैठ और अभिव्यंजना-शक्ति की प्रखरता का पता चलता है। ऐसे प्रसंगों के माध्यम से चिरपरिचित रामकथा में सन्निविष्ट आकर्षण के नवांकुर पाठक को विस्मय-विमुग्ध कर देते हैं।

रचनाकाल

धर्मग्रंथों तथा साहित्यिक रचनाओं में कृतिकार द्वारा आत्म-परिचय तथा निर्माण तिथि न देने की भारतीय परंपरा का आलोच्य ग्रंथ में भी पूरा सत्कार किया गया है। ऐसी स्थिति में उसके सम्भावित प्रणयन-काल के निश्चय का एकमात्र मार्ग शैली तथा विषयगत अंतःसाक्ष्य ही रह जाता है। ऐसे एक भी बाह्यसाक्ष्य प्राप्त नहीं है जिनसे लेखन-काल-विषयक कोई उल्लेखनीय प्रकाश प्राप्त हो सके। अतः आलोच्य ग्रंथ में एतद्विषयक उपलब्ध सूत्रों पर संक्षेप में विचार कर लेना समीचीन होगा।

(क) हस्तलेखों का लिपिकाल

भुशुण्डि रामायण की उपलब्ध प्रतियों में सर्वाधिक प्राचीन मथुरा की प्रति है जिसका प्रतिलिपि काल सं १७७९ वि० है। जयपुर तथा आरा (बिहार) की प्रतियों के प्राप्त न होने से उनके लिपिकाल के संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इससे मात्र इतना विदित होता है कि १८ वीं शती में इस ग्रंथ का उत्तरी भारत के भक्ति-केन्द्रों में प्रचार हो गया था। दुर्भाग्य से इस ग्रंथ की उपलब्ध चारों प्रतिलिपियों में आदर्श पाण्डुलिपियों का

उल्लेख नहीं है। इस कारण इनके द्वारा प्रतिलिपि परंपरा की स्थापना तथा मूल प्रति के लिपिकाल के संधान में कोई उल्लेखनीय योगदान नहीं प्राप्त होता।

(ख) तांत्रिक प्रभाव

भुशुण्डि रामायण के कथात्मक वैशिष्ट्य तथा आध्यात्मिक तत्त्वों पर पूर्व मध्यकालीन तांत्रिक साधना का अत्यंत व्यापक एवं गम्भीर प्रभाव लक्षित होता है। तीसरी शती से लेकर १२ वीं शती अर्थात् निरन्तर एक हजार वर्षों तक इस देश की साधनापद्धति तन्त्रों से आक्रान्त रही है। इस काल में कापालिक, कौल तथा उत्तरकालीन बौद्धों के वज्रयानी, सहजयानी और गुह्यशक्ति-साधना का अपूर्व विकास हुआ। शैव तन्त्रों में पुरुष-शक्ति तथा शाक्त तन्त्रों में स्त्री-शक्ति को प्रधानता दी गयी है। इन दोनों तत्त्वों के संघट्ट अथवा युगनद्ध रूप की उपासना के लिए विविध साधनाओं का प्रवर्तन हुआ। उत्तर कौलों ने नवीं तथा १० वीं शती में कुल (शक्ति) तथा अकुल (शिव) के सामरस्य को ही त्रिपुरसुन्दरी की संज्ञा दी और इस प्रकार कामेश्वर-कामेश्वरी का समन्वय ही साधना का अन्तिम लक्ष्य निश्चित किया। योग-साधना में इस लक्ष्य की पूर्ति मूलाधारस्थ कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर सहस्रारस्थ शिव से संगम कराने की प्रक्रिया द्वारा सिद्ध हुई।

भुशुण्डि रामायण के रचयिता ने पात्रों के शील-निरूपण तथा चरित्र-चित्रण में इन सभी साधनाओं के आधारभूत तत्त्वों का यथावसर सन्निवेश किया है।

कापालिक

कापालिक शैव तांत्रिक थे। ये शक्तिनाथ शिव को केवल ज्ञान तथा शक्ति को उपासना का विषय मानते थे। इनमें शक्ति के चंडी अथवा महिषमर्दिनी रूप की विशेष प्रतिष्ठा थी और उनकी उपासना की विचित्र पद्धतियाँ प्रचलित थीं—जिनमें श्मशान-साधना प्रमुख थी। भुशुण्डि रामायण में तत्कालीन वैष्णवों द्वारा की जानेवाली नवरात्र की महाष्टमी को चण्डी पूजा की चर्चा है। मेरे विचार में यह कापालिकों का ही प्रसाद था। शैव-शास्त्र मतानुयायियों के वैष्णवधर्म में दीक्षित होने से इस प्रकार की समन्वयी प्रवृत्ति का विकास अनिवार्य था—

एकादाहं सिताष्टम्यां चण्डिकामर्चितुं गतः।
श्मशानस्थां श्यामलेशानीं साक्षामहिषमर्दिनीम्॥
रात्रावुयोषितः स्नातः पूजयित्वा हरिप्रियाम्।
चकारचोत्सवं तत्र गीतवाद्य पुरः सरम्॥[1]

कापालिकों के वेष एवं क्रिया-कलाप का भी वर्णन आलोच्य ग्रन्थ के अन्तर्गत कुछ विशिष्ट सन्दर्भों में प्राप्त होता है। देवताओं तथा असुरों द्वारा समुद्रमन्थन के समय कन्यारूप में वारुणी देवी का आविर्भाव हुआ। वे पंचमुखी तथा त्रिनेत्रा थीं। उनकी १८ भुजाएँ विविध आयुधों एवं उपादानों से सुसज्जित थीं, जिनमें कापालिकों द्वारा धारण किये जानेवाले 'कपाल' तथा 'खट्वांग' भी थे। गोरखनाथ के पूर्ववर्ती शैव कापालिकों की वेष-सज्जा के यही दो प्रमुख उपादान थे। वारुणी देवी का सेवन तो उनका जीवन-लक्ष्य ही था—

---

१. भु० रा० पूर्वखण्ड १३३। २७, २८

ततश्चादौ विरासीन्मथ्यमाना सुरासुरैः ।
कन्यारूप धरादेवी वारुणी या सुरप्रिया ।।
हिम कुन्देन्दु धवला पंचवक्त्रा त्रिलोचना ।
अष्टादश भुजैर्युक्ता सद्यानन्द कारिणी ।।
शुभासने समासीना प्रमत्त वृषभोपरि ।
नीलकंठी तडित्तुल्या सर्वाभरण भूषिता ।।
कपाल खट्वांगधरा घण्टा डमरु वादिनी ।
परशांकुशधरा देवी गदा मूशल धारिणी ।।[1]

अद्दहमाण रचित 'संदेशरासक' में भी कापालिनी द्वारा इनके धारण किये जाने का उल्लेख है—

तुय समरंत समाहि मोहु विसमट्ठियउ,
तहि खणि खुवइ कवालु न वामकरट्ठियउ ।
सिज्जासणउ न मिल्हउ खण खट्टंग लय,
कावालिय कावालिणि तुय विरहेण किय ।।[2]

भारतीय धर्म-साधनाओं के इतिहास का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि दसवीं शती के आस-पास कापालिकों का बड़ा जोर था। जैन कवि पुष्पदंत विरचित महापुराण तथा 'मालती माधव' में इनका उल्लेख पाया जाता है। उससे यह भी ज्ञात होता है कि शैव मतानुयायी थे और मद्यपान करते थे।

२. कौल

नाथपंथ के प्रवर्तन के पहले पूर्वोत्तर भारत में कौलों का बड़ा प्रभाव था। गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ इसी मत के अनुयायी थे। उन्होंने इसकी दीक्षा कामरूप में ली थी और योगिनी-कौलमत का प्रवर्तन किया था।[3] इसमें कापालिक और बौद्धमत के अनेक तत्त्व ज्यों के त्यों गृहीत हो गये थे। शक्ति अथवा स्त्री-पूजा इनकी विशेषता थी। भुशुण्डि रामायणकार ने सीता को 'योगिनी परमाकला' की संज्ञा संभवतः इस वामपंथी योगसाधना से ही प्रभावित होकर दी है—

'खेचरी भूचरी सिद्धा योगिनी परमाकला ।'[4]

इस मत के अनुयायी नैतिक एवं सामाजिक मर्यादाओं 'पाशों' अथवा 'बन्धनों' को तोड़ने में ही अध्यात्म साधना की सार्थकता मानते थे—

---

१. भु० रा० दक्षिण खण्ड, १६३।११, १३, १५, १६

२. संदेशरासक, पृ० २२

३. महायोगिनी कौले मत्स्येन्द्र पादावतारिते ।
कामरूपे इदं शास्त्रं योगिनीनां गृहे गृहे ।।

४. भु० रा०, पृ० ४९।२९

अनाचारः सदाचारस्त्वकार्यं कार्यमेव च।
असत्यमपि सत्यं स्यात् कौलिकानां कुलेश्वरि ॥
घृणा लज्जा भयं शोको जुगुप्सा चेति पंचमम्।
कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः ॥

आलोच्य ग्रन्थ का रचयिता कौलों के इस लोकविरोधी आचरण से पूर्णतया परिचित था। इसीलिए उसने उनकी साधना-प्रणाली को अघोर-पंथियों के 'छलयोग' का प्रतिरूप कहा है—

छलयोगस्तथा सांख्यं वामं शाक्तं तथैव च।
सिद्धान्तः कौलमार्गश्च कर्मासक्तश्च वैदिकः।
इत्यादीन् वर्जयेत् मार्गान् लोकव्यामोहकारकान् ॥[1]

यह बात विचार करने की है कि ग्रन्थकर्ता ने उपर्युक्त जिन 'लोक-व्यामोहक' पथों की चर्चा की है, वे सभी १२ वीं शती के पूर्ववर्ती हैं। मेरा अनुमान है कि 'छलयोग' से उसका तात्पर्य योगमूलक कौल-साधना से है। कारण कि पूर्वमध्यकालीन साधन मार्गों में नाना रूपधारी कौल ही लोक-प्रवंचना के लिए सर्वाधिक दुर्नाम थे। निम्नांकित प्रसिद्ध उक्ति इनकी चारित्रिक विशेषताओं को उजागर करती है—

अन्तः शाक्ताः बहिर्शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः।
नाना रूपधरा कौलाः विचरन्ति महीतले ॥

इनका उत्कर्षकाल सामान्यतया दशवीं शताब्दी माना जाना है।

सिद्ध

पूर्व मध्यकालीन भारत में सिद्धों के तीन वर्ग थे, कौल सिद्ध, बौद्ध सिद्ध तथा नाथ सिद्ध। बौद्ध सिद्ध महायान बौद्धधर्म की वज्रयानी तथा सहजयानी शाखाओं से सम्बद्ध थे, कौल सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ के योगिनी कौलमत से और नाथसिद्ध गोरखपंथ से। ये तीनों योग-साधना की विभिन्न पद्धतियों द्वारा उपार्जित आध्यात्मिक शक्ति से रोग-निवृत्त, इच्छानुसार विविध शरीर-धारण, आकाशमार्ग से गमन आदि चमत्कारी कृत्यों के सम्पादन से जन-सामान्य को विस्मय-विमुग्ध कर अपनी ओर आकर्षित करते थे।

ब्रह्मयामल तंत्रोक्त 'राम सहस्रनाम' में इन तांत्रिक सिद्धियों का विस्तार से वर्णन किया गया है—

तंत्राणि तंत्र जालानि सरहस्यानि यानि च।
तानि तानि महासिद्धि कल्पितानि शुभानि च ॥
गुटिका पादुकासिद्धिः परकाय प्रवेशनं।
वाचा सिद्धिश्चार्थसिद्धिस्तथा सिद्धिर्मनोमयी ॥
ज्ञान विज्ञान कर्माणि नाना सिद्धि कराणि च।
लक्ष्मी कुतूहलासिद्धिर्वांछासिद्धिस्तु खेचरी ॥

---

१. भु० रा० उत्तर० २४।

भुशुण्डि रामायण में अनेक स्थलों पर इस प्रकार की सिद्धियों का प्रदर्शन करनेवाले योगियों का उल्लेख है।

(१) लक्ष्मण के सहस्रनाम का उल्लेख करते हुए उन्हें खेचरी विद्या का ज्ञाता तथा सिद्धिदाता कहा गया है—

अमंदो मदनोन्मादी महायोगी महासनः।
खेचरी सिद्धिदाता च योगविद् योगपारगः ॥[१]

इस प्रसंग में निर्दिष्ट उनके 'अवधूत', 'महायानी', 'वज्रसार', 'खट्वांगी', 'कपर्दी' आदि नाम निश्चय ही बौद्ध तथा नाथसिद्धों का प्रभाव प्रकट करते हैं—

रजस्वलोऽतिमलीनोऽवधूतो धूत पातकः।
विषज्वरनिहंता च कालकृत्या विनाशिनः ॥[२]
मदोद्धतो महायानी कालिन्दी पात भेदनः।
कालिन्दी भयदाता च खट्वांगी मुखरोऽनलः ॥[३]
कपर्दी रुद्र दुर्दर्शो विरूप वदनाकृतिः।[४]
वज्रसारः सारधरः शार्ङ्गी वरुण संस्तुतः ॥[५]

(२) भुशुण्डि रामायण में सिद्धवेषधारी शिव द्वारा स्तम्भ-मंत्र के प्रयोग से रोग-निवारण-विषयक निम्नांकित घटना का उल्लेख यह प्रकट करता है कि तत्कालीन लोक-जीवन में सिद्धों की मान्यता मुख्य रूप से उनकी अलौकिक मंत्रशक्ति पर आधृत थी। वे घूम-घूमकर जनता में अपनी चमत्कारिक-शक्ति का प्रदर्शन करते थे[६]।

---

१. भु० रा० पूर्व० ५४।१८
२. वही, ५८।६७
३. वही, ५८।६८
४. वही, ५८।७३
५. वही, ५८।७४।
६. सिद्ध योगियों का रामोपासना के प्रति आकृष्ट होने का स्पष्ट संकेत कल्चुरि नरेश लक्ष्मीकरण के रीवाँ अभिलेख में प्राप्त होता है। इसका आरंभ मंजुघोष (बौद्धधर्मानुसार बुद्धि के देवता) की स्तुति से होता है। उसके निम्नांकित त्रुटित श्लोक में 'रामदेवालय' से 'सिद्धों' का सम्पर्क निर्दिष्ट है—

'यो (ये ?) रामदेवालयमान्ति सिद्धाः ते·····प्रयान्ति' सर्वप्रथम डॉ० राखालदास वंद्योपाध्याय ने इसका संपादन उपर्युक्त रूप में किया था किन्तु आगे चलकर डॉ० वी० वी० मिराशी ने पर्याप्त अध्ययन के अनन्तर इसका जो पाठ प्रस्तुत किया उसकी एक पंक्ति में 'सिद्धार्थयोगी मलयानु सिंहः' की चर्चा आयी है। मलयसिंह नामक इस सिद्धार्थ योगी ने रामदेवालय की स्थापना की थी। प्रश्न उठता है कि रामोपासना में रुचि रखनेवाला यह सिद्ध योगी बौद्ध था अथवा योगिनीकौलमतानुयायी ? अभिनवगुप्त के समय में उक्त दोनों मतों के सिद्ध पाये जाते थे। तंत्रालोक में इनकी विचारधाराओं में सामंजस्य स्थापना का

शिव संप्रस्थितस्तस्मात्पालिग्रामं समाययौ ।
वटुवेषधरो विप्रो वसानो हरिणाजिनम् ॥[१]
कौपीनधरो विप्रो जटिलः कक्षविन्यस्त पुस्तकः ।
धृतापाढ़ पूत तनु मौंजी मेखलयान्वितः ॥[२]
प्रसन्नवदनाम्भोज तपसा प्रज्वलन्निव ।[३]
गच्छ गोपेन्द्र दूरे त्वं सभार्य सभृत्यकः ॥
प्रयोगं मम मंत्राणां पश्य त्वं व्रजभूपते ।[४]
स्तम्भमस्या हरिष्यामि तद्धेतुं च निवेदये ॥[५]

उपर्युक्त मतों के सिद्धों में नाथपंथियों को छोड़कर शेष दोनो में मांस-भक्षण साधना का एक प्रमुख अंग माना जाता था। वाल्मीकि रामायण में राम के मांसाहार का स्पष्ट वर्णन, वनवासी जीवन में विशेष रूप से मिलता है। किन्तु वैष्णव-भक्ति-आन्दोलन में अहिंसा को महत्त्वपूर्ण स्थान मिलने के कारण परवर्ती रामचरित काव्यों—अध्यात्म रामायण, आनंद रामायण,[६] रामचरित मानस,[७] उभय प्रबोधक रामायण[८] आदि में हिंसा को राक्षसीवृत्ति मानकर रामपक्ष के सभी प्रमुख पात्रों को उससे प्रायः विरत चित्रित किया गया है।

भुशुण्डि रामायण में कथानायक राम, उनकी सहधर्मिणी सीता और लक्ष्मण चौदह वर्षीय वनवास काल में मांसाहार में रुचि लेते दिखाये गये हैं। चित्रकूट वास के समय जानकी का मृगमांस बनाने,[९] महर्षि भरद्वाज द्वारा किये गये भरत के समाज सहित आतिथ्य में

प्रयास लक्षित होता है। कारण कि ये दोनों ही किसी प्रकार 'मीन चेतन', 'मच्छन्द विभु', अथवा 'मत्स्येन्द्रनाथ' से सम्बद्ध थे जो अभिनवगुप्त के दीक्षागुरु थे। तंत्रालोक में रामतत्त्व की योगपरक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। उससे भी पता चलता है कि इसके सूत्र उन्हें पूर्ववर्ती योगमूलक साधनामार्गों में प्राप्त हुए थे। गोरखनाथ आचार्य अभिनवगुप्त के सतीर्थ थे। इस कारण उनके द्वारा प्रवर्तित पंथ में भी राम को मान्यता मिली—गोरखबानी में विभु, निराकार, जगत्पालक राम के यशोगान का यही रहस्य है। कालान्तर में कबीरादि ज्ञानाश्रयी शाखा के साधकों को 'निर्गुण राम' की उपलब्धि इसी स्रोत से हुई।

१. भु० रा० पूर्व ७२९।५७
२. भु० रा० पूर्व० ७३०।५८
३. वही, ७३०।५९
४. वही, ७३०।६९
५. वही, ७३०।७०
६. आनन्द रामायण, विलासकांड ५र १-७
७. उभय प्रबोधक रामायण
८. रामचरितमानस, बालकाण्ड १८३ सो०
९. मेध्यानि मृगमांसानि जानकी भर्तुराज्ञया ।
पक्वा स्वादूनि विविधान्युपनिन्ये पुरस्तयोः ॥

मत्स्य-मांस और मैरेयक की प्रचुरता,[1] भरत की चित्रकूट-यात्रा में अयोध्यावासियों के लिए मांसादि की प्रचुर व्यवस्था,[2] आदि प्रसंगों से यह ध्वनित होता है कि इस ग्रंथ के रचना-काल तक अध्यात्मोन्मुख जन-जीवन में मांसाहार के प्रति जुगुप्सा की वह भावना जागृत नहीं हुई थी जो वैष्णवभक्ति-आन्दोलन के उत्तरी भारत में व्यापक प्रसार से १६वीं शती के बाद हुई। इसका कारण समकालीन कौल शाक्त तथा बौद्धसिद्धों का प्रभाव रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

सहज साधना

सहजानन्दी कौलाचार्यों का मुख्य उद्देश्य साधकों को प्रवृत्ति से निवृत्ति अथवा भोग से योगदशा की प्राप्ति कराना था। इसकी सिद्धि के लिए जो साधना-प्रक्रिया कौलमत में प्रवर्तित हुई उसमें पंचमकार तथा चक्रपूजा का विशिष्ट स्थान था। इस पद्धति से ये साम-रस्य में स्थिति-प्राप्ति संभव मानते थे जो सहजानन्द का ही पर्याय है। सहज इसलिए कि भोगपरक मानवस्वभाव के अनुकूल होने से यह अनायास सिद्ध हो जाती है। मत्स्येन्द्रनाथ ने 'अकुलवीर तंत्र' में इस इन्द्रियातीत ज्ञान को अद्वैत स्थिति का साधक कहा है—

सहजोऽकृत्रिमो यस्मात् [तस्मात्] संगोन साहजः।
सुखं न सहजान्यद् सुखं चासंग लक्षणम्।
ज्ञात्वा निःसंगतां नाम्नीं निर्बोधागत तत्सुखम्।
विश्वं रसमयं कृत्वा मग्नः सहज सागरे॥[3]

\+ + + +

स्वयं देवी स्वयं देवः स्वयं शिष्यः स्वयं गुरुः
स्वयं ध्यानं स्वयं ध्याता स्वयं सर्वत्र देवता।[4]

देवान् पितृंश्च संपूज्य रामः परमधर्मवित्।
सहसौमित्रि सीताभ्यां बुभुक्षेऽखिल यज्ञभुक्॥ भु० रा० दक्षिणखंड २७।२

१ भरतः श्वेततुरगैर्भूषिते रत्नमालिनि।
महतिस्यंदन वरेधिष्ठितः प्रयतौ पुरः॥
ब्रह्मघोषं प्रकुर्वंतः प्रययुः द्विजसत्तमाः।
मत्स्य मांस सुराहस्तास्तस्य वेश्याः जनाः पुरः।
शकुनं सूचयामासुर्मातंगाश्चतुरंगमाः॥ वही, ३१।८२, ८३, ८४

२. मुनिराज्ञापयामास योगसिद्धो महातपाः।
आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि भरतस्याद्य सुश्रियः॥
मैरेयाणि मनोज्ञानि भक्ष्यानि विविधानि च।
दधि दुग्ध सितादीनि, कल्पयन्तु विशेषतः।
मान्यानि सुविचित्राणि मासांनि च मधूनि च।
चतुर्विधानि चान्नानि तथा भोगान्पृथग्विधान्॥ वही, ३४।१०१, ०५, ०७

३. अद्वय वज्र संग्रह, पृ० ६३।

४. अकुल (ए० पी०), पृ० २६।

शक्ति मत के उत्कर्ष से तत्कालीन अन्य धर्म-साधनाएँ प्रभावित हुए बिना न रह सकी। उसने अपने सिद्धान्त में लोकव्यापक वैष्णवधर्म को भी लपेटा। राम-कृष्ण आदि अवतारों को शक्ति का ही स्वरूप मानकर उसने वैष्णवों के हृदय में शाक्तधर्म के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने का उल्लेखनीय प्रयास किया—

कृष्णस्तु कालिका साक्षात् रामं मूर्तिश्चतारिणी।
कमला मत्स्य रूपः स्यात् कूर्मस्तु कमलामुखी॥[1]

इतना ही नहीं राम को परशिव और सीता को गौरी से अभिन्न बताकर उसने रामनाम को भी परात्पर ब्रह्म का बोधक स्वीकार कर लिया—

रामः परशिवो ज्ञेयो नाऽवतारो नरोपि च।
मत्परं ब्रह्म विख्यातं तद्रामेत्यक्षरं द्वयं॥[2]

ये तथ्य प्रकारान्तर से तत्कालीन समाज में रामभक्ति का व्यापक प्रभाव प्रकट करते हैं।

शाक्तों ने समन्वय का मार्ग अपनाकर वैष्णवों को अपने घेरे में लाने की यह बड़ी ही मनोवैज्ञानिक पद्धति अपनायी थी। वैष्णवधर्म में चिरप्रतिष्ठित मर्यादा के बंधन तोड़कर भोग को प्रमुखता देने वाली यह साधना अपेक्षाकृत अधिक सरल तथा लोकमानसानुकूल थी। आरंभिक वैष्णव कवियों—नामदेव, कबीर, तुलसी आदि ने शाक्तों की इस लोकविरोधी प्रवृत्ति को पहचानकर ही उन्हें हठधर्मी और हेय ठहराया है।[3]

मेरा विचार है कि कौल तांत्रिकों द्वारा प्रवर्तित स्त्री-पूजा तथा योनिपूजा[4] से पूर्व मध्यकालीन वैष्णव-काव्यों में स्त्री-सौंदर्य के नग्न एवं कामोत्तेजक चित्रण का सीधा सम्बन्ध

---

१. मुण्डमालातन्त्र।

२. शक्ति संगम तंत्र।

३. भैरऊ भूत सीतला धावै। खरवाहन ऊहु छार उड़ावै॥
सिव सिव करते जो नरु धियावै। वरद चढ़ै डउरू डमकावै॥
महामाई की पूजा करै। नर सों नारि होइ अउतरै॥
तू कहियत हो आदि भवानी। मुकति की बिरिया कहा छिपानी॥
नामदेव की हिंदी पदावली, पृ० ९९

साकत ते सूकर भला, राखै सूचा गांउं।
साकत वपुरा मरि गया, कोई न लेइहैं नांउं॥ कबीर ग्रंथावली पृ० ११२।१२
असुभ भेष भूषन करे, भक्ष्याभक्ष्य जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहिं॥ रामचरितमानस, उत्तर० ९८।० क

४. आनीय युवतीं रम्यां कुलकर्म विलासिनीम्।
षोडशाब्देन युवती पीनोन्नत पयोधराम्॥
उन्मत्ता मत्त मातंगी सदा घूर्णित लोचनाम्।
मृगशावक नेत्रां च सारंगी मृदु हासिनीम्॥

स्थापित किया जा सकता है। संभवतः इसी से प्रेरणा प्राप्त कर संस्कृत के ललित काव्य-ग्रंथों में घोर शृंगारी वर्णन की परंपरा स्थापित हो गयी। हनुमन्नाटक, जानकीहरण आदि रामकाव्यों में उसका स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है।

भुशुण्डि रामायण में 'सहजानन्दिनी सीता' की राम के साथ की गयी सुरत-क्रीड़ा के प्रेरक काम को ही सहजानन्द की संज्ञा दी गयी है और कौलाचार्यों के सिद्धान्तानुसार कुल-शील तथा लज्जा के परित्याग में ही गोपिका रूप में आविर्भूत अग्निकुमारों की परकीया रति की सार्थकता बताई गयी है—

कृत्वा तपो वरं लब्ध्वा दिव्यमायुर्मनोरथम्।
ततो निज वरं सत्यं कर्तुं रामौ महामनाः।
कामतत्त्वेन ताः सर्वाः रमयामास गोपिकाः।
अथ प्रादुरभूत् कामः सहजानन्द लक्षणः॥
जानकीं वेपयामास सहजानन्द रूपिणीम्॥
सा वेपिता कामशरैः प्रादुर्भूय रघूद्वाहात्॥
दिव्य वेश धरा भूत्वा क्षोभयामास राघवम्॥
संक्षुब्ध कामबाणेन तामालिंगितुमीर्यवान॥[1]
तवरूपविमोहिताः स्त्रियः कलिताः कामकरेकृताशयाः।
कुलशील विलज्जयातुराः पथिरुद्धाः सरितो यथाभवन्॥[2]

इसी प्रसंग में उनकी उस 'निधुवन' क्रीड़ा का भी उल्लेख है जो परवर्ती रसिक भावना के राम और कृष्ण–भक्तों का मुख्य उपजीव्य बन गयी—

नव निकुंज लतावन मंडपे कुसुम क्लृप्ततले कुरुथोन किम्।
निधुवन क्रियया सहजं सुखं स्मर विलास कलाकुशलौ युवाम्॥[3]

इसी प्रकार नारी-सौन्दर्य तथा सुरत-क्रीड़ाओं के वर्णन में भी कौलों जैसी लिप्तता लक्षित होती है—

ततस्तदाकर्ण्य सुवेणु निःस्वरं प्रियोदितं मन्मथवेग वर्धनम्।
स्मरोन्मदप्रोद्धतमानसावहिर्हृदन्तरादाविरभून्नितंबिनी॥
अशोकवल्लीवन मण्डपान्तराद् विनिःसरन्ती सहजारुणांशुकाः।
घटस्तनी सन्मणिहार भूषणा स्फुरत्पदन्यास विरंचितावनिः॥
मराल गत्यांचित मंजु विग्रहा नितम्बभारोद्वहनोक्षमा रमा।
मृदुस्मितद्योत विभासितानना मनोहरापांग विभूषितेक्षणा॥

सर्वालंकार संयुक्तां विवस्त्रा पूजयेत् प्रिये॥ (वीर चूड़ामणि)।
सर्वधर्मान् परित्यज्य योनिपूजारतौ भवेत्। (प्राण-तोषिणी)

१. भु० रा० पूर्व० अ० २६।६, ७, ८ ९ [६४]
२. वही, अ० २६।२८ [१०५]
३. भु० रा० पूर्वखंड २८।१९

अनर्घ्यकांचीगुणानादिघंटिका मनोज्ञकेयूर विलम्बिदोर्लता।
त्रपाग्निमग्ना कलितावगुण्ठना सुवृतदीव्यज्जघनप्रभाम्बरा ॥[1]

सहजयानी बौद्ध

वज्रयानी बौद्धों ने कौलों की इस सहजसाधना को अपने तत्त्ववाद में स्थान देकर पराकाष्ठा को पहुँचाया।[2] इन्होंने भी निर्वाण अथवा मुक्ति को योग द्वारा प्राप्य ठहराया। इनके मत में भी आदि बुद्ध तथा आदि प्रज्ञा अथवा पुरुष एवं प्रकृति के संयोग संघटन द्वारा महासुख की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है और वह भोग द्वारा ही उपलब्ध हो सकता है। इस घोर प्रवृत्ति-मार्गी धर्म ने विचार और आचार दोनों पक्षों में मानव-जीवन में पूर्णतम उपभोग का समर्थन कर नारी अथवा शक्ति की रहस्यपूर्ण पूजा का प्रतिपादन किया। तांत्रिकता प्रधान बौद्धधर्म का यह स्वरूप आठवीं शती के अनन्तर उत्तरोत्तर विकसित होता गया। हिन्दुओं के निम्नवर्ग में यह विशेष लोकप्रिय हुआ। उसके फलस्वरूप प्रत्येक स्त्री में निवास करनेवाली प्रज्ञापारमिता के भोग द्वारा ही सहजानन्द प्राप्ति का पथ मानवमात्र के लिए खोल दिया गया।

पराशक्ति सहजा की उद्भावना

भारतीय तथा विदेशी स्रोतों से उपलब्ध रामकथा के जो स्त्रीपात्र अब तक प्रकाश में आये हैं, उनमें कहीं भी 'सहजा' का नामोल्लेख नहीं मिलता। किन्तु भुशुण्डि रामायण में सीता की भाँति इन्हें भी राम की स्वरूपशक्ति माना गया है। ग्रन्थकर्ता ने सीता को मर्यादाशक्ति और सहजा को प्रेमाशक्ति की संज्ञा दी है। सहजा की जीवन-गाथा का वर्णन करते हुए उसने इन्हें अयोध्या के निकटवर्ती व्रज-प्रदेश के निवासी नन्दनगोप तथा राजनी की पुत्री और कुशल-गोप की पत्नी बताया है। राम के प्रति उनका अलौकिक अनुराग देखकर पति ने इन्हें राम को समर्पित कर दिया था। इस दृष्टि से कृष्णचरित में जो स्थान राधा का है, भुशुण्डि रामायण में

---

१. वही, २७।२१, २२, २३, २४।

२. विसअ रमन्ते ण विसअहि लिप्पइ।
उअल हरन्ते ण पाणीच्छप्पइ ॥
एमइ जोइ मूल सगत्तो।
विसइ णं बाज्झइ विसअ रमन्तो ॥---दोहाकोश, स० ७१
यह कौलों के निर्लिप्त-भोग सिद्धान्त का ही रूपान्तर था—
भोगो भोगायते साक्षात् पातकः सुकृतायते।
मोक्षायते च संसारः कुलधर्मः कुलेश्वरि ॥
कुलार्णवतंत्र, पृ० १२

३. सरय्या अपरे पारे नन्दनो नाम धेनुपः।
तत्प्रिया राजनी नाम तस्यां जाता तु जानकी ॥
सहजा नाम सा प्रोक्ता कुशलेन विवाहिता।
गोपेन ममभक्तेन सा मह्यं विनिवेदिता ॥
भु० रा० पूर्व० ४८।४३, ४४

वर्णित रामचरित में वही स्थान सहजा का ।[1] ग्रन्थकार ने अनेक स्थलों पर अपनी इस मान्यत। की पुष्टि की है– –

अहं कृष्णश्च रामश्च वृन्दावन विहारवान् ।
प्रमोदवनसारंगोऽप्यशोकवनसारवित् ।।
यत्र मे रमणी राधा वृषभानुसुता स्वयम् ।
मत्स्वरूपैक निरता सदा मद्रूप संगिनी ।।
सैयं श्रीः सहजानन्दा प्रेमालय पताकिका ।
नानया सदृशी लक्ष्मीर्न शेषो न विधिः शिवः ।।[2]

सहजा को सीता से अभिन्न मानते हुए भी रचयिता नें राम के लोक-लीला-चित्रण में कहीं भी पृथक्रूपेण सहजा के साथ की गयी मधुर-क्रीड़ाओं का विधान नहीं किया है अपितु राम की दिव्य लीलाओं में ही स्थान देकर इन्हें साधना का मुख्य आधार माना है । इनके परिचय में जो शब्दावली प्रयुक्त हुई है; उसमें शैव-शाक्तागमों में निरूपित महाशक्ति का स्वरूप स्पष्टतया सामने आ जाता है—

कंदर्पकोटिजननी कोटिब्रह्माण्डनायिका ।
विजया वीजिनी विद्याऽविद्यादानपरायणा ।।[3]
खेचरी भूचरी सिद्धा वैष्णवी वैष्णवप्रिया ।
रक्तांशुक प्रिया रक्ता नव विभ्रम महारिणी ।।[4]
क्रियावती वेधवती मन्त्रिणी मन्त्रनायिका ।
आग्नेयीन्द्राणिका रुद्री वाणी वशवर्तिनी ।।[5]
एकान्त भक्तसुलभा जय दुर्गा जय प्रिया ।[6]

प्रस्तुत ग्रन्थ के 'राम-गीता' प्रसंग में इनकी आराधना को तांत्रिकों की उपास्य देवी की भाँति ही दुर्ज्ञेय एवं रहस्यपूर्ण बताकर तांत्रिक-प्रणाली से तत्सम्बन्धी मंत्र-तंत्रादि साधन का[7] विस्तार से विवेचन किया गया है—सहजा का द्वादशाक्षर मंत्र, उसके ऋषि, देवता, छंद, बीज, शक्ति,

---

१. सहजा जानकी सीता मोदिनी राधिका रमा ।
आनन्दिनो परालीला ललना लास्यकारिणी ।।
भु० रा०, पूर्व० ४८।२२

२. भु० रा०; पू० खं० ५६।२५, २६, २८ ।

३. वही, १४।१० ।

४. वही, पृ० ४७।३१

५. वही, पृ० ४८।३७, ४०

६. वही, पृ० ५१।२३ ।

७. सीतायाः यत्परम् तत्त्वं दुर्ज्ञेयं योगिनामपि ।
रहस्यंकिल वेदानाम् तंत्राणां च विशेषतः ।।
भु० रा० ९०९

कीलक, अंगन्यास आदि की[1] व्याख्या करने के पश्चात् मूलाधार-चक्र में निरंजन ज्योति तथा सनातन जीव शक्ति के रूप में उसके ध्यान का निर्देश दिया गया है--

ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यानि यत्प्रोक्तं मेऽत्रिसूनुना ।
कलितं योगिमुख्यैर्यत्स्वचित्तकमले पुरा ॥
प्रमोदवनसद्मामन्तरशोकवनवासिनी ।
मणि हेमलसद्दिव्य सिंहासनविराजिता ॥
तस्योपरि महापद्मे मत्तभ्रमरसेविते ।
अष्टपत्रे शुभे दिव्ये सख्याष्टक समन्विता ॥
रक्तांशुकपरीधाना वरा भयलसत्करा ।
महोपनिषदां वृन्दैः स्तूयमाना समंततः ॥
कटाक्षालोकभावेण संजीवितमनोभवा ।
तडित्पुंजलसत्कांतिः कोटिचन्द्रसमानना ॥
कोटिसूर्येन्दुवह्नमाना तेजोरूपा सनातनी ।
दक्षबाहुलता पाशावष्टब्धरघुपुंगवा ॥
सस्मितेक्षण कल्लोलैर्मोदयंती रघूद्वहम् ।
अनेक कोटि ब्रह्माण्डसृष्टि स्थितिलयात्मिका ॥
इच्छा ज्ञानक्रियाशक्तिरूपिणी ब्रह्मरूपिणी ।
एवं भूता सदाध्येया प्रमोदवननायिका ॥[2]

सहजा एवं राम का यह युगल विग्रह हिन्दू-तंत्रों के शक्ति, शिव तथा बौद्धों के प्रज्ञा उपाय की संयुक्तावस्था का ही प्रतिरूप है जिसे प्रेम की परमोत्कृष्ट स्थिति अथवा सहज दशा कहा गया है। वैष्णवागमों में- चैतन्य महाप्रभु के पूर्व से प्रचलित 'ब्रह्मसंहिता' में शक्ति तथा शक्तिमान् की इस संयोग दशा को ध्यान-साधना का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता रहा है—

---

१. अपि मे ब्रूहि तत्तत्त्वं मंत्र तंत्र पुरस्सरम् ।
यज्ज्ञात्वा मोहपोशेन नावृतः स्यात् कदाचन ॥
किं च मंत्रं किं च पुनः तन्त्रं किं च तन्मंत्र साधनम् ।
केन विज्ञानेन विज्ञाता सहजानन्दिनी भवेत् ॥ भु० रा० पूर्व० १४२।५, ६
'ऊँ ह्रीं ओं क्लीं सहजानन्दिन्यै स्वाहा'--भु० रा० पू० खं०, पृ० ९१३ (पाद-टिप्पणी)
प्रणवो भुवनेशानी कमला काम एव च ।
सहजानन्दिनी ङेन्तं स्वाहा तो द्वादशाक्षरः ॥
हिरण्यगर्भ एतस्य मुनिश्छंदोऽस्यत्यनुष्टुपम् ।
सहजानन्दिनी देवी देवता ब्रह्मरूपिणी ॥
लक्ष्मीबीजं त्रपाशक्तिः कामाढ्यं कीलकं स्मृतम् ।
षोढा कृत्वा मनं कुर्यात् कराङ्गन्यास मेव च ॥
वही, १४२।१०, ११, १२

२. भु० रा० पूर्व० १४२।१३-२०

परमात्मा हरिर्देवस तच्छक्तिः श्रीरिहोदिता।
श्रीदेवी प्रकृतिः प्रोक्ता केशवः पुरुषः स्मृतः।
न विष्णुना विना देवी न हरिः पद्मजां विना ॥[1]

ब्रह्मसंहिता में भुशुण्डि रामायण की ही भाँति सहस्रदल कमल के मध्यभाग में गोकुल (अथवा साकेत) उसके भीतर तांत्रिक उपासना के—यंत्र, कीलक आदि और कर्णिका में न्यास, लिंगरूप में पुरुष (शिव अथवा नारायण) तथा योनिरूप में प्रकृति (पार्वती अथवा रमादेवी) विराजमान कही गयी हैं।[2] 'सदाशिव संहिता' में प्राप्त इष्टदेव के ध्यान का विवरण इससे अक्षरशः मिल जाता है—

तदूर्ध्वं सर्व सत्वानां कार्यकारण मानिनां।
निलयं परम दिव्यं महावैष्णव संज्ञकम् ॥
एतद् गुह्यं समास्थानं ददातु वांछितं हि नः।
तदूर्ध्वं तु परं दिव्यं सत्यमन्यद्विवस्थितम् ॥
न्यासिनां योगिनां स्थानं भगवद्भावनात्मनां।
महाशंभुर्मोदते तत्र सर्व शक्ति समन्वितः ॥
तदूर्ध्वं तु परंकान्तं महावैकुण्ठ संज्ञिकम्।
वासुदेवादयस्तत्र विहरंति स्व मायया ॥
तदूर्ध्वं तु स्वयं भाति गोलोकः प्रकृतेः परः।
वाङ्मनोगोचरातीतो ज्योतिरूपः सनातनः ॥
तस्यमध्ये पुरं दिव्यं साकेतमिति संज्ञकम्।
योषिद्रत्न मणिस्तंभ प्रमदागण सेवितम् ॥
तन्मध्ये परमोदारः कल्पवृक्षो वरप्रदः।
तस्याधः परं दिव्यं रत्नमंडपमुत्तमम् ॥
तन्मध्ये वेदिकारम्या स्वर्णरत्न विनिर्मिता।
तन्मध्ये च परं शुभ्रं रत्नं सिंहासनं शुभम् ॥
सहस्रारं महापद्मं कर्णिकायुक्तमुन्नतम्।
तन्मध्ये मुद्रिकाभिन्नं मुद्राद्वाभ्यां विभिन्नकम् ॥
वह्नीन्दुमंडले नापि वेष्ठितं विन्दु भूषितम्।
चन्द्रकोटि प्रतीकाशं छत्रकं च सचामरं ॥
तत्रास्ते भगवान् रामः सर्वदेव शिरोमणिः।
तत्रादौ चिन्तयेत्तेजो वह्निरूपं सुशक्तिकम् ॥
तेजसा महताश्लिष्टमानंदैकाग्र मंदिरम्।
एकाग्र मनसा पश्येत्तत्रदेवो सुविग्रहम् ॥

---

१. जीव गोस्वामी कृत 'भागवत संदर्भ' में उद्धृत (Obscure Religious Cults p. 129)

२. ब्रह्मसंहिता, अ० ५, श्लोक २-१० (बहरामपुर संस्करण)

द्विभुजं मधुरं शान्तं जानकी प्रेम विह्वलम् ।
दोर्दण्डचण्डकोदण्डं शरच्चन्द्र महाभुजम् ।।
सीतालिंगित वामाङ्गं कामरूपं रसोत्सुकम् ।
तरुणारुणसंकाशं विकचाम्बुज पादकम् ।।[1]

प्रस्तुत प्रसंग में 'सीता' और भुशुण्डि रामायण में 'सहजा' का मुद्रारूप में ध्यान निश्चय ही कश्मीर शैवमत के अनुसार है ।

तांत्रिक शैवमत में 'शक्ति' को मुद्रा की संज्ञा दी गयी है, क्योंकि वह जीव को समस्त पापों से मुक्ति दिलाती है और चैतन्य का विम्ब अथवा प्रतिविम्ब है । इनमें खेचरी या निष्का - मुद्रा सर्वप्रधान है । अन्य मुद्राएँ उसी के अन्तर्गत हैं । भुशुण्डि रामायण में 'सहजा' खेचरी के नाम से भी संबोधित की गयी है ।

खेचरी भूचरी सिद्धा वैष्णवी वैष्णवप्रिया ।[2]

योगपीठ अथवा तन्त्रपीठ में कामबीज से अभिमन्त्रित उनके अक्षर विग्रह की स्थापना[3] कामबीज से दंतधावन का अभिमन्त्रण[4] श्रीबीज से अभिमन्त्रित जल से मुख विशुद्धि[5] षोडशोपचार पूजा[6] अस्त्राभिमन्त्रण[7] आदि का[8] विधान भी सर्वथा तन्त्राचार-सम्मत है ।

तत्र चिंतामणिमयं योगपीठं विभावयेत् ।
कोटिसूर्येन्दुसंकाशं नानारत्नविचित्रतम् ।।
तत्र सोमस्तवनं वटवृक्षं विचिन्त्ययेत् ।
तन्मूले भावयेद् दिव्यं रत्नसिंहासनोत्तमम् ।।
तस्योपरि महापद्ममष्टपत्रं मनोहरम् ।
तत्र क्लृप्तासमां देवीं सहजानन्दिनीं स्मरेत् ।।
श्रीरामप्रेमनिरतां प्रेमानंद स्वरूपिणाम् ।
रत्नमाणिक्य भूपाढ्यां रामालिंगित विग्रहाम् ।।
पादाम्बुज नखज्योत्स्ना परब्रह्म प्रकाशिनीम् ।
कोटिलक्ष्मी शिरोमौलि गिराचार्यैः समंततः ।।
शब्दब्रह्म स्वरूपज्ञैः समंतात्पर्युपासिताम् ।
चराचर जगद्योनि चराचर जगन्मयीम् ।।

---

१. श्रीरामनवरत्न०, पृ० २९-३२ पर उद्धृत
२. भु० रा० पूर्व० १४।३०
३. वही, पूर्व० १४२।१६६
४. वही, पूर्व० १४२।५०
५. वही, पूर्व० १४२।५१
६. वही, पूर्व० ९१६।५१
७. वही, १४२।५३
८. वही, १४२।९२

भ्रकुटी तर्जितोद्भूतकलां कालस्य कालिनीम् ।
कालशक्तिप्रदां लोके कालगोचर केलिनीम् ॥
कालस्य कलनारूपां कलनाद मनोहराम् ।
प्रेमानन्दमयी साक्षाद्भावयेत्पीठ नायिकाम् ॥
पीठं संपूजयेत्तस्याः कुसुमाक्षत चन्दनैः ।
प्रत्येकं पीठशक्तीश्च भावयेत्वार्चयेत् क्रमात् ॥[1]

इसी क्रम में महाशक्तिस्वरूपा सहजानन्दिनी के विग्रह के ध्यान एवं मानसी-सेवा का भी विधान किया गया है—

इत्युदीर्याखिलं विश्वं तन्मयं भावयेद्धृदि ।
ततो मूलाधार पद्मे भावयेत् कुण्डलीमयीम् ॥
चतुर्दलं तत्र पद्मं सिन्दूरारुण सुन्दरम् ।
तत्कर्णिकागतं दिव्यं स्वयंभूलिङ्ग मुद्यतम् ॥
शंखावर्त्तक्रमात्तस्य वेष्टिनीं दृष्टसूत्रतः ।
सार्धत्रिवलयाकारां सर्वतत्त्व स्वरूपिणीम् ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटि सुशीतलाम् ।
कोटि पावक विद्योतां जीव शक्ति सनातनीम् ॥
तांचेतियत्वा प्रणवेन मूलमंत्रेण वा चक्रविभेदरीत्या ।
नीत्वा सहस्रच्छदनं समंतात्प्रकाशमानां महसांभरेण ॥
उल्लसिता शेष सरोरुहान्तः प्रसर्पदंशुप्रकरप्रसारम् ।
संयोजयेच्चिन्मयधाम्नि तस्मिन् स्रवत्सुधापूर विलीनगात्राम् ॥
संयोग जन्मामृत वारिधारा संस्नात सर्वावयवानवद्यः ॥
तिष्ठेच्चिरं चिन्मय सामरस्य प्रमोदधारा विनिमग्न चित्तः ।
ततस्तां भुजगीरूपां मूलप्रकृतिरूपिणीम् ।
जीवशक्तिं यथास्थानं स्थापयेत्सुखितान्तरः ॥[2]

ब्रह्मसंहिता तथा सदाशिवसंहिता दोनों के अन्तर्गत निर्दिष्ट स्वरूपध्यान में शक्तिमान की अपेक्षा शक्ति को अधिक महत्त्व दिया गया है। महाशक्तिस्वरूपा सहजा के लिए 'पादाम्बुज नखज्योत्स्ना परब्रह्मप्रकाशिनी', 'कालस्यकालिनी', 'कालशक्तिप्रदा' आदि विशेषणों का प्रयोग इसी उद्देश्य से हुआ है। इसके अनन्तर किशोरीरूपा, सहजा के यंत्र की व्याख्या तथा उसकी पूजा-विधि पर प्रकाश डाला गया है।[3]

मूलमंत्र से आत्मरक्षा करने के पश्चात् सहजामंत्रसाधना की विशेष न्यास-विधि का उल्लेख है। उसका महत्व बताते हुए कहा गया है कि महाप्रतापी रावण के विरुद्ध संग्राम में

---

१. भु० रा० १४६।१०३, १०५, १०८, १०९, ११०, ११२, ११५, ११६, ११८, ११९, १२२
२. भु० रा० पू० ख०।१४२।२७-३४
३. भु० रा० पू० १४६।१३०, १३१, १३२

राम और लक्ष्मण की विजय का मुख्य कारण राम द्वारा इसी पद्धति से सहजा की पूजा करना था, जिससे उनका समस्त शरीर मंत्रमय होकर वज्र का हो गया था।[1]

अभिनव गुप्त ने इच्छा, ज्ञान और क्रिया के द्वारा शिव के अंजित अथवा व्यक्त होने का उल्लेख किया है। निरंजनपद प्राप्ति के लिए इन तीनों शक्तियों में सामरस्य लाना अनिवार्य है।[2] इसीलिए इन्होंने इस प्रक्रिया अथवा साधन को भी निरंजन नाम दिया है।[3]

भुशुण्डि रामायण में सहजा देवी भी निरंजन, आत्मज्योति, हंसरूपा एवं स्वानंदबोध स्वरूपा मानी गयी हैं।

सामरस्य दशा की चिन्मयानन्द धारा में निमज्जन करने के लिए आलोच्य ग्रन्थ में चक्र-भेदन-प्रक्रिया की भी विस्तार से व्याख्या की गयी है, जिसमें चित् शक्ति अथवा कुण्डलिनी जाग्रत हो षड्चक्र अथवा छः भूमियों का क्रम से भेदन कर सातवीं भूमि सहस्रार में प्रवेश करके अमृतरसपान करती है—यही योग की सिद्धावस्था है, जिसे जन-सामान्य को बोधगम्य बनाने के लिए योगियों ने संयोगावस्था अथवा पूर्णतृप्ति दशा की संज्ञा दी है।

कश्मीर शैवमतानुयायियों, सहजयानी बौद्धों तथा परवर्ती सहजिया वैष्णवों की भाँति भुशुण्डि रामायणकार ने भी इस स्थिति को पुरुष-प्रकृति अथवा भोक्ता-भोग्य की अद्वैतावस्था माना है। राम स्वयं को सहजानन्द स्वरूप[4] बताकर लीला यात्रा के लिए अपने और सहजा के द्विधा विभक्त होने की बात कहते हैं।[5]

तंत्राचार्य अभिनव गुप्त ने 'सहज' और 'राम' की जैसी व्याख्या की है, वह भुशुण्डि रामायण द्वारा चित्रित सहजा और राम के स्वरूप के सर्वथा अनुकूल है। उन्होंने राम को जड़ तथा अजड़ विश्व-वैचित्र्यद्वारा क्रीड़ा करनेवाला परम तत्त्व माना है और उसे शिव से अभिन्न

---

१. क्रमोक्रमाद्विधायित्थं साक्षान्मंत्रमयो भवेत्।
अमुं न्यासविधिंकृत्वा वाक्पतिर्जायते नरः।
अमुनान्यास वर्येण संग्रामे रामलक्ष्मणो।
वज्रांगता परिप्राप्य रावणादीन् विजिग्यिरे॥
भु० रा०, पू० खं० १४६।९२, ९३

२. लोली भूतमतः शक्तित्रितयं तत्त्रिशूलकम्।
यस्मिन्नाशु समावेशाद् भवेद्योगीनिरंजनः।
तंत्रालोक आ० ३, पृ० ११५

३. 'क्रियादेवी निरंजनाम्' तंत्रालोक आ० ३, पृ० ११४

४. श्रीराम सहजानन्द पुराणपुरुषोत्तम।
प्रपन्न पारिजातेश पाहिमामित्युदीरयेत्॥
मत्स्वरूपवरं लब्ध्वा संगताविह जन्मनि।
भु० रा० पू० ५९।४१

५. एकोऽहं सन् द्विधाजाता सहजा राम एव च।
वही, पृ० ५३।२३

बताया है। उनकी मान्यता है कि राम आभासरूप विश्व में क्रीड़ासक्त रहता है।[3] उसका यह क्रीड़ासक्त स्वरूप ही भक्तों का ध्येय है।

तंत्रों के अनुसार सृष्टि की रचना परम शिव में उद्दीप्त काम का परिणाम है। इसीलिए विश्व की सारी क्रियाएँ काम-भावना से संचालित होती हैं। अप्रतिहत गति होने से उसे सहज या स्वयंभू नाम दिया गया है। इच्छा से ही मूलसत्ताविन्दु तथा नाद का रूप धारण करती है। अतः प्रकारान्तर से उसकी भी मूलप्रेरकशक्ति कामभावना ही मानी जायगी। तात्पर्य यह कि मूलसत्ता की सृष्टि-रचना-विषयक इच्छा का नाम ही 'सहज' है। इसीलिए वैष्णव साधक राधा-कृष्ण, सीता-राम की माधुर्य-केलि का ध्यान कर कृतार्थ होते हैं। सहज वैष्णवधर्म में कृष्ण को 'रसराज' कहा जाता है। जगतरामराय विरचित 'आत्मबोध' (बंगला) में राम को भी यही संज्ञा दी गयी है और उन्होंने स्वरचित अद्भुत रामायण के अंतर्गत 'रामरास' शीर्षक एक पृथक् अध्याय भी रखा है। इससे यह पता चलता है कि भुशुण्डि रामायणकार द्वारा की गयी सहजाशक्ति की उद्भावना के पीछे पूर्ववर्ती सहजानन्दी कौलों तथा परवर्ती सहजयानी बौद्धों का वही आदर्श काम कर रहा था जिसने सहजिया वैष्णवों को कृष्ण की भाँति राम में भी रास-वर्णन की प्रेरणा प्रदान की थी और इस स्तर पर दोनों में अभेद-कल्पना को प्रोत्साहित किया था।

ध्यानयोग

सगुण रामोपासना का प्रमुख उपजीव्य ग्रन्थ होते हुए भी कदाचित् तांत्रिक-साधना से ही प्रभाव ग्रहणकर आलोच्य-ग्रन्थ में एक स्थल पर ध्यानयोग द्वारा ब्रह्मनिर्वाण लोक में ज्योति ब्रह्म राम का साक्षात्कार-लाभ करने की साधना-प्रक्रिया का वर्णन किया गया है—

अस्मिन् ब्रह्मपुरे दिव्ये नवद्वारे महापथे।
दहराख्यं पुण्डरीक वेश्म नित्यं विराजते॥
ज्योतिरूपं ब्रह्मरूपमूर्जस्वलमनुत्तमम्।
कला सहस्रकलितं निष्कलं कालवर्जितम्॥
यद्वासिनो महोदारा हंसाः प्रकृति कोमलाः।
ब्रह्मनिर्वाणलोकस्य राजानः सकला अपि॥
अहं यत्र प्रभुः साक्षात् परब्रह्म परात्परः।
ज्योतिरिङ्गण वद्यत्र ज्योतिः कण विभूषिताः॥
सकलं निष्कलं वापि पूर्णं सकल निष्कलम्।
नित्य श्रीविग्रहोपेतं श्रीलालित पदाम्बुजम्॥
प्रेम्णा सहज भावेन समुपेतः सदा शुचिः।
स्नायात् सुविमले तीर्थे ब्रह्मादि सुर सेविते॥

---

३. तत्स्जडाजडात्मनां विश्व वैचित्र्यात्मना क्रीडति इति राम.।
तंत्रालोक, खण्ड १ आ० १ पृ० १३१

संत वैष्णव काव्य पर तांत्रिक प्रभाव,—पृ० १०५

सुपूर्णे त्रिपथातीरे ललाटे वैन्दवे सरे।
सहस्रदल मध्यस्थ चन्द्रमण्डल विश्रुतैः ॥ ५ ॥
सुधारसैर्भृतं पूर्णं वैन्दवं विशदं सरः।
तत्र संस्नानमात्रेण नरः पूतः प्रजायते ॥
भावनाधिकार योग्यश्च भाव्यमर्थमवाप्नुयात्।
दिव्येन तपसा युक्तः समाधि फलमाप्नुयात् ॥
समाधौ संपरिणते ध्यानं फलति तत्त्वतः।
फलिते ध्यानयोगे तु ध्येयं साक्षात्कृतं भवेत् ॥
ध्येयमस्मि परंब्रह्म यत्पूर्णममृतं विदुः।
सत्यज्ञानानन्दस्ये मयि जीवं समर्पयेत् ॥
अकर्ता जायते सद्यो निर्लेपश्चैव निर्गुणः।
कर्त्ता च करणं कार्य यावदेतावती भिदा ॥ २० ॥
मत्स्वरूपाश्रयो विद्वान् कृतकृत्यः प्रजायते।
न तस्य त्रिपुलोकेपु कर्तव्यमवशिष्यते ॥[1]

ध्यान की यह पद्धति सर्वात्मवादी एवं योगाचारपरक बौद्धधर्म में उसी प्रकार प्रतिष्ठित हो गयी थी जैसे वैदिकधर्म में पतंजलि की योग-साधना समादृत थी। परमज्योति स्वरूप परात्पर ब्रह्म राम का यह सगुण-निर्गुण मिश्रित ध्यान कालान्तर में रामभक्ति की निर्गुण तथा सगुण शाखा के भक्तों के लिए अपने विशिष्ट भावानुसार अत्यन्त प्रेरणाप्रद सिद्ध हुआ। स्वामी रामानन्द ने रामभक्ति का प्रवर्तन करते हुए रामतत्त्व की इस परम्परागत विशेषता को उजागर ही नहीं किया, अपने उपदेशों और रचनाओं के[2] द्वारा साकार एवं निराकारोपासक भक्तों के लिए रामभक्ति में विशेष आकर्षण उत्पन्न कर दिया। इससे सहजयानी बौद्धों और नाथपंथी योगियों से प्रभावित साधक-वर्ग रामभक्ति की ओर उन्मुख हुआ। बंगाल में चैतन्य महाप्रभु के समकालीन उनके अनेक अनुगत भक्त रामोपासक हो गये और नाथपंथियों का मुख्य प्रभाव-क्षेत्र राजस्थान साम्प्रदायिक रामभक्ति का प्रधान केन्द्र बन गया। स्वामी रामानन्द के प्रशिष्य श्रीकृष्णदास पयदारी द्वारा स्थापित गलता गद्दी इस योगपरक रामभक्ति की लोकविश्रुत उद्गम स्थली के रूप में प्रसिद्ध हुई। रामोपासना की तपसी शाखा इसीसे निकली। इसके प्रवर्तन का श्रेय पयदारीजी के ज्येष्ठ शिष्य कृष्णदास को दिया जाता है।

---

१. भु० रा०, पूर्व० ५९।१, ५, १०, ११, १३, १६–२०, २४

२. चाचरी भूचरी खेचरी अगोचरी उन्मुखी पाँच मुंद्रा साधते सिद्ध राजा।
—रामानंद की हिन्दी रचनाएँ, पृ० ५

सहज सुन्न मैं चित्त बसंत। जिनि जाइ अंत ॥
न तहाँ इच्छ्या ओं अंकार। न तहाँ नाभिन नाल तार ॥
न तहाँ माया स्यौ बिसन। न तहाँ चौबीसो वपु बरन ॥
न तहाँ दीसै माया भंड। रामानंद स्वामी रमै अखंड ॥ —वही, पृ० ८
सिद्धा सहजे लीना सहजे दीना सहज सुरति ल्यौ लाई ॥ —वही, पृ० १४

सारांश यह कि भुशुण्डि रामायण में जिस 'सहजा' को राम की पराशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, उसका उत्स कौलों की सहज साधना ही है जिसका प्रचार उत्तरी भारत में ८ वीं० शती से व्यापक रूप में हो चला था। सहजयानी बौद्धों ने इसके विकास में अपूर्व सहायता की। फलतः १२ वीं शती तक हिन्दू समाज के निम्नवर्ग में इस साधना के बहुत अनुयायी बन गये थे।

इस संदर्भ में एक और बात लक्ष्य करने की है और वह है भुशुण्डि रामायण में सहजा तथा श्रीदेवी की अभेद स्थापना। श्रीदेवी, कमला अथवा लक्ष्मी की पर्याय होने से यद्यपि श्री वैष्णवों में विशेष समादृत थीं, किन्तु महाशक्ति का प्रतिरूप होने से कौल तथा कापालिक मतों में भी उनकी पर्याप्त प्रतिष्ठा थी। इनमें सैद्धान्तिक समानता का एक और कारण था, एक ही केन्द्र से उक्त तीनों मतों का प्रचार। दक्षिण का श्रीपर्वत वैष्णव, शाक्त और शैव तांत्रिकों की साधना-भूमि थी। बाणभट्ट ने कादम्बरी में शाक्त तांत्रिकों के पीठरूप में श्रीपर्वत का उल्लेख किया है। इसे वज्रयान की भी उत्पत्ति-स्थली कहा जाता है। भुशुण्डि रामायण में इसे शिवपीठ माना गया है और दशरथ के द्वारा की गयी यहाँ के अधिष्ठातृदेव शिव की पूजा का उल्लेख कर प्रकारान्तर से वैष्णवों में इसकी मान्यता की पुष्टि की गयी है।[1]

तात्पर्य यह कि ९ वीं तथा १० वीं शताब्दी में उत्तरी भारत के आध्यात्मिक जीवन में व्याप्त शाक्त तथा बौद्ध तंत्रों से समकालीन धार्मिक सम्प्रदाय पर्याप्त संबल ग्रहण कर रहा था। इसका एक सबल प्रमाण शाक्त तंत्रों में प्रतिष्ठित दश महाविद्या में प्रमुख तारा की उपासना का बौद्धों तथा वैष्णवों में समान रूप से प्रचार है। इनके स्तोत्र, सहस्रनाम, कल्प आदि से सम्बद्ध प्रचुर साहित्य प्राप्त होता है। तारा तंत्र, ताराभक्ति सुधानिधि, तारा रहस्य, तारा कल्पलता पद्धति, एकजटी तंत्र, चीराचार तारा कर्पूरस्तोत्र आदि[2] ग्रन्थों में इनकी पूजा-पद्धति तथा महिमा का विशद विवेचन किया गया है और कुलाचार की मूल प्रेरणाशक्ति के रूप में इन्हें सायुज्य मुक्ति की एकमात्र साधिका बताया गया है।

महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने आलोच्य युग में बौद्धधर्म में हिन्दुओं की बढ़ती हुई निष्ठा का उल्लेख करते हुए बताया है कि 'हिन्दुओं का एक तंत्र बतलाता है कि वशिष्ठ तारामंत्र की सिद्धि पाने के लिए उत्सुक थे, परन्तु वे भारत में रहते हुए इसकी प्राप्ति न कर सके। अतः उन्हें तुषाराच्छन्न पर्वतों की यात्रा करके चीन जाना पड़ा, जहाँ बुद्ध ने उन्हें सिखलाया कि वे कैसे उस मंत्र की सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं।'[3] कहने की आवश्यकता नहीं, महर्षि वशिष्ठ राम के ही नहीं उनके पूर्वजों के भी कुलगुरु थे। अतः तंत्राश्रित भक्ति-साधनों में रामतत्त्व को मान्यता प्रदान करने में इस तथ्य ने सहायता प्रदान की हो तो कोई आश्चर्य नहीं। शास्त्रीजी का अभिमत है कि बौद्धों तथा ब्राह्मणों दोनों को अपने-अपने तंत्र एक ही

---

१. श्री पर्वतं जगामाथ यत्र साक्षादुमापतिः। —भु० रा०, पूर्वखण्ड (दशरथ तीर्थयात्रा) १३७।३४

२. तांत्रिक साहित्य—म० म० पं० गोपीनाथ कविराज, पृ० २८

३. भक्तिमार्गी बौद्धधर्म—नगेन्द्रनाथ वसु (भूमिका—पं० हरप्रसाद शास्त्री—पृ० १४-१५)

स्रोत से प्राप्त हुए थे।[1] यह बात दूसरी है कि गुह्य-साधना की स्वीकृति होने से बौद्धधर्म के भीतर तांत्रिकधारा को विकास के लिए अपेक्षाकृत अधिक उर्वर क्षेत्र मिला। किन्तु रामोपासना में इसके अवशेष अनेक रूपों में उपलब्ध हैं। भुशुण्डि रामायण में सीता और तारा में अभेद स्थापना की गयी है और सीतासहस्रनाम में तारा का भी उल्लेख है :—

'तारा त्रयापद्मजा'[2]

'सीता तारा पद्मा'[3]

ये तत्त्व वैष्णव-भक्ति के प्रतिपादक प्रस्तुत ग्रन्थ पर शाक्त तंत्रों तथा महायान की परवर्ती शाखाओं, मंत्रयान एवं वज्रयान का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रकट करते हैं।

प्रकरण योजना में तांत्रिक आदर्श

समकालीन बौद्ध तथा शाक्त साधना का यह प्रभाव भुशुण्डि रामायण की प्रकरण योजना में भी स्पष्ट दिखायी देता है। ब्राह्मणधर्म परम्परा में निर्मित प्रबन्ध-काव्यों का प्रसंग-विभाजन अध्याय, काण्ड, सर्ग, प्रकरण आदि नामों से होता रहा है, किन्तु इसके विपरीत आलोच्य-ग्रन्थ चार खंडों—पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण में विभक्त है। संभवतः इस योजना के मूल में नेपाल के बौद्धग्रन्थों में निर्दिष्ट पाँच ध्यानी बुद्धों का आदर्श है, जिनके नाम हैं—वैरोचन, क्षोभ्य, रत्नसंभव, अमिताभ और अमोघसिद्ध। ये महायानियों के अनुसार आदिसृष्टिकर्ता स्वयम्भू अथवा आदिबुद्ध से संभूत हैं। इनमें से चार चारों दिशाओं में और एक उच्चतर ब्रह्माण्ड में स्थित कहा जाता है। इसी आदर्श पर शाक्तों ने महाशक्ति के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा ऊर्ध्व आम्नाय में स्थित छः रूपों का उल्लेख किया है। चैतन्यदास-रचित 'विष्णुगर्भपुराण' में इनमें से ऊर्ध्व आम्नाय की देवी 'श्रीविद्या' के नाम से अभिहित की गयी हैं और उन्हें मोक्ष का एकमात्र हेतु माना गया है।

मोक्षैक हेतुर्विद्या श्रीविद्या नात्र संशयः।[4]

श्रीविद्या दस महाविद्याओं में षोडशी के नाम से प्रसिद्ध हैं और त्रिपुरसुन्दरी के रूप में पूजी जाती हैं। इनकी उपासना में काम अथवा मन्मथ की प्रधानता है। ये शक्तिचक्र की साम्राज्ञी तथा ब्रह्मविद्यास्वरूपा आत्मशक्ति मानी जाती हैं। इनका पूजन भुक्ति-मुक्ति दोनों का प्रदाता कहा जाता है—

यत्रास्तिभोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरी सेवन तत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥[5]

---

१. भक्तिमार्गी बौद्धधर्म—नगेन्द्रनाथ वसु—भूमिका पृ० १४-१५

२. भु० रा० १५०/३९

३. वही०, १५०/

४. त्रिशती, ११९ (तांत्रिक-साहित्य, महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज) भूमिका पृ० २७

५. त्रिशती, पृ० ३०

भुशुण्डि रामायण में सीता से इनकी अभिन्नता स्थापित करते हुए इनके यंत्र-मंत्र पुरस्सर कामेश्वरी रूप का गुणगान किया गया है—

> रक्ताशोकलतामंडपमध्यस्थे स्मरमंत्र महाविधे श्रीमंत्र निधे
> महामंत्र विधे महा श्रीयंत्र नायिके महाचक्र नायिके मातङ्ग कुल
> पूजनीय चिंतामणि चरणनख चन्द्रिके ।।[1]

मेरा विचार है कि भुशुण्डि रामायणकार ने उक्त ग्रन्थ के चार खण्डों का नामकरण चारों दिशाओं के आधार पर महायानी बौद्धधर्म तथा शाक्ततंत्रों में निर्दिष्ट उपर्युक्त पद्धति से ही प्रेरणा प्राप्त करके किया है। परवर्ती उड़िया वैष्णव-भक्तों ने चारों दिशाओं में स्थित चारों विष्णु के नियंत्रक उच्चतर स्तर में विद्यमान विष्णु को वैकुण्ठनाथ की संज्ञा दी है और उनका लोक वैकुण्ठ बताया है। इससे भी यह पता चलता है कि भागवत सम्प्रदाय में बौद्ध तथा शाक्त साधकों की उक्त विचारधारा ज्यों-की-त्यों स्वीकार कर ली गयी थी।[2]

इस आधार पर यह अनुमान करना असंगत न होगा कि भुशुण्डि रामायण की रचना उस समय हुई जब उत्तरी भारत में शाक्त एवं बौद्धधर्म के ह्रास के साथ ही वैष्णवधर्म का उत्कर्ष प्रारम्भ हो गया था। तांत्रिक साधनाओं के प्रसार का यह समय भारतीय इतिहास का पूर्वमध्यकाल है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस युग की चार विशेषताएँ[3] मानी हैं— सिद्धान्त प्रचार की प्रवृत्ति, आराध्य देवों की शक्तियों की कल्पना, लोकधर्म के सामने शास्त्रीय मतवादों की पराजय और चतुर्व्यूह सिद्धान्त। वाराहीतंत्र में तांत्रिक-साधना का एक महत्त्व-पूर्ण तत्त्व ध्यानयोग बताया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि आलोच्य-ग्रन्थ इन सभी विशिष्टताओं से समन्वित है।

इस सम्बन्ध में ध्यान देने की बात यह है कि ऐतिहासिक दृष्टि से तांत्रिक मतों के उत्कर्ष का यह युग चंदेलों तथा गहरवारों द्वारा उत्तरी भारत में स्थापित शासन का उत्कर्ष-काल है। चंदेलों द्वारा खजुराहों में चौंसठ योगिनी मंदिर का निर्माण, गहरवारनरेश गोविन्द चन्द्रदेव की पत्नी कुमारदेवी की तंत्रयान तथा जयचन्द्र की वज्रयान में आस्था से उक्त उपपत्ति की पुष्टि होती है। किन्तु इसके साथ ही इस काल के शासक-वर्ग का वैष्णव तथा शैव मत में भी समान रूप से आस्थावान् होना यह प्रकट करता है कि तांत्रिक मतों का प्रभाव जन-सामान्य पर ज्यों-ज्यों क्षीण हो रहा था, त्यों-त्यों वे अन्य धर्म सम्प्रदायों की ओर झुकते जा रहे थे। चंदेले, शैव तथा गहरवार वैष्णव मत के प्रति अधिक समादर का भाव रखते थे। गहरवारनरेश चन्द्रदेव ने ११०० ई० के लगभग काशी में आदिकेशव के मंदिर में तुलादान दिया था और जयचन्द्र 'आदिकेशव' का उपासक ही नहीं था, ११६८ ई० में उसने कृष्णभक्ति की दीक्षा भी ले ली थी।[4] किन्तु धार्मिक विचारों में ये सभी अत्यन्त उदार थे। इसलिए गहरवार

---

१. भु० रा०, पूर्व २७/१९
२. द्रष्टव्य :—भक्तिमार्गी बौद्धधर्म (नगेन्द्रनाथ वसु) पृ० ११२
३. मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ० ३७
४. काशी का इतिहास, पृ० १४६

युग में काशी में विश्वनाथ की स्थापना संभव हो सकी।[1] उक्त विग्रह का सबसे पहले उल्लेख एक गहरवार शिलालेख में प्राप्त होता है।[2] भुशुण्डि रामायण में दशरथ-तीर्थयात्रा के प्रसंग में विश्वनाथ दर्शन[3] का प्रसंग आया है तथा गोमती-गंगा संगमस्थ मार्कण्डेय महादेव की भी चर्चा है।[4] इन दोनों विग्रहों की आराधना समकालीन समाज में व्यापक रूप से प्रचलित थी और वैष्णव भी साम्प्रदायिक भेद-भाव त्यागकर शिव-मंदिरों में पूजा करने जाते थे, इससे यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है। काशी-मंडल के उक्त दोनों ज्योतिर्लिङ्गों की प्राचीनता असंदिग्ध है। मार्कण्डेय महादेव का उल्लेख महाभारत में[5] मिलता है और विश्वेश्वर अथवा विश्वनाथ का सर्वप्रथम उल्लेख गहरवार राजाओं के एक अभिलेख में हुआ है।[6] यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि आलोच्य-ग्रन्थ की रचना के पूर्व इन शैवपीठों को लोकमान्यता प्राप्त हो चुकी थी। यह काल ११ वीं शती के आसपास हो सकता है।

साम्प्रदायिक प्रभाव

पूर्व मध्यकालीन इतिहास तथा साहित्य में तांत्रिक, शैव, शाक्त तथा बौद्ध मतों के ह्रास और वैष्णवधर्म के पुनरुत्थान के सूत्र विविध रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं। ग्यारहवीं शती के अंतिम चरण में स्वामी रामानुजाचार्य द्वारा प्रवर्तित श्रीसम्प्रदाय की लहरें उत्तरी भारत में फैल चुकी थीं और समकालीन धार्मिक जीवन पर उसका गहरा प्रभाव पड़ने लगा था। क्षेमेन्द्र का शैव मत त्यागकर वैष्णवधर्म स्वीकार करना उसके उत्कर्ष की सार्वजनिक स्वीकृति का एक उज्ज्वल उदाहरण था।[7] चन्देल राजाओं के शासनकाल में प्रतिष्ठित जानकीशय्या, रामचरणद्वय, सीताकुण्ड, सौमित्रक्षेत्र आदि रामतीर्थों का वर्णन कालिंजर माहात्म्य में आया है।[8] इससे पता चलता है कि ११ वीं शती के लगभग वैष्णवधर्म के पुनरुत्कर्षकाल में राम-भक्ति को भी प्रसार के लिए उपयुक्त वातावरण प्राप्त हुआ। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रामभक्ति के विकास सूत्रों की विवेचना करते हुए यह विचार व्यक्त किया है कि राम

---

१. वही, पृ० १४५

२. जे० ए० एस० बी० ३१ पृ० १२३

३. तत्र संपूज्य विधिवद् विश्वेश्वरमुमापतिम्।
कोटियज्ञ फलं प्राप्य सोऽन्तलो मुक्तिमाप्नुयात्॥

—भु० रा०, पूर्व० १०३/३९

४. ततश्चगोमती गंगासंगमे तीर्थ मुत्तमम्।
अग्निष्टोमादि फलदं मार्कण्डेय महामुनेः॥
तत्र स्नात्वा वसेत्तत्र जपहोम परायणः।
ब्रह्मयज्ञं विनिर्वर्त्य जनः स्यात् पंक्तिपावनः॥

—वही, पूर्व० १०३/४१,४२

५. काशी का इतिहास, पृ० १२

६. काशी का इतिहास, पृ० १४५

७. काशी का इतिहास, पृ० १४९

८. चंदेल और उनका राजत्वकाल, पृ० २३४

अवतार को विशिष्ट उपास्य समझकर भी कोई सम्प्रदाय उन दिनों प्रतिष्ठित होना चाहिए। रामतत्त्व को प्रधानता देनेवाले[1] राम पूर्वतापनीय तथा उत्तर-तापनीय उपनिषदों की रचना—उसी परम्परा में हुई होगी।

राम-कथा के साथ ही धर्म-साधना का जो स्वरूप आलोच्य-ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है वह श्रीवैष्णव सम्प्रदाय की दार्शनिक तथा आचार-सम्बन्धी मान्यताओं के सर्वथा मेल में है। कुछ स्थलों पर तो इसकी स्पष्ट रूप से घोषणा भी की गयी है। लक्ष्मी-नारायण महिमा[2], वैष्णव मत का महत्त्व, वैष्णव की परिभाषा[3], वैष्णवाचार का विवरण[4], प्रपत्ति सिद्धान्त[5], प्रपन्न के लक्षण[6], वैष्णवों के पंच-संस्कार[7] नाम-जप, षडक्षर राम मन्त्रोपासना,[8] श्रीमन्त्र विद्या,[9] वैष्णवभक्ति में ऊँच-नीच की भावना का त्याग,[10] वैष्णवों की षोडशोपचार पूजा,[11] वैष्णव-निन्दकों की भर्त्सना,[12] वैष्णव-धर्म की पंचमुख्य संहिताएँ,[13] वैष्णवों का एकायनमार्ग,[14], श्रीवैष्णव संन्यासियों का उल्लेख आदि तत्त्वों का समावेश भुशुण्डि रामायण को श्रीवैष्णवों की साम्प्रदायिक मान्यताओं का प्रतिष्ठापक सिद्ध करता है। भेद केवल इतना है कि जहाँ श्रीवैष्णव वैकुंठाधिपति लक्ष्मीनारायण को ही प्रमुखता देते हैं, वहाँ भुशुण्डि रामायणकार राम को विष्णु का और सीता को लक्ष्मी का अवतार बताते हुए भी उन्हें महानारायण के द्वारा नमस्कृत्य मानता है।

भुशुण्डि रामायण में निर्दिष्ट पाँच वैष्णव संहिताओं में से ब्रह्मसंहिता और परमसंहिता को श्लेडर ने भी प्राचीनतम संहिताओं में स्थान दिया है। रामानुजाचार्य ने 'आगम प्रामाण्य' में परमसंहिता के उद्धरण दिये हैं तथा रामानुजाचार्य ने ब्रह्मसंहिता का उपयोग अपने सिद्धान्तों के समर्थन में किया है। इन दोनों संहिताओं का समय निर्भ्रान्त रूप में ४००–८०० ई० के बीच निश्चित किया जा सकता है। शुकसंहिता के निर्माणकाल के विषय में अधिकाधिक रूप से कुछ भी कहना कठिन है, किन्तु हनुमत्-संहिता का उल्लेख डॉ० राजेन्द्र

---

१. मध्यकालीन धर्म-साधना, पृ० ४२
२. भु० रा०, पृ० १५०।३९
३. भु० रा०, पश्चिम १३
४. वही, पश्चिम ७३
५. वही, पूर्व १२८
६. वही, उत्तर० पत्र ११
७. वही, उत्तर० १५
८. भु० रा०, पृ० ८९
९. वही, पूर्व ११२
१०. वही, दक्षिण २७८।२५
११. वही, पूर्व ८८।७१
१२. भु० रा०, पूर्व ६४
१३. वही, पूर्व १०१
१४. वही, दक्षिण १५१ (एकायनमार्ग श्रीपति का ध्यान)

हाजरा के 'कैटलाग' (भाग ७, पृ० २५०) में है। डॉ० बुल्के ने इसे सं० १७१५ वि० (सन् १९५८ ई०) के पूर्व निर्मित माना है।[1] यह 'पूर्व' उक्त ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय तथा शैली को देखते हुए ११ वीं शती तक निर्बाध रूप से खींचा जा सकता है।

अहिंसा में अनास्था

एक बात जो इस ग्रन्थ में परम्परागत वैष्णव सिद्धान्तों के प्रतिकूल मिलती है, वह है मांस, मदिरा तथा स्त्रियों के उन्मुक्त उपयोग का उद्घोष। पीछे बौद्ध-तांत्रिकों तथा कौलों के प्रभाव का विवेचन करते हुए यह दिखाया गया है कि आलोच्य-ग्रन्थ में वर्णित रामकथा, विभिन्न पात्रों का चरित्र-चित्रण इन साधनाओं से विशिष्टरूपेण प्रभावित है। सिद्धों की पंचमकार साधना में मांस भी एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व था। वैष्णव धर्म-साधना में इसका सेवन सर्वथा निषिद्ध था। वाल्मीकि रामायण के अयोध्या[2] तथा उत्तरकाण्ड[3] में वनवास के समय राम-लक्ष्मण के मांसाहार का वर्णन अनेक स्थलों पर आया है। उत्तरकाण्ड में तो उनके द्वारा 'मैरेयक' नामक मादक द्रव्य-सेवन का भी उल्लेख है। किन्तु वैष्णव मत के उत्तरी भारत में प्रसार के पश्चात् लिखी गयी रामायणों में अहिंसा को सदाचार का मुख्य अंग मानते हुए मर्यादापुरुषोत्तम को इसमें आस्थावान् दिखाया गया है। अतः वैष्णव-परम्परा में निर्मित होते हुए भी आलोच्य-ग्रन्थ में निरामिष भोजन जैसे अनिवार्य वैष्णवाचार की अवहेलना खटकती है। मेरी दृष्टि में इस व्यतिक्रम का प्रधान कारण भुशुण्डि रामायण की वस्तु-योजना पर पूर्ववर्ती तांत्रिक मतों का गहरा प्रभाव है।[4] निम्नांकित उद्धरणों में इसके स्पष्ट संकेत मिलते हैं :

---

१. रामकथा, पृ० १८३,

२. स लक्ष्मणः कृष्णमृगं हत्वा मेध्यं प्रतापवान्।
अथ चिक्षेप सौमित्रिः समिद्धे जातवेदसि ॥
तं तु पक्वं समाज्ञाय निष्टप्तं छिन्नशोणितम्।
लक्ष्मणः पुरुषव्याघ्रमथ राघवमब्रवीत् ॥ वा० रा० अयो०।५६।२६-२७

३. अशोकवनिकां स्फीतां प्रविश्य रघुनन्दनः।
आसने च शुभाकारे पुष्पप्रकर भूषिते ॥
कुशास्तरणसंस्तीर्णे रामः सनिषसाद ह।
सीतामादाय हस्तेन मधु मैरेयकं शुचि ॥
पाययामास काकुत्स्थः शचीमिव पुरंदरः
मांसानि च सुमृष्टानि फलानि विविधानि च
रमयामास धर्मात्मा नित्यं परमभूषिताः (वा०रा०उतर० ४२।१७,१८,१९,२२

४. रक्तमांस प्रियोवीरो नारायण स्वरूपकः।
रक्तास्थिचर्वको विद्वान् दीनानाथो दिव प्रभुः ॥
रामः सदा शिवो मूर्तिः कालमूर्ति दिगम्बरः।
रामकृपाकरो देवो विश्वव्यापी निरंजनः (ब्रह्मयामल तंत्र, सृष्टि प्रकरण)

मेध्यानी मृगमांसानि जानकी भर्तुराज्ञया।
पक्त्वा स्वादूनि विविधान्युपनित्ये पुरस्तयोः ॥[1]
भारद्वाजस्य वचनाद् भरतातिथ्य कर्मणि।
अनृत्यन् वल्लिकास्तत्र वल्लिका एव चोज्जगुः ॥
मद्यं मांसं च सुस्वादु साधु क्लृप्तं सुपाचितं।
इष्यते यद्यावत्तस्य तत्सुलभं तदा ॥[2]—भुशुण्डि रामायण, दक्षिण ३४।५२।५७

ऐतिहासिक संदर्भ

१—यवन आक्रमण

भारत पर मुसलमानों के आक्रमण का श्रीगणेश आठवीं शती के आरंभ में मुहम्मदबिन कासिम के सिंध पर आक्रमण के साथ हुआ, किन्तु उसकी अटूट शृंखला १००० ई० से महमूद गजनवी के उत्तर-पश्चिम सीमांत नगरों पर आक्रमण से चली। धन, भूमि-ग्रहण और धर्म प्रचार के लिए उन्होंने देश के उत्तरी-पश्चिमी प्रदेशों को जिस प्रकार पदाक्रान्त किया, जो नृशंसतापूर्ण अत्याचार किये, उसकी झलक भुशुण्डि रामायण के उन प्रसंगों में मिलती है, जहाँ रघुवंशियों और यवनों की सेनाओं में युद्ध के वर्णन आये हैं :—

अपीमान् पश्यसि प्राज्ञ प्रजालोकान्सुपीड़ितान्।
स्वचक्र परचक्राभ्यां नित्यमुद्विग्न मानसान् ॥
प्रबलो यवनाधीशो विपक्षैरिक्तरैर्युतः।
मांसाद्रुजतिते देशान्सर्वानुत्तरकोशलान् ॥
क्षेत्राणि नष्टप्रायाणि कृषिकाणां समन्ततः।
विलुप्ताराशयश्चैवधान्यानां वर्ष भोजनाः ॥[3]

प्रतीत होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के निर्माण के समय तक भारत में मुसलमानों की कुछ बस्तियाँ भी स्थापित हो गयी थीं। ग्रन्थकर्ता द्वारा समकालीन भारत को 'म्लेच्छप्राय देश तथा धन्यदेश' में विभाजन इस सम्भावना की पुष्टि करता है।

कीकटेषु त्रिशंकोश्च छायादेशश्च भूमिषु।
धन्यदेशेषु च तथा म्लेच्छ प्रायेषु चांतक ॥[4]

---

१. भु० रा०, दक्षिण १८।२
२. वही, दक्षिण ३४।५२, ५७
३. भु० रा०, दक्षिण ५१।२१, २२, २३
४. 'म्लेच्छ' शब्द पूर्वमध्यकालीन हिन्दी तथा संस्कृत-साहित्य में 'यवन' की भाँति ही मुसलमानों के लिए प्रयुक्त होता था। निम्नांकित उद्धरण से यह स्पष्ट है—

म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानन्द प्रभावतः।
संयोगिनश्च ते ज्ञेया अयोध्यायां बभूविरे ॥ (भविष्य पुराण)
—उद्धृत, रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, पृ० ३८

म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च।
सत्पीड़ा व्यग्रलोकेषु कृष्ण एवगतिर्मम —वल्लभाचार्य (कृष्णाश्रय षोडशग्रंथ, छं० २)

२. शूरों और सतियों की चर्चा

भारतीय इतिहास के पूर्वमध्यकाल में विदेशी आक्रमणों से देश के परम्परागत धर्म एवं संस्कृत के रक्षार्थ चलाये गये दीर्घव्यापी संघर्ष में पुरुषों और स्त्रियों ने अपूर्व धैर्य, सहनशीलता तथा साहस का परिचय दिया था। सामाजिक मर्यादा एवं व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को बचाने के लिए असंख्य नर-नारियों ने आत्म-सम्मान की बलिवेदी पर अपने प्राण अर्पित किये। अनगिनत देश-भक्त पुरुषों ने रणचंडी की अर्चना अपने शरीर से निकलती हुई रक्तधारा से की और स्त्रियों ने हँसते-हँसते वीरगति प्राप्त पति शव के साथ अपनी देह को चिता की लपटों में भस्मसात् कर डाला।

सतियों की यह परम्परा बहुत प्राचीनकाल से चली आ रही थी। रामायण, कथा-सरित्सागर तथा ब्रह्मसंहिता में इसके प्रचलित होने के अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। भक्ति-युगीन निर्गुण साहित्य की ज्ञानमार्गी[1] शाखाओं में तो शूरों और सतियों का मुक्तकंठ से गुणगान किया ही गया है, प्रेममार्गी सूफी कवि भी समकालीन हिन्दू समाज में प्रचलित सती प्रथा के मूल में विद्यमान सर्वतोभावेन आत्मार्पण अथवा आत्माहुति भावना पर मुग्ध थे।[2]

भुशुण्डि रामायण में सतियों के महत्त्व-गान के साथ ही दिव्यधाम में उनके निमित्त सुरक्षित लोकों का भी वर्णन आया है :—

ततः सलक्ष्मणो रामः सुबाहु समरेहतान्।
मातुलान् पुरुषश्रेष्ठानानेतुमुपचक्रमे॥
यदूर्ध्वरेतसां स्थानं मुनीनांयुक्त चेतसाम्।
शूराणां सतीनां च पातिव्रत्यजुषां गृहम्॥[3]

---

१. सूरा सीस उतारिया, छाँडी तनकी आस।
आगा तै हरि हरखिया, आवत देखा दास॥—कबीर ग्रंथावली, पृ० १८१
सती जरन को नीकसी, चित धरि एक विवेक।
तन मन सौंप्या पीव कौं, अंतर रही न रेख॥—वही, पृ० १८२

२. नागमती पदुमावति रानी। दुवौ महासत सती बखानी।
दुवौ आइ चढ़ि खाट बईठीं। औ सिव लोक परा तिन्ह दीठीं॥
* * * *
चंदन अगर काढ़ि सर साजा। और गति देइ चले लै राजा।
बाजनं बाजहिं होइ अकूता। दुऔ कंत ले चाहहिं सूता॥
* * * *
जियत जो जरहि कंत की आसा। मुएँ रहसि बैठेहिं एक पासा॥
* * * *
रातीं पिय के नेह गइँ, सरग भएउ रतनार।
जो रे उंवा सो अँथवा, रहा न कोइ संसार॥
—पदमावत (जायसी ग्रंथावली डॉ० म०प्र० गुप्त), पृ० ५५३-५४

३. भु० रा०, पूर्व, १००।१, ६

ऊपर से देखने पर यह आश्चर्यजनक लगेगा कि सतियों के माहात्म्य-वर्णन की जो परम्परा मुगलकाल के पूर्ववर्ती साहित्य में अक्षुण्ण रूप से चलती रही वही तुलसीदास जैसे लोकसंग्रही भक्तकवि की दृष्टि में सामाजिक मर्यादा-रक्षा के लिए घातक प्रतीत होने लगी। दोहावली में वे लिखते हैं :—

सीस उघारन किन कह्यो, बरजि रहे प्रिय लोग।
घर ही सती कहावती, जरती नाह वियोग ॥[1]

मेरे विचार में इसका मुख्य कारण रहा होगा स्त्रियों में पहले की तरह स्वेच्छया आत्मदाह करने की प्रवृत्ति का ह्रास और समाज में इस तथाकथित अनिवार्य कर्तव्य-पालन के लिए विधवाओं का बलपूर्वक आग की लपटों में झोंक देने की पाशविक प्रवृत्ति का विकास। तुलसी के ही निम्नांकित वक्तव्य से यह बात स्पष्ट हो जाती है—

परमारथ पहिचानि मति, लसति विषय लपटानि।
निकसि चिता ते अधजरति, मानहु सती परानि ॥[2]

३. काशी की सीमा

दशरथ की तीर्थयात्रा के प्रसंग में भारत के विभिन्न तीर्थों का माहात्म्य वर्णन करते हुए भुशुण्डि रामायणकार ने तत्कालीन काशी को 'विन्दुमाधव' और 'लोलार्क कुण्ड' के बीच स्थित बताया गया है—

एकतो भगवान् विष्णुर्माधवः संप्रतिष्ठितः।
अपरत्र च लोलार्कः कोटिद्वयमिदं स्थितम् ॥[3]
धनुराकरतापन्नं काशीपुरमुदित्वरम्।

टीका—'एकस्यां कोटौ विन्दुमाधवः अपरस्यां च लोलार्कः
उभयोर्मध्ये वाराणसीः (मथुरा हस्तलेख)

गोविन्दचन्द्र देव के एक लेख में 'इन्द्रमाधव' अथवा 'विन्दुमाधव' नामक विष्णु

---

१. दोहावली, छं० २५४

२. वही, छं० २५३। 'अर्थात् परमार्थ को पहचान कर साधनारत विरक्त साधक की बुद्धि यदि पुनः विषयों में आसक्त होती है तो संसार में उसकी वैसी ही विडंबना होती है जैसे चिता में प्रविष्ट होकर प्राणों के मोह अथवा भस्म होने की यातना से भयभीत होकर भागनेवाली अधजली सती निन्दनीय मानी जाती है।' इस कथन से यह विदित होता है कि गोस्वामीजी ने ऐसी अनेक सतियों का दृश्य देखा था जो सतीत्वभाव की पुष्टि हुए बिना पहले तो लोकापवाद के भय से पति के साथ जलने को तैयार हो जाती थीं किंतु चिता में आग लगने पर लपटों से घबराकर फिर भाग खड़ी होती थीं। उनके इस आचरण की आरूढ़ पतित साधुओं के आचार से सादृश्य स्थापना करके तुलसी ने लोकान्वीक्षण-विषयक अपनी अंतर्दृष्टि का परिचय दिया है।

३. भु० रा०, पूर्व १०३।३५

मंदिर का उल्लेख है।[1] पंचगंगा घाट पर माधवराव धौरहरवाली मस्जिद मुस्लिम शासन-काल में इसी को ध्वस्त करके बनी थी, किन्तु बाद में उसी के समीप बिन्दुमाधव का एक मंदिर पुनः बन गया। गोस्वामी तुलसीदास के समय तक प्राचीन बिन्दुमाधव का मंदिर विद्यमान था, यह बिन्दुमाधव-विषयक विनयपत्रिका के उक्त पद से स्पष्ट है। गहरवारों के ही शासन-काल में लोलार्क-कुण्ड में स्नान करके गोशल देवी द्वारा एक गाँव दान में देने का उल्लेख है। प्रतीत होता है कि उसी के आसपास विश्वनाथ की भी स्थापना हुई, कारण कि इस विग्रह की सर्वप्रथम चर्चा एक गहरवार अभिलेख में ही मिलती है। भुशुण्डि रामायण में प्राप्त इन तीनों पूज्य स्थलों का उल्लेख यह प्रकट करता है कि उसके रचनाकाल तक इनकी प्रतिष्ठा हो चुकी थी। बिन्दुमाधव तथा लोलार्क के बीच में काशी-स्थिति प्रकारान्तर से उसकी प्राचीनतम सीमा वरुणा और असी (जिससे उसे वाराणसी की संज्ञा मिली) की मान्यता का संकेत देते हैं।[2]

४. 'निष्क' का प्रचलन

राम के युवराज होने पर अयोध्या की समृद्धि-वर्णन के सन्दर्भ में 'निष्क' शब्द का प्रयोग हुआ है—

कोसलानां निवसति रामचन्द्र सतां गतो।
लक्ष्मीशे देवदेवेशे प्रभो त्रैलोक्य वल्लभे॥
ब्रह्मक्षत्र विशां चैव शूद्राणां च गृहे-गृहे।
सुवर्णमणि निष्काढ्या विलसन्त्यङ्ना गणाः॥[3]

शब्दकल्पद्रुम[4] में 'निष्क' को मुद्राविशेष तथा आभूषण दोनों अर्थों में परम्परया प्रयुक्त बताया गया है और मनुस्मृति, रामायण आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त विष्णुगुप्त, भरत, हेमचन्द्र शार्ङ्गधर प्रभृति आचार्यों की तद्विषयक मान्यता का उल्लेख किया गया है। भाषा में 'चारिमोहर' लिखकर कोषकार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह वस्तुतः सोने का एक सिक्का था, जिसका स्त्रियाँ उरोभूषण अथवा कंठहार बनवाकर आजकल की अशर्फियों से बनी हुमेल की भाँति प्रयोग करती थीं। किन्तु वास्तव में था यह सिक्का ही जो दीनार, ट्रंक, द्रम आदि की भाँति विनिमय में व्यवहृत होता था।

बारहवीं शताब्दी के बाद भारतीय इतिहास में इसके प्रयोग के प्रमाण नहीं मिलते, अतः यह धारणा अलीक नहीं है कि प्रस्तुत ग्रंथ का निर्माण उसके पूर्व किसी समय हुआ होगा।

---

१. एपि० इंडि० ८।१५२, १५३।५—इहै परम फल परम बड़ाई
नखसिख सुभग बिन्दुमाधव छबि देखिइ नयन अघाई (वि० प० पद ६२)

२. एपि० इंडि० ५।११६-११८

३. विशेष द्रष्टव्य—
'Social Factors in the marphoginisis of Varanasi—'Dr. Ramlochan Singh (Published in Urban Geography of Developing Countries')

४. भु० रा०, पूर्व ३७०।१, ५

समन्वय-दृष्टि

(क) राम-कृष्ण की अभिन्नता

वैष्णव मत की चिरप्रतिष्ठित परम्परा के अनुसार भुशुण्डि रामायण में राम और कृष्ण की तात्त्विक दृष्टि से अभेद स्थापना की गयी है और राधा-कृष्ण को सीताराम का प्रतिरूप माना गया है। इसके साथ ही इन दोनों अवतारों की लीला-भूमियों की एकता का भी प्रतिपादन किया गया है। राम की व्रजलीला,[1] व्रज में सर्वत्र रामचरितगान[2] और राम-कृष्ण का समन्वित लीलावर्णन[3] इसके प्रमाण हैं। इष्टपरत्व की भावना से प्रेरित होकर यद्यपि कथाक्रम में कृष्ण की सारी लीलाओं को रामलीला का अनुकरण मात्र कहा गया है और राम में श्रद्धा न रखनेवाले कृष्ण-भक्तों को उसे सुनाने का निषेध किया गया है किन्तु आलोच्य-ग्रन्थ के कथा-संघटन को देखने से ही स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थकार भागवतवर्णित कृष्णचरित के साँचे में ही रामचरित को ढालने के लिए कृतसंकल्प है। इस दृष्टि से कृष्णोपासकों की माधुर्यासक्ति ही नहीं—उनके द्वारा वर्णित कृष्णलीला के विविध रूपों, लीला-विधान में सहायक पात्रों तथा लीला-भूमियों की नामावली भी ज्यों-की-त्यों रख दी गयी है। इससे यह विदित होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के रचनाकाल तक राम तथा कृष्ण भक्तों में इष्टपरत्व को लेकर वह स्पर्धा तथा ईर्ष्या, द्वेष की भावना उत्पन्न नहीं हुई थी जो परवर्ती आनन्द रामायण[4] तथा दो सौ बावन और चौरासी वैष्णवों की वार्ताओं में दिखायी देती है।

भुशुण्डि रामायण में निर्दिष्ट राम-कृष्ण की अभिन्नता का परवर्ती वैष्णव-भक्ति काव्य ग्रन्थों में पूरी तरह निर्वाह हुआ। कृष्ण कर्णामृत[5] में राम के कृष्ण रूप-धारण तथा राम-लिंगामृत[6] के अन्तर्गत राम-कृष्ण में अभिन्नता प्रतिपादन आदि तथ्यों से उक्त धारणा की पुष्टि होती है।

(ख) शिव और राम की परस्पर गूढ भावासक्ति

वैष्णव-भक्ति के उद्गम स्थल द्रविड़ देश में शैवों-वैष्णवों के बीच जो वैमनस्य था, प्रतीत होता है वह भुशुण्डि रामायण के रचनाकाल तक शमित हो चुका था। उक्त दोनों मतों में सौहार्द्र स्थापना का यह कार्य तांत्रिक साधकों ने राम और शिव में अभेद प्रतिपादन द्वारा पूरा किया।[7] यद्यपि इस ग्रन्थ में भी राम के लोकप्रसिद्ध शत्रु रावण के मुख्य उपास्य शिव ही बताये गये हैं और उन्हीं के द्वारा प्रदत्त वरदान[8] को रावण के अत्याचारों का मूल कारण बताया गया है तथापि राम और उनकी पराशक्ति सीता अथवा सहजा द्वारा की गयी शिव की पूजा और स्तुतियों का अनेक प्रसंगों में उल्लेख है और शिव को भी राम के अनन्य भक्तरूप[9] में चित्रित किया गया है। ग्रन्थकार ने पंचवटी में राम-लक्ष्मण द्वारा की गयी अम्बिकेश

---

१. भु० रा०, पूर्व० ६५०।२५३-२७६
२. वही, पूर्व ६०३।१८४
३. वही, पूर्व २०९।१५-१६
४. आनन्द रामायण, पृ० ३९७।२
५. कृष्ण कर्णामृत ३।९४
६. रामलिंगामृत, सर्ग १८
७. रामः पराक्रमी कामी, कामदेवस्य पालकः।
रामो हरः पार्वतीशः स्मर्यते च दिवानिशं॥ (रुद्रयामल तंत्र, सृष्ट प्रकरण, छंद ९७०)
८. भु० रा०, दक्षिण १९१।२२-२७
९. भु० रा०, पूर्व ४३।३६-३७

महादेव की पूजा[1] का विस्तार से वर्णन, शैवसिद्धों[2] के प्रति अद्भुत लोकार्पण तथा गंगा और गोमती के संगम पर स्थित मार्कण्डेय महादेव[3] के प्राचीन मठ का उल्लेख कर शैवपीठों तथा शैव-साधना में अपनी प्रगाढ़ निष्ठा व्यक्त की है। इससे समकालीन समाज में राम तथा शिव के भक्तों के पारस्परिक सौहार्द्र का पता चलता है।

यहाँ एक बात ध्यान देने की यह है कि शैवपीठों की भाँति शैवसिद्धों द्वारा प्रतिष्ठित योगसाधना का महत्त्व भी आलोच्य-ग्रन्थ में श्रद्धापूर्वक स्वीकारा गया है।- 'राम गीता' के अन्तर्गत उपदिष्ट साधनामार्गों में योग को विशेष स्थान देकर कुण्डलिनी जागृत करने तथा षड्चक्र भेदने की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए योग के स्वाश्रय तथा पराश्रय भेद बताकर ज्ञानयोग की अपेक्षा भक्तियोग को सुगम एवं श्रेयस्कर माना गया है।

इस सम्बन्ध में एक उलझानेवाली बात है। प्रस्तुत ग्रंथ में शैव-सिद्धान्त के प्रति अविरोध भाव व्यक्त करते हुए भी नाथसिद्धों के विषय में लेखक का सर्वथा मौन-ग्रहण। ग्रन्थ के भीतर कहीं भी गोरखपंथ, नाथपंथ अथवा नाथसिद्धों का उल्लेख नहीं मिलता, न कहीं नाथाचार की ही चर्चा आयी है। सिद्धों और उनके चमत्कारों का निर्देश अवश्य है किन्तु उससे यह स्पष्टतया लक्षित नहीं होता कि वे सिद्धकौल हैं, सहजयानी हैं या नाथपंथी। इसके पूर्व प्रस्तुत ग्रन्थ के विषयतत्त्व पर सहजमार्गी कौलों तथा सहजयानी बौद्धों के प्रभाव की विवेचना की जा चुकी है। उसके प्रकाश में यह अनुमान करना असंगत न होगा कि सन्दर्भित सिद्धों से रचयिता का तात्पर्य बौद्धों तथा कौलसिद्धों से ही है। कारण कि पूर्वमध्यकालीन धर्म सम्प्रदायों में बौद्धों की वज्रयानी शाखा द्वारा प्रतिपादित मध्यममार्ग में ही सर्वप्रथम "मैथुन" को धर्मसाधना का अनिवार्य अंग स्वीकार किया गया था। आचार्य असंग और नागार्जुन की तद्विषयक मान्यताओं का समकालीन विद्वत्समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। आलोच्य-ग्रंथ की रचना के समय ये सारे तत्त्व इस देश के आध्यात्मिक वातावरण में व्याप्त थे, अतः वे उसी रूप में ग्रहण कर लिये गये।

(ग) निर्गुणोपासना का समर्थन

भुशुण्डि रामायण की रचना का मुख्य लक्ष्य परात्पर ब्रह्म राम की सगुण लीलाओं का गान और उसके माध्यम से वैष्णव-भक्ति का प्रचार रहा है। इसके अन्तर्गत श्रीवैष्णवों के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है। किन्तु इसके साथ ही निराकार ब्रह्म की महत्ता स्वीकार करते हुए निर्गुण भक्ति का महत्त्व भी विस्तार से वर्णित है—

एकान्ते विमले क्षेत्रे योगक्षेमं विधाय च।
मन्त्रिष्ठां भावनां कुर्याद् यथाशीघ्रं भवं तरेत्॥
वैदिकैस्तान्त्रिकै कर्मव्यूहैः सुविमले हृदि।
प्रवृत्तो भावनां यातां तां कुर्यान्मदुपाश्रयाम्॥
हृत्पुण्डरीक मध्ये तु साकेतं भावयेन्मुहुः।
तत्र मां भावयेत् पूर्णलीलाभिः पुरुषं परम्॥

---

१. वही, दक्षिण, २४०
२. वही, पूर्व १२४।९१-९५
३. वही, पूर्व १०३।४१-४८

यद्धि किंचिदवस्तु जातं भावयेत्तन्मदात्मकम् ।
मत्तः परं नैव किंचिन्मयीदं सर्वमेव तु ॥
जड़ः स्फुरति जागत्सु स्वप्ने भाति चिदन्तरा ।
सुषुप्तौ सच्चिदानन्दो ह्यन्तरात्मा प्रकाशते ॥
यल्लीनावतिष्ठन्ते स्वरूपानन्द भोगिनः ।
आनन्दमय आनन्दभुगित्युपनिषत्सु सः ॥
तुरीयस्त्वहमेतेभ्यः समः सर्वत्र सर्वगः ।
विद्यया तु यदा विद्या नश्यतिध्वान्त वद्रुचा ॥
तदा परमानन्दः प्रकाशात्मो प्रकाशते ।
सर्वाध्यास निवृत्तौ तु शुद्धा देहेन्द्रियादयः ॥
परब्रह्मनन्द पद दायकं ह्याधिदैवकम् ।
मत्स्वरूपानन्द भोगहेतुस्तुर्यतदुच्यते ॥
अहमेव फलं यस्याः सा तुर्या परिकीर्तिता ।
निर्गुणं भावमापन्ना सर्वतोऽपि विशिष्यते ॥[2]

इन उद्धरणों से यह प्रकट होता है कि श्रीसम्प्रदाय के अन्तर्गत उस समय वैष्णव-भक्ति की सगुण और निर्गुण--दोनों धाराएँ समानान्तर प्रवहमान थीं। साधकों की प्रवृत्ति के अनुसार आचार्यगण इनमें से किसी एक को अपनाकर परमार्थ साधनों में अग्रसर होने की व्यवस्था देते थे। स्वामी रामानन्द ने वैष्णव मत की इस विशिष्टता को ध्यान में रखकर राम-भक्ति को साम्प्रदायिक स्वरूप प्रदान करते समय उत्तरी भारत में उसकी निर्गुण तथा सगुण दो शाखाएँ स्थापित की थीं और अपने शिष्यवर्ग में उसके पुरस्कर्ताओं के दो स्पष्ट वर्ग बनाये थे--सगुण भक्ति के उपदेष्टाओं में अनन्तानन्द और निर्गुण भक्ति के उन्नायकों में कबीर अग्रगण्य हुए। इन दोनों शाखाओं में सिद्धान्त-विषयक मौलिक मतभेदों के कारण उद्गम स्थल एक होते हुए भी पारस्परिक स्नेह-सद्भाव उत्तरोत्तर क्षीण होता गया। गोस्वामी तुलसी-दास के समय तक 'निर्गुण राम' एवं 'सगुण राम' के भक्त एक दूसरे के घोर आलोचक बन गये थे। सूर ने 'अविगत गति कछु कहत न आवे' प्रतीकवाले पद में निर्गुण भक्ति को जनसामान्य के लिए अव्यवहार्य बताकर सगुण साधना का मनोवैज्ञानिक आधार पर समर्थन किया।[3] कहना

---

१. भु० रा०, पूर्व० ४४।९,१०,११,१२, २०,२२,२३,२४ २. वही, पूर्व० ४५।११,१३

३. सूर, तुलसी तथा परमानन्द दास जैसे सगुण भक्तिधारा के प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं में सिद्धों और योगियों की इस लोकविरोधी प्रवृत्ति की खुलकर आलोचना की गयी है--

मधुकर ये सुनि तन मन कारे ।
कहुँ न सेत सिद्धताई तन परखे अंग तिहारे ॥
कीन्हौं कपट कुंभ बिच पूरन, पय मुख प्रगट उघारे ।
बाहर देखि मनोहर दरसत, अंतरगत जु ठगारे ॥
अब तुम चले ग्यान विष ब्रज दै हरन जु प्रान हमारे ।
ते क्यों भले होहिं सूरज प्रभु रूप बचन कृत कारे ॥ --सूरसागर, द्वितीय खण्ड, पृ० १५१९

न होगा कि राम तथा कृष्णभक्ति शाखाओं के प्रतिनिधि भक्तों के निर्गुण साधना विरोधी उद्गारों के पीछे उसमें व्याप्त शांकर मतानुयायियों की अद्वैतपरक, बौद्धसिद्धों की सहजमार्गी तथा नाथपंथियों की हठयोगी विचारधारा के प्रति घोर जुगुप्सा की भावना थी। इसका मुख्य कारण था, उनके द्वारा समाज में फैलाये जाते हुए दम्भ, पाखण्ड, निष्ठाहीनता और निराशा के भाव।

भुशुण्डि रामायणकार के समक्ष ये परिस्थितियाँ नहीं थीं। इसलिए उसने श्रीवैष्णवों के परंपरागत सांम्प्रदायिक सिद्धान्त के अनुसार भक्ति की उक्त दोनों निर्गुण तथा सगुण साधना-पद्धतियों का यथोचित सत्कार किया।

५. राम-मूर्तियों की शृंगारी मुद्राएँ

वैखानस आगम, भुशुण्डि रामायण, जानकीहरण तथा वैष्णव-संहिताओं में राम के शृंगारी-लीला-चित्रण का प्रभाव तत्कालीन स्थापत्य-कला पर भी पड़ा। चन्देल राजाओं द्वारा निर्मित खजुराहों के मंदिरों में उत्कीर्ण राम और सीता की प्रतिमाओं में अभिव्यक्त मुद्राओं से यह स्पष्ट हो जाता है। उसमें दो मूर्तियाँ राम-सीता की हैं, जिनमें से एक में युगल-किशोर आलिंगनबद्ध हैं।[1] दूसरी मूर्ति में राम चतुर्भुजी हैं, उनका चौथा हाथ सीता को आलिंगन-पाश में भरता हुआ उनके बायें स्तन पर स्थित है। राम के बायें सीता त्रिभंगीमुद्रा में आलिंगन मुद्रा में खड़ी हैं। यह मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर में है।[2] राम-सीता की इसी प्रकार की एक मूर्ति

अपने सगुन गोपालहिं माई इहिं विधि काहै देति।
ऊधौ की इन मीठी बातनि, निर्गुन कैसें लेति॥

—सूरसागर, पृ० १५४९

असुभ वेष भूषन धरैं, भच्छा भच्छ जु खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहिं॥ (रामचरित मानस, (उ० ९८ क)
गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग,
निगम नियोग सों सो केलि ही छरौ सो है॥—कवितावली, उत्तर ८४
जो गोपिन के प्रेम न होतो अरु भागवत पुरान।
तौ सब औघड़ पंथहि होतो कथत गमैया ज्ञान॥
बारह बरस को भयो दिगम्बर ज्ञानहीन संन्यासी।
खान-पान घर-घर सबहिन के भसम लगाय उदासी॥
पाखंड दंभ बढ़्यो कलिजुग में श्रद्धाधर्म भयो लोप।
परमानन्ददास वेद पढ़ि बिगर्‍यो कापर कीजै कोप॥—परमानंद सागर, पृ० २८९

१. खजुराहो की देव प्रतिमाएँ —डा० रामाश्रय अवस्थी, चित्र सं० ३६, पृ० १११

२. अथवक्ष्ये गुणातीतं मदीयं ध्यानमुत्तमम्।
प्रमोदवन कुञ्जान्तर्दिव्य कल्पलता गृहे॥
सहजानन्दया शक्त्या युक्तं वामाङ्गसंस्थया।
दिव्य शृंगार वेशाढ्यं मुक्ताहार विभूषितम्॥

ग्वालियर संग्रहालय में भी है।[1] ये सभी मूर्तियाँ नवीं से बारहवीं शती के बीच उत्कीर्ण की गयी हैं।

वैखानस आगम में किरीट मुकुट सहित धनुर्धर राम को त्रिभंगीमुद्रा में और उनके दक्षिण पार्श्व में बायें हाथ में नीलोत्पल धारण किये दाहिना हाथ पसारे हुए तथा प्रफुल्ल नेत्रों से राम की ओर देखती हुई सीता की मूर्ति[2] के निर्माण का निर्देश किया गया है।

यह विचारणीय है कि खजुराहो में उत्कीर्ण उपर्युक्त मूर्तियाँ जैन-मन्दिरों की हैं, जिनकी सांसारिक जीवन के प्रति विरक्ति भावना विदित है। पूर्व मध्यकालीन बौद्धों की भाँति ही जैनों द्वारा निर्मित मूर्तियों एवं साहित्य में भी लौकिक वैभव, सौन्दर्य तथा कामासक्ति का उद्दाम चित्रण मिलता है। यहाँ पंडित राहुल सांकृत्यायन आलोच्यकालीन समाज के सभी वर्गों में व्याप्त वासनात्मक प्रवृत्ति की ओर लक्ष्य करते हुए कहते हैं, 'इस युग में तंत्र, मंत्र, भैरवीचक्र या गुप्त यौनस्वातंत्र्य का बहुत जोर-शोर था। बौद्ध और ब्राह्मण दोनों ही इसमें होड़ लगाये हुए थे। भूत, प्रेत, जादू-मंतर और देवी-देवतावाद में जैन भी किसी से पीछे नहीं थे। आखिर चक्रेश्वरी देवी यहाँ भी विद्यमान हुईं और हमारे मुनि कवि[3] भी निर्वाण कामिनी के आलिंगन का खूब गीत गाने लगे।'[4] भक्ति-शृंगार से मंडित इस प्रकार की साहित्यिक तथा स्थापत्य सामग्री राम की शृंगारी भक्ति के विकास में प्रेरणाप्रद सिद्ध हुई होगी, इसमें संदेह नहीं।

भुशुण्डि रामायण का मध्यकालीन राम-भक्ति-साहित्य पर प्रभाव

वैष्णव, शैव, शाक्त तथा बौद्ध स्रोतों से पोषित मध्यकालीन धर्म-साधना का जो समन्वित रूप भुशुण्डि रामायण में उभरा उससे उत्तरी भारत के परवर्ती मध्यकालीन भक्ति-साहित्य का प्रभावित होना अवश्यम्भावी था। इसने राम-तत्त्व की ही नयी व्याख्या नहीं प्रस्तुत की, राम-कथा को भी एक ऐसे साँचे में ढाला जो उसके प्रचलित रूप से बहुत अंशों में भिन्न था।

हरिचन्दन लिप्ताङ्गं मणिवर्यावतंसकम्।
किशोरकंज पद्माक्षं रासरूपं मनोहरम्॥
—भु० रा०, पूर्व ५१।२९, ३०, ३१

१. कैटलाग आव स्कल्पचर्स इन दि आर्कियोलाजिकल म्यूजियम, ग्वालियर, पृष्ठ २५

२. इ० हि० ई०। परि० सी०, पृ० ४०-४१
नमस्ते रसिकेन्द्राय शृंगारसमूर्तये।
सीता कटाक्ष संदोह विजिताय परात्मने॥ भु० रा०, पू० १३।१२

३. मुनि स्थूलभद्र वर्णित नारी-सौन्दर्य का एक चित्र है—
कन्न जुगल जसु लह लहंत किर मयण हिंडोला।
चंचल चपल तरंग चंग जसु नयण कचोला॥
तंगु पयोहर उल्लसई सिंगार थपक्का। कुसुम बाण निय अमिय कुम्भ किर थापण मुक्का॥
—विद्यापति (डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० १११, ११२ पर उद्धृत)

४. हिन्दी काव्यधारा, पृ० ३७

जहाँ तक रामकथा के स्वरूप-परिष्कार का प्रश्न है उस पर सर्वाधिक प्रभाव भागवत में वर्णित कृष्णचरित के उन तत्त्वों का पड़ा, जो भुशुण्डि रामायण में ज्यों-के-त्यों ग्रहण कर लिये गये थे। इसमें संदेह नहीं कि मध्यकालीन रामचरित काव्यों में ये तत्त्व भुशुण्डि रामायण के माध्यम से आये, कारण कि उसके पूर्ववर्ती किसी कथाकाव्य में रामचरित को कृष्णचरित प्रतिरूप बनाने का ऐसा सजग प्रयास नहीं हुआ था जैसा भुशुण्डि रामायण में दिखायी देता है।

इसके अतिरिक्त रामकथा के मूलस्रोत वाल्मीकि रामायण में निरूपित रामचरित को समकलीन वातावरण के अनुसार लोकोपयोगी रूप प्रदान करने में भी भुशुण्डि रामायणकार ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसके परिणामस्वरूप कालान्तर में रामकथा प्रेमियों को वह इतनी आकर्षक लगी कि सारे परवर्ती रामचरित काव्यों में वह आदर्श रूप में ग्रहण कर ली गयी। क्या साधनात्मक और क्या कथात्मक दोनों दृष्टियों से भुशुण्डि रामायण में अंकित रामचरित बाद के राम-काव्यों का पथ-प्रदर्शक बन गया। कालक्रम से राम-काव्य पर पड़नेवाले इन दोनों प्रकार के प्रभावों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है—

अध्यात्म रामायण

अध्यात्म रामायण की रचना रामकथा के माध्यम से वेदान्त सिद्धान्त को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से की गयी थी। इस ग्रन्थ में निरूपित आध्यात्मिक सिद्धान्तों का अनुशीलन करने से पता चलता है कि रचयिता के समक्ष अवश्य ही अनेक साम्प्रदायिक रामचरित काव्य थे, जिनसे उसके निर्माण में पर्याप्त सहायता ली गयी थी। स्वयं ग्रन्थकार का कहना है—

'रामायणानि बहुशः श्रुतानि बहुभिर्द्विजैः।'

डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची का अनुमान है कि प्रस्तुत संदर्भ में जिन रामायणों की ओर संकेत किया गया है, उनमें से हो सकता है भुशुण्डि रामायण भी हो।[1] अध्यात्म रामायण में वर्णित रामकथा का स्वरूप प्रायः वही है जो भुशुण्डि रामायण के पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण खण्डों में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अध्यात्म रामायण का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग 'राम गीता'[2] भी इसी नाम से भुशुण्डि रामायण में दो स्थलों[3] पर दो भिन्न प्रसंगों तथा रूपों में आयी है। इन दोनों रामकथाश्रित ग्रंथों में भेद केवल इतना है कि जहाँ भुशुण्डि रामायण में विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तानुकूल भक्ति तथा ज्ञान-साधना का वर्णन है वहाँ अध्यात्म रामायण में अद्वैतपरक वेदान्तिक दृष्टिकोण को प्रमुखता दी गयी है।

डॉ० वादवील रामचरित मानस के स्रोतों का अनुसन्धान करते हुए उक्त ग्रन्थ की टीकाओं में प्राप्त भुशुण्डि रामायण-विषयक उल्लेखों को देखकर इस नतीजे पर पहुँची हैं कि

1. 'Of the various sectarian Ramayanas the Pamp Ramayana, the yogavashishtha, the Bhushundi Ramayan were probably in existence when the Adhyatma Ramayana was composed.' Adhyatma Ramayana by Dr. Prabodha Chandra Bagchi–P. 75 (Part I Ed. Nagendranath) Preface.

२. अध्यात्म रामायण, आदिकाण्ड, प्रथम अध्याय

३. भुशुण्डि रामायण, पूर्व० अ० ४३/५९

'यह ग्रन्थ अभी तक अप्राप्य है, पर इसकी सत्ता स्वीकरणीय है।'[1] इस सम्बन्ध में वे आगे कहती हैं,' भुशुण्डि रामायण के विषय का हमारा अज्ञान और भी दुःखद इसलिए है कि यदि इस ग्रन्थ की नकल ही हुई हो तो इस ज्ञान से रामचरितमानस की रचना और उत्तरकाण्ड के स्वरूप की कई विशेषताओं को समझा जा सकता है।'[2]

श्रीमती वादवील ने रामचरित मानस और अध्यात्म रामायण के अरण्यकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक भुशुण्डि द्वारा वर्णित कथा में साम्य देखकर यह संभावना व्यक्त की थी कि 'कदाचित् वे एक ही आधार पर आश्रित हैं और यह आधार भागवत पुराण से प्रभावित कोई साम्प्रदायिक रामायण ही होगी। सम्भवतः यह भुशुण्डि रामायण ही हो।'[3] भुशुण्डि रामायण के प्रकाश में आ जाने से उनका यह अनुमान अब तथ्याश्रित प्रमाणित हो सकेगा।

अध्यात्म रामायण में उक्त ग्रन्थ के पाठ तथा संकीर्तन पर बल दिया गया है और उसको नमस्कार मात्र करने से देवार्चन तथा सर्वशास्त्रस्वाध्याय की फलप्राप्ति सहज संभव कही गयी है।[4] उसके अन्तर्गत रामभक्तों और समुदाय को विशेष महत्त्व देते हुए उन्हें 'महा-भागवत' नाम से अभिहित किया गया है। इन तथ्यों के प्रकाश में डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची ने अध्यात्म रामायण की रचना के पूर्व रामभक्ति के साम्प्रदायिक रूप के अस्तित्व और उसके अन्तर्गत 'रामनवमी' व्रत के श्रद्धापूर्वक मनाने की परम्परा प्रचलित होने की संभावना व्यक्त की है।[5]

इसके अतिरिक्त रामभक्ति साधना में प्रेमतत्त्व को प्रमुख स्थान देने की प्रेरणा भी अध्यात्म रामायण के रचयिता ने भुशुण्डि रामायण से ही प्राप्त की हो तो कोई आश्चर्य नहीं। प्रेमाभक्ति के सम्बन्ध में उक्त दोनों ग्रन्थों में उपलब्ध विचार-साम्य से इसकी पुष्टि सहज ही हो जाती है—

'तस्माद्राधव सद्भक्तिस्त्वयि मे प्रमलक्षणा।[6]
'अतोऽहं राम रूपं ते स्थूलमेवानुभावये॥
यस्मिन् ध्याते प्रेमरसः सरोमपुलको भवेत्।
तदेव मुक्तिः स्याद्राम यदा ते स्थूलभावकः॥[7]

(अध्यात्म रामायण)

भुशुण्डि रामायणकार के अनुसार यह निर्गुणाश्रयी प्रेम लक्षणाभक्ति स्वरूप-ज्ञान की प्राप्ति में सहायक होती है—

१. तुलसीदास रचित रामचरित मानस का मूलाधार व रचना-विषयक समालोचनात्मक अध्ययन पृ० १९ (भूमिका)
२. वही, पृ० २० (भूमिका)
३. वही, पृ० २०
४. अ० रा० १/३३,३४
५. अध्यात्म रामायण (नगेन्द्रनाथ सिद्धान्त रत्न) भाग १, पृ० ७ (भूमिका)
६. वही, अ० ३/३/ ४५,३३
७. वही, अ० ३/३/४५

निर्गुणात्वेकरूपैमन्निष्ठा मत्फलोदया ।
मत्स्वरूपात्मिका नित्यं भूयोमत्प्रेमलक्षणा ।।[१]
प्रेमाख्यश्चैव सम्बन्धो येन प्राप्नोति मानवः ।
अक्रिये ज्ञान सम्बन्धो न घटेत कदाचन ।।
अज्ञेये ज्ञान सम्वन्धो न भवेच्च कथंचन ।
प्रेमाद्वयस्तु महान् योगो नित्यं मम रसाभिधः ।।[२]
श्रवणादि मुहुर्भक्तिर्साधनैः साधिताकृतिः ।
जनो यो मां प्रपद्येत ज्ञात्वा परम पूरुषम् ।।
तस्मै ददामि तां भक्ति प्रेमाख्यां मदुपाश्रयाम् ।

* * * *

नित्यं लीला रसाभिज्ञः श्रुतमत्प्रेम लक्षणः ।
ज्ञात पारमहंस्यश्च मत्प्रेम लभते नरः ।।
मत्प्रेम मदिरामत्तस्तृणवन्मन्यते जंगत् ।
मत्प्रेम भागिनो दृष्ट्वा प्रहृष्येत् प्राप्त बन्धुवत् ।।[3]

अध्यात्म रामायण के व्याख्याकार नरोत्तम ने 'प्रेमरस' विषयक ऊपर निर्दिष्ट श्लोक की टीका करते हुए उस पर रूप गोस्वामीकृत 'श्रीहरिभक्ति रसामृत सिन्धु' के एक छंद की छाया बतायी है ।[४] किन्तु मेरा विचार है कि अध्यात्म रामायणकार ने रामकथा का सारा ढाँचा भुशुण्डि रामायण से प्राप्त करने के साथ ही प्रेमलक्षणा भक्ति के विशिष्ट तत्त्व भी वहीं से लिये होंगे । वैसे लेखक का भक्तिरसामृत सिन्धु की अपेक्षा सीधे नारद भक्तिसूत्र[५] से प्रेमाभक्ति की प्रेरणा प्राप्त करना अधिक संगत लगता है ।

२. आनन्द रामायण

राम का कृष्ण-रूप धारण करना[६] राम की विलास-क्रीड़ाओं का वर्णन[७], देवांगनाओं

---

१. भु० रा० २०३/३
२. भु० रा०, पूर्व २०६/६,७
३. भु० रा०, पूर्व २०७/१७,१८,२०,२२
४. अतो मुक्ति दत्वाद यस्मिन् स्थूलरूपे प्रेमाचाऽसौ रसश्चेति प्रेमरसः ।
तत्लक्षणं यथा—

सम्यङ् मसृणित स्वान्तो ममत्वातिशयान्वितः ।
भावः स एव शान्तात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ।।

—रूप गोस्वामी कृत भक्तिरसामृत सिन्धौ —अध्यात्म रामायण सं० नगेन्द्रनाथ, पृ० ८ पर उद्धृत

५. नारद भक्तिसूत्र (गीता प्रेस) पृ० २०
६. आनन्द रामायण, पृ० २५१,३८७/८०,४०६/११५
७. वही, विलासकाण्ड, सर्ग १

को द्वापर में रास का वरदान[1], सीताराम की विहार-लीला[2], राम सहस्रनाम[3], रामपूजा, रामोपासना[4] आदि प्रसंगों में आनन्द रामायण पर भुशुण्डि रामायण का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। इसके अतिरिक्त सोलह हजार देव, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य कन्याओं का द्वापर में गोपी रूप धारण, उनके साथ कृष्णरूप में संयोग-स्थापना का आश्वासन और उस स्थिति में भी उनके एक पत्नीव्रत की अक्षुण्णता की रक्षा, गोपीरूप में लीलाप्रवेश की सुलभता तथा राम की काम-क्रीड़ा का उन्मुक्त वर्णन[5], देवांगनाओं को द्वापर में राम का दास[6] प्रभृति प्रसंग भी आनन्द रामायण पर भुशुण्डि रामायण की गहरी छाया प्रकट करते हैं।

३. कृत्तिवास रामायण

महाकवि कृत्तिवास रचित बंगला रामायण के लंकाकाण्ड में कथा आयी है कि जब गरुड़ ने मेघनाद द्वारा प्रयुक्त नागपाश से राम को मुक्त किया तो राम ने प्रसन्न होकर उन्हें वर माँगने को कहा। गरुड़ ने उनसे त्रिभंगीमुद्रा में वंशी बजाते हुए कृष्णरूप में दर्शन देने की प्रार्थना की। राम ने गरुड़ की इच्छा पूरी कर दी। संयोगवश राम का यह रसमय नन्दनन्दन रूप हनुमानजी ने भी देख लिया। वे अपने इष्टदेव को इस प्रकार वेश-परिवर्तन के लिए विवश करनेवाले गरुड़ से क्रुद्ध होकर बोले, 'इसका बदला मैं कृष्णावतार में लेकर रहूँगा।'[7]

इस कथा का मूलस्रोत भुशुण्डि रामायण के पूर्वखण्ड में प्राप्त होता है, जिसमें हनुमान के ही माध्यम से गरुड़ को अयोध्या में राधावल्लभ कृष्ण के रूप में राम का दर्शन-लाभ हुआ था—

ददर्श रामस्य गुंजाकलापं मयूरपिच्छस्फुरितावतंसम्।
वंशीकरं गोपदारैः परीतं कृष्णं त्रिभंगीललितं खगेन्द्रः॥[8]

---

१. वही, पृ० २८२
२. वही, विलासखण्ड, सर्ग ५-६
३. वही, राज्यकाण्ड, प्रथम सर्ग
४. वही, मनोहरकाण्ड, तृतीय सर्ग
५. आनन्द रामायण, राज्यकाण्ड, सर्ग ११, १२
६. वही, पृ० २८२
७. राम बलेन पक्षी कैले उपकार। बर माँग पत्रीवर वांछा जे तोमार॥
गरुड़ बलेन वांछा आछे एई मने। द्विभुज मुरलीधर देखिअे नयने॥
त्रिभंगि भंगिम रूप गले बनमाला। शिखि पिच्छ बद्ध चूड़ा अर्द्धवामेहैला॥
अलका आवृत शशी श्रीमुख मंडल। श्रुतियुगे मनोहर मकर कुंडल॥
गले बनमाला परिधान पीताम्बर। सेई रूपे देखिबे बासना निरंतर॥
भक्तवत्सल राम ताहार नितरे। दांडाला त्रिभंग भंगिम रूप धरे॥
धनुक तजियो बाँसी धरिलेन करे। हनुमान देखे बस भावितेछे दुरे॥
लेइबे इहार शोध तारि विद्यमाने। लेइबे इहार शोध कृष्ण अवतारे॥
—कृत्तिवास रामायण, लंकाकाण्ड
८. भु० रा०, पूर्व ११।२२

अयोध्या दक्षिणे भागे श्रीकृष्णं रुक्मिणीयुतम् ।
ददर्श गरुड़स्तत्र ननाम विधृतांजलिः ॥[1]

इसके साथ ही भुशुण्डि रामायण (पूर्वखण्ड) की भाँति कृत्तिवास रामायण में भी राम की बाल-लीला के वर्णन में उनको मारने के लिए रावण द्वारा राक्षसों को भेजे जाने की चर्चा भी आयी है ।[2]

४. 'अग्रदास पदावली' तथा 'ध्यान मंजरी'

रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी अग्रदास तुलसीदास के पूर्व समकालीन हैं । इनका आविर्भाव १६वीं शती में हुआ था । सम्प्रदाय का नामकरण, उसकी साधना-पद्धति, पंचधा-भाव-सम्बन्ध, मानसी-पूजा, साकेत के दिव्यलीला स्थल; प्रमोदवन की भावना, चित्रकूट का राम की रासस्थली के रूप में चित्रण आदि प्रसंगों का जो स्वरूप इन्होंने अपनी 'पदावली' तथा 'ध्यान मंजरी' में प्रस्तुत किया है, वह भुशुण्डि रामायण में निरूपित राम की माधुर्य लीला के सर्वथा अनुरूप है । कुछ स्थलों पर तो ऐसा प्रतीत होने लगता है जैसे उसकी रचना भुशुण्डि रामायण को सामने रखकर की गयी है । विशेष रूप से 'ध्यान मंजरी' में निरूपित मानसी-पूजा-पद्धति तो पूर्णतया आलोच्य-ग्रन्थ के आदर्श पर ही वर्णित है । अग्रदासजी ने अपनी साधना-पद्धति पर आगम प्रभाव का उल्लेखकर स्थिति स्पष्ट कर दी है ।

सुनि आगम विधि अर्थ कछुक जो मनहिं सुहायो ।
यहु दंपति वर ध्यान यथामति वरनि सुनायो ।[3]

इनके शिष्य भक्तमाल रचयिता नाभादास ने भी गुरु की आगमों में निष्ठा की चर्चा करते हुए उनमें से शिवसंहिता नामक एक ग्रन्थ का उल्लेख किया है—

आगमोक्त शिव संहिता अगर एक रस भजन रति ।
उरग अष्टकुल द्वारपाल सावधान हरिधाम थिति ॥[4]

भारतीय धर्म-साधना में आगमिक विचारधारा के विकास में उत्तरकालीन बौद्धों, शैवों तथा शाक्तों का विशेष हाथ रहा है । वैष्णवभक्ति में ये तत्त्व इन्हीं स्रोतों से आये । इनकी प्राचीनता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि द्रविड़ प्रबंधम् के गायक आलवारों तक की वाणी इनसे प्रभावित है । यामुनाचार्य के 'आगम प्रामाण्यम्' तथा 'काश्मीराणां प्रामाण्यं' से यह पता चलता है कि वैष्णवों का पांचरात्रमत काश्मीर शैवागम से बहुत अंश में साम्य रखता था । 'स्पंदकारिका' में उत्पलाचार्य द्वारा 'पांचरात्र श्रुति', 'पांचरात्र उपनिषद्' तथा 'जयाख्य संहिता' का आधार ग्रंथ के रूप में उल्लेख यही सिद्ध करता है । यह सर्वविदित है कि इन तीनों ग्रन्थों में नारायण ही उपास्यदेव के रूप में प्रतिष्ठित हैं विशेषतः जयाख्य संहिता की तो उपास्य-मूर्ति ही वैकुण्ठ नारायण की है—काश्मीर की प्रसिद्ध ऐतिहासिक

---

१. वही, पूर्व ६।३४
२. कृत्तिवास रामा० १।४५
३. ध्यान मंजरी (अग्रदास) पृ० २३
४. भक्तमाल सटीक (रूपकला) पृ० २६०

कृति राजतरंगिणी में भी कल्हण ने वैकुण्ठ मंदिरों के बनाये जाने का उल्लेख किया है। पूर्व मध्यकालीन वैष्णवधर्म ने आगम साहित्य, इन विविध प्रभावों को आत्मसात् कर राम तथा कृष्ण-भक्ति में रस-साधना का मार्ग प्रशस्त कर दिया। सगुण भक्ति की राम तथा कृष्ण-भक्ति शाखाओं के अनुयायी उक्त स्रोतों से अपनी भावना की पुष्टि के लिए यथेष्ट संबल प्राप्त करते रहे।

५. राम लिंगामृत

काशीवासी अद्वैत ब्राह्मण द्वारा १६०८ ई० में विरचित इस ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर राम की लीलाओं का कृष्णलीला के अनुरूप चित्रण किया गया है। इसके तेरहवें सर्ग में भोजन, शृंगार, संयोगादि का वर्णन है और १८वें सर्ग में राम, कृष्ण तथा राम-शिव में अभेद स्थापना की गयी है। यह रामकथा दो गोपिकाओं के संवाद रूप में कही गयी है। उनमें से एक रघुवंशी गोपिका है। वही वक्ता है और दूसरा श्रोता। कहने की आवश्यकता नहीं कि रामकथा में रघुवंशी अथवा अयोध्या की गोपिका की उद्भावना सर्वप्रथम भुशुण्डि रामायण में ही मिलती है।[1]

६. संहिता ग्रंथ

उत्तरी भारत में वैष्णवधर्म के सांप्रदायिक रूप की प्रतिष्ठा हो जाने के बाद प्राचीन संहिताओं के आदर्श पर अनेक नवीन संहिताओं की रचना हुई। श्लेडर ने वैष्णवों की जिन प्रमुख संहिताओं की नामावली प्रस्तुत की है, उनमें इनका उल्लेख नहीं है—इसी से इनका परवर्ती होना स्पष्ट है। किन्तु साम्प्रदायिक क्षेत्र में इनकी मान्यता ही इस बात का प्रमाण है कि ये पूर्वाचार्यों द्वारा प्रवर्तित वैष्णव सिद्धान्त ग्रन्थों पर आधारित हैं। ये कब लिखी गयी हैं, इसके विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना कठिन है। किन्तु शृंगारी रामोपासकों में सिद्धान्त ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित संहिताओं में राम की मधुराभक्ति और मधुर-लीलाओं का विशद वर्णन मिलता है। लीला-चित्रण के सिद्धान्त और प्रक्रिया-वर्णन दृष्टि से ये भुशुण्डि रामायण से प्रेरित प्रतीत होती हैं। नीचे संक्षेप में परवर्ती संहिता ग्रंथों और उनमें उपलब्ध शृंगारी रामभक्ति के कुछ विशिष्ट तत्त्वों का उल्लेख किया जाता है—

(क) शिव संहिता

अयोध्या के प्रमोदवन में सीता के साथ रसिकेन्द्र राम का नित्यरास—मान लीलादि के एकान्तिक प्रसंग। गोलोक में वृन्दावन के प्रतिरूप साकेत का निर्माण।[2] नाभादास ने भक्तमाल में इसकी चर्चा रसिक रामभक्ति के प्रवर्तक अग्रदास की भक्तिभावना के स्वरूप निरूपण के प्रसंग में की है।

---

१. रामकथा (बुल्के) पृ० १९७

२. तत्राशोक वनं रम्यं रसस्थानं हि केवलम्।
तन्मध्ये जानकी रामौ नित्यं लीला रतौ स्थितौ॥
सेहितौ वनिता यूथैः शतैरपि मनोहरैः।
—शिवसंहिता, अ० २०/१३, १४

(ख) शुक संहिता

कृष्ण की वृन्दावन-लीला की भाँति ही राम की चित्रकूट में रास योजना, राधाकृष्ण द्वारा सीताराम का रूप धारण[1] तथा सुखित मांगल्या द्वारा राम का पालन-पोषण[2]।

(ग) लोमश संहिता

इसके आठ अध्यायों (१५ से २२ तक) में रामरास का विधान है। २०वें अध्याय में सीता की मुख्य सहचरी चन्द्रकला द्वारा रासमंडल का आनयन एवं रामरास योजना तथा आठ योगिनियों की सहायता से रासलीला की पूर्णता का वर्णन है।

(घ) सदाशिव संहिता

राम के दिव्यधाम 'साकेत' का वर्णन, उनके रसिकरूप का ध्यान, राम-नाम माहात्म्य, भक्ति-साधना की प्रक्रिया का विवेचन, हनुमान का सखीरूप में आचार्यत्व तथा सीतामंत्र के महत्त्व का उल्लेख किया गया है। रसिकाचार्य रामचरणदास ने 'रामनवरत्नसार संग्रह'[3] में शृंगारी रामभक्ति की पुष्टि के लिए इस ग्रन्थ से विशेष सहायता ली है।

---

१. ततस्तद्युगलं श्रीमद्राधा कृष्णात्मकं महत्।
सीतारामात्मकं युग्मं प्राविशन्नति पूर्वकम्॥
सीता च सुन्दरी तत्र सर्व लीलाधिदेवता।
चित्रकूटाद्रिके रम्ये यद्वृन्दावनमद्भुतम्॥
यमुनायाः परिणतासरयू सरसा सरित्।
अभूत गोवर्द्धनत्वेन दिविरत्नाभयो गिरिः॥
प्रमोदवनयत्रासीद्दिव्यं वृन्दावन वनम्।
पारिजात तरुजहतो वंशीवट तरुर्हि सः॥
तेच रास विलासाद्याः प्रादुराप्सुः समंततः।
सर्वाश्च देवता तत्र गोपी भाव भाविताः॥
तथा षष्ठि सहस्राणि दंडकारण्य योगिनाम्
गोपी भाव समासाद्य रेजुः श्रीसद्मंडले।
श्रुतयश्चैव कालश्च रास मंडल मध्यगा॥

—उपासनात्रय सिद्धान्त, पृ० ११२ पर उद्धृत

२. आभीरो सुखितो नाम धात्रीपतिः पुरा।
स एव समभून्नन्दो मांगल्या च यशोदिका॥
त एव गोपी गोपाद्याः लीला परिकराश्चते।
सैव श्री जानकी देवी वृषभानुसुताऽभवत्॥

—उपासनात्रय सिद्धान्त, पृ० १२२, १४३

३. सीताऽलिंगित वामाङ्कं कामरूपं रसोत्सुकम्।
तरुणारुण संकाशं विकचाम्बुज पादकम्॥

रामनवरत्नसार संग्रह—रामचरणदास, पृ० ३०-३२ पर उद्धृत

६. रामकर्णामृत

रामकर्णामृत में राम का धनुष-बाण त्यागकर वंशी ग्रहण करना और उनके इस मुरलीधर कृष्णरूप की वंदना की गयी है।[१]

७. सत्योपाख्यान

राम की गोपलीला, उनका कृष्ण रूपधारण, सरयूतटस्थ द्वादश वनों में बिहार-लीला[२] वसन्त-लीला[३] सीता की मान-लीला आदि का वर्णन।

८. वृहत्कोशल खंड

राम के सखाओं का स्त्रीरूप धारणकर रास-लीला में सम्मिलित होना—गोपिकाओं, राजकन्याओं, देवकन्याओं तथा यक्ष-किन्नर-गन्धर्व कन्याओं के साथ राम की रास 'क्रीड़ा[४] का वर्णन है। इन सारे चित्रणों में कृष्ण की रासलीला की गहरी छाप तथा घोर शृंगारिकता का पुट है।[५]

९. रामतत्त्व प्रकाश

रसिक रामभक्त मधुराचार्य द्वारा विरचित इस ग्रन्थ के अन्तर्गत सरयू तट पर राम की रासलीला[६] गोपिकाओं के साथ राम का विहार[७] आदि प्रसंगों की योजना हुई है।

१०. सुन्दरमणि संदर्भ

मधुराचार्य की ही इस अन्य कृति में वाल्मीकि रामायण के विशिष्ट स्थलों की शृंगार-परक व्याख्या, गोपिकाओं का शिव के वरदान से सीता का सखीत्व प्राप्ति और राम के साथ रास-विलासादि का दुर्लभ सुख-भोग, राम-कृष्ण में अभिन्नता का प्रतिपादन[८] आदि वर्णित है।

११. उत्कलीय वैष्णव-साहित्य

उत्कल के पंचसखा भक्तों में भी राम-कृष्ण की अभिन्नता स्वीकार्य रही है। महात्मा

---

१. प्रसून वाणांकित भिक्षु चापं, चक्राब्ज पाशांकुश वंशनालम्।
करैर्दधानं घननीलवर्णः श्रीकृष्णरूपं प्रणमामि रामम्॥
विहाय कोदंडमिमं मुहूर्तं गृहाण पाणौ मणि चारु वेणुं।
मायूरवर्हञ्च निजोत्तमांगे सीतापते राघव रामचन्द्र॥ —रामकर्णामृत, २।२४

२. रामस्तु कृष्णरूपेण रामरूपेण माधव। —सत्योपाख्यान, पूर्वार्द्ध, अध्याय १७, १८, ३३

३. वही, पूर्वार्द्ध, अध्याय २०

४. वृहत्कोशल खण्ड, अध्याय १।५

५. वही, अध्याय ८।१५

६. एकान्ते सरयू तीरे कल्प पादप कानने।
श्रीमान् नटवर वपुः कोटि कंदर्प सुन्दरः॥
रासलीलां पुनश्चक्रे ताभिस्तिस्तरगो विभुः। —रामतत्त्व प्रकाश, पृ० १६४

७. वही, पृ० १६५

८. कृष्णपदेन श्रीरामो गृह्यते। —सुन्दरमणि संदर्भ, पृ० २१

यशोवंत दास ने योगमाया और भगवान् की लीला का वर्णन करते हुए रामनाम का अर्थ राधा-कृष्ण बताया है।[1] तथा नित्यधाम में जीव और परम की विहार-क्रीड़ा को ही 'रामनाम' की संज्ञा दी है।[2]

१२. रामचरितमानस (तुलसीदास)

भुशुण्डि रामायण राम की मधुर-लीलाओं का प्रतिपादक ग्रन्थ है, किन्तु इसके विपरीत रामचरितमानस में ऐश्वर्यपरक लीलाओं को ही विशेष महत्त्व दिया गया है। दोनों प्रबन्ध-कारों की रचना में दृष्टिकोण का यह भेद इतना स्पष्ट है कि इसे देखते हुए भुशुण्डि रामायण में अंकित रामकथा के स्वरूप तथा आध्यात्मिक सिद्धान्तों से रामचरितमानस के प्रभाव ग्रहण करने की कल्पना भी साहस की बात होगी, किन्तु इन दोनों ग्रन्थों के वर्ण्य-विषय एवं रचना-शैली का गहराई से अनुशीलन करने पर प्रभूत मात्रा में उपलब्ध समता के तत्त्व अध्येता को विस्मय में डाल देते हैं और उसे यह स्वीकार करने के लिए विवश कर देते हैं कि मानस की कथा-संरचना में गोस्वामीजी ने भुशुण्डि रामायण से अवश्य सहायता ली होगी और यह ग्रन्थ आदर्श के रूप में मानसकार के समक्ष उसकी पूरी रचनावधि में निरन्तर सामने रहा होगा। कथा-प्रसंगों के अतिरिक्त इन दोनों ग्रन्थों में सैकड़ों स्थलों पर प्रयुक्त अलंकारों, उक्तियों और वाक्यांशों में अद्भुत साम्य दृष्टिगोचर होता है।

इस सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि भुशुण्डि रामायण की विषय एवं शैलीगत समता मानस के अतिरिक्त तुलसी विरचित कतिपय अन्य ग्रन्थों के भी कुछ विशिष्ट प्रसंगों के साथ पायी जाती है, विशेष रूप से कवितावली और गीतावली में। यहाँ नमूने के लिए उक्त तीनों ग्रन्थों से एतद्विषयक उद्धरण दिये जा रहे हैं, इससे विज्ञ पाठक मानस के स्वरूप-निर्माण में भुशुण्डि रामायण के योगदान का महत्त्वांकन स्वतः कर लेंगे।

रामजन्म

चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु नवम्यां श्रीपुनर्वसौ।
अभिजित नाम योगोऽसौ कौसल्यानन्दनो भवत्॥

—भु० रा०, पूर्व १०/२

नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकुल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥

—रामचरितमानस, बाल० १९१/१

लक्ष्मण-परशुराम संवाद

राम—किंचित्स्पृष्टं न वा स्पृष्टं धनुस्तत् पुरवैरिणः।
तद्वै चिरेण जीर्णत्वाद भज्यत करोमि किम॥ —भु० रा०, पूर्व ७८/१२

छुअतहिं टूट पिनाक पुराना।
मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥ (मानस, बाल २८३/८)

---

१. श्रीकृष्ण प्रसंग (म० म० पं० गोपीनाथ कविराज) पृ० २८२

२. वही, पृ० २८०

लक्ष्मण—धनुरेक गुणंधत्ते बलमस्माकमूर्जितम् ।
उपवीतं नवगुणं विशिष्टं भवतां बलं ।।
—भु० रा०, पूर्व ७८/२३

देव एक गुनु धनुष हमारे । नवगुन परम पुनीत तुम्हारे ।।
—मानस, बाल २८२/७

राम—अलमस्मिन् क्षीरकंठे कोपेन भृगुवल्लभ ।
तत् क्षम्यताम् मुनीशान पादयोस्ते नता वयम् ।।
—भु० रा०, पूर्व ७८/२६

नाथ करहु बालक पर छोहू । सूध दूधमुख करिअ न कोहू ।।
—मानस, बाल० २७७/१

परशुराम—किमुच्यते क्षीरकण्ठो विषकण्ठोऽस्ति खल्वसौ ।
—भु० रा०, पूर्व २८/२७

गौर सरीर स्याम मन माहीं । कालकूट मुख पयमुख नाहीं ।।
—मानस, बाल० २७७/७

संवाद-शिल्प की दृष्टि से निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त भाव भी यदि मानस के प्रकृत प्रसंग में गृहीत हो गये होते तो काव्योत्कर्ष कितना बढ़ जाता—

लक्ष्मण—विषकण्ठस्य शिष्येण क्षन्तव्यो भवतास्मि भोः ।[1]
भार्गव—विषकण्ठत्व साम्येन तत्किं त्वमपि मे गुरुः ।
लक्ष्मण—भगवन्नन्यतात्पर्यान्मयोक्तं क्षन्तुमर्हसि ।[2]
किरीटमधि रूढेऽपि बाले शिशिररोचिषि ।।
शिति कण्ठस्य नो चित्ते धत्ते कोपाङ्कुरः पदम् ।[3]
भार्गव—त्रिवर्णा पृथिवीप्येषा कृता क्षत्रियवर्जिता ।
नीरेणुकी कृता भूमिर्दुष्ट क्षत्रिय शोणितैः ।[4]
लक्ष्मण—भार्गव त्वत्कुठारेण कृता नीरेणुको मही ।
भार्गव—आस्तां तावत् कथं पापो रेणुकावृत्तमुत्कटम् ।।[5]
संस्मारयतिमेऽनेन मर्मस्पर्शं करोत्युत ।।[6]

पुष्पवाटिका प्रसंग

तत्रागमच्च मिथिलेन्द्र कुमारिका सा
सीता स्वयं नमितुमालयमम्बिकायाः ।
तां वीक्ष्यभूय उदितस्मर वाणताप
संभ्रान्त चित्त इव तत्क्षणमास रामः ।।
भु० रा०, पू० ७५/४

---

१. भु० रा०, पूर्व ७८/२७
२. वही, पूर्व ७८/२८
३. वही, पूर्व ७८/२९
४. वही, पूर्व ७८/३२
५. वही, पूर्व ७८/३४
६. वही, पूर्व ७८/३५

तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई ॥

—मानस, बाल० २२८/२

जासु विलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥

—वही, २३१/३

एषा विमानादवरुह्य याति विद्याधरी चापि सुरी नरी वा।
सौदामिनी वा रतिकामिनी वा शची रमा वा हिमशैलजा वा ॥
न मे प्रयात्येव मनोरथान्तर्वर्धिष्णुभिर्निः प्रतिमैर्मनोभिः।
जाने ममानङ्ग गजतापहारिणी पीयूष धारेयमहो भविष्यति ॥

—भु० रा०, पूर्व ७५/६

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।
भए विलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल ॥
देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदयँ सराहत वचन न आवा ॥

मानस, बाल० २३०/३,४,५

सो सब कारन जान विधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता ॥
रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पग धरई न काऊ ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी ॥

—वही, ३२१/४-६

नाना दिगन्तदेशेभ्यो नानानामान एव ते।
सीता स्वयंवरोत्साहे संगता अभवन्नृपाः ॥

—भु० रा०, पूर्व ७५/२०

दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो प्रन ठाना ॥

—मानस, बाल० २५०/७

इत्युक्तः स मुनी राज्ञा जनकेन मनस्विना।
राममालोक्य प्रोवाच सस्मितं मधुरं वचः ॥
सम्बध्यतां परिकरो हरकार्मुकरोपणे।
वत्स राम त्वमियति समस्ते वीर मण्डले ॥
इत्युक्तो भगवान् रामः स्वयं साक्षाद्रमापतिः।
दृष्ट्वा हरधनुः सद्यो लीलयैव समाददे ॥

—भु० रा०, पूर्व ७६/३०,३१,३३

बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेह मय बानी ॥
उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा ॥
ठाढ़ भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुबा मृगराज लजाएँ ॥

—मानस, बाल० २५४/५६.५७

ज्यां समारोपयामास समालम्ब्य बभञ्ज च।
धनुर्भंगोद्भवः शब्दो गगनं क्ष्मामपूरयत् ॥

चचाल धरणी सर्वा पर्वताश्च चकम्पिरे ।
तत्रास वासुकिकुलं विभ्युर्देवगणा दिवि ।।
महाशब्देन जातेन सागराश्च विसुस्रुवुः ।
गिरीणां कन्दरास्वन्तर्घनीभूतो महाध्वनिः ।।
हर्यक्षान् क्षोभयामास प्रलयाघातदुःसहः ।
तदा रामधनुर्भङ्गात् सीता पूर्णमनोरथा ।।

—भु० रा०, पूर्व/७६/३६-३९

गुरहि प्रनाम मनहि मन कीन्हा । अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा ।।
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा । भरे भुवन धुनि घोर कठोरा ।।
भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले ।
चिक्करहि दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले ।।

मानस, बाल० २६०/५,८,९,१०

सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँति । जनु चातकी पाई जलु स्वाती ।।

राम-वनगमन

मंथरा नाम कैकेय्या दासी मंदतयाधिया ।
तस्याः कण्ठे सन्निविश्य ब्राह्मी प्रतिविधास्यति ।।

भु० रा०, दक्षिणं खण्ड ६/१०

नाम मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि ।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ।।

राम० च० मानस, अयोध्या० १२/०

तेषां बाधकौ मातः शोकः मोहौ भविष्यतः ।
अथाचतुर्दशैवाब्दान्प्रवासौ नौ भविष्यति ।।
ततः परन्तु जननि तीर्त्वा पदमनुत्तमां ।
कृत्वा सत्य गिरा तात स्वर्गिणां निरुपद्रवं ।।
पुनरप्यागमिष्यावो नगरी भूरि मंगलां ।
भवन्तीं सुखयिष्यावो हृतशत्रु बलौ बलात् ।।

—भु० रा०, दक्षिण–६/७२,७३,७४

बरसचारिदस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान ।
आइ पाय पुनि देखिहऊँ, मनु जनि करसि मलान ।।

रामचरित मानस, अयोध्या ५३/०

स एव सुकृति लोके लक्ष्मणो दुःख वर्जितः ।
योवै सर्वात्मा भावेन सीता रामौ निषेवते ।।

—भु० रा०, दक्षिण १२/११,१२

अहह धन्य लछिमन बड़भागी । राम पदारविन्द अनुरागी ।।

—रामचरित मानस, उ० /३

ततो ब्रवीत्स्वयं रामो लक्ष्मणेन रुषोदितं।
न वाच्यं परुषं राजा दुःखी मद्विरहा भृशं॥
सद्यः परुषमाकर्ण्य त्यजेत्प्राणानपि क्वचित्।

—भु० रा०, दक्षिण १३।५१,५२

पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी॥
सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई॥

—रामचरित मानस, अयोध्या ९६।४, ५

मरणं जीवनं चैव वियोगो योग एव वा।
सुख दुःखं लाभ हानिः जयोऽपि वा पराजयः॥
सर्वं देवेन नियतं लभते मानुषा वशः।
किं तत्र शोकमोहाभ्यामात्मा केवलात्मना॥

—भु० रा०, दक्षिण २६।६९, ७०

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु, जसु अपजसु बिधि हाथ॥
अस बिचारि केहि देइअ दोसू। व्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू॥
तात बिचारु करहु मन माहीं। सोच जोगु दसरथ नृपु नाहीं॥

—मानस, अयोध्या १७१।१-२

चित्रकूट में राम द्वारा सीता का शृंगार

रामभक्ति की रसिकधारा के अनुयायी न होते हुए भी उसमें निरूपित राम की मधुर लीलाओं से तुलसी प्रभावित हुए थे। इसके प्रमाण में रामोपासना के विकासात्मक अध्ययन का इतिहास प्रस्तुत करनेवाले आलोचक गीतावली एक पद उद्धृत करते हैं, जिसमें चित्रकूट-प्रवास के समय राम अपनी प्रियतमा के उत्तमांगों का वन्य-पुष्पों, एवं गैरिक, रामरज आदि धातुओं से बने रंगों द्वारा निर्मित पत्र–रचना से शृंगार करते दिखाये गये हैं। संयोगवश राम के माधुर्य-विलास का यह प्रसंग भुशुण्डि रामायण में ज्यों-का-त्यों मिल जाता है—

चिरं विहृत्य वैदेह्या भगवान् रति वर्द्धनः।
अशोभत शिलापृष्ठे पौलोम्यैव पुरंदरः॥
अथ शृङ्गारयामास प्रियां विस्रस्त भूषणां।
चम्पकैर्गुंफयामास वेणीमलक शालिनीं॥
अलकेषु बबंधास्य केशरस्य सुमान्यलं।
चक्रे कमलपत्रैश्च कंचुकी कुच कुंभयोः॥
सनालैः पंकजैश्चक्रे बाह्यो केयूर युग्मकं।
विचित्र पुष्पस्तवकैर्भूषाः कल्पितवान् पृथक्॥
पंचवर्ण प्रसूनाद्यां स्रजं कमल शालिनीं।
वक्षसिन्यस्तवान् रामो रमण्याः सवशवदः॥

हरिताल रसैर्मिश्रां सिन्दूराक्तां मनः शिलां ।
संघृष्य रमणों गुण्यां भाले तिलकमातनोत् ॥
विभूष्य स्वामिनी मेष स्वयं चाभूषितस्तया ।
रेजा ते तावुभौ तत्र शोभमानौ परस्परं ॥
इत्यं चिरं कंदरायां चित्रकूट महीमृथः ।
क्रीडित्वा प्रेयसीयुक्तो निर्जगाम ततः शनैः ॥

—भु० रा०, दक्षिण १७।४१-४८

चित्रकूट अति विचित्र, सुन्दर बन महि पवित्र ।
पावनि पय सरित, सकल मल निकंदनी ॥
सानुज जहँ बसत राम, लोचनाभिराम ।
बाम अंग बामा बर विश्व वंदिनी ॥
फटिक सिला संकुल सुरतरु तमाल ।
ललित लता जाल हरति छवि वितान की ॥
विरचित तहँ पर्नसाल, अति विचित्र लखन लाल ।
निक्सत जहँ नित कृपाल राम जानकी ॥
निजकर राजीवनयन पल्लव दल रचित सयन ।
प्यास परसपर पीयूष प्रेम पान की ।
सिय अँग लिखै धातुराग, सुमननि भूषन विभाग ॥
तिलक करनि कहौंका कृपा निधान की ।
माधुरी बिलास हास, गावत जस तुलसीदास ॥
बसति हृदय जोरी, प्रिय परम प्रान की ॥

—गीतावली, अयोध्या ।४४

भरत का ससैन्य चित्रकूट गमन तथा तद्विषयक निषादराज की प्रतिक्रिया—

जानेहं भरतो मात्रा रामं प्रव्राज्य कानने ।
लयंगतेऽधुना ताते निःशंको राज्य लोभतः ॥
हंतुमारब्धवानेष सानुजं वन वासिनं ।
हा रघूणामियं बुद्धिः कथं जाताक्षयोन्मुखी ॥
इक्ष्वाकूणां भटायेते रामद्रोह मलीमसाः ।
स्वत एवाद्य गंतारो धर्मराज निकेतनं ॥
श्रृण्वन्तु मे वचो दासा महापौरुष मंडनाः ।
लौहयंत्र सतैर्गत्वा रुधन्तु निखिलां नदीं ॥
इक्ष्वाकूणां महाघोरा पश्येयंमहती चमूः ।
नोत्तीर्य सरितं गच्छेद्रामचन्द्र मम प्रभुं ॥
अन्ये च विदिता वीरा भवतां ये महाबलाः ।
सेनां संव्यूह्य तिष्ठन्तु ते सर्वे लौहयन्त्रिणः ॥

सज्जतां लौहयन्त्राणि लक्ष्य सः पुरुषा मम।
वेधयन्तु परान् दुष्टान् लोहपिंडैः सहस्रशः ॥
ननु प्रथमेतेषां प्रवृत्तिरनुमीयतां ।
यद्येषामभि योगश्चेद्रामचन्द्रे मम प्रभौ ॥
इत्युक्त्वा बलवान वीरः शृंगवेरपुराधिपः ।
गृहीत्वोपायनान्दिव्यान् मत्स्यान् पाठीन् रोहितान् ॥

--भु० रा०, दक्षिण ३२/५,६,२५,१५,१६,१७,१८,२१,२७

जानहिं सानुज रामहिं मारी। करउँ अकंटक राजु सुखारी ॥
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलङ्क अब जीवन हानी ॥
अस विचारि गुह ग्याति सन, कहेउ सजग सब होहु।
हथबाँसहु बोरहु तरनि, कीजिय घाटा रोहु ॥

--रामचरितमानस, अयोध्या० १८९/५,६

होहु संजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै कै ठाटा ॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जियत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥

--वही, अयोध्या० १९०/१,२

गहहु घाट भट समिटि सब, लेऊँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्यगति, तस तब करिहऊँ आइ ॥

-वही, अयोध्या० १९२

अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग माँगे।
मीन पीन पाठीन पुराने। भरि-भरि भार कहारन्ह आने ॥

--मानस, अयो० १९३/२,३

दशरथ-मरण

रामस्य विरहातप्तः पिता ते समाधिं गतः।
हा राम राम रामेति विलपन् शोक संवृतः ॥

--भु० रा०, दक्षिण २७/१०

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर विरह राउ गएउ सुरधाम ॥

--रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड १५५/०

भरत की सौगंध

हत्वा मित्रं गुरु विप्रं तात्मित्रयोप्यभिपद्यतां।
रामस्य यो वने वासे स्वप्नस्थोपि विचंतयेत् ॥
स्त्री वधाग्निदानाच्च गुरुकन्या विदूषणात्।
मित्र द्रोहाद्गोद्विजाति वह्निनिष्ठीवनात्तथा ॥

--भु० रा०, दक्षिण० २८/५३,६०

जे अघ मातु पिता सुत मारे। गाइ गोंठ महिसुर पुर जारे॥
जे अघ तिय बालक वध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें॥
—रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड १६७/५,६

दशरथ का दाह-संस्कार

ते तत्र सरयूतीरे विमले सिकतामये।
प्रसन्न शाद्वलच्चित्ते शिबिकां निदधुर्जनाः॥
श्रीखण्डैर्मलयोद् भूतैः शुष्कैरगरुदारुभिः।
भूयः कर्पूर कस्तूरी काश्मीर्विदधुश्चितां॥
—भु० रा०, दक्षिण ३०/३१

ततः प्रधान प्रवराः समुत्थाप्य महीतलात्।
नृपात्मजौ ततो निन्युः प्रकर्त्तुमुदकक्रियां॥
—वही, दक्षिण ३१/१,३२

चन्दन अगर भार बहु आये। अमित अनेक सुगन्ध सुहाए॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई॥
एहि विधि दाहक्रिया सब कीन्हीं। बिधिवत न्हाई तिलांजुलि दीन्हीं॥
—रामचरितमानस, अयोध्या १७०/३,४,५

चित्रकूट की सभा

कृतांजलि पुटो धीमान् भरतो भक्ति सन्नतः।
पुरो रामस्योपविष्टो विवक्षुः प्रणयान्वितः॥
—भु० रा०, दक्षिण ४०/१५

भरत भये ठाढ़े कर जोरी।
बोले बचन बिनीत उचित हित करुना रसहि निचोरी॥
—गीतावली, अयोध्या, पद ७०

प्रददौ पादुके तस्मै भरताम महाभुजः।
ते गृहीत्वा प्रभोर्वीरः प्रहर्षं किंचिदाव्रजत्॥
ततः स रामचन्द्रस्य कृत्वा भक्त्या प्रदक्षिणां।
महानागेन्द्र शिरसि पादुके समरोपयत्॥
—भु० रा०, दक्षिण ४३/६०,६१

प्रभु करि कृपा पावरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥
—रामचरितमानस, अयोध्या ३१५/५

राम की तिरोधान लीला

भुशुण्डि रामायण में राम के लीला-संवरण का विस्तार से वर्णन किया गया है। रामचरितमानस में वह अत्यन्त संक्षेप में है, किन्तु अध्यात्म रामायण का यह प्रसंग भुशुण्डि रामायण पर आधृत होने से विशद है। यहाँ केवल मानस तथा भुशुण्डि रामायण के एतद्विषयक विवरण तुलना के लिए उद्धृत किये जाते हैं—

सज्जतां लौहयन्त्राणि लक्ष्य सः पुरुषा मम।
वेधयन्तु परान् दुष्टान् लोहपिंडैः सहस्रशः ॥
ननु प्रथमेतेषां प्रवृत्तिरनुमीयतां ।
यद्येषामभि योगश्चेद्रामचन्द्रे मम प्रभौ ॥
इत्युक्त्वा बलवान वीरः शृंगवेरपुराधिपः ।
गृहीत्वोपायनान्दिव्यान् मत्स्यान् पाठीन् रोहितान् ॥

—भु० रा०, दक्षिण ३२/५,६,२५,१५,१६,१७,१८,२१,२७

जानहिं सानुज रामहिं मारी। करउँ अकंटक राजु सुखारी ॥
भरत न राजनीति उर आनी। तव कलङ्क अब जीवन हानी ॥
अस विचारि गुह ग्याति सन, कहेउ सजग सब होहु।
हथबाँसहु बोरहु तरनि, कीजिय घाटा रोहु ॥

—रामचरितमानस, अयोध्या० १८९/५,६

होहु संजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै कै ठाटा ॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जियत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥

—वही, अयोध्या० १९०/१,२

गहहु घाट भट समिटि सब, लेऊँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्यगति, तस तब करिहऊँ आइ ॥

—वही, अयोध्या० १९२

अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग माँगे।
मीन पीन पाठीन पुराने। भरि-भरि भार कहारन्ह आने ॥

—मानस, अयो० १९३/२,३

दशरथ-मरण

रामस्य विरहातप्तः पिता ते समाधिं गतः।
हा राम राम रामेति विलपन् शोक संवृतः ॥

—भु० रा०, दक्षिण २७/१०

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर विरह राउ गएउ सुरधाम ॥

—रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड १५५/०

भरत की सौगंध

हत्वा मित्रं गुरु विप्रं तात्मित्रयोप्यभिपद्यतां।
रामस्य यो वने वासे स्वप्नस्थोपि विचंतयेत् ॥
स्त्री वधाग्निदानाच्च गुरुकन्या विदूषणात्।
मित्र द्रोहाद्गोद्विजाति वह्निनिष्ठीवनात्तथा ॥

—भु० रा०, दक्षिण० २८/५३,६०

जे अघ मातु पिता सुत मारे। गाइ गोंठ महिसुर पुर जारे॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें॥
—रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड १६७/५,६

दशरथ का दाह-संस्कार

ते तत्र सरयूतीरे विमले सिकतामये।
प्रसन्न शाद्वलच्चित्ते शिबिकां निदधुर्जनाः॥
श्रीखण्डैर्मलयोद् भूतैः शुष्कैरगरुदारुभिः।
भूयः कर्पूर कस्तूरी काश्मीर्विदधुश्चितां॥
—भु० रा०, दक्षिण ३०/३१

ततः प्रधान प्रवराः समुत्थाप्य महीतलात्।
नृपात्मजौ ततो निन्युः प्रकर्त्तुमुदकक्रियां॥
—वही, दक्षिण ३१/१,३२

चन्दन अगर भार बहु आये। अमित अनेक सुगन्ध सुहाए॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई॥
एहि विधि दाहक्रिया सब कीन्हीं। बिधिवत न्हाई तिलांजुलि दीन्हीं॥
—रामचरितमानस, अयोध्या १७०/३,४,५

चित्रकूट की सभा

कृतांजलि पुटो धीमान् भरतो भक्ति सन्नतः।
पुरो रामस्योपविष्टो विवक्षुः प्रणयान्वितः॥
—भु० रा०, दक्षिण ४०/१५

भरत भये ठाढ़े कर जोरी।
बोले बचन बिनीत उचित हित करुना रसहि निचोरी॥
—गीतावली, अयोध्या, पद ७०

प्रददौ पादुके तस्मै भरताम महाभुजः।
ते गृहीत्वा प्रभोर्वीरः प्रहर्षं किंचिदाव्रजत्॥
ततः स रामचन्द्रस्य कृत्वा भक्त्या प्रदक्षिणां।
महानागेन्द्र शिरसि पादुके समरोपयत्॥
—भु० रा०, दक्षिण ४३/६०,६१

प्रभु करि कृपा पावरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥
—रामचरितमानस, अयोध्या ३१५/५

राम की तिरोधान लीला

भुशुण्डि रामायण में राम के लीला-संवरण का विस्तार से वर्णन किया गया है। रामचरितमानस में वह अत्यन्त संक्षेप में है, किन्तु अध्यात्म रामायण का यह प्रसंग भुशुण्डि रामायण पर आधृत होने से विशद है। यहाँ केवल मानस तथा भुशुण्डि रामायण के एतद्-विषयक विवरण तुलना के लिए उद्धृत किये जाते हैं—

आदाय चिन्मयानन्द स्वरूपः सर्वशक्तिभृत् ।
रमते स्वात्मरमणो रामो रामादि केलिभिः ॥
रत्नाद्रेः परितो निकुंज भवने भूयोऽपि रामस्ततः ।
कृत्वा स्वेच्छतरं मुहुर्विहरणं कर्माणि दिव्यानिशः ॥
यान्युद्गीय जनो विधूतकलुषः स्वरूपमासादये ।
भूयो नैव च कल्पते भवमयं प्राप्स्यैविमुक्तिश्चिरम् ॥

—भु० रा०, दक्षिण० २३३।१९, २०

पुनि कृपाल पुर बाहेर गये । गजरथ तुरग मंगावत भये ॥
देखि कृपा करि सकल सराहे । दिये उचित जिन्ह तिन्ह तेइ चाहे ॥
हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई । गए जहाँ सीतल अँवराई ॥

—मानस, उत्तर० ५०।३, ५

रामचरितमानस में भुशुण्डि रामायण निर्दिष्ट स्थान पर 'निकुंज वन' के स्थान पर 'सीतल अँवराई' है जिससे परमपुरुष राम अपनी पराशक्ति सीता के साथ नित्य केलिरत रहते हैं। रसिक साधकों का परम लक्ष्य प्रिया-प्रियतम की विहार-लीला का ध्यान है। अतः आराध्ययुगल की लीला इसी भाव के अनुरूप दिखायी गयी है। मर्यादा के आग्रह से तुलसी ने निकुंजभवन के स्थान पर 'सीतल अँवराई' का निर्देश कर प्रकारान्तर से इसका समर्थन किया है।

मानस के अन्त में गोस्वामीजी द्वारा दी गयी फलश्रुति भी भुशुण्डि रामायण के तद्विषयक छन्दों से अधिकांशतः मिल जाती है—

फलश्रुति—इत्येतत्प्रमुदादवी विहरण स्वच्छन्द सौख्यात्मनो ।
रामस्यामित सद्गुणौघ जलधे जन्मामलं कर्म च ॥
भक्त्या संश्रृणुते स मानववरो जीवन्विमुक्तोश्चरेत् ।
स्वानन्दामृत लाभपुष्ट हृदयो भूयो भवे नोद्भवेत् ॥

—भु० रा०, दक्षिण २३३।२१

पुण्यपापहरं सदाशिवकरं विज्ञान भक्तिप्रदं,
माया मोह मलापहं सुविमलं प्रेमाम्बु पूरं परं ।
श्रीमद्रामचरितमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये,
ते संसारपतङ्ग घोर किरणैः दह्यन्ति नो मानवाः ॥

—मानस, उत्तरकाण्ड, अन्तिम श्लोक

भुशुण्डि रामायण और रामचरितमानस में शब्दावली तथा भाव-साम्य के इस प्रकार के असंख्य उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

राम की कृपाशीलता और राम-नाम माहात्म्य

सम्प्राप्ते सङ्कटे चापि महाभय उपस्थिते ।
संग्रामे विषमे घोरे दुर्गमे जल संगमे ॥

राजद्वारे भयकरे तथैवाध्वनि दुर्गमे ।
क्रव्यादद्विप सर्पादौ सद्यो नाशार्थमुद्यते ।।
कान्तारे दुर्गमे चैव पर्वते सिंह संयुते ।
भूतप्रेत पिशाचाधैर्जृम्भ काद्यैरुपद्रुते ।।
रामेति यस्य नाम्नैय तरन्ति विपदोऽखिलाः ।
जायन्ते निर्भयाः लोकाः कोऽन्यस्तस्माच्च वीर्यवान् ।।

भु० रा०, पूर्व० ९३।६०, ६३

काल कराल, महाविष, पावक मत्तगयन्दहु के रद तोरे ।
साँसति संक चली, डरपे हुते किंकर ते करनी मुख मोरे ।।

—कवितावली, उत्तर ४८

कानन भूधर वारि बयारि महाविष व्याधि दवा अरि घेरे ।
सङ्कट कोटि जहाँ तुलसी, सुत मातु पिता हित बन्धु न नेरे ।।
राखिहैं राम कृपालु तहाँ, हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे ।
नाक रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मोरे ।।

—वही, उत्तर०, ५०

स्फुट प्रसंगों में कथ्य तथा शैलीगत साम्य

(१) इन्द्रालयेऽपि न तथा सुविभाति शोभा न ब्रह्मसद्मनि नवा खलु भोगवत्याम् ।
साकेतवासजुषि नीचतरेऽपि वर्णे यादृक् बभूव नव किन्नरवीक्षणीया ।।

—भु० रा०, पूर्व० ९५।४६

जो संपदा नीच गृह सोहा । सो विलोकि सुरनायक मोहा ।।

—रामचरितमानस, बाल० २८८।८

(२) अथ क्रुद्धो ब्रवीद्रामेः सौमित्रे धनुरानय ।
अहमेकेन वाणेन जलधिं खलु शोषये ।।

—भु० रा०, पश्चिम, पृ० ११५

लछिमन बान सरासन आनू । सोखौं वारिधि विसिख कृसानू ।।

रामचरित मानस, सुन्दर, ५७।१

(३) यन्मे हुतं कृतं तप्तं तदन्न सकलं बभौ ।
मल्लोचन पथं यातः सदारः सानुजो भवान् ।।

—भु० रा०, दक्षिण० १३६।४

आजु सुफल तप तीरथ त्यागू । आजु सुफल जप जोग विरागू ।
सफल सकल सुभ साधन आजू । राम तुम्हहिं अवलोकत आजू ।।

—रामचरितमानस, अयोध्या, १०६।५, ६

करि प्रनाम सब कहँ कर जोरे । राम राउ गुर साधु निहोरे ।।

—मानस, अयोध्या, २९७।५

(४) जगाहे काननं सर्वं प्रियान्वेषण तत्परः।
पृच्छमानः तरुलता गुल्म तुंग वनस्पतीन्॥
—भु० रा०, दक्षिण १५८।४

लछिमन समुझाये वहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाती॥
—रामचरितमानस, अरण्य०, ३०।८

(५) गणयेन्नभसीस्तारा भुवः पांशकणानपि।
कश्चित्सुसूक्ष्मधी राम न तु ते विशदान् गुणान्॥
—भु० रा०, दक्षिण० ११८।१८

जलसीकर महिरज गनि जाहीं। रघुपति चरित न वरनि सिराहीं॥
—रामचरितमानस, उत्तर०, ५१।४

तुलसी-साहित्य पर पड़नेवाले भुशुण्डि रामायण के इन विषय तथा शैलीगत प्रभावों के बावजूद इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि उक्त दोनों स्रोतों में उपलब्ध रामचरित का स्वरूप एवं उद्देश्य एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। अतः यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि तुलसी ने भुशुण्डि रामायण में निरूपित रामकथा तथा अनेक स्थलों पर उसकी भाषा-शैली का छायाग्रहण करते हुए भी उसके मूलस्वर माधुर्य भावना की उपेक्षा कर ऐश्वर्याश्रित रामभक्ति को क्यों महत्त्व दिया? मेरे विचार में इसके निम्नांकित कारण हो सकते हैं—

१. युगीन परिस्थितियों को देखते हुए भारतीय जन-मानस में आशा, उत्साह तथा साहस का संचार करने के लिए रासलीला की अपेक्षा राम की राज्य-लीला का गान तुलसी को अधिक श्रेयस्कर जँचा।

२. भुशुण्डि रामायण आगमिक धारा की उपासना का एकान्त समर्थक ग्रन्थ था, जिसमें माधुर्यभाव की प्रधानता थी, आराध्य को छोड़कर अन्य देवी-देवताओं का तिरस्कार था, वर्णाश्रम धर्म की उपेक्षा थी, आचार-सम्बन्धी नियमों में शिथिलता स्वीकार्य थी, युगल-किशोर की अष्टयाम लीला का चिंतन अथवा 'मानसी-पूजा' ध्येय थी। किन्तु इसके विपरीत तुलसी की भक्ति दास्यभाव की थी, स्मार्त धर्म में आस्था रखने के कारण उनके हृदय में अन्य देवी-देवताओं के प्रति भी उचित समादर था, वर्णाश्रम धर्म में उनकी दृढ़ आस्था थी और लोक-मर्यादा की रक्षा के लिए सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन में आचार-विषयक नियमों का कड़ाई से पालन करने का आग्रह था। संक्षेप में भुशुण्डि रामायण व्यष्टि साधनापरक एकांतिक भक्ति का प्रतिपादक था, किन्तु तुलसीदास साधनोन्मुख लोकधर्म के पुरस्कर्ता थे। इसलिए उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ के कथातत्त्व तथा कहीं-कहीं शैली को अपनाते हुए भी उसमें निर्दिष्ट शृंगारी साधना की उपेक्षा की। जनमानस के उचित दिशा-निर्देश के लिए तत्कालीन परिस्थितियों में यही श्रेयष्कर था। किन्तु तुलसी की परवर्ती रामभक्ति साधना में एक प्रकार से माधुर्यधारा का पूर्ण आधिपत्य हो गया। रीतिकालीन-प्रवृत्तियों ने इसके विकास में अभूतपूर्व शृंगारी योग दिया। इसके फलस्वरूप भुशुण्डि रामायण रसिक सम्प्रदाय के कवियों का प्रमुख उपजीव्य ग्रन्थ बन गया। महात्मा रामसखे, हरियाचार्य, रामप्रियाशरण, कृपानिवास,

प्रेमसखी, रामचरणदास, युगलानन्यशरण, रामरसरंगमणि, प्रेमलता प्रभृति रसिकाचार्यों की कृतियों में भुशुण्डि रामायण का गहरा प्रभाव दिखायी देता है।

आलोच्य-ग्रंथ से प्रेरणा ग्रहण की यह परम्परा अब तक अबाध रूप से चली आ रही है। महात्मा राजकिशोरीवरशरण, बाबा रामकिशोर शरण, जानकीजीवनशरण, मैथिलीशरण भक्तमाली, विदेहजाशरण आदि आधुनिक रामभक्त कवियों की रचनाएँ भुशुण्डि रामायण में प्रतिपादित रस-साधना के सिद्धान्त और शैली से ओत-प्रोत हैं।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि आचार्य रामानुज द्वारा प्रवर्तित श्री वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत विकसित भक्तिपरक रामकथा काव्यों में भुशुण्डि रामायण प्राचीनतम होने के साथ ही १२वीं शती के पश्चात् निर्मित सम्पूर्ण रामभक्ति-साहित्य का प्रमुख प्रेरणास्रोत रहा है। मध्यकाल की साम्प्रदायिक रामायणों का तो यह आदर्श ग्रन्थ था ही, सामान्य रामकाव्यों के भी उपजीव्य के रूप में इसकी महत्ता अक्षुण्ण रही।

रामभक्ति के क्षेत्रों में इस महाग्रंथ की लोकमान्यता से प्रभावित होकर गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना करते समय इसके कथातत्त्व को विवेकपूर्वक ग्रहण किया और उसमें उपदिष्ट भक्ति-पद्धति का भी यथेष्ट सत्कार किया। सर जार्ज ग्रियर्सन ने रामचरितमानस के टीकाकारों द्वारा निर्दिष्ट उसके तीन आधार ग्रन्थों—अध्यात्म रामायण, भुशुण्डि रामायण और वशिष्ठ संहिता का उल्लेख करते हुए यह बताया है कि उनमें से प्रथम और तृतीय उपलब्ध हैं किंतु द्वितीय अर्थात् भुशुण्डि रामायण अप्राप्य है। उसकी कोई प्रति उनके देखने में नहीं आयी, न उसके किसी हस्तलेख के उपलब्धि की उन्हें सूचना ही प्राप्त हो सकी। निष्कर्ष रूप में उनका कहना है कि रामचरितमानस की रचना में तुलसीदास ने केवल वाल्मीकि रामायण से ही नहीं अपितु उस समय प्राप्त रामकथा-सम्बन्धी अन्य वैष्णव ग्रंथों से भी भरपूर सहायता लीं थी।[1]

उन्होंने लोकमंगल के विचार से आगम और तंत्राचार से प्रभावित उसकी गुह्य श्रृंगारी साधना की उपेक्षा कर प्रेमाभक्ति तथा रामचरित के मर्यादापरक प्रसंगों को ज्यों-का-

---

1. We have seen that Tulsidas states in so many words that he consulted other sources besides the epic of Valmiki. The commentators agree in mentioning three works as having been sued by him, the Adhyatma Ramayana, the Bhusundi Ramayana and the Vashishtha Samhita.... The Bhushundi Ramayana I have never seen, nor do I know if MSS of it exist, but the other two works are well known and easily obtainable... of one thing I am certain. Tulsidas wrote his poem with his whole being saturated not only with Valmiki's Ramayana but also with all the other then existing Vaishnava works dealing with the history of the Master whom he adored" (The Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland for 1912 pp. 794-798)

—George A. Grierson, Cambalay, March 26, 1912.

त्यों ग्रहण कर लिया और उनके आधार पर राम की लोक-पावनी कथा लिखकर रामचरित के दिव्य प्रकाश से लोकमानस का अन्धकार दूर किया।

भुशुण्डि रामायण के उपर्युक्त विशिष्ट तत्त्वों को दृष्टिपथ में रखते हुए यह कहना अत्युक्ति न होगी कि वैष्णव-भक्ति के उद्भवकाल से लेकर मध्यकाल तक भारतीय धर्मसाधना के क्षेत्र में विकसित विभिन्न मत-मतान्तरों और संवेदनशील रचनाकारों द्वारा उनसे गृहीत सत् प्रभावों का ऐसा विश्वकोश कदाचित् ही कहीं उपलब्ध हो सके। अतः रामभक्तिशाखा के ही नहीं, सम्पूर्ण वैष्णवभक्ति धारा के अनुशीलन में इसकी महत्ता स्वतःसिद्ध है।

भारतीय धर्मसाधना में रामोपासना के एक सर्वथा नवीन पक्ष को प्रकाश में लानेवाले इस सरस ग्रंथ को सभी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं जहाँ एक ओर अपार संतोष का अनुभव कर रहा हूँ, वहीं दूसरी ओर इसके महत्त्वांकन-विषयक अपनी अक्षमता पर लज्जावनत हूँ। इसकी भाषा-शैली तथा विषयतत्त्व दोनों में चंचु प्रवेशमात्र होने से संपादनकाल में मेरी मानसिक स्थिति कुछ वैसी ही रही जैसी पके बेल के चतुर्दिक मँडरानेवाले भौंरे की होती है। किन्तु विवश था। हमारी साधनहीनता से अवगत होते हुए भी परमप्रकाशक ने इस महान् कृति के प्राकट्य का निमित्त मेरे जैसे अल्पज्ञ एवं अकिंचन को बना दिया। दैवयोग से यह न्यूनता सुहृद्वर श्रीजनार्दन शास्त्री पाण्डेय का सहयोग पा जाने से बहुत अंश तक दूर हो गयी। उन्होंने इसके संपादन तथा मुद्रण में आत्मीयतापूर्ण भाव से जो अथक श्रम किया है, आभार प्रदर्शन कर उसका भार उतारने का उपक्रम करना शुद्ध कृतघ्नता होगी।

लक्ष्मण किला पुस्तकालय (अयोध्या) के अधिष्ठाता महंत श्रीसीतारामशरण, श्रावण कुञ्ज (अयोध्या) के महंत श्रीसरयूशरण तथा प्राच्यविद्या मंदिर; बड़ोदा के नियामक श्री भो० ज० सांडेसरा तथा बलरामपुर के महाराज पाटेश्वरीप्रसाद सिंह का मैं विशेष आभारी हूँ। इन महानुभावों की कृपा से ही मुझे भुशुण्डि रामायण की दुर्लभ पांडुलिपियाँ विमर्श के लिए सुलभ हो सकीं।

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी के अध्यक्ष श्री पुरुषोत्तमदास मोदी ने इस महाकाय ग्रन्थ को लोक-सुलभ कराने का साहस किया, यह व्यावसायिक दृष्टि की अपेक्षा उनकी सांस्कृतिक अभिरुचि का ही प्रतिफल था। कुछ अनिवार्य परिस्थितियों में मुद्रित होने के बाद भी प्रस्तुत खण्ड एक वर्ष तक मेरे प्रमाद से प्रकाश में न आ सका। इस बीच जिज्ञासुओं के पत्रों का ताँता लगा रहा। एतदर्थ मैं प्रकाशक तथा सुहृद्वर्ग—दोनों से क्षमा-प्रार्थी हूँ। भावग्राही पाठकों से मेरा विनम्र निवेदन है कि अशक्त तथा परवश निमित्त की सीमाओं पर ध्यान न देकर ब्रह्मद्रव से आप्लावित इस राम-गंगा में मज्जन कर अन्तःसुख लाभ करें।

भगवतीप्रसाद सिंह

रामनवमी
सं० २०३१
साकेत, बेतियाहाता
गोरखपुर

कथावस्तु

एक बार ब्रह्मा द्वारा अनुष्ठित यज्ञ में समागत देवताओं ने निवेदन किया, 'विश्व पितामह ! आप जगत्स्रष्टा हैं, वेदों के आश्रय हैं, स्वराट् एवं विराट् हैं, त्रिकालज्ञ हैं। आप से कुछ भी छिपा नहीं है। अतः कृपया बतायें कि इस जगत् का आश्रय कौन है ? क्या निमित्त है ? क्या सार है और क्या वेद्य है ? इसका विनियोक्ता कौन है ? उसका स्वरूप क्या है ? उसका सगुण-निर्गुण रूप किस प्रकार ध्येय एवं ज्ञेय है ? आप यह यज्ञ किस देव के प्रीत्यर्थ कर रहे हैं ? इन सारे प्रश्नों का उत्तर आप ही दे सकते हैं।'

ब्रह्मा बोले, 'देवगण ! तुम्हारे ये प्रश्न अत्यंत लोकोपयोगी हैं। इनसे भक्त और परमहंस सभी कृतार्थ होंगे। इस जगत् के मूल एवं निमित्त कारण भगवान् राम हैं। वे ही परमतत्त्व हैं। आरंभ में सृष्टि की रचना के लिए उन्होंने ही मुझे नियुक्त किया था। उनका स्वरूप वेदों के लिए भी अगोचर तथा सगुण-निर्गुण भेदाभेदरहित है। वैसे तो उनका संस्थान चिदानंद और परमस्थान चिन्मयानंदपूर्ण सीतालोक है, किन्तु पृथ्वी पर कोशलपुरी ही उनका चिल्लोक है। विविध यज्ञों द्वारा मैं उन्हीं की पूजा करता हूँ। वे ही हविर्भोक्ता तथा फलप्रदाता हैं। पूर्वकाल में महापुरुषों से प्राप्त उनके दिव्य जन्मकर्म का वृत्तान्त आदिरामायण नाम की रचना में मैंने भुशुण्डि को बताया था। उसे तुम्हें सुनाता हूँ।'

देवताओं ने जिज्ञासा की, 'वैष्णवाग्रणी ! भुशुण्डि कौन थे ? उनको आपने आदिरामायण कैसे सुनाया ? उसमें मूल चरित तथा अवतार चरित-सम्बन्धी क्या दिव्य कथाएँ हैं ? कृपया सुनायें।' ब्रह्मा बोले : 'महाकाल की कालकटका नाम की एक बहन थी। सूर्य के संयोग से उसने भुशुण्डि नामक पक्षी को जन्म दिया। वह अतुल पराक्रमी हुआ। मुझसे वर प्राप्त करके उसने विष्णुवाहन गरुड़ को पराजित किया। सूर्य, चन्द्र तथा देवतागण उसके आतंक से त्रस्त हो गये। तीनों लोकों के निवासी भयभीत रहने लगे। इस स्थिति से त्राण पाने के लिए देवताओं ने मुझसे कहा, 'ब्रह्मन् ! आप से वर पाकर भुशुण्डि अत्याचारी हो गया है। उसका नियंत्रण आप ही कर सकते हैं।' देवताओं का कष्ट दूर करने के लिए मैं भुशुण्डि के पास गया। मधु समुद्र के मध्य में एक द्वीप था। वहीं एक पर्वत पर वह रहता था। मुझे द्वार पर उपस्थित देखकर उसने यथोचित सत्कार किया। कुशलवार्ता के पश्चात् मैंने उससे कहा, 'हे पुत्र ! तुमने तीनों लोकों को त्रस्त कर रखा है। यह तुम्हारे लिए अनुचित है। राम ने विश्व की रचना भक्तों के सुख के लिए की है। यदि साधु दुःखी हुए तो वे कुपित होंगे और राम के क्रुद्ध होने पर चराचर का कुशल कहाँ ? इससे तुम्हें शान्त रहना चाहिए। शान्ति के बिना तुम्हारी भगवद्भक्ति विफल हो जायगी। तुम राम के परमभक्त हो, ज्ञानी हो, इसलिए विश्व-कल्याण तुम्हारा

प्रथम कर्तव्य होना चाहिए।' भुशुण्डि ने पूछा, 'राम के बलदेव, कृष्णादि सहस्रों रूप हैं उनमें से उनका मुख्य रूप कौन है?' मैंने उत्तर में कहा, 'सारे रूप राम के ही हैं और भक्तों के भावानुसार वे सभी रूप ध्येय तथा ज्ञेय हैं। प्राचीनकाल में एक बार राम के स्वरूप-विषयक इसी प्रकार की जिज्ञासा हनुमान से गरुड़ ने की थी। उस समय हनुमान वेगपूर्वक आकाशमार्ग से जा रहे थे। गरुड़ के पूछने पर वे बोले, 'मैं कोशलपुरी जा रहा हूँ। मध्याह्न में रामदर्शन की वेला है। मुझे देरी हो रही है, इसलिए रुक नहीं सकता।' गरुड़ ने कहा, 'वे राम कौन हैं? मनुष्य, देव या गंधर्व?' हनुमान बोले, 'आश्चर्य है, कि तुम राम को नहीं जानते। वे चक्रवर्ती महाराज दशरथ के पुत्र हैं। जिसने राम के स्वरूप का ध्यान, नाम का जप और लीला का गान नहीं किया वह आत्मवंचक है। राम जगत् के कारण, सच्चिदानन्द विग्रह हैं। वे ही एकमात्र भुक्ति-मुक्तिप्रद हैं। सारे अवतार उन प्रमोदवन-विहारी राम के ही अंश हैं।' यह सुनकर भुशुण्डि ने हनुमान से राम का दर्शन कराने की प्रार्थना की। हनुमान ने कहा, 'मुझे शीघ्रता है। तुम मेरे साथ नहीं चल पाओगे। कल आ जाना।' दूसरे दिन गरुड़ अयोध्यापुरी गये। वहाँ उन्हें हनुमान द्वारा नित्यसेवित राम का दर्शन प्राप्त हो गया। गरुड़ को अयोध्या के दक्षिणी भाग में रुक्मिणी सहित श्रीकृष्ण के भी दर्शन हुए। उन्होंने राम के लोक-मंगलकारी चरित का गान करते हुए कुछ दिन वहाँ मणिपर्वत के समीप निवास किया। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर एक दिन राम ने कहा, 'गरुड़! तुम जाकर साकेत के उत्तर, सरयू के दोनों तटों पर विचरो। जो मनुष्य, पशु, कीट या पतंग यहाँ शरीर त्याग करेंगे, उन्हें मेरा चतुर्भुज रूप प्राप्त होगा। तुम उनको स्वर्ग ले जाओगे। यही तुम्हारी सेवा होगी।' यह आदेश देकर राम ने गरुड़ को विदा किया। देवताओं की जिज्ञासा-निवृत्ति के लिए भुशुण्डि का इतना वृत्तान्त बताने के बाद ब्रह्मा ने राम के दिव्य जन्मकर्म-विषयक ब्रह्मकल्प में स्वरचित आदिरामायण की कथा आरम्भ की।

प्राचीनकाल में रावण के नेतृत्व में राक्षसों द्वारा किये गये अत्याचारों से तीनों लोकों के निवासी त्राहि-त्राहि करने लगे। तब आकाशवाणी हुई: 'सारस्वत कल्प के त्रेतायुग में अंशों सहित मैं दशरथ-पुत्र राम के रूप में अयोध्या में अवतार लेकर पृथ्वी का भार उतारूँगा। इस विधान को पूरा करने के लिए मेरे स्वांश सहित देवगण भी पृथ्वी पर जन्म धारण करेंगे।' कालान्तर में ब्रह्मवाणी सत्य हुई। ककुत्स्थ वंश में कौशल्या के गर्भ से आद्याशक्ति सहित स्वयं ब्रह्म का अवतार हुआ। भुशुण्डि ने पुनः कहा, 'भगवन्! जिस राम ने मेरे देखते-देखते रावण का सकुल वध किया, उसका चरित सुनाइए।' ब्रह्मा बोले, 'वाल्मीकि ने रावण का चरित वर्णन किया है, उसे ही समाधि संयोग से हृदयंगम कर मैं तुम्हें सुनाता हूँ।'

चैत्र शुक्ला नवमी को अभिजित योग एवं पुनर्वसु नक्षत्र में राम का प्राकट्य हुआ। उनका शरीर श्रीवत्स चरण, वाणादि चिह्नों से युक्त था और महाशक्ति सीता उनके वामांग में विराजमान थीं। दशरथ और कौशल्या ने स्वयंब्रह्म का अवतार जानकर उनकी करबद्ध स्तुति की। उस अवसर पर त्रिदेवों तथा चारों वेदों ने

उपस्थित हो दंडवत् किया और पृथक्-पृथक् स्तुतियाँ कीं। पृथ्वी पर विद्याधर और किन्नरियों ने आनंदोत्सव मनाया तथा आकाश में देवताओं ने दुंदुभि बजाकर अपना हृदयोल्लास व्यक्त किया। महाराज दशरथ ने स्नान करके जातकर्म संपन्न किये। ब्राह्मण तथा नेगी अभीष्ट दान पाकर संतुष्ट हुए। तेरहवें दिन वशिष्ठ ने चारों बालकों का गुणानुसार नामकरण संस्कार किया। राम, लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न का रूप-लावण्य दिन-दिन बढ़ता गया। राम के लोकमोहक सौन्दर्य को देखकर तीनों लोकों के निवासी आनंद-मग्न हो गये।

इसी बीच देवर्षि नारद लंका गये और रावण से बोले, 'देवताओं की प्रार्थना से तुम्हारा नाशकर्ता उत्पन्न हो गया है। उससे बचने का शीघ्र उपाय करो, नहीं तो शत्रु के बड़े हो जाने पर आत्मरक्षा के तुम्हारे सारे प्रयत्न व्यर्थ हो जायेंगे।' इतना कहकर वे ब्रह्मलोक चले गये। रावण इस संवाद से पहले तो अत्यंत भयभीत हुआ फिर सारी परिस्थिति पर गंभीरतापूर्वक विचार करके बोला, 'मैं शिव के चरणों पर शीश चढ़ाकर उनके प्रसाद से असीम शक्ति प्राप्त करूँगा। तब वैष्णवों का मूलोच्छेद करूँगा और देवताओं का सर्वनाशकर उन्हें स्वर्ग से निकाल बाहर करूँगा। देखें विष्णु क्या कर लेते हैं?' अपनी इस योजना को उसने तत्काल कार्यान्वित करने के लिए राक्षस सेनापतियों को आदेश दिया। उनके अकल्पनीय अत्याचारों से विश्व काँपने लगा। देवता स्वर्ग से भागकर गिरि-कन्दराओं में जा छिपे, उनमें से कुछ महाराज दशरथ के पास आये और यह संवाद सुनाया। वृद्धावस्था में प्राप्त चारों पुत्रों की सुरक्षा के लिए वे व्यग्र हो उठे। अयोध्या में पुत्रों की रक्षा कदाचित् ही हो सके, यह सोचकर उन्होंने गुप्तरूप से चारों बालकों को सरयू पार कामिकावन में सुखित गोप के घर भेज दिया। उसकी स्त्री मांगल्या उनका बड़े ही स्नेह से पालन-पोषण करने लगी। वे गोप-बालकों के साथ गायें चराते हुए नाना प्रकार की मनोमुग्धकारी क्रीड़ाएँ करते थे। रावण को किसी प्रकार इसका पता लग गया। उसने उन्हें मारने के लिए छद्मवेषधारी अनेक राक्षस भेजे, किन्तु राम ने उन सबका वध कर डाला। इन्हीं दिनों एक बार दशरथ ने विष्णुयज्ञ का आयोजन किया। इससे अपनी अवमानना समझकर इन्द्र कुपित हो गये। उन्होंने अखण्ड जल-वर्षा से अयोध्या को बहा देने का संकल्प किया। राम ने मेघावरोधक छत्र धारणकर साकेतपुरी तथा उससे संलग्न गोप-प्रदेश की रक्षा की।

परात्पर ब्रह्म की अवतार-लीला के रसास्वादन के निमित्त १६ हजार दंडकारण्यवासी मुनियों ने पूर्व योजनानुसार ब्रज-प्रदेश में गोपीरूप में जन्म लिया था। उन्होंने राम को वररूप में प्राप्त करने के लिए घोर तप किया। उनमें नंदन और राजिनी की पुत्री सहजानन्दिनी सर्वप्रधान थीं। गोपियों की निष्ठा से प्रसन्न होकर राम ने कहा, 'मैं एक पत्नीव्रत हूँ, अतः तुमलोग सीता की आराधना करके उनके अंशरूप में ही मुझे स्वीकार्य हो सकती हो।' गोपियों ने अनन्य भाव से सीता की आराधना कर उन्हें प्रसन्न कर लिया। तब सीता की मध्यस्थता से उन्हें राम की प्रमोदवन-लीला में प्रवेश का अधिकार मिल गया। महारास आरंभ हुआ। इस दिव्य लीला का

दर्शन करने के उद्देश्य से शिव कैलाश से अयोध्या आये। किंतु लीलायोजिका गोपियों ने उनकी अवज्ञा कर दी। इससे रुष्ट होकर शिव ने उन्हें शाप दिया कि तुमलोग शीघ्र ही लीलाबिहारी राम के वियोग-दुःख से पीड़ित होगी। यह कहकर शिव राम के पास गये और उनकी भावपूर्ण स्तुति की। चलते हुए उन्होंने राम से उक्त शाप की बात कह दी और उनके आश्रिताओं को उससे प्राप्त होनेवाले कष्ट के लिए क्षमा-याचना करने लगे। राम ने कहा 'देवदेव! तुम्हारा शाप मेरे अवतार-कार्य की सिद्धि में सहायक होगा। अतः वह मेरी इच्छा के सर्वथा अनुकूल है।'

इसके अनन्तर वे गोपियों को संभावित वियोगजन्य दुःख से उद्धार का उपाय बताते हुए बोले, 'तुमलोग प्रत्यक्ष संपर्क के अभाव में भी मुझसे सहज ही तादात्म्य स्थापित कर सकती हो। प्रकृति-पुरुष सब मैं ही हूँ। पूजा और ध्यान के द्वारा तुम मेरी नित्य-लीला में अहर्निश लीन रह सकती हो। नित्यधाम परमानन्दमय है। उसमें प्रवेश का अधिकार साधकमात्र को है चाहे वे निर्गुणमार्गी भक्त हों या सगुणोपासक। यों तो पंच भक्तिभावों में से किसी भी एक का अवलम्बन लेने से अक्षर-धाम की प्राप्ति हो जाती है। किन्तु 'रसध्यान' सर्वाधिक सुगम साधन है। मेरी लीला सहायिका षोडश प्रमुख सखियों का आश्रय ग्रहण करने से लीला-भेद तथा लीला-रस का तत्त्वज्ञान सहज सुलभ हो जाता है। उनके द्वारा साधना के विभिन्न अंगों एवं स्तरों का भी परिज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।' 'रामगीता' के इन तत्त्व-पूर्ण उपदेशों से गोपियों के मानस-नेत्र खुल गये और भावी वियोग से उत्पन्न उनकी चिंता दूर हो गयी।

वयस्क होने पर राम भाइयों सहित धात्री-गृह से अयोध्या चले आये। पुत्रों को राज्य-संचालन के योग्य होते देखकर महाराज दशरथ की इच्छा वानप्रस्थ लेकर तीर्थाटन करने की हुई। युवराज राम को शासन का भार सौंपकर उन्होंने सेवकों, साधु-संन्यासियों तथा अन्य प्रियजनों की एक विशाल मंडली साथ लेकर सप्त द्वीपस्थ तीर्थों का दर्शन करने के उद्देश्य से कैकेयी सहित प्रस्थान किया। काशी, मार्कण्डेय महादेव, प्रयाग, गलता, बद्रीनाथ, केदारनाथ आदि तीर्थों का दर्शन करते हुए वे ब्रज-प्रदेश में गये। वहाँ शुकदेव ने स्वयं उपस्थित होकर उन्हें मुख्य तीर्थों का दर्शन कराया: उन्होंने देखा कि ब्रज में सर्वत्र राम की लीलाओं का गान हो रहा है। वहाँ से वे दक्षिण के तीर्थों का पर्यटन करने गये। केरल, द्वारकापुरी, गंध-मादन आदि पुण्य-स्थलों से होते हुए वे परशुराम का दर्शन करने दंडकक्षेत्र गये। इन समस्त तीर्थों में महाराज दशरथ को व्यापक ब्रह्म राम का साक्षात्कार हुआ। अंत में समाज सहित रेणुकातीर्थ में स्नानकर बटेश्वर होते हुए वे अयोध्या लौट आये। उनके साथ अत्रि, गौतम, कश्यपादि ऋषि भी आये। महाराज दशरथ ने उनके लिए प्रमोदवन में रमणीक आश्रम बनवा दिये। वहाँ निवास करते हुए वे तत्त्वचिंतन में कालयापन करने लगे। वशिष्ठ ने ऋषियों की उपस्थिति का लाभ उठाकर अनेक ज्ञान-गोष्ठियाँ आयोजित कीं। ऋषिगण सीता-लक्ष्मण सहित राम की आराधना करते हुए उनकी नित्यलीला में प्रवेश पाने के लिए कठोर साधना करने लगे।

तीर्थयात्रा से लौटने पर प्रजा तथा मंत्रियों ने महाराज दशरथ से उनकी अनुपस्थिति में युवराज राम के शासन में अभिव्यक्त षड्विध ऐश्वर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की। पुत्रों का उत्कर्ष श्रवण कर वे गद्गद् हो गये।

उधर परमपुरुष की नित्यसंगिनी सीता को पुत्री के रूप में प्राप्त करने के लिए मिथिलानरेश जनक की महारानी सुनयना ने महालक्ष्मी की उपासना की। वे ही चतुर्धा होकर चार पुत्रियों के रूप में विदेह के घर अवतरित हुईं। सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा दिग्दिगंत में फैल गयी। राम ने एक पक्षी द्वारा उनके पास संदेश भेजकर विवाह की इच्छा प्रकट की। सीता ने उसी के हाथ अपना एक चित्र राम के पास भेजा। इसी बीच महर्षि विश्वामित्र राक्षसों के उत्पात से यज्ञ-रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को माँगने अयोध्या पधारे। महाराज दशरथ ने वशिष्ठ के समझाने पर दोनों पुत्रों को विश्वामित्र के साथ भेज दिया। विश्वामित्र का संकट दूर कर दोनों भाई उन्हीं के साथ महाराज जनकद्वारा आयोजित धनुष-यज्ञ देखने मिथिला गये। पुष्पवाटिका में उनकी भेंट सीता से हुई। वहाँ वे सखियों के साथ अंबिका-पूजन के लिए गयी थीं। एक दूसरे को देखते ही वे परस्पर गूढ़ प्रेम-सम्बन्ध रज्जु से आबद्ध हो गये।

धनुषयज्ञ में देश-देशांतर के राजा ही नहीं, देव, गंधर्व तथा राक्षस भी मनुष्य रूप धारणकर सम्मिलित हुए थे। महाराज जनक की प्रतिज्ञा के अनुसार उनमें से कोई भी धनुष तोड़ नहीं सका। रावण ऐसे महापराक्रमी भी उसे उठाने में असमर्थ रहे। तब राम ने उसको क्षणमात्र में दो टूक कर डाला। इसके अनन्तर वहाँ परशुराम का आगमन हुआ। शिव-धनुष तोड़े जाने का संवाद पाकर वे बहुत दुःखी हुए। यह जानकर कि यह इन्हीं दोनों भाइयों की करतूत है, उनके क्रोध की सीमा न रही। लक्ष्मण उनके कटु शब्दों को न सह सके। दोनों में विवाद छिड़ गया। बात बढ़ते देखकर राम ने लक्ष्मण को चुप किया और परशुराम का तेज खींचकर उन्हें शांत कर दिया। वीतराग हो वे तपस्या करने वन को चले गये। चारों पुत्रों का विवाह कर महाराज दशरथ पुत्र-वधुओं सहित सकुशल अयोध्या लौट आये।

महाराज दशरथ बूढ़े हो चले थे। उनकी इच्छा राज्य-संचालन का भार योग्य उत्तराधिकारी को सौंपकर शांतिमय जीवन व्यतीत करने की हुई। राम के व्यक्तित्व में ऐश्वर्य, वीर्यादि षड्गुणों का परमोज्ज्वल प्रकाश देखकर वे उन्हें ही राजा बनाना चाहते थे। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण परंपरया वही उसके अधिकारी भी थे, तथापि इस महत्त्वपूर्ण विषय में उन्होंने मंत्रियों से परामर्श कर लेना उचित समझा। मंत्रि-परिषद् बुलायी गयी। महाराज दशरथ ने उसके समक्ष दो प्रस्ताव रखे—एक था सारा राज्य चारों पुत्रों में बराबर बाँट देना और दूसरा था कोशल राज्य की अखंडता रक्षित करने के लिए उसका पूरा दायित्व राम को सौंपना। मंत्रियों ने एक स्वर से दूसरे प्रस्ताव का अनुमोदन किया। फलतः राम के अभिषेक की तैयारी धूमधाम से आरंभ हो गयी। नाना देशों से निमंत्रित राजे भेंट लेकर अयोध्या आने लगे। सारी नगरी अपूर्व ढंग से सजायी गयी। यह समाचार पाकर इन्द्र चिन्ताग्रस्त

हो गये। उन्होंने विचार किया कि रामावतार तो रावण-वध के लिए हुआ है किन्तु ये राज्य-भोग में लिप्त होने जा रहे हैं। अब देवताओं का त्राण कैसे होगा? वे तत्काल प्रजापति ब्रह्मा के पास गये और बोले, 'लोकेश! राम का राज्याभिषेक हो जाने से देवकार्य बाधित हो जायगा। अतः उसका निवारण होना चाहिए।' ब्रह्मा ने कहा, 'मैंने इसका उपाय पहले से ही सोच रखा है। सरस्वती कैकेयी की मंद बुद्धि दासी मंथरा के कंठ में प्रवेश करेंगी। वह पति द्वारा पहले की गयी दो वर प्रदान करने की प्रतिज्ञा का स्मरण रानी को दिलायेंगी। इसके अनुसार भरत को राज्य और राम को वनवास मिलेगा।'

इधर अयोध्या में अभिषेक के निमित्त देवस्थापना और पूजा का कार्य प्रारंभ हो गया था। राम को प्रातः ओषधिजल से स्नान कराने की तैयारी भी पूरी हो चुकी थी। इसी समय कैकेयी ने करुण-क्रन्दन प्रारंभ किया। महाराज दशरथ यह देखकर स्तब्ध रह गये। उन्होंने कैकेयी से उसका कारण पूछा। वह रोषभरे शब्दों में बोली, 'आपने मेरे निरपराध पुत्र को घर से निकालकर सौत के लड़के को युवराज बनाने का षड्यंत्र रचा है। मेरा जीवन धिक्कार है। यह सारी सजावट मेरी आँखों में ज्वाला उत्पन्न कर रही है। बहुत पहले आपने मुझे दो वर देने को कहा था। वह आज तक नहीं दिया। यही आपकी सत्यवादिता है?' राजा बोले, 'माँगो! मैं तुम्हें अभी दोनों वर सहर्ष दूँगा।' कैकेयी प्रसन्न हो गयी। उसने बड़ी निष्ठुरता से कहा, 'मेरे पुत्र भरत को अयोध्या का राज्य और राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास—बस ये दो वर दीजिए।' इन शब्दों को सुनते ही राजा संताप, लज्जा और उद्वेग से व्यथित हो कैकेयी के महल से बाहर चले गये। वशिष्ठ ने उन्हें बहुत समझाया, किन्तु प्रबोध नहीं हुआ। पिता की शोचनीय स्थिति का संवाद पाकर राम उनके पास गये। महाराज दशरथ उन्हें देखते ही जोर-जोर से विलाप करने लगे। कुछ समय तक पिता को समझाने का प्रयास कर राम वन-यात्रा की तैयारी में लग गये। क्षणभर में यह बात पूरे राजप्रासाद में फैल गयी। लक्ष्मण भाई की सेवा के लिए साथ जाने को तैयार हुए। राम के बहुत रोकने पर भी वे अयोध्या रहने को राजी न किये जा सके। इसके बाद राम माता के पास गये और सारी व्यवस्था कह सुनायी। कौशल्या का वात्सल्य-स्रोत फूट पड़ा, उनके करुण विलाप से सारा भवन गूँजने लगा। राम ने अपने अवतारधारण का लक्ष्य समझाते हुए उन्हें वन जाने की सार्थकता बतायी, किन्तु वे आश्वस्त न हो सकीं। पति के साथ सीता भी वन जाने को तैयार हो गयीं। राम ने वनवास की कठिनाइयों का वर्णन करते हुए उन्हें रोकने का बहुत प्रयास किया, किन्तु वे किसी भी मूल्य पर पति को छोड़कर अवधवास के लिए तैयार नहीं हुई। अंततोगत्वा गुरुजनों को प्रणामकर तीनों ने अयोध्या से विदा ली। चलते हुए सीता ने उर्मिला को यथोचित उपदेश दिया। सुमन्त रथ सजाकर राजद्वार पर लाये। महाराज दशरथ ने प्रस्थान बेला में रुँधे हुए गले से उनसे कहा, 'वन दिखाकर उन्हें पाँच-सात दिनों में अयोध्या वापस ले आना।' राम और लक्ष्मण सुमंत द्वारा संचालित रथ पर बैठे और सीता पालकी

पर चलीं। उनके प्रयाण करते समय अयोध्यावासी फूट-फूटकर रोने लगे। अट्टालिकाओं पर चढ़ी स्त्रियाँ जब तक रथ की धूल दिखायी देती रही, अश्रुपात करती हुई अपलक देखती रहीं। रथ के पीछे-पीछे अपार जनसमूह उमड़ता चला जा रहा था। ब्राह्मणों को पैदल चलते देखकर राम रथ से नीचे उतर पड़े और उनसे लौट जाने का अनुरोध किया। किन्तु वे नहीं लौटे।

राम ने प्रजावर्ग के साथ वनपथ की पहली रात तमसा नदी के तट पर बितायी। उस दिन फलाहार हुआ। थके होने से सभी सो गये, केवल लक्ष्मण धनुष-बाण लेकर पहरा देते हुए जागते रहे। साथ चलने में पुरजनों को बहुत क्लेश होगा, यह सोचकर राम ने उन सबको व्यामोहित कर सोते हुए छोड़ दिया और सीता-लक्ष्मण सहित रथारूढ़ हो वन की राह ली। प्रातःकाल उठने पर उन्हें अनुपस्थित पाकर पुरवासी व्यथित हो उठे। विवश हो सभी रोते-कलपते अयोध्या लौट आये। राम के वियोग में राजधानी के सारे उत्सव बन्द हो गये। सभी लोग उनके पुनरागमन की प्रतीक्षा करते हुए तपोमय जीवन व्यतीत करने लगे।

वनपथगामी राजकुमारों ने तमसा से आगे चलकर गोमती पार किया। फिर सई नदी उतरकर संध्या को श्रृंगवेरपुर पहुँचे। वहाँ एक इंगुदी वृक्ष के नीचे आसन लगा। समाचार पाकर निषादराज मिलने आये। वह रात सुमंत और लक्ष्मण ने भक्तिवार्ता करते हुए बितायी। गुह राम-सीता को पृथ्वी पर विश्राम करते देख बहुत दुःखी हुआ। प्रातः राम ने सुमंत से कहा 'अब हम पदयात्रा करेंगे, आप रथ लेकर अयोध्या लौट जायें। हमलोगों के विछोह से दुःखी पिता को सांत्वना देना और मेरी ओर से यह निवेदन कर देना कि भरत को ननिहाल से शीघ्र बुलाकर युवराज बना दें। भरत के अयोध्या आने पर उनसे मेरा संदेश कहना कि वे राज्य पाकर नीतिपथ का किसी भी स्थिति में परित्याग न करें।' राम के ये शब्द सुनकर सुमंत की आँखों से अश्रुधारा बह चली। लक्ष्मण के भी नेत्र डबडबा आये। उन्होंने अलग से संदेश भेजते हुए सुमंत से कहा, 'पिताजी से निवेदन करना कि उन्होंने निरपराध राम को वन भेजकर पितृधर्म के विरुद्ध आचरण कर दुष्कृत कर्म किया है।' राम ने सुमंत को पुनः संबोधित करते हुए कहा, 'आर्य! लक्ष्मण के परुषवचन पिता से न कहना। इसे सुनकर वे प्राणधारण नहीं कर सकेंगे।' सुमंत बोले, 'भगवन्! मैं आपका दास हूँ। यहाँ से जाने की इच्छा नहीं होती। अपने चरणों में स्थान देकर कृतार्थ करें।' राम ने वियोग-विह्वल सुमंत को किसी प्रकार परितोष देकर अयोध्या लौट जाने को सहमत कर लिया। सुमंत के चले जाने पर गुह से वटक्षीर मँगाकर दोनों भाइयों ने जटा बनायी। तापस वेष में तीनों गंगा पार करने के लिए तट पर जाकर नाव पर चढ़े। बीच धारा में पहुँचने पर सीता ने गंगा की पूजा की और पति तथा देवर सहित पुनः दर्शन करने का वरदान माँगा। गंगा पार कर तीनों ने एक वृक्ष के नीचे विश्राम किया। आगे चलकर अनुज और पत्नी सहित राम ने एक न्यग्रोध वृक्ष के नीचे रात बितायी। रात में कैकेयी की निष्ठुरता का स्मरणकर तीनों बहुत देर तक विलाप करते रहे। वहाँ से वे त्रिवेणी तट पर स्थित प्रयाग गये।

महर्षि भरद्वाज ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। निवास के लिए एकांत स्थान बताने की प्रार्थना करने पर उन्होंने राम को चित्रकूट जाने को कहा। प्रातः संगम स्नान करके तीनों चित्रकूट की ओर चले। मार्गस्थ प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन करते हुए यथासमय वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक सुन्दर पर्णशाला बनायी और उसी में सुखपूर्वक रहने लगे। चित्रकूट में सीता के साथ राम ने विपुल काल तक विहार किया। कभी स्फटिक शिला पर बैठकर उनका पुष्पों से शृंगार करते और कभी उनके कोमलांगों पर पर्वतीय धातुओं से बने रंगों के द्वारा पत्ररचना करते। इसी बीच जयंत ने एक दिन सीता पर नख और चोंच से आक्रमण कर दिया। राम ने उस पर अभिमंत्रित बाण का प्रहार किया। वह तीनों लोकों में शरण की याचना करते हुए चक्कर लगाता रहा, किन्तु कोई भी उसका त्राण करने के लिए तैयार न हुआ। अन्त में विवश होकर वह राम की शरण में आया। राम ने उसे मात्र एकाक्ष कर छोड़ दिया।

राम को पहुँचाकर लौटते हुए सुमंत ने अयोध्या में सूर्यास्त के समय प्रवेश किया। उन्हें खाली रथ लेकर आते देख सारे नगर में हाहाकार मच गया। रानियाँ करुण-स्वर में विलाप करने लगीं। महाराज दशरथ पुत्र एवं पुत्रवधू के लौट आने की बाट जोह रहे थे, सुमंत को अकेला आया सुनकर व्याकुल हो गये। सुमंत ने उनके पास जाकर राम का संदेश कहा। महाराज मूर्च्छित हो सिंहासन से नीचे गिर पड़े। सुमित्रा और कौशल्या ने उठाकर उन्हें आसन पर बिठाया। रानियाँ रोने लगीं। महाराज दशरथ वनवासी कुमारों के कष्ट का स्मरणकर विह्वल हो गये। सुमंत ने मार्ग की सारी कथा कही। उसे सुनकर महाराज विलाप करते हुए भूमि पर लोटने लगे। पश्चात्ताप और चिंता से वे विजड़ित हो गये। इसी अवस्था में उन्होंने कौशल्या को अंधतापस के शाप का वृत्तांत बताया। इसके कुछ ही क्षणों बाद महाराज ने राम-राम कहते शरीर छोड़ दिया।

कोशलनरेश के महाप्रयाण का समाचार पाकर अरुंधती तथा मुनिगण सहित महर्षि वशिष्ठ रानियों को सान्त्वना देने भवन में पधारे। सब ने मन्त्रणा कर भरत को उनके मामा की राजधानी गिरिव्रज से तत्काल बुलाने का निश्चय किया। दूतों को वहाँ मात्र सामान्य कुशल समाचार कहकर दोनों भाइयों को साथ ले आने का आदेश दिया गया।

अयोध्या की विपन्नस्थिति का आभास भरत को दुःस्वप्नों के द्वारा दूतों के पहुँचने के पूर्व ही होने लगा था। वे प्रियवियोग की आशंका से अनमने हो रहे थे। इसी समय सात दिन तक निरंतर यात्रा करके दूत गिरिव्रज पहुँच गये। गुरु का तत्काल चलने का निर्देश सुनकर दोनों भाइयों ने मामा से विदा ली और तीव्रगामी रथ से अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। कई दिनों तक यात्रा कर वे गोमती तट पर आये, वहाँ स्नान किया और फिर चल पड़े। अयोध्या के निकट पहुँचने पर उन्हें सारा वातावरण हर्ष-शोभा-विसर्जित दिखायी पड़ा। कोशलपुरी सोयी हुई-सी और पशु-पक्षी रोते हुए दृष्टिगत हुए। राजभवन में प्रवेश करने पर कैकेयी ने उनका

स्वागत किया। कुशल-प्रश्न पूछने पर उसने पति के दिवंगत होने का समाचार सुनाया और कहा, 'राम वनवासी हो गये। अब तुम अकंटक राज्य करो।' ये शब्द कोमल हृदय भरत को बाण के समान लगे, वे राम-राम कहते हुए अचेत होकर गिर पड़े। इसके अनंतर वार्ताक्रम में इसका पता लगने पर कि सारे अनर्थ की जड़ मंथरा है, शत्रुघ्न क्रुद्ध हो उठे। वे उसकी चोटी पकड़कर घसीटने लगे। भरत को दया आ गयी। उन्होंने मंथरा को छुड़ा दिया। फिर दोनों भाई कौशल्या के पास गये। भरत ने पूरे काण्ड से अपने असंपृक्त होने के प्रमाणस्वरूप अनेक सौगंधें खायीं। कौशल्या ने उन्हें आश्वस्त कर पिता की अन्त्येष्टि का प्रबन्ध करने को कहा। भरत शव के पास जाकर बहुत रोये। फिर सभा बुलायी गयी। वशिष्ठ ने अन्त्येष्टिकी-व्यवस्था-सम्बन्धी घोषणा की। उसके अनुसार सरयू तीर पर चिता बनी और वह वेद-मंत्रों द्वारा यज्ञाग्नि से प्रज्वलित की गयी। उस समय का करुणा-दृश्य देखकर वशिष्ठ ऐसे वीतराग महापुरुष भी विचलित हो गये। शवदाह के अनन्तर सब ने सरयू में स्नानकर जलांजलि दी। अन्त्येष्टि कृत्य समाप्त हो जाने पर भरत ने कहा, 'पिता और राम से रहित अयोध्या मेरी दृष्टि में श्मशान नगरी है। मैं उसमें प्रवेश नहीं करूँगा।' उन्होंने सरयू तट पर ही एक तृण-कुटी में निवास करना आरंभ किया। दशाह के बाद वहीं उन्होंने पिता की त्रयोदशाह-क्रिया सम्पन्न की।

मृतककर्म समाप्त हो जाने पर मंत्रियों ने भरत से राज्यपद ग्रहण करने का अनुरोध किया। किन्तु उन्होंने अपने को राम का सेवक मात्र कहकर उसे अस्वीकार कर दिया। भरत ने राम को मनाने के लिए वन जाने का निश्चय किया। तैयारी पूरी हो जाने पर विशाल सेना के सहित मुनिगण, प्रजावर्ग तथा माताओं को साथ लेकर उन्होंने चित्रकूट के लिए प्रस्थान किया। शृंगवेरपुर के निकट पहुँचकर गंगा में जलांजलि दी और वहीं डेरा पड़ गया।

इसकी सूचना निषादराज को मिली। उसे यह भाँपते देर न लगी कि वह रघुवंशियों की सेना है। उसने सोचा कि कदाचित् भरत अकंटक राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से राम के विरुद्ध सेना सजाकर आये हैं। किंतु उसके अनुभवी साथियों ने सलाह दी कि पहले भरत के मनोभावों का अध्ययन कर लिया जाय फिर तदनुकूल कार्यवाही करना उचित होगा। यह विचारकर निषादराज प्रचुर उपहार लेकर भरत की सेवा में उपस्थित हुआ और उनसे शृंगवेरपुर चलने की प्रार्थना की। परन्तु भरत सहमत नहीं हुए। उन्होंने भरद्वाजाश्रम का मार्ग पूछा। प्रस्थान करने के पूर्व वह भरत को उस इंगुदी वृक्ष के निकट ले गया, जिसके नीचे राम ने रात्रिवास किया था। तृणशैय्या के अवशेषों को देखकर भरत की आँखों में आँसू भर आये। साथ चलते हुए निषादराज ने पूछा, 'आप कहते हैं कि राम को मनाने जा रहा हूँ फिर इतनी विशाल सेना लाने की क्या आवश्यकता थी?' भरत बोले, 'मैं माता का पाप दास्योदक से धोने जा रहा हूँ। राम को सेना सहित अयोध्या लौटा दूँगा, स्वयं वन चला जाऊँगा।

गंगा तट पर पहुँचकर निषादराज ने पाँच सौ नावों पर सारी सेना और

समाज को चढ़ाया। उसके साथ भरत प्रयाग पहुँचे। भरत को अतिथिरूप में पाकर महर्षि भरद्वाज ने उनका राजोचित सत्कार किया। उनकी सिद्धि के प्रभाव से व्यवस्था के लिए ब्रह्मा, विश्वकर्मा तथा इन्द्र समाज-सहित वहाँ आ गये। अलौकिक सत्कार से अयोध्यावासी परम संतुष्ट हुए। भरत ने महर्षि भरद्वाज को सारा वृत्तान्त बताते हुए माता के कुकृत्य के लिए पश्चात्ताप किया। भरद्वाज बोले, 'माता का कोई दोष नहीं, सब विधि का विधान है।' फिर उन्होंने भरत से सेना और रानियों समेत आने का कारण पूछा। भरत बोले, 'मैं अपने साथ अभिषेक की सारी सामग्री लाया हूँ। राम को राजपद पर प्रतिष्ठित कर उन्हें सेना-सहित अयोध्या वापस भेज दूँगा और मैं वन को चला जाऊँगा।' प्रातः सेना लेकर भरत चित्रकूट को चले। वहाँ पहुँचने पर बहुत देर तक राम के आश्रम की खोज करते रहे। एक स्थान पर उन्हें क्षीण धूमरेखा आकाश में उठती हुई दिखायी पड़ी। कुछ आगे बढने पर ज्ञात हुआ कि वह एकान्त में स्थित एक कुटी से निकल रही है। भरत को प्रतीत हो गया कि राम की पर्णकुटी वही है। अतः रथ तथा सेना को आधे योजन पीछे छोड़कर लक्ष्मण द्वारा लगाये गये सफल वृक्षों और लताओं को देखते हुए वे शत्रुघ्न सहित कुटी की ओर बढ़े।

निर्जन वन में अकस्मात् उत्पन्न कोलाहल से राम को यह पता लग गया कि कोई सेना आयी है। उन्होंने लक्ष्मण से उसकी टोह लेने को कहा। लक्ष्मण एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़ गये। वहाँ से सारी सेना साफ दिखायी पड़ती थी। लौटकर अग्रज से बोले, 'यह सेना रघुवंशियों की है। मेरा अनुमान है कि उसे भरत हमारे विरुद्ध सजाकर लाये हैं।' यह कहते-कहते उनका वीरदर्प उद्दीप्त हो उठा। वे बोले, 'मैं आज युद्धभूमि में भरत का वध करूँगा।' राम ने बीच ही में उन्हें रोकते हुए कहा, 'क्रुद्ध मत हो, भरत मुझसे मिलने के लिए आ रहे हैं, युद्ध करने नहीं।' ये बातें हो ही रही थीं कि भरत सामने आते हुए दिखायी पड़े। भाई को पर्णकुटी के सामने बैठा देखकर वे रोते हुए आगे बढ़े। उनका शरीर रोमांचित हो उठा। निकट आते-आते वे विह्वल हो पृथ्वी पर गिर पड़े। राम ने दौड़कर उन्हें उठाया और गले लगा लिया। उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। भरत ने भाई को पिता के दिवंगत होने की सूचना दी। यह हृदयद्रावक संवाद पाकर राम संज्ञाशून्य हो पृथ्वी पर गिर पड़े। फिर संभलकर उठे और मंदाकिनी तट पर जाकर बेर तथा इंगुदी के फलों से पिंडदान किया। वहाँ से लौटकर कुटी के द्वार पर आ पितृ-चरणों का स्मरणकर चारों भाई देर तक रोते रहे।

दूसरे दिन अवधवासियों तथा मुनियों की सभा लगी। राम को अयोध्या लौटाने के लिए विचार-विमर्श होने लगा। भरत ने आरंभ में ही अग्रज से निवेदन किया, 'मैं अभिषेक के लिए सारे द्रव्य लाया हूँ। आप राज्यग्रहण कर प्रजापालन के लिए अयोध्या लौट चलें। अंतकाल में पिता को मोह हो गया था, उसका मार्जन करें।' राम ने उत्तर में कहा, 'पिता के वचनों के रक्षार्थ मैं १४ वर्ष तक लक्ष्मण सहित वन में रहूँगा। तुम रघुकुल की मर्यादा निभाते हुए अयोध्या जाकर प्रजापालन

करो।' इस पर जाबालि ऋषि बोले, 'राम! परोक्ष की चिंता छोड़कर प्रत्यक्ष धर्म का पालन करना चाहिए।' राम ने कहा, 'मुनिवर! पिता के द्वारा किये गये कर्म का मैं हनन न करूँगा। मुझे अधर्म में प्रवृत्त न करें।' इसका प्रत्याख्यान करते हुए जाबालि ने कहा 'जिसको जलांजलि दे दी उसकी वाणी का पालन करना व्यर्थ है।' इस विवाद को समाप्त करने के लिए वशिष्ठजी बोले, 'राम! माता-पिता, वृद्ध और गुरु के वचन मान्य होते हैं। तुम मेरा कहना मानकर अयोध्या लौट चलो।' राम ने विनीत भाव से निवेदन किया 'गुरुवर! मैं पिता के वचन का पालन करने के लिए प्रतिश्रुत हूँ।' भरत ने भाई का दृढ़ निश्चय देखकर आर्तस्वर में पुनः कहा, 'जबतक प्रभु कृपा नहीं करेंगे, मैं निराहार और निर्जल रहकर यहीं सेवा में पड़ा रहूँगा।' राम उन्हें समझाते हुए बोले, 'भाई! ऐसा क्यों कहते हो? प्रायोपवेशन ब्राह्मणों का धर्म है, क्षत्रियों का नहीं। जीवित रहते मैं पिता के वचनों का उल्लंघन नहीं करूँगा और न अपने स्थान पर वनवास के निमित्त तुम्हारा प्रतिनिधित्व ही मुझे मान्य होगा। हमारा तुम्हारा इसी में कल्याण है कि दोनों स्वर्गस्थ पिता के वचनों का पालन करें।' रावणवध के इच्छुक वहाँ छद्मवेष में समुपस्थित देव-गंधर्व और ऋषियों ने राम के इन वाक्यों का सहर्ष अनुमोदन किया। फिर उन लोगों ने भरत को समझाते हुए कहा, 'वत्स! कैकेयी के कृत्य को निमित्तमात्र समझो।' भरत ने अन्त में कहा, 'मैं चक्रवर्ती साम्राज्य का भार वहन करने में सर्वथा असमर्थ हूँ। पृथ्वी-रक्षा का मुझमें किंचित् भी सामर्थ्य नहीं है।' इतना कहते-कहते उनका गला भर आया और वे राम के चरणों पर गिर पड़े। राम ने उन्हें गोद में बैठा लिया और बोले, 'भाई! मेरी आज्ञा का पालन करो। अयोध्या लौट जाओ। गुरु वशिष्ठ और इन वृद्ध मंत्रियों से पूछकर राज्यकार्य करो। मेरी प्रतिज्ञा अचल है।' वशिष्ठजी ने व्यवस्था दी, 'राम! अपनी पादुका भरत को दे दो। यही अपने प्रभाव से त्रैलोक्य-पालन करेगी।' राम ने भरत को चरणपीठ दे दिये। भरत ने उन्हें शिरोधार्य कर अयोध्या लौटना स्वीकार कर लिया।

भरत ने कुछ दिन ठहरकर समाज-सहित चित्रकूटस्थ मुनियों के आश्रमों का दर्शन किया, फिर भरद्वाजाश्रम तथा शृंगवेरपुर होते हुए वे अयोध्या लौट आये। माताओं को नगर में छोड़कर वे स्वयं नन्दिग्राम में कुटी बनाकर राम का स्मरण करते हुए कालयापन करने लगे। राम की पादुकाओं को सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर वे छत्र-चामर-व्यजनादि से उनकी पंचकाल सेवा में लीन रहते थे। प्रजा के सारे महत्त्वपूर्ण आवेदन पादुकाओं की सेवा में निवेदित होते थे। संदिग्ध विषयों में आकाशवाणी से व्यवस्था प्राप्त होती थी। आपत्तिकाल में स्मरण तथा स्तवन मात्र से पादुका सारे कष्ट दूर कर देती थी। उसके इस अप्रतिम प्रभाव की चर्चा तीनों लोकों में फैल गयी। अव्यवस्था तथा अराजकता के समर्थक रावण और वाणासुर को यह अच्छा न लगा। उन्होंने पादुकाहरण की योजना बनायी। दोनों वेष बदलकर रात के तीसरे पहर में नन्दिग्रामस्थ योगपीठ पर आये। किन्तु लाख प्रयास करने पर भी वे दोनों पादुकाओं को चोरी से उठाकर ले जाने में सफल न हो सके।

भरत के लौटने के पश्चात् अयोध्या के समीपवर्ती नन्दिग्राम तथा पालिग्राम के गोप-गोपियाँ गोपराज सुखित और मांगल्या के नेतृत्व में राम को मनाने उसी मार्ग से चित्रकूट गये। निषादराज और महर्षि भरद्वाज ने उनका यथोचित सत्कार किया। चित्रकूट पहुँचने पर सीता ने सब का भावपूर्ण आतिथ्य किया। उन्होंने अपनी नित्यसखियों का आह्वान कर उनके द्वारा अतिथियों के भोजन आवासादि की दिव्य व्यवस्था करायी। राम के आग्रह से सुखित ने दूत भेजकर शेष गोप-परिवारों को भी पशुओं सहित चित्रकूट बुला लिया। वहाँ गोचारण की पर्याप्त सुविधा थी। इसलिए वे सभी चिरकाल तक ठहरे रहे। राम ने चित्रकूट में गोपियों के साथ अनेक रास किये। स्फटिक शिला पर सीता और सहजा के साथ उनकी अंतरंग लीला चलती रही। इसी कारण चित्रकूट की गणना राम के तीन प्रमुख विहार स्थलों में होने लगी।[1] चित्रकूट-वास के समय राम के दर्शनार्थ दूर-दूर से ऋषि-मुनि आते रहे। एक बार सीता और लक्ष्मण सहित वे अत्रि-आश्रम पर गये। मुनियों को जल का कष्ट था। अतः उनकी इच्छानुसार राम ने मंदाकिनी के रूप में व्योमगंगा की अवतारणा की।

इस प्रकार दक्षिणापथ में राम का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ते देखकर उसे निरस्त करने के लिए रावण अध्यात्म-शक्ति का उपार्जन करने में जुट गया। शिव को प्रसन्न करने के लिए उसने नर्मदा-तट पर घोर तपस्या की। उसने उज्जैन में महाकालेश्वर, काशी में विश्वनाथ, गंगासागर-संगम पर हाटकेश्वर तथा कैलाश पर्वत पर जाकर पार्वतीनाथ की आराधना की। भूमंडल के विभिन्न प्रदेशों में घूम-घूमकर उसने निविड़ कान्तारों में वास करते हुए कठिन तपश्चर्या की। कालान्तर में शिव की कृपा से वह सभी शास्त्रों में पारंगत हो वेदाचार्य के रूप में प्रसिद्ध हो गया। विद्याबल की भाँति बाहुबल में भी वह अप्रतिभ हो गया। उस मदोन्मत्त ने यक्षराज कुबेर को भगाकर उनकी राजधानी लंका पर अधिकार कर लिया। तब पुलस्त्य ऋषि ने विधिवत् अभिषेककर उसे लंकापुरी का राजा बना दिया। इसके उपलक्ष्य में रावण ने व्योमगंगा के जल से शिव को अभिषेक कराया और उनकी पूजा में अनेक बार अपने सिर काट-काटकर चढ़ाये। अवढरदानी शिव ने वरदान देकर ब्रह्मादि देवों को उसका आज्ञानुवर्ती बना दिया। वरदर्पित हो उसने त्रैलोक्य-विजय का अभियान किया। पृथ्वी के सारे देश जीतकर उसने वहाँ अपने सहधर्मी राक्षसों को बसा दिया।

इसी विजय-यात्रा में वह एक बार नर्मदा तीर पर गया। संयोगवश उस समय वहाँ सहस्रार्जुन नामक महापराक्रमी राजा भी पड़ाव डाले पड़ा था। उसने जल-क्रीड़ा करते हुए अपनी विशाल भुजाओं से नदी का प्रवाह रोक दिया। इसके फलस्वरूप रावण की छावनी जलप्लावित हो गयी। उसके भोजन, पान तथा पूजा

---

१. राम की रासलीला के, वरीयता क्रम से, तीन केन्द्र माने जाते हैं—प्रमोदबन महारास, चित्रकूट मध्यरास और लंका अधम रास की स्थली है।

की सारी सामग्री डूब गयी। रावण ने अपने सैनिकों को वहाँ से सहस्रार्जुन को शीघ्र हटाने का आदेश दिया। सहस्रार्जुन तथा रावण की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। रावण की सेना पराजित हुई और वह बन्दी बनाकर लोहे के पिंजड़े में डाल दिया गया। उसके कुंभकर्णादि सेनाध्यक्ष रणक्षेत्र से भाग गये। उन्होंने पुलस्त्य ऋषि से सारा समाचार कहा। रावण को छुड़ाने के लिए पुलस्त्य स्वयं महिष्मतीपुरी गये और सहस्रार्जुन से अपने दुर्विनीत पौत्र को प्राणदान देने का अनुरोध किया। सहस्रार्जुन ने ऋषि के कहने पर उसे मुक्त कर दिया।

रावण को इस अपमान के कारण बड़ी ग्लानि हुई। महर्षि पुलस्त्य ने सांत्वना देते हुए उससे कहा, 'चिंता मत करो। तुम कालान्तर में ख्यातिलाभ करोगे। किन्तु इसके लिए कठोर तप अपेक्षित है। शिवाराधन से अभीष्ट सिद्ध होगा।' पितामह के आदेशानुसार वह शिवार्चन के लिए कैलाश गया। वहाँ से दिव्यलिंग लाकर उसने लंका में स्थापित किया। शिव प्रसन्न हो गये। उनकी कृपा से उसने पंचतत्त्वों के सहित ब्रह्मा और इन्द्र को भी वश में कर लिया। अब केवल विष्णु बच रहे। रावण ने अपनी सारी शक्ति उनके प्रभाव के उन्मूलन में लगाने का संकल्प किया। उसके द्वारा प्रोत्साहित हो मेघनाद ने वैष्णवधर्म का सर्वनाश कर विश्व-विजय का बीड़ा उठाया। इस कार्य में सहायता के लिए सुलोचना ने पिता का स्मरण किया। शेष ने उपस्थित होकर जामाता को इन्द्र-विजय का वरदान दिया। मेघनाद ने देवलोक पर आक्रमण कर दिया। उसके आतंक से इन्द्र मरुद्गणों के साथ भागकर गिरि-कंदराओं में छिप गये, असंख्य देवताओं का वधकर वह देवस्त्रियों और देवकन्याओं को बंदी बना लंका ले आया। इसी प्रकार किन्नरों, यक्षों और मनुष्यों को भी हरा-कर त्रैलोक्य-विजयी बन वह सेना-सहित लंका लौट आया। शक्तिमद से उन्मत्त राक्षसों के उत्पात से विश्व थर-थर काँपने लगा।

राम को अत्रि आश्रम पर आया जानकर दंडकारण्यवासी सुतीक्ष्ण, उद्दालक, विश्वामित्र, च्यवन, दुर्वासा आदि मुनि वहाँ गये। उन्होंने राक्षसों द्वारा किये गये अत्याचारों की करुण-गाथा सुनाते हुए राम से कहा, 'रावण द्वारा भेजे गये नृशंस राक्षस मुनियों को खा जाते हैं और उनके बालकों को चुराकर मार डालते हैं। इससे हमारे आश्रम सूने हो चले हैं। पति और पुत्र के शोक में स्त्रियाँ तथा माताएँ विलख रही हैं। तपस्वियों की हड्डियों से भूमि पट गयी है। दक्षिणापथ प्रायः ब्राह्मणशून्य हो गया है। यज्ञों में राक्षस अनेक प्रकार से विघ्न उपस्थित करते हैं। मल और मूत्र की वर्षा कर उसे अपवित्र करते हैं, यज्ञाग्नि बुझा देते हैं। स्त्रियों तथा कन्याओं को बलात् भ्रष्ट करते हैं और देवालयों को नष्ट कर डालते हैं। ये सारे अत्याचार लंका-पति रावण के संकेत से हो रहे हैं। उसके वध से ही हमारा धर्म और जीवन रक्षित हो सकता है। इसके लिए आप ही सक्षम हैं। हम आपके शरणागत हैं, रक्षा करें।' मुनिगण यह निवेदन कर ही रहे थे कि उसी समय वहाँ इन्द्र, मरुद्गण, कुबेर, ब्रह्मादि देवता भी आ गये और अपनी अकथनीय विपत्ति का वर्णन करने लगे। राम ने सबको आश्वासन देकर विदा किया। आश्रम से प्रस्थान करते समय अनुसूया ने

योग प्रभाव से सीता को दिव्य वस्त्राभूषण तथा अंगरागादि सौन्दर्य प्रसाधनों से अलंकृत किया। इसके पश्चात् वे कुछ दिन चित्रकूट और ठहरे। इस बीच मृगया करते समय राक्षसों ने उन पर अनेक आक्रमण किये, किन्तु अपने अतुल बल से राम ने शत्रुओं के सारे प्रहार प्रभावहीन कर दिये।

चित्रकूट से पंचवटी जाते हुए उनकी विराध नामक भयानक राक्षस से भेंट हो गयी। राम ने उसका संहारकर उस प्रदेश के निवासी मुनियों की चिंता दूर की। उधर चित्रकूट में राम की दीर्घकाल तक अनुपस्थिति से व्याकुल गोप-गोपी उन्हें ढूँढते हुए अत्रि-आश्रम पर गये। महर्षि अत्रि ने उन्हें राम का यह संदेश बताकर लौटा दिया कि वे रावणवध के पूर्व उनका दर्शन नहीं कर सकेंगे। हताश हो सारा गोप-समाज अवध प्रदेशस्थ व्रजभूमि को लौट गया।

राक्षसबहुल प्रदेश में यात्रा करते हुए राम आगे चले। उनके पीछे सीता थीं फिर लक्ष्मण। अगस्त्य ऋषि के आश्रम पर पहुँचने पर उनका बड़ा स्वागत हुआ। ऋषि-पत्नी लोपामुद्रा ने सीता की यथोचित अभ्यर्थना की। अगस्त्य ऋषि ने उनके निवास के लिए गोदावरी तीर पर स्थित पंचवटी नामक स्थान को सर्वथा उपयुक्त बताया। उनके निर्देशानुसार राम भाई और स्त्री-सहित घने जंगलों को पार करते हुए आगे बढ़े। मार्ग में राक्षसों द्वारा मारे गये मुनियों की अस्थियों का विशाल समूह देखकर वे करुणाभिभूत हो उठे। पंचवटी पहुँचकर राम वहाँ की प्राकृतिक शोभा देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने पर्णकुटी बनायी और अपने १४ वर्षीय वनवास के साढ़े बारह वर्ष वहीं व्यतीत किये। उसके समीप ही अंबिकेश महादेव का मठ था। पंचवटी-प्रवासकाल में वे इस दिव्यलिंग की निरन्तर पूजा करते रहे।

रावण के भाई खर, दूषण और त्रिशिरा जनस्थान में सेना-सहित निवास करते थे। उनके अत्याचारों से सारा मुनिसमाज अहर्निश आतंकित रहता था। एक दिन रावण की बहन शूर्पणखा कामभाव से प्रेरित हो अत्यंत सुंदर वेष धारणकर राम के समीप आयी। राम ने पूछा 'देवि ! इस विजन वन में तुम अकेली क्यों घूम रही हो ?' वह बोली, तुम्हारे सौन्दर्य पर आसक्त होकर रमण करने की इच्छा से। 'राम ने कहा, 'यदि तुम अत्यंत कामारूढ़ हो तो मेरे भाई से संपर्क स्थापित करो। मैं तो एक पत्नीव्रत हूँ।' यह सुनकर वह लक्ष्मण के पास गयी, किन्तु उन्होंने उसे यह कहकर निराश लौटा दिया कि तुम पहले मेरे बड़े भाई से विवाह का प्रस्ताव कर चुकी हो, इसलिए मेरे लिए अग्राह्य हो। लक्ष्मण की सिद्धान्तवादिता से निराश हो वह पुनः राम के पास गयी। उसकी विवेकशून्य मुग्धता देखकर जानकी हँस पड़ीं। इससे अपने को अपमानित अनुभव कर वह बिगड़कर बोली, 'तुझे इसका दंड अभी देती हूँ।' यह कहकर वह कराल रूप धारणकर सीता पर झपट पड़ी। लक्ष्मण को यह समझते देर न लगी कि वह राक्षसी है। राम के संकेत से उन्होंने खड्ग निकालकर उसके नाक-कान काट डाले। रक्त बहाती हुई वह आकाश में उड़ी। अपने भाई खर-दूषण के पास जाकर उसने इस अपमान का बदला लेने के लिए अनुरोध किया। उसकी प्रेरणा से तीनों भाई सेना सजाकर चढ़ आये। राम ने लक्ष्मण से कहा, 'तुम

सीता को लेकर कुटी में चले जाओ। मैं इनसे अकेले निपट लूँगा।' इतने में राक्षस-सेना कुटी के समीप आ गयी। राम ने घमासान युद्ध करके तीनों को धराशायी कर दिया। इसके बाद शूर्पणखा लंकापुरी गयी। उस समय संध्या हो चुकी थी। उसने रावण के सामने करुण-क्रंदन करते हुए सारा वृत्तान्त निवेदित किया, फिर बोली, 'तुम कैसे जगद्विजयी हो; जिसके भाई एक सामान्य तापस द्वारा मारे जायँ और बहन इस प्रकार कुरूप की जाय। यदि इसका बदला न लिया गया तो मैं जहर पीकर प्राण त्याग दूँगी। मेरा अपमान करने वाले राम के साथ एक सुंदरी स्त्री है। उसने मेरी हँसी की है। उसे हर लाओ तभी मेरा संताप मिटेगा।'

शूर्पणखा का परिवेदन सुनकर रावण जल उठा। कुमति के रूप में सीता उसके हृदय में प्रविष्ट कर गयीं। उसने निश्चय कर लिया कि इस अपमान का प्रतिशोध मात्र स्त्रीहरण है। भाइयों के मारे जाने का संवाद पाकर उसे अपार दुःख हुआ। उसने उन तीनों की घृतोदक-क्रिया करके मारीच के घर जाकर एकांत में मंत्रणा की। उसके अनुरोध पर मारीच स्वर्णमृग का रूप धारण करने पर सहमत हो गया। रावण बोला, 'तुम्हारा पीछा करते-करते जब राम दूर निकल जायेंगे तो मैं सीता को हर लाऊँगा। फिर उसे डरा-धमकाकर अपनी अंकशायिनी बना लूँगा। साधु परकार्य सिद्धि के लिए आत्मविनाश करते हैं, तुम मेरा इतना उपकार करो।' इसके पश्चात् शीघ्र ही रावण मारीच को लेकर पंचवटी गया। पंचवटी से थोड़ी दूर पर रथ छोड़कर उसने ब्राह्मण का रूप धारण कर लिया और मारीच को स्वर्णमृग का रूप धरकर आश्रम के सामने विचरने के लिए भेज दिया।

उस समय दिन का तीसरा पहर था। राम, सीता और लक्ष्मण तीनों कुटी में विश्राम कर रहे थे। सीता की दृष्टि अकस्मात् स्वर्णमृग पर पड़ी। वे पति से बोलीं, 'देखिए इसका रंग कितना सुंदर है, इस दिव्य मृग की स्वर्णिम त्वचा से मैं कंचुकी बनाऊँगी। इसका मांस भी स्वादिष्ट होगा। वह हमारे भोजन के काम आयेगा। सींग आपके हाथों में शोभित होगी।' राम बोले, 'प्रिये! यह मायामृग प्रतीत होता है। जनस्थान में अनेक राक्षस छद्मवेष में घूमते रहते हैं। अभी कल हमने रावण की बहन को कुरूप किया है। हो-न-हो उसीका बदला लेने के लिए कोई राक्षस इस वेष में रावण द्वारा भेजा गया है। यहाँ का सारा वातावरण अत्यंत संदिग्ध है। हम किसी चौथे पर विश्वास नहीं कर सकते। राजपुत्री! समय की प्रतीक्षा करो। तुमने साम्राज्य का वैभव छोड़ा। इस क्षुद्र लोभ का भी संवरण करो।' इस प्रसंग में उन्होंने सीता को छद्मवेषधारी राक्षस द्वारा हरी गयी एक सुंदरी रानी की कथा सुनायी। किन्तु सीता अपने हठ पर दृढ़ रहीं। राम भवितव्यता को अमिट मान लक्ष्मण पर सीता की रक्षा का भार छोड़कर मृग के पीछे चले। उन्होंने जाते समय भाई को स्पष्ट आदेश दिया कि जब तक मैं न लौटूँ, आश्रम से बाहर न जाना। राम मृग का पीछा करते-करते बहुत दूर निकल गये। तब अवसर पाकर वाण छोड़ा। वह उसकी छाती में लगा। प्राण छोड़ते समय उसने तीन बार 'हा लक्ष्मण!' कहा। यह शब्द सुनकर सीता बहुत घबड़ा गयीं। उन्होंने पति पर विपत्ति की आशंका

करते हुए लक्ष्मण को तत्काल उनकी सहायता के लिए जाने को कहा। लक्ष्मण बोले, 'यह शब्द प्रवंचनापूर्ण है। आर्य ने मुझे तुम्हारे रक्षार्थ यहाँ नियुक्त किया है। मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकता। यह विश्वासघात होगा।' सीता क्रुद्ध होकर बोलीं, 'तुम राज्यलक्ष्मी के लोलुप हो।' यह सुनकर लक्ष्मण रोते हुए बोले, 'देवि! काल-विपर्यय से तुम ऐसा कह रही हो। मैं राम को पिता और तुम्हें माता मानता हूँ। तुम्हारे आक्षेप से विद्ध होकर मैं जा रहा हूँ किंतु धनुष-कोटि से एक रेखा खींचे जाता हूँ। इसे पार न करना।'

इसके अनन्तर उन्होंने सीता की रक्षा के लिए पंचवनस्पतियों एवं वनदेवी को नियुक्त किया। लक्ष्मण के आँखों से ओझल होते ही रावण आश्रम के द्वार पर आ गया। उसे देखते ही वनस्पतियाँ हिलने लगीं। यज्ञाग्नि अकस्मात् प्रज्वलित हो उठी। रावण ने बहुत प्रयत्न किया किन्तु वह लक्ष्मण-रेखा पार न कर सका। फिर बोला 'देवि! दीन ब्राह्मण को भिक्षा दे दो।' रेखा से बाहर आने के पूर्व सीता का मूलस्वरूप गार्हपत्य अग्नि में प्रविष्ट कर गया। फिर मानुषीरूप में वे लीलार्थ रेखा पार कर भिक्षा देने रावण के सामने चली गयीं। रावण ने अपना भयानक रूप प्रकट करके सीता को उठाकर अपने कंधों पर बिठा लिया और आकाशमार्ग से लंकाभिमुख हुआ। उस दिन माघ शुक्ला चतुर्दशी थी। राक्षसगृहीता सीता के रुदन का शब्द मार्गस्थ जटायु के कानों में पड़ा। उसने पहचान लिया कि वह अवश्य उनके मित्र अयोध्या-नरेश दशरथ की कुलवधू है। उसने रावण को रोका और बडी देर तक उससे युद्ध करता रहा। अंततः दोनों पंखों के कट जाने से वह पृथ्वी पर गिर पडा। रावण सीता को लेकर लंका चला गया। राम के आने तक पक्षिराज जटायु अपना प्राण संजोये रहा।

उधर मारीचवध के अनन्तर राम कुटी की ओर लौट ही रहे थे कि उन्हें लक्ष्मण सामने आते दिखायी दिये। भाई द्वारा स्पष्ट शब्दों में मना करने पर भी सीता को कुटी में अकेली छोड़कर आने का कारण पूछने पर लक्ष्मण ने सीता के तीव्र अनुरोध का वृत्तान्त कह सुनाया। राम सशंकित हो उठे। दोनों भाई व्यग्रचित्त हो आश्रम की ओर चले। निकट आने पर उन्हें वहाँ के लता-वृक्ष और पक्षी रोते एवं पशु अमंगल सूचक शब्द करते दिखायी दिये। अप्रत्याशित अकल्याण की कल्पना मात्र से राम का शरीर जलने लगा। उन्हें लगा कि अवश्य ही आश्रम में सीता नहीं हैं। आगे बढने पर कुटी को सीतारहित पाकर वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। लक्ष्मण ने गोदावरी से ठंढा पानी लाकर उनका मुख सींचा। भाई की विरह चेष्टाएँ-देख और विलाप सुनकर उनका हृदय फटने लगा। फिर धैर्यधारण कर वे बोले, 'नाथ! बताइये हमें आगे क्या करना है? तुम्हारी सेवा में यह प्राण अर्पित है।' इस घटना के बाद राम का मन उस स्थान से उचट गया। पर्णकुटी त्यागकर दोनों भाई सीता को खोजते हुए आगे बढ़े।

गोदावरी तीर पर सीता के पदचिह्नों को देख राम अचेत होकर गिर पड़े। लक्ष्मण ने उठाकर उन्हें ढाढ़स बँधाया। कुछ दूर चलने पर उन्होंने मार्ग में जटायु

को निश्चेष्ट पड़ा देखा। उनके समीप जाने पर वह बोला 'राम! तुम्हें देखने के लिए ही मैं अबतक प्राण रक्षित किये रहा। सीता को हरकर लिये जाते हुए रावण को मैंने रोका था। उसीसे युद्ध करते-करते मेरी यह दशा हुई।'

इतना कहकर उसने प्राणत्याग दिया। राम ने देवासुर संग्राम तथा मृगया में सहायक अपने पिता के अभिन्न मित्र की अपने हाथों दाह-क्रिया करके जलांजलि दी।

जटायु के मुख से रावण द्वारा सीता के हरे जाने का निश्चित समाचार पाकर राम का आक्रोश दीप्त हो उठा। वे लक्ष्मण से बोले, 'यदि सीता जीवित है तो मैं जीवन धारण करूँगा अन्यथा चराचर जगत् को भस्म कर डालूँगा।' यह सुनकर देवता भय से काँपने लगे। लक्ष्मण ने समझाया, 'प्रभो! आप विश्वरक्षक हैं। रावण को मारकर त्रिलोकी को सुखी करें।' इसके बाद घने वन पार करते हुए दोनों भाई शापित कबंध के पास पहुँचे। राम ने अल्पप्रयास से ही उस मानवभक्षी का वध करके सद्गति प्रदान की। मरते समय उसने कहा, 'पतितपावन! समुद्र के बीच में स्थित लंकापुरी रावण की राजधानी है। उसको जीतने में बालि का भाई सुग्रीव सहायक होगा। यदि वह चिरकांक्षित किष्किंधा का राज्य और तारा सुन्दरी को पा जाये तो प्रत्युपकार में सीतान्वेषण की व्यवस्था कर देगा। उसके अधीन असंख्य वानर-सेना है।' इसे दैवी प्रेरणा मानकर दोनों भाई ऋष्यमूक की ओर चले।

मार्ग में ऊँचे-ऊँचे पर्वतों और दुर्गम कंदराओं से होते हुए वे पंपासर पहुँचे। सरोवर में स्नानकर कुछ देर विश्राम किया। वहाँ पक्षीयुग्मों को क्रीड़ा करते देखकर राम व्याकुल हो उठे। वे बड़ी देर तक सरोवर के तट पर बैठे प्रलाप करते रहे। स्वस्थ होने पर उसके किनारे स्थित मुनियों के आश्रमों में जाकर उन्होंने विज्ञान-कथाएँ सुनीं। संध्या समय वहीं ठहर गये। रात में बहुत देरतक लक्ष्मण क्लांत एवं दुःखित भाई का चरण दबाते रहे। वियोगी राम को भाई के शील एवं निष्ठापूर्ण सेवा से अपार सन्तोष हुआ।

पंपासर से ऋष्यमूक जाते हुए राम परमभक्ता शबरी नामक भीलनी के घर गये। रास्ते में मुनियों ने उनका आतिथ्य करना चाहा किंतु वे रुके नहीं। शबरी उद्विग्नतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही थी। उत्कंठा से कभी भीतर जाती, कभी बाहर आती। पदार्पण करते ही उसने दोनों भाइयों का पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, मधुपर्क आदि से स्वागत किया। राम की सेवा के निमित्त उसने अनेक प्रकार के फल और साग पृथक्-पृथक् दोनों में सजाये थे। उनमें से परीक्षा के लिए उसने कुछ स्वयं चखकर रखे थे। राम ने मुक्त-कंठ से प्रशंसा करते हुए उन्हें खाया। शबरी भक्तवत्सल के अचिंत्य अनुग्रह से अभिभूत हो गयी। आराध्यदेव को जूठे फल खिलाने से उसे बड़ी ग्लानि हुई। राम ने उसका मनस्ताप दूर करने के लिए कहा, 'देवि! तुम तीर्थपावनी हो। आगामी कल्प में तुम मुझे प्रमोदवन में प्राप्त करोगी। तब तक यहीं तप करते हुए भक्तियुक्त शरीर धारण करो।' यह कहकर चलते हुए उसने उन्हें सादर ताम्बूल अर्पित किया।

मुनियों को राम का यह आचरण अच्छा नहीं लगा। वे आपस में कहने लगे,

'आश्चर्य है ! राम ने हम यज्ञव्रती मुनियों की उपेक्षाकर मंदबुद्धि एवं दुराचारिणी भीलिनी का आतिथ्य ग्रहण किया। बड़ों की बुद्धि उल्टी होती है।' इस प्रकार उन लोगों ने शबरी और राम दोनों की भरपेट निन्दा की। दैवयोग से इस निराधार आक्षेपजनित पाप का दंड उन्हें तत्काल भोगना पड़ा। सारे आश्रमों की यज्ञाग्नि अकस्मात् बुझ गयी, नदी का जल रक्तमय हो गया। हव्य-सामग्री कीड़ों से भर गयी। इससे उनके स्नान-यज्ञादि कर्म बन्द हो गये। धर्मनाश का भय उपस्थित हो गया।

इसी समय महर्षि अगस्त्य का उधर आना हुआ। मुनियों ने अपनी दुरवस्था उनसे कह सुनायी। अगस्त्य बोले, 'ब्राह्मणो ! तुम पापकर्म से तेजोहीन हो गये हो। रामावतार लोकमंगल के लिए हुआ है। वे ही यज्ञात्मा हैं, यज्ञभुक् हैं। अज्ञानवश तुम उन्हें पहचान नहीं सके। उन्हीं की शरण में जाने से इस कष्ट से निवृत्ति मिल सकती है।'

अगस्त्य के निर्देशानुकूल राम को ढूँढ़ते हुए मुनि लोग ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे। वहाँ उनकी दोनों भाइयों से भेंट हुई। मुनियों ने अत्यन्त आर्तस्वर में क्षमा-याचना की। राम ने कहा, 'मेरे लिए भक्तों का अपमान असह्य है। महायोगिनी शबरी का तुमलोगों ने तिरस्कार किया है। वह सर्वदेवप्रणम्य है। उसी की आराधना करने से तुम्हारा पाप कटेगा।' मुनि लोग वहाँ से अगस्त्य ऋषि के साथ शबरी के घर गये और उससे अनुनय-विनयपूर्ण शब्दों में निवेदन किया, 'माता ! ब्राह्मणों का पाप क्षमा करो। अपना पैर धोकर हमारे आश्रम की नदी को पवित्र करो।' शबरी बोली, 'ब्राह्मणदेव ! मैं आपके जूठनयोग्य भी नहीं हूँ।' यह कहकर वह महर्षि अगस्त्य के पैरों पर गिर पड़ी। अगस्त्य के अनुरोध से वह मुनियों के आश्रम पर गयी। उसके आगमन मात्र से सारा आश्रम पवित्र हो गया। मुनियों के धर्मकार्य पूर्ववत् चलने लगे।

ऋष्यमूक गिरि पर विचरण करते हुए एक दिन राम-लक्ष्मण ने सुग्रीव और हनुमान के साथ नलनीलादि प्रमुख वानरों को बैठे देखा। उस समय वे बालि-वध के लिए मंत्रणारत थे। सुग्रीव बालि के भय से ही उस अभिशप्त पर्वत पर निवास करता था। इसलिए उसे दो अपरिचित धनुर्धरों को देखकर शंका हुई। उसने हनुमान को उनका परिचय प्राप्त करने के लिए भेजा।

राम के समक्ष उपस्थित होकर वे बोले, 'मैं वायुपुत्र हनुमान हूँ। सुग्रीव ने मुझे आपके पास यह जानने के लिए भेजा है कि आपलोग कौन हैं और किस उद्देश्य से यहाँ पधारे हैं ? मैं मनसा-वाचा-कर्मणा आपका अनुगत हूँ।' राम उन्हें देखते ही प्रेम-विह्वल हो गये और गद्गद् स्वर में बोले, 'हे महाबली ! आओ तुम्हें आलिंगन करूँ।' यह कहकर उन्होंने हनुमान को गले लगा लिया। फिर कहा, 'मैं अयोध्यानरेश दशरथ का पुत्र राम हूँ। मेरी स्त्री राक्षसराज रावणद्वारा हर ली गयी है। उसी को खोजते हुए घूम रहा हूँ।' हनुमान ने राम से कहा, 'भाई के अत्याचारों से त्रस्त सुग्रीव आपकी सहायता करना चाहता है। उसके पास वानरों की विशाल सेना है।

उससे मित्रता कर लीजिए।' राम ने इसके उत्तर में कहा, 'मैं भी सुग्रीव से मैत्री कर उसका उपकार करना चाहता हूँ।' हनुमान बोले, 'भगवन्! आप सर्वसमर्थ हैं, पूर्णकाम हैं। आपको सहायक की आवश्यकता नहीं है। फिर भी मैं सुग्रीव को बुलाये लाता हूँ।' यह कहकर वे सुग्रीव के पास गये।

वह प्रतीक्षा कर ही रहा था, तुरन्त मंत्रियों-सहित साथ चल पड़ा। राम के सम्मुख उपस्थित होकर सबने पृथक्-पृथक् दंड प्रणाम किये। हनुमान ने राम से सुग्रीव की मैत्री करायी फिर बोले, 'सुग्रीव! संसार में जिसका दास्य दुर्लभ है, उसकी मित्रता तुझे अनायास प्राप्त हो गयी है।' सुग्रीव ने कृतकृत्य होकर कहा, 'प्रभो! अब अपने स्वरूप से विश्व को आनन्दपूर्ण और चरित से दिशाओं को ज्योतिर्मय कीजिए।' इसके पश्चात् उसने सीता के आभूषण लाकर राम को दिये। उन्हें देखते ही राम व्याकुल हो गये। कंकण, केयूर और ग्रैवेयक को बारी-बारी से संबोधन कर वे देर तक विलाप करते रहे। सुग्रीव ने सांत्वना प्रदान करते हुए कहा, 'जानकी के कारण ही रावण की मृत्यु लिखी है। इसीलिए उस पापी ने उनका हरण किया है। आप घबराएँ नहीं। मैं असंख्य वानरों को भेजकर उनका संधान कराऊँगा और धर्म-नाशक रावण के वध में सर्वप्रकारेण सहायक हूँगा।' उसके इन उत्साहवर्धक शब्दों को सुनकर राम बोले, 'जानकी को एक-एक क्षण युग के समान बीत रहा होगा। इसलिए शीघ्रता करो। मैं बालि का वध करके तुझे निरापद कर दूँगा।'

राम के इस प्रकार आश्वासन देने के बाद सुग्रीव ने मन-ही-मन सोचा, 'ये असामान्य सामर्थ्यवान् जान पड़ते हैं किन्तु मर्त्यशरीर होने से शंका होती है। इस हेतु परीक्षा लेने के बाद ही इनकी सहायता करना उचित होगा।' यह विचारकर उसने राम से कहा, 'सामने ताड़ के सात वृक्ष हैं, इन्हें जो एक बाण से काटकर गिरा देगा वही बालि-वध में सक्षम होगा।' राम ने वक्ररेखा में स्थित उन सातों ताड़-वृक्षों को एक ही बाण में धराशायी कर दिया और उनके मूल में रहनेवाले सर्पों को भी मार डाला। इसके अनन्तर सुग्रीव ने दुंदुभि नामक दैत्य की हड्डियाँ दिखाते हुए राम से कहा, 'हिमालय की भाँति विशदाकार इस अस्थि-पंजर का उद्धार कीजिए।' राम ने बायें हाथ से धनुषकोटि द्वारा उसे उठाकर आकाश में फेंक दिया। इन दोनों परीक्षाओं में राम को खरा उतरते देखकर सुग्रीव को उनकी दैवीशक्ति पर पूरा विश्वास हो गया। बालि से प्रत्यक्ष संघर्ष में विजय-प्राप्ति की आशा लिये हुए वह प्रसन्न मन अपने पर्वतीय प्रवास स्थान को चला गया।

दूसरे दिन बालि के प्रासाद के सामने जाकर सुग्रीव उसे द्वंद्वयुद्ध के लिए ललकारने लगा। बालि पहले तो भीरुचित्त छोटे भाई की मूर्खता पर हँसा, किंतु उसके बार-बार आह्वान् करने पर बद्धकक्ष हो बाहर निकला। दोनों में कुछ देर तक घोर युद्ध हुआ। गदा, शक्ति, वृक्षादि का खुलकर प्रयोग हुआ। अंत में मुष्टिका युद्ध होने लगा! बालि के घातक प्रहार से सुग्रीव बुरी तरह घायल हो गया। वह खून बहाते भागता हुआ राम के पास आकर बोला, 'मित्र! तुमने धोखा दिया। किसी प्रकार प्राण बचाकर आया हूँ। मैं इसी डर से भागा-भागा फिरता था। तुम्हारे

बल पर ही पुनः भिड़ने गया। उसका फल पा गया। राम ने घायल सुग्रीव का शरीर हाथ से सहलाया। उनके स्पर्शमात्र से उसकी सारी व्यथा दूर हो गयी। सुग्रीव के स्वस्थ होने पर राम ने कहा, 'तुम दोनों भाई एक ही आकृति के हो। इसलिए मैं दुविधा में पड़ गया कि संधान करने पर वाण कहीं तुम्हें ही न लग जाय और मैं मित्रवध के पाप का भागी वनूँ। एक वार तुम फिर जाकर वालि से भिड़ो। अवकी वार उसका अवश्य प्राणान्त कर दूँगा।' यह कहकर राम ने पहचान के लिए उसके गले में फूलों की माला पहना दी।

राम के द्वारा प्रोत्साहित सुग्रीव पुनः वालि से युद्ध करने गया और राजद्वार पर जाकर गर्जने लगा। वालि ने कहा, 'अवकी वार इस दुष्ट को जीवित नहीं छोड़ूँगा। प्रतीत होता है किसी सवल का सहारा पा गया है।' तारा को अनागत भविष्य की छाया प्रत्यक्ष दिखायी देने लगी। उसने पति को रोकना चाहा किंतु वह बलदृप्त, स्त्री के चेतावनीपूर्ण शब्दों की अवहेलना कर, युद्ध-क्षेत्र में जा सुग्रीव से भिड़ गया। राम ने लक्ष्यकर वाण छोड़ दिया। वह वालि के हृदय में बिंध गया जिससे अचेत हो वह महापराक्रमी पृथ्वी पर गिर पड़ा। चतुर्दिक् हाहाकार मच गया। राम भी उसे देखने गये। अन्तिम साँसें चल रही थीं। स्वार्थप्रेरित हो उसे निरपराध मारने के कारण राम मन-ही-मन बहुत दुःखी हुए। राम को सामने खड़ा देखकर बालि ने उनसे सुग्रीव के साथ मैत्री करने का कारण पूछा। राम ने कहा, 'मेरी पत्नी को रावण हर ले गया है। मैं उसके वध में सहायक व्यक्ति की खोज में था। यही हमारी सुग्रीव से मैत्री का हेतु है और तुम्हारे वध का भी।' वालि बोला, 'इतने छोटे से काम के लिए आपने सुग्रीव से मिलकर मेरा वध किया। मैं रावण को कक्ष में दबाकर स्त्रियों के मनोरंजन के लिए यहाँ ले आया था। आपकी आज्ञा पाकर उसे अनायास पकड़ लाता।' इतना कहते-कहते उसकी वृत्तियाँ रामपद में लीन हो गयीं। राम का चरणस्पर्श करते हुए शरीर त्यागकर उसने योगिदुर्लभ गति प्राप्त की। राम ने सुग्रीव को किष्किंधा का राजा बनाकर अंगद को युवराज पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

वर्षागम हो चुका था। अतः चातुर्मास व्यतीत करने के लिए राम भाई सहित प्रवर्षण पर्वत पर चले गये। वहाँ की प्राकृतिक शोभा सीता के वियोग में उन्हें अत्यंत दाहक लगी। एक दिन अपनी स्थिति का विश्लेषण करते हुए वे विषण्ण मन लक्ष्मण से कहने लगे, 'मेरे कारण परिवार के सभी लोगों को कितना कष्ट झेलना पड़ा? पिता ने शरीर छोड़ा, भरत व्रतनिष्ठ हो तपोमय जीवन बिता रहे हैं। तुम्हें मेरे साथ कष्ट भोगना पड़ रहा है और सीता रावण की बंदिनी होकर असह्य यातना भोग रही हैं। कहाँ हमारा निर्मल कुल और कहाँ यह कलंक! मैंने अधर्म से बालि को मारा। इस पाप के कारण मुझे कभी मुक्ति नहीं मिलेगी।' लक्ष्मण ने इस प्रकार चिंतायुक्त राम को सांत्वना देते हुए धैर्य धारण कराया। किसी भाँति वर्षा बीती।

एक दिन राम ने भाई से कहा, 'सुग्रीव ने सीता की खोज कराने का वादा किया था। प्रतीत होता है रूपवती तारा को पाकर वह विलासमग्न हो गया

है। तुम अभी किष्किंधा जाकर राज्यमद से अंधे उस वानर को मेरे पास ले आओ।' लक्ष्मण बोले, 'आपके कारण ही उसे राज्य मिला। अब यदि वह सहायता करने से विमुख होता है तो मैं उसे मार डालूँगा।' राम ने कहा, 'तुम उसे केवल मेरे पास तक ले आओ, फिर प्रबोध हो जायगा।' लक्ष्मण के किष्किंधा चले जाने पर राम दिव्य शरीर से लंका गये वहाँ अशोकवाटिका में सीता ने प्रमोद-वनश्री का प्रादुर्भाव कराया और रावण द्वारा हरी गयी असंख्य देव, गंधर्व तथा राजकन्याओं के साथ रासलीला का विशाल आयोजन हुआ।

लक्ष्मण जिस समय किष्किंधा के राजभवन में पहुँचे, सुग्रीव सो रहा था। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद उन्होंने प्रतिहार द्वारा अपने आने के समाचार के साथ ही उसके पास संदेश कहलाया, तुम अन्तःपुर के भोग-विलास में मग्न हो, तुम्हारा वियोगी मित्र सहायता की प्रतीक्षा कर रहा है। मेरे साथ शीघ्र उनसे मिलने चलो अन्यथा तुम्हारी भी वही गति होगी जो बालि की हुई।' तारा ने यह सुनकर लक्ष्मण को सादर प्रासाद में बुलाया और उनका यथोचित सत्कार किया। सुग्रीव ने अपनी असावधानी के लिए क्षमा-याचना की। रात को लक्ष्मण वहीं ठहर गये। प्रातः वानर यूथपतियों तथा अंगद के साथ सुग्रीव शिविकारूढ़ हो राम से मिलने चला। माल्य-वान पर्वत पर उसने जटाधारी राम को कैलाशनाथ शिव की भाँति योगासन से बैठे हुए देखा। निकट पहुँचकर उसने दंडवत् किया। राम ने सुग्रीव का आलिंगन किया और उसे अंगद सहित अपने निकट बैठाया। फिर लक्ष्मण से बोले, 'भाई! तुम्हीं इन्हें मेरे पास ला सकते थे अन्यथा इस राजा को मुझ वनवासी की सुधि कैसे आती?' सुग्रीव ने निवेदन किया, 'प्रभो! आपको भूलनेवाला यमद्वार को जायगा। आपने बालि से प्राणरक्षा कर मेरा उद्धार किया। मैं कृतार्थ हो गया। अपराध क्षमा करें।' इन दैन्य-भरे शब्दों को सुनकर राम का क्रोध जाता रहा। फिर सीतान्वेषण और लंकापति रावण से युद्ध-विषयक व्यवस्था की चर्चा आरंभ हुई। उस समय भूमंडल के विभिन्न देशों से आये हुए अनेक वर्ण और आकार के वानर यूथपति हाथ जोड़े खड़े थे। सीता की खोज के निमित्त उन्हें भेजते हुए सुग्रीव बोला, 'एक मास के भीतर यदि तुमलोग सीता का अन्वेषण न कर सके तो सभी मेरे हाथों मृत्यु-दण्ड के भागी होंगे।'

हनुमान, अंगद, जाम्बवान आदि यूथपतियों के नेतृत्व में वानरी-सेना अग-णित वनों एवं उपत्यकाओं का आलोड़न करती हुई समुद्र तट पर पहुँची। वहाँ सुग्रीव के दंडभय से चिंताग्रस्त हो वे सभी विचार-विमर्श कर ही रहे थे कि अकस्मात् संपाती नामक गृध्र से भेंट हो गयी। सबको मलिनवदन देखकर उसने उनकी उद्विग्नता का कारण पूछा। वानरों ने सारी कथा कह सुनायी। वह बोला, 'मैं यहाँ से देख रहा हूँ, राक्षसियों से घिरी शोक-विह्वला सीता अशोकवाटिका में बैठी हैं। अब तुममें से कोई चाहे तो वहाँ जाकर उनका समाचार ला सकता है।' सामने दुस्तर सागर था। उसे पार करके लंका जाने का कोई साहस न कर सका। सभी किंकर्तव्यविमूढ़ थे। तब हनुमान ने साहस बाँधा। वे गम्भीरनाद करते हुए समीपस्थ पर्वत पर चढ़

गये। उनका शरीर स्वर्णशैल के समान कान्तिमान् था। हुंकार करके वे बवंडर उठाते हुए आकाश में उड़े। मार्ग में एक महाकाय राक्षसी ने छाया के माध्यम से उन्हें पकड़कर नीचे समुद्र में खींचना चाहा। वह निगलने के लिए मुँह फैलाये हुए जीभ लपलपा रही थी। हनुमान निर्भय हो नीचे उतरे। उन्होंने उसका मुँह फाड़ डाला और मारकर सौ योजन विस्तृत समुद्र के पार फेंक दिया।

समुद्र लाँघकर हनुमान लंका में रात को प्रविष्ट हुए। सम्पूर्ण नगर स्वर्ण प्राकारों से घिरा था। राक्षसकुमार सांगवेद पाठ कर रहे थे। होम-धूम से दिशाएँ सुवासित थीं। राक्षस लोग विविध प्रकार की विलासक्रीड़ाओं में रत थे। हनुमान इस प्रकार नागरिकों के कार्य-कलाप का निरीक्षण करते हुए रातभर घूमते रहे। पिछले पहर उन्होंने तुलसी वृक्ष से आवृत विभीषण का घर देखा। वहाँ रामार्चन हो रहा था। यह देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर सीता को खोजते-खोजते वे अशोकवाटिका में पहुँचे। वहाँ देखा कि एक वृक्ष की जड़ों का आश्रय लिये हुए जगन्माता प्रियतम के नाम-स्मरण में तल्लीन आँसुओं से अंचल भिगोती हुई नतमुख बैठी हैं। इस विपन्नावस्था में भी उनका मुखमंडल दिव्य आभा से परिपूर्ण था। हनुमान प्रणाम करके सामने खड़े हो गये। फिर बोले, 'माता! मैं राम का दूत हूँ। भगवान् अनुज सहित माल्यवान गिरि पर प्रवास कर रहे हैं। कपीन्द्र सुग्रीव से उनकी मैत्री हो गयी है। उसकी विशाल वानरीसेना राक्षसों से आपका उद्धार करने के लिए प्रभु की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही है। एक-एक वानर वीर समस्त राक्षसी सेना के संहार की शक्ति रखता है। आप चिन्ता न करें। प्रभु ने पहचान के लिए यह मुद्रिका दी है।' मुद्रिका पाकर सीता को राम के करस्पर्श-सा आनन्द प्राप्त हुआ। उन्होंने फिर सोचा कि यह राक्षसीमाया तो नहीं है। हनुमान सीता की मनःस्थिति समझकर बोले, 'माता! मैं राम का अनन्य दास हूँ। उनकी पादुकाएँ ही मेरी एकमात्र शरण्य हैं।' इन शब्दों से सीता का सन्देह दूर हो गया। उन्होंने पूछा, 'हनुमान! तुमने शतयोजन विस्तृत लवण सागर कैसे पार किया? यहाँ निर्विघ्न कैसे पहुँचे? पतिदेव से मेरी स्थिति का निवेदन न करना। वे मेरी अन्तर्दशा से पूर्णतया अवगत हैं। मात्र इतना कह देना कि मुझ राक्षसगृहीता का वे अविलम्ब उद्धार करें।' विदा होते हुए सीता ने हनुमान को अभिज्ञान रूप में अपना शिरोभूषण दिया।

अशोकवाटिका में रावण के द्वारा नियुक्त राक्षसियों का सीता के साथ दुर्व्यवहार देखकर हनुमान की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उन्होंने राक्षस रखवालों की उपस्थिति में ही वाटिका ध्वस्त कर डाली और प्रतिरोध करनेवालों को मौत के घाट उतार दिया। यह सुनकर राक्षस सैनिक बड़ी संख्या में एकत्र हो गये। हनुमान ने उन सबको भूलुंठित कर दिया। इस उत्पात की सूचना रावण को मिली। उसने अक्षयकुमार को भेजा। वह भी हनुमान की क्रोधाग्नि में भस्मसात् हो गया। तब कुपित होकर राक्षसराज ने मेघनाद को उपद्रवी वानर को दंडित करने का आदेश दिया। मेघनाद से हनुमान का भीषण युद्ध हुआ किन्तु अंत में

उसने ब्रह्मास्त्र का प्रयोगकर हनुमान को बन्दी बना लिया। हनुमान रावण के समक्ष प्रस्तुत किये गये। उसने उन्हें जीवित जला देने का आदेश दिया। इस हेतु उनकी पूँछ में बहुत-सा कपड़ा लपेटा गया। फिर उसमें तेल डालकर आग लगा दी गयी। हनुमान ने विचित्रलीला की। राक्षसों के बंधन से अपने को मुक्त कर वे कँगूरे पर चढ़ गये और घूम-घूमकर अपनी पूँछ से निकलती हुई लपटों से सारी लंका भस्म कर डाली। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। अपना कार्य समाप्तकर वे समुद्र में कूद पड़े। तापजनित पीड़ा और श्रम परिहार के लिए वे दीर्घकाल तक जलक्रीड़ा करते रहे। स्वस्थ हो वे आकाशमार्ग से अपने सहयोगी वानरों के पास महेन्द्र पर्वत पर आ गये।

हनुमान को कृतकार्य देखकर वानरों को अपार हर्ष हुआ। वे सभी उन्हें लेकर राम के पास गये। हनुमान ने सीता के द्वारा प्रदत्त शिरोभूषण राम को दिया। उसे देखकर विरह-व्यथा के उद्रेक से राम मूर्च्छित हो गये। चेतना प्राप्त होने पर वे बोले, 'राक्षसों से सीता का उद्धार कैसे किया जायगा? बीच में अपार समुद्र है। सेना कैसे पार उतारी जायगी? यह एक अलौकिक कार्य है। इसका उपाय भी लोकोत्तर होना चाहिए। इस सम्बन्ध में मेरी राय है कि हमलोग बद्धांजलि हो उपवासपूर्वक सागर की आराधना करें। इससे प्रसन्न होकर वह मार्ग दे देगा। तब सारी वानरी सेना सहज ही पार हो जायगी।' यह निश्चय करके वे सुग्रीव, वानर-यूथपतियों, जांबवान और लक्ष्मण सहित चार दिनों तक उपवास करते हुए समुद्र तट पर पड़े रहे, किन्तु वह रंचमात्र भी नहीं पिघला। समुद्र की ऐसी निष्ठुरता देखकर राम को क्रोध आ गया। वे लक्ष्मण से बोले, 'मेरा आयुध लाओ। एक बाण से ही इसे सुखा दूँगा। यह प्रार्थना से माननेवाला जीव नहीं है।' इतना कहकर उन्होंने प्रत्यंचा पर चढ़ाकर कराल बाण छोड़ दिया। शराग्नि के सम्पर्क से समुद्र भीषण अंतर्दाह से पीड़ित हुआ। जलचर व्याकुल होकर ऊपर आ गये। सागर के कुटुम्बी मरणासन्न हो गये। इस अप्रत्याशित आपत्ति की सूचना समुद्र को अपनी पत्नी से मिली। कारण का पता लगाने के लिए उसने दिव्यदृष्टि से देखा तो ज्ञात हुआ कि वह अग्नि राम के वाण से उत्पन्न हुई है। अपने अज्ञान-जनित अपराध के लिए समुद्र पश्चात्ताप करने लगा। इसके मार्जन हेतु प्रभूत उपहार लेकर वह क्षमा-याचना के लिए राम की शरण में आया। कुलवृद्ध समझकर राम ने उसे यथेष्ट सम्मान दिया। फिर उससे कहा, 'मेरी सेना समुद्र पार करना चाहती है। मार्ग दो अन्यथा वाणाग्नि से मैं प्रजासहित तुम्हारे परिवार को भस्म कर डालूँगा।' समुद्र काँपते हुए स्वर में बोला, 'देव, मुझे सुखाएँ नहीं। एक उपाय बताता हूँ। आपके यूथपति नल-नील पत्थर लाकर सेतु बाँधें। सारी सेना उसी पर चढ़कर पार हो जायगी।' यह युक्ति सबको पसंद आयी। राम ने बाणाग्नि का प्रकोप शांत कर दिया। समुद्र प्रसन्न हो घर लौट गया।

राम ने सुग्रीव, हनुमान आदि को समुद्र द्वारा बतायी गयी पद्धति से सेतु बाँधने का आदेश दिया। वानरों ने दूर-दूर से बड़े-बड़े शिलाखंड लाकर समुद्र-तट

पर ढेर लगा दिये। उस पर उगे वृक्षों से झड़े हुए फल-फूलों से सारी तटवर्ती भूमि आच्छादित हो गयी। फिर सेतु बाँधने का कार्य आरंभ हुआ। हनुमान प्रस्तर-खण्ड उठा-उठाकर देने लगे, नल और नील राम का स्मरणकर और शिलाओं पर राम-नाम लिखकर उन्हें यथास्थान रखते हुए सेतु बाँधने लगे। नाम के प्रताप से वे विशाल शिलाएँ जलस्तर पर तैरने लगीं। यह देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये। सेतुबंध का कार्य पौष कृष्ण १० को आरंभ हुआ था और मात्र चार दिनों में पौष कृष्ण १३ को पूरा हो गया। वानरों ने राम को जब यह संवाद सुनाया तो उन्हें जानकी-प्राप्ति के सदृश ही सुखानुभव हुआ। सेतु तैयार हुआ देखकर वानर यूथ-पतियों ने राम से शत्रुनाश के लिए सेना उतारने का आदेश देने की प्रार्थना की। राम ने विधिवत् पूजा करके पौष कृष्ण १४ से सेना उतारने का कार्य आरम्भ करने की अनुमति दी। तीन दिन में १८ महापद्म संख्यक वानरी-सेना समुद्र के उस पार उतर गयी। लंका से संलग्न सुबेल पर्वत पर पड़ाव पड़ा। सैनिकों ने रावणपुरी का चारों ओर से घेरा डाल दिया और उसे निरंतर आठ दिनों तक घेरे रहे। तब तक एकादशी आ गयी।

रावण ने शत्रु-शक्ति का पता लगाने के लिए शुक-सारण नाम के दो गुप्तचर भेजे। वानरों ने उन्हें छिपकर आपस में बातें करते देख लिया। वे तुरन्त उन्हें पकड़कर राम के समक्ष ले आये। राम ने यह कहकर उन्हें मुक्त करा दिया कि इन बेचारों को बाँधने से हमारे अभीष्ट की सिद्धि नहीं होगी। दोनों प्राणदान पाकर भाग गये। द्वादशी को प्रमुख वानर सेनापतियों की लंका के मुख्यद्वारों पर नियुक्ति की गयी। यह समाचार पाकर वस्तुस्थिति का अध्ययन करने के उद्देश्य से रावण नगरद्वार पर स्वयं उपस्थित हुआ। राम ने दूर ही से पहचानकर उसके छत्र और चामर बाण से काटकर नीचे गिरा दिये। उसी समय उसके पास शुक-सारण भी आ गये। उन्होंने रावण को राम की अपार सेना और उसके अजेय सेनापतियों के नाम बताये और राम द्वारा विभीषण के लंकापति घोषित किये जाने की भी सूचना दी। यह सुनकर रावण ने अपने सेनाध्यक्षों को बुलाया। उनकी सम्मति से पौष कृष्ण १३ को युद्ध आरम्भ करने का निश्चय हुआ। मंदोदरी ने राम के अतुल पराक्रमसूचक कृत्यों का वर्णन करते हुए पति से सीता को उन्हें सौंपकर युद्ध से विरत होने के लिए बहुत अनुनय-विनय किया, किंतु उसने एक नहीं माना। प्रत्युत उसी को उपदेश देते हुए बोला, 'प्रिये, तुम्हें भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। वानर और मनुष्य हमारे भक्ष्य हैं। राक्षस उन्हें खाकर तृप्त होंगे। भाग्य के मारे बेचारे स्वयं यहाँ मरने आ गये। विश्वासघाती विभीषण को मैं उसकी करनी का मजा चखाऊँगा। दोनों तापस कामांध होकर अपने को सर्वनाश के गर्त में फेंक रहे हैं। राम का वधकर मैं जानकी को अपनी अंकशायिनी बनाऊँगा।' इस प्रकार की अनेक वीरदर्पपूर्ण उक्तियों से उसने मंदोदरी को ढ़ाढस बँधाया।

युद्ध आरम्भ करने के पूर्व राम ने रावण को समझाने के लिए युवराज अंगद को भेजने का निर्णय लिया। अंगद के प्रस्थान करते समय उन्होंने रावण से अपना

यह संदेश कहने को कहा, 'तुमने परस्त्रीहरण कर अत्यंत गर्हित कर्म किया है। सीता को लंका में वंदिनी देखकरउन्हें मुक्त करने के निमित्त मुझे ब्रह्महत्या के पाप का भागी बनने के लिए विवश न करो।' रावण के दरबार में अंगद माघ शुक्ला प्रतिपदा को उपस्थित हुए। उनके मुख से राम का सन्देश सुनते ही रावण क्रोध से उबलने लगा। उसने राक्षसों को उन्हें पकड़कर प्राणदण्ड देने का आदेश दिया। राक्षसों ने अंगद को घेर लिया। वे गरजते हुए रावण पर टूट पड़े और उसके नाक-कान नोच डाले, शिरस्त्राण फाड़ डाला। लोगों के देखते-देखते वे तीव्रगति से सभाभवन से बाहर निकल आये। अशोकवाटिका जाकर सीता का समाचार लेते हुए वे नगर से बाहर हो गये। उन्हें रोकने का किसी को भी साहस नहीं हुआ। राम के पास पहुँचकर अंगद ने सीता की दयनीय स्थिति का विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा, 'रावण और उसके द्वारा नियुक्त राक्षसियाँ भाँति-भाँति के भय और प्रलोभन देकर सीता को पथभ्रष्ट करना चाहती हैं किन्तु वे आपका नाम जपती हुई अब तक किसी प्रकार अपनी रक्षा कर रही हैं। त्रिजटा मात्र एक ऐसी राक्षसी है, जो उन्हें आश्वासन देकर प्राणरक्षा के लिए प्रोत्साहित करती रहती है। उसने भविष्यवाणी की है कि अंततोगत्वा विजय राम की ही होगी।'

संधि-वार्ता के विफल हो जाने पर दोनों पक्ष पूरी तैयारी के साथ युद्ध-क्षेत्र में उतर पड़े। घमासान युद्ध आरंभ हुआ। रावण के बड़े-बड़े योद्धा एक के बाद एक मारे जाने लगे। राक्षसी सेना को पराजित होते देखकर रावण ने मेघनाद को भेजा। उसने राम को द्वन्द्वयुद्ध के लिए चुनौती दी। राम ने उसका सामना करने के लिए लक्ष्मण को भेजा। वैशाख कृष्ण ९ को लक्ष्मण और मेघनाद के बीच घोर युद्ध हुआ। मेघनाद लक्ष्मण के तीक्ष्ण बाणों का प्रहार सह न सका। पराजित होकर वह लंका लौट गया। किन्तु रात में फिर वापस आकर उसने लड़ाई आरंभ कर दी। अबकी बार उसने नागपाश से दोनों भाइयों को बाँध लिया। तब राम ने गरुड़ का स्मरण किया। वे तत्काल जा पहुँचे और नागपाश काटकर राम-लक्ष्मण को बंधनमुक्त कर दिया। फिर वे राम से बोले, 'भगवन! आपकी यह नर-लीला बड़ी विचित्र है। आप परात्पर ब्रह्म हैं, सीता आद्याशक्ति हैं। अपनी प्रकृति में स्थित हो भू-भार हरण कीजिए।' स्वतंत्र होने पर दोनों भाइयों का मेघनाद से तुमुल संग्राम हुआ। वह पुनः पराजित होकर लंका चला गया। उस दिन दशमी थी। एकादशी को युद्ध बन्द रहा। राम सुबेल पर्वत पर सहायकों से विचार-विमर्श कर रहे थे। उस बीच सुग्रीव ने बातों-ही-बातों में उनसे कहा, 'नाथ! आप लंका का राज्य विभीषण को दे चुके हैं। अब यदि रावण आकर क्षमा माँग ले और सीता को लौटा दे तो आप विभीषण से की गयी अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह कैसे कर सकेंगे?' राम ने निर्भ्रान्त हो उत्तर दिया, 'मैं उसे अयोध्या का राज्य दे दूँगा।'

इस प्रकार रात में बहुत देर तक वाग्विनोद चलता रहा। प्रातः दोनों भाई पुनः रणक्षेत्र में जा डटे। उस दिन हनुमान ने सैन्य-संचालन किया। उनका सामना करने के लिए धूम्राक्ष नामक महापराक्रमी राक्षस भेजा गया। हनुमान से उसका

दो दिनों तक घोर युद्ध हुआ। त्रयोदशी को वह खेत रहा। उसके बाद प्रहस्त आया। राम के बाणों से घायल हो वह युद्ध-क्षेत्र छोड़कर लंका भाग गया। इस प्रकार विश्वसनीय भटों को पराजित होते देख रावण ने त्रस्त होकर विश्वविख्यात योद्धा कुंभकर्ण को जगाने का उपक्रम किया। यह प्रयास पंचमी से अष्टमी तक चलता रहा। जागने पर उसके खाने के लिए अपार खाद्य एवं पेय पदार्थ एकत्रित किये गये थे। इस निमित्त संगृहीत मांस का पर्वत-सा खड़ा हो गया। पान के लिए रक्त तथा मदिरा की अनेक बावलियाँ, कूप और कुंड भरा दिये गये। पकवानों के अनगिनत विशाल ढेर लगा दिये गये। राक्षसों ने अथक परिश्रम करके किसी प्रकार उसे जगाया। तेरह चतुर्युगी के पश्चात् नींद खुलने पर उससे रावण ने कहा, 'भाई उठो, मेरा काल आ गया है। एक मर्त्य–तापस राक्षसों का संहार कर रहा है।' इतना कहकर उसने युगों से भूखे भाई को भरपेट भोजन-पान कराया। तृप्त होकर घोर गर्जन करते हुए वह रावण से बोला, 'युद्ध क्यों हो रहा है? और किससे?' इसके उत्तर में रावण ने आदि से लेकर अंत तक सारी कथा कह सुनायी।

भाई के कुकृत्य पर पश्चात्ताप करते हुए और उसके फलस्वरूप राक्षसकुल का सर्वनाश निश्चित मानकर उसने रावण से कहा, 'तुमने यह घृणित कर्म क्यों किया? पुलस्त्य ऋषि के वंशज होने से हमें उनके अनुरूप आचरण करना चाहिए। परस्त्री का विषवल्ली की भाँति दूर से ही त्याग करना चाहिए। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो अब भी समय है, राम की शरण में जाओ और सीता को उन्हें सौंप दो। रावण को यह उपदेश अच्छा नहीं लगा। वह बोला,' भाई! प्रतीत होता है तुम भी तापसों से डर गये। तुम निश्चिन्त होकर खाओ और सोओ। मैंने लंका का राज्य तुम्हारे बल पर नहीं स्थापित किया है। असंख्य पराक्रमी राक्षस हमारे लिए प्राण उत्सर्ग करने को तैयार हैं।' रावण के क्रोधभरे वाक्यों को सुनकर कुंभकर्ण ने कहा, रावण! मुझे विभीषण मत समझो मैं तुम्हारे आदेश का पालन करूँगा किन्तु मेरा दृढ़ मत है कि तुम्हारा यह कर्म इह तथा पर दोनों लोकों में सद्गति का नाशक है। राम सनातन पुरुष हैं। उन्हें तुम नहीं पहचानते। मैंने मुनियों से उनके दिव्यगुणों की चर्चा सुनी है। हम लोग स्वार्थमूढ़ हैं इस कारण साक्षात् परब्रह्म से द्वेष करते हैं।' इतना कहकर उसने रावण को प्रणाम करके रणक्षेत्र के लिए प्रस्थान किया। रावण ने उसे आलिंगन कर विजय-प्राप्ति का आशीर्वाद देते हुए विदा किया।

कुम्भकर्ण के पर्वताकार महाभयंकर रूप को देखते ही वानरों में भगदड़ मच गयी। वह उन्हें पकड़-पकड़कर खाने लगा। सेना को विचलित होते देखकर लक्ष्मण आगे बढ़े। उनसे वह भिड़ गया। दोनों में पाँच दिनों तक भयानक संघर्ष हुआ। छठे दिन फागुन कृष्ण १४ को वह राम के हाथों मारा गया। कुम्भकर्ण ऐसे भाई की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण के धैर्य का बाँध टूट गया। अंतःपुर की स्त्रियों में कुहराम मच गया। रावण करुण विलाप करते-करते मूर्छित हो गया। उसने फागुन अमावस्या को भाई की अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न की। फागुन शुक्ला प्रतिपदा को सेना

सजाकर पुनः राक्षस सेनापतियों का एक वृहद् समूह भेजा गया। चार दिनों तक लड़ाई चलती रही उस बीच शत्रु पक्ष के अनेक प्रख्यात वीर मार डाले गये। पंचमी को अतिकाय आया। राम से उसका दो दिनों तक युद्ध हुआ। सप्तमी को वह भी जूझ गया। अष्टमी को कुम्भ-निकुंभ की बारी आयी। वे दोनों इन्द्र-वज्र से मारे गये। तब रणोन्मत्त मकराक्ष सेनासहित आ धमका।

इस प्रकार युद्ध चल ही रहा था कि मेघनाद ने शत्रु पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से चैत्र कृष्णा द्वितीया से सकाम यज्ञ आरम्भ किया। विभीषण के द्वारा राम को पता चल गया कि इस यज्ञ के पूरा होने पर मेघनाद अजेय हो जायगा। अतः विघ्न उत्पन्न कर यज्ञ-भ्रष्ट करने के उद्देश्य से राम ने हनुमान के नेतृत्व में वानरों का एक शक्तिशाली गुल्म भेजा। उनके उत्पात से मेघनाद यज्ञ को अधूरा छोड़ने पर विवश हुआ। इसका प्रतिशोध लेने के लिए शत्रुओं का पीछा करते हुए वह युद्ध-क्षेत्र में आ गया। उसके माया-युद्ध से वानर-सेना घबड़ा गयी। हनुमान, सुग्रीव, अंगदादि महाबलवान् सेनाध्यक्ष भी भग्न पराक्रम हो नतमस्तक हुए। राम ने यह स्थिति देखकर उनसे हतोत्साह होने का कारण पूछा। सब ने इन्द्रजीत के हाथों अपनी पराजय स्वीकार कर ली। राम ने अमृतस्रावी हाथों से स्पर्श करके उनकी मायाजनित तन्द्रा दूर कर दी। तब राम की आज्ञा से इन्द्रजीत से लड़ने के लिए लक्ष्मण ने युद्ध-भूमि में पदार्पण किया। दोनों में बहुत देर तक भयंकर युद्ध होता रहा। अंत में लक्ष्मण ने घनघोर वाण वर्षा कर उसकी भुजाएँ तथा सिर काट डाला। पति की मृत्यु का संवाद पाकर सुलोचना विलाप करती हुई शव लेने के लिए युद्ध-भूमि गयी। उस दिन चैत्र कृष्णा चतुर्दशी थी। उसने परमपुरुष के रूप में राम की स्तुति की। राम ने दयार्द्र होकर उसके पति को जीवित करने की इच्छा व्यक्त की। सुलोचना ने इसे अस्वीकार करते हुए उसका असुर भाव दूरकर राम से उसे जन्मान्तर में दास्यभक्ति प्रदान करने का अनुरोध किया। इसके अनन्तर वह पति का शव लेकर सती हो गयी। राम की कृपा से कालान्तर में मेघनाद ने सम्मुख गोप और सुलोचना ने उसकी पत्नी के रूप में जन्म लेकर अविरल दास्यभक्ति प्राप्त की।

अपने सभी प्रमुख सहायकों के मारे जाने पर रावण स्वयं युद्ध-भूमि में गया। चैत्र शुक्ला १ से ८ तक उसने विकट युद्ध किया। वानरी-सेना उसके आक्रमणों से त्रस्त हो उठी। राम ने लक्ष्मण को उससे लड़ने के लिए भेजा। युद्ध करते-करते रावण थक गया। किंतु किसी प्रकार लक्ष्मण वश में आते न दिखायी दिये तब उसने उन पर विकराल शक्ति छोड़ दी। वह लक्ष्मण के हृदय में लगी। वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। विपत्ति के दिनों में एकमात्र सहायक अनुज को मरणासन्न देखकर राम विह्वल हो विलाप करने लगे। असमय देखकर कुछ देर के बाद उन्होंने धैर्य धारण किया। फिर सहयोगियों से परामर्श करके निशल्यीकरण ओषधि लाने के लिए हनुमान को द्रोणाचल भेजा। ओषधि ढूँढ़ने में देरी होने की संभावना को देखकर वे पर्वत ही उठा लाये।

ओषधि पहचान कर निकाली गयी। उसके सेवन से लक्ष्मण गतशल्य हो

गये। इस व्यवधान के कारण दशमी को युद्ध बंद रहा। फिर एकादशी आ गयी। उस दिन भी विराम रहा। चैत्र शुक्ला द्वादशी को कुबेर द्वारा भेजे गये पुष्पकविमान पर चढ़कर राम रावण से युद्ध करने रणक्षेत्र में आये। यह संग्राम वैशाख कृष्ण १४ तक चलता रहा। अंतिम दिन राम ने रावण पर ब्रह्मास्त्र का प्रहार किया। वह आकाश में जाकर दसधा विभक्त हो गया। पृथ्वी पर आकर उसके दसों भागों ने रावण के दशों सिर काट डाले। राक्षसराज मूलोच्छिन्न महा-वृक्ष की भाँति घोर शब्द करते हुए धराशायी हो गया। वैशाख अमावस्या को दाह-संस्कार के अनन्तर पंचतत्त्वों के नियामक उस लोक परितापी के ऐहिक अवशेष भी अनंत में विलीन हो गये।

रावण-वध के पश्चात् राम वानरों सहित सुबेल पर्वत पर लौट गये। उन्होंने विभीषण को वहीं बुलाकर राज्याभिषेक का प्रस्ताव किया। विभीषण ने राजपद ग्रहण करने में असहमति प्रकट करते हुए कहा, 'प्रभो ! मैं दास्य मात्र का अभिलाषी हूँ। आप की सेवा करते हुए तुलसीपत्र खाकर जीवन बिताऊँगा, मुझे राज्य की स्पृहा नहीं है। राज्य-सुखभोग मोहग्रस्त कर देता है। राम उसका प्रबोध करते हुए बोले, 'मेरा स्मरण करते हुए राज्य करो तो मोह नहीं होगा। तुम्हारी निष्ठा पर प्रसन्न होकर मैं तुम्हें मार्कण्डेय की भाँति चिरजीवी होने का वरदान देता हूँ।' इसके बाद उन्होंने विधिपूर्वक विभीषण का राज्याभिषेक किया।

राम ने सीता को लाने के लिए लक्ष्मण को लंका भेजा। विरह-विदग्धा जानकी को शिविका पर चढ़ाकर अनुचरी राक्षसियों के साथ लक्ष्मण अशोकवाटिका से सादर राम के पास ले आये। अग्नि-परीक्षा के लिए चिता तैयार की गयी। इस अभूतपूर्व दृश्य को देखने के लिए आकाश में यक्ष-देव-गंधर्वों के साथ महाराज दशरथ और जनक भी उपस्थित हुए। सीता ने सभी उपस्थित लोगों के सामने अग्नि में प्रवेश किया। उनके अखंड तेज से अग्नि ठंढी पड़ गयी। चिता से वे निष्कलंक बाहर निकल आयीं। सबने तीन बार उच्च स्वर में घोषित किया 'सीता शुद्ध हैं।' चारों ओर जय-जयकार होने लगा। सीता की अमृतवर्षिणी दृष्टि से युद्ध में मारे गये सभी वानर जीवित हो गये।

इसके बाद हनुमान, सुग्रीव, जांबवान, अंगद, विभीषण आदि पार्षदोंसहित राम ने अयोध्या चलने की तैयारी की। प्रस्थान करते समय सीता ने पति से कहा, अशोकवाटिका में बंदिनी जीवन में मेरी अनन्य सहायिका त्रिजटा आपके सामने है, आपके वियोग में यही मेरी प्राणरक्षिका थी।' राम ने कृपादृष्टि से देखकर उसे कृतार्थ किया। वैशाख शुक्ला ४ को इष्टमित्रों-सहित राम ने पुष्पकविमान से अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। पंचमी को दंडकारण्य होते हुए वे भरद्वाजाश्रम पर (प्रयाग) पहुँचे। वहाँ भरत ने वृद्ध मंत्रियों तथा महती सेनासहित उनका स्वागत किया। राम ने मनुष्य का रूप धारण किये हुए वनवासी जीवन में सहायक अपने मित्रों को भरत तथा मुनियों से मिलाया। सबने एक दूसरे को गले लगाया। प्रयाग से विमान पृथ्वी स्पर्श करते हुए धीरे-धीरे अयोध्या की ओर बढ़ा। नगर के निकट-

वर्ती उपवन के पास सभी उससे उतर पड़े। राम के आदेश से पुष्पक कुबेर के पास वापस भेज दिया गया। वहाँ से चिंताकुला माताओं का दर्शन करने सभी लोग नंगे पाँव अयोध्या की ओर चले। माताओं से राम के मिलने का दृश्य अत्यन्त हृदय-द्रावक था। अनवरत आँसू बहाते हुए उन्होंने रावणविजयी पुत्र का अंग स्पर्शकर अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव किया। सुग्रीवादि समस्त आगन्तुक अतिथियों ने चरण-वंदन कर उनको असीम सम्मान दिया।

वशिष्ठजी की आज्ञा से वैशाख शुक्ला सप्तमी को राम का राज्याभिषेक हुआ। ब्राह्मणों को अपार दान मिला। सारी पुरी मनोयोगपूर्वक अलंकृत की गयी थी। सुसज्जित रथ पर राम के वाम भाग में सीता विराजमान थीं। भरत छत्र, लक्ष्मण और शत्रुघ्न व्यजन लिये उनकी दोनों ओर सेवारत थे। राजभवन के द्वार पर रथ रुका। राम उतरकर सीधे पिता के सभाभवन में गये। वहाँ पितृ-चरणों का साक्षात् दर्शन कर राम ने उनकी श्रद्धापूर्ण वंदना की।

पिता को संबोधन करते हुए वे गद्गद् कण्ठ से बोले, 'आपकी गोद में बैठकर हमने क्या-क्या सुख नहीं किये। आपने हमारा जैसा लालन-पालन किया, वह अविस्मरणीय है।' वहीं माता कैकेयी भी आ गयी थीं। राम ने उनका चरण-स्पर्श किया। उन्हें लज्जावनतमुखी तथा म्लानवदना देखकर वे बोले, 'माता, तुम्हारे ही पुण्य से पिता के सत्यव्रत की रक्षा हुई। तुम्हें किसी प्रकार की चिंता करने की आवश्यकता नहीं है।'

राम ने लंका से साथ आये हुए मित्रों को नित्य नूतन प्रकार से सत्कृत करते हुए आधे मास तक रोक रखा। उसके पश्चात् हनुमान को अपने पास रख अन्य सभी को सादर विदा किया। गो–ब्राह्मणों की रक्षा करते हुए प्रजा-वर्ग का वे भाई की तरह अत्यन्त स्नेहपूर्वक पालन करने लगे। पृथ्वी पर सर्वत्र सुख-शांति एवं सम्पन्नता की अजस्र वर्षा होने लगी। राम के राज्य करते हुए धर्म के चारों चरण मूर्तिमान् थे। तीनों भाइयों का अपार सौहार्द्र तथा प्रजा की अखण्ड श्रद्धा प्राप्त कर वे राज्यश्री का एकच्छत्र भोग करने लगे।

इस प्रकार कुछ दिन बीत जाने पर सीता को गर्भवती जानकर एक दिन राम ने उनसे एकांत में कहा, 'प्रिये!' तुम्हारी कोई इच्छा हो तो बताओ, उसे तत्काल पूरी करूँगा।' सीता बोलीं, 'आपकी कृपा से मुझे तीनों लोको में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। केवल एक अभिलाषा शेष है। वनवास के समय जिन मुनिपत्नियों, मुनि-कुमारों और ऋषियों से संपर्क हुआ था, उन्हें विविध प्रकार के वस्त्राभूषण एवं भोग्य पदार्थ देने का मैंने संकल्प किया था। मुझे यह देखकर बहुत दुःख हुआ था कि जंगलों में रहकर साधना करनेवाले मुनिपरिवार अत्यन्त अभावपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें भोजन-वस्त्र के लिए अपार कष्ट उठाना पड़ता है। उनकी सेवा करने की मेरी बलवती इच्छा पूरी करें। मैं अपने साथ सारी सामग्री लेकर जाऊँगी और आश्रमों में उसे वितरित कर तपस्वियों का आशीर्वाद प्राप्त करूँगी। फिर आपकी राजधानी में आ जाऊँगी।' नित्यसंगिनी के वियोग की संभावना से

कातर राम को उन्हें वन जाने की अनुमति देते हुए जितना कष्ट हुआ तपस्वियों की सेवा में उनकी रुचि देखकर उतना ही संतोष।

लक्ष्मण को तत्काल बुलाकर उन्होंने कहा, 'जानकी मुनि-पत्नियों की सेवा करना चाहती हैं। इस समय इनका संकल्प विशेष रूप से पूरा करना चाहिए। तुम इनकी इच्छानुसार वस्त्र, आभूषण, रत्न, भोग्य पदार्थ तथा अन्य सामग्री प्रचुर मात्रा में गाड़ियों में लदाकर ले जाओ। ये तापस दंपतियों की जिस प्रकार पूजा करना चाहें उसकी व्यवस्था कर इन्हें आप्तमनोरथ करो। गर्भवती स्त्रियों की इच्छा विशेष रूप से पूरी करनी चाहिए अन्यथा उनसे उत्पन्न संतान यावज्जीवन अभिलाषाग्रस्त रहती है। दास-दासियों तथा सखियों के साथ इनको वहाँ स्थित कर शीघ्र मेरे पास चले आना।' भाई के निर्देशानुसार लक्ष्मण ने समस्त अपेक्षित वस्तुओं को बैलगाड़ियों में रखवाया और सेवकों तथा सखियोंसमेत मणिकंचन-मंडित सीता को सरयू के पार वन-प्रदेश में स्थित आश्रम-मण्डल में ले गये। वहाँ उनके आवास की समुचित व्यवस्था कर वे सीता से बोले, 'अब आप यहाँ अपनी इच्छानुसार धन, पट, आभूषण और भोजन से ऋषि-परिवारों की सेवा-पूजा करें। मुझे आर्य के पास जाने की अनुमति दें। कार्य समाप्त होने पर मैं फिर आकर आपको अयोध्या ले जाऊँगा।' इतना निवेदन कर उन्होंने सीता के चरणों की वन्दना की। तदनन्तर मुनि-स्त्रियों को करबद्ध प्रणाम करके उन्हें सीता को सौंप शीघ्रगामी रथ पर अयोध्या के लिए प्रस्थान किया।

सीता को प्राकृतिक तथा आध्यात्मिक रमणीयता से पूर्ण आश्रमों में निवास करते हुए अपार आनन्द हुआ। मुनि-पत्नियाँ उन्हें देखकर आनन्द-विह्वल हो गयीं। उनका स्वागत करती हुई वे बोलीं, 'जनकपुत्री! तुम्हारे आगमन से हम सभी कृतार्थ हुईं। तुम रघु और निमि कुल की गौरव हो। तुम्हारे पातिव्रत से स्त्री-वर्ग भुवन-मण्डित हुआ। हम लोगों ने तुम्हें वनवास के समय देखा था तभी से दर्शन की उत्कंठा थी। आज हमारा जन्म सफल हो गया। हम तापसियाँ निस्पृह जीवन व्यतीत करती हैं। यदि कोई स्पृहा थी तो यही कि तुम्हारा सामीप्य प्राप्त हो जाय। तुम्हारी पुण्य-कथा संसार-पावनी है। दुष्ट रावण तुम्हारे शीलव्रत से ही मारा गया। उसके परिणामस्वरूप आज हम सभी सुखी तथा स्वतंत्र होकर तुम्हारा यशगान करती हैं। पतिव्रते! गर्भ-प्रसवन काल तक यहीं रहो। गर्भिणियों की इच्छा वनश्री देखने की रहती है। हमारी इच्छा है कि यहाँ निवास करते हुए तुम अत्यन्त शक्ति-शाली संतान को जन्म दो। रघुवंशियों के कुल का यह परंपरागत स्वभाव है कि भावी संततियाँ अपने गुणोत्कर्ष से पूर्वपुरुषों की कीर्ति को उत्तरोत्तर आच्छादित करती हैं।'

तापसियों के इन स्तुतिपूर्ण शब्दों को सुनकर सीता बोलीं, 'हमलोग गृहस्थी की झंझटों में निरंतर फँसी रहती हैं। आपलोगों का दर्शन पुण्य से होता है। हमारा जो कुछ भी उत्कर्ष है, वह आपके चरणों की कृपा से ही। जो काल आपके साथ बीते, वही सार्थक है। यह समझकर ही हमने स्वामी से यहाँ आने की अनुज्ञा प्राप्त की है।'

इसके पश्चात् सीता ने समस्त तापसियों, कन्याओं और ऋषि-कुमारों की विधिवत् पूजा की और उन्हें नाना प्रकार के पदार्थ अर्पित करके अपना संकल्प पूरा किया। उनके अतिथि बनकर वनवासी पशु-पक्षी भी पूर्ण रूप से तृप्त हुए। वस्त्रों, पुष्पों, तोरणों और ध्वजाओं से आश्रम समलंकृत किये गये और वहाँ की पुण्यभूमि सुगन्धित द्रव्यों से सिंचित एवं सुवासित हुई। इससे वह आश्रममण्डल साकेतपुरी-सा सुसज्जित लगने लगा। इस प्रकार नियमित रूप से सेवा करती हुई सीता तापसियों के बीच कुटुम्बवत् प्रसन्नचित्त रहने लगीं।

इस प्रकार के मनोनुकूल वातावरण में प्रिया की अंतःवृत्ति रमते सुनकर राम ने उन्हें बुलाने के लिए लक्ष्मण को नहीं भेजा।

एक दिन किसी तापसी को सीता ने कहते सुना, 'आश्चर्य है! राम ने सीता को रावण के यहाँ रहने के कारण त्याग दिया। मुझे साकेतवासियों से पता चला है कि एक बार सभा में बैठे हुए राम के पूछने पर किसी विदूषक ने बताया कि उनके सारे कृत्यों की संसार में भूरि-भूरि सराहना हो रही है। केवल एक प्रसंग पर आक्षेप है और वह है पर-पुरुष के द्वारा स्पृष्ट एवं कामवश अपने यहाँ रखी गयी भार्या का उनके द्वारा पुनः ग्रहण। लोगों को आशंका है कि इससे दुराचारिणी स्त्रियों को अवलंबन मिलेगा। पति के दंडित करने पर वे तत्काल इस घटना का उल्लेख उदाहरण रूप में कर देंगी। ऐसी उपहासपूर्ण चर्चा अयोध्या में द्वार-द्वार पर और घर-घर में हो रही है। सज्जनों को इससे कष्ट होता है।'

यह सुनकर सीता स्तब्ध रह गयीं। आँखों से अजस्र अश्रुपात करती हुई वे करुणस्वर में बोलीं 'पतिदेव ने यह क्या किया? मैंने स्वप्न में भी कभी व्यभिचार का चिंतन नहीं किया। उन्होंने देवताओं, मनुष्यों, वानरों और राक्षसों—सबके समक्ष मेरी शपथपूर्वक अग्निपरीक्षा ली। मैं वैश्वानर की प्रचंड ज्वाला से निष्कलंक बाहर निकल आयी। आज वे यह सब कुछ भूल गये। यह असह्य वेदना मुझसे सही नहीं जायगी। मैं पुनः अग्नि में प्रवेश करूँगी। किन्तु क्या करूँ गर्भवती हूँ। दुर्दैववश वह भी नहीं कर सकती। राम सर्वसमर्थ हैं जो चाहे करें। उनका वह प्रेम, और वे गुण मेरे दुर्भाग्य से आज सभी लुप्त हो गये। पुरुष स्वभाव से ही निष्ठुर होते हैं।'

सीता इस प्रकार प्रलाप कर ही रही थीं कि यह संवाद पाकर महर्षि वाल्मीकि वहाँ आ गये। वे उन्हें धैर्य बँधाते हुए बोले, 'पुत्री! रोओ मत। प्रभु सब कुछ जानते हैं। किन्तु दैववंचित दुर्दान्त लोक अनभिज्ञ है। इस समय राम केवल लोकोपासना में निरत हैं। वे तुम्हारा कभी भी त्याग नहीं करेंगे। तुम शान्तिपूर्वक तपोवन में रहो। लोक का संशय लोक ही दूर करता है। राम पद्म-पत्रवत् निर्लिप्त हैं। तुम उनकी नित्याशक्ति हो। प्राकृत-जन तुम्हारी महिमा क्या जानें?' चिंताकुला सीता को इस प्रकार समझाकर वे उन्हें अपने आश्रम पर ले गये। उधर राम सीता के विरह में योग साधनारत होकर तीव्र विरक्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे।

वाल्मीकि आश्रम में निवास करते हुए सीता के लव और कुश नामक दो पुत्र हुए। उनकी तीनों बहनों ने भी अयोध्या में यशस्वी संतानों को जन्म दिया। राम ने

स्वर्गारोहण के पूर्व अयोध्या के चक्रवर्ती साम्राज्य को अपने तथा भाइयों के पुत्रों में बाँट दिया। लव-कुश को क्रमशः कुशावली और अवंती का राज्य मिला। लक्ष्मण के पुत्रों की कारापथ, भरत के पुत्र पुष्कर की पुष्करावती तथा शत्रुघ्न के पुत्र सुबाहु की मथुरा राजधानी बनी। राम की ऐश्वर्यलीला का यह अन्तिम कृत्य था। इसके पश्चात् उनके लोकान्तरण के लिए उपयुक्त परिस्थितियों का संघटन प्रारम्भ हो गया।

रावणवध से राक्षसी-शक्ति का पराभव हो जाने के कारण भूलोकवासियों की भाँति स्वर्गस्थ देवगण भी निरापद हो गये थे। किन्तु उन्हें एक नयी चिन्ता ने जा घेरा। राम के द्वारा स्थापित धर्मराज्य में भक्तिभावना के चतुर्दिक प्रसार से उनकी पूछ कम हो गयी। अतः इन्द्र के नेतृत्व में उनका एक प्रतिनिधि मंडल ब्रह्मलोक गया। वहाँ उन लोगों ने ब्रह्मा से निवेदन किया, 'पितामह! आपकी प्रेरणा से परात्पर ब्रह्म ने साकेतपुरी में अवतार ग्रहणकर नृशंस रावण का वध किया और धर्मत्रयी की स्थापना की। गो-ब्राह्मणों की रक्षा से लोकधर्म के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ। देवदुर्लभ रामभक्ति का सर्वत्र प्रचार हुआ। परमभक्त विभीषण को लंका का राजपद देकर वैष्णवों की महिमा स्थापित की गयी। भक्तों के दुःख नाश के लिए राम, सीता, लक्ष्मण तथा हनुमान के निवास-स्थान तथा पदांकित स्थल तीर्थरूप में प्रतिष्ठित हो गये। सर्वदेव नमस्कृत्य एवं समस्त सिद्धिप्रद परब्रह्म के भूलोक में रहते अब लोग उन्हीं की सेवा-पूजा में लीन रहते हैं। हम देवतागण सर्वथा उपेक्षित तथा प्रभावहीन हो गये हैं। भगवान् राम का अवतारकार्य भी पूरा हो चुका है। ऐसी स्थिति में हमारी आपसे प्रार्थना है कि अपने नित्यधाम में उनके पुनरागमन की व्यवस्था कर हमें चिंतामुक्त करें।'

देवताओं के इस प्रतिवेदन की यथार्थता का अनुभव कर ब्रह्मा ने काल का स्मरण किया। वह विकरालवदन भयंकर शब्द करता हुआ तत्काल आ गया। ब्रह्मा बोले, 'तुम अभी अयोध्या जाओ। वहाँ हम दोनों के नियंत्रक चराचर नायक स्वयंब्रह्म राम विराजमान हैं। उनसे एकांत में निवेदन करो कि आपकी अवतार-लीला पूरी हो गयी है, अतः निजधाम प्रमोदवन को पधारने का कष्ट करें।' काल ने आज्ञा शिरोधार्य कर ब्रह्मा को प्रणाम किया और तत्क्षण अयोध्या चला गया। वहाँ पहुँचने पर उसने राम को सिंहासनासीन देखा। किंतु उनकी आकृति अप्रत्याशित रूप से कोटि काल के समान दुर्धर्ष एवं भीषण थी। यह देखकर वह भय से काँपने लगा। फिर ब्रह्मा के आदेश का स्मरणकर उसने कर्तव्य-पालन के लिए धैर्य धारण करके अपने सहज गुणों का प्रकाश किया। फलतः सरोवरों में अकाल ही कमल विकसित हो उठे। चारों ओर वसंतश्री छा गयी। यह लीला देखकर राम ने समझ लिया कि काल आ गया है। वही मेरे मनोरंजन के लिए लीला कर रहा है। उन्होंने लक्ष्मण को प्रतिहार का कार्य सौंपा। एकांत देखकर काल भीतर आया।

काल ने दूर से ही भगवान् को साष्टांग प्रणाम किया और बड़ी देर तक भाव-पूर्ण स्तुति करता रहा। फिर बोला, 'भगवन्! मैं काल हूँ। आपकी आज्ञा से

सृष्टिमात्र को अपना ग्रास बनाता हूँ—देव, गंधर्व, राक्षस, यक्ष, किन्नर कोई मुझसे बचने नहीं पाता। आज ब्रह्मा के द्वारा एक विशेष कार्य के लिए आपके पास भेजा गया हूँ। इन्द्रादि देवों के प्रतिवेदन पर पितामह ने आप से यह निवेदन करने को कहा है कि भूमि-भार हरण के लिए आयोजित आपकी अवतार-लीला का उद्देश्य पूरा हो चुका है और उसकी अवधि भी समाप्त हो चुकी है। एक बात और है। आपके द्वारा स्थापित राज्य-व्यवस्था में सभी लोग सुखी हैं, सौभाग्यशाली हैं, पूर्णायु हैं। जहाँ-जहाँ आपके चरण जाते हैं, वहाँ-वहाँ दुर्भाव एवं दुर्गति का सर्वथा लोप हो जाता है। आपके राज्य करते हुए घर-घर में नित्य उत्सव होते रहते हैं। सारा संसार मंगलमय हो गया है। मनसा-वाचा-कर्मणा सभी धर्म-परायण हो गये हैं। इससे यमपुरी खाली पड़ी है और ब्रह्मा का सृष्टि-वैषम्य-सामर्थ्य लुप्त हो गया है। आप के द्वारा नियुक्त देवता व्यर्थाधिकार हो गये हैं। इसलिए आप भूलोक-लीला का संवरण कर अपने निजधाम, प्रमोदवन को पधारें, जहाँ कालत्रय के गुणों का प्रवेश नहीं है और जिसका इन्द्रादि देव भी बड़े भाग्य से दर्शन कर पाते हैं। ब्रह्माजी ने यह संदेश आपके चरणों में निवेदन करने को कहा है। आप सर्वतंत्र स्वतंत्र हैं, जो इच्छा हो करें।'

काल के इन शब्दों को सुनकर राम बोले, 'तुमने ठीक ही कहा। मैंने देवताओं और मनुष्यों का कार्य पूरा कर लिया है। अब तीनों लोकों में मेरे लिए कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं हैं। दुर्दान्त राक्षसों का संहार हो गया। लोक में शांतिमय राज्य-व्यवस्था स्थापित हो गयी। इसके साथ ही मेरी राजलीला का प्रयोजन पूरा हो गया किंतु भक्तों को रसानंद प्रदान करने वाली आह्लादकारिणी रासलीला का कार्य अभी अवशिष्ट रह गया है। वह लीला काल एवं माया से परे है। वहाँ काल की कलन-क्रिया समाप्त हो जाती है। उसके अनंत प्रवाह में कोटि-कोटि कल्प विलीन होते रहते हैं। भौतिक कार्य-कलाप में प्रयुक्त कालगणना के मानदंड से उसकी माप कैसे होगी? ब्रह्माजी से कह देना कि वे अपने वर्षप्रमाण से मेरे लीला-वर्षों की माप न करें।' इसके बाद काल ब्रह्मलोक गया और सारी बातें ब्रह्मा से निवेदित कर दी।

ब्रह्मा ने कहा, 'सच्चिदानन्दविग्रह राम ने ठीक ही कहा है। वे काल, माया तथा गुणों के नियंत्रणकर्ता हैं। उनको कौन वर्जित कर सकता है। हम सभी उनके वशवर्ती हैं। तुम उनकी इच्छा का अनुवर्तन करो। तुमने भगवान् को अपना भयानक रूप दिखाकर महान् अपराध किया है। अतः पुनः अयोध्या जाकर इस अविनय के लिये क्षमा-याचना करो। वे दयासिंधु हैं शीघ्र प्रसन्न हो जायेंगे!' ब्रह्मा को प्रणाम कर काल पुनः साकेत गया। उसे आया जानकर राम ने लक्ष्मण को प्रतिहार नियुक्तकर स्वजनों को विदा किया। काल को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसके दरबार में प्रवेश करते ही स्वात्मशक्ति स्वरूपिणी जानकी को सिंहासन पर बैठाकर भगवान् स्वयं अन्तर्धान हो गये। उसने जगन्माता को दूर से ही प्रणामकर पूछा, 'भगवान् राम कहाँ हैं?' इतना कहने के बाद वह देखता क्या है कि परालक्ष्मी सीता भी अंतर्धान हो गयीं।

इस प्रकार सिंहासन को सूना देखकर काल युगलस्वरूप को ढूँढने निकला। उसने तीनों लोक छान डाले किन्तु उनका कहीं संधान न मिल सका। तब उसने भगवान् की दिव्य लीलास्थली सरयू तटस्थ प्रमोदवन में प्रवेश करना चाहा। द्वार पर आते ही उसे एक अत्यन्त वृहदाकार भयंकर पुरुष मिला। वह गरजकर बोला, 'मुझे युद्ध में पराजित करो तभी भीतर घुसने पाओगे। दोनों में घोर युद्ध छिड़ गया। वह एक हजार वर्षों तक चलता रहा। अंततः काल पराजित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब उसने द्वाररक्षक से अपना परिचय देने को कहा। वह बोला, 'मैं प्रमोदवन का रक्षक और राम का भक्त हूँ।'

काल ने पराजित हो ब्रह्मलोक को प्रस्थान किया। मार्ग में गंगा तथा गंडकी नदी के संगम पर स्थित वशिष्ठाश्रम के निकटवर्ती वन में उसने सीतासहित राम को मृगयाविहार करते देखा। वह उनके चरणों पर गिर पड़ा और ब्रह्मा के आदेशानुसार पूर्वकृत अपराध के लिए क्षमा माँगी। राम ने क्षमा करते हुए उससे कहा, 'तुम मुझे कहाँ-कहाँ ढूँढ़ आये ?' काल ने सारा वृत्तान्त सुनाते हुए अंत में कहा, 'मैं निराश हो ब्रह्मलोक जा रहा था, बीच में सौभाग्य से आपके दर्शन हो गये। कृतार्थ हो गया।' राम ने कहा, 'मैं यहाँ भी हूँ, साकेत में भी हूँ, प्रमोदवन में भी हूँ। अब तुम लौटकर पुनः साकेत जाओ, जहाँ मेरा सिंहासन है।' काल उसी समय साकेत चला गया। उसने देखा कि मणिजटित सिंहासन पर त्रैलोक्य सुन्दर राम सीतासहित विराजमान हैं। इस दिव्यदर्शन से उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। राम ने उसे निकट बुलाकर कहा, 'तुम हमारे भक्त हो। मैं अब ब्रह्मा के वचन को सत्य करने के लिए अपने दिव्य-धाम को जाना जाहता हूँ। मेरी सारी लीलाएँ पूरी हो चुकीं। तुम अपनी तिरोभावकारिणी शक्ति का प्रसार करो।'

काल से यह मंत्रणा हो रही थी कि दैवयोग से उसी समय वहाँ महर्षि अत्रि के पुत्र महायोगी दुर्वासा आ गये। लक्ष्मण ने उनका अर्चना द्वारा यथोचित सत्कार किया। मुनि ने लक्ष्मण से कहा, 'तुम शीघ्र राम को मेरे आगमन की सूचना दो।' लक्ष्मण चिन्ता में पड़ गये। पूर्वागंतुक से राम मंत्रणारत थे। उस समय मुनि के आने की सूचना देने के लिए भीतर जाना अनुचित था इससे भाई के निर्देश की अवज्ञा होती थी। वे मुनि से बोले, 'देव, ! ऐसा ही करूँगा। क्षणभर रुक जाइए। मैं प्रतिहार का कार्य कर रहा हूँ।' दुर्वासा ने क्रुद्ध होकर कहा, 'रघुवंशी राजाओं ने यह सनातन रीति स्थापित कर रखी है कि मुनि अंतःपुर में भी निर्बाध चले जाते हैं। यह तो दरबार है। तुम द्वार पर आये मुझको रोक रहे हो। अभी घोर शाप देता हूँ।' लक्ष्मण शाप और राजाज्ञा की अवहेलनाजनित दंड के भय से चिंताविष्ट हो भीतर गये। वहाँ भाई का विकराल स्वरूप देखकर वे संत्रस्त हो उठे। उनके विराट् मुख के भीतर चन्द्र, सूर्य तथा तारागणों सहित सातों लोक, स्वर्ग, नरक तथा वरुणालय, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र समस्त दैवी, मानुषी तथा राक्षसी सृष्टि समाहित दृष्टिगोचर हुई। उसी प्रकार काल भी भयंकर आकृति धारण किये था। लक्ष्मण को ऐसा प्रतीत हुआ कि उन दोनों में से एक विश्व के जीवों को ग्रस रहा है,

दूसरा उन्हें आत्मसात् कर रहा है। इन अदृष्टपूर्व रूपों को देखकर लक्ष्मण संशय में पड़ गये कि उन दोनों में राम कौन हैं? वे सोचने लगे कि मेरे विश्वमोहन बंधु का ऐसा भयानक स्वरूप क्यों हो गया? इनमें से दूसरा कौन है? रुद्र या यम? यह विचार करते-करते उनकी आँखें मुँद गयीं और वे मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ देर बाद उठने पर उन्हें सीतासहित राम पूर्ववत् सिंहासनस्थ दिखायी पड़े। राम ने काल को विसर्जित करते हुए पान का बीड़ा दिया। वह प्रसन्नचित्त चला गया।

काल के विदा हो जाने पर लक्ष्मण ने भाई से दुर्वासा के आने की बात कही। राम स्वर्ण-सिंहासन से उतरकर द्वार तक गये, मुनि को सादर भीतर लिवा लाये और सीता के साथ उनकी पूजा की। मुनि बोले, 'आपने अवतार लेकर राक्षसी माया से संत्रस्त जीवों का त्राण किया। अब प्रार्थना है कि भूतमात्र के आत्यंतिक दुःख-नाश के लिए उस ज्ञान का उपदेश करें, जिसके द्वारा मृत्युलोक के जीव सहज ही भवसंतरण कर सके।' स्वकथित गीता के १८ अध्यायों में भक्ति, दर्शन तथा वैष्णवाचार की विशद व्याख्या करके राम ने दुर्वासा को दिव्यदृष्टि प्रदान की। उसके द्वारा स्वरूप दर्शन प्राप्तकर वे कृतकृत्य हो गये। भगवान् ने आगामी सारस्वत कल्प में उन्हें लीला-प्रवेश का आश्वासन दिया। मुनि प्रभु को आलिंगन कर उनके चरण-कमलों को हृदय में धारण किये हुए अपने आश्रम को चले गये। उन्होंने अपना शेष जीवन राम-यशगान करते हुए रामतीर्थों के पर्यटन में व्यतीत किया। इसी भाँति कतिपय अन्य देवर्षियों ने भी राम की अहेतुकी कृपा से रसभोग फलात्मिका भक्ति प्राप्त की।

दुर्वासा के चले जाने पर प्रतिहार रूप में राजाज्ञा का उल्लंघन करने से भयभीत लक्ष्मण राम के समीप जाकर बोले, 'नाथ! आपका विकराल रूप देखकर मैं बहुत डर गया। आप से बातें करनेवाला वह दूसरा व्यक्ति कौन था? मैंने आपके आदेश की अवज्ञा की है। इस हेतु अपराधी हूँ। कृपया उचित दंड की व्यवस्था दें।' राम ने कहा, मुझसे बातें करनेवाला वह अन्य व्यक्ति काल था। वह मेरा आज्ञापालक है। अपने प्रयोजनवश मुझसे कुछ मंत्रणा करने आया था। मैंने देवकार्य पूरा कर लिया है। कर्म, भक्ति तथा ज्ञानमार्ग का पथ प्रशस्त कर लोकधर्म की भी यथेष्ट स्थापना कर चुका हूँ। अब यहाँ मुझे कुछ भी करना अवशिष्ट नहीं रह गया है। अतः इस लीला का पटाक्षेप होगा।'

अग्रज के मुख से लोकान्तरण का संवाद सुनते ही लक्ष्मण उद्विग्न हो उठे। उन्हें दुःखी देखकर राम ने कहा, 'भाई! तुमने दंड की व्यवस्था देने की बात कैसे कही? हम दोनों अद्वय हैं। उनमें कौन दंड्य है कौन दंडयिता? तुम मेरे अभिन्नांश शेषावतार संकर्षण हो। तुम्हारे बिना मेरी लीला हो ही नहीं सकती। तुम त्रिकाल में भी मेरे कोपभाजन नहीं बन सकते। किन्तु तुम्हें मैंने प्रतिहार का कार्य सौंपा था। उसका तुमने परिस्थितिवश अतिक्रमण किया। इसलिए यदि तुम दण्डसेवन नहीं करोगे तो लोक में वेद-विप्लवी अपवाद फैलेगा। दण्ड का स्वरूप होगा—मेरे लोक-लीला के तिरोधान काल तक तुम्हारा त्याग।'

लक्ष्मण बोले 'प्रभो ! मैं आपकी समस्त राजसी तथा रसमयी लीलाओं में साथ रहा। अब वियोग कैसे सह पाऊँगा ? यदि इस प्रकार छोड़ना था तो मुझे लीलारसास्वादन कराया ही क्यों ? आपके चरितों का स्मरणकर मेरा अंग-अंग जला जा रहा है। कोई भी दण्ड दें किन्तु चरण-कमल से अलग न करें। मैं आपका सान्निध्य प्राप्त करने के लिए पशु, पक्षी, लता, गुल्म, वृक्षादि कुछ भी होने को तैयार हूँ। प्रमोदवन-लीला में मुझे भी स्थान दें, जिससे कभी भी आपके विश्लेष की पीड़ा न भोगनी पड़े। आप लीलोपसंहार न करें। लीला ही मेरा सर्वस्व है। उसके अभाव में मैं जीवन धारण न कर सकूँगा।'

राम ने कहा, भाई लक्ष्मण ! मेरी लीला का कभी अभाव नहीं होता। तुम किसी भी स्थिति में मुझसे अलग नहीं हो सकते। मैं तुम्हारे हृदय में स्थित हो लीलाएँ करता हूँ, अज्ञान से इतर प्रतीत होता है। तुम्हीं कल्पांत में प्रलय के अनन्तर शेष रूप में मुझे शय्यासुख देते हो। मेरे लीलानंद के लिए तुम्हारा वही परमरूप है। तुम्हें मोह नहीं करना चाहिए।' यह सुनकर लक्ष्मण बोले, 'राजीव लोचन ! आप स्वयं ब्रह्म हैं। अपना स्वरूप आप ही जानते हैं या आपकी कृपा से भक्तजन उसका किंचित् आभास पा सकते हैं। मेरी यही अभिलाषा है कि जन्म-जन्म में आपकी चरणरज प्राप्त करता रहूँ। लीलानंद को छोड़कर मुझे सार्वभौम पद भी स्वीकार्य न होगा।' इस पर राम ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, 'मेरा नाम, धाम, लीला तथा परिकर सभी नित्य हैं। भूमि का भार उतारकर अब मैं प्रेमाभक्ति के प्रपोषणार्थ लोकलीला के समस्त परिकरों को लेकर प्रमोदवन जाऊँगा। तब तक तुम ध्यान-ज्ञान तत्पर रहकर सरयू तटस्थ अपने आवास में धैर्य धारण करके प्रतीक्षा करो।' भगवान् के इन उपदेशपूर्ण वाक्यों से लक्ष्मण का लीलातिरोधान की संभावना से उत्पन्न दुःख दूर हो गया। बड़े-ही विनयपूर्ण स्वर में उन्होंने निवेदन किया, 'आपकी परालीला कालातीत है। वही प्रेमी भक्तों का संबल हैं। आपके स्वरूप प्रबोधन से मेरी विरह कातरता दूर हो गयी। मैं आपकी रसात्मिका लीला में सम्मिलित हो नित्य परिकरों के साथ निर्भय विचरूँगा।' यह कहकर वे अपने सरयूतटस्थ प्रासाद में चले गये और दण्डस्वरूप एकांतवास करते हुए परम निवृत्तिभाव से कालक्षेप करने लगे।

राम के परमधामगमन की तैयारी का समाचार पाकर अयोध्यावासी व्याकुल हो गये। उन्होंने समवेतरूप में उपस्थित होकर निवेदन किया, 'महाराज ! हम लोगों ने सुना है कि आपका अयोध्या के परे भी कोई धाम है और अब वहाँ के लिए प्रस्थान करना चाहते हैं। हम लोगों को छोड़कर क्यों जा रहे हैं ? हमारा उद्धार कैसे होगा ?' राम ने उन्हें समझाते हुए कहा, 'प्रजागण ! युग प्रवृत्ति के अनुसार मेरी लीला का आविर्भाव-तिरोभाव होता रहता है। तुम लोग सदैव मेरे दर्शन, आलाप तथा कथा-श्रवण में लीन रहते हो। अयोध्या-मंडल के निवासी पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों तक को मैं मृत्यु के अनन्तर गरुड़वाहनत्व प्रदान कर स्वर्ग भेजता हूँ। अतः तुम सभी अनायास ही परमपद के अधिकारी होगे।'

अयोध्यावासियों के चले जाने पर भगवान् ने गोपों को बुलाया और दिव्य-धाम यात्रा की योजना से उन्हें अवगत कराते हुए कहा, 'अपनी लोकलीला का प्रयोजन पूरा करके मैं प्रमोदवन जा रहा हूँ। तुम लोग मेरा स्मरण करते एवं मेरे वचनों में आस्था रखते हुए धैर्यपूर्वक जीवन-यापन करना। इस प्रकार आश्रितों का प्रबोधन कर वे अपनी मर्यादाशक्ति सीता और प्रेमाशक्ति सहजा को लेकर नगर से बाहर सरयू तट पर स्थित आरामकुंज में चले गये। वहाँ से उन्होंने अयोध्या में दुंदुभी द्वारा यह घोषणा करायी कि आज मैं नित्यधाम के लिए प्रयाण करूँगा। जो चलना चाहे मेरे साथ चले। यह संवाद पाकर स्वाराज्य पद-प्राप्ति की आकांक्षा से सारे अयोध्यावासी कुटुम्बियों, सम्बन्धियों, मित्रों तथा सेवकों सहित एकत्र हो गये। इसका आभास पाकर कीट, पतंग, पशु, पक्षी आदि भी वहाँ आ गये। सबने अमृतोपम सरयू जल में स्नानकर दिव्य शरीर प्राप्त किया। भगवान् राम सीतासहित दिव्य सिंहासन पर बैठे। तीनों भाई तथा हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, नल, नीलादि पार्षद उनकी सेवा में उपस्थित थे। सरस्वती वीणा धारण किये स्तुति कर रही थीं, बृहस्पति, शेष प्रभृति देवता स्तोत्रपाठ में मग्न थे। उसी समय अवधवासियों को ले जाने के लिए अगनित दिव्य विमान आ गये। राम ने समागत प्रजा को उन पर आरूढ़ होने का आदेश दिया। आकाश में किन्नरों का मधुरगान गूँज उठा। देवता और गंधर्व पुष्प-वर्षा करने लगे। उनके देखते-देखते दिशाओं को प्रकाशित करते हुए विमान अयोध्वासियों को लेकर उड़ चले। अन्तिम विमान में परिकरों एवं पराशक्ति सहित भगवान् राम स्वयं विराजमान थे।

राम की परमधाम यात्रा के पश्चात् उनके, द्वारा आदिष्ट राजकुमार गण अयोध्या के व्रज-प्रदेश में गये। वहाँ गोप-गोपियों से संपर्क स्थापित कर उन्होंने राम की रसमयी लीलाओं के प्रत्यक्षानुभूत तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त किया। कालांतर में इन्हीं के द्वारा भक्ति का विश्वव्यापी प्रचार हुआ।

इस प्रकार भक्तराज भुशुण्डि को रामचरित का सांगोपांग वर्णन सुनाकर ब्रह्मा बोले, 'ब्रह्म राम की कथा मुझे समाधि में जैसे उपलब्ध हुई थी उसका सारांश मैंने इस आदिरामायण नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। यह गुह्यलीला जन-सामान्य में कदापि प्रकाश्य नहीं है। तुम्हें अधिकारी समझकर मैंने इस लोक-पावन चरित को कथानायक की आज्ञा से सुनाया। इसे सर्वप्रथम प्रमोदवन में राम ने सीता से कहा था, फिर सीता ने लक्ष्मण को और लक्ष्मण ने भरत को सुनाया। हनुमान न उसी को कभी राम के मुख से सुना। पुनः हयग्रीव से अगस्त्य ने प्राप्त किया। उन्हीं से सुनकर मैंने प्रभु का यह रहस्यमय चरित्र वर्णित किया। यह कथा चित्तपोषक तथा हृदय को पवित्र करनेवाली है। इसके पठन एवं श्रवण से समस्त लौकिक एवं पारमार्थिक मनोरथ सिद्ध होते हैं। एकांतिक तथा रसज्ञ भक्तों के लिए यह विशेष रूप से मननीय है।' रामभक्त भुशुण्डि इस अनुग्रह के लिए ब्रह्मा के प्रति कृतज्ञता निवेदित करते हुए बोले, 'पितामह! आपकी कृपा से राम का यह अद्भुत चरित सुनकर आज मैं धन्य हो गया। मेरा मोह दूर हो

गया। मुझे पूर्वजन्म का ज्ञान प्राप्त हो गया। मैं अनेक जन्मों से रामभक्त रहा हूँ। आपके अनुग्रह से वह भक्ति सुदृढ़ हो गयी। इस द्वीपस्थ पर्वत पर मैं रामभक्त्यामृत पान कर अहर्निश आत्म-विभोर रहता हूँ।

इसके बाद भुशुण्डि ने ब्रह्मासहित सभी समुपस्थित देवों की पूजा की और अत्यन्त विनम्र भाव से उन्हें करबद्ध प्रणामकर विसर्जित किया।

●

श्रीगणेशाय नमः । श्रीरामाय नमः ।

प्रथमोऽध्यायः

ॐ आदिरामायणं नाम श्रीरामचरितं शुभम् ।
किञ्चित्समाधावालोच्य प्रवक्ष्यामि प्रयत्नतः ॥

ॐ नमः परमहंसास्वादितचिन्मयमकरन्दाय रुचिरनखशिखान्त[1]रत्न-प्ररोहपल्लवितसिंहासनप्रान्तपीठप्रदेशाय मुनिमानसमधुकरप्रमोदाय श्रीरामचन्द्रचरणयुगलाय ।

ब्रह्मोवाच

रामं लोकाभिरामं रघुवरतनयं कोशलामुक्तिपुर्यां
खेलन्तं कामकेलिं सुविमलसरयूतीरकुञ्जे नटन्तम् ।
जानक्या चारुहासच्छविविशदशरच्चन्द्रिकाकान्तिमत्या
संयुक्तं राज्य (ज ?) वेषं ललितरसमयं ब्रह्म पूर्णं नमामि ॥१॥
भक्तानां प्राणनाथं वरदपरिवृढं[2] वंशवर्यं वरेण्यं
शुद्धं श्यामावदातं हरितमणिरुचिं सच्चिदानन्ददेहम् ।
आभीरीनेत्रपद्मप्रकरदिनकरं पूर्णचन्द्राभिरामं
रामं श्यामं प्रकामं निजहृदि कलये कोटिकामावतारम् ॥२॥
मुक्ताहाराभिरामं मणिमुकुटसमाबद्धसद्रत्नगुच्छं
मन्दस्वच्छामृताब्धि[3]प्रतिमविहसितं चारुबिम्बोष्ठकान्तिम् ।
शृङ्गारे कान्तवेषं परमतमरसानन्दसाक्षात्कृताङ्गं
गम्भीरावर्तनाभिं त्रिवलिमदुदरं[4] नौमि रामं रमेशम् ॥३॥
एकं नित्यं स्वसाक्षि स्वमहिमनि सदा संस्थितं स्वानुभावं
स्वाधारं ब्रह्मणोऽप्याश्रयममितगुणं भूरि कल्याणवेषम् ।
महांसेशं (तं रासेशं ?) निरंशं निरवधिमवधिं वस्तुमात्रस्य तत्त्वम्
निस्त्रैगुण्यं महस्तत् स्मरसि न हृदये पूर्णरामाभिधानम् ॥४॥

---

१. °नखरशिखरांतं–रीवां, मथुरा । २. °परिदृढं–अयोध्या । ३. °स्वच्छ°–अयो० ।
४. °मुदरं—अयो० ।

मत्स्यं कूर्मं वराहं नृहरिमथ हरिं वामनं हंसरूपं
यज्ञं नारायणाख्यं त्रिभुवनललितं भार्गवं वै हयास्यम् ।
प्रद्युम्नं[1] वासुदेवं कलिमलदमनं[2] रेवतीप्राणनाथं
बुद्धं कल्कि यदन्त्ये न भवति सकलं ब्रह्म रामं स्मरामि[3] ॥५॥
या ते नित्यैव लीला प्रमु(म ?)दवनमहारण्यवृन्दावनादौ
वेदानां गोचरत्वं व्रजति न कथं स्वात्मभाषा स्फुरन्ती ।
सा मे सर्वस्वमास्तां रतिमयसहजानन्दकेलीनिधानं
नान्या प्रेम्णार्थता त्वय्यतिशय[4] वरदेश प्रभो रामभद्र[5] ॥६॥
रक्ताशोकद्रुमालीविरचितसुमहामण्डपान्तर्निषण्णां
सीतासङ्केतकेलीप्रियमत उरसा[6] क्रान्तगोपीकदम्बम् ।
नीलाभ्रश्यामलं[7] तज्जयतु हृदि सदा पूर्णशृङ्गारतत्त्वं
धाम श्रीरामनाम त्रिभुवनसुखदं कोटिकामावतारम् ॥७॥
पद्भ्यां मञ्जीरवद्भ्यां सुललितम(ल ?)वली[8] पल्लवश्रीमुखाभ्यां
क्रीडन् केलीनिकुञ्जे विहसितसहजानन्दिनीशक्तियुक्तः ।
शुष्कं दावाग्निदग्धं द्रुमविटपमहा (हो ?) वंशिकानादवृष्ट्या[9]
पीयूषौघैर्नयन्तं पुनरपि हरित (तां ?) रामचन्द्रं भजेऽहम् ॥८॥
हंहो माधुर्यलक्ष्मीस्तव नयनसुखं वर्धयत्वस्मदीयं
पूर्णा ते राम दृष्टिर्भवतु सकरुणा नित्यमेव प्रसन्ना ।
त्वत्कीर्तिः कण्ठदेशे निवसतु नितरामादिविद्वत्प्रगीता
चित्तेऽन्तर्भातु नित्यं तव पदयुगलं विश्वतापापहन्तृ[10] ॥९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
ब्रह्मस्तुतिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ।

---

१. इतः पूर्वं = त्रुटिचिह्नं दत्त्वा प्रान्तभागे अधिकं रीवांपुस्तके—
"रामं कृष्णं च बुद्धं यवनवधकरं चक्षते वेदवेदो
यस्यांशं तं परेशं स्मर यदि सततं सन्निधिं वाञ्छसे चेत् ॥"

२. कंसारिकृष्णं–मथु०, अयो० । ३. प्रसिद्धमेतेऽशां रामस्य श्रीरामं परात्परं स्मर—मथु० अयो० । ४. नाना केषार्थतात्वय्यविषय–अयो० । ५. रामचन्द्र–अयो० । ६. °प्रियमन उरसः–अयो० । ७. °श्यामलां–अयो० । ८. °नवली–रीवां, अयो० । ९. °वृष्टा–अयो० । १०. °हृत्वं—रीवां, अयो० ।

द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्मणो विपुले सत्रे संगता देवतागणाः ।
यजमानं पर्यपृच्छन् वृद्धं विश्वपितामहम् ॥ १ ॥

देवा ऊचुः

भगवन् देवदेवेश ब्रह्मन् लोकपितामह ।
त्वमेव जगतः कर्ता[1] वेदस्य च समाश्रयः ॥ २ ॥
त्वत्तो नान्योऽस्य[2] जगतः प्रवर्तनविधिक्षमः ।
आदिमूर्तिः स्वयम्भूस्त्वं स्वराट् चैव विराट् प्रभुः ॥ ३ ॥
वेत्सि भूतं भवद् भाव्यं दिव्येन ज्ञानचक्षुषा ।
क आश्रयोऽस्य जगतः किं निमित्तं तथा प्रभो ॥ ४ ॥
किं सारमत्र वेद्यं च बहुवल्गिनि चागमे ।
भवतः संमतं किं च लोकेशस्य विधेर्वद ॥ ५ ॥
क आदौ विनियोक्ता च कः स्वभावोऽस्य संततम्[3] ।
किं स्वरूपं क आकारो ब्रह्मापि वद कीदृशम् ॥ ६ ॥
कीदृशं तस्य संस्थानं किं स्थानं परमं पदम् ।
सगुणं निर्गुणं[4] चापि ध्येयं ज्ञेयं च कीदृशम् ॥ ७ ॥
एतदुद्देशतः पृष्टं विरिञ्चे वद विस्तरात् ।
त्वत्तोऽन्यो नास्य प्रश्नस्य प्रतीकर्ता जगत्त्रये ॥ ८ ॥
तस्माद्वद विधे सर्वं दीर्घसत्रेऽत्र तावके ।
श्रोतुं च सक्षणान्विद्धि[5] सभ्यान् नो वेदवेदिनः ॥ ९ ॥
भवांश्च दीक्षितो यज्ञे कं देवं यजसे पुनः ।
एतच्च नो वद ब्रह्मन् परात्परविदुत्तम[6] ॥१०॥
सर्ववेदारविन्दानां मकरन्दरसं परम् ।
नित्यं श्रावय नो ब्रह्मन् सदस्यत्र हविर्भुजाम् ॥११॥

---

१. कुर्याद्—अयो० । २. नान्यस्य—रीवां, अयो० । ३. संततः—अयो० । ४. सगुणं० इति पूर्वार्धम्–मथु० । ५. सक्षणाद्विद्धि—मथु०, सक्षणान्वेद–अयो० । ६. '.....वद ब्रह्मन्.....विदुत्तम'–अयो० ।

हवींषि भुञ्जते देवाः क एकः फलदायकः ।
मखेषु वापि यज्ञेषु तदिदं च वद प्रभो ॥१२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
प्रश्नरूपं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

•

तृतीयोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

साधु पृष्टं सभास्तारा[1] लोकोपकृति[2]कारणम् ।
भक्ताः परमहंसाश्च कृतार्थाः स्युर्यतोऽखिलाः ॥ १ ॥
राम एवास्य जगतश्चाश्रयः सर्वभूतभृत्[3] ।
राम एव निमित्तं च निजलीलारसात्मकः ॥ २ ॥
राम एव परं सारं वेद्यं [4]निगममूर्द्धसु ।
ममापि संमतं[5] (तत्त्वं ?) राम एव न संशयः ॥ ३ ॥
मामादौ सर्वजगतो राम एव नियुक्तवान् ।
रामस्य च स्वभावोऽस्ति वेदानामप्यगोचरः ॥ ४ ॥
नीलरूपं चिदाकारः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
प्रतिष्ठा ब्रह्मणोऽप्येतत् परं ब्रह्म च तादृशम् ॥ ५ ॥
सगुणं निर्गुणं चापि भेदाभेदविवर्जितम् ।
एकरूपं सदा ध्येयं पूर्णं मायाविवर्जितम् ॥ ६ ॥
चिदानन्दोऽस्य संस्थानं स्थानमस्य सनातनम् ।
सीतालोकं परं स्थानं चिन्मयानन्दलक्षणम् ॥ ७ ॥

---

१. महाभागा—रीवां, सभावद्भिः—अयो० । २. लोकस्योत्पत्ति°—रीवां, कोपप्रकृति°—अयो० । ३. °रूपभृत्—रीवां, मथु० । ४. विगम°—अयो० । ५. संगतं—अयो० ।

कोशलाख्यं पुरं नित्यं त्रिल्लोक इति कीर्तितम् ।
अहं च विविधैर्यज्ञैः कोशलाधिपतिं यजे[1] ॥ ८ ॥
हविर्भुजां च सर्वेषां राम एव परायणम् ।
हविर्भुजामधिष्ठानं राम एव फलप्रदः ॥ ९ ॥
क्रतुयज्ञमये सत्रे सारभुग् राम एव हि ।
आदिरामायणं नाम श्रीरामचरितं शुभम् ॥१०॥
किंचिन्मूलचरित्रं च पवित्रं मङ्गलालयम् ।
जन्म कर्म च रामस्य वक्ष्ये त्रिभुवनेशितुः ॥
एकैकं विमलं गीतं वर्णितं चैव सूरिभिः ॥१२॥

देवा ऊचुः

को वा भुशुण्डनामासौ वैष्णवप्रवरो मतः[2] ।
तस्मै च कथमाख्यातमादिरामायणं शुभम् ॥१३॥
का च तत्र कथा दिव्या श्रीरामचरितात्मिका ।
अवतारचरित्रं किं किं वा मूलचरित्रकम् ॥१४॥
एतन्नो वद भो ब्रह्मन् संदिहानान् सभासदः ।
रामचन्द्रामृतकथाप्रश्नस्योत्तरमद्भुतम् ॥१५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
उपदेशकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

---

१. भजे—रीवां । २. प्रवरोत्तमः—अयो० ।

चतुर्थोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कालस्य भगिनी घोरा नाम्ना या कालकण्टका ।
तस्यां जातः[1] सूर्ययोगाद् भुशण्डो नाम वै द्विजः ॥ १ ॥
काकवेषधरः शूरो लोहतुण्डोऽशनिच्छदः[2] ।
विद्युद्गात्रो[3] मेघरावी प्रलयन्तानलेक्षणः ॥ २ ॥
महासत्त्वो[4] महावीरो महाबलपराक्रमः ।
नीलमेघसमाकारः कालकण्टकिकासुतः ॥ ३ ॥
त्रैलोक्यं स विनिर्जित्य ववृधे बलसंवृतः ।
तुण्डाघातेन नितरामुत्क्षिपन् कुलपर्वतान् ॥ ४ ॥
करालदशनः[5] शूरो नखोदीर्णमहोदधिः ।
पक्षतिद्वयशब्देन ब्रह्माण्डमपि[6] भेदयन् ॥ ५ ॥
गरुडं बलदुर्धर्षं विष्णुवाहनमद्भुतम् ।
बलाद्रणे विनिर्जित्य भुशुण्डो ववृधेतराम् ॥ ६ ॥
ततः सकोपनः कोपात् कृत्वा शब्दं भयानकम् ।
उत्पत्य प्रगतो व्योम्नि चालयन् सर्वखेचरान् ॥ ७ ॥
पक्षवाताहतास्तस्य विमानावलयो पतन् ।
ताराः प्रवेशयामास निजपक्षादिरोमसु ॥ ८ ॥
सूर्यं प्रकम्पयामास भगवन्तं दिवाकरम् ।
चन्द्रं च खण्डयामास तुण्डघातैर्मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥
[7]अत्रासयद् देवगणान् महाबलपराक्रमः ।
पक्षानिलहताम्भोधिः समन्तादुदतिष्ठत ॥१०॥
ततो जवात् समुत्पत्य पद्भ्यां भूमिमकम्पयन् ।
सुमेरुस्तद्बलेनोच्चैरकम्पत सुरालयः ॥११॥

---

१. यातः—अयो०, रीवां । २. सनिछदः—रीवां । ३. विद्युद्दन्तो—अयो० रीवां । ४. महातत्त्वो-अयो०, रीवां । ५. करालवदनः—रीवां । ६. चापि-रीवां, वापि-मथु० । ७. अत्राश°—रीवां ।

[1]विचेलुर्भूरिवेगेन सप्तपातालभूमयः ।
इत्थं त्रिभुवने भीतिं कुर्वन् परमदर्शनः ॥१२॥
स्वर्गं मर्त्यं च पातालमत्रासयत भीषणः ।
ब्रह्मलब्धवरो वीरः काकरूपी दुरासदः ॥१३॥

देवा ऊचुः

त्वया दत्तवरो घोरः काकरूपधरः[2] खरः ॥१४॥
त्रैलोक्यं त्रासयत्येष भुशुण्डो नाम वै द्विजः ।
तत्प्रतीकारकरणे भवानेकः क्षमो विधे ॥१५॥
नो चेदसौ त्रिभुवनं निजपक्षमूले
संपूर्णयिष्यति बली वरलाभदृप्तः ॥
न ह्यस्य[3] वीर्यबलदर्प्पनिवारणाय।
कोऽपि क्षमस्त्रिभुवने नरदेवमध्ये ॥१६॥
इत्युक्तस्त्रिदशैर्ब्रह्मा भुशुण्डस्यालयं ययौ ।
मध्ये मधु[4]समुद्रस्य द्वीपवर्ये महागिरौ ॥१७॥
महाघोरे वने यत्र न देवा नापि मानवाः ।
ब्रह्माणमागतं ज्ञात्वा वृद्धं लोकपितामहम् ॥१८॥
सद्य एवासनात्तूर्णमुदतिष्ठद् द्विजोत्तमः ।
दिव्यासने तं संस्थाप्य कृत्वा पूजां महीयसीम् ॥१९॥
उवाच प्रहसन् प्रीत्या पक्षिराजो विचक्षणः ।

भुशुण्ड उवाच

भगवन् भवतो दृष्ट्वा संपूर्णा मे मनोरथाः ॥२०॥
गृहाश्रमे[5] पवित्रत्वं (-त्वमागतं ?) भवदागमात् ।
महतामागमो लोके केवलं भूतये नृणाम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

भवता वत्स वीर्येण त्रासितं भुवनत्रयम् ।
नैतत्तवोचितं धीमन् यस्मात्त्वं वैष्णवाग्रणीः ॥२२॥

---

१. विखेलु°—रीवां । २. °धरो—अयो० । ३. न त्वस्य—अयो० । ४. सुधा—°मथु० । ५. "सार्थकता" इति टिप्पणी कृता पत्रप्रान्ते–मथुरा० ।

रामेण रचितं विश्वं भक्तानां सुखहेतवे ।
साधवो यदिदुःस्थाः स्युस्तदा रामः प्रकुप्यति ॥२३॥
रामे प्रकुपिते देवे कुतः क्षेमं चराचरे ।
तस्मादुपशमं गच्छ शान्तिरेव सतां मता ॥२४॥
शान्ति विना हरेर्भक्तिर्विफलैव भविष्यति ।
यस्मान्नोद्विजते विश्वं स वै भागवतोत्तमः ॥२५॥
त्वं रामसेवकवरो विद्वान् विदितवेद्यकः ।
जगतो हितमन्विच्छन् सृष्टिरेषा हरेर्यतः ॥२६॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
भुशुण्डोपशमो नाम[1] चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

•

पञ्चमोऽध्यायः

भुशुण्ड उवाच—

बलकृष्णादिरूपाणि रामस्य स्युः सहस्रशः ।
तेषां मुख्यतमं किंचिद् ब्रूहि मह्यं पितामह ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच—

सर्वाण्येव स्वरूपाणि श्रीरामस्य श्रियः पतेः[2] ।
ध्येयानि चैव ज्ञेयानि शान्तानि प्रयतात्मभिः ॥ २ ॥
पुरा खलु खगेन्द्रेण गरुडेन मनीषिणा ।
धावन् गच्छन् वायुपुत्रो हनुमानिदमीरितः ॥ ३ ॥

गरुडउवाच—

हनुमन्[3] कुत्र वेगेन यासि त्वं धावनोद्धतः ।
अत्याहितमिदं कार्यं कथमेवं भविष्यति[3] ॥ ४ ॥

---

१. भुशुंडोपशमे—अयो०, मथु०, रीवां, । २. सीतापतेः—अयो०, रीवां ।
३. हनुमान्—मथु०, रीवां ।

[1]हनुमानुवाच

नागान्तक खगाधीश याम्यहं कोशलापुरे ।
अतिकालो भवत्येष त्वं न जानासि किं सखे ॥ ५ ॥
रामदर्शनवेलेयं मध्याह्ने कोशलापुरे ।
तत्र गच्छाम्यहं तूर्णं तेन धावनवेगतः ॥ ६ ॥

गरुडउवाच

कोऽसौ रामस्त्वया प्रोक्तश्चातुर्वर्ण्येऽस्ति कश्चन ।
आहोस्वित् कोप्यसौ देवो दैत्यो गन्धर्व एव वा ॥ ७ ॥

हनुमानुवाच

त्रैलोक्याधिपतिः श्यामो नीलनीरदविग्रहः ।
रामो दाशरथिर्देवो भवतो विदितो न किम् ॥ ८ ॥
आत्मैव वञ्चितस्तेन येन रामो न वीक्षितः ।
न श्रुतो नैव च ध्यातो न प्रेम्णा परिकीर्तितः ॥ ९ ॥
रामोऽस्य जगतो हेतुः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
परमात्मा प्रभुः साक्षी स एव च गतिर्नृणाम् ॥१०॥
न तं विना मुक्तिदोऽन्यो नामृतस्याश्रयोऽपि च ।
स एव च परं ब्रह्म वेदमूर्द्धसु गीयते ॥११॥
एको रामः सर्वभूतान्तरात्मा
सर्वावासः सर्वकल्याणभूमा ॥
सर्वांशाद्यो प्रमोदवनधामा
यस्यांशांशा भान्ति सर्वेऽवताराः ॥१२॥

गरुड उवाच

एवं चेत्तर्हि हनुमन् प्रसादाद् भवतो मम ।
तद्दर्शनं किं न भवेत् सर्वकल्याणदं सखे ॥१३॥

---

१. "इदं कार्यं अत्याहितं महाभीतिदं प्राणं त्यक्त्वापि साध्यं भविष्यत्यन्यथा एवं प्रकारेण धावनं कथं भवेत्" इति टिप्पणी (४ श्लोके)–मथु० ।

हनुमानुवाच

आगच्छ खगराज त्वं कोशलाधिपतेः पुरम्[1] ।
तत्र श्रीरामचन्द्रस्य दर्शनं ते भविष्यति ॥१४॥
मत्सार्थं ते न निर्वाहस्त्वमागच्छ दिनान्तरे ।
अहमद्य गमिष्यामि शीघ्रदर्शनलालसः ॥१५॥
इत्युक्त्वा हनुमांस्तूर्णं कोशलां नगरीं ययौ ।
दिनान्तरे च गरुडस्तत्र यातः सकौतुकम् ॥१६॥
गत्वा ददर्श रघुपुङ्गवमभ्रनीलं
सीतायुतं कटिनिषङ्गधनुःशराद्यम् ॥
केयूरकङ्कणकिरीटसुकुण्डलाढ्यं
पीताम्बरं मधुरहासमुखारविन्दम् ॥१७॥
एवं विलोक्य गरुडः सुमग्नो रूपसागरे ।
ततो हनुमता प्रोक्तो राम एषोऽभिवन्द्यताम् ॥१८॥

गरुड उवाच

गुञ्जास्रजः[2] केकिपिच्छावतंसः[3]
करे रसाला मुरली यदा स्यात् ॥
गोपाङ्गनाश्चेद्विलसन्ति पार्श्वे
सीतापते त्वां प्रणमामि नित्यम् ॥१९॥

हनुमानुवाच

सर्वस्वरूपो भगवानयमेव रघूत्तमः ।
यादृशी भावना यस्य तादृशस्तस्य[4] भासते ॥२०॥
एष एव पुनर्देवः परिवृत्यावलोक्यताम् ।
ततः स गरुडो भूयः परिवृत्य व्यलोकयत् ॥२१॥

---

१. पुरे--मथु० । २. सृजः--अयो०, मथु०, रीवां । ३. °तंसाः--मथु० ।
४. तादृशी--मथु०, अयो० ।

ददर्श रामस्य[1] गुञ्जाकलापं
मयूरपिच्छस्फुरितावतंसम् ।
वंशीकरं गोपदारैः परीतं
कृष्णं त्रिभङ्गीललितं खगेन्द्रः ॥२२॥
वृन्दावनस्थं स्मितपीयूषवर्षैः
सिञ्चन्तमङ्गानि मृगीदृशां च ।
राधान्वितं पीतदुकूलयुग्मं
दृष्ट्वा स तुष्टाव हृदि प्रसन्नः ॥२३॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्ड-संवादे
गरुडाय दर्शनदानं नाम[2] पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

गरुड उवाच

तव स्वरूपं भगवन्नप्रमेयं
वेदानामप्यादिसर्गोद्भवानाम् ।
न च भ्रमेन्मा[3]दृश एष जन्तुः
किमद्भुतं नाथ दयासमुद्र ! ॥ १ ॥
तथापि ते भक्तवर्यो हनूमान्
ज्ञात्वा समुद्धार्यतमं शठं माम् ।
प्रदर्शयामास भवन्तमद्भुतं
सर्वावतारांश[4]समूहमूलम् ॥ २ ॥

---

१. रामस्यांशं–मथु०, सुश्यामं–रीवां । २. °दाने पंचमो–अयो०, मथु०, रीवां ।
३. श्रयेन्मा–अयो० । ४. °वतारस्य–अयो० ।

दृष्ट्वैव ते नाथ पदाम्बुजद्वयं
मायादिदोषातिगमद्वितीयम् ।
जातोऽस्मि भाग्येन विमुक्तमोहः
समुद्धृतोऽज्ञानरयात्ततोऽहम् ॥ ३ ॥
अथापि भूयः करुणामृतं मयि
प्रवर्षतस्ते दीनवात्सल्यमेतत् ।
विज्ञातमेव व्यापि वैकुण्ठलोकात्[1]
परं पदं तेऽस्ति विमुक्तभेदम् ॥ ४ ॥
सर्वेऽपि ते वलकृष्णादिसंज्ञा
अनेककार्यप्रभवोऽवताराः ।
तवांशांशा एव ते त्वं च पूर्ण-[2]
श्चिल्लोकेशः सहजानन्दिनीशः ॥ ५ ॥
या ते शक्तिः सहजानन्दिनीयं
सीतेतिनाम्नी जगतां शोकहन्त्री ।
तस्या अंशा एव ते सत्यभामा-
राधारुक्मिण्यादयः कृष्णदाराः ॥ ६ ॥
सर्वेऽशास्ते पूर्णशक्त्या समेताः
पूर्णानन्दाः पूर्णचिच्छक्तिभाजः ।
तथापि दृष्टे त्वयि मूलैकमूले
महोदधौ पल्वलवत् स्फुरन्ति ॥ ७ ॥
प्रमुद्वने त्वं सहजाकेलिरक्तो
नित्यं विभासि प्रभुराभीरिकाभिः ।
संप्रत्यभिज्ञाय निजं स्वरूपं
सर्वां लीलां कृतवानत्र भूताम् ॥ ८ ॥
अतः परं नाथ न मेऽस्ति मोहो
भवत्स्वरूपे सहजानन्दिनीश ।

---

१. वैकुंठो—अयो० रीवां । २. एव पूर्णस्तत्त्वं—मथु० रीवां ।

त्वमेव सीतापतिरद्भुतक्रियः
सहजापतिर्वापि[1] प्रमोदधाम्नि ॥९॥
सदास्तु मे राम रति (र्हि) वै[2] त्वयि
स्वसच्चिदानन्दरसैकसिन्धौ ।
तत्त्वं तव श्रीहयशीर्ष एव
जानाति वागीश उदारचित्तः ॥१०॥
नान्यस्य सामर्थ्यमिहास्ति राम
मनोवचोभ्यामपरिच्छेद्यमूर्तौ ॥११॥
नमस्ते रसिकेन्द्राय शृङ्गाररसमूर्त्तये ।
सीताकटाक्षसंदोहविजिताय परात्मने ॥१२॥
गोसंघ गोप गोपीश गोकुलेश रसालय[3] ।
करुणामृतपाथोधे रामचन्द्र नमोस्तु ते ॥१३॥
न ते परिच्छित्तिरनन्तवेदै-
र्न योगदृष्टिप्रसरैस्तपोभिः ।
स्वेच्छैकमात्रेण चिदेकरूपो
भवान्परिच्छेद्यतमः स्वभक्तैः ॥१४॥
अक्रियस्यापिते गोष्ठे रिङ्गणं बाललीलया ।
जानुभ्यां भूतलस्थायि दैत्यमर्द्दनहेतवे ॥१५॥
तव गोदोहनं राम न वै गोपोचितं भवेत् ।
एता हि सद्गिरस्तासां सारं भक्तिः समुद्धृता[4] ॥१६॥
यद्यत्करोषि नटवेषधरो विलासी
तत्तत्तवैव[5] परमार्थत एव कार्यम् ।
नान्यस्य राम रमणीशतकामरूप
गीतं सदैव निगमत्रितयेन नूनम् ॥१७॥

---

१. वैं-अयो०, °पतित्वं—रीवां। २. रतिर्वैं—अयो०, रीवां, मथु० । ३. गोकुले सुरसालय—रीवां । ४. समुद्भृता—रीवां । ५. त्वयैव—अयो० ।

एवं कृत्वा गरुडो राघवस्य
स्तोत्रं मुहुस्तच्चरणारविन्दे ।
अपीपतत् पुलकितविग्रहोऽय-
मानन्दजाश्रूणि दृग्भ्यां विमुञ्चन् ॥१८॥

श्रीराम उवाच

उत्तिष्ठ वत्स खगराज परं शुभं ते
मद्दर्शनेन गत एव स मोहभावः ।
मद्भक्तिमांस्त्रिभुवने विचर प्रसन्नो
नह्यस्ति तेऽभिलषिताचरणेऽन्तरायः ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं श्रीरघुनाथस्य प्रसादमुपलभ्य सः ।
कृतबुद्धिः कृतार्थात्मा बभूव बहुनिर्वृतः ॥२०॥
तस्माद् भुशण्ड पक्षीन्द्र रामं भजितुमर्हसि ।
श्री रामचन्द्रं प्रेम्णा वै न[1] पश्यति स वञ्चितः ॥२१॥
तस्यैव सर्वरूपाणि रामस्य परमात्मनः ।
आदिनारायणेशस्य सेव्यानि कृतनिश्चयैः ॥२२॥
एवं स[2] गरुडो दृष्ट्वा राघवेन्द्रं परात्परम् ।
महापुर्य्यां हनुमता सेव्यमानमहर्निशम् ॥२३॥

हनुमानुवाच

पक्षीन्द्र त्वं हि धन्योऽसि राघवेन्द्रस्य दर्शनात् ।
अत्याहितं हि देवानां भवतो वै भविष्यसि ॥२४॥

गरुड उवाच

श्रीमतो राघवेशस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ।
दर्शनार्थमागतोऽहमयोध्यां मुक्तिदां पुरीम्[3] ॥२५॥
अद्यैव सफलं जन्म साकेतदर्शनेन मे[4] ।
अद्यैव सफलं ध्यानं प्रमोदवनदर्शनात् ॥२६॥

---

१. न यः–रीवां । २. हि–मथु० । ३. °र्थं प्रागतोहं पुरीमयोध्यां मुक्तिदां–रीवां, मथु० । ४. दर्शने मम–रीवां, मथु० ।

धिग् धिग् जन्म च तेषां वै ये न पश्यन्ति सादरम् ।
प्रमोदवनमध्यस्थां कोसलां सरयूं तथा ॥२७॥
कोटयो ब्रह्मणामत्र रुद्राणां च मरुत्वताम् ।
वसूनां वरुणानां च स्तुवन्तः पुरतः स्थिताः ॥२८॥

हनुमानुवाच

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि गरुड त्वं हि संप्रति ।
सकुलस्त्वं पुनीतोऽसि राघवेन्द्रस्य दर्शनात् ॥२९॥
श्रीरामे देवदेवेशे कोशलायां विराजति ।
अंशावताराः कृष्णाद्याः प्रणमन्ति ह्य[1]संख्यकाः ॥३०॥
न ततोऽन्यमहं जाने देवदेवं खगेश्वर ।
सर्वावतारनिधेश्च रघुवीराद् गुणाकरात् ॥३१॥

गरुड उवाच

रामस्य बलकृष्णाद्याः सर्वेऽप्यंशाः सनातनाः ।
न ततोऽन्यत्किमप्यस्ति स्थूलं सूक्ष्मं जगत्त्रये[2] ॥३२॥
इत्युक्त्वा तार्क्ष्यः कपीशं गच्छन् कर्त्तुं परिक्रमाम् ।
महावैकुण्ठसेव्याया अयोध्यायाश्च सर्वतः ॥३३॥
अयोध्यादक्षिणे भागे श्रीकृष्णं रुक्मिणीयुतम् ।
ददर्श गरुडस्तं च ननाम विधृताञ्जलिः ॥३४॥
नमन्तं गरुडं दृष्ट्वा रुक्मिणीवल्लभो हि सः ।
उवाच मधुरं वाक्यं प्रहसन् गरुडं तदा ॥३५॥

कृष्णोवाच

अद्य ते सफलं जन्म जीवितं सफलं सखे ।
गरुड त्वं हि धन्योऽसि अयोध्यापुरिदर्शनात्[3] ॥३६॥
अयोध्यां परितो देशे कोटिविष्ण्वादयो वयम् ।
वसामः सततं वत्स रघुवराज्ञाप्रपालकाः[4] ॥३७॥

---

१ चा°—मथु०, अयो० । २. °ल्लये—मथु०, रीत्रां । ३. पुरीद°···मथु० ।
४. च पालकः—अयो०, मथु० ।

इदमेव विजानन्ति ते वै रघुवरप्रियाः ।
तदितरेऽधमा जीवाः नित्यं स्वजनिदूषकाः ॥३८॥
एवं साकेतमहिमानं रहस्यं परमं सदा ।
स्तुत्वातिहर्षितस्तार्क्ष्यो मुमोद च पुनः पुनः ॥३९॥
उवास परया भक्त्या मणिपर्वतसन्निधौ ।
गायन् श्रीराघवेन्द्रस्य चरितं भुक्तिमुक्तिदम् ॥
विष्ण्वादिभिः सदा सेव्यं श्रुतिस्मृति रसं सुखं ॥४०॥
दृष्ट्वा प्रभावमतुलं श्रीराघवस्य
तथैव साकेतपुरस्य नित्यम् ।
नमामि (ननाम ?) रोमाञ्चितप्रेमविह्वलः
स मारुती राघवरत्नमद्भुतम् ॥४२॥
सीतापतिं कटिनिषङ्गिणमात्तचापं
रामं पयोदपटलाधिकमेचकाङ्गम् ।
केयूरिणं कनकरत्नकिरीटजुष्टं
श्रीलक्ष्मणेन युतमद्भुतकोशलेशम् ॥४३॥
तुष्टाव हनुमान् प्रीत्या साष्टाङ्गनतविग्रहः ।
[1]सकुर्वन् मुहुरत्यन्तं प्रेम रामे प्रतिक्षणम् ॥४४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
हनुमद्दर्शनं नाम[2] षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

१. कुर्वन्हि—रीवां । २. °दर्शने–रीवां, मथु०, अयो० ।

सप्तमोऽध्यायः

श्री हनुमानुवाच

नमामि ते नाथ पदारविन्दं
विष्ण्वादिसेव्यं च सुखैकहेतुम् ।
न यत्र सद्यः प्रमितिः श्रुतीनां
तत्रामिते वानरः कोऽस्मि एषः ॥ १ ॥

तव प्रसादो मयि नाथ जात-
स्तथैव धामेश्वरिप्रेमदायाः ।
प्रमुद्वने नित्यनिकुञ्जकेली-
लसन्महामञ्जुलविग्रहायाः ॥ २ ॥

यदंशमात्रेण भवन्ति नित्यशो
लक्ष्म्यादयः शक्तिवराश्च सर्वाः ।
लीलेश्वरी नन्दननन्दिनी सा
मां पातु पादाम्बुजनित्यभक्तम् ॥ ३ ॥

नहि प्रभावा[1]भ्युदिते रुचीनां
तमोभवे[2] दृष्टिपथं प्रयाति ।
तथा त्वयीशे[3] कोटिसूर्यप्रकाशे[4]
श्रीराघवेन्द्रे भक्तजनैकलभ्ये ॥ ४ ॥

यदि[5] त्वमेतत्तिमिरं मोहरूपं
[6]न संहरेदीश निजाश्रितेषु ।
कथं तदैषां गोचरत्वं प्रयाति
रूपं तथैतत् सच्चिदानन्द सान्द्रम् ॥ ५ ॥

गोपालराजस्य च नन्दनस्य[7]
गेहे पुरा वसन् सह लक्ष्मणेन च ।

---

१. प्रभावे–मथु० । २. भवेद्–अयो०, रीवां । ३. त्वयि मे-अयो०, रीवां । ४. प्रकाशके–अयो०, रीवां । ५. त्वमेव–अयो० । ६. नहि–अयो० । ७. नंदनंदनस्य–अयो० ।

[1]अरीरमद्राम भवान् व्रजाङ्गना
उद्धारार्थं श्रुति-ऋष्यादिरूपाः ॥ ६ ॥
[2]तवैव लीला भुवने रसाला
सुधाब्धिवत् पालयत्येव भक्तान् ।
[3]नो चेत् कदाचित् त्वयि संतिरोहिते
[4]विशुष्येयुः पारमहंस्यभाजः[5] ॥ ७ ॥
एवं विचिन्त्य भगवान् व्यतनोद्भवांस्तं
लीलामृतोदधिमुदारमनन्तसारम् ।
यस्यान्तरे परमहंसवराः सदैव
क्रीडन्ति कालशिरसि स्वपदं निधाय ॥ ८ ॥
त्वं भक्तिलभ्योऽसि हरे जनानां
[6]न ज्ञानयोगादितपोभिरुग्रैः ।
कथं तवेदृक् प्रसादोऽपि लभ्यः
कुतस्तरां सन्निधौ दर्शनं ते ॥ ९ ॥
त्वं रामचन्द्रो नृपतेः कुमारो
नित्यं विलासो सरयूतीरवासी ।
तवांश एषः श्रीकृष्णो यशोदा-
गर्भे भविष्यति वै द्वापरान्ते ॥१०॥
अतो ह्यनन्तः शाश्वतस्त्वं पुराणः
पूर्णो नित्यः सच्चिदानन्द एकः ।
व्योमाकारस्त्वं स्वलीलाभिरुच्चैः
विश्वानन्दं जनयन् भासि रामः ॥११॥
नमस्ते रामचन्द्राय मुक्ता[7]हारावतंसिने ।
पञ्चरत्नावतंसाय सीतानेत्रविनोदिने ॥१२॥
नमो गोपीदृगाराम रामनाम शुभावह ।
वंशीधर[8] घनश्याम वनमालिन् व्रजेन्द्र[9] ते ॥१३॥

---

१. आमोदयद्–अयो०, रीवां । २. तथैव–मथु० । ३. नेचित्–अयो०, मथु० रीवां । ४. नास्ति–अयो० । ५. °पारमहंसास्य भाजाः–अयो० । ६. विज्ञानं–अयो० । ७. गुंजा°–मथु० । ८. धनुर्द्धर–रीवां । ९. राघवेन्द्र–रीवां ।

केलिनीकेलिकान्ताय[1] श्रीकान्ताय सुखाब्धये[2] ।
गुणग्रामसमुद्राय[3] सीताकान्ताय ते नमः ॥१४॥
अपराधसहस्रेऽपि सद्य एव प्रसादिने ।
रामाय चैव रामाय नित्यमेव नमोनमः ॥१५॥
एवं स्तुत्वा पदाम्भोजमग्रहीत् रसिकेशितुः ।
प्रेमविह्वलितो[4] भूत्वा हनूमान् रामसेवकः ॥१६॥

श्रीरघुनन्दनोवाच[5]

उत्तिष्ठ वत्स हनूमन् लीलोपासनयानया ।
दृढया ते प्रसन्नोऽस्मि भक्तोऽसि मम सर्वदा ॥१७॥
रामो लीलाविशिष्टोऽहं त्वामानन्दयितुं क्षमः ।
[6]बालक्रीडानुचरितैः पितरौ नन्दयामि च ॥१८॥
दृढलीलोपासनायां मारुते मतिरस्तु ते[7] ।
मम सर्वस्वरूपेण भक्तानां प्रकटत्वतः ॥१९॥
लीलामाधुर्यमात्रं तु स्वमास्वाद्यं रसोत्तरैः ।
भक्तैः परमहंसैश्च साधुभिर्हृदयालुभिः ॥२०॥
रसास्वादाय साधूनां [8]लीला या राघवस्य च ।
आस्वाद्यमाना सा बुद्ध्वा[9] मुक्तिमेव प्रयच्छति ॥२१॥
[10]सामीप्यं तिष्ठ हनुमन् भक्तोऽसि मम सर्वदा ।
भज रामं राघवेन्द्रं [11]पराभक्तिमवाप्नुहि ॥२२॥
[12]गरुड त्वं च देवानां कार्यं साधय गच्छ भोः ।
साकेतस्योत्तरे कूले सरयूतीरयोर्द्वयोः ॥२३॥
नृणां संचरतां मृत्यौ पशुपक्ष्यन्त्यजात्मनाम् ।
भृङ्गकीटपतङ्गानां वत्स त्वं वाहनो भव ॥२४॥
चतुर्भुजांस्तान् मद्रूपानानयस्वेह यत्नतः ।

---

१. केलिनिकेलि°–रीवां, मथु० । २. श्रान्ताय दुस्तरभ्रमैः–मथु० । ३. °निशान्ताय–मथु० । ४. निरस्तसंशयो–मथु० । ५. श्रीभगवानुवाच–मथु० । ६. कृष्णावतारचरितैः गरुडं नन्दयामि च–मथु० । ७. मा ते भूयान्मतिः शठा–मथु० । ८. लीला भगवतो यतः-मथु० । ९. बुद्धिर्–रीवां, शुद्धा-मथु० । १०. स्वालयं गच्छ हनूमन् जातोसिच्छिन्नसंशयः-मथु० । ११. परां मुक्तिमवाप्स्यसि–मथु० । १२. रुद्रत्वं चैव-अयो०, रीवां ।

इत्थं विसृज्य भगवान् गरुडं रघुनन्दनः[1] ॥
रराम परमैश्वर्यभाविते सरयूतटे ॥२५॥
एतद् भुशुण्ड ते प्रोक्तमाख्यानं परमाद्भुतम् ।
[2]रामस्य चापि सीतायाः मिथस्तादात्म्यसूचकम् ॥२६॥
तस्माद् विप्रतिपत्तव्यं[3] न कदाचिन्मनीषिणा ।
यथा रामस्तथा सीता [4]तथा श्रीसहजा मता ॥
अथाहि[5] ते प्रवक्ष्यामि राममाहात्म्यमुत्तमम् ॥२७॥
यस्मात्त्वं रामभक्तोऽसि वैष्णवानां तथाग्रणीः ।
आदिरामायणं नाम श्रीरामचरितं शुभम् ॥२९॥
किंचित्समाधावालोक्य प्रवक्ष्यामि प्रयत्नतः ।
अवतारचरित्रं च मूलं चरितमेव[6] च ॥३०॥
एकीकृत्य लभेद्यत्र प्रवक्ष्यते मया द्विज ।
एवं मया भुशुण्डाय प्रोक्तं तत्संहितामयम् ॥३१॥
आदिरामायणं दिव्यं ब्राह्मे कल्पे विनिर्मितम् ।
तच्छ्रूयतां सुराः सर्वे श्रीरामचरितं शुभम् ॥३२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे कथावतारो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

१. च मरुत्सुतम्–मथु० । २. श्रीरामसहजा सीता–रीवां, अयो० । ३. हि प्रति°–अयो०, रीवां । ४. यथा सीता तथैव सः-मथु० । ५. तथापि–मथु० । ६. चारित्र°–मथु० ।

अष्टमोऽध्यायः

भुशुण्ड उवाच

जन्म कर्म च मे दिव्यं वद रामस्य विस्तरात् ।
तत्कथामृतपानेन मम चित्तं प्रसीदति ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

पुरा दशास्यमुख्येषु राक्षसेषु जगत्त्रयम् ।
व्याकुलीकृतमत्यर्थं तदा विधिरचिन्तयत् ॥ २ ॥
अहो मया कृतं विश्वं विष्णुना प्रतिपाल्यते ।
ईशेन ह्रियते भूयः संप्राप्ते भुवनक्षये ॥ ३ ॥
भुवनस्य क्षयश्चापि नाधुनैव भविष्यति ।
कल्पं सारस्वतं नाम युगं त्रेताभिधं तथा ॥ ४ ॥
प्रायेणैषां विनाशाय द्विजधर्मत्रयीद्रुहाम् ।
भविष्यति स्वयं रामः प्रादुर्भूतः क्वचिद्भुवि ॥ ५ ॥
ततः समाधौ प्रबभूव वाणी
स्वयं भविष्यामि कलाभिरन्वितः ।
धर्मस्य संस्थापनहेतवे पुनः
स्वभक्तपक्षप्रतिपालनाय च ॥ ६ ॥
सरयू पुलिने रम्ये कोशला नाम मे पुरी ।
सच्चिदानन्दनवनी शाश्वतं यत्परं पदम् ॥ ७ ॥
पृथिव्यां भारते वर्षे प्रकटं तन्मदाज्ञया ।
अत्रैवाहं स्वरूपेण विहरामि परिच्छदैः ॥ ८ ॥
लीलोपकरणैर्युक्तो नित्यैरप्राकृतैस्तथा ।
सुरा अपि भविष्यन्ति स्वांशेन प्रकटा इह ॥ ९ ॥
इति श्रुत्वा गिरं सूक्ष्मां वेधाः प्रोवाच विस्मितः ।
सर्वान् देवगणान् भूयो रावणाद्यैरुपद्रुतान् ॥१०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
कथावतरणं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तत्र काकुत्स्थवंशे तु जनिता वो हितप्रदः ।
तस्य सेवार्थममरा अग्रतो यूयमासथ ॥ १ ॥
कोटिब्रह्माण्डलक्ष्मीनामंशिनी ब्रह्मरूपिणी ।
आद्या श्रीर्भविता तस्य तोषणार्थं तु जानकी ॥ २ ॥
स जातो भगवान् रामो राघवेन्द्रो परात्परः ।
हरिष्यति भुवो भारं धर्मं च स्थापयिष्यति ॥ ३ ॥
आदिदेव्याश्च पद्मायाः करिष्यति सुखं महत् ।
देवीनां मानुषीणां च किन्नरीणां तथैव च ॥ ४ ॥
[1]नागीनां च नगीनां च दृङ्मोदं जनयिष्यति ।
प्रमोदविपिने स्थित्वा संप्रयुक्तस्तदाज्ञया ॥ ५ ॥
तदंशभूताः अन्याश्च रामाः[2] संमोदयिष्यति ।
परमा सा स्वयं लक्ष्मीः सीता साकेतपत्तने ।
प्रमोदने तथा राज्ञी सहजानन्दरूपिणी ॥ ६ ॥

भुशुण्ड उवाच

श्रीरामचरितं ब्रूहि ब्रह्मन् संशृण्वतो मम ।
जायते परमानन्दो रोमहर्षश्च गद्गदः ॥ ७ ॥
यस्यांशा मत्स्यकूर्माद्याः बलकृष्णादयस्तथा ।
तं राममपहायान्यं श्रोतुमिच्छामहे कथम् ॥ ८ ॥
यः पश्यतो मे धृतचापहस्तो
भ्रूभङ्गमात्रे जलधिं निबध्य ।
चकार लङ्कां निजदासनाथां
निहत्य वेगेन च राक्षसेन्द्रम् ॥ ९ ॥

---

१. नागीनां चैव नागानां–अयो० । २. रामः–अयो०, रीवां ।

लङ्काधिपः संयति जिष्णुजैत्रो[1]
वरोर्जितो भूरितेजा दशास्यः ।
यद्बाणवह्नेः सहसा पतङ्गतां
जगाम साकं परिवारवर्गैः[2] ॥१०॥
तस्य श्रीरघुवीरस्य चरितं मे निशामय ।
कल्पे कल्पे तु यज्जातं विदितं चैव यत्तव ॥११॥

ब्रह्मोवाच

अनन्तं चरितं तस्य वक्तुं नो पारये द्विज ।
समाधौ तु सकृद्दृष्ट्वा वाल्मीकिः कथयिष्यति ॥१२॥
मयापि भवते वाच्यं समाधावुपलभ्य हि ।
विना समाधिसंयोगं कथं वक्तुं क्षमोऽस्म्यहम् ॥१३॥
वाल्मीकिनोदितं दिव्यं रामायणमुदाहृतम् ।
अन्यत्तु रामानुक्रीडं तद्रामायणमेव हि ॥१४॥
मत्स्योऽस्य हृदयं विष्णुर्योगरूपी जनार्दनः ।
कूर्मोऽस्य धारणाशक्तिर्वराहो भुजयोर्बलम् ॥१५॥
नारसिंहो महान् रोषो वामनः कटिमेखला ।
भार्गवोऽस्य परो धर्मो बलरामश्च संमदः[3] ॥१६॥
बुद्धस्तु करुणा साक्षात् कल्की चैतस्य संस्मृतिः ।
कृष्णोंऽशांशो ह एवास्य[4] वृन्दावनविभूषणः ॥१७॥
एते चांशकलाश्चैव रामस्तु भगवान् स्वयम् ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च महेन्द्रः श्रीस्तथैव च ॥१८॥
सनातनस्तथा धर्मो राम एव स्वयं द्विज ।
न रामात् परतस्तत्त्वं वेदैरपि निचीयते ॥१९॥
वेदान्ता ब्रह्मसूत्राणि चत्वारो निगमास्तथा ।
सेतिहासानि सर्वाणि पुराणानि तथा द्विज[5] ॥२०॥
धर्मः सांङ्ख्यं तथा योगः सर्वं रामस्य सूचकम् ।
तत्संकोचविकाशाभ्यां राम एव प्रतिष्ठितम् ॥२१॥

---

१. विष्णु°–अयो० । २. सर्गैः–अयो० । ३. संपदः–अयो०, रीवां । ४. "कृष्णोंऽशांशः–श्रीरामस्य"–इति मथु० टिप्पणे संशोधितः पाठः । ५. तथांडज–मथु० ।

रकारेण विकाशः स्यात्संकोचस्तु मकारतः ।
वेदशास्त्रपुराणौघैरेकं तत्त्वं विनिश्चितम् ॥२२॥
परं ब्रह्म स्वयं रामः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अहो रामस्य चरितं महानारायणेशितुः ॥२३॥
जिह्वाकोटिशतेनापि मया वक्तुं न शक्यते ।
यस्य लोकः सदा भाति गोलोकात्परतस्तु सः ॥२४॥
महावैकुण्ठमेतद्धि व्यापि वैकुण्ठसंज्ञकम् ।
तत्र[1]तस्य पदाम्भोजद्वयं सम्यक् प्रतिष्ठितम् ॥२५॥
तत्परस्तस्य वै रूपं सीतावैकुण्ठसंज्ञकम् ।
रामवैकुण्ठसंज्ञं तु[2] प्रमोदवनमुदाहृतम् ॥२६॥
यतो विनिर्गताश्चांशा विस्फुलिङ्गा इवारणेः ।
बलकृष्णादयः सर्वेऽप्यवतारपदं मताः ॥२७॥
अवतारी स्वयं रामः सर्वांशानां निधिः परः ।
कस्तस्य महिमानं च वक्तुं शक्नोति दैवतः ॥२८॥
हयग्रीवेण यत्प्रोक्तं यच्च वल्मीकजेन च ।
मया त्वया च यत्प्रोक्तं वसिष्ठेन तथोदितम् ॥२९॥
तदंशमात्रकं विद्धि रामायणमनन्तकम् ।
यदि वालुकरेणूनां गणना स्यान्महामते ॥३०॥
तदा श्रीरामवीर्याणां गणना भवति क्वचित् ।
अन्यदेवहि तद्वीर्यं कल्पे कल्पे युगे युगे ॥३१॥
अथाभवद्दशरथमन्दिरे परे
पुमानसौ भुवनभरोद्धृतिक्षमः ।
मृगीदृशां नयनविमोहनाकृतिः
स राघवः क्षपयतु[3] वाक्यचापलम् ॥३२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
महिमवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

१. अत्र–अयो० । २. "तस्मान्महावैकुण्ठात्परं नाम श्रेष्ठं प्रमोदवनं प्रमोदवनस्यैव सीतारामवैकुण्ठसंज्ञा" इति टिप्पणी—मथु० । ३. क्षपयतु-मथु० ।

दशमोऽध्यायः

भुशुण्ड उवाच

कीदृग्रूपधरो रामो जातो दशरथालये ।
किमाचारः कथंभावः तद्वदस्व विधे मम ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु नवम्यां श्रीपुनर्वसौ ।
अभिजिन्नामयोगेऽसौ कौसल्यानन्दनोऽभवत् ॥ २ ॥
स जातमात्रो निविडाम्बुदाकृतिः
पीताम्बरः सुस्मितवक्रपङ्कजः ।
भुजद्वयो वाणवरादिचिह्नितः
स्ववामभागे श्रियमुत्तमां दधत् ॥ ३ ॥
अनर्घ्यरत्नाभरणैर्विराजितः
समुल्लसत्कुण्डलशोभिताननः ।
श्रीवत्सलक्ष्म्यार्पितकण्ठकौस्तुभ-
स्त्विषा स्वयं रोचितसूतिकागृहः ॥ ४ ॥
अनङ्गलावण्यपरार्धसम्पदा
संस्पृष्टसर्वाङ्गमनोहरोज्ज्वलः ।
शृङ्गारभङ्गीरससूचकैर्दृशोः
कटाक्षपातैः कमलां प्रमोदयन् ॥ ५ ॥
आसन्नगर्भोद्भवजातनिद्रया
कौशल्यया लक्षितजन्मभूषणः ।
ततश्च संदेशहरैर्निवेदितो
नृपाय दूर्वादलशोभिपाणिभिः ॥ ६ ॥
स वासुदेवादिभिरात्मजोंऽशै-

श्चतुर्भिरासेवितदिव्यविग्रहः ।
जवात् समागत्य नृपेण वीक्षितो
दृग्भ्यामदृष्टाश्रुतपूर्वलक्षणः ॥ ७ ॥
तमादिपुरुषं ज्ञात्वा परं ब्रह्म स्वरूपिणम् ।
तुष्टाव वैदिकैः शब्दैः स्वयं दशरथो नृपः ॥ ८ ॥
नमो नमस्ते रघुनन्दनाय
रामाय रामाच्युतविक्रमाय ।
रामाय रामाय च राघवाय[1]
स्वयंभुवे श्रीपतये पराय ॥ ९ ॥
नमो हृषीकेश शिवाय तुभ्यं
समस्तदैत्यावलिनिग्रहाय ।
भूभारहर्त्रादिवराहमूर्तये
नृसिंहरूपाय च वामनात्मने ॥१०॥
नमो महामन्दरशैलधारिणे
त्रिविक्रमायातुलविक्रमाय ।
श्रीवत्सलक्ष्माय सकौस्तुभाय
श्रीरामदेवाय रघूद्वहाय ॥११॥
त्वमादिमूर्तिर्भगवान् सनातन-
स्त्रयीमयः शान्तरजस्तमोमयः ।
भक्तेषु कृत्वा करुणां कदाचि-
दिहावतीर्य क्षपयस्यधर्मम् ॥१२॥
न ते विदुस्तेज उदग्रमेतद्
विश्वे भवाद्या अपि दैवतोत्तमाः ।
स्वरूपशक्त्यैव सदावदातया
प्रकाशसे संततसुप्रकाशः ॥१३॥
त्वमादिदेवो विदितोऽसि संप्रति
श्रिया युतः श्रीपुरुषोत्तमो हरिः ।

---

१. रोचकाय—रीवां ।

न चेदिदं विश्वविलक्षणं महः
कथं प्रकाशेत मदक्षिगोचरम् ॥१४॥
दासेषु साधुष्वमरेषु सत्क्रियां
कृत्वावतीर्णोऽसि यदादिपूरुषः ।
तदेव दृश्योऽसि न चेत्तु मादृशै-
र्मर्त्यैः सुखाद् यो[1] भगवान् स्वयंप्रभुः ॥१५॥
नमो नमस्ते भगवन् स्वसाक्षिणे
स्वमायया संवृतविग्रहात्मने ।
त्रिवृत्स्वरूपाय परात्पराय
स्व एव धामन्यनिशं विभास्वते ॥१६॥
रूपं तवैतत् क्षयितोऽवनीभरं
चिदात्मकं भक्तदृशां मनोहरम् ।
पश्यन्ति नैवासुरभावमास्थिताः
कथं चिदेवाविषयीकृतं सुरैः ॥१७॥
स्थानेऽस्मदानन्दकृते भवज्जनु-
र्न रावणाद्यासुरहन्तवे[2] प्रभो ।
तवोद्भटा अक्षरकालधर्म-
स्वभावसंज्ञा कति सन्ति नो भटाः ॥१८॥
यदक्षरं ब्रह्म सनातनं स्वराट्
सहस्रनेत्राननपादबाहुकम् ।
निरञ्जनं निष्प्रतिमं निरीहं
श्रीराम तत्त्वच्चरणं वदन्ति ॥१९॥
यः कालसंज्ञः परमो नियन्ता
समस्तकर्त्ता भगवान् महोग्रः ।
भूतं भविष्यदथ वर्तमानं
विभ्रत्तदीशास्ति वपुस्त्वदीयम् ॥२०॥

---

१. सुखायो—अयो०, रीवां । २. °हन्यवे–अयो०, मथु० ।

यत् कर्मरूपं प्रतिजीवमाततं
यथोचितं यच्च यावच्च रूपम् ।
फलोन्मुखं स्वव्यतिरेकतोऽफलं
तत्त्वं प्रभो इष्टपूर्त्तादिसाध्यम् ॥२१॥
यत् स्वात्मभक्तेषु दयां विधत्से
दुष्टेषु च क्रूरतया निरीक्षितम्[1] ।
सृष्टिस्थितिक्षयलीलाश्च कुर्वन्
जागर्ष्यसौ ते परमः स्वभावः ॥२२॥
तं जातमात्रं कौशल्या प्रसमीक्ष्य भुजद्वयम् ।
ज्ञात्वा सीतापतिं साक्षादब्रवीन्मधुरैः स्तवैः ॥२३॥
अहो धन्ये दृष्टी पुरुषवर ते रूपममृतं
पिबन्त्यौ स्वानन्दोदधिरसनिमग्नेऽद्य भवतः ।
निमेषोऽसह्यो मे[2] किमिति रचितः कैरवपते-
र्यथा ज्योत्स्नाया ते नयनकरसंमर्शनमभूत् ॥२४॥
अहो अहो धन्यतमं कुलद्वयम्
अहो अहो धन्यतमे उभे दृशौ ।
अहो अहो धन्यतमं महीतलं
यत्रास्ति योगो भवता समं हरे ॥२५॥
अहो इदं रूपमतीवसुन्दरं
न दृष्टपूर्वं धरणीतलस्थैः[3] ।
अनेन लिङ्गेन रमाङ्कितेन
श्रीरामचन्द्रोऽसि मतो नरोत्तम[4] ॥२६॥

---

१. °क्षितां-रीवां, अयो० । २. असहिष्णुः–अयो०, मथु० । ३. °स्थले–अयो० ।
४. २६ श्लोकात्परं रीवां पुस्तकेऽधिकम्—

यदि त्वमेतत्तिमिरं मोहरूपं न संहरेदीश निजाश्रितेषु ।
कथं तदेषां गोचरत्वं प्रयाति रूपं तवैतत्सच्चिनन्द्र सान्द्रम् ॥ १ ॥
गोपालराजस्य च नन्दनस्य गेहे वसंस्त्वं सह लक्ष्मणेन ।
अरीरमद्राम भवान्व्रजाङ्गना उद्धारार्थं श्रुतिऋषयादिरूपाः ॥ २ ॥
तवैव लीला भुवने रसाला सुधाब्धिवत्पालयत्येव भक्तान् ।
नो चेत्कदाचित्त्वयि संतिरोहिते विशुष्येयुः पारमहंस्यभाजः ॥ ३ ॥
[=अ० ७ श्लो ५–७]

यतो निवृत्ताः खलु वैदिकीर्गिरो
मनस्तथा यद्विषयानुधावनम् ।
अचिन्त्यशक्तिप्रभवमतर्क्यं
तत्त्वं परं ब्रह्म कुलेऽवतीर्य नः ॥२७॥
कर्ता महन्मङ्गलमीश गोद्विज-
धर्मश्रुतीनां स्वमुपाश्रितानाम् ।
कुलं तथा साधु सुविश्रुतं[1] रवेः ।
स्वपौरुषेणैव महायशो दधत् ॥२८॥
एवमेव कदाचिद्वै द्वापरान्ते यदोः कुले ।
वसुदेवाच्च देवक्यां तवांशो वै भविष्यति ॥२९॥
क्वचित् सुतपसो[2] गेहे पृष्णिगर्भेऽप्यजीजनः ।
तेनैव पृष्णिगर्भेति तव नामानुशुश्रुम ॥३०॥
पुरा भूमेः सजीवाया नेताऽधो वारिधेर्बलात् ।
वराहवपुषा देव हिरण्याक्षस्त्वया हतः ॥३१॥
एवमेव स्वभक्तस्य प्रतिज्ञां रक्षता त्वया ।
निहन्ता श्रुतिधर्माणां हिरण्यकशिपुर्हतः ॥३२॥
प्रलयार्णवमग्नानां वेदानामुद्धृतौ क्षमम् ।
मात्स्यं वपुस्त्वयाऽऽस्थाय हृदयं प्रकटीकृतम् ॥३३॥
पुरा पीयूषमथने मन्थदण्डस्त्वया धृतः ।
मन्दराख्यो महाशैलः कौर्मं वपुरुपाश्रितः ॥३४॥
पुरा वलिं छलयता महामानिनमीश्वरम् ।
मन्ये वपुर्वामनस्य त्वयैव प्रकटीकृतम् ॥३५॥
पुरा लङ्काधिपः कश्चिद्यथेदानीं महाबलः ।
आसीत् स भवता देव रावणाख्यो निराकृतः ॥३६॥
संप्रत्यपि बलैर्वृद्धो राक्षसेन्द्रो दशाननः ।
त्वयैव विनिहन्तव्यः स्तेनो देवपतिश्रियाम्[4] ॥३७॥

---

१. समलंकृतं–अयो०, मथु० । २. क्वचित्तु सुतपोगेहे–रीवां । ३. गर्भोप्य-जीजनत्–अयो०, रीवां । ४. श्रियाः–रीवां ।

पुरा त्वयैव भगवंश्चरता दुश्चरं तपः ।
निराकृताः परशुना सुपुष्टाः क्षत्रियाः प्रभो ॥३८॥
अथ वैदिकजीवेषु कृपां संतन्वता त्वया ।
बुद्धरूपेण भगवन् पूरणीयो महामखः ॥३९॥
जातुचिन्म्लेच्छबहुले जगति त्रिजगत्प्रभो ।
त्वया कल्किस्वरूपेण पालनीयाः श्रुतिद्विजाः ॥४०॥
यौ बलकृष्णाविति विश्रुतिं गतौ
स्वमाययात्तात्मगुणौ नरोत्तमौ ।
वेदेषु शास्त्रेषु तथा पुराणे-
षूद्गीयमानौ खलु तौ त्वदंशौ ॥४१॥
एवं भवान् पूर्णकलाभिरात्मनः
संक्रीडमानोऽभयदो निजानाम् ।
इहावतीर्णोऽसि दिवाकरान्वये
स्वरोचिषा रोचितसर्वविश्वः ॥४२॥
इदं स्वरूपं निजदर्शनोचित-
ममानुषं तावकमीश लिङ्गम् ।
आवां प्रपश्येव न चेतरे जना-
स्त्वया विधेयं भगवंस्तथैव ॥४३॥
इयं च ते श्रीः कमलालया रमा
वामाङ्गसंस्था कमलानपायिनी ।
अम्भोजहस्ता नयनोत्सवप्रदा
धिनोति नो नयनयुगे मृदुस्मितैः ॥४४॥
एवं स्तवं विदधतोः कौशल्याधिपयोर्द्विज ।
आययुः सकला देवा ब्रह्माद्याः सेन्द्रशङ्कराः ॥४५॥
ते दण्डवत् सपदि निपत्य संमुखे
सगद्गदाः पुलकलसत्तनूरुहाः ।
हृष्यन्तो दशमुखवेपितान्तराः
पथ्याभिः[1] स्तुतिभिरथाभिरेभिरे ॥४६॥

१. तथ्याभिः–अयो० ।

ब्रह्मादय ऊचुः

नमो नमो भुवनभयार्तिहारिणे
रिपुच्छिदे द्विजनिगमौघरक्षिणे ।
परात्परामलवपुषे रजस्तमः-
संस्पृष्टप्रबहलसत्त्वमूर्त्तये ॥४७॥
नमो नमो भवजनुषेऽभवाय च
नमो नमो खिलवपुषेऽखिलाय च ।
नमो नमो गुणनिधयेऽगुणाय च
नमो नमोऽखिलदृशेऽदृशाय च ॥४८॥
नमो नमो निजविभवाप्तमूर्त्तये[1]
नमो नमो निजजनचित्तपण्यवे ।
नमो नमो निगमपथातिगामिने
नमो नमो विततभवापवर्गद ॥४९॥
नमो नमो नः कार्यार्थमवतीर्णाय विष्णवे ।
लक्ष्मीशायाखिलद्वेष्टृसंहराय नमो नमः ॥५०॥
नमो नमः पुष्करपुञ्जमालिने
नमो नमः पुष्करलोचनाय ते ।
नमो नमः पुष्करवर्यपाणये
नमो नमः पुष्करमध्यवाससे ॥५१॥
यत्प्रार्थितोऽस्माभिरजस्र[2]दुःखितै-
र्दशास्यकारागृहवासवेपितैः ।
तत्त्वं स्वयाच्ञां सफलां विधातु-
मिहावतीर्णोऽसि नमो नमस्ते ॥५२॥
कस्ते जनो वेत्ति वत प्रवृत्तिं
गुणानुषङ्गव्यतिकरवर्जितात्मनः ।
स्वमाययाखिलजनमोहनाकृते-
रमायिनः स्वर्गभवापवर्गद ॥५३॥

---

१. "निजजनैश्वर्यवृद्धये धृतावताराय" इति टिप्पणी–मथु० । २. °र्जनैः सु° रीवां ।

कुर्मः किमीश भवदेकपरायणात्मा-
नो वयं किमपरं समुपाश्रयामः ।
अभ्यर्थयाम उदितेऽनुयुगं विपक्षे
गोविप्रवेदपथधर्मविवर्द्धनाय ॥५४॥
तथापि ते सख्यमिहाचरिष्य-
न्त्येते सुराः उभयतटान्तवासिनः ।
इहापि ते नाथ रमैव सङ्गिनी
भूयान्महामोदकला विवर्द्धिनी ॥५५॥
एषा श्री भवतो नित्या स्वांशैः क्रीडिष्यति त्वया ॥५६॥
रासादिलीला भवतो परात्परा
विभातु नो हृदये नाथ नित्यम् ।
अशोककुञ्जे भवतो रमेश
रमासहस्रेण यथा विलासः ॥५७॥
इहापि ते देव तथैव भूयात्
साकेतवल्लीवनवल्लरीभिः ।
इमाः प्रभो सुरसरितोऽपरे तटे
वनाश्रयाः सुरवर गोपकन्यकाः ।
रमामयास्तव जनिमानमिच्छवः
ससंततस्तव भवितार ईश्वराः ॥५८॥
एवं स्तुवत्सु ब्रह्मादिष्वत्र संमोदसंभ्रमाः
तुष्टुवुः श्रुतयोऽप्येनं समागत्य त्रिपृष्टतः ॥५९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
जन्मस्तवो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

श्रुतय ऊचुः

जय जय भुवनत्रयसंतापहरण नवाम्बुदाकृते ! सकलकल्याणगुणनिधान निरुपमसौन्दर्य विजितकन्दर्पकोटिदर्प मन्दस्मितमाधुरीसुधारसधारापराभूतशरच्चन्द्रचन्द्रिकावलेप कमलाकुचकुङ्कुमपिञ्जरीकृतवक्षस्थलविराजितमहाकौस्तुभमणिमरीचिमालानिराकृतत्रिभुवनतिमिर निरुपम नित्य निरीह निराभास निरञ्जन निर्विकार नित्याकार निर्गुण नित्यानन्दमयविग्रह निःकिंचनजनप्रिय ब्रह्माण्डकोटिकमलासंसेव्यमानचरणकमलरजःपरागपवित्रितवसुधातल नवीनवनमालाधर राम श्रीराम राघव मुकुन्द रामचन्द्र जनार्दन जगदीश पुरुषोत्तम द्विभुज धनुर्वाणादिधर श्रीवत्सधर महापुरुष महाकारुणिक महाजिष्णो महेश्वर महाजनाचारपरिपालक सूर्यकुलोत्तम रघुकुलोत्तम समर्यादावतारिन् जगद्विधरणदहरवेश्मान्तःस्थ व्यापक परमात्मन्ननिर्द्देश्याप्रमेयातर्क्य कोमलापाङ्गनिर्मुक्तकटाक्षसंक्षोभितास्मन्मानसमहामदनसंवर्द्धन नमस्ते नमस्ते ॥ १ ॥

त्रिपृष्ठपुरस्थाभिरस्माभिरालोकितुं[1] प्रार्थितो[2] यद्दर्शनसुखमुखं किन्नु त्वदीयं प्रियं करवाम त्रिभुवनसुन्दरमिदं ते रूपमवलोकितवत्यो न वयं क्षणमपीतो विचलितुं शक्ताः अद्यावधि तव चरणधावनी[3]दास्य एव भविष्यामः ॥ २ ॥

नमः सुन्दरवर भवतेऽनर्घ्यगुण ब्रह्मादीनामपि वाङ्मनसागोचराकृतये निजानन्दरसनिमग्नाय कैशोरवेशशुद्धमूर्त्तये निजलीलावशीकृतलक्ष्मीसहस्रमहाकेलिमहारसिकाय ब्रह्मण्याय वदान्याय साधुवादनिकेतनाय करिष्यमाणभुवनत्रयमङ्गलपरिणामसूचकमधुरस्मितमण्डितमुखचन्द्राय श्रीरामचन्द्राय ॥ ३ ॥

इत्थं संस्तूय तं नाथं श्रुतयो जातमङ्गलाः ।
सरय्वा अपरे पारेऽवतेरुर्गोपवेश्मसु ॥ ४ ॥

---

१. 'अस्माभि' रिति नास्ति—मथु० । २. ° तोऽद्य दर्शन°—मथु० ।
३. 'धावनीः क्षालिन्यः' इति टि० —मथु० ।

तास्तेषां [1]घोषनाथानामाभीराणां कुले कुले ।
सहस्रशो जनिं कृत्वा रामसेवार्थमुत्सुकाः ॥ ५ ॥
रामो वै[2] भगवान् साक्षात् पूर्णः श्रीपुरुषोत्तमः ।
तत्क्षणात् पश्यतोरेव कौशल्यारघुनाथयोः ॥ ६ ॥
शैशवं रूपमास्थाय व्यरुचज्जातको यथा ।
तं दृष्ट्वा पितरौ तस्य ययतुर्विस्मयं परम् ॥ ७ ॥
अहो ! अस्य महेशस्य लीलाक्रीडनकं वपुः ।
अयं हि नः सुखं दास्यत्युत्तरे वयसिस्थयोः ॥ ८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
श्रुतिस्तवो नाम एकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः

अथाहनन् दुन्दुभिवादिनो भुवि
प्रमोदिताः संसदि देवदुन्दुभीन् ।
जगुश्च विद्याधरकिन्नरीगणाः
प्रबन्धजन्मोत्सवगायनोद्धुराः ॥ १ ॥
सुराश्च तूर्यत्रिकनादमोदिताः
सुरद्रुमाणां कुसुमैरवाकिरन्[3] ।
कृताङ्गभूषा ननृतुश्च संभ्रमात्
सुराङ्गनाभिर्गगनाङ्गणस्थिताः ॥ २ ॥
दिशां प्रसादः[4] सहसा तदाभवद्-
ययुः सुखस्पर्शकराः समीरणाः ।
सुरोचिषा रोचित उद्गतो रवि-
र्नभस्तलं दर्पणनिर्मलं बभौ ॥ ३ ॥

---

१. गोपनाथानां–रीवां । २. अपि–मथु० । ३. ववृषुः कुसुमोत्करम्–अयो०, मथु० । ४. प्रमोदः–अयो० ।

प्रदर्शयामास तथैव कालो
निजान् गुणान् संततमाधिदैविकान् ।
विज्ञाय सर्वेश्वरमत्र जातं
रमा निजांशैरवतारमाचरत् ॥ ४ ॥
ततोऽधिकूलौ[1] मधुरौ सरय्वा
रत्नोप्तहेमप्रभवौ बभूवतुः ।
सरिच्च चान्द्री विमला विरेजे
समुल्लसत्काञ्चनबालुकाढ्या ॥ ५ ॥
सर्वे द्रुमास्तत्र सुरद्रुमोपमाः[2]
सर्वे निधीनां निवहा इहासुः ।
सर्वे च ते दिव्यसमृद्ध[3]योगा
ये प्रादुरासुः कमलानिकेतने ॥ ६ ॥
राजा दशरथः स्नात्वा कृतश्मश्रु[4]रलङ्कृतः ।
जातकर्म कुमाराणां चकार विधिवद्द्विजैः ॥ ७ ॥
जातकर्मोत्सवे[5] धेनूः कोटिशः समलङ्कृताः ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा युक्तः परमया मुदा ॥ ८ ॥
नृत्यतां गायकानां च वाद्यतां पुरयोषिताम् ।
मनोरथाधिकं प्रादात् पटभूषणधोरणम्[6] ॥ ९ ॥
बन्धुभ्यो ज्ञातिजेभ्यश्च महाराजेभ्य एव च ।
संमाननं चकारोच्चैर्वासोऽलङ्कारसंपदा ॥१०॥
तत्राशिषः प्रयुञ्जानाः प्रेमपूर्णा द्विजातयः ।
कुमाराणां सुभव्याय जन्मस्वस्त्ययनं जगुः ॥११॥
अथास्थाने स्थितं भूपं सदूर्वादलपाणयः ।
पौरा जनाः समाजग्मुरन्योन्यकृतमङ्गलाः ॥१२॥
[7]मण्डिता मण्डमानाश्च जातकौतुकवृद्धयः ।
सुहृदः साधवश्चैव भक्ता देवर्षयस्तथा ॥१३॥

---

१. "द्विकूलावित्यपि, कूलशब्दः पुंलिंगोऽपि" इति-टि०-मथु० । २. °द्रुमा-द्रुमाः-अयो०, मथु० । ३. समृद्धि°-रीवां । ४. कृतस्य श्री°-अयो०, रीवां । ५. कामोत्सवे-अयो०, रीवां । ६. धोरणीं-मथु०, रीवां, "सर्वं स्याद्वाहनं मानं युग्यं पत्त्रं च धोरणम्" इत्यमरः । ७. पण्डिता-रीवां ।

कोटिब्रह्माण्डनाथाश्च देवा ब्रह्मादयोऽखिलाः ।
कोटयश्च महेन्द्राणां यमानां कोटयस्तथा ॥१४॥
कोटयो वरुणानां च कुबेराणां च कोटयः ।
रुद्राणां कोटयश्चैव तस्मिन् जन्ममहोत्सवे ॥१५॥
अनृत्यन्त प्रमोदेन सिद्धगन्धर्वलोकवत् ।
अन्ये खदिग्भूमिचराः प्रमोदरसरञ्जिताः[1] ॥१६॥
ग्रहाश्च सर्वे शुभवेषधारिणः
स्वरूपतः स्वस्वगृहेषु तस्थिरे ।
ब्रह्माण्डकोटिष्वपि याश्च संपद-
स्ता मूर्तिमत्यः सहसाऽऽविरासुः ॥१७॥
राजानश्च महामोदा नानोपायनपाणयः ।
समाजग्मुः शुभं वक्तुं तस्मिन्रामजनोत्सवे ॥१८॥
दूर्वादलसनाथेभ्यस्तेभ्यो राजा भृशं[2] ददौ ।
दिव्यभूषणवासांसि वस्तूनि बहुलानि च ॥१९॥
तोषेण पूर्णचित्तास्ते स्पृहयन्ति परस्परम् ।
नरेन्द्रस्य कुमाराणां भूय आभ्युदयं शुभम् ॥२०॥

प्रजा ऊचुः

अहो दशरथो राजा भाग्यवान् मङ्गलालयः ।
यस्योत्तरं वयः सम्यक् सुतजन्मोत्सवैर्युतम् ॥२१॥
अहो अस्य कुमाराणां दीर्घमायुर्भवत्विति ।
अस्मदीयैर्महाभाग्यैरेते जीयासुरीश्वराः ॥२२॥
अहो विधे धन्यतमोऽसि यत्स्वयं
मनोरथं पूरितवान् नृपस्य नः ।
जातोऽधुना भव्यकरो नृलोकः
समस्तसौभाग्यकलाधिवासितः[3] ॥२३॥
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे वसिष्ठाद्याः सुरर्षयः ।
प्रायुञ्जन्नाशिषो याभिर्वृद्धिमन्तः कुमारकाः ॥२४॥

---

१. "अन्ये दिक्चर खचर भूमिचराः समाययुः प्रमुदरसैरलंकृताः" इति भिन्नछन्दसोक्तं-अयो०, मधु०, रीवां । २. दृशं-मधु०, रीवां । ३. °वासतः-रीवां ।

कुमाराः विधिसुस्नाता धात्रीभिः समलङ्कृताः ।
विरेजुः सहसोद्भूता मणयो वारिधेर्यथा ॥२५॥
ते मातृभिः कृतसुमङ्गलसूतिकायां
नीराजितास्तपनबिम्बमहौजसोऽपि ।
[1]नेत्रान्तलग्नकलकज्जलविन्दुजात-
दृष्टिप्रदोषविषया प्रणयं पुपोषुः ॥२६॥
दिने दिनेऽङ्गलावण्यवृद्ध्या रोचन्ति बालकाः ।
अजातदर्शदशना जननीनेत्रसौख्यदाः ॥२७॥
आशीर्भिः पौरलोकानां जनानां च मनोरथैः ।
वर्द्धमानाः प्रतिदिनं व्यूहात्मानो व्यरोचयन् ॥२८॥
तेषां मध्ये महारूपलावण्यवपुषा युतः ।
चिदानन्दमयो रामो व्यरोचत विशेषतः ॥२९॥
द्वितीयश्च सुमित्रायाः सूनुः कञ्जदलेक्षणः ।
व्यराजत विशेषेण रामवत् परमद्युतिः ॥३०॥
अन्यौ भरतशत्रुघ्नौ प्रभामण्डलमण्डितौ ।
विरेजतुः सुवयसौ संपन्नौ परया श्रिया ॥३१॥
दशरथभवनं सदा समृद्धं
सुविततमूर्जितमिन्दिरानिवासम् ।
रामजनुषि सुमङ्गले च जाते
व्यरुचदतीव मनोज्ञयैव लक्ष्म्या ॥३२॥
तथैवाविर्बभूवुस्ते बाला वै लक्ष्मणादयः ।
बभौ राजा समासाद्य निखिलांश्च मनोरथान् ॥३३॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
जन्मोत्सवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

---

१. "नेत्रान्ते लग्नं कलं मनोहरं यत्कज्जलं तस्य विन्दुरेव दृष्टिदोषविषयो येषां ते, दृष्टिदोषो कज्जलविन्दौ लगति न तु नेत्रे, तत्कृते नेत्रप्रान्ते कज्जलविन्दु-प्रदानम्" इति टि०–मथु० ।

त्रयोदशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ त्रयोदशतमे दिने नामविधित्सया ।
कुमाराणां सुजनुषां परमायुश्चिकीर्षया ॥ १ ॥
वसिष्ठो वंशपौरौघाः मुदायुक्तः समाययौ[1] ।
राज्ञो दशरथस्यान्तःपुरे सर्वसमर्द्धने[2] ॥ २ ॥
समायातं मुनिश्रेष्ठं राजा दशरथोऽग्रहीत् ।
अहो मे भाग्यसंपत्त्या संगतोऽद्य पुरोहितः ॥ ३ ॥
प्राजापत्यो मुनिश्रेष्ठः परमानन्ददर्शनः ।
नमस्ते मुनिशार्दूल प्राजापत्य महाप्रभ[3] ॥ ४ ॥

वसिष्ठ उवाच

नरेन्द्र वत ते भाग्यं जातोऽसि तनु पुत्रवान् ॥ ५ ॥
तेषामहं कुमाराणां [4]नामकृत्यं सुखप्रदम् ।
तवाज्ञया विधास्यामि यद्गोप्यममरैरपि ॥ ६ ॥
अहो अमी प्रभोरंशा रामस्यामिततेजसः ।
योऽसौ तव कुमाराणामग्रणी राम एव सः ॥ ७ ॥
अस्य चत्वार एवांशाः ब्रह्मरूपाः सनातनाः ।
वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥ ८ ॥
चत्वार एते पुरुषाः स्वस्वकार्यविधायकाः ।
धर्मरूपास्तु रामस्य पुरुषोत्तमरूपिणः ॥ ९ ॥
ततः संस्नातसंस्कारान् मन्त्रितान् विधिवर्त्मना ।
नामानि चक्रे ब्रह्मर्षिः कोटिकल्पविदुत्तमः ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

रामः श्यामो हरिर्विष्णुः केशवः केशिनाशनः ।
नारायणो माधवश्च श्रीधरो मधुसूदनः ॥११॥

---

१. समाजग्मुर्मुदान्विताः–अयो०, रीवां । २. समृद्धने–अयो० । ३. महाप्रभो–अयो०, रीवां । ४. नामकृत्यं सुखप्रदं–अयो० ।

रावणारिः कंसनिहा वकीप्राणनिवर्त्तनः ।
ताडकाहननोद्युक्तो विश्वामित्रप्रियः कृती ॥१२॥
वेदाङ्गो यज्ञवाराहो धर्मज्ञो मेदिनीपतिः ।
वासुदेवोऽरविन्दाक्षो गोविन्दो गोपतिः प्रभुः ॥१३॥
पद्माकान्तो विकुण्ठाभूः कीर्तिकन्यासुखप्रदः ।
जानकीप्राणनाथश्च सीताविश्लेषनाशनः ॥१४॥
मुकुन्दो मुक्तिदाता च कौस्तुभी करुणाकरः ।
खरदूषणनाशी च मारीचप्राणनाशकः ॥१५॥
सुबाहुमारणोत्साही पक्षिश्राद्धविधायकः ।
विहङ्गपितृसंबन्धी क्षणतुष्टो गतिप्रदः ॥१६॥
पूतनामातृगतिदो विनिवृत्ततृणानिलः ।
पावनः परमानन्दः कालिन्दीजलकेलिकृत् ॥१७॥
सरयूजलकेलिश्च साकेतपुरदैवतः ।
मथुरास्थाननिलयो विश्रुतात्मा त्रयीस्तुतः ॥१८॥
कौन्तेयविजयोद्युक्तः सेतुकृत् सिन्धुगर्भवित् ।
सप्ततालप्रभेदी च महास्थिक्षेपणोद्धुरः ॥१९॥
कौशल्यानन्दनः कृष्णः किशोरीजनवल्लभः ।
आभीरीवल्लभो वीरः कोटिकन्दर्पविग्रहः ॥२०॥
गोवर्द्धनगिरिप्राशी गोवर्द्धनगिरीश्वरः ।
गोकुलेशो व्रजेशश्च सहजाप्राणवल्लभः ॥२१॥
भूलीलाकेलिसंतोषी वामाकोटिप्रसादनः ।
भिल्लपत्नीकृपासिन्धुः कैवर्त्तकरुणाकरः ॥२२॥
जाम्बवद्भक्तिदो भोक्ता जाम्बवत्यङ्गनापतिः ।
सीताप्रियो रुक्मिणीशः कल्याणगुणसागरः ॥२३॥
भक्तप्रियो दाशरथिः कैटभारिः कृतोत्सवः ।
कदम्बवनमध्यस्थः शिलासंतारदायकः ॥२४॥
राघवो रघुवीरश्च हनुमत्सख्यवर्द्धनः ।
पीताम्बरोऽच्युतः श्रीमान् श्रीगोपीजनवल्लभः ॥२५॥

भक्तेष्टो भक्तिदाता च भार्गवद्विजगर्वजित् ।
कोदण्डरामः क्रोधात्मा लङ्काविजयपण्डितः ॥२६॥
कुम्भकर्णनिहन्ता च युवा कैशोरसुन्दरः ।
वनमाली घनश्यामो गोचारणपराक्रमी ॥२७॥
काकपक्षधरो वेषी विटो धृष्टः शठः पतिः ।
अनुकूलो दक्षिणश्च तारः कपटकोविदः ॥२८॥
अश्वमेधप्रणेता च राजा दशरथात्मजः ।
राघवेन्द्रो महाराजः श्रीरामानन्दविग्रहः ॥२९॥
क्षत्त्रः क्षत्त्रकुलोत्तंसो महातेजाः प्रतापवान् ।
महासैन्यो महाचापो लक्ष्मणैकान्तसुप्रियः ॥३०॥
कैकेयीप्रणनिर्माता वीतराज्यो वनालयः ।
चित्रकूटप्रियस्थानो मृगयाचारतत्परः ॥३१॥
किरातवेषः क्रूरात्मा पशुमांसैकभोजनः ।
फलपुष्पकृताहारः कन्दमूलनिषेवणः ॥३२॥
पयोव्रतो विधानज्ञः सद्धर्मप्रतिपालकः ।
गदाधरो यज्ञकर्त्ता श्राद्धकर्ता द्विजार्चकः ॥३३॥
पितृभक्तो मातृभक्तो[1] बन्धुः[2] स्वजनतोषकृत् ।
मत्स्यः कूर्मो नृसिंहश्च वराहो वामनस्तथा ॥३४॥
रघुरामः परशुरामो बलरामो रमापतिः ।
रामलिङ्गस्थापयिता शिवभक्तिपरायणः[3] ॥३५॥
चण्डिकार्चनकृत्यज्ञश्चण्डीपाठविधानवित् ।
अष्टमीव्रतकर्मज्ञो विजयादशमीप्रियः ॥३६॥
कपिसैन्यसमारम्भी सुग्रीवप्राणदः परः ।
सूर्यवंशध्वजो धीरो ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रियः ॥३७॥
ब्रह्मार्पणी ब्रह्महोता ब्रह्मकर्मविदुत्तमः ।
ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणाचारः कृतकृत्यः सनातनः ॥३८॥

---

१. दीनबन्धुः–रीवां । २. भक्त°–रीवां । ३. 'रुद्रमाहात्म्यवर्धनः' इति पाठान्तरं, टि०–मथु० ।

सच्चिदानन्दरूपश्च निरीहो निर्विकारकः ।
नित्याकारो निराधारो रामो रमयतां वरः ॥३९॥
रकारादिर्मकारादिः रामः कैवल्यमङ्गलः ।
संदर्भी संशयच्छेत्ता शेषशायी सतां गतिः ॥४०॥
पुरुषः पुरुषाकारः प्रमेयः पुरुषोत्तमः ।
वंशीधरो विहारज्ञो रसानन्दीजितस्मरः ॥४१॥
पूर्णातिथिविनोदी च वृन्दावनविलासकृत् ।
रत्नकटकधरो वीरो मुक्ताहारविभूषणः ॥४२॥
नृत्यप्रियो नृत्यकरो नित्यसीताविहारवान् ।
महालक्ष्मीदृढानन्दी प्रमोदवननायकः ॥४३॥
परप्रेमा परानन्दः परभक्तिस्वरूपकः ।
अग्निरूपः कालरूपः प्रलयान्तमहानलः[1] ॥४४॥
सुप्रसन्नः प्रसादात्मा प्रसन्नास्यः परः प्रभुः ।
प्रीतिः (तः ?) प्रीति (त ?)-
मनाः प्रीतिः शकटासुरभञ्जनः ॥४५॥
खट्वासुरवधोद्युक्तः कालरूपो दुरन्तकः ।
हंसः स्मरसहस्रात्मा स्मरणीयो रुचिप्रदः ॥४६॥
पण्डा पण्डितमानी च वेदरूपः सरस्वती ।
गुह्यार्थदो गुरुर्देवो मन्त्रज्ञो मन्त्रदीक्षितः ॥४७॥
योगज्ञो योगविन्नाथः स्वात्मयोगविशारदः ।
अध्यात्मशास्त्रसारज्ञो रसरूपो रसात्मकः ॥४८॥
शृङ्गारवेशो मदनो मानिनीमानवर्द्धनः ।
चन्दनद्रवसंशीतश्चन्दनद्रवलेपनः ॥४९॥
श्रीवत्सलाञ्छनः श्रीमान् मानी मानुषविग्रहः ।
करणं कारणं कर्ताऽऽधारो विधरणो धरः ॥५०॥
धरित्रीधरणो धीरः स्त्र्यधीशः[2] सत्यवाक् प्रियः ।
सत्यकृत् सत्रकर्ता च कर्मी कर्मविवर्द्धनः ॥५१॥

---

१. °महाबलः–अयो० । २. अधीशः–रीवां ।

कार्मुकी विशिखी शक्तिधरो विजयदायकः
ऊर्ज्जस्वलो बली जिष्णुर्लङ्केशप्राणनाशकः ॥५२॥
शिशुपालप्रहन्ता च दन्तवक्त्रविनाशनः ।
परमोत्साहनोऽसह्यः[1] कलिदोषविनाशनः ॥५३॥
जरासन्धमहायुद्धो[2] निःकिंचनजनप्रियः ।
द्वारकास्थाननिर्माता मथुरावासशून्यकृत् ॥५४॥
काकुत्स्थो विनयी वाग्मी मनस्वी दक्षिणाप्रदः ।
प्राच्यवाचीप्रतीच्युक्तदक्षिणो भूरिदक्षिणः ॥५५॥
दक्षयज्ञसमानेता विश्वकेलिः सुरार्चितः ।
देवाधिपो दिवोदासो दिवास्वापी दिवाकरः ॥५६॥
कमलाक्षः कृपावासो द्विजपत्नीमनोहरः ।
विभीषणशरण्यश्च शरणं परमा गतिः ॥५७॥
चाणूरबलनिर्मथी महामातङ्गनाशनः ।
बद्धकक्षो महामल्ली मल्लयुद्धविशारदः ॥५८॥
अप्रमेयः प्रमेयात्मा प्रमाणात्मा सनातनः ।
मर्यादावतरो विज्ञो मर्यादापुरुषोत्तमः ॥५९॥
महाक्रतुविधानज्ञः क्रतुकर्मा क्रतुप्रियः ।
वृषस्कन्धो वृषस्कन्दी वृषध्वजमहासखः ॥६०॥
चक्री शार्ङ्गी गदापाणिः शङ्खभृत् सुस्मिताननः ।
योगध्यानी योगगम्यो योगाचार्यो दृढासनः ॥६१॥
जिताहारो मिताहारः परहा दिग्जयोद्धुरः ।
सुपर्णासनसंस्थाता गजाभो गजमोक्षणः ॥६२॥
गजगामी ज्ञानगम्यो भक्तिगम्यो भयापहः ।
भगवान् सुमहैश्वर्यः परमः परमामृतः ॥६३॥
स्वानन्दी सच्चिदानन्दी नन्दिग्रामनिकेतनः ।
वर्होत्तंसः कलाकान्तः कालरूपः कलाकरः ॥६४॥
कमनीयः कुमाराभो मुचुकुन्दगतिप्रदः ।
मुक्तिभूरिफलाकारः कारुण्यधृतविग्रहः ॥६५॥

---

१. सत्त्वः–अयो० । २° योद्धा–रीवां ।

भूलीलारमणोद्युक्तः शतधाकृतविग्रहः ।
रसास्वादी रसानन्दी रसातलविनोदकृत् ॥६६॥
अप्रतर्क्यः पुनीतात्मा विनीतात्मा विधानवित् ।
भुज्युः सभाजनः सभ्यः पण्डः पण्डुर्विपण्यजः ॥६७॥
चर्षणी उत्कटो वीतो वित्तदः सविताऽविता ।
विभवो विविधाकारो रामः कल्याणसागरः ॥६८॥
सीतास्वयंवरोद्युक्तो हरकार्मुकभञ्जनः ।
रावणोन्मादशमनः सीताविरहकातरः ॥६९॥
कुमारकुशलः कामः कामदः कीर्तिवर्द्धनः ।
दुर्योधनमहावैरी युधिष्ठिरहितप्रदः ॥७०॥
द्रौपदीचीरविस्तारी कुन्तीशोकनिवारणः ।
गान्धारीशोकसंतानः कृपाकोमलमानसः ॥७१॥
चित्रकूटकृतावासो गङ्गासलिलपावनः ।
ब्रह्मचारी सदाचारः कमलाकेलिभाजनः ॥७२॥
दुरासदः कलहकृत् कलिः कलिविनाशनः ।
चारी दण्डाजिनी छत्री[1] पुस्तकी कृष्णमेखलः ॥७३॥
दण्डकारण्यमध्यस्थः पञ्चवट्यालयस्थितः ।
परिणामजयानन्दी नन्दिग्रामसुखप्रदः ॥७४॥
इन्द्रारिमानमथनो बद्धदक्षिणसागरः ।
शैलसेतुविनिर्माता कपिसैन्यमहीपतिः ॥७५॥
रथारूढो गजारूढो हयारूढो महाबली ।
निषङ्गी कवची खड्गी खलगर्वनिवर्हणः ॥७६॥
वेदान्तविज्ञो विज्ञानी जानकीब्रह्मदर्शनः ।
लङ्काजेता विमानस्थो नागपाशविमोचकः ॥७७॥
अनन्तकोटिगणभूः कल्याणः केलिनीपतिः ।
दुर्वासापूजनपरो वनवासी महाजवः ॥७८॥

---

१. ब्रह्मचारी दण्डच्छत्री–रीवां ।

सुस्मयः सुस्मितमुखः कालियाहिफणानटः ।
विभुर्विषहरो वत्सो वत्सासुरविनाशनः ॥७९॥
वृषप्रमथनो वेत्ता मरीचिर्मुनिरङ्गिराः ।
वसिष्ठो द्रोणपुत्रश्च द्रोणाचार्यो रघूत्तमः ॥८०॥
रघुवर्यो दुःखहन्ता वनधावनसश्रमः ।
भिल्लग्रामनिवासी च भिल्लभिल्लिहितप्रदः ॥८१॥
रामो रविकुलोत्तंसः वृष्णिगर्भो[1] महामणिः ।
यशोदाबन्धनप्राप्तो यमलार्ज्जुनभञ्जनः ॥८२॥
दामोदरो दुराराध्यो दूरगः प्रियदर्शनः ।
मृत्तिकाभक्षणक्रीडो ब्रह्माण्डावलिविग्रहः ॥८३॥
बाललीलाविनोदी च रतिलीलाविशारदः ।
वसुदेवसुतः श्रीमान् भव्यो दशरथात्मजः ॥८४॥
वलिप्रियो वालिहन्ता विक्रमी केसरी करी ।
सनिग्रहफलानन्दी सनिग्रहनिवारणः ॥८५॥
सीतावामाङ्गसंलिष्टः कमलापाङ्गवीक्षितः ।
स्यमन्तपञ्चकस्थायी भृगुवंशमहायशाः ॥८६॥
अनन्तोऽनन्तमाता च रामो राजीवलोचनः ।
इत्येवं नामसाहस्रं राजेन्द्र तनयस्य ते ॥८७॥
यः पठेत्प्रातरुत्थाय धौतपादः शुचिव्रतः ।
स याति रामसायुज्यं भुक्त्वान्ते केवलं पदम् ॥८८॥
न यत्र त्रिगुणग्रासो न माया न स्मयो मदः ।
तद्याति विरजं स्थानं रामनामानुकीर्तयन् ॥८९॥
न ते पुत्रस्य नामानि संख्यातुमहमीश्वरः ।
संक्षेपेण तु यत्प्रोक्तं तन्मात्रमवधारय ॥९०॥
यावन्ति सन्ति रूपाणि विष्णोरमिततेजसः ।
तावन्ति तव पुत्रस्य परब्रह्मस्वरूपिणः ॥९१॥
पाञ्चभौतिकमेतद्धि विश्वं समुपधारय ।
ततः परं परब्रह्म विद्धि रामं सनातनम् ॥९२॥

---

१. पृश्निगर्भो–रीवां, अयो० ।

नश्वरं सकलं दृश्यं रामं ब्रूमः सनातनम् ।
एतद्धि तव पुत्रत्वं प्राप्तो रामः परात्परः ॥९३॥
सद्वेदैरपि वेदान्तै[1]र्नेति नेतीति गीयते ।
तमेव जलदश्यामं रामं भावय भावय ॥९४॥
य एतत् पठते नित्यं रामसाहस्रकं विभो ।
स याति परमां मुक्तिं रामकैवल्यरूपिणीम् ॥९५॥
मा शङ्किष्ठा नराधीशः श्रीरामरसिकस्य च ।
अनन्तकोटिरूपाणि रामस्तेषां विभावकः ॥९५॥
त्रैलोक्यमेतदखिलं रामवीर्ये प्रतिष्ठितम् ।
विजानन्ति नराः सर्वे नास्य रूपं च नाम च ॥९७॥
य एतस्मिन् महाप्रीतिं कलयिष्यन्ति मानवाः ।
त एव धन्या राजेन्द्र नान्ये स्वजनदूषकाः ॥९८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे वसिष्ठकृतनाम-
सहस्रकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

•

चतुर्दशोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

या श्रीरेतस्य सहजा सीता नित्याङ्गसङ्गिनी ।
भवित्री जनकस्यैव कुले सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ १ ॥
तस्याश्च नामसाहस्रं कथयिष्यामि भूपते ।
यथा रामस्तथैवेयं महालक्ष्मीः सनातनी ॥ २ ॥
नानयोः संमतो भेदः शास्त्रकोटिशतैरपि ।
अस्यैव नित्यरमणी बहुनामस्वरूपतः ॥ ३ ॥
तस्यास्तु नामसाहस्रं यथावदुपधारय ।
ॐ सहजानन्दिनी सीता जानकी राधिका रतिः ॥ ४ ॥

---

१. वेदान्ते-अयो०, रीवां ।

रुक्मिणी कमला कान्ता कान्तिः कमललोचना ।
किशोरी रामललना कामुकी करुणानिधिः ॥ ५ ॥
कन्दर्पवर्द्धिनी वीरा वरुणालयवासिनी ।
अशोकवनमध्यस्था महाशोकविनाशिनी ॥ ६ ॥
चम्पकाङ्गी तडित्कान्तिर्जाह्नवी जनकात्मजा ।
जानकी जयदा जप्या जयिनी जैत्रपालिका ॥ ७ ॥
परमा परमानन्दा पूर्णिमामृतसागरा ।
सूधासूतिः सुधारश्मिः सुधादीपितविग्रहा ॥ ८ ॥
सुस्मिता सुस्मितमुखी तारका सुखदेक्षणा ।
रक्षणी चित्रकूटस्था वृन्दावनमहेश्वरी ॥ ९ ॥
कन्दर्पकोटिजननी कोटिब्रह्माण्डनायिका ।
शरण्या शारदा श्रीश्च शरत्कालविनोदिनी ॥१०॥
हंसी क्षीराब्धिवसतिर्वासुकी स्थावराङ्गना ।
वराङ्गासनसंस्थाना प्रियभोगविशारदा ॥११॥
वसिष्ठविश्ववसिनी विश्वपत्नी[1] गुणोदया ।
गौरी चम्पकगात्रा च दीपद्योता प्रभावती ॥१२॥
रत्नमालाविभूषा च दिव्यगोपालकन्यका ।
सत्यभामारतिः प्रीता मित्रा चित्तविनोदिनी ॥१३॥
सुमित्रा चैव कौशल्या कैकेयीकुलवर्द्धिनी ।
कुलीना केलिनी दक्षा दक्षकन्या दयावती ॥१४॥
पार्वती शैलकुलजा वंशध्वजपटीरुचिः ।
रुचिरा रुचिरापाङ्गा पूर्णरूपा कलावती ॥१५॥
कोटिब्रह्माण्डलक्ष्मीशा स्थानदात्री स्थितिः सती ।
अमृता मोदिनी मोदा रत्नाचलविहारिणी ॥१६॥
नन्दभानुसुता धीरा वंशीरवविनोदिनी ।
विजया वीजिनी विद्या विद्यादानपरायणा ॥१७॥
मन्दस्मिता मन्दगतिर्मदना मदनातुरा ।
बृंहिणी बृंहती वर्या वरणीया वराङ्गना ॥१८॥

१–'विश्वः भगवान्, तस्य पत्नी' इति टि०–मथु० ।

रामप्रिया रमारूपा रासनृत्यविशारदा ।
गान्धर्विका गीतरम्या सङ्गीतरसवर्द्धिनी ॥१९॥
तालदा तालवक्षोजा तालभेदनसुन्दरी ।
सरयूतीरसन्तुष्टा यमुनातटसंस्थिता ॥२०॥
स्वामिनी स्वामिनिरता कौसुम्भवसनावृता ।
मालिनी तुङ्गवक्षोजा फलिनी फलमालिनी ॥२१॥
वैडूर्यहारसुभगा मुक्ताहारमनोहरा ।
किरातीवेशसंस्थाना गुञ्जामणिविभूषणा ॥२२॥
विभूतिदा विभा वीणा वीणानादविनोदिनी ।
प्रियङ्गुकलिकापाङ्गा कटाक्षा गतितोषिता ॥२३॥
रामानुरागनिलया रत्नपङ्कजमालिनी ।
विभावा विनयस्था च मधुरा पतिसेविता ॥२४॥
शत्रुघ्नवरदात्री च रावणप्राणमोचिनी[1] ।
दण्डकावनमध्यस्था बहुलीला विलासिनी ॥२५॥
शुक्लपक्षप्रिया शुक्ला शुक्लापाङ्गस्वरोन्मुखी ।
कोकिलस्वरकण्ठी च कोकिलस्वरगायिनी ॥२६॥
पञ्चमस्वरसन्तुष्टा पञ्चवक्त्रप्रपूजिता ।
आद्या गुणमयी लक्ष्मीः पद्महस्ता हरिप्रिया ॥२७॥
हरिणी हरिणाक्षी च चकोराक्षी किशोरिका ।
गुणहृष्टा शरज्ज्योत्स्ना स्मितस्नपितविग्रहा ॥२८॥
विरजा सिन्धुगमनी गंगासागरयोगिनी ।
कपिलाश्रमसंस्थाना योगिनी परमाकला ॥२९॥
खेचरी भूचरी सिद्धा वैष्णवी वैष्णवप्रिया ।
ब्राह्मी माहेश्वरी तिग्मा दुर्वारबलविभ्रमा ॥३०॥
रक्तांशुकप्रिया रक्ता नवविद्रुमहारिणी ।
हरिप्रिया ह्रीस्वरूपा हीनभक्तविवर्द्धिनी ॥३१॥
हिताहितगतिज्ञा च माधवी माधवप्रिया ।
मनोज्ञा मदनोन्मत्ता मदमात्सर्यनाशिनी ॥३२॥

१°मोक्षिणी–अयो० ।

निःसपत्नी निरुपमा स्वाधीनपतिका परा ।
प्रेमपूर्णा सप्रणया जनकोत्सवदायिनी ॥३३॥
वेदिमध्या वेदिजाता त्रिवेदी वेदभारती ।
गीर्वाणगुरुपत्नी च नक्षत्रकुलमालिनी ॥३४॥
मन्दारपुष्पस्तवका मन्दाक्षनयवर्द्धिनी ।
सुभगा शुभरूपा च सुभाग्या भाग्यवर्द्धिनी ॥३५॥
सिन्दूराङ्कितमाला च मल्लिकादामभूषिता ।
तुङ्गस्तनी तुङ्गनासा विशालाक्षी विशल्यका ॥३६॥
कल्याणिनी कल्मषहा कृपापूर्णा कृपानदी ।
क्रियावती वेधवती मन्त्रणी मन्त्रनायिका ॥३७॥
कैशोरवेशसुभगा रघुवंशविवर्द्धिनी ।
राघवेन्द्रप्रणयिनी राघवेन्द्रविलासिनी ॥३८॥
तरुणी तिग्मदा तन्वी त्राणा तारुण्यवर्द्धिनी ।
मनस्विनी महामोदा मीनाक्षी मानिनी मनुः ॥३९॥
[1]आग्नेयीन्द्राणिका रौद्री वारुणी वशवर्तिनी ।
वीतरागा वीतरतिर्वीतशोका वरोरुका ॥४०॥
वरदा वरसंसेव्या वरज्ञा वरकाङ्क्षिणी ।
फुल्लेन्दीवरदामा च वृन्दा वृन्दावती प्रिया ॥४१॥
तुलसीपुष्पसंकाशा तुलसीमाल्यभूषिता ।
तुलसीवनसंस्थाना तुलसीवनमन्दिरा ॥४२॥
सर्वाकारा निराकारा[2] रूपलावण्यवर्द्धिनी ।
रूपिणी रूपिका रम्या रमणीया रमात्मिका ॥४३॥
वैकुण्ठपतिपत्नी च वैकुण्ठप्रियवासिनी ।
वद्रिकाश्रमसंस्था च सर्वसौभाग्यमण्डिता ॥४४॥
सर्ववेदान्तगम्या च निष्कला परमाकला ।
कलाभासा तुरीया च तुरीयाश्रममण्डिता ॥४५॥
रक्तोष्ठी च प्रिया रामा रागिनी रागवर्द्धिनी ।
नीलांशुकपरीधाना सुवर्णकलिकाकृतिः ॥४६॥

---

१. अग्राह्मी–रीवां, अयो० । २. नित्याकारा–अयो०, मथु० ।

कामकेलिविनोदा च सुरतानन्दवर्द्धिनी ।
सावित्री व्रतधर्त्री[1] च करामलकनायका ॥४७॥
मराला मोदिनी प्राज्ञा प्रभा प्राणप्रिया परा ।
पुनाना पुण्यरूपा च पुण्यदा पूर्णिमात्मिका ॥४८॥
पूर्णाकारा व्रजानन्दा व्रजवासा व्रजेश्वरी ।
व्रजराजसुताधारा धारापीयूषवर्षिणी ॥४९॥
राकापतिमुखी मग्ना मधुसूदनवल्लभा ।
वीरिणी वीरपत्नी च वीरचारित्रवर्द्धिनी ॥५०॥
धम्मिल्लमल्लिकापुष्पा माधुरी ललितालया ।
वासन्ती वर्हभूषा च वर्होत्तंसा विलासिनी ॥५१॥
बर्हिणी बहुदा बह्वी बाहुवल्ली मृणालिका ।
शुकनासा शुद्धरूपा गिरीशवरवर्द्धिता ॥५१॥
नन्दिनी च सुदन्ता च वसुधा चित्तानन्दिनी ।
हेमसिंहासनस्थाना चामरद्वयवीजिता ॥५२॥
छत्रिणी छत्ररम्या च महासाम्राज्यसर्वदा ।
संपन्नदा भवानी च भवभीतिविनाशिनी ॥५४॥
द्राविडी द्रविडस्थाना आन्ध्री कार्णाटनागरी ।
महाराष्ट्रैकविषया उदग्देशनिवासिनी ॥५५॥
सुजङ्घा पङ्कजपदा गुप्तगुल्फा गुरुप्रिया ।
रक्तकाञ्चीगुणकटिः सुरूपा बहुरूपिणी ॥५६॥
सुमध्या तरुणश्रीश्च वलित्रयविभूषिता ।
गर्विणी गुर्विणी सीता सीतापाङ्गविमोचनी ॥५७॥
ताटङ्किनी कुन्तलिनी हारिणी हीरकान्विता ।
शैवालमञ्जरीहस्ता मञ्जुला मञ्जुलापिनी ॥५८॥
कवरीकेशविन्यासा मन्दहासमनोरथा ।
मधुरालापसंतोषा कौबेरी दुर्गमालिका ॥५९॥
इन्दिरा परमश्रीका सुश्रीः शैशवशोभिता ।

---

१. °व्रतधात्री–अयो० मधु० ।

शमीवृक्षाश्रया श्रेणी शमिनी शान्तिदा शमा ॥६०॥
कुञ्जेश्वरी कुञ्जगेहा कुञ्जगा कुञ्जदेवता ।
कलविङ्ककुलप्रीता पादाङ्गुलिविभूषिता ॥६१॥
वसुदा वसुपत्नी च वीरसूर्वीरवर्द्धिनी ।
सप्तशृङ्गकृतस्थाना कृष्णा कृष्णप्रिया प्रिया ॥६२॥
गोपीजनगणोत्साहा गोपगोपालमण्डिता ।
गोवर्द्धनधरा गोपी गोधनप्रणयाश्रया ॥६३॥
दधिविक्रयकर्त्री च दानलीलाविशारदा ।
विजना विजनप्रीता विधिजा विधुजा विधा ॥६४॥
अद्वैता द्वैतविच्छिन्ना रामतादाम्यरूपिणी ।
कृपारूपा निष्कलङ्का काञ्चनासनसंस्थिता ॥६५॥
महार्हरत्नपीठस्था राज्यलक्ष्मी रजोगुणा ।
रक्तिका रक्तपुष्पा च ताम्बूलीदलचर्विणी ॥६६॥
विम्बोष्ठी व्रीडिता व्रीडा वनमालाविभूषणा ।
वनमालैकमध्यस्था रामदोर्दण्डसङ्गिनी ॥६७॥
खण्डिता विजितक्रोधा विप्रलब्धा समुत्सुका ।
[1]अशोकवाटिकादेवी कुञ्जकान्तिविहारिणी ॥६८॥
मैथिली मिथिलाकारा मैथिलैकहितप्रदा ।
वाग्वती शैलजा शिप्रा महाकालवनप्रिया ॥६९॥
रेवा कल्लोलसुरता सत्यरूपा सदार्चिता ।
सभ्या सभावती सुभ्रूः कुरङ्गाक्षी शुभानना ॥७०॥
मायापुरी तथायोध्या रङ्गधामनिवासिनी ।
मुग्धा मुग्धगतिर्मोदा प्रमोदा परमोन्नता ॥७१॥
कामधेनुः कल्पवल्ली चिन्तामणिगृहाङ्गणा ।
हिन्दोलिनी महाकेलिः सखीगणविभूषिता ॥७२॥
सुन्दरी परमोदारा रामसान्निध्यकारिणी ।
रामार्द्धाङ्गा महालक्ष्मीः प्रमोदवनवासिनी ॥७३॥

---

१. कुंत° अयो०, रीवां ।

विकुण्ठापत्यमुदिता परदारप्रियाप्रिया[1] ।
रामकैङ्कर्यनिरता जम्भजित्करवीजिता ॥७४॥
कदम्बकाननस्था च कादम्बकुलवासिनी ।
कलहंसकुलारावा राजहंसगतिप्रिया ॥७५॥
कारण्डवकुलोत्साहा ब्रह्मादिसुरसंस्थिता ।
सरसी सरसीकेलिः पम्पाजलविनोदिनी ॥७६॥
करिणीयूथमध्यस्था महाकेलिविधायिनी ।
जनस्थानकृतोत्साहा काञ्चनन्यङ्कुवञ्चिता ॥७७॥
कावेरीजलसुस्नाता तीर्थस्नानकृताश्रया ।
गुप्तमन्त्रा गुप्तगतिर्गोप्या गोपतिगोपिता ॥७८॥
गम्भीरावर्तनाभिश्च नानारसबिलम्बिनी ।
शृङ्गाररससालम्बा कादम्बामोदमादिनी ।
कादम्बिनी पानमत्ता घूर्णिताक्षी स्खलद्गतिः ॥८०॥
सुसाध्या दुःखसाध्या च दम्भिनी दम्भवर्जिता ।
गुणाश्रया गुणाकारा कल्याणगुणयोगिनी ॥८१॥
सर्वमाङ्गल्यसम्पन्ना माङ्गल्या मतवल्लभा ।
सुखितात्मजनिप्राणा प्राणेशी सर्वचेतना ॥८२॥
चैतन्यरूपिणी ब्रह्मरूपिणी मोदवर्द्धिनी ।
एकान्तभक्तसुलभा जयदुर्गा जयप्रिया ॥८३॥
हरचापकृतक्रोधा भङ्गुरोक्षणदायिनी ।
स्थिरा स्थिरगतिः स्थात्री स्थावरस्था वराश्रया ॥८४॥
स्थावरेन्द्रसुता धन्या धनिनी धनदार्चिता ।
महालक्ष्मीर्लोकमाता लोकेशी लोकनायिका ॥८५॥
प्रपञ्चातीतगुणनी प्रपञ्चातीतविग्रहा ।
परब्रह्मस्वरूपा च नित्या भक्तिस्वरूपिणी ॥८६॥
ज्ञानभक्तिस्वरूपा च ज्ञानभक्तिविवर्द्धिनी ।
ब्रह्मसायुज्यसाधुश्च रामसायुज्यसाधना ॥८७॥

---

१. "सहजावरदाप्रिया" इति शोधितः पाठः—मथु० ।

ब्रह्माकारा ब्रह्ममयी ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणी ।
महाधम्मिल्लशोभा च कवरीकेशपाशिनी ॥८८॥
चिन्मयानन्दरूपा च चिन्मयानन्दविग्रहा ।
कैवर्तकुलसम्पत्तिः शवरीपरिवारिणी ॥८९॥
कनकाचलसंस्थाना गङ्गा त्रिपथगामिनी ।
त्रिपुटा त्रिवृता विद्या प्रणवाक्षररूपिणी ॥९०॥
गायत्री मुनिविद्या च सन्ध्या पातकनाशिनी ।
सर्वदोषप्रशमनी सर्वकल्याणदायिनी ॥९१॥
रामरामा मनोरम्या स्वयंलक्ष्म्या (क्ष्या ?) स्वसाक्षिणी ।
अनन्तकोटिनामा च अनन्तकोटिरूपिणी ॥९२॥
भूलीला रुक्मिणी राधा रामकेलिविबोधिनी ।
वीरा वृन्दा पौर्णमासी विशाखा ललिता लता ॥९३॥
लावण्यदा लयाकारा लक्ष्मीर्लोकानुबन्धिनी ।
सृष्टिस्थितिलयाकारा तुर्यातुर्यातिगावधिः ॥९४॥
दुर्वासावरलभ्या च विचित्रबलवर्द्धिनी ।
रमणी रामरमणी सारात्सारा परात्परा ॥९५॥
इति श्रीजानकीदेव्याः नामसाहस्त्रकं स्तवम् ।
नामकर्मप्रसङ्गेन मया तुभ्यं प्रकाशितम् ॥९६॥
गोपनीयं प्रयत्नेन त्रैलोक्येऽप्यतिदुर्लभम् ।
सीतायाः श्रीमहालक्ष्म्याः सद्यः संतोषदायकम् ॥९७॥
यः पठेत्प्रयतो नित्यं स साक्षाद्वैष्णवोत्तमः ।
नित्यं गुरुमुखाल्लब्ध्वा पठनीयं प्रयत्नतः ॥९८॥
सर्वसंपत्करं पुण्यं वैष्णवानां सुखप्रदम् ।
कीर्तिदं कान्तिदं चैव धनदं सौभगप्रदम् ॥९९॥
प्रमुद्वनविहारिण्याः सीतायाः सुखवर्द्धनम् ।
रामप्रियाया जानक्या नामसाहस्त्रकं परम् ॥१००॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे सीतानाम-
साहस्त्रकं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

इदानीं तव पुत्रस्य द्वितीयस्य महात्मनः ।
नामसाहस्रकं वक्ष्ये सुगोप्यं दैवतैरपि ॥ १ ॥
एष साक्षाद्धरेरंशो देवदेवस्य शार्ङ्गिणः[1] ।
यः शेष इति विख्यातः सहस्रवदनो विभुः ॥ २ ॥
तस्यैतन्नामसाहस्रं वक्ष्यामि प्रयतः शृणु ।
लक्ष्मणः शेषगः शेषः सहस्रवदनोऽनलः ॥ ३ ॥
संकर्षणः कालरूपः सहस्रार्चिर्महानलः ।
कालरूपो दुराधर्षो बलभद्रः प्रलम्बहा ॥ ४ ॥
कृतान्तः कालवदनो विद्युज्जिह्वो विभावसुः ।
कालात्मा कलनात्मा च कलात्मा सकलोऽकलः ॥ ५ ॥
कुमारब्रह्मचारी च रामभक्तः शुचिव्रतः ।
निराहारो जिताहारो जितनिद्रो जितासनः ॥ ६ ॥
महारुद्रो महाक्रोधी इन्द्रजित्प्राणनाशकः ।
सीताहितप्रदाता च रामसौख्यप्रदायकः ॥ ७ ॥
यतिवेशो वीतभयः सुकेशः केशवः कृशः ।
कृष्णांशो[2] विमलाचारः सदाचारः सदाव्रतः ॥ ८ ॥
बर्हावतंसो विरतिर्गुञ्जाभूषणभूषितः ।
शेषाचलनिवासी च शेषाद्रिः शेषरूपधृक् ॥ ९ ॥
अधोहस्तः प्रशान्तात्मा साधूनां गतिदर्शनः ।
सुदर्शनः सुरूपाङ्गो यज्ञदोषनिवर्त्तनः ॥१०॥
अनन्तो वासुकिर्नागो महीभारो महीधरः ।
कृतान्तः शमनत्राता धनुर्ज्याकर्षणोद्भटः ॥११॥

---

१. रामस्य–रीवां, अयो० । २. कृशांशो–मथु०, रीवां । ३. वासुकी–अयो०, रीवां ।

महाबलो महावीरो महाकर्मा महाजवः ।
जटिलस्तापसः प्रह्वः सत्यसन्धः सदात्मकः ॥१२॥
शुभकर्मा च विजयी नरो नारायणाश्रयः ।
वनचारी वनाधारो वायुभक्षो महातपाः ॥१३॥
सुमन्त्रो मन्त्रतत्त्वज्ञः कोविदो राममन्त्रदः ।
सौमित्रेयः प्रसन्नात्मा रामानुव्रत ईश्वरः ॥१४॥
रामातपत्रभृद् गौरः सुमुखः सुखवर्द्धनः ।
रामकेलिविनोदी च रामानुग्रहभाजनः ॥१५॥
दान्तात्मा दमनो दम्यो दासो दान्तो दयानिधिः ।
आदिकालो महाकालः क्रूरात्मा क्रूरनिग्रहः ॥१६॥
वनलीलाविनोदज्ञो विछेत्ता विरहापहः ।
भस्माङ्गरागधवलो यती कल्याणमन्दिरः ॥१७॥
अमन्दो मदनोन्मादी महायोगी महासनः ।
खेचरीसिद्धिदाता च योगविद्योगपारगः ॥१८॥
विषानलो विषह्यश्च[1] कोटिब्रह्माण्डदाहकृत् ।
अयोध्याजनसंगीतो रामैकानुचरः सुधीः ॥१९॥
रामाज्ञापालको रामो रामभद्रः पुनीतपात् ।
अक्षरात्मा भुवनकृद् विष्णुतुल्यः फणाधरः ॥२०॥
प्रतापी द्विसहस्राक्षो ज्वलद्रूपो विभाकरः ।
दिव्यो दाशरथिर्बालो बालानां प्रीतिवर्द्धनः ॥२१॥
वाणप्रहरणो योद्धा युद्धकर्मविशारदः ।
निषङ्गी कवची दृप्तो दृढवर्मा दृढव्रतः ॥२२॥
दृढप्रतिज्ञः प्रणयी जागरूको दिवाप्रियः ।
तामसी तपनस्तापी गुडाकेशो धनुर्द्धरः ॥२३॥
शिलाकोटिप्रहरणो नागपाशविमोचकः ।
त्रैलोक्यहिंसकर्त्ता च कामरूपः किशोरकः ॥३४॥
कैवर्तकुलविस्तारः[2] कृतप्रीतिः कृतार्थनः ।
कौपीनधारी कुशलः श्रद्धावान् वेदवित्तमः ॥२५॥

---

१. विषूयश्च–अयो० । २. °निस्तारः–मथु० ।

व्रजेश्वरीमहासख्यः कुञ्जालयमहासखः ।
भरतस्याग्रणीर्नेता सेवामुख्यो महामहः ॥२६॥
मतिमान् प्रीतिमान् दक्षो लक्ष्मणो लक्ष्मणान्वितः ।
हनुमत्प्रियमित्रश्च सुमित्रासुखवर्द्धनः ॥२७॥
रामरूपो राममुखो रामश्यामो रमाप्रियः ।
रमारमणसंकेती लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाभिधः ॥२८॥
जानकीवल्लभो वर्यः सहायः शरणप्रदः ।
वनवासप्रकथनो दक्षिणापथवीतभीः ॥२९॥
विनीतो विनयी विष्णुर्वैष्णवो वीतभीः पुमान् ।
पुराणपुरुषो जैत्रो महापुरुषलक्ष्म (क्ष ?) णः ॥३०॥
महाकारुणिको वर्मी राक्षसौघविनाशनः ।
आर्तिहा ब्रह्मचर्यस्थः परपीडानिवर्त्तनः ॥३१॥
पराशयज्ञः सुतपाः सुवीर्यः सुभगाकृतिः ।
वन्यभूषणनिर्माता सीतासंतोषवर्द्धनः ॥३२॥
राघवेन्द्रो रामरतिर्गुप्त[1]सर्वपराक्रमः ।
दुर्द्धर्षणो दुर्विषहः प्रणेता विधिवत्तमः ॥३३॥
त्रयीमयोऽग्निमयः त्रेतायुगविलासकृत् ।
दीर्घदंष्ट्रो महादंष्ट्रो विशालाक्षो विषोल्वणः ॥३४॥
सहस्रजिह्वाललनः सुधापानपरायणः ।
गोदासरित्तरङ्गार्च्यो नर्मदातीर्थपावनः ॥३५॥
श्रीरामचरणसेवी सीतारामसुखप्रदः ।
रामभ्राता रामसमो मार्त्तण्डकुलमण्डितः ॥३६॥
गुप्तगात्रो गिराचार्यो मौनव्रतधरः शुचिः ।
शौचाचारैकनिलयो विश्वगोप्ता विराड् वसुः ॥३७॥
क्रुद्धः सन्निहितो हन्ता रामार्चापरिपालकः ।
जनकप्रेमजामाता सर्वाधिकगुणाकृतिः ॥३८॥

---

१. युक्त०–अयो० ।

सुग्रीवराज्यकाङ्क्षी च सुखरूपी सुखप्रदः ।
आकाशगामी शक्तीशोऽनन्तशक्तिप्रदर्शनः ॥३९॥
द्रोणाद्रिमुक्तिदोऽचिन्त्यः सोपकारजनप्रियः ।
कृतोपकारः सुकृती सुसारः सारविग्रहः ॥४०॥
सुवंशो वंशहस्तश्च दण्डी चाजिनमेखली ।
कुण्डी कुन्तलभृत् काण्डः प्रकाण्डः पुरुषोत्तमः ॥४१॥
सुबाहुः सुमुखः स्वङ्गः सुनेत्रः संभ्रमी क्षमी ।
वीतभीर्वीतसङ्कल्पो रामप्रणयवारणः ॥४२॥
वद्धवर्मा महेश्वासो विरूढः सत्यवाक्तमः ।
समर्पणी विधेयात्मा विनेतात्मा क्रतुप्रियः ॥४३॥
अजिनी ब्रह्मपात्री च कमण्डलुकरो विधिः ।
नानाकल्पलताकल्पो नानाफलविभूषणः ॥४४॥
काकपक्षपरिक्षेपी चन्द्रवक्त्रः स्मिताननः ।
सुवर्णवेत्रहस्तश्च अजिह्मो जिह्मगापहः ॥४५॥
कल्पान्तवारिधिस्थानो बीजरूपो महाङ्कुरः ।
रेवतीरमणो दक्षो वाभ्रवी[2]प्राणवल्लभः ॥६६॥
कामपालः सुगौराङ्गो हलभृत् परमोल्वणः ।
कृत्स्नदुःखप्रशमनो विरञ्चिप्रियदर्शनः ॥४७॥
दर्शनीयो महादर्शो जानकीपरिहासदः ।
जानकीनर्मसचिवो रामचारित्रवर्द्धनः ॥४८॥
लक्ष्मीसहोदरोदारो[3] दारुणः प्रभुरूर्जितः ।
ऊर्जस्वलो महाकायः कम्पनो दण्डकाश्रयः ॥४९॥
द्वीपिचर्मपरीधानो दुष्टकुञ्जरनाशनः ।
पुरग्राममहारण्यवटीद्रुमविहारवान् ॥५०॥
निशाचरो गुप्तचरो दुष्टराक्षसमारणः ।
रात्रिञ्चरकुलच्छेत्ता धर्ममार्गप्रवर्तकः ॥५१॥

---

१. शक्तीष्टो–रीवां, अयो० । २. "भ्रुर्विष्णुस्तस्य प्रिया श्रीः सा प्राणः जीवनं यस्य सः" इति टि०–मथु० । ३. "लक्ष्म्याः सहोदरः कल्पतरुस्तद्वदुदारः" इति टि०–मथु० ।

शेषावतारो भगवान् छन्दोमूर्तिर्महोज्ज्वलः ।
अहृष्टो हृष्टवेदाङ्गो भाष्यकारः प्रभाषणः ॥५२॥
भाष्यो भाषणकर्ता च भाषणीयः सुभाषणः ।
शब्दशास्त्रमयो देवः शब्दशास्त्रप्रवर्त्तकः ॥ ५३॥
शब्दशास्त्रार्थवादी च शब्दज्ञः शब्दसागरः ।
शब्दपारायणज्ञानः शब्दपारायणप्रियः ॥५४॥
प्रातिशाख्यो प्रहरणो गुप्तवेदार्थसूचकः ।
दृप्तवित्तो दाशरथिः स्वाधीनः केलिसागरः ॥५५॥
गैरिकादिमहाधातुमण्डितश्चित्रविग्रहः ।
चित्रकूटालयस्थायी मायी विपुलविग्रहः ॥५६॥
जरातिगो जराहन्ता ऊर्ध्वरेता उदारधीः ।
मायूरमित्रो मायूरो मनोज्ञः प्रियदर्शनः ॥५७॥
मथुरापुरनिर्माता कावेरीतटवासकृत् ।
कृष्णातीराश्रमस्थानो मुनिवेशो मुनीश्वरः ॥५८॥
मुनिगम्यो मुनीशानो भुवनत्रयभूषणः ।
आत्मध्यानकरो ध्याता प्रत्यक्सन्ध्याविशारदः ॥५९॥
वानप्रस्थाश्रमासेव्यः संहितेषुः प्रतापधृक् ।
उष्णीषवान् कञ्चुकी च कटिबन्धविशारदः ॥६०॥
मुष्टिकप्राणदहनो[1] द्विविदप्राणशोषणः ।
उमापतिरुमानाथ उमासेवनतत्परः ॥६१॥
वानरव्रातमध्यस्थो जाम्बुवद्गणसंस्तुतः ।
जाम्बुवद्भक्तसुखदो जाम्बुर्जाम्बुमतीसखः ॥६२॥
जाम्बुवद्भक्तिवश्यश्च जाम्बूनदपरिष्कृतः ।
कोटिकल्पस्मृतिव्यग्रो वरिष्ठो वरणीयभाः ॥६३॥
श्रीरामचरणोत्सङ्गमध्यलालितमस्तकः ।
सीताचरणसंस्पर्शविनीताध्वमहाश्रमः ॥६४॥

---

१. °हननो–मथु० ।

समुद्रद्वीपचारी च रामकैङ्कर्यसाधकः ।
केशप्रसाधनामर्षी महाव्रतपरायणः ॥६५॥
रजस्वलोऽतिमलिनोऽवधूतो धूतपातकः ।
पूतनामा पवित्राङ्गो गङ्गाजलसुपावनः ॥६६॥
हयशीर्षमहामन्त्रविपश्चिन्मन्त्रिकोत्तमः ।
विषज्वरनिहन्ता च कालकृत्याविनाशनः ॥६७॥
मदोद्धतो महायानी कालिन्दीपातभेदनः ।
कालिन्दीभयदाता च खट्वाङ्गी मुखरोऽनलः ॥६८॥
तालाङ्कः कर्मविख्यातिर्धरित्रीभरधारकः ।
मणिमान् कृतिमान् दीप्तो बद्धकक्षो महातनुः ॥६९॥
उत्तुङ्गो गिरिसंस्थानो राममाहात्म्यवर्द्धनः ।
कीर्तिमान् श्रुतिकीर्तिश्च लङ्काविजयमन्त्रदः ॥७०॥
लङ्काधिनाथविषहो विभीषणगतिप्रदः ।
मन्दोदरीकृताश्चर्यो राक्षसीशतघातकः ॥७१॥
कदलीवननिर्माता दक्षिणापथपावनः ।
कृतप्रतिज्ञो वलवान् सुश्रीः संतोषसागरः ॥७२॥
कपर्दी रुद्रदुर्दर्शो विरूपवदनाकृतिः ।
रणोद्धुरो रणप्रश्नी रणघण्टावलम्बनः ॥७३॥
क्षुद्रघण्टानादकटिः कठिनाङ्गो विकस्वरः ।
वज्रसारः सारधरः शार्ङ्गी वरुणसंस्तुतः ॥७४॥
समुद्रलङ्घनोद्योगी रामनामानुभाववित् ।
धर्मजुष्टो घृणिस्पृष्टो वर्मी वर्मभराकुलः ॥७५॥
धर्मयाजी धर्मदक्षो धर्मपाठविधानवित् ।
रत्नवस्त्रो रत्नधौत्रो रत्नकौपीनधारकः ॥७६॥
लक्ष्मणो रामसर्वस्वं रामप्रणयविह्वलः ।
सबलोऽपि सुदामापि सुसखा मधुमङ्गलः ॥७७॥
रामरासविनोदज्ञो रामरासविधानवित् ।
रामरासकृतोत्साहो रामरासहायवान् ॥७८॥

वसन्तोत्सवनिर्माता शरत्कालविधायकः ।
रामकेलीभरानन्दी दूरोत्सारितकण्टकः ॥७९॥
इतीदं तव पुत्रस्य द्वितीयस्य महात्मनः ।
यः पठेन्नामसाहस्रं स याति परमं पदम् ॥८०॥
पीडायां वापि संग्रामे महाभय उपस्थिते
यः पठेन्नामसाहस्रं लक्ष्मणस्य महौजसः ।
स सद्यः शुभमाप्नोति लक्ष्मणस्य प्रसादतः ॥८१॥
सर्वान् दुर्गान् तरत्याशु लक्ष्मणेत्येकनामतः ।
द्वितीयनामोच्चारेण देवं वशयति ध्रुवम् ॥८२॥
पठित्वा नामसाहस्रं शतावृत्या समाहितः ।
प्रतिनामाहुतिं दत्वा कुमारान् भोजयेद्दश ॥८३॥
सर्वान् कामानवाप्नोति रामानुजकृपावशात् ।
लक्ष्मणेति त्रिवर्गस्य महिमा केन वर्ण्यते ॥८४॥
यच्छ्रुत्वा जानकीजानेर्हृदि मोदो विवर्द्धते ।
यथा रामस्तथा लक्ष्मी[1]र्यथा श्रीर्लक्ष्मणस्तथा ॥८५॥
रामद्वयोर्न भेदोऽस्ति रामलक्ष्मणयोः क्वचित् ।
एष ते तनयः साक्षाद्रामेण सह सङ्गतः ॥८६॥
हरिष्यति भुवो भारं स्थाने स्थाने वने वने ।
द्रष्टव्यो निधिरेवासौ महाकीर्तिप्रतापयोः ॥८७॥
रामेण सहितः क्रीडां बह्वीं[2] विस्तारयिष्यति ।
रामस्य कृत्वा साहाय्यं प्रणयं चार्चयिष्यति ॥८८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे [लक्ष्मणसहस्रनाम-कथनं नाम] पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

---

१. लक्ष्म्या–अयो०, मथु० । २. बाह्वीं–रीवां, मथु० ।

षोडशोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

अथास्य ते तृतीयस्य[1] कुमारस्याग्निवर्चसः ।
शृणु नामानि भूमीश पावनानि युगे युगे ॥ १ ॥
भरणो भरणात्मा च भूभारहरणोत्कटः ।
अयोध्यापुरभर्ता च भरणीयो भरावहः ॥ २ ॥
प्रद्युम्नो मन्मथोऽनङ्गो वीरकर्मा निराकुलः ।
पुष्पधन्वा त्रिलोकीजिच्छंबरारिर्मनोभवः ॥ ३ ॥
परप्रतापनो वंशः सर्वाश्चर्यनिकेतनः ।
मीनकेतुर्महामारः कामिनीजनरोषणः ॥ ४ ॥
पोषणस्तोषणः क्रोशी द्वारकापुरपालकः ।
रामविश्लेषसहनो रामविश्लेषकातरः ॥ ५ ॥
कन्दर्पो दर्पहा दर्पो दर्पणो दर्पनाशनः ।
अयोध्याजनसंस्नेहो रामविश्लेषवारकः ॥ ६ ॥
श्रीराम[2]गमनाकाङ्क्षी प्रजादुर्भिक्षपोषकः ।
प्रजादुःखहरो वीरो धार्मिकः प्रतिपालकः ॥ ७ ॥
वाभ्रवीप्राणदयितो माण्डवीप्राणवल्लभः ।
रामतुल्यो रामबलो रामवत्प्रियसाधकः ॥ ८ ॥
कैकेयीनेत्रसुखदो महासाम्राज्यभाजनः ।
रुक्मिणीनेत्रसुखदो रुक्मिणीप्रीतिवर्द्धनः ॥ ९ ॥
त्यक्तराज्यो रामगतिर्विष्णुर्भरतरूपधृक् ।
अथोच्यन्ते चतुर्थस्य नामानि तनयस्य ते ॥१०॥
शत्रुघ्नः शत्रुहन्ता च मथुरापुरपालकः ।
श्रीमान् मधुवनानन्दी मधुजिज्जयवर्द्धनः ॥११॥
चापहस्तः कुशलधीरनिरुद्धोऽप्युषापतिः ।
श्रुतकीर्तिप्रियाकान्तः कामिनीजनवल्लभः ॥१२॥

---

१. अथ ते तृतीयस्यास्य–अयो०, मथु० । २. श्रीराम०–मथु०, रीवां ।

चित्रलेखाकृतोत्साह उषावरणकामुकः ।
परसद्मप्रवेशी च परपत्तनदाहकृत् ॥१३॥
परदारप्रभोगी च वाणासुरविरोधकृत् ।
वाणजिद् वाणदहनो धर्ममूर्तिः सनातनः ॥१४॥
एतान्यन्यानि च तथा नामानि तनयस्य ते ।
चत्वार एते सदृशा नाम्ना कीर्त्या च मेधया ॥१५॥
अहमेतद्विजानामि भवान् ज्ञास्यसि कालतः ।
एते रविकुलोत्तंसा रघुवंशविभूषणाः ॥१६॥
धर्मसंस्थापनार्थायावतरन्ति युगे युगे ।
एषां प्रभावं ब्रह्मापि न जानाति कुतोऽपरे ॥१७॥
रामस्यैवाखिला देहास्तत्तत्कार्यविधित्सया ।
अवतीर्णस्य पूर्णस्य पूर्णब्रह्मस्वरूपिणः ॥१८॥
रामऽचन्द्रस्य सर्वेऽपि अवताराः सनातनाः ।
एवं नामविधिं कृत्वा तूष्णींभूते महामुनौ ॥१९॥
राजा दशरथः प्रादाद् द्विजेभ्यः सुमहद्धनम् ।
रामनाममहाकर्मण्यमराः सकला अपि ॥२०॥
शृङ्गारितस्त्रीसहिताः समाजग्मुर्मुदा युताः ।
तेभ्यो दशरथः प्रादादलङ्कारानेकधा ॥२१॥
ते प्रीणिता वहुवसनान्नभूषणैः
कृताशिषो दशरथभूपसूनुषु ।
यथागतं प्रतिययुरात्मनो गृहान्
मनोरथैर्बहुपरिपूरितान्तराः ॥२२॥
ते जातनामान उदाररोचिषो
वर्द्धिष्णवस्तुल्यवयोविभाविताः ।
धनुर्द्धरा बालककेलिकारिणो
बभुर्यथा कुञ्जरराजशावकाः ॥२३॥
दिने दिने पूर्णकलस्तु रामः
प्रभावभृद् दशरथनेत्रनन्दनः ।
व्यरोचत त्रिभुवनशोकनाशनः
शनैः शनैः क्षितितलरिङ्गणादिभिः ॥२४॥

कौशल्या रहसि तमिन्दुशोभिवक्त्रं
क्रीडन्तं क्षितितलरिङ्गणादिरीत्या ।
मायूरीः स्वशिरसि चन्द्रिका वहन्तं
सम्प्रेक्ष्य प्रसभमवाप दृष्टिसौख्यम् ॥२५॥
राजापि प्रणयवशीकृतान्तरोऽभूद्
रामस्य स्मितसुभगं मुखं विलोक्य ।
रिङ्गन्तं शिशुकमजातचूडकृत्तं[1]
नो शेकुः स्वमुप[2] विलोक्य संविभर्तुम्[3] ॥२६॥
सुन्दर्यो नरनगनागदेवकन्या
दृग्दोषं शमयितुमात्तराजिकास्ताः ।
चुम्बन्त्यो रहसि मुखं रघूद्वहस्य
श्लिष्यन्त्यो नवघनसुन्दरं वपुश्च ॥२७॥
भूयस्योऽन्तःपुरमुषिताश्चिराय नार्यो
रामेन्द्रं प्रणयवशाद्विलोकयन्त्यः ।
आत्मानं सपदि न सस्मरुः स्वरूपं
सौन्दर्यामृतरससारमापिबन्त्यः ॥२८॥
कौशल्या कैकेयी चैव सुमित्रा च हरेर्मुखम् ।
वीक्ष्य तृप्तिं न चैवाप विधुं कुमुदिनी यथा ॥२९॥
सोऽव्यक्तकलया वाण्या बन्धूनां नाम संगिरन् ।
विततान मुदं भूरि राज्ञो दशरथस्य च ॥३०॥
बालोऽपि रामचन्द्रोऽभूत् स्वानां मोदाय पुष्टिवान् ।
भ्रातृभिर्वयसा तुल्यैर्भूयसीं कान्तिमावहन् ॥३१॥
कमनीयं किशोरस्य श्यामलं कोमलं वपुः ।
विलोक्य मुदमाजग्मुस्त्रैलोक्यस्थानवासिनः ॥३२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
बाल्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

---

१. चूडकृष्णं–रीवां । २. स्वमपि–मथु० । ३. "कौशल्यादशरथौ स्वकमपि बालं रिङ्गन्तं विलोक्यापि हस्ताभ्यां सम्यक् धर्त्तुं न शेकतुः" इति टि०–मथु० ।

सप्तदशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नेव काले तु देवर्षिर्नारदो मुनिः ।
रावणालयमभ्येत्य शशंसामरगोपितम् ॥ १ ॥
देवगुप्तं परं तत्त्वं रहस्यं नारदो मुनिः ।
शशंसाभ्येत्य दैत्याय दशवक्त्राय साध्वसम् ॥ २ ॥

नारद उवाच

लङ्केश विदितं तेऽस्ति जातस्तव निषूदनः ।
देवानां प्रार्थनेनैव जायमानो युगे पुरा ॥ ३ ॥
पुरा हिरण्यकशिपुस्त्वं येन विनिपातितः ।
हिरण्याक्षस्तव भ्राता स जातः कुम्भकर्णकः ॥ ४ ॥
स इदानीमपि तथा रामस्तव शिरोहरः ।
क्वचिज्जातोऽस्ति धरणौ त्रिदशैः प्रार्थितो भृशम् ॥ ५ ॥
तत्प्रतीकारमतुलमधुनैव विचिन्तय ।
नोचेद्रिपौ गते वृद्धि पश्चात्समनुतप्स्यसि ॥ ६ ॥
एवमुक्त्वा तु देवर्षौ नारदे निर्गते गृहात् ।
चकम्पे वीरवर्योऽपि राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥ ७ ॥
अहो मम बलं देवैर्मर्शितुं नैव शक्यते ।
स्वयं बलविहीनास्ते बलवन्तं गवेषिणः ॥ ८ ॥
सोऽहं शिवस्य चरणे स्वशिरांसि धृत्वा
तत्प्रीतिलब्धबलवीर्यमहाविभूतिः ।
देवान् नयामि सहसा त्रिदिवादधोऽद्य
विस्रंसयन् स्वपदतो वितथप्रभावान् ॥ ९ ॥
धर्मं च हन्मि शिवपूजनतोऽतिरिक्तं
सोऽपि स्वमात्रकृत एव सुखाय मेऽस्तु ।
नोचेच्छिवो यदरिषु प्रणयं विदध्यात्
तेन क्वचिन्मम भवेद्विभवस्य[1] पातः ॥१०॥

---

१. विभवस्य = "संसाररहितस्य समर्थस्य" इति टि०– मधु० ।

विष्णुस्तु धर्मसदनो मम किं करिष्य-
त्यज्ञात[1] एव निगमागमधर्मभेत्तुः ।
ये वैष्णवास्त्रिजगति द्विष एव ते मे
तेषामहं शिवनिषेवणतोऽस्मि जेता ॥११॥

दाम्भिका मोघकर्माणो वृथालापनपण्डिताः ।
वैष्णवास्तु मया क्षेप्यास्त्र[2]यीधर्मवहिर्मुखाः ॥१२॥
ब्रह्मलोकाद् बहिः कार्यो ब्रह्मा चेन्द्रः स्वलोकतः ।
एवमन्येऽपि सूर्याद्या निराकार्या मयाधुना ॥१३॥
तेषां स्थानानि दासेभ्यो दास्यामि स्वाधिकारतः ।
ते तत्र विचरिष्यन्ति राक्षसा मे महाबलाः ॥१४॥
यत्रामी संस्थिता यद्वन्मन्दिरे ग्रामसूकराः ।
मदाज्ञापालनपरान् करिष्यामि भृशं सुरान् ॥१५॥
न मे भुजबलं सोढुं विष्णुः संप्रभविष्यति ।
इतिकृत्वा मतिं क्रूरां पौलस्त्यः कालचोदितः ॥१६॥
चकार भगवद्द्वेषं तदुपाश्रयपीडनः ।
देवाश्च विद्रुतास्तेन प्राप्ता दशरथं नृपम् ॥१५॥
गुप्तभावेन तिष्ठन्ति प्रमोदवनमध्यगाः ।
केचित्तमेव शरणं राक्षसेन्द्रमुपाययुः ॥१८॥
परे गिरिदरीष्वेव निलीय क्वचिदाश्रिताः ।
एवं श्रुत्वा महाकष्टं रावणाल्लोकरावणात् ॥१९॥
राजा दशरथोऽप्यासीत् पुत्ररक्षापरायणः ।
रावणेन विसृष्टाश्च राक्षसा ब्रह्मराक्षसाः ॥२०॥
डाकिन्यः पूतनाद्याश्च कूष्माण्डकुणपास्तथा ।
इतस्ततो घातयन्तो विचेरुर्धरणीतले ॥२१॥
राजापि भयसंत्रस्तः पुत्रप्रणयकातरः ।
धात्रीगृहे कुमाराणां सन्निवेशं चकार सः ॥२२॥

---

१. "स त्ववज्ञातो मया" इति टि०–मथु० । २. छेद्या–मथु० ।

कौशल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च स्ववेश्मतः ।
सरय्वा अपरे पारे गोपराजस्य वेश्मनि ।
सन्निवेश्य द्विजातिभ्यो बालस्वस्त्ययनं व्यधात् ॥२३॥
ते बालकास्तत्र गवेन्द्रधाम-
न्यलङ्कृता हेममयैर्विभूषणैः ।
विचेरुरानन्दितबन्धुलोचनाः
स्वरूपसौन्दर्यलसत्प्रतीकाः ॥२४॥
कदाचिदेका खलु राक्षसी छलाद्-
विधाय रूपं किल[1] लोकवञ्चकम् ।
साक्षादिव श्रीरगमन्निहन्तुं
यत्रास्ति रामः खलु तत्र वेश्मनि ॥२५॥
स गोपवध्वा पयसा प्रपायितः
शंशायितो मृदुशयनेऽति बालकः ।
तूर्णं तयागत्य जनैरदृष्टया
गृहीत एव स्तनदानवाञ्छया ॥२६॥
तस्याः स्तनोत्थं विषहं विषं हरि-
र्गृह्णन् प्राणैः साकमह्नाय देवः ।
प्राणान् पपौ येन तदा तथा व्यसुः
प्रकाशयामास निजं कलेवरम् ॥२७॥
गव्यूतिपञ्चकपदं युगयोजनान्त-
र्विक्षिप्तमध्यमिनयोजन[2] वज्रहस्तम् ।
संचूर्णयन् गिरिनगालयगोव्रजौघान्
दीर्घारवेण निपपात सुघोररूपम् ॥२८॥
तस्याः पतन्त्याः श्वसितानलो मुखा-
न्नियन्[3] सुघोरेण रवेण निर्ययौ ।
वपुश्च संचूर्णितगोव्रजाङ्गणं
पपात लोकैस्तददृष्टपूर्वम् ॥२९॥

---

१. सकल°–अयो०, रीवां । २. इनयोजनं = द्वादशयोजनमित्यर्थः । ३. नियन् = निर्गच्छन् ।

रवं तमाकर्ण्य जना दधाविरे
खेलन्तमस्या उरसि व्यपश्यन् ।
रामं नवेन्दीवरदामकोमलं
बालं भयावेगविवर्जितं तदा ॥३०॥
सहसादाय कौशल्या माङ्गल्या गोपसुन्दरी ।
सविकम्पा परिष्वज्य प्राप्तप्राणमिवाग्रहीत् ॥३१॥
अथाभ्यधावद्दशरथभूपतिर्जवात्
स्वमन्दिराद् भयमाकर्ण्यावरोधे ।
रामं समादाय करेण वक्षसि
जघ्रौ शिरः किमिदमिति व्यशोचयत् ॥३२॥
या राक्षसी शैलदरीविलोचना
शुष्कान्धु[1]नाभिर्द्रुमचरणाङ्गुलीगणा ।
विदीर्णवक्रातिभयं चकार
कथं शिशुर्वक्षसि नानया धृतः ॥३३॥

राजोवाच

अहो इयं बहुभयदायिविग्रहा
क्व वा अयं क्व च खलु मामकः शिशुः ।
दिष्ट्या विमुक्तो विधिनैव मोचितः
प्राणो यथा दीनदीनस्य दीनः ॥३४॥
ततः स ब्राह्मणैः साकमकरोत् स्वस्तिवाचनम् ।
देवान् संपूज्य विधिवद्धुत्वाग्नौ स्वाशिषोऽवदन् ॥३५॥
यन्मे व्रतं च दत्तं च यन्मे देवाः कृतार्चनाः ।
यन्मे प्रसादिता विप्रास्तेनायं जीवताच्छिशुः ॥३६॥
यन्मे भाग्यं तथायुश्च यन्मे पुण्यं सनातनम् ।
यन्मे तमः परं किञ्चित्तेनायं जीवि[व?]ताच्छिशुः ॥३७॥
यन्मे शुभाशिषः प्रादात् प्राजापत्यो महामुनिः ।
याज्ञवल्क्यश्च भगवाँस्तेनासौ जीवि[व?]ताच्छिशुः ॥३८॥

---

१. अन्धुः = कूपः ।

चिरं जीवतु मे बालो बन्धुभिर्भ्रातृभिः सह ।
देवतानां प्रसादेन मुनीनां च विशेषतः ॥३९॥
माङ्गल्याद्या महागोप्यः कौशल्याद्याश्च मातरः ।
पितुर्हस्तात् समादाय प्रायुञ्जन् सत्यमाशिषः ॥४०॥
गोविन्दः पातु ते शीर्षं दृशौ पातु चतुर्भुजः ।
कर्णौ दामोदरः पातु नासिके पुरुषोत्तमः ॥४१॥
ओष्ठौ च पातु गोविन्दश्चिबुके देवकीसुतः ।
करौ च पातु वैकुण्ठो वक्षः पातु गदाग्रजः ॥४२॥
कुक्षिं पातु सदा विष्णुर्नाभिं पातु सदा हरिः ।
पादौ सहस्रपात् पातु पातु पादाङ्गुलीर्विभुः ॥४३॥
श्रीशः पादतलं पातु सर्वतः पातु कंसहा ।
इति रामकुमारस्य प्रयुञ्जानाः शुभाशिषः ॥
मुहुः संभावयामासुर्गोपा गोप्यश्च मातरः ॥४४॥
अहो इयं क्रूरमतिर्निजैनसा
मृता विधात्रैव परापकारिणी ।
अस्मद्भगैरेव चिरं रघुप्रियो
रामः सदा मोदमानः स्वलीके ॥४५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
पूतनावधो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अपरेद्युश्च माङ्गल्या यापयित्वा स्तनोद्भवम् ।
निधाय दन्तखट्वायां राममस्वापयच्छिशुम् ॥ १ ॥
तत्र कश्चिन्महाघोरो विकटाख्यो महासुरः ।
इयाय खट्वामाविश्य स्थितो रामजयाशया ॥ २ ॥

तं प्रभुः सहसा ज्ञात्वा कामरूपं महासुरम् ।
चूर्णयामास स्वाङ्गस्य भारेण भगवान् प्रभुः ॥ ३ ॥
संचूर्णिते रामशरीरभारै-
र्व्यभज्यतासौ खलु खट्वाङ्गसङ्घैः ।
स आरवो व्याप्य दिशो नभश्च
प्रभूतवांस्तत्र यथा ययुर्जनाः ॥ ४ ॥
खट्वाङ्गसङ्घं [ङ्घं ?] प्रविलोक्य चूर्णितं
जनाः परं विस्मयमाययुर्हृदि ।
तत्राभवन् साक्षिणः केऽपि बाला
अनेन खट्वेयमहो विचूर्णिता ॥ ५ ॥
तद्बालभाषितं मत्वा नैव श्रद्दधिरे जनाः ।
इत्येवं विकटो नाम चूर्णितः स महासुरः ।
रामेण बालरूपेण रिङ्गता गोकुलाङ्गणे ॥ ६ ॥
अथान्येद्युरुपायातो वात्यारूपो महासुरः ।
भूतलं स्वस्तलं चैव कुर्वन् तिमिरसंकुलम् ॥ ७ ॥
प्रचण्डवेगारवचूर्णितान्त[1] -
स्तृणोच्चयं भूरि समुत्क्षिपन्नितः ।
अतीव वात्यामयकामविग्रहः
कठोररावः प्रसभं समाययौ ॥ ८ ॥
सुदुःसहापूरितशर्कराभरो
विलोपिताशेषजनेक्षणक्रियः ।
दुरन्तपांशुप्रकरप्रवर्षणो
गवेन्द्रधामाकुलमातनोत्तराम् ॥ ९ ॥
तस्मिन् क्षणे तु माङ्गल्या कौशल्या चाङ्कसंस्थितम् ।
रामं कृतमहाभारं न्यवेशयदिलातलम्[2] ॥१०॥

---

१. ° न्तरस् – मथु०, रीवां । २. त्यक्त्वावेशयदिलातले–अयो० रीवां ।
इलातलं = भूतलम् ।

तं दानवो बहुतरवेगवत्तया
रामं समादाय नभः समास्थितः ।
तावत् प्रसूर्बालमपश्यती स्थले
चकार हा क्रन्दमलब्धजीविता ॥११॥
रामोऽपि नभसा यान्तं वात्यासुरमकारणम् ।
आत्मापहारिणं मत्वा दृढं दध्रे कृकाटिकाम् ॥१२॥
स रामहस्ताग्रनिबद्धघाटा
निर्मुक्तजीवो भृशपीडयाहतः ।
तत्याज देहं विकटं महीतले
महाशिलापातविशेषचूर्णितम् ॥१३॥
तस्मिन् रिपोरुरसि पपात राघवः
संचूर्णयन्निजवपुषो भरेण तम् ।
आगत्य व्रजसुदृशो ग्रहीषुरेनं
भाग्येन द्युतलगतं व्युपागतं च ॥१४॥
कौशल्यया भूरि सकम्पया मुहुः
स्वाङ्के समारोप्य भृशं स लालितः ।
माङ्गल्ययागत्य चिरं गृहीतः
शिरस्युपाघ्राय[1] मुखेन चुम्बितः ॥१५॥
एवं बहव उत्पाता आसन् गोपीन्द्रगोकुले ।
रावणस्याज्ञया नित्यं चरद्भिर्घोरराक्षसैः ॥१६॥
ततस्ते मन्त्रणां चक्रुर्गोपालाः सुखितादयः ।
राज्ञो दशरथस्याग्रे निबद्धाञ्जलयोऽखिलाः ॥१७॥

गोपा ऊचुः

राजन्नत्र महोत्पाता दृश्यन्ते प्रतिवासरम् ।
भाग्येन जीविता बालाः प्राणादप्यधिका अमी ॥१८॥
सा राक्षसी मानुषघोरदर्शना
समागता बालकानां जिघांसया ।

---

१. उपादाय–अयो० रीवां ।

दिष्ट्या मृता सा रविवंशजानां[1]
पुण्यप्रभावेन महीयसैव ॥१९॥
ततः परं सातिकठोरखट्वा
स्वयं व्यशीर्यत् पापरूपा परेषाम् ।
तस्यांशया नो नृप रामचन्द्रो
भाग्येन लब्धो व्रजवासिनां नः[2] ॥२०॥
ततः स वात्यासुर उज्जहार
रामं धरण्यां निहितं जनन्या ।
स एव यातो यमसादनं खलो
बालस्तावत् क्लेशभराद् विमुक्तः ॥२१॥
एकदास्य पदस्पृष्टौ शाखिनौ गगनस्पृशौ ।
स्वयं निपतितौ भूम्यां किंचिद्दूरेऽयमत्यगात् ॥२२॥
इत्येवमस्मद्भाग्येन त्वत्पूर्वसुकृतेन च[3] ।
चिरं जीवति रामोऽसौ परं चिन्ताकुला वयम् ॥२३॥
जानीमहेऽमी रमणा[4] निजांश-
विनिर्मितकोटिब्रह्माण्डनाथाः ।
तथापि भूपाल सुरक्षणीयाः
सर्वस्वभूता भवतो नो विशेषात् ॥२४॥
पश्यन्त्य एतान् वनिता व्रजौकसां
जीवन्ति मीनाः सलिलान्तरे यथा ।
गायन्त्य एतान् मधुरस्वनेन
दिवानिशं बिभ्रति मानसे मुदम् ॥२५॥

राजोवाच

जानीमहे महोत्पातान् तदत्रैव विधीयताम् ।
सरय्वाः पुरतः पारे विशालं कामिकावनम् ॥२६॥

---

१. दृष्ट्या मृता सा (मृतानां-अयो०) बकवंशजानां-रीवां, अयो० ।
२. ° नान्तः-अयो० । ३. त्वत्पूर्वजतमेन च-अयो०, रीवां । ४. नीरमण-अयो० ।

तत्र निश्चीयतां गोपा भवद्भिर्वसतिर्निजा ।
नीयतां गोधनान्यग्रे पश्चान्निर्गम्यतां जवात् ॥२७॥
स्वान् स्वान् दारान् समादाय शकटैरनुडुद्युतैः ।
एवं बुद्ध्वा मतं राज्ञो गोपा गोप्यः सगोधनाः ॥२८॥
गोकुलेन्द्रं पुरस्कृत्य प्रययुः कामिकावनम् ।
यत्र संदीपनं नाम वनानामुत्तमं वनम् ॥२९॥
सौगन्धिको नाम गिरिर्महारत्नविभूषितः ।
यत्रासने महारम्याः कतिशो रत्नवापिकाः ॥३०॥
सरयूजलकल्लोलतलस्रोतविभाविताः ।
कदम्बकाननं यत्र सर्वर्तुकुसुमान्वितम् ॥३१॥
यत्र वृक्षाः सदानम्राः पक्वामृतफलान्विताः ।
तत्रावासं चकारोच्चै राजापि स्वयमादरात् ॥
धात्रीगृहे कुमाराणां वर्द्धतां सुखकाम्यया ॥३२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामबालचरित्रवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

●

एकोनविंशोऽध्यायः

ते तत्र नित्यं परिवर्द्धमानाः[1]
स्वगात्रलक्ष्मीं[2] पुपुषुः कुमाराः ।
संजातदन्ताः स्मितवक्त्रचन्द्राः
श्रिया जनानां हृदयं हरन्तः ॥ १ ॥
धात्रीकराङ्गुलिभरेण वितिष्ठमाना
भूयो रणच्चरणनूपुरजातहर्षाः ।
मध्याङ्गकिङ्किणिकया कृतभूरिनृत्याः
स्वानां मुदं व्यधुरुदारगुणाभिरामाः[3] ॥ २ ॥

---

१. परिवृद्ध°–अयो०, मथु० । २. °लक्ष्मीः–रीवां । ३. व्यधुरपार°–अयो० रीवां ।

गोपालबालनिवहेषु विराजमानाः
सद्रत्नदण्डभररम्यकटाश्चरन्तः ।
गोपाङ्गणेषु नवनीतकराढ्यहस्ताः
श्रीरामलक्ष्मणमुखाः शिशवो विरेजुः ॥ ३ ॥
रामः सलक्ष्मणस्तत्र विचरन् व्रजवीथिषु ।
गोपालबालकैः साकं चिक्रीडे बहुधा प्रभुः ॥ ४ ॥
क्वचिद् वत्सान् समादाय धावमानो व्रजाङ्गणे ।
क्वचिन्मयूरशिशुभिः परिवारितविग्रहः ॥ ५ ॥
क्वचिद्धंसैश्च कादम्बैः कारण्डवकुलैस्तथा ।
चटकैश्च कपोतैश्च चिक्रीडे गोकुले चरन् ॥ ६ ॥
स गोकुलवरस्त्रीणां हृदयानि प्रमोदयन् ।
बालकेलिं चकारोच्चैर्मोहयन् गोपकन्यकाः ॥ ७ ॥
कस्तूरीतिलकविराजिभालदेशो
मुक्तास्रङ्मणिगलचारुकण्ठहारः ।
नासाग्रे पृथुगजमौक्तिकं दधानो
बिभ्राणः करकमलेन मञ्जुवेणुम् ॥ ८ ॥
चूडालः करयुगहेमकङ्कणश्रीः
श्रीखण्डद्रवमकरीविरोचिगात्रः ।
गोपाली मनसि विवर्द्धयन् मनोजं
कुर्वाणो दधिनवनीतचौर्यलीलाम् ॥ ९ ॥
गृहे गृहे विशन् रामो विचरन् बालकैः सह ।
माङ्गल्यां चैव कौशल्यां समुपालम्भयज्जनैः ॥१०॥
ता गोपकन्याः स्मरबाणविद्धा
रामेण विस्रंसयता मनांसि ।
समाययुः कान्तविलोकनार्थं
गृहानुपालम्भमिषेण लुब्धाः ॥११।

गोप्य ऊचुः

हे माङ्गल्ये गवेन्द्रगेहिनि हे कौशल्ये दशरथमहिषि ।
तव तनया अनयाश्चत्वारस्तेषामेष सुधूर्तो रामः ॥१२॥

कृत्वा बहु नवनीतस्तेयं
भोजयति कपीन् शिशूंश्च शश्वत् ।
दृष्टः सपदि पलायति बालैः
पुनरायाति च गालीं दत्ते ॥१३॥
व्याकुलयति कुलवनिता शश्व-
न्मुखमवगुण्ठनपिहितं पश्यन् ।
आकर्षत्यधुनैव विलज्जो
गोकुलकन्यातरुवसनानि ॥१४॥
उक्तः किमपि पलायति दूरे
साक्षात् काम इवातिजिघांसुः ।
खेदयति मुहुरति[1]विपुलश्रोणीः
कुर्वन् संततमलमपराधम् ॥१५॥
हसति च हासयते च शिशुभ्यः
कुरुते विग्नाः गोकुलरामाः ।
किमपि च वक्तुं न पारयामः
शिक्षय मातर्ननु निजबालम् ॥१६॥
एष स लक्ष्मणमपि शिक्षयति
साधुमिमं स्वसमं च चिकीर्षुः ।
बहिरन्तश्च विजित्य समस्तं
यथार्थनामा राजति रामः ॥१७॥
स्फोटयति प्रसभं दधिभाण्डं
विगुणीभवति निवारित एषः ।
एवमादि वचनानि वदन्त्यः
कान्तविलोकनपूरितकामाः ।
जग्मुरात्मसदनानि तरुण्य-
स्तमेव सततं भावयमानाः ॥१८॥
कदाचिद् बालकैः साकं क्रीडन् रामो व्रजाङ्गणे ।
वर्जितोऽपि जनन्या ऽऽद[2] कुपथ्यं बदरीफलम् ॥१९॥

१. सद्गति–रीवां, मुहुर्–अयो०, मथु० । २. च–रीवां, मथु० ।

बालैर्निवेदिता माता तर्जयामास तं शिशुम् ।
स तर्जितो जनन्या च प्रहसंस्तामुवाच ह ॥२०॥

राम उवाच

मातर्नाहं जघासाद्य[1] कुपथ्यं बदरीफलम् ।
नोचेदुद्घाट्य वदनं मदीयं प्रविलोकय ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा व्यात्तमुखस्तु रामः
प्रदर्शयामास मुखे समस्तम् ।
सजङ्गमं स्थावरमेतदुच्चै-
र्यद्दृश्यजातं वरिवर्ति लोके ॥२२॥
अद्रयः सागरा नद्यो द्वीपाः ग्रामाः पुराणि च ।
नरा देवाश्च गन्धर्वा वनानि भुवनानि च ॥२३॥
सर्वं राममुखेऽपश्यन्माता माङ्गल्यया सह ।
अदृष्टमश्रुतं चैव सर्वाश्चर्यमयं जगत् ॥२४॥

कौशल्योवाच

किमेष जातो मतिविभ्रमो मे
स्वप्नोऽथवा देववरस्य माया ।
किं वाद्य किंचित् कुतुकं प्रदर्शितं
रामेण वोचे स यथा नो वसिष्ठः ॥२५॥
इत्थं मुहुर्भ्रान्तमतिः प्रसूस्त-
मपार्यमाणा वदने विलोकितुम् ।
न्यमीलयन्नेत्रयुगं निजं सा
पुनः समुन्मील्य मुखं ददर्श ॥२६॥
सा रामचन्द्रस्य मुखेन्दुमन्द-
हासावलोकेन पुनः समोहा ।
पुत्रेति मत्वा समपाययत् स्तनं
स्तनन्धयं राममानन्दरूपम् ॥२७॥

---

१. जघासाथ–अयो० ।

एवं स आद्यः पुरुषः पुराणः
स्वमायया बालभावं प्रपद्य ।
अरञ्जयद् गोकुलयोषितस्ता
यथा तदात्मान इमा बभूवुः ॥२८॥
तन्मग्नमनसो नित्यं तदालापनतत्पराः ।
तद्गीतगानमुदिता बभूवुस्तन्मयान्तराः ॥२९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे विश्वरूपदर्शनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

एकदा गोपराजस्य पत्नी माङ्गल्यकाभिधा ।
नवनीतप्रियस्यास्य स्वपुत्रस्य प्रियार्थिनी ॥
दधिनिर्मन्थने काले प्रसक्ता शुशुभेतराम् ॥ १ ॥
पट्टाम्बरं कटिविलग्नमिदं दधाना
हस्ताम्बुजद्वयगृहीतसुमन्थनेत्रा[1] ।
आन्दोलनादिरसनागुणकिङ्किणीका
भूयो रणत्कनककङ्कणशोभमाना ॥ २ ॥
धम्मिल्लमोचनचलत्वगलत्प्रसून-
निर्मन्थनश्रमजतोयकणावकीर्णम् ।
संबिभ्रती वदनमिन्दुमिवामृतोत्थं[2]
माङ्गल्यका मणिघटे दधि निर्ममन्थ ॥ ३ ॥
तस्याः स्तन्यं कामयानो रामो मन्थानमग्रहीत् ।
तमङ्के स्थापयित्वा सा ततः स्तन्यमपाययत् ॥ ४ ॥

---

१. सुवर्णनेत्रा–मथु०,–गृहीतनेत्रा–अयो० । २. मिवामृतस्य–अयो०, मथु० ।

निरीक्ष्यती तद्वदनेन्दुमादराद्
दृष्ट्वा तु वात्सल्यरसानुविद्धा ।
मुहुः परिष्वज्य च चुम्बितानना
गोपी परानन्दपदं समभ्यगात् ॥ ५ ॥
विलोक्य पय उत्सेकं कीलया कृष्णवर्त्मनः ।
पिबन्तमेव तं त्यक्त्वा प्रययौ रक्षितुं पयः ॥ ६ ॥
तावत्सुसंजातरुषो जनन्या
बभञ्ज दध्नो[1] दृषदा स भाजनम् ।
गृहान्तरे चाहततक्रभाजनो
जगाम शिक्योपरि पातितुं दधि ॥ ७ ॥
भूमौ घटं निधायाधस्तदुपर्यर्पिताङ्घ्रिणा ।
कृत्वा सूक्ष्मं तु विवरं शिक्यभाण्डस्थितं दधि ॥ ८ ॥
पपे तत्तेन स्तेनेन शेषं बालैश्च वानरैः ।
तस्मिन् स्थाने समागत्य माङ्गल्या दधिभाजनम् ॥ ९ ॥
रामेण स्फोटितं वीक्ष्य न तमीक्ष्य च बालकम् ।
गृहान्तरमगात्तूर्णं तत्रापि न विलोकितः ॥१०॥
ततो गृहान्तरं गत्वा दृष्ट्वा [ष्टः] तादृश एव सः ।
नवनीतकरो यातः पलाय्य सदनान्तरम् ॥११॥
नितान्तमनुमृग्यती दधिकणाङ्किते तत्पदे
निरस्य लकुटीं गताऽस्य भयमोक्ष्य माङ्गल्यका ।
तया स सदनान्तरे सपदि वीक्षितः संरुदन्
मृजन्नुभयपाणिना लुलितकज्जले लोचने ॥१२॥
तस्यापराधान् विविधान् विजानती
बद्धुं समारब्धवती तमीश्वरम् ।
तत्पाणियुग्मं स्वकरे गृहीत्वा
नेत्रेण यावत् प्रकरोति बन्धम् ॥
तावत्तदासीच्चतुरङ्गुलोनकं
ततोऽन्यदादाय बबन्ध नो ममौ ॥१३॥

---

१. जग्ध्वो–रीवां ।

अन्यदन्यदुपादाय सूत्रं बद्धवती सुतम् ।
तत्तन्न्यूनं समभवच्चतुरङ्गुलतोऽधिकम् ॥१४॥
ततो गृहस्थान्यखिलानि नेत्रा-
ण्यानीय खिन्नां जननीं विलोक्य ।
स्वेदावकीर्णां पृथुजघनां भरार्ता-
मेकेनैव स्वमबन्धयद्गुणेन ॥१५॥
सुवर्णनेत्रसूत्रेण स बद्ध्वा करयोस्तथा ।
विबद्धःस्वाङ्गणस्थस्य स्तम्भतः कल्पशाखिनः ॥१६॥
रामो जनन्यां यातायां कर्षयामास नेत्रकम् ।
तत्कृष्टं तेन वृक्षेण साकमेव करेऽवहत् ॥१७॥
वृक्ष उन्मूलने जाते डोरकाकर्षणक्षणे ।
स्वयं स बद्ध एवास पतितेऽपि महीरुहे ॥१८॥
तस्मिन्निपतमाने तु तरौ शब्दो महानभूत् ।
तत एको महाकायः पुरुषः पद्मलोचनः ॥१९॥
सुन्दरः सुमुखः स्वच्छो ददृशे देववद्द्युतिः ।
स साष्टाङ्गं प्रणम्यादौ रामं राजीवलोचनम् ॥२०॥
तुष्टाव हसितो भूत्वा मुक्तः स्थावरभावतः ।

पुरुष उवाच

नमो रामाय रामाय गोविन्दाय नमोनमः ॥२१॥
नमः सत्त्वाय शान्ताय नमः कारुणिकाय ते ।
नमः श्रीरामचन्द्राय दशाकृतिविधायिने ॥२२॥
नमो गोपालवेषाय नमो गोपीविलासिने ।
नमोऽनुग्रहरूपाय नमोऽनुग्रहकारिणे ॥२३॥
नमो रामावतरिणे नमो भक्तिविधायिने ।
नमस्ते फलरूपाय नमस्ते साधनात्मने ॥२४॥
सत्त्वाव्यवहितं रूपं दधते ते नमोनमः ।
सात्त्विकीं मुक्तिमत्येत्य परभक्तिप्रदायिने ॥२५॥

शान्ताय शान्तातीताय[1] गुणलीलाकराय च ।
चिदानन्दस्वरूपाय तस्मै रामाय ते नमः ॥२६॥
मेघश्यामाय रामाय पीतकौशेयवाससे ।
बालरूपाय पद्मायाः कन्यायै तन्नमोनमः ॥२७॥
नमः शुक्लाय रक्ताय पीताय सितिवर्चसे ।
युगलीलाविनोदाय श्रीरामाय नमोममः ॥२८॥
कलात्मने पूर्णकलाय राघव[2]
अंशात्मनेंऽशांशकलाश्रयाय[3] ।
नमो नमस्ते पुरुषोत्तमाय
रामाय रामाय च राघवाय ॥२९॥
नमस्ते रूपसंपत्त्या त्रैलोक्यमदनाय च ।
हैयङ्गवीनचौराय रसभोक्त्रे रसात्मने ॥३०॥
नमो रसाय रस्याय नित्यलीलामयाय च ।
अथेदं दर्शितं रूपं त्वयानुग्रहकारिणा ॥३१॥
अद्य मे सफलं ज्ञानं विशेषादर्पितं त्वयि ।
नाहं किञ्चिद्विजानामि स्वात्मानं परमेव वा ॥३२॥
त्वामेकमेव शरणं प्रपद्ये भक्तिभावतः ।
इदं ते कोमलं राम सुन्दरं चरणद्वयम् ॥३३॥
त्वद्भक्तिसंसिद्धिकरं मस्तके मे निधीयताम् ।
इति स्तुत्वा गोपबालैः परिवीतं रघूद्वहम् ॥३४॥
परिक्रम्य त्रिरानम्य कृतकार्यो दिवं ययौ ।

भुशुण्ड उवाच

ब्रह्मन् को नाम पुरुषः समदृश्यत वृक्षतः ॥३५॥
कथं वा स्थावरो जातो यातः कुत्र च तादृशः ।
एतन्मे वद साश्चर्यं चरित्रं श्रीरमापतेः ॥३६॥

---

१. शान्तौ नीताय–अयो०, मथु० । २ राघवे–अयो०, रीवां । ३. सकलांसाश्रयाय–अयो०, मथु० ।

ब्रह्मोवाच

विरजायाः परे पारे सुनीथो नाम वै द्विजः ।
ब्रह्मदर्शी सदाचारो न तु भक्तिपरायणः ॥३७॥
तत्रस्थैरुपदिष्टोऽपि भक्तिमार्गं न मन्यते ।
आत्ममानी स्तम्भगतिर्मुक्तमानी मुनीश्वरः ॥३८॥
ज्ञानेऽस्य योग्यतां दृष्ट्वा नारदो ब्रह्मदर्शनः ।
भक्तिं प्रोवाच सपुनर्ज्ञानमेवाभ्यमन्यत ॥३९॥
का भक्तिर्भजनीयः क एकं ब्रह्मैव केवलम् ।
तत्सत्यमपरं तुच्छं कस्य भक्तिं करिष्यसि[1] ॥४०॥
ज्ञानेन ज्ञातुमन्विच्छ स्वात्मानममृतात्मकम् ।
प्रमेयं सर्वदेवानां कस्तत्र हरिरीश्वरः ॥४१॥
इत्यादिमोहवचनैर्दूषयन् स मुनेर्मतिम् ।
तेनैव मुनिना शप्तो व्रजे जातो महोरुहः ॥४२॥
रामपादस्पर्शमात्राद् द्विजः संजातभक्तिकः ।
प्राग्ज्ञानं समनुप्राप्य भक्तराजो भवत्तराम् ॥४३॥
तस्माद्रामं परित्यज्य येऽन्यानपि भजन्ति ते ।
विहाय सरसः स्रोतः[2] कूपं कुर्वन्ति बालिशाः ॥४४॥
तस्मादेको रामचन्द्रोऽत्र सेव्यः
सर्वैर्लोकैः सर्वभावेन नित्यम् ।
सर्वस्येशः सर्वदेवैकभाव्यः
सर्वाकारः सर्वसर्वश्च सर्वः ॥४५॥
[3]रामो रामो रामरामोऽभिरामो
रामो रामो रामरामश्च रामः ।
रामो रम्यो रामचन्द्रो रमेशः
इत्थं चोक्त्वा मुच्यते चैव बन्धात् ॥४६॥

---

१. करिष्यति–अयो०, रीवां। २. सरस्रोतश्च–अयो०, सरयूस्रोतः–मथु०।
३. अत्र = चिह्नं दत्त्वा—"चतुर्दशवारनाम्ना चतुर्दशलोक-बन्धनान्मुक्तिरिति" टि०–मथु०।

यो राममूर्तिं भजते न मानवो
रामेति वर्णौ कुरुते न कर्णौ ।
स नावमासाद्य महानदीजले
निमज्जनं वाञ्छति मूढमानसः ॥४७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
सुनीथमोक्षणं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

[ब्रह्मोवाच]

माङ्गल्या चैव कौशल्या गोप्यो गोपाश्च मातरः ।
राजा दशरथश्चैव लक्ष्मणाद्यास्तथा सुताः ॥ १ ॥
सुखितश्चैव गोपालः सानुगस्तूर्णमाययुः ।
द्रुमपातरवं श्रुत्वा सर्वे संभ्रान्तचेतसः ॥ २ ॥
अकस्मात् कुत आराव इति चिन्तासमाकुलाः ।
त आगत्य गुणैर्बद्धं रामं तादृशमेव तम् ॥ ३ ॥
वृक्षस्तम्भस्थितं वीक्ष्य विस्मयं परमं ययुः ।
तत्रस्थाः बालकाः सर्वे मुहुरुच्चैर्बभाषिरे ॥ ४ ॥
अनेन कर्षता सूत्रं द्रुम उन्मीलितो जवात् ।
तच्छ्रुत्वा बालवचनं नैव श्रद्दधिरे जनाः ॥ ५ ॥
तद्दिनावधि रामोऽसौ विख्यातो द्रुमभञ्जनः ।
तं तथा विटपिस्तम्भबद्धं दृष्ट्वा तदाहसत् ॥ ६ ॥
उन्मोच्य रामं नृपतिश्चुचुम्ब प्रणयान्मुखम् ।
मैवं कुरुष्व राम त्वं कोमलाङ्गो महाश्रमम् ॥ ७ ॥
अनेन तव खेदेन भृशं खिद्यामहे वयम् ।
नवनीतस्तेयकरो मा भ्रमस्व गृहे गृहे ॥ ८ ॥

यत्तवेष्टं क्रीडनकं तत्तदत्रैव कल्पये ।
भ्रातृभिर्बन्धुलोकैश्च तथा परिजनैर्भृशम् ॥ ९ ॥
बाललीलारसं चक्रे रामो रमणकोविदः ।
एवं केलीरसासक्तो विस्मरन् पानभोजने ॥१०॥
बालैः सह स[1] चिक्रीडे भ्रातॄणां वर्द्धयन् मुदम् ।
हठेन माता माङ्गल्या क्रीडन्तं राममानयत्[2] ॥११॥
शृङ्गारयामास हठात् तथैवापाययद्धठात् ।
एवं ते गोपसदने वर्द्धमानाः कुमारकाः ॥१२॥
वत्सान् संचारयामासुः सह गोपालबालकैः ।
सरयूतीरमासाद्य रत्नाद्रिमभितस्तथा ॥१३॥
प्रमोदवनमासाद्य विचेरुरधिगोकुले ।
क्वचिद्वेणून् वादयन्तो गायन्तश्च तथा क्वचित् ॥१४॥
क्वचिन्मुहुः कूर्दमानाः क्वचिन्नृत्यन्त एव च ।
क्वचिद् गोपालबालाभिः खेलन्तश्च परस्परम् ॥१५॥
फलक्षेपैस्तथा केलीमाचरन्तं क्वचिच्च ते ।
बर्हिधातुविचित्राङ्गाः शुशुभुर्बालरूपिणः ॥१६॥
कदाचित् सरयूतीरे वत्सान् चारयतामुना ।
ददृशे रावणहितो वत्सरूपो महासुरः ॥१७॥
तं दर्शयन् लक्ष्मणाय हसन् रामो महाबलः ।
धृत्वापराभ्यां पादाभ्यां भ्रामयित्वा च भूरिशः ॥१८॥
फलिनां बहुवृक्षाणामग्रेषु समपातयत् ।
तस्य निष्पततः कायो दशयोजनतोऽभवत् ॥१९॥
सरय्वाः पुरतो मध्ये प्रत्यङ्गविततो महान् ।
वृक्षेभ्यः कम्पमानेभ्यः फलानि बहुशोऽपतन् ॥२०॥
तान्यदुर्बालकाः सर्वे सुरमारणनिर्वृताः ।
एवं वत्सान् पाययितुं नद्यः पुलिन आगतः ॥
तत्रापश्यत् स्थितं रामो बकरूपं महासुरम् ॥२१॥

---

१. च—रीवां, सह चक्रीडे—मथु० । २. माशयत्—अयो० रीवां ।

तावत् स जग्रास जवेन रामं
तीक्ष्णेन तुण्डेन कठोरचित्तः ।
तस्याननेऽसौ ववृधे यथासौ
विदीर्णतुण्डो व्यसुतामुपाययौ ॥२२॥
राममासाद्य ते प्राणसदृशं लक्ष्मणादयः ।
बालका मुमुदुः स्वाङ्गैः परिष्वज्य विसाध्वसाः ॥२३॥
सुराश्च ते परमिकया मुदान्विताः
सुरद्रुमस्तबकभरैर्ववर्षिरे ।
अहो अहो रघुवररूपसागरो
हितप्रदो वत भुवि नः समागतः ॥२४॥
इत्याश्चर्यचरित्राणि कुर्वन् रामः सहानुजः ।
विरेजे नितरां तत्र कल्याणगुणभाजनः ॥२५॥
कदाचिद्वनवीथीषु खेलन्तो बालकैः सह ।
रामादयो विददृशुर्महासर्पं स्थितं पथि ॥२६॥
कन्दराव्याप्तवदनं शैलकायं भुजङ्गमम् ।
दृष्ट्वा तस्यानने सर्वे विविशुः कन्दराधियः[1] ॥२७॥
रामो ज्ञात्वा महासर्पं व्यवर्द्धत तदोदरे ।
बालाश्च ते निर्गमिताः पाटयित्वोदरं बलात् ॥२८॥
यावत् पापच्यमानास्ते न म्रियेरन् विषानलैः ।
कदाचिद्रामचन्द्रस्य जिज्ञासुर्विभुतां विधिः ॥२९॥
हृत्वा निन्ये निजं लोकं वत्सान् बालांश्च लीलया ।
ऋते लक्ष्मणशत्रुघ्नभरतान् सर्वबालकान् ॥३०॥
रामोगवेषयाणस्तान् सरयूतीरमागतः ।
यदा चिरेण नापश्यन्मेने विधिकृतं तदा ॥३१॥
यथासौ वत्सपालानां वत्सानां च विशेषतः ।
रूपाणि स्वयमास्थाय जगाम व्रजमन्दिरे ॥३२॥

---

१. कन्दराधिया–मथु०, "दरीं मन्यमानाः" टि०–मथु० ।

बन्धवो मातरस्तेषां विशेषात् स्नेहपुष्कलाः ।
रामवत्प्रीयमाणास्ते प्रमोदं परमं ययुः ॥३३॥
गावो वत्सान् विजिघ्रन्त्यो बालकांश्चैव मातरः ।
बभूवुस्तृप्तहृदया रामं दृष्ट्वा यथा तथा ॥३४॥
अन्येद्युरपि तान् वेधा जहार जनितस्मयः ।
रामश्चक्रे तथैवान्यान् स्वयंतावत्स्वरूपधृक् ॥३५॥
एवं यावद्दशदिनमुभौ[1] कर्माणि चक्रतुः ।
एको जहार गर्वेण ससृजेऽन्यो[2] निजेच्छया ॥३६॥
ततोऽतिविस्मयं प्राप्य वेधाः संजातसंभ्रमः ।
एकादशेऽह्नि पदयोरपतज्जातकौतुकः ॥३७॥
स दण्डवत्प्रणिपतितस्तदग्रतो
ज्ञात्वा रामं जातमुदग्रविक्रमम् ।
अस्तौत् स्तवैः संजनितातिहर्षो
भक्त्या युक्तो भूरिभाग्यं च जानन् ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

नमामि ते राम पदारविन्दं
भक्त्या लभ्यं भक्तिहीनैरचिन्त्यम् ।
स्वरूपशक्त्यैव मुदं वितन्वन्
विक्रीडमानो जयसे सुरान् रणे[3] ॥३९॥
किं वर्णनीयो महिमा तवेश्वर
श्रीर्यत्पदाम्भोजयुगेऽस्ति किङ्करी ।
यतो गिरः सह मनसा सन्निवृत्ता
यं न स्पृशेद् भूरिसिद्धोऽपि योगः ॥४०॥
तस्मै नमस्ते त्रिदशप्रियार्थं
कृतावताराय[4] निरीहणाय ।
स्वमायया मोहितविष्टपाय
स्वसाक्षिणे सेवकवत्सलाय ॥४१॥

---

१. "उभौ = चतुर्मुखरामौ" टि०–मथु० । ४. "अन्यो रामः" टि०–मथु० ।
३. गणो–रीवां । २. °वतारिणे–अयो० मथु० रीवां ।

ममापराधस्तव वत्सहर्तुः
क्षन्तव्य एषोऽतितरां रमेश ।
अजानतो बालकस्यापराधं
यथैव माता क्षमते मिट्पुरीषम्[1] ॥४२॥
न ज्ञायते महिमा बालकस्य
ब्रह्मस्वरूपस्य हरेर्मयापि ।
अगोचरो वेद वेदांगिरा सः
स्वयं त्वपायः परिदर्शनीयः ॥४३॥
त्वं प्रार्थितः सुरनरैर्दशवक्त्रविघ्नै-
स्तन्निग्रहाय जनिमाप नरेन्द्रगेहे ।
जातोऽधुना विहरसीति मया प्रतीतं
स्वेच्छाविलासभवनाविनयं क्षमस्व ॥४४॥
यत्त्वं पुराणमुनिभिर्बहुधारणाद्यैः
स्वात्मैकयोगनिपुणैर्नितरां दुरापः ।
तत्के वयं निजगृहार्तिधरा वराकाः
श्रीराघवेन्द्र भवतो महिमानमाप्तुम् ॥४५॥
यन्नो मनोरथभराय भवावतीर्णो
प्रमुद्वनाद् भुवननाथ समूहनाथ ।
तत्ते रमा विहरणे क्वचिदन्तरायो
माभूत् कदाचिदिति संततमर्थये त्वाम् ॥४६॥
लोकमातापि भवतोऽनुकूलानि करोतु सा ।
यथा त्वमत्र भुवने चिराय विहरिष्यसि ॥४७॥
निजैः पदैस्तीर्थमयानि कुर्वन्
स्थलानि गङ्गाजलसंमितानि ।
स्ववीर्यगुप्तो विचरन् धरण्यां
धनुर्द्धरः क्षपयन् दुष्टसङ्घान् ॥४८॥

---

१. विट्पुरीषं-अयो० रीवां । "मिह सेचने, मिट् मूत्रं तत्पुरीषं वा पाठः" टि०-मथु० ।

चिरमेध चिरं वर्द्ध चिरमास्व महीतले ।
चिरं कुरु चरित्राणि पालयन् धर्मगोद्विजान् ॥४९॥
नमः पुरुषवर्याय पूर्णाय परमात्मने ।
अदृश्यायाप्रमेयाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥५०॥
नमः श्यामाय रामाय रामाय वनमालिने ।
परमानन्दरूपाय गोविन्दाय नमो नमः ॥५१॥
नमोजगद्विधरणविष्टिसेतवे
प्रकाशिने श्रुतिगणगोचरात्मने ।
स्वमायया विरचितलोकसाक्षिणे
अमायिने स्वचितिसुखात्मने नमः ॥५२॥
इत्यभिष्टूय तं देवं पुरुषाकृतिमच्युतम् ।
विधिः पदोः पतित्वास तं प्रोवाच सतां पतिः ॥५३॥

श्रीराम उवाच

गच्छ ब्रह्मन् निजं लोकं स्वकार्यं प्रतिपादय ।
एवं मूढधिया कर्म कुर्वन् मूढयते बुधः ॥५४॥
मा कुरुष्वात्र सन्देहं नित्यो मम परिच्छदः ।
अर्वाग्भिः कालमायाद्यैरुपहन्तुं न शक्यते ॥५५॥
अस्योपघातो न भवेत् कदाचित्
समूढरूपस्य परात्मकस्य ।
सतस्त्रिलोकीविभवातिगस्य
मदीयलोकस्य चिदात्मकस्य ॥५६॥
अहं च यत्रैव निजस्वरूपतः
करोमि दिव्यं रमणं स्वसाधुभिः ।
न तत्र माया न च कालविक्रमो
न लोकपालस्य तव प्रवेशः[1] ॥७५॥

---

१. तवापि संप्रवेशः–अयो०, मथु०; तवापि प्रवेशः–रीवां ।

विभवोऽस्य[1] ह्यनाद्यन्तः सच्चिदानन्दलक्षणः ।
तत्राप्ययोध्यासम्बन्धी प्रकरस्तु मदात्मकः ॥५८॥
त्रैलोक्यनाशेऽपि न नश्यति क्वचित्
तद्वुद्गमेनोद्गमनं दधाति न ।
नित्योऽयमानन्दपुरोपरिच्छदः,
प्रमोदवल्लीवनकेलिनो मम ॥५९॥
अस्यैव साकेतपुरस्य नित्यशः
समन्ततः पञ्चमुखास्त्रिलोचनाः ।
ब्रह्माहरिश्चात्र गदासिचक्रभृत्
प्रत्यन्तभूरक्षणकारिणोऽभवन् ॥६०॥
कोटिब्रह्माण्डविधयः कोटिब्रह्माण्डशङ्कराः ।
कुर्वन्ति रक्षणं चास्य कोटिब्रह्माण्डविष्णवः ॥६१॥
यत्राहं क्रीडनं कुर्वे साकेतपरितो वने ।
तस्यैव रक्षकाः सर्वे त्रिदशाः सेवका मम ॥६२॥
इत्युक्त्वा स्वस्य लोकस्य[2] महिमानं रघूत्तमः ।
विसृज्य वेधसं सायं स्वगृहान् समुपाययौ ॥६३॥
अग्रे कृत्वा तार्णकं चक्रवालं
सलक्ष्मणः सहभरतः सशत्रुजित् ।
सायं गोकुलमनयद्रघूत्तमो
बभौतरां[3] पशुपतिबालसंगतः ॥६४॥
तमायान्तमनुश्रुत्य वेणुवादनलक्षितम् ।
द्रष्टुं गोकुलनार्यस्ताः प्रेमपूर्णाः समुद्ययुः ॥६५॥
माङ्गल्या चैव कौशल्या दायिनी राजभाजनम् ।
अग्रे समुपतस्थुस्तान् सुमित्राकेकयीयुता ॥६६॥
कृत्वा नीराजनं तेषां कुमाराणां मुहुर्मुहुः ।
स्वं स्वं निर्मञ्छयाञ्चक्रुः[4] प्रेमसंदोहविह्वलाः ॥६७॥

---

१ "अस्य प्रमोदवनस्य मल्लोकस्य" टि०–मथु० । २. "साकेतप्रमोदवनस्य" टि०–मथु० । ३. बभूत्तरां–अयो० मथु० । ४. निर्मन्थयाञ्चक्रुः–रीवां ।

भुशुण्ड उवाच

कथं स राजेन्द्रसुतोऽत्युदार-
श्चकार रामः पशुपालकृत्यम् ।
एतन्मनःसंशयमात्र [मत्र ?] जातं
संछेत्तुमर्हस्यमराधिनाथ ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

न गावस्ताः श्रुतयः सर्वरूपाः
न ते वत्साः एकदेशः श्रुतीनाम् ।
न ते गोपा गुरवस्ते किलार्या
न ता नार्यो भक्तयस्तास्तु मूर्ताः ॥६९॥
तेषां मध्ये परब्रह्म रामश्चित्सुखविग्रहः ।
रमते स्वानुभावेन कृतार्थानां विशेषतः ॥७०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
रामवत्सचारणलीलानुकथनं नाम
एकविंशोध्यायः

द्वाविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कदाचिदिन्द्रयजनं कर्तुं नृपतिरुद्यतः ।
तथैव चान्वमोदन्त प्राप्ताः सर्वे द्विजातयः ॥ १ ॥
रामस्तदेव यजनं कर्तुमुद्यतमीश्वरम् ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो निजमाहात्म्यवर्द्धनः ॥ २ ॥

राम उवाच

तात त्वया मखाः सर्वे कृताः सर्वेऽपि वैदिकाः ।
अश्वमेधादयो मेध्याः सत्रान्ता दीर्घसत्रकाः ॥ ३ ॥

विधिना च सुसम्पन्ना सुहुता बहुदक्षिणाः ।
वह्वृत्विजो बहुगुणा बहुगोद्विजभोजनाः ॥ ४ ॥
बहूत्सृष्टा लब्धपशुका ब्रह्मणापि सुदुष्कराः ।
ते त्वया रचिता यज्ञा पालिताश्च विशेषतः ॥ ५ ॥
अधुना वैष्णवं कर्म कुरु प्रियसुखावहम् ।
येनानुष्ठीयमानेन परो धर्मो विवर्द्धते ॥ ६ ॥
यस्य क्रियाखिला श्रौती कलां नार्हति षोडशीम् ।
कुरु गोविप्रवर्याणां वैष्णवानां विशेषतः ॥ ७ ॥
पूजां सुमहतीं राजन् वासोलङ्कारभोजनैः ।
इयं च सरयू तीरे दीप्यतां दिव्यदीपकैः ॥ ८ ॥
रत्नाद्रिश्च पुरस्यास्य पूजनीयोऽखिलेष्टदः ।
यत्र गावश्च गोपाश्च सततं सुखमासते ॥ ९ ॥
हरित्तृणमयः शैलो गुल्मवीरुल्लताकुलः ।
अर्चनीयोऽयमतुलैर्वासोभिर्भोजनैस्तथा ॥१०॥
वलिभिर्दीपदानैश्च संविधाभिश्च भूरिशः ।
अर्चनीया द्विजा गावो गोपा गोप्यश्च वैष्णवाः ॥
दीना आढ्या नरा नार्यो देवता सकला इमाः ॥११॥
इत्युक्तो दशरथभूपतिः सुतेन,
सन्तुष्टोऽधिकतरधर्मविष्णुगीत्या ।
ओमुक्त्वा सुरपतियागसंविधास्ता
विष्ण्वर्थं व्ययमुपचक्रमे विधातुम् ॥१२॥
बह्वीभिः संविधाभिः स ब्राह्मणान् समपूजयत् ।
सुरभीर्वैष्णवांश्चैव गोपान् गोपीश्च गोकुले ॥
महान्तमुत्सवं चक्रे वलिपूजादिनाद्भुतम् ॥१३॥
सरयूदीपराजीभिः परिवार्य व्यरोचयत् ।
द्रुमान्नीराजयामास प्रमोदवनवासिनः ॥१४॥
अलङ्कारैश्च वासोभिर्मण्डितान् फलपादपान् ।
पटहैर्दुन्दुभीभिश्च भेरीभिश्च मृदङ्गकैः ॥१५॥

अनादयन् दिशः सर्वास्तस्मिन् विष्णुमहोत्सवे ।
स्वयं चाभूषितो राजा परमोत्सवनिर्वृतः ॥१६॥
माङ्गल्या चैव कौशल्या गोपगोपीजनैर्वृता ।
आत्मानं भूषयाञ्चक्रे सुखिता वैष्णवे मखे ॥१७॥
रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतश्चैव शत्रुहा ।
मातृभिर्भूषिता भूरि द्विजेभ्योऽदुर्महाधनम् ॥१८॥
एवं समापयाञ्चक्रे महता संभ्रमेण सः ।
राजा दशरथो यागं वैष्णवं धर्ममुत्तमम् ॥१९॥
श्रुत्वा यागस्य विहतिं शक्रो रोषसमावृतः ।
गोपोपजनपीडार्थं मूढभावान्मनो दधौ ॥२०॥
परब्रह्मस्वरूपं तं रामं कारणमानुषम् ।
अवतीर्णमविज्ञाय पीडयामास गोकुलम् ॥२१॥
साकेतं च वनं चैव गोकुलं च निकेतनम् ।
समाच्छाद्य[1] स्थिता मेघाः शक्रेण प्रेषितास्तदा ॥२२॥
कालजीमूतसङ्घाताः साडम्बरमुपस्थितम् ।
आकालिकं च विज्ञायाज्ञासीद्राजा हरे रुषम् ॥२३॥
ततस्तेऽकालजलदा मुशलासारवर्षिणः ।
रुरुधुर्गोकुलं सर्वं चण्डवातप्रचोदिताः ॥२४॥
प्रचण्डवातप्रकरानुपातिता[2]
महाघनाऽऽसारभराः सविद्युताः ।
वर्षोपलैः पीडितसर्वगोधना
बभूवुरुद्वेगकरा महीपतेः ॥२५॥
एवं यावत्त्रिदिनमपतद् गोकुले भूरिवृष्टि-
र्विद्युत्पातैः खरजवमरुत्सन्ततं वर्षपातैः ॥
अत्यार्तं तद्व्रजपुरमभूत् कं व्रजामः शरण्यम् ।
क्रुद्धे चेन्द्रे दशरथनृपोऽप्यास पीडासचिन्तः ॥२६॥

---

१. समासाद्य–रीवां । २. °राः सशर्करा–रीवां ।

एवं प्रजानां संक्लेशं ज्ञात्वा रामोऽखिलप्रभुः ।
मेघावरोधकं नाम निजछत्रमथाग्रहीत् ॥२७॥

छत्रं ततं विंशतियोजनात्मकं
सुरक्षकं तोयमुचां समूहतः ।
दृढं न चाभज्यत विद्युदादि-
महाश्मसंपातजवैः सुरेरितैः[1] ॥२८॥

एवं यावत्पक्षसमाप्तिरासीत्
तावत्तस्थौ छत्रमासाद्य लोकान् ।
पक्षस्यान्ते व्यर्थरोषोऽधमोऽभू-
दिन्द्रो ज्ञात्वा देवदेवस्य शक्तिम् ॥२९॥

ततः स वारिदव्यूहं वारयामास वासवः ।
रामचन्द्रानुभावेन संहृत्याखिलवैभवैः ॥३०॥

अथाभ्ययाद्राघवेन्द्रं शरण्यं
स्वर्गस्येशो भूरिजातापराधः ।
सस्वर्धेनुः सामरः सेभराजो
रामक्रोधे स्वाशुभं शङ्कमानः ॥३१॥

स प्रमोदवने गत्वा रामं कमललोचनम् ।
अग्रहीत् पादयोस्तूष्णीं शरणार्थी शरण्ययोः ॥३२॥

रामो ज्ञात्वा मघवासौ विशक्ति-
र्मामभ्येत्य स्वाच्च[2]माधावयिष्यन् ।
उत्तिष्ठेन्द्रेत्येवमाज्ञां चकार
प्रोत्थायासौ भूरि तुष्टाव रामम् ॥३३॥

देव क्षमस्व मम पातकमेतदेव
ज्ञातो भवान् न परमो यदिहावतीर्णः ।
रामः स्वयं स भगवान् अखिलांशमूल-
भूतः पुराणपुरुषः पुरुषोत्तमस्त्वम् ॥३४॥

---

१. सुरोदितैः–मथु० । २. "स्वाच्चं स्वापराधं" टि०—मथु० ।

तस्मै नमोऽस्तु भवते पुरुषोत्तमाय
विद्यापि यं स्पृशति नैव महामुनीनाम् ।
स त्वं क्षमस्व भुवनेश ममापराध-
मज्ञस्य तावकमहिम्नि महाल्पबुद्धेः ॥३५॥
भक्तिं निजां वितर नाथ यथाविशुद्ध-
स्त्वत्पादमूलमधुना शरणं व्रजामि ॥३६॥
नमस्ते ब्रह्मरूपाय पुरुषाय महात्मने
त्वामाश्रितानामशुचस्त्वया संरक्षितात्मनाम् ॥३७॥
जानाति यस्ते महिमानमीश
गुरुप्रसादेन विशुद्धचित्तः ।
तस्मै त्वमादर्शयसि स्वरूपं
सच्चिन्मुखं स्वानुभवैकगम्यम् ॥३८॥
इत्थं संस्तूय[1] देवेन्द्रे सुरभिर्जातसंभ्रमा ।
अस्तौषीज्जातमहिमा राममीशं परात्परम् ॥३९॥

सुरभिरुवाच

वत तव महिमानं गोचरीकर्तुमीशा
न खलु विधिशिवाद्याः कोऽयमिन्द्रो वराकः ।
कृतमिममपराधं मार्ष्टुमभ्यागताहं
तव चरणसरोजे राम निर्मञ्छनं[2] स्याम् ॥४०॥
तव पद[3]मनवद्यं भाति गोलोकतोऽर्द्धं
सुविमलमतिमृत्यु ब्रह्मरूपं पुराणम् ।
जनकनृपतिपुत्र्या संततं सेव्यमानः
शुभगुणनिलयस्त्वं भ्राजसे यत्र नित्यम् ॥४१॥
दशरथनृपसूनो श्रीपते श्यामवर्ण
प्रणयरसपयोधे राम हे राघवेन्द्र ।

---

१. "संस्तूय तूष्णीं स्थिते सति" टि०—मथु० । २. निर्मथनं—रीवां ।
३. "प्रमोदवनरूपं" टि०—मथु० ।

सपदि चरणयोस्ते पातितात्मानमेनां
कृपय कृपय शश्वन्मां निजैकान्तदासीम् ॥४२॥
श्रवणयुगनिपेयं तावकं राम नाम
क्षितितलमवतीर्यानन्तचारित्रजुष्टम् ।
सततमनुगृहाण स्वाङ्घ्रिसेवाभिलाषं
निजपदमतिमायं देहि मे राजसूनो ॥४३॥
नमस्ते ब्रह्मरूपाय नित्यानन्दमयाय च ।
स्वानामभयदानार्थमवतीर्णाय राघव[1] ॥४४॥
इति स्तुत्वा परं देवं स्नेहस्नुतपयोधरा ।
तूष्णीं बभूव सा धेनुस्तवकं कर्तुमक्षमा ॥४५॥
इन्द्रस्तस्यास्तनोद्भूतैः पीयूषैः शीतलामलैः ।
स्नापयित्वा प्रभुं रामं प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ॥४६॥
निरुद्धवाष्पनयनः प्रणयोद्रेककातरः ।
कृतभक्तिरनुज्ञातः सधेनुः स्वपदं ययौ ॥४७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे इन्द्रमान-
भञ्जनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततस्ते प्रौढवयसः कुमारा मधुरत्विषः ।
धेनुपालनसोत्कण्ठा आसन् रामपुरोगमाः ॥ १ ॥
रामः परमधर्मात्मा गवेन्द्रसदने वसन् ।
धेनूः संपालयामास जनयन् गोकुले मुदम् ॥ २ ॥
गावस्तु ताः पाल्यमाना रामेण नयनोत्सवाः ।
बभूवुः प्रीतमनसस्तदेककृततुष्टयः ॥ ३ ॥

---

१. राघवे–अयो०, रीवां ।

तासां चित्तं समभवद्रामैकाश्रयसंश्रयम् ।
चारणे दोहने ह्वाने बोधने सान्त्वने तथा ॥ ४ ॥
रामहस्ताम्बुजस्पर्शमुधासन्तोषनिर्वृताः ।
नान्यं प्रतीयुस्ता गावो गोपराजस्य गोकुले ॥ ५ ॥
रामः पालयमानस्ता नवत्यर्बुद[1]कोटिगाः ।
शुशुभे राज्य (ज ?) वेषेण त्रैलोक्यस्यापि मोहनः ॥ ६ ॥
अथ प्रातः समुत्थाय मातृभिः कृतमण्डनः ।
आश्रितः सानुजो रामश्चचाल व्रजतो वनम् ॥ ७ ॥
गावः पुरस्कृत्य स जातदोहनाः
शृङ्गारवेशी मधुराकृतिं दधत् ।
गोपैस्तथा भ्रातृभिरात्तवेणुको
ययौ वनस्याभिमुखं वनप्रियः ॥ ८ ॥
स दिव्ये सरयूतीरे प्रसार्य निजगोधनम् ।
हरित्तृणं चारयाणः शुशुभे राज्य (ज ?) वेषभृत् ॥ ९ ॥
स कुर्वन् विविधा लीला गोपालैः समनुव्रतैः ।
वनाद्वनान्तरे गच्छन् मुमुदे केलिपण्डितः ॥१०॥
जलक्रीडां क्वचित्कुर्वन् स्थलक्रीडां तथा क्वचित् ।
क्वचिद्धसन् क्वचिद् गायन् क्वचिद् वेणुरवं दधत्[2] ॥११॥
क्वचिदन्योन्यकं कुर्वन् वयस्यैर्मल्लकर्म च ।
क्वचिद् द्रुमच्छायतले शयानः पुरुषोत्तमः ॥१२॥
वीज्यमानः सेव्यमानः पादसंवाहनादिभिः ।
एवं स्वानां मुदं तन्वन् रेमे प्रमुदकानने ॥१३॥
कदाचित् सरयूतीरे दिव्यमाम्रवनं महत् ।
श्रुत्वा जगाम तत्रैव लीलास्वच्छन्दमानसः ॥१४॥
तत्र कश्चित् खरो[3] नाम राक्षसेन्द्रो हि गर्वितः ।
महाबलो महाकायश्चुक्षुभे श्रुतकाहलः ॥१५॥

---

१. "सवत्सार्बुद°–अयो०, यावत्सर्बुद–रीवां । २. घनात्–अयो०, दधात्–रीवां । ३. जरो°—अयो०, नरो°—मथु० ।

प्रगायतां[1] चालयतां च नृत्यतां
श्रीराघवेन्द्रानुगबालकानाम् ।
श्रुत्वा महान्तं रवमुत्पफाला-
सुरः खराकारधरः सुदारुणः ॥१६॥

स आगत्यामिलद्वेगाल्लक्ष्मणेनामितौजसा ।
मल्लकेलिं वितन्वानो युयुधे बलगर्वितः ॥१७॥

लक्ष्मणस्तमुपादाय पश्चात्पादद्वयेन च ।
शिलायां पातयामास विगतासुरभूत्ततः ॥१८॥
लक्ष्मणेन हते तस्मिन् रासभाकारराक्षसे ।
पुष्पवृष्टिं ददुर्देवा जयेति च गिरं मुदा ॥१९॥

ततो रामः प्रसन्नात्मा सर्वा धेनूः कृताशनाः ।
पानार्थं सरयूं निन्ये प्रमोदवनपार्श्वतः ॥२०॥
तस्याः सरय्वाः सुरसं महाकृष्णाहिदूषितम् ।
पीत्वा ता मूर्छिता भूत्वा गावः पेतुर्महीतले ॥२१॥

हस्तस्पर्शेन रामोऽपि कृत्वा तासां गवां सुखम् ।
महता घोरयुद्धेन कृष्णाहिं निरवारयत् ॥२२॥

ततः प्रभृति स व्यालमर्द्दनः कीर्तितो बुधैः ।
कदाचित् प्रातरशनमकृत्वैव रघूद्वहः ॥२३॥

गतो गोचारणार्थाय भ्रातृभिर्बान्धवैः सह ।
तत्र संक्षुधितो रामः प्रेषयामास बालकान् ॥२४॥
अन्नार्थं सरयूतीरे यजमानद्विजाश्रमे ।
यजन्ते यत्र मुनयो ज्योतिष्टोमादिभिर्मखैः ॥२५॥

ब्राह्मणाः कर्मनिपुणाः प्रमोदवनवासिनः ।
गत्वा तेषां यज्ञवाटं बालकाः रामचोदिताः ॥२६॥
अन्नमभ्यर्थयाञ्चक्रुः स्वयं च क्षुधिता भृशम् ।
नोत्तरं ते ददुस्तेभ्यो यज्ञकाण्डक्रियाकुलाः ॥२७॥

---

१. प्रलापतां—अयो०, रीवां ।

न वा ते नेति चैवोचुर्ब्राह्मणा जातमन्यवः ।
ततो निराशा भूत्वा ते रामस्य सविधे गताः ॥२८॥
न नो ददति विप्रास्ते याचिता अपि भोजनम् ।
रामः स्मित्वाऽभवत्तूष्णीं तावत्तेषां द्विजन्मनाम् ॥२९॥
पत्न्यो बह्वन्नमादाय रामसंदर्शनोत्सुकाः ।
आययुः परमाह्लादाद् वार्यमाणा अपि प्रियैः ॥३०॥
तासां रामो दृष्टिसुखं महद्विश्लेषतापहम् ।
कालेन चात्मसायुज्यं सम्बन्धात् प्रेयसामपि ॥३१॥
कदाचित् कानने रामो ज्वलन्तं दावपावकम् ।
ययौ संरक्षणार्थाय स्वानां व्रजजनौकसाम् ॥३२॥
कदाचिद् गोपतिं रामो माङ्गल्यायाः पतिं विभुः ।
नीतं यमेन संस्नेहादानयत् सकलेश्वरः ॥३३॥
यमस्तं पूजयामास तुष्टाव विविधैस्तवैः ।
गृहीत्वा गोकुलेन्द्रं तं रामो गोकुलमाविशत् ॥३४॥
एवं स लोकपालानामैश्वर्याभिमतिं हरन् ।
विजह्रे भूरिविभवः प्रमोदविपिनान्तरे ॥३५॥
तत्प्रमोदवनं रेजे सर्वर्तुसुखसंयुतम् ।
रामप्रभावतो नित्यं साक्षाल्लक्ष्मीनिकेतनम् ॥३६॥
तत्रत्या गोपनार्यस्ता रामप्रेमपरायणाः ।
आसन्निरुद्धहृदया वश्यमन्त्रावृता इव ॥३७॥
रामस्य सौन्दर्यमनङ्गकोटिभि-
र्दुरापमाभीरवधूमनःसुखम् ।
विलोक्य रामास्त्रिषु लोकेषु मुग्धा
बभूवुरुच्चैर्विरहाकुलान्तराः ॥३८॥
आभीरवनिताः सर्वा रामदर्शनविह्वलाः ।
तमेव चैवं गायन्त्यो बभूवुः कामपीडिताः ॥३९॥
काश्चित्तु विलपन्त्योऽन्या धावन्त्यः काममोहिताः ।
पश्यन्त्यो विहसन्त्योऽन्या बभूवुर्मत्तमत्तवत् ॥४०॥

तासां विरहदुःखं तन्निवर्तयितुमुत्सुकः ।
रामसंप्राप्तिसिद्ध्यर्थं दुर्वासामन्त्रमादिशत् ॥४१॥
मन्मथादिं राममन्त्रमात्रेयात् प्राप्य गोपिकाः ।
साधयामासुरत्युग्रव्रतबन्धेन पीडिताः ॥४२॥
शीतवातातपक्लेशं सहमाना व्रजाङ्गनाः ।
मन्त्रमाराधयाञ्चक्रुः प्रियसंप्राप्तिहेतवे ॥४३॥
व्रतदुःखं विलोक्यासां फलरूपो रघूद्वहः ।
स्नातानां सरयूतीरे वरदानार्थमाययौ ॥४४॥
ता मन्त्रसाधनरतास्तपस्नानादिकर्शिताः ।
उवाच रघुशार्दूलः स्मरवाणैर्विमोहयन् ॥४५॥

श्रीराम उवाच

किमर्थं दुश्चरं घोरं तपः कुरुथ कन्यकाः ।
नोचितं कोमलाङ्गीनां भवतीनां सुमध्यमाः ॥४६॥
एषा वृत्तिर्मुनीनां हि कार्मिकाणां द्विजन्मनाम् ।
भवन्त्यः कमलातुल्याः किमिच्छथ मृगेक्षणाः ॥४७॥
यत् त्रैलोक्ये स्थितं वस्तु तदहं दातुमागतः ।
भवतीनां ततः कष्टं दृष्ट्वा प्रक्षुभितान्तरः ॥४८॥

गोपकन्या ऊचुः

त्वं नः परं प्रार्थनीयः कोटिकन्दर्पसुन्दरः ।
स्मितमाधुर्यमात्रेण मोहयन् हृदयानि नः ॥४९॥
त्वत्तोधिकं फलं राम त्रैलोक्येऽपि न दृश्यते ।
त्वमेव सर्वकल्याणमूलभूतो रघूद्वहः ॥५०॥
दासीनां किङ्करीणां नः पूरयस्व मनोरथम् ।
त्वमेव वरदश्चैव वरश्चैव प्रियोत्तम ॥५१॥

रामोवाच

भवतीनां न सुखाय वरोऽयं प्रतिभाति मे ।
नाहमन्याङ्गनासक्तः प्रतिज्ञा विदिता मम ॥५२॥

*स्वात्मानन्दैकनिरतः सर्वस्याहं सुदुर्लभः ।
मदङ्गसङ्गिनी या श्रीः सा मां जानाति नित्यशः ॥५३॥
तस्याः संराधनं कृत्वा मामवाप्स्यथ कालतः ।
इत्युक्त्वा जानकीमन्त्रं तासामाचष्ट राघवः ॥५४॥
दुर्वाससं सुतं लब्ध्वाऽऽराधयाञ्चक्रुरङ्गनाः ।
त्वरितं सा ततः सीता प्रसादमकरोन्निजम् ॥५५॥
निजस्येष्टं वरं रामं ताभ्योऽदाद् व्रततोषिता ।
एवमाराध्य सीताया वरं लब्ध्वा व्रजाङ्गनाः ॥५६॥
सीतावेशधराः सर्वा राममासाद्य निर्वृताः ।
ताभिः सह ततो रामश्चक्रे केलीं मनोहराम् ॥५७॥
निजप्रियाया[1] वशगः सर्वासां प्रीतिमावहत् ।
एकोऽपि बहुधा कृत्वा रूपाणि रसपोषकः ॥५८॥
प्रमोदकानने रेमे कामीव प्रणयाकुलः[2] ॥५९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे गोपी-
वरदानं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

परार्द्धस्मरलावण्यं बिभ्रत् सुन्दरविग्रहः ।
कामिनीनां कामरसं पोषयन् राघवो बभौ ॥ १ ॥
सीतयार्द्धाङ्गसंगिन्या सह केलिरसं दधत् ।
ज्योत्स्नया चन्द्रवद्रामो रेजे नक्षत्रमण्डले ॥ २ ॥

---

* इतः पूर्वमस्माभिर्बड़ोदास्थं पुस्तकं नोपलब्धमासीदत एतावत्पर्यन्तं तत्रस्थं पाठान्तरादि परिशिष्टे दास्यते, अतः परं तु दीयते। —सम्पादकः।

१. प्रियासंवशगः—रीवाँ। २. प्रणयात्कलाः—अयो०।

मुग्धानां गोकुलस्त्रीणां जानक्याविष्टचेतसाम् ।
समूहं रसयन् रामो बभाराकृतिसौष्ठवम् ॥ ३ ॥
यन्नेति नेतीति वदन्ति वेदाः
ब्रह्मादयो यन्न लेभुस्तपोभिः ।
तत्त्वं परं तच्छ्रुतिमूर्ध्वमृग्यं
व्रजाङ्गनाभिः करयोर्गृहीतम् ॥ ४ ॥
गुञ्जाहारं दधदुरसिलसच्छीर्षमायूरचन्द्रो
वेणुं बिम्बोष्ठदलकलितं बिभ्रदापूर्णनादम् ।
स्निग्धा च श्री[1]र्नट इव लसद्वेश[2]सौन्दर्यसारो
बिभद्रामः प्रमुदविपिनं वल्लवीर्मोदयानः ॥ ५ ॥
द्विपरार्द्धावसानेऽपि नित्यं क्रीडति राघवः ।
नान्तोऽस्य नित्यलीलानां स्वानन्दरसरूपिणः ॥ ६ ॥
राघवो मोदयन् गोपीस्ता एव सपरिच्छदाः ।
एवं योगी[3] वै रमते रामो रमयतां वरः ॥ ७ ॥
निर्विकारो ब्रह्मणोऽपि प्रतिष्ठा परमास्पदम् ।
नास्य कामेन कोपेन लोभेन च महात्मनः ॥ ८ ॥
मनोविकारः समभूद्यथा संसिद्धियोगिनः ।
इत्येवं रामदेवस्य बाललीलां शृणोति यः ॥ ९ ॥
स याति रामसायुज्यं परमानन्दनिर्वृतिः (तिम् ?) ।
अथाहमभिधास्यामि रामरासं मनोहरम् ॥१०॥
अदृश्यं यत् सुरेन्द्राद्यैश्चकार रघुपुङ्गवः ।
कोटिकन्दर्पलावण्यविजयी रघुपुङ्गवः ॥११॥
रामकण्टकरूपांश्च महादैत्यानजीहनत् ।
तेषां वधेषु संविघ्नं सहसा विनिवारयन् ।
महावीरो रामचन्द्र[4]श्चकारातीव विक्रमम् ॥१२॥

---

१. चाशीर्—अयो०, वंशी—रीवाँ। २. वेग°—अयो०, रीवाँ, मथु०।
३. योगी "नित्यसंबन्धी" टि०—बड़ो०। ४. रामभद्रश्—बड़ो०।

रमणमनुदिनं यो रामचन्द्रस्य पूर्णं
प्रणतमतिरधीते मानवो रामभक्तः ।
स भवति शिवतुल्यो रामभक्त्या प्रपूर्णः
परमसुखनिमग्नश्चिन्मयानन्दरूपः ॥१३॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे [केलिवर्णनं नाम]
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

भुशुण्ड उवाच[1]

श्रुत्वेदं रामचन्द्रस्य कौमारचरितं मम ।
मनः शीतलतामेति यद्वत् पीयूषधारया ॥ १ ॥
दत्त्वा वरं गोपिकानां नित्यमात्मप्रदं विधे ।
यच्चकार रघुश्रेष्ठस्तन्नः शंसितुमर्हसि ॥ २ ॥
चीर्णव्रतानां विप्राणां दण्डकारण्यवासिनाम् ।
यथा वरं ददौ रामस्तथा मे वद विस्तरात् ॥ ३ ॥
द्विपरार्धान्तेऽपि नित्यं सहजानन्दलोकगः[2] ।
रासं चकार रामाभिः परमैश्वर्यभावितः ॥ ४ ॥
तत्रापि दिव्यरासे तु यानि यानि शुभानि च ।
चक्रे रासचरित्राणि तानि मे कथय प्रभो ॥ ५ ॥
एकपत्नीव्रते स्थित्वा सत्यं लोपितवान्न च ।
बहुकान्तारतिं दृष्ट्वा तथा न द्वेष्टि जानकी ॥ ६ ॥
तदेतत् कथयास्माकं रामचारित्रमद्भुतम् ।
शृण्वतो मे महान् हर्षो रोमभेदश्च जायते ॥ ७ ॥

१. "वाल्मीक्यादिनिरूपिता (°पणा–बड़ो०) दृष्यत्यद्भुतं क्वचिद्विरुद्धं भूरिफलदं च श्रुत्वा चकितचमत्कृतमनाः श्रीभुशुण्डो वैष्णवाग्रणीः पुनर्भूयश्चरितश्रवणाय प्रश्नयतीति चित्सुखाचार्याः" टि०—मथु०, बड़ो० ।

२. लोकगः = प्रमोदवनस्थः टि०—बड़ो०,

गद्गदश्च तथा कण्ठे चित्तस्यैव च निर्वृतिः ।
अहो धन्या अमी देवा मदङ्गविनिवासिनः[1] ॥ ८ ॥
ये पिबन्ति शुभं नित्यं रामचन्द्रकथामृतम् ।
धन्योऽहं कृतकृत्यश्च तिर्यग्योनिगतोऽपि सन् ॥ ९ ॥
यत्पिबाम्यमृतं ब्रह्मन् भवद्वदनविच्युतम् ।

ब्रह्मोवाच

अहो परिणता बुद्धिस्तव सम्यग्विभाति मे ॥१०॥
पुनः पुनः प्रश्नयसि यद्राराघवपतेः कथाम् ।
वक्ष्याम्यहं तु वक्तव्यमवक्तव्यं कदाचन ॥११॥
गोपनीयं शुकेनापि यद् योगीन्द्रेण धीमता ।
कथामृतैककुण्डस्य चत्वारो रक्षका वयम् ॥१२॥
अहं शुकश्च शेषश्च तथा देवी तु जानकी ।
न ब्रूमः सकलं तत्तु गोपनीयं प्रयत्नतः ॥१३॥
वाचकान् घातयिष्यामि मातृजारप्रसङ्गवत् ।
अधिकारिण[2]मालोक्य कथंचित् कथयामहे ॥१४॥
पञ्चाधिकारिणोऽप्यत्र षष्ठो नैवोपलभ्यते ।
त्वमण्डजौत्तरेयश्च धरणी च पतिव्रता ॥१५॥
सौमित्रेयश्चोर्ध्वरेता तथा मारुतनन्दनः ।
तुभ्यं मया समाख्याता कल्पे-कल्पे युगे-युगे ॥१६॥
राममायाप्रभावेण पुनर्विस्मृतवानसि ।
शुकेन चौत्तरेयाय रामचारित्रमीर्यते ॥१७॥

---

१. °वासिताः—बड़ो० ।

"तत्तदिन्द्रियाधिष्ठात्र्यो देवताः, यद्वा अतिरहस्यं श्रीरामचरितं देवान्न श्रावयति भगवान् विरञ्चिरिति केचिद्भक्तिमन्तो देवाः श्री भुशुण्डस्य तनावाविश्य कथामृतपानं कुर्वन्तीति भावः, इति चित्सुखाचार्याः" टि०—मथु०, बड़ो० ।

२. "तेनास्य रामचरितस्य निर्विषयत्वं नास्तीति चित्सुखाचार्याः" टि०—मथु०, बड़ो० ।

इहैव[1] शुद्धसत्त्वाय गोलोके[2] प्रेमभागिने ।
पुनश्च भगवान् शेषो व्याचष्टे धरणीं प्रति ॥१८॥
लक्ष्मणाय तथा देवी जानकी प्रत्युवाच ह ।
तच्छ्रुत्वा सकलं प्रोक्तं लक्ष्मणेन हनूमते ॥१९॥
पञ्चेमाः संहितास्तत्र संक्षेपेण शृणु द्विज ।
भौशुण्डी परमेयं षट्त्रिंशत्साहस्रमीरिता ॥२०॥
चत्वारिंशत्सहस्रं तु लक्षमात्रमुदीरितम् ।
हनुमत्संहितालक्षं वायुलोके विराजते ॥२१॥
समुच्चयस्तु पञ्चानां मयोक्ता ब्रह्मसंहिता[3] ।
इत्येवं रामचरितं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥२२॥
प्रतिकल्पं प्रतियुगं अन्यदन्यद् विभाव्यताम् ।
नान्तस्तस्य चरित्राणां कल्पकोटिशतैरपि ॥२३॥
किञ्चित् समाधावालोक्य शृणु पुत्र निगद्यते ।
यत्पृष्टं तु त्वया गोपीरामयोः क्रीडनं परम् ॥२४॥
तत्सुगोप्यं कथं वाच्यं वक्तास्यान्नारकी ध्रुवम् ।
अथापि शुद्धसत्त्वाय भक्ताय विमलात्मने ॥२५॥
वाच्यमाचार्यवर्यैस्तु तच्छ्रुत्वा[4] तत्परो भवेत् ।
सत्यं सत्यं मया नित्यं चिन्त्यते मूलमन्त्रवत् ॥२६॥
तद्ध्यानामृतयोगेन तिष्ठाम्याकल्पमण्डज ।
तपस्तप्तं मया पूर्वं तीव्रात्तीव्रतरं द्विज ॥२७॥
तेन प्रसन्नः सीतेशः सदा मां दर्शनं ददौ ।
स्वलोकं दर्शयामास गोलोकात् परतस्तु यत् ॥२८॥

---

१. "इहेति श्रीभागवते कृष्णचरितं श्रुत्वा प्राप्ताधिकाराय ततो व्यापिवैकुण्ठसाक्षात्कारवते, तत्रैवोत्तरप्रत्युत्तरादिरूपेण प्रादुर्भूता भूलोकेऽप्यागता शुकद्वारेणैवेति, । इति चित्सुखा०" टि०—बड़ो०, मथु०, । २. "गोलोके शुकसंहिता । सपादलक्षमाख्यातं पाद्मे पातालमण्डले, तथा सीतापुराणं तु "शुकसंहितातावदेव पाद्मादिरन्यथाऽप्रसिद्धिरेव स्यादिति चित्सु०" इति टि०—मथु० । ३. "पञ्चलक्षपरिमिता ब्रह्मसंहिता, यत्र भुशुण्डीयादीनां संग्रहः" इति टि०—मथु०, बड़ो० ।
४. यच्छ्रुत्वा—मथु०, °यैः स्वयं छ्रुत्वा—बड़ो० ।

तत्र रासविलासादि दृष्टवानहमद्भुतम् ।
प्रमोदविपिने पूर्वं रामश्चक्रे सुक्रीडनम् ॥२९॥
तस्याप्यनुकृतिं कृष्णश्चक्रे वृन्दावने वने ।
श्रीरामो भनवान् पूर्णः कलाभिः पुरुषोत्तमः ॥३०॥
कोटिलक्ष्मीसहस्राणामंशिनी जनकात्मजा ।
एतयोरेव दिव्यांशौ राधाकृष्णात्मकौ व्रजे ॥३१॥
काले-काले समुद्भूय कुरुतः शाश्वतीं रतिम् ।
रामांशो भगवान् कृष्णः सीतांशो राधिकेश्वरी ॥३२॥
अन्याश्च सकला गोप्यस्तदंशांशा उदीरिताः ।
द्वारिकायां रुक्मिणीयं महालक्ष्मी महेश्वरी ॥३३॥
अन्याश्च सत्यभामाद्यास्तदंशाः सहजात्मिकाः ।
क्वचिदावेशरूपेण क्वचिदंशस्वरूपतः ॥३४॥
क्वचित् साक्षात् स्वयं सीता रमते प्रभुणा सह ।
सैव रासेश्वरी तेन रमते रासमण्डले ॥३५॥
एकधा शतधा चैव कृत्वा रूपाणि सन्ततम् ।
तच्चरित्रं महागोप्यं मया ज्ञातुं न शक्यते ॥३६॥
कुरु कल्पशतं तीव्रां तपश्चर्य्यां स्वशोधिकाम् ।
तदा ते तादृशी भक्तिर्भविष्यत्यनपायिनी ॥३७॥
तदा श्रीरामचारित्रं[1] श्रोतुमर्हस्यशेषतः ।
नोचेन्मामेव शप्स्यन्ति योगीन्द्रास्ते शुकादयः ॥३८॥
अनधिकारिणे मा ब्रूयादित्युक्तं प्रभुणापि मे ।
इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा भुशुण्डो नाम वै द्विजः ॥३९॥
महतीमार्त्तिमन्वार्च्छत् प्राणान्तेऽपि गरीयसीम् ।
आकाशवाक् समुद्भूता तदा संशृण्वतोस्तयोः ॥४०॥
ब्रूहि ब्रह्मन्नशेषेण मम चारित्रमद्भुतम् ।
रासलीलाविनोदाख्यं भक्तायाण्डजरूपिणे ॥४१॥

---

१ °चरितं— अयो० ।

अयं हि सुमहान् योगी ममैकान्तरतिप्रियः ।
शान्तो दान्तस्तितिक्षश्च कोटिकल्पकृतश्रमः ॥४२॥
मद्भक्तो मत्परः शान्तो मदर्थत्यक्तसंस्मृतिः ।
एकान्तचारी विनयी भक्तानां प्रीतिवर्द्धनः ॥४३॥
ज्ञापयास्मै विशेषेण रामचारित्रमद्भुतम् ।
पीत्वा पीयूषवत् सर्वं नान्यस्मै कथयिष्यति ॥४४॥
इति दैवीं गिरं श्रुत्वा ब्रह्मा संजातसंभ्रमः ।
संपूज्य द्विजमाचष्टे रामलीलां मनोहराम् ॥४५॥
एतामैकान्तिकीं लीलां यो ब्रूयादनधिकारिणे ।
स पच्येत महाघोरे नरके दैवचोदितः ॥४६॥
(यः) कृष्णैकान्ततरो भक्तो रामभक्तिविवर्जितः ।
तस्मै न कथयेदेतां लीलां विश्वस्य पावनीम् ॥४७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
रामरासो नाम[1] पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

•

षड्विंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

शृणु द्विज प्रमाणज्ञ रामलीलां मनोहराम् ।
दिव्यराससमायुक्तां सीताकौतुकवर्द्धिनीम् ॥ १ ॥
सर्वेऽप्यग्निकुमारास्ते षष्टिसाहस्रसंख्यकाः ।
रामलीलारसाभिज्ञाः प्रापुर्निजतपःफलम्[2] ॥ २ ॥
कल्पं सारस्वतं प्राप्य दण्डकारण्यवासिनः ।
श्रुतयश्चैव संजाता गोपीरूपेण गोकुले ॥ ३ ॥

---

१. रामरासे—अयो०, मथु०, रीवाँ, बड़ो० । २. अयं श्लोको नास्ति—रीवाँ ।

रामरूपमनुप्रापुः सरय्वास्तटयोर्द्वयोः ।
प्रमोदवनवासिन्यो जानक्याश्च[1] महाप्रियाः ॥ ४ ॥
रामतत्त्वमनुप्राप्य मुमुहुः कामभाविताः ।
अन्याश्च दिव्यललना दिव्यरूपसमन्विताः ॥ ५ ॥
कृत्वा तपो, वरं लब्ध्वा दिव्यमापुर्मनोरथम् ।
ततो निजवरं सत्यं कर्त्तुं रामो महामनाः[2] ॥ ६ ॥
कामतत्त्वेन ताः सर्वा रमयामास गोपिकाः ।
अथ प्रादुरभूत् कामः सहजानन्दलक्षणः ॥ ७ ॥
जानकीं वेपयामास सहजानन्दरूपिणीम् ।
सा वेपिता कामशरैः प्रादुर्भूय रघूद्वहात् ॥ ८ ॥
दिव्यवेशधरा भूत्वा क्षोभयामास राघवम् ।
संक्षुब्धः कामबाणेन तामालिङ्गितुमीयिवान् ॥ ९ ॥
तमायान्तं समालोक्य स्वयमन्तर्बभूव सा ।
अथ खिन्नो राजसूनुर्विरहेण मृगीदृशः ॥१०॥
इतस्ततो भ्राम्यमाणो दिशः शून्या विलोकयन् ।
पाण्डुक्षामवपुः साश्रुस्तब्धः पुलकपूरितः ॥११॥
दिने दिने व्यथापूर्णः प्रलीनसकलेन्द्रियः ।
पद्मपत्रविशालाक्षीं तामेव निजवल्लभाम् ॥१२॥
ध्यायमानोऽन्तरा दृष्ट्या बहिः शून्याखिलक्रियः ।
अशुष्यद्राजतनयो दीर्यमाणः स्ववक्षसि[3] ॥१३॥
क्वचिच्चन्द्रमुपालेभे पूर्णबिम्बं सुधामयम् ।
क्वचित् पद्मवनं दृष्ट्वा दुःखी नेत्रे न्यमीलयत् ॥१४॥
क्वचित् कैरविणीं वीक्ष्य बभूव च पराङ्मुखः[4] ।
क्वचिद् रम्भावनं दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा प्राद्रवदातुरः ॥१५॥
क्वचित् कुञ्जलतां दृष्ट्वा वक्तुं समुपचक्रमे ।
क्वचिद् वसन्तमालोक्य मेने दावानलं विभुः ॥१६॥

---

१. जनिकाश्च—अयो०, बड़ो० । २. महात्मना—मथु०, रीवाँ । ३. स्तु—मथु० ।
४. °मुखी—अयो०, मथु०, रीवाँ ।

क्वचिदेकान्तसदने तामुपालभत प्रियाम् ।
अये ! कठोरहृदये दृप्ते जनकनन्दिनि ॥१७॥
व्यथमानहृदं दृष्ट्वा नाद्यापि करुणा तव ।
सकृन्मे दर्शनं दत्त्वा महाविरहवर्धनम् ॥१८॥
अन्तर्हिता[1] त्वं किं ब्रूमः[2] प्रेमशून्यकठोरताम्[3] ।
क्वचिदाकाशमालिङ्ग्य प्रियाबुद्ध्या मुमोद सः ॥१९॥
क्वचिन्नवदलं दृष्ट्वा चक्रे चुम्बनगां धियम् ।
क्वचित् खिन्नमनाः श्रान्तो शय्यामालिङ्ग्य संश्रितः॥२०॥
क्वचिद्धसन् क्वचिद्धावन् क्वचित् क्रीडारसं दधत् ।
क्वचिदुन्मत्तवज्जल्पन् क्वचित् कुर्वन् मनोरथान् ॥२१॥
नैव लेभे रतिं क्वापि प्रियाध्यानपरायणः ।
सरयूघोष[4]वासिन्यो [5]दिव्याश्च ललनागणाः ॥२२॥
रामनायकमालोक्य बभूवुः कामपीडिताः ।
काश्चित्तद्गुणमाकर्ण्य[5] बभूवुः काममोहिताः ॥२३॥
काश्चित् साक्षादमुं दृष्ट्वा निपेतुर्भृशमूर्छिताः ।
काश्चिच्चित्रगतं दृष्ट्वा जाताः कामशरार्दिताः ॥२४॥
काश्चित्[6]स्वप्ने समालोक्य पीडामापुः सुदुःसहाम् ।
एवं रामगुणाकृष्टाः समस्ता वामलोचनाः ॥२५॥
विरहार्त्ताः श्रितैकान्ता दूतीभिः संन्यवेदयन् ।
तासां दूत्यो राममेत्य प्रोचुर्विरहजां व्यथाम् ॥२६॥

दूत्य ऊचुः[7]

अयि सुन्दर राघवोत्तम त्वमसि प्रेमभरैकभाजनम् ।
वनिताः स्मरबाणवेपिताः सदय[8]त्वं परिपालय प्रभो ॥२७॥
तव रूपविमोहिताः स्त्रियः कलिताः कामकरे कृताशयाः ।
कुलशीलविलज्जयातुराः पथि रुद्धाः सरितो यथाभवन् ॥२८॥

---

१. अन्तर्हित्वा—मथु०, रीवाँ। २. किमभूः—अयो०, मथु०, बड़ो०। ३. °कठोरकृत्—बड़ो०। ४. °देश°—मथु०, रीवाँ। ५—५. इयानंशो नास्ति—अयो०, रीवाँ। ६. क्वचित्—मथु०। ७. दूत्युवाच—अयो०, मथु०, बड़ो०। ८. सदयं—मथु० रीवाँ, बड़ो०।

अयि राजकुमार संप्रति व्यथितप्राणविमोचनोद्धुराः ।
न निभालयसे किमीदृशीः करुणावारिनिधिः स्वयं भवान् ॥२९॥
अथ ते कठिनं यदा मनो व्रजरामाननवीक्षणाक्षमम् ।
मरणं तदिमा मृगीदृशः कलयिष्यन्ति विगर्हितं भुवि ॥३०॥
अयि कामपरार्द्धसुन्दर त्रिजगन्मोहनमञ्जुलाकृते ।
मृत एष मृगीदृशीगणः प्रणयश्रीपरिपालक[2]स्तव ॥३१॥
अयि मन्मथमोहनाकृते किमियं ते प्रकृतिर्दुरत्यया ।
यदमूर्ललना निजाधरामृतपानेन न जीवयस्युत ॥३२॥
वनितावधपातकोद्भवं भयमास्ते भवतोऽथवा न वा ।
रघुवंशविभूषणो भवान् कथमत्युग्रमधर्ममाश्रितः ॥३३॥
चरणाम्बुजनिर्गलन्मधुद्रवधारासुखितान्तराश्रयाः ।
मुनयोऽपि भवद्गुणामृतं ननु गायन्ति रजस्तमोलयाः ॥३४॥
अयि राघववर्यधुर्य ते चरणाम्भोजपरागकाङ्क्षिणीः ।
अबला मदनेन घातयन् हृदि चिन्तां महतीमवाप्स्यसि ॥३५॥
शिशुनैव विमोहितान्तरा वनितास्ता व्रतबन्धकर्शिताः ।
भवता वरदाननिर्वृता वचनेनैव न वञ्चिताः किमु ॥३६॥
इदमीदृशबालभाषितं धरणौ संप्रति विश्वसेत कः ।
अथ विश्वसनीयभाषितो दयितो यद्यसि तत् प्रसीद भोः ॥३७॥
निजशैशवकर्मविस्मरन् वरदानं यदि विस्मृतोऽसि भोः ।
तदिमा युवराज संप्रति प्रणयेनैव सुनिर्वृताः कुरु ॥३८॥
यदिचेच्छरणागता अमूः परिपातुं क्षमते न ते मनः ।
भवतः सुचिरस्थिरं व्रतं गतमेव प्रतिभाति मेऽधुना ॥३९॥
शरणागतपालनव्रतं यदि ते सुस्थिरमस्ति राघव ।
तदिमा रघुराज[2] कन्यका विरहाम्भोनिधितः समुद्धर[3] ॥४०॥
प्रभुणा करुणावता त्वया न विलम्बः करणीय एव चेत् ।
परिपालय घोषसुन्दरीर्निजनाथाः स्मरबाणपीडिताः ॥४१॥

---

१. °परिपाकतः—मथु०, बड़ो०, । "प्रणयः स्नेहस्तस्य श्रीस्तस्याः परिपाकात् स्नेहाधिक्यात् दृढतरस्नेहात्" इति टि०—मथु०, बड़ो० । २. बहु राजकन्यका—बड़ो० । ३. °द्धरेः—बड़ो० ।

रघुनाथ भवान् भवार्णवे प्रकटोऽभूर्निजसौख्यहेतवे ।
स कथं निजनाथसुन्दरीनिवहं संव्यथयन् न लज्जते[1] ॥४२॥
इति शुश्रुम देवकार्यकृत् कृतवेशः पुरुषोत्तमो भवान् ।
तदिमाः सुरलोकसुन्दरीः विरहार्ताः परिपालय प्रभो ॥४३॥
परिपालय नाथ सेवकान् निजलावण्यसुधैकसंश्रयात् ।
इति ते विरुदावली यथा न विशीर्येत् करुणारसाम्बुधे ॥४४॥
स्मरसुन्दर कापि मूर्च्छिता प्रमदं कापि तनोति मन्त्रवित् ।
मुहुरेव च कापि धावति त्रपया कापि निरोधिताभवत् ॥४५॥
प्रलपत्यपि कापि भूरिशः करुणां कापि निभालते तनुम् ।
जडवत् प्रणयेन काप्यभूद् बहुशः खिद्यति राम काचन ॥४६॥
पुलकानि बिभर्ति काचन स्वरभङ्गं कुरुते च काचन ।
प्रणयेन च कापि कम्पते मलिनाङ्गी खलु राम काप्यभूत् ॥४७॥
अथ कापि करोति रोदनं पृथुमुक्ताफललोचनाश्रुभिः ।
प्रिय कापि विलीनवृत्तिका भुवनं शून्यमिवैव वीक्ष्यते ॥४८॥
इति नित्यमुपस्थितं महत् कदनं घोषपुरीमृगीदृशाम् ।
कृपया क्षपयातिकोमलप्रकृते राम धनुर्धराग्रणीः ॥४९॥
अयि राम धनुर्धराग्रणीः प्रसभं राजकुमार पालय[2] ।
नहि चेन्निहनिष्यते स्मरो निजनाथाः खलु घोषसुन्दरीः ॥५०॥
महतीं श्रियमाप्तवानसि स्मरसि त्वं किमु धेनुधोरणीः ।
अधुनापि तवैव गोपते हृदि वाञ्छन्ति गवेन्द्रतां प्रभो ॥५१॥
सततोत्सवभूरिभाग्यवानसि साकेतपुरीपतेः सुतः ।
न भवन्तमिह त्यजन्त्यमी स्वसखायः खलु गोपपुत्रकाः ॥५२॥
महती खलु राम वर्तते भवतः श्रीर्गुरुगोपवेश्मसु ।
न तथा हृदयं धिनोत्यसौ नृप संपत्तिरपारकुञ्जरा ॥५३॥
पितृतो[3] भवते प्रदर्शिता कमला कोटिगतौघसेविता ।
किमु विस्मरणे भविष्यति प्रणयावद्धगवेन्द्रवेश्मनः ॥५४॥

---

१. लज्जसे—रीवाँ । २. पालक—रीवाँ । ३. पितृणा—अयो०, बड़ो० ।

जननी तव गोपसुन्दरी रघुवर्य त्वयि पुत्रवत्सला ।
त्वमपि स्फुटराज्यसंपदं प्रणयेनैव विधूय संस्थितः ॥५५॥
इति राम विगर्हणं[1] तव प्रकटं प्रेमवशेन कथ्यते ।
नृपपुत्र न चेत् त्वमीश्वरः किमु लोके सुलभो[2]ऽसि मृग्यताम् ॥५६॥
नवनीतसमूहतस्करो व्रजरामापरिरम्भपेशलः ।
सुलभोऽप्यसि घोषभूषण स्वकलीलारसमात्रकौतुकी ॥५७॥
इति दूत्यपरायणाशयैर्व्रजदूतीनिवहैरुदीरितम् ।
वचनं सुनिशम्य राघवः प्रहसन् प्राह[3] मनोज्ञया गिरा ॥५८॥

श्रीराम उवाच

सात्यन्तं मे प्रिया सीता हृद्गता बहिरुद्गता ।
मोहयित्वा सहृदयं[4] हाहा कुत्र गता जवात् ॥५९॥
न तां विना क्षणं स्थास्याम्यहमीशोऽपि संपदाम् ।
सा मे विगर्हणं कुर्याद्यदि क्रीडेयमन्यतः ॥६०॥
तद्भ्रूविजृम्भवशगो बिभेमि व्रजदूतिकाः ।
तत्स्वीकृतिमहं कृत्वा श्रोष्याम्यन्याभिवाञ्छितम् ॥६१॥
जनकस्य गृहे जाता सा मे स्वप्नगताऽब्रवीत् ।
तां त्यक्त्वा कथमन्यासु कुर्वीय प्रणयोत्सवम् ॥६२॥
सा मे यदि प्रकुप्येत तदा किं मे भवेदिति ।
मुहुः संचिन्त्य नान्यासां प्रणयं पालितुं[5] क्षमः ॥६३॥
तद् ब्रूत मद्वचस्तत्र गत्वा यूयं सुदूतिकाः ।
आश्वासयत ताः कान्ता भूयो मद्विरहातुराः ॥६४॥
भवतीभ्यो वरं दत्तं स्मरामि व्रजयोषितः ।
तत्र कालं प्रतीक्षध्वं यावत् सीतासमागमः ॥६५॥
तथाहं विधिवत् कृत्वा भूयः परिणयोत्सवम् ।
तस्यै महापदं दत्त्वा महिषीत्वेन भावितम् ॥६६॥

---

१. "अवज्ञां" टि०—बड़ो० । २. "सुलभो नैवासि सर्वेश्वरत्वात्, इत्यर्थः" टि०—मथु०, बड़ो० । ३. प्राज्ञ°—रीवाँ। ४. सा हृदयं—अयो०, मथु०, रीवाँ। ५. पातितुं—मथु०, रीवाँ।

भवतीभिस्ततः संगं करिष्यामि व्रजाङ्गनाः ।
इत्येवं भाषमाणे तु तस्मिन् राघवपुङ्गवे ॥६७॥
आययुर्मुनयः सर्वे दूतीनां पुरतः स्थिताः ।
स्थूलाक्षः शर्कराक्षश्च कम्बुर्मेधातिथिः शुकः ॥६८॥
नारदः पर्वतश्चैव सुधर्मा चैकलो द्विजः ।
मित्रभवनोऽप्यथो धौम्यः[1] शतानन्दो विशारदः ॥६९॥
जमदग्निस्तथा रामो वशिष्ठो वामदेवकः ।
अन्ये चैव तपोवीराः प्रादुरासुर्मुनीश्वराः ॥७०॥
जाबालिः पिप्पलादश्च शाण्डिल्यो लोहितस्तथा ।
उद्दालको देवलश्च लोमशश्च महामुनिः ।
ते तत्र बोधयामासुर्धर्मज्ञं रघुपुङ्गवम् ॥७१॥

मुनय ऊचुः

शृणु राम महाबाहो नैव वक्तुमिहार्हसि ।
त्वदङ्गसङ्गिनी सीता नोद्वाहं समुपेक्षते[2] ॥७२॥
शैशवे शिशुरूपा सा तारुण्ये तरुणाकृतिः ।
तिरोभावे तिरोभूताविर्भावे प्रकटाकृतिः ॥७३॥
चन्द्रेण चन्द्रिकेवासौ त्वयैव सह वर्तते ।
गच्छ राम मनोज्ञं तत् प्रमोदवनमुत्तमम् ॥७४॥
तत्रस्था व्रजदेवीश्च रमयस्व चिरं प्रभो ।
ता एव प्रथमं तस्याः करिष्यन्ति विकैतवम्[3] ॥७५॥
दूत्यं तया भवत्सङ्गं कारयिष्यन्ति योषितः ।
तास्वाविष्टा ततः सीता रंस्यते भवता समम् ॥७६॥
स्वयं च रंस्यते साक्षात् सीता सहजसुन्दरी ।
नात्र त्वया क्वचित् कार्यो विकल्पो रघुनन्दन ॥७७॥
तासामेव हितार्थाय भक्तानां व्रजयोषिताम् ।
त्वत्तः प्रादुरभूदेषा भेदेन दर्शनं गता ॥७८॥

---

१. °भवनोऽथ धौम्यश्च—बड़ो० । २. "त्वां न उपेक्षते" टि०—बड़ो० ।
३. "कपटशून्यं" टि०—मथु०, बड़ो० ।

पुनश्चान्तर्हिता भूत्वा प्रमोदवनमागता ।
तत्र सा शोभते नित्यं सरयूतीरवासिनी ॥७९॥
प्रमोदवनमध्यस्था तद्देवीभिश्च पूजिता[1] ।
तासां मध्येऽनिशं भाति प्रमोदवनदेवता ॥८०॥
रक्ताशोकलताकुञ्जं[2] सीतासौ तत्र कानने ।
त्वं तात गच्छ तत्रैव पूरयस्व मनोरथान् ॥८१॥
नेत्रोत्सवं तथास्माकं देहि राघवपुङ्गव ।
त्रैलोक्ये च महामोदं वर्द्धयस्व महामते ॥८२॥
नातो विलम्बनं कार्यं वयं दूत्यमुपागताः ।
तत्रैव सीतया सार्द्धं शोभन्ते व्रजयोषितः ॥८३॥
श्रुतिरूपा नित्यसिद्धा अग्निपुत्राश्च योगिनः ।
अन्ये च दिव्यमुनयो वाञ्छन्ति भवदागमम् ॥८४॥
योषिद्रूपं विधायैते कामेन क्षुभिताशयाः ।
त्वामेव नित्यं वाञ्छन्ति तत्र गच्छाधुना प्रभो ॥८५॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा रामः प्रहसिताननः ।
महान्तमुत्सवं कृत्वा सर्वांस्तान् विससर्ज ह ॥८६॥
ओमित्युक्त्वा दूतिकाश्च विससर्ज नृपात्मजः ।
दूत्योऽपि तेन वाग्वन्धं कृत्वा प्रमुदिताशयाः ॥८७॥
आयाति भवतीनां वै नाथः संजातकौतुकः ।
इति ताभ्यो व्रजस्त्रीभ्यः पृथक् सत्यं न्यवेदयन्[3] ॥८८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे राम-
रासो[4]नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

---

१. पूरिता—अयो०, मथु० । २. °कुन्जे—बड़ो० । ३. निवेदयत्—मथु०, वाँ, बड़ो० । ४. रामरासे—मथु०, रीवाँ ।

सप्तविंशोऽध्यायः

अथागमच्छरत्कालः प्रमोदवनमध्यतः ।
उत्फुल्लपङ्कजवनः परागोद्धूलिताम्बरः ॥ १ ॥
सप्तच्छदोग्र[1]सौगन्ध्यसमूहोन्मत्तदिग्गजः ।
मृदुचन्द्रकरस्पर्शसहजोत्फुल्लकैरवः ॥ २ ॥
उत्फुल्लमल्लिकावल्लीकुसुमस्तवकान्वितः ।
खेलत्खञ्जनदाम्पत्यसंभ्रमोद्भूतमन्मथः ॥ ३ ॥
चकोरीवदनान्तःस्थ[2]निशाकरकरामृतः ।
हंसकारण्डवाक्रीडसलिलोद्धरणोद्धुरः[3] ॥ ४ ॥
कञ्जकिञ्जल्कपुञ्जान्तर्लीनप्रचुरषट्पदः ।
काशपुष्पप्रतीकाशचमरीपुच्छमण्डलः ॥ ५ ॥
प्रमोदवनसंफुल्लमालतीसौरभान्वितः ।
संततस्वच्छसरयूसलिलाचितबालुकः ॥ ६ ॥
गोपगोपीहृदुत्साहवर्द्धनः पुष्टिकारकः ।
दृष्ट्वेदृशं तु समयं रामो रमणकोविदः ॥ ७ ॥
गोधोरणीं[4] पुरस्कृत्य प्रमोदवनमागमत् ।
तत्र गत्वा कृताकल्पः सहजोत्सवसुन्दरः ॥ ८ ॥
अङ्गलावण्यसन्दोहप्रकाशितदिगन्तरः ।
गोपानुवाच सकलान् भ्रातॄंश्च लक्ष्मणादिकान् ॥ ९ ॥
हे लक्ष्मण गवां गोष्ठं रच्यतां परितोऽत्र वै ।
गोपैः सार्द्धं शाद्वलानि चार्य्यतां मम धेनवः ॥१०॥
अहमत्र करिष्यामि प्रमोदविपिनान्तरे ।
पूजां कामेश्वरस्याङ्ग देवदेवस्य संततम् ॥११॥

---

१. °छन्दोत्थ°—अयो० मथु०, रीवाँ। २. °वदनाचांत—अयो० बड़ो०।
३. सलिलाण्डवरोद्धुरः—अयो०, बड़ो०। ४. गोधोरधीं—अयो०।

भरतेन च शत्रुघ्न सार्धं त्वं गाश्च चारय ।[1]
अत्र स्यात् कोऽपि चेद्विघ्नः प्रतीकार्यस्तथैव सः ॥१२॥
प्रमोदवनकुञ्जेषु करिष्यामि मनोरथम् ।
ओमित्युक्तवन्तमथो विसृज्य लक्ष्मणं च तान् ॥१३॥
अन्तःप्रमोदविपिनमियाय रघुनन्दनः ।
तत्र गत्वा शशिज्योत्स्ना[2]विसतन्तुपटोज्ज्वलाः ॥१४॥
सुधामयीः शरत्पूर्णा रजनीराजुहाव सः ।
द्विपरार्धान्तेऽपि नित्यास्तास्तस्य पुरतोऽभवन् ॥१५॥
तासु क्रीडनमारेभे दिव्यकेलीविशारदः ।
तत्र स्थित्वा महाकुञ्जे जुगुञ्ज कलवेणुना ॥१६॥
तत्र वेणुरवे गानमकरोदिदमादरात् ।

इत्येहि जनकनन्दिनि मदन्तःसंतापहरणचन्द्रिकावतारविग्रहे मदङ्गसंजातप्रमोदवनलहरीलीलायितगते सहजचिदानन्दमयतारुण्य-विलासवैभवाधिवासिते ॥१७॥

चिल्लोकस्वामिनि कामिनीजनगर्वापहारमकरध्वजपताके वेदिमध्ये महामत्तमातङ्गगामिनि राकेशप्रभावलेपनिर्वहणवदनकान्ते कैशोर-लीलामतिलङ्घ्यवर्तमाने ॥१८॥

प्रमोदवन - वृन्दावन - मन्दारवन - कदम्बवन - पारिजातवनेश्वरि कुञ्जभुवनेश्वरि रक्ताशोकलतामण्डपमध्यस्थे स्मरमन्त्र-महाविद्ये श्रीमन्त्र-विद्ये महामन्त्रविद्ये महाश्रीयन्त्रनायिके महाचक्रनायिके मातङ्गकुलपूजनीय-चिन्तामणिचरणनखचन्द्रिके ॥१९॥

चञ्चलापाङ्गसंक्षोभितकोटिकन्दर्पकामिनीहृदये कोटिब्रह्माण्डकमला-समुच्चयरूपविग्रहे मन्दस्मितमात्रनिरस्तविरहशोके हा भामिनि हा चण्डि हा-त्यन्तकोपने हातिशयदुराराध्यशीले भूलीलादिविविधाकारावान्तरावतारारति[3]-निमग्नमानसे क्वासि क्वासीति ॐ ॐ ॐ ॐ आनन्दवल्लिके क्वासि क्वासीति जगौ ॥२०॥

---

१. "हरिततृणभूमौ गोचारणं कर्त्तव्यं" इति टि०—मथु० । २. शिशुज्यो० —अयो० । ३. "भूलीलादिरूपा विविधाकारा ये अवान्तरा अवताराः" टि०—मथु० ।

ततस्तदाकर्ण्य सुवेणुनिःस्वनं प्रियोदितं मन्मथवेग[1]वर्द्धनम् ।
स्मरोन्मदप्रोद्धतमानसा बहिर्हृदन्तरादाविरभून्नितम्बिनी ॥२१॥[2]
अशोकवल्लीवनमण्डपान्तराद् विनिःसरन्ती सहजारुणांशुका ।
घटस्तनी सन्मणिहारभूषणा स्फुरत्पदन्यासविरञ्चितावनिः ॥२२॥
मरालगत्यञ्चितमञ्जुविग्रहा नितम्बभारोद्वहनाक्षमा रमा ।
मृदुस्मितद्योतविभासिताननाः मनोहरापाङ्गविभूषितेक्षणा ॥२३॥
अनर्घ्यकाञ्चीगुणनादिघण्टिका मनोज्ञकेयूरविलम्बिदोर्लता ।
त्रपानिमग्ना कलितावगुण्ठना सुवृत्तदीव्यज्जघनप्रभाम्बरा ॥२४॥
सुकण्ठकण्ठी शुभसूत्रशोभिता सभागसौभाग्यसमूहसंगता ।
समानशीलैः प्रचुरैः सखीजनैः सनाथपर्यन्तपुरस्थलस्थिता ॥२५॥
परिस्फुरच्चारुकपोलमण्डनप्रतिष्ठताटङ्कमणिप्रभाभरा ।
प्रसूनचित्रीकृतचारुवेणिका सुनासिकाशोभिमहामणित्रया ॥२६॥
सुमञ्जुसिन्दूरसमूहसुन्दरप्रसर्पिसीमन्तितरत्नपट्टिका ।
ललाटपर्यन्तविराजिभूषणप्रभासमूहैः परिवेपिताननाः ॥२७॥
सा राघवेन्द्रस्य जवेन सन्निधौ समेत्य कण्ठे मणिमालिकामधात् ।
तयोर्विनिर्वृत्य विवाहमङ्गलं सखीजनः कुञ्जगृहे विधानवित् ॥२८॥
प्रवर्तयामास मिथो रतिक्रियां नवीनसङ्गोद्यदनङ्गकौतुकाम्[3] ।
ततस्तयोस्तत्र दिने दिनेऽभवन्महोत्सवः पूर्णसखीमनोरथः ॥२९॥
शृङ्गारयामास रघूद्वहः प्रियां प्रियापि तं दिव्ययुवानमादरात् ।
एवं तदन्योन्यमभूत् कुतूहलं दाम्पत्यभावप्रणयेन संचितम् ॥३०॥
परस्परालापनिरीक्षणादिषु प्रवृद्ध उच्चैः प्रणयस्य वारिधिः ।
अभूदमर्यादतरः समन्ततो यथान्यवार्ता धरणीं समाक्रमत्[4] ॥३१॥

साकेतनगरद्वारा रासभूः[5] सहवेश्मसु ।
सरयूतटकुञ्जेषु रत्नपर्वतसानुषु ॥३२॥
क्रीडास्थानेषु दिव्येषु महासाम्राज्यभूतिषु ।
वाटिकातटवापीषु प्रमोदवनमध्यतः ॥३३॥

---

१. वेणु°–बड़ो० । २. अयं श्लोको नास्ति–अयो० । ३. "उद्यत् = प्रादुर्भवत्" टि०—बड़ो० । ४. "लोकवत्" टि०–बड़ो० । ५. "ऽऽरामभूः"–मथु०, बड़ो० ।

दधौ केलिरसं रामो रामया सह संततम् ।
क्वचिद् गुञ्जाविभूषाढ्यो वनमालाविभूषणः ॥३३॥
मयूरचन्द्रिकोत्तंसो वितेने नयनोत्सवम् ।
क्वचिच्चन्दनकाश्मीरमकरीपत्रचित्रितः ॥३५॥
रत्नाकल्पमनोहारी चकारातीव संपदम्[1] ।
क्वचिच्च कनकोष्णीषरत्नस्तवकशोभितः ॥३६॥
हेमकञ्चुकलिप्ताङ्गो रेजे राजोत्तमो यथा ।
क्वचित् पीताम्बरधरः शुभ्रधौत्रविराजितः ॥३७॥
आबद्धचूडाचिकुरश्चकार प्रिययां मुदम् ।
क्वचिच्च मल्लकच्छाढ्यः सुवर्णधृतकुण्डलः ॥३८॥
करस्थवलयोल्लासी रराज रघुनन्दनः ।
क्वचिन्नासामणिभ्राजी श्रीमदाननमण्डलः ॥३९॥
प्रियाकल्पितपुंवेशो रेजे श्रीरामचन्द्रमाः ।
क्वचित् किरातवेशेन सन्नद्धललनासखः ॥
मृगयाभिरतिर्वीरो व्यरोचत वनान्तरे ॥४०॥
एवं विचित्ररचनान्वितकेलिकारः
कन्दर्पकोटिकमनीयकलाकलापः ।
दासीजनप्रतिविभूषितदिव्यरामा—
तारुण्यमोदमदिरारसपानमत्तः ॥४१॥
अन्योन्यमुज्ज्वलरसोदधिहावभाव[2]—
रिङ्गत्तरङ्गशतसान्द्रतरार्द्रमूर्त्तिः ।
चक्रे विलासरसिको विविधान् विलासान्
श्रीमत्प्रमोदवनकुञ्जगृहे सुरम्ये ॥४२॥
इत्थं विहरतस्तस्य रामया सीतया सह ।
द्विपरार्द्धान्तिमभवद् ब्रह्मणो रजनी हि सा ॥४३॥
इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
रामरासो[3] नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

---

१. "शोभाम्" टि०–बड़ो० । २. हानभाव°–अयो० । ३. रामरासे–अयो०, मथु०, रीवाँ, बड़ो० ।

अष्टाविंशोऽध्यायः

ततः प्रवर्तते घोरं तमो भावपिधायकम् ।
रवेरस्तमभूत्तेजः शशुभे ज्योतिषां गणः ॥ १ ॥
तारकौघाः प्रादुरासन्नुलूकाः[1] संप्रपेदिरे ।
पद्मकोशान्तरे बद्धाः जुगुञ्जुर्न मधुव्रताः ॥ २ ॥
मधुरोल्लाससंशोभि बभौ कैरविणीवनम् ।
विटपेषु च निद्राणाः पतङ्गा न च भाषिरे ।
संवीक्ष्य तामसीं वेलां रामः प्रोवाच जानकीम् ॥ ३ ॥
जनकनन्दिनि संप्रति वर्तते रजनिरुत्सुककोकगणार्तिदा ।
स्फुरदुलूककदम्बकमोदकृत्तिमिरघोरपटावृतकानना ॥ ४ ॥
कटु रटन्ति च संप्रति फेरवाः सुकलहंसरवश्च तिरोहितः ।
श्रवणयोः कुरुते कटुतामसौ किमपि घूकवधू[2]निवहारवः ॥ ५ ॥
न खलु संप्रति वञ्जुलकाननं[3] विकसितं वितनोति दृगुत्सवम् ।
कुमुदिनी प्रबिभर्त्ति विकासितां वितथसौरभसंपदुपेक्षिता ॥ ६ ॥
किमपि गायति च भ्रमरावली विकटकुञ्जलतावनवेश्मसु ।
दधति रत्नगिरेस्तटभूमयस्तिमिरसंघकृतं स्वपराभवम् ॥ ७ ॥
इति निशम्य निशागमवर्णनं जनकजा समभाषत वल्लभम् ।
इयमहो रजनी न निवर्तते प्रलय एष विधेरपि नाशकः[4] ॥ ८ ॥
भजति भूतगणः प्रकृतिं परां प्रकृतिरेति परे पुरुषे लयम् ।
पुरुष एति भवन्तममुं परं निजविलासरतं पुरुषोत्तमम् ॥ ९ ॥
त्वमधुनापि रतेर्न निवर्तसे सहजचित्सुखकेलिकलानिधिः ।
यदपि नाथ गता लयमीदृशाः शतश एव विरञ्चिहरीश्वराः ॥१०॥
त्वमवधिः परमं पुरुषोत्तमः सततकालकलाकलनात्मकः ।
प्रिय भवन्तमुपेत्य गतोऽप्यसावगत[5] एव विवात्यत इत्यहो ॥११॥

---

१. प्रादुरासुरु°—बड़ो० । २. चक्रवधू°—रीवाँ । "उलूकवधूसमूहशब्दः" टि०—मथु० । ३. पंकजका°—बड़ो० । ४. नायकः—अयो, मथु०, रीवाँ । ५. "असौ कालः" टि०—बड़ो० ।

अहमपि प्रभुणा भवता सह प्रमुदकाननकुञ्जविलासिनी ।
न कलये प्रणयेन च संभवं न विरतिं सुखकेलिमहोत्सवे ॥१२॥
अथ यदि स्वपनस्पृहया प्रभो किमपि ते नयनेऽलसपक्ष्मणी ।
तदहमप्यधुना स्वपिमि क्षणं भवदुदारभुजान्तरवर्त्तिनी ॥१३॥
भवदुरोनयनाननानासिकाहृदयपाणिपदावयवाश्रिता ।
विरचयामि सुषुप्तिरिवोच्छ्वस[1]न्निगमशब्दमयीं विरतिं न किम् ॥१४॥
निधुवनान्तमिता श्लथविग्रहा स्वपिमि नाथ कदा भवता समम् ।
स्वदयितस्य सुषुप्तिदशाजुषस्तव मुखेन्दुनिरीक्षणं[2]मक्षमा ॥१५॥
नहि निमीलितलोचनपङ्कजोऽप्यथ भवानपि मां परिमुञ्चसि ।
[3]सुखसुयन्त्रितदोःपरिरम्भणप्रणयकेलिकलाकुलविग्रहः ॥१६॥
अलसलोचन एष सखीजनोऽप्यलमिह स्वपितीति विभाव्यते ।
इह न सोऽपि जनोऽस्ति य एत्य नो[4] दिशति नागलतादलवीटिकाम् ॥१७॥
कथयतो रतिवल्लभयोर्मिथः सपदि कापि सखी सुसमाययौ ।
न युवयोरधुनापि दिनात्यये भवति सुप्तिरतीवविलासिनोः ॥१८॥
नवनिकुञ्जलतावनमण्डपे कुसुमक्लृप्ततले[5] कुरुथो न किम् ।
निधुवनक्रियया सहजं सुखं स्मरविलासकलाकुशलौ युवाम् ॥१९॥
निधुवनश्रमसंगतनिद्रयो[6]श्चरणवाहनमेत्य करोति या ।
किमु न साप्यहमद्भुतदासिका रहसि दम्पतिसुप्तिरहस्यगा ॥२०॥

इत्थं[7] सखीगिरं श्रुत्वा स्मृत्वा सीतारघूद्वहौ ।
शय्यामन्दिरमत्युच्चैराजग्मतुरनुत्तमम् ॥२१॥
चन्दनागुरुधूपाढ्यं कर्पूरोज्ज्वलदीपकम् ।
शय्यान्तावनिविन्यस्त[8]दिव्यास्तरणगैन्दुकम् ॥२२॥
नानारङ्गसृतानेक[9]दिव्यचित्रविचित्रितम् ।
कुञ्जवल्लीवनान्तःस्थमन्दारद्रुममूलगम् ॥२३॥

---

१. उल्लसन्—बड़ो० । २. "कर्तुमितिशेषः" टि०—बड़ो० । ३. सुदृढयं°—बड़ो० । ४. परात्परो—अयो०, मथु०, रीवाँ । ५. क्षुप्त°—अयो०, मथु०, रीवाँ । ६. संगतिनिष्ठयोः—अयो०, मथु०, रीवाँ । ७. इति—अयो०, मथु०, बड़ो० । ८. °षुन्यस्त—रीवाँ । ९. °गतानेक°—बड़ो० ।

रक्तपीतप्रभाशोभिरत्नवेदयुपरि स्थितम् ।
सुवर्णसंपुटन्यस्तताम्बूलोदलवीटिकम्[1] ॥२४॥
कल्पद्रुमप्रसूनस्रग्वासोलङ्कारभूषितम् ।
संभोगमल्लयुद्धान्त[2]सुखदव्यजनाञ्चितम्[3] ॥२५॥
सुगन्धिमिष्टमधुरपक्वान्नादिसमायुतम् ।
प्रोद्भासिरत्नचषकोपेतमैरेयभाजनम् ॥२६॥
द्यूतकेलिक्रियोपायचतुष्पद्यादि[4]संयुतम् ।
हेमरत्नचतुष्कस्थपानीयकलशीयुतम् ॥२७॥
रत्नज्योतिसमुद्भासिपृथुदर्पणमण्डलम्[5] ।
वेश्माभ्यन्तरवेश्मान्तज्वलत्सुस्थिरदीपकम् ।
सखीजनकृतान्वीक्षा[6]गवाक्षशतसंकुलम् ॥२८॥
तत्र गत्वा निजालीभिः कृताकल्पां निजां श्रियम् ।
रमयामास रामेन्दुर्नवस्मररतोत्सवे ॥२९॥
सख्यो जाम्बूनदीं मालां दत्त्वा सीताकराम्बुजे ।
रामस्य रोपयामासुः कण्ठे पुलकसुन्दरे ॥३०॥
तस्याः काञ्चीगुणग्रन्थिस्पर्शोत्कम्पिकरे प्रिये ।
सख्यस्तूर्णं विनिर्याताः शय्यामन्दिरतो बहिः ॥३१॥
तत्रैतयोः काकुवचःशताकुलं प्रभूतकन्दर्पशरोद्धुरं रतम् ॥
बभूव भूयो न न नेति कान्तया निवार्यमाणोद्धुरकान्तखेलितम् ॥३२॥
प्रियः परीरभ्य मनोरमां प्रियां स्तनद्वयामर्दनजातसंभ्रमाम् ।
चुचुम्ब बिम्बीफलकोमलेऽधरे रदव्रणारोपणजातवेदनाम् ॥३३॥
बलेन सा तस्य सुबाहुयन्त्रणां[7]निवार्य नीवीं प्रददौ करं हि सा ।
द्वितीयकेन प्रसभं च पाणिना सुदूरयामास युवानमद्भुतम् ॥३४॥
बली स तस्याश्चरणद्वयं जवान्निजांसमारोप्य मुखेन्दुमण्डलम् ।
चुचुम्ब सुस्निग्धकपोलभास्वरं वृतालकालीभ्रमरीशताकुलम् ॥३५॥

---

१. °वीटिकाम्—अयो०, बड़ो० । २. "संभोगे मल्लयुद्धं तस्यान्तेऽवसाने सुखदव्यजनं तेन युक्तं" टि०—मथु० । ३. °ङ्कितं—अयो०, मथु० । ४. "चतुष्पदी = चौपड़" टि०—मथु० । ५. मंडले—अयो०, मथु०, रीवाँ । ६. °न्वीक्ष्य°—अयो०, मथु०, रीवाँ । ७. यंत्रणं—बड़ो० ।

हठात् समाकृष्य पदद्वयेन सा विव्याध वक्षस्थलमस्य कामिनः ।
ततोऽभवन्नूपुरकिङ्किणीरवः प्रसुप्तहंसौघवितीर्णसंभ्रमः ॥३६॥
रामश्च तन्नूपुरयुग्मशिञ्जितैः मनःप्रभूतद्विगुणस्मरार्दितः ।
रदैर्विनिष्पिष्य रदच्छदं पुनः संरम्भतस्तत्परिरम्भमाचरत् ॥३७॥
सा रामचन्द्रस्य भुजद्वयान्तरस्थितार्दिता वक्षसि तेन वक्षसा ।
चचाल नालिङ्गनसंगमोद्भवप्रमोदसंबन्धनिमीलितेक्षणा ॥३८॥
चुचुम्ब तस्याः स्फुटकोरकाकृती दृशोः [शौ ?] स कामी वदनं निभालयन् ।
तस्थौ पुनर्नीविगुणं पिधाय सा करद्वयेनोत्पुलकावलीतनुः ॥३९॥
स तत्करौ पङ्कजकोरकाकृती हठात् समुत्क्षिप्य बभञ्जनीविकाम् ।
तावत्तु सा चोरुयुगं सुवेष्टितं कृत्वा कराभ्यां च वराङ्गमप्यधात् ॥४०॥
स तन्नितम्बद्वितयं मनोरमं लिलेख[1] सूक्ष्मैः करजैः स्मरोद्धतः ।
समालभच्च स्तनकुड्मलद्वयं स्ववक्षसा दीर्यदुदारकञ्चुकम् ॥४१॥
विदीर्यमाणा कुचकञ्चुकी च सा चकार तत्र द्विगुणं श्रियं रतेः ।
स्तनौ सुवेशेन यथा विरासतुः प्रमत्तचक्राविव पद्मिनीदलात् ॥४२॥
उदीर्णभासोः स तयोरुरोजयोर्नखावलीं संनिचखान नायकः ।
स्फुटेन्द्रगोपापयवैः समाचितौ यथा लतायास्तवकौ विरेजतुः ॥४३॥
साप्यस्य वक्षस्थलमुद्धृतैर्नखैः पस्पर्श किंचित्स्मयदुर्मदेक्षणा ।
आवर्जयामास च दुर्लभत्वतः स्मरातुरस्यास्य हठेन वेगिताम् ॥४४॥
स उत्पतन्मन्मथवाणवेपितो मदोद्धतो बाहुबलेन यन्त्रयन् ।
चकार बालां मधुरांशुकच्युतां विस्पष्टदीव्यज्जघन[2]द्वयप्रभाम् ॥४५॥
विलोड्यमाना सुरते प्रियेण सा बभूव सुस्वेदकणान्तविग्रहा ।
तथाप्यमुञ्चत्त्रपया न कर्हिचिन्नितान्तसंशोभिमुखावकुण्ठनम् ॥४६॥
पिधाय योनिं करपद्मसंपुटे परस्परासक्तिसुसंगतोरुकाः[3] ।
अधःस्थिताप्युच्छलतिस्म तस्य सा समानलज्जामदनद्वयाकुला ॥४७॥
तां केनचिद्बन्धबलेन कामुको निबद्ध्य निर्मुच्य तदोरुबन्धनम् ।
आरोपयामास निजोरुयुग्मके वराङ्गसौलभ्यसुनिर्वृतेन्द्रियः ॥४८॥

---

१. लिखत्सु०—अयो०, मथु०, रीवाँ। २. °दिव्य°—अयो०, रीवाँ।
३. °त्सुका—अयो०, रीवाँ।

निजोरुसंस्थामबलां सुयन्त्रितां ततो निबन्धाच्चलितुं च नो क्षमाम् ।
ददर्श वक्त्रे परिचुम्बिताधरे पराङ्मुखी तावदभूज्जवेन सा ॥४९॥
तस्याः सुदीर्घामलकावलीं करे निगृह्य[1] तां संमुखमन्वकूलयन् ।
ततोऽपि सा संमुखवर्त्तिनी प्रिया निमीलिताक्षी न बभाण किंचन ॥५०॥
सामर्षसक्रोधसहर्षसत्रपसहाससोन्मादनसाश्रुलोचना ।
बभूव तूष्णीमवशा सुयन्त्रिता कृताधरस्पन्दलवानुमेयगीः ॥५१॥
ततोऽस्य वक्त्रं शनकैः प्रपश्यती बभाण बाला मृदुवल्गुभाषिता ।
अलं जवेन प्रिय मुञ्च मुञ्च मां न नेति संमर्द्दविलोलविग्रहा ॥५२॥
स भाष्यमाणोऽपि जवेन योनिं बभञ्ज तस्याः खलु दीनयाचितम् ।
हाहेति वक्त्रे करकुड्मलद्वयं प्रकुर्वती काकुशताकुला च सा ॥५३॥
हठेन तेन व्यथितेव कामिना ररञ्ज शय्यापि यथार्द्रयावकैः ।
कृतोद्धतां निर्दयसौरतक्रियां तत्याज मूर्च्छायितविग्रहां तु ताम् ॥५४॥
सखीजनस्तां प्रथमे रतोत्सवे बालां कथंचित्प्रतिलब्धचेतनाम् ।
संस्नापयामास[2] सुमङ्गलोदकैः विधानविद्भिर्निगमैः प्रबोधिताम् ॥५५॥
इत्थं निशायामतिलङ्घ्य चेतनां चकार रामः प्रियया रतोत्सवान्[3] ।
यावत्स शेते पुरुषो महोदधौ भुजङ्गराजे शयने सुषुप्तिभाक् ॥५६॥
गावश्च तस्य प्रसरन्ति सर्वतो निश्वासरूपा भुजगेन्द्रपालिताः ।
तौ कामिनौ निर्भरकामकेलिभिः संश्रान्तचित्तौ दधतुः स्वलीलाम् ॥५७॥
ततोल्वणा[4] नाम जवेन राक्षसा उत्पेतुरुग्रा बलवत्सहिस्राः ॥५८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामरासो नाम[5]
अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

१. प्रगृह्य—बड़ो० । २. संस्थापया°—अयो०, मथु०, रीवाँ । ३. रतोत्सवम्—रीवाँ । ४. ततो°—रीवाँ । ५. रामरासे—अयो०, मथु०, रीवाँ, बडो० ।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

अथोत्पेतुः परितः प्रमोदवनमुल्वणा नाम राक्षसाः। सोदरकाः सायुधाः सकवचाः सुतीव्रमतयो मदोद्धतास्तामसा[1]स्तामसीन्त्रपराक्रमा उल्मुकहस्ता अभङ्गलास्तालशतसमुच्छ्रायवपुषो दुर्दर्शनाः प्रज्वलद्दवाग्निदृशो गिरिगण्डसमानांसाः[2] पृथुतरनासाविनिःसरच्छ्वाससमुत्कम्पितद्रुमान् समुन्मूलयन्तः पादविन्यासप्रचालितधरणीभागाः सरागाननाः करालजटालकेशाः कृत्तिवाससो गणा इव विकटाटोपताण्डवप्रचण्डाः ॥१॥

तान् लक्ष्मणोऽभिवीक्ष्य[3] श्रीरामाज्ञापरायणस्तदाखिलकार्यप्रसाधनचतुरोऽक्षरब्रह्माकृतिः पुरुषोत्तमस्य द्वितीया मूर्त्तिश्चतुर्मूर्त्तेर्भगवतःसज्जीकृतधनुः सुतीक्ष्णविशिखधारासारैर्निवारितवांस्ते दृष्ट्वा शाद्वले चरन्तं रामधेनुकं संक्षोभयाञ्चक्रुस्ततोवीरः सधेनुकं प्रमोदवनाभ्यन्तरे प्रवेश्य तानापततः प्रचण्डैः काण्डैर्विव्याध[4] ॥२॥

ते विद्धा द्विगुणसंजातरुषो लक्ष्मणं विषममुशलसमूहैरवाकिरन्। स निजकाण्डवर्षेण मुशलान् द्विधाकरोत्। तेन द्विधाकृता[5] मुशला दूरादेव परावृत्ताः बभूवुः। कथंचन रविरिव पांसुप्रचयावकीर्णमारुताण्डवरान्मुशलदुर्दिनात् स्वरूपं प्रकाशयामास। ते पुनरपि तं राजकुमारमाच्छादयन् शक्तिवृन्दैः, संछिन्नः शक्तिवर्षेण मूर्छितो धरण्यां निपपात ॥३॥

ततो हाहाकृतं दिवि देवसैन्यं बभ्रामोवाच चाहो प्रभो लक्ष्मण कथं निर्विराज [ण्ण ?] इवासि संवृत्तः। संप्रति खलु त्वमेव गोधोरणीनायको नान्यमुपलभामहे। प्रभुस्तु योगनिद्रावशंवदोऽधुना शेते क्षीरोदार्णवे प्राणप्रदस्त्वमेवास्य सहजकेलीनां लीलोपधानीकृतसमुद्रतनयैकबाहोः सान्द्रतराश्लेषजपरस्परसुखानुभवरसिकस्य आदेशोऽसौ त्वां प्रमोदवनरक्षायै गवां पालनाय च महाविक्रमोर्जितमेकवीरं स्वानन्दविलाससाधनोपायम् ॥४॥

सखलु त्वं मैवं कार्षीः। भरतशत्रुघ्नावपि संप्रति क्वगताविति न प्रतीमो

---

१. 'तामसा' नास्ति—अयो०, मथु०, रीवाँ। २. °समानाः—अयो०। ३. °णो वीक्ष्य—अयो०, मथु०, रीवाँ। ४. विवाध्यते—अयो०, मथु०, रीवाँ। ५. द्विधास्ततो—बड़ो०।

यतस्त्वमेकाकी महोल्वणैरमीभिर्युद्ध्यसे। संस्मर संस्मर स्वात्मानं समुत्तिष्ठ सज्जीकृतधनुः कोटिराक्षसकुलहन्यवे सौमित्रेयेति ॥५॥

लक्ष्मणस्तत्क्षणे प्रविधूयाङ्गव्यथां निजमहिमसंस्मृतिसुधाधाराभिस्तूर्णमुत्थाय घोरतरनाराचधाराभिर्दुर्दिनैः समाच्छादितवान् राक्षसमहोदरान्। ते च प्रबलतरभुजगेन्द्रभोगोपमभुजदण्डकुण्डलीकृतकोदण्डनिर्गलत्काण्डाग्रसंछिन्नशिरसो निपेतुः परितः प्रमोदवनम्। तेषां पततां शरीराणि धरणीं कामयामासुस्समभूच्चारवोवज्रनिर्घातघोरः। केचिच्च पलायमानाः क्ष्मां समाकम्पयन्, तेषां पलायमानानां चरणविन्याससंरम्भेण व्यशीर्यन्त भूमिभागाः। एवं निर्दलिताखिलविपक्षसैन्यो महावीरो धनुः प्रतिसंहृत्य गवां धोरणीमपालयत्। तावत् सुखं शेते जानकीकण्ठपाणिः सकललोकेश्वरः श्रीरामः ॥६॥

अथ यामार्धावशिष्टायां रजन्यां प्रभोः प्रबोधनाय वैतालिकवरवेशधारिणो वेदा विद्याधरीवेशधारिण्यश्च महोपनिषद उत्थानकमगायन् ॥७॥

वेदा ऊचुः

जय जय निजजनकरुणां कुरु कञ्जदलनयन[1] स्वयमेवोज्जृम्भमाणा[2]खिलसौभाग्यसदन जड़जीवात्मनां परिणममानस्य तेन तदीयैर्धर्मैः संबन्धः सपदि तदात्मनैव दृश्योऽसि ॥८॥

वयुनं[3] नामैव ते येन परमहंसोऽपि त्वामखिलगुणातीतमहिमानं वेद स्वे महिमनि प्रतिष्ठिततमम् ॥९॥

न खलु त्वमाधेयो[4]* निरपेक्षवृत्तेस्तवैतत्परं पदं यत् सूरयो धिया पश्यन्ति, यत्र काञ्चनी रत्नोपलघटिता भूर्यत्रैरम्मदीयं नाम सरो यत्र स्वानन्दं संविदेव वापी यत्र स्वात्मानन्दप्रसाद एव प्रासादः सबहुविध[5]-भोगसमुचितशिखराग्रनिषण्णसत्त्वात्मकचित्तसमाक्रान्तो यत्र त्वमेवाधिराजो विजयसे ॥१०॥

---

१. करुणांकुर [रु—अयो०, रीवाँ] कन्ददलसनयन—अयो०, मधु०, रीवाँ। २. °वोपजृम्भ०—अयो०, रीवाँ। ३. "त्वं दृश्यः एतदेव त्वद्विषयकं वयुनं ज्ञानं नाम येन ज्ञानेन" टि०—मधु०। ४. समाधेयो—बड़ो०। * इतः परं पञ्चचत्वारिंशाध्यायं यावत् (६०–१०१ पत्राणि) खण्डितोंऽशः मथुरा पुस्तके। ५. °विधि° —अयो०।

अथ दुस्तर्ककलितकलुषीकृतान्तःकरणानामेष लोको दुर्विभावनोऽन्तःसाधनशतं प्रयुञ्जानैरेव ते भवितव्यं मनोमयः प्राणवपुः प्रभारूपः सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः स एषोऽ[1]णुरात्मा चेतसा वेदितव्योऽयं तव लोकः सच्चिदानन्दघनो बाह्याभ्यन्तरो न तं कश्चन वेद तव चरणपरागपूतात्मानमृते ॥११॥

जय जय सदेकस्वरूप कलात्मक कालकलनातिग चिदेकप्रतिष्ठितनिखिलप्रपञ्चरचनैकाश्रय वाङ्मनसागोचर स्वानन्दसिन्धुलहरीगणसंनिमग्न[2] निजान्तरानन्दिनीसहजालक्ष्मीपराम्बासंवलित नित्यनिकेतन निरवधिक्रीडार्थं विकल्पमानमिदं विश्वं तद्विशेषमेव विकृतिरपि त्वत्प्रकृतिरेवेति भेदेनापि मनोवाक् त्वामेवावलम्बते[3] यथा नद्यः स्यन्दमानाः[4] समुद्रमेवाभिसंविशन्ति[5] तथैतानि नामानि सर्वाणि पुरुषं त्वामभिसंविशन्ति ॥१२॥

अथेमे विद्वांसः कायवाक्चित्तमलनिर्वर्हणीत्वत्कथामृतधारान्तःकृतावभृथाः कायक्लेशकराणि तपांसि समापयन्ति। ये पुनः सतत एव सुखानुभवनिकेतनं त्वत्पदद्वयं भजमानाः शुद्धात्मस्वरूपस्फुरणेनान्तःकरणं कालप्रभावं सत्वादींश्च निर्जितवन्तः कुतः क्लेशकर्माण्यवरज्येयुः[6] ॥१३॥

यदेतदानन्दमयं यदेतदन्नमयादि च तस्यापि पुच्छप्रतिष्ठा च त्वं तव पृथिवी शरीरमात्मा शरीरमव्यक्तं शरीरमक्षरं शरीरं त्वं सर्वान्तरात्मापहतपाप्मा दिव्यो देव एको रामचन्द्रः ॥१४॥

अथेमे शार्कराक्षा मणिपूरकस्थं ब्रह्मोपासते। सदेकशतनाडीस्थानं ते तदनेनैव[7] वर्त्मना त्वामेत्य न पुनर्दुःखालयमभिसंविशन्ति सोऽसि त्वमेको देवः सर्वभूतेषु स्थानेषु गूढः ॥१५॥

अथामूष्वभिव्यक्तिस्थानेषु संश्चकास्ति सोऽसि त्वं प्रतिहतरजस्तमोविसरः शुद्धसत्त्वैकवपुः स्वकर्मोपार्जितनानापुरेशः कार्यकारणासंवृत्तनिखिलांशाखिलशक्तिपरिवृढः कपीनां नैगमोक्तीनामावपनमसि[8] ॥१६॥

---

१. सर्वरस एवोऽणु—अयो०, रीवाँ। २. °गणनिमग्न°—बड़ो०। ३. विलम्बते—रीवाँ, बड़ो०। ४. नदी स्पन्दमाना—रीवाँ, बड़ो०। ५. संविशति—बड़ो०। ६. °कर्मावरेजुः—रीवाँ। °कर्माचरेयुः—बड़ो०। ७. तदेतेनैव—बड़ो०। ८. आवपनं = 'उत्पत्तिस्थानं' टि०—बड़ो०।

अथातिदुर्लभतरस्वतत्त्वप्रकाशनैकान्ततनौ विचित्रलीलारसामृताकूपारे त्वयि मग्ना मत्तासो जनासः किमिति मुक्ति लवणोदरसदनेशतुल्यां स्पृहयेयुर्यत इमे पारमहंस्यव्रते स्थिताः पदपङ्कजपरागविचित्रितवपुषस्तन्निर्गलन्मकरन्दधारास्वादनिर्वृताः सततमेव विजयन्ते ॥१७॥

अथास्मिंस्त्वत्सेवौपयिके कुलाये परमात्मैकसखायो वत ये न भजन्ति त उरुतरभीतिमहावर्त्ते भवे भ्रमन्त एव तिष्ठन्ति ॥१८॥

अथ ये मनोऽक्षगणं[1] संयम्य दृढभूमिना योगेन हृदि निरुध्य परं तत्त्वं समुपासते त्वद्भावमचिरेणापि यन्ति द्विषन्तोऽपि ते चरणयोः सायुज्यमीयुः प्रमेयबलमदः कतमः स्तोतुं क्षमो भवति ॥१९॥

अथ भगवन् को नु त्वां जानीयादर्वाक् समस्तदैवतप्रसरं यतो साधुधियामखिलजगदादिभूतमृषिमनुजज्ञिरे आध्यात्मिका आधिदैविकाश्च ।२०।

अथ त्वय्यखिलसाम्राज्यसुखाधिकसुखे रसात्मकविग्रहे समधिगते किममीभिः पुत्रापत्यकलत्रादिभिः कुतर्कैः सुदुर्भगैरिति व्यवस्य प्राचीना महाश्लोका महाश्रोत्रा महाशीलाः सर्वं परिहृतवन्तस्त्वयि च रतिं कृतवन्तस्त एवेदं भवात्मकं व्यसनं तीर्णवन्तः ॥२१॥

अथेदं विश्वं सदेव सदुपादानकत्वादितिहेतूपन्यासहतधियां दहनादिभ्य उत्पन्ना प्रभापि दाहिका किं न भवेदिति रघुकुलोत्तंसस्त्वमेव सत्त्वमेव सदिति मन्महे ॥२२॥

अथ यथा भुजगः स्वगतमपि कञ्चुकं गुणबुद्ध्या नाभिमन्यते तथा त्वमजां नहि निरन्तराह्लादिसंवित्कामधेनुवृन्दपतेरजया तव किंचित् कृत्यमस्ति प्रभोः ॥२३॥

अथ यदि भवान् स्वलिङ्गमुपसंहृत्य कार्यं प्रति दृष्टिं मीलयति तदानुशायिनां ज्ञानसाधनं नास्ति न वा स्थूलं न सूक्ष्मं न चोभयम् ॥२४॥

अथास्यासतः प्रपञ्चस्य न जन्म घटते सतो वा दुःखादेर्न नाश आत्मनि भिदावकल्पते कर्म च न संभवति सेयं च नाम तव दृष्टिस्त्वय्येव बोधैकस्वभावे योऽयमबोधनिबन्धनो जीवः सोऽपि भिदया नैव वक्तुमर्हत् सद्विषयत्वाश्रयत्वयोरभावात्त्वयि ॥२५॥

---

१. अक्षगणं = 'इन्द्रियसमुदायं' टि०—बड़ो० ।

अथत्वय्यवर्तमानमपि मनो वर्तं [मान ?] मिव भातु ये तु त्वद्वेदितारस्ते इदमशेषं त्वद्रूपतयेवाभिमृषन्ति नहि कनकमात्रदृशां कुण्डलादिकमवभासते ॥२६॥

अथ त्वं स्वत एव व्यावृत्तकार्यकारणाद्युपाधिः सकलकारकशक्त्युपेतः[1] स्वरूपशक्त्यैव राजसे मायया सह तदधीनैरपीड्यमानः ॥२७॥

अथ यदि नित्यलीलस्य ते मायया सह विकृतिर्भवेत् ततः स्थावरा जङ्गमाश्च नानाकृतयो जीवा भवेयुः । सेयमीक्षैव तव परमकारुणिकस्य व्योम्न इव स्वपरभिदा शून्यस्य ॥२८॥

अथ त्वं व्यापको नियन्ता सेव्य एवामी त्वणवो[2] व्याप्या नियम्याः सेवका एव त्वदुपलब्धाखिलवैभवभाजो नान्यथा प्रतिपत्तव्या क्षुद्रविस्फुलिङ्गा इव नाग्निकूटस्य तुलामधिरोहसि ॥२९॥

अथ प्रकृतिपुरुषयोरुभयोरप्यजत्वान्न संबन्धो घटनामेति येनाध्यात्मिकरूपाः सोपाधयो जीवा जायन्ते ततः प्रकृतिविकारप्रलयेन सुप्तवासनत्वाच्छु[3]द्धास्ताः परमात्मनि जीवाख्या शक्तयः सृष्टिसमये विकारिणीं प्रकृतिमासज्य क्षुभितवासनाः सत्यः सोपाधिकावस्थां प्राप्नुवन्त्येत्युच्चरन्ति सोऽयमचिन्त्यस्तवैव महिमा विजयतेतरां रघुवरशार्दूलस्य ।३०।

अथासौ हेतिरपि त्वद्भ्रूभङ्गमात्रनियुक्तः सर्वाण्येव वशयितुं शक्तो विहाय त्वद्भजनामृतधाराशीतलमनसो भक्ताख्यान् परमहंसान् ॥३१॥

अथ कोटिसमीररोधव्यग्रात्मानो न मनो रोद्धुं शक्ताः बहुभिः प्रत्यूहैर्हन्यन्त एव विना भवच्चरणनिदेशकदेशिकम् ॥ ॐ ॥३२॥

इत्यभिष्टूयोपरतेषु वेदपुरुषेषु स्तम्भस्वेदादिविविधभावाकुलिताः स्खलद्गिरः सगद्गदाः पुलकविसरकदम्बायिततनवो बहुतरप्रेमाधौतकुचकुम्भकुङ्कुमाः खिद्यमाना इव भूयसा विप्रलम्भेन महोपनिषदो निर्भरसुरतश्रमशयानयोर्दम्पत्योर्युगलमस्तौषुः ॥३३॥

---

१. कारकपाद्यसत्सुपेतः—रीवाँ, पाद्यत्सुपेतः—बड़ो० । २. त्वया—रीवाँ, बड़ो० । ३. सत्यवासन°—बड़ो० ।

महोपनिषद ऊचुः

जय जय कान्तकेलीरसनिमग्नमनसोः कोटिरतिकन्दर्परूपलावण्यमुखयोः स्वाराज्यसुखसाम्राज्यसंपदाविष्करणवतो[1]रवहेलितवृन्दावनेश्वरीश्रीमद्वृषभानुजाश्रीमद्व्रजेन्द्रनन्दनरसयोर्गोलोकादुपरितनसहजचिल्लोकविलासस्वामिनोः स्वरूपशक्तिमात्राविर्भावितसखिसखीदूतिदूतविटचेटकादिसहायबललब्धकोककला[2]लावण्ययोः श्रीमज्जनकनन्दिनीरघुकुलयोर्युगलाय नमः ॥३४॥

अथ युवाभ्यां दम्पतीभ्यां क्षन्तव्यो नो वैयात्यमदो यत् सुरतान्त—[3]विवसनयोः पुरुषायितविपर्यस्तभूषणवसननयनाञ्जनादिविविधाकल्पयोः परस्परकण्ठाश्लेषप्रभूतद्विगुणितसंक्षुब्धमनोभूपरवशयोः परस्परोन्मर्द्दक्षुभितवक्षसोः पुलकाञ्चितयोरधरबिम्बस्य सुधापानपरायणयोरीदृशनिस्त्रपयोर्युवयोः समीपं भजामहे नर्मसख्य इव निकुञ्जकेलीभवनद्वारोद्घाटनलब्धानन्दकदम्बाः ॥३५॥

अहो क्व वयं[4] बहुतरकर्मठकुलवञ्चितचित्ता अनेकयोगिज्ञानिगुरुजनकृतप्रत्यूहाः कुलाङ्गना इव गुरुलज्जावरुद्धप्रियदर्शनस्पर्शनमुखामृतविधुरा[5] लज्जयैव व्यतीततारुण्याः क्व च तव चेदं महोच्छृङ्खलममेयदिव्यरूपलावण्यवारिधिप्रसरणं सतत[6]प्रियाभ्यामेव समासादिता प्रेम्णः पुरुषस्येव सीमा ॥३६॥

अहो अलौकिकत्वं केलीनां यद्विरञ्चिवराकस्य प्रावीण्यमतिवर्तन्ते।३७।

अहो विचित्रता शोभातिशयस्य यन्निर्भररजनीरङ्गरसिकाभ्यां पूर्णीकृत्य निपीतोऽप्यनुक्षणं वर्धमान एवाविर्भविष्णुः ॥३८॥

अहो युवाभ्यामेव पूजितः परस्परालापपरिरम्भणचुम्बननखरददानमन्दस्मितोन्मर्दनादिभिर्मन्दारकल्पद्रुमकुसुमसमूहैः केलीमनोरथकामतरुः कामदेवः। वत वत कथमप्यसुलभाय मनोमोहैककन्दाय सहजानन्दाय नमो युवयोः सुरताय ॥३९॥

---

१. संपदादिकरण०—बड़ो०। २. कोककलाप०—अयो०, रीवाँ। ३. सुदीप्तविवसनयोः—बड़ो०। ४. क्वहन्त—अयो०, बड़ो०। ५. °दर्शनरसा ननु स्वामृतविधुरा—बड़ो०। ६. प्रसरणं हन्त—अयो०, प्रसररसत°—बड़ो०।

अहो वयं त्रिगुणप्रवाहमार्गपतिताः किं प्राप्स्याम इमां गुणातीतां सच्चिदानन्दैकरसमयीं सहजानन्दिनीरघूत्तमयोः केलिकलामवलोकितुमपि किं नाधिक्रियामहे दैववञ्चिताः ॥४०॥

अथ यद्यमुयोश्चिल्लोकस्वामिनोः सच्चिदानन्दरसदम्पत्योस्तल्पान्तभूमिकाभाजोः बहुकोटिजन्मार्जितसुकृतोद्भूतभाग्या एव वयं[1] तर्हि नातिचिरादेवाभ्यां नित्यनिजविहारस्य भाजनतां प्राप्स्यामहे श्यामा रामा ललिता विशाखा[2] रङ्गविद्या पूर्णमासी चम्पकलता दया नित्यसिद्धा इव वयमपि कोटिजन्मसाधनसिद्धाः ॥४१॥

इत्यभिलाषपूर्वकमभिलष्य ताः सर्वमहोपनिषदोऽतिशयितगुणवर्णनप्राप्तजडिमानस्तूष्णीं बभूवुः ॥४२॥

अथाविरासीच्च निकुञ्जमन्दिरे
जालान्तरप्राप्तनिजावकाशः ।
सूर्यांशुदण्डप्रकरोऽतिकोमलः
प्रोत्फुल्लशोणाम्बुजगर्भबन्धुः ॥४२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामरासोनाम[3]
एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

●

त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

प्रातरौत्थानिकं गीतमिदमाकर्ण्य दम्पती ।
प्रबोधमीयतुस्तूर्णं सुरतोत्थश्रमालसौ ॥ १ ॥
ताम्बूलवीटिकास्वादरञ्जिताधरसुन्दरौ ।
क्वचित्क्वचिन्नखाङ्कालिलिखितोल्लासिविग्रहौ ॥ २ ॥

---

१. एषपर्व—बड़ो० । २. विषमा—बड़ो० । ३. रामरासे—अयो०, रीवाँ, बड़ो० ।

निर्भरस्मरसंमर्दमृदितावयवोद्धुरौ ।
लम्बमानालकस्तोमभ्रमरीमुखपङ्कजौ ॥ ३ ॥
निद्राव[1]शेषसंवीतपतत्पक्ष्मणलोचनौ ।
रजनीसुखसंस्मारस्मयमानमुखाम्बुजौ ॥ ४ ॥
परार्द्धरतिकन्दर्पशोभानिर्मन्थनोचितौ ।
अन्योन्यगण्डफलकप्रतिबिम्बायताननौ ॥ ५ ॥
प्रातरारक्तसूर्यांशुभेदसंकुचदीक्षणौ[2] ।
अन्योन्यविस्फुरद्भूषाङ्कितकण्ठादिविग्रहौ ॥ ६ ॥
स्मरसंमर्दसंक्षोभविपर्यस्तधृताम्बरौ ।
अन्योन्यप्रतिबिम्बाङ्कस्फुरद्दर्पणमन्दिरौ ॥ ७ ॥
कामपूजालब्धरसप्रमादप्रसराविव ।
सहजानन्दिनीसीताश्रीमद्रघुवराभिधौ ॥ ८ ॥
ततो विधाय माङ्गल्यमारात्रिकमनुत्तमम् ।
सखीभिः कृतसंस्कारौ रेजतुर्दम्पती मिथः ॥ ९ ॥
प्रातराशादिकानेकसपर्यासाधनोत्सुकौ ।
सखीगणैः सेव्यमानौ सीतारामौ विरेजतुः ॥१०॥
एवं विहरतोः कोटिकल्पान् प्राप्य क्षणानिव[3] ।
बलकृष्णादयस्तत्रावताराः कोटिशो ययुः ॥११॥
एकदा सुखमासीनौ सीतारामौ कृतोत्सवौ ।
ता एव दूतिका एत्य प्रोचुर्वचनमादरात् ॥१२॥

दूत्य ऊचुः

अहो प्रियौ वां स्वसुखैकनिर्वृतौ
कच्चित्[4]परस्यापि सुखानि जानथः ।
योऽयं जनः क्लिश्यति कोटिकल्पतो
धृतव्रतो वा कृत आतुरान्तरः ॥१३॥

---

१. निद्रया—रीवाँ, बड़ो० । २. °दक्षिणौ—बड़ो० । ३. च—बड़ो० ।
४. क्वचित्—बड़ो० ।

उदारपाणिस्तु स एव गण्यते
योऽन्यस्य दत्ते स्वयमापदं दधत् ।
अथो विभज्यैव वनक्ति यो[1] जनो
न सोऽपि मर्त्यः कृपणान्तरात्मवत् ॥१४॥

इमां समासाद्य निजार्थकोविदां
कथं नु जातो रघुसत्तमाधुना ।
सर्वं पुनर्विस्मृतवानसि प्रभो
कमाश्रयिष्यन्त्यबलाजनास्तव ॥१॥

अद्य स्मरस्यद्भुतदानमात्मनः
प्रमोदवल्लीविपिने वर्तितुं यत् ।
तर्हि कृतस्त्रीनिवहोऽयमीदृशो[2]
विपत्तिमासादयतीति गर्हितः ॥१६॥

इयं तु सद्वंशभवा भवन्मुखे
लग्नेति लोकस्य महोत्सवोऽभवत् ।
अथान्तराछिन्न[3]गणे विलोक्य स
व्यमुञ्चदासां निजसौख्यहैतवे ॥१७॥

तथापि ते राघववर्य नोचितं
मनो निजानां विषये यदीदृशम् ।
समस्य सर्वोद्धरणक्षमस्य च
प्रपत्तिमात्रेण वरोद्धुरस्य ते ॥१८॥

तासां वताभीरमृगीदृशां कृते
कियन्न पूर्वं विनिवेदितोऽसि भोः ।
तथापि किं ते करणीयमस्ति तन्न
विद्महे स्वैरगतं रघूद्वह ॥११॥

अमूः समाराध्य भृशं सहस्रशः
सदैवतार्य्यं भवतोर्युगं प्रियौ ।
अद्यापि न प्राप्तमनोरथाः कथं
पुरा चिरं दत्तवरा वराङ्गनाः ॥२०॥

---

१. भुवमक्रियो—अयो० । २. ईदृशीं–बड़ो० । ३. °छिद्य°–अयो० ।

इति तासां वदन्तीनां दूतिकानां पुरःस्थिता[1] ।
शनैः श्रीरामरमणी तत्रैवान्तरधीयत ॥२१॥
अयं खलु मदन्यासु संसक्तो धूर्तपुङ्गवः ।
यासां दूत्यमुपानिन्युः सहस्रं दूतिकाजनाः ॥२२॥
इति मानापदेशेन तासामाराधनक्रियाम् ।
जानकी सफलीकर्त्तुं भक्तिरूपा व्यवर्तत ॥२३॥
यदि मर्यादया रामो भक्तानुद्धर्त्तुमिच्छति ।
ज्ञानभक्तिस्वरूपेण तदा सीता विवर्धते ॥२४॥
यदा संत्यज्य मर्यादां स भक्तानुद्दिधीर्षति ।
प्रेमभक्तिस्वरूपेण तदा सीतापि दृश्यते ॥२५॥
अन्यदेवमतं ज्ञानमन्यच्च प्रेमलक्षणम् ।
द्वयोरैक्यमिहैवास्ति श्रीरामे फलरूपिणि ॥२६॥
साङ्ख्यस्य योगतपसोर्ज्ञानविज्ञानयोस्तथा ।
परेण ब्रह्मणा कोऽपि संबन्धो घटते नहि ॥२७॥
अयमेव च संबन्धो यः प्रेमाख्य उदाहृतः ।
स एव भक्तिशब्दार्थोऽन्यः स्यादौपचारिकः ॥२८॥
भजन्ते यन्निमित्तेन लक्ष्मीनां कोटयः प्रियम् ।
सा सीता किं भवेल्लक्ष्मीर्नित्यश्रीविग्रहात्मिका ॥२९॥
नित्या तदंशरूपैव राधा वृन्दावनेश्वरी ।
नो चेत् कथं श्रीकृष्णस्य लुठेच्चरणपद्मयोः ॥३०॥
एवं भक्तिस्वरूपेयं सीता राधादिरूपिणी ।
श्रीस्तदाराधनायुक्ता कथं तत्त्वेन गम्यताम् ॥३१॥
प्रिया सत्त्वेऽप्यसत्त्वे च नित्यं सा सुस्थिता प्रभौ ।
ऐकान्तिकी सा विज्ञेया छायेवावयवाश्रया ॥३२॥
न तां विना क्वचिद्रामो दृश्यते भक्तिसंयुतैः ।
दृश्यते चेत् स एवैषा सा सुरोभावहारिता[2] ॥३३॥

---

१. वरस्थिता—रीवाँ, बड़ो० । २. °हारितः—अयो० ।

अथवा विप्रलम्भस्य रसस्यातिभवाय सः ।
तादृशो भाव्यते भक्तैः स्वेच्छाकृतवियोजनः ॥३४॥

अधुना तु व्रजस्त्रीणामाराधनफलात्मिका ।
तास्वाविश्य प्रसन्नात्मा रंस्यते स्वामिना सह ॥३५॥

आविश्य च तथा स्वामिन्यानन्दमयविग्रहम् ।
रंस्यते व्रजवामाभि[1]र्भूत्वा श्रीरामविग्रहा ॥३६॥

द्वात्रिंशच्च सहस्राणि मुख्या व्रजमृगीदृशः ।
तासां षोडशसाहस्रं स्त्रियो मुख्यतराः स्मृताः ॥३७॥

षोडशैव स्युराभीर्यो यासां वै मुख्यसंज्ञिताः ।
दश तासां मुख्यतमा यथावदवधारय ॥३८॥

रासचन्द्रा प्रभा श्यामा कला चन्द्रकला तथा ।
रङ्गविद्या चम्पलता चपला माधवी रमा ॥३९॥

तासां मध्ये मुख्यतमं द्वितयं[2] परिकीर्तितम् ।
यत्राविश्य स्वयं सीता मोदिनीशक्तिरीर्यते ॥४०॥

वृन्दावने ययोरंशौ राधाकृष्णेतिकीर्तितौ ।
अभूदथान्तराविष्टा सहजानन्दिनी प्रिया ॥४१॥

ततो द्विगुणया कान्त्या रेजे श्रीरामचन्द्रमाः ।
अन्तर्हितायां सीतायां द्विगुणो द्योतवानपि ॥४२॥

तां कामयानोऽतिशयाद्बभूव स्मरपीडितः ।
स्मरमार्गणजां पीडां बिभ्रद् दूतीरुवाच सः ॥४३॥

व्रजत स्वामिनीः स्वाः स्वाः संपन्नो वो मनोरथः ।
ता आनयत रात्रीषु ज्योत्स्नोपेतासु[3] दूतिकाः ॥४४॥

रंस्यामि ताभिः कान्ताभिः समेताभिः सहस्रशः ।
मत्तः कश्चिन्न भविता तासां वै विफलोचकः ॥४५॥

---

१. °रामाभिर्—बड़ो० । २. द्वितीयं—अयो०, ३. ज्योत्स्नीभूतासु—अयो० ।

सहजानन्दिनीं शक्तिं तास्वारोप्य रमाम्यहम् ।
इत्युक्त्वा भगवान् रामः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥४६॥
दूतीर्विसर्जयामास सर्वाः प्राप्तमनोरथाः ॥४७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

•

एकत्रिंशोऽध्यायः

रामो हि वीक्ष्य शरदागमफुल्लमल्ली-
वल्लीवनावृतमहीरुह[1]शोभिकुञ्जाः ।
ता यामिनीः समदकामिजनावकीर्णा
रन्तुं चिदेकरमणो हि मनश्चकार ॥ १ ॥
स्वां योगशक्तिमवलम्ब्य कृतप्रयत्न-
स्तत्तत्पदार्थविभवं सफलं चिकीर्षुः ।
सच्चित्सुखानुभवरूपरसात्मकोऽपि
चिल्लोकवासिसुखदोऽनुचकार लीलाः ॥ २ ॥
पूर्णस्तदा परिदृढोऽभ्युदगादुडूनां
नाथः स तन्मनस इत्यवदंश्च वेदाः ।
प्राचीदिशो मुखविलिप्तसकुङ्कुमश्री-
दीर्घाः शुचोऽपि विमृजन् भुवि वर्षणीनाम्[2] ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा प्रभुः कुमुदबन्धुमखण्डबिम्बं
लक्ष्मीमुखाकृतिधरं नवकुङ्कुमाक्तम् ।
भूयः प्रमोदवनमस्य कलानुरक्तं
रामो जगौ कलपदं सुदृशां मनोज्ञम् ॥ ४ ॥

---

१. °वनामृतमहीरिह—अयो०, रीवाँ । २. चर्षणीनां—अयो०, रीवाँ ।

आकर्ण्य तन्मुरलिकानुरवं मनोऽभूत्
प्रोत्साहवर्द्धनकरं व्रजवामनेत्राः ।
श्रीरामचन्द्रकरमुष्टिनिबद्धचित्ता-
दोयुः[1] प्रमोदवनमस्ति स यत्र कामो ॥ ५ ॥

कामोद्धता जवविलोलकबर्युदार-
केयूरहारमणिकुण्डलमास्यभूषाः ।
नद्यो यथा बलविदारितदोर्घशैला-
स्ता लोकवेदपथलङ्घनपूरिताशाः ॥ ६ ॥

काश्चिद् दुहन्त्य उदिताः[2] परिमुक्तदोहाः
काश्चित् पचन्त्य इनतोऽनवतीर्य पाकम् ।
काश्चित् पतिप्रियसुतान् परिवेषयन्त्यः
काश्चिच्छिशूनथ मुदा परिपालयन्त्यः ॥ ७ ॥

शुश्रूषयन्त्य इतरा पतिनामभाजोऽ-
इनन्त्यश्च काश्चन जवेन विहाय तत्तत् ।
काश्चित्तनौ घुसृणलेपनमाचरन्त्यः
काश्चिन्मृजन्त्य इतरा दृशमञ्जयन्त्यः ॥ ८ ॥

व्यत्यस्तक्लृप्तवसनाभरणाश्च काश्चिद्-
रामान्तिकं ययुरनङ्गशरौघविद्धाः ।
ता वार्यमाणवपुषः पतिभिः सुहृद्भि-
र्मित्रैः सहोदरजनैः खलु बन्धुभिश्च ॥ ९ ॥

श्रीरामवेणुनिनदापहृतान्तरास्ताः
प्रेमैकमोहिहृदया नितरां निवृत्ताः ।
काश्चिद् गृहान्तरगता अनवाप्तयाना
रामं निदध्युरुरुभावनिमीलिताक्षाः ॥१०॥

भूयः सुदुःसहवियोगजतापतप्ता
ध्यानावक्लृप्तपरिरम्भसुखाब्धिमग्नाः ।

---

१. दीप्र०—बड़ो० । २. क्वचिद्...उदितौ—अयो० ।

साक्षात् तमेव परमात्मसुखानुभूतिं
जारेतिभावनजुषोऽपि निवृत्तबन्धाः ॥११॥
हित्वा गुणव्यतिकरात्मकमर्त्यदेहं
प्रापुः प्रमेयबलतो यतिनामलभ्यम् ।
ताः कामिनीर्निशि वने विजने समीप-
मभ्यागताः स्मरशरार्तहृदोऽपि वीक्ष्यः ॥१२॥
ईशः पराशयविदप्यमलेन वाचां
वृन्देन मोहमतुलं जनयन्नुवाच ॥

श्रीराम उवाच

सुस्वागतं व इह दारशिरोमणीनां
मत्तः किमीप्सितमिति ब्रुवतानुरक्ताः ॥१३॥
कश्चिद्व्रजेषु पशुपालनिकेतनेषु
वर्वर्त्ति वार्त्तमभितो सदुपाश्रयेषु ।
तद्ब्रूत यद्विसमये यदिहाभ्युपेता
मत्सन्निधौ कुलबधूजनशङ्कनीये ॥१४॥
सौन्दर्यवांश्च तरुणश्च सुविग्रहोऽहं[1]
किं वः प्रभूतवनविश्वसनक्रियार्हः ।
एषा निशा भयकरा भयदातिसंख्य-
सत्त्वाङ्किता शशिकरैर्विशदीकृतात्मा ॥१५॥
गोष्ठं प्रति व्रजत नेह च वर्तितव्यं
स्त्रीभिः परिस्फुरदुरोजभरालसाभिः ।
युष्माकमाप्तसुहृदाः पितृमातृपुत्र—
भ्रातृप्रियप्रमुखबन्धुगणा विमृग्याः ॥१६॥
अप्राप्य वश्च कुलिता[2] भवितार एव
तन्मा कुरुध्वमियतीमतिवृत्तिमुच्चैः ।
दृष्टं प्रमोदवनमृत्वधिराजजुष्टं
पूर्णं निशाकरकरप्रकरावकीर्णम् ॥१७॥

---

१. °विग्रहश्चसोहं—अयो०, रीवाँ, बड़ो० । २. तामकलिता—अयो० ।

नित्योत्तरङ्गसरयूसलिलानिलौघ-
व्यालोलकुञ्जतरुपल्लवराजिशोभि ।
तस्माद् व्रजं व्रजत मा चिरमत्र साध्व्यः
शुश्रूषत प्रियतमान् बहुमानपूर्णम् ॥१८॥

क्रन्दन्ति वत्सनिवहाः शिशवश्च वस्तान्[1]
स्तन्यान्निदध्वमनुदुह्यत धेनुकानि ।
मत्स्नेहपाशविनिबद्धहृदो भवत्यः
प्राप्तास्तदेतदुपपन्नतरं समन्तात् ॥१९॥

प्रीयन्त एवमपि केऽपि जना विशेषा
येषामहं स्वजनबन्धुधनादिभूमा ।
यद्वर्त्तसेवनमकैतवतः[2] स्वधर्मः[3]
स्त्रीणामिति प्रसभमाह च वैदिकीर्गीः ॥२०॥

तत्किं प्रबोध्यमितराननुवृत्तिसाध्यं
युष्मासु साहजिकधर्मधिया सतीषु ।
शीलोज्जितोऽपि भगलेशविवर्जितोऽपि
वृद्धोऽपि जातजडिमोऽपि सदामयोऽपि ॥२१॥

श्रीनिर्गतोऽपि पतिरेव परायणं स्यात्
स्त्रीणामिति प्रकथनं भवतीषु किं स्यात् ।
स्वर्गापवर्गकुशलप्रतिकूलभूतं
पूर्वप्रभूतयशसोऽपि विलोपकं च ॥२२॥

दुःसाध्यमस्थिरमतीव भयावहं च
निन्द्यं च जारसुरतं कुलकामिनीनाम् ।
भावो मयि श्रवणकीर्तनचिन्तनाद्यै-
रन्यत्र दर्शनमपि प्रकटं भवेन्नः ॥२३॥

किं सन्निकर्षमितरे भुवने लभेयुः
पूर्वार्जितैः सुकृतकोटिभिरभ्युपेताः ।

---

१. वत्सान्— अयो० । २. °ताः स्वधर्मः—अयो० । ३. °तुः स्वधर्मः—रीवाँ ।

तद्यूयमक्षिभिरिदं मम रूपमुच्चै-
दृष्ट्वार्पितप्रणयपर्वतभारखिन्नाः ॥२४॥
मोहात् प्रयात मदनुस्मरणेन तृप्ता-
स्तत्रैव वः सुफलमेष्यति गेहधर्मः ।
इत्यप्रियं निजमनोरथविघ्नभूत-
माकर्ण्य भूपतिकुमारवचोऽप्रमेयम् ॥२५॥
खिन्नप्रभावमनसोऽतिवियोगतप्ता-
श्चिन्तामवापुरुपजात[1]महार्तिमोहाः ।
वक्त्राण्यवाञ्चि बहुदुःखभरानुविद्ध-
श्वासानुशुष्यदधराणि विधाय बध्वः ॥२६॥
अङ्गुष्ठसाग्रचरणेन भुवं लिखन्त्यो
वाष्पैः सकज्जलकणैः कुचलेपमार्गाः ।
तूष्णीं बभूवुरथ तन्नयने विमृज्य
भूयिष्ठरोचनभरोपहते मृगाक्ष्यः ॥२७॥
रामं तदर्थविनिवर्त्तितलोकवेदाः
प्रोचुः सगद्गदगिरः प्रसभं प्रवीणाः ।

गोप्य ऊचुः

नैवं प्रियो वदति कश्चन सुन्दरेन्दो
त्वं यद्ब्रवीषि वचनं त्वभिलाषशून्यम् ॥२८॥
जानीमहे ननु कयापि सपत्नभावा-
दस्मद्द्विषद्धृदयया परिशिक्षितोऽसि ।
क्रूरं वचः कथयता भवता हरिण्यो
व्याधोत्तमेन च यथा किममूर्न विद्धाः ॥२९॥
किं कुर्महे वयमनन्यगतिं प्रपन्ना-
स्तत्त्वं न चार्हसि नृशंसतयेति वक्तुम् ।
श्रीरामचन्द्र चरणाम्बुजमूलमाप्तान्
भक्तान् भजस्यविरतं कृपया समेतः ॥३०॥

---

१. °रुपजाति—°रीवाँ, बड़ो० ।

त्वं नस्तितिक्षसि तदेतदतीव नार्हं
देवोत्तमस्य भवतः पुरुषोत्तमस्य ।
प्रेयांस्त्वमेव जगतां निजबन्धुरूपः
स्वात्मा परायणमतः प्रणयं विदध्मः ॥३१॥

किं पत्यपत्यसुतबन्धुसुहृद्भिरन्यै-
स्त्वय्यात्मनि प्रणयिनि प्रियतास्पदैस्तैः ।
किं देहगेहविभवैः परमार्त्तिभूतै-
स्त्वां ये विना निरयशोकभरं जुषन्ति ॥३२॥

त्वं चेत् समग्रमभवः सुखवारिराशेः
सर्वस्वमेव यदिदं नखतः शिखाग्रम् ।
पूर्वं जहार हृदयं हरिणेक्षणानां
हासावलोकनसुधारसलेशदानैः ॥३३॥

श्रीपूर्णचन्द्ररचनावचनैरिदानीं
यन्नो निवारयसि तत्तव नैव युक्तम् ।
बिम्बाधराश्रयसुधारससेचनेन
नो जीवयस्यतनुतापभरेण तृप्ताः ॥४३॥

अस्मान् निजाङ्घ्रिसरसीरुहमध्ययाना
भूयोऽप्यनन्यगतिकाः कतिचिन्मृगाक्षीः ।
नो चेद्वयं विरहपावकमध्यभूरि-
ज्वालावलीवलितविग्रहभस्मभूताः ॥३५॥

ध्यानेन ते चरणयोः प्रतिविष्टचित्ता
भूयास्म योगिन इवात्मनि संविलीनाः ।
सीतापते यदि भवन्तमृतेऽन्यसङ्गं
स्वप्नेऽपि वाञ्छति मनोजवशं मनो नः ॥३६॥

तर्हि त्वदङ्घ्रितलमब्धिसुतासमेतं
सद्यः स्पृहाम निजसत्त्वविशोधनाय ।
यत्ते प्रमोदवननाथ वृतं तुलस्या
योगीन्द्रमानसविभूषितराजहंसम् ॥३७॥

तन्नस्त्रिलोकशरणं चरणारविन्दं
तापत्रयार्त्तिहरणार्थमुपार्थयामः ॥
तस्माद्वयं जनकजारमण त्वयाद्य
कार्या अनन्यगतयस्तु निजानुचर्यः ।
त्याज्या न कर्हिचिदनङ्गखलावसन्ना-
स्त्वादृक्कथं न शरणं शरणागतानाम् ॥३८॥
एतत्तवास्यमलकभ्रमरालिजुष्टं
मध्यस्फुरन्मकरकुण्डलगण्डशोभम् ।
बिम्बाधरं हसितवल्गु विलोकयन्त्यः
कृष्टाःस्म कामकरमुष्टिनिविष्टचित्ताः ॥३९॥
सीताकठोरकुचकुम्भविलिप्तभूयः
काश्मीरकल्करुचिरञ्जनमञ्जु वक्षः ।
भूयो भुजौ च भुजगाधिपभोगभाजौ
बिभ्राण एव हृदयं मदयस्यमन्दम् ॥४०॥
आकर्ण्य ते भुवनभूषण वेणुनादं
नित्यावरुद्धमकरध्वजमूलमन्त्रम् ।
का स्त्री विहाय कठिनानि कुलव्रतानि
दासीभविष्णुहृदया न चलेत् त्रिलोक्याम् ॥४१॥
गावो मृगाश्च विहगाश्च महीरुहाश्च
वल्लीवनानि च निजैर्नयनैर्निरीक्ष्य ।
स्पृष्ट्वा च तावकवपुर्भुवनाद्वितीयं
हर्षोत्करेण विसरत्पुलका बभूवुः ॥४२॥
त्वं सर्वतस्त्रिभुवनार्त्तिसमूहहारी
जातोऽसि संप्रति महापुरुषाङ्कजुष्टः ।
तन्नो निजैकशरणाः करुणां विहाय
विक्रीय मन्मथकरे किमु निर्वृतोऽसि ॥४३॥
इत्याकलय्य करुणानि वचांसि तासां
योगेश्वरेश्वरकिरीटनिघृष्टपादः ।

रामः प्रहृष्य सकलाः व्रजवामनेत्राः
स्वात्माश्रयोऽपि निभृतं रमयाञ्चकार । ४४॥
ताभिर्युतः स भगवान् कमनीयमूर्त्तिः
पारेपरार्द्धशतपञ्चशरावतारी ।
रेजे परस्परितकान्तिविशेषजुष्टो
मध्ये तमाल इव काञ्चनवल्लरीणाम् ॥४५॥
रामः शरत्समयचन्द्रमसं तदंशु-
व्याप्तान्तरं कुमुदकाननमध्यमस्थम् ।
तां कौमुदीं च स जगौ ललनाजनस्तु
श्रीरामनाम विविधस्वरयुक्तमेकम् ॥४६॥
गोपीजनैः स्वरभृतैरुपगीयमान
उद्गायमान उदितस्वरभृत्स्वयं च ।
गोपाङ्गनाशतकयूथपतिः स्रजा च
श्रीवैजयन्त्यभिधया परिशोभमानः ॥४७॥
श्रीमत्प्रमोदवनमण्डलयोग्यलक्ष्मी-
कान्तो व्यरोचत चिरं विचरन् समन्तात् ॥४८॥
ज्योत्स्नामृतप्रविशदं पुलिनं सरय्वा
आविश्य गोकुलनिकेतवराङ्गनाभिः ।
अक्षुब्धधीररमणप्रवराभिकः स
निःशेषकोकजकलाकुशलो रमेशः ॥४९॥
उत्सङ्गसङ्गपरिरम्भणचुम्बनास्य-
हासावलोकननिघर्षणमर्शनाद्यैः ।
नर्मप्रहाससविलासविकर्षणाभिः
संस्तभ्य वीर्यमबला रमयाञ्चकार ॥५०॥
क्वचित् कुञ्जे शय्याशतमव[1]करोद्भोगकृतये
क्वचिद् भूमौ विश्वाधिकरमणमासैककलयन् ।

---

१. सततमकरोद्—बड़ो० ।

क्वचित् कुञ्जावासाङ्गणलसितकौशल्यकलितो
मनोजस्योत्साहं यदि रुचददौ राघववरः ॥५१॥

एवं तास्तेन लोकोत्तरमदनचमत्कारभूम्ना सुखेन
रामेण क्रीडयमाना व्रजहरिणदृशो भूरिलीलामनोज्ञाः ॥
अन्योन्यं लब्धमानाः कलितरतिकला दर्शयन्त्यः स्वकीयं
प्रावीण्यं भूरि चक्रुः किमपि रघुपतौ कामुके दर्पभावम् ॥५२॥

काचिन्माने रघुपतिं पातयामास पादयोः ।
काचित्प्रणामयामास मुखमध्यकृताञ्जलिम् ॥५३॥
काचित्संस्कारयामास दासीवन्निजविग्रहम् ।
काचिदुद्वर्त्तयामास लेपयामास काचन ॥५४॥
काचित्प्रसादयामास केशान् कङ्कतिकाकरा ।
काचिच्च विततां वेणीं ग्रन्थयामास राघवम् ॥५५॥
काचिच्च गुम्फयामास कटिभूषणमालिकाम् ।
काचिन्नियोजयामास प्रसूनावचये प्रियम् ॥५६॥
काचिद्भूषणसंदोहं देहेष्वर्पयितुं हरिम् ।
काचिच्च कथयामास मां नयस्व वनाद्वनम् ॥५७॥
सर्वासां वचनं चक्रे जानकीव रघूद्वहः ।
ताश्च सर्वा ववृतिरे जानकीवत् प्रियोत्तमे ॥५८॥
अन्योन्यं सुदृढः प्रेमा ववृधे प्रतिवासरम् ।
ततस्ता मेनिरे दृप्ताः स्वात्मानमधिकं प्रियाः ॥५९॥
कदाचिद्राम एकान्ते सीताया रमणेच्छया ।
तासां संजातदर्पाणां मध्ये चान्तरधीयत ॥६०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
रामरासो नाम[1] एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

---

१. रामरासे—अयो०, मथु०, बड़ो० ।

द्वात्रिंशोऽध्यायः

अन्तर्हिते रसिकनायकशीर्षरत्ने
रामे रमारमणमात्ररसाभिरामे ।
रामाः प्रभूतविरहार्त्तिभरे निमग्नाः
स्वाङ्गानि वोढुमशकन्नहि तास्तदानीम् ॥ १ ॥
अन्योन्यमीक्षणपराः श्वसितानिलौघ-
चिन्तान्तरस्थविरहानलकीलदग्धाः ।
नो किंचनाभिलपितुं स्मरवाणविद्धाः
शक्या बभूवुरपमृत्युभयात्त्रसन्त्यः ॥ २ ॥
रामस्य मन्मथकलारसिकस्य तास्ता
लीलाः स्मरन्त्य उरुजातवियोगतापाः ।
आभीरिकाः सपदि तन्मयतामवापु-
र्येन प्रियोऽहमिति चेतसि मेनिरेऽमूः ॥ ३ ॥
याश्चावलोकहसितेक्षणभाषणादि-
ष्वैकात्म्यमेत्य रघुवंशविभूषणेन ।
उन्मत्तवत् प्रतिदिनं वनिता विचेरुः
प्रेमोदयेन विपिनाद्विपिनं विशन्त्यः ॥ ४ ॥
क्वचिद्धसन्त्यो गायन्त्यो धावन्त्यः क्वापि संहताः ।
क्वचिदाकाशमालिङ्ग्य भवन्त्यः प्रेमविह्वलाः ॥ ५ ॥
क्वचिदुच्चैः क्रीडमानाः अन्योन्याबद्धबाहवः ।
केचित्परस्परोन्मर्दैर्विशन्त्यः कुञ्जमन्दिरम्[1] ॥ ६ ॥
इत्येवं सुफलारम्भैर्भ्रमन्त्यो विरहातुराः ।
प्रमोदविपिनान्तःस्थान्[2] प्रपच्छुस्ता वनस्पतीन् ॥ ७ ॥
भो अश्वत्थ महाबाहो वनस्पतिपते त्वया ।
क्वचिद् दृष्टो रघुपतिरस्माकं चित्ततस्करः ॥ ८ ॥

---

१. °मन्दिरे—अयो०, रीवाँ । २. °न्तस्थाः—बड़ो० ।

क्वचिद्वटतरो देव बहुपादविराजित ।
क्वचिद् दृष्टो न वा रामो हृत्वा नो हृदयं व्रजन् ॥ ९ ॥
भो भो अशोकविटपिन् बहुभद्रकारिन्
किंस्विद्वचलोकि भवता रसिकोत्तमः सः ।
यस्याङ्घ्रिपाणिमधुराधरकोमलानि
जानाति संप्रति परं तव पल्लवानि ॥१०॥

भो चम्पकद्रुम किमप्यथ पृच्छमान-
स्त्वं किं धुनोषि करपल्लवसंघमेव ।
पुष्पाणि ते रसिकराघवपुङ्गवस्य
पीताम्बरेण सदृशानि विलोकयामः ॥११॥

भो नागकेशर महीरुहनागभूत
पुन्नाग किन्नु युवयोर्विदितो न वाभूत् ।
व्रीडा मनांसि खलु नः प्रणयेन रामो
विक्रीतवान् मनसिजस्य खलस्य हस्ते ॥१२॥

आम्रातक त्वमपि रक्तदलोऽसि नूनं
मन्ये क्वचिद् रघुवरेण करे गृहीतः ।
कच्चित् परोपकरणेऽपि विचक्षणोऽसि
यन्नाम ते कुरवकेति भुवि प्रसिद्धम् ॥१३॥

योऽन्तःप्रमोदवनवासिनि सेवकानां
कल्याणकारिणि तुलस्यमरेन्द्रवन्द्ये ।
अस्मान्निहत्य तव देवि पतिः स रामो
यातः क्वचिन्न विदितो विपिनान्तरेऽस्मिन् ॥१४॥

हे आलि मालति महासखि मल्लिकेऽस्म-
च्चित्तप्रसादनपरे नवजातिवल्लि ।
अस्मानिव प्रियतरो वत राघवेन्द्रो
युष्मानपि व्यथितवान् विरहं प्रदाय ॥१५॥

भो भो तमालविटपिन् बहुधासि दृष्टः
किं पृच्छनीयमसकृद्भवते वतेदम् ।

यद्राघवेन्द्रजलदोत्तमसंगमेन
जातोऽसि मेचकवपुः कपटैः प्रवृद्धः[1] ॥१६॥
पनसद्रुम कस्मात्त्वमस्थाने फलितोऽसि भोः ।
जानीमहे राघवेन्द्रसंगात् संजातसंभ्रमः ॥१७॥
रसाल भवतो रम्या मञ्जरीः शिरसा दधत् ।
कौशल्यानन्दनः कान्तः क्व यातस्तद्वदस्व नः ॥१८॥
पीलुप्रियालमधुकासननागरङ्ग-
श्रीरामपूगतरुतालकदम्बसालाः ।
कच्चिद्वनेऽत्र विचरन् जनकात्मजेशो
दृष्टो न वा हृदयहारकतस्करो नः ॥१९॥
धन्ये प्रमोदवनसंततशोभमाने
हे नर्मदे सरयु हे सखि सूर्यकन्ये ।
कामोद्धतस्तव तटान्तनिरीक्षणोत्कः
श्रीरामचन्द्ररसिकोऽत्र किमभ्युपेतः ॥२०॥
मातः प्रमोदवनशोभिनिकुञ्जभूमे
किंनु त्वदीयसुकृतं वयमीरयामः ।
रोमाञ्चितासि नवशाद्वलकैतवेन
रामाङ्गसङ्गसुखिता प्रणयोत्करेण ॥२१॥
हे कृष्णसार ललना न भवादृशीना-
मस्मत्सखी[2]समुचिता ननु वृत्तिरेषा ।
एकान्ततो [3]यदसकृद्विपुलैः कटाक्षैः
कान्तं प्रपश्यथ वधूजनवञ्चिशीलम् ॥२२॥
सख्यो लता न भवतीषु कृतः स्वबुद्ध्या
शाखाशतैर्विटपिभिः परिरम्भ एषः ।
उद्वीक्ष्य किंनु विकसत्कुसुमाक्षिरन्ध्रैः
कान्ताकुचग्रहपरं रसिकेन्द्ररत्नम् ॥२३॥

---

१. सनद्धः—रीवाँ, सवृद्धः—बड़ो० । २. सुखी°—रीवाँ, बड़ो० । ३. यदि —रीवाँ, बड़ो० ।

जानीमहे बहुलसौरभसारिलिङ्गा-
देतास्युपाय[1]पदवीं खलु राघवेन्द्रे[2] ।
तस्य प्रियाकुचविलिप्तसचन्द्रसार-
कालागुरुद्रवगुणैरिह वाति वायुः ॥२४॥
एताः[3] प्रमोदवनवल्लय एव धन्या
या दूतिकाभिरलिनीभिरुपात्तमन्त्राः ।
श्रीराघवेन्द्रविलसत्तनुसङ्गिनीभि-
र्वाञ्छन्ति भोगमतुलं वयमेव यद्वत् ॥२५॥
रे भूरुहाः कथयत क्व गतः स चौरः
श्यामः सुतीक्ष्णनयनेषुधिपूर्णबाणः ।
प्राप्येत चेत्प्रणयरज्जुशतेन बद्ध्वा
स्थाप्योऽधुना निजनिकेतन मध्य एव ॥२६॥
एवं प्रियं विचिन्वन्त्यो गोप्यो विश्लेषभीरवः ।
अपश्यन् भूरिशः पत्युः पदानि विपिनान्तरे ॥२७॥
ता रेखयोर्ध्वगामिन्या उच्चैर्वज्राङ्कुशादिभिः ।
विज्ञाय वल्लभस्यैव प्रोचुर्वचनमादरात् ॥२८॥
तस्यैव तस्करेन्द्रस्य पदान्येतानि कानने ।
शङ्खचक्राम्बुजाद्यङ्कैरङ्कितानि प्रपश्यत ॥२९॥
दक्षिणस्य पदोऽङ्गुष्ठमूले चक्रं विराजते ।
अस्मादृशीनां नम्राणामङ्गोच्छेदन[4]हेतवे ॥३०॥
मध्यमाङ्गुलिमूले[5]तु भाति कमललाञ्छनम् ।
अस्मच्चित्तद्विरेफाणां लोभनायातिशोभनम् ॥३१॥
पद्मस्याधो ध्वजं भाति सर्वानर्थजयध्वजम् ।
कनिष्ठामूलतो वज्रं भाति पापाद्रिभेदनम् ॥३२॥
पार्ष्णिमध्येऽङ्कुशो भक्तचित्तेभवशकारकः ।
भोगसंपन्नयं[6] धत्ते यवमङ्गुष्ठपर्वणि ॥३३॥

---

१. देत्तामिपाप०—अयो० । २. राघवेंद्रः—अयो० । ३. एषा–रीवाँ । ४. नः प्राणां षट्वर्गौक्षिति°—अयो०, न प्राणां षङ्गोक्षेदन°-रीवाँ । ५. मूलं—अयो०, रीवाँ । ६. संपन्मयं—अयो०, रीवाँ ।

अथ वामपदाङ्गुष्ठमूलभक्तोन्मुखं दरम् ।
सर्वविद्याप्रकाशाय दधाति भगवानसौ ॥३४॥
पद्मादीन्यपि चिह्नानि दृश्यन्ते दक्षपादवत् ।
[1]एतत्पदानुसारेण गवेष्यो रघुनन्दनः ॥३५॥
अत्रैव कानने क्वापि प्रियया सह वर्तते ।
इत्युक्त्वा[2]गोपवद्ध्वस्तास्तत्पदानुसृतिं क्रमात् ॥३६॥
अन्वयुः सान्द्रविपिने समस्ता विरहातुराः ।
प्रियापदैः सुपृक्तानि तत्रैक्षन्त व्रजाङ्गनाः ॥३७॥
मध्य एवाविरभवत् कासौ धन्यतमा वधूः ।
अंसे विन्यस्य दोर्वल्लीं सह गच्छति यामुना ॥३८॥
इयं हि सहजानन्दकेलीनिर्वृतमानसा ।
अस्मान् हित्वा यदासक्तः क्रीडते व्रजवल्लभः ॥३९॥
सहजानन्दिनी नाम शक्तिरेषैव कामिनी ।
सा वल्लभमनाश्रान्तं रमयत्यनुरागिणी ॥४०॥
परस्परासक्तबाहुदण्डाभ्यां विधिपूर्वकम् ।
अत्र विक्रीडितं ताभ्यां भ्रमणाक्रीडनाभिधम् ॥४०॥
अत्र भूषासमारोपः प्रियायाः प्रेयसा कृतः ।
परस्परं संमुखस्थौ दृश्येते ललितैः पदैः ॥४२॥
अत्राभ्यां रचिता केलिः पुष्पावचयनाभिधा ।
विना पार्ष्णितलन्यासं पदान्येतानि पश्यत ॥४३॥
अत्र स्थित्वा कृतास्ताभ्यां विचित्राः कुसुमस्रजः ।
स्वं स्वं चातुर्यविभवं दर्शयद्भ्यां परस्परम् ॥४४॥
अत्र प्रियेण प्रेयस्याश्चक्षुषो रञ्जनं कृतम् ।
स्पष्टं[3] पङ्केरुहां पत्रं[4] प्रोञ्छनैर्मलिनीकृतम् ॥४५॥
अत्र प्रियः स्वप्रियायै प्रादात्ताम्बूलवीटिकाम् ।
चूर्णं[5]खदिरसारं च दृश्यतां पतितं भुवि ॥४६॥

---

१. अथवा यत्पदा°—अयो० । २. इत्युक्ता—अयो०, रीवाँ । ३. पृष्टं—रीवाँ । ४. यत्र—बड़ो० । ५. चूर्णे—अयो०, रीवाँ ।

अत्राभ्यां रचितं सौख्यं मन्मथोत्सवदायकम् ।
पद्मपत्रमयी शय्या व्यत्यस्ता दृश्यते स्त्रियः ॥४७॥
अत्र प्रियाभिरुच्यैव प्रेयस्या पुरुषायितम् ।
दृश्यतेऽन्तः प्रियवपुः परितः प्रेयसीपदे ॥४८॥
स्रस्तानि नवपुष्पाणि विग्रन्थिकबरान्तरात् ।
अहो हारलता भग्ना विकीर्णा मणयोऽमलाः ॥४९॥
तां कोमलाङ्घ्रिकमलामिह खिद्यमाना-
मंसे निधाय दयितामिह नीतवान् सः ।
नातः परं परिलसन्ति पदानि यस्याः
स्वाधीनतागुणवशीकृतवल्लभायाः ॥५०॥
धन्याः परं युवतयो रघुनन्दनस्य
भर्त्तुः पदाम्बुरुहसंभवरेणवोऽमी ।
यां पद्मयोनिरघहन्यव ईश्वरश्च
मूर्द्ध्ना दधाति कमला च नितान्तभक्ता ॥५१॥
यां कामुको रसितवानितरां विहाय
भूयो वियोगभरकालदवाग्नितप्ताः ।
सात्मान[1]मभ्यधिकमानममंस्त सम्यक्
स्त्रीणां निजायनजुषां प्रमदेतरासाम् ॥५२॥
भूयोऽब्रवीच्च खलु सा प्रिय पारयामि
नो गन्तुमध्वनि निकुञ्जविशीर्णपर्णे ।
आरोप्य संप्रति निजांसमितो नयेश्चे-
त्युक्तः प्रियश्च सहसा विदधौ तथैव ॥५३॥
ततोऽन्तरितवान् रामः सहजानन्दविग्रहः ।
तस्यै निजवियोगोत्थां वेदनामनुभावयन् ॥५४॥
ततस्तु ताः पद्मदृशः समस्ता यावद्रहस्यं दयितस्य मत्वा ।
नाग्रे प्रवृत्ताश्चलितुं साऽपि तावत् प्रियोत्तमाभिर्ददृशे प्रेयसीभिः ॥५५॥

---

१. स्वात्मान°—बड़ो० ।

प्रियस्य विश्लेषभरेण खिन्ना शून्यादिशश्चकितं वीक्ष्यमाणा ।
पुनः पुनः स्वल्पदुरात्मभावं दर्पं च संचिन्त्य विलज्जमाना ॥५६॥
हा नाथ हे रमण सुन्दरवर्यधुर्य ! प्रेष्ठ प्रिय प्रियतम प्रणयामृताब्धे ।
दासीं विहाय ननु मां निविडे निकुञ्जे क्वासीति दीनवचनैरनुनाथमाना ।५७।
सा तान् व्रजाभीरवधूसमूहानापृच्छमानान् स्वपतेरुदन्तम् ।
सर्वस्वहेतुं कथयाञ्चकार श्रीः स्वस्य मानं च तथावमानम् ॥५८॥

तयोक्तमाकर्ण्य मृगीदृशस्ता जग्मुः परं विस्मयमात्रहासाः ।
तया समेताश्च पुनस्तथैव वियोगभारव्यथिता बभूवुः ॥५९॥
उन्मत्तवत्तत्र वनाद्वनान्तरं गवेषयन्त्यो रघुनन्दनं प्रियम् ।
तद्ध्यानतस्तन्मयतामवाप्य तास्तस्यैव लीलां व्यदधुः परात्मनः॥६०॥

कस्याश्चिद्राक्षसीयन्त्या रामायन्त्यपिबत्स्तनम् ।
खट्वायन्तीं परामन्या तोकायित्वा पदाहनत् ॥६१॥
दैत्यायन्ती परा काचित् कृत्वारामार्भभावनाम् ।
जहार जानुसंमर्दैरिङ्गन्तीं नूपुरस्वनैः ॥६२॥
रामायन्ती बभूवान्या गोपायन्त्यश्च काश्चन ।
सर्पायन्तीं खगायन्ती जघान निजविक्रमैः ॥६३॥
वेणुं क्वणन्तीमन्या तु काचिच्चानुजगौ स्वरैः ।
रामायन्त्याजुहावान्या नाम्नान्यां धेनुकायतीम् ॥६४॥
तत्रैका लक्ष्मणायन्ती भरतायन्ती तथा परा ।
शत्रुघ्नायन्त्यथो काचिद्रामेन्दुं परिववृरे ॥६५॥
अन्या माङ्गल्यकायन्ती गवेन्द्रायन्त्यथोऽपराः ।
रामायन्त्यभिशुशुभे व्रजे तं मातरौ यथा ॥६६॥
माभैसुरिन्द्रकोपेन त्राताहं ननु राघवः ।
वर्षर्तुः प्रलयासारा इत्युक्त्वा निदधेऽम्बरम् ॥६७॥
शुचौ[1] पश्यत गोपाला दावाग्निं विश्वतोमुखम् ।
चक्षूंष्यपि[2] दधध्वं चेत् क्षेममाप्तुमिहेच्छथ ॥६८॥

---

१. ऊचे—अयो० । २. चक्षूंष्यथ—अयो० ।

इत्युक्त्वा राममात्मानं मत्वा कोरकिताननाः
पपौ निमेषमात्रेण सर्वानाश्वास्य पावकम् ॥६९॥
काचिद् भुजङ्गमायन्त्याः कस्याश्चिन्मस्तकेऽनटत् ।
समुद्रं गच्छ दुष्टाहे भाषमाणा रुषारुणा[1] ॥७०॥
काचिद्दाम्ना बबन्धान्यां द्रुमायन्त्याश्च मूलतः ।
सा च तां पातयामास स्तुवन्तं विविधैः स्तवैः ॥७१॥
एवं तन्मयतामेत्य तल्लीला व्यदधुः क्रमात् ।
गवेषयन्त्यो विपिनाद्विपिनान्तरमाययुः ॥७२॥
यावद्वनलताकुञ्जे चन्द्रज्योत्स्ना न दृश्यते ।
ततोऽन्धकारगहनं वनं वीक्ष्यातिगह्वरम् ॥
सर्वा निववृतुस्तस्मात्पृच्छयमाना लताद्रुमान् ॥७३॥
तमेव कान्तं मनसि स्मरन्त्यस्तमालपन्त्यश्च बहिः समक्षम् ।
तस्यैव चेष्टा विदधन्त्य उच्चैस्तदात्मिका नात्मगृहाणि सस्मरुः ॥७४॥
पुनर्निवृत्ताः पुलिने सरय्वा यत्र प्रियेणाभिरता पुराभूः ।
समेत्य सर्वाः स्वरमूर्च्छनाभिर्जगुर्यथा किन्नरवर्यवध्वः ॥७५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
रामरासो नाम[2] द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

गोप्य ऊचुः

जयति प्रिय जन्मभृता भवता सरयूतटभूमिरुदञ्चशुभा ।
त्वदुदारमुखेन्दुविलोकनजं परिदीव्यति यत्र मुदां प्रसरः ॥ १ ॥
अथ चेद्बहुलार्तिरिहास्ति पते भवदेकपरास्वबलासु भृशम् ।
रघुनन्दन सापि परं भवता परिहार्यतमा स्मितपूर्वदृशा ॥ २ ॥

---

१. हसारुणा—रीवाँ, बड़ो० । २. रामरासे—अयो०, रीवाँ, बड़ो० ।

अथ याध्वसहस्र[1] वियोगभवा प्रिय नार्त्तिरसौ ह्रियते भवता ।
तदिहैष्यति संततमुज्वलतः करुणारस एव कठोरतरम् ॥ ३ ॥
प्रलयाभ्रगणाद्दववह्निभरात् पवनप्रचयाद्विविधारिभयात् ।
परिरक्षितवानसि नः प्रणयिन् विरहार्तिमहाभयभोगकृतः ॥ ४ ॥
अपि पद्मभवादिभिरर्थित इत्युदयत्वमितोऽसि ककुत्स्थकुले ।
धरणीभरसंहरणाय तथा निजभक्तजनामितदुःखकृते ॥ ५ ॥
तदिदं स्वजनाभयदानदृढं सकलेप्सितपूरणकल्पतरुम् ।
निजपाणिमिमं पुरुषोत्तम नः शिरसि प्रणयेन निधेहितमाम् ॥ ६ ॥
अयि वीरवर व्रजवल्लभ हे रघुवंशविभूषण चारुमते ।
निजदास्यकरीर्भज सुन्दर नः प्रियदर्शनचारुमुखाम्बुरुहम् ॥ ७ ॥
भुवनत्रयसंततताप्हरं जनपापहरं कमलासदनम् ।
चरणाब्जयुगं कुरु वक्षसि नः शमय स्मरदुर्जयवाणरुजम् ॥ ८ ॥
तव दर्शनसंगमसंस्पृहिता सुमहार्त्तिकरा विरहादधुना ।
हृदि संमथिताः रघुनन्दन नः कृपयाधरसिन्धुसुधाभिद्रवैः ॥ ९ ॥
रुचिरस्मरण प्रिय संप्रति नस्तव दिव्यकथामृतमेव गतिः ।
विबुधेश न चेद्विरहाग्निभरो भसितोत्तरकं कलयेन्न किमु ॥१०॥
रघुनाथ भवत्परिरम्भभुवः प्रमुदः स्मृतिमात्रमिता अधुना ।
व्यथयन्तितमां हृदयानि न नः प्रतिकूलतया खलु चित्रमिदम् ॥११॥
मृदुलेन पदाब्जयुगेन भवान् यदि नाथ निकुञ्जवनेष्वटसि ।
तदिहेहि कठोरतृणाङ्कुरकैर्भृशमर्द्यत एव मनः खलु नः ॥१२॥
विलुलत्[2] कुटिलालकजालवृतं भ्रमरीगणसेवितमब्जमिव ।
स्मृतिमेति यथा तव नाथ मुखं भवतीव तथा व्यथितं हृदयम् ॥१३॥
कमलाकरसेवनभाजनकं तव चारु पदाब्जयुगं जयति ।
स्तनकोरकयोः कृतमात्रमथो खलु यत् स्मरदुःखहरं भवति ॥१४॥
विरहज्वरसंभवतापहरं विषमेषुभवव्यथनाशमनम् ।
अधरामृतसीधुरसं रुचिरं रघुदेव वितीर्य सुखं वितर ॥१५॥

---

१. यद्यसहस्र०—बड़ो० । २. विलुलित°—बड़ो० ।

यदुदारमनर्घ्यभवद्वदनं प्रविलोक्य रसोढतमो निमिषः ।
अधुना तदनेकदिनान्तरितं स्तवगम्य धिगस्तु दृशौ सुदृशौ ॥१६॥
पतिपुत्रसहोदरबन्धुसुखं स्वजनं परिहृत्य जवात् स्वमितः ।
अबलाः प्रबलात्मभुवा ग्रथिताः क उदार जहातु भवन्तमृते ॥१७॥
तदनेकरहस्यकथावसरे परिरम्भरसाकुलमात्तमुरः[1] ।
तव कान्त तमालसमप्रतिमं स्मरतीः किमु मूर्छयसे वत नः ॥१८॥
मृदुलोपलवत् कठिमानमिमं कुत एव भवानसि शिक्षितवान् ।
यदिमाः स्वगतीरिह नाक्षिकलाकलनादवसि व्रजवामदृशः ॥१९॥
भवतो वपुरङ्गशिरीषमृदुस्पृहया कठिनेषु कुचेषु यथा ।
कलयाम तथा भयमेति मनः पुलकाङ्कुरकण्ठरुगञ्चतु मा ॥२०॥
स भवान् विजने विपिने निशि नः प्रविधाय खलु स्मरहस्तगताः ।
अवधिं गतवानसि किं नितरामितरां भजमान उदारमनाः ॥२१॥
अथ धन्यतमा खलु सा रमणी रमणीनिवहादपकृष्य वने ।
विजनेऽत्र भवन्तमतिप्रणयं प्रिय नीतवती बहुसाहसिका ॥२२॥
अयि धूर्त्तधुरन्धर धीरमते विलपन्तमिमं रमणीनिवहम् ।
नयनेन निभालयसे न कथं कलयन्नपि सन्तमघे रमणम् ॥२३॥
प्रणयेन पुरा खलु यामनयो विलपत्यति सापि सहैव चिरम् ।
प्रणयिन्यबलेयमितोप्यपरा प्रिय कास्ति भवत्सविधे रमणी ॥२४॥
नहि तत्र भवान् विजनेऽस्ति परं स्वयमेव नरेन्द्रकुमारमणे ।
न खलु क्षणमप्यसि केलिकलारहितोऽखिलकोककलैकपटुः[2] ॥२५॥
अथ या भवदङ्गसुसङ्गकरी त्वितरैव विभाति रमा खलु सा ।
नहि नाथ तया रहितोऽस्ति भवान् नहि सा सहते विरहं क्वचन ॥२६॥
वयमीश तथा तव संगमने प्रिय विघ्नलवं कलयाम कदा ।
युगलं खलु तद्भवतोः सुचिरं व्यतिभातु विशेषविलासकरम् ॥२७॥
तनुकान्तिरिव प्रथिता भवतः प्रियसङ्गम एव सदा वसतु ।
इत एव भवत्वनिशं भवते ह्यबलाजनदुःखभरो विदितः ॥२८॥

---

१. प्राप्तमुरः—रीवाँ, पातमुरः—अयो० । २. °रुतैकपटुः—रीवाँ ।

अपि नोदय तं स्पृहणीयुगणे भवती परिवेत्तु दशां खलु नः ।
अथवा विदितेदृशदुःखदशा किमु वेत्स्यति नित्यविलासपरा ॥२९॥
स्वजनेषु तथापि परां करुणां परिपालय लोकपतेर्महिषी ।
निजनित्यविलासयुतं दयितं परिदर्शय नो नयनोत्सवदम् ॥३०॥
जनकस्य जगत्प्रणयैकजुषः करुणारसकोमलितात्महृदः ।
तनया भवतीति मनांसि च नः खलु विश्वसितं भवति त्वधुना ॥३१॥
इह वां सुरतान्तधृतश्रमयोर्मनुवारिकणाञ्चितविग्रहयोः ।
सुखदायि पटुः परिरम्भकरः परिवाति मरुद्बहुभाग्यभृतः ॥३२॥
असकौ ननु सौरभसारभरः परिवाति मुहुर्मरुताकलितः ।
यदिहोदयते कलकल्पलतायुतमल्पतरोरधिकः पटिमा ॥३३॥
अयि वामविधे व्रजवामदृशां कलयिष्यति भूरि कदा नु भवान् ।
सहजं सहजेन मनोत्सवदं युगलं खलु दम्पतिभावयुतम् ॥३४॥
रघुनन्दन दर्शनदानकृते मुनयेऽत्रिसुताय नमोऽस्तु च नः ।
पुनरेव नमोऽस्तु रघूद्वह ते वरदाय निजात्मवरोत्तम हे ॥३५॥
पुनरेव नमोऽस्तु वधूमणये निमिवंशमहोत्सवदायिदृशे ।
इतराभ्य इदं खलु दत्तवती प्रणयेन धनं स्वरहस्यमपि ॥३६॥
त्रिजगल्ललनौघशिखामणये पुनरेव नमोऽस्तु नमोस्तु च नः ।
सहजात्मसुखाकृतये सहजासहजात्मचिदाकृतये हृतये[1] ॥३७॥
सहजामहिषीरतिरात्मसुखा प्रमदा पुरुषां जगदेकजनिः ।
अथ चिल्लतिकापि च चिन्निधिरित्यवगच्छ नवात्मकनाम मनः ।३८॥

श्रीर्माया मदना सरस्वतिपरा तारात्रया पद्मजा
त्रैलोक्येश्वरबृंहिताङ्कसदनस्था सच्चिदानन्दिनी ।
पञ्चात्मा निखिलप्रपञ्चरचनाचातुर्यगा तुर्यगा
तुर्यातीतकला परावरतरा सीता सिता चासिता ॥३९॥

इतिबहुविक्लवातुरहृदो व्रजवामदृशः
प्रसभतरं विलप्य करुणास्मरवाणरुजा ।

---

१. हृदये—बड़ो० ।

वत वत संभ्रमेण बहुवीक्षितशून्यदृशः ।
सुभगतरस्वरेण रुरुदुर्विजने विपिने ॥४०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामरासो नाम[1] त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तत आविरभूद्रामस्तासां विरहकातरः ।
वामभागसमासक्तसीतालिङ्गितविग्रहः ॥ १ ॥
मधुराननसंशोभिकोटिचन्द्रोज्ज्वलस्मितः ।
तडित्कान्तिचमत्कारिपीताम्बरसमावृतः ॥ २ ॥
नवीनपुष्पग्रथितां पञ्चवर्णस्रजं दधत् ।
अनेकरत्नसंजुष्टहेमचन्द्रावतंसकः ॥ ३ ॥
संभ्रान्तपद्महस्ताभिस्तडिदुज्ज्वलकान्तिभिः ।
सम्पन्ननिष्ककण्ठीभिः श्यामाभिः शुभदृष्टिभिः ॥ ४ ॥
रत्नाकल्पमनोज्ञाभिः कान्तपीयूषवृष्टिभिः ।
सहस्राधिकरामाभिः संसेवितशुभाननाम् ॥ ५ ॥
कल्याणकारिणीं दिव्यां दिव्यकेलिविभूषिताम् ।
निजवामांससंसक्तां सहजानन्दरूपिणीम् ॥ ६ ॥
वामभागे प्रियां रामो जुषमाणः सुलोचनः ।
कस्तूरीतिलकोपेतपूर्णभालस्थलप्रभः ॥ ७ ॥
प्रेमासवरसास्वादपूर्णमानहृदुन्मदः ।
वामाक्षिहृदयोल्लासकारिवीक्षणकारकः ॥ ८ ॥
महामारकतोद्योतिमयूराकृतिकुण्डलः ।
दिव्यचूडासमावद्धमल्लीमाल्यमनोहरः ॥ ९ ॥

---

१. रामरासे—अयो०, रीवाँ, बड़ो० ।

रत्नकेयूरसुभगबाहुद्वयविराजितः ।
रत्नहारमनोहारिविशालसदुरस्थलः ॥१०॥
रत्नकाञ्चीगुणाबद्धकटिवस्त्रविभूषितः ।
निम्ननाभिह्रदोदग्रवलित्रयविराजितः ॥११॥
वामपादसमाक्रान्तदक्षपादप्रियाकृतिः ।
त्रिभङ्गीललिताश्यामवामकामदविग्रहः ॥१२॥
लसन्नूपुरमञ्जीरकिङ्किणीपादपङ्कजः ।
नासाग्रमिहितोत्तुङ्गनवमौक्तिकमञ्जुलः ॥१३॥
ताम्बूलीदलसंस्निग्धरञ्जिताधरपल्लवः ।
पुरुषायितकामिन्या क्रीडोचितलसद्वपुः ॥१४॥
अश्मश्रुचिबुकोन्नद्धतिलबिन्दुविराजितः ।
महिलाजनदृग्भङ्गपीयमानमुखासवः[1] ॥१५॥
भूयः षोडशवर्षेण वयोमाधुर्यमंजिमा ।
नित्यलीलाचमत्कारि[2]श्रीविग्रहविराजितः ॥१६॥
तं वीक्ष्य गतिमात्मानं प्रणयोल्लासिलोचनाः ।
सर्वास्ताः सहसा तत्र समुत्तस्थुर्मृगीदृशः ॥१७॥
देवतास्तत्त्वरूपिण्यो यथापूर्वमचेतनाः ।
चैतन्यमुपलभ्याथ प्रविष्टे तु परात्मनि ॥१८॥
काचित् तदीयकरपङ्कजमञ्जुलस्थे
कृत्वा सुखेन निदधाति निजे कपोले ।
काचिच्च संगमयते नयनद्वयेन
काचिच्च वक्षसि च नाभिह्रदे च काचित् ॥१९॥
काचिच्च तस्य भुजदण्डमहीन्द्रभोग-
श्रीखण्डवृक्षविटपप्रतिमं गृहीत्वा ।
अंसे दधाति च कापि च मूर्द्ध्नि कापि
काचित् सहर्षमुपगृह्य[3] जहाति पापम् ॥२०॥

---

१. °सुखासवः—मथु०, बड़ो० । २. चमत्कारी—रीवाँ, बड़ो० ।
३. °गूह्य—अयो० ।

ताम्बूलचर्वितकमञ्जलिना च काचिद्
गृह्णाति तन्निपतदर्द्धपथे[1] निरुध्य ।
काचित् तदङ्घ्रिकमलं विरहज्वरेण
संतापिनि स्तनयुगे निदधाति तन्वी ॥२१॥
अन्या च काचन[2] निमेषविवर्जिताभ्यां
दृग्भ्यां प्रियस्य वदनाम्बुरुहं पिबन्ती ।
नैवाद्य तृप्तिमबला सुखसिन्धुमग्ना
चित्रार्पितेव विटपार्श्वयिणी बभूव ॥२२॥
काचित् तमीक्षणपथेन हृदि प्रविश्य
नेत्रे निमील्य पुलकौघविसंस्थुलाङ्गी ।
दोर्भ्यां दृढं समवगृह्य निबद्धमौना
योगीव चित्सुखमहोदधिनिर्वृतास्ते ॥२३॥
काचिन्मनोजधनुषा भ्रूकुटिद्वयेन
संयोज्य तीक्ष्णविशिखान् कुटिलान् कटाक्षान् ।
दृष्ट्वा रुषेव दशनैर्दशनच्छदं स्व-
मैक्षिष्ट कान्तमतुलप्रणया घ्नतीव[3] ॥२४॥
अन्ये सुवर्णलतिकेव रुचा स्फुरन्त्यौ
तस्यांसयुग्ममवलम्ब्य विरोचमाने ।
तत्र प्रमोदवनदिव्यतमालकान्ति-
मत्यद्भुतां पुपुषतुः प्रभयानुरूपे ॥२५॥
काचित् तदीयममलं[4] मुकुरायमानं
स्वच्छं कपोलतलमुत्प्रणया चुचुम्ब ।
अन्या तदक्षियुगलं रदनच्छदाभ्यां
ताम्बूलिकादलरसैरनुरज्यमानम् ॥२६॥
एका तदीयमधरं मधुरं सुधायाः
संस्थानमन्दिरमिवापिबदाननेन ।

---

१. °पतदूर्ध्व°—अयो, रीत्रॉ। २. का क्षण°—अयो०। ३. व्रतीव—अयो०।
४. °मतनोर्—अयो०, अचलोन्—बड़ो०।

अन्या मदेन परिरभ्य निवृत्तलज्जा
स्वानन्दसिन्धुरसवीचिषु निर्ममज्ज ॥२७॥
इत्थं रमण्यस्ताः सर्वाः प्रियदर्शननिर्वृताः ।
संतापं विजहुर्यद्वत्प्राप्यानन्दमयं जनाः ॥२८॥
भूयस्तदङ्गसङ्गिन्यै सच्चिदानन्दशक्तये ।
पश्यन्त्यस्तदभेदेन नाभ्यसूयन् मृगीदृशः ॥२९॥
एषास्य सहजानन्दशक्तिर्लीलाविनोदिनी ।
नानारसासवावासा प्रमोदविपिनेश्वरी ॥३०॥
एषा श्रीः सततं चास्य पुरुषस्य महात्मनः ।
यामाद्यां सहजां शक्तिं मुनयः संप्रचक्षते ॥३१॥
प्राप्स्यामो भूरिदौर्भाग्यमनया रहिता वयम् ।
प्रियोऽपि नास्मत्सविधे संस्थास्यत्यनया विना ॥३२॥
अहो चन्द्रमसः सेयं चंन्द्रिकेव विराजिता ।
कोर्थोऽनया विनास्माकं दासीनां प्रभुतुल्यया ॥३३॥
वयमेनां समाराध्य कामदां कामयामहे[1] ।
पुत्रीं जनकराजस्य प्रमोदविपिनेश्वरीम् ॥३४॥
जय देवि[2] महाराज्ञि यासि त्वन्नः परानिधिः ।
नित्यं परिचरिष्यामस्त्वां वयं दासिका इव ॥३५॥
ततोऽनयाभ्यनुज्ञाताः समस्तास्ता मृगीदृशः ।
व्यरुचन् परितस्तस्य चन्द्रस्योडुगणा इव ॥३६॥
सोऽपि ताभिर्विनिर्द्धूतविरहामलकान्तिभिः ।
स्वशक्तिभिः समग्राभिः शुशुभे पुरुषोत्तमः ॥३७॥
यूथव्यूहं समादाय वामदक्षिणयोर्विभुः ।
सरय्वाः पुलिनं रामः प्राविशत् केलिकाम्यया ॥३८॥
नित्यं विकसितानन्तदिव्यानेकसुरद्रुमम् ।
गुञ्जद्भ्रमरसंघुष्टनिकुञ्जललिताङ्गणम् ॥३९॥

---

१. सह—अयो० । २ देवमहा°—अयो० ।

वीचीभुजसमास्तीर्णकोमलस्वच्छवालुकम् ।
उपर्यास्तीर्णवनितावेषचन्द्राच्छचन्द्रिकम् ॥४०॥
मन्दारविपिनान्दोलसुरभ्यनिलसेवितम् ।
रत्नवेदीसमुत्थांशुसंव्याप्त[1]गगनान्तरम् ॥४१॥
उदञ्चत्पञ्चमालापविकस्वरपिकस्वरम् ।
राजहंसवधूवृन्दानुकृतप्रमदागणम् ॥४२॥
नानारतिरहस्योत्थशब्दचाटुशुकीरवम् ।
उद्गतानन्दकन्दर्पसपर्यायोग्यसंविधम् ॥४३॥
प्रियेण तास्तत्र समेत्य निर्वृतास्तदाननालोकसुधात्तभोजनाः[2] ।
विधूतविश्लेषरुजो मृगीदृशो निकाममापुः सकलान् मनोरथान् ॥४४॥
निजोत्तरीयैः कुचकुम्भलेपितश्रीखण्डचन्द्रागुरुकुङ्कुमाङ्कितैः ।
अरीरचन्नद्भुत[3]लीलनोत्सुका प्राणेश्वरायातिमहार्हमासनम् ॥४५॥
तत्रास्थितोऽसौ शुशुभे रघूद्वहः प्राणेश्वरो लोचनलास्यलालितः ।
पारे परार्द्धस्मररूपदर्पहा गोपाङ्गनामण्डलमण्डनाकृतिः ॥४६॥
परस्परालापनिरीक्षणस्मितभ्रूविभ्रमाश्लेषकरग्रहादिभिः ।
संपूज्य संस्तुत्य तथात्मनः प्रियं प्रियाः समेताः किमपीदमूचिरे ॥४७॥

गोप्य ऊचुः

ये सेवमाना ननु सेवमाना असेवमानानपि सेवमानाः ।
ये सेवमानान् परितो सेवमाना न सेवमानास्त इमे के वदस्व ॥४८॥
मातृः पितॄन् स्निग्धतमानपत्यभ्रात्रादिकान् सुहृदश्चात्मबन्धून् ।
हित्वा च पादाब्जतलं प्रपद्य त्वं सेवमानान् परिपासि कच्चित् ॥४९॥
किंवा भवैकान्तरतानभव्यान् निन्दापरान् लम्पटान् नीचसत्त्वान् ।
कन्दर्पानुध्यानपथे[4]प्रवृत्तांस्त्वसेव्यमानान् भजसे नाथ कच्चित् ॥५०॥
किंवोभयभ्रष्टहृदः शिलामयान् कुयोगिनो नासि पापेषु निष्ठान् ।
ईदृग्विधान् मानुषाख्यान् पशूंस्त्वं प्रपूर्णरङ्गं भजसे नाथ कच्चित्॥५१॥

---

१. संप्राप्त°—अयो०, बड़ो० । २. सुधोत्तमा जनाः—रीवाँ, बड़ो० । ३. अचिक्लृपन्नद्भुत°—अयो०, अरीरचन्नन्दत—बड़ो० । ४. कदाप्यनुध्यान° —अयो० ।

इत्येवमुक्तो भृशमाभीरदारैः परात्परो भगवान् रामचन्द्रः ।
श्रियायुतः कोटिकन्दर्पकान्तिः स्मित्वा रेभे प्रतिवक्तुं महात्मा ॥५२॥

श्रीराम उवाच

विहाय संसारमपारसान्तरं[1] भवादृशान् भजतः प्राकृतौघान् ।
भजामि नित्यं निजवामाङ्गभागं रमामपि प्रेयसीं संविहाय ॥५३॥
संसारिणो विषयैकान्तलुब्धान् न मां परं भजतो नो भजामि ।
कामानुरूपां गतिमेषां ददामि कुर्वे सुरानासुरीष्वेव भूषु ॥५४॥
नान्यानहं सेवमानान् भजामि जनान् प्रसिद्धोभयधर्महीनान् ।
प्रपद्यन्ते ये यथा मां मनुष्याः प्रपद्येऽहं तांस्तथा भावयुक्तः ॥५५॥
न वस्तुतोऽहं[2] भजतो भजामि कुतश्चैवाभजतो भूमिजन्तून् ।
आत्मारामःसन्निजैकान्तकेलिर्लोकातीतः क्रीडमानश्च नित्यम् ॥५६॥
भजाम्यहं क्वापि भजतोऽपि जन्तून् कृपावशस्तत्कृतमीक्ष्यमाणः ।
स्नेहातुरान् दैवदृष्टचावरार्थान्[3] तथातुरान्[4] मानहीनानशक्तान्[5] ॥५७॥
यत्संगता[6] मद्वपुषोंऽशवः प्रिया यथेयं श्रीर्भाति वामाङ्गसंस्था ।
इतोपि[7] सख्योऽभ्यधिका रासकाले[8] यदेवमन्तर्मयिमानसं[9] वः ॥५८॥
मदङ्गसंगोपचिता शिखावद्[10] यूयं प्राणेभ्योऽपि मे प्रेयसीः स्थः ।
नपारयेऽहं भवतीप्रेमबन्धं निष्कारणं मित्रभावं जुषाणाः ॥५९॥
भवतीनां वै विप्रलम्भानुभूत्यै तिरोहितो भवती[11]स्थो मयात्मा ।
आविर्भावं प्रापितस्तत्क्षणेन[12] मा मा हिंसीज्जातवेदाः स्मरोत्थः ॥६०॥
तन्मेऽसूया नैव कार्या कदाचित् प्रेम्णौदार्यं वीक्ष्यमाणाय शश्वत् ।
लोके प्रेम्णः पदवीं शिक्षयाणः किं किं चित्रं नैव कुर्वे रमण्यः ॥६१॥
लीलावैचित्र्यात् सहजानन्दरूपाप्यन्तर्द्धानं यावदेषा जगाम ।
नैवामुष्यां मद्वियोगः कदाचिद् दृष्टो भूतः स्वप्नभावे सुषुप्तौ ॥६२॥

---

१. °सागरं—अयो० । २. नैवस्तुतो–अयो०, नमः स्तुतो–बड़ो० । ३. वराकान्–अयो० । ४. चिन्तातुरान्–अयो० । ५. असक्तान्–रीवाँ, बड़ो० । ६. यूयं गता–अयो० । ७. अतोऽपि–बड़ो० । ८. क्वापिकाले–अयो० । ९. यदेयमन्तर्दधतेमदन्तः–अयो० । १०. शिखोवला–अयो०, शिखांवला–बड़ो० । ११. भवदन्तिकस्थो—अयो० । १२. °र्भावो प्रेमबन्धस्तत्—रीवाँ, बड़ो० ।

संपूर्णाःशरदो[1] भजमानाः प्रियं मां धन्या धन्या धन्यधन्याश्च धन्याः ।
प्राप्तं मनागीदृशं प्रेम दिव्यं युष्मास्वेवं प्रियमेकान्तवत्यः[2] ॥६३॥
संसेवनीयः किमुतान्यैर्मयापि पुण्यस्तीर्थो भवतीपादरेणुः[3] ।
स्त्रियो भूत्वा पौरुषं दिव्यमेवं यूयं प्राप्ताः शङ्कराद्यैरलभ्यम् ॥६४॥
प्रेम्णामलेनान्तरात्मप्रसादात् प्रीतः क्रीतो भवतीभिः सदाहम् ।
अविप्रयुक्तः सततं चैव रंस्ये वश्यां वृत्तिं दर्शयानः समग्राम् ॥६५॥
नित्ये धाम्नि दिव्यसाकेतसंज्ञे सरयूपुलिने परे नित्यरम्ये ।
सीतालोके भूरि प्रमुदवने[4] यत्र क्रीडेऽहं तत्र तत्र स्थ यूयम् ॥६६॥
यूयं नित्याः कीर्तिता वेदमूर्ध्नि, नित्यानन्दा नित्यगा नित्यसिद्धाः ।
लोकोऽयं वो नित्यसच्चित्सुखात्मा किञ्चिज्ज्ञात्वा कामितो ब्रह्मविद्भिः॥६७॥
तेऽमी स्थिताः पुरतोऽग्नेः कुमारा ब्रह्म विन्दन्तः षष्टिसाहस्रसंख्याः ।
तद्वत् स्थिताः[5] श्रुतयोऽमूः पुरो[6] वो ब्रह्म विन्दन्तीः सततं कामयानाः॥६८॥
अन्ये च सिद्धा ऋषयो ब्रह्मनिष्ठाः ब्रह्मर्षयो वन्दिता नारदाद्यैः ।
नेमे लोकं प्राप्तुमर्हन्ति सख्यो यद्यप्येते कामतत्त्वेन विद्धाः ॥६९॥
सर्वस्योर्ध्वं भाति वैकुण्ठधाम ऊर्ध्वं वैकुण्ठाद्या[दा]दिवैकुण्ठधाम ।
राधालोकं तस्य चोर्ध्वं विभाति सीतालोकस्तस्यचाप्यूर्ध्व एषः ॥७०॥
नातः परं लोकसंस्थागमेषु दृष्ट्वा क्वचित् सरहस्येषु तेषु ।
चिल्लोकोऽयं मामकीनो मदात्मा पूर्णः सदा पूर्णपूर्णः सुपूर्णः ॥७१॥
आनन्दात्मा स्वे महिम्नि प्रतिष्ठः सत्याकारः सत्यधर्मा[7] सुसत्यः ।
चिद्रूपोऽयं चित्प्रतिष्ठाप्रतिष्ठः कालातीतो मायया चाप्यधृष्यः ॥७२॥
यस्माज्जातः पूरुषः कोऽपि कालः श्रीमान् विष्णुर्लोकलोकेशनाथः ।
जिष्णुर्विष्णुः कृष्ण इत्याद्यनेकैर्नाम्नां वृन्दैः कीर्तितः सोऽपि चांशः ॥७३॥
यल्लोकोऽसौ कीर्तितो रामलोकः सीतालोकस्तत्र चानन्दलोकः ।
ईदृक्प्रेम्णा तमिमं प्राप्य यूयं जाताः सख्यः कृतकृत्या[8] पुरैव ॥७४॥

---

१. यूयंप्रिया—अयो० । २. युष्मावेशं प्रिया मे करोति–अयो० । ३. किमुतान्यैर्मया विधृतः शीर्षमध्ये दिव्यतीर्थो भवतीनां पादरेणुः–रीवाँ, बड़ो० । ४. प्रमोदवने–बड़ो० । ५. तदास्थिता—रीवाँ। ६. नूपुरो—रीवाँ, बड़ो० । ७. सत्यधर्ता—रीवाँ, बड़ो० । ८. प्रेमसत्या—रीवाँ, बड़ो० ।

न यत्र दुःखं न जरा न मृत्युर्न कालबाधा प्रकृतेर्न प्रभावः ।
नित्ये सत्ये तत्र यूयं रमध्वं रसेन संयुग्विप्रयोगात्मकेन[1] ॥७५॥

संयोगाद्विप्रयोगो मे प्रियो नित्याभिभाषितः ।
रामात्मनाहं संयोगी रामात्मा विप्रयोगवान् ॥७६॥
संयोगरसभोगाय रामोऽहं वै वसे वने[2] ।
विप्रयोगानुभूत्यै तु रामः साकेतपत्तने ॥७७॥
रसनाभा तु रामोऽहं रामोहं रासनायकः ।
उभयोर्नित्यभोगाय प्रमोदवनमास्थितः ॥७८॥
गावो गोपास्तथा गोप्यो नित्यलीलापरिच्छदाः
राजन्ति स्वस्वभावेन प्रमोदविपिने मम ॥७९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डिसंवादे रामरासो नाम
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एवं श्रुत्वा रसिकेन्द्रस्य दिव्यरसात्मनो राघवेन्द्रस्य वाचः ।
गोपाङ्गनास्तुष्टुवुस्ताः[3] समस्तास्त्यक्त्वा वियोगप्रसवं चित्ततापम् ॥ १ ॥
अथेप्सितानां व्रजसुन्दरीणां परस्पराबद्धकराम्बुजानाम् ।
मध्ये स्थितो रामचन्द्रो विरेजे तत्कण्ठयोर्विलसद्बाहुयुग्मः ॥ २ ॥

इत्थं शतं सहस्रं च मूर्त्तीः[4] कृत्वा निजात्मनः ।
रेमे रामो रमोन्मादचलच्चरणतालदृक् ॥ ३ ॥

तासां प्रेयो नाभिमध्योदरान्तर्लीलान्योन्याबद्धहस्ताम्बुजानाम् ।
एको हस्तः खे चलन् भावरीत्या कामाम्भोजे भ्राजिनालो विरेजे ॥ ४ ॥
ताः प्रेयसो[5] नूपुरकिङ्किणीनां नादैः स्वाङ्घ्रिस्थायिनां नूपुराणाम् ।
नादान् मुहुर्मेलयित्वा नटन्त्यः स्वारस्यमापुर्ललितं सामरस्यम् ॥ ५ ॥

---

१. रामात्माविप्र°—रीवाँ, बड़ो० । २. वै वनेस्म्यहं—अयो०, संविशन् वने—बड़ो° । ३. स्तस्थुस्ताः—रीवाँ, बड़ो० । ४. मूर्तिं—रीवाँ, बड़ो० । ५. प्रेयसीः—रीवाँ, बड़ो० ।

तस्मिंश्च रासे तालशङ्खा मृदङ्गाः सझर्झरा पटहाः झल्लरीश्च[1] ।
भेरीवीणावेणुवाद्यप्रभेदाः संमूर्त्तिकाश्चिन्मयाः प्रादुरासुः ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा रासोत्सुकं रामं प्रेयसीश्चापि तस्य ताः ।
वाद्यवादनकारिण्यः प्रादुरासुर्वरस्त्रियः ॥ ७ ॥

ततानां विततानां च छादितानां समन्ततः ।
घनानां सुषिराणां च प्रादुरासीन्महान् ध्वनिः ॥ ८ ॥

तं ध्वानमनुकृत्याभूद्दिवि दुन्दुभिजो ध्वनिः ।
अवाकिरंश्च मन्दारमाल्यानि त्रिदिवौकसः ॥ ९ ॥

चलच्चरणनूपुरैर्ललितकिङ्किणीनां गणै-
रनेकवलयैस्तथा विधुत[2]बाहुवल्लीस्थितैः ।
अभूत् सततकाहलः किमपि तत्र कोलाहलः
सुवर्णमणिभूषणप्रकरसिञ्जितैर्मिश्रितः[3] ॥१०॥

प्रेयसीरनुचकार वल्लभो वल्लभं च ललना अनुचक्रुः ।
ते परस्परविधेयचातुरीवेधसः शुशुभिरे रसरासे ॥११॥

प्रेयसीमधुरकण्ठसुस्वरैः प्रेयसो जयति कण्ठसुस्वरः ।
यत्प्रमोदवनवासिकोकिला मौनमापुरनुसर्तुमक्षमाः[4] ॥१२॥

मध्ये मध्ये कनकलतिकाजातमालैस्तमालै-
र्मध्ये मध्ये विलुलिततडिन्मोदमानैः[5] पयोदैः ।
मध्ये मध्ये कनकमणिभा[6]संगशीलैश्च नीलैः
प्राप्तुं शक्या नखलु रमणं राममासां[7] विलासाः ॥१३॥

एवं स ताभिः शुशुभे रमाभिः कामप्यपूर्वां परमां[8]दधानः ।
वेणुं क्वणन्मध्यगतो दामिनीनां मध्ये तडित्वानिव जातगर्जः ॥१४॥

मुग्धाङ्घ्रीणां विलासै रणरणकरणत्किङ्किणीनूपुरादयै-
र्दोर्वल्लीनामुदञ्चद्वलयकलकलैः सस्मितै[9]र्भ्रूविजृम्भैः ।

---

१. झालरीः—रीवाँ, बड़ो० । २. विद्युतत्—रीवाँ, बड़ो० । ३. मिश्रितैः—रीवाँ । ४. °मक्षणः—अयो० बड़ो० । ५. °मोदैः—अयो० । ६. °मणिना—रीवाँ, बड़ो० । ७. रामरासं—रीवाँ, बड़ो० । ८. मनसां—अयो० । ९. सुस्मितैः— अयो० ।

सानङ्गैर्मध्यभङ्गैः कुचपटचलनैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।
काञ्चीवेणीकलापैः श्लथलसदलकग्रन्थिभिस्ता विरेजुः ॥१५॥

स्वेदाञ्चितानि वदनानि विभावतीनाम्
स्वेदाञ्चितानि च वपूंषि विलासलासैः ।
रासोन्मदप्रणयपाणिविकर्षितानां
रेजुर्नितान्तसुरतान्तगतानि यद्वत् ॥१६॥

सीता शीतांशुसीता[1] च सुधा श्रीः कमला कला ।
कामिनी कामदा कामा कमनीया कलावती ॥१७॥
राधा कृष्णानुराधा च सुधाधारा मणीरमा[2] ।
ललनाकोटियूथेषु षोडशैव सुमध्यमाः ॥१८॥
एता मुख्यतमाः प्रोक्ता यथा कान्तस्तथैव ताः ।
स्वामिनीशब्दभाजश्च दामिनीतुल्यकान्तयः ॥१९॥
रामेण सह नृत्यन्त्यो रेजिरे रासमण्डले ।
स्वस्वमण्डलमुख्याश्च प्रेयसा प्रतिलालिताः ॥२०॥
जगुरुच्चैः स्वरेणैताः प्रियकण्ठस्वरोर्जिताः ।
शुद्धमिश्रप्रभेदाश्च स्वरजातीः सलक्षणाः[3] ॥
प्रियेण सह गायन्त्यः पुपुषुः परमां श्रियम् ॥२१॥

काश्चित् परं वेणुरवानुमोहिता[4] प्रमत्तपुंस्कोकिलकण्ठजित्वरैः ।
स्वरैरगायन् वनिता वनान्तरे प्रियेण साकं बहुजातसंभ्रमाः ॥२२॥

काश्चित्स्वयूथमवलम्ब्य सह प्रियेण
गायन्त्य उच्चतरकण्ठरवाप्रमानाः ।
अन्याः सुनृत्यकलया दधतीः पटुत्व-
मौत्सुक्यसंगतहृदो नदयाम्बभूवुः ॥२३॥

कदाचिद् वनिता एव सर्वाः संजगुरुच्चकैः ।
अनृत्यत् प्रिय एकाकी कलाचातुर्यदर्शनैः ॥२४॥

---

१. सीता सुसीता—रीवाँ, बड़ौ० । २. °मिणो°—अयो०, रीवाँ । ३. सलक्ष्मणाः—अयो०, रीवाँ, बड़ो० । ४. °मोदिताः—अयो० ।

कदाचिद् गायतोऽत्युच्चैः प्रेयसस्तुष्टिहेतवे ।
अनृत्यन् वनिताः सर्वाश्चातुर्याञ्चितविग्रहाः ॥२५॥
काचिच्च रामपरिवर्तनजश्रमेण
श्रान्ता[1] गुरुस्तननितम्बभरालसाङ्गी ।
स्विद्यन्मुखी श्लथलसद्रसना[2] प्रियांसे
प्रादाद् भुजं तरलकूजितकङ्कणाढ्या[3] ॥२६॥
काचिद् भुजौ दृढतरस्मरपाणिपाशौ
कण्ठे निधाय दयितस्य च लम्बमाना ।
शंपामयी स्रगिव मेचकमेघ[4]लग्ना
रेजेतरां तरुणिरग्रिमघर्मकान्तिः ॥२७॥
काचिन्मुखेन रमणस्य निजाङ्कसंस्थं[5]
काश्मीरचन्दनकुरङ्गमदानुलिप्तम् ।
आघ्राय जातपुलका प्रणयोत्करेण
गोपी सुगुप्तगतिरेव मुहुश्चुचुम्ब ॥२८॥
कस्यैचिदाकलितरासविलासनृत्य-
विक्षिप्तकुण्डलमणीगणमण्डिते स्वे ।
गण्डे स्वगण्डफलकं श्रमतो दधत्यै
प्रादात् प्रियो हि लतिकादलचर्वितं स्वम् ॥२९॥
अन्या च रासरसितै[6]र्वलयैर्नदन्ती[7]
कूजन्महार्हमणिनूपुरमेखलाद्या ।
पार्श्वस्थितस्य रुचिरं रमणस्य हस्तं
श्रान्ता स्तनोपरि निधाय सुखान्यवाप ॥३०॥
काचिज्जवेन दयितं परिरभ्य तुङ्ग-
वक्षोजविक्षुभितमक्षि[8] चुचुम्ब तस्य ।

---

१. श्रान्त उरु०—रीवाँ, बड़ो० । २. सूनथसप्रसना—रीवाँ, बड़ो० । ३. °कंकणाद्या—अयो०, बड़ो० । ४. शृङ्ग०—रीवाँ, बड़ो० । ५. °संस्था—रीवाँ, बड़ो० । ६. °रसिका—अयो०, °रचितैः—बड़ो० । ७. नटन्ती— अयो० । ८. विक्षोभित०—रीवाँ०, बड़ो० ।

इष्टं पृथक् पृथगनङ्गरसं निगूढ-
रासान्तरे पुपुषुरद्भुतकेलिदक्षाः ॥३१॥
गोपाङ्गना रुचिरराजकुमारवर्य-
हस्तद्वयाकलितगाढगृहीतकण्ठ्यः ।
रासक्रियाललितमण्डितमण्डलीषु
स्वच्छन्दमेव बहुधा विदधुर्विहारम् ॥३२॥
कदाचिद् गोपतरुणीमण्डलान्तरमण्डनः ।
रामः सीतासमं रेजे क्वणद्वेणुयुताधरः ॥३३॥
कदाचित् स्वाङ्गकान्त्यैव[1] प्रियामन्तर्हितां दधत् ।
चकार कौतुकं स्त्रीणां क्व गता महिषीत्यहो ॥३४॥
तासु संभ्रान्तचित्तासु स्थित्वा मण्डलमध्यतः ।
दर्शयन् सहजां लक्ष्मीं जयेति मुहुरीडितः ॥३५॥
साखिलव्रजकान्ताभिर्दीप्ताभिरपि मण्डले ।
अप्रधृष्यैव शुशुभे लोकसौन्दर्यजीवनी ॥३६॥
कदाचित्तस्या हस्तेन हस्तमादाय वल्लभः ।
जगाम कुञ्जभवने दासीवत्तास्तु तस्थिरे ॥३७॥
आज्ञापयिष्यति प्रभ्वी प्रभुर्वा किं न दूत्यमूः ।
सावधानतया तस्थुः कुञ्जद्वारलसद्दृशः ॥३८॥
कुञ्जालयं सुखं गम्य कृत्वा पूर्णं मनोरथम् ।
एताभ्यां पुनरेताभ्यां जयेत्युच्चैस्तरां जगुः ॥३९॥
संभुक्तिपानपरिधानविभूणानि
लेपाञ्जनालभनमार्जनव्यञ्जनाद्यैः ।
तौ ता विशेषधिषणा[2] परिचेरुरुच्चै-
र्दासीवदप्यनुपदं कलितावधानाः ॥४०॥
कान्तेन भूरितरकेलिषु कोविदेन
ताः संसदि प्रतिपदं बहुदत्तमानाः ।

---

१. काङ्क्षैव—बड़ो० । २. विशेषैः परि°—रीवाँ, बड़ो० ।

नैतां[1] प्रियां समनुलङ्घितुमीशिरेऽपि
पूर्वं विसोढविरहस्मृतिकातराक्ष्यः ॥४१॥

नैवापि तासु वनितासु कुमारकेण
सार्द्धं प्रभूतरमणोत्सवसंभ्रमेषु ।
प्रत्यूहलेशमकरोद्यदमुष्य साक्षा-
न्नित्याङ्गसङ्गमवतो सहजैव लक्ष्मीः ॥४२॥

अश्रान्तरासरसिको रमणः स इत्थं
गुप्तस्फुटं प्रकट[2]केलिविधानदक्षः ।
रेमे रमैकरमितो रमणो रमाभि-
राभीरराजकुलभूषणसुन्दरीभिः ॥४३॥

कदाचिन्नृत्यमानानां वनितानां प्रियैः सह ।
भ्रमरालिरभूद्वीणा कोकिलामुरजध्वनिः ॥४४॥
रामरासरसं वीक्ष्य देवा ब्रह्मशिवादयः ।
विचिन्त्यमाना मनसि बभूवुः प्रेमघूर्णिताः ॥४५॥

अस्तमाममरनागनगीनां रूपसारभरजोऽप्यभिमानः ।
किङ्करीवदिह दर्शनमापुर्दूरतो रसिकरासरसेषु ॥४६॥

[3]आदित्या विश्वेदेवाश्च वसवस्तुषितास्तथा ।
भास्कराश्चानिलाश्चैव महाराजिकसाध्यकाः ॥४७॥

रुद्राः समुद्रा गिरयो नदा नद्योऽप्सरोगणाः ।
विद्याधराश्च यक्षाश्च गन्धर्वाश्चैव किन्नराः ॥४८॥

ग्रहनक्षत्रताराद्याः प्रह्लादश्च विभीषणः ।
ब्रह्मर्षयो वसिष्ठाद्यास्तथा देवर्षयोऽखिलाः ॥४९॥

लक्ष्मीनारायणौ चैव पार्वतीशंकरौ तथा ।
गायत्री चापि सावित्री सरस्वत्यप्सरः शची ॥५०॥

---

१. नैताः—बड़ो० । २. प्रकल०—बड़ो० । ३. अयं श्लोको नास्ति—रीवाँ, बड़ो० ।

सर्वे देवगणाश्चैव हर्षिताः स्वस्वचेतसि ।
योषारूपं समास्थाय रामरासे समाययुः ॥५१॥
तेषां विमानसंदोहैरभवत् संकुलं नभः ।
रामो नवघनश्यामो महारत्नविभूषितः ॥५२॥
लक्ष्मीं दधद् गोपिकाभिः संस्थितो रासमण्डले ।
स्वस्वभावानुसारेण सर्वेषां दर्शनं ददौ ॥५३॥
गोपीं गोपीमन्तरा रामचन्द्रो रामं रामं चान्तरा गोपनार्यः ।
इत्थं जाते मण्डले मञ्जुलाभो रेमे रामो रामया राजमानः ॥५४॥
श्रीहस्ताब्जबद्धसम्बद्धकण्ठचोरन्योन्यं वा बद्धबाह्वोर्युवत्यः ।
वामं हस्तं चोर्द्धयित्वानयोश्च मध्ये रेमे रामचन्द्रःकदाचित् ॥५५॥
इत्थं द्वेधा मण्डलं कल्पयित्वा पर्यायेण क्रीडमानो वधूभिः ।
योगाधीशस्तत्र योगीव रामो रेमे स्वानां संमुदं वर्धयानः ॥५६॥
रासक्रीडावेषविस्रस्तबन्धैर्धम्मिलैः स्वैर्मल्लिकाः संवमन्त्यः ।
विद्युद्वल्लीजैत्रविद्योतिताङ्ग्यो गोप्यो रासे नाटकं चक्रुरुच्चैः ॥५७॥
रासे समुद्भूतरमाविलासे श्रीरामचन्द्रेण समं नटन्त्यः ।
धम्मिलवल्ल्युप्तनितम्बभारं वोढुं न शक्ता वनिता बभूवुः ॥५८॥
नितम्बौ स्रस्तकाञ्चीकौ कुचौ विगतकञ्चुकौ ।
धम्मिलान् बन्धनोन्मुक्तान् वहन्त्यो रेजिरे स्त्रियः ॥५९॥
खेचरौघाः सह स्त्रीभिश्चन्द्रश्चोडुगणैः सह ।
रामरासं समालोक्य विस्मितोऽभून्निरन्तरम् ॥६०॥
यावद्विजहार भगवान् तावत्कालं रजनीशः संस्थितोऽभूत् ।
चन्द्रेण स्वस्यां गतौ विस्मृतायां स्वस्वस्थाने खेचराश्चापि तस्थुः ॥६१॥
यावन्तस्ता मण्डले गोपनार्यस्तावद्रूपो राघवेन्द्रो बभूव ।
अन्योन्यं चालक्ष्य लीलाविनोदं रेमे ताभिर्भूरि दाक्षिण्यशाली ॥६२॥
तासां प्रभूतश्रमकर्षितगोपिकानां
वक्त्राणि वारिकणसंवलितालककानि ।
हस्ताम्बुजेन स ममर्षतरां ततोऽमूः
पीयूषपातसुखिता इव संबभूवुः ॥६३॥

इत्थं हरेर्भगवतः पुरुषोत्तमस्य
रामस्य राघवकुलामलकीर्तनस्य ।
यः संशृणोति रतिरासविलासलीलां
स रामसंपदमुपैति विमुक्तकामः ॥६४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
रामरासो नाम[1] पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रामस्य रासं नयनै[2]र्निपीय ते दण्डकारण्यजुषोऽग्निपुत्राः ।
कामेन संक्षुब्धहृदः समन्तात्तन्मडलं तुष्टुवुः कल्पिताशाः ॥१॥

मुनय ऊचुः

प्रावृट्समुन्नतनवीनघनाभिरामं
योषासमूहपरिकल्पितमण्डलस्थम् ।
पीताम्बरद्युतितडित्प्रकराभिरामं
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ २ ॥

श्रीमत्प्रमोदवनमञ्जुलकुञ्जवीथी-
विद्योतमानपरिपूर्णकलाहिमांशुम् ।
सामस्वरक्वणितवेणुसनाथपाणिं
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ ३ ॥

रत्नावलीयुतसुवर्णसुदिव्यमौलि-
मुक्तास्रगद्भुतसुलक्ष्यविशालवक्षः ।
श्रीवत्सलक्ष्मसुभगोत्तमदिव्यगात्रं
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ ४ ॥

उद्यद्विशालमणिमञ्जुलतुङ्गनासं
गण्डस्थलप्रतिफलत्कलकुण्डलाग्रम् ।

---

१. रामरासे—अयो०, रीवाँ, बड़ो० । २. तपनैर्—रीवाँ, बड़ो० ।

कस्तूरिकातिलकभूषितभालदेशं
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ ५ ॥

केयूरलम्बनललामभुजद्वयाग्र-
बन्धोद्गृहीततरकौस्तुभशोभि कण्ठम् ।
पादाम्बुजक्वणितनूपुरकिङ्किणीकं
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ ६ ॥

एकद्वयत्रिचतुरादिभृतक्रमात्त-
तालप्रबन्धरचनानयनाभिरामम् ।
सङ्गीतशास्त्रविततछलका[1]गुरुं तं
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ ७ ॥

नृत्यन्तमद्भुतकलानिकरप्रवीण-
मानापलापरचनैकविधानदक्षम् ।
वंशीधरं नटवरं वरदोत्तमाङ्गं
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ ८ ॥

अङ्गोन्मिलन्मलयजद्रवजातभक्ति
रङ्गत्त्रिभङ्गकलितातिललामकामम् ।
कैशोरवेशमतिवर्त्य परिस्फुटन्तं
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ ९ ॥

मन्दारमूलमधिगम्य विराजमानं
गोपाङ्गनाविरचितोत्तममण्डलास्यम्[2] ।
पीतांशुकच्छविनिबद्धकटिप्रदेशं
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥१०॥

मन्दस्मिताधरसुधारसरञ्जितोष्ठं
लोलालकावलितमुग्धकपोलदेशम् ।
पादाम्बुजप्रथिततालविधाननृत्यं
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥११॥

---

१. छलकं—बड़ो० । २. गोपांगनाभी रचितोत्तममंडलाग्र्यम्—अयो० ।

[1]ताम्बूलिकादलसुचर्वणचारुराग-
संवर्धगोपरमणीक्षणचुम्बनोग्रम् ।
तत्तुङ्गवक्षसिजमर्दनलग्नहस्तं
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥१२॥

सीतानिरन्तरविभूषितवामभागं
मध्यस्थलच्छविविनिर्जितसिंहमध्यम् ।
मन्दस्मितप्रसर[2]मण्डितमण्डलास्यं
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥१३॥

श्रीरत्नवेदिविपुलीकृतमण्डलान्तः-
कोटिप्रकारपरिक्लृप्तनिजप्रकाशम् ।
वामाङ्गसङ्गिसहजास्पृहणीयकेलिं
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥१४॥

श्रीमत्प्रमोदवनकल्पितमण्डलाब्ज-
सत्कर्णिकार्पितरमारमणैक[3]मूर्तिम् ।
स्वस्वामिनीसमनुवाञ्छितदिव्यरासं
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥१५॥

ब्रह्मेन्द्रशङ्करमुखत्रिदिवालयौघ-
हस्ताम्बुजच्युतसुरद्रुमपुष्पवृष्टिम् ।
कोटीन्दुजित्वरकिरीटमणिप्रभाढ्यं
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥१६॥

जय जय जय सहजानन्दरसनिर्भरनिजविलासमोहितब्रह्मादि-सुरसंस्तूयमान कुटिल[4]गोपाङ्गनाजनकटाक्षसमुद्भूतनूतनकन्दर्पशर-लक्ष्यीकृतचित्त कुन्दवनेश्वरिमनोरथपूर्तिप्रभावप्रेमपरिपालक सच्चि-दानन्दमयपरब्रह्मरस स्वानन्दैककन्द सहजकल्याणगुणनिधान नमस्ते नमस्ते ॥१७॥

---

१. अयं श्लोको नास्ति—अयो० । २. °स्वविर°—रीवाँ, अयो० । ३. रमारनैक—अयो०, बडो० । ४. कुट्टित—रीवाँ ।

किं त्वामशेषमतिसाक्षिणमर्थयामो
जानासि सर्वमपि नः स्पृहणीयमर्थम् ।
अस्यैव तावकविलासरसस्य नित्यं
पात्राणि किं नहि भवाम वयं स्मरार्त्ताः ॥१८॥

किं वा सहस्रजनुरर्जितकोटिपुण्य-
नैष्कर्म्यसिद्धिसुहितेन ननु त्वयैव[1] ।
दत्तामलभ्यवरभाजनतामुपेत्य
नित्यं भजाम निजवाञ्छितलाभतृप्ताः ॥१९॥

नो चेद् वयं विरहपावकदग्धदेहाः
स्नेहानुबन्धमहिमोद्धृतमोक्षसौख्याः ।
त्वत्पादपद्मपदवीं समुपेत्य भूयो
जन्मान्तरेऽपि कलयाम न किंचिदिष्टम् ॥२०॥

इति तेषां द्विजेन्द्राणां दण्डकारण्यवासिनाम्
श्रुत्वा विक्लवितं रामः प्रहसन्निदमुक्तवान् ॥२१॥

श्रीराम उवाच

सुविहिततपसो मुनीन्द्रवर्या दहनसुताः खलु दुर्लभोऽयमर्थः ।
श्रुतिभिरपि मदेककामुकीभिः शतशतकल्पजनुस्तपस्विनीभिः ॥२२॥

तदपि मयि निवेद्य वाञ्छितार्थे यदि न भवन्त उपेतवाञ्छिताः स्युः ।
इदमपि न ददेत तद्भवद्भ्यो दुरधिगमोऽपि मयोपकल्पितोऽर्थः ॥२३॥

कृष्णावताररूपेण समनुक्रीडता मया
आगामिनि भवे यूयं कृतकृत्या भविष्यथ ॥२४॥
कृष्णो नाम ममैवांशो जनिता नन्दगोकुले ।
तद्द्वारा मां समासाद्य फलितार्था भविष्यथ ॥२५॥
इयं च सहजाशक्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा ।
तत्रैवांशेन भविता राधानाम्नी मम प्रिया ॥२६॥

---

१. °सुहितो नुदयन्स्त्वयैव—रीवाँ, बड़ो० ।

तयाविष्टासु सर्वासु सुन्दरीषु रतिं भजन् ।
विहरिष्याम्यहं तत्र दिव्ये वृन्दावने वने ॥२७॥
सीता लोकस्य सामग्री समस्ता खलु तत्र माम् ।
उपस्थास्यति विप्रेन्द्राः स्वस्वांशेन विनोदकृत् ॥२८॥
तावद्यूयं जातवेदःकुमाराः शुद्धप्रेमाणः सततं मां भजध्वम् ।
ईदृग् लीलाकारमीदृक् स्वरूपमीदृग्भावं प्राप्स्यथोच्चैः प्रसादात् ॥२९॥
इति तस्माद्वरं लब्ध्वा दण्डकारण्यवासिनः ।
मुनयस्तत्र सिद्धार्थास्तस्थुर्ध्यानपरायणाः ॥३०॥
एवं स रसिकेन्द्रस्य विलासो राससंज्ञितः ।
त्रैलोक्यं शोभयामास कामतत्त्वेन जृम्भितः ॥३१॥
नद्यः[1] स्तब्धतया तस्थुर्लतावृक्षाश्चकम्पिरे ।
दद्रुवुश्चैव पाषाणाः साध्यसत्त्वानि तत्यजुः ॥३२॥
जहौ शम्भुः समाधिं च विश्वकृद्विश्वकल्पनाम् ।
भ्रमणं शिशुमारान्तस्तत्याज ग्रहमण्डलम् ॥३३॥
सर्वे बभूवुः सहसा परमानन्दनिर्वृताः ।
रामरासरसोन्मादवासिताखिलवृत्तयः ॥३४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
रामरासो नाम[2] षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततः सनृत्यश्रमजातभूयः स्वेदाम्बुलग्नाङ्गदुकूल[3] ईशः ।
निषेव्य शीतं सुरभिं समीरं लीलावगाहाय सरो जगाम ॥ १ ॥
तत्पृष्ठतः पङ्कजलोचनानां तडित्त्विषां स्वेदकणास्रुतीनाम्[4] ।
जगाम पङ्क्तिः खलु कामिनीनां संचारिणीनामिव वल्लरीणाम् ॥ २ ॥

१. तदा—बड़ो० । २. रामरासे—अयो०, रीवाँ, बड़ो० । ३. जातांग०—बड़ो० । ४. स्वेदकणस्तुतानां—अयो० ।

तासामनु व्रजन्तीनां किङ्किणीनूपुरध्वनिः ।
उद्बुद्धराजहंसौघश्चक्रे कोलाहलं निशि ॥ ३ ॥
स्वच्छाय[1]कुञ्जवनवृक्षलतातलेषु
तासां तनुद्युतिभरेण महोद्धतेन ।
आच्छादय ताःसमजनि[2]प्रकटं निगूढ-
शृङ्गारकेलिसरसीगमनाध्वमध्ये ॥ ४ ॥
धम्मिलकूटकुचकुम्भनितम्बबिम्ब-
भूयो भरोद्वहनजश्रमखिन्नगात्राः ।
एणीदृशो रसिकराजनिपीतसाराः
कष्टेन केलिसरसीषु प्रजग्मुरेताः ॥ ५ ॥
हेमत्विषां पुलिनभूमिषु संस्थितानां
तासां मुखेन्दुनिवहेन पयोगतेन ।
सा रामकेलिसरसी सहसैव रेजे
संपूर्णकोटिविधुमण्डलमण्डितेव ॥ ६ ॥
दिव्यावतंसमणिदीधितिवासिताभिः
श्रीरामचन्द्रचरणाब्जनखप्रभाभिः ।
तद्दिव्यकेलिसरसीसरसीरुहाणि
तत्कालमेव सविलासविकासमापुः ॥ ७ ॥
तासां मुखेन्दुशतशारदचन्द्रिकाभिः
प्रोद्भासितानि किल कैरविणां कुलानि ।
मञ्जीरमञ्जुलनिनादभरेण भूयो
निद्रायिता बुबुधिरेऽखिलराजहंसाः ॥ ८ ॥
उत्तार्य भूषणभरं वसनानि चामूः
स्नानक्रियासमुचितां तनुमुद्वहन्त्यः ।
कान्त्यैव संशुशुभिरे व्रजवामनेत्रा
हैम्यो लता इव विधूतदला वसन्ते[3] ॥ ९ ॥

---

१. स्वछाय—रीवाँ, बड़ो० । २. अछायद्यूतामजनि—रीवाँ, अछायधूत-मजनि—बड़ो० । ३. वतंसे—बड़ो० ।

निश्रेणिका पथझणङ्झणितातिमञ्जु-
मञ्जीरशिञ्जितविमोहितराजहंसाः ।
तास्तत्र केलिसरसीमवगाहनाय
श्रीराघवेन्द्ररसिकेन सहावतेरुः ॥१०॥

गम्भीरनाभिषु डुमड्डुमितानुनाद-
लीलाविधायितजलोर्मिषु लोलमानाः ।
सद्योभवाः श्रिय इवाम्बुनिधौ लसन्त्य
उक्षाम्बभूवुरभितो रघुवंशरत्नम् ॥११॥

रामोऽपि ताः करसरोरुहपत्रबद्ध-
वारांभरैः सरसिजानुनिपातधारैः ।
अभ्युक्ष्यतिस्म रतिकेलिनितान्ततान्ति-
श्रान्तान्मनः कमलवृन्दपरागगर्भैः ॥१२॥

गोपाङ्गनाकुचतटीपरिलिप्तभूरि-
काश्मीरचन्दनकुरङ्गमदप्रवाहैः ।
व्यामिश्रितं सपदि सारवमम्बुतत्-
त्रिवेणीप्रवाहपदवीमवहत् तदानीम् ॥१३॥

वक्रत्विषा सरसिजानि दृशा द्विरेफान्
गत्या मरालकुलमूर्मिकुलं त्रिवल्या ।
शैवालिकाः स्फुरदनुत्तमरोमपङ्क्त्या
प्रापुः पराभवमनः स्खलनं सुसाम्यम् ॥१४॥

आलोडितं रघुवरेण सरो विलोल-
वीचीविचालितसरोजपरागपूर्णम् ।
रेजे तमालकलिकानुकृते निजाङ्गे
पीताम्बरद्युतिमवाप तदञ्जसैव[1] ॥१५॥

नीचैरतुल्यमधरीयमथोत्तरीय-
मुच्चैः कुचेषु च सकञ्चुकभावमञ्चत् ।

---

१. तदंभसैव—रीवाँ।

आन्दोलितं प्रियकरैर्व्रजकामिनीनां
केलीसरोजलमनेकरुचा विरेजे ॥१६॥
गोपी नितान्तमवगाह्य सरोजलेऽस्मिन्
रामाङ्कसङ्गमवशादमृतादपीड्ये ।
संभोगसङ्गमसमुद्भवमङ्गसङ्गं
व्याप्य स्थितं श्रमभरं मुमुचुः सलीलम् ॥१७॥
मन्दानिलप्रचलतीरमहीरुहेभ्यः
संपातिनी विविधसौरभिपुष्पवृष्टिः ।
स्नान्तीषु गोपतरुणीषु चिरं बभासे
संसूच्यमानपुरुषायितविक्रमेव ॥१८॥
सर्वाः समं प्रियतमं करयन्त्रिकाभि-
राबध्य वारिपटलं परिषेचयन्त्यः ।
अम्भोधरं स्वकिरणैरभितः किरन्त्य-
स्तारा इव द्युतिभृतो गगने विरेजुः ॥१९॥
कान्तोऽपि तासु बहुधा करयन्त्रबन्ध-
धारायितानि सलिलानि नितान्तमुक्षन् ।
प्रावृट्पयोद इव काञ्चनवल्लरीषु
धाराजलानि कलयन् नितरां रराज ॥२०॥
काश्चित्परस्परमुदीर्णरसाः[1] सयूथं
चक्रुः करोत्करबलैर्जलकेलियुद्धम् ।
याश्चैव बिभ्रति पराभवमत्र तासां
पक्षे स्वयं भवति राघवसार्वभौमः ॥२१॥
बिम्बाधरामृतनिपापरिरम्भचुम्ब-
मुख्यैः करैर्विरचिताम्बुनियुद्धखेलः ।
निर्जित्य ताः सरसि संकुचतीर्मृगाक्षी-
र्जग्राह धावनकरी रसिकेन्द्र उच्चैः ॥२२॥

---

१. °माणाः—अयो० ।

ता एकसार्थमिलिता वनिता विजित्य
शैवालिकानलिननालगुणैर्निबद्ध्य ।
रामं त्रिलोकजनकं नयनाभिरामं
चुम्बन्ति लान्ति बहुशः परिरम्भयन्ति ॥२३॥
इत्थं परस्परमनेकविधां जलान्तः-
केलीं विधाय वनिताः सह वल्लभेन ।
पद्मैरनेकविधवर्णविराजिपत्रै-
र्भूषाविधानमतुलं रचयाम्बभूवुः ॥२४॥
श्रुत्योर्विभूषणमकुर्वत कर्णिकाभिः
पद्मच्छदैर्विरचयन्[1] कुचकञ्चुकानि[2] ।
केयूरहारवलयादिमृणालिकाभिः
स्वच्छन्दमेव विदधुर्वनिताः प्रवीणाः ॥२५॥
प्रत्यङ्गमेवमभिभूष्य सरोजहस्ता
उत्तेरुरम्बुजदृशः सरसीजलेभ्यः ।
कान्तं निषेवितुमिताः पुरुषोत्तमं तं
नेत्रोत्सवाः प्रियसुखा[3]मितरूपसाराः ॥२६॥
तासां पुरः कमलहारधरः समंतात्
किञ्जल्ककल्पितमनोहरमालिकाद्यः ।
रामो मृणाललतिकारसनाभिरामो
रेजे मतङ्गज इवानुसृतो गजीभिः ॥२७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
जलविहारवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

●

१. अरचयन्—अयो० । २. °कुम्कुमानि—रीवाँ। ३. प्रियइवामृत०—अयो० ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एवं कृत्वा जलक्रीडा रामो रमणपण्डितः ।
वनक्रीडां समारेभे सह व्रजवधूजनैः ॥ १ ॥
पुष्पस्तवकरम्येषु लताविटपवेश्मसु ।
उच्चावचेषु गुल्मेषु भूरुहेषु च भूरिषु ॥ २ ॥
काचिद्रघुपतेरंसमवलम्ब्य व्रजाङ्गना ।
पुष्पाण्यवचिनोतिस्म तुङ्गवृक्षगतान्यपि ॥ ३ ॥
एकाधिमालतीकुञ्जेऽहसत् केनापि हेतुना ।
अपराञ्जलिमुन्नीय तस्थौ पुष्पावलिप्सया ॥ ४ ॥
चन्द्रिकानिचयस्थानैर्व्रजस्त्रीणां मुखेन्दुभिः ।
दधुः सुमनसां केलिं भूरि व्याकोशपुष्पताम् ॥ ५ ॥
चम्पकानामभूद् ग्लानिस्तासां भूरितनुत्विषाम् ।
दूरात्प्रमत्तमधुपस्तोमैराद्रियमाणया ॥ ६ ॥
कण्टकप्रकराकीर्णस्वर्णकेतककाननम् ।
विहाय तासामङ्गानि भेजे भ्रमरमण्डली ॥ ७ ॥
कर्णेषु रोचयामासुःकार्तस्वरगणानतः[1] ।
अलयो व्रजकान्तानामङ्गसौरभ्यनिर्वृताः ॥ ८ ॥
भूषयामासुरङ्गेषु रसालतरुमञ्जरीः ।
ताः सौरभ्यविशेषेण बभूवुः पूरितान्तराः ॥ ९ ॥
स्थूलैः फलैः सवक्षोजा व्याकोशकुसुमान्विताः ।
स्त्रीभिः समाबभुःकाश्चित्प्रमोदवनवल्लयः ॥१०॥
अवलम्ब्य प्रियस्यांसं चिन्वन्त्यः पुष्पधोरणीम् ।
विजिग्युर्लतिकाः कान्ता विटपान्तरसंगताः ॥११॥
नानाविधानि पुष्पाणि स्मरचापशराकृतीः ।
अवचिक्युर्भूरुहेभ्यो लताभ्यश्च व्रजस्त्रियः ॥१२॥

---

१ मासुर्झंकार स्वरगानतः —अयो० ।

कदम्बगोलकग्राममवचीय व्रजस्त्रियः ।
वेणीर्विभूषयामासुः प्रान्तस्तवकशालिनीः ॥१३॥
सन्नाह[1]मञ्जुलाकारा वञ्जुलद्रुममञ्जरीः ।
गण्डयोर्मण्डयामासुर्निबध्यालकरज्जुभिः ॥१४॥
रसालमञ्जरीरन्यालकपाशैर्निबध्य च ।
चक्रे कपोलयोर्भूषां स्मरदर्पणदीप्तयोः ॥१५॥
अन्याश्च कर्णिकारौघैश्चक्रुः कर्णेषु कर्णिकाः ।
मोहनं प्रियचित्तस्य तदुन्मानैव सेहिरे ॥१६॥
अतसीकुसुमैः[2]काश्चिज्जुगुफुः कटिमेखलाः ।
गजमुक्ताफलस्थूलकिङ्किणीजालशालिनीः ॥१७॥
काञ्चीः प्रकल्पयामासुः काश्चिद्बकुलदामभिः ।
वलयानि प्रकोष्ठेषु भुजयोरङ्गदानि च ॥१८॥
अन्याश्च गुम्फनाभिज्ञाः कान्तस्वान्तनिवेशिनः ।
आकल्पान्कल्पयामासुः नागपुन्नागकेसरैः ॥१९॥
काश्चित्प्रियङ्गुकलिकाः कदम्बकुसुमैः सह ।
संमेल्य[3] मालिकां चक्रुस्तुङ्गवक्षोजयोः स्रजः ॥२०॥
[4]क्रीडापराजिताः काश्चिच्चाम्पेयकुसुमैः सह[4] ।
संमेल्य मालिकां चक्रुः प्रियप्रेमविवर्द्धिनीम् ॥२१॥
मालतीकुसुमैरेव काश्चिद्भूषागणान्यधुः ।
काश्चिज्जपाभिरेवान्याश्चम्पकैरेव केवलम् ॥२२॥
काश्चिदाकल्पमातेनुः पञ्चवर्णैः[6] प्रसूनकैः ।
प्रेयांसं मोहयामासुरिन्द्रचापलता इव ॥२३॥
तासामाकल्पसामग्रीकल्पनाय समन्ततः ।
प्रमोदविपिने तत्राविरासीत् कुसुमाकरः ॥२४॥
अनेकवर्णकुसुमजातिभिः समलङ्कृतः ।
कूजत्कोकिलभृङ्गौघहृदुत्कण्ठाविवर्द्धनः ॥२५॥

---

१. संत्रोट्य—अयो० । २. अतीश०—अयो०, रीवाँ, बड़ो० । ३. संमिल्य—रीवाँ, बड़ो० । ४—४. नास्ति—अयो० । ६. °पर्णै—रीवाँ ।

साद्य [सद्यः ?] संफुल्लविविधपद्मजातिसुखप्रदः ।
मधूकपल्लवस्तोमरञ्जिताष्टदिगन्तरः ॥२६॥
स्मरप्रतापसंकाशश्चलत्किंशुकराजिकः ।
निशातकरपत्राभविस्फुरत्केतकच्छदः ॥२७॥
सुवर्णमालतीजालसंचरन्मत्तषट्पदः ।
केतकीकाननोद्भूतपरागापूरिताम्बरः ॥२८॥
रक्ताशोकलतासद्म[1]संगीतशुकसारिकः ।
प्रियालमञ्जरीधूलीधूसरीकृतदिक्तटः ॥२९॥
समन्ततः संप्रवृत्ते वनान्तः कुसुमाकरे ।
आस्फालयामास धनुरुन्मदो मनसः सुतः ॥३०॥
रामारामा हृताकल्या रामेण सह संगताः ।
वसन्ते रेमिरे रम्यं रतिरङ्गरसात्मकम् ॥३१॥
रसालमञ्जरीवृन्दकल्पितोत्तंससुन्दरः ।
रेमे चात्म[2]विहारेण रामो रमयतांवरः ॥३२॥
वनराजीः परिस्पृष्टा[3]नीतमन्दसुगन्धयः ।
अलिझङ्कारभवनाः पवनास्तं सिषेविरे ॥३३॥
प्रमोदवनकुञ्जेषु कुसुमाकल्पमालिनीः ।
लता इव सिषेवेऽसौ कामिनीः कान्तभूरुहः ॥३४॥
सान्धकारेषु कुञ्जेषु दृङ्निमीलनलीलया ।
चौरो भूत्वा स्वयं रेमे रामो रामासुखप्रदः ॥३५॥
कदाचित्कामिनीवृन्दैर्दृङ्निमीलनकृ[4]त्प्रियः ।
अन्योन्यं रमयामास रमणीः[5] कृतकौतुकाः ॥३६॥
इत्थं जलस्थलवनेषु विहारशाली
व्यालीढकोटिललनासमुदायचित्तः ।

---

१. °संघ०—रीवाँ, बड़ो० । २. बत—अयो० । ३. परिस्पृष्ट्वा०—अयो० । ४. वृन्ददृग्मिर्मीलनकृत—अयो० । वृन्दैर्दानिमीलनकृत्—बड़ो० । ५. रमणीं—अयो०, रीवाँ ।

क्रीडां चकार रघुवंशविभूषणोऽसौ
श्रीमान् प्रमोदवनकुञ्जलतातलेषु ॥३७॥
इत्येतद्व्रजरमणीगणेन सार्धं
यो विक्रीडितमनिशं शृणोति मर्त्यः ।
पूतात्मा स निजजनिं कृतार्थयित्वा
चिल्लोके वसति सदा समुपैति रामभक्तिम् ॥३८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
वनविहारो नाम[1] अष्टत्रिंशोध्यायः ॥३८॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इत्थं प्रियेण प्रतिलाल्यमाना व्रजस्त्रियस्ताः प्रणयेनैव बद्धाः ।
अलौकिकं भोगमवाप्य निर्वृता न किंचिदप्राप्तमितो मेनिरे ताः ॥ १ ॥
त्रैलोक्यमध्येऽथा[2]धिक्यं यत्किंचिद्भोगवस्तु प्राप्यमथाप्यवाप्यम् ।
तत्प्राप्तं रामरामाभिरङ्गे यावत्तत्रोदेति चित्तस्य वाञ्छा ॥ २ ॥
प्रतिक्षणं पाल्यमानाः प्रियेण क्रीतेनेव तेन पुंसांवरेण ।
आत्मानं लोकाधिकं मन्यमानाः समाचकाङ्क्षुःसह जायाः पदं याः ॥ ३ ॥
तद्वत्त्रिवेदीशिरसां रहस्यं चिल्लोकस्थं परमैश्वर्यपात्रम् ।
रूपं पूर्णं ब्रह्मणस्तत्परं यन्निर्णीयते नेतिनेतीतिविद्भिः ॥ ४ ॥

ता एकदा प्रमुदकाननमध्यदीव्यत्-
सौवर्णसौधशिखरेऽमलरत्नदीप्ते ।
अन्वासितं सहजयैव तया रमण्यः
प्रेयांसमेव ददृशुः खलु शुक्लवर्णम् ॥ ५ ॥

---

१. वनविहारे—अयो०, रीवाँ, बड़ो० । २. °प्या°—रीवाँ, बड़ो० ।

एभिश्चतुर्भिरपि शङ्खगदादिभिस्तै-
रश्रान्तमायुधवरैः समुपास्यमानम् ।
मूर्तैः स्फुरद्भिरणिमादिक[1]सिद्धिसङ्घै[2]-
स्तद्वद्भुगैश्च सकलैरनुमृग्यमानम् ॥ ६ ॥

त्रैलोक्यरचनातीतैः पदार्थैः सकलैर्युतम् ।
तावन्मात्रे सौधतले कोटियोजनविस्तरे ॥ ७ ॥

तदप्यस्यैव सामर्थ्याद् दृश्यमानं चिदात्मकम् ।
यद्रामपरमं स्थानं धिया पश्यन्ति सूरयः ॥ ८ ॥

दृष्टं तु सर्वगोपीभिस्तमसः परमद्भुतम् ।
शुद्धसत्त्वाव्यवहितं यद्रूपं ब्रह्मणः परम् ॥ ९ ॥

तत्रैकदेशे ददृशुः साकेतपुरकल्पनाम् ।
मथुरां द्वारकां चैव श्रीमद्वृन्दावनं तथा ॥१०॥

तस्मिन् सौधतले दृष्ट्वा विस्मयं परमं ययुः ।
साकेतनगरे तत्र नृपं दशरथं तथा ॥११॥

चतुरस्तस्य रामादीन् कुमारान् दीप्तवर्चसः ।
ज्येष्ठस्य च कुमारस्य रावणाद्यसुरद्विषः[3] ॥१२॥

स्वप्रेयसो रामनाम्नः सविधे स्वात्मसंस्थितः ।
प्रमोदवनसंयुक्तं दृष्ट्वाश्चर्यं परं ययुः ॥१३॥

मथुरायां च कंसारिं केशवं लोकसुन्दरम् ।
अंशं श्रीरामचन्द्रस्य वीक्ष्य विस्मयमागताः ॥१४॥

श्रीमद्वृन्दावने दिव्ये प्रमोदवनस्यांशके[4] ।
ईदृग्विधाभिर्लीलाभिः खेलन्तं नन्दनन्दनम् ॥१५॥

ईदृग्रूपगुणकारं ईदृग्भूषाविभूषितम् ।
ईदृक्चेष्टावयोऽवस्थासन्निवेशविशेषितम् ॥१६॥

---

१. °द्भिर्निगमाधिक°—रीवाँ, °दिक°—बड़ो० । २. °साध्यैः—रीवाँ, °सर्वैः—बड़ो० । ३. °णाद्या (°द्याः—बड़ो०) सुर°—अयो०, रीवाँ । ४. °वनगौ-शके—रीवाँ, °गांशके—बड़ो० ।

ईदृक्परिकरोपेतं वीक्ष्य ता विस्मयं ययुः ।
अहो अयं स्वप्न उतेशमाया किंवास्मदीयो मतिविभ्रमः स्यात् ।
किंवा कैश्चित्कृत्रिमं संप्रयुक्तं येनास्मदीयं भ्रमतीवेक्ष्य चित्तम् ॥१७॥
अथो अयं [मुं ?] त्रिगुणातीतलोकं
चिल्लोकाख्यं[1] तस्य भर्तुः प्रासादात्[2] ।
सच्चित्सुखैकनिधिमग्रगण्यं वरेण्यं
वयं प्रपन्नाः शरणं तस्य तेन[3] ॥१८॥
एतत्साकेतनगरे पूर्वसिद्धे नवांशकम् ॥
तत्किनु पश्याम एवं साकेताख्यं मथुरायां
किं वा विमृष्यामो मथुरां साकेतधाम्नि ।
किं जानीमो द्वारकायामयोध्या-
मयोध्यायां द्वारकां वापि किंस्वित् ॥१९॥
वृन्दावने किं प्रमोदारण्यमेतत्
प्रमोदारण्ये किंनु वृन्दावनं तत् ।
चित्रं हि सौधस्य विशालतेयं
यत्रानन्तो भात्यसौ कोऽपि देशः ॥२०॥
अयं प्रमोदविपिने किं विभाति
किं वैतस्मिन् प्रमुदवनं चकास्ति ।
दिव्यं स्वानन्दौघं चिन्मयमप्रतर्क्यं
सत्त्वातीतं शुद्धसत्त्वात्मकं च ॥२१॥
अस्माकं वै पुरत इदं चकास्ति
किं वै स्फीतं धाम विष्वक्प्रवाहम् ।
पश्यामोऽत्र प्रेयसा सार्धमेतत्
स्वीयानां वै वृन्दमानन्दयुक्तम् ॥२२॥
पश्यन्त्यस्ता इत्थमग्रे चलित्वा
श्यामं रामं ददृशुः पूर्ववच्च ।

---

१. °लोकाख्यात्—रीवाँ, बड़ो० । २. प्रसादात्–अयो० रीवाँ, बड़ो० । ३. स्म इत्येव विद्मः—अयो० ।

तत्राप्येनं परिकरमात्मना समेतं
गोप्यो वीक्षाञ्चक्रिरे साभ्यसूयम् ॥२३॥
सहजा [जे ?] यं तथा स्वामी रूपान्तरविधानतः ।
प्रेयसोऽत्यन्तवैषम्यं दृष्ट्वा गोप्योऽवदन्निति ॥२४॥
दृष्टं क्वचिदहो आल्यः[1] प्रेयसोऽस्य छलात्मनः ।
अतिधूर्तस्य मूर्तस्य कैतवस्यैव कैतवम् ॥२५॥
तथास्त्ययमसावत्र कृत्वा रूपान्तरग्रहम् ।
प्रेयसीं रमयत्येनां विजातीयसुखात्मना ॥२६॥
प्रियो विश्वसनीयोऽसौ नैव सख्यः कथंचन ।
गुणक्रियायां व्यक्तौ वा यत्प्रामाण्यं न विद्यते ॥२७॥
आराध्योऽसौ पुनर्वृत्ते सहजानन्दलब्धये ।
नो चेत्प्राणपरित्यागं कुरुध्वं मानवर्जिताः ॥२८॥
को विशेषो मतस्त्वस्यामस्मत्सौभाग्यधर्षणः[2] ।
यद्वशीभावितो धूर्तो रमत्येकान्तसंगतः ॥२९॥
इत्यन्योन्यं समामन्त्र्य दुरात्मानो दृढव्रताः[3] ।
प्रमोदवनवीथीषु देहान् सन्त्यज्य गोपिकाः ॥३०॥
सहजामाविशन् सर्वाः सत्त्वांशेन मृगीदृशः ।
प्रियेणैकान्तभोगाय चक्रिरे कर्म दुष्करम् ॥३१॥
तावत्तासां शरीराणि कालशक्तिर्जुगोप च ।
न म्लानिर्न च विक्लेदो बभूव तत्प्रसादतः ॥३२॥
ततः स सहजानन्दशक्त्या रेमे च पूर्ववत् ।
संभोगविप्रलम्भाभ्यां स्वस्वकालोचितक्रियः ॥३३॥
साप्याचकाङ्क्षे कान्तस्य स्वरूपानन्दलब्धये ।
ततः साप्यविशद्रामं तद्रूपानन्दलब्धिहृत् ॥३४॥
परमानन्दपाथोधिस्वभावचिद्वपुर्द्धरम् ।
स्वरूपमात्रनिरतं विरतं विषयग्रहात् ॥३५॥

---

१. अल्पाः —रीवाँ, बड़ो० । २. °वर्धन—अयो० । ३. °श्रिताः—अयो० ।

सममित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबान्धवम् ।
तं प्राप्य सहजालक्ष्मीः परब्रह्मस्वरूपिणम् ॥३६॥
न प्रापातिशयानन्दं प्राप्ता न रतिजां मुदम् ।
यत्र सर्वे महानन्दा एकीभूता भवन्ति वै ॥३७॥
परस्परा न लक्ष्यन्ते गुणाः स्वार्थविवर्जिताः ।
मोक्षेति नाम्ना विख्याताः केवलं शून्यरूपिणः ॥३८॥
तामवस्थां गतो रामः केवलं ब्रह्मशब्दभाक् ।
संयोगं नैव जानाति केवलानन्दरूपधृक् ॥३९॥
स्मृत्वा पूर्वविलासौघं विप्रलम्भरसोऽभवत् ।
तदा प्राणप्रियां स्मृत्वा जजागार[1] महारुजः ॥४०॥
क्व याता मे प्रिया सीता चन्द्रवक्त्रा चकोरदृक् ।
अहो प्राणप्रिया सा मे हाहा प्राणप्रिया मम ॥४१॥
क्व गता क्व गता देवी वञ्चयित्वेव मामपि ।
स्वरूपं विस्मृतं भाति तां विना मृगलोचनाम्॥४२॥
ततो हृदयदेशात्तु रामस्यानन्दरूपिणः ।
एकदूती समुद्भूता या पुरा दृष्टविग्रहा ॥४३॥
विलपन्तं तदा दृष्ट्वा प्राह सत्वरमेव सा ।

दूत्युवाच

सर्वास्ता व्रजसुन्दर्यो सीतामर्षवशंगताः ॥४४॥
अस्याः सुखं परिप्राप्तुं लिल्युरस्यां[2] चिदाकृतौ
इयं त्वयि विलीनाभूत्तत्त्वं किमनुशोचसि॥४५॥
शृङ्गारस्यैव संहारकालोऽयं समुपस्थितः ।
एतासु लीनरूपासु शून्यं विश्वं विभाति मे ॥४६॥
शून्यं प्रमोदविपिनं शून्यं साकेतपत्तनम् ।
शून्यं ब्रह्मसुखं चैव त्वं शून्यमिव लक्ष्यसे ॥४७॥
तस्मात्त्वमधुना राम प्रादुर्भावय भामिनीम् ।
यदा शृङ्गाररूपस्य जन्म जायेत पूर्ववत् ॥४८॥

---

१. जागार स—अयो० । १. लिप्सुरंस्यन्—बड़ो० ।

ततो रामो रतिं कर्तुमिच्छां चक्रे सनातनीम् ।
इच्छां चक्रे स्वरूपं च सच्चिदानन्दविग्रहे ॥४९॥

एकोऽहं बहुरूपेण रंस्ये स्वानन्दशक्तिभिः ।
ततः प्राणप्रिया सीता श्रीमज्जनकनन्दिनी ॥५०॥
हृद्देशात् रामचन्द्रस्य प्रादुरासीत् सुलोचना ।
प्रकाशयन्ती हरितः स्वरुचा दीप्यमानया ॥५१॥

साब्रवीत्तु पतिं प्रेम्णा प्रणयालोकतत्परा ।
अहो त्वयि विलीनापि विरहं लब्धवत्यहम् ॥५२॥
क्वायं तव मुखाम्भोजदर्शनप्रोद्भवो रसः ।
क्व च स्वरूपानन्दान्तर्लयजाः परमा मुदः ॥५३॥

उत्कृष्टोऽपि ममात्यन्तं ब्रह्मानन्दो न रोचते ।
यथा त्वद्भजनानन्दो नित्यमास्वादिमद्रसः ॥५४॥
विप्रलम्भो मया जातस्त्वयि कान्त विलीनया ।
मयि लीनास्तु ताःसर्वाः किं जानासि व्रजाङ्गनाः ॥५५॥

मय्यमर्षपरा भूत्वा मत्पदं संगतास्तु ताः ।
इत्युक्त्वा निजहृद्देशात् प्रादुर्भावितवत्यसौ ॥५६॥
ततः समस्तास्ता गोप्यो यथापूर्वं बभाषिरे ।
स्वानि स्वानि शरीराणि जगृहुः पूर्ववत्तु ताः ॥५७॥

प्रणम्य कान्तं कान्तां च इदं वचनमब्रुवन् ।
वयं त्वया स्पर्द्धमाना गतास्त्वत्पदवीं सखि ॥५८॥
त्वदीयानन्दभोगाय किमर्थं त्वं लयं गता ।
पृथग्भूततया स्थित्वा संभोगं नाचरः कुतः ॥५९॥

सीतोवाच

प्रियस्वरूपावाप्त्यै च लीना प्रागभवं प्रियाः ।
ततः शून्यतयातिष्ठं नान्वभूवं किमप्यहम् ॥६०॥
ततो विक्लविता भूत्वा प्रादुर्भूता पृथक्तया ।
युष्माभिर्मयि लीनाभिः किं कृतं वामलोचनाः ॥६१॥

युष्माकमेव भोगार्थमहं जाता पृथक् प्रभोः ।
नानेनैक्येऽपि वर्तेयं स्वरूपानन्दरूपिणी ॥६२॥
अतः परं तु मां यूयं नानुसूयितुमर्हथ ।
संहारः स्यात्तदा सख्यः शृङ्गारस्य रसेशितुः ॥६३॥
तस्मात्स्वस्वात्ममर्यादां न विलम्बितुमर्हथ ।
अहं प्रिया भवत्यश्च सततं शर्म बिभ्रतु ॥६४॥
अशक्यं न प्रभोरस्य सर्वासां भोगभोजने ।
यथा चन्द्रस्य सर्वेषां कुमुदानां प्रकाशने ॥६५॥
एनं हि सर्वभावेन सर्वा एव भजन्त्विति ।
ओमित्युक्त्वा तु ताः सर्वाः पूर्ववन्मुदमाप्नुवन् ॥६६॥
नित्यरासविलासादींश्चक्रुः स्वप्रेयसा सह ।
एवं विहरतस्तस्य प्रमोदविपिनान्तरे ॥६७॥
बहु संवत्सरा जग्मुर्दिव्यतारुण्यशालिनः ।
प्रमोदविपिनद्वारे कदाचिल्लक्ष्मणादिभिः ॥६८॥
भ्रातृभिः सह संजातः संग्रामोऽसुरयूथपैः ।
तेषां प्रयुद्ध्यतां तत्र उदतिष्ठन्महान् ध्वनिः ॥६९॥
तं श्रुत्वा रघुशार्दूलो गोपिकाः प्रत्युवाच ह ।
कोऽसौ ध्वनिः श्रूयतेऽद्य प्रमोदविपिनाद्बहिः ॥७०॥
प्रायो मे भ्रातरः केनाप्याक्रान्ता सुरवैरिणा ।
नियुद्धस्येव संरावः श्रूयते व्रजयोषितः ॥७१॥
तत्र गच्छाम्यहं शीघ्रं पुनरेष्यामि वोऽन्तिकम् ।
ततस्ताभिरनुज्ञातो लक्ष्मणस्यान्तिकं ययौ ॥७२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे राघचरितवर्णनं नाम[1] एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

---

१. रामचरिते—अयो०, बड़ो०, नास्ति—रीवाँ ।

चत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तत्र गत्वा ददर्शासौ युद्धयन्तं लक्ष्मणं परि ।
भरतं चैव शत्रुघ्नं दानवैर्बलसंवृतैः ॥ १ ॥
आगतं राममालोक्य अभियुक्ताः परैस्तु ते ।
लक्ष्मणो भरतोऽरिघ्नो हर्षमापुरनुत्तमम् ॥ २ ॥
ततो रामसहायास्ते परान् जिग्युश्च तत्क्षणात् ।
स्वस्था भूत्वा ततो ज्येष्ठमूचिरे वचनं त्विदम् ॥ ३ ॥

लक्ष्मण उवाच

स्वागतं ते गुणाधीश[1] कार्यं संपादितं प्रभो ।
सेवनात् कामराजस्य कच्चित् संपूरिता स्पृहा ॥ ४ ॥
त्वदाज्ञातत्पराः सर्वे वयं गोपगणैः सह ।
धेनुरक्षापरा नानातीतवन्तः स्म वासरान् ॥ ५ ॥
प्रत्यूहाश्चेह सञ्जाता बहवोऽप्यसुरैः कृताः ।
तेऽपि नीताः क्षयं राम त्वत्प्रसादजुषा मया[2] ॥ ६ ॥
एतौ च भ्रातरौ सम्यगवर्तेतां त्वदाज्ञया ।
अधुना यत्तु कर्तव्यं तदपि श्रूयतां परम् ॥ ७ ॥
राज्ञा दशरथेन त्वमस्माभिः सेवकैः सह ।
आकारितोऽसि नीतिज्ञ विवाहार्थं वयोयुतः ॥ ८ ॥
धात्रीगृहे वयं सर्वे जाताः स्म धृतपुष्टयः ।
अधुना पितुरादेशादयोध्यां याम राघव ॥ ९ ॥
गजाश्वरथसन्दोहः पित्रा नः प्रेषितोऽनघ[3] ।
गजा ध्वजपरिप्रौढाः[4] स्वर्णालङ्कारशालिनः ॥१०॥
हेमपल्याणिनश्चैव रथाश्वाः सपरिच्छदाः ।
सेवकाश्चापि बहवो नीता दिग्देशभूमिपाः ॥११॥

---

१. गुणागाध—बड़ो० । २. °मपि—रीवाँ । ३. ऽधुना—अयो० । ४. गज°—अयो०, रीवाँ, °पौष्ठाः—बड़ो० ।

अस्मदानयनार्थाय प्रेषिताः सर्वभूभृता[1] ।
श्रीमद्दशरथेनास्मत्तातेन प्रवयोजुषा ॥१२॥

आर्यं त्वां च कृतोद्वाहं राज्यकार्ये नियोज्य सः ।
प्रियोऽस्माकं पितृवृत्तिं वानप्रस्थं श्रयिष्यति ॥१३॥

तदार्यं तत्र संगम्य पितरौ नन्दयामहे[2] ।
धात्रीगृहे निवसतां बहवो वत्सरा ययुः ॥१४॥

इदानीं पितृगेहस्य कुर्मोऽलङ्करणं वयम् ।
किं तैः सुतैर्ये न कुर्युः पितृसंतोषणक्रियाम् ॥१५॥

जीवतो गेहसंतोषो मृते वा पारलौकिकः ।
एवमुक्तस्तु तै राम ओमित्यूचे वचः प्रभुः ॥१६॥

अयोध्यां प्रतिगच्छामो नन्दयामः पितनथ ।
ततस्ते कृतसंकल्पाः प्रयाणाय पितुर्गृहे ॥१७॥
सुखिताख्येन गोपेन गवेन्द्रेणेदमीरिताः ॥

हे राम हे लक्ष्मण भूरिकर्मन् हे शत्रुहन् भरत पितुर्गृहं प्रति ।
किं प्रस्थिता यूयमितोऽधुना व्रजे कः पालयिष्यत्यखिला अमूर्गाः ॥१८॥

एताः खलु प्रेमभरेण युष्मत्संपालिताः कंचन विश्वसन्ति न ।
अहो धर्मजा तत्क्षणादेव चामूर्विनाशमेष्यन्ति च त्वद्वियोगात् ॥१९॥

अस्माकं वा कागतिस्तात युष्मत्प्रेमामृतैकाश्रयिणां गोपकानाम् ।
अयं व्रजो वा मुखदर्शने क्वचित्पलार्द्धमप्यन्तरायं न सोढा ॥२०॥

क्रीतः प्रेम्णा राजपुत्रैर्भवद्भिर्लोकोऽत्रत्यः कां गतिं लभ्यतेऽसौ ।
क्व युष्माकं मन्दिरे नः प्रवेशो भूमेरेकश्छत्रछायास्पदानाम् ॥२१॥

यूयं तदेवं कर्तुमर्हन्ति नैव धर्मज्ञातारः सत्कृपासिन्धुचित्ताः ।
अनन्यभाजां खलु नो यूयमेव चित्रं वित्तं चेह चामुत्रपूर्णम् ॥२२॥

नान्यं भजामो न च संस्मरामो न चाश्रयामो न च वीक्षयामः ।
भवत्पदाम्भोरुहमत्र नः परं परं शरण्यं शरणागतानाम् ॥२३॥

---

१ °स्तेन भू°—अयो० । २. नंदयामहि—अयो० ।

माङ्गल्योवाच

वत्स राम भवतः प्रणयेन प्रायशो व्रजजनोऽस्ति निबद्धः ।
अद्य का गतिरमुष्य भवित्री प्रेषिते त्वयि चिरात्कृतसङ्गे ॥२४॥
जीवतां[1] खलु जनो भवतासौ चापदां समुदयानपनीय ।
अद्य किं स न मरिष्यति युष्मद्वक्त्रपूर्णविधुदर्शनहीनः ॥२५॥
यः खलु प्रतिदिनं त्वया विना वर्तितुं क्षणमपि क्षमते न ।
स त्वदाननविलोकनं विना कीदृशीं गतिमवाप्स्यति लोकः ॥२६॥
तत्पुरीं प्रति न याहि सांप्रतं रामचन्द्र पितराविहैव ते ।
आगमिष्यत इदं वचनं नः पालयस्व वरदेश्वरेश्वर ॥२७॥
एष गोपनृपतिस्त्वया परं पुत्रितां समुपगम्य निर्वृतः ।
वत्स राम तदमुष्य वियोगं दातुमर्हति भवान्न कदापि ॥२८॥

गोपा ऊचुः

अयि मित्राणि निबोधत रामसुमित्रातनयभरतशत्रुघ्नाः युष्मद्विरह-भयार्त्तिः कदाचिदपि नानुभूतपूर्वा नः । संप्रति भवतां नगरे प्रस्थानं श्रूयतेऽस्माभिः दीर्घमजनिष्ट दुःखं प्राणान्तादप्यतीव गरीयः ॥२९॥

अथ भविता किमतोऽग्रे मित्रवियोगेन मरणमस्माक-
मथवा पूर्वं मरणं तदनु वियोगो भवतु भवाय ॥३०॥
सार्द्धंतदस्माभिरा बाल्याद्बहुलं सुखं लसितम् ।
तेषां क्षणवियोगेऽपि कथं स्थास्यामहे वयम् ॥३१॥
एषां विलोकनेऽस्माभिर्निमेषोऽपि विगर्हितः ।
वहन्तो विरहं तेषां कथं स्थास्यामहे वयम् ॥३२॥
पानभोजनशय्यादौ यैर्विना न च संस्थिताः ।
विप्रयोगे चिरं तेषां कथं स्थास्यामहेऽधुना ॥३३॥
एषां राजकुमाराणां तिष्ठतां रत्नवेश्मसु ।
दौवारिकैर्वयं रुद्धा प्राप्स्यामः किं प्रवेशनम् ॥३४॥
यौवराज्ये स्थितो रामः किंत्वस्मान् संस्मरिष्यसि [ति ?] ।
इन्द्रादिदिविषद्वन्द्यो वन्दनीयपदाम्बुजः ॥३५॥

---

१. तावती—रीवाँ, तावत्तान्—बड़ो०

एवमालपतां तेषां वचांस्याकर्ण्य गोपिकाः ।
अमी वदन्ति किं तावदिति प्रोचुः परस्परम् ॥३६॥
तत्रैकापि च लोकेभ्यो रामयानं विजानती ।
प्रोवाच गाढधैर्येण नस्फुटद्धृदया सती ॥३७॥
अयि गोपा अहो आल्यः सर्वेऽपि नगरं प्रति ।
प्रस्थानं रामचन्द्रस्य समाचक्षत आर्त्तिदम् ॥३८॥
अयं खलु पितृभ्यां वै धात्रीगेहे चिरोषितः ।
यौवराज्याभिषेकार्थमाहूत इति शुश्रुमः ॥३९॥
एते खलु नरेन्द्रस्य कुमारा अग्निवर्चसः ।
राक्षसानां भयेनात्र गोपगेहे निवेशिताः ॥४०॥
इह तिष्ठद्भिरेतैस्तु कति दैत्या विनाशिताः ।
राक्षसाः पूतनाद्यास्तु विकटाद्याश्च[1] राक्षसाः ॥४१॥
रामेण क्रीडता सख्यः सदय एव विनाशिताः ॥
त्रिलोकमध्ये नरदैत्यदैवतात् कुतोऽप्यमीषां हि भयं न विद्यते ।
एते खलु क्ष्मातलसाधुपालकाः कृतावताराः पुरुषोत्तमाः स्वयम् ॥४२॥
यथा राम[2]स्तथा लक्ष्मा[3] यथा स भरतस्तथा ।
यथैव भरतो वीरः तथा शत्रुघ्न उच्चकैः ॥४३॥
एते स्वयं रुचा पूर्णा भगवन्तो नरोत्तमाः ।
पितृभ्यामिति विज्ञाय समाहूताः स्वपत्तने ॥४४॥
जीवने चापि संदेहः किंत्वस्माकमतः परम् ।
येषां क्षणेऽपि विच्छेदो नानुभूतः कदाचन ॥४५॥
तेऽमी प्रयाताः स्वपुरं द्रष्टव्याः कथमक्षिभिः ।
इति श्रुत्वा सखीवाक्यं सर्वास्ता व्रजयोषितः ॥४६॥
मूर्छिताः सहसा तत्र निपेतुर्धरणीतले ।
पतितास्वासु धरणौ महान् कोलाहलोऽभवत् ॥४७॥

---

१. विद्यध्राश्चैव—अयो०, रीवाँ। २. श्रीरामः—बड़ो०। ३. लक्ष्मणः—अयो०, रीवाँ।

ता एवोपचरन्तीनां गच्छन्तीनामितस्ततः ।
दूतीनां च सखीनां च सदच एव व्रजाङ्गणे ॥४८॥
तालवृन्तानि कुरुत नाडी पश्यत पश्यत ।
मुखेषु सलिलं दत्त किंचित्पृच्छत पृच्छत ॥४९॥
अहो हि निमिषत्येषा श्वसित्येषा तु किंचन ।
अहो किंचिद्वदत्येषा [1]ईषद्विस्फुरिताधरा ॥५०॥
इत्येवं वदतां तत्र जनानां च परस्परम् ॥
ततश्चिराय प्रतिलब्धचेतना गवेन्द्रघोषस्य[1] कुरङ्गलोचनाः ।
प्रिय प्रयाणश्रवणेन कातरा परं वचः प्रोचुरिदं परस्परम् ॥५१॥
अहो वयस्याः प्रतिकूलदेवाः क्वचित्समाकर्णितमीदृशं वचः ।
अयं खलु श्वो नगरं प्रयाताहूतः पितृभ्यां युवराजयोग्यः ॥५२॥
ततः कथं जीवनमाप्नुयामः कदाप्यनभ्यस्तवियोगवेदनाः ।
गतिस्मिताप्रेक्षणभाषणादिभिः सख्योऽमुनाकृष्टवशीकृतान्तराः ॥५३॥
ईदृग्विपत् क्वापि कदापि जन्मनि प्राप्ता नचास्मासु यतः सुसंशयः ।
अहोऽमुना वर्षदवानलादिना प्राणान्तकेभ्यः किमु रक्षिता वयम् ॥५४॥
इत्युक्त्वा सहसा गोप्यो गलत्कज्जलकैश्चलैः ।
कदम्बकुसुमस्थूलैर्बहुलैरश्रुबिन्दुभिः ॥५५॥
ममृजुः कुचकाश्मीरं दीर्घनिःश्वासकम्पिताः ।
यथा कथंचिद्धैर्येण प्राणान् संरुध्य तस्थिरे ॥५६॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामप्रयाणो नाम[2]
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

१–१. नास्ति—बड़ो० । २. रामप्रयाणे—अयो०, रीवाँ, बड़ो० ।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

ःतो रामेति विश्लेषकातरं सुखिताभिधम् ।
गवेन्द्रं चैव माङ्गल्यां पुत्रविश्लेषकातराम् ॥ १ ॥
गोपान् सुदर्शनानन्दसुनन्दादीन् महात्मनः ।
गोपीश्च शृण्वतीः सर्वाः सदच एवेदमूचिवान् ॥ २ ॥
अयि तात गवेन्द्र त्वं मातर्माङ्गल्यके शृणु ।
सुदर्शनाद्याश्च गोपाः शृणुतेदं वचो मम ॥ ३ ॥
कच्चित्क्षणं न सोढव्यो भवतां विरहो मया ।
मद्वियोगप्रभूतार्तिः युष्माकं किंतु बाधते ॥ ४ ॥
भवद्वियोगजैवार्त्तिर्मम तावत्ततोऽधिका ।
तथापि न क्वचित्तात संजाता संजनिष्यते ॥ ५ ॥
नाहं वसामि वैकुण्ठे न वै गोलोकसंज्ञके ।
मथुरायां द्वारकायां श्वेतद्वीपालये न वा ॥ ६ ॥
अहं वसामि सततं सुखितस्यैव मन्दिरे ।
माङ्गल्यकाकरानीतं मृदु हैयङ्गवीनकम् ॥ ७ ॥
अशानो भ्रातृभिः सार्धं नान्यथा तृप्तिरस्ति मे ।
एवं विज्ञाय वै नित्यं मम चारित्र्यमद्भुतम् ॥ ८ ॥
युवाभ्यां शोचितव्यं न कदाचित्क्वचिदप्युत ।
न चैव मन्मनः क्वापि प्रमोदविपिनं विना ॥ ९ ॥
रमते बहुधा क्लृप्तत्रैलोक्यश्रीभरेष्वपि ।
[1]रासाख्यलीलया मह्यमन्या लीला न रोचते ॥१०॥
गोपालबालकेभ्योऽन्यो न मे प्रणयभाजनम् ।
इयं हि मे नित्यलीला भवतां सदनेषु या ॥११॥
अन्यावतारसमये भवन्नैमित्तिकी हि सा ।
नित्यं वसामि युष्माकं सदने सरयूतटे[1] ।
रासाख्यलीलाभिर्नित्यं विहरामि सखीगणैः ॥१२॥
कदाचिन्मत्स्यरूपेण लोके प्रादुर्भवाम्यहम् ।

१—१. अयमंशो नास्ति—रीवाँ ।

वेदोद्धरार्थमुदधौ कुर्वञ्चरितमद्भुतम् ॥१३॥
कदाचित्कूर्मरूपेण प्रादुर्भूय करोम्यहम् ।
देवासुरेषु श्रान्तेषु मन्दराचलधारणम् ॥१४॥
कदाचिद्दैत्यराजे तु धरणीनाशनोद्यते ।
दिव्यवाराहरूपेण तदा प्रादुर्भवाम्यहम् ॥१५॥
कदाचिद्भक्तराजस्य प्रह्लादस्य सुखाकृते ।
नारसिंहस्वरूपेण दैत्यराजं निहन्म्यहम् ॥१६॥
कदाचित्सर्वदेवानां स्थानेषु स्थापनाकृता ।
दिव्यवामनरूपेण दैत्येन्द्रं छलयाम्यहम् ॥१७॥
कदाचित् परशुं धृत्वा धर्मस्य प्रतिपालकः ।
दुष्टक्षत्रविनाशाय भुवि प्रादुर्भवाम्यहम् ॥१८॥
कदाचिद्राघवे वंशे प्रादुर्भूय स्वविक्रमैः ।
धर्मं संस्थाप्य धरणीभारं बहु हराम्यहम् ॥१९॥
कदाचिन्ममांशकलया कृष्णो वै संभविष्यति ।
द्वापरान्ते यदुकुले देवक्यां वसुदेवतः ॥२०॥
कदाचिन्मृत्युदुःखेन यज्ञजन्तून् विशोचतः ।
अनुग्रहामि संजातो बुद्धरूपेण भूतले ॥२१॥
कदाचिन्म्लेछवृन्देषु धर्मविप्लवकारिषु ।
नीलं हयं समारुह्य कल्किः प्रादुर्भवाम्यहम् ॥२२॥
अन्यैरपि स्वरूपैश्च तत्र तत्र स्फुटीभवन् ।
अधर्मं नाशयित्वाहं स्वधर्मं स्थापयाम्यहम् ॥२३॥
एवं यदा यदा धर्मः क्षीयते सर्वभूतजः ।
स्वात्मानं कल्पयित्वा तु तदा प्रादुर्भवाम्यहम् ॥२४॥
नित्यं वसामि भवतां सदने दिव्यगोकुले ।
माणिक्यरत्नसन्नद्धमुक्तामणिविभूषितः ।
माङ्गल्यायाः करानीतं नवनीतमशन्नथ ॥२५॥
मद्वियोगजदुःखं तु भवतां नैव बाधते ।
यदि बाधेत सैषा तु मन्मायैव रसात्मिका ॥२६॥

संयोगो विप्रयोगश्च रसस्तु द्विविधः स्मृतः ।
आद्योऽनुभूत एवान्तो द्वितीयस्तु भविष्यति ॥२७॥
पित्रोः संतोषणं कृत्वा कृत्वोद्वाहं च तत्सुखम् ।
राज्यकार्यं विधायाथ पुनरेष्यामि वो गृहे ॥२८॥
न कार्यो भवता शोकस्तात मद्विरहोद्भवः ।
एष तु स्वप्नवद्भूत्वा क्षणाद्यास्यति दुःखदः ॥२९॥
अहं निजप्रियान् गोपान् नीत्वा यास्यामि तां पुरीम् ।
एतैर्विना क्षणं स्थातुं हेतात क्वापि नोत्सहे ॥३०॥
त्वं च तावद् गवां तात पालनं कारय प्रभो ।
अस्मिन् प्रमोदविपिने नव्यनव्यैस्तृणाङ्कुरैः ॥३१॥
माङ्गल्यके मातरिह मा शुचो मद्वियोगतः ।
न त्वां विना क्षणमपि स्थातुं भो सुखसंयुतः ॥३२॥
गोपा यूयं सखायो मे आयान्तु मम सार्थगाः ।
प्रमोदवनविश्लेषो गतो वो मुखदर्शनात् ॥३३॥
भवद्भिः सहितः सर्वं राज्यकार्यं विधाय च ।
हत्वा चासुरसंदोहानेष्यामि पुनरत्र वै ॥३४॥
अन्ये च मत्प्रेमपराः[1] सकलव्रजवासिनः ।
न शोकेनाभितप्यध्वं मद्वियोगैकजन्मना ॥३५॥
एष वः स्वप्नवद्भूत्वा क्षणाद्यास्यति निश्चयः ।
इति तेषां समस्तानां प्रमोदवनवासिनाम् ॥३६॥
व्रजौकसां सदाराणां कृत्वा सान्त्वनमच्युतः ।
यियासुः[1] पितुरागारं तां रात्रिं तत्र चावसत् ॥३७॥
तमीयुः सकला गोप्यः प्रियविश्लेषकातराः ।
रुदन्त्यो भूरिशोकेन प्रवासभयविह्वलाः ॥३८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामप्रवासो नाम[2]
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

●

१. ये मत्परा :—रीवाँ, बड़ो० । १. प्रियालुः—रीवाँ, बड़ो० । २. रामप्रवासे —अयो०, रीवाँ, बडो० ।

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

गोप्य ऊचुः

पित्राहूतः स्वनगरं राज्यकार्यावगुप्तये ।
प्रभात एव स्वैः साकं यास्यसीत्यनुशुश्रुम ॥१॥
नैवं त्वं कर्त्तुमर्होऽसि हत्वा नो हरिणीरिव ।
निजदृष्टिशराविद्धाः प्रेमस्वरविमोहिताः ॥ २ ॥
त्वं तु विस्मृतवान् प्रायः प्रमोदवनखेलनम् ।
विस्मर्तव्यं न चास्माभिस्तत्सुखं क्षणमप्यहो ॥ ३ ॥
ता यामिन्यस्तद्रहस्यं केलयस्ताश्च वेलयः ।
ते ते रासविलासाद्याः स्मर्यमाणा हरन्ति नः ॥ ४ ॥
प्रमोदवनपर्यन्तं भूरिकुञ्जनिकुञ्जभूः ।
प्रमोदे स्थापयत्यन्तः स्मरन्तीनां पुनः पुनः ॥ ५ ॥
कदाचिद्भवता साकं रामसंपूर्णचन्द्रमाः ।
खेलन्तीनां वनेऽस्माकं संध्याभूत्कृष्णपक्षगा ॥ ६ ॥
ततः प्रववृते ध्वान्तं गाढं नवघनोपमम् ।
यस्मिन्प्रत्येकमादाय भुक्तवान् नो रघूद्वह ॥ ७ ॥
कदाचित्पुष्पावचये याताः प्रमुदकानने ।
संध्यायामभवद्घोषो घनसंघट्टजोऽम्बरे ॥ ८ ॥
तदा प्रववृते दिव्या कामकेलिर्मनोहरा ।
यां विलोक्य मुदं भव्यां प्रापुर्गोविशिखा अपि ॥ ९ ॥
कदाचित्सरयूवारिगम्भीरावर्तदुर्धरम् ।
वयं च दधि विक्रेतुं यातुकामाः पुरं प्रति ॥१०॥
तदा त्वं कामसौन्दर्यगम्भीरेऽस्मिन्नदीजले ।
सौवर्णीं नावमारोप्य क्रमात्तरितवानसि ॥११॥
कदाचिद् घट्टरक्षायै नियुक्ते गोपभूभृता ।
गच्छतीर्दधिविक्रेतुं मध्ये मार्गं निरुद्धवान् ॥१२॥
कदाचिद्रथमारोप्य सौवर्णमणिकिङ्किणीम् ।
वनाद्वनान्तरं नीत्वा शोभां दर्शितवानसि ॥१३॥

कदाचिन्माधवे मासि कुसुमाकरशोभिनि ।
दिवानिशमविज्ञाय नित्यं विहृतवानसि ॥१४॥
कदाचिन्निष्ठुरे ग्रीष्ममासे दिव्ये तु पाथसि ।
जलकेलीः सहास्माभिः कृतवानसि सुन्दर[1] ॥१५॥
कदाचिद् भूरिवर्षायां रत्नाद्रेरधिकन्दरम् ।
वार्भृतो जवनीकृत्य[2] रतवान् श्रीगणैः सह ॥१६॥
कदाचिद्धैमने काले कुञ्जाभ्यन्तरवेश्मसु ।
हसन्तीसाम्यमानेतुं[3] तूलैः सेवितवानसि ॥१७॥
कदाचिच्छैशिरे काले लतिका इव पुष्पिणीः ।
मरुत्वानिव धीरस्त्वं प्रिय कम्पितवाँश्च नः ॥१८॥
इत्थं तत्तत्कालदेशे[4] तत्तत्तारूण्यवेशिता ।
तत्तद्वल्ली वीथी[5] पथः[6] पीत्वा प्रेमामृतं रसम् ॥१९॥
तत्तत् कामक्रीडा यस्य संचितस्वर्निविडाकारः ।
श्रीरामेन्दोर्जितवानसि कन्दर्पाणां किमपि परार्धम् ॥२०॥
एवं त्वं रमयास्मान् स्वानन्दरससागरे ।
प्रत्येकं बहुलीकृत्य रामेन्दो रतवानसि ॥२१॥
अधुना तानि तानीह सुखानि विमुखे त्वयि ।
पर्णवत्कण्टकानीव भेत्स्यन्ति हृदयानि नः ॥२२॥
मैवं कार्षीः कदापि त्वं वनितावधपातकम् ।
विक्रमी पुँस्वभावत्वादयि त्वं निष्ठुरोऽप्यसि ॥२३॥
प्रमोदवनचन्द्रस्य तव प्रिय चकोरिकाः ।
न खेदय मनाङ् मानिन् मनोज्ञाचरितो भव ॥२४॥
विस्मृत्य निखिलां चेष्टां महामाधुर्यवार्निधिम् ।
शुष्ककाष्ठस्वभावं च कथमुत्सोढवानसि ॥२५॥
कोऽयं क्रमो रसिकपुङ्गव सार्वभौम
यद्भूरिशः सुखसुधोदधिनिर्वृतानाम्[7] ।

---

१. अधिशंवर—अयो० । २. जयनी°—बड़ो० । ३. हसन्तीषु समानेषु—अयो० । हसन्तीस्म समानेतुं—रीवाँ, बड़ो० । ४. तत्तत्काले तत्तद्देशे—अयो० । ५. तत्रतद्वल्लिवीथी—रीवाँ । ६. पाथः—अयो० । ७. निर्मितानाम्—रीवाँ ।

आर्त्तिप्रवेकमनुभावयसि स्वभावात्
स्वानन्दसारसमुदायमयोऽपि सन् नः ॥२६॥
ईशोऽपि सर्वभुवनस्य निजे वशोऽसि
प्रेमैकवश्यहृदयोऽसि सुसाधनोऽसि ।
निर्वाञ्छनोऽसि स कथं रघुनन्दन त्वं
कर्मातिघोरमिह कर्तुमथोद्यतोऽसि ॥२७॥
मैवं कार्षीः प्रभो तस्मात् प्रमोदवनदुःसहम् ।
विरहं कर्तुमर्होऽसि[1] रसिकेन्दुमहामणे ॥२८॥
अथ चेत्त्वमिमं नाथ संकल्पं कृतवानसि ।
तदा नः प्राणनिर्वृत्त्याद्युपायं[2] शिक्षयाधिहन् ॥२९॥
असमक्षे त्वयि स्वामिन् किं कार्यं सेवकैः जनैः ।
स्वर्भोगं वापि संन्यासमरण्यं वा विरक्तितः ॥३०॥
यैः कालदिङ्निमिषभित्तिपदान्तरेऽपि
सोढः कदाचिदपि नैव भवद्वियोगः ।
ते जीवनं समधिगम्य कथं सहन्तां
श्रीमन् महाविरहदावजपापकीर्तिम् ॥३१॥
तस्मात्त्वयि दृशोर्द्वन्द्वाद् दूरं याते प्रियोत्तम ।
किं कार्यं भक्तवर्गेण[3] तदस्मास्वनुशिक्षय ॥३२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रानाम[4]
द्विचत्वारिंशोध्यायः ॥४२॥

---

१. महेसि किं—रीवाँ, बड़ो० । २. निर्वृत्तमु०—रीवाँ, बड़ो० । ३. भक्तिवर्येण—रीवाँ, बड़ो० । ४. रामयात्रायां—अयो०, रीवाँ, बड़ो० ।

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इति तासां वचः श्रुत्वा रामः कारुणिकोत्तमः ।
ददौ प्रतिवचस्तासां स्मित्वा संमोहयन्निव ॥ १ ॥

श्रीराम उवाच

अहो प्रिया मत्स्वरूपा मत्केति सुखसंश्रयाः ।
नैवं विलपितुं योग्या भवन्त्यो नित्यसंगताः ॥ २ ॥
व्यापिवैकुण्ठलोकेऽस्मिन् प्रमोदविपिनाभिधे ।
मदीये चिन्मये दिव्ये भवन्त्यो ह्यपि देवताः ॥ ३ ॥
श्रीमती जानकी सीता मदीया परमप्रिया ।
तदंशाः सकला यूयं नित्यं सन्निहिता मयि ॥ ४ ॥
चन्द्रस्य चन्द्रिका यद्वत्तपनस्य प्रभा यथा ।
पृथिव्या इव संबन्धो घटस्येव घटत्वकम् ॥ ५ ॥
असाधारणमेवैषा मदीयं लक्षणं प्रिया ।
तदंशत्वाद्भवत्योऽपि मदीयं लक्षणं परम् ॥ ६ ॥
विश्लेषो न कदाप्यस्ति भवतीभिः समं मम ।
नाभून्न भविता वापि चिन्मयेऽस्मिन् महापुरे ॥ ७ ॥
यथाहं सच्चिदानन्दरूपः श्रीविग्रहं दधत् ।
तथैव मत्प्रिया यूयं सच्चिदानन्दविग्रहाः ॥ ८ ॥
लीलेक्षया यथैवाहं निर्गुणोऽपि गुणात्मकः ।
तथा प्रिया भवन्त्योपि नानुशोचितुमर्हथ ॥ ९ ॥
लीला गुणमयी ह्येषा मदीया निर्गुणापि च ।
नैते गुणाः प्राकृतत्वं कदाचित् कलयन्ति च ॥१०॥
प्रमोदवनकुञ्जाश्च प्रमोदवनमेदिनी[1] ।
प्रमोदवनगावश्च प्रमोदवनभूरियम् ॥११॥

---

१. °मोहिनी—रीवाँ, बड़ो० ।

माङ्गल्या च गवेन्द्रश्च गोपा गोप्यः खगा मृगाः ।
सर्वं ब्रह्ममयं नित्यं[1] सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥१२॥
अपि स्मरथ यद्दृष्टं दिव्ये[2] प्रासादवेश्मनि ।
द्वारकां मथुरां चैव श्रीमद्वृन्दावनं तथा ॥१३॥
प्रमोदविपिनस्थेऽस्मिन् प्रमोदवनमुत्तमम् ।
तत्र मां नित्यलीलास्थं स्वात्मनि चैव सुव्रताः ॥१४॥
रुक्मिणीं जानकीं चैव सहजां प्रियमीश्वरीम् ।
अपरा मे प्रिया भक्ता भक्तिरूपा तथापरा ॥१५॥
मत्तोऽपि मम भक्तानां मम भक्तिर्विशिष्यते ।
यथाहं वश्यतां यामि सा मत्तोऽप्यधिकैव हि ॥१६॥
प्रेमनेत्रा भावमुखी रसगात्री रतिस्तनी ।
रागाधारा महाभावहृदया मे प्रिया परा ॥१७॥
सैषा मद्वामतनुगा सुन्दरी मधुरस्मिता ।
सीतेतिसाधिकेत्याख्या सहजेति च कीर्तिता ॥१८॥
मोदिनीति सदाख्याता मन्मनोमोददायिनी ।
शय्यासनाटनस्थाने यां भवन्त्योऽभ्यसूयथ ॥१९॥
इयं हि सर्वलीलानामेकैवास्ति प्रवर्त्तिका ।
नानया रहितः क्वापि भविष्यामि मृगेक्षणाः ॥२०॥
यूयं तदंशभूतत्वान्नित्यं संनिहिता मयि ।
मद्गात्रकिरणाकाराः किमर्थमनुशोचथ ॥२१॥

गोप्य ऊचुः

एवं चेत्तर्हि श्रीराम प्रवादः कोऽयमुत्थितः ।
अयोध्यां यास्यति श्रीमान् पित्रोराज्ञावशंवदः[3] ॥२२॥
तच्छ्रुत्वा सहजो लोके[4] महान् खेदोऽभ्यजायत ।
अकाण्डताण्डवप्रायं किमिदं रघुपुङ्गव ॥२३॥

---

१. वित्त—अयो० । २. दिव्य°—बड़ो० । ३. पित्रोराज्ञोवशं०—रीवाँ, बड़ो० । ४. तच्छ्रुत्वा सहगोलोकं—रीवाँ, बड़ो० ।

लोकः किं वितथं ब्रूते त्वं वा किं वञ्चयस्युत ।
निर्हेतुको न चैवायमुदितः सुमहान् ज्वरः ॥२४॥
एवं नः संशयं छिन्धि सत्यं ब्रूहि च राघव ।
नानृतं हि वदेल्लोको भवतीत्यास्तिकं[1] वचः ॥२५॥

श्रीभगवानुवाच

न लोको वितथं ब्रूते मल्लीलादर्शको ह्यसौ ।
किंत्वस्मिन् विषये यूयं नानुशोचितुमर्हथ ॥२६॥
पुरा खलु भवे यूयं देवं पशुपतिं प्रभुम् ।
कोपयित्वा लब्धशापाः किंचिद् दुःखमवाप्स्यथ ॥२७॥
ददौ स भगवान् शापं युष्मभ्यं मद्वियोजनम् ।
तेनेदं रूपमन्तर्धाः किंचित्कालं भविष्यति ॥२८॥
तत्तद्देहांशरूपेण तदा यूयं भविष्यथ ।
अन्तरङ्गतया सर्वां लीलामनुभविष्यथ ॥२९॥
लोके वियोग[2] इत्याख्या तस्यैव च भविष्यति ।
भविष्यति तु योऽन्तर्धिः, साक्षाद्दर्शीतु[3] किंचन ॥३०॥
तत्राप्यनवधिं तावदानन्दं समवाप्स्यथ ।
मद्भूयत्वान्मदंशानां नैवं यूयं भिदायुजः[4] ॥३१॥

गोप्य ऊचुः

कदा स भगवान् रुद्रः शशापास्मान् भवत्प्रियाः ।
किंवा तत्कारणं राम कुत्र देशेऽथवा प्रभो ॥३२॥

श्रीभगवानुवाच

एकदा चैव विषये श्रीप्रमोदवनान्तरे[5] ।
भवन्त्यः सहजायुक्ताश्चक्रुः क्रीडां मया सह ॥३३॥
ततश्च[6] सुरतश्रान्ता[7] उपेक्ष्य भवतीरहम् ।
मध्ये निकुञ्जभवनं रतवान् रमया सह ॥३४॥

---

१. भवान्नैवास्तिकं—अयो० । २. मद्वियोग—रीवाँ, बड़ो० । ३. दर्शस्य—अयो० । ४. भिदा पुनः—रीवाँ, बड़ो० । ५. श्रीमत्प्रमुद०—अयो० । ६. क्रीडायां—अयो० । ७. सुरतस्यान्ते—बड़ो० ।

यूयं निकुञ्जभवनस्याङ्गणे[1] बद्धमण्डलाः ।
मद्गुणानेव गायन्त्यस्तस्थुः सुस्थिरमानसाः ॥३५॥
तत्राजगाम भगवान् रुद्रः पशुपतिः प्रभुः ।
कृत्वा वन्दनमेताभ्यः क्व राम इति सोऽब्रवीत् ॥३६॥
नोचुस्ताः संप्रगायन्त्यो रामचारित्रमद्भुतम् ।
पुलकैः समुपेताङ्ग्यः कलिताश्रुविलोचनाः ॥३७॥
रुद्रः प्रतिवचोऽश्रुत्वा कृतावज्ञा उवाच ताः ।
भवत्यो रामविश्लेषं लभन्तामचिरात्स्त्रियः ॥३८॥
इत्युक्त्वा प्रययौ रामकुञ्जाभिमुखमीश्वरः ।
दृष्ट्वा तु समुपायान्त[2]मुदतिष्ठमहं प्रियाः ॥३९॥
ईषद्विवसनीभूतवपुषा रमया सह ।
आदिद्रिये तमीशानं समस्तैरुपचारकैः ॥४०॥
अपृच्छं चैव कैलाशाद् भव्यागमनकारणम् ।

रुद्र उवाच

तव लीलादर्शनार्थं कैलाशादहमागमम् ॥४१॥
अहो रसमयी लीला श्रेयोगुणमयी तव ।
सच्चिदानन्दैकमपि न वाङ्मनसगोचरा ॥४२॥
मुक्ता अभिभजन्ते यां दिव्यमास्थाय विग्रहम् ।
निर्गुणापि भवातीतैर्गुणैः सत्त्वादिभिर्युता ॥४३॥
तद्दर्शनार्थं संक्षुभ्य तपो विस्मृतवानहम् ।
दिव्यवेणुरवं श्रुत्वा स्थानं त्यक्त्वेह संगतः[3] ॥४४॥
वाञ्छामि त्वन्मुखाम्भोजदर्शनामृतपानकम् ।
अहो धन्ये दृशौ मत्के याभ्यां दृष्टोऽसि राघव ॥४५॥
लीलापरिकरोपेतः स्निग्धश्यामलविग्रहः ।
सहजाशक्तिसहितः सहजानन्दनन्दितः ॥४६॥

---

१. भवने स्वगणे—रीवाँ, बड़ो० । २. तूमयायान्त—अयो० । ३. मागतः—बड़ो० ।

नमस्तेस्तु नमस्तेस्तु नमस्तेस्तु रघूद्वह ।
नमस्ते नित्यलीलायै नमस्ते केलिसंपदे ॥४७॥
नमः प्रमोदकुञ्जाय नमोऽस्यै रत्नभूमये ।
नमः साकेतदुर्गाय नमः सरयुरोधसे ॥४८॥
नमस्ते गोपिगोपेभ्यो धेनुकाय नमोनमः ।
गवेन्द्राय नमो नित्यं सुखिताय नमोनमः ॥४९॥
नमो गवेन्द्रसुन्दर्यै माङ्गल्यायै नमोनमः ।
नमो गवेन्द्रघोषाय सर्वसंपदमीयुषे ॥५०॥
नमः प्रमुदवनस्थाय[1] रामाय परमात्मने ।
सदानन्दाय रामाय सदा सं'तारमाजुषे ॥५१॥
पीताम्बराय नवनीरदनीलभाय
वंशीविशालरसिने मधुराधराय ।
गोगोपगोपरमणीकमनोयभासे
भाषान्विताय च नमोऽस्तु रघूत्तमाय ॥५२॥
राम त्वदीयमुखपङ्कजमक्षिभृङ्गैः
पीत्वा त्वदन्यविषयग्रहसंनिवृत्तैः ।
संसत्कृतार्थमिव संप्रति मन्यमानो
भ्राम्यामि भूतलमशेषपदार्थसिद्धः ॥५३॥
सरयूसरसं शश्वच्चुलुकीकृत्य निर्वृतः ।
कदा रासविलासादि पश्येयं स्वाधिकारतः ॥५४॥
नित्यलीलापरिकरे कदा मे गणना भवेत्[2] ।
कदा वीक्षेय रामेन्दो भवद्वदनचन्द्रिकाम् ॥५५॥
साक्षात्कृतिस्ते लीलाया एष मेऽनुग्रहः प्रभो ।
श्मशानचारिणोऽत्यर्थमभद्रपथसेविनः ॥५६॥
अहो मे रामचन्द्रस्य दर्शनार्थमिहागमः ।
तेन पृष्टा इमा देव्यो न मे प्रतिवचो ददुः ॥५७॥
तमोरूपप्रकाशार्थमिह क्रोधान्धता मम ।
नोचेदिह गुणातीते स्थाने क्रोधः कथं भवेत् ॥५८॥

१. नमो मोदवन°—अयो० । २. °भवत्—अयो०, बड़ो० ।

अघं[1] ममैतत् क्षन्तव्यमपराधनमीश्वर ।
यत्त्वत्परिकरस्यापि शापो दत्तो मया प्रभो ॥५९॥
तदाहमुक्तवान् रुद्रं भगवन्नेवमेव तत् ।
तथापि मे चिकीर्षायाः साधनायैव कल्पताम् ॥६०॥
गवेन्द्रस्य महाधाम्नि नित्यं निवसतो मम ।
अवतारार्थसंसिद्ध्यै शापोऽयं ते भविष्यति ॥६१॥
कौशल्यायास्तदा मातुः पितुर्दशरथस्य च ।
संतोषणं तथा ज्ञातिस्वजनानां सुखोद्भवः ॥६२॥
वधश्च रावणादीनां समुद्धारस्तथा शिव ।
पशुपक्ष्यन्त्यजादीनां कष्मलाक्रान्तचेतसाम् ॥६३॥
अवतारकृत्यमेतावत्करिष्यामि महेश्वर ।
तदर्थं तव शापोऽयमुद्भूतोऽस्त्यत्र[2] मा शुचः ॥६४॥
मच्चिकीर्षानुकूलत्वान्न ते शापो रुषावहः ।
स्वैरं विहर[3] संसिद्धो मद्भक्तान् मृडयन् प्रभो ॥६५॥
एवमुक्तो मया शम्भुरभिवन्द्य पुनः पुनः ।
निर्जगाम निजं स्थानं कैलासाख्यं मनोहरम् ॥६६॥
युष्माकमेवं संजातो रुद्रशापोऽतिदुर्धरः ।
यूयं तस्य प्रभावेण मद्वियोगमवाप्स्यथ ॥६७॥
मद्भक्तातिक्रमो[4] ह्येष मद्भक्तैर्दुरतिक्रमः ।
परंत्वत्रापि विश्लेषे सन्निलीय मदं शृणु (?) ॥६८॥
मत्सायुज्यं परिप्राप्य मत्तादात्म्यमवाप्स्यथ ।
मदानन्दोदधौ मग्नाः क्षणवद्यापयिष्यथ ॥६९॥
मद्वियोगं सुदुर्धर्षं नैव ज्ञास्यथ मत्प्रियाः ।
तावत्कृत्वावतारार्थमागमिष्यामि वः पुनः ॥७०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां पुरप्रवेशो-नाम[5] रामगीतायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

---

१. इदं—बड़ो० । २. °तः पुत्र—रीवाँ । ३. विहार—अयो०, बड़ो० ।
४. मद्भक्ता मृदवः—रीवाँ, अयो० । ५. पुरप्रवेशे—अयो०, रीवाँ, बड़ो० ।

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एवं प्रबोधिता गोप्यो रुद्रशापस्य कारणम् ।
विश्वस्य दुःखभूयिष्ठाः समवोचन् रघूद्वहम् ॥ १ ॥

गोप्य ऊचुः

स्वामिन् भाविपदार्थानां प्रतीकारो न विद्यते ।
तथापि त्वां प्रपन्नानां नार्तिः स्यात् कर्हिचित् प्रभो ॥ २ ॥
अयमेव प्रतीकारो भवदुःखनिवर्हणे ।
यत्त्वच्चरणपाथोजतरणिद्वन्द्वसेवनम् ॥ ३ ॥
निवृत्ताखिलतर्षास्ते हंसाः परमभावुकाः ।
पारङ्गता भवाम्भोधेः स्थितास्त्वत्समुपाश्रयात् ॥ ४ ॥
कथं भक्ताः प्रपद्यन्ते केन भावेन राघव ।
तदस्मानुपदेशेन बोधयस्व कृपावशात्[1] ॥ ५ ॥
त्वद्वियोगभवा[2] प्रायः परमार्तिर्भविष्यति ।
कथं नु तां तरिष्यामो नित्यं त्वत्सङ्गसंश्रयाः ॥ ६ ॥
कथं त्वद्विरहे काले[3] व्यूहो लीनो भविष्यति ।
व्रजस्त्रीणां समूहोऽसौ भवल्लीलैकसंश्रयः ॥ ७ ॥

राम उवाच

यथा भक्ताः प्रपद्यन्ते येन भावेन वा प्रियाः ।
तद्वः समुपदेशेन बोधयामि विशेषतः ॥ ८ ॥
एकान्ते विमले क्षेत्रे योगक्षेमं विधाय च ।
मन्निष्ठां भावनां कुर्याद् यथा शीघ्रं भवं तरेत् ॥ ९ ॥
वैदिकैस्तान्त्रिकैः कर्मव्यूहैः सुविमले हृदि ।
प्रवृत्तौ भावनां यातां तां[4] कुर्यान्मदुपाश्रयाम्[5] ॥१०॥
हृत्पुण्डरीकमध्ये तु साकेतं भावयेन्मुहुः ।
तत्र मां[6] भावयेत् पूर्णं लीलाभिः पुरुषं परम् ॥११॥

---

१. °कृताद्—अयो० । २. एव—रीवाँ, बड़ो० । ३. त्वद्देहविरमे—अयो० ।
४. त्वां—रीवाँ, बड़ो० । ५. मद्भुताश्रयां—अयो० । ६. स—बड़ो० ।

यद्धि किंचिद्वस्तुजातं भावयेत्तन्मदात्मकम् ।
मत्तः परं नैव किंचिन्मयीदं[1] सर्वमेव तु ॥१२॥
भूर्जलं पावको वायुः खं मनोमण्डलं दिशः ।
प्रकृतिः पुरुषो ब्रह्म ज्ञेयं सर्वं मदात्मकम् ॥१३॥
मत्तः प्रवर्तते सर्वं प्रपञ्चोऽयं मदात्मकः ।
मत्कार्यः संततो नित्यं मय्येव व्यपदिश्यते ॥१४॥
मय्यात्मरतिमायाते लीयन्ते भशिता यथा ।
स्वरूपानव[2]बोधश्च मनो देहेन्द्रियादिषु ॥१५॥
स्वतादात्म्या[3]वभासश्च सा विद्या परिकीर्तिता ।
व्योमवद्व्यापकं ब्रह्म किंचिन्मायांशचेष्टितम्[4] ॥१६॥
सर्वतः पाणिपादं च सर्वतोदृक्शिरोमुखम् ।
सर्वतो नासिकाश्रोत्रे सर्वमाविश्य तिष्ठति ॥१७॥
अनन्ता मूर्त्तयस्तस्य भिन्नाभिन्नस्वरूपिणः ।
एकोऽहं बहु भवेयेतीच्छा[5] तस्याभवत् कदा ॥१८॥
ततोऽवर्तत लोकोऽसौ जडजीवान्तरात्मभिः ।
सन्मात्रं भाति सर्वत्र न भाति च चिदन्तरा ॥१९॥
[6]सन्मात्रं जड़वर्गोऽयं चिन्मात्रो जीव ईरितः ।
सच्चिदानन्दरूपो वाप्यन्तरात्मा महेश्वरः ॥२०॥
जडः स्फुरति जाग्रत्सु स्वप्ने भाति चिदन्तरा ।[6]
सुषुप्तौ सच्चिदानन्दो ह्यन्तरात्मा[7] प्रकाशते ॥२१॥
यल्लीना अवतिष्ठन्ते स्वरूपानन्दभोगिनः ।
आनन्दमय आनन्दभुगि[8]त्युपनिषत्सु सः ॥२२॥
तुरीयस्त्वहमेतेभ्यः समः सर्वत्र सर्वगः ।
विद्यया तु यदा विद्या नश्यति ध्वान्तवद्रुचा ॥२३॥

---

१. मयोक्तं—अयो०, रीवाँ। २. स्वसाररव—रीवाँ। ३. °ज्ञानात्मा°—रीवाँ, बड़ो०। ४. °विष्टितं—रीवाँ, बड़ो०। ५. जायेत तीछा—अयो०। ६...६. अयमंशो नास्ति—रीवाँ, बड़ो०। ७. पञ्जरात्मा—रीवाँ, ह्यजरात्मा—बड़ो०। ८. °भागि० —बड़ो०।

तदा स परमानन्दः प्रकाशात्मा प्रकाशते ।
सर्वाध्यासनिवृत्तौ तु शुद्धा देहेन्द्रियादयः ॥२४॥
मल्लोकानन्दभोगार्हा जायन्ते ते मदात्मकाः ।
नित्यलीलां तदा पश्येन्मद्भक्तो मत्स्वरूपिणीम् ॥२५॥
न यत्र शोको न जरा न मृत्युर्न मदादयः ।
तन्मदीयं परं स्थानं मद्भक्तः संप्रपद्यते[1] ॥२६॥
यस्मान्न पुनरावृत्तिः सर्गादावपि जायते ॥२७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामगीतायां
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

नवधा भक्तिरुद्दिष्टा श्रुतिसंकीर्तनादिभिः ।
कर्मज्ञानोपासनाभिः प्रत्येकं त्रिविधैव सा ॥ १ ॥
सप्तविंशतिधा भिन्ना गुणैः सत्त्वादिभिः पुनः ।
एकाशीतिप्रकारेण भक्तियोगः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥
निर्गुणा त्वेकरूपैव मन्निष्ठा मत्फलोदया ।
मत्स्वरूपात्मिका नित्यं भूयो मत्प्रेमलक्षणा ॥ ३ ॥
न तां ददामि कर्मिभ्यो न ज्ञानिभ्यः कदाचन ।
नोपासकेभ्यो नाज्ञेभ्यो नचान्येभ्यो मृगेक्षणाः ॥ ४ ॥
मन्निष्ठेभ्यो ददाम्येनां यथा युष्मभ्यमङ्गनाः ।
कर्माणि ज्ञानयोगाश्च संन्यासाश्च पृथग्विधाः ॥ ५ ॥
ते मत्स्वरूपनिष्ठायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
तस्मात् स्वरूपनिष्ठो यः स सर्वेभ्यो विशिष्यते ॥ ६ ॥

---

१. सन् प्रप°—अयो० ।

कर्मोपास्तिस्तथा ज्ञानं विहितादितरत्र तु ।
मत्स्वरूपैकनिष्ठस्य सर्वं प्रेमैकलक्षणम् ॥ ७ ॥
अहमेव फलं येषां न स्वर्गादि कथंचन ।
स्वर्गादिफलकं काम्यं केवलं ह्याधिभौतिकम् ॥ ८ ॥
आध्यात्मिकं चित्तशुद्ध्या ज्ञानैकफलकं प्रियाः ।
केवलं कर्म मन्निष्ठमाधिदैविकमुत्तमम् ॥ ९ ॥
अथाधिभौतिकं ज्ञानं जीवप्रत्यक्षसाधनम् ।
अक्षरं[1] ब्रह्म साक्षात्त्वहेतुराध्यात्मिकं स्मृतम् ॥१०॥
परब्रह्मानन्दपददायकं ह्याधिदैविकम्[2] ।
मत्स्वरूपानन्दभोगहेतुस्तुर्यं तदुच्यते ॥११॥
उपासनापि त्रिविधा पूर्ववत्समुदीरिता ।
जीवब्रह्मपरब्रह्मसाक्षात्कारविधायिनी ॥१२॥
अहमेव फलं यस्याः सा तुर्या परिकीर्तिता ।
निर्गुणं भावमापन्ना सर्वतोऽपि विशिष्यते ॥१३॥

गोप्य ऊचुः

सर्वैरपि ब्रह्मविद्भिस्त्वं लभ्योऽसि नरोत्तम ।
उत कश्चिद्विशेषोऽस्ति तन्नो ब्रूहि रघूत्तम ॥१४॥
केचित्तु वामदेवाद्याः संलीनास्त्वयि केवलम् ।
केचित्पुनर्महाभागास्त्वया भोगान्नु[3] भुजते ॥१५॥
वरिष्टाः केऽभवन् तेषां तव वेदस्य वा मताः ।
एतद्वेदितुमिच्छामस्त्वत्तः कमललोचन ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं कथ्यते ब्रह्म सर्ववेदान्तगोचरम् ।
पुच्छभूतं प्रतिष्ठा मे तद्गेयं योगवित्तमैः ॥१७॥
ममैव संप्रकाशोऽसावुद्द्योत इव भास्वतः ।
पुरुषाकृतेर्मे देहोऽसौ गृहिण्यश्च गृहं मम ॥१८॥

---

१. अथाक्षरं—रीवाँ । २. त्वाधि°—रीवाँ । ३. भोगानु° रीवाँ ।

भास्वतश्च प्रभा दिव्या यथावदवधार्यताम् ।
स एव चिन्मयो लोको यद्गत्वा न निवर्तते ॥१९॥
तस्य विज्ञानमात्रेण तन्मयो जायते नरः ।
तत्रैवाप्येति यत्रास्य भेददृष्टिर्निवर्त्तते ॥२०॥
जन्तोर्मदिच्छया चेत्तु भक्तिः समुपजायते ।
तदा मया सर्वकामभोगान् प्राप्नोति मत्परः ॥२१॥
अन्यथा त्वक्षरे धाम्नि लीनस्तिष्ठेदकम्पनः ।
किं त्वस्यापि भवेद्भावि भक्ति[1]स्वरूपयोग्यता ॥२२॥
न ह्यब्रह्मज्ञे कदापि भक्तिः[1] समुपजायते ।
मयि सद्धारणा[2]❀ हेतुर्यदाह श्रुतिरूर्जिता ॥२३॥
भक्तिं वैधीमुपाश्रित्य मन्निष्ठो मयि लीयते ।
प्रेममात्रस्फुरद्भावो भुङ्क्ते भोगान् मया सह ॥२४॥
प्रमोदवनकुञ्जस्थो नित्यलीलानुभावकः ।
सख्यवात्सल्यदास्यादिमहाभावैर्विभावितः ॥२५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
रामगीतायां पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

गोप्य ऊचुः

किंस्वरूपो मतो जीवः सम्बन्धो ब्रह्मणा च कः ।
कीदृङ्मतं परं ब्रह्म अक्षरं वापि कीदृशम् ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

सावयवो ह्यसौ जीवः[3] स्वचैतन्यगुणेन तु ।
सर्वं पुर[4]मभिव्याप्य वर्त्तते दीपवद् गृहे ॥ २ ॥

१—१. अयमंशो नास्ति—रीवाँ, बड़ो० । २. मद्धरणं—अयो०, बड़ो० । ❀ अत्रयावदेव मथु० पुस्तकस्य खण्डितोंऽशः । ३. स्वाविद्यवोह्यसौ—अयो०, सावयवोसौ स्व०—रीवाँ, सावयवोऽस्त्यसौ—बड़ो० । ४. परम्—रीवाँ ।

योगेन मत्प्रसादाद्वा तत्स्वरूपं प्रकाशते ।
निर्धूमानलसंकाशं निरभ्रविधुसन्निभम् ॥ ३ ॥
तदा ब्रह्माण्डकोटीनामाश्रयत्वमियादयम् ।
अंश्यंशभावः[1] संबन्धो ब्रह्मणा सह तस्य तु ॥ ४ ॥
अग्निना महता यद्वद्विस्फुलिङ्गस्य कीर्तितः ।
नहि ज्ञाते विस्फुलिङ्गे वह्निर्न ज्ञायते महान्[2] ॥ ५ ॥
प्रेमाख्यश्चैव संबन्धो येन प्राप्नोति मानवः[3] ।
अक्रिये कर्मसंबन्धो न घटेत कदाचन ॥ ६ ॥
अज्ञेये ज्ञानसंबन्धो न भवेच्च कथंचन ।
प्रेमाख्यस्तु महान् योगो नित्यं मम रसाभिधः ॥ ७ ॥
जीवनिष्ठोऽपि स परब्रह्मण्येव तु संभवेत् ।
संख्यापदार्था द्वित्वाद्याः संयोगश्च यथा प्रियाः ॥ ८ ॥
व्यासज्यैव तु[4] वर्त्तन्ते यथा प्रेमापि बुध्यताम् ।
सर्वाधिकश्च सुदृढो विषयेभ्यः पराङ्मुखः ॥ ९ ॥
माहात्म्यज्ञानसंस्कारो[5] विनिर्धूतरजस्तमः ।
परमानन्दपाथोधिः प्रेमा निरतिशायितः[6] ॥१०॥
तेनापि जीवनिष्ठेन ब्रह्म संबध्यते परम् ।
येनैव द्वारभूतेन नित्येन तदवाप्नुयात् ॥११॥
तत्साधनमहं पूर्णो निरुपाधिः कृपाश्रयः ।
कृपयामि परं[7] यस्मै तस्मै प्रेम परं ददे ॥१२॥

गोप्य ऊचुः

त्वं सर्वेषां समः प्रेयान् सर्वेषां साधनः प्रभो ।
कस्मै ददासि नो कस्मै वेत्तुमिच्छामहे त्वदः ॥३१॥

---

१. अंशांशभावः—बड़ो० । २. "अग्निकणे ज्ञाते महानग्निर्न ज्ञायते इति न किंतु ज्ञायत एव" टि०—मथु० । ३. प्राप्येत मानवैः—मथु०, बड़ो० । ४. संवृत्तो वस्तु—रीवाँ । ५. °संपृक्तो—मथु०, बड़ो० । ६. °शायितः—मथु०, बड़ो । ७. कृपया कृपया—रीवाँ ।

सर्वेषां मुक्तिरेव स्यात् सर्वे स्युः प्रेमभागिनः ।
साधारण्यात्तव श्रीमन् प्रेमदस्य प्रियस्य च ॥१४॥

श्रीभगवानुवाच

अनेकजन्मसंसिद्धकर्मज्ञानादिभागिने ।
ददामि परमं प्रेम परितुष्टो मुहुः प्रियाः ॥१५॥
न सर्वस्मै ददाम्येतत् परमानन्दलक्षणम् ।
कर्मभिश्चित्तसंशुद्धो ज्ञानेन च्छिन्नसंशयः ॥१६॥
श्रवणादिमुहुर्भक्तिसाधनैः साधिताकृतिः ।
जनो यो मां प्रपद्येत ज्ञात्वा परमपूरुषम् ॥१७॥
तस्मै ददामि तां भक्तिं प्रेमाख्यां मदुपाश्रयाम् ।
तां लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते न जगत्त्रये ॥१८॥
श्रद्धावान् ब्रह्मनिष्ठश्च परब्रह्मरसोत्सुकः ।
वीतरागो विषयतो मत्प्रेम लभते नरः ॥१९॥
नित्यलीलारसाभिज्ञः श्रुतमत्प्रेमलक्षणः ।
ज्ञात[1]पारमहंस्यश्च[2] मत्प्रेम लभते नरः ॥२०॥
क्वचिन्नृत्येत् क्वचिद्गायेत् क्वचिद्धावेत मत्तवत् ।
क्वचिद्धसेत् क्वचिज्जल्पेत् क्वचित्क्रीडेत् क्वचिद्वदेत् ॥२१॥
मत्प्रेममदिरामत्तस्तृणवन्मन्यते जगत् ।
मत्प्रेमभागिनो दृष्ट्वा प्रहृष्येत् प्राप्तबन्धुवत् ॥२२॥
रमते तैः समं नित्यं सर्वस्वैरिव बन्धुभिः ।
भक्तैः परमहंसैश्च भ्रातरस्तस्य ते जनाः ॥२३॥
सखायः सुहृदश्चैव प्रियाश्च हितकारिणः ।
तेषामर्थे यतेन्नित्यं प्राणांस्त्यक्त्वापि दुस्त्यजान् ॥२४॥
ते ह्यस्य परलोकस्य संगिनः सुहृदो जनाः ।
एष भावः समुद्दिष्टो येनाऽसौ मां प्रपद्यते ॥२५॥
तेषामहं स्वस्वरूपं दर्शयिष्यामि वै मुहुः ।
तत्सन्निधौ सदा स्थास्याम्यहमद्भुतभाववान् ॥२६॥

---

१. ज्ञातं—अयो०, ज्ञातः—रीवाँ । २. °हंसश्च—अयो०, हंसस्य च—रीवाँ ।

भावितो भावसंदोहैर्भविष्यामि च तद्वशे ।
स्वस्वरूपं दुर्लभमप्येभ्यो दास्याम्यहं प्रियाः ॥२७॥
मद्वियोगभवं दुःखं यथा तेषां निवर्तते ।
तथा वो बोधयिष्यामि विशिष्टं शृणुत प्रियाः ॥२८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामगीतारहस्यो-
पाख्यानं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अलाभे मत्स्वरूपस्य मद्वियोगभवा रुजः ।
विनेया मत्प्रतिकृतिः समाराधनतत्परैः ॥ १ ॥
काञ्चनी रूप्यजा ताम्री शैली दारुमयी तथा ।
मदीया प्रतिमा कार्या यथारुचितविग्रहा ॥ २ ॥
साङ्गोपाङ्गां सायुधां च परिवारगणैर्युताम्[1] ।
नित्यं परिचरेद्भक्त्या प्रांतरारभ्य साधकः ॥ ३ ॥
पाद्यार्घ्याचमनैर्भूयो मधुपर्कैर्मनोहरैः[2] ।
स्नानैर्विलेपनैर्गन्धैर्धूपैर्दीपैर्विभूषणैः ॥ ४ ॥
वस्त्रालङ्करणैः पुष्पैर्गीतवादित्रतोरणैः ।
पानीयभोजनैर्भूरि संविधाभिः प्रमार्जनैः ॥ ५ ॥
नानोपायनसंदोहैर्यथाभिलषितैरपि ।
आरार्त्तिकैः[3] पुष्पवर्षैः स्तौत्रैश्चापि परिक्रमैः ॥ ६ ॥
नमनैर्नवनैर्दास्यकरणैर्गृहधावनैः ।
आत्मार्पणैर्नामगणैर्गुणनैः प्रीणनैरपि ॥ ७ ॥

---

१. °गुणैर्—रीवाँ, मथु०, बड़ो० । २. "दधिसिताघृतमधुभिर्मिलितैर्मधुपर्कः" टि०—मथु० । ३. आरार्तिकैः—रीवाँ ।

नानाभावपरीरम्भैर्नाना चोत्सव[1]कल्पनैः ।
अवन्ध्यं तद्दिनं कुर्यात् कीर्तनश्रवणादिभिः ॥ ८ ॥
शृणुयात् सततं सख्यो रामायणमनन्यधीः ।
वेदवत्तद्विजानीयाद्यत्रास्ति चरितं मम ॥ ९ ॥
वाल्मीकं चैव वासिष्ठं शैवं पाराशरं तथा ।
भौशुण्डं पञ्चमं[2] षष्ठं[3] काप्यं[4] रामायणं स्मृतम् ॥१०॥
अन्येष्वपि पुराणेषु यत्रापि चरितं[5] मम ।
तं तं भागमपेक्षेत विशेषेण मदाश्रयः ॥११॥
रां रामाय नम इति मम मन्त्रं षडक्षरम् ।
अशेषकामनापात्रं[6] गृह्णीयात् सद्गुरोर्मुखात् ॥१२॥
वैदिकैस्तान्त्रिकैर्वापि प्रकारैः परिसाधयेत् ।
ततस्तु चित्तसंशुद्ध्या जातः प्रेमविघूर्णितः ॥१३॥
भजेन्मदविशेषेण मन्मूर्तिं प्रागुदाहृताम् ।
सच्चिदानन्दरूपां तां भावयेत विचक्षणः ॥१४॥
जानक्या प्रियया युक्तं रात्रौ संजातजागरम् ।
ईषन्मदविघूर्णाक्षं प्रभाते मां प्रबोधयेत् ॥१५॥
मङ्गलारात्रिकं कुर्यात् सिंहासनगते मयि ।
ततो माङ्गल्यकैर्भावैः शिक्ये हिन्दोलयेत्तराम् ॥१६॥
तत्र मां भोजयेद् दिव्यं नवनीतं सितोपलैः[7] ।
ततोऽवतार्य सौगन्ध्यतैलेन परिलेपयेत् ॥१७॥
उद्वर्तयेत् प्रेमभावात् स्नापयेत्तदनन्तरम् ।
प्रोञ्छ्य[8] शृङ्गारयेद्भक्त्या नखादा शिखमद्भुतम् ॥१८॥
नूपुरौ पादयोः कुर्यान्मध्ये च क्षुद्रघण्टिकाम् ।
अङ्गदौ बाहुयुगले नसि[9] मुक्ताफलं न्यसेत् ॥१९॥

---

१. नानार्चोत्सव°—अयो० । २. पश्चिमं—अयो० । ३. चान्यद्—रीवाँ । ४. काप्यं—"हनुमद्रामायणं" टि०—मथु०, बडो० । ५. यत्राभि°—अयो० । ६. °पायं—अयो०, °प्रातं—रीवाँ । ७. "सिताभिः सहितं" टि०—मथु० । ८. प्रोंच्छा—अयो०, रीवाँ । ९. नासे—अयो०, रस°—रीवाँ ।

पश्चाद्भागे न्यसेद्वेणीं ताटङ्कौ श्रवणद्वये ।
पुंभूषणैः स्त्रीभूषाभिः प्रियं शृङ्गारयेच्च माम् ॥२०॥
ततो मां भोजयित्वा तु कुर्यादारात्रिकं सुधीः ।
ततो गोपिजनैश्चापि भोज्यमानं विभावयेत् ॥२१॥
ततो गोचारणार्थाय युक्तं गोपालबालकैः ।
तात्कालिकरसाविष्टं वने यान्तं[1] विभावयेत् ॥२२॥
तत्र शाद्वलसंदोहस्थलीमुक्तसुगोधनम् ।
प्रमोदवनकुञ्जान्तर्भुञ्जानं मां विभावयेत् ॥२३॥
ततः क्वापि महाकुञ्जे प्रियया केलिसंयुतम् ।
अत्यर्थं सुखविश्रान्तं शयानं मां विभावयेत् ॥२४॥
ततः प्रहरमात्रावशेषे तु दिवसेश्वरे ।
गौडमालवरागेण गायन्तं कलितोत्सवम् ॥२५॥
नयन्तं दिनशेषं तु धेनुसंदोहरक्षणैः ।
पीताम्बरं समान्दोल्याह्वयन्तं दूरगाश्च गाः ॥२६॥
सुखितस्य गवेन्द्रस्य गृहाभिमुखतः स्थितम् ।
धेनुयूथं पुरस्कृत्य वर्त्तमानं सुहृद्गणैः ॥२७॥
तत्रैव भोजयेद्भक्त्या यथासंपन्नभोजनैः ।
गवेन्द्रव्रजगोष्ठस्य सन्निधौ सदनोत्सुकम् ॥२८॥
गोष्ठे विशन्तं गोपोनां समूहैः परिवेष्टितम् ।
कलितारात्रिकं भूयो रामचन्द्रं च मां स्मरेत् ॥२९॥
आगतं सदने स्वस्य माङ्गल्याकलितोत्सवम् ।
लाल्यमानं चुम्ब्यमानं सन्ध्यायां मां विभावयेत् ॥३०॥
तेषु तेष्वथ[2] गोष्ठेषु गोदोहनमिषेण माम् ।
मिलन्तं भवतीभिश्च हसन्तं मां विभावयेत् ॥३१॥
गोदोहस्यावसाने तु माङ्गल्यासदने स्थितम् ।
कुर्वाणं भोजनं दिव्यं सुखितेन सह स्मरेत् ॥३२॥

---

१. यातं—रीवाँ। २. च—मथु०, बड़ो०।

भोजनान्ते च माङ्गल्याकलितारात्रिकोत्सवम् ।
शयानं शयने गोष्ठे रामया सह मां स्मरेत् ॥३३॥
एवं प्रभातमारभ्य रात्रिपर्यन्तमादरात् ।
तैस्तै भावैर्भावयानो भजेन्मां राजरूपिणम् ॥३४॥
गोपा गोप्यश्च नो विज्ञाः स्वभावेनाज्ञबुद्धयः ।
तेष्वेवाहं[1] सदा तुष्टो न प्राज्ञेषु कथंचन ॥३५॥
अज्ञाः स्नेहरसाक्रान्ता मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
वेदवादविधेर्मुक्ता मामेवैकं विजानते ॥३६॥
एवं प्रमोदवने स्वां लीलां प्रकटयन् सदा ।
विहरामि वने वासं करोमि प्रकटः स्वयम् ॥३७॥
प्रमोदमण्डलं दिव्यं तथा साकेतमण्डलम् ।
मण्डले मत्प्रियतमे मणिमद्धरणीतले ॥३८॥
नित्या वै परमा लीला मयैव[2] प्रकटीकृता ।
तथामुक्तमविश्रान्तं[3] भावयेन्मामनन्यधीः ॥३९॥
रात्रौ च गोपिकावृन्दरासकेलि[4]रसावृतम् ।
क्रीडमानं च नृत्यन्तं गायन्तं चैव मां स्मरेत् ॥४०॥
एवं प्रभजतो[5] नित्यं भावसंदोहभावितः ।
वृश्चाम्यहं विरहजां[6] परमार्त्तिमुदारधीः ॥४१॥
स्वस्वरूपस्य साक्षात्त्वमचिरेणैव दुर्लभम् ।
ददामि तस्मै भक्ताय नित्यलीलाप्रवेशिने ॥४२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामगीतारहस्योपाख्याने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

●

---

१. तेष्वहं च—रीवाँ । २. °ऽत्रमया—मथु०, बड़ो० । ३. सुविश्रान्तं—रीवाँ ।
४. °केली०—मथु०, बड़ो० । ५. प्रभावतो—रीवाँ । ६. वृश्च्याहं विरहं तासां—रीवाँ ।

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

कदाचिद् भूरिविश्लेषभावितात्मानमात्मना ।
ऐक्यं संचिन्तयन् स्वस्य रश्मिवृन्दे प्रवेशये ॥ १ ॥
मदङ्गरश्मिसंलीनाः परमानन्दनिर्वृताः ।
जरामृत्युभयं त्यक्त्वा विहरन्ति सुखेन ते ॥ २ ॥
वात्सल्येन भजन्ते ये तदा विरहकातराः ।
तानहं मुखचन्द्रांशुसंदोहेषु विलापये ॥ ३ ॥
तत्र ते भूरिमाङ्गल्याकौशल्याभावभाविताः ।
परमानन्दसंदोहमग्नास्तिष्ठन्ति सेवकाः ॥ ४ ॥
सख्येन ये भजन्ते मां वदन्तः स्नेहजां रुजम् ।
तानहं बाहुयुग्मांसकिरणेषु विलापये ॥ ५ ॥
दास्येन तु भजन्ते मां याता विरहजां रुजम् ।
विलापयामि तानङ्घ्रिकिरणेषु सुनिर्वृतान् ॥ ६ ॥
माधुर्येण भजन्ते ये गोपीभावेन भाविताः ।
वक्षःस्थलांशुसन्दोहे तानेवाहं विलापये ॥ ७ ॥
ये च शान्ताः सुनिर्विण्णाः परां शान्तिमुपागताः ।
विलापयामि तान् रक्तान् निजायतनरश्मिषु ॥ ८ ॥
वैदिकैस्तान्त्रिकैर्वापि विधिभिर्वीतकल्मषाः ।
भजन्ते ये जनास्ते तु लीयन्ते मद्विभूतिषु ॥ ९ ॥
कर्ममार्गेण ये भक्ता भजन्ते भूरिनिष्ठया ।
ते वैधसं लोकमेत्य मुच्यन्ते तद्विमोक्षणे ॥१०॥
ज्ञानमार्गेण ये चापि भजन्ते मां समाहिताः ।
तेऽक्षरं ब्रह्म संप्राप्य मामेव प्राप्नुवन्ति हि ॥११॥
तत्तद्देवोपासकानां वासनावासितात्मनाम् ।
तत्र देवेषु विलयो भवेदिति हि मे मतिः ॥१२॥

गोप्य ऊचुः

अयमंशुक्रमो राम देहेन सह किं भवेत् ।
किंवा देहं परित्यज्य लीयेतात्मैव केवलम् ॥१३॥

श्रीभगवानुवाच

द्विधेवांशुलयः सख्यो भावभेदेन भाव्यताम् ।
सदेहानां भवेदेकः परः केवलमात्मनाम् ॥१४॥
भावो द्विधा भवेदेको भृङ्गीकीटवदीरितः ।
मणिस्पर्शादयः स्वर्णवद्वा तादात्म्यभाविताः[1] ॥१५॥
चक्षुरादित्यवच्चापि भावोऽन्यः समुदाहृतः ।
आद्यः सुदुर्लभो लोके मत्कृपातिशयं विना ॥१६॥
परोऽपि दुर्लभः किन्तु ज्ञानिनामपि जायते ।
कीटो भृङ्गीभयात्तेन[2] वपुषा तन्मयो भवेत् ॥१७॥
अयस्तेनैव रूपेण स्वर्णतां प्रतिपद्यते ।
चक्षुस्तु[3] गोलकं त्यक्त्वा सूर्यतां प्रतिपद्यते ॥१८॥
एवं स्वेनैव वपुषा मद्भक्तोऽभून्मदात्मकः ।
ज्ञानी स्वं वपुरुत्सृज्य सर्वथा मन्मयो भवेत् ॥१९॥
एतद्वः कथितं सर्वं मामपृच्छन् यदङ्गनाः ।
भूयः शृणुत मत्प्राप्तेरुपायान्तरमुच्यते ॥२०॥
अष्टोत्तरशतं नाम्नां मत्प्रियायाः प्रकीर्तयेत् ।
संतुष्टा तेन सहजा मामेव भावयेत् प्रियाः ॥२१॥
सहजा जानकी सीता मोदिनी राधिका रमा ।
आनन्दिनी परालीला ललना लास्यकारिणी ॥२२॥
सीरध्वजसुता साध्वी गान्धर्वी पद्मगन्धिनी ।
गोपराजसुता गोपी गोपिता नन्दनात्मजा ॥२३॥
सुखितोत्साहिनी सौम्या रत्नाचलविलासिनी ।
प्रमोदवनमध्यस्था कुञ्जस्था कुञ्जगेहिनी ॥२४॥

---

१. °भावितः—रीवाँ । २. भयस्तेन – रीवाँ । ३. चक्षुःस्व°—मथु०, बड़ो० ।

राघवेन्द्रप्रिया रामा लोलुपा[1] जारसंगिनी[2] ।
रत्नाचलदरीस्थाना भाविनी भावभूषिता ॥२५॥
रामप्रिया रामरता रामकाम्या कृपावली ।
किशोरी कन्दुकक्रीडा चित्रकूटकृतालया[3] ॥२६॥
रासकेलीरतिः स्निग्धा मन्दारवनवासिनी ।
अशोकवनगावल्ली हृल्लासकविधायिनी ॥२७॥
गोपवंशध्वजपटी रघुवंशविलासिनी ।
विनोदिनी चिरवधूर्वावदूका वराङ्गना ॥२८॥
अक्षक्रीडाहृतजया[4] जयदा जयवर्धिनी ।
उच्चैःस्वररता वीणा दिव्यगानमनोहरा ॥२९॥
देवीजन[5]कृतस्तोत्रा स्तुता सामगसेविता ।
सावित्री शेवधिः सेव्या भक्तिः प्रेमस्वरूपिणी ॥३०॥
प्रेमदा प्रेमघूर्णाक्षी लावण्यवनवाटिका ।
साकेतपुरलक्ष्मीश्च महामण्डपमध्यगा ॥३१॥
खण्डिता विप्रलब्धा च स्वाधीनपतिका[6] प्रिया ।
कलहान्तरिता चैव तथा वासकसज्जिका[7] ॥३२॥
अभिसारी[8] प्रोषितोक्ता राघवी चाष्टनायका ।
सुदती सुमुखी सुभ्रूः सुनासा सुकपोलिनी ॥३३॥
दूती दूतीजनप्रीता रक्ताम्बरधरालिनी ।
लोलाक्षी लास्यललिता वने यौवनशालिनी ॥३४॥
सुधावर्षा सुधाधारा सुधाकरमुखी सुधा ।
गर्विणी दुर्जया दुर्गा सपत्नीगर्वहारिता ॥३५॥

---

१. लोलुपा = "चञ्चला" टि० मथु० । २. 'जारयति लिंगशरीरं ध्वंसयतीति जारो रामः, तत्संगिनी" टि०-मथु० । ३. °क्रयालया-अयो० । ४. °हृदयजा—रीवाँ । ५. "दिव्यस्त्रीजन०" टि०—मथु० । ६. "यस्या रतिगुणाकृष्टः पतिः पार्श्वं न मुंचति । विचित्रविभ्रमासक्ता स्वाधीनपतिका मता" टि०— मथु० । ७. "निश्चित्य वासरं भर्त्तुर्भूषणानि करोति या । भवेद्वासकसज्जासौ द्वारं पश्यति सादरा ।" टि०—मथु० । ८. "निर्भया सती प्रियं प्रति याति सा अभिसारिका" टि०—मथु० ।

कोमलालापिनी काम्या कुमारी रामवल्लभा ।
इत्येतत्कथितं सीता नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥३६॥
सायं प्रातः कीर्तयेद्यो रामस्तस्मै प्रसीदति ।
स्वं लोकं दर्शयित्वा सा प्रदद्याद्रामसन्निधिम् ॥३७॥
यद्यत् कामयते चित्ते तत्तत् फलमवाप्नुयात् ।
भावयेत् सततं देवीं रत्नसिंहासनस्थिताम् ॥३८॥
रमणीरामणीभ्यां तु सखीभ्यां परिपार्श्वयोः ।
दिव्यचामरयुग्मेन वीज्यमानां मनस्विनीम् ॥३९॥
अशोकलतिकादिव्यमण्डपान्तरचारिणीम् ।
सुवर्णसंशोभिशीर्षं रक्ताम्बरवराकृताम् ॥४०॥
क्वचिन्निलीय कुञ्जान्तर्दृष्टं (ष्टां ?) सपुलकं[1] (कां ?) मया ।
ईषच्छैशवतारुण्यकेलीभिः परिशालिताम्[2] ॥४१॥
सहजां नन्दिनीं दिव्यां राघवेन्द्रप्रियां च ताम् ।
विविधैर्भावनिवहैर्भावितात्मातिभक्तिमान् ॥४२॥
सरय्वा अपरे पारे नन्दनो नाम धेनुपः ।
तत्प्रिया राजनीनाम तस्यां जाता नु जानकी ॥४३॥
सहजा नाम सा प्रोक्ता कुशलेन विवाहिता ।
गोपेन मम भक्तेन सा मह्यं विनिवेदिता ॥४४॥
प्रमोदवनवीथीषु मयैव रमिता मुहुः ।
दिव्यवेणुरवाहूता दिव्याशोकवनाश्रया ॥४५॥
तस्यां कुर्यात् सदा भक्तिं नित्यं मत्प्रेम चार्थयेत् ।
हे देवि सहजे नित्ये गोपिके नन्दनात्मजे ॥४६॥
रामे यथा तव प्रेम तथा मह्यं प्रदेहि भोः ।
यथा त्वयि रतः स्वामी तथा मय्यपि चास्तु सः ॥४७॥
इत्येवं प्रार्थिता देवी ददात्येव रतिं पराम् ।
यथा तुष्टो राघवोऽहं हृदि सद्यः प्रकाशये ॥४८॥

---

१. "कदाचिन्मयाऽस्याः सपुलकरोमवृन्दं दृष्टमतस्तन्नाम दृष्टसपुलका" टि०—मथु० । २, °शीलितां—रीवाँ ।

अयमेव महोपायो मद्वशीकरणे प्रियाः ।
नान्य ईदृग्विधः कश्चिदुपायोऽस्ति मदाप्तिकृत् ॥४९॥
तां सेवमानाय सदाहमेवं सद्यः प्रसीदामि सुरैरलभ्यः ।
स्वात्मानमप्यमुमेवार्पयित्वा स्वां नित्यलीलां प्रददामि नित्यम् ॥५०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामगीता-
महोपाख्याने अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

•

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गोप्य ऊचुः

केषु केषु च भावेषु भाव्योऽसि त्वं रघूद्वह ।
केन केन स्वरूपेण स्थितोऽसि च[1] निजेच्छया ॥ १ ॥
त्वमेव साक्षात्पुरुषोत्तमोऽसि[2] विश्वं समुद्धर्तुमुरुप्रयत्नः ।
जातोऽसि सद्वृत्तककुत्स्थवंशे ज्ञातोऽधुनात्वत्कृतया दिव्यदृष्ट्या ॥ २ ॥
विभाव्यं यत्र यत्रास्ति त्वत्स्वरूपं सुखावहम् ।
तत्तन्न आचक्ष्व पते बोधनाय निजाकृतेः ॥ ३ ॥

श्रीराम उवाच

अन्तरङ्गं स्वरूपं मे बहिरङ्गं तथैव च ।
अप्राकृतं ह्यन्तरंगं प्राकृतं बहिरङ्गकम् ॥ ४ ॥
मद्वपुश्चैव मल्लोको[3] नित्यः परिकरो मम ।
मद्गुणा मम कार्याणि मद्रूपाश्चायुधादयः[4] ॥ ५ ॥
मद्गृहं मम पीठं च मच्छत्रं चामरं मम ।
चिदानन्दमयं सर्वं मदात्मकमिदं स्मरेत् ॥ ६ ॥
प्राकृतेष्वपि चार्थेषु यत् सद्रूपं ममैव तत् ।
भूतानां चैव सर्वेषामधिदेवोऽस्मि सर्वगः ॥ ७ ॥

---

१. स्थितश्चासि—अयो०, रीवाँ । २. ममेति—अयो०, रीवाँ । ३. मल्लोके—रीवाँ । ४. च युष्मादृशः—रीवाँ ।

सृष्टिस्थित्यन्तकृच्चास्मि जगतां पापदाहकः ।
कर्मणां फलरूपोऽस्मि लोके सदसदात्मनाम् ॥ ८ ॥
अव्याकृतगुणानामस्म्यहमव्याकृतः[1] स्वराट् ।
धर्मिणां त्रिषु लोकेषु स्वाभाविकगुणोऽस्म्यहम्[2] ॥ ९ ॥
कार्याणां सूत्ररूपोऽस्मि जीवोऽणूनां सनातनः ।
वेदानां ब्रह्मरूपो[3]ऽस्मि बीजानां त्रिवृदस्म्यहम् ॥१०॥
त्रिपदा छन्दसामस्मि सुराणां सुरराडहम् ।
वसूनामग्निनामास्मि विष्णुश्चापि विवस्वताम् ॥११॥
नीललोहितनामास्मि रुद्राणां पिङ्गलोचनः ।
ब्रह्मर्षीणां भृगुश्चास्मि राजर्षीणां मनुस्तथा ॥१२॥
देवर्षीणां नारदोऽस्मि कामधेनुश्च गोष्वहम् ।
प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां सोमश्चौषधिवीरुधाम् ॥१३॥
शेषो भुजङ्गराजानां पाथसां वरुणालयः ।
प्रतापिनां दिनकरो जनानां च जनाधिपः ॥१४॥
ज्ञानिनां वाक्पतिश्चास्मि समुद्रः सरितामहम् ।
केसरी[4] दंष्ट्रिणास्मि हयानां च वृहच्छ्रवा[5] ॥१५॥
वर्णानामस्मि विप्रोऽहं संन्यासश्चाश्रमस्थितौ ।
तीर्थानां कोटितीर्थोऽस्मि घर्घरसरयूसंगमः[6] ॥१६॥
वीराणामस्त्रविद्यास्मि शंभुश्चाप्यस्त्रिणामहम् ।
स्थानानां मेरुरूपोऽस्मि गिरीणां च हिमाचलः ॥१७॥
यज्ञानां ज्ञानयज्ञोऽस्मि ज्ञानिनां[7] ज्ञानमस्म्यहम् ।
ध्यानानां धारणा चास्मि सोमपीथश्च कर्मिणाम् ॥१८॥
अहिंसास्मि च धर्माणामश्वत्थश्चास्मि भूरुहाम् ।
अन्नानां पायसश्चास्मि पवित्राणामहं कुशः ॥१९॥

---

१. च व्याकृतः—अयो०, रीवाँ। "अविकृतस्वभावः" टि०—मथु०।
२. "लोकत्रये उत्तमगुणो धर्मः सो यस्यास्ति स धर्मी, तस्मिन् स्वाभाविको गुणः अहम्" टि०—मथु०। ३. ब्रह्मवेदो—अयो०, सामरूपो—रीवाँ। ४. केशरी—रीवाँ।
५. मघवद्धयः—मथु०, बड़ो०। ६. परसंगमः—बड़ो०। ७. ज्ञानानां—मथु०, बड़ो०।

योगानां भक्तियोगोऽस्मि शतरूपास्मि योषिताम् ।
भाषाणां शेमुषी चास्मि बुद्धीनां चाप्यभेददृक्[1] ॥२०॥
उपांशुश्चास्मि गुह्यानां युगानां कृतमस्म्यहम् ।
संवत्सरो प्रमादाना[2]मृतूनामस्म्यहं मधुः ॥२१॥
अभिजिच्चास्मि ताराणां मासानामाग्रहायणः ।
वेदव्याख्यानकर्तॄणां कृष्णद्वैपायनोऽस्म्यहम् ॥२२॥
विवेकिनामहं शुक्रो भार्गवाणां श्रीधरोऽ[3]स्म्यहम् ।
कृष्णश्चाप्यवताराणां वैष्णवेषु च नारदः ॥२३॥
पूर्णानां रामचन्द्रोऽस्मि वंशानां च रघोः कुलम् ।
राजीवश्चास्मि पुष्पाणां हविःष्वाज्यमहं पुनः ॥२४॥
द्रव्याणां संपदश्चास्मि मणीनामस्मि कौस्तुभः ।
इन्द्रनीलश्च रत्नानां वीराणां वज्रमस्म्यहम् ॥२५॥
द्यूतानां छलरूपोऽस्मि त्यागो वैराग्यशर्मणाम् ।
ऊर्जस्वलानामोजोऽस्मि लिङ्गं मूर्तिमतामहम् ॥२६॥
अम्बूनां रसरूपोऽस्मि शब्दानामस्म्यहं च गाः ।
धर्मिष्ठानां वलिरहं वीराणामस्मि कार्तिकः ॥२७॥
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि प्राणिनामस्मि चेतना ।
भूतानां नभ एवास्मि कर्तॄणां प्रकृतिः परा ॥२८॥
योगिनां कपिलश्चास्मि[4] सांशिनां[5]जानकीपतिः ।
जम्बुद्वीपोऽस्मि द्वीपानां पुरीणां कोशला[6]स्म्यहम् ॥२९॥
नरो नारायणश्चास्मि पुण्यसेतुस्तपस्विनाम् ।
अयं मे बहिरङ्गात्मा विभूतीनां प्रविस्तरः ॥३०॥
आब्रह्मभुवनव्याप्तकार्यो वाङ्मनसाकृतिः ।
ज्ञानवैराग्यधर्मैश्च[7] तद्विरुद्धं च मद्वपुः ॥३१॥

---

१. "चिज्जड़शरीरी भगवानेक एवेति ज्ञानमभेदज्ञानन्" टि०—मथु० । २. "कालात्मकः कलयतां" टि० पाठः—मथु० । ३. "श्रीधरः परशुरामः" टि०—मथु० । ४. कपिलोस्म्यंशी—अयो०, बलोममांशः—मथु०, बड़ो० । ५. सोहं श्री०—मथु० बड़ो० । ६. "साकेतं कोशलायोध्या—इति कोशात्" टि०—मथु० । ७. धर्मैश्वर्य—अयो०, रीवाँ ।

न यत्र वाङ् नैव मनः प्रवृत्तिर्न यत्र साक्षी न च साक्षिभास्यहम् ।
नित्यश्चिदानन्दमयश्च लोकः[1] स मे सर्गः शाश्वतश्चान्तरङ्गः ॥३२॥

यत्रास्ति साकेतपुरी सुधन्या
पुण्या नदी सरयूरुत्तरङ्गा ।
श्रीरत्नाद्रिर्गोपराजस्य गोष्ठं
प्रमोदकान्तारभुवः सुपेशलाः ॥३३॥
यत्राप्यशोकलतिकावनकुञ्जवीथी
रम्या कुटी रमे यत्र रामः किशोरः ।
सोऽहं प्रिया दशरथस्य सुतः सुपूर्ण-
स्वानन्दसिन्धुरसकृद्भवतीश्च नन्दन् ॥३४॥
सोऽहं सर्वगतश्चास्मि पुरुषश्चाक्षरः परः ।
कदाचिन्नैव लीला मे प्राकृतत्वाय कल्पते ॥३५॥
न नाशाय न दृष्ट्यै च न विकृत्यै चिदाकृतीः ।
एष मे शाश्वतो धर्मो रमणं शक्तिभिः सह ॥३६॥
स्वानन्दरसरूपाभिः पूर्णाभिः पूर्णशक्तिभिः ।
एषा मे सहजा लक्ष्मीः सर्वलीलाधिदेवता ॥३७॥
मां भूषयति संगच्छत्युन्मार्जयति राति च ।
तथैव निर्मितो लोकः स्वशक्त्या मत्स्वरूपया ॥३८॥
तयाहं नित्यसंयुक्तो रमामि कुशलैर्गुणैः ।
तदंशाः सकला यूयं नित्यं सन्निहिता मयि ॥३९॥
न कदाचिद्वियोगार्हाः स्वरूपं पश्यत प्रियाः ।
यूयं चिदानन्दमयाः सनातनाः स शक्तिभिर्निर्जितभूर्भुवःस्वः ।
पश्यन्तु दिव्येन दृशोदयेन न लब्धध्वं क्लेशलेशं कदापि ॥४०॥
मां सेवयन् यो भवतीरुपासते मद्भक्तिरूपाः सहजाभावरूपाः ।
तेनापि विश्लेषमहं न कुर्वे कथं स तावद्भवतीनां करिष्ये ॥४१॥
दास्यामि वो दिव्यदृष्टिं प्रियाणां
यया युक्ता द्रक्षथ स्वं स्वरूपम् ।

---

१. "प्रमोदवनं" टि०—मथु० ।

सच्चिद्रूपं सच्चिदानन्दरूपे
मयि ब्रह्मण्यादिदेवे तु प्रतिष्ठम् ॥४२॥
इत्युक्त्वा श्रीपतिस्ताभ्यो दिव्यं चक्षुरदात् प्रभुः ।
ततस्ता ददृशुः कृत्स्नं रूपं स्वं विश्वतो हरिः ॥४३॥
यत्रास्ति धाम विपुलं मणिजुष्टहेम-
प्राकारगोपुरगृहापणसौधगन्धम् ।
आरामपुष्पितलतातरुसौरभाढ्यं
गुञ्जद्द्विरेफमदराव[1]पिकीसमूहम् ॥४४॥
यत्रावसन्ति पुरुषाः शतपत्रनेत्राः
श्यामावदातवपुषः सुपिशङ्गवस्त्राः ।
सर्वे चतुर्भुजविराजितशङ्खचक्र-
कौमोदकीकमलशार्ङ्गधराः सवेषाः ॥४५॥
माया न यत्र गुणकर्मकलाविलासा
यद्वासिनो हरितनोर्नितरामभिन्नाः ।
श्रीमद्रमारमणजुष्टतुलस्यमोघ-
सौरभ्यसंग्रहसमुद्भवभूरिमत्ताः ॥४६॥
यत्राङ्गणं विविधरत्नविनिर्मितं यन्-
मन्दारमूलमणिभृत् क्रमिकालवालम्[2] ।
दिव्याङ्गनागतिविमोहितराजहंस-
पेपीयमानपरिपूर्णसुधावसेकम् ॥४७॥
चाम्पेयकुन्दवकुलोत्पलनागताल-
हिन्तालकेसरकदम्बतमालजुष्टैः ।
यत्राद्भुतैरुपवनैः कमलेक्षणानां
चेतो न याति विकृतिं भगवत्पराणाम् ॥४८॥
यस्मिन् रमारमणसौधमहार्हतुङ्ग-
द्वारोभयस्थलनिषण्णसुवेत्रहस्तौ ।

---

१. °दर्पि°—रीवाँ । २. मणिभूतकनिकाल०—मथु०, बड़ो० ।

दिव्यौ जयश्च विजयश्च सुरेश्वरादीन्
काले प्रवेशयति (तः ?) दूरनमत्किरीटान् ॥४९॥
यस्मिन् विभाति विपुलाश्च विमानकोट्यो
वैदूर्यरत्नकनकोत्तमनिर्मिताङ्गाः ।
तत्र स्थिता हरिमयाः पुरुषाः स्फुरन्ति
रामैकलीनमनसोऽद्भुतकेलिमन्त्राः ॥५०॥
यत्र प्रयान्ति विधिभिर्विपुलैर्यजन्तो
ये वा विचित्रविषयोद्भवसौख्यमत्ताः ।
यत्कोटिशास्त्रवचनैर्विनिरूपितं किं
त्वद्यापि वाङ्मनसगोचरतां न यातम् ॥५१॥
तत्रास्थिताः[1] स्वरूपं मे प्रत्येकं ददृशुः स्वयम् ।
श्रीराम[रमा?]रमणस्यान्तं[2] नारायणवराङ्गकम् ॥५२॥
नारायणः सत्त्वनिधिः सतांपतिः सहस्रनामा श्रुतिवागगोचरः ।
त्रयीमयः शेषमये शयानो भुजङ्गतल्पे चिद्घनो ब्रह्मपूर्णः ॥५३॥
तस्याङ्कसंस्थं ददृशुः स्वरूपं स चापि रामः सहजास्ताः स्वयं च ।
निःशोकनिर्व्याकुलपूर्णरूपः सच्चित्सुखाम्भोनिधिसद्मगाः[3] ॥५४॥
एवं ताश्चिन्मये लोके रामेण श्रीचिदात्मना ।
साकं भोगांश्च भुञ्जानाः सहजारूपमभ्ययुः ॥५५॥
स्वप्नवत्तदवस्थातः समुत्थाय विचित्रिताः ।
ददृशुः स्वपुरे रामं स्वात्मानं तत्पुरोगतम् ॥५६॥
तामवस्थां संस्मरन्त्यः श्रीराममहिषीपदम् ।
सद्यश्च मिलिताः सर्वा इदमूचुः सुविस्मिताः ॥५७॥
अहो अयं कान्त किमेतदन्तराचक्ष्महि[4] ब्रह्म सुखातिगं यत् ।
सुखं परं वीतविश्वप्रवाहं रजस्तमःसत्त्वगुणातिगं च ॥५८॥
अहो लोकस्य माधुर्यं अहो विपुलतापि च ।
अहो प्रासादसौधादिरचनाश्रयभूः परा ॥५९॥

---

१. यत्रा°—रीवाँ । २. रमणास्थानं—रीवाँ । ३. °सेव्यमानाः—अयो०, रीवाँ ।
४. °दन्तरं विचक्ष्महि—अयो०, रीवाँ ।

अहो ईश तवामुष्य प्रभावः श्यामसुन्दर ।
अहो वयं धन्यतमा महिष्यस्त्वन्महाङ्गगाः ॥६०॥
सर्वाश्च सहजारूपाः सच्चिदानन्दविग्रहाः ।
न कुतश्चित् क्वापि चोनाः साम्राज्यपदवीजुषः[1] ॥६१॥
तदेव दर्शयास्माकं स्वं धाम प्रकृतेः परम् ।
न यत्र तव विश्लेषो क्षणमप्यस्ति राघव ॥६२॥

श्रीराम उवाच

स एवैष महालोकश्चिल्लोकोऽयं[2] प्रपश्यथ ।
यत्र प्रमोदवनभूश्चेतो मोदयते भृशम् ॥६३॥
ततोऽस्य नैव भेदोऽस्ति गोपवध्वो मनागपि ।
पुनः पश्यत सद्दृष्ट्या[3] लोकदृष्टिं व्यपोह्य च ॥६४॥
मत्स्वरूपमिदं सर्वं कोटिब्रह्माण्डमूर्धगम् ।
ममांशैश्च कलाभिश्च बहुरूपेण संततम् ॥६५॥
तत्र तत्र भवत्योऽपि महिषीपदमागताः ।
यत्र यत्रास्मि श्रीरामो मम धाम चिदात्मकम् ॥६६॥
सर्वाः संमिलिता यूयं प्रमोदविपिने मया ।
सर्वेऽप्यंशा मम पुनरिहैव मयि संगताः ॥६७॥
इत्येवं भावयित्वा स्वं रूपं सदसतः परम् ।
मया नित्यं सुसंबद्धं नैव शोचितुमर्हथ ॥६८॥
वैकुण्ठे चिन्मये लोके श्वेतद्वीपे मनोहरे ।
सूर्यमण्डलमध्ये च भ्रुवोरन्तश्च योगिनाम् ॥६९॥
व्यापिवैकुण्ठमध्ये च यूयं सर्वत्र संगताः ।
भवतीभिर्विना क्वापि नाहं तिष्ठामि निर्वृताः ॥७०॥
अंशरूपा कलारूपा युष्माकं सकलाः श्रियः ।
सर्वासामंशिनी श्रीणां सहजा सहजाकृतिः ॥७१॥

---

१. कुतश्चित्क्वापि च नः साम्राज्यपदवीजयः—अयो०, रीवाँ । २. "साकेतः" टि०—मथु० । ३. तद्दृ°—रीवाँ ।

एवं विज्ञाय चात्मानं स्वरूपं च व्रजाङ्गनाः ।
रमध्वं मयका साकं परमानन्दनिर्वृताः ॥७२॥
अवतारार्थमेतं नु करिष्यामि धृतव्रताः ।
न तत्र शोचितुं योग्या भवत्यः प्रकृतेः परः ॥७३॥
एतद्वो दर्शितं रूपं मोहव्यपगमाय च ।
विश्लेषार्त्तिभवायासव्यवच्छेदाय च प्रियाः ॥७४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां रामगीता-
महोपाख्याने एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

पुनश्च वो दिव्यदृशं ददामि व्रजयोषितः ।
तेन द्रक्ष्यथ मद्रूपमिहैव प्रकृतेः परम् ॥ १ ॥
इत्युक्त्वा दर्शयामास स्वं रूपं रामचन्द्रमाः ।
कोटिब्रह्माण्डसंस्थानामाश्रमं दिव्यविग्रहम् ॥ २ ॥
सहस्रमूर्द्धाननकर्णचक्षुर्नासौष्ठगण्डादिकपाणिपादम् ।
सहस्ररोचिःप्रकरप्रकाशप्रत्यस्तदिग्भूमिनभस्तमिश्रम् ॥ ३ ॥
सहस्रदिव्याभरणप्रकाशं सहस्रदिव्यायुधतेजसां निधिम् ।
सहस्रबाहूदरनाभिवक्षः सहस्रदिव्यं मणिकुण्डलश्रियम् ॥ ४ ॥
यत्राश्विनौ वसवश्चैव साध्या विश्वेदेवाः सूर्यगणाश्चैव रुद्राः ।
एकोनपञ्चाशदपि प्रभञ्जनाश्चतुर्द्दशेन्द्रा लोकपालाश्च सर्वे ॥ ५ ॥
गन्धर्वविद्याधरसिद्धकिन्नरा नागा नगाश्चैव नदाश्च नद्यः ।
समुद्र आपः प्रदिशो दिशो भूर्द्वीपाः पुरग्रामवनाद्रिसंघाः ॥ ६ ॥
एकैकस्मिन् रोम्णि रामस्य[1] कोटिब्रह्माण्डसंस्थां ददृशुर्गोपवध्वः ।

१. °कस्मिन् श्रीरामस्य—मथु०, बड़ो० ।

जम्बूद्वीपं तत्र साकेतसंस्थां[1] प्रमोदकान्तारमथात्र रामम् ॥ ७ ॥
तत्सन्निधौ स्वस्वरूपं च गोप्यो नित्योल्लसद्रामविलासपुष्टम् ।
दृष्ट्वा विचित्राश्च विचेतसस्ताः संतुष्टुवुः प्राञ्जलयो गृणन्त्यः ॥ ८ ॥

गोप्य ऊचुः

सत्यं त्वमूचेऽहमनादिरव्ययः प्रकाशमानः पुरुषः पुराणः ।
त्वद्दर्शनात् साधु सम्यक् प्रतीतं परावराणां परमस्त्वं महेशः ॥ ९ ॥
त्वामेव गायन्ति समस्त वेदास्त्वामेव पश्यन्ति सुयोगदृष्ट्या ।
त्वामेव भावन्त इमे प्रपन्नाः कालत्रासात् पाहि पाहीति राम ॥१०॥
त्वमादिसृष्टौ भगवान् विरञ्चिर्भूत्वा त्रयीमध्यगीष्टाः[2] स्वभासा ।
त्वमेव विश्वस्य निधानमुत्तमं त्वमेव वीजं स्थिरजङ्गमानाम् ॥११॥
अमी लोका लोकपालाश्च सर्वे त्वय्येव सूत्रे मणिवत्संप्रयुक्ता ।
त्वं कालशक्त्या निजया विश्वमेतत् सृजस्यवस्यत्सि च भूरिवीर्य ॥१२॥
न च त्वदीयं महिमानमेते जानन्ति लोकास्त्वयि नित्यप्रतिष्ठाः ।
अहो अनन्तस्य तवेदृशं परं मरुत्त्वमुज्जासितवाङ्मनः पदम् ॥१३॥
न ते वीर्यं वेत्तुममी समर्थाः सब्रह्मलोकाश्च सलोकपाला ।
स्वानुग्रहेणैव वेद्योऽसि किंचिन्नमोस्तु ते ब्रह्मणेऽस्मै परस्मै ॥१४॥
दृष्ट्वा तवेदं वपुरुग्रवीर्यं स्वलङ्कृतं भूरि विष्वक्प्रकाशम् ।
कोटीन्दुसूर्यानलबिम्बनेत्रं वित्रस्तचित्ताः स्म वयं स्त्रियः प्रभो ॥१५॥
ग्राम्यस्वभावाः क्व वयं व्रजस्था क्व ते रूपं दुर्वितर्क्यं सुराणाम् ।
ज्वालासहस्रप्रकरैर्दुर्निरीक्ष्यं तदेवास्मान् दर्शय स्वस्वरूपम् ॥१६॥
अस्मिन् स्वरूपे तव रामचन्द्र स्वात्मानमप्येवमुदीक्षयामः ।
त्वां चैव साकेतपुरीसमीपप्रमोदकान्तारनिकुञ्जसंस्थम् ॥१७॥
तथापि नो हृदयं वेपतेऽद्य दृष्ट्वेदमुग्रं तव नामरूपम् ।
कालोऽसि वा कालकालोऽसि वा त्वं रुद्रोऽसि वा कोऽपि कालाग्निरुद्रः॥१८॥
इदं रूपं द्रष्टुमर्हा वयं नः स्वतेजसा व्याप्तदिगम्बरावनि ।
तदेव नो दर्शय रूपमाधिहन् कन्दर्पकोटिद्युतिहारि हृद्यम् ॥१९॥

---

१. °संस्थं—अयो० । २. °गोप्यः—रा०वाँ ।

नमोस्तु तुभ्यं पुरुषाय शाश्वते पूर्णात्मने कारुणिकाय वेधसे ।
स्वरूपशक्त्या सकलं च बिभ्रते परावराणां परमाय राघव ॥२०॥

प्रमोदवनमध्यस्थकुञ्जान्तरविलासिने ।
नित्यलीलाभ्युपेताय रामचन्द्राय ते नमः ॥२१॥

साकेतनगरोपान्ते अशोकवनवासिने ।
सहजाशक्तियुक्ताय रघुवर्याय ते नमः ॥२२॥

नमो मुक्ताविभूषाय नमोरत्नावतंसिने ।
नटाय[1] दिव्यवेशाय राघवाय च ते नमः ॥२३॥

कञ्जकिञ्जल्कवस्त्राय नीलसुन्दरकान्तये ।
अरविन्दनिभेक्षाय नमो नृपतिसूनवे ॥२४॥

यद्दृष्टमेतद्भवतः स्वरूपं सहस्रमार्तण्डकरालरोचिः ।
आद्यस्तदेवाद्य वरेण्य नाथ स्वविग्रहं दर्शय दोर्द्वयेन ॥२५॥

नारायणस्तवैवांशः सहजांशस्तथा रमा ।
स त्वं राम वरः[2] साक्षाद्वयं चापि रमात्मिकाः ॥२६॥

तथाप्यनेनैव सुखग्रहेण सदात्वमस्मान् रमयाधिहन्तः ।
किं वा वियोगानलबिभ्यतीर्नः[3] प्रवेशय स्वांशसमूह एव ॥२७॥

यत्र प्रमोदवनमञ्जलमाधुरीयं
यत्रोत्तरङ्गसरयूपुलिनद्वयश्रीः ।
यत्राप्यशोकवनमद्भुतवल्लिजुष्टं[4]
देशः स[5] एव हृदि नः सततं चकास्तु ॥२८॥

श्रीरामचन्द्र वरदेश्वर नित्यलील
श्रीमन् प्रभो कलय नः करुणार्द्रदृष्ट्या ।
येन त्वदङ्घ्रिसरसीरुहसौरभान्त-
र्भृङ्गीवदुन्मदहृदः सततं वसामः ॥२९॥

इत्याभाष्याखिला गोप्यः प्रेमविह्वलिताशयाः ।
निपेतुश्चरणाम्भोजे स्वात्मार्पणधिया प्रभोः ॥३०॥

---

१. नराय—बड़ो० । २. रामावदः—अयो०, रीवाँ । रामवदः—मथु०, बड़ो० ।
३. विभ्रतीर्—बड़ो । ४. °पुष्टं—रीवाँ । ५. "स कोशलः" टि०—रीवाँ, मथु० ।

श्रीराम उवाच

अहो धन्यतमा यूयमहं याभिर्वशीकृतः ।
मल्लीलामाधुरीं नित्यं पश्यन्त्यः सुखमासताम् ॥३१॥
युष्माकं मोहनाशाय स्वरूपं दर्शितं मया ।
माभूद्वःक्लेशनाशोऽपि संगतानां मयि प्रियाः ॥३२॥
मदीया कालशक्तिश्च नैव[1] स्पृक्ष्यति वः प्रियाः ।
कालमायातिगे लोके[2] सुखमेधध्वमङ्गनाः ॥३३॥

नित्यः संगो भवतीभिर्ममायं
चन्द्रस्येवाहर्निशं चन्द्रिकाभिः ।
इत्थं ज्ञात्वा नानुतप्यध्वमन्त-
र्दृष्ट्वाप्यन्यं मेऽवतारस्य कार्यम् ॥३४॥

अत्र नित्यस्थितश्चाहं स्वांशेन नृपतेर्गृहे ।
अवतीर्य करिष्यामि धर्मरक्षां सनातनीम् ॥३५॥
दैत्यांश्चैव हनिष्यामि रावणादीन् सुरद्रुहः ।
जानकीमुद्वहिष्यामि सहजांशत्वधारिणीम् ॥३६॥
भक्तान् समुद्धरिष्यामि पशुपक्ष्यन्त्य[3]जानपि ।
धर्मं संस्थापयिष्यामि तोषयिष्यामि निर्जरान् ॥३७॥
रघुवंशं करिष्यामि यशोभिः सुरभिर्मुहुः ।
साधूंश्च मानयिष्यामि मान्यान् देवद्विजादिकान् ॥३८॥
करिष्यामि महायज्ञानश्वमेधादिकानहम् ।
लीलाः संतानयिष्यामि क्रियाशक्त्या स्वकीयया ॥३९॥
कृत्वावतारकार्याणि बहूनि विपुलानि च ।
प्रमोदवनमेष्यामि भवतीसौख्यहेतवे ॥४०॥
तावद्यूयं मया साकं प्रमोदवनवीथिषु ।
अंशुरूपं समासाद्य मदभेदेन रंस्यथ ॥४१॥

---

१. न च—अयो०, न—मथु०, बड़ो० । २. "प्रमोदवने" टि०—मथु० ।
३. °प्रक्ष्यंतिजानपि—मथु०, बड़ो० ।

अत्रस्तोऽप्यहमीशानशापपालनकाम्यया ।
अन्तर्हितो भविष्यामि मदंशून् यूयमेष्यथ[1] ॥४२॥
यदा सुमहती पीडा देहे वाधिष्यते च वः ।
तदा यूयं वियोगेन मत्तादात्म्यमवाप्स्यथ ॥४३॥
इत्येतत् कथितं गोप्यो रहस्यं मम यत् स्थितम् ।
भूयःकिमिच्छथ श्रोतुं तद्वो गोप्यतमं ब्रुवे ॥४४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां रामगीतामहोपाख्यानं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गोप्य ऊचुः[2]

कति रूपाणि भवतो ध्येयानि शुभमिच्छुभिः ।
शृङ्गारवीररौद्रादिभेदात्तन्नो वद प्रभो ॥ १ ॥
यस्य रूपस्य ध्यानेन यत्फलं समवाप्यते ।
तन्नः कथय श्रीराम साधकाभीष्टहेतवे ॥ २ ॥

श्रीराम उवाच

निर्गुणोऽप्यहमाश्चर्यैरप्राकृततमैर्गुणैः ।
नृणां पृथगिवाभातुं योग्योऽस्मि मदुपासिनाम् ॥ ३ ॥
शुद्धमप्राकृतं सत्त्वं रजश्चैव तमस्तथा ।
मत्संस्थं तद्विजानीत कल्याणगुणमन्दिरम् ॥ ४ ॥
तैस्तैर्गुणैः पृथग्भावमाश्रित्य[3] शुभहेतवे ।
भक्तानां दर्शयाम्यद्धा स्वरूपं सुमनोहरम् ॥ ५ ॥
रत्नपीठसमासीनमास्थितं योगमुद्रया ।
अङ्कन्यस्तसमुत्तानकरपङ्कजभूषितम् ॥ ६ ॥

---

१. अयं श्लोको नास्ति—अयो० । २. नास्ति—अयो०, रीवाँ । ३. °श्रितैः—रीवाँ ।

नासाग्रन्यस्तनयनं मुद्रितास्यं च सुस्थिरम् ।
विष्टब्धवक्षसं दिव्ययोगध्यानपरायणम् ॥ ७ ॥
याज्ञवल्क्यादियोगीन्द्रैरुपासितसुविग्रहम् ।
सरयूपुलिनाश्वत्थमूलमास्थाय संस्थितम् ॥ ८ ॥
सततं[1] मां स्मरेदेतत् सात्त्विकं ध्यानमीरितम् ।
वामोरुन्यस्तचरणं रत्नसिंहासनस्थितम् ॥ ९ ॥
वामे करे तत्त्वमुद्रां दक्षे व्याख्यां च निर्वृताम् ।
योगीन्द्रेष्वात्मतत्त्वार्थं व्याचक्षाणं स्मिताननम् ॥१०॥
वेदवादसमुन्नादमुखरीकृतदिक्तटम् ।
सिद्धान्तज्ञापनानन्दनमन्मुनि[2]गणार्चितम् ॥११॥
ध्यायेन्मां सततं ध्यानमेतत्सात्विकराजसम् ।
वीरासनसमासीनं स्वपक्षस्थापनोद्धुरम् ॥१२॥
परपक्षं निरस्यन्तं क्रुध्यन्तं वा सुरेष्वपि ।
ध्यायेद्रघुवरं ध्यानमेतत्सात्विकतामसम् ॥१३॥
प्रपन्नभक्तसंदोहकरुणाकुललोचनम् ।
उद्भूताश्रुकलाकीर्णं मोचयन्तं भवार्तितः ॥१४॥
ध्यायेन्मां सुमुखं[3] ध्यानमेतत्सात्विकतामसम् ।
हैमसिंहासनासीनं कौस्तुभेन विभूषितम् ॥१५॥
दक्षे लक्ष्मणसंयुक्तं वामे जनकजायुतम् ।
अग्रे हनुमता भक्तिनिबद्धाञ्जलिना युतम् ॥१६॥
सौमित्रिभरताभ्यां च दिव्यचामरवीजितम् ।
मात्रा कौशल्यया स्नेहान्नीराजितशिखानखम् ॥१७॥
स्तवनोद्घोषिताष्टांशैः स्तूयमानं सुरर्षिभिः ।
इन्द्रादिदिविषद्वृन्दमुक्तकल्पलतासुमम् ॥१८॥
भेरीपटहनिःस्वानमृदङ्गस्वर[4]नादितम् ।
दिव्यप्रासादभवने शोभमानं मुदान्वितम् ॥१९॥

---

१. सततो—अयो० । २. °श्रीमन्मुनि०—अयो० । ३. स्वमुखं—रीवाँ ।
४. °रव°—मथु०, बड़ो० ।

समस्तराजराजेन्द्रं दिव्यायुधविराजितम् ।
धनुर्बाणधरं ध्यायेद् ध्यानमेतत्तु राजसम् ॥२०॥
शाम्भवं धनुरादाय त्रोटयन्तं तृणादिवत् ।
ईषत्संरंभसाटोपं ध्यायेद्राजसतामसम् ॥२१॥
क्रुध्यन्तं राक्षसानीकमथनोन्मुखसायकम् ।
कबन्धीकृतवीरौघसंकुले रणमण्डले[1] ॥२२॥
मृगेन्द्रमिव खेलन्तं दुराधर्षं निजौजसा ।
ताम्रारुणेक्षणं वीरं दोर्दण्डद्वयविक्रमैः ॥२३॥
कुण्डलीकृतकोदण्डं प्रचण्डं मां हृदि[2] स्मरेत् ।
तामसं ध्यानमुद्दिष्टं शुभदं राघवस्य मे ॥२४॥
सिन्धुतीरप्रतिष्टब्धवानरानीकसंकुलम् ।
क्रियाविघातसंभूतरोषसंहितसायकम् ॥२५॥
तज्जाग्निदह्यमानाब्धिव्याकुलाशेषयादसम् ।
कोपान्नियमिताम्भोधिकृतपादाभिवन्दनम् ॥२६॥
संरंभेण ब्रुवाणं च मार्गं देहीति सिन्धवे ।
ईषद्भ्रूभङ्गसंभिन्नललाटविकटाकृतिम् ॥२७॥
सीताविरहनिर्जूटजटामुकुटमण्डितम् ।
ईदृशं भावयेन्मां तद्ध्यानं राजसतामसम् ॥२८॥
अथ वक्ष्ये गुणातीतं मदीयं ध्यानमुत्तमम् ।
प्रमोदवनकुञ्जान्तर्दिव्यकल्पलतागृहे ॥२९॥
सहजानन्दया शक्त्या युक्तं वामाङ्कसंस्थया ।
दिव्यशृङ्गारवेशाढ्यं मुक्ताहारविभूषितम् ॥३०॥
हरिचन्दनलिप्ताङ्गं मणिवर्यावतंसकम् ।
किशोरं कञ्जपत्राक्षं रासरूप[3]मनोहरम् ॥३१॥
गोपालतरुणीतीक्ष्णकटाक्षतरलीकृतम् ।
फुल्लारविन्दसंयुक्तं नालभ्रमरकारिणम् ॥३२॥

---

१. मण्डले स्थिरं—रीवाँ । २. हृदा—मथु०, बड़ो० । ३. राजरूप°—बड़ो० ।

मकराकृतिमाणिक्यकुण्डलश्रवणद्वयम् ।
नवमौक्तिकसंशोभिनासाग्रमधुराकृतिम् ॥३३॥
उन्नद्धचारुचिबुकं पक्वबिम्बारुणाधरम् ।
दशनज्योतिरालोकप्रकाशितदिगन्तरम्[1] ॥३४॥
नीलालकालिलावण्यललिताननपङ्कजम् ।
श्रीमच्चूडामणि[2]द्योतिमूर्धानं वेणिकान्वितम् ॥३५॥
मुरलीमञ्जु[3]माधुर्यसंमुग्धमधुराधरम् ।
रत्नाङ्गुलीयकद्योतविचित्रमुरलीकरम् ॥३६॥
रत्नकेयूरसंभ्रान्तद्दोर्दण्डद्वयमण्डितम् ।
रक्ताम्भोजदलाकारचारुपाणितलद्वयम् ॥३७॥
रत्नपूर्णकटीबन्धरणत्क्वणित[4]विग्रहम् ।
पीताम्बरपरीधानं निम्ननाभिवलित्रयम् ॥३८॥
वामाङ्घ्रिकृतदक्षाङ्घ्रिसर्वाङ्गललिताकृतिम् ।
मन्दहाससुधासिक्ताभीरोहृदयभूरुहम् ॥३९॥
परार्द्धकामसौन्दर्यगर्वहारिदृगञ्चलम् ।
कटाक्षक्षोभिताशेषगोपस्त्रीचित्तलोचनम् ॥४०॥
नवीननीलपाथोजपटलीमसृणाशिखम् ।
इन्द्रनीलमणिप्रख्यमतसीकान्तितस्करम् ॥४१॥
कण्ठादुभयपार्श्वस्थलोलत्[5]पीतपटच्छविम् ।
माणिक्यमुकुटभ्राजिमुक्ताहारविभूषणम् ॥४२॥
पञ्चवर्णप्रसूनाढ्यं वनमालाविभूषितम् ।
मञ्जीरमञ्जुलाकारं चरणाम्भोजपल्लवम् ॥
राजराजसुतं रामं रमणं मां विभावयेत् ॥४३॥
एतद्ध्यानमनुत्तमं खलु गुणातीतं मुहुर्भावितम्
श्रीमन्नन्दननन्दिनीनयनयोरानन्दरत्नाकरम् ।
कृत्वा यः कुरुते जपार्चनविधिं न्यासादिरूपाः क्रिया-
स्तस्मै श्रीसहजापतिः प्रणतये सद्यः प्रसीदत्यहो ॥४४॥

---

१. °दिगम्बरम्—रीवाँ, मथु०, बड़ो० । २. रामचूडामणि°—रीवाँ । ३. °मन्द°—अयो० । ४. °पूर्णित°—रीवाँ । ५. लोल°—रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

अन्यान्यपि तु रामस्य ध्यानानि मम सन्ति वै ।
व्रजे विहरतः श्रीमद्गवेन्द्रसुखितालये ॥४५॥
अवाङ्मनसरूपाणि निर्गुणान्येव तान्यपि ।
क्वचिद् द्विहायनं बालं[1] खेलन्तं शिशुभिः सह ॥४६॥
नवनीतकराम्भोजं रिङ्गन्तं गोपिकाङ्गणे ।
झणाझणत्कटितटीकिङ्किणीनूपुरद्वयम् ॥४७॥
कोटिचन्द्रमुखं श्रीमत्पङ्कजायतलोचनम् ।
जडितद्वीपिनखरस्वर्णखण्डविभूषितम् ॥४८॥
अव्यक्तमधुरालापं मातॄणां सुखदायकम् ।
भजेन्मां सर्वमाङ्गल्यहेतवे भक्तिमान्नरः ॥४९॥
बहूनि बाललीलायां यौवनेऽपि बहून्यपि ।
रूपाणि मम भाव्यानि भक्त्या भक्तिधनैर्जनैः ॥५०॥
तेषां सुखं श्रियं पुष्टिं तुष्टिं नैःश्रेयसीं मुदम् ।
ददामि सर्वमाङ्गल्यमैहिकं पारलौकिकम् ॥५१॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां
श्रीरामगीतामहोपाख्यानं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

शक्तिहस्तं स्मरेन्नित्यं रणे जयमवाप्नुयात् ।
धनुर्बाणधरं स्मृत्वा रणे जयमवाप्नुयात् ॥ १ ॥
खड्गचर्मधरं यो मां स्मरेन्नित्यमखण्डितः ।
तस्याहं संकटे बाधां सर्वां हन्तुं दृढव्रतः ॥ २ ॥
गदाहस्तं स्मरेन्नित्यं द्यूते जयमवाप्नुयात् ।
नौकारूढं स्मरेद्यो मां जलभीतिं तरत्यसौ ॥ ३ ॥

१. वत्सं—रीवाँ ।

भिल्लवेशधरं क्रूरं गुञ्जाकल्पितभूषणम् ।
स्मरन्नुच्चाटयेच्छत्रून् संग्रामे संकटेऽपि वा ॥ ४ ॥
दिव्यकुञ्जधरं स्मृत्वा मोहयेज्जगतीतलम् ।
मुक्ताहारधरं दिव्यमुक्ताफलविभूषितम् ॥ ५ ॥
रक्तपुष्पस्रजं स्मृत्वा तत्क्षणान्मारयेद्रिपून् ।
शुक्लाकल्पं शुक्लवस्त्रं शुक्लमाल्यानुलेपनम् ॥ ६ ॥
शुक्लवर्णं राघवं मां शान्तिके कर्मणि स्मरेत् ।
पीतं पीताम्बराकल्पं स्मरेन्मां वशयेज्जगत्[1] ॥ ७ ॥
गजारूढं स्मरेन्नित्यं हेमच्छत्रविभूषितम् ।
परितो रोचिषा भान्तं विभूतिं प्राप्नुयान्नरः ॥ ८ ॥
लसत्तुलसिकादामराजमानसुवक्षसम् ।
स्मरेन्मां तत्क्षणादेव दृढवैराग्यमाप्नुयात् ॥ ९ ॥
चिन्मुद्रया दक्षकरे वामे पुस्तकभूषितम् ।
मां सदा स्मरतः पुंसः सद्यो ज्ञानोदयो भवेत् ॥१०॥
ताम्बूलरागदिग्धौष्ठं स्मयमानमुखाम्बुजम् ।
स्मरन्मां मुच्यते जन्तुर्दारिद्र्यभवशोकतः ॥११॥
रत्नाकल्पं रत्नहारभूषितं रत्नकङ्कणम् ।
स्मरन्मां जानकीजानिं त्रैलोक्ये विजयी भवेत् ॥१२॥
रथारूढं स्मरेन्नित्यं त्रैलोक्यं भ्रामयेज्जनः ।
प्रासादशिखरासीनं स्मरन्नुत्कर्षमाप्नुयात् ॥१३॥
व्रजस्त्रीगणमध्यस्थं हसन्तं नर्मकेलिभिः ।
कुञ्जहारहरं स्मृत्वा त्रैलोक्यसुभगो भवेत् ॥१४॥
विपञ्चीं वादयन्तं च मूर्छनास्वरभक्तिभिः ।
स्मरेन्मां सततं मर्त्यः सर्ववागीश्वरो भवेत् ॥१५॥
मञ्जुलालापसुभगं प्रियया सीतया सह ।
स्मरेद्रघुवरं यो मां सत्कविर्जायते नरः ॥१६॥

---

१. अतः परं "गजारूढं स्मरेन्मां यः सर्वं स वशयेज्जगत्" इत्यधिकः पाठः—अयो०, रीवाँ ।

छत्रायितेन्दुसंदोहस्रवत्पीयूषनिर्झरैः ।
सिच्यमानं स्मरन् रामं मामारोग्यमवाप्नुयात् ॥१७॥
दक्षे दरवरं बिभ्रद्वामे मुष्टिं दृढां दधत् ।
स्मर्यमाणो रामवीरं सद्यः स्तम्भयते द्विषः ॥१८॥
चक्रपाणिः स्वयं रामः सद्यो नाशयते परान् ।
गदापाणिः स्वयं रामः सद्यो नाशयते गदान् ॥१९॥
कुण्डलीकृतकोदण्डमुक्तैः शिततमैः शरैः ।
ताडकां मारयन् रामः परकृत्यानिवारकः ॥२०॥
शितिभल्लनिकृत्तविग्रहां रुदतीं शूर्पणखां सुविस्मयन् ।
स्मरणीयतमोऽस्मि डाकिनीभयशान्त्यै व्रजवामलोचनाः ॥२१॥
अश्वारूढं स्मरेद्रामं संप्राप्ते धर्मसंकटे ।
दक्षे प्रसूनकलिका वामे जनकजाकरम् ॥२२॥
बिभ्रत्सर्वार्थसंसिध्यै ध्येयोऽस्मि रघुनन्दनः ।
धनुर्बाणधरो रामः सर्वकार्यं प्रसाधयेत् ॥२३॥
एवं ममातिरुचिराणि सुखावहानि
रूपाणि वाङ्मनसलोचनमङ्गलानि ।
ध्यायन्नरोऽथ लभते कुशलानि भूयो
धर्मार्थकामगणमुक्तिसुखावहानि ॥२४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां रामगीता-
महोपाख्याने द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गोप्य ऊचुः

सुखितः किंतपोऽतप्यन्माङ्गल्या च यशस्विनी ।
ययोर्नेत्रहृदानन्दचन्द्रमास्त्वमवातरः ॥ १ ॥
नन्दनः किंतपोऽकार्षीद् गोपेन्द्रो वैश्यसत्तमः ।
तत्पत्नी राजिनी चैव महाभागा शुचिस्मिता ॥ २ ॥
ययोरपत्यतां याता सहजानन्दिनी स्वयम् ।
एषा हि सच्चिदानन्दपरब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ३ ॥
एतत् कथय नो देव रघुवंशदिवाकर ।
अस्माकं सुकृतानां च माहात्म्यं वद राघव ॥ ४ ॥
याभिः संवीक्षितो दृग्भ्यां पूर्णब्रह्म परं भवान् ।

श्रीभगवानुवाच

मद्रूपश्चिद्घनानन्दो गवेन्द्रः सुखितो ह्यसौ ।
तथैव माता माङ्गल्या मद्रूपा सच्चिदात्मिका ॥ ५ ॥
नन्दनो राजिनी चैव सहजानन्दिनीप्रसूः ।
तथापि तेषाम् उत्पत्तिं कथयामि युगे युगे ॥ ६ ॥
यदा यदानुजायेऽहं ज्ञानं सत्त्वाद्यनावृतम् ।
आविर्भूय मदंशैश्च मम लीलासुखावहः ॥ ८ ॥
अयं हि पूर्वकल्पेऽभूत् कर्दमाख्यः प्रजापतिः ।
देवहूतिश्च माङ्गल्या तेजोरूपौ तपोनिधी ॥ ९ ॥
दम्पती समकुर्वातां सहस्रं शरदां तपः ।
जिताहारौ मिताहारौ प्रत्यहं व्रतकर्षितौ ॥१०॥
नैव किञ्चिदयाचेतां मत्स्वरूपैकनिर्वृतौ
तस्मिन् भवे मत्कृपया तत्त्वज्ञानमवापतुः ॥११॥
समनस्कौ निर्मनस्कौ शुद्धबुद्धौ चिदात्मकौ ।
कापिलेन स्वरूपेण शुद्धब्रह्मणि योजितौ ॥१२॥

अतृप्यतां नैव तथापि तद्रसात्तौ दम्पती सच्चिदानन्दरूपिणौ ।
विशुद्धभक्त्या पुरुषोत्तमं मां[1] प्रसाधयन्तौ सहजेन शर्मणा ॥१३॥

यावत्त्रेतायुगं तावद्[2] ब्रह्मकैरस[3]निर्वृतौ ।
ततः स्वरूपनिष्ठौ तौ माङ्गल्यासुखिताविह ॥१४॥
बभूवतुर्महोदारौ महावंशौ महाधनौ ।
शुद्धया परया भक्त्या मत्सान्निध्यमवापतुः ॥१५॥
तयोर्हृदयसंतुष्ट्यै प्रादुरासमहं प्रियाः ।
श्रीमत्परिकरोपेतो नित्यसिद्धाभिरन्वितः ॥१६॥
तथासाधनसिद्धाभिरन्वितो भक्तवत्सलः ।
श्रुतयस्ता ब्रह्मलोके मद्गुणग्रामगायिकाः ॥१७॥
इदानीमृषयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः ।
भक्त्या स्वरूपसंसिद्धा यास्यन्ति मम सन्निधिम् ॥१८॥
कृष्णावतारे लीलायां मम तादात्म्यवत्यहो[4] ।
नित्यसिद्धास्तथैवैता भविष्यन्ति प्रिया अपि ॥१९॥
भविता वसु[5]मुख्यश्च द्रोणोऽसौ सुखितेश्वरः ।
तत्प्रियां च धरां तत्र माङ्गल्या तु प्रवेक्ष्यति ॥२०॥
माङ्गल्या सुखितश्चैव मद्रूपौ मद्रसात्मकौ ।
आविश्य तत्र तत्रैतौ लीला वर्धयतो मम ॥२१॥
एवं प्रभाभानुरूपौ राजिनीनन्दनावपि ।
तौ पूर्वस्मिन् भवे मत्तो भक्त्या सुष्ठुप्रसाधितात् ॥२२॥
मत्स्वरूपवरं लब्ध्वा संगताविह जन्मनि ।
एकोऽहं सन् द्विधा जातः सहजा राम एव च ॥२३॥
प्रभाभान्वोः प्रमोदार्थं शृङ्गाररसविग्रहः ।
अनेन रसवर्येण मत्सेवातत्पराविमौ ॥२४॥
अयं च रसवर्योऽस्ति मद्रूपो नीलसुन्दरः ।
यो यां यां भावनां धत्ते तस्य तां तां बिभर्म्यहम् ॥२५॥

---

१. परं—मथु०, बड़ो० । २. सम्यक्—मथु०, बड़ो० । ३. ब्रह्मरस—मथु०, बड़ो० । ४. °भागिनः—रीवाँ । ५. गोप°—रीवाँ, येसु°—मथु०, बड़ो० ।

प्रभा च चित्रभानुश्च मम सेवापरायणौ ।
दिव्यवर्षसहस्राणि तपोनिष्ठौ बभूवतुः ॥२६॥
तयोः स्वरूपनिष्ठां तां तपश्चोग्रं सुदुष्करम् ।
वीक्ष्य प्रसन्नोऽहमासं पुरो भूयः स्थितोऽभवम् ॥२७॥
दिव्यमाणिक्यमुकुटो वनमालाविभूषितः ।
दिव्यशृङ्गारवेशाढ्यो वामाङ्गे सहजायुतः ॥२८॥
रत्नाकल्पमनोज्ञाङ्गः कौस्तुभेन विभूषितः ।
प्रावृषेण्य[1]घनाकारनीलसुन्दरविग्रहः ॥२९॥
स्मितमाधुर्यमुग्धास्यो हरिचन्दनलेपवान् ।
पीताम्बरपरीधानो महामञ्जुलविग्रहः[2] ॥३०॥
मूर्तिमान्मन्मथश्चैव लावण्यामृतसागरः ।
एवंविधं मां दृष्ट्वा तावभूतां मोहितान्तरौ ॥३१॥
नैव किंचिदवृण्वातां मत्स्वरूपैकनिर्वृतौ ।
मनः संकल्पमतुलमकुर्वातां सुदुर्गमम् ॥३२॥
एवं विधाय जामात्रे कन्या चैवंविधा भवेत् ।
तयोराशयविच्चाह[3]मब्रुवं मञ्जुलं वचः ॥३३॥
ज्ञातो वां समभिप्रायः तथैवैतद्भविष्यति ।
संकल्पितं युवाभ्यां यत्तत्तथैव भविष्यति ॥३४॥
ततस्तौ संचितवरावारेभाते स्तुतिं मम ।
[4]यादृशेन स्वरूपेण दृष्टस्तादृशभावनौ[4] ॥३५॥

भानुरुवाच

नमस्ते विश्वात्मन् सततसहजानन्दनिधये
मुनीनामप्यन्तर्विरचितनिजानन्तरतये ।
अगम्याया[5]चिन्त्यप्रकृतिरमणीयाय युवयो-
र्युगायास्मै कस्मैचिदपि परिपूर्णाय महसे ॥३६॥

---

१ प्रावृण्मेघ°—रीवाँ । २. अयं श्लोको नास्ति—अयो० । ३. विज्ञाय—रीवाँ । ४—४. नास्ति—अयो०, रीवाँ । ५. अगण्याया°—मथु०, बड़ो० ।

घनस्तोमश्यामं विलसति महामञ्जुलतरं
तडित्स्वर्णं वर्णाधिकसुकमनीयं च किमिदम् ।
अमुष्य श्रीरेषा परमपुरुषस्योत्तमपते[1]-
र्गुणातीता काचित् परिलसतु सा चेतसि मम ॥३६॥
अहो अदृष्टपूर्वाभ्यां रुचिराभ्यां स्वभावतः ।
पूर्णाभ्यां स्फुटमेताभ्यां दम्पतीभ्यां नमोनमः ॥३७॥
अहो हृदयमेताभ्यां आलिङ्गनरसोत्सुकम् ।
अलौकिकमहो दृष्ट्वा सद्यः किन्तु बिभेति नः ॥३८॥
अहो लावण्यविस्फारमूर्तिमन्तौ मनोरथौ ।
कुत्र वां परमो लोकस्तत्रावां नयतां न किम् ॥३९॥
अहो लोकोत्तरं तेजो माधुर्यं श्रीश्च सौभगम् ।
चिरं नयनभाग्यैर्नस्तिष्ठतामिह मन्दिरे ॥४०॥
नूनमेष पुरुषोत्तमोत्तमो यः परावरकजन्मनां परः[3] ।
तस्य नित्यसुविलाससंगिनी श्रीरसौ मधुरकोमलाकृतिः ॥४१॥
अहो तपोभिरस्माकं फलितं यद् दृशंगतौ ।
एतौ परमकल्याणविग्रहौ लोकमङ्गलौ ॥४२॥
अहो युवाभ्यां पुरुषोत्तमाभ्यां श्रीराघवाभ्यां मधुराकृतिभ्याम् ।
अपूर्वलावण्यनिकेतनाभ्यां लोकोत्तराभ्यां सततं नमोनमः ॥४३॥
अस्मत्तपोविबुधवृक्षमहाफलाभ्यां
श्रीमत्स्मिताधरसुधाहृतलोचनाभ्याम् ।
शश्वत्स्वभावरमणीयसुविग्रहाभ्यां
नित्यं नमोस्तु श्रीजानकीरामचन्द्राभ्याम् ॥४४॥
युवामज्ञानगतिकावज्ञातविभवाकृती ।
सृष्टिस्थित्यन्तमेतस्य विश्वस्य कुरुतो भृशम् ॥४५॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रिगुणाः सुरसत्तमाः ।
कटाक्षमात्रनिष्पन्ना युवयोरेव सेवकाः ॥४६॥

---

१. °त्तमस्य ते—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. रामो—मथु०, बड़ो० ।
३. परावरे यः परजन्मनः परः—रीवाँ ।

युवां कैवल्यनिर्वाणपरमोत्सवदायकौ ।
स्वरूपानन्दशक्त्यैव वृंहमाणौ गुणाद्भुतौ ॥४७॥
यत्तद्ब्रह्म परं पूर्णं स्वरूपानन्दनिर्वृतम् ।
तत्तु वामेव महतोस्तेजो भद्रामरोत्तमौ[1] ॥४८॥
अहो अत्यद्भुतं भाग्यमस्माकं वचनातिगम् ।
येन वामद्भुतौ दृष्टौ ब्रह्मपूर्णौ सनातनौ ॥४९॥
यावदारोप्यते युष्मास्वगुणेषु गुणोत्करः ।
तावत्स्ववाचश्चापल्यं यूयं पुनरनुत्तमौ ॥५०॥

प्रभोवाच

इयन्ते सहजानाम चारुरूपा शुचिस्मिता ।
कल्याणिनी महाभागा गौरी हरिणलोचना ॥५१॥
असौ ममैवानन्दाय भूयात् स्वानन्दनन्दिनी ।
[2]भवे भवति भव्यायां नित्यं परिचरन्ति ये ॥५२॥
अस्याः स्वरूपलावण्यवशीकृतमनाः भवान्[2] ।
अनन्यप्रेमगो भूत्वा रंस्यसे नित्यकेलिभिः ॥५३॥
युवाभ्यां नित्यमाधुर्यभूमिकाभ्यां नमोनमः ।
एवमेव सदा कार्यो मल्लोचनमहोत्सवः ॥५४॥
नमोस्तु दम्पतीभ्यां मे शृङ्गाररसमूर्त्तये ।
घनविद्युन्निभाकारनीलसुन्दरतेजसे ॥५६॥
अद्य नस्तपसां राशिः फलरूपः सुरद्रुमः ।
यदेतद्दृष्टिविषये याति दम्पतियुग्मकम् ॥५७॥
अहो कोऽपि चमत्कारो जातो नयनयोर्मम ।
स एव सर्वदा तिष्ठत्ववलम्बनमात्मनः ॥५८॥
ईदृशो मम जामाता ईदृशी मम कन्यका ।
जायेतां नयनानन्दहेतवे सौख्यसिन्धुवत् ॥५९॥

---

१. महत्तेजो भवत्यमरोत्तमौ—अयो०, मथु०, बड़ो० । २-२.—नास्ति अयो०, रीवाँ ।

इष्टं हुतं दत्तमथापि कृत्यं तपश्च[1] यत्तत्फलितं नैव वेद्मि ।
अनुग्रहः किंतु कृपासमुद्रयोः फलत्यसौ सहजारामयोर्वा ॥६०॥

कोटिभिः साधनानां यन्नैव सद्यः[2] प्रसीदति ।
परब्रह्म तदेतन्नो नयनानन्दहेतवे ॥६१॥
अहो भाग्यमहो भाग्यमस्माकं किन्नु वर्ण्यते ।
यद्दृशोः गोचरं ज्ञानं परब्रह्माभिधं महः ॥६२॥
अहो उत्कण्ठया लोलं हृदयं वाञ्छतीव मे[3] ।
सद्यः परिष्वजाम्येतौ परमानन्दसुन्दरौ ॥६३॥
दृष्ट्वा त्वलौकिकं धाम मनो मे परिवेपते ।
चन्द्रसूर्य्याग्निधामभ्यः परं धामेदमद्भुतम् ॥६४॥
तपन्निव स्रवन्निव ज्वलन्निवैष रोचते[4]
महोभरः प्रभाकरः प्रभासुरः सुखोत्तरः[5] ।
अयं हि सर्वदेवतामयस्त्रयीमयोऽक्षरः
नरोत्तमः प्रियायुतो[6] रमापतिः सतांगति ॥६५॥

नमस्ते नमस्ते सदा राम राम प्रसीद प्रसीदेश लक्ष्मीनिवास ।
अनेनैव रूपेण नित्यं दृशोर्नः प्रपन्नार्तिहन् गोचरत्वं प्रयाहि ॥६६॥

श्रीरामसहजाभ्यां मे पूर्णाभ्यां निजतेजसा ।
अखण्डानन्दबोधाभ्यां पराभ्यां संततं नमः ॥६७॥
इत्येवं विविधैःस्तोत्रैर्भूयस्तुष्टुवतुश्च माम् ।
संतोष्याहं कामवरं रहोवनमगां ततः ॥६८॥
ततो निमेषार्धमितं कालेन प्रतिगच्छता ।
अभूतां साकेतदेशे राजिनीनन्दनश्च तौ ॥६९॥
एतत्सर्वं परिप्रोक्तं यत्पृष्टमपि वः प्रियाः ।
मन्नित्यलीलाविस्तारे सर्वं जानीत संगतम् ॥७०॥

---

१. तप्तं कृतश्च—मथु० बड़ो० । २. साधनैर्नैव सद्यः पूर्वं—रीवाँ । ३. वांछं जीवसे—बड़ो० । ४. तवान्निर्वस्रवच्चैव निर्गोचर न रोचते—रीवाँ । ५. महोभरः प्रभाकारः प्रभाशूरः सुखोत्तरः—रीवाँ । ६. °युक्तो—अयो०, रीवाँ, बड़ो० ।

नित्यो ह्ययं परिकरो नित्यं मोदवनं त्विदम् ।
नित्या गावश्च गोपाश्च नित्यः श्रीसुखितेश्वरः ॥७१॥
माता नित्यैव माङ्गल्या नित्यं श्रीनन्दनस्तथा ।
नित्यैव राजिनी साक्षान्नित्या श्रीसहजा मम ॥७२॥
तं तं भक्तं समाविश्य क्रीडति च युगे युगे ।
आविश्य तत्र तत्रैव यत्र साक्षाद्भवाम्यहम् ॥७३॥
साधनैरेव सिद्ध्यन्ति मद्भक्ताः शुद्धभक्तितः ।
तत्र चैते समाविश्यावतरन्ति भवे भवे ॥७४॥
मदीये लोकसंसिद्धे स्वस्वरूपेण तेऽखिलाः ।
वर्त्तन्ते सच्चिदानन्दविग्रहाः सत्पदं गताः ॥७५॥
कदाचिच्छ्रीपरिकरो भक्तानां दिव्यविग्रहः ।
चिल्लोकवत्स्वरूपेणावतीर्येह प्रवर्तये[1] ॥७६॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां रामगीतामहोपाख्याने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः[2] ॥५४॥

●

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गोप्य ऊचुः

नित्यसिद्धा वद ब्रह्मन् ब्रूहि साधनसिद्धिगाः ।
ऋग् रूपा[3] ऋषिरूपाश्च तासां मध्ये वयं च काः ॥ १ ॥

श्रीराम उवाच

प्रमोदविपिने नित्ये चिन्मये ब्रह्मसंज्ञिते ।
मद्रूपा नित्यसिद्धास्ता भवत्यः पश्यत प्रियाः ॥ २ ॥
इत्युक्त्वा स्वाङ्गरश्मिभ्यः प्रादुर्भावितवान् प्रभुः ।
ताः षोडशसहस्राणि प्रादुरासुः समंततः ॥ ३ ॥

---

१. प्रवर्तते —अयो० । २. चतुःपञ्चा°—अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० । अतः परं चतुर्ष्वेव मातृकासु अध्याय संख्याङ्कने भ्रान्तिः [—संपा०] । ३. अजरूपा—रीवाँ ।

एतास्ता नित्यसिद्धा ये शशिमुख्यः सुलोचनाः ।
प्रियाः षोडशसाहस्रं नित्यलीलाधिदेवताः ॥ ४ ॥
तासां मध्ये षोडशैव मुख्याः स्युर्वामलोचनाः ।
रामाश्यामाचन्द्रकलामञ्जुलाललितालताः ॥ ५ ॥
लासिनी भामिनी भासा सुदीप्तिः सुरुचिः प्रभा ।
चञ्चला कनका काम्या कामिनीति निरूपिताः ॥ ६ ॥
स्वस्वमण्डलमुख्याश्च रामाः सर्वासु नायिकाः ।
सहजानन्दिनी सैव श्रीसीता जानकीत्यपि ॥ ७ ॥
एतस्या अंशरूपास्तु सर्वा एताः शुचिस्मिताः ।
भवतीनां प्रमोदाय प्रादुर्भाव्य प्रदर्शिताः ॥ ८ ॥
नित्या एताः प्रमुदविपिने मत्स्वरूपादभिन्नाः
श्रीसाकेतश्रिय इह भवे वावतीर्णाश्च साक्षात् ।
आसां पादाम्बुरुहरजसः प्राप्तये ब्रह्ममुख्या
गीर्वाणेन्द्राः पुलकवपुषः सर्वतः कामयन्ते ॥ ९ ॥
भवतीनाममर्षःस्यात्तदर्थे तु तिरोहिताः ।
मयि नित्यं सन्निहिताः संततानन्दहेतवः ॥१०॥
मद्वदेताः परिज्ञायेदानीं संस्तूयत प्रियाः ।
इत्युक्ताः प्रभुणा तास्तु स्तोतुं समुपचक्रमुः ॥११॥

गोप्य ऊचुः

नमो वो नित्यसिद्धाभ्यः प्रियाभ्यो राघवेशितुः ।
स्वरूपानन्दरूपाभ्यो युवतीभ्यः समंततः ॥१२॥
यत्सौन्दर्यं क्वापि लोकेऽस्ति किंचित्-
तद्युष्माकं कान्तिसारस्य लेशः ।
नोचेदस्मिन् पञ्चभूतात्मकाङ्गे[1]
क्वोत्कर्षःस्याच्छोकभूमावभव्ये[2] ॥१३॥

---

१. °त्मलोके—रीवाँ । २. °भाव्ये—अयो०, मथु०, बड़ो० । कोत्रोत्कर्षः शोकभू°—रीवाँ ।

अस्मास्वपि प्रभालेशो भवतीनां विजृम्भते ।
नोचेच्छ्रीराघवेन्द्रस्य भवेमहि कथं प्रियाः ॥१४॥
प्रमोदवनमेतद्धि भवतीनां निकेतनम् ।
प्रियेण नित्यसंबद्धाः खेलनं कुरुथ प्रियाः ॥१५॥
यस्मै बिभर्थ कारुण्यं तस्मै भक्ताय साधवे ।
नित्यं विहरथ प्रीत्या नित्यलीलाप्रवेशनम् ॥१६॥
अतः परं सदास्मासु कृपालेशो विधीयताम् ।
येन युष्मत्संगमेत्य[1] पत्या मोदामहेऽमुना ॥१७॥
ब्रह्माद्या अपि देवेन्द्राः श्रीमच्चरणरेणुषु ।
लुठन्ति बहुधा स्नात्वा धन्यंमन्या दृढव्रताः ॥१८॥
भवतीनामहो भाग्यं वर्णयामः कथं वयम् ।
याभिर्वशीकृतो रामः पूर्णं ब्रह्म निजैर्गुणैः ॥१९॥
नमो नमोस्तु युष्मभ्यं ब्रह्मरूपाभ्य उत्तमाः ।
श्रीराघवेन्द्ररामाभ्यः प्रेयसीभ्यो नमोनमः ॥२०॥
अस्माकं भवतीष्वस्तु नाभ्यसूया कदाचन ।
यूयं खलु महिष्योऽस्य वयं दास्यः सदैव वः ॥२१॥
करिष्यति प्रियो दृष्टिं भवतीनामनुग्रहात् ।
करुणार्द्रां यया शोकं तरिष्यामो वियोगजम् ॥२२॥
अस्मास्वन्तर्हितिस्तावन्नोचिता दासिकासु हि ।
भवतीनामाश्रयेण करिष्यामः प्रियं वशे ॥२३॥
यूयं तावन्नित्यसिद्धाः सदानन्दनिकेतने ।
रमथ श्रीराघवेन्द्रे कोऽर्थो वः शिष्यतेतराम् ॥२४॥
एतावत्खलु कर्तव्यमस्मासु महिषीवराः ।
यत्सदा रामचन्द्रस्य कृपादृष्टिं लभामहे ॥२५॥
भवद्दर्शनजं क्षेमं भविष्यति नचान्यथा ।
नित्यपार्थकतां याति सज्जनानां समागमः ॥२६॥

---

१. °मेन—रीवाँ ।

श्रीराम उवाच

एताश्चिल्लोकस्वामिन्यः सेवनीयाः प्रयत्नतः ।
यदि वाञ्छेन्मम प्रेमपरमानन्दमन्दिरम् ॥२७॥
एतासां हि प्रसादेन विधिकेशवशङ्कराः ।
मद्भक्तिपात्रतां याता विपुलक्षेमराशयः ॥२८॥
लक्षवर्षसहस्राणि एभिस्तप्तं तपः पुरा ।
आसां मत्पदराज्ञीनां पादरेणूपलब्धये ॥२९॥
तथापि नैव तैः प्राप्तास्तासां चरणरेणवः ।
ततो विशुद्धया भक्त्या प्रणताः शरणं ययुः ॥३०॥
न स्त्रियः सन्ति खल्वेताः ब्रह्मरूपाः सनातनाः ।
ब्रह्मा शिवश्च शेषश्च श्रीश्च ताभिः समा नहि ॥३१॥
प्राकृते प्रलये प्राप्ते व्यक्तेऽव्यक्तं गते पुरा ।
शिष्टे ब्रह्मणि चिन्मात्रे कालमायातिगेऽक्षरे ॥३२॥
ब्रह्मानन्दमयो लोको व्यापिवैकुण्ठसंज्ञकः ।
निर्गुणोऽनाद्यनन्तश्च वर्त्तते केवलेऽक्षरे ॥३३॥
अक्षरं ब्रह्म परमं वेदानां स्थानमुत्तमम् ।
तल्लोकवासी तत्रस्थैः स्तुतोऽहं वेदराशिभिः ॥३४॥
चिरं स्तुत्या ततस्तुष्टः परोक्षं प्राह तान् गिरम् ।[1]
तुष्टोऽस्मि ब्रूत भोः प्राज्ञा वरं यन्मनसि स्थितम् ॥३५॥

श्रुतय ऊचुः

नारायणादिरूपाणि ज्ञातान्यस्माभिरच्युत ।
सगुणं ब्रह्म सर्वेश[2] वस्तुबुद्धिर्न तेषु नः ॥३६॥
ब्रह्मेति पठ्यतेऽस्माभिर्यद्रूपं निर्गुणं परम् ।
वाङ्मनोगोचरातीतं ततो न ज्ञायते तु तत् ॥३७॥
आनन्दमात्रमितियद्वदन्तीह पुराविदः ।
तद्रूपं दर्शयास्माकं यदि देयो वरो हि नः[3] ॥३८॥

---

१. चिरं प्रमोदवनवासीयान् परोक्षमिह—रीवाँ । २. सर्वेदं—मथु०, बड़ो० ।
३. हितः—मथु०, बड़ो० ।

श्रुत्वाहं दर्शयामास स्वलोकं प्रकृतेः परम् ।
केवलानुभवानन्दमात्रमक्षरमध्यगम् ॥३९॥
यत्प्रमोदवनं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः ।
मनोहरनिकुञ्जाढ्यं सर्वत्र सुखसंयुतम् ॥४०॥
यत्र रत्नगिरिर्नाम सुनिर्झरदरीयुतः ।
रत्नधातुमयः श्रीमान् द्विजालिगण[1]संकुलः ॥४१॥
यत्र निर्मलपानीया सरयूः सरितां वरा ।
रत्नबद्धोभयतटी हंसपक्ष्यादिसंकुला ॥४२॥
नानारासरसोन्मत्तं यत्र गोपीकदम्बकम् ।
तत्कदम्बकमध्यस्थः किशोराकृतिरित्यहम् ॥४३॥
दर्शयित्वेति च प्राह व्रूत किं करवाणि वः ।
दृष्टो[2] मदीयो लोकोऽयं ततो नास्ति परं वरम् ॥४४॥

श्रुतय ऊचुः

कन्दर्पकोटिलावण्ये त्वयि दृष्टे मनांसि नः ।
कामिनीभावमासाद्य स्मरक्षुब्धान्यसंशयम् ॥४५॥
यथा त्वल्लोकवासिन्यः कामतत्त्वेन गोपिकाः ।
भजन्ति रमणं मत्वा चिकीर्षाजनि नस्तथा ॥४६॥

श्रीभगवानुवाच

दुर्लभो दुर्घटश्चैव युष्माकं सुमनोरथः ।
मयानुमोदितं सम्यक् सत्यो भवितुमर्हति ॥४७॥
आगामिनि विरञ्चौ तु जाते सृष्ट्यर्थमुद्यते ।
कल्पं सारस्वतं प्राप्य व्रजे गोप्यो भविष्यथ ॥४८॥
साकेते सारवे क्षेत्रे अयोध्यामण्डले मम ।
प्रमुद्वने[3] भविष्यामि प्रेयान्वो रासमण्डले ॥४९॥
जारधर्मेण सुस्नेहं सुदृढं सर्वतोऽधिकम् ।
मयि संप्राप्य सर्वस्वं कृतकृत्या भविष्यथ ॥५०॥

---

१. सुपक्षिगण°—मथु०, बड़ो० । २. दृश्यो—अयो०, रीवाँ । ३. प्रमोदवने—मथु०, बड़ो० । "अक्षराधिक्यमार्षं" टि०—मथु० ।

श्रुत्वैतच्चिन्तयन्त्यस्ता रूपं मम मनोहरम् ।
उक्तं कालं समासाद्य गोप्यो भूत्वाद्य मां गताः ॥५१॥
इत्येवं श्रुतिरूपाणां माहात्म्यं कथितं मया ।
इदानीं मुनिरूपाणां माहात्म्यं शृणुत प्रियाः ॥५२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां रामगीतामहोपाख्याने चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

एते षष्टिसहस्राणि दण्डकारण्यवासिनः ।
मुनयो दीर्घतपसो भावयन्तः शुचिव्रताः ॥ १ ॥
दिव्येन भक्तियोगेन प्राप्ता मां हि परात्परम् ।
रासमण्डलमध्यस्थं प्राप्य स्नेहरसाकुलाः ॥ २ ॥
अधुनापि त एवेह संगताः सन्ति संनिधौ ।
दिव्यदृष्ट्या निरीक्षध्वं भवत्यस्तान् मुनीश्वरान् ॥ ३ ॥
इत्युक्त्वा दर्शयामास स्वपार्श्वस्थान् द्विजोत्तमान् ।
गोपिकारूपमासाद्य क्रीडमानान् दिवानिशम् ॥ ४ ॥

दृष्ट्वा तु ताः शशिमुखाः[1] सुनेत्रा हेमद्विषश्चपलापाङ्गवक्त्राः ।
श्रीरामचन्द्रं धयतीः स्वदृग्भिः स्तोतुं भक्त्या चक्रमुः संमुखस्थाः ॥५॥
नमो वः स्त्रियो राघवेन्द्रप्रियाभ्यस्तपोराशिसंजातभक्त्युद्भवाभ्यः ।
मुनीन्द्रस्वरूपाभ्य उच्चैर्गतिभ्यो सदानन्दकेली[2]रसान्तःस्थिताभ्यः ॥६॥

यूयं[3] हि भूरितपसः परमर्षिमुख्याः
भक्त्या वशीकृतवतीः सततं प्रियं स्वम् ।
श्रीमत्प्रमोदवनमञ्जुलमाधुरीषु-
संख्यातिगानि कुरुथ क्रमतः सुखानि ॥ ७ ॥

---

१. शशिवक्त्राः—मथु०, बड़ो । २. रसानंदकेलि—रीवाँ । ३. पूर्व—रीवाँ ।

वयं युष्मत्पदं लब्धुं सततं कामयामहे ।
विना भवत्कृपादृष्टिं कथं प्राप्नुमहि प्रियम् ॥ ८ ॥
युष्माकमङ्घ्रिसरसीरुहरेणुकेभ्यो
भूयो लुठन्ति विधिरुद्रमुखाः सुरेशाः ।
नित्यानुरक्तमनसः परमोत्सवेन
श्रीनित्यकेलिपरिदर्शनजातकामाः ॥ ९ ॥

अहो भवद्भाग्यमहोदधिर्महान् किं वर्णनीयो विबुधैरगम्यः ।
यद्रामचन्द्रं नयनाभिरामं नित्यं वशीकृत्य सुखं वहन्ति ॥१०॥
अहो गोप्यो मुनिरूपाः समन्तात् प्रभौ यथा भवतीनां नित्यलीलाः ।
तस्यास्माकं जायतामेष कामः पूर्णो भूयाद्भवदीक्षाबलेन ॥११॥

श्रीराम उवाच

दृष्ट्वा कच्चिन्मुनिरूपा युवत्यो विशालभाला भाग्यवत्यः सुतृप्ताः ।
आसां सद्यो दर्शनाद्देवतानां माङ्गल्यं भवतितरां भवेऽत्र ॥१२॥
एषा गृहीतजलजा जलजेव मनोहरा ।
मनो मोदयते भूयो जवनाख्यो मुनिर्ह्यसौ ॥१३॥
अग्निपुत्रो मामुपास्य दिव्यो मत्पदवीं गतः ।
सहस्रं गोपिका नित्यं याः समन्तादुपासते ॥१४॥
अयं त्रिषवणो नाम मुनिरग्नेः कुमारकः ।
येयं रक्तांशुकवृता यूथमुख्या विराजते ॥१५॥
अयं यायावरो नाम मुनीन्द्रः संशितव्रतः ।
येयं पीतदुकूलाढ्या निजयूथेश्वरी पुरः ॥१६॥
अयं च कोषणो नाम मुनिस्तापससत्तमः ।
येयं वीणाकरा नित्यमुपवीणयतेऽद्य माम् ॥१७॥
वीणाकरासु गोपीषु यूथेशी मत्परेक्षणा ।
अयं मेधातिथिर्नाम मुनिः पावकवर्चसः ॥१८॥
येयं कनकदण्डाढ्या मदीयाच्छत्रधारिणी ।
नित्यं मां सुखयत्येषा छायेव सुखभूरुहा ॥१९॥
अयं निकषणो नाम वह्निपुत्रो मुनीश्वरः ।
अयं च सुमतिर्नाम तथैव मुनिसत्तमः ॥२०॥

यौ तौ चामरयुग्मेन नित्यं वीजयतोऽद्य माम् ।
अयं किर्मीरणो नाम मुनिः परमभावभृत् ॥२१॥
या दिव्यतालवृन्तेन सेवते नित्यमेव माम् ।
अयं सुवचनो नाम परमोदारहृन्मुनिः ॥२२॥
येयं नागदलैर्वीटीं मह्यमर्पयति प्रिया ।
अयं मदनको नाम मुनिवर्यः सुपेशलः ॥२३॥
येयं सुवर्णवलया नीलशाटीवृता प्रिया ।
अयं च निकृतिर्नाम मुनिः परमधार्मिकः ॥२४॥
येयं संगीतविद्यानामाचार्या दृश्यतेऽभितः ।
अयं सुखेषणो नाम मुनिर्भक्तिमतां वरः ॥२५॥
या दिव्यपटहीवाद्यकुशला व्रजसुन्दरी ।
अयं च बर्हिणोनाम मुनिः सेवकसत्तमः ॥२६॥
येयं मार्दङ्गिकी भूत्वा नित्यं मोदयतेऽद्य माम् ।
अयं शतपथो[1]नाम मुनिः पूजितसद्गुणः ॥२७॥
तालदानक्रियामध्ये येयं पटुतरा पुरः ।
अयं च सुकथो नाम मुनिः सुन्दरविग्रहः ॥२८॥
येयं स्वरालापकरी कोकिलाकण्ठजित्वरी ।
अयं प्रवहणो नाम मुनिस्तापससत्तमः ॥२९॥
येयं रत्नच्छटाहस्ता चित्तचौर्यकरी प्रिया ।
अयं विभावसुर्नाम मुनिर्मतिमतां वरः ॥३०॥
येयं कमलमालान्या पुरतो गोपसुन्दरी ।
अयं कुवलयो नाम शंसनीयो मुनिर्महान् ॥३१॥
यस्याः करं भूषयति शारिका हेमपञ्जरी ।
अयं शोलपतिर्नाम माननीयो मुनिर्व्रजे ॥३२॥
अरुणाः शङ्खवलयाः यस्याः करसरोजयोः ।
अयं कृततनुर्नाम मुनिर्मान्यतमो नृणाम् ॥३३॥
येयं सुवर्णवसना रत्नमालाविभूषिता ।
अयं सुखाशनो नाम मुनिः सुखदकीर्तनः ॥३४॥

१. सन्तपथो—रीवाँ ।

माणिक्यहारिणी येयं स्वनोन्नयनकारिणी ।
अयं कौपीनसो नाम मुनिर्भक्तिपरायणः ॥३५॥
यस्याः शिरसि शोभन्ते चम्पकैर्ग्रथिताः कचाः ।
अयं सून्मथनो नाम मुनिः कौशलवारिधिः ॥३६॥
यस्या वकुलपुष्पैस्तु[1] कल्पिता कटिमेखला ।
अयं मधुवनो नाम मुनीन्द्रः कोविदाग्रणीः ॥३७॥
यस्याः कपोलयोर्भाति रत्नकुण्डलयोर्युगम् ।
अयं च निहुतिर्नाम मुनिः परमकीर्तिमान् ॥३८॥
ज्योत्स्नेव विशदा यस्याः शोभते तनुशाटिका ।
एवं तैस्तैः शुभैः चिह्नैः चिह्निता गोपसुन्दरीः ॥३९॥
रामः प्रदर्शयामास ऋषिरूपास्तु ताः किल ।
तासां सौन्दर्यभङ्गीभिर्बभूवुर्निर्जिताश्च ताः ॥४०॥
तासां कदम्बके रामो नित्यक्रीडाविशारदः ।
अशोभतापूर्वमेव तासां दृक्सौख्यहेतवे ॥४१॥
क्रीडमानो नृत्यमानो मोदमानो दिवानिशम् ।
रममाणो रामचन्द्रस्तासां मध्ये व्यरोचत ॥४२॥
तास्तासां व्रजनारीणां वीक्ष्य क्ष्वेलितकं[1] मुहुः ।
आत्मानं रञ्जयाञ्चक्रुरपूर्वमिव विस्मिताः ॥४३॥

गोप्य ऊचुः

अहो युवां नित्यकेलिर्नित्यं दृग्गोचरास्तु नः ।
न भवत्सदृशः क्वापि दाम्पत्यप्रभवा[2] मुदः ॥४४॥
नमस्ते भक्तलोकानां कल्पवृक्षाय शाश्वते ।
पूर्णब्रह्मस्वरूपाय अवाङ्मनसवृत्तये ॥४५॥
नमस्ते नित्यकान्ताभ्यः प्रमोदवनमाधुरीम् ।
नित्यमेव धयन्तीभ्यो निभृतैर्लोचनाञ्चलैः ॥४६॥

---

१. वहुकलापुष्पै—रीवाँ । २. वीक्ष्य त्वतिलकं—रीवाँ । ३. "अन्यपुरुषस्त्री-संबंधजाः" टि०—मथु० ।

ऋषिरूपा ऊचुः

अनेन प्रभुणा साकं नित्यं क्रीडामहे वयम् ।
अवतारात् पूर्वमेव संगता [1]ह्यस्य संनिधौ ॥४७॥
भवत्यश्चावतारस्य समयेऽमुष्य संगिनीः ।
अतः परं भविष्यन्ति ह्यस्मद्व[1]न्नित्यसंगताः ॥४८॥
अयं प्रभुर्हि भक्तानामाश्रितानां सुखप्रदः ।
यथा पूर्येत तत्कामस्तथैव कुरुते भृशम् ॥४९॥
वशीकृतात्मा तैरेव त्रिषु लोकेषु सोऽधुना ।
आत्मानमप्येष ददात्येभ्यः परमदुर्लभम् ॥५०॥
क्वचिच्च पुत्रतां प्राप्य भक्तानामनुकम्पया ।
कुरुते बालकेलीस्ता याः श्रुत्वा मुक्तिभाग्भवेत् ॥५१॥
क्वचित् सुहृद्बन्धुरूपो भक्तान् मोदयते भृशम् ।
क्वचिन्माधुर्यरूपेण रमयत्येष कामिनीः ॥५२॥
सदा रासविलासादीन् कुरुते सुमनोहरान् ।
सर्वभाग्येन सेव्योऽसौ श्रीमान् राघवचन्द्रमाः ॥५३॥
इत्युक्त्वा ऋषिरूपास्तास्तिरोधानं ययुस्तदा ।
आभिः परिवृतो राम एकाकी समपद्यत ॥५४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां रामगीता-महोपाख्याने पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

अतः परं तु युष्माकं पूर्वजन्म वदाम्यहम् ।
कृतं हुतं तपस्तप्तं तत्सर्वमवधार्यताम् ॥ १ ॥
... ...स्मरसुन्दरम्[2] ।
विलोक्य मां विमुमुहुः स्नेहनिर्व्यूढमानसाः ॥ २ ॥

१—१. नास्ति—अयो०, रीवाँ। २. नास्ति—अयो० रीवाँ। हरितालेन लेपितः पाठः—मथु० ।

कृष्णावतारिणं कान्तं श्रीवृन्दावनगोचरम् ।
आबाल्यतो मां निरीक्ष्य बभूवुर्मद्वशीकृतः ॥ ३ ॥
मन्मनस्का मदालापा मदात्मानो मदन्तराः ।
बभूवुर्विप्रयोगेन मोहिताः स्मरपीडिताः ॥ ४ ॥
ततो मत्प्राप्तये चक्रुः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ।
हेमन्ते यमुनावारिण्याप्लुत्य शुचिमानसाः ॥ ५ ॥
स्थाणुं संपूज्य तत्पार्श्वे देवीं च प्रत्यपूजयन् ।
नन्दनन्दनमेवैकं वाञ्छन्त्यः पतिमात्मनः ॥ ६ ॥
ततः प्रसन्ना सा देवी साक्षाद्भूताब्रवीद्वचः ।
एष देवः परं ब्रह्म पतित्वे वाञ्छितं हि वः ॥ ७ ॥
ब्रह्मादीनामपि परं दुर्लभोऽयं मनोरथः ।
तेनैव पूरितुं योग्यो ब्रह्मणा नरमूर्तिना ॥ ८ ॥
ततोऽन्येद्युर्व्रतार्थाय जले तस्थुर्निमज्ज्य ताः ।
कृष्णो विवसना ज्ञात्वा शनैः पर्यहरत् पटान् ॥ ९ ॥
नग्नास्ताः सूर्यजातोयात् समुत्थाय सुमध्यमाः ।
पाणिभ्यामपिधायाङ्गान्यूचुर्मां शशिलोचनाः ॥१०॥
कृष्ण कृष्ण महाबाहो देहि वासांसि नः प्रभो ।
जलमध्येऽतिशीतार्ता वयं वेपामहेऽधुना ॥११॥
ततो नमस्कारयित्वा कराभ्यां शिरसा सह ।
दत्तवानहमेतासां वसनानि मृगोदृशाम् ॥१२॥
तासां ततो व्रतसमाप्तिचिकीर्षयाहं ,
कृष्णावतारसमये वरमभ्यदां च ।
एताः क्षपाः[1] प्रकृतिकालगुणाद्यतीता ,
यूयं मया सह रमध्वमपेतकृत्याः ॥१३॥
ततः कृष्णावतारेऽहं तासां वाञ्छितपूर्तये ।
स्वंलोकमभ्यदां पूर्णं सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥१४॥
यत्र वृन्दावनं नाम वनं दिव्यमनुत्तमम् ।
यदेवं पश्यथ प्रेष्ठाः प्रमोदवनमुत्तमम् ॥१५॥

---

१. परा—रीवाँ ।

यत्रोत्तरङ्गसलिला यमुना सरितांवरा ।
येयं श्रीसरयूर्यत्र राजहंसनिषेविता ॥१६॥
उच्चैः कटाहनिर्भेत्री कोटिब्रह्माण्डभेदिनी ।
हरिविष्णुब्रह्ममयी भक्तानां हितकारिणी ॥१७॥
प्रेमपूर्णप्रवाहाढ्या भावरूपतरङ्गिणी ।
शृङ्गारसारसलिला रतिरङ्गतटद्वया ॥१८॥
यत्र गोवर्धनोनाम गिरिः कोटिमणिप्रभः ।
योऽयं रत्नगिरिर्भाति भवतीनां पुरः प्रियाः ॥१९॥
यत्र श्रीर्मथुरानाम नगरी रत्ननिर्मिता ।
येयं साकेतनगरी भासते भवनैः शुभैः ॥२०॥
यत्र नन्दव्रजः श्रीमान् गोपगोपीभिरन्वितः ।
सर्वर्तुसुखशोभाढ्यो देवानामपि कामितः ॥२१॥
योऽयं सुखितराजस्य गोपवर्यस्य वै व्रजः ।
मत्क्रीडास्थानभूतत्वात् सर्वसौख्यविहारदः ॥२२॥
यत्र प्रियतमा गोप्यो मम लीलापरायणाः ।
मद्गुणानेव गायन्त्यो बाल्यात् कैशोरकावधि ॥२३॥
ता यूयमेव सकला जानीतात्मानमङ्गनाः ।
यं ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यथ मत्समाः ॥२४॥
अहं कृष्णश्च रामश्च वृन्दावनविहारवान् ।
प्रमोदवनसारङ्गोऽप्यशोकवनसारवित् ॥२५॥
यत्र मे रमणी राधा वृषभानुसुता स्वयम् ।
मत्स्वरूपैकनिरता सदा मद्रूपसंगिनो ॥२६॥
भक्तिरूपा भावरूपा रतिरूपा रतिप्रिया ।
अनङ्गकेलिनी लास्यकारिणी मदसुप्रिया ॥२७॥
सेयं श्रीः सहजानन्दा प्रेमालयपताकिका ।
नानया सदृशी लक्ष्मी[1]र्न शेषो न विधिः शिवः ॥२८॥
अनया वाशिता लक्ष्मी[1]र्मद्भोग्यत्वमुपागता ।
नानया रहितां तां च कामये किमुतेतराम् ॥२९॥

१—१. नास्ति—अयो० ।

भवतीष्वियमाविश्य राधिका सहजात्मिका ।
भुङ्क्ते भोगान् मया साकं भवतीनां प्रसादकृत् ॥३०॥
नानया रहिता यूयमंशिन्या स्वांशविग्रहाः ।
एकेयं बहुरूपेण क्रीडति व्रजवीथिषु ॥३१॥
यूयं हि पूर्वजनिषु ब्रह्माणो वासवाः शिवाः ।
आदित्या वसवो विश्वे भास्करा अनिलादयः ॥३२॥
शुद्धभक्ता मामुपास्य मत्सान्निध्यमुपागताः ।
या या तु भावना यस्य तस्य तां तां बिभर्म्यहम् ॥३३॥
कदाचिद्विधिराराद्धुं श्वेतद्वीपपतिं प्रभुम् ।
यातः क्षीरसमुद्रान्तं यत्र देवो हरिः स्वयम् ॥३४॥
तत्र याताः सुराः सर्वे लोकपालाः सवासवाः ।
आदित्या वसवो रुद्रा ये चान्येऽग्नियमादयः ॥३५॥
सर्वेषां प्रवरो ब्रह्मा स्तौति नित्यं प्रभुं च तम् ।
स्तोत्रैर्ऋग्यजुषैः सामाथर्वभिः सूक्तिभिस्तथा ॥३६॥

नमस्ते श्वेतद्वीपाधिपतये पूर्णब्रह्मस्वरूपाय परमात्मने सकल-जगदानन्दनिदानसद्धर्ममूर्त्तये अक्षररूपाय कलाविलासनित्यदीक्षिताय प्रपन्नजनकल्पतरवे श्रीमतेऽनिरुद्धाय ॥ ३७ ॥

योऽयं धर्मस्त्रयीवाग्निभृतनिगदितो ब्रह्मणः सा क्रियाख्या
शक्तिस्ते तत्स्वरूपं भुवनसुखकरं नित्यमिष्टं च पूतम् ।
रक्षायै तस्य नित्यं त्वमिह विजयसे क्षीरसिन्धोस्तटान्ते
श्वेतद्वीपे मनोज्ञे स्वयमथ भगवानादिनारायणाख्यः ॥३८॥
तस्मै नमस्ते गरुडध्वजाय रमाकलत्राय सुरारिहन्त्रे ।
सशङ्खचक्राब्जगदाधराय निषङ्गिणे शार्ङ्गधनुर्धराय ॥३९॥
यो वासुदेवः सत्त्वमूर्जस्वलं यत् संकर्षणो यो भगवान् कालमूर्तिः ।
यः प्रद्युम्नो वेदवेदाङ्गरूपः स त्वं साक्षादनिरुद्धोऽसि धर्मः ॥४०॥
यदि त्वमनया मूर्त्या प्रकटो न भवेः प्रभो ।
तदा विप्लवमागच्छेद् धर्मसेतुः सनातनः ॥४१॥
साधूनां रक्षणार्थाय धर्मस्य स्थापनाय च ।
दुष्टानां दमनाय त्वं प्रसिद्धो भगवान् स्वयम् ॥४२॥

नित्यं कृपय देवेश भक्तेभ्यो नः सदा प्रभो ।
यथास्मान् कमलाकान्त त्वद्भक्तिरनपायिनी ॥४३॥
एवं ब्रह्मादयो देवाः स्तुवन्ति परमेश्वरम् ।
स्तुत्वा नत्वोपास्य नित्यमायान्ति स्वस्वविष्टपान् ॥४४॥
कदाचिद्भगवान् श्रीमान् अनिरुद्धश्चतुर्भुजः ।
पश्यतां सर्वदेवानां बभूव प्रेमसंप्लुतः ॥४५॥
अक्ष्णोरश्रुकलापूर्णः पुलकाङ्गः[1] सुनिर्वृतः[2] ।
स्तब्धः खिन्नः सकम्पश्च भावयुक्तः पदे पदे ॥४६॥
तद्दृष्ट्वा रूपमीशस्य ब्रह्मा प्रोवाच साद्भुतः ।
अहो श्रीदेवदेवेश त्वं साक्षाद्भगवान् परः ॥४७॥
कस्यानुस्मरणात्पूर्णप्रेमयुक्तोऽद्य लक्ष्यसे ।
किंवा स्वात्मानन्दवृत्तो नित्यं प्रेममयाकृतिः ॥४८॥
तवापि ध्येयतां याति तत्किरूपं परं पदम् ।
कर्ताविता वा संहर्त्ता जगतोऽस्य त्वमेव हि ॥४९॥

अनिरुद्ध उवाच

सर्वे भवन्तो गच्छन्तु प्रमोदवनमेव हि ।
तत्र दिव्ये रामकुण्डे स्नानं कुरुत देवताः ॥५०॥
तदा श्रीरामलीलायाः साक्षात्कारो भविष्यति ।
तद्रूपं मे परं ध्येयं गेयं प्राप्यं च सर्वदा ॥५१॥
तस्यानुस्मरणादेव प्रेमपूर्णोऽस्मि संप्रति ।
अस्रुविन्दुपरीताक्षः पुलकाञ्चितविग्रहः ॥५२॥
श्रुत्वेदमनिरुद्धस्य वाक्यं प्रमोदवनं वै ।
ययौ ब्रह्मा सुरैः साकं स्वाधिकारानुवर्त्तिभिः ॥५३॥
स गत्वा रामकुण्डान्तर्निमज्य विबुधैः सह ।
बभूव दिव्यस्त्रीवेशी देवाः स्त्रीरूपधारिणः ॥५४॥
बभूवुस्तत्क्षणादेव रामकुण्डप्रभावतः ।
विसस्मरुश्च स्वात्मानं ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥५५॥

---

१. पुलकांतः—अयो० । २. स्वनिर्वृतः—रीवाँ ।

क्वाहं कुतः समायातः किं करिष्यामि स्वल्वहम् ।
इति व्याभुग्धचित्तास्ते न मनोनिर्वृतिं ययुः ॥५६॥
तस्मिन् क्षणे रामकुण्डतीरभूमौ सुरेश्वराः ।
मृदङ्गध्वनिमाकर्ण्य बभूवुर्दिव्यदृष्टयः ॥५७॥
स मृदङ्गो रामरासे गोपीहस्तप्रणोदितः ।
वाद्यति प्रसभं तुङ्गधुंकारध्वनिसुन्दरः ॥५८॥
तदा श्रीमाधुरीकुञ्जात् रामकुण्डं प्रगच्छती ।
तैर्दृष्टा दिव्यमाल्यानि बिभ्रती गोपिका करे ॥५९॥
सा पृष्टा तैः शशिमुखी रामकुञ्जानुयायिनी ।
का त्वं सखि क्व यासीति सा नोवाच जवाद्ययौ ॥६०॥
तेऽपि तत्पृष्ठसंलग्ना ययुर्ब्रह्मादयः सुराः ।
सा च कुञ्जं विवेशाग्रे ते प्रतीहारवारिताः ॥६१॥
शिवः पञ्चमुखः साक्षात् प्रतीहारोऽत्र संस्थितः
तान् विषण्णहृदो दृष्ट्वा शिक्षयन्नवदच्छिवः ॥६२॥
रे नार्यः किं विषादेन तप्यध्वं परमं तपः ।
रामं विशुद्धया भक्त्या सेवध्वं यदि वाञ्छथ ॥६३॥
रामकुञ्जे प्रवेशाय भूरिभाग्याभिरन्विते ।
इत्युक्तास्ते तदा देवास्तपस्तेपुः सुदुश्चरम् ॥६४॥
स्नात्वा सरयूजले वै लक्षवर्षमजायत ।
तेन पुण्यप्रभावेण संजाताः सरयूकुले[1] ॥६५॥
नित्यं रामं प्रेमपरा जारधर्मेऽनुवर्त्तिताः ।
सोऽहं रामः स्वयं ब्रह्मावतीर्णोऽस्मि पुनर्व्रजे ॥६६॥
सुखितेश्वरगेहे तु प्रमोदवनमध्यगे ।
तं मामनुव्रता यूयमवतीर्णा इह प्रियाः ॥६७॥
ता एव व्रजसुन्दर्यो याः स्थिताः सरयूतटे ॥६८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां राम-गीतामहोपाख्याने षट्पञ्चाशतमोऽध्यायः ॥५६॥

---

१. °तले—रीवाँ ।

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

एष ब्रह्मा स्वयं भाति या रक्तांशुकधारिणी ।
गोपी चन्द्रप्रभानाम दृक्चकोरसुखावहा ॥ १ ॥
एष शक्रो या तु भाति पीतकौशेयधारिणी ।
गोपी चन्द्रकलानाम नवयौवनशालिनी ॥ २ ॥
एते ते वसवो देवा या गोप्यो नीलशाटिकाः ।
श्यामा भामा रमा कामा कामिनी कामिकाभिधा ॥ ३ ॥
दामिनी यामिनीत्येता नामभिः परिकीर्तिताः ।
एष रुद्रगणो यास्तु गोप्यो हेमपदान्विताः ॥ ४ ॥
किशोरी कुशला कुल्या सुधा चान्द्री बुधा वधूः ।
भव्या नव्याभिनव्याङ्गा नामभिः परिकीर्तिताः ॥ ५ ॥
अमीदेवास्त आदित्या याः सूक्ष्मासितशाटिकाः ।
रमणी रामणी रम्यरञ्जना रससारसा ॥ ६ ॥
रुचिरा रोचिनी रुच्या रङ्गिणी रक्तिरङ्गजे[1] ।
एता द्वादश पद्माक्ष्यः स्वैः स्वैर्नामभिरन्विताः ॥ ७ ॥
विश्वेदेवा अमी यासां नवमौक्तिकनिर्मिताः ।
नवदूर्वादलश्यामाः केयूराः करनालयोः[2] ॥ ८ ॥
लवङ्गी ललिता लीला शीला शाला शिलाभिधाः।
अमी ते भास्वरा यास्ता नवमौक्तिकनिर्मिताः ॥ ९ ॥
सुवर्णवलयाभ्यासे शोभन्ते कङ्कणोत्तमाः ।
सुभगा सुरुचिः सत्या सुमुखी रङ्गदेवता ॥१०॥
दीप्तिः प्रतीतिः संज्ञप्तिः प्रकाशा काशिनी कशा ।
कला चारुमतिश्चञ्चा चञ्चला चपला चरूः ॥११॥

---

१. °रङ्गते—अयो० । २. करणालयाः—अयो०, रीवाँ ।

चारिणी चरिता चान्द्री चन्द्रा चन्द्रकला निशा ।
सेवा सेवारतिः सेव्या सुसेवा सेविनी शिवा ॥१२॥
शिवदा शुभदा शुभ्रा शम्भुजा शम्भला[1] शमा ।
शची रुचीका रचिता[2] चित्रा चित्रध्वजा धुनी ॥१३॥
धरिणी धारिणी धारा सुखिनी सुखदा सुखा ।
सुश्रीः सुसेना सुतरा वञ्जुला चाबला बला ॥१४॥
बालका बालवी वल्ली वल्गुनी वल्गुभाषिणी ।
वल्लवी वल्लभा विद्या वन्दिनी वितता नता ॥१५॥
लज्जावती चतुःषष्टि नाम्नैव परिकीर्तिताः ।
अमी वायुगुणा गोप्यो याः स्वकण्ठेषु बिभ्रति ॥१६॥
नीलाम्बुजमयीं मालां मुखचन्द्रविकासिनीम् ।
विकस्वरा विकसिता पुष्पापुष्पा च पुष्पिणी ॥१७॥
करिणी कारिणी मित्रा सुमित्रा सुमिला सुमी ।
सुषमा कुसुमा केलिकेलिनी कमला कला ॥१८॥
कलिनी कलिका कल्या कल्पिणी कुलिता कृतिः ।
सुकृतिः सुप्रतीका च कोशिनो कुशिका कुला ॥१९॥
कलावती कलापा च कुलजा कोमला कलिः[3] ।
मानिनी दामिनी दान्ता कान्ता कामा कृपावती ॥२०॥
अरुणा करुणा क्रीड़ा केकरी कोरकाकरा ।
ललिता वलिता वामा वामाङ्गीति सनामभिः ॥२१॥
ऊनपञ्चाशदेवैताः कीर्तिता व्रजमण्डले ।
अमी साध्यगणा गोप्यो यासां कटिषु मेखलाः ॥२२॥
पद्मरागमयी क्लृप्ता भान्ति सायं रविस्त्विषः ।
सूतिः स्यूतिः सिता सीता शीता शातोदरी दया ॥२३॥
दयावती च दयिता दशा दामोदरी द्युतिः ।
एता द्वादश संख्याभिराख्याभिः परिसूचिताः ॥ २४ ॥
महाराजिकसंघोऽयं यासां मृगदृशां हृदि ।
नवमाणिक्यघटिता मङ्गलाल्य इव स्रजः ॥ २५ ॥

---

१. शंभुला—रीवाँ । २. रुचिर्वारिचित्ता—रीवाँ । ३. °कुलिः—रीवाँ ।

इन्दिरा सुन्दरी सुन्दा सुगमा सुमतिः समा ।
तुलिता निस्तुला तुल्या तल्पिनी तुलनी तुला ॥२६॥
राविणी द्राविणी द्रव्या भव्या भाव्या भवाभवा ।
मनोरमा रमा रामा नामभिः परिकीर्तिताः ॥२७॥
आर्यतुषितनामानो देवा मृगदृशस्तु याः ।
श्वेतपद्ममयैर्हारैर्भूषिताः कण्ठभूमिषु ॥२८॥
केतकी कनका कान्तिः कान्ता कुञ्जाकुतोभया ।
कुतूहला कौतुकी च कुतुका कुतुकाञ्चला ॥२९॥
कल्याणिनी मङ्गला च कुमुदा कुमुदावली ।
पद्मा पद्मावती पूर्णा पूर्णिमा पूर्णयौवना ॥३०॥
सुस्तनी सुकुचा सौम्या सीमा सन्ध्या सुसाधना ।
साध्वी सभ्या समासाभा[1] शुभिता शोभिता शुभा ॥३१॥
भ्रमरी कबरी कूर्मा कूर्मजेत्येव नामभिः ।
परस्परालापकेलिशालिन्यो या मृगीदृशः ॥३२॥
एतेऽग्नयः स्वयं भान्ति रक्तपङ्कजमालिनीः ।
हेमा हेमप्रभा हैमी नामभिर्गोपिका इमाः ॥३३॥
अयं स शमनो देवो या मत्तनुसमद्युतिः ।
दामिनीनां गणे भाति नवनीलघनोपमा ॥३४॥
सारङ्गी नाम या गोपी नामतः परिकीर्तिता ।
अयं स निर्ऋतिर्नाम या गोपी मणिभिः सितैः ॥३५॥
हृदि कल्पितहारौघा भाति द्यौरिव चोडुभिः ।
नाम्ना सुवदना नाम मदनानलदीपिनी ॥३६॥
अयं स वरुणो नाम या गोपी शोणितप्रभा ।
मणिभिः क्लृप्तवलया नाम्ना च कनकप्रभा ॥३७॥
अयं यक्षाधिपो नाम नाम्ना या रत्नमञ्जरी ।
मौक्तिकैरेव सर्वाङ्गे दिव्यभूषणधारिणी ॥३८॥

---

१. सभासा साभासा—अयो०, समासमा सामा—रीवाँ ।

इत्येवं कोटिब्रह्माण्डाधिकारिप्रवराः सुराः ।
शुद्धेन भक्तियोगेन गोपिकारूपमाश्रिताः ॥३९॥
मम रासविलासादिक्रीडानर्तनकारिकाः ।
एकैका पाटवनिधिः कलाकोटिविभूषिताः ॥४०॥
रूपलावण्यतारुण्यमाधुर्यगुणवारिधिः ।
एताश्च गोपिकामुख्या यज्ञपत्न्यस्तु या पुरा ॥४१॥
मत्पराः पूर्णया भक्त्या मम साधर्म्यमागताः ।
एतासां पतयश्चैव ब्राह्मणाः सन्ति गोकुले ॥४२॥
गोपरूपधराः सर्वे ममैव हितकारिणः ।
एवं हि देवताः सर्वा अलङ्कुर्वन्ति गोकुलम् ॥४३॥
गोपगोपीवेशधराः खेलन्ति ते मया सह ।
नैतेषां कालजा वाधा नापि प्रकृतिसंभवा ॥४४॥
न वा गुणः क्षोभकृतः कदाचित् प्रभविष्यति ।
मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा ते क्रीडन्ति मया सह ॥४५॥
प्रेमानन्दमयैर्भोगैर्ब्रह्मानन्दाधिकोत्तरैः ।
एतेषां दर्शनादेव महामङ्गलवान् भवेत् ॥४६॥
मम भक्तिपरो भूत्वा मम साम्यमवाप्नुयात् ।
मत्तोऽप्यमी समधिका मम लीलाविशारदाः ॥४७॥
नित्याः परिकरा एते नित्यानन्दमयास्तथा ।
अद्यापि ब्रह्मरुद्राद्या देवा दिव्याधिकारिणः[1] ॥४८॥
अमीषां पादरजसः कामेनावतरन्ति ते ।
अयोध्यापुरपर्यन्तनिकुञ्जव्रजभूमिषु ॥४९॥
प्रमोदवनमध्ये च ब्रह्माद्याः सन्ति देवताः ।
व्रजभक्तपदाम्भोजाङ्कितरेणूपलब्धये ॥५०॥
अन्येऽपि देवर्षिवरास्तथा ब्रह्मर्षयो वराः ।
इहैव निवसन्त्येवं नित्यलीलादृशीच्छया ॥५१॥

---

१. °धिकारगाः—बड़ो० ।

स्तुवन्ति विविधैः स्तोत्रैर्मां मत्परिकरं तथा ।
एवं भवत्यः स्वं रूपं ज्ञात्वा व्रजमृगीदृशः ॥५२॥
नित्यानन्देन रम्यध्वं मा कुरुध्वं शुचोलवम् ॥५३॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां राम-
गीतामहोपाख्याने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीगोप्य ऊचुः

यदेतद् भवताख्यातं पूर्वजन्मकथानकम् ।
तस्य श्रवणमात्रेण मोहो नः प्रगतः प्रभो ॥ १ ॥
वैष्णवैर्यच्च कर्तव्यं कायेन मनसा गिरा ।
आवश्यकं तदाख्याहि सुखितेश्वरनन्दन ॥ २ ॥

श्रीराम उवाच

तीर्थयात्राभिगमनं मम मन्दिरमार्जनम् ।
स्नानं दानं वैष्णवेभ्यः तपः कायिकमीरितम् ॥ ३ ॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं सरयू नाम या नदी ।
तत्र संस्नानमात्रेण प्रेमभक्तिमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥
व्रजनारीगणस्नानच्युतचन्दनपङ्किलाम् ।
सरयूमवगाहन्ते ब्रह्माद्या अपि संततम् ॥ ५ ॥
तत्र स्नात्वा रत्नगिरेः कुर्यान्नित्यं प्रदक्षिणम् ।
मम मन्दिरमेतद्धि दरीनिर्झरसंकुलम् ॥ ६ ॥
रत्नाचलरजःस्पर्शात् कुष्ठी मुच्येत कुष्ठतः ।
यन्नित्यमेव मत्पादपद्मचन्दनचर्चितम् ॥ ७ ॥
साकेतपुरपर्यन्तं यात्रां कुर्याद्विचक्षणः ।
यत्र द्वादश दिव्यानि वनानि निवसन्ति हि ॥ ८ ॥
प्रथमं मञ्जुलवनं वनानामुत्तमं हि यत् ।

यत्र श्रीः सहजानन्दा नित्यमेव प्रतिष्ठिता ॥ ९ ॥
कामिकावनमुद्दिष्टं द्वितीयं वनमुत्तमम् ।
यत्र श्रीः सहजादेवी कामं निर्मितवत्यहो ॥१०॥
हरनेत्रानलप्लुष्टं कटाक्षक्षेपमात्रतः ।
तृतीयं तु प्रेमवनं यत्राभूद् व्रजयोषिताम् ॥११॥
प्रेमावतारसरणिर्मन्मुखेन्दुविलोकनात् ।
तुर्य्यं रसाल[1]विपिनं सुधास्वादुफलान्वितम् ॥१२॥
यत्र गोचारणामध्ये क्षुधितान् गोपबालकान् ।
दृष्ट्वाहं कल्पयामास फलैः पीयूषपारणम् ॥१३॥
पञ्चमं मन्दारवनं मन्दारद्रुमसंकुलम् ।
कूजत्कोकिलभृङ्गौघजुष्टं पुष्टं वनश्रिया ॥१४॥
पारिजातवनं षष्ठं कुञ्जपुञ्जमनोहरम् ।
खेलद्गोपाललनामञ्जीरध्वनिमञ्जुलम् ॥१५॥
सप्तमं कन्दलवनं परमानन्दकन्दलम् ।
यत्रावर्तत सुन्दर्या दानलीला मनोरमा ॥१६॥
अष्टमं संमदवनं मनःसंमदवर्धनम् ।
यत्रावर्तत सहजया मानलीलाविधिः शुभः ॥१७॥
नवमं केसरवनं[2] यत्र व्रजमृगीदृशः ।
अलङ्कुर्वन्ति कुसुमैः स्वात्मानं रामकेलिषु ॥१८॥
दशमं माणिक्यवनं महामाधुर्यमन्दिरम् ।
विस्फुरद्द्रव्यरत्नांशुमञ्जरीशतसंकुलम् ॥१९॥
एकादशं पद्मवनं गुञ्जद्भ्रमरसंकुलम् ।
यत्र शय्यागृहं भाति मदीयं सुखवर्धनम् ॥२०॥
द्वादशं सौरभवनं सुरभीकृतदिक्तटम् ।
दिव्यभूरुहपुष्पौघमरविन्दरसशीतलम् ॥२१॥
द्वादशैव बिभान्त्येवं तेषामुपवनान्यपि ।

---

१. रसद्°—रीवाँ। २. केशरवणं—अयो०, रीवाँ।

माधुरीकुञ्जमाद्यं स्यान्मल्लीकुञ्जं द्वितीयकम् ॥२२॥
तृतीयं मालतीकुञ्जं यूथीकुञ्जं चतुर्थकम् ।
पञ्चमं लवलीकुञ्जं कालीकुञ्जं च षष्ठकम् ॥२३॥
सप्तमं लवङ्गी कुञ्जं केतकीकुञ्जमष्टमम् ।
नवमं मल्लिकाकुञ्जं रत्नकुञ्जं ततः परम् ॥२४॥
एकादशं केकिकुञ्जं द्वादशं केलिकुञ्जकम् ।
एतेषु गमनादेव मनःशुद्धिः प्रजायते ॥२५॥
नित्यलीलाविभावश्च परप्रेमोदयस्तथा ।
स्नानाद्दानात्तथा ध्यानान्मम सायुज्यमाप्नुयात् ॥२६॥
सरयूपरितो भान्ति महावैकुण्ठभूमयः ।
एकैककुञ्जरूपेण महानन्दैककन्दराः ॥२७॥
तेषां दर्शनमात्रेण परप्रेमोदयो भवेत् ।
तत्रापि शुद्धया भक्त्या समाराध्य सीतापतिम् ॥२८॥
इहामुष्मिकभोगाय समर्थो भवति ध्रुवम् ।
अयोध्यापरितः क्षेत्रे ये तिष्ठन्ति च भूरुहाः ॥२९॥
ते ब्रह्मविष्णुरुद्रादिरूपाः साक्षात्सुरेश्वराः ।
ये वसन्ति जनास्तत्र ते साक्षान्मम विग्रहाः ॥३०॥
धनुर्वीणा [र्वाण ?] धराः सर्वे द्विभुजाः श्यामविग्रहाः ॥
येषामङ्गशरीरसंस्पर्शतो भाग्योदयो जायते
येन स्यात्सहजापतिः प्रियतमो विद्योतमानो रुचा ।
तल्लीलारसपाततो रसिकता वर्वर्ति सर्वोपरि
प्रेमानन्दविचूर्णमानमनसा तृप्तिः पराविर्भवेत् ॥३१॥
एतस्मिन्निवसन् देशे मम नामपरो भवेत् ।
येऽन्तरायाः कोटिशो वै सन्ति भूयः सुशोभयोः ॥३२॥
सहसा ते प्रणश्यन्ति मम नामप्रभावतः ।
प्रमोदवनवासश्च रामनामग्रहस्तथा ॥३३॥
तुलसीवनसेवा च कार्यमेतन्मुमुक्षुभिः ।
प्रमोदवनमध्ये तु तुलसीवनमुत्तमम् ॥३४॥

तन्मञ्जरीरजस्पर्शाद्दिव्यदृष्टिर्भवेन्नरः ॥
तत्सौरभैर्घ्राणपथप्रयातैरन्तः परप्रेमरसं प्रबोध्य ।
मद्रूपसाक्षात्कृतियोग्यताविधिः क्रियेत पूर्णा परमाद्यवस्था ॥३५॥
मनसा स्मरणीयोऽहं नित्यकेलिसमन्वितः ।
प्रमोदवनमध्यस्थो मानसं परमं तपः ॥३६॥
प्रेमगद्गदकण्ठत्वं दृशोरस्रुकलोदयः ।
स्तम्भस्वेदौ पुलकिता भावरूपं परं तपः ॥३७॥
भक्तिः श्रद्धा मतिर्धैर्यं विवेको विनयार्जवम् ।
क्षमा सत्यं दया बुद्धिर्मानसं परमं तपः ॥३८॥
भावोऽपि मानसो धर्मो स कथं शब्दगोचरः ।
भावोदयो न यावत्स्यात्तावन्नो मानसं तपः ॥३९॥
ममाङ्गभूषा विन्यासो मम भोजनसंविधा ।
मदर्थं कर्मकरणं स्वप्रियस्य निवेदनम् ॥४०॥
एष स्यान्मत्परो भावः सर्वमन्यदनर्थकम् ।
एतद्वैष्णवलोकानां कर्तव्यं भूरिभावतः ॥४१॥
सेव्यसेवकभावश्च स्मृतिरात्मनिवेदनम् ।
मत्सुखे सुखभावश्च मदीयहितभोजनम् ॥४२॥
मत्कीर्त्तनं मद्भक्तेषु सूनृतालापकारिता ।
संप्रश्नः प्रश्रयः सख्यं वाचिकं तप उत्तमम् ॥४३॥
उत्सवाश्च प्रकर्त्तव्या ये मे संवत्सरोद्भवाः ।
मज्जन्मदिवसोत्साहो मद्यात्रापूजनोत्सवः ॥४४॥
मत्पवित्रा[1]रोपणं च तथा मम रथोत्सवः ।
दोलोत्सवश्च हिन्दोलोत्सवो दीपोत्सवस्तथा ॥४५॥
अन्नकूटोत्सवश्चैव वसन्तोत्सव एव च ।
एते चैव महोत्साहा कार्या मच्चित्ततुष्टये ॥४६॥
वैदिकैस्तान्त्रिकैर्दिव्यैः पौराणैर्विधिभिर्यजेत् ।
पूर्णज्ञानानन्दरूपं देवं मां पुरुषोत्तमम् ॥४७॥

---

१. मद्वृक्षा°—अयो०, रीवाँ ।

कर्म कार्यं मत्परमं ज्ञानं यत्तन्मदाश्रयः ।
भक्तिर्मदवधिः साक्षात् प्रेमानन्दमयी परा ॥४८॥
एवं त्रेधापि मार्गोऽयं मत्परत्वाय कल्पते ।
येनानुष्ठितमात्रेण भवेन्मल्लक्षणं फलम् ॥४९॥
यल्लब्ध्वा नापरो भावो विद्यते भुवनत्रये ।
भावः सत्सङ्गविभवै[1]र्वैष्णवैरेव लभ्यते ॥५०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां रामगीता-महोपाख्याने अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अस्मिन् ब्रह्मपुरे दिव्ये नवद्वारे महापथे ।
दहराख्यं पुण्डरीकवेश्म[2]नित्यं विराजते ॥ १ ॥
यस्मिन् प्राणः पञ्चविधो यस्मिन् कामाः समाहिताः ।
अस्ति यत्किंचिदिह यन्नास्ति वस्तु जगत्त्रये ॥ २ ॥
तत्सर्वं भाति यत्रैव यदन्विष्य परंगताः ।
तद्वेश्मनि परं भाव्यं मदायतनमुत्तमम् ॥ ३ ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं कोटिचन्द्रसुशीतलम् ।
कोटिविद्युद्वह्निसमं जाग्रद्रूपं जडेतरम् ॥ ४ ॥
ज्योतिरूपं ब्रह्मरूपमूर्जस्वलमनुत्तमम् ।
कलासहस्रकलितं निष्कलं कालवर्जितम् ॥ ५ ॥
सत्यं विज्ञानमानन्दसंततं विततं बृहत् ।
सर्वतः सैन्धवघनं निराकुलमनन्तरम् ॥ ६ ॥
चिन्मयं परमं व्योम नित्याकारं सुरञ्जनम् ।
सरयूपुलिने रम्ये प्रतिष्ठिततमं महत् ॥ ७ ॥

---

१. भवान्तसंभवैर्दिव्य०— मथु०, बड़ो० । २. ब्र॰ह्म- रीवाँ ।

चिदानन्दवनं[1] यत्र हेमरत्नमयी मही ।
सत्यं स्वच्छं सरो यत्र सुधासलिलसंभृतम् ॥ ८ ॥
प्रकारः पूरितो यत्र कालरूपी दुरासदः ।
स्वातन्त्र्यतृप्तिसार्वज्ञ्यं[2] बोधरूपो यदापणः ॥ ९ ॥
यद्वासिनो महोदारा हंसाः प्रकृतिकोमलाः ।
ब्रह्मनिर्वाणलोकस्य राजानः सकला अपि ॥१०॥
अहं यत्र प्रभुः साक्षात् परब्रह्म परात्परः ।
ज्योतिरिङ्गणवद्यत्र ज्योतिःकणविभूषिताः ॥११॥
रमन्ति मुक्ताः पुरुषाः परमे धाम्नि कोटिशः ।
तत्परिवृतं पुराणं मां पुरुषं भावयेत् सदा ॥१२॥
सकलं निष्कलं[3] वापि पूर्णं सकलनिष्कलम् ।
नित्यश्रीविग्रहोपेतं श्रीलालितपदाम्बुजम् ॥१३॥
प्रेम्णा सहजभावेन समुपेतः सदा शुचिः ।
स्नायात्सुविमले तीर्थे ब्रह्मादिसुरसेविते ॥१४॥
सुपूर्णे त्रिपथातीरे ललाटे वैन्दवे सरे ।
सहस्रदलमध्यस्थचन्द्रमण्डलविस्रुतैः ॥१५॥
सुधारसैर्भृतं पूर्णं वैन्दवं विशदं सरः ।
तत्र संस्नानमात्रेण नरः पूतः प्रजायते ॥१६॥
भावनाधिकारयोग्यश्च भाव्यमर्थमवाप्नुयात् ।
दिव्येन तपसा युक्तः समाधिफलमाप्नुयात् ॥१७॥
समाधौ संपरिणते ध्यानं फलति तत्त्वतः ।
फलिते ध्यानयोगे तु ध्येयं साक्षात्कृतं भवेत् ॥१८॥
ध्येयमस्मि परं ब्रह्म यत्पूर्णममृतं विदुः ।
सत्यज्ञानानन्दरूपे मयि जीवं समर्पयेत् ॥१९॥
अकर्ता जायते सद्यो निर्लेपश्चैव निर्गुणः ।
कर्ता च करणं कार्यं यावदेतावती भिदा ॥२०॥
तावत् संसारवृक्षस्य कर्तनं च कथं भवेत् ।
कर्ता कृतिश्च नियतं द्रष्टा च दृशिरेव च ॥२१॥

---

१. °वने—रीवाँ। २. °सर्वज्ञ°—रीवाँ। ३. निश्चलं—रीवाँ।

महतश्चरमो भावः सोऽहङ्कारविजृम्भितः ।
तच्छिन्द्यादात्मनो मोहं तमोरूपं निरर्थकम् ॥२२॥
ज्ञानविज्ञानपूर्णात्मा प्रेमाङ्कुरमनोरमः ।
समैहिकामुष्मिकश्च साधुसंस्कृतमानसः ॥२३॥
मत्स्वरूपाश्रयो विद्वान् कृतकृत्यः प्रजायते ।
न तस्य त्रिषु लोकेषु कर्तव्यमवशिष्यते ॥२४॥
मामुपेतस्य पूर्णस्य ब्रह्मिष्ठस्य महात्मनः ।
एवंभूतो भवेत् साधुर्भवतीनां कृपावशात् ॥२५॥
नित्यलीलाधिकारी च प्रमोदवनमध्यगः ।
एवं प्रियाः स्वस्वरूपं साक्षाद् दिव्यं परात्परम् ।
मल्लीलां मोहिकीं[1] दृष्ट्वा नानुतप्यध्वमञ्जसा ॥२६॥

गोप्य ऊचुः

कतरा मोहिकी लीला तात्त्विकी कतरा च ते ।
एवं नः संशयं छिन्धि रघुवंशदिवामणे ॥२७॥

श्रीभगवानुवाच

लीलाविहरणं[1] नित्यं नित्यश्रीविग्रहस्य मे ।
पलायनं क्वचिद्दैत्याद्भयं चिन्ता च दुःखिता ॥२८॥
व्रजभक्तेषु विरहो विनाशो व्रजवस्तुनः ।
इत्यादिमोहिकी लीला सात्विकी सकलैव तु ॥२९॥
नित्या चिदानन्दमयी स्वरूपानतिरेकिणी ।
गुणाकारशरीराद्या स्वरूपानतिरेकिणी ॥३०॥
नित्या मे सकला लीला नित्यः परिकरोऽखिलः ।
इति ज्ञात्वा न मोहाय मनो वः कल्पतां प्रियाः ॥३१॥
एतद्वः कथितं सर्वं गीतोपाख्यानमद्भुतम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि लभते भक्तिसंपदम् ॥३२॥
दिव्यज्ञानसुसंपन्नो दिव्यचक्षुस्तथा भवेत् ।
मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता ब्रह्मणा नारदाय च ॥३३॥

---

१. मोहिनीं—अयो० । २. बाललीला विहरणं—मथु०, कालं जित्वा विहरणं—बड़ो० ।

प्रोवाच नारदः सम्यगम्बरीषाय साधवे ।
रहस्यं परमं चैतत् सहजायै समर्पितम् ॥३४॥
सहजाचित्तसर्वस्वं शास्त्रमेतत्सुधोपमम् ।
सरहस्यं सुदुर्बोधं त्रयीसारं सनातनम् ॥३५॥
शब्दतोऽपि परिज्ञातं शुभं सुष्टु प्रयच्छति ।
अर्थतश्च परिज्ञातं मोक्षमेव प्रयच्छति ॥३६॥
शब्दार्थमयमेतद्धि कृतकल्पफलं लभेत् ।
गुरुणा विदुषा दत्तं सद्यो वाञ्छितदायकम्[1] ॥३७॥
धारयेत् सततं मूर्ध्नि मुक्ति सायुज्यभाग्भवेत् ।
रामभक्ताय दातव्यं[2] नान्यस्मै तु कथंचन ॥३८॥
रामभक्ताय मुनये रामलीलाविनोदिने ।
पवित्रवपुषे वाच्यं मेधाविने द्विजन्मने ॥३९॥
मृत्युञ्जयकरी विद्या रामगीता मनोरमा ।
सेवनीया प्रयत्नेन नित्या सिद्धा[3] सनातनी ॥४०॥
श्रीरामसहजानन्द पुराणपुरुषोत्तम ।
प्रपन्नपारिजातेश पाहि मामित्युदीरयेत् ॥४१॥
श्रीरामः शरणं ममेति परमो मन्त्रोऽयमष्टाक्षरः
स्मर्तव्यः सततं निवेद्य सहसा स्वात्मानमस्मै मुहुः ।
श्रीरामः सहजापतिः सकलमित्याभाषमाणो गिरा
त्यक्त्वा कृत्यमकृत्यमेतदखिलं चिन्मात्रसंस्थो भवेत् ॥४२॥
गीतामिमां यः पठति प्रयत्नात् सत्संहितां मामकीं मामको यः ।
प्रेमावत्या भाषया भाषमाणो जनः स्वयं जन्म कृतार्थयेत् सः ॥४३॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां
रामगीतामहोपाख्याने एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

॥ [4]समाप्ता चेयं रामगीतोपनिषत्संहिता[4] ॥

●

---

१. अयंश्लोको नास्ति–अयो० । २. रामभक्ते प्रकर्तव्यं–मथु०, बड़ो० ।
३. साध्य०—रीवाँ । ४–४. नास्ति-रीवाँ ।

षष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इत्येवं गोपकन्याभ्यः स्वकान्ताभ्यः कृपावशः ।
दिव्यगीतामृतं नाम पाययित्वा रघूद्वहः ॥ १ ॥
तां रात्रिं तत्र चैताभिः सुन्दरीभिर्मदात्मना[1] ।
चकार विविधां केलीं विविधालापभूषिताम् ॥ २ ॥
सुखिताय गवेन्द्राय माङ्गल्यायै महात्मने ।
अन्येभ्यश्चैव गोपेभ्यो गोपीभ्यश्च स्वयंप्रभुः ॥ ३ ॥
साक्षान्निदर्शयामास स्वं लोकं प्रकृतेः परम् ।
यत्र सच्चित्सुखाकारो राजते करुणानिधिः ॥ ४ ॥
सत्यज्ञानानन्तमयं यद्धि ब्रह्म सनातनम् ।
गुणात्यये प्रपश्यन्ति यद्रूपं मुनिसत्तमाः ॥ ५ ॥
ब्रह्मरुद्रे सारवाख्ये ब्रह्मतीर्थे सुधोपमे ।
मज्जयित्वा व्रजं सर्वं निजं लोकमदर्शयत् ॥ ६ ॥
चिदानन्दमयं साक्षात् ब्रह्मरूपं सनातनम् ।
नित्येच्छावैभवानन्दावयवोपेतवस्तु यत् ॥ ७ ॥
तस्मिन् लोके स्वरूपं च स्तूयमानं सुरर्षिभिः ।
छन्दोभिर्मूर्त्तिमद्भिश्च समुपासितविग्रहम् ॥ ८ ॥
सहजानन्दिनीं सीतां कोटिलक्ष्म्याद्युपासिताम् ।
साकेतनगरीं चैव प्रमोदवनमुत्तमम् ॥ ९ ॥
स्वात्मानं चैव ते गोपाः समपश्यन् पृथक् पृथक् ।
नित्यं व्रजस्थ[2]लीलाभिः समुपेतं च राघवम् ॥१०॥
तद् दृष्ट्वा सकलं गोपो गवेन्द्रः स्तुतिमाचरत् ।

सुखित उवाच

नमस्ते राघवानन्त नित्यश्रीविग्रहाकृते ।
न त्वां जानन्ति वेदाश्च किमुतान्ये वराककाः ॥११॥

---

१. मदामम - अयो० । २. व्रजस्था—अयो०, रीवाँ ।

न ते लीलां विदुर्ब्रह्मन् पुरुषोत्तम सत्पते ।
न ते रूपं विदुर्देवा ब्रह्माद्या अपि संततम् ॥१२॥

साकेतनगरे चैव[1] कोशलाख्ये पुरोत्तमे ।
श्रीसरयूवने[2] चैव प्रमोदविपिने तथा ॥१३॥
एकस्त्वमेव नित्याभिर्लीलाभिः परिशोभसे ।
लीलायाश्च न ते हेतुर्निगमैरपि बुध्यते ॥१४॥

नित्या चिदानन्दमयी यथासि त्वं तथैव सा ।
सवितुस्तद्वरेण्यं त्वं भर्गः स्वभगवत्तया[3] ॥१५॥
देवस्य धीमहीक्षां[4] ते धियो यो नः प्रचोदयात् ।
श्रीरामं सच्चिदानन्दं भक्तोद्धृतिकृतिक्षमम् ॥१६॥

स्वरूपानन्ददानायेदृशं संसेवयेऽ[5]निशम् ।
राघवस्य गुणोत्कर्षः सर्वावतरणेषु यः ॥१७॥
अधुना स प्रविज्ञातः स्वरूपानन्ददर्शनात् ।
स्वरूपजनितानन्दरमणोत्कर्षहेतुकम् ॥१८॥

रामेति भवतो नाम नान्यावतरणेऽभवत् ।
येऽन्ये हयाननर्नृसिंहमुखाः परस्य
पूर्णस्य राम पुरुषोत्तम तेऽवताराः ।
तेषामयं परिवृढः[6] खलु रामनामा
भाते[7] स्वयं स भगवान् रघुनन्दनस्त्वम् ॥१९॥

तत्ते चिदानन्दमयं सनातनं धामोद्धुरं[8] वेदविदामगम्यम् ।
प्रकाशते यत्सहजं मुनीनां हृदन्तराले वशिते योगभक्त्या ॥२०॥

तद्भावयामि भवतो विदितं त्रिवेद्यां
ब्रह्मात्मकं चरणमेकमखण्डवीर्यम् ।

---

१. °नगरोमध्ये—रीवाँ। २. वने = 'जले' टि०—मथु०, बड़ो०। ३. "स्वस्य भगवत्त्वेन यत् सवितुः सूर्यस्य वरेण्यं तेजस्तत् ध्येयं भर्गः" टि०—मथु०। ४. "ईक्षां दर्शनं ध्यायेमः" टि०—मथु०। ५. मदंशेवनसे—रीवाँ। ६. परिदृढः—अयो०, परिवृतः—रीवाँ। ७. भाति—रीवाँ। ८. "उद्धुरं धाम स्वरूपं" टि०—मथु०।

भूतानि यस्य सकलानि स एकपादः
किंच त्रिपादमृतमूर्ध्वमुदै[1]द्वरिष्ठम् ॥२१॥
श्रीराघवेन्द्र भवतश्चरितं तुरीयं[2]
तुर्यात्मनां प्रकृतिपूरुषयोः परं यत् ।
तद्भासते भुवनभूषणभूतमात्र-
प्रोद्धार[3]साधनमशेषगिरां पदं तत् ॥२२॥

गोपा ऊचुः

नमो नः साधवे सख्ये श्रीरामाय महात्मने[4] ।
यस्य भरतशत्रुघ्नलक्ष्मणा भ्रातरो मताः ॥२३॥
भवांश्चतुर्व्यूहतनुः पुराणः श्रीमान् परः पूरुष एव कश्चित् ।
चत्वार[5] एतेऽवयवाः स्फुरन्ति श्रीवासुदेवादय एव यस्य ॥२४॥
आद्यःस देवोऽसि विशिष्य[6] मुक्तानन्दप्रदः सन्मय एव पूर्णः ।
यस्यान्तरं नो न बहिर्न मध्यं श्रीरामचन्द्रः सकलं तदेतत् ॥२५॥
त्वं स द्वितीयः पुरुषोऽसि भामन्[7] कालात्मकः शिष्यते यः स शेषः ।
वेदात्मकः शब्दमयः स पूरुषो यत्राखिलो निहतो भाति धर्मः ॥२६॥
कामोऽसि लोकस्य भवान् स्मरो यः प्रवर्तको लोकचक्रस्य नित्यम् ।
तं त्वां परं पूरुषमादिसर्गे प्रभुं प्रपन्नोऽस्मि विशिष्टभक्त्या ॥२७॥
त्वमेव देवोऽस्यनिरुद्धनामा धर्मात्मकः सर्वधर्मैकरक्षी ।
यस्यानिशं भाति परं स्वरूपं क्षीरोदसिन्धोः पुलिनैः प्रकाशम् ॥२८॥
त्वं पञ्चमः संप्रथितोऽसि तेषां धर्मी कलाभिः समताभिराढ्यः ।
प्रमुद्वने यो ललनासहस्रलीलागणैः सेवित एव नित्यम् ॥२९॥

गोप्य ऊचुः

नमो राघववर्याय रामाय रमणात्मने ।
रमासहस्रसेव्याय रामाय श्रीपरात्मने[8] ॥३०॥

---

१. °पदं—रीवाँ । २. यतीनां—रीवाँ । ३. °मात्रनिष्कार°—रीवाँ । ४. श्रीराम-परमात्मने—रीवाँ । ५. चत्वारि—रीवाँ, मथु०, बड़ो० । ६. विशिष्ट°—अयो०, रीवाँ । ७. भक्तः—रीवाँ । ८. श्रीराघवे—अयो०, श्रीशविष्णवे— मथु०, बड़ो० ।

यो नः पतिः प्रमुदकाननकुञ्जभूमौ
पाणिग्रहेण विधिना विधिवद्गृहीतः ।
स त्वं रमारमण एव विशेषतोऽद्य
विज्ञात एव परमः पुरुषोत्तमो यः ॥३१॥
स्त्रीणां नः परमैव त्वं गतिर्भव जगत्पते ।
पञ्चेषुरूपलावण्यं हरन् सौन्दर्यभूषितः ॥३२॥
मोहिका मन्मथस्यापि या ते लीला स्मरोद्धता ।
सा नो विषयतां याता धत्ते जगति मण्डलम्[1] ॥३३॥
यस्त्वं चिदानन्दमयो रामो रमणकोविदः ।
स एव वल्लभोऽस्माकं पूर्णः श्रीपुरुषोत्तमः ॥३४॥
नित्यं रमाम भवता सह कामलीला-
विस्तारणैकचतुरेण नरोत्तमेन ।
उत्कण्ठिता इति वयं रघुराज युष्म-
त्पादारविन्दयुगलाश्रयणैकदास्यः ॥३५॥
इत्येवं भाषमाणेषु व्रजवासिषु साधुषु ।
भक्त्या प्रसीदद्धृदयः समवोचत् स्मिताननः ॥३६॥

श्रीराम उवाच

व्रजवासिजना यूयं धन्याः स्थ बहुमङ्गलाः ।
यन्मम प्रियतां याता मृत्योर्मूर्ध्नि समासते ॥३७॥
न कालो न मायापि युष्मासु शक्तो मम क्रीडितानन्दपात्रेषु सत्सु ।
यथा मत्स्वरूपं तथा यूयमद्धा परे व्यापिवैकुण्ठधामानुपेताः ॥३८॥
इत्येवं सरयूक्षेत्रे प्रभाते मज्जतां नृणाम् ।
अनुभाव्य स्वयं रामः स्वं लोकं प्रकृतेः परम् ॥३९॥
सुखितस्य गृहाद्गन्तुमयोध्यामुपचक्रमे ।
कृतस्वस्त्ययनो रामो भ्रातृभिः सहितो युवा ॥४०॥
प्रयाणे रथमारोढु[2]मिच्छुस्तातं समब्रवीत् ।
हे तात सुखित श्रीमन् गवेन्द्र व्रजनायक ॥४१॥

---

१. मंगलम्—मथु०, बड़ो० । २. °मारुढ°—अयो०, रीवाँ ।

दाशरथीं पुरीं गन्तुमनुजानीहि मां प्रभो ।
युष्माकं सदनेष्वद्धा[1] चिरमध्युषितं मया ॥४२॥
[2]दधि दुग्धं च मिष्टान्नमश्नता प्रीणतानुजैः[2] ।
स्थित्वा शुभेषु भवतीसदनेषु[3] नित्यं
यत्क्रीडितान्यहमकारिषमात्तवेदः[4] ।
गास्यन्ति तानि मुनयोऽपि परार्द्धपारे[5]
संख्यापितानि निगमैः कुशलान्वितानि ॥४३॥
भवतां चापि नामानि कतिदोषहराण्यतः ।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजास्त्रिषु लोकेषु तत्त्वतः ॥४४॥
मातर्माङ्गल्यके यत्त्वं पालयामास नः सुतान् ।
तद्वयं बलिनो जाता जेष्यामो भुवनद्विषः ॥४५॥
अनुजानीहि मां भद्रे साकेतपुरगन्तवे ।
पराजिष्ये रिपून् सर्वान् भवतां कीर्तिवर्द्धनः ॥४६॥
ताःश्रोष्यथ मम क्रीडाविषयान् पुरि[6] तिष्ठतः ।
यानुद्गाय परांप्रीतिं ममेष्यथ वनौकसः ॥४७॥
युष्माभिर्नच बोध्योऽहं विश्लिष्टो जनकानने ।
नित्यं हि निवसाम्यत्र प्रमोदवनमध्यतः ॥४८॥
इत्याभाष्य मिथो बन्धून् परिरभ्य पुनः पुनः ।
परिरब्धश्च तै रामो रथोपस्थमुपाविशत् ॥४९॥
भ्रातरः परितो रामं तस्थिरे रथभूमिषु ।
शङ्खभेरीमृदङ्गाश्च समवाद्यन्त भूरिशः ॥५०॥
श्रीरामः सुखितगवेन्द्रघोषमध्यात् साकेतं व्रजति निदेशतः पितृभ्याम् ।
आकर्ण्येत्यमरवधूकदम्बकेन प्रेक्षार्थं सपदि जवेन तत्र जग्मे[7] ॥५१॥
विमानावलिभिर्व्योम समंतात्परिवारितम् ।
रामेन्दुं वीक्ष्यमाणानां देवानां चैव वर्ष्मभिः ॥५२॥

---

१. शुद्धा—अयो०, रीवाँ । २—२. नास्ति—अयो० । ३. °निलयेषु—मथु० बड़ो० । ४. "अंगीकृतलीलारहस्य इति चित्सुखा०" टि०—मथु० । ५. °पारा—रीवाँ । ६. °यानपि—रीवाँ । ७. श्रुत्वा—रीवाँ ।

अजायत महानेव संभ्रमो व्योम्नि च क्षितौ ।
गच्छतां रामगोपानां साकेतनगरीं पथि ॥५३॥
गोपान् निजसखीन् रामः सरामोऽप्यपृथक् पृथक् ।
स्यन्दनेषु सुवर्णेषु जगाम रघुपुङ्गवः ॥५४॥
असज्जन्त ध्वजगजाः स्वर्ण[1]पल्याणिनो हयाः ।
पत्तयः समकादन्त[2] रथाश्च विपुला ययुः ॥५५॥
मन्त्री दशरथेन्द्रस्य महत्या सेनया वृतः ।
अनुराजकुमारं तं ययौ सुखितपूजितः ॥५६॥
रथधूलिरजोरेखा यावत् संदृश्यते दिवि ।
तावद् गोपालनार्य्यस्ताः सौधाग्रेष्वलमासत ॥५७॥
रथे दूरं गते पत्युरवतेरुर्व्रजाङ्गनाः ।
श्रीरामविरहक्लेशदुःप्रेक्ष्ये दूरतोऽबलाः ॥५८॥
तद्गुणानेव गायन्त्यो विवृद्धस्नेहवार्धयः ।
कुञ्जे कुञ्जे रटन्त्यस्ता नात्मगेहानि सस्मरुः ॥५९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
रामयात्रायां षष्टितमोध्यायः ॥६०॥

●

एकषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

गृहप्रवेशविधिना कुमारं समवेशयत् ।
राजा दशरथः प्रीतः कुमाराननदर्शनात् ॥ १ ॥
दृष्ट्वा स चतुरः पुत्रान् प्रीतोऽभवदरिन्दमः ।
अमन्य[3]तैष मे बालो रावणादीन् हनिष्यति ॥ २ ॥
अहो अत्यद्भुतं तेजो रामचन्द्रस्य शोभते ।
अनेन नो गृहं स्पृष्टं त्विषा वितिमिरीकृतम् ॥ ३ ॥

---

१. असज्जंत गजाः स्वर्णकक्षाः—रीवाँ, २. यत्र यः शिविकादंत°—रीवाँ ।
३. "तदानीमेवालौकिकतेजोदर्शनेन माहात्म्यज्ञानं जातमिति भावः । अग्रे वात्सल्यनिर्वाहस्तु भगवल्लीलयैवेति चित्सुखीः" टि०—मथु०, बड़ो० ।

अहो सुजनुषा[1]मेषां रक्षायै सुखितालये ।
अकारिषं स्थितिमहं पुनरेते कुतोभयाः ॥ ४ ॥
कालस्थायिनियन्ता यः[2] पुरुषः प्रकतेः परः ।
स एव रामदेवोऽयं कथं साधारणो भवेत् ॥ ५ ॥
अनेन नः कुलं सौरं विशेषाद्विमतीकृतम् ।
तेजसामपि तेजो यत् स रामः पुरुषोत्तमः ॥ ६ ॥
नायं जनो नापि सुरो न यक्षो नापि लौकिकः ।
अलौकिकं महः पूर्णं रामशब्देन कथ्यते ॥ ७ ॥
दृष्ट्वास्य वदनाम्भोजं चिरं नयनयोर्मम ।
संजाता परमा प्रीतिः किमेतावद् गतं जनुः ॥ ८ ॥
अहो सुखितगोपस्य भाग्यं पारमुपागतम् ।
यच्छैशवेऽस्य वदनं प्रीत्या परिचुचुम्ब सः ॥ ९ ॥
अहो माङ्गल्यया नित्यं लुण्ठितः सुखवारिधिः ।
यदस्य मुखचन्द्रस्य पपौ पीयूषमादरात् ॥१०॥
सुकुमारममुं बालं राक्षसो धर्षयेदिति ।
न्यस्तवान् सुखितागारे श्रीराममकुतोभयम् ॥११॥
[3]भीषास्मान् मारुतो वाति भीषेदिति दिवाकरः ।
भीषेन्द्रश्चैव वह्निश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥१२॥
अयं कालस्यापि कालो दैवतस्यापि दैवतः ।
जानेऽहं सकला गायन्त्यमुमेव श्रुतेर्गिरः ॥१३॥
एष साक्षात् स्वयं रामो जातः प्रीत्या मदालये[4] ।
वासुदेवादिभिः स्वांशैः पूरितः शर्मकृन्नृणाम् ॥१४॥
नमो[5]ऽस्त्वमुष्मै पुरुषाय मूर्त्तये कलाविलासप्रकरैकमूर्त्तये ।
लोकाभिरामाय विलासिने नमो रामाय श्यामाय नमोऽस्तु संततम् ॥१५॥

---

१. स्वजनुषा°—रीवाँ । २. अयं—रीवाँ । ३. "ब्रह्मस्वरूपं ज्ञात्वा श्रुत्यर्थतयोपवर्णयतीति चित्सु०" टि०—मथु० । ४. "अवतारात्पूर्वमपि मूलचरित्रकारित्वान्नित्यमेव रामेतिनामेति चित्सु०" टि०—मथु० । ५. अहो अमु०—मथु०, बड़ो० ।

यस्य या सहजा शक्तिः सा श्रीः सर्वाङ्गसङ्गिनी ।
अयं च भगवान् पूर्णो दत्तं दृगवलम्बनम् ॥१६॥
यौवराज्यस्य बालस्य नाहं सर्वर्द्धिमानपि ।
शक्नोमि भवितुं राजा प्रभामण्डलधर्षितः ॥१७॥
तस्मादेनमिहाभिषिच्य सुखदं साकेतराज्ये चिरं
पूर्वैः पालितधर्मसेतुसदृशे सद्धर्मशर्मालये ।
अस्यैव प्रणयप्रकाशवपुषो[1] ध्यानात्परब्रह्मणो[2]
वानप्रस्थ्यमहाश्रमं सफलयाम्यस्मिन् रघूणां कुले ॥१८॥

अथवा पुरुषोत्तमस्य साक्षाद्रघुनाथस्य परावरेश्वरस्य ।
तनयेतिधियैव साधयानि प्रभुतः स्वात्मसुखं पराद्धर्चसंख्यम् ॥१९॥
अयमद्भुतरूपसौख्यराशिः फलितः संकलितश्च मे दृशाद्य ।
तत एव परां श्रियं भविष्ये यदिहामुष्मिकवस्तुसारभूतम् ॥२०॥

यथायं[3] पुरुषो जातः पुत्ररूपेण मद्गृहे ।
आज्ञापयिष्यति तथा करिष्यामि न संशयः ॥२१॥
कोऽहं कर्ता बराकः सन् प्रभुरेव करिष्यति ।
इत्येवं ज्ञाततत्त्वार्थः प्रावर्तत स राघवः ॥२२॥
एकतः कर्षति स्नेहो माहात्म्यज्ञानमेकतः ।
उभयोरन्तरे राजा रञ्जयामास मानसम् ॥२३॥
कौशल्यापि स्वसदनगतं रामचन्द्रं कुमारं
नीराज्यार्त्तिः सुभगरुचिभिर्दीपिकाभिः प्रकामम् ।
आरोप्याङ्के मदनमदहृद्रूपलावण्यलीलम्
स्निग्धोद्भूतं प्रणयहृदया हृष्टरोमा चुचुम्ब ॥२४॥
एवं भरतशत्रुघ्नलक्ष्मणानपि मातरः ।
नीराज्य निर्मञ्छयामासुर्मणिमुक्तादिकं धनम् ॥२५॥
रामे निर्मञ्छिताः सद्यः पितृभ्यां रत्नराजयः ।
नभोगतानि तान्येव नक्षत्राण्यरुचन्न वा ॥२६॥

---

१. °वपुषे—मथु०, बड़ो० । २. °ब्रह्मणे—मथु०, बड़ो० । ३. यथाहं—अयो०, मथु०, बड़ो ।

तत्राशिषः प्रयुञ्जानाः कुमाराणां चतुष्टये ।
प्रादुर्बभूवुस्त्रिदशास्तथैव च महर्षयः ॥२७॥
समवादयन्त पटहा भेर्यो दुन्दुभयस्तथा ।
रामचन्द्रसुखालोके प्रजानां प्रीतिवर्धने ॥२८॥
कृतपुण्याहवचनाश्चत्वारो राजनन्दनाः ।
व्यरोचन्त सभामध्ये मूर्तिमन्तो मनोरथाः ॥२९॥
कृतकुण्डलविन्यासा वलयानद्धबाहवः ।
केयूरोल्लासदोर्दण्डाश्चित्रोष्णीषकिरीटिनः ॥३०॥
हेमकञ्चुकलिप्माङ्गा निषङ्गोग्रा धृतासयः[1] ।
झङ्कारितधनुर्ज्यास्ते कलितोत्साहवृद्धयः ॥३१॥
व्यरुचन् रघुशार्दूलाः पितुः सन्निधिसेविनः ।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे अयोध्यागमनं नाम एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

यौवराज्ये स्थितो रामः शोभयामास भूतलम् ।
चक्षूंषि रञ्जयामास मनुजानां च पश्यताम् ॥ १ ॥
राजा दशरथः प्रीत्या संप्राप्य सुतदर्शनम् ।
अपूर्वपदलावण्य[2]दर्शनाद्विस्मितोऽभवत् ॥ २ ॥
दिने दिने स्नेहमानः स्नेहो जनकभूभुजः ।
अलौकिके चिदानन्दे पुरुषे सफलोऽभवत् ॥ ३ ॥
उद्भवेज्ज्ञानमाहात्म्यं शंखचक्रादिदर्शनात् ।
तनयत्वेन मेने स रामं नित्यशुभाकृतिम् ॥ ४ ॥

---

१. निषङ्गधृतसायकाः—रीवाँ । २. °लावण्यलाभ°—रीवाँ ।

तथापि जनतानन्दसंदोहाभिनवाङ्कुरे ।
नान्यसाधारणो रामे बभूव स्नेहसागरः ॥ ५ ॥
कदाचिन्नृपतिः कृत्वा हरिनन्दातिथिव्रतम् ।
कलार्द्धं द्वादशीं ज्ञात्वा निराशः कृतजागरः ॥ ६ ॥
अनुल्लङ्घ्यासुरीं वेलां सरयूतीर्थमभ्यगात् ।
स्नातुं प्रविष्टं तं तीर्थेऽहरद्भृत्यः प्रचेतसः ॥ ७ ॥
अदृष्ट्वा नृपतिं भृत्याश्चक्रुः कोलाहलं मिथः ।
हा हा कुत्र गतो राजा पश्यतां नः सविग्रहः ॥ ८ ॥
कौशल्यानन्दनो ज्ञात्वा जनकं यादसा हृतम् ।
तत्सन्निधिमगात् पूर्णं प्रविश्याम्बुनि सारवे ॥ ९ ॥

तं दिव्यरत्नमणिहेमकिरीटजुष्टमूर्धानमुल्लसितपद्मदलायताक्षम् ।
मुक्तागणस्रजमुदारमुरोवहन्तं श्यामं ददर्श वरुणः सहसैव रामम् ॥१०॥

प्राप्तं तमीशमखिलस्य भवस्य भव्यं
राजीवलोचनमसावधिगम्य रामम् ।
देवाधिदेव इति राममुदा सपर्यां
चक्रे स दिव्यमणिमौक्तिकरत्नपुञ्जैः ॥११॥

वरुण उवाच

अद्य मे पावितं वेश्म चरणाम्भोजरेणुभिः ।
तस्य स्पर्शाच्छिरश्चैव गाङ्गं पावनहेतुभिः ॥१२॥
अद्यैव सफलं वर्ष्म चक्षूंषि सफलानि नः ।
समन्ताद्वीक्ष्यमाणानां श्यामं सुन्दरविग्रहम् ॥१३॥
अवितर्क्योऽसि पूर्णोऽसि स्वयंज्योतिरसि प्रभो ।
तथाप्यवतरन्नृणां तनुषे सगुणां धियम् ॥१४॥
ते गुणानां न संगोऽस्ति ब्रह्मणः परमात्मनः ।
तथापि कृपया देव दृश्योऽसि जगतो दृशः ॥१५॥
त्वत्संगिनी दृशिरसौ रघुवंशकेतो
चेतोगतिः समतिवर्त्य जयन्ति शश्वत् ।

इच्छावशात्तव कृपामृतसागरस्य
भूयो जवेन जनतां भृशमुद्दिधीर्षोः[1] ॥१६॥
न तेऽस्ति माता न पिता कुतस्ते सहोदरा बन्धवोऽव्यक्तमूर्त्तेः ।
तथापि लीलामधिगम्य रम्यां सर्वस्वरूपो भवसीश सद्यः ॥१७॥
त्वमेव सुखितो गोपो माङ्गल्या च त्वमेव हि ।
त्वमेव गोप्यो गोपाश्च त्वं प्रमोदवनं हरे ॥१८॥
त्वमयोध्यापुरी विष्णो त्वं वै दशरथो नृपः ।
त्वं कौशल्या च सा माता लीलामानुषविग्रहः ॥१९॥
वैकुण्ठवासी देवेश तवैवांशो रमापतिः ।
यः क्षीरसागरे शेते निगमैः समभिष्टुतः ॥२०॥
यश्च वेदमयो देवो भगवानक्षरात्मकः ।
स्वराट् सहस्रवदनः सा ते मूर्तिर्गिरात्मिका ॥२१॥
नमस्ते रामचन्द्राय कल्याणगुणसिन्धवे ।
परमानन्दकन्दाय परमज्योतिरात्मने ॥२२॥
भूर्भुवःस्वःस्वरूपाय विराजपुरुषाय ते ।
महते विश्वरूपाय परस्मै प्रकृतेर्नमः ॥२३॥
इत्यभिष्टूय सर्वज्ञो रामचन्द्रं रघूद्वहम् ।
प्रचेताः सहसात्मानं पातयामास पादयोः ॥२४॥
उत्थापयामास समार्त्तबन्धुः प्रचेतसं राघवसार्वभौमः ।
तमुत्थितः पाशधरो ददर्श धनुर्धरं कञ्जविशालनेत्रम् ॥२५॥
रामचन्द्र इति ज्ञात्वा नत्वा चैव पुनः पुनः ।
नृपं दशरथं नत्वा समर्प्य प्रभवे ततः ॥२६॥
विसर्जयामास पुराद्रामं त्रिभुवनेश्वरः ।
राज्ञा सहोन्ममज्जासौ पश्यतां सरयूजले ॥२७॥
प्रत्यङ्गं भूषितो रत्नैर्वरुणेनोपदीकृतैः ।
आनन्दमज्जनांस्तत्र आनीय पितरं जवात् ॥२८॥

---

१. °मसि भावबंधुः—रीवाँ ।

तदा जयेति निर्घोषोऽभवत् साकेतपत्तने ।
पुत्रप्रभावेणानीतो राजा दशरथः पुनः ॥२९॥
अहो रामस्य सामर्थ्यं निन्ये मां वरुणालयात् ।
इति चित्रान्वितो राजा बभूव भृशहर्षितः ॥३०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दशरथानयनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथागमन्मधुर्दिव्यमाधवीमधुगन्धभृत् ।
मधूकप्रसवामोदगुञ्जद्भ्रमरसंभवः ॥ १ ॥
कूजत्कोकिलकादम्बशिखण्डिगणनादितः ।
मन्दैर्मलयजैः पा(वा ?)तैराकाम्पितलतागृहः ॥ २ ॥
फुल्लर्त्किशुककान्तारः शुकास्यकुसमाकरः ।
रसालमञ्जरीपुञ्जमञ्जुलीकृतकाननः[1] ॥ ३ ॥
पुंस्कोकिलरवाकीर्णदिगन्तकुटिकागणः ।
किंचिद्धिमसमुद्भेद[2]विकस्वरदिवाकरः ॥ ४ ॥
फुल्लनीरजसौरभ्यसंभारसुरभीकृतः ।
गङ्गातरङ्गशिशिरमरुल्लहरिसौख्यदः ॥ ५ ॥
पुरनारीजनाक्रान्तदोलोत्सवविशारदः ।
अमुमेवंविधं दृष्ट्वा नृपतिः कुसुमाकरम् ॥ ६ ॥
श्रीरामं रमयामास आरामेषु रमासखम् ।
कर्पूरचूर्णसंदोहैः कस्तूरीरजसां चयैः ॥ ७ ॥
सिन्दूररेणुसंव्रातैर्दिव्यभुवनपयोधराः ।
रक्तैः केलिरजोभिश्च क्रीडा जाता परस्परम् ॥ ८ ॥

---

१. °कामलः—रीवाँ । २. "किंचित्पुष्पसमुद्भेद" इत्यधिकः पाठः—रीवाँ ।

सरय्वाः पुलिने दिव्ये मुक्ताकुञ्जे मनोहरे ।
अभूत् केलिसमारम्भो रामस्य सखिभिः सह ॥ ९ ॥
तेषामुद्गीयमानानां संक्रीडारजसां भरैः ।
नभश्छन्नमभूद् भूयो रक्तैरम्बुधरैरिव ॥१०॥
भुञ्जाना विविधान् भोगान् खेलमानाः परस्परम् ।
अभिरामस्य रामस्य सखायो रेमिरे मिथः ॥११॥
पल्लवैः कुसुमैः स्तोमैः कन्दुकैः कोमलैः फलैः ।
केलीं संवर्धयामासुश्चत्वारो रघुपुङ्गवाः ॥१२॥
स्वयं दशरथो राजा गन्धर्वैरुपवीणितः ।
रेमे वसन्तसमये कौतुकी तनयैः सह ॥१३॥
वसन्तोत्सवमालोक्य रामस्य कुतुकान्वितम् ।
ब्रह्माद्या मुमुहुर्देवा नन्दिताश्चाभवन् मुदा ॥१४॥
तस्मिन् दिव्योत्सवे राममासीनं भूभृता सह ।
उपवीण्यमानं गन्धर्वैः प्राप्तश्छायामयोऽसुरः ॥१५॥
संकिरंस्तामसीं छायां छादयामास तां सभाम् ।
यत्रासते ते भरतरामलक्ष्मणशत्रुघ्नाः ॥१६॥
तस्यासुरस्य छायाभिर्मूर्छिता अभवंस्तदा ।
एकं राममृते सर्वे सभास्तारा[1] मधूत्सवे ॥१७॥
रामो विज्ञाय तां मायामसुरस्य दुरात्मनः ।
चुक्रोध तद्वधं कर्त्तुं प्रभुस्त्रिभुवनेश्वरः ॥१८॥
शरासने शरं घोरं संयोज्य रिपुदर्पहा ।
तं राक्षसं मर्मदेशे जघान नृपनन्दनः ॥१९॥
स हतस्तस्य बाणेन पृथक् छायामयीं तनुम् ।
अपतद्दर्शयन् घोरं दुर्दर्शं विपुलं वपुः ॥२०॥
पुनस्तमेकेन शरेण हत्वा प्रक्षेपयामास बलाद्रघूद्वहः ।
यथा स उड्डीय पपात सिन्धौ समुच्छलल्लोलतरङ्गमाले ॥२१॥

---

१. समस्तास्ते—रीवाँ ।

तस्य कण्ठोद्गतं तेजो रामस्य चरणाम्बुजे ।
प्रविवेश पतत्तारातेजःपुञ्जः प्रभासुरः ॥२२॥
तच्चित्रमिव संजातं विमानस्थदिवौकसाम् ।
क्षणाल्लब्धप्रबोधानां तत्रस्थानां तथा नृणाम् ॥२३॥
लक्ष्मणो भरतश्चैव शत्रुघ्नश्च निरीक्ष्य तत् ।
भूयो जयेत्यभिदधौ श्रीरामस्य पृथक् पृथक् ॥२४॥
न तत्रान्यस्य सामर्थ्यं यच्छायासुरमारणम् ।
विना रामं घनश्यामं महावीरं धनुर्धरम् ॥२५॥
अयं छायासुरो नाम राक्षसस्तामसीसुतः ।
देवान् रणे पराभूय त्रैलोक्यं बुभुजे पुरा ॥२६॥
नार्को नेन्द्रो न वा ब्रह्मा न शिवो नेतरः सुरः ।
अमुं नाशयितुं शक्तो मायाच्छायामयं रिपुम् ॥२७॥
अविद्या जगतो ह्येषा व्यूढं छायामयं तमः ।
अमारयद्घोररूपं रामभद्रः स्वतेजसा ॥२८॥
इत्युच्चकैः समभिधाय सुराः सहर्षाः
श्रीराममूर्ध्नि सुरपादपपुष्पवृष्टिम् ।
चक्रुः स्तवं त इममेव गिरां समूहैः
सत्संभ्रमेण दिवि दुन्दुभिनादपूर्वम् ॥२९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे छायासुरवर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

चतुष्षष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कुसुमाकरमुत्फुल्लं द्रष्टुकामो रघूद्वहः ।
कुञ्जाभ्यन्तरकुञ्जेषु गह्वरेषु विवेश ह ॥ १ ॥
सेव्यमानं सुखस्पर्शैर्वातैर्मलयगन्धिभिः ।
ददर्श कौतुकी रामो वसन्तवनजां श्रियम् ॥ २ ॥
सहकारतरून् दृष्ट्वा भूरिमञ्जरितान् प्रभुः ।
मेने विषशरैर्युक्तमधिज्यं म (मा ?)न्मथं धनुः ॥ ३ ॥
हेमकेतकिपुष्पौघैर्धूरिपूरैः समंततः ।
तमोऽन्धकारितं वीक्ष्य मेने स्मरचमूद्धतिम् ॥ ४ ॥
उत्फुल्लपङ्कजामोदभ्रमद्भ्रमरसंकुले ।
कुञ्जवीथीपथे रामश्चलितुं नाशकज्जवात् ॥ ५ ॥
लतासु वृक्षेषु तथा क्षुपेषु[1] गुल्मेषु पुष्पप्रचयाकुलेषु ।
इतस्ततो दृष्टिसुखं विचिन्वन् सस्मार रामः सहजां स्वचित्ते ॥ ६॥
स्मराशुगैर्विद्धमना रघूद्वहो युवा सरोजच्छदनायतेक्षणः ।
तत्याज सामान्यजनान् स्वसंगिनस्तमेव तस्थुः सविधे सखायः ॥ ७॥
ये भुक्तिपानपविधानविहारलीला-
नर्मक्रियादिषु सदा सविधे वसन्ति ।
शुद्धान्वयप्रवरराजकुमारवर्या
आज्ञाकराः प्रणयिनं सहसोपचेरुः ॥ ८ ॥
नानादेशाधिनाथानां ये वै राजकुमारकाः ।
तेषां प्रसादपात्राणि मित्राणि द्वित्रिसंख्यकाः ॥ ९ ॥
पीठमर्दा विटाश्चेटा नर्मदाश्च विदूषकाः ।
इत्येवं गोदुहां बालास्त आसन् रामपार्श्वगाः ॥१०॥

---

१. "ह्रस्वशाखाशिफः क्षुपः" टि०—मथु०, बड़ो० ।

केचिन्नवदलैः शय्यां रचयामासुरद्भुताम् ।
केचिच्च कल्पयामासुर्मृणालीभिरुरस्रजः ॥११॥
केचित् कमलपत्रैस्ते परिवव्रुः पटैरिव ।
प्रसूनमकरन्दाद्यैः शीतलैः केचिदाकिरन् ॥१२॥
केचिच्छायासु सान्द्रासु वीजयामासुरीश्वरम् ।
केचिदातपरोधार्थमातपत्रं दधुः प्रभोः ॥१३॥
सहजानन्दिनीकान्ताविश्लेषव्यथितान्तरम् ।
पटु क्षामं च ते रामं दृष्ट्वा वचनमब्रुवन् ॥१४॥

कुमारा ऊचुः

राम राम महाबाहो कोऽयमाधिस्तवान्तरे ।
प्रत्यङ्गरुग्णतामेष सत्स्वस्मासु महाप्रभो ॥१५॥
त्वदाज्ञावशगानां नो नालभ्यं भुवनत्रये ।
तदाज्ञापय राजेन्द्रकुमारास्मान् स्वसेवकान् ॥१६॥
पाताले वा भुवि स्वर्गे यद्वरिष्टतमं[1] तव ।
वयं तदाहरामोऽद्य राघवेन्द्र निवेशय ॥१७॥
मौनमेव भजन्नेवं कालं क्षिपसि मे सखे ।
तापेनाङ्गानि शुष्यन्ति जीर्यन्ति विगलन्ति च ॥१८॥
कदाचित् स्विद्यसे राम स्तब्धो भवसि च क्वचित् ।
कदाचित् पुलकोद्भेदैः कदम्बकुसुमायसे ॥१९॥
कदाचित् स्वरभङ्गेन मौनमेवावलम्बसे ।
कदाचित् कम्पसे गात्रे कदाप्यस्त्रं विमुञ्चसि ॥२०॥
धत्से म्लानां मुखच्छायां कदाचिच्छुष्कदच्छदः ।
कदाचिदिन्द्रियाण्युच्चैः विलापयसि चेतसि ॥२१॥
इत्येताभिरवस्थाभिर्हृदि रागोऽनुमीयते ।
सहजानन्दिनीकान्तामानयामो निदेशय ॥२२॥
किं वाशोकलताकुञ्जमण्डपं याहि तं प्रभो ।
यत्र गोप्यो विषीदन्ति भवद्दर्शनलालसाः ॥२३॥

---

१. यद्यदिष्टतमं—अयो० ।

विस्मर्तव्यतमं नैव प्रमोदवनमच्युत ।
भवतो दर्शनं यत्र काङ्क्षन्ति व्रजबालिकाः ॥२४॥
व्यापकः परमात्मा चेत् सर्वत्रैवास्यखण्डधीः ।
तथाप्यस्मद्विनोदार्थं प्रकटो भव तत्र वै ॥२५॥

राम उवाच

शृण्वन्तु सकला गोपा अयोध्यावासिनो मम ।
प्रमोदवनपद्माया विरहो बाधतेतराम् ॥२६॥
आनेतुं सा कथं शक्या भवद्भिः शुद्धवंशजा ।
नहि यावत् कुलस्त्रीणां कौलव्रतमुदस्यते ॥२७॥
अन्याश्च सकला गोप्यो मद्विश्लेषार्द्दिता अपि ।
अथ मां च समेष्यन्ति तीर्त्वा कुलव्रताम्बुधिम्[1] ॥२६॥
तस्माद्विरूपे हृदये महाविरहकातरः ।
आभीरललनारत्नप्रवरानवलोकनात् ॥२९॥
अवशिष्टां[2] क्रियां तस्मात् समाप्य सहजासखः ।
व्रजे गच्छेय तच्छीघ्रं युष्माभिः सह गोपकाः ॥३०॥
अयमेवाभ्युपायोऽस्ति तासां वै मिलने मम ।
तावद्यूयं व्रजे गत्वा ता आश्वासयत प्रियाः ॥३१॥
वियोगजां ममावस्थां तासां निर्वर्ण्य मित्रकाः ।
तदवस्थान्ममाप्येत्य निर्वर्णयत सादरम् ॥३२॥
सुन्दरं नन्दनं लीलां ललामं चैव गोदुहम् ।
प्रेषयामास चतुरो नर्मज्ञान् सुखितव्रजे ॥३३॥
शीघ्रमेष्यति रामोऽत्र भवद्दर्शनलालसः ।
चिन्ता न कार्या युष्माभिः प्राणेभ्योऽपि प्रिया यतः ॥३४॥
विसर्ज्य राजपुत्रांस्तान् सुखितस्य व्रजं प्रति ।
किंचिद्वनलतावेश्ममण्डपं प्रविवेश सः ॥३५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे वसन्तोत्सवं नाम चतुष्षष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

---

१. वधूं--अयो० । २. अवशिष्टाह्न०—मथु०, बड़ो० ।

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

रामो लतामण्डपमेत्य तस्य छायामधिसृत्य सुखेन तस्थौ ।
गन्धर्ववर्यैरुपवर्ण्यमानो ग्रामोल्लसन्मूर्छित[1] मूर्छनाभिः ॥ १ ॥

यदा विशेषाद्विरहोत्करस्य स्थातुं न तत्रैव शशाक कामी ।
तदा निषिध्यारुचिरान् समस्तान् द्वित्रिसहास्थाद्रघुवंशवीरः[2] ॥ २ ॥

असाविहावर्त्तविवर्तनाभिः सुष्वाप धैर्येण विनैव निद्राम् ।
कदाचिदुत्थाय धृतोपधानस्तस्थौ भृशालस्यपरीतगात्रः ॥ ३ ॥

ददर्श कंचिद्रुचिरं विहङ्गमं विचित्रपक्षद्युतिरोचमानम् ।
लोकातिगं पाण्डवमुद्वहन्तं विराजपुच्छाग्रकलाललामम् ॥ ४ ॥

न राजहंसं न शुकं न कोकं न कोकिलं केकि न वा कपोतम् ।
प्रपञ्चसर्गातिगनव्यसर्वं भान्तं तिरस्कृत्य विरञ्चिदाक्ष्यम् ॥ ५ ॥

ईदृग्विधो नैव दृष्टः श्रुतो वा विहङ्गमः केनचित् क्वापि लोके ।
इत्यादरेण प्रभुलक्ष्मणाभ्यां मुहुर्मुहुः संददृशे विहङ्गमः ॥ ६ ॥

उत्पत्य तेन सुरुचा विहगोत्तमेन
रत्नोत्तमद्युतिविचित्रसुविग्रहेण ।
रामस्य रूपरसराशिजलाशयस्य
सद्यः करोऽधिरुरुहे कमलभ्रमात्किम् ? ॥ ७ ॥

तच्चित्रवेशधरमेकविहङ्गमक्षि
संपश्यतो रघुवरस्य न तृप्तिमाप ।
अङ्गं तथाप्यतिमृदुस्पृशतोऽस्य पाणिः
संशृण्वतोऽतिमधुरं क्वणितं च कर्णः ॥ ८ ॥

---

१. ग्रामो लसन्—अयो०, रीवाँ, "ग्रामैः उल्लसन्त्यः मूर्च्छिताः वृद्धिमिताः याः मूर्च्छनास्ताभिः" टि०—मथु० । २. °हीरः—मथु०, बड़ो० ।

तं राघवेन्द्रतनयो रुचिरं क्वणन्त[1]-
माकर्ण्य तं च परिपृच्छति यावदेव ।
तावत् सदक्षिणचरो विहगेश्वरस्त-
मुच्चैरुवाच वचनोच्चयचुञ्चुचञ्चुः ॥ ९ ॥

विहग उवाच

सामन्तभूपशतवर्यकुमारकं[2] त्वां
वेद[3] त्रिलोकजनतानयनाभिरामम् ।
मां च प्रमोदवनकुञ्जनिकेतनस्य
लीलाविशेषरसिकं खगमेव विद्धि ॥१०॥

मां गोपिकानिवह[4]हासविलासरास-
लावण्यसागरसुधारसमापिबन्तम् ।
राम त्वया सह वने मणितारवस्य[5]
शिक्षैकभाजनमवेहि मनोजबन्धुम् ॥११॥

राम प्रियासु तव मानवतीषु सद्यो
भूरुग्भुजाग्रमधिरुह्य विमुक्तकण्ठम् ।
धीरैः स्वरैर्मनसिजप्रतिबोधनेन
धैर्यं हरन्तमिह किं स्मरसि प्रभो माम् ॥१२॥

अथ त्वमेवं शशिमानमद्धा पाण्डुत्वमङ्गेषु किमाबभार ।
प्रायेण[6] तस्मात् सुखितस्य गेहाद् विश्लिष्ट उद्विग्न इवासि दृष्टः ॥१३॥

मैव प्रभो त्वं त्रिजगत्प्रतिष्ठा[7]-
भूतत्वमेत्य विरहानुगमेन चित्ते ।
खिद्य स्वयं कमपि दासमिहादिशस्व
स स्वर्गतं करगतं कथयिष्यतीष्टम्[8] ॥१४॥

---

१. रुचिरक्वणानाम्—मथु०, बड़ो० । २. कुमारक—मथु०, बड़ो० । ३. वन्दे-मथु०, बड़ो० । ४. निबद्ध—अयो०, रीवाँ । ५. "मणितं रतिकूजितम्" टि०—मथु० । ६. प्रायोद्य—मथु०, बड़ो० । ७. मैव प्रभो त्वमखिलजगत्प्रतिष्ठा—मथु०, बड़ो० । ८. °तीश०—मथु०, बड़ो० ।

ताश्च प्रमोदवनमण्डपकुञ्जसंस्थाः
सीदन्ति नाथ भवतो विरहेण गोप्यः ।
भूयः समाश्वसिहि ताः स्वकरे गृहीताः
श्रीरामचन्द्र शरणार्थिमहाशरण्य ॥१५॥

त्रैलोक्यपावनपुराणजनार्चितस्व[1]-
पादारविन्दपरिणद्ध[2]परागराजीम् ।
सौरभ्यसंपदमवाप्तवतीमपूर्वा-
मासेव्य राम कृतकृत्यमिदं जगत् स्यात् ॥१६॥

अन्यास्तु गोपललना विरहागमार्ताः
सन्त्येव कोटिश इह व्रजभूस्थलेषु ।
श्रीराम तत्र[3] सहजा तु न दृश्यतेऽपि
यत्रास्त्यशोकलतिका वनमण्डप[4]श्रीः ॥१७॥

संकेतदेशमतनुज्वरहारिशीलं
तं संविहाय खलु सा क्वगता न जाने ।
भूयस्तवैव हृदये किमियं गता वा
गेहं गता त्रिजगतां च गतिं गता वा ॥१८॥

शून्यामशोकवनमण्डपिकां विलोक्य
न ज्ञायते दशदिगन्तदृशि[शा ?]र्मयापि ।
तद्रामचन्द्र पुरुषोत्तम तान् विलासान्
भूयोऽपि तत्र कुरु लोकसुखैककन्दान् ॥१९॥

श्रीराम उवाच

नाहं प्रमोदवनतः खग निर्गतोऽस्मि
नित्यं वसामि तदशोकलतानिकुञ्जे ।
किंत्वेष लौकिकदृशां विषयोऽस्मि नाहं
ये भावुकाः सुरसिका विषयोऽस्मि तेषाम् ॥२०॥

---

१. °त्वत्—मथु०, बड़ो० । २. °परिणिद्धि°—मथु०, बड़ो० । ३. किंतु—रीवाँ । ४. °मण्डल°—रीवाँ ।

अवतारचरित्राणि कर्तुं भूमितलेष्वहम् ।
अवतीर्णोऽस्मि पूर्णोऽपि स्वांशेन द्युमणेरधः ॥२१॥
अयोध्यामागतोऽस्म्येष सहजानन्दिनी च सा ।
अयोनिजा निमेर्वंशे स्वांशेनावततार ह ॥२२॥
बुधाः तत्रैव पश्यन्ति क्रीडमानां मया सह ।
रक्ताशोकलतामञ्जुमण्डपान्तरचारिणीम् ॥२३॥
नित्यः स खलु सर्वोऽपि लीलापरिकरो मम ।
सर्गादौ जायते नैव प्रलये न विनश्यति ॥२४॥
अपरं च द्विजश्रेष्ठ भवता वचनान्मम ।
नैम्यस्य मिथिलेन्द्रस्य गन्तव्यं त्वरितं गृहे ॥२५॥
तत्र त्वमे[यै ?]त्य सच्चित्रं लिखितं रङ्गविद्यया ।
देयं जीवातयेऽमुष्याः सहजायाः कराम्बुजे ॥२६॥
तस्याः पुनः प्रतिकृतिः पतगेन्द्र मह्यं
संजीवनौषधविशेषतया प्रदेया ।
वाच्यं च सन्निहितमेव करिष्यतेऽसौ
पाणिग्रहं सपदि ते जनकेन्द्रपुत्रि ॥२७॥
शंभोर्धनुः कठिनमित्यधि[1]गम्य बाले
चित्रायितव्यमपि दाशरथौ न बाले ।
एतद्रहस्यतरमेव विधाय कार्यं
त्वंजीव दैवतमते शरदां सहस्रम् ॥२८॥
इत्याज्ञाप्य द्विजं रामस्तूष्णीमास ततो द्विजः ।
गत्वा जनकराजस्य मन्दिरं मिथिलां प्रति ॥२९॥
तत्र क्षितेः सप्तमभूरिभागे प्रासादवर्यस्य तले निषण्णाम् ।
आकर्णयन्तीं विपुलान् वयस्यामुखाम्बुजेभ्यः स्वपतेर्गुणौघान् ॥३०॥
पुनः पुनः प्रश्नयन्ती श्रुतानपि गुणोत्करान् ।
[प्रीतिभरान् प्रियस्य हि[2] ।]
अस्य योग्या न वास्मीति खिद्यमानां मुहुर्मुहुः ॥३१॥

---

१. °तामधि°—मथु, बडो° २. अयमंशोऽधिकः प्रतिभाति ।

जघनन्यस्तदोर्दण्डतले संस्थाप्य चाननम् ।
क्षणे क्षणे सरोमाञ्चां कम्पमानां क्षणे क्षणे ॥३२॥
क्षणे क्षणे धृतस्तम्भां रम्भास्तम्भवदम्भसा ।
स्विद्यमानां क्षणोष्णेन साश्रुनेत्रां क्षणे क्षणे ॥३३॥
ददर्श पक्षी मिथिलेन्द्रनन्दिनीं भित्वापरार्द्धस्मरसुन्दरीमदम् ।
विराजमानां मणिनिर्मिताङ्गणे सहस्रमूर्तिप्रतिबिम्बकैतवान् ॥३४॥
नमस्कृत्य तां मैथिलीं रामकान्तां परार्द्धेन्दिरा[1] रूपगर्वान् हरन्तीम् ।
नमस्कृत्य चञ्चूपुटा[2]च्चित्रपत्त्रीममुञ्चत्तदग्रे पुरस्तात्सखीनाम्[4] ॥३५॥
तदादाय चित्रं नरेन्द्रस्य कन्याप्रपञ्चातिगं पूरुषं तत्र मत्वा ।
कुतः पत्त्रिकेयं मुहुस्तर्कयित्वा विचित्रायमाना समंतादपश्यत् ॥३६॥
गृहगोपानसीसंस्थं दृष्ट्वा पक्षिणमद्भुतम् ।
मणितुण्डं स्वर्णपक्षं हरिन्मणिपदप्रभम् ॥३७॥
तं गृहीतुमनाः सीता बहु प्रयततेस्म[5] सा ।
उत्प्लुत्योत्प्लुत्य स च तां निन्ये मध्ये रहो वनम् ॥३८॥
तत्रापि च तदग्रे स कूजमानः पुनः पुनः ।
न यावत्करयोरेति स्मित्वा तावद्वचोऽब्रवीत् ॥३९॥
मैथिलि त्वामहं वन्दे राघवेन्द्रप्रियासि भोः ।
योऽसौ चित्रगतः साक्षाल्लिखितो रङ्गविद्यया ॥४०॥
अचिरादेव ते तन्वि पाणिं रामो गृहीष्यति ।
तावज्जीवातवे तस्य चित्रमर्पय तावकम् ॥४१॥
इतिब्रुवाणं तं साधु प्रत्यपूजत् सपर्यया ।
भवान् प्राणेशदाता मे विधिना मेलितोऽसि[6] भोः ॥४२॥
त्वत्प्रसादात् प्रियो मेऽद्य मिलितः प्राप्त एव हि ।
चिरं जीव चिरं जीव चिरं जीव सखे सदा ॥४३॥

---

१. परार्द्धे मिश—अयो० । "परार्द्धमपरिमितकालं स्थिता इन्दिरा तद्रूपं" टि०—मथु० । २. °युगा° अयो०, रीवाँ । ३. °पक्षी—रीवाँ । ४. पुरतस्तत्सखीनां—रीवाँ । ५. प्रपद्यतेस्म—अयो०, रीवाँ । ६. लिखितोऽसि—अयो०,मथु०, बड़ो० ।

दापयित्वा सखीहस्ताच्चित्रं स्वीयं नृपात्मजा ।
मार्गे त्वं कुशली याहीत्युक्त्वा कृच्छ्राद्व्यसर्जयत् ॥४४॥
स राजधानीं संगम्य राज्ञो दशरथस्य ताम् ।
ययौ तत्र वनोद्देशे युवराजोऽस्ति यत्र वै ॥४५॥
सीताचित्रमदात्तस्मै तदवस्थां निवेद्य च ।
संतोषितः श्रीपतिना तद्विसृष्टः खगो ययौ ॥४६॥
तच्चित्रं तस्य जीवातुर्बभूव श्रीरमापतेः ।
भूयः सहजया सार्द्धं यावत्पाणिग्रहो भवेत् ॥४७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे सीताचित्रागमनं नाम[1] पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सुन्दरो नन्दनो लीलो ललाम[2]श्चैव ये पुरा ।
गता राजकुमारास्ते व्रजं प्रापुः सुखाकरम् ॥ १ ॥
निकुञ्जकुञ्जशोभाढ्यं कूजत्प्रमदकोकिलम् ।
सर्वर्तुसुखदं रम्यं छायाभूरुहमण्डितम् ॥ २ ॥
श्रीरामरसिकोत्तंसगुणगानपरायणैः ।
समन्ताद् गोदुहां हारैः संकीर्णच्छायपादपम् ॥ ३ ॥
गवां हुँभारवैर्भूयः समाकलितमङ्गलम् ।
दधिमन्थभवोद्घोषहेमभाण्डविराजितम् ॥ ४ ॥
इतस्ततः कूर्दमानैस्तर्णकैर्भूरिशो गवाम् ।
शोभमानं सलक्ष्मीकं श्रीरामस्य निजालयम् ॥ ५ ॥
तुलसीकुसुमामोदैः संपूरितदिगन्तरम् ।
सरयूतीरकल्लोलशीतलानिलसेवितम् ॥ ६ ॥

---

१. चित्रागमने—अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० । २. सुन्दरीनन्दनो लीला-ललामश्चैव—अयो०. रीवाँ ।

विलोक्य राजन्यकुमारकास्ते मनोहरं गोपराजस्य घोषम् ।
वैकुण्ठलोकोत्तमनिर्विशेषं[1] विदाञ्चक्रुर्भूरिसानन्दचित्ताः ॥ ७ ॥

राजकुमारा ऊचुः

अहो अस्य गवेन्द्रस्य भाग्यं वक्तुं न शक्यते ।
षट्पञ्चाशत्कोटिसंख्यं राजते यस्य गोधनम् ॥ ८ ॥
अहो अत्र व्रजस्थाने रामणीयकमद्भुतम् ।
कदम्बकुसुमामोदसंपूरितदिगन्तरम् ॥ ९ ॥

अहो अमी पादपाः सारवाम्भस्तरङ्गसङ्गादनिशं पवित्राः ।
गायन्ति नित्यं वयसां निनादैर्लोकाभिरामं ननु रामचन्द्रम् ॥१०॥
अमी गृणन्ति[2] प्रसभं द्विरेफाः श्रीरामदेवस्य सुधासवर्णाम् ।
कीर्तिं त्रिभिर्निगमैर्गीयमानां गङ्गाम्बुवत्पावनीं पापराशेः ॥११॥
नमः सरय्वै व्रजभूमिं पुनन्त्यै शुभोत्तरैरूर्मिभिरद्भुतायै ।
संगादमुष्या[3]सुरसिन्धु[धो ?]रासीद्विशेषतः कोटितीर्थास्पदत्वम्[4] ॥१२॥
यस्यास्तटे रासविलासलीलां चक्रे रमाया रमणः स रामः ।
समुच्छलद्दिव्यतरङ्गजुष्टं नमाम तां सरयूं ब्रह्मपुत्रीम् ॥१३॥
या सप्तकल्पान्तजलेऽतिभीमे सप्तार्णवैकाम्बुकरालसंभ्रमे ।
महानलज्वालवदुज्ज्वलाङ्गी विराजते तां सरयूं नमामः[5] ॥१४॥
नमामहे सिन्धुजलप्रभेदिनीं साकेतपर्यन्तविराजिविग्रहाम् ।
गवेन्द्रघोषप्रमदाकुचस्थलश्रीखण्डलेपोज्ज्वलवीचिमालिनीम् ॥१५॥
प्रभावतीं विन्दुमतीं कलावतीं कृपावतीं भक्तिमतीं सुधावतीम् ।
पयस्विनीं पुण्यगवीं मनस्विनीं तरस्विनीं श्रीसरयूं नमामताम् ॥१६॥
मातः कृपावति तरङ्गिणि रङ्गकारि झाङ्कारिणि[6] त्रिभुवनाघविदारणोग्रे ।
श्रीरामचन्द्रचरणाब्जरतिप्रकाशसंवर्द्धिके सरयु संप्रतिपालयास्मान् ॥१७॥

---

१. °कात्तनुनिर्वि°—अयो०, मथु०, बड़ो० । "अतिसुन्दरं" टि०—मथु०, बड़ो० । २. एवान्ति—अयो०, रीवाँ । ३. अमुष्मात्—अयो०, रीवाँ । ४. °स्पदत्वात्—मथु०, बड़ो० । ५. नमामि—मथु०, बड़ो० । ६. झङ्कारिणि—अयो० रीवाँ ।

व्रजिनहरणदक्षा रामभक्तिप्रकाशा
कमलभवनिषेव्या वैष्णवत्वप्रदात्री ।
तुलसिवनविशेषा मोदितीरान्तदेशा
प्रभवतु सरयूर्नः सर्वकल्याणकर्त्री ॥१८॥
हे मातः सरयु त्रिलोकजननि क्षेमैकवारांनिधे
धाराभूषितभूतलेऽमलसुधाकासारिणि श्रीपतेः ।
मज्जन्मानुषमुक्तिदे त्रिजगतीसौभाग्यसंपत्प्रदे
सन्नीरे सरयु प्रसीद भवती गम्भीरधीरद्रवे ॥१९॥
इत्यष्टकं यः प्रपठेत् सरय्वाः प्रभातकालेऽवभृथप्रसङ्गे ।
सपापराशीन् समतीत्य सर्वान् कैवल्यनिर्वाणपदं प्रयाति ॥२०॥
इत्यभिष्टूय सरयूं राजपुत्राः शुभाशयाः ।
निमज्य सलिले तस्याः नित्यं च समवर्तयन् ॥२१॥
अन्यतस्तत्तटे देशे अपश्यन् रत्नपर्वतम् ।
अनेकरत्नकिरणमञ्जरीमञ्जुलाकृतिम्[1] ॥२२॥
अनेकसरसीवर्यसंफुल्लनवपङ्कजम् ।
सौगन्धिकरजोवृन्दपटलाच्छादिताम्बरम् ॥२३॥
हंसकारण्डवाकीर्णसुनिर्झरनदीशतम् ।
कादम्बबकुलाक्रान्तरत्नवापीसहस्रकम् ॥२४॥
सरोजलान्तःसंभिन्नरत्नाङ्कुरमयूखकम् ।
गन्धर्वललनागीतसमुन्नादितदिक्तटम् ॥२५॥
तं वीक्ष्य रामक्रीडाद्रिं कोटिरत्नप्रभामयम् ।
मेनिरे ते गवेन्द्रस्य राजधानीं महाश्रियम् ॥२६॥
कथं न लक्ष्मीः कृपयेदिहैव यत्रास्ति रामस्य विहारभूमिः ।
विशालगोपीकमलासहस्रपादाब्जमञ्जीररवानुघुष्टम् ॥२७॥
अस्मिन् गवेन्द्रः सुखिताभिधानः करोति राज्यं खलु घोषराजः ।
अयं स देशो रघुपुङ्गवस्य प्राणप्रियः सौरभमाधुरीचयः ॥२८॥
इति ब्रुवाणास्ते क्षिप्रं प्रमोदवनमाययुः ।
फुल्लाशोकलताकुञ्जविस्फुरन्माधुरीमयम् ॥२९॥

---

१. °मंजलीमंजलीकृतम्—रीवाँ ।

इतस्ततः कदम्बौघप्रसूनसुरभीकृतम् ।
प्रमत्तबर्हिणारावमुखरीकृतदिक्तटम् ॥३०॥
स्नेहप्रमत्तगोपालबालिका[1]केलिवर्द्धनम् ।
अत्यर्थविरहावेशसाक्षात्कृतनिजप्रियैः ॥३१॥
श्रीरामस्य कलत्रैस्तैः सेवितं कान्तमन्दिरम् ।
तुलसीपवनामोदैः पावयन्तं दिशो दश ॥३२॥
भक्ति रससुरेन्द्रादिसेव्यमानरजोभरम् ।
अलौकिकामोदमाद्यन्मधुपारावपूरितम् ॥३३॥
श्रीराममुरलीनादविह्वलीकृतबर्हिणम् ।
संगीतकर्णपीयूषरोचमानजनश्रुतिः ॥३४॥
प्रमोदकानने गत्वा सुखितस्य गृहं प्रति ।
जग्मुर्नृपकुमारास्ते विशालध्वजलक्षितम् ॥३५॥
तत्र गत्वा रथेऽभ्यस्ते व्यवतेरुः समन्ततः ।
ददृशुः सुखितं गोपं श्रीरामस्मृतितत्परम् ॥३६॥
तेभ्यः प्रणतमौलिभ्यो गोपः कृत्वा शुभाशिषः ।
परिरेभे रामधिया रामचन्द्रस्य मित्रकान् ॥३६॥

सुखित उवाच

सुखं राघववर्यस्य रामस्य प्राणदस्य[2]नः ।
कच्चित् कुशलिनो बालाश्चत्वारः सौख्यदा मम ॥३८॥
तेष्वेव लोकसारेषु बालकेषु मनो मम ।
शून्य एव दिशाः सर्वाः पश्यतो व्रजमण्डले ॥३९॥
लोकोत्तराः सुजनिमान इमे कुमाराः
श्रीराचन्द्रतनयप्रमुखाः सरूपाः ।
अप्यात्मनो नयनवृत्तिहरा जयन्तु
नित्यं यथा प्रमुदमेव परां लभामः ॥४०॥

माङ्गल्यकोवाच

अहो राजकुमाराणां युष्माकं मुखचन्द्रता[3] ।
पीत्वा कुशलपीयूषं रामस्यानन्दिता वयम् ॥४१॥

---

१. °लतिका°—रीवाँ । २. प्रणयस्य—रीवाँ । ३. रथचन्द्रतः—रीवाँ ।

अहो भाग्यमहो भाग्यं या पश्यति मुखाम्बुजम् ।
रामस्य लोकरामस्य कामदस्य जगत्त्रये ॥४२॥
साकेतपत्तननृणां खलु भाग्यवल्ली
साफल्यमेति रघुनाथमुखेन्दुं दृष्ट्वा ।
वैकुण्ठमेव सुखमेतदथो समग्रम्
अत्रैव पूर्णपुरुषोऽस्ति दयार्द्रवृत्या[1] ॥४३॥
अधुनापि तथैवाहो तान्येव दिवसानि नः ।
वियोगेऽपि परावेशाद्राममेव प्रपश्यताम् ॥४४॥
कदा खलु व्रजे राम आगमिष्यति नो गृहान् ।
इतिवार्त्तोदयेनैव विरहो व्रजवासिनाम् ॥४५॥

राजपुत्रा ऊचुः

कुशली रामभद्रोऽस्ति कूजन् कुशलवारिधिः ।
प्रीणयन् शयने पित्रोर्जनतानन्दवर्धनः ॥४६॥
मातर्जननि माङ्गल्ये श्रीरामपरिपोषिके ।
पारे भाग्यसमुद्रस्य प्राप्तासि किमु वर्ण्यताम् ॥४७॥
प्राप्तो राजश्रियं रामो न विस्मरति नित्यशः ।
मातस्तव करानीतं नवनीतस्य पारणम् ॥४८॥
व्रजदुग्धदधिक्षीरनवनीतादिभोजनम् ।
नित्यप्रियं राघवस्य पुष्णाति भवतां भगम् ॥४९॥
अहो घोषस्य वो लक्ष्मीः पारे वाङ्मनसः स्थिता ।
वशीचकार या रामं निःश्रेयसरसेश्वरम् ॥५०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे व्रजे दूतप्रेषणो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

---

१. पुरुषो दययार्द्रवृत्त्या—मथु०, बड़ो० ।

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

श्रीरामसुहृदस्तान् वै कुमारान् दीप्तवर्चसः ।
सुखितः प्रीणयामास दधिदुग्धौदनादिभिः ॥ १ ॥
माङ्गल्यकाकरानीतैः पक्वैरन्नैः सुपेशलैः ।
आत्मानं रोचयामासुः सखायो राघवस्य ते ॥ २ ॥
वार्तालापैः शुभोदन्तैः प्रश्नैः श्रीरामसंगतैः ।
सुखितं नन्दयामासुर्घोषराजं महाशयम् ॥ ३ ॥
भोजयित्वा व्रजे हृद्यै रत्नैर्दधिघृतादिभिः ।
सारवं सलिलं पीत्वा स्थितान् ताम्बूलिकामदात् ॥ ४ ॥
सुखितः सर्वगोपानां सभायां सुसभाजितान् ।
सखीन् रामस्य तान् हृद्यानर्चयामास माल्यकैः ॥ ५ ॥
सुगन्धैस्तोषयामास रञ्जयामास सुस्वरैः ।
भूषयामास वै सूक्ष्मवासोऽलङ्कारमौक्तिकैः ॥ ६ ॥
दिव्ये महार्हशयने सुखेन सुषुपुश्च ते ।
वीजयामास माङ्गल्या रामबुद्ध्यैव तत्सखीन् ॥ ७ ॥
ततश्च तेऽन्येद्युरशोककुञ्जं विलोकितुं कामयानाः[1] कुमाराः ।
ययुः शनैः सारवतोयविन्दुप्रवर्षिमन्दानिलवीजिताङ्गाः ॥ ८ ॥
ते रामभद्रस्य पदानि तत्र तत्र स्थले प्रियमाणाः स्वचित्ते ।
आनन्दशोभासहितान्यपश्यन् लीलाविशेषप्रकराङ्कितानि ॥ ९ ॥
रघूत्तमो येषु येष्वादरेण व्रजाङ्गनानां स्मरचित्तचौरः ।
चकार चमत्कार करान् विहारानपारसौहर्षसुधारसार्द्रम् ॥१०॥
येषु क्षणं तस्थुषां मानवानां गङ्गासहस्राधिकतीर्थपुण्यम् ।
स्नानाद्दानात्पिण्डनिर्वापतः स्यान्निर्णीतं यद्विबुधानां मुखेभ्यः ॥११॥

---

१. रामयानाः—अयो० ।

सरय्वाः पुलिनद्वन्द्वे प्रमोदवनमुत्तमम् ।
तत्र श्यामवनं नाम रामस्य सुखवर्धनम् ॥१२॥
अधित्यकायां रत्नाद्रेः सरय्वाः पुलिने तथा ।
अशोकवनमाधुर्यं किंचिदुक्तं न शक्यते ॥१३॥
तत्र रामः स्वयं साक्षादाभीरीजनवल्लभः ।
क्रीडन्नास्ते परब्रह्म लीलामानुषतां गतः ॥१४॥
तत्राशोकलताकुञ्जे ययुस्ते राममित्रकाः ।
व्रजवासिजनोद्दिष्टमार्गेणादृतपूर्वकाः ॥१५॥
तत्र कुञ्जालये दिव्ये पारिजाततरोस्तटे ।
अपश्यन् सहजारामचरणाम्भोजयुग्मकम् ॥१६॥
भक्त्या प्रणम्य सहजारमणाङ्घ्रिपद्मं[1]
पूताशया[2]स्तुलसिकादलसौरभेण ।
ते पारिजाततरुमूलमवाप्य दृष्ट्वा
प्रापञ्चिकीं विषयगामतितेरुराशाम् ॥१७॥
तत्रैव ता राघवेन्दोः परिचर्यः शुभाननाः ।
आभीरकन्यका एत्य परिवव्रुः कुमारकान् ॥१८॥
ते रामस्य नर्मसखास्तासां रामे मनोरतिम् ।
दृष्ट्वा चात्मानमत्यर्थं निनिन्दुर्भावकोविदाः ॥१९॥
सौकुमार्यं च लावण्यं रूपं लावण्यमेव च ।
तासां दृष्ट्वा कुमारास्ते मेनिरे रहितं जगत् ॥२०॥
श्रुतवन्तो यथा पूर्वं गुणान् गुणनिवेदितान् ।
सहस्रगुणितास्तस्मादपश्यन् रामपार्श्वगाः ॥२१॥
इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे व्रजदूत-
प्रेषणो नाम[3] सप्तषष्टितमोध्यायः ॥६७॥

---

१. पदद्वयं—अयो० । २. पूतास्तुया—अयो०, रीवाँ । ३. °प्रेषणे—अयो०, मथु०, रीवाँ ।

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सुन्दरं नाम राजन्यकुमारं रामसुन्दरम् ।
वीक्ष्य तास्तुष्टुवुः सर्वा गोप्यो विरहविह्वलाः ॥ १ ॥
तस्यालापपटोः साक्षाद्रामभक्तस्य वर्ष्मणा ।
स्निग्धश्यामावदातेन गोप्यो रामं सुसस्मरुः ॥ २ ॥
तं संदेशहरं ज्ञात्वा रामरामाः शुचिस्मिताः[1] ।
रामं विषयमालक्ष्य प्रोचुर्वचनमादरात् ॥ ३ ॥

गोप्य ऊचुः

कुवलयवनबन्धो निर्गतं संमतं ते
कृतवधमबलानां चोचितं तारकेश ।
प्रतिदिनविकलङ्क प्रीतये संप्रविश्या[2]-
च्चरमदिशि ततायां[3] दुष्टतां नाभ्युपैषि ॥ ४ ॥
अनुलवमसहत्वं मार्दवं नः शरीरे
तदुभयमपि[4] युष्मन्मानसे राम नास्ति ।
प्रणतिरपि विहन्त्री प्रीतिसंप्राणनस्य
प्रियमुखपरिदर्शोऽप्यस्ति नो तद्विशेषः ॥ ५ ॥
निगम इति वचस्ते श्रव्यमाचम्य कान्त
श्रवणकसुपुटाभ्यां तथ्यपथ्यं सुधाक्तम् ।
तदपि यदि विषं स्यात् साधुवादस्य देशे
किमु पतितमरिष्टं नैव तिष्ठेत्त्वया तत्[5] ॥ ६ ॥

---

१. सुविस्मिताः—रीवाँ । २. विस्यसंसत्—रीवाँ । "विश्वसेत्, अस्माकं विश्वासो नास्ति तर्हि प्राचीदिक् कथं विश्वासं करिष्यति" टि०—मथु० । ३. ततायां—बड़ो० । ४. "उभयं मार्दवमसहत्वं च तव न वयं तु मृदुस्वभावा तव-प्रयाणमसहमाना" टि०—मथु० । ५. "यः स्नेहेन जीवति तस्य तु नमस्कारप्रिय-मुखावलोकनेऽपि न प्रयोजनसाधकेऽतो नास्ति कश्चन विशेषः इत्येवाह—वेदप्रमाणकं तव वचनं अतः श्राव्यं तदपि विषमिव भवति तदा तु साधुवादेऽरिष्टं पतितं स्यात् त्वयि तन्न संभवति । तव स्मृत्यादेस्तन्नाशकत्वादिति" टि०—मथु० ।

स्मृतिपरिचरणाभ्यां ध्यानसंकीर्तनाभ्यां
श्रवणनिगमनाभ्यां भक्तिसंसेवनाभ्याम् ।
परिणमसि बहूनां क्षिप्रमेव प्रसह्य
क्षिपसि च दुरदृष्टं कालरूपं च विघ्नम् ॥ ७ ॥
वयमिह कुमुदिन्यस्त्वं कलानां निधिश्चेद्
वमसि कथमकस्मात् कालहालाहलौघम् ।
त्रिभुवनजनताया मंक्षु[1] संजीविनी सा
क्व नु खलु निहताङ्ग स्वात्मनः क्वापि वृत्तिः ॥ ८ ॥
अथ यदि दुरदृष्टं जायते नोऽन्तरायो
वरद किमु न नाश्यं तत्त्वयाधोक्षजेन ।
अघतत[2]पशुपक्षिप्राणिनस्तांस्तिरश्चो
विरचयसि विमुक्तिप्राज्यभाजः प्रभुस्त्वम् ॥ ९ ॥
रघुकुलजलधीशः पूर्ण एवासि नित्यं
प्रकटयसि किमस्मास्वङ्ग वैकल्यमेवम् ।
स्थिरचरजनतायाः प्राणिनः साधु भूत्वा-
प्यवकिरसि तमिस्रं मोहमूर्छादिमिश्रम् ॥१०॥
कुहकमिदमपूर्वं राघवेन्द्र त्वयीत्थं
स्थगयति सकलं ते सान्तरं साधुवादम् ।
सरसमधुपरागोत्सौरभं केतकाङ्गे
परित इव विलग्नः कण्टकौघः कठोरः ॥११॥
त्वयि किमु वचनीयं[3] लोचनानन्दहेतौ
दिशि ननु चरमायामस्ति नोऽमर्ष एव ।
अमुमनुपमकीर्तिं स्वान्तराले दधाति,
द्रुतमखिलजनानां भूय आच्छिद्य दृग्भ्यः ॥१२॥
तव चरणसरोजैकाश्रयान् नित्यमस्मान्
लपयसि विरहाग्निज्वालनैः किं हिमांशोः ।

---

१. °तायामक्षिसं°—रीवाँ, °मक्षसं°—अयो० । "मंक्षु ईषत्" टि०—मथु० ।
२. अपतन°—अयो०, रीवाँ, अवतत—बडो० । ३. "वचनीयम् -उपालम्भम्" टि०—मथु० ।

प्रकृतिरपि तवासौ कच्चिदन्तर्द्धिमागात्
कलयसि किमु कच्चित् कौतुकीवृत्तिमुग्राम् ॥१३॥
तुहिनकर तवोग्रा विश्लिषिः किंनु[1] वाच्या
वद दहनसदृक्षा[2] स्माकमक्षद्रुमाणाम् ।
किरति यदि भवानेवामृतं रूपसारं
परिगिलति तदा सा प्लोषिका शोषिका वा[3] ॥१४॥
यदि तव करुणार्द्रा चित्तवृत्तिः सखेऽस्ति
द्रुतमवयवदाहं तत् सुनिर्वापय त्वम् ।
अथ यदि सुतरा चेन्निर्दयोऽपि प्रकाशं
किमु भवसि प्रचण्डोऽस्मासु यद्वत्कृतान्तः ॥१५॥
सुत इह सुखितस्य त्वं च माङ्गल्यकाया
दशरथमुपगं[4]चेद्यासि कौशल्यकां च ।
अनुभवसि पृथिव्यां भूरिसाम्राज्यसौख्यं
पशुरपि न सहेत् कः स्वप्रियस्य प्रभावम् ॥१६॥
त्रिभुवनमनुभावैः प्रीणयन् भासि शश्वद्
विहर न कथमस्मानेव दुःखाकरोषि ।
यदसि शिशिरशोचिस्तत्कुले वासि[5]जातः
प्रमुदवनविधोस्ते किं न[6] नित्यः स्वभावः ॥१७॥
इह मुदयति नोपालम्भनं त्वय्यनन्ते
प्रभवति जगदीशे किंतु विज्ञापनं नः ।
तदखिलमवधार्यागम्यतां रामचन्द्र
वनभुवमुरुदुःखद्रावितां सानुकम्प ॥१८॥
इत्युदीर्य वचो गोप्यस्तूष्णीमासन् विलोचनैः ।
उदस्रुभिर्ज्ञापयन्त्यो वियोगस्योद्भवं हृदि ॥१९॥
तासां विरहसंतापशान्त्यर्थं राजपुत्रकाः ।
सखायो रामचन्द्रस्य प्रोचुस्तत्त्वार्थवित्तराः ॥२०॥

---

१. किंतु—मथु०, बड़ो० । २. °सुवृक्षा—अयो० । ३. प्लोषिका सारसारम्—रीवाँ । ४. नृपराजं—अयो०, रीवाँ । ५. खरोस्रोऽसि—अयो०, मथु०, बडो० । ६. विधो किं ते न—रीवाँ ।

भवतीमहिमानं वै अवाङ्मनसगोचरम् ।
भवन्त एव जानन्ति यूयं कान्ताप्रियश्च सः ॥२१॥
साक्षात्पद्मालया यूयं रामो नारायणः स्वयम् ।
प्रभुणा कोऽपि संदेश उदितो वो व्रजाङ्गनाः ॥२२॥
तच्छृण्वन्तु भवन्त्यो वै पीयूषशिशिराक्षरम् ।
मां वेद धर्मरक्षार्थमवतीर्णं स्वलोकतः ॥२३॥
प्रमोदाख्याद्विजानीत तत्करिष्यामि वै द्रुतम् ।
हनिष्याम्यसुरस्तोमं स्थित्वा राज्यपदस्थितौ[1] ॥२४॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रान् वैष्णवान् स्वस्वभावतः ।
समुद्धरिष्ये सहसा कार्यमेतन्ममैव हि ॥२५॥
ततोऽहमागमिष्यामि व्रजभूमिं मनोहराम् ।
भवतीनां हरिष्यामि वियोगजनितां रुजम् ॥२६॥
तावन्मदंशसंलीना यूयं स्थास्यथ गोपिकाः ।
इत्युवाच व्रजेशो वः कान्ताविश्लेषविह्वलः[2] ॥२७॥
तद्यापयत तद्ध्यानात् कानिचिद्दिवसान्यलम् ।
ध्यानेनापि प्रभुर्ह्येष साक्षाद्भवति सेविनाम् ॥
परमात्मा व्यापकात्मा प्रत्यग्ज्योतिः सनातनः ॥२८॥
इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे चन्द्रिकास्तवो नाम[3] अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इति सान्त्वनवाचाभिः सुन्दर्यः कृतसान्त्वनाः ।
न ययुर्विरहस्यान्तं तरण्य इव वारिधेः ॥ १ ॥
प्रवदन्त्यो दृगस्रूणि कथं कथमपि स्त्रियः ।
संस्तभ्य धैर्यलज्जाभ्यां प्रोचुः सप्रणयं वचः ॥ २ ॥

---

१. °क्षितौ—अयो०, रीवाँ। २. कान्ता विश्लेषविह्वलाः—मथु०, बडो०। °चिह्नितः—अयो०। ३. चन्द्रिकास्तवे—अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो०।

गोप्य ऊचुः

सिता संभक्षिता येन लोलुपेन सुजन्मना ।
तं सितानां कथामात्रात् कस्तर्पयितुमर्हति ॥ ३ ॥
अमृतं येन निःपीतं भुक्त्वा देवत्वमात्मनः ।
तस्यामृतकथामात्रात् कः खल्वर्हति तर्पणम् ॥ ४ ॥
तादृशो दयितोऽस्माभिर्भुक्तः कन्दर्पकेलिषु ।
तस्य विश्लेषयोगोऽद्य किं भविष्यति जीवनम् ॥ ५ ॥
ब्रह्मानन्दरसोऽस्माकं हरते नैव मानसम् ।
प्रेमानन्दरसाम्भोधौ मग्नानां प्रियसन्निधौ ॥ ६ ॥
पूर्णो रामः स्वयं ब्रह्म परमात्मा सनातनः ।
जानीमहे ध्रुवं किंतु निर्वृतिं नैति नो मनः ॥ ७ ॥
प्रमोदवनकुञ्जान्तर्माधुरीमण्डपस्थितः ।
आनन्दयति चेद्रामो मनो निर्वृतिमेष्यति ॥ ८ ॥
एवं नो मोहयित्वासौ यातः साकेतपत्तने ।
कथं करिष्यते राज्यमन्यायार्थसमाकुलः ॥ ९ ॥
अयमेव मतोऽन्यायस्त्यक्त्वा यदबला हि नः ।
सुखं शेते पितुर्गेहे नैतद् युक्तं महात्मनः ॥१०॥
अशेषनीतिविषयः साम्राज्यपदभाजने ।
रामः सर्वगुणारामः कथमेवं करिष्यति ॥११॥
इत्युपालभ्य बहुशो रामं गोपालबालिकाः ।
तेषामातिथ्यमाचेरुर्यथासंपन्नभोजनैः ॥१२॥
गोपदारैः कृतातिथ्याः श्रीरामप्रेमभाजनैः ।
राजपुत्रास्तत्क्षणेन तादृग्भावमुपाययुः ॥१३॥
तासां चरणधूलीभिः शिरांसि लिलियुश्च ते ।
उदस्रनयना भूत्वा ररञ्जुस्ते कुमारकाः ॥१४॥
अहो धन्या अमी देव्यः संन्यासव्रतधारिकाः ।
सर्वं न्यस्य चिदानन्दे रामचन्द्रे कृताशयाः ॥१५॥

अहो आसां शुभं जन्म कालपाशविनिर्गतम् ।
अजरामरसाम्राज्ये स्नेहर्निर्जितराघवम् ॥१६॥
राघवः श्रीहरिः साक्षाद्रामदेवः सनातनः ।
तस्य प्रियतमा एतास्तेन प्रतिनिधीकृताः ॥१७॥
मुक्तिसाम्राज्यश्रीदाता सत्पथां प्रभुरात्मना ।
तथैवैताः स्वयं गोप्यो मुक्तिसाम्राज्यदायिकाः ॥१८॥
भक्तानां भक्तिवर्धिन्यः स्वर्धुनीसलिलैः समैः ।
यशोभिर्भूषिता गोप्यः कथं सामान्यतामियुः ॥१९॥
इत्येवं ता अभिष्टूय कृत्वा भूयोऽभिवादनम् ।
चरणाम्बुरजोर्मूर्ध्नि धृत्वा तेजोभरोर्जिताः ॥२०॥
रामस्नेहप्रमत्तान्तःकरणा[1] मुक्तबन्धनाः ।
गोपीदासा वैष्णवाग्रा[2] ज्ञाततत्त्वाः सुपेशलाः ॥२१॥
गोपीगोरूपदेशेभ्यो वर्धिष्णुः प्रेमसंपदः ।
आययू रामसविधे कृतार्थास्ते कुमारकाः ॥२२॥
तान् दृष्ट्वा रघुशार्दूलपादानतशिरोधरान् ।
स्वागतोक्त्याग्रहीद्रामः करुणापूर्णलोचनः ॥२३॥
निनायैकान्तविषये प्रियाणां हरिणीदृशाम् ।
पर्यपृच्छत्ततोऽवस्थां सदा तद्भावमानसः ॥२४॥

श्रीभगवानुवाच

कच्चित् सुखं व्रजभुवि कच्चिच्छ्रीसुखितः सुखी ।
कच्चिन्माता च माङ्गल्या धन्यास्ते सुखसंपदा ॥२५॥
कच्चिन्नन्दनराजिन्योः सहजायाश्च संततम् ।
कच्चिन्मे धेनवो नव्या साक्षात्कामदुघाश्च ताः ॥२६॥
तृणोदकादिसौख्येन निर्वृताः सुखमासते ।
कच्चित् सा सरयू शान्ता वनं कच्चिन्निरामयम् ॥२७॥
कच्चित् कुशलिनो गोप्यो गावश्च सुखमासते ।
आभीरकन्यका मह्यं त्यक्तलौकिकवैदिकाः ॥२८॥

---

१. °करुणा—अयो०, रीवाँ । २. वैष्णवाः प्राक्—अयो०, रीवाँ ।

कुमारा[1] ऊचुः

सुखमास्ते व्रजभुवो यद्राजासुखितः सुखी ।
माङ्गल्या सुखिनी धन्या कोटिशो गोधनेश्वरी ॥२९॥
यस्या त्वमेव तनयस्त्रैलोक्यप्रीतिवर्द्धनः ।
सुखं नन्दनराजिन्योः सहजायाश्च नित्यशः ॥३०॥
यासां त्वमेव सर्वस्वं पूर्णब्रह्म स्वरूपतः ।
सुखिनो लोकाः कामदुघाः शान्तोदा सरयू शुभा ॥३१॥
निरामयं वनं सर्वं गोपाः कुशलिनस्तव ।
आभीरकन्यकावृत्तं राम मा पृच्छ केवलम् ॥३२॥
अथ पृच्छसि चेद् वृत्तं तत्प्रतीकारमाचर ।
अत्यर्थं दर्शनीयं चेद् वृणुयात् को नु मानुषः ॥३३॥
तां तामवस्थाविषये सर्वं जानासि राघव ।
पटान्तरेऽपि विश्लेषं सोढुं याभिर्न शक्यते ॥३४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे व्रजाद्राजपुत्रागमो नाम[2] एकोनसप्ततितमोध्यायः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

राजकुमारका ऊचुः

धन्यो व्रजस्य महिमा सुखितेन्द्रघोष-
लक्ष्मीविलासभवनस्य विशेषदृष्टः ।
यत्र स्वयं विहरसि त्वमनन्तवीर्यो:
गोपाङ्गना[3]भिरभितो रसलोलुपाभिः ॥ १ ॥
श्रीराम तावकमतीव वलक्षमीषत्-
सानन्दहासवदनाः[4] सुयशो गृणन्ति ।

---

१. कुमारका—मथु०, बड़ो० । २. °पुत्रागमे—अयो०, रीवाँ, मथु०, बडो० । ३. गोपालनाभि—मथु०, बडो० । ४. वलस्यलक्ष्यः यत्सानुरागवदन्त—अयो०, रीवाँ । "वलक्षो धवलोऽर्जुनः" टि०—मथु० ।

गोप्यः स्फुरत्पुलकराजिकपोलपालिं
संप्रेक्ष्य पाण्डिममनोजविकारभाजः ॥ २ ॥
किं वर्णयाम तव राम रसप्रसक्ति-
माभीरराजतनयाविषये विशिष्टाम् ।
यस्यास्तु कोटिकमलासुविलासभावाः
अंशांशिभावमुपयान्ति सुखप्रकर्षात् ॥ ३ ॥
धन्यैव ते रसिकता पुरुषोत्तमस्य
पूर्णस्य राम परमात्मन ईशितुश्च ।
इत्युद्दिधीर्षसि जडानपि मोहशीलान्
गोगोपगोकुलवधूपशुपक्षिकीटान् ॥ ४ ॥
इच्छा स्वतन्त्रविषया भवतोऽच्युतस्य
जीवोद्धृतौ किमपि राम सपक्षपाता ।
यद्ब्राह्मणेषु निगमत्रयवित्सु दूरं
लोलायसे पशुसरीसृप[1]बालकेलिः ॥ ५ ॥
हैयङ्गवीनमपि ते प्रियमस्ति राम
किंत्वस्ति तत्र[2] विषये सुमहानुपाधिः ।
यद्गोकुलव्रजवधूवदनारविन्द-
बिम्बाधरामृतरसैः स्मरतापहानिः ॥ ६ ॥
शृङ्गारसीकररसावयवोऽसि रामो
जानीमहे व्रजवधूचरणप्रसादात् ।
ब्रह्मैव पूर्णमचलं परमंचिदेक-
मानन्दमात्रमिदमेव चकास्ति तावत् ॥ ७ ॥
नान्यत्परं किमपि कोऽपि चकास्तिभाव-
स्तत्त्वं च सद्विषयसेकमदोऽस्ति नान्यत् ।
यद्राम सुन्दर भवच्चरणारविन्द-
द्वन्द्वं सदा परमहंसमनःप्रकाशम् ॥ ८ ॥
रामेतिराम भवतो दुरितौघहारि
किंवर्ण्यते सुलभहेतुकृते जनानाम् ।

१. पशुपसंसरि°—मथु०, बडो० । २. किं त्वत्रयत्न°—रीवाँ ।

धर्मार्थकामित[1]चतुर्थफलप्रदान-
लीलासमर्थितनिजांशसुर[2]व्रजस्य ॥ ९ ॥
एतत्त्वदीयमहिमाकलनं जनानां
स्वस्यैवमुद्धृतय एव रमेश नो चेत् ।
न त्वां विदन्ति विबुधा अपि वासवाद्या
ब्रह्मातपत्र[3]धरणादिभिरुद्धृताज्ञाः ॥१०॥
ज्ञातोऽसि राम परमः पुरुषोत्तमोऽसि
इत्यागमैरपि भवान् परमार्थवेद्यः ।
नैवासि चिन्मयघनाकृतिरप्रमेयः
पादारविन्दरजसस्तु विना प्रसादात् ॥११॥
जानीमहे तदधुना विषकल्पमेवं[4]
संसारमेनमघमात्रफलप्रसूतिम् ।
युष्मत्कृपैकविषयव्रजभक्तगोपी—
पादारविन्दरजसैव विधूतपापाः ॥१२॥
याचामहे तदधुना प्रभुगामनुज्ञां
स्वच्छेषु पुण्यसरयूविषयाश्रमेषु ।
नित्यं च रांम भवतश्च जपाम नाम
स्वात्मावबोधगतिस्वात्मविमुक्तिदायि ॥१३॥
धिक् संसृतिं विषयतुच्छसुखप्रधानां
त्वत्पादपद्मविमुखत्वगतिप्रदात्रीम् ।
तद् याम तामथ विहाय विषद्रुमाभां
रामेतिनामभजनैककुठारहस्ताः ॥१४॥
इत्युक्त्वा राजपुत्रास्ते जगृहुस्तत्पदद्वयम् ।
लसत्तुलसिकामोदं झङ्कारिमुनिषट्पदम् ॥१५॥

राम उवाच

किमर्थं संसृतिं घोरां तितिक्षथ कुमारकाः ।
यावत्तां कुण्ठितप्रायां कृत्वा स्थापयत प्रियाः ॥१६॥

---

१. °कामिक—अयो०. रीवाँ । २. °सुरा°—मथु०, बड़ो० । ३. ब्रह्मातपव्रत—अयो०, रीवाँ । ४. जानेऽधुना विषयकल्पमिमं दुरूहं—अयो०, रीवाँ ।

राजपुत्रा ऊचुः

कथं वा कुण्ठितप्रायः संसार उपजायते ।
भुजङ्ग इव मन्त्रेण तन्नो वद रघूद्वह ॥१७॥

श्रीराम उवाच

प्रवक्ष्याम्यत्र वो दिव्यमाख्यानं भरतस्य यत्[1] ।
स वै अनुपगम्यैव कर्मन्दीभावमुद्यतः[2] ॥१८॥
तमेवमृषिशार्दूलः शाण्डिल्यो नाम वै मुनिः ।
तत्त्वार्थं बोधयामास प्रजानां हितकाम्यया ॥१९॥

शाण्डिल्य उवाच

किमर्थं भरत श्रेष्ठां राजलक्ष्मीं जिहाससि ।
पितृपैतामहीं तात तव तत्त्वाविरोधिनीम् ॥२०॥

भरत उवाच

मदावहा राज्यलक्ष्मीः कथं तत्त्वाविरोधिनी ।
[3]एतन्ममाचक्ष्व मुने किंवा वञ्चयसि ध्रुवम् ॥२१॥

शाण्डिल्य उवाच

हृदयं पुण्डरीकं यत्तस्यान्तर्वेश्म तत्परम्[3] ।
ब्रह्मणस्तु पदं दिव्यं शाश्वतं ध्रुवमच्युतम् ॥२२॥
तद्भावयस्व राजेन्द्र धिया बोधविशुद्धया ।
तस्मिन् साक्षात्कृते स्थाने मार्गणीयं ततः परम् ॥२३॥
पूर्णं चिदानन्दघनं विशुद्धं समंततो[4] रामवनं पुराणम् ।
साकेतकुन्दवनपारिजातप्रमोदसीतावननामधेयम्[5] ॥२४॥
तत्र स्थितं वै पुरुषं पुराणं[6] श्रीरामरामेति[7] शुभाभिधानम्[8] ।
अहर्निशं भावयतो जनस्य संसार एवामृतकल्प एषः ॥२५॥

---

१. वः—मथु०, बड़ो० २. सवै अनुवमस्यैव कर्मदोषं···दधतः—रीवाँ। ३—३. अयमंशो नास्ति—अयो०, रीवाँ०। ४. च समंततः। इत्युक्त्वानुष्टुब्छन्दसेयमर्द्धाली—बड़ो०। ५. "नामपञ्चकं रामवनं" टि०—मथु०। ६. स्थितं पुरुषं परमं—मथु०, बड़ो०। ७. रामादि°—अयो०, मथु०, बड़ो०। ८. °त्रिधानः—बड़ो०।

महत्परब्रह्म[1] पयोदनीलं श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ।
इत्यात्मनः शरणापत्तिभावं विभावयन्[2] राज्यलक्ष्मीं च भुङ्क्ष्व ॥२६॥

श्रीराजबालं[3] समलोकपालं[4] हैयङ्गवीनाद्यकरं रघूद्वहम् ।
अहर्निशं भरत विभावयान्तरे न संसृतिः किमपि करिष्यते तव ॥२७॥

भावनेऽप्यसमर्थश्चेन्नामजापपरो भव ।
रामेतिद्व्यक्षरं नाम त्रिविधाघविदारकम् ॥२८॥

उद्दीप्तवह्निसंकाशं पापपुञ्जविदाहने ।
अहर्निशं रटन् मर्त्यः संसाराब्धिं[5] तरिष्यति ॥२९॥

द्वादश्यां पौर्णमास्यां च अन्नकूटोत्सवे तथा ।
रामप्रसादं भुञ्जानो भवाब्धिं संतरिष्यति ॥३०॥

किं[6] करिष्यति यमस्तस्य सर्वभूतोग्रदण्डनः ।
संजीर्यति च यत् कुक्षौ प्रसादो रामसिक्थकः ॥३१॥

रामसिक्थान्नसिक्थेन त्रायते पुरुषत्रयम् ।
तद्देवा अपि वाञ्छन्ति रामभुक्तोदनादिकम् ॥३२॥

शुना काकेन वाप्यन्नं भक्षितं रामभक्षितम् ।
चतुर्भुजत्वं कुरुते सद्य एव न संशयः ॥३३॥

अन्नादि रामाय निवेद्य भूयो भजेदनन्यो भगवत्प्रसादम् ।
पुण्यस्य संख्यास्य न वर्तते यद् गङ्गानुसंस्पर्शनतोऽपि धन्यम् ॥३४॥

तुलसीभूषितगलो राममुद्राधरः कुथः ।
रामप्रसादं भुञ्जानः कथं शोचति मानुषः ॥३५॥

न तस्य कार्यं त्रिषु लोकेषु किंचिद् यो रामचन्द्रस्य बिभर्त्ति मुद्राम् ।
मृत्योः परं मूर्ध्नि पदं निधाय विमोक्षसाम्राज्यमुपैति मर्त्यः ॥३६॥

एवं ज्ञात्वा पूर्वतरैर्मुनीन्द्रैःश्रितं गृहं धर्ममोक्षाविरोधि ।
त्याज्यं न कर्हिचिद्दूरतोग्रबुद्धे निषेवणीयं पद्मपत्राम्बुरीत्या ॥३७॥

---

१. महः परब्रह्म—मथु०, बडो० । २. विभावयस्व—अयो०, मथु०, बडो० । ३. °रामबालं—अयो० । ४. शरणापन्नपालं—मथु०, बडो० । ···पालं—अयो० । ५. संसार च—अयो०, रीवाँ । ६. किंवा—रीवाँ ।

इति शाण्डिल्यवाक्येन नृपः संप्राप्तचेतनः ।
बभूव सुप्रसन्नात्मा स्थिते राज्ये प्रमादिनि ॥३८॥
एवं वः कथयाम्यद्धा ज्ञानं राजकुमारकाः ।
धर्ममोक्षाविरोधित्वाद् गृहं न त्यक्तुमर्हथ ॥३९॥
अथ चेद् गृहमुन्मुच्य वनं यास्यथ मित्रकाः ।
मनस्तु चञ्चलं भूयो गृह एव निवेशयेत् ॥४०॥
मनश्चेन्निर्जितं तर्हि गृहं किं नु करिष्यति ।
गृह एव जितं तैस्तु यैः सत्येन मनो जितम् ॥४१॥
फुल्लेन्दीवरलोचनं सुललितं श्यामावदाताङ्गकम्
रामं मां हृदयारविन्दसदने संविष्टमाध्यायथ ।
तस्मिन्नेव निवेद्य सर्वविषयान् स्वात्मानमप्यञ्जसा
संसाराब्धिमिमं तरिष्यथ तदा हेराजपुत्रा भृशम् ॥४२॥
इति रामनिदेशेन प्राप्तज्ञानाः कुमारकाः ।
तस्थुः श्रीरामसविधे सुहृदो नर्मवित्तमाः ॥४३॥
इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे राजकुमारकोपदेशो नाम[1] सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

●

एकसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

विहङ्गमसमानीतप्रियाचित्रावलोकनैः ।
कृच्छ्रं राघवशार्दूलो दिवसानत्यवाहयत् ॥ १ ॥
रक्ताशोकलताकुञ्जदेवता स्वयमीश्वरी ।
जानकी जनकाख्यस्य राज्ञो गेहेऽप्यजीजनत् ॥ २ ॥

---

१. °कुमारकोपदेशे—अयो०, रीवाँ, मथु०, बडो० ।

सा मे कदा दृष्टिपथं प्रयास्यति प्रिया रमा कोटिमनोजविग्रहा ।
व्रजस्त्रियोऽपि प्रियमङ्गमस्या आविश्य भोक्ष्यन्ति मया रसाम्बुधिम् ॥ ३ ॥

इमाः समाविश्य यथा रमा वरान् विशेषभोगान् बुभुजे पुरा बहून् ।
अमुं समाविश्य तथा व्रजस्त्रियो भोक्ष्यन्ति भोगान् राज्यलक्ष्मीसमेतान् ॥४॥

इत्येवं वाञ्छति श्रीशे सीतापरिणयोत्सवम् ।
विधिरप्यनुकूलोऽभूद्विधेयः परमात्मनः ॥ ५ ॥

अथैकदा गाधिपुत्रो विश्वामित्र इति श्रुतः ।
ऋषिः साकेतनगरमगमत् सह शिष्यकैः ॥ ६ ॥

तमागतमृषिं वीक्ष्य समुत्तस्थौ वरासनात् ।
प्रणम्य चैव साष्टाङ्गं मानार्हं विधिवन्नृपः ॥ ७ ॥

आलिङ्ग्य चोपवेश्यामुमपृच्छत् कुशलं मुहुः ।
कृताखिलशुभः प्रश्नः स ऋषिः कलितार्हणः ॥ ८ ॥

पादोपसेवनाद्याभिः क्रियाभिः प्रीतमानसः ।
उवाच राघवश्रेष्ठं वीरं बहुपराक्रमम् ॥ ९ ॥

ऋषिरुवाच

चिराद् दृष्टोऽसि राजेन्द्र साकेतनगरीपते ।
पुरा दृष्टस्त्वं सुराणां रणे साहाय्यमाचरन् ॥१०॥

अहो तव बलावेशो मया वक्तुं न शक्यते ।
एकादशसहस्राणि रक्षसां यदयोधयत् ॥११॥

सहायमुपलभ्य त्वां रणे शक्रादयोऽमराः ।
अजयन् राक्षसानीकं दुर्धर्षं च वरोर्जितम् ॥१२॥

अहो दशसहस्राणि वर्षपूगानि तेऽगमन्[1] ।
युध्यतो दानवैः सार्द्धं देवानां च जयार्थिभिः ॥१३॥

अहो धनुर्ज्याकिणबन्ध एष प्रकोष्ठयोस्ते समलङ्करोति ।
वीरत्वहेम्नः कषणोपलाभं स्वरूपयोर्घर्ष इवातिशुद्धः ॥१४॥

---

१. निर्गमन्—अयो० ।

अहो त्वदीयं विमलं कुलं यत् केतुस्तपत्येष दिवामणिः स्वयम् ।
स्वरूपतस्त्वं बलदक्ष एव श्रीकान्तपादार्पितचित्तवृत्तिः ॥१५॥
अगाधपुण्यपात्राणामग्रणीस्त्वं जगत्पते ।
इन्द्रोऽपि भवतः साम्यं प्राप्तुं नैवाशकत् प्रभो ॥१६॥
अधुना तु विशेषेण भागधेयनिधिर्भवान् ।
संजातो यद्भवद्गेहे पूर्णोऽसौ पुरुषोत्तमः ॥१७॥
श्रीरामो राघवेन्द्रो वै रसिकेन्द्रशिरोमणिः ।
एष वै देवकार्याय प्रादुर्भवति नित्यशः ॥१८॥
बलकृष्णादिरूपेण जगत्कल्याणकारकः ।
इदानीं पूर्णरूपेण भवद्गेहेऽप्यवातरत् ॥१९॥
एष एव श्रिया[1] साकं शेते प्रमुदकानने ।
अस्यैवांशः स पुरुषो यः सहस्राननेक्षणः ॥२०॥
वासुदेवादयोऽप्येवं ब्रह्मादिसुरपूजिताः ।
चतुर्युगेषु कालेषु राम एवायमीरितः ॥२१॥
रमाया रमणः साक्षात्तेन रामेतिकीर्तितः ।
स ते तनयतां प्राप्तः पूर्णब्रह्म सनातनः ॥२२॥
यस्याहुरागमाः सर्वे सुपुण्यं विमलं यशः ।
एकान्तेन स्थितो ह्येष प्रमुद्वनविहारवान् ॥२३॥
प्रादुर्भावात् पूर्वमपि रामसत्ता सनातनी ।
प्रमोदविपिनस्यान्तरशोकलतिकावने ॥२४॥
यः पूज्यते सुरेन्द्राद्यैः स रामस्तनयस्तव ।
धर्मद्रुहां राक्षसानां संहारार्थमवातरत् ॥२५॥
यज्ञविध्वंसकर्तॄणि रक्षांसि प्रहरिष्यति ।
राजन् मम्माश्रमोद्देशे यज्ञः पूर्वप्रवर्तितः ॥२६॥
स राक्षसैः महाघोरैः प्रत्यूह्यत[2] इतस्ततः ।
सदैवाशुचयो नग्ना मलिनाः कृमिभक्षिणः ॥२७॥
अदर्शनं समास्थाय यज्ञघाते भवन्ति वै ।
नैतेषु मन्त्रसामर्थ्यं वरदृप्तेषु वै भवेत् ॥२८॥

---

१. रामः प्रिया—रीवाँ । २. प्रत्युद्यूत—अयो० ।

दैवैः क्षुद्रप्रतिष्ठैस्ते वर्धिता धर्मनाशकाः ।
विनाशयोग्यास्ते रामलक्ष्मणाभ्यां शितैः शरैः ॥२९॥
एवं युगे युगे धर्मः पाल्यमानः प्रवर्तते ।
अमुना रामेणैवायं नान्यथा गतिरस्य हि ॥३०॥
अस्मिन् सनातनो धर्मः स्वयमेव प्रतिष्ठितः ।
अतश्चराचरं विश्वं शुभाय प्रतिपद्यते ॥३१॥
तत्त्वं विज्ञापयाम्यद्धा दातारं[1] सर्वरक्षकम् ।
रामं प्रदेहि मे राजन् धर्मरक्षकमच्युतम् ॥३२॥
नहि काकुस्थवंशेऽस्मिन् कश्चिदर्थी पराहतः ।
इत्युक्तो गाधिपुत्रेण विश्वामित्रेण पार्थिवः ॥३३॥
ओमित्युक्त्वा मुनेः संगे अकरोद्रामलक्ष्मणौ ।
तौ बद्धदिव्यतूणीरौ ऋषेरनुगतौ पथि ॥३४॥
रुरुचाते श्रिया सम्यक् भास्करज्वलनोपमौ ।
अधिज्यधनुरुन्मुक्तैस्त्रासयन्तौ शरैररीन् ॥३५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे विश्वामित्र-
समागमो नाम[2] एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

•

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

पथि प्रगच्छतो रामसौमित्रेयकुमारयोः ।
अभवद्रोधको मध्ये बलिष्टो गर्दभासुरः ॥ १ ॥
तमायान्तं हरिर्वीक्ष्य शरेणोरस्यताडयत् ।
स चाविगणयित्वैव रामं पद्भ्यामताडयत् ॥ २ ॥

---

१. °पयामासं धातारं—अयो० । २. °समागमे—अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

वक्रेण चादशद्वक्षः स तं दोर्भ्यामताडयत् ।
ताडितस्तस्य हस्तेन पपात स धरातले ॥ ३ ॥
पुनर्निश्वस्य वै पश्चात्पादाभ्यां समताडयत् ।
दूरे स्थित्वा ततो रामस्तं विव्याध शितैः शरैः ॥ ४ ॥
नेत्रयोश्च मुखे चैवं सोऽवमद्रुधिरं ततः ।
अन्धीकृतस्ततस्तेन दुधाव स्वशिरो दृशः ॥ ५ ॥
गर्जयन् हरितः सर्वाश्चुक्रोध बहुशोऽपि सः ।
पुनर्गर्जन् पुनर्धावन् पुनः संताडयन् खरः ॥ ६ ॥
चकार संमृधं घोरं रामेण सह राक्षसः ।
ततो रामः स्ववीर्येण तं पश्चात्पादयोर्बलात् ॥ ७ ॥
गृहीत्वा शैलशृङ्गाग्रे ताडयामास राघवः ।
एकवारं द्विवारं च त्रिवारं च पुनः पुनः ॥ ८ ॥
यावत् स व्यसुतां याति कामरूपोऽपि राक्षसः ।
ततस्तत्परिवारोऽपि युयुधे हरिणा सह ॥ ९ ॥
स ताभ्यां रघुपुत्राभ्यां क्षयं नीतो बलोद्धतः ।
मुमुचुश्च तयोर्मूर्ध्नि पुष्पवृष्टिं दिवौकसः ॥१०॥
शेषास्तत्परिवारस्था राक्षसा सिन्धुमभ्यगाम् ।
लङ्कापुरीं ययुः सर्वे शरणं राक्षसेश्वरम् ॥११॥
अग्रे पथि ततः काचित्ताडका नाम राक्षसी ।
मध्येऽग्रहीद्रामचन्द्रं विश्वामित्रानुयायिनम् ॥१२॥
प्रभुस्तस्याः सुतौ पूर्वं हृतवानिति सा जवात् ।
क्रोधेन राक्षसी तत्राभ्यगाद्रामजिघांसया ॥१३॥
कपालहारिणी घोरा शवान्त्रस्तोममालिनी ।
कपालकुण्डलधरा क्षुत्क्षामा निम्नतोदरी ॥१४॥
व्याघ्रचर्मपरीधाना दंष्ट्रादन्तुरिताम्बरा[1] ।
भीषयामास सा रामं कालस्यापि च भीषणम् ॥१५॥
निश्वसन्ती विषश्वासैः प्लोषयामास पादपान् ।

---

१. दंष्ट्रान्तप्रसिताम्बरा—रीवाँ ।

क्षणेन तद्वनतृणं प्राज्वलद्विषमारुतैः ॥१६॥
रामो विव्याध मार्गेण[1] ताडकामथ वक्षसि ।
साभ्येत्य दृढमुष्ट्यैनं गाढं वक्षस्यताडयत् ॥१७॥
रामस्य निशितैर्बाणैस्ताडकायाश्च मुष्टिभिः ।
अभूद्घोरतरं युद्धं देवविस्मयकारकम् ॥१८॥
ततो राघवशार्दूलो बाणं धनुषि संदधे ।
तस्याः प्राणहरं घोरं उक्षितं विषपाथसा ॥१९॥
सा ताडिता तेन शरेण ताडका विषोल्वणेनासुहरेण तेजसा ।
पपात भूमौ सहसात्मकुल्यैः साकं विदीर्णास्यभयानकाकृतिः ॥२०॥
इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे खरताडका-
प्राणहरणो नाम द्विसप्ततिमोध्यायः ॥७२॥

●

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

गाधेयः स्वगृहं नीत्वा रामं त्रैलोक्यपावनम् ।
यज्ञं प्रवर्तयामास तस्य भूतिहरेशितुः ॥ १ ॥
अग्निष्टोमं मखवरमत्यग्निष्टोममेव च ।
उक्थ्यं षोडशिनं चैव वाजपेयं तथैव च ॥ २ ॥
अतिरात्रमाप्तोर्यामं संस्थाभिः सप्ततन्तुकम् ।
प्रातःसवन एवाथ राक्षसाः पुण्यकृन्तनाः ॥ ३ ॥
आययुर्गाधिसूनोस्तं मखं मखविनाशकाः ।
तान् रामो विशिखैस्तीक्ष्णैरग्रहीदरिवारणः ॥ ४ ॥
मारीचाद्या महाघोराः सुबाहुप्रमुखाश्च ते ।
ताडकावधसामर्षा निपेतू राघवं प्रति ॥ ६ ॥

---

१. "मार्गेण = मार्गणेन" टि०—मथु० ।

स तानापततो बाणैः सर्वान् पर्यग्रहीद्बली ।
यथा पराक्रमी सिंहः कुञ्जरान् काननद्रुहः ॥ ७ ॥
यूपं प्रभञ्जयिष्यामः[1] पत्नीशालां च पूर्ववत् ।
आसन्दीं[2] चैव सोमस्य पातयिष्याम उच्चकैः ॥ ८ ॥
स्रुकस्रुवौ त्रोटयिष्यामः इडां क्षेप्स्यामहे पुनः ।
चमसान् विकिरिष्यामो ग्रसिष्यामश्च यज्वकम् ॥ ९ ॥
वेदं विध्वंसयिष्यामो वेदीं यास्याम लङ्घनात् ।
प्राशित्रं नाशयिष्यामो यज्ञाङ्गान्याखिलान्यपि ॥१०॥
अस्माकं भागधेयाय देवानां वर्जनाय च ।
इति निश्चित्य ते घोराः पूर्ववत्समुपागताः ॥११॥
आययुः सहसा रामबाणानलपतङ्गताम् ।
मारीचस्ताडितो बाणैः पलायत रणान्तरात् ॥१२॥
सुबाहुर्विशिखैर्घोरैर्भृशमेव निपीडितः ।
जृम्भको नाम वै नीतो राक्षसो यमसादनम् ॥१३॥
दुःसहश्च शरैर्घोरैर्नीतो यमनिकेतनम् ।
एवं नैर्ऋतवर्येषु म्रियमाणेषु सर्वतः ॥१४॥
राघवेद्रशरौघेण शेषा लङ्कापुरीं ययुः ।
तत्र तान् भग्नगात्रौघान् पश्यतो राक्षसान्निजान् ॥१५॥
लङ्केशितुश्च हृदये निखातं वीर्यमात्मनः ।
रामबाणप्रभावेण विद्रुता राक्षसेश्वराः ॥१६॥
रावणं शरणं जग्मुर्लङ्कायां मृत्युकातराः ।
अद्भुतं विक्रमं दृष्ट्वा लक्ष्मणो राममूचिवान् ॥१७॥

श्रीलक्ष्मण उवाच

अहो आर्यस्य चरितमद्भुतं पश्यतो मम ।
हृदयं हरते राम त्रिदशानां तु का कथा ॥१८॥

१—°यिष्यामि—रीवाँ । २. "आसन्दीं = सोमवल्लीस्थापनशकटीम्" टि०—मथु० ।

स्थिताः सुपर्वाण इमे विमानेष्वार्यस्य दिव्यं चरितं निरीक्ष्य ।
अद्याप्यबिभ्रन्न दृशोर्निमेषं विचित्रदृष्टिस्तिमिताक्षमीनाः ॥१९॥
जाने भवानद्भुत एव कश्चित् पूर्णः परः पूरुषपुङ्गवोऽस्ति ।
जगत्समुद्धर्तुमिहावतीर्णः खगान् मृगान् राक्षसान् दुःखभावान् ॥२०॥
अत्यर्थमेतत्कदनं त्वयाद्य सुरद्रुहां पश्यतो मे कृतं यत् ।
तेन त्वदीयं रघुवर्य वीर्यं विज्ञातमज्ञानदृशं प्रमार्ज्य ॥२१॥
आर्य प्रभो पश्यतां मानुषाणां बालोऽसि कञ्जच्छदकोमलाङ्गः ।
दैतेयरक्षोदनुजप्रमाथे वज्राधिकं सारमुरीकरोषि ॥२२॥
अमी धरण्यां खलु शेरते भृशं भवच्छराग्निस्पृशिदग्धविग्रहाः ।
शैलेन्द्रकूटप्रतिमांसबाहवो भयानका योजनविंशकायतः ॥२३॥
उत्क्षेपिता हरिदन्तेषु वाणैः कुलाद्रिकल्पा रासक्षाः शेरते स्म ।
पराङ्मुखे त्वय्यजवंशकेतौ पराक्रमयान्ति वैफल्यमेव ॥२४॥

श्रीराम उवाच

नैते मया हता भ्रातस्त्वया खलु निपातिताः ।
इच्छामात्रेण सौमित्रे स्मर तात निजं बलम् ॥२५॥
अथ चेदहमेतानि रक्षांसि समनाशयम् ।
तथापि नात्मना किन्तु त्वदावेशेन लक्ष्मण ॥२६॥
संकर्षणोऽसि कालाग्निः तवैतत्कर्म लक्ष्मण ।
प्रमोदवनकुजान्तःकुटीषु रमणं मम ॥२७॥
नाहमेतेन क्लेशेन युञ्जेय क्वापि लक्ष्मण ।
गवेन्द्रमन्दिरे दिव्ये नवनीतस्य भक्षकः ॥२८॥
किं कष्टं मम दैतेयैः किं सुखं च सुपर्वभिः ।
निर्लेपस्य निरीहस्य निर्विकारस्य सर्वदा ॥२९॥
एतत्तवोचितं कर्म कालस्याव्ययरूपिणः ।
सृजस्यवसि भूतानि क्षेपयस्यनिशं प्रभुः ॥३०॥
देवे सुरे नरे नागे तापसे व्रतवर्जिते ।
समदृष्टिरहं तात न मे कार्यमिह क्वचित् ॥३१॥

रामेण रक्षिता यज्ञा विश्वामित्रस्य धीमतः ।
प्रावर्त्तताहर्निशं वै वत्सरान् विघ्नवर्जिताः ॥३२॥
तत्रैवोवास रक्षार्थं तावद्रामः सलक्ष्मणः ।
क्षपयन् राक्षसानीकान् भौमदिव्यन्तरिक्षगान् ॥३३॥
रामस्य निशितैर्वाणैर्भिद्यमानास्तु राक्षसाः ।
प्रवेशं लेभिरे नैव भ्रमन्तः परितो मखम् ॥३४॥
शरवर्षेण वै रामो नीरन्ध्रं पञ्जरं व्यधात् ।
न यत्र प्रविशेद्रक्षो मन्त्रै रक्षोघ्नरूपिभिः ॥३५॥
प्रातर्माध्यन्दिने सायं सवनेषु त्रिषु स्थिरः ।
अधिज्यो धनुरादाय ररक्ष राघवो मखम् ॥३६॥
एवं यावत्समाप्तिः स्याद् दीर्घसत्रविधेर्मुनेः ।
तावद्रामः सहातिष्ठल्लक्ष्मणेन सहायवान् ॥३७॥
सत्रे समाप्ते गाधेयो ज्ञात्वामुं पुरुषं परम् ।
अवर्द्धयच्छुभाशीर्भिस्तुष्टाव च शुभैस्तवैः ॥३८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे विश्वामित्र-
यज्ञरक्षणो नाम[1] त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

●

चतुस्सप्ततितमोऽध्यायः

विश्वामित्र उवाच

त्वं मत्स्यकूर्मादिनिजावतारेष्वेकाकिनैवावतरस्यात्मनेशः ।
रामावतीर्णोऽस्यधुनातु पीठच्छत्रायुधस्रक्[2]शयनादिभिःसह[3] ॥ १ ॥
इदं ते परमं पीठमक्षरं ब्रह्म यत्परम् ।
छत्रं ते विमलं सत्त्वं रजसस्तमसः परम् ॥ २ ॥

---

१. °रक्षणे–अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० । २. °रत्न°–रीवाँ० । ३. खलु–रीवाँ ।

आयुधानि च श्रीराम धनुर्बाणासिचर्म च ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतस्रोऽप्यधिदेवताः ॥ ३ ॥

स्रग्वैजयन्ती भवतः पञ्चवर्णप्रसूनजा ।
आपादपद्मप्रणता यशःसौरभसंभृता ॥ ४ ॥

शयनं ते शेषनागो वेदात्माक्षरविग्रहः ।
कालात्मा पुरुषः पूर्णो यमनन्तं प्रचक्षते ॥ ५ ॥

तेऽमी भवत्सन्निधिवर्तमानाः प्राप्तैकभावाः प्रकृतेः परस्मात्[1] ।
स्थाने स्थिता वासुदेवादिरूपा रमेश ते पूर्णतां द्योतयन्ति ॥ ६ ॥

त्वमेव च्छन्दसां राशिस्त्वं बर्हिर्यज्ञसाधनम् ।
त्वमाज्यं हविराधारं चातुर्होत्रस्त्वमेव च ॥ ७ ॥

त्वं स्रुक्स्रुवौ च चमसास्त्वमिडा त्वं ग्रहास्तथा ।
त्वं प्रासित्रं त्वमेवाद्यमग्निहोत्रं निदर्शितम् ॥ ८ ॥

त्वं दीक्षणीया देवेश त्वमेवोपज्ञदास्त्रयः[2] ।
त्वं प्रायणीयोदयणीये प्रवर्ग्यस्त्वमेव हि[3] ॥ ९ ॥

अत्यग्निमण्डपस्त्वं च त्वं यागः षोडशी तथा ।
वाजपेयोऽतिरात्रस्त्वं आप्तोर्यामस्त्वमेव च ॥१०॥

द्वादशाहादिसत्राणि त्वमेव त्वं क्रतुस्तथा ।
त्वं यज्ञस्त्वं तथैवेष्टिस्त्वं स्वर्गस्तत्फलं प्रभो ॥११॥

वैराग्ययुक्तं कर्म त्वं सत्त्वशुद्धिस्त्वमेव च[4] ।
त्वं भक्तिस्त्वमात्मजयश्चित्रस्थैर्यं त्वमेव च ॥१२॥

तेनानुभवितं ज्ञानं त्वमेव जगदीश्वरः ।
निर्विघ्नता त्वं कार्याणां त्वमेवाखिलमङ्गलम् ॥१३॥

ज्ञानानि यज्ञाश्च तपांसि कर्माण्यलं प्रपूर्यन्त इतः प्रसन्नात्[5] ।
त्वय्यप्रसन्ने हि किमात्मवर्त्तिभिः किंकर्मभिः किंतपसा किंच भव्यैः ॥१४॥
कृतोपकारोऽसि मयि प्रसादात् प्रभो तव प्रत्युपकारमप्यहम् ।

---

१. °तेर्यकस्मात्—अयो०, रीवाँ। २. °श्रयः—अयो०। ३. त्वष्टमेव च—रीवाँ। ४. त्वमात्मजा—रीवाँ। ५. प्रसन्ने—रीवाँ।

वाञ्छामि कर्तुं यदि भो मया सह समेष्यसि त्वं मिथिलेन्द्रमन्दिरम् ॥१५॥
तस्यात्मजा [तत्र]किमप्ययोनिजा साक्षाद्रमा कोटिविधुप्रकाशा ।
तवोचिता श्रीः पुरुषोत्तमस्य मन्दस्मिता भूषितवक्त्रचन्द्रा ॥१६॥
राजापि स ब्रह्मविदां वरिष्ठः श्रीमैथिलेन्द्रो जनको वीतरागः ।
जामातरं त्वामुपलभ्य रामं गार्हस्थ्यमासादयिता फलाढ्यम् ॥१७॥
अत्यद्भुतं गाधिसूनोर्वचस्तदाकर्ण्य रामस्त्रपया बद्धमौनः ।
विलोक्यतां लक्ष्मण वत्स संप्रति व्योमावदातातपमित्यवादीत् ॥१८॥
अर्थान्तराक्षिप्तहृदं स रामं विज्ञाय शीलेन विबद्धमौनः ।
नैम्यस्य तामनयद्राजधानीं नाम्ना शुभां मिथिलेतिप्रसिद्धाम् ॥१९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे मिथिलागमनोद्यमो नाम[1] चतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

स गत्वा मिथिलापुर्याः सविधे सहराघवः ।
मुनिर्माध्याह्निकीं सन्ध्यां विधिना निरवर्तयत् ॥ १ ॥
तावद्राजकुमारौ तौ आरामश्रियमीक्षितुम् ।
मिथिलोपवने तत्र सुखं विविशतुर्मुदा ॥ २ ॥
तौ रामणीयकमवेक्ष्य वनस्य फुल्ल-
वासन्तिकापरिमलभ्रमितालिजुष्टम्[2] ।
प्राप्तो वसन्त इति तावधिजग्मतुःप्रा-
गागामिभि[3]र्मलयशैलसमीरणौघैः ॥ ३ ॥

---

१. गमनोद्यमे—अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० । २. °थान्तं—मथु°, बडो० ।
३. °तुर्वैप्रागामिभिः—अयो०, मथु०, बडो० ।

तत्रागमच्च मिथिलेन्द्रकुमारिका सा
सीता स्वयं नमितुमालयमम्बिकायाः ।
तां वीक्ष्य भूय उदितस्मरवाणताप-
संभ्रान्तचित्त इव तत्क्षणमास रामः ॥ ४ ॥

श्रीराम उवाच

एषा विमानादवरुह्य याति विद्याधरी चापि सुरी नरी वा ।
सौदामिनी वा रतिकामिनी वा शची रमा वा हिमशैलजा वा ॥ ५ ॥
न मे प्रयात्येव मनोरथान्तर्वर्धिष्णुभिर्निःप्रतिमैर्महोभिः ।
जाने ममानङ्गजतापहारिणी पीयूषधारेयमहो भविष्यति ॥ ६ ॥
अहो अमुष्या मिलने वनेऽस्मिन् वसन्तकालोदय एष जातः ।
लोकोत्तरं धाम चकास्ति तावत् समंततो रत्नसमूहचित्रम् ॥ ७ ॥
अहो अपूर्वैव विभाति सृष्टिर्मन्ये न सामान्यविरञ्चिलेखा ।
अयोनिजां यां मुनिराह सेयं स्वभावसौन्दर्यमयीव लक्ष्मीः ॥ ८ ॥
अहो इदं चायतनं शिवायास्तामर्चितुं तावदसाविहागमत् ।
तत्प्रार्थयेऽहं प्रथमं महेशीमस्या स्वयंवरविधौ मणिमल्लिकायै[1] ॥ ९ ॥
धन्येयं मिथिला नाम नगरीणां शिरोमणिः ।
यस्यामियं दृश्यते वै युवतीनां शिरोमणिः ॥१०॥
रक्ताशोकलताकुञ्जे इयमेव रता मया ।
इदानीं नाभिजानाति मोहिता मम मायया ॥ ११॥
आद्वीपात् क्षीरसिन्धोश्च भूपालाः संगता अमी ।
महावीरा महेष्वासा महाबलपराक्रमाः ॥१२॥
तेषां मध्ये तु मत्तोऽन्यः कोऽस्याः पाणिं ग्रहीष्यति ।
इति निश्चित्य मनसा धीरोऽस्मिन्नस्मि[2] राघवः ॥१३॥
[3]इत्यागतां तामवलोक्य रामः[3] शिवालये कोटितडित्प्रकाशाम् ।
मुमूर्च्छ वैवेति कथंचिदुन्मनाः संस्मृत्य गाधेयमृषिं न्यवर्तत[4] ॥१४॥

---

१. °काद्यैः—मथु०, बड़ो० । २. °नतु—अयो०, बड़ो० । ३—३. नास्ति —अयो०, रीवाँ । ४. "संस्मृत्यगाधेयमृषिं ततः शीघ्रं न्यवर्तत" इत्यनुष्टुभेन—अयो० रीवाँ ।

कृतमाध्यन्दिनविधिं मुनिं कृत्वा पुरःसरम् ।
धनुर्धरावाविशतां कुमारौ मिथिलां पुरीम् ॥१५॥
तौ पश्यतां पौरजनेक्षणानां पीयूषवृष्टिः समभूत्क्षणेन ।
शृङ्गारसारावयवौ मनोज्ञौ पारेपरार्द्धस्मरसन्निवेशौ ॥१६॥
तौ तत्र संमर्द्दमथो नृपाणामपश्यतामष्टदिग्भ्यो युतानाम् ।
सीतापणीभूतगिरीशचापपराहताव्याहतदुर्बलानाम् ॥१७॥
कन्यां निरीक्ष्यामितहर्षभाजो धनुर्विलोक्यामितदुःखनिःसहाः ।
आजग्मुरावेगमतीव भूमिपा दैवी तथेच्छा तु परं सुदुर्घटा ॥१८॥
तुङ्गेषु मञ्चेषु नृपालयाङ्गणे स्वां स्वां दिशं प्राप्य परिस्थिता नृपाः ।
संशोभयामासुरुदाररोचिषा समन्ततस्ते मिथिलेन्द्रपत्तनम् ॥१९॥
नानादिगन्तदेशेभ्यो नानानामान एव ते ।
सीतास्वयंवरोत्साहे संगता अभवन्नृपाः ॥२०॥
तेषां संचरतां मत्तगजानां रत्नमालिनाम् ।
घण्टारावेण पिहिता दिशोऽष्टौ मिथिलापुरी ॥२१॥
सीतास्वयंवरजहर्षवशंवदोऽसौ रामः सरोजदलकोमलविग्रहत्वात् ।
गाधेयचेतसि धनुर्विषये पुरारेरीषच्च संशयपदं व्यतनोन्मुनीशः ॥२२॥
त्रिंशत्या वाहनानां यद् धार्यं[1] हरधनुः क्व तत् ।
सिरोषप्रसवागर्भकोमलः क्व च राघवः ॥२३॥
इतिसंततसंदेहदोलायितमनोगतिः ।
मिथिलेन्द्रगृहद्वारमगमद् गाधिनन्दनः ॥२४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे मिथिलागमनो नाम[2] पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

---

१. दधीचास्थिमयं सारं त्विदं—रीवाँ। २. मिथिलागमने—अयो० रीवाँ, मथु०, बड़ो०।

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

इतः सा कौशिकी नाम शुद्धनीरा तरङ्गिणी ।
विश्वामित्रस्य क्षत्रस्य ब्रह्मतेजःप्रभेव या[1] ॥ १ ॥
इतो घोषवतीनाम पुण्यतोया महानदी ।
द्वयोर्मध्ये पुरी श्रेष्ठा मिथिला नाम सा पुरी ॥ २ ॥
यस्यां निमिकुलोत्तंसो जनको नाम भूपतिः ।
जन्मज्ञानी जन्मशुद्धो महायोगी सदाश्रयः[2] ॥ ३ ॥
[3]तस्य सा परमा कन्या सीता नाम्नी त्वयोनिजा ।
यज्ञवेद्यां समुद्भूता पश्यतां महसां पुरा ॥ ४ ॥
रुक्मिणी[3] सत्यभामाद्या यस्यांशाः सकला अपि ।
भूलीलाराधिकेत्यादि नामपर्याययोगिनी ॥ ५ ॥
चाम्पेयगर्भमृदुला दामिनीशतविग्रहा ।
प्रेमभक्तिस्वरूपेण अवतीर्णा भवेत् स्वयम् ॥ ६ ॥
अस्याः संस्मरणादेव प्रेमभक्तिः प्रवर्द्धते ।
तया संतुष्यते रामो वशीभवति नान्यथा ॥ ७ ॥
मतिश्चापि रतिश्चैव द्वे प्रिये जगदीशितुः ।
रामस्य दुर्भगा त्वाद्या सुभगा त्वितरैव हि ॥८॥
सेयं सीतेति सहजा नाम्ना ख्यातागमत्रये[4] ।
एनामेव प्रगायन्ति नेतिनेतीति चागमाः ॥ ९ ॥
सा नित्या संगता रामे तत्स्वयम्वर ईर्यते ।
ब्रह्मादयोऽपि यत्रासन् महाकौतुकनिर्वृताः ॥१०॥

अथ मिथिला नाम्नी सा नगरी बृहद्गोपुरविराजितकनककपाटा संकलितसुवर्णशृङ्गाटका देवगिरिप्रतिमप्राकारपर्यन्तप्रविन्यस्तागाधपरिखाजला महामङ्गलप्रसंगविस्तीर्णनगरद्वारा मणिहेममयतोरणा विशाल-

---

१. विश्वामित्रब्रह्मतेजःप्रभेव या विराजते —रीवाँ । २. अयं श्लोको नास्ति—अयो०, जन्मवैराग्यशेवधिः—मथु०, बड़ो० । ३–३. नास्ति—अयो०, रीवाँ । ४. जगत्त्रये—अयो० ।

पुराट्टालस्फाटिकभित्तिप्रतिफलितरविरश्मिसंदोहचकच्चकायमाना नानामणिप्रभावलीभिः पुरन्दरधनुर्लतायमाननगरगोपानसोका विततापणप्रसार्यमाणसुवर्णमणिरत्नप्रचुरा विशालस्वरमूर्छायितान्तरिक्षपथैर्गन्धर्वराजैरुपगायद्भिरासादितगोष्ठीमनोरमा पवनान्दोलितदीर्घध्वजपटसनाथप्रासादशिखरोपात्तघूर्णायमानप्रमत्तकपोतकुलमन्दध्वनिमनोहरा अनवरतहुताज्यगन्धिश्रोत्रियागारोपरिभ्रमद्धूमलेखानुक्षणधावद्बुभुक्षुद्विजकुला निरन्तरप्रवृत्तदीर्घदीक्षाकाध्वरसमामन्त्रितपुरन्दरादिदेवगणा चतुर्वर्णचतुराश्रमाचारप्रवर्त्तनमूलकरणभूता ॥ ११ ॥

तस्यां नगर्यां दीर्घध्वजपताकातूर्यत्रिकनादानुलक्षितं जनकभूभुजः पुण्यतमं भवनम् । यत्र भगवांस्त्रिकालपरामर्शविदितवेद्यो ब्रह्मविद्वरिष्ठो याज्ञवल्क्यो नाम योगीन्द्रोऽमुष्मै एव परब्रह्मविद्यामुपदिशन् प्रीतिपणित इव निरन्तरमास्ते ॥ १२ ॥

अन्ये च शुकवामदेवप्रमुखास्तादृशा एव निर्ग्रन्थाः समुत्तीर्णशब्दब्रह्मविषयाः परमनयोः कथानकं ब्रह्मोद्यं जायमानं शृण्वन्ति । तत्र तमायान्तं गाधिनन्दनमुपश्रुत्यासप्तमकक्षान्तमभिवन्द्य गृहेऽप्रवेशयज्जनकराजः ॥ १३ ॥

तत्र स्थितं याज्ञवल्क्यं ववन्दे गाधिनन्दनः ।
स च तं वर्द्धयामास शुभाशीर्भिः सुतोपमम् ॥१४॥
कृतार्हणं तेजसोग्रं ब्रह्मक्षत्रं महामुनिम् ।
उवाच नृपतिश्रेष्ठो जनको ब्रह्मवित्तमः ॥१५॥

राजोवाच

स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठ चिराद् दृष्टोऽसि भाग्यतः ।
भवादृशा हि धरणौ नृणां गच्छन्ति शर्मणे ॥१६॥
कुशलं त्वयि योगेन्द्र प्रष्टव्यं सेवकैर्जनैः ।
अन्येभ्यः कुशलं दत्से त्वयि कस्तस्य संशयः ॥१७॥

ऋषिरुवाच

राजन् निमिकुलोत्तंस किमाश्चर्यं भवादृशः ।
स्वभावमधुराचारा विशेषाद् गृहमागताः ॥१८॥

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि यस्य योगर्द्धिरुत्तमा ।
ब्रह्मविद्वर वन्द्योऽसि योगीन्द्र जनकेश्वर ॥१९॥
धन्येयं मिथिला यत्र भूमिपालो भवादृशः ।
ज्ञानविज्ञानसंपन्नो दर्शनात् पङ्क्तिपावनः ॥२०॥

राजोवाच

इमौ कौ भवतः संगे कुमारौ दीप्तवर्चसौ ।
ललितैः श्यामलैरङ्गैर्दृक्पीयूषप्रवर्षिणौ ॥२१॥
धनुर्वाणधरौ तुल्यवेशौ निजपराक्रमौ ।
अहो अत्यद्भुतावेतौ सानन्दं कुरुतोऽद्य माम् ॥२२॥

ऋषिरुवाच

अस्ति रविवंशकेतुर्महामना महाधार्मिको महातेजस्वी दितिजदनुजरक्षोवधसंतोषितपुरन्दरादिसुपर्वगणोद्गीतविपुलकीर्तिः साकेतपुरीपालो राजा दशरथो नाम ॥२३॥

तस्येमे ऋष्यशृङ्गभागधेयपुञ्जा इव चत्वारो रघुकुलपुण्यपरिपाकपरिप्राप्तोपचयवद्विग्रहाः पुत्रा रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नेत्याख्याभिः प्रसिद्धाः ॥२४॥

त्रिभुवनेऽपि ईशौ तौ रामलक्ष्मणौ यौ दृप्तानेकराक्षसकुलवधेन मदीयमहायज्ञदीक्षानिवर्हणादीक्षितेन धनुषा सनाथीकृतकरतलौ भरतशत्रुघ्नौ पुनर्दशरथस्य दृशमानन्दयन्तौ साकेत एवाभिनन्दयतः ॥२५॥

अमी ते सीतापुरोगानां चतसृणां दुहितॄणां विधिनैव निरूपिता अनुरूपवयोवेशर्द्धिकुलसंपन्ना वराः । लोकोऽपि संपन्नमनोरथ एव प्रायशो भविता यः श्रीरामेण वरेण वरस्वयंवरसमाप्तौ ॥२६॥

इति श्रुत्वा स भूपालो विश्वामित्रोदितं वचः ।
सस्मार शाङ्करं धन्व महावज्रशिलादृढम् ॥२७॥

राजोवाच

अहो दशरथो राजा पुण्मात्मा पुण्यकीर्तनः ।
तस्येमौ तनुजौ वीरौ भाग्याद् दृष्टिपथं गतौ ॥२८॥

परं त्वेकः पणो घोरः कन्यावितरणे मम ।
आरोपयेद् य ऐशं तद्धनुस्तस्मै प्रदीयते ॥२९॥
इत्युक्तः स मुनी राज्ञा जनकेन मनस्विना ।
राममालोक्य प्रोवाच सस्मितं मधुरं वचः ॥३०॥
संबध्यतां परिकरो हरकार्मुकरोपणे ।
वत्स राम त्वमियति समस्ते वीरमण्डले ॥३१॥
कुर्वपूर्वतरं कर्म यत्र वै वाणरावणौ ।
अभूतां बलसंदोहनैरर्थक्यपराहतौ ॥३२॥
इत्युक्तो भगवान् रामः स्वयं साक्षाद्रमापतिः ।
दृष्ट्वा हरधनुः सद्यो लीलयैव समाददे ॥३३॥
यस्य वाणानलोद्गारे त्रिपुरोऽभूत् पतङ्गवत् ।
हिमालयं धनुर्यस्य ज्या शेषो भुजगेश्वरः ॥३४॥
शरः स भगवान् विष्णुस्त्रयीमूर्तिः सनातनः ।
तमादायैकहस्तेन कोदण्डं कृत्तिवाससः ॥३५॥
ज्यां समारोपयामास समालम्ब्य[1] बभञ्ज च ।
धनुर्भङ्गोद्भवः शब्दो गगनं क्ष्मामपूरयत् ॥३६॥
चचाल धरणी सर्वा पर्वताश्च चकम्पिरे ।
तत्रास वासुकिकुलं विभ्यु[2]र्देवगणा दिवि ॥३७॥
महाशब्देन जातेन[3] सागराश्च विसुस्रुवुः ।
गिरीणां कन्दरास्वन्तर्घनीभूतो महाध्वनिः ॥३८॥
हर्यक्षान् क्षोभयामास प्रलयाघातदुःसहः ।
तदा रामधनुर्भङ्गात् सीता पूर्णमनोरथा ॥३९॥
स्वयंवरस्रजं पत्युः कण्ठे सप्रणयं न्यधात् ।
रामस्य कण्ठे पतति स्वयंवरसरे तदा ॥४०॥
दिवि दुन्दुभयो नेदुर्जनकस्य पुरे तथा ।
जनकस्तुष्टहृदयो जामातरि महागुणे ॥४१॥

---

१. आकलय्य—रीवाँ । २. तत्रसुर्मनुजा भूमौ तथादेव°—रीवाँ । ३. °शब्द-प्रणादेन—रीवाँ ।

राजा तमाह्वयामास साकेतनगराधिपम् ।
विवाहं कारयामास ब्राह्मणैर्विधिकोविदैः ॥४२॥
सीताराघवयोर्यत्र ब्रह्मादया आययुः सुराः ।
राघवः सीतया साकं कृत्वा सप्तपदीविधिम् ॥४३॥
लाजाहोमविधिं कृत्वा रराज सुषमाञ्चितः ।
अश्मनि स्थापिता देवी शुशुभे तत्र जानकी ॥४४॥
अद्यापि मूर्धगा मृत्यो रामोत्सङ्गे स्थिरैव सा ।
हरिद्राग्रन्थिकलितं पीतसूत्रं करे दधत् ॥४५॥
सीतया शुशुभे रामो गृहलक्ष्म्या गृहाधिपः ।
लक्ष्मणोऽपि वधूं प्राप्य उर्मिलां जनकात्मजाम् ॥४६॥
रामवत्सीतया सार्द्धं तया सार्द्धं मुमोद सः ।
एवं भरतशत्रुघ्नौ कुमारौ रामसुन्दरौ ॥४७॥
माण्डविश्रुतकीर्तिभ्यां वधूभ्यां जग्मतुर्मुदम् ।
चतस्रोऽमुष्य ताः कन्याश्चतुर्भ्यां दिव्यविग्रहाः ॥
वरेभ्यः सहसा दत्ताः प्रजानां दृक्सुखं ददुः ॥४८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे हरधनुर्भङ्गो नाम[1]
षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

भङ्गे हरधनुःशब्दो भार्गवस्य तपस्यतः ।
श्रवणे छादयामास दुःखकोपविवर्द्धनः ॥ १ ॥
साटोपं राम उत्थाय पर्शुमादाय सत्वरः ।
निजाश्रमपदं त्यक्त्वा यावदायाति भार्गवः ॥ २ ॥
तावज्जनकभूपस्य बोधनार्थं महात्मनः ।

---

१. हरधनुर्भंग विवाहोत्सवं नाम—अयो० । हरधनुर्भंगे—रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

स्वशिष्यं प्रेषयामास रामो भार्गवसत्तमः ॥ ३ ॥
भार्गवेण श्रुतः पूर्वं जनकस्य धनुःपणः ।
तच्छ्रुत्वा चुक्रुधे भूयः कोपनः कालदुर्धरः ॥ ४ ॥
त्रिःसप्तकृत्वो भूपालान् मारयित्वा स्वपर्शुना ।
स्यमन्तपञ्चकेऽकार्षीच्छोणितौघान् महाह्रदान् ॥ ५ ॥
स रामो दुर्मनीभूत्वा कस्य कल्याणमिच्छति ।
सुरासुरमनुष्येषु तस्मात्तं न प्रकोपयेत् ॥ ६ ॥
कथितो भृगुशार्दूलः सर्वस्वं नाशयेत् क्षणात् ।
इति जानाति राजापि जनकः सत्यभाषणः ॥ ७ ॥
जामातुश्च बलेनैव तीर्णवान् भृगुपावकम् ।
रामेण प्रेषितो दूतः शिष्यो जनकसन्निधौ ॥
समागत्य सभामध्ये इदं वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥

ब्राह्मण उवाच

राजन् नैम्य नृपाधीश कस्मैचिन्नृपसूनवे ।
कन्या प्रदीयतां मा वा वृथा हरधनुःपणः ॥ ९ ॥
एतच्छाम्भवमूर्जस्वि त्रिपुरानलवारिदम् ।
धनुः शैलेन्द्रसारं यत् दुराधर्षं जगत्त्रये ॥१०॥
देव त्वदीयभवने विन्यस्तं जनक प्रभो ।
त्वया न स्थाप्यतां कश्चित्पणीकृत्य सुबुद्धिना ॥११॥
इदं हि स्वायुषो दारि यशस्तेजस्तपोनुदम् ।
यद्दिव्यवस्तुविषये लौकिकी मतिराहिता ॥१२॥
एतद्विबुद्ध्यतां राजन् विशेषेणाधुना मुहुः ।
यदीशधनुरुत्सृज्य पणीकार्यं धनान्तरम् ॥१३॥
एतत् प्रोवाच ते राजन् भार्गवः क्षत्रियान्तकः ।
रामो दुर्दर्शनो धाम्ना कुठारक्रीडनोद्धरः ॥१४॥
तदाकर्ण्य यथायोग्यं क्रियतां निमिभूपते ।
नो चेत् स जामदग्न्यो वै वीरेन्द्रो दुर्मनायते ॥१५॥

दुराराध्यः स कोपेन सहस्रार्जुनसूदनः ।
साक्षात् क्रोधी हरेरंशो भगवान् भार्गवोत्तमः ॥१६॥

जामातुः स्वस्य भोग्येन सोऽनुकूलो विधीयताम् ।
अन्यथा न भवेत्क्षेमं कुपिते जमदग्निजे ॥१७॥

ब्रह्मक्षत्रमयं तेजो दुराधर्षतमं हि तत् ।
बलाद्वन्द्यतमं लोके क्षत्रियाणां विशेषतः ॥१८॥

एतत्ते कथितं भूप यामि रामस्य सन्निधौ ।
इत्युक्त्वा यावदचलद्विप्रो जनकसन्निधौ ॥१९॥

तावद्धरधनुर्भङ्गकाहलः समभूत्तराम् ।
घोरो ब्रह्माण्डसंभेदी जगत्त्रयविकम्पनः ॥२०॥

प्रलयान्तसमुन्नादि समुद्र इव दुःसहः ।
कल्पान्तघनसंघट्टघटाटोपभयङ्करः ॥२१॥

इन्द्रायुधत्रुटत्पक्ष[1]पर्वतारावसन्निभः ।
दार्यमाणगिरिग्रावसमो[2] गम्भीरनिस्वनः ॥२२॥

वज्रनिर्घोष उदघौ रावणश्रुतिभेदनः ।
अहो अनर्थः कुपितो रामः क्षत्रकुलान्तकः ॥२३॥

इतिब्रुवन्निर्जगाम दूतो रामस्य स द्विजः ।
क्रोधान्धो राम आधावच्छ्रुत्वा स धनुषो रवम् ॥२४॥

अहो समुत्थितः कोऽयमकस्माद्भीषणो ध्वनिः ।
न वा पर्वतनिर्दारो वज्रपातो न कश्चन ॥२५॥

नाब्धिनिर्मन्थनो घोषो नकल्पान्तभवो ध्वनिः ।
न भूमिकम्पनोद्घोषो न कल्पान्तमरुद्ध्वनिः ॥२६॥

कोऽयं शब्दमयोत्पातो भविष्यति धरा न वा ।
कुलाचलसुसंघर्षे निर्वृतो वा परस्परम् ॥२७॥

इति भूयः संदिहानो रामो निश्चित्य तत्क्षणात् ।
भज्यमानमहादेवधनुषः संभवो ध्वनिः ॥२८॥

---

१. नुदत्पक्ष—रीवाँ । २. °साम°—अयो०, मथु०, बड़ो० ।

धावन् स परशूहस्तो भार्गवः क्रोधपावकः ।
हरिद्राकङ्कणं रामं मार्गे प्रत्यग्रहीत् पुनः ॥२९॥

भार्गव उवाच

अहो अरे क्षत्रियपोतकस्त्वमीदृक् पापं कर्म[1] कस्मादकार्षीत् ।
केनेदं ते शिक्षितं शत्रुभावाद्[2] भव्यासहं मत्कुठाराचलाग्नौ ॥३०॥
अहो अभाग्यं जनकस्य दुर्मतेर्जामातृरक्षाकुशलैकघातिनः ।
पणीकृतं येन धनुः पिनाकिनो दुर्बुद्धिना वार्धकनष्टचेतसा ॥३१॥
ईशस्तु भगवान् साक्षात् करुणा रसवारिधिः ।
शान्तात्मा तपसां राशिः कस्तस्मात् संबिभेति वै ॥३२॥
तत्पुत्रस्तारकस्यारिस्तादृग् दैत्यचमूपतेः ।
स्कन्दोऽपि विस्मितो[3] येन तस्य शं न भविष्यति ॥३३॥
स्कन्दोऽपि यदि नेदानीं भूतानां भयकारकः[4] ।
अहं त्वनादृतः कस्मात् कुठारकठिनाशयः ॥३४॥
धिक् क्षत्रवंशे करुणामिदं यस्याः फलं खलु ।
अतः कृपालुना भाव्यं नातः परमिहान्वये ॥३५॥
इतिब्रुवाणं भृगुवंशकेतुं कोपेन संभ्रामितसत्कुठारम् ।
सौमित्रिरभ्येत्य जवादवादीत् संरम्भसाटोपगिरा गभीरः ॥३६॥
अहो तवोपवीतश्रीरहो मौञ्जीकटिस्थिता ।
अहो कमण्डलुः पाणौ जटा मूर्ध्नि मृगाजिनम् ॥३७॥
अहो तापस केनासि विकारमिममाश्रितः ।
एतद् दृष्टिविरुद्धं ते न च कार्यं त्वया रणम् ॥३८॥

भार्गव उवाच

अहो क्षत्रियपोतस्य विवक्तुमिव[5] दुर्वचः ।
दुनोति हृदयं तावत्तन्ममैव कृपाफलम् ॥३९॥

---

१. गुर्व°—मथु०, बड़ो० । २. शत्रुणा वा—अयो० रीवाँ । ३. "रुद्रस्तु निवर्त्तः अति प्रतापी स्कन्दोऽपि येन रामेण विस्मृतश्चेत् तस्य रामस्य कल्याणं न" टि०—मथु० । ४. "नभयकारकः शान्तश्चेत् कठिनकुठारवतो ममानादरः किमर्थम्" टि०—मथु० । ५. °मिति—रीवाँ ।

कथं रे क्षत्रबन्धो ते पूर्वजाः किन्न मारिताः ।
कुठारेण ममानेन दुर्धर्षेणोरुतेजसा ॥४०॥
इति स्वगतमेवाह यावद्भार्गवसत्तमः ।
तावत् ताण्ड्यायनः शिष्यः शतानन्दस्य योगिनः ॥४१॥
उपगम्य भृगुश्रेष्ठं सादरं प्रणनाम ह ।

भार्गव उवाच

भो आयुष्मान्[1] भवान् भूयात् ताण्ड्यायन तपोनिधे ॥४२॥
विप्राग्र्य त्वदुपाध्याययजमानस्य भूभुजः ।
रुद्रचापारोपणश्रद्धा निवृत्ता नाथवा मुने ॥४३॥

ताण्ड्यायन उवाच

निवृत्ता भगवन् किंतु सहैव हरधन्वना ।

भार्गव उवाच

किमात्थ रे किमात्थ त्वं सहैव हरधन्वना ॥४४॥
स्फुटं तावन्मम ब्रूहि यथा वृत्तं[2] प्रबुद्ध्यते ।

ताण्ड्यायन उवाच

सुबाहुमारीचमुखा कौशिकाध्वरघातिनः ॥४५॥
यद्बाणानलनिर्दग्धाः क्षणात्प्रायुः पराभवम् ।
ऋष्यश्रृङ्गऋषे[3]र्भागभुवो ये राजसूनवः ॥
तेषां यः प्रथमो रामस्तेन भग्नं शरासनम् ॥४६॥

भार्गव उवाच

यस्मिन् वक्रे[4] पुरस्तिस्र दग्धा अग्नौ पतङ्गवत् ।
तदद्य दा शिशुना तेन राघवेण पराहतम् ॥४७॥
हरस्य दैवतं चापं तदा मन्ये रघोः कुलम् ।
मत्कुठारजले मग्नं मग्नमेव न संशयः ॥४८॥

---

१. आयुष्मन्—बड़ो० । २. ह्रास—रीवाँ । ३. °मखे—रीवाँ । ४. चाग्रे—रीवाँ ।

ब्रह्मोवाच

ताण्ड्यायनः ससंरम्भं ज्ञात्वा भार्गवसत्तमम् ।
उपाध्यायाय तद्वार्तां वक्तुं शीघ्रं विनिर्गतः ॥४९॥
जामदग्न्यः पुनर्नव्यविवाहमङ्गलाङ्कितम् ।
रामं निश्चित्य सहसा सहानुजमवर्णयत् ॥५०॥

भार्गव उवाच

पारेपरार्द्धकन्दर्पसुन्दरः क्षत्रबालकः ।
गाम्भीर्यं पुनरेतस्य हरस्येवातितेजसः ॥५१॥
माधुर्यं पुनरानन्दि राकाहिमरुचेरिव ।
शृङ्गारवीराद्भुतकैः किमेष घटितो रसैः ॥५२॥
ततः समुपसार्यामुं वीरौ तौ रामलक्ष्मणौ ।
निर्वर्ण्य बहुधा चित्ते कृताश्चर्यौ बभूवतुः ॥५३॥

लक्ष्मणोवाच

क्वेयञ्च धनुषो मौर्वी क्वेयं मौञ्जी च मध्यतः ।
क्वेमे सिताग्रविशिखाः क्व च वैतादृशाः कुशाः ॥५४॥
धारोज्ज्वलः क्व परशुः क्व च दिव्यकमण्डलुः ।
वीरशान्तरसावेतौ संगतौ किं परस्परम् ॥५५॥
आर्यब्रह्मक्षत्रमयं किमिदं चित्रवत् पुरः ।

श्रीराम उवाच

वत्सैवं किंतु जानासि भगवान् भार्गवो ह्ययम् ॥५६॥
क्रौञ्चाचलस्य शिखरं विद्धं येन शितैः शरैः ।
त्रिःसप्तकृत्वा विप्रेभ्यो जित्वा दत्तं महीतलम् ॥५७॥
पुरा येनैव संग्रामे जितस्तारकसूदनः ।
कुठाराञ्चलधाराभिः हैहयेन्द्रस्य दोर्बलम् ।
पुरा निराकृतो येन सोऽयं वीरस्तपोनिधिः ॥५८॥

---

१. लक्ष्येते—रीवाँ

लक्ष्मण उवाच

तर्हि साश्चर्यशीलोऽयं भगवान् भृगुनन्दनः ।
यः सुमेरुयुतां भूमिं स्वर्णश्रृङ्गीमिवैष गाम् ॥५९॥
कश्यपायर्षये दत्त्वा नात्मानं श्लाघतेतराम् ।
स्कन्दशक्तिक्षतं क्रौञ्चगिरिं वाणैर्बिभेद यः ॥६०॥

इति श्रीमदादि रामायणे ब्रह्म-भुशुण्डसंवादे रामभार्गव-संग्रामो नाम[1] सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

•

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ रामोऽञ्जलिं बध्द्वा सानुजः प्रणनाम तम् ।

भार्गव उवाच

संग्रामविषयी[2] भूया[3] इत्याशिषमवोचत ॥ १ ॥

राम उवाच

भगवन् भार्गवश्रेष्ठ करुणागाधवारिधे ।
अहं त्वनुगृहीतोऽस्मि तपसांनिधिना त्वया ॥ २ ॥
भार्गवः स्वगतं प्राह अस्याहो विनयः शिशोः ।
अतिमात्रं प्रकुप्यात्र किंस्याच्चन्द्रसुशीतले ॥ ३ ॥
ततो विमृश्य सस्मार भग्नं यच्छाम्भवं धनुः ।
बालायाश्चैव जानक्या वैषम्यं[4] स्यान्निजास्त्रतः ॥ ४ ॥
अयोग्यतममेतद्धि जमदग्निसुतस्य मे ।
आः शान्तः परशुर्घोरो रेणुका[5]कण्ठकृन्तनः ॥ ५ ॥

---

१. संग्रामे—अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० । २. °विजयी—मथु०, बड़ो० । ३. भूयादि°—अयो०, मथु०, बड़ो० । ३, वैधव्यं—मथु०, बडो० । ४, वैरिणां—रीवाँ ।

ततः प्रकाशमाहैष रामं दाशरथिं मुनिः ।
चण्डीश्वरधनुर्भङ्गप्रभवोद्गर्वभाविनोः[1] ॥ ६ ॥
वाह्वोस्तवैव रुधिरैरधुना मधुना समैः ।
भूय आसाधयिष्यामि कुण्ठारं कुण्ठितं मम ॥ ७ ॥

श्रीराम उवाच

भगवन्नधुना कर्तुं निग्रहानुग्रहौ मयि ।
स्वतन्त्रोऽस्ति भवान् किन्तु कोपबीजं न बुध्यते ॥ ८ ॥

भार्गव उवाच

अहो दर्पाढ्यता नाम बलमेतद् यदात्मना ।
अस्माभिः कथितं चापि न विजानाति दुर्नयम् ॥ ९ ॥
ननु रे तद् गुरोर्भग्नं चापं न[2] शिशुना त्वया ।
येन शिक्षितमद्यापि पुरस्त्रीविरहव्रजम् ॥१०॥

श्रीराम उवाच

भगवन्नित्यलीकेन लोकवादेन भूयसा ।
अनघे मयि संजातो मुधा कोपः कलंकितः[3] ॥११॥

भार्गव उवाच

तत्किं गिरीशचापस्य स्वस्त्यस्ति क्षत्रडिम्भक ।

श्रीराम उवाच

किंचित्स्पृष्टं न वा स्पृष्टं धनुस्तत् पुरवैरिणः ॥१२॥
तद्वै चिरेण जीर्णत्वादभज्यत करोमि किम् ।

भार्गव उवाच

अहो चन्दनदग्धेन शरेण हृदिगामिना ॥१३॥
मामयं शीतलयते ज्वलता कोपवह्निना ।
तदयं कठिनो घोरः कुठारो विशताद् गले[4] ॥१४॥

---

१. प्रभवामर्षयागिरा—रीवाँ । २. नन्वेतच्चगुरोर्धन्वा भग्नं न—अयो० । .....भग्नं धन्व—मथु०, बडो० । .....यद्गुरो—रीवाँ । ३. स्वधांको निःकलंकितः—रीवाँ । ४. विशतां जले—अयो०, रीवाँ ।

अमुष्य क्षत्रपोतस्य सीतावैषम्य[1]कारणम् ।
त्रिपुरारिधनुर्भङ्गपातकक्षालनं तथा ॥१५॥
तत्प्रवीरो भव रणे राम दाशरथे शिशो ।
उपस्थितोऽयं संग्रामो भार्गवेण मया सह ॥१६॥

श्रीराम उवाच

कुठारो विशतात् कण्ठे मा वा विप्रवरस्य ते ।
अस्तु नो दारवैषम्यं[2] गच्छतां धर्म[3]सादनम् ॥१७॥
तथापि न वयं वीरा ब्राह्मणेषु कदाप्यहो ।

भार्गव उवाच

अहो प्रणति[4]मात्रेण जानासि भृगुनन्दनम् ॥१८॥
वत्स ब्राह्मणमात्रेण दुष्टक्षत्रनिषूदनम् ।
सोऽहं परशुरामोऽस्मि यः स्कन्दमजयं पुरा ॥१९॥
क्षत्रजात्या गर्वितस्त्वं मां तृणाय न मन्यसे ।
तद्ब्रह्मक्षत्रयोस्तावदिदानीं का गरीयसी[5] ॥२०॥
इतिसङ्ग्राममात्रेण भविष्यत्यद्य निर्णयः ।

राम उवाच

न ब्रह्मन् भवता सार्द्धं[6] रणवार्ता घटेत नः ॥२१॥
क्षत्रं हीनबलं तावद् ब्रह्मैव बलवत्तरम् ।
ऊर्जस्वलं च परमं[7] विप्राणां ब्रह्मवर्चसम् ॥२१॥
दुराधर्षतमं तेज उपवीतस्य शाश्वतम् ।
जात्यैव गुरवो विप्राः कथं नेयाः शुभेच्छुभिः ॥२२॥

लक्ष्मण उवाच

धनुरेकगुणं धत्ते[8] बलमस्माकमूर्जितम् ।
उपवीतं[9] नवगुणं विशिष्टं भवतां बलम् ॥२३॥

---

१. वैधव्य° । २. °वैधव्य—मथु०, बडो० । ३. यम°—मथु०, बडो० । ४. तापस°—रीवाँ । ५. कलहागमः—रीवाँ । ६. न ब्रह्मणेन भवता—रीवाँ । ७. °मात्मानं—अयो०, मान्यं च—मथु०, बडो० । ८. इदमेकगुणं धन्व—अयो०, मथु०, बडो० । ९. °वीतेन—रीवाँ ।

राम उवाच

वत्सैवमेव किं त्वस्मिन् माननीयतमे मुनौ ।
अलं दुर्विनयाचारैर्यतोऽसौ दुर्मनायते ॥२४॥

भार्गव उवाच

अस्य को वा शिशोर्दोषः कुठारस्यैव दूषणम् ।
यदस्य नावधीत् पूर्वं पितृपैतामहं कुलम् ॥
धिक् क्षत्रगोत्रे करुणां यत्फलं दुर्वचस्त्विदम् ॥२५॥

राम उवाच

अलमस्मिन् क्षीरकण्ठे कोपेन भृगुवल्लभ ।
तत् क्षम्यतां मुनीशान पादयोस्ते नता वयम् ॥२६॥

भार्गव उवाच

किमुच्यते क्षीरकण्ठो विषकण्ठोऽ[1]स्ति खल्वसौ ।

लक्ष्मण उवाच

विषकण्ठस्य शिष्येण क्षन्तव्यो भवतास्मि भोः ॥२७॥

भार्गव उवाच

विषकण्ठत्वसाम्येन तत्किं त्वमपि मे गुरुः ।

लक्ष्मण उवाच

भगवन्नन्यतात्पर्यान्मयोक्तं क्षन्तुमर्हसि ॥२८॥
किरीटमधिरूढेऽपि बाले शिशिररोचिषि ।
शितिकण्ठस्य नो चित्ते धत्ते कोपाङ्कुरः पदम् ॥२९॥

भार्गव उवाच

अहो क्षत्रवटोरस्य वाक्पाटव[2]मिहाद्भुतम् ।
क्षान्तमेव मया तावदयन्तु क्षमते न हि ॥३०॥
अशेषक्षत्रियवधे दीक्षितोऽयं परश्वधः ।
कीलालकोकसकचैः क्षत्रियाणां समन्ततः ॥३१॥

---

१. विषोत्कण्ठो – मथु०, बडो० । २. चापल्यं—रीवाँ ।

त्रिवर्णा पृथिवीप्येषा कृता क्षत्रियवर्जिता ।
नीरेणुकीकृता भूमिर्दुष्टक्षत्रियशोणितैः ॥३२॥
तथा स्वर्गवधूवृन्दस्वयंवरमहोत्सवे ।
पद्ममालासहस्राणां रेणुव्याप्तं कृतं नभः ॥३३॥

लक्ष्मण उवाच

भार्गव त्वत्कुठारेण कृता नीरेणुका मही ।

भार्गव उवाच

आस्तां तावत् कथं पापो रेणुकावृत्तमुत्कटम् ॥३४॥
संस्मारयति मेऽनेन मर्मस्पर्शं करोत्युत ।
अये[1] क्षत्रियपोत त्वां निरावाधनिमित्तकम्[2] ॥३५॥
कठोरभाषिणं कण्ठे हनिष्यामि तवाधुना ।

जनक उवाच

जामदग्न्य मुधा वाक्यैः किमित्येवं प्रगल्भसे ।
तदिदानीं भवांच्छास्ता गृह्यतां वै शरासनम् ॥३६॥

भार्गव उवाच

किमयं जनकः शिष्यो[3] याज्ञवल्क्यस्य योगिनः[4] ।
शरासनेन किं तेऽद्य पद्मासनमुपाश्रय ॥३७॥
युष्माकं क्षत्र[5]विप्राणां मिथ्योत्कण्ठा रणे खलु ।
तेऽन्ये वीरा खड्गधाराधौतारिस्त्रीदृगञ्जनाः ॥३८॥
योगमेवावलम्बस्व न युद्धं भवता समम् ।
रहस्य[6]चर्चया त्वं हि याज्ञवल्क्यं मुनिं भज ॥३९॥
एतावेव पुनः क्षत्रविस्फुलिङ्गौ मदोद्धतौ ।
निर्वापयामि परशुधाराञ्चलजलैर्मुहुः ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

पुनः शतानन्द ऋषिः समागम्य जगाद तम् ॥४१॥

---

१. अरे—रीवाँ । २. निरपराधं (निःपरा°-मथु०,) निहन्मि किं—अयो०, मथु०, बड़ो० । ३. जनको वक्ति—अयो०, मथु०, बड़ो० । ४. °वल्क्ययोगिनः—मथु०, बडो० । ५. तत्र—अयो० । ६. रणस्य—अयो०, मथु०, बड़ो० ।

शतानन्द उवाच

जामदग्न्य कथं तादृक् शान्तस्य वरयोगिनः ।
जमदग्नेः सुतोऽपि त्वं जातोऽसि शमदुर्गतः ॥४२॥

भार्गव उवाच

कस्मात्त्वया शिक्षितेयं शान्तिरेतादृशी खलु ।
गौतमाद्वा भगवतः शक्राद्वा मातृजारतः ॥४३॥

शतानन्द उवाच

आः पाप क्षत्रियापुत्र मातृकण्ठनिषूदन ।
कुलाङ्गार तपस्तुङ्गमिदमाङ्गिरसं कुलम् ॥
कलङ्कयसि मिथ्येव केनेदं शिक्षितं तव ॥४४॥

भार्गव उवाच

आः पाप पांसुलापुत्र विशेषात् कुलपांसन ।
भृगूणामग्रतः स्वीयं तपः श्रावयसेऽधुना[1] ॥४५॥

राम उवाच

भगवन् सर्वविख्यातं भृगूणामङ्गिरसां तथा ।
तपः सुदुश्चरं[2] तत्र भृगुशिष्ये विशेषतः ॥४६॥
अतो विज्ञापयाम्येवं मुनीनामुचितं हि वः ।
तपः शान्तं मन श्चैव स्फाटिका मणिमालिका ॥४७॥
कुशाः कुण्डी तथा दण्ड उटजेषु च केतनम् ।
नोग्रं वचो भ्रुभङ्गश्च न वाणधनुषी तथा ॥४८॥
न वा परश्वधो हस्ते धर्मोऽयं च सनातनः ।
अशुभः परशुः क्वासौ पवित्रं च क्व वा कुलम् ॥४९॥
क्वेदमुग्रं धनुर्ब्रह्मन् क्व च शीलं सुनिर्मलम् ।
क्व शराः सुमहाघोराः पर्णशाला तथा क्व वा ॥५०॥

भार्गव उवाच

कथमन्यमुनेस्तुल्यं मन्यसे मां सुर्द्धरम् ।
स एष जामदग्न्योऽस्मि यः क्षत्रियकुलान्तकः ॥५१॥

---

१. क्ष्मापयसे—मथु०, बड़ो० । २. तपःसुचरते—रीवाँ ।

रक्तधारासरित्पूरे निवृत्तोऽभिषवो मम ।
तत्र क्षत्र[1]शिरःकेशाः कुशा एवाभवन्मम ॥५२॥
पितॄंस्तर्पयतो रक्तैरञ्जलिप्रसरोद्गतैः ।
तदहं हि यथा पूर्वं कृत्वा वारत्रिसप्तकम् ॥५३॥
कदनं पूर्वभूपानामकार्षं शोणितैर्नदीम् ।
तथान्यत्सप्तकृत्व[2]स्त्रिकृत्वा विशसनं पुनः ॥५४॥
कापालीमक्षमालां तां भैरवस्य निवेदये ।

श्रीराम उवाच

प्रसीद रोषतो ब्रह्मन् जितं वारत्रिसप्तकम् ।
मा हारय यशस्तत्त्वं एकवारेण भार्गव[3] ॥५६॥

भार्गव उवाच

कथं रे हारयिष्यामि यशः पूर्वं विनिर्जितम् ।
सर्वे भवन्तः सहिताः सहन्त[4] विशिखान् मम ॥५७॥
ईशत्यक्तं पुराणं तद् वलितं भवता धनुः ।
तेन गर्वायसे राम किमित्येवं मुहुर्मुहुः ॥५८॥
सोढुं न शक्तो मद्बाणान् भवतो गुरुरप्यसौ ।
त्यक्त्वा क्षत्रतनुं[5] यस्माद् ब्राह्मीं वृत्तिमुपाश्रितः ॥५९॥

श्रीराम उवाच

भगवन्तं गाधिसूनुं विश्वामित्रं जगद्गुरुम् ।
अधिक्षिपसि तेनैव सोढव्यस्त्वं न चाधुना[6] ॥६०॥
जामदग्न्यमुने भग्नं न भग्नं वापि तद्धनुः ।
मग्नं मनसि ते शल्यं किंभवेत्तावता पुनः ॥६१॥
त्र्यैयक्षं वैष्णवं चापि भवत्वाख्यातमत्र हि ।
युद्धं चेद्वाञ्छसि तदा वयं सज्जा रणाङ्गणे ॥६२॥

---

१. क्षत्रभर्तृ°—अयो०, रीवाँ । २.° कृत्वश्च—मथु०, बड़ो० । ३. मह्यं हारय तत्सर्वं तदा तुभ्यं ददे रणम्—रीवाँ, अतः परं—"महामर्षेण युक्तस्त्वमादरेण च भार्गव ।" इत्यधिकः पाठः—रीवाँ । ४. संहतान्—मथु०, बड़ो० । ५. क्षत्र धनु—अयो० । ६. नाधुना मया—रीवाँ ।

ब्रह्मोवाच

एवं वादे निवृत्तेऽभूद्वीरकेलिः परस्परम् ।
ततः स भार्गवो रामं निर्वर्ण्य बहुधा मुनिः ॥६३॥
उवाच वचनं शान्तं वीतरोषस्तु तत्क्षणात् ।
अहो त्रैलोक्यममुना सुखितं जायतेतराम्[1] ॥६४॥
कोऽयं सौन्दर्यमाधुर्यसमुदायः सुखावहः[2] ।
बालः कुवलयश्यामो रामः कमललोचनः ॥६५॥
दृष्टिमानन्दयत्येष जगतां पुरुषोत्तमः ।
कस्तेन समरं कुर्यान्नेत्रानन्देन स्वामिना ॥६६॥
स पूर्णः[3] पुरुषो ह्येषोऽवतीर्णो भूमिभारहृत् ।
ज्ञातसारो[4] न केनापि मनुजत्वेन मन्यते ॥६७॥
पूर्णं ब्रह्म चिदानन्दं मनुजाकृति दृश्यते ।
नानेन सदृशं वस्तु दृश्यते भुवनत्रये ॥६८॥
इदं तत्तेजसां तेजो ज्ञेयानां ज्ञेयमुत्तमम् ।
न ज्ञातं येन तज्जन्म मुधैव समभूद् भुवि ॥६९॥
येन ज्ञातो ह्यसौ देवः समृत्योर्मृत्युतामियात् ।
नमोऽस्मै पूर्णरूपाय पुरुषाय महात्मने ॥७०॥
योगीन्द्रहृदयागारवासिने ब्रह्मरूपिणे ।
अनेन तुल्यतामेति एष एव महाशयः ॥७१॥
अयं रामो लोकरामो रमाया वल्लभः स्वयम् ।
नमाम्यमुष्य चरणौ बालकस्य महात्मनः ॥७२॥
एष एव गवेन्द्रस्य सुखितस्यालये वसन् ।
जघान राक्षसानीकं स्ववीर्येण महाबलम् ॥७३॥
बलकृष्णादिरूपाणि अमुष्यैव महात्मनः ।
एष पूर्णः स्वयं रामो विश्वरूपो जनार्दनः ॥७४॥
नचास्य प्रभवो नान्तो न मध्यं न पुनर्भवः ।
पूर्णरूपः स्वयं लाभः स्वतन्त्रो निरवग्रहः ॥७५॥

---

१. जायतां तदा—रीवाँ । २. पुरो मम—मथु०, ब्रड़ो० । ३. सुपूर्णः—मथु०, ब्रड़ो० । ४. ज्ञाततत्त्वो—रीवाँ ।

नास्य लीलाविधौ कश्चिद्धेतुरस्ति जगत्त्रये ।
अयमेव स्वरूपेण चिदानन्दमयाकृतिः ॥७६॥
अमुष्य सहजा[1]शक्तिः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।
अवतीर्णोऽयमधुना मम तेजोऽपहारकः ॥७७॥
ज्ञाततत्त्वः प्रभुः पूर्णो रणं कः कर्तुमिच्छति ।
क्षामयाम्यपराधं स्वमस्य पादाब्जवन्दनात् ॥७८॥
इत्युक्त्वा सोऽग्रहीत् पादौ रामस्य भृगुनन्दनः ।
एवं मा कुरु हे ब्रह्मन् वन्द्योऽसि जगतः प्रभो ॥७९॥
जामदग्न्य तपोराशौ त्वयि नः संततं नतिः ।
ततोऽञ्जलिपुटे बद्ध्वा रामः पङ्कजलोचनः ॥
ववन्दे मुनिशार्दूलं भार्गवं वीतविग्रहम् ॥८०॥

भार्गव उवाच

निसर्गकल्याणविधौ त्वय्याशोः पुनरुत्थिता ।
तथाप्याशास्महे नित्यं वयं भक्ताः प्रभुर्भवान् ॥८१॥
विस्तारयद्यशः शुभ्रं राघवेन्द्रकुलेऽमले ।
शरदां च सहस्राणि तप[2] त्रैलोक्यमण्डले ॥८२॥
हर राम भुवो भारं कृतार्थय निजान् जनान् ।
इत्युक्त्वा तुष्टहृदयो निर्जगाम भृगूत्तमः ॥८३॥

इतिश्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे भार्गव-निर्जयो नाम[3] अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

---

१. अमुष्यास्य सदा°—मथु, बड़ो० । २. तपन्—रीवाँ । ३. °निर्जये—अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

विश्वामित्रस्यानुमत्या जनकः सुमहाशयः[1] ।
उर्मिलां लक्ष्मणायादान्माण्डवीं भरताय च ॥ १ ॥
श्रुतकीर्तिं शत्रुहन्त्रे विधिवत् प्रददौ नृपः ।
पारिवर्हमदाद् भूयः सर्वेभ्यश्च पृथक् पृथक् ॥ २ ॥
गजान् दशसहस्राणि हयानामयुतं नृपः ।
सुवर्णानि च रत्नानि रथांश्च सपरिच्छदान् ॥ ३ ॥
दासीः कमलपत्राक्षीः सालङ्काराः शुभाननाः ।
सीतायै जनकः प्रादादन्यच्च विपुलं धनम् ॥ ४ ॥
उर्मिलायै च माण्डव्यै श्रुतकीर्त्यै तथैव च ।
असंख्येयं वस्तु प्रादादुत्तरोत्तरतो वरम्[2] ॥ ५ ॥
पुरः[3] प्रस्थानसमये सुमहान् मङ्गलोत्सवः ।
अभूद्राघववर्यस्य वरवध्वति[4]मङ्गलम् ॥ ६ ॥
विवाहमङ्गले पीतवस्त्रवेशादिभूषिताः ।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता रेजिरेतराम् ॥ ७ ॥
शङ्खदुन्दुभिभेरीभिः पणवानकगोमुखैः ।
अन्यैर्माङ्गलिकैर्वाद्यैः स शब्दः सुमहानभूत् ॥ ८ ॥
विमानावलिभिर्व्योम देवैः कौतुकसंगतैः ।
सिद्धविद्याधराद्यैश्च व्याप्तमासीत् समन्ततः ॥ ९ ॥
मङ्गलं सुमहत्तत्र नरनारीगणेष्वभूत् ।
सीतारामौ शुभाशीर्भिर्ब्राह्मणाः समपोषयन् ॥१०॥
सुमहान्मङ्गलोपेतो राजा दशरथः कृती ।
सवधूकैः सुतैर्युक्तः साकेतपुरमागमत् ॥११॥
तत्र वैवाहिकं दिव्यं कौतुकं परिपश्यताम् ।
जनानां नयनानन्दो बभूव सुमहान् मुहुः ॥१२॥

---

१. स महा°—मथु०, बड़ो० । २. मनोज्ञं च ततो वरं—अयो०, रीवाँ ।
३. पुरा—अयो०, मथु०, बड़ो० । ४. °वध्वे सु°—रीवाँ ।

गीतवाद्यविनोदेन महता संभ्रमेण च ।
वरवद्धूवोः प्रवेशेणाऽप्ययोध्या शुशुभेतराम् ॥१३॥
चित्रध्वजपताकाद्यैर्भवनानि विरेजिरे ।
लाजदध्यक्षतजलैः पुराध्वानो विरेजिरे ॥१४॥
स्थले-स्थले[1] च नारीणां सुगीतं समजायत ।
शुभाशिषः प्रयुञ्जाना ब्राह्मणा समुपाययुः ॥१५॥
नर्तक्यो ननृतुश्चैव गन्धर्वा जगुरुच्चकैः ।
जगत् प्रमुमुदे सर्वं सीतारामस्वयंवरे ॥१६॥
भक्ताः परमहंसाश्च महाभागवता नराः ।
दृष्ट्वा सीतायुतं रामं स्वभाग्यं[2] बहु मेनिरे ॥१७॥
तथा सूक्ष्मदृशः केचिद्योगिनो रामसेवकाः ।
रामे नित्यस्थितां सीतां विशेषाद् ददृशुर्मुदा ॥१८॥
अमृतौघप्रवर्षी[3] च स कालः समभून्नृणाम् ।
यत्र सीतायुतं रामं ददृशुः प्राकृता अपि ॥१९॥
परंब्रह्म पराशक्तिः सीतारामेति कथ्यते ।
चिदानन्दवपुः साक्षात्कल्याणगुणचर्चितम्[4] ॥२०॥
तद्यस्य गोचरं दृष्टयोः स वै धन्यतरो नरः ।
अयोध्यास्थान् जनान् सर्वान् पशुपक्ष्यन्तिजानपि ॥२१॥
दृग्भ्यामा[5]नन्दयामास रामः सीतावधूयुतः ।
यथा राकाचन्द्रिकया युतः शारदचन्द्रमाः ॥२२॥
सुखितस्यालये स्थित्वा गोपेन्द्रनन्दनात्मजा ।
या रता रघुरामेण सैवाभूज्जनकात्मजा ॥२३॥
अंशरूपेण सर्वत्र सीता सर्वस्वरूपिणी ।
नानया रहितो रामः क्वचित्स्थास्यति निश्चितम् ॥२४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे सीतारामसमागमनो नाम एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

---

१. स्थाने स्थाने—रीवाँ । २. हृद्भाग्यं—अयो०, मथु०, बड़ो० । ३. °घस्य वर्षा—रीवाँ । ४. °वर्जितम्—बड़ो० । ५. दृशोरा°—रीवाँ ।

अशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इत्थं गाधिसुतो रामं नीत्वा धनुरशिक्षयत् ।
धनुर्विद्याप्रसंगेन तेन यज्ञमरक्षयत् ॥ १ ॥
कृतोपकारं तं स्वस्य यज्ञप्रत्यूहनाशनात् ।
सीतास्वयंवरे नीत्वा तां पत्नीं समकल्पयत् ॥ २ ॥
वधूयुतं वरं रामं सानुजं पुनरानयत् ।
अयोध्यानगरीमध्ये प्रजासौख्यं वितीर्णवान् ॥ ३ ॥
एवं महामना धीरो गाधेयो मुनिसत्तमः ।
चक्रे मैत्रीं दशरथेन राज्ञा धर्मेण भूभृता[1] ॥ ४ ॥
नृपं मुनिरनुज्ञाय स्वाश्रमं समगात्ततः ।
रामः स्थितो यौवराज्ये प्रजासंतोषमाचरत् ॥ ५ ॥
सीतां संतोषयन् भूयो रेमे[2] केलिकदम्बकैः ।
सहजानन्दिनीं रामां रतिकोटिगरीयसीम् ॥ ६ ॥
कृतयज्ञक्रियारक्षो हतराक्षससैनिकः ।
रामश्चक्रे यौवराज्यं नन्दन् दशरथं नृपम् ॥ ७ ॥
यौवराज्ये स्थितो रामः प्रमोदविपिने हि तत् ।
नित्यं गच्छति केल्यर्थं लतानां भूरिसंपदा ॥ ८ ॥

भुशुण्ड उवाच

का इमास्तत्र विपिने लताललितसंपदः ।
यासु श्रीरामभोग्यत्वमाधुर्यं संततं स्थितम् ॥ ९ ॥
लताः स्थावररूपास्ताः कथं रामेण रेमिरे ।
एतन्नः संशयं छिन्धि भूयो लोकपितामह ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इदं रहस्यं परमं चरित्रं रामस्य ते वच्मि पुराणकल्पम् ।
खगेन्द्र वेदै[3]रपि गीतपूर्वं नित्यं महाभागवतैकहृद्यम् ॥११॥

---

१. भूभुजा—आयो० । २. स्मरकेलि°—मथु०, बड़ो० । ३. देवैरपि—अयो० ।

यौवराज्ये स्थितं राममभिरामवयोगुणम्[1] ।
उदारं रूपलावण्य[2]निधिं परमधार्मिकम् ॥१२॥
रममाणं श्रिया साकं रामया सीतया तया ।
पीयूषमिव वर्षन्तं नेत्रानन्दं स्ववन्धुषु ॥१३॥
जननीं तोषयन्तं च वात्सल्यरसरूपिणीम् ।
कृतनीराजनं नित्यं सायंप्रातर्दिने दिने ॥१४॥
मृगयाभिः खेलमानं धावन्तं घनकानने ।
पितुर्दशरथस्यापि पूरयन्तं मनोरथान् ॥१५॥
सहस्रं शरदो याताः निवसन्तं पितुर्गृहे ।
कदाचिदेकान्तचरं नारदः प्रत्यपद्यत ॥१६॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय ब्रह्मदूतं मुनीश्वरम् ।
सुस्थितं चार्हयाञ्चक्रे पाद्यार्घ्याचमनादिभिः ॥१७॥
कृतातिथ्यो मुनिश्रेष्ठो नन्दथुः प्रीतमानसः ।
उवाच स्मयमानस्तं प्रीत्युन्नमितलोचनः ॥१८॥

नारद उवाच

तव राम चरित्रेण नन्दितं सकलं जगत् ।
भक्ताः परमहंसाश्च श्रवणेन कृतार्थिताः ॥१९॥
गायन्ति सुरनार्यश्च[3] सुन्दरं विमलं यशः ।
गङ्गाम्बुपावनं साक्षात् पीयूषौघप्रवर्षणम् ॥२०॥
रामरामेति भवतो यन्नामश्रुतिगोचरम् ।
तदेव शरणं लोके इदानीं निश्चितं प्रभो ॥२१॥
नाम्ना रूपेण बहुधा क्रीडसे पुरुषोत्तम ।
लीलया रमयन् विश्वं भक्तान् भागवतान् नरान् ॥२२॥
नहि ते पूर्णरूपस्य न्यूनता क्वापि दृश्यते ।
रूपमाधुर्यविक्रान्तिगुणशीलादिषु प्रभो ॥२३॥
पूर्णोऽसि ब्रह्मरूपोऽसि तादृशं चरितं तव ।
जीवनं भक्तलोकानामवाङ्मनसगोचरम् ॥२४॥

---

१. कल्याणगुणसागरं—रीवाँ । २. नित्यलावण्यं—रीवाँ । ३. °स्ते—मथु०, बड़ो० ।

सर्वं जानासि विषयं कृतं कर्तव्यमेव च ।
नापेक्षसे नियोगं त्वं ब्रह्मणोऽपि महात्मनः ॥२५॥
तथापि सेवकैर्नित्यं प्रार्थनीयः प्रभुः प्रभो ।
स्वतन्त्रोच्छो दयासिन्धुः पूर्णात्मा भक्तशेवधिः ॥२६॥
इति विज्ञाय विधिना प्रेषितोऽहं त्वदन्तिके ।
कथयिष्यामि संदेशं शृणोतु भगवान् किल ॥२७॥
साकेतपुरपर्यन्ते यद्रसालवनं महत् ।
तत्र नार्यो लतारूपास्तव भक्ता जगत्पते ॥२८॥
मन्मानसभवाः पूर्वं सृष्ट्यादौ ब्रह्मणः किल ।
ब्रह्मकल्पे संप्रसूता[1] विधेर्मानसतो मम ॥२९॥
चन्द्राननाः शुभोदर्का उदारास्तनुमध्यमाः ।
तडित्कोटिप्रभाः श्यामाः सुनासामृतलोचनाः ॥३०॥
इन्दिरा एव ताः साक्षात् सौन्दर्येण स्मरप्रियाः[2] ।
ज्योत्स्नावलक्षहसिता असितापाङ्गकेलयः ॥३१॥
ता वीक्ष्य मुमुहुः सर्वे देवता विधिपार्श्वतः ।
संपन्नवयसो ज्ञात्वा प्रोक्तवानहमुत्तमम् ॥३२॥
सुन्दरीः सकलास्तास्तु निजमानससंभवाः ।
भो भो पुत्र्यो दिव्यरूपा भवन्त्यः स्वोचितान् जनान् ॥३३॥
वृण्वन्तु देवगन्धर्वराक्षसेषु यथास्पृहम् ।
नगनागमनुष्येषु पशुषु द्रुमपक्षिषु ॥३४॥
यथायोगं[3] यथाकामं लभन्तां शुभगान् वरान् ।
स्त्रीणां हि भर्तैव गतिर्भर्तुर्धर्मः सदागतिः ॥३५॥
इत्युक्त्वा विरते वाक्यं मयि[4] नोचुः शुचिस्मिताः ।
ततोऽहं लज्जिता ज्ञात्वा ब्राह्मीं विद्यामुवाच ह ॥३६॥
वद[5] त्वं पुत्रिके एता भगिनीर्मन्मनोभवाः[6] ।
वरार्थं स्पृहयन्त्वेतास्त्रैलोक्ये भूरितेजसम् ॥
सरस्वती तु ताः सर्वा एतत् प्रोक्तवती वचः ॥३७॥

---

१. प्रसूताभि—अयो० । २. °र्थे रतिराशयः—रीवाँ । ३. °योग्यं—रीवाँ ।
४. यदि—रीवाँ । ५. यदि—रीवाँ । ६. °दयाः—रीवाँ ।

सरस्वत्युवाच

अये भगिन्यः शृण्वन्तु हितं वः प्रोच्यते वचः ।
विधीयतां तत्तथैव ममैवाज्ञातमा चिरम् ॥३८॥
देवानां प्रवरः शक्रः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ।
ततश्च द्वादशादित्या वसवोऽष्टौ च शंकराः ॥३९॥
एकादश च विश्वे च साध्याश्च मरुतस्तथा ।
अन्ये च विविधैश्वर्यभूषिता देवसत्तमाः[1] ॥४०॥
गन्धर्वाश्च तथा सिद्धा मुख्याश्चित्ररथादयः ।
दैत्याश्च बहवः सन्ति मुख्यस्तेषां वलिर्मतः ॥४१॥
राक्षसाश्चैव विविधा भूतिभाजो भवे मम ।
तथैव दानवाः सन्ति वराद्या बलशालिनः ॥४२॥
मनुष्याणां नृपाः श्रेष्ठा मर्त्यलोके सहस्रशः ।
स्रोतसां सागरो राजा नगानां च हिमालयः ॥४३॥
मेरुर्वा सर्वदेवानां स्थानभूतो मनोरमः ।
सुपर्णो वासुकिः श्रेष्ठो हरेरंशः सनातनः ॥४४॥
एषां मध्ये यथाकामं वरार्थं प्रतिपद्यते ।
इत्यादेशो विधेः सख्यस्त्रैलोक्यपरमेष्ठिनः ॥४५॥
विधीयतां तथा[2] कार्यं भवतीनां हितं हि तत् ।
तदाकर्ण्यावदन् वाक्यं ताः सर्वाः पद्मलोचनाः ॥४६॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे वल्लरीमोक्षोपाख्यानं[3]
नाम अशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

---

१. विविधा देवा विविधैश्वर्यभूषिताः—मथु०, बड़ो० । २. यथा—रीवाँ ।
३. °ख्याने—अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

एकाशीतितमोऽध्यायः

कन्यका[1] ऊचुः

सरस्वति महाप्राज्ञे कथमेवं ब्रवीषि नः ।
तुच्छं हि जगदेवेदं आब्रह्मस्तम्बतोऽखिलम्[2] ॥ १ ॥
सारमेकं रामनाम विश्वे यस्य महात्मनः ।
रामस्य देववन्द्यस्य त्रयीतत्त्वार्थरूपिणम् [णः] ॥२॥
कायेन मनसा वाचा तमेवाखिलरूपिणम् ।
प्रतिपद्यामहे नान्यं देवं गन्धर्वमेव च ॥ ३ ॥
अनित्यैव विधेर्लक्ष्मीर्वसूनां वासवस्य च ।
गन्धर्वाणां दानवानां दैत्यानां चैव रक्षसाम् ॥ ४ ॥
इति विज्ञाय गणितं तृणवत् सकलं जगत् ।
ततश्चुकोप सहसा तास्वहं[3] प्रतिकूलतः ॥ ५ ॥
उवाचपरुषं वाक्यं रुषा रञ्जितलोचनः ।
भवतीनामलभ्योऽसौ स्त्रीणां रामः सुदुर्लभः ॥ ६ ॥
भर्तृद्वारा[4] गतिस्तासां युष्माकं विधिदर्शिता[5] ।
तच्चेन्न मन्यथ तदा स्थावरा भवत स्त्रियः ॥ ७ ॥
मां शक्रं च तथा देवं [व] गणं सकलमद्भुतम् ।
गन्धर्वांश्च तथा दिव्यानन्यांश्च मम सृष्टिजान् ॥ ८ ॥
यतोऽवगणयाञ्चक्रुर्यूयं पद्मविलोचनाः ।
तेन दोषेण गन्धर्व्यः[6] स्थावरीं वृत्तिमाप्स्यथ ॥ ९ ॥
इत्युक्त्वा परुषं शापं[7] विरते मयि तत्क्षणात् ।
प्रोचुस्ताः सकलाः शप्ताः संतप्ता निजमानसे ॥१०॥

---

१. कन्या—अयो०, रीवाँ । २. तोषितम्—अयो० । ३. ताः सर्वाः—अयो०, रीवाँ । ४. भर्ता नरो—रीवाँ । ५. दर्शितः—रीवाँ । ६. गंधर्वाः—रीवाँ । ७. परुषा तत्र—रीवाँ ।

कन्या ऊचुः

कदा विधे[1] विमोक्ष्यामः[2] शापादस्माद्भयङ्करात् ।
असंशयन्नः संतप्ता एतद् ब्रूहि पितामह ॥११॥
यथा[3] कुर्यात् पिता नृणां सदसद्वा तथा भवेत् ।
पितैव चेदशुभकृत् तर्हि शर्म करोतु कः ॥१२॥
तदाहमूचे निजमानसोद्भवाः कन्याः स्थिताः पुरतः शापतप्ताः ।
निर्मायभूयः करुणावशंवदः तासां रूपं सार्थकं संविधत्सुः ॥१३॥
प्राप्ते सारस्वते कल्पे द्वाविंशतितमे युगे ।
त्रेतायां सरयूतीरे त्रिंशद्योजनमण्डले ॥१४॥
अयोध्यायां ब्रह्मपुर्य्यां स्वयं रामो भविष्यति ।
भुवो भारावताराय पूर्णब्रह्म सनातनः ॥१५॥
राम एव स्वयं स्वामी शापं वो मोचयिष्यति ।
भविष्यति च भर्ता वः स एव जगदीश्वरः ॥१६॥
तत्पादपद्मरजसा धूतशापा भविष्यथ ।
तावत्तत्र लतारूपमास्थाय सरयूतटे ॥१७॥
तिष्ठन्तु सकला यूयं रसालविपिने शुभे ।
इत्युक्त्वा मयि निर्याते लतास्ता अभवन् भुवि ॥१८॥
यथानिरूपिते स्थाने पुष्पवत्यः फलानताः ।
रसालद्रुमस्कन्धेषु परिरब्धसुविग्रहाः ॥१९॥
षट्त्रिंशत्कोटिगुणिताः सौरभाञ्चितविग्रहाः ।
वर्षावातातपहिमं सहन्त्यो व्रतकर्शिताः ॥२०॥
तलच्छायानिषादीनि शिवलिङ्गानि कोटिशः ।
पूजयन्त्यः सुपुष्पौघैः काले-काले दिवानिशम् ॥२१॥
एवं सारस्वतं कल्पं कष्टेन समुपाश्रिताः ।
तासां समुद्धृतिं राम इदानीं कर्तुमर्हसि ॥२२॥
अवतीर्णः सदा च त्वं परमात्मा सनातनः ।
समुद्धर विलम्बेन नोपेक्षस्व स्वसेवकान् ॥२३॥

---

१. विभो—अयो० । २. निर्मोक्ष्यामः—मथु०, बड़ो० । ३. यावत्—रीवाँ ।

अतः परं विलम्बस्तु तासां सौख्येऽन्तरायकः ।
एतद्विरञ्चिराह त्वां राम राघवपुङ्गव ॥२४॥
अतः परं प्रभो तावद्यथार्हं कर्तुमर्हसि ।
मया लब्धं दर्शनं ते राम पूर्णो मनोरथः ॥२५॥
विहितो धातुरादेशो भक्तोद्धार[1]कृतेऽर्थिनः ।
अतः परं स्वर्गन्तुं मा[2]मनुजानासि राघव ॥२६॥
त्वद्यशो गाययिष्यामि गन्धर्वान् ललितैः स्वरैः ।
वीणां क्वणन् सुमधुरां सख्या तुम्बुरुणा युतः ॥२७॥
इत्युक्त्वा निर्ययौ तस्माद्देवर्षिर्नारदाभिधः ।
रामेण वन्दितो भूयः सीतया चैव भक्तितः ॥२८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे विधिविज्ञापनं नाम[3]
एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

•

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कदाचिद् भ्रातृभिः सार्द्धं मृगयार्थं विनिर्गतः ।
रामः कुवलयश्यामः कौतुकी सेनया वृतः ॥ १ ॥
दन्तिनो वाजिनश्चैव स्यन्दनानि च पत्तयः ।
सज्जिताः पत्तयो रेजुर्नृपसूनोर्महात्मनः ॥ २ ॥
तत्र रामः स्वयं दिव्यरथोपस्थे विराजितः ।
शारदाभ्रोपरि भ्राजन् पूर्णचन्द्र इवाभवत् ॥ ३ ॥
आवद्धरत्नकनकेषुधिरात्तचापः
सन्नाहवान् कनकवज्रशिरस्त्रधारी ।
मूर्तः स वीर इव सच्चतुरङ्गिणीषु
रेजे महोज्ज्वलवपुर्नृपतेः कुमारः ॥ ४ ॥

---

१. भक्तिद्वार°—अयो०, रीवाँ। २. स्वर्गंगंतुमनु—रीवाँ। ३. विज्ञापने—अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो०।

महत्या सेनया युक्तः पुरलोचनसौख्यदः ।
अगमत् काननं घोरं सरयूतटभूमिषु ॥ ५ ॥
भ्राम्यत्प्रसूतकरिणीकरभं समन्तान्मत्तेभवृंहितदरीप्रतिनादभीमम् ।
विक्रान्तकेसरिकुलं विलुलल्लुलायं वाराहखातवनमुस्तलसन्मयूरम् ॥ ६ ॥
घनभूरुहराजीभिः समन्ताद् दुर्गमं महत् ।
कूर्दमानमृगीपोतं मत्तश्वापदभीषणम् ॥ ७ ॥
व्यालोलूकरवाक्रान्तं शललीकुलदुर्गमम् ।
माद्यत्तरक्षुशरभं[1] शार्दूलगणनादितम् ॥ ८ ॥
संभ्राम्यदुन्मदानीकदैत्यदानवराक्षसम् ।
लसद्वनलताकुञ्जलीनकेसरिपोतकम् ॥ ९ ॥
कूजत्कोकिलकीराढ्यं प्रमत्तभ्रमरीकुलम् ।
करालोच्छूनभल्लूकपूर्णमानदरीविलम् ॥१०॥
प्रविष्ट एव रामस्तु धनुर्मुक्तमहेषुभिः ।
त्रासयामास दुर्जीवान् क्रूरान् स्वकुलघातकान् ॥११॥
एक एव बली रामः संजह्रे भीषणान् हरीन् ।
शार्दूलांश्च तरक्षूंश्च महिषांश्चातिभीषणान् ॥१२॥
दुष्टानि सर्वसत्त्वानि घातयामास कानने ।
रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतश्चैव शत्रुहा ॥१३॥
मृगेषु मोचयामास मृगयासुपटून् शुनः ।
तरक्षूंश्च विमुक्ताक्षान् श्येनांश्च मृगयोत्कटान् ॥१४॥
वृषार्क इव संरेजे प्रतापी राघवोत्तमः ।
तीक्ष्णैर्बाणांशुसंदोहैः प्रतपन् सर्वतो दिशम् ॥१५॥
वीररौद्ररसोदारो रामः संततमुज्ज्वलः ।
चञ्चलं हयमारूढो मृगयायां रराज सः ॥१६॥
दैतेयान् दानवांश्चैव राक्षसान् यक्षदुर्भटान् ।
निजघान शरैर्घोरैरसंख्यान्[2] राघवोत्तमः ॥१७॥

---

१. °संरब्ध—मथु०, बड़ो० । २. संरब्धान्—मथु०, बडो० ।

दुगमं काननं चक्रे सुगमं रघुनायकः ।
संजगुस्तद्यशो देव्यः[1] प्रसभं वनदेवताः ॥१८॥
अथ[2] कुर्वन् वनक्रीडां रामः कमललोचनः ।
सरयूतीरमभ्येत्य चक्रे विश्राममाप्लुतः ॥१९॥
सरयूतटकुञ्जेषु कृत्वा माध्याह्निकीं क्रियाम् ।
भुक्त्वा प्रत्यग्रवसनरत्नालङ्कारभूषितः ॥२०॥
देवगङ्गां समुत्तीर्य द्राक्षी[3]सरयुसंगमे ।
अपश्यत् स वनं रम्यं प्रमोदवनपार्श्वतः ॥२१॥
रसालवनमत्यर्थं वनानामुत्तमं वनम् ।
कूजत्कोकिलसंघुष्टं मत्तभ्रमरनादितम् ॥२२॥
केकिकेकामनोज्ञं तन्मयूरीगणनादितम् ।
तुङ्गप्रतानिनीपुञ्जपरिरब्धमहाद्रुमम् ॥२३॥
लतावृक्षफलाक्रान्तं पुष्पवृक्षनिषेवितम् ।
सरःसु हंसचक्राह्वकलहंसकुलाकुलम् ॥२४॥
देवगङ्गाजलकणस्पर्शशीतलमारुतम् ।
द्राक्षी[4]तरङ्गकल्लोलशीतलानिलचालितम् ॥२५॥
रसालतरुभिर्व्याप्तं नित्यं फलप्रसूनकैः ।
तत्र गत्वा मनोहारि रसालवनमद्भुतम् ॥२६॥
मया निरूपितं स्थानं नारदेन मनीषिणा ।
लतामण्डपमभ्येत्य तत्तथा संददर्श सः ॥२७॥
श्रीरामचन्द्रचरणाम्बुजधूलिपुञ्ज-
स्पर्शान्निवृत्तविधिशापविपाकतायाः ।
सद्यो विहाय लतिकात्वममूर्मृगाक्ष्यः
प्राग्जन्मदेहरुचिरूपविशेषमापुः ॥२८॥
सर्वास्ता मदिराकाराः शरज्ज्योत्स्नातडित्त्विषः ।
पूर्णेन्दुवदना रेजुः साक्षात्प्राप्ता इव श्रियः ॥२९॥

---

१. दिव्यं—रीवाँ। २. इत्थं—मथु०, बडो०। १. दाक्षी°—मथु०, बडो०।
२. दाक्षी—मथु०, बडो०।

तासां रूपविलासेन राघवश्चकितोऽभवत् ।
अहो अपूर्वसौन्दर्यं दुर्लभं नरजन्मनि ॥३०॥
एता हि देवताः काश्चित्प्रभामण्डलमण्डिताः ।
इति प्रपेदे वैचित्र्यं दृष्ट्वापूर्वां तनुप्रभाम् ॥३१॥

राम उवाच

का वै भवत्यस्त्रिदशाङ्गना वा नागाङ्गनाः किंपुरुषाङ्गना वा ।
शच्यःश्रियो वा रतयोऽप्सरा वा रम्भावृता वा प्रमुखाः श्रियो वा॥३२॥
अहो इदं रूपमपूर्वदृष्टं तडित्प्रकाशं शरदिन्दुकाम्यम् ।
सुधाप्रवर्षं प्रमुदां निधानं कृतार्थयिष्यन् पुरुभागधेयान् ॥३३॥
के वा वरा वस्तडिदाकृतीनां सुजन्मभाजो मनुजापि देवाः ।
यैरर्चितः पूर्वभवे विरञ्चिस्त एव पाणिग्रहणोचिता वः ॥३४॥
सितासिताम्बुद्वयसंगमे वै सरस्वतीतोयमध्ये प्रविश्य ।
त्यक्त्वा तनुर्वापि त एव युष्मत्पाणिग्रहाणामुचिता सुभाग्याः ॥३५॥
इत्युक्त्वा विरते रामे विहस्य तनुमध्यमाः ।
विधिमानसजाः कन्या ऊचिरे मधुरं वचः ॥३६॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे वल्लरीमोक्षो-
पाख्यानं नाम[1] द्व्यशीतितमोध्यायः ॥ ८२ ॥

---

१. °पाख्याने—अयो०, रीवाँ, मथु० बडो ।

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

वल्लर्य ऊचुः

ब्रह्मणो मानसाज्जाता वयं कन्याः सुलोचनाः ।
षट्त्रिंशत्कोटिगुणिता असंख्याताः सहस्रशः ॥ १ ॥
अस्माकं रूपलावण्यश्रिया श्रीरपि निर्जिता ।
श्यामाः पूर्णेन्दुवदना विधिदृष्टा वरोचिता ॥ २ ॥
प्रत्युवाच जगत्सर्वं वरार्थे रूपयन्निदम् ।

ब्रह्मोवाच

अहो यूयं देवकन्याः श्यामाः कुवलयेक्षणाः ॥ ३ ॥
वरार्थं पश्यततरां जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
स्वयं संप्रोच्य बहुशः सरस्वत्याप्यचीकथत् ॥ ४ ॥
ततो वयं सावमर्षमुक्तवत्यः सरस्वतीम् ।
अलं देवि मृषाभूतजगत्संग्रहणेन नः ॥ ५ ॥
तथापीद्धं जगत्सर्वं तुच्छमेव विमर्शितम् ।
फल्गु चान्ते च विरसं भूयो दुर्गतिदायकम् ॥ ६ ॥
तमेव देवं जगतां निदानं भजामहे राम इति प्रसिद्धम् ।
स्थिता अमी यस्य वशे सुरौघा इन्द्रादयो ब्रह्मणा चापि सार्द्धम् ॥७॥
इति श्रुत्वा विरञ्चिस्तु चुक्रुधे रजसोभवः ।
शप्तवान् नः स्वरचनानादरात् कुपिताशयः ॥ ८ ॥
स्थावरत्वं व्रजत हे मुग्धाः संकोचिताशयाः ।
अवहेलितगीर्वाणाः स्वधियैव कृतार्थवत् ॥ ९ ॥
तेन शापेन सुभग लताभावं समाश्रिताः ।
रसालवनमध्यस्था दिवसानतिवाहिताः ॥१०॥
ब्रह्मकल्पं समारभ्य यावदद्य वयं स्थिताः ।
प्राप्ते सारस्वते कल्पे मुक्तशापा इहाधुना ॥११॥
तव श्री चरणाम्भोजरजसा तीर्णदुष्कृताः ।
लतारूपं परित्यज्य वयं जाता यथास्थिताः ॥१२॥

रामदर्शनावधिक उक्तः शापो विरञ्चिना ।
तस्मात्त्वं राम एवासीः पूर्णः पुरुषपुङ्गवः ॥१३॥
त्वं भर्ता नः प्रभो पूर्वमस्माभिः परिरम्भितः ।
रमयिष्यसि रासेन्दो एतस्मिन्निर्जने वने ॥१४॥
अमी हि तरवः पूर्वमस्माभिः परिरम्भिताः ।
तेनैव परकीयात्वमस्मासु रसिकोत्तम ॥१५॥
यो रसो रसशास्त्रेषु पूर्वाचार्यैर्निरूपितः ।
परकीया एव तस्य श्रुतास्तत् सावलम्बनम् ॥१६॥
त्वं कान्तस्तरुणः शूरो वेशवान् बहुधार्मिकः ।
महोदारो महामानी सर्वासामुचितः प्रियः ॥१७॥
यथा निरूपितो धात्रा तत्तथैवावलोकितः ।
नृणां कल्याणदः शश्वद् दृशां भाग्येन नः प्रभो ॥१८॥
एतावज्जन्मसाफल्यं यत् त्वदाननदर्शनम् ।
प्रश्नसंस्पर्शभोगाद्यैः[1] किमु वाच्यो महोत्सवः ॥१९॥
अहो प्रिय त्वां समवाप्य सुन्दरं वराभिलाषस्य गतैव चर्चा ।
नहि त्रिलोक्यां सुषमालवस्तव नखप्रभानिर्जितकोटिभास्वतः ॥२०॥
अहो धन्या वयं कान्त यासां कान्तस्त्वमीदृशः ।
अपूर्वरूपलावण्यशृङ्गारैकसुरद्रुमः ॥२१॥[2]
निर्मञ्छनत्व[3]मुपयान्ति ननु त्वयीश
पारे परार्द्धमपि सुन्दर पञ्चवाणाः ।
नीराजना भवति ते वदनारविन्दे
राकासुधाकरसहस्रकदम्बकस्य[4] ॥२२॥
नखात् समारभ्य शिखावधीदं शृङ्गारसारं भवतः शुभाङ्गे ।
धैर्याणि नो लुण्ठति रामचन्द्र स्वभावसौन्दर्यसमूहजुष्टम् ॥२३॥
रघुवरमभिरामं प्राप्य कान्तं भवन्तं
कलयति यदि लक्ष्मीः स्वस्वरूपं कृतार्थम् ।

---

१. भोगाढ्यैः—मथु०, बड़ो०। २. २२ श्लोकानन्तरमयं श्लोकः—मथु०, बड़ो०। ३. निर्मंछनस्य—रीवाँ। ४. "नीराजना भवति शारदपूर्णचन्द्रबिंबालवानखशिखंसुषमांचितस्य" इत्युत्तरार्द्धेनायमेवश्लोकः पुनरावृत्तः—बड़ो०।

तदितरललनानां संसृतौ कास्तु वार्ता
बहुतरजनुषां चेदर्जितं नास्ति पुण्यम् ॥२४॥
अन्या अपि शचीमुख्याः स्त्रियो या या[1] भवद्गुणान् ।
अश्रुत्वैव महेन्द्रादीन् वृतवत्यः शुभेतरान् ॥२५॥
भवान् हि सर्वकल्याणराशिरेको जगत्त्रये ।
पूर्णः पुराणः पुरुषस्त्रयीगुह्यस्त्रयीमयः ॥२६॥
येऽपि[2] त्वां सनकाद्यास्ते प्रापुः शरणदं सताम् ।
तेनाल्पभाग्यनिलया गण्यन्ते भुवनत्रये ॥२७॥
इत्याभाष्य ब्रह्मणस्ता मानस्यः शुभकन्यकाः ।
तूष्णीं बभूवुः सहसा वर्णयन्त्यः प्रियाननम् ॥२८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे वल्लरीमोक्षोपाख्यानं नाम[3] त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

एतत्तु नोचितं मम राघवाणां कुलेऽमले ।
नास्मत्कुले व्यभिचारो न कदर्यो न मद्यपः ॥ १ ॥
न ब्रह्महा नातिभाषी परिभिर्नच कर्हिचित् ।
परिवेत्ता नचाप्यस्ति नाजितेन्द्रियवर्गकः ॥ २ ॥
नाशूरो नाभिशापी च नानुदारोऽपि कश्चन ।
अहमीदृग्विधं कृत्वा प्रथमं कुलपांसनः ॥ ३ ॥

---

१. प्रायो—मथु०, बड़ो० । २. ये ये—रीवाँ । ३. °व्याख्याने—अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

न भवेयं यतो यूयं परकीयाः सुलोचनाः ।
अखिलागमेन[1] सदृशो विधिर्नैवं वधिष्यति ॥ ४ ॥
इत्युक्त्वा विरते रामे दीर्घश्वासो धृताधराः ।
विवर्णवदनाः सर्वा विमनस्कास्तदाभवन् ॥ ५ ॥
ऊचुश्चैनं चिरेणैताः श्यामलं पद्मलोचनाः ।
रामं लोकाभिरामं तमधिक्षिप्य विधेःसुताः ॥ ६ ॥
अये अये राजकुमार राघव प्रपन्नलोकाभयदानदीक्षित ।
उदारता वो रघुवंशजन्मिनां न लोपिता वा रघुनाथ कर्हिचित् ॥७॥
सा लुप्यतेऽस्मानपहाय संस्थिते भवत्यनल्पा ननु सद्गुणाश्रये ।
न केवलं सैव विलुप्यते पुनः प्रपन्नलोकस्य शरण्यतापि च ॥ ८ ॥
तस्मादस्मांश्चिराद्धित्वा स्थिताः[2] स्थावरजङ्गमम् ।
प्रपन्नाः स्वपदाम्भोजे भज राम रमापते ॥ ९ ॥
दुरवग्रहणेनालं देवधुर्य धुरन्धर ।
न ते पद्मदलाक्षस्य लिप्ते सुकृतदुष्कृते ॥१०॥
अयं हि जगतो धर्मो यद् गतिः पुण्यपापयोः ।
नेश्वराणां हि तत्स्पर्शः स्वतन्त्रेच्छावतां प्रभो ॥११॥
येषामिदं जगत्सर्वं वशे स्थावरजङ्गमम् ।
कस्तेषामुपरोधः स्यात् पुण्यपापादिकर्मभिः ॥१२॥
तस्मात् सखे रमय नोऽ[3]त्र रसालवन्यां[4]
नित्यप्रभूतकुसुमाकरपल्लवायाम् ।
यद्युद्दिधीर्षसि च नो विफलावतारा
व्यर्थाः प्रभूततनुरूपवयोविलासाः ॥१३॥
राम त्वामाश्रितानां किं दैन्यं भवति किंचन ।
इति ते प्रसृतं नाम जागर्ति भुवनत्रये ॥१४॥
न त्वां विना भविष्यामो लौकिक्या तृष्णया युताः ।
त्वद्वियोगात्तनुं त्यक्त्वा लप्स्यामस्त्वत्पदद्वयम् ॥१५॥

---

१. °लागम°—मथु०, बड़ो० । २. तुच्छं—मथु०, बड़ो० । ३. त्वमवने—रीवाँ । ४. °वृण्यां—अयो० ।

वियोगानलभारेण भस्मीभूता वयं यदा ।
उदीर्य[1] राम यास्याम[2]स्त्वदागमपथे तदा ॥१६॥
एवमेव भविष्यामस्त्वया चेदवहेलिताः ।
वियोगं न सहिष्यामो ब्रह्मकल्पान्निषेवितम् ॥१७॥
इत्युक्त्वा विरते तस्मिन् युवतीनां कदम्बके ।
रामः प्रोवाच विहसन् गिरा मधुरया पुनः ॥१८॥

श्रीराम उवाच

अहो अनन्यभावेन भवतीनां वशीकृतः ।
अहं यथा व्रजे तिष्ठन् प्रेम्णा गोपमृगीदृशाम् ॥ ॥१९॥

कन्यका ऊचुः

अहो रघुकुलोत्तंस त्वं क्रीडन् व्रजवर्त्मसु ।
आभीरदारैः संयुक्तः कदाचिदिह संगतः ॥२०॥
तथा त्वयि व्रजस्त्रीणां प्रेमभावमलौकिकम् ।
दृष्ट्वा विचित्रिताः सर्वा लताभावेऽपि चेतनाः ॥२१॥
मनसा कृतसंकल्पास्तदा सर्वा अपि स्त्रियः ।
करवाम व्रजस्त्रीवदिमं कान्तं लभाम चेत् ॥२२॥
अहो अत्यद्भुतो ह्येष कान्तो नवनवद्युतिः ।
धन्या इमा व्रजे रामा यासां प्राणधनं ह्यसौ ॥२३॥

राम उवाच

अहं प्रेम्णा परिक्रीतो व्रजभक्तैर्वशीकृतः ।
साक्षीभूता भवन्त्योऽपि प्रमोदवनपार्श्वगाः ॥२४॥
अधुना भवतीनामप्यहं कृत्वा करग्रहम् ।
क्रीडिष्याम्यद्य विपिने प्रेमैकसुलभो यतः ॥२५॥
ज्ञानवैराग्ययोगाद्यैर्न प्रापुर्मुनयः प्रियम् ।
तं मां भवत्यः प्राप्स्यन्ति स्थावरा लतिका अपि ॥२६॥
युष्माकं गुरवो गोप्यो याभ्यो मत्प्रेमशिक्षिताः ।
अतः परं भवाम्भोधेः पारं यास्यथ सुव्रताः ॥२७॥

---

१. उद्दीर्य—अयो० । उद्गीय—रीवाँ । २. पश्याम—मथु०, अयो० ।

ततस्ताः रमयाञ्चक्रे रामः कमललोचनाः ।
षट्त्रिंशत्कोटियुवतीः सेवमानो रघूत्तमः ॥२८॥
वैषम्यं नाभजत् तासु पूर्णः पुरुषपुङ्गवः ।
तदा प्रादुरभूद्रात्रिर्नित्यकेलीनिकेतनः ॥२९॥
सद्यः पूर्णशरच्चन्द्र उद्ययौ व्योममध्यतः ।
नानाविधानि पुष्पाणि रसालविपिनान्तरे ॥
ज्योत्स्नाज्योतिर्विकासीनि सद्यो व्याक्रोशतां दधुः ॥३०॥
पूर्वं वनं रञ्जितमिन्दुभासा पुनश्च सद्यः स्नाऽपितं कुंकुमेन ।
क्षणादभूच्छारदचन्द्रकान्तिश्रीखण्डपूरद्रवलिप्तकल्पम् ॥३१॥
शीतलः सुरभिर्मन्दः प्रावाद्धीरः समीरणः ।
सरयूनीरकल्लोलसमुच्छालनकौतुकी ॥३२॥
शृङ्गाररसचेष्टाभिस्तासां रामोऽपि रञ्जितः ।
झणज्झणितमञ्जीरनूपुराणां समन्ततः ॥३३॥
ता एकदा रामकिशोरकस्य वरस्रजो निदधुः कण्ठदेशे ।
समुल्लसत्कामविकारभाजः प्रकर्षमानाः पुलकेनावकीर्णाः ॥३४॥
वृतासु तासु रामेण स्वामिना व्यक्तमूर्तिना ।
प्रभुणा रामचन्द्रेणेत्यवादीद् भुवनत्रयम् ॥३५॥
ब्रह्मकल्पं समारभ्य अद्यावधिपरार्थिनीः ।
एता रामः स्वयं वव्रे महाकारुणिकः प्रभुः ॥३६॥
इति ब्रह्मा प्रसन्नोऽभूत् कन्यापरिणये[1] कृते ।
प्रभुणा राघवेन्द्रेण स्वतन्त्रेच्छेन[2] धीमता ॥३७॥
तासामाभीरदाराणां तुष्टिं रामः स्वयं ददौ ।
रसालविपिनेऽद्यापि क्रीडति प्राणजीवनः ॥३८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे वल्लरीमोक्षोपाख्याने वल्लरीणां वरणं नाम[3] चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

●

१. कन्यायाः प्रणये—अयो० । २. स्वतंत्रेणैव—रीवाँ । ३. वरणे—अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

ः ह्योवाच

तत्र रासरसारम्भैर्ऋतुषट्कोत्थकेलिभिः ।
चान्द्रीपुष्पावचयैस्तरुस्कन्धावलम्बनैः ॥ १ ॥
जलकेलिविहारैश्च[1] नित्योत्साहैश्च मङ्गलैः ।
नानाभूषणविन्यासैर्नानावसनवासनैः ॥ २ ॥
नानानुलेपनैश्चैव नानामाल्यविनिर्मितैः ।
नानाधूपानुधूपैश्च नानादीपोत्सवैस्तथा ॥ ३ ॥
नानाभोगविलासैश्च नानासुरतबन्धनैः ।
नानामानविधानैश्च नानामानविमोचनैः ॥ ४ ॥
हावैश्च विविधैर्भावैर्विविधालापसक्तिभिः[1] ।
विविधैर्नर्महासैश्च प्रहासैश्च परस्परम् ॥ ५ ॥
विधिमानसजैर्दारैः रतिदर्पनिरासनैः ।
क्रीडतो रामचन्द्रस्य सहस्रं शरदां ययुः ॥ ६ ॥
तावन्निमेष एवासीन्नृणां साकेतवासिनाम् ।
राममायाप्रभावेण नजर्जुर्दिवसान् गतान् ॥ ७ ॥
यथैकाकी प्रविष्टोऽभूद्रसालविपिनान्तरे ।
तथैव चिरमत्रास भुञ्जन् भोगान् मनोरथान् ॥ ८ ॥
नित्यं रासविलासादौ सीतासान्निध्यमाचरत् ।
तां[2] दृष्ट्वा चकिताः सर्वा आसन्मानसकन्यकाः ॥ ९ ॥
सीताया रूपसौन्दर्यं दृष्ट्वा ताः सकला अपि ।
गतदर्पभरास्तस्थु[3]र्ज्योत्स्नायां तारका इव ॥१०॥
सीतायाश्चैव रामस्य दृष्ट्वा प्रेम परस्परम् ।
भूयो ननन्दुरात्मानं तादृक्प्रेमकृतस्पृहाः ॥११॥

---

१. °शक्तिभिः—अयो०, रीवाँ । २. तं—अयो० । ३. स्तास्तु—रीवाँ ।

अहो अत्यद्भुतं रूपमनयोर्लोककान्तयोः ।
अहो अत्यद्भुतं प्रेम दुर्लभं भुवनत्रये ॥१२॥
अहो ईदृग्विधो योगश्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ।
नेत्रानन्दाय जगति[1] भाग्येनैव प्रजायते ॥१३॥
अहो सौन्दर्यसीमानावेतौ पूर्णमनोरथौ ।
अस्मदुद्धारणायैव चक्षुषोर्गोचरं गतौ ॥१४॥
इत्युक्त्वा स्वगतं सर्वा बहिरूचुर्नृपात्मजम् ।
अहो राजकुमार त्वत्सङ्गे केयं शुभाकृतिः ॥१५॥
विद्युल्लतेव गौराङ्गी लक्ष्मीरिव मनस्विनी ।
शचीविलसितैश्वर्या साक्षाद्रतिरिवाद्भुता ॥१६॥
यदा त्वमागतो राम नेयं सङ्गे तदा स्थिता ।
कुतः समागता कस्मान्मध्ये रासादिकेलिषु ॥१७॥
नानया सदृशी काचित् त्रैलोक्ये क्वापि कामिनी ।
दृष्ट्वा[ष्टा] श्रुतापि चास्माभिश्चिराज्जाताभिरीश्वर ॥१८॥

श्रीराम उवाच

एवं सैव निजानन्दशक्तिर्लीलाधिदेवता ।
नानया रहितः क्वापि स्थास्यामि भुवनत्रये ॥१९॥
रमण्यः सन्ति यावन्त्यो मम लीलाविनोदिकाः ।
तासामियं मुख्यतमा[2] रमणीनां शिरोमणिः ॥२०॥
नैनां विना रासलीलाविलासो मे भवेदिति ।
एतामाविर्भाव्य पूर्वं पश्चादाविर्भवाम्यहम् ॥२१॥
अस्याः एव प्रसादेन शं लब्धं[3] व्रजदारकैः ।
आविवेशेयमबलास्ततोऽहं रतवानिमाः ॥२२॥
भवतीष्वप्यसौ पूर्वमाविष्टा स्वांशभागतः
अतो मया रतानां चेद्व्यभिचारो भवेन्नहि ॥२३॥
कायेन मनसा वाचा नैनां व्यभिचराम्यहम् ।
एकपत्नीव्रतं यस्मात् कीर्तितं मे जगत्त्रये ॥२४॥

---

१. जगतो—मथु०, बडो० । २. पुण्यतमा—रीवाँ । ३. संलब्धं-अयो०, रीवाँ ।

राधायां चैव रुक्मिण्यां सत्यायां च श्रियामपि ।
भूलीलादिषु चैवैषा स्वांशेनाविष्टविग्रहा ॥२५॥
सर्वत्र सर्वरूपेण मन्मनोरमणाश्रया ।
एकधानेकधा चैव दृश्यते नित्यकेलिनी ॥२६॥
इति श्रुत्वा[1] राघवेन्द्रगिरं ता विधिकन्यकाः ।
सहजां तुष्टुवुः सर्वा रामलीलाधिदेवताम् ॥२७॥

कन्यका ऊचुः[2]

नमस्ते सहजानन्दे राघवेन्द्रस्य वल्लभे ।
तव सौभाग्यतो देवि सौभाग्यं भुवनत्रये ॥२८॥
गायत्री चैव सावित्री तथा देवी सरस्वती ।
लक्ष्मीर्गौरी शची चैव त्वयैव सुभगाभवत् ॥२९॥
त्वं देवि सर्वसौभाग्यं देहि नो राघवं पतिम् ।
यथा तव सदाकान्तस्तथैवास्ति सदैव नः ॥३०॥
इति स्तुत्वा चिरं सीतां तत्प्रसादसमन्विताः ।
सर्वा गोप्यो[3] गतिं लेभुर्दुर्लभां भुवनत्रये ॥३१॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे वल्लरीमोक्षदानं[4]
नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

●

१. इत्युक्त्वा—रीवाँ । २. ब्रह्मोवाच—अयो०, मथु०, बडो०, । ३. गोपी—अयो०, रीवाँ । ४. °दाने—अयो०, रीवाँ, मथु०, बडो० ।

षडशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

स मोचयित्वा लतिकावनं ततः कृच्छ्रात्मकाः स्थावरभावदुःखिताः ।
मूहूर्तमात्रेण पुनर्निजां चमूमासाद्य वीरो नगरीं समाययौ ॥ १ ॥

इत्थं स नित्यं मृगयामिषेण प्रयाति संशोभि रसालकाननम् ।
तत्रैव गोपीजनसंगमः सदा भवत्यमुष्य प्रणयैकवेदिनः ॥ २ ॥

रमापतिः सत्यपतिर्गिरांपतिर्धियांपतिर्लोकपतिः सतां पतिः ।
स कोशलापतितनयस्सदा[1] गतिः शृङ्गारभोगार्थमसाववातरीत् ॥३॥

न दैत्यहरणार्थाय प्रभुर्भूमाववातरत् ।
तद्धि तत्सेवकः कालः कुर्यादाज्ञावशंवदः ॥ ४ ॥

न भक्तोद्धारणार्थाय तद्धि कुर्यात् पदे स्थितः ।
नानुग्रहाय देवानामिच्छामात्रेण तत्कृतः ॥ ५ ॥

सनित्यशृङ्गाररसप्रकर्षे न भूतिमात्रार्थमिहावतारी ।
नवं नवं देशकालादिक्लृप्तं भुङ्क्ते रसं चिन्मयधाम्नि राजन् ॥ ६ ॥

इदं हि संततं तत्त्वं कामकेलिः सनातनी ।
रसराजस्वरूपस्य नीलवैदूर्यजित्त्विषः ॥ ७ ॥

कदाचिदंशरूपेण स भूतो नन्दगोकुले ।
क्रीडतो विविधैर्भावैर्व्रजस्त्रीणां निषेवितैः ॥ ८ ॥

अयमेव निजांशेन गोलोके चिन्मयोत्तरे ।
सहजानन्दरूपेण रमते राधिकान्वितः ॥ ९ ॥

न तं वेदा विजानन्ति नबुद्धिर्वेदशोधिता ।
न योगेनैव विज्ञेयो न ज्ञानेन न चेज्यया ॥१९॥

तपसा नैव संसाध्यो न स्वभावेन कर्हिचित् ।
न कर्मणा न कालेन स्वेच्छया सुलभः प्रभुः ॥११॥

सख्यः पुलिने स्थाने ब्रह्मानन्दे सनातने ।
प्रेमानन्दमयं तत्त्वं राम इत्युच्यते बुधैः ॥१२॥

---

१. °स्त्वया—अयो०, मथु०, वडो० ।

रमां नित्यं रमयते स्वानन्दरसरूपिणीम् ।
इति रामस्त्रयीशब्दगोचरो रसरञ्जितः ॥१३॥
सकृदुच्चरितः शब्दो रामनामविभूषितः ।
कुरुते नामवत् कार्यं स्वर्गमोक्षसुखादिकम् ॥१४॥
राकारेणाघसंनाशो मकारान्मुक्तिरुत्तमा ।
पूर्णेन वश्यतां याति रामो रामेतिशब्दितः ॥१५॥

भुशुण्ड उवाच

यद्येवं नाममाहात्म्यं ब्रह्मन् संकीर्त्यते मुहुः ।
कोऽवकाशस्तदा देव प्रायश्चित्तादिसद्विधेः ॥१६॥
द्वादशाब्दोऽत्र भोग्यानां कृच्छ्राणां कृच्छ्रकर्मणाम् ।
आलान्तादिविधीनां च कोऽवकाशो भवेदिह ॥१७॥
रामनामफलं श्रुत्वा सकृत् कीर्तनमात्रतः ।
को वा कृच्छ्रे प्रवर्तेत द्वादशाब्दादिकर्मणा ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

प्रत्यवायिनि कर्मिष्ठे जने पातकभूयसि ।
आविश्वासिनि दुष्प्रज्ञे कर्मकाण्डं वितन्यते ॥१९॥
वहुवेदिनि तत्प्राज्ञे तत्त्वज्ञे ब्रह्मवादिनि ।
स्वल्पेनैव कृतानल्पकर्मसूत्रं न तन्यते ॥२०॥
अथापि तन्यते भूयो ज्ञानं भक्तिं च वा फलम् ।
भक्तेन ज्ञानिना वापि स्वाधिकारानुसारतः ॥२१॥
क्रियन्तां भूरि कर्माणि नित्येज्यन्तां कदाचन ।
भक्तियुक्तः कर्मयोगः कर्मसंन्यासयोर्वरः ॥२२॥
इतिज्ञात्वा कर्मयोगो नित्यो वेदगणैः स्तुतः ।
पालनीयः शुभाचारैः भगवन्मतवेदिभिः ॥२३॥
एतत्ते कीर्तितं वत्स कामतत्त्वेन संयुतः ।
क्रीडितं रघुनाथस्य परब्रह्मस्वरूपिणः ॥२४॥
य एतत् कीर्तयेत् प्रातरग्निहोत्रे त्रयीविधौ ।
तस्य वेदास्त्रयश्चैव भवन्ति रामभक्तिदाः ॥२५॥

रामभक्तिप्रसादेन रामो गच्छति वश्यताम् ।
गोपोवत् स्वां गतिं दद्याद् भगवान् जानकीपतिः ॥२६॥

य एतत्[1] पठते विप्रस्तेनाधीता त्रयी पुरा ।
य एतच्छ्रावयेद् भक्तान् तस्य रामः प्रसीदति ॥२७॥

य एतत् सर्वकालेषु प्रपठेद्रामशीलितम् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति स्वर्गमोक्षादिदुर्लभान् ॥२८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामनामस्वरूपफल-
कीर्तनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

●

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ रामस्य[2] माहात्म्यं कीर्तयामि खगेश्वर ।
शृणु त्वं सावधानेन मनसा रामसेवक ॥ १ ॥
कदाचिद् भगवान् शेषो राममाराद्धुमीश्वरम् ।
साकेते समगात्तत्र प्रापश्यद्भ्रान्ति तेजसा ॥ २ ॥
सिंहासनानि भूरीणि रत्नहेममयानि च ।
स्वे स्वे धिष्ण्येऽधिष्ठितानि प्रज्वलन्तीव वर्चसा ॥ ३ ॥
पूर्वसिंहासनेऽपश्यद् देवं वाराहरूपिणम् ।
द्रंष्ट्राकोटयुद्धृतधरं स्तूयमानं सुरर्षिभिः ॥ ४ ॥
वेदैश्च मूर्तिसंयुक्तैस्त्रयीरूपं मखात्मकम् ।
भगवन्तं यज्ञरूपं भिन्नाञ्जनवनप्रभम् ॥ ५ ॥
तद्वामे धरणीं देवीं स्तुवन्तीं चारुलोचनाम् ।
प्रसन्नवदनां कान्तां भुवं त्रैलोक्यधारिणीम् ॥ ६ ॥

---

१. एतद्यः—अयो० । २. अथो राममा°—बडो० ।

दक्षसिंहासनोदीर्णहिरण्यकशिपू[1]दरम् ।
भगवन्तं नारसिंहं प्रापश्यल्लोलजिह्वकम् ॥ ७ ॥

प्रह्लादेन स्तूयमानं भक्तराजेन धीमता ।
वामे कमलया युक्तं ज्वलद्वज्रनखप्रभम् ॥ ८ ॥
कोटिराकाविधुप्रख्यं कनकाङ्गविराजितम् ।
स्तुवद्भिर्निगमैर्देवैर्गन्धर्वैः समुपासितम् ॥ ९ ॥

सिंहासने पश्चिमे तु वामनं खर्वमात्रकम् ।
भगवन्तं द्योतमानं यज्ञसूत्रधरं विभुम् ॥१०॥
अदितिं मातरं पार्श्वे कश्यपं च प्रजापतिम् ।
एताभ्यां स्तूयमानं तं देवकार्यहितैषिणम् ॥११॥

सिंहासने चोत्तरगे मत्स्यनाथं चतुर्भुजम् ।
भगवन्तं विधुस्वच्छं प्रापश्यन्निगमैः स्तुतम् ॥१२॥
पूर्वोत्तरदिशो कोणे कूर्मदेवस्य शार्ङ्गिणः ।
सिंहासनं पर्यपश्यज्जलधिं च सविस्तरम् ॥१३॥

पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये बुद्धरूपं जनार्दनम् ।
पर्यपश्यद्देवदेवं सिंहासनवरस्थितम् ॥१४॥
यज्ञजन्तुकृपावेश[2]गृहीतावतरं विभुम् ।
प्रद्योतमानं महसा भगवन्तमधोक्षजम् ॥१५॥

दक्षपश्चिमयोर्मध्ये रामं क्षत्रकुलान्तकम् ।
पर्यपश्यज्जामदग्न्यं हेमसिंहासनस्थितम् ॥१६॥
भगवन्तं पर्शुहस्तं ज्वलन्तं ब्रह्मवर्चसा ।
दण्डकुण्डिकया युक्तं यज्ञसूत्रविभूषितम् ॥१७॥

पश्चिमोत्तरयोर्मध्ये कल्किनं कमलापतिम् ।
नीलाश्वगं पर्यपश्यद्रत्नसिंहासनोपरि ॥१८॥
मध्यसिंहासने कान्ते कोटिसूर्याग्निवर्चसम् ।
रघुनाथं पर्यपश्यद्देवं जनकजापतिम् ॥१९॥

---

१. 'कश्यपू°—अयो०, बडो०, । २. °दयावेश°—रीवाँ ।

स्मयन्तमरविन्दाक्षं वामे स्वप्रिययान्वितम् ।
कोटिसूर्यनखद्योतं शृङ्गाररससागरम् । ॥२०॥
रूपसारसुधौघार्द्रं साक्षात् कन्दर्पसुन्दरम् ।
परार्द्धरतिसौन्दर्यां तद्वामे तस्य सुन्दरीम् ॥२१॥
तद्दक्षे हयमूर्धानं भगवन्तं त्रयीमयम् ।
पूर्णब्रह्ममयाकारं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥२२॥
चिन्मुद्रापुस्तकधरं मालाशङ्खविभूषितम् ।
चन्द्रमण्डलमध्यस्थं स्वर्णसिंहासनोपरि ॥२३॥
रामस्य वामपार्श्वे तु सिंहासनवरस्थितम् ।
श्रीकृष्णं गोपिकाकान्तं राधिकाप्रेयसीयुतम् ॥२४॥
वृन्दावनस्थितं देवं नीलतोयदसुन्दरम् ।
रुक्मिणीसत्यभामादिमहिषीगणसेवितम् ॥२५॥
अपश्यद्रत्नखचितस्वर्णालङ्कारभूषितम् ।
मयूरपक्षमुकुटं गुञ्जाहारविभूषितम् ॥२५॥
मुरलीभूषितकरं त्रिभङ्गललिताकृतिम् ।
स्निग्धश्यामलव्यालम्बिलोलालकयुताननम् ॥२६॥
पीतकौशेयवसनं वनमालाविभूषितम् ।
सुनसं[1] सुदृशं चारु मन्दहासप्रभाधरम् ॥२७॥
कृष्णस्य दक्षिणे पार्श्वे रौहिणेयं बलोत्तरम् ।
हलिनं मुशलेनाढ्यं भगवन्तं त्रयीस्तुतम् ॥२८॥
नन्दं चैव यशोदां च रोहिणीं गोपिकास्तथा ।
अपश्यद्विस्मितः शेषः सिंहासनकदम्बके ॥२९॥
अन्यांश्चैव तु रामस्य अवतारान् सहस्रशः ।
अंशरूपान् कलारूपान् साक्षादावेशिनस्तथा ॥३०॥
सर्वान् श्रीरामवदने दत्तदृष्टीन् गतस्मयान् ।
वशंवदानिवाज्ञायाः स्वतन्त्रानपि चेश्वरान् ॥३१॥

---

१. सुनासं—अयो०, रीवाँ ।

अचिन्तयत् तदाशेषः संशयाकुलमानसः ।
अहो एषां भगवतामीश्वराणां स्ववर्चसाम् ॥३२॥
कतरं च प्रथमतो वन्देयं समवर्चसाम्[1] ।
याम्ये संप्रति सर्वेषां कमहं संस्तुयां पुरा ॥३३॥
इति संदेहमापन्ने शेषे वैष्णवसत्तमे ।
राम एव व्यलीयन्त सर्वे दशरथात्मजे ॥३४॥
येऽन्ये रामस्य परितो व्यराजन्त महौजसः ।
अंशरूपाः कलारूपाः विभूत्यावेशिनस्तथा ॥३५॥
राम एव लयं जग्मुस्ते सर्वे तस्य पश्यतः ।
ततः स विस्मितो भूत्वा रामं तुष्टाव भूरिशः ॥३६॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे श्रीराम-
माहात्म्ये सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

●

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

शेष उवाच

नमामि ते नाथ पदाम्बुजद्वयं सुवर्णरत्नामलपादुकाश्रितम् ।
विरञ्चिशक्रादिशिवान्तकादिभिर्मणिप्ररोहैः कृतनीराजनं यत् ॥ १ ॥
नमामि ते नाथ तनुत्रभङ्गिनीं सीतादृगानन्दसमूहसागरम् ।
प्रावृट्पयोवाहसुनीलदीधितिं भिन्नाञ्जनस्तोमतमालमेचकम् ॥ २ ॥
नमामि च त्वां सहजानन्दरूपं परात्परं ब्रह्मणोऽपि प्रतिष्ठाम् ।
सदामृतस्याश्रयमेकसत्यं प्रतिष्ठितः शाश्वतो यत्र धर्मः ॥ ३ ॥
येयं त्रयी नाथ वितत्य संस्थिता शब्दब्रह्मात्मिका सा तवैव ।
समासतो व्यासतो वा गुणौघान् गायत्युच्चैर्मागधानां सभेव ॥ ४ ॥
कर्मापि ते नाथ तथैव शक्तिः क्रियात्मिका शाश्वति सुप्रतिष्ठा ।
इष्टा[2]पूर्ताद्यात्मिका सत्फलाढ्या जगत्प्रतिष्ठाजनने समर्था ॥ ५ ॥

---

१. यशंवर्च°—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. इच्छापूर्तौघा°- अयो० ।

कालोऽपि ते नाथ दृशोर्निमेषो दिवानिशं वर्षफलोपचायी ।
कल्पावधिर्ब्रह्मशक्राधिशक्तः[1] सृष्टिस्थितिप्रलयान्तक्रियो यः[2] ॥ ६ ॥
त्वं पक्षिरूपेण पुरेषु भूयो विराजसे द्वित्रिचतुष्पदेषु ।
प्रविष्टवद्भास्यप्रविष्टोऽपि भूमन् साक्षी नित्यश्चिद्घनस्तत्त्वतत्त्वम्[3] ॥ ७ ॥
त्वया पुरा कापि परैव सा गिरा प्रबोधमानानिलवह्नियोगतः ।
असूत शब्दं त्रिवृदात्मकं यदा तदाभवत् स्थावरजङ्गमं जगत् ॥ ८ ॥
संजातमात्रस्य विधेर्जडस्य विवेकहीनस्य विधेयवस्तुनि ।
त्वमादिदेवो हृदयेऽवातरत्ततो विनिर्ममेऽसौ विविधव्यक्तिराशीन् ॥ ८ ॥
एकोऽपि स त्वं बहुरूपेण दृश्यः सन्नेव रामः त्रिजगद्विग्रहोऽसि ।
अतोऽन्यविज्ञानविनिर्मलात्मभिर्ब्रह्मैव सर्वं भाति भूतं च भव्यम् ॥ ९ ॥
एकोऽहमेवं बहुधा भवेयमितीक्षणं ते नाथ सदैव यस्मिन् ।
सर्गस्यादौ निर्गताः स्वांशरूपा जीवाकाराश्चिद्गुणाः सस्वभावाः ॥१०॥
केचित्तेषां नित्यमुक्ता बभूवुः केचिद् भूयः साधनैर्मुक्तिभाजः ।
केचित्संसाराब्धिमध्ये दुरन्ते भूयो भूयो जन्मदुःखादिभाजः ॥११॥
अचित्प्रपञ्चोऽपि तवैव रूपं वैकुण्ठकुड्याङ्गणकुट्टिमादि ।
सदेव दृग्गोचरतां व्रजत्यपि स्वयं चिदानन्दमयं दिगन्तरम् ॥१२॥
नित्यैव ते नाथ विनोदलीला शृङ्गारवीरामृतसिन्धुपूरा ।
यस्यां निमज्जन्ति सदावदातास्ते राजहंसाः शुकनारदाद्याः ॥१३॥
जानामि ते नाथ[4] परस्य सर्वेऽप्यंशा अमी स्थूलसूक्ष्मादिरूपाः ।
स्थूलाः स्फुटं ये विविधावताराः सूक्ष्माः परं संसृतजीवसंज्ञाः ॥१४॥
अहो अगाधा भवतोऽस्य माया विमुक्तमायस्य चिदेकसंश्रयाः ।
यथैकरूपोऽपि भवान्नवैव[5] दृश्योऽसि भेदात्मधियां न वै सताम् ॥१५॥
देशं सु[6]कोशल पदं च परं त्वदीयं धामास्ति सच्चित्सुखमद्वितीयम् ।
विराजते यत्र सुकोमलाख्या पुरी समुद्यत्सरयूतरङ्गा ॥१६॥
यत्रास्ति रत्नौघसुवर्णनिर्मितः प्राकारवर्यो धृततुङ्गयन्त्रः ।
अनेकदुर्धर्षणगोपुरान्तःकपाटसंघट्टित[7]वज्रकीलकः ॥१७॥

---

१. °धिशक्रः—अयो०, बड़ो० । २. क्रियाद्याः—अयो०, मथु०, बड़ो० ।
३. तत्त्वतस्त्वम्—रीवाँ । ४. राम—रीवाँ । ५. °न्नैव—अयो०, मथु०, बड़ो० ।
६. देशेषु—बड़ो० । ७. °संघाटित—रीवाँ ।

नित्यं[1] प्रमोदवनमद्भुतकेलिकुञ्जं मध्वादिसर्वमृतुसौख्यसमूहजुष्टम् ।
तत्राप्यशोकलतिकावनमस्ति यत्र प्राणेश्वरी विजयते तव जानकी सा ॥१८॥
सोऽयं तवैव महिमा निगमप्रसिद्धो यत्सार्वभौमपदवीप्रमुदां पुराणाम् ।
यत्रोत्तरोत्तरमभाणि शताधिकत्वं तस्यापि राम नितरामवधिस्त्वमेव ॥१९॥
येऽन्ये तवावतरणा इह मत्स्यकूर्मवाराहसिंहवरवामनभार्गवाद्याः ।
तेषामपि त्वमुदयो निलयश्च राम सीतापते सहजचित्सुखकेलिसिन्धुः ॥२०॥
विद्यास्वरूपमवलम्ब्य सतां जनानां हृत्पुण्डरीकविषयेषु भवांश्चकास्ति ।
नोचेत्सुदुस्तरतरत्वदपारमायाबन्धात्मकाद् भवरयात् कथमुद्धृतिःस्यात् ॥२१॥
रामेतिनाम भवतस्त्रिवृतोऽपि वर्षं पापात्मनो[2]ऽपि सकृदुच्चरितं पुनीते ।
ज्ञात्वेत्थमेव मुनिभिः सततं प्रशान्तैश्चित्ते सदा परमहंसतमैर्निखातम् ॥२२॥
त्वत्सङ्गिनीं नाथ नमामि तां परां शक्तिं सुपूर्णां सहजामद्वितीयाम् ।
या नित्यवृन्दावनकेलिकारिणी प्रमोदवल्लीवनदेवता च ॥२३॥
लीलाविशिष्टं भवतोऽपि च राम नाम रूपं च ते तादृशं मे चकास्तु ।
माणिक्यरत्नस्फुरितावतंसकं सुदीप्तगुञ्जामणिहारशोभितम् ॥२४॥
माङ्गल्यकोत्सङ्गविशेषलालितं गोपाङ्गनादृष्टिकटाक्षदीक्षितम् ।
रामाभिधानं परमं महस्तत् सदैव नेत्रातिथितां प्रयातु मे ॥२५॥
रघुकुलकमनीयं कामुकं गोपिकानां व्रजपुररमणीयं नीलवैदूर्यरम्यम् ।
जनकनृपतनूजाप्रीतिसंदोहपात्रं सुचिरमहमुपासे राघवं रामचन्द्रम् ॥२६॥

अशोकवनकुञ्जभूसहजनित्यकेलिप्रियं
व्रजस्थहरिणीदृशां मदनरागसंवर्द्धनम् ।
ककुत्स्थकुलभूषणं निगमकोटिवक्तृस्तुतं
भजे[3] दशरथात्मजं परं रामचन्द्रं मुदा ॥२७॥

इतिस्तुतिपरे शेषे प्रसन्नो राघवेश्वरः ।
प्रोवाच स्मयमानेन मुखेन मधुराकृतिः ॥२८॥
अहो नागेन्द्र शेष त्वं सम्यक् व्यवसितोऽसि भोः ।
यन्मदीया परा भक्तिः स्फुरिता हृदये तव ॥२९॥

---

१. धिष्ण्यं—बड़ो० । २. मायात्मनो—अयो०, रीवाँ । ३. भजामि—अयो०, मथु०, बड़ो० ।

न तां प्राप्नोति वै धाता न शिवो नापि वासवः ।
नित्यलीलारतिः सा ते वार्धिष्णुर्दृश्यते हृदि ॥३०॥
अथापि यदि यत्काम्यं तन्मत्तो व्रियतां मुहुः ।
संप्रीतस्तेऽनया भक्त्या ददाम्यहमतिप्रियम् ॥३१॥
भक्तोऽसि वैष्णवाग्र्योऽसि प्राज्ञोऽसि भुजगेश्वर ।
यत्ते हृदि प्रियं वस्तु मत्तस्तत् प्रार्थ्यतां मुहुः ॥३२॥
नह्यलभ्यं[1] मदीयानां भक्तानां मयि दातरि ।
ऐहिकामुष्मिकं वापि यत्स्वरूपं च दुर्लभम् ॥३३॥

इतिश्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे शेषस्तुतिर्नाम[2]
अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

एकोननवतितमोऽध्यायः

शेष उवाच

भवतोऽन्यत्र मे काम्यं राम कामदविग्रह ।
नहि स्वरूपाशक्तानामैहिकामुष्मिकी स्पृहा ॥ १ ॥
अथापि चेद्वरं देयं वरदेन त्वया विभो ।
निजाङ्घ्रिकमले भक्तिर्दीयतां भक्तवत्सल ॥ २ ॥
सदा स्वरूपासक्तस्य स्वरूपासक्तिरेव च ।
निजसामीप्ययोगश्च पीठशय्यासनादिषु ॥ ३ ॥
लीलोपकरणत्वं च उपधानत्वमेव च ।
छत्रत्वं चामरत्वं च भ्रातृसाहाय्यमेव च ॥ ४ ॥
मुखचन्द्रामृतास्वादं सदासविधसंस्थितिः ।
एतन्मे दीयतां राम निर्माल्यस्य च भोजनम् ॥ ५ ॥

१.° लब्धं—रीवाँ । २. शेषस्तुतौ—अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

श्रीराम उवाच

यद्यदिष्टतमं शेष तत्तवास्तु मदाज्ञया।
त्वमेव[1]भक्तवर्यो मे भविष्यति युगे युगे ॥ ६ ॥
आचार्यश्चैव भक्तानां भक्तिशास्त्रप्रकाशकः।
सदा सविधसंस्थानं भविष्यति परं मम ॥ ७ ॥
त्वमेव मम वै भूयाः[2] पीठशय्याशनादिकैः।
लीलासाधनसामग्री सर्वमेव त्वमक्षरम् ॥ ८ ॥
त्वमेव चोपधानं मे छत्रं चामरमेव च।
भ्राता सहचरो बन्धुः सखे मित्रं त्वमेव च ॥ ९ ॥
मदङ्गसङ्गिनी लक्ष्मीर्न ते लज्जां विधास्यति।
नर्मलीलारसास्वादपात्रत्वं वैष्णवाग्रणीः ॥१०॥
एवं दत्त्वा वरं रामस्तत्तथैवाकरोत्तराम्।
सोऽपि दिव्यमहावेशधरः स्फटिकनिर्मलः ॥११॥
सहस्रवदनो देवः पार्षदप्रवरोऽभवत्।
रामस्य जानकीशस्य प्रमोदवनवासिनः ॥१२॥
कोसला[3]पुरनाथस्य नित्यलीलासु संनिधिः।
कमला यत्र रमते तत्रास्तेऽद्यापि सेवयन् ॥१३॥
नित्यलीलारसं पश्यन् सहस्रफणवर्तिभिः।
दिव्यदीपशतैर्भाति मन्दिरे दिव्यवेश्मनि ॥१४॥
एवं सर्वावतारेषु कलास्वंशेषु चाग्रणीः।
उत्पत्तिर्विलयश्चैव रामो साकेतनायकः ॥१५॥
दर्शयित्वा निजे रूपे शेषाय प्रणतात्मने।
दत्त्वा प्रसादमेतस्मै समदादुत्तमं पदम् ॥१६॥
एवं कदाचिद् भगवान् कस्मैचित् संप्रसीदति।
अनिर्वाच्या तदिच्छा तु न विद्मः कं सुखयिष्यति ॥१७॥

---

१. त्वमेक—अयो०, रीवाँ। २. भूयाच्च—अयो०, रीवाँ। ३. कौशला°—अयो०, कौशिल्या°—रीवाँ।

गोकुलानन्दनो रामो माङ्गल्यानन्दनोऽपि च ।
व्रजभूनन्दनो देवः सुखितेश्वरनन्दनः ॥१८॥
एवं यो गृणते रामं रमेशं प्रणतार्तिहम् ।
तस्यासौ वश्यतां याता भक्तिभावान्न संशयः ॥१९॥
एवं गृणन्तो नारदाद्या मुनीन्द्राः पारेजाता लोकसिन्धोर्दुस्तरस्य ।
तस्मादेवं सज्जनैः कीर्तनीयं गेयं ध्येयं चाभिधेयं च नित्यम् ॥२०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे शेषवरप्रदानं[1]
नाम एकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

●

नवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कोसलायां निवसति रामभद्रे सतां गतौ ।
लक्ष्मीशे देवदेवेशे प्रभौ त्रैलोक्यवल्लभे ॥ १ ॥
लक्ष्मीभराः प्रादुरासुस्तथा संपद्भरा अपि ।
फलिनो भूरुहा आसन् रत्नसूश्च वसुन्धरा ॥ २ ॥
काले ववर्ष पर्जन्यः फलन्तिस्म लताद्रुमाः ।
भूधरा धातुदातारः सुवर्णरजतादिकान् ॥ ३ ॥
देवाः प्रसादसुमुखाः सुखाराध्या हविर्भुजः ।
यज्ञाः सद्यो विधिफलाः क्रियाः शीघ्रफलप्रदाः ॥४॥
ब्रह्मक्षत्रविशां चैव शूद्राणां च गृहे गृहे ।
सुवर्णमणिनिष्काढ्या विलसन्त्यङ्गनागणाः ॥ ५ ॥
सर्वे जनाः कृतानन्दा कृतोत्साहाः सुमङ्गलाः[2] ।
प्रसन्नमनसश्चासन् रामकौतुकदर्शनात् ॥६॥
रामेन्दौ यौवराज्ये स्थितवति भुवने नैव दुःखं न मर्षो
नोद्वेगो नाभिचारो न परबलभये नेतिभीतिर्न भीतिः ।

---

१. °वरप्रदाने-अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० । २. समङ्गलाः-मथु०, बड़ो० ।

नानीतिर्नेतिवीतिर्यमकृतविपदां नापगीतिर्जनानां
नायासो न प्रवासो न धनविधुरता नानपत्यो न रुग्णः ॥ ७ ॥
कदाचिन्नृपतेः साक्षात् कोशलाधिपतेः प्रभोः ।
अश्वमेधमखोत्साहो बभूव बहुमङ्गलम् ॥ ८ ॥
पुण्याहं वाचयित्वा स शुभकामान् द्विजन्मनः ।
अकरोद्दीक्षणीयेष्टिं प्रायणीयेष्टिमेव च ॥ ९ ॥
अर्वाणमश्वमेधीयमभिमन्त्र्य सुसंस्कृतम् ।
मुमोचात्मन इच्छाभिश्चरन्तमकुतोभयम् ॥१०॥
तस्य रक्षार्थमयुजन् सन्नद्धौ रामलक्ष्मणौ ।
महावीरौ कवचिनौ शस्त्रिणौ च निषङ्गिणौ ॥११॥
तिस्रो दिशश्चचाराश्वः पूर्वदक्षिणपश्चिमाः ।
इन्द्रेण प्रथमं रुद्धस्ततः कृत्वा महारणम् ॥१२॥
विनिर्जित्य समानीतो देवकन्यागणैः सह ।
विभज्य भ्रातृभिः साकमूढवान् भक्तवत्सलः ॥१३॥
ततो रुरोध भगवान् कालो दण्डधरः स्वयम् ।
तं निर्जित्य समानिन्ये कालकन्यागणानिह ॥१४॥
यमदत्तानुदवहत् सौमित्रेण च वै सह ।
वारुण्यां वरुणो देवः स्वागतं रघुपुङ्गवम् ॥१५॥
आनर्च रत्नहारौघैर्ज्ञात्वा त्रिभुवनेश्वरम् ।
उत्तरस्यां ययौ चाश्वो गान्धर्व्यां सुमहादिशि ॥१६॥
तत्र गन्धर्वलोकास्तमहरन् यज्ञघोटकम् ।
रत्नवर्मा चित्ररथः स्वर्णकायः सुलोचनः ॥१७॥
पद्ममाली हेमकेतुः वृषपर्वः सुकेतनः ।
अन्ये च बहवो मुख्या गन्धर्वाः समवेत्य तम् ॥१८॥
ततस्तौ सुमहावीरौ सज्यं कृत्वा धनुर्धरौ ।
अग्रहीष्टां शरव्रातै[1]र्वर्षैरिव महीधरान् ॥१९॥

---

१. शरावर्तैः—अयो०, मथु०, बड़ो० ।

अभूद् गन्धर्वनिवहैस्तत्र युद्धं महोत्कटम् ।
पश्यतां सर्वदेवानां रोमहर्षणकारकम् ॥२०॥
राममुक्तैः शरव्रातैर्गन्धर्वाः सुमदोत्कटाः ।
सद्यः प्रतिहताः सर्वे बभूवुस्तुङ्गविक्रमाः ॥२१॥
ततो गन्धर्वकन्याभिः सुमुखीभिः सहस्रशः ।
साकं हयवरं प्रादुर्गन्धर्वाः प्रीतमानसाः ॥२२॥

राम उवाच

अस्ति मे कापि महिषी प्राणेशी मम जीवनम् ।
तस्यां सत्यां कथमहमेता उद्वोढुमुत्सहे ॥२३॥

गन्धर्वा ऊचुः

भवान् स पुरुषः पूर्णो राम एव न संशयः ।
वह्नीनां रञ्जनकरः कान्तानां भूरिशक्तिमान् ॥२४॥
गोपाङ्गनास्तव विभो ललनाः समग्रा
दिक्पालकाश्च भवते समदुः स्वकन्याः ।
अन्याश्च नागनरकिन्नरदेववध्व-
स्त्वय्येव नेत्रसुखदे हि रता बभूवुः ॥२५॥
तस्मादेताः किंकरीस्त्वन्महिष्यो गान्धर्वेण प्रीतियुक्तो गृहाण ।
यस्मादेकस्त्वं समस्तत्रिलोक्याः स्वेच्छामात्रात् पूर्णचित्ताभिलाषः ।२६॥
इति तैर्गदितो रामो बहुमानपुरःसरम् ।
प्रत्यग्रहीच्च सानन्दं सर्वा गन्धर्वकन्यकाः ॥२७॥
चतुर्दिक्षु कृतोद्वाहः कुबेरेण च पूजितः ।
अश्वमेधं महायज्ञमकरोद्दीक्षितो नृपः ॥२८॥
प्रत्यक्षा देवताः सर्वा विधिवत् पर्यपूजयत् ।
अध्वर्युर्ऋत्विजो होतॄनुद्गात्रींश्च विशेषतः ॥२९॥
ब्रह्माणं स्वगणोपेतं सर्वांश्च गणसंयुतान् ।
गजवाजिमहीस्वर्णसर्वस्वं समदान्नृप ॥३०॥
एवं कृतमहायज्ञः सर्वस्वव्ययनिष्ठया ।
अग्नित्रयमुपासीनस्त्रिकालं विधिवन्नृपः ॥३१॥

पुष्णन् रामे परं स्नेहमभाद्दशरथो मखी ।
कदाचिद् यज्ञशालायां पश्यतो नृपतेः क्षणात् ॥३२॥
अग्नयो लुप्ततां जग्मुः पश्यतां च द्विजन्मनाम् ।
अदृश्यतां प्रयातेषु सेव्यमानेषु चाग्निषु ॥३३॥
हाहाकारो महानासीत् सर्वत्र द्विजवेश्मसु ।
ततः संचुक्रुधे रामः केन खल्वग्नयो हृताः ॥३४॥
आत्तचापो रथे स्थित्वा अव्याहतमनोगतिः ।
लक्ष्मणेन सह श्रीशः प्रतस्थे त्रिजगत्सु सः ॥३५॥
इन्द्रलोकेऽग्निलोके च यमलोके तथैव च ।
लोके च निर्ऋतेश्चैव तथा वरुणवेश्मनि ॥३६॥
वायुर्लोके कुबेरस्य लोके लोके शिवस्य च ।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले जगाम रघुनायकः ॥३७॥
तत्र तत्र नचैवाग्निमपश्यद् विस्मितान्तरः ।
ततोऽतिविस्मितो भूत्वा लक्ष्मणं प्राह राघवः ॥३८॥
नाग्नयः सन्ति सौमित्रे त्रिषु लोकेषु कर्हिचित् ।
नास्मद्रथगतेः कश्चिदगोचरतमोऽभवत् ॥३९॥
तस्माद् गता अग्नयोऽमी लोकालोकगिरेः परम् ।
सहस्रशीर्षा पुरुषो यत्रास्ति निजतेजसा ॥४०॥
अग्नीन्निजपितुः सेव्यानानेष्यामस्ततो वयम् ।
पश्यास्मद्रथवेगं त्वं लक्ष्मणामितविक्रमम् ॥४१॥
इत्युक्त्वा भगवान् सूतं लक्ष्मणं च रथान्तरे ।
स्थापयित्वा स्वयंवाहांस्तोत्रपाणिरवाहयत् ॥४२॥
लोकालोकं समुत्तीर्य प्राप घोरतरं तमः ।
तत्र स्थित्वा निजं चक्रं मध्ये मार्गमदीपयत् ॥४३॥
चक्रस्यामितया भासा प्रकाशे पथि ते हयाः ।
अवहन् स्यन्दनवरं सद्धर्मं निगमा इव ॥४४॥
समतीत्य विधेर्लोके तीर्णं मायाभिधं तमः ।
विरजां च समुत्तीर्य दुस्तरां सागरोत्तमाम् ॥४५॥

प्राप तं विषयं यत्र त्रिपाद् ब्रह्म सनातनम् ।
स्वयंज्योतिः स्वयं प्राज्ञं द्योतमानं निजत्विषा ॥४६॥
सहस्रवदनं देवं सहस्राननलोचनम् ।
सहस्रपाणिचरणं सहस्रश्रुतिनासिकम् ॥४७॥
यस्यांशांशावतरणा देवतिर्यङ्नरादयः ।
अनेकविधयो यत्र तथा रुद्रगणा अपि ॥४८॥
वासवा वसवश्चैव वरुणा वायवोऽग्नयः ।
यमश्च निर्ऋतिश्चैव सर्वाश्च गणदेवताः ॥४९॥
यस्मादेव प्रजायन्ते व्यक्तयः स्थूलसूक्ष्मिकाः ।
कोटिसूर्यतडित्तुल्यं महसामुत्तमं महः ॥५०॥
तत्र यातो रघुश्रेष्ठः सानुजः सह सारथिः ।
ततोऽवतीर्य रथतो भ्रातरौ मणिमन्दिरे ॥५१॥
जग्मतुर्यद्गृहद्वारे जयश्च विजयस्तथा ।
साधिष्ठौ द्वारप्रवरौ यच्च दिव्यं परं पदम् ॥५२॥
आयान्तं राममाज्ञाय राघवं तेजसां निधिम् ।
द्वारि प्रत्युद्गतो देव आदिनारायणो विभुः ॥५३॥
ननाम शिरसां वृन्दै रामं त्रैलोक्यसुन्दरम् ।
नत्वा प्रवेशयामास राममन्तःपुरे निजे ॥५४॥
भूयसीमर्हणां कृत्वा पादार्घ्याचमनादिभिः ।
सुधामयीसंविदाभिस्तुष्टाव निजमीश्वरम् ॥५५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयौवराज्ये
नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

एकनवतितमोऽध्यायः

आदिनारायण उवाच

वन्दे त्वां रामचन्द्रं सकलगुणनिधिं निर्गुणं ब्रह्म पूर्णं
सत्यारामं चिदेकं स्वविमलमहसा द्योतमानं समंतात् ।
यस्यांशा एव सर्वे वयमिह भुवने ब्रह्मविष्ण्वीशमुख्याः
सृष्टिस्थित्यन्तलीलाविरचनचतुरा वर्तयन्तीह चक्रम् ॥ १ ॥

योऽहं विष्णुः स राम त्वयि परमतमे सच्चिदानन्दसिन्धौ
वर्तेयं विन्दुमात्रं विधिरपि च भवो भास्करो वासवश्च ।
एतावानेव विष्वग् विलसति महिमा तावकः कोऽपि नित्यं
नाभूत्तेन स्मयस्ते विहरसि पशुवत् भूय आभीरदारैः ॥ २ ॥

एतत्ते रूपमस्मन्नयनविषयतां सच्चिदानन्दमात्रं
यातं यातं स्वभाग्यैर्निगमशतशिरो वेदितं नैव किंचित् ।
को जानीते यदेतद्विहरति सरयूतीरभूमीनिकुञ्जे
मुग्धैराभीरदारैः पशुगणविभवैर्दुर्लभं वै मुनीनाम् ॥ ३ ॥

लोकालङ्कारसीमानिगमनिगदितो राघवः कौशलेयः
कल्याणैकान्तलोकोत्तरविमलगुणः कामकेलीनिधानम् ।
साक्षाच्चिल्लोकनाथो रसमयविलसद्दिव्यलीलाविलासः
प्रेयान् प्राणाधिकस्त्वं मम किमपि परं राम सर्वस्वमेव ॥ ४ ॥

यथैव तेजसां लोके सर्वेषां प्राणदो रविः ।
तथा चैतन्यमात्रस्य भवानेकधनं प्रभो ॥ ५ ॥

शब्दात्मकं ब्रह्म तवैव घोषः श्वासोच्छ्वासो नित्य आकाशरूपः ।
तेन ब्रह्मा विसृजत्यादिसर्गे लब्ध्वा पूर्णां संविदं सृज्य वर्गे ॥ ६ ॥

इदं च ते रूपमखण्डसौभगं नेत्रोत्सवानन्दकरं जनानाम् ।
सद्यो निजेच्छाप्रकटं सत्कृपाढ्यं लोकातीतं कालमायाद्यतीतम् ॥ ७ ॥

नादिर्न मध्यं तव नावसानमस्माकमाद्यन्तमथापि मध्यम् ।
त्वमेव भूमन् पुरुषोत्तमेश न वाङ्मनोगोचरतां प्रयासि ॥ ८ ॥

त्वं वै विधिर्विष्णुरथापि रुद्रस्त्वं कालपालो निधयस्त्वमेव ।
त्वं वै दिगीशो किंदिगीशस्त्वमेवमारोपमात्रं वितथोऽस्मासु शब्दः ॥ ९ ॥
यद्वाच्यवाचकमयं जगदेतदीश पादस्तवैष सकलो भुवनानि विश्वा
ऊर्ध्वं त्रिपात् पुनरुदैदमृतं तवैव रूपं परं परमहंस गुहायनस्थम् ॥१०॥

नमस्ते राम रमणीसहस्रसुविलासिने ।
नीलवैदूर्यवर्णाय सच्चिदानन्दवर्चसे ॥११॥
नमस्ते सहजालक्ष्मीपरमानन्दमन्दिर ।
अशोकवनकुञ्जान्तःशय्यामन्दिरकेलिने ॥१२॥
नमस्ते रामचन्द्राय चिच्चकोरीसुखात्मने ।
निःश्रेयसामृतौघाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥१३॥

किमर्थमीशेन यत्नो विधेयः स्मृतो न तत्रैव सुकोशलायाम् ।
अनुग्रहो वा मयि कश्चित् स्वकीये विनिर्मितो नाथ यदागतं मुदा ॥१४॥
पुनर्नमोऽस्मै मुहुरेव नाथ तवामुष्मै सच्चिदानन्दधाम्ने ।
सीताविनोदैकनिकेतनाय श्रीविग्रहायामृतवर्षणाय ॥१५॥

श्रीराम उवाच

तातेनोपासिता यज्ञा अग्नयश्च त्रयीमयाः ।
अविच्छेदेन यजनं देवानां प्रत्यपद्यत ॥१६॥
तस्याग्नित्रितयं विष्णो कुण्डेभ्योऽपगता इति[1] ।
भ्रान्त्वा त्रिभुवनं सर्वमत्रान्वेषितुमायवस्[2] ॥१७॥
अत्र दृष्टाः सभायां ते अग्नयः पितृसेविताः ।
नेष्यामः प्रणिपत्यैतान् पितुर्मोदाय कोशले ॥१८॥

नारायण उवाच

एतेऽग्नयस्त्रयो नाथ त्वत्पित्रा समुपासिताः ।
मया हृताः परीक्षार्थं पूर्णस्य ब्रह्मणस्तव ॥१९॥
नीयतां संप्रति गृहे राम श्रीकोशलापुरे ।
अग्नयोऽमी त्रयीरूपाः पितुस्तेऽभीष्टदायकाः ॥२०॥

---

१. कुण्डेभ्यो य इहागताः—रीवाँ, २. °मीयिवान्—मथु०, वडो० ।

जानाति कस्ते माहात्म्यं वेदानामपि दुर्गमम्[1] ।
तवैव कृपया नाथ विज्ञेयं शुभजन्मभिः ॥२१॥
एवं प्रसादितो रामः पुरुषेणादिविष्णुना ।
नमन्तं तं विसृज्याग्नीन् पुरस्कृत्य त्रयीमयान् ॥२२॥
रथोपस्थमुपाविश्य मुहुर्मुक्तात्मभिः स्तुतः ।
वैमानिकगणैर्भूयः स्तूयमानः पदे पदे ॥२३॥
अक्षरस्यान्तमत्येत्य निस्तीर्य विरजां पुनः ।
कृत्वा च तमसः पारं चक्रज्योतिर्विभेदिनः ॥२४॥
लोकालोकमतिक्रम्य रथवेगेन तत्क्षणात् ।
आजगाम जवाद् रामः साकेतनगरीं प्रति ॥२५॥
अग्नित्रयं पुरोधाय सानुजो रथरंहसा ।
अयोध्यानयनानन्दवर्द्धनः पुनरागतः ॥२६॥
आगते रथशार्दूले अग्नीनादाय भूपतिः ।
अतिप्रीतमना भूत्वा रामं भूयोऽभ्यनन्दयत् ॥२७॥
अग्नीन् कुण्डेषु संस्थाप्य विधिवत् पुनराहितान् ।
सायं प्रातरुपासीनः पूर्णार्थो नृपतेरभूत् ॥२८॥
इत्थं स्थितो यौवराज्ये नन्दयन् भुवनत्रयम् ।
कोशलाधिपतेश्चित्तं विशेषेण ननन्द सः ॥२९॥

---

१. अतः परं—"भगवान् पुरुषः पूर्णो राम एव न संशयः ।
बहूनां रञ्जनकरः कान्तानां भूरि शक्तिमान् ॥
गोपाङ्गनास्तव विभो ललनाः समग्रा
दिक्पालकाश्च भवते समदुः स्वकन्याः ।
अन्याश्च नागनरकिन्नरदेववध्व—
स्त्वय्येव नेत्रसुखदे हि रता बभूवुः ॥
तस्मादेताः किंकरीस्त्वं महिष्यो
गान्धर्वेण प्रीतियुक्ता गृहाण ।
यस्मादेकस्त्वं स रामस्त्रिलोक्याः
स्वेच्छामात्रात् पूर्णचित्ताभिलाषः ॥"

इत्यधिकः पाठः—रीवाँ ।

यौवराज्ये स्थिते रामे सहस्रं शरदो ययुः ।
श्रीमज्जनकजापूर्णतारुण्यमदपोषिकाः ॥३०॥
प्रजानेत्रोत्सवो भूयान् प्रबभूव दिने दिने ।
श्रीरामचन्द्रपूर्णेन्दुदर्शनामृतवर्षणात् ॥३१॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे विष्णुकृत-रामस्तुतौ वैकुण्ठाग्न्यानयनं नाम[1] एकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

●

द्विनवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

यौवराज्ये स्थितं रामं नीतिज्ञं धर्मकोविदम् ।
राज्ञो नैश्चिन्त्यकर्तारं श्रियः सर्वाः प्रपेदिरे ॥ १ ॥
ऐश्वर्यमतुलं वीर्यं यशस्त्रैलोक्यशीतलम् ।
जानक्या संमिता श्रीश्च ज्ञानं स्वात्मनिदर्शनम् ॥ २ ॥
वैराग्यं विषयोन्मोकं सर्वभोगसुखातिगम् ।
षड्विधं भगमित्येतद्रामचन्द्रे बभूव ह ॥ ३ ॥

भुशुण्ड उवाच

षड्विधेन भगेनैष भगवानिति शब्दितः ।
तत्प्रायो विश्रुतप्रायं वेदेभ्यो बहुरूपतः ॥ ४ ॥
तथापि न समाज्ञातं[2] रामचन्द्रगतं भगम् ।
प्रत्येकमैश्वर्यमुखं वर्णितं यद्भवादृशैः ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

बहुधा वर्णितं वेदैर्भगवत्त्वममुष्य तत् ।
भगं भाग्यं पराशक्तिरन्तरङ्गतया स्थितम् ॥ ६ ॥

---

१. °नयने—अयो०, रीवाँ०, मथु०, बड़ो० । २. मे समाचक्ष्व—मथु०, बड़ो० ।

स्वरूपधर्मरूपं तत् परे ब्रह्मणि राघवे ।
न परो भगवांस्तस्माद्रामात् त्रैलोक्यसुन्दरात् ॥ ७ ॥
अथ तेऽहं प्रवक्ष्यामि रामस्यैश्वर्यमुत्तमम् ।
यस्याज्ञावशगा माया देवानामपि मोहिनी ॥ ८ ॥
सापि दासीवदासीना कस्तस्मात्पर ईश्वरः ।
कालोऽप्याज्ञाकरो यस्य सृष्टिस्थितिलयावहः ॥९॥
सर्वभूतैकग्रसनः सर्वभूतभयङ्करः ।
आध्यात्मिकोऽधिदैवश्च स तथैवाधिभौतिकः ॥१०॥
लीलारसपदार्थानामाधारो रसवत्तरः ।
आधिदैव इतिख्यातः कालो रामस्वरूपकः ॥११॥
आध्यात्मिकस्तथा कालः सूर्यरूपो जनार्दनः ।
त्रयीमयः स[1] सविता आधिदैववशानुगः ॥१२॥
आधिभौतिककालोऽयमाध्यात्मिकवशानुगः ।
परिणामकरः सर्वभूतानां फलभावनः ॥१३॥
कर्मोपासाज्ञानमार्गेष्वेको यः प्रतिबन्धकः ।
भगवन्तं च तद्भक्तं सर्वथैव विमुञ्चति ॥१४॥
जीवाश्चांशा यस्य सूक्ष्माणुमात्राः स्वस्यैवाभिध्यानतः संसरन्तः ।
कामक्लेशाद्यैर्निरानन्दरूपाः स्वस्यैवाविर्भावतः स्वेन तुल्याः ॥१५॥
ब्रह्मेत्याहुर्ये च वेदान्तवाचः सत्यज्ञानानन्दपूर्णप्रकाशम् ।
निर्वैशेष्यं ज्ञानिनामेकधिष्ण्यं तच्चाप्येकं यद्विभूतिस्वरूपम् ॥१६॥
सूर्याचन्द्रौ यस्य नेत्रे विशुद्धे द्यौर्वै मूर्द्धा खं च नाभिर्विशालम् ।
आशाः श्रोत्रे भूतलं पाददेशो यस्य स्थूलं रूपमेतद्विराट् सः ॥१७॥
निराकारं निर्विशेषं निर्भेदं च निरञ्जनम् ।
सर्वभूतान्तरात्मैकसूक्ष्मं तत्त्वं च यस्य तत् ॥१८॥
योगिनां हृदयाकाशे प्रकाशं ज्ञानदीप्तितः ।
यन्मायया तिरोभूय सर्वं निर्व्याप्य तिष्ठति ॥१९॥

---

१. °मयैष°—मथु०, बड़ो०

सर्वतः पाणिपादाद्यं सर्वतोऽक्षिशिरःश्रुतिः ।
एकाकारं निराकारं नानाकारं विभक्तिमत् ॥२०॥

अणोरणु महच्चादिमहतो विष्वगुद्भवम् ।
सैवान्तर्यामिता यस्य कस्तस्मात्पर ईश्वरः ॥२१॥

इतीदमैश्वर्यमनन्तमेव श्रीरामसंज्ञस्य परस्य धाम्नः ।
वेदेषु गीतं कविभिर्वर्णितं च ततोऽप्यनन्तं वदतो मे निबोध ॥२२॥

अनन्तकोटिब्रह्माण्डं बिभ्रद्रोमविलः परः ।
पुरुषः सोऽपि यस्यांशः कस्तस्मात् पर ईश्वरः ॥२३॥

यस्य लीलैव कैवल्यं जीवानां संप्रगायताम् ।
ब्रह्मादीनामप्यगम्यं कस्तस्मात्पर ईश्वरः ॥२४॥

सृजत्या[1] विशते भूयो साक्षीव[2] निखिलं जगत् ।
जीवेनैवात्मरूपेण तथान्तर्यामिरूपतः ॥२५॥

विक्रीडति विशेषेण निजलीलारसात्मकः ।
सहजानन्दिनीशक्त्या कस्तस्मात् पर ईश्वरः ॥२६॥

एक एव द्विरूपेण नानालीलार्थरूपतः ।
नित्याविर्भूत एवासौ भुङ्क्ते स्वानन्दधोरणीम् ॥२७॥

अप्राकृतैः प्राकृतैश्च वस्तुभिः स्वैस्तदर्थकैः ।
नटवत् कुरुते केलीः कस्तस्मात् पर ईश्वरः ॥२८॥

यथा कश्चिन्महाराजो निजेच्छामनुरुध्य वै ।
अशक्यं च सुशक्यं च दुःशक्यं च विधाय हि[3] ॥२९॥

अन्यथा कुरुते भूयः करोति न करोति च ।
यथा प्राचीनवस्तूनि कृतानि स्वयमादरात् ॥३०॥

प्राकारगोपुरा[4]दीनि भङ्क्त्वोद्यानवनादिकम् ।
कुरुते तत्पुनर्भङ्क्त्वा प्राकारगोपुरा[5]दिकम् ॥३१॥

---

१. सृजन्यो—अयो०, रीवाँ । २. साक्षीत्वं—रीवाँ, मायीव—मथु०, बड़ो० । ३. चापिधावति—अयो०, रीवाँ । ४. गोमुखा°—मथु०, बड़ो० । ५. गोमुखा°—मथु० बड़ो० ।

एवं स्वयं कृतान्येव कुरुते स्वेच्छयान्यथा ।
निजलीलारसैकार्थं कस्तस्मात् पर ईश्वरः ॥३२॥

मत्स्यो भूत्वा कदाप्येष भक्तरक्षाविचक्षणः ।
लक्षैकयोजनायामश्रृङ्गस्थापितपोतकः ॥३३॥

प्रलयार्णवनिर्मग्नां वेदवाच[1]मुपाहरत् ।
तत्कालोचितमाधुर्यवेषविग्रहशोभितः ॥३४॥

सत्यव्रताय वहुशो वेदानां हार्दमुक्तवान् ।
चकच्चकायमानाङ्गः[2] शुद्धसत्त्वमुपाविशत् ॥३५॥

कदाचित् कच्छपाकारो मन्दराचलधारणात्[3] ।
ईषत्कण्डूतिसुखवाट् देवानां हितमाचरत् ॥३६॥

कदाचिद्दिव्यवाराहरूपभृत् संनिवेशवान् ।
कल्पान्तसमया[4]म्भोधिजलवृन्दं विनिर्धुवन्॥३७॥

उर्व्वीमुदवहद् भूरि सटा[5]मण्डितकन्धरः ।
खुराघातैः[6]कुलाद्रीणां कूटानि त्रोटयन् रुषा ॥३८॥

संवत्सरसहस्राणि हिरण्याक्षेण युद्धवान् ।
विनयन् बाहुकण्डूतीः केवलं वीर्यसंमदी ॥३९॥

अपातयन्महेन्द्रस्य विद्वेष्टारं तमुद्धतम्[7] ।
साक्षाद्यज्ञस्वरूपेण दृष्टो ब्रह्मशिवादिभिः ॥४०॥

व्यतनोत् कर्मणां संस्थाः स्वरूपेणैव तत्क्षणात् ।
अथ भूयोऽपि देवोऽयं[8] दिव्यकेवलरूपधृक् ॥४१॥

अरण्यादागतो रुष्टो दुर्दर्शः क्रूरविग्रहः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि दितिजेन्द्रमयोधयत्[9] ॥४२॥

प्रह्लादस्य हितार्थाय तथारूपो बभौ प्रभुः ।
अथान्यदा बलिं नाम दैत्येन्द्रं त्रिजगत्प्रभुम् ॥४३॥

---

१. दैवींवाचं—मथु०, बड़ो० । २. °नाम्भः—अयो० । ३. मंदरात्—रीवाँ । ४. कल्पांतरसमां°—अयो० । ५. सदा—अयो० । ६. सुरावातैः—अयो० । ७. तमद्भुतम्—अयो० । ८. देवो वः—अयो० । ९. अबोधयत्—बड़ो० ।

सुरेन्द्रलक्ष्मीहर्तारं प्रसभं छलमात्रतः ।
पातालं वेशयामास वामनोऽथ त्रिविक्रमः ॥४४॥
देवैर्नरैर्मुनिगणैर्दृष्टोऽत्यद्भुतविक्रमी ।
कोटिबिम्बार्कदुर्दर्शो रसनाबद्धतारकः ॥४५॥
गणैर्जये[1]त्यभिहितस्त्रैलोक्येन विराजितः ।
शुशुभे भगवान् साक्षादयमेव शुभाकृतिः ॥४६॥
अथ राजन्यवर्येषु विधर्माक्रान्तबुद्धिषु ।
अब्रह्मण्येषु दुर्वृत्तेष्वात्मवीर्यविकासवान् ॥४७॥
कुठारधारादुर्दर्शो विप्रः क्षत्रियघातकः[2] ।
दुःक्षत्ररहितां भूमिं चक्रे वारैकविंशतिम् ॥४८॥
अपोषयद् ब्राह्मणांश्च दानं कृत्वा महाद्भुतम् ।
चकर्त कार्त्तवीर्यस्य दोर्दण्डद्रुममण्डलीम् ॥४९॥
अथ दाशरथे गेहे सर्वसंपद्विभूषिते ।
भ्रातृभिः सहितो जातो रसिकेन्द्रशिखामणिः ॥५०॥
कल्पं सारस्वतं प्राप्य साक्षात् पूर्णः शुभाकृतिः ।
मैथिलीनयनानन्ददायी पौरुषभूषणः ॥५१॥
नीतिधर्मप्रवृत्तित्वात् सतां संमतसद्गुणः ।
योगिभिर्वृतहृत्तर्षै[3]र्गीयमान उदारधीः ॥५२॥
मर्यादापालनपरश्चक्रे लीलां मनोहराम् ।
तामहं गदितुं शक्तो नैव जिह्वासहस्रकैः ॥५३॥
श्रीरामो नाममात्रेण रमयन् जीवधोरणीः ।
रमते रत्नाचले नित्यं भ्रात्रा सेवितपार्श्वकः ॥५४॥
भूय एष क्षपयिता रावणं लोकरावणम् ।
अगस्त्यहयशीर्षाद्यैर्ज्ञाततत्त्वः कथंचन ॥५५॥
महावीरो महाधीरो महाकारुणिकेश्वरः ।
कृतज्ञो यशसां राशिर्विप्राशीर्भिः समैधितः ॥५६॥

---

१. रामोजये°—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. घातुकः—मथु० बड़ो० ।
३. रुद्धर्षै—रीवाँ ।

लोकलोचनविश्रामो विरामो भूरिदुर्हृदाम् ।
वेदमार्गनया[1]रामो रामो विजयतेतराम् ॥५७॥

बलकृष्णादिरूपेण भविता च समः क्वचित् ।
अथ यज्ञगताञ्जन्तून् दयमानो दयानिधिः ॥५८॥

बुद्ध इत्याख्यया युक्तो भविता स्वयमेव च ।
ततश्च म्लेच्छभावेषु जनेषु कलिकालतः ॥५९॥

पुनः संस्मृत्य स्वं धर्मं भविता कल्किरूपधृक् ।
इमानि दश मुख्यानि रुपाण्यस्य महात्मनः ॥६०॥

युगे युगेऽवतरतो गीयन्ते वेदवित्तमैः ।
अन्यानि चापि रूपाणि युगरूपाणि बिभ्रति ॥६१॥

गुणावताररूपाणि तथैवान्यानि भूरिशः ।
श्वेतरक्तपीतकृष्णनानावर्णानि वै खग ॥६२॥

तथैवान्यानि[2] रूपाणि कलाश्चांशाः सनातनाः ।
तथैवावेशरूपाणि पृथुराजमुखानि च ॥६३॥

रामस्यैवाखिलारम्भा दृष्टाश्चैव श्रुता अपि ।
स्मृताः पुनन्ति भुवनं कस्तमात्पर ईश्वरः ॥६४॥

सकलैश्वर्यसीम्नो[3]ऽस्यैश्वर्यमुपवर्णितम् ।
तथा हि महती भूतिरनेनात्र प्रदर्शिता ॥६५॥

यौवराज्यस्थितेनैव श्रीमद्दाशरथे गृहे ।
गृहं खलु विशालं तद् योजनोच्छ्रायमीडितम् ॥६६॥

सभामण्डप[4]संशोभि मणिमाणिक्यभूषितम् ।
पितृपैतामहं यत्र हेमरत्नविभूषितम् ॥६७॥

निःश्रेणिका[5]त्रय युतं दिव्यं सिंहासनं स्थितम् ।
तत्रस्थोऽयं सभाकाले शुभुभे यौवराज्यभुक् ॥६८॥

---

१. °परो—रीवाँ, "वेदमार्गश्च नयश्च ताभ्यां" टि०—मथु० । २. तथान्यानि च—मथु०, बड़ो० । ३. °सीमा—अयो०, मथु०, बड़ो० । ४. °मण्डल°—रीवाँ । ५. निःश्रीणीका—रीवाँ ।

पितुराज्ञामनुल्लङ्घ्य नीतिधर्मानुशासकः ।
गायका नर्तकाश्चैव वादकाश्चोपवीणकाः ॥६९॥
अनेकशिल्पवैचित्रीशालिनः शुभकर्मिणः ।
स्वां स्वां विद्यां दर्शयन्त उवासाञ्चक्रिरे मिथः ॥
यौवराज्यस्थितं रामं त्रिजगत्कामवर्षणम् ॥६९॥
युवानमाजानुविशालदोर्द्वयं महार्हरत्नाढ्यलसत्किरीटिनम् ।
वलक्षमुक्ताफलपूरितश्रुतिं विलम्बिहाराभरणाद्युरःश्रियम् ॥७०॥
निरङ्कपूर्णेन्दुविराजिताननं जगत्त्रयीनेत्रचकोरतुष्टिदम् ।
समोदमीषत्स्मितरञ्जिताधरं नितान्तमाज्ञावशगाखिलेश्वरम्[1] ॥७१॥
सुपीवरांसं[2]सुविशालवक्षसं सुराजराजीवविराजितेक्षणम् ।
सुवर्णरत्नाङ्गदभातिरस्कृतस्फुरत्सभामण्डलभूतमिस्रकम् ॥७२॥
स्वामित्वधर्मेण वशीकृता[3]खिलं स्वाभाविकोद्योतसहस्रदीधितिम् ।
प्रसन्नकान्त्याभिसुधांशु[4]संपदं मनोरमालापकलासु कोविदम् ॥७३॥
के के न तोषितास्तेन के के न च वशीकृताः[5] ।
के के न संगताश्चैव के के न च कृतार्थिताः ॥७४॥
के के न काञ्चनासारैः कवयो धनदीकृताः ।
[6]के के न गजसंदोहैर्जना गजपतीकृताः ॥७५॥
के के न वाश्वसंदोहैर्जना हयपतीकृताः ।
के के न मणिसंदोहैर्जना रत्नाकरीकृताः[6] ॥७६॥
दिवामणिकुलोद्योते रामे प्रकृतिरञ्जने ।
यौवराज्यस्थिते दूरमगात् कलुषसंभवः ॥७७॥
अघस्यापि न लेशोऽभूत् प्रजा धर्मानुवर्तिताः ।
निरस्ततिमिरं रेजे सर्वतोऽवनिमण्डलम् ॥७८॥
दारिद्र्यमगमद् दूरं दिवाभीत इवोदये ।
चतुर्दिक्षु जयेत्येव शब्दोऽभूत् सुखवर्द्धनः ॥७९॥

---

१. °खिलायुधम्—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. सुपीतरासं—अयो० । ३. च स्वीकृता—अयो०, रीवाँ । ४. °धिसुधांशु—रीवाँ । ५. वचसाहिताः—रीवाँ । ६—६. नास्ति—अयो० ।

चतुर्णां च पुमर्थानामेष कल्पद्रुमोऽभवत् ।
साकेतपुरराजेन्द्रकुमारो लोकसुन्दरः ॥८०॥
मित्राणां स्थापनकरः प्रोज्जासनकरो द्विषाम् ।
कोटिकन्दर्पमूर्तित्वात् त्रिलोकीचित्तमोहनः ॥८१॥
तरुणार्क इवोद्योतशाली महिमभूषितः ।
तदेव चक्रे यत्राभूदन्येषामत्यशक्यता ॥८२॥
तत्रास्य बाणसंचारो यत्र राक्षससंक्षयः ।
ततान तादृशीं कीर्तिं भ्रातृव्याः यत्र मर्षिताः ॥८३॥
जगाद तादृशं वाक्यं यादृशं वेदसंमितम् ।
सज्जीकृत्य बलं गच्छन् गिरिशृङ्गाण्यपातयत् ॥८४॥
पुनश्च विनयं कृत्वा यात्रासिद्धिमवाप्य सः ।
जयतौर्यत्रिकोद्घोषैः प्रविशन् निजमन्दिरे ॥८५॥
असंख्यातान् गुणांस्तस्य को वा वर्णयितुं क्षमः ।
द्वितीयः सूर्य एवासौ साक्षाद्रामः स्वयंप्रभुः ॥६८॥
दिलीपस्य रघोश्चैव तथैवाजस्य भूपतेः ।
साक्षाद्दशरथस्यासावनुचक्रे पितुर्गुणान् ॥८७॥
आहोपुरुषिकां[1] साक्षाद्देवानां समपूपुषत् ।
असुराणां नाशकृते सिद्धीनामासनं बभौ[2] ॥८८॥
वीरतायाश्च मञ्जूषा शूरताशासनो बभौ ।
अधर्मस्य च संधारो धर्मस्याधार एव च ॥८९॥
पारावारो बलस्यैष कीर्तेः कर्तानुवासरम् ।
भूमेर्भर्त्ता दशरथस्तस्य संतोषदायकः ॥९०॥
विभ्राणश्च स्वयं शक्त्या विप्रगोवेदबान्धवान् ।
परपीडापहर्ता च संसारस्योपरि स्थितः ॥९१॥
सर्वस्योच्चैः स्थितोऽप्येष नीचैरेवास्थितो गुरोः ।
वेदानां रक्षकः साक्षात् क्षत्रधर्मव्रताकरः ॥९२॥

---

१. "अहमेव पुरुष इति अहंपुरुषस्तस्यभाव आहोपुरुषिका" टि०—मथु० ।
२. "असुरनाशकसिद्धीनाम् आसनमास्पदभूतो रामः बभौ" टि०—मथु० ।

दूरात् कालाग्नियन्त्राभः शत्रूणां भयवर्द्धनः ।
समीपे च महातीक्ष्णकालजिह्वाकृपाणवत् ॥९३॥
दुर्गाणा[1]मावरणकृद्द्वाररोद्धा कपाटवत् ।
सद्धर्मकर्मणां भूमिर्गुणैर्गङ्गासमुज्वलः ॥९४॥
अघतार्णकुटीपुञ्जज्वालनो नाममात्रतः ।
परसैन्यमहामेघघटासंघट्टमारुतः ॥९५॥
आकाश इव[2] विस्तारी ज्योतिषां स्थानमव्ययम् ।
सूर्यमण्डलवच्छत्रं चामरे चन्द्रबिम्बवत् ॥९६॥
सिंहासनं मेरुसमं पादप्रोञ्छनवन्मही ।
यस्योचितं परं त्वेष पितुराज्ञाकरो भृशम् ॥९७॥
द्वीपाद् द्वीपान्तरं गच्छन् नामयामास भूपतीन् ।
समुद्रान् ग्राहयामास सैन्यैः सचतुरङ्गकैः ॥९८॥
पर्वतान् लोपयामास[3] यातायातैर्बलस्य सः ।
देशान्तरादुपागत्य जगुरेनं कवीश्वराः ॥९९॥
लेभिरे रत्नकूटानि महेभांश्च महाहयान् ।
लक्षकोट्यधिकं द्रव्यं प्रसादीकृत्य तान् ददौ ॥१००॥
लेभे च महतीं कीर्तिं शरच्चन्द्रांशुशीतलाम् ।
यथा प्रोद्भासितं विश्वं यावत्कल्पो विधेर्दिनम् ॥१०१॥
प्रजानां भालसंभाग्यं साक्षादेव रघूद्वहः ।
उज्जागरः श्रियामेषः सागरः सर्वसंपदाम् ॥१०२॥
आशीर्भिर्वर्द्धयामासुरेनं सिंहासनस्थितम् ।
चिरंजीव महाराजकुमार नयनोत्सव ॥१०३॥
श्रीराम लक्ष्मणसख भरताद्यनुजान्वित ।
तानेव नतवान् मूर्द्ध्ना बहुमानपुरःसरम् ॥१०४॥
सिंहासनस्थे श्रीरामे युवराजे रघूद्वहे ।
रत्नभाजनसंदोहनानोपायनपाणयः ॥१०५॥

---

१. दर्पाणा°—रीवाँ । २. °वर°—अयो० । ३. लोकयामास—रीवाँ ।

ताम्बूलभाजनकराः पर्यस्थुः पारिपार्श्वकाः ।
माद्यद्गजवरारूढा नटवद्वंशसंस्थिताः ॥१०६॥
उपसेदुर्महामात्राः संतुष्टयै राघवेशितुः ।
कूर्द्दमानाः केकिशिराश्चतुरङ्गा जयोद्धुराः ॥१०७॥
लघुपल्याणिनो वीरा अश्वपालकरस्थिताः ।
पट्ट[1]सूत्रसमाबद्धा उपसेदुस्तुरङ्गमाः ॥१०८॥
[2]कृष्णसाराश्चारुदृशस्तीक्ष्णशृङ्गा जयोद्धताः ।
पट्टसूत्रसमाबद्धा उपसेदुस्तदग्रतः[2] ॥१०९॥
मृगयाधावननवाः श्वानो[3]मध्ये तरक्षुवत् ।
ललद्विलोलजिह्वाग्रा हयानामग्रगामिनः ॥११०॥
शार्दूलपोतैः सदृशाः परस्परगुणाधिकाः ।
कालवर्णाः पीतरुचः श्वेताश्चित्रतनुत्विषः ॥१११॥
धूम्राक्षाश्चातिधूम्राभाः पट्टसूत्रावलम्बिनः ।
कूर्द्दमानमृगीपोतग्राहिणस्तृतीये क्रमे ॥११२॥
ग्रामसिंहोत्तमास्तत्र ह्युपसेदुरनेकशः ।
ग्रामाणां नगराणां च देशानां च विशेषतः ॥११३॥
निष्पत्तिं तु समादाय सेवका उपतस्थिरे ।
कान्त्या विशालरसना[4] नेत्रैः पीयूषवार्मुचः ॥११४॥
गत्या चापि गरीयांसः कीर्तिविस्तारकारकाः ।
आख्यानाख्यायकाः[5] काव्यगुरवो वर्णनक्षमाः ॥११५॥
अनेक शास्त्रनिपुणाः कवयश्चोपतस्थिरे ।
देशेषु परदेशेषु तपन्तो भानुबिम्बवत् ॥११६॥
पञ्चहस्तप्रमाणाङ्गा युवानोऽगण्यविक्रमाः ।
सर्वे विज्ञातविजयाः शस्त्रशास्त्रविशारदाः ॥११७॥
कृपाणिकटिसंनद्धा वाणेषुधिधराश्च ये ।
वाचामन्यतमाः सर्वे शूराः समुपसेदिरे ॥११८॥

---

१. अक्षसूत्र°—रीवाँ। २—२. नास्ति—अयो०। ३. वन°—रीवाँ। ४. कृंत्यार्विलरसना—अयो०, कांत्याविरलसा—रीवाँ। ५. °ख्यायिकाकाव्य°—मथु०, बड़ो०।

तत्र तत्रा[1]भवद्भाग्यं यत्र यत्र दृशं ददौ ।
यदा यदा प्रसङ्गोऽभूत् कवीनां भाग्यवृद्धये ॥११९॥
तदा तदा समभवत् कांचनासारवारिदः ।
इति ते प्रोक्तमैश्वर्यं वीर्यमस्य शृणु द्विज ॥१२०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे
रामयौवराज्ये द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ वीर्यं रामचन्द्रस्य वक्ष्ये ह्यनन्यसामान्यममेयमस्य ।
लोकोत्तरं भागवत्त्वैकचिह्नं निशम्यतां वीर भुशुण्ड मत्तः ॥१॥
येनैकविंशवारान् वै कुठारेण वरौजसा ।
क्षत्रियान् युधिनिर्जित्य क्लृप्ता[2] रक्तोदका ह्रदाः[3] ॥२॥
तपःप्रतापयोः पुञ्जः साक्षादग्निरिवोद्धतः ।
दुर्दर्शनोऽतिधाम्नैव दुराराध्यो दुरासदः ॥ ३ ॥
समुद्रवेष्ठितमही दानसंपूजितद्विजः ।
क्षत्रियान्तकरो रामः सोऽपि येन विनिर्जितः[4] ॥ ४ ॥
बलादाकृष्य तत्तेजः स्वस्मिन्नेव न्यवेशयत् ।
कस्तस्मादितरो वीरः श्रीमद्दशरथात्मजात् ॥ ५ ॥
शैलेन्द्रसारं कठिनं पुराणं शाम्भवं धनुः ।
बभञ्ज लीलया बालस्ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥ ६ ॥
पश्यतामेव सर्वेषामाद्वीपान्तमहीभृताम् ।
उवाह जानकीमेष ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥ ७ ॥

---

१. तदा—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. कर्त्ता—रीवाँ । ३. ह्रदान्—रीवाँ । ४. विवर्जितः—रीवाँ ।

भूतानां भयदं तीक्ष्णं सुबाहुं नाम राक्षसम् ।
सहस्रधा कृतात्मानं युद्धयन्तं शस्त्रवृष्टिभिः ॥ ८ ॥
मायाविनं महाघोरं जेतारं सुरसंपदाम् ।
विकटाटोपसंरंभदुर्दर्शं सुदुरासदम् ॥ ९ ॥
सहस्रधा स्वयं चापि कृत्वा स्वात्मानमुच्चकैः ।
अपातयद्रणे घोरे ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥१०॥
अन्ये च भूभारकृतो राक्षसा घोरदर्शनाः ।
विप्रद्रुहोऽपकर्त्तारः सतां देवत्रयीगिराम् ॥११॥
महाबला महाघोरा दुर्दुरूढा बलोच्छ्रयाः ।
आकाशचारिणो वीराः शिलापर्वतवर्षिणः ॥१२॥
करालविग्रहाटोपा घटासंघट्टमेचकाः ।
नानावर्णा दुराक्रम्या भयानकरणक्रियाः ॥१३॥
तेऽपि नीता क्षयं बाणैस्ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ।
अग्रे च भ्रूभङ्गमात्राज्जलधिं विपुलोदकम् ॥१४॥
नियम्य पातयामास पादयोरभयङ्करः ।
शिलाभिस्तं समाच्छाद्य सेतुं कृत्वा दृढं प्रभुः ॥१५॥
प्लवङ्गांस्तारयामास लङ्कानिर्जयहेतवे ।
भयानकानां राक्षसानामगणय्य महाचमूम् ॥१६॥
लङ्कामावृत्य परितः स्वसैन्यं संनिवेश्य च ।
पश्यतां राक्षसेन्द्राणां लङ्काधिपतिशीर्षतः ॥
अपातयच्छितैर्बाणैरातपत्राणि तत्क्षणात् ॥१७॥
ज्ञातं च यन्महासत्त्वं मन्दोदर्या विशेषतः ।
वर्णितं स्वस्य पतये ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥१८॥
वालिनं चोद्धतबलं कृतलङ्केशनिर्जयम् ।
बभञ्जैकेन बाणेन ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥१९॥
योऽन्तर्यामितया सुरासुरनरत्रैलौक्यमध्ये स्थितो
भक्तानां भयसंजिहीर्षणकृते पाणौ धनुर्बाणभृत् ॥
मर्यादापरिपालनैकनिपुणः सर्वावतारेश्वरः ।
श्रीमानेष चिरन्तनो विजयते पूर्णः परः पूरुषः ॥२०॥

अस्याज्ञातत्परो वीरो हनूमान् विश्वनिर्जयी ।
कुर्वन् किलकिलाशब्दैः क्षोभणं यक्षरक्षसाम् ॥२१॥
कपीन्द्रः स्मरणादेव दुष्टजालप्रणाशनः ।
रुष्टोऽम्भोधिं शोषयेद्यो धरित्रीमपि दारयेत् ॥२२॥
पर्वतान् पातयेदेव भिन्द्याद् वज्रमपीच्छया[1] ।
मथ्यात्[2] त्रैलोक्यमखिलं ससुरासुरमानुषम् ॥२३॥
कालयेत् कालमपि यो हरेत् सर्वस्य पौरुषम् ।
सिंहनादी महाभीमो ब्रह्माण्डमपि चोद्वहेत् ॥२४॥
उद्धरेन्मेरुमपि यः साक्षान्मारुतनन्दनः ।
तादृशो यस्य पुरतो बद्धाञ्जलिपुटः स्थितः ॥२५॥
किंकरोमीति सततं स्वदास्यमनुदर्शयन् ।
आनमत्कन्धरौ भक्त्या ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥२६॥
इति श्रीरामचन्द्रस्य वीर्यं ते कथितं मया ॥२७॥
यस्यैकनाम सकलागमसारभूतं
भूयो जपन् किल नरः प्रविमुच्यते वै ।
ब्रह्मादिदैवतभयानकरूपकाल—
व्यालाननान् जयति कोऽन्य इतोऽपि वीरः ॥२८॥
प्राणान्तकरणोद्युक्ता[3] भयदा यमकिङ्कराः ।
सुदुर्दर्शाः पाशकराः कशाहस्ताः सुवेगिनः ॥२९॥
तेऽपि संयमिनीपुर्यां वासिनो घोरविग्रहाः ।
यस्यैकनाममात्रेण पलायन्ते दिशो दश ॥३०॥
निर्भयो जायते मर्त्यो निस्तीर्णः कालसंकटात् ।
सर्वत्र पूजां लभते कस्तस्मात्पर ईश्वरः ॥३१॥
यस्य भ्राता लक्ष्मणाख्यो यतीन्द्रः
कल्पान्ताग्निक्रोधदुष्प्रेक्षरूपः।
भक्तस्यार्थे स्वयमात्तेषुचापः
कोऽन्यस्तस्मादुच्चकैर्वीरवर्यः ॥३२॥

---

१. °मयीक्षया—अयो० । २. तथा—अयो० । ३. °करणे युक्ता—अयो०, रीवाँ ।

कालस्यापि भयं यस्माद्विश्वतः कलनात्मनः ।
सूर्य्यस्य नित्यं भ्रमतो मरुतस्य सदागतेः ॥३३॥
अन्येषां चापिदेवानां मर्यादासंस्थितात्मनाम् ।
यतो भयं नित्यमेव महासंहरणात्मनः ॥३४॥
स्थावराणां जङ्गमानां यत एवास्ति संस्थितिः ।
स्वे स्वे स्थाने स्थापितानां नाद्याप्यस्ति व्यतिक्रमः
प्रभूणां चापि सर्वेषामेक एव च यः प्रभुः ॥३५॥
कालाग्निरुद्रो जगतीतलस्य
करालरूपो विकटज्वालमाली ।
कल्पान्तेषु क्षम एषो[1]ऽस्य हृत्यै
सोऽप्यस्य य[2]स्तुल्यतां नैव याति ॥३७॥
यौवराज्यपदे स्थित्वा स्वपीठमधितिष्ठति ।
कोटिब्रह्माण्डकर्तारो विधयः कोटिशङ्कराः ॥३८॥
कोटयश्च महेन्द्राणां वरुणानां च कोटयः ।
कोटयः पावकानां च यमानां चापि कोटयः ॥३९॥
बद्धाञ्जलिपुटा भूत्वा अग्रतः पर्युपास्थिताः ।
ततः प्रसादमासाद्य गच्छन्ति स्वस्य विष्टपम् ॥४०॥
कांश्चित् कृपाकटाक्षेण कांश्चिन्मञ्जुमुखस्मितैः ।
कांश्चिदालापमात्रेण कांश्चिद्दर्शनमात्रतः ॥४१॥
राघवेन्द्रोऽनुगृह्णाति कोटिब्रह्माण्डनायकः ।
यस्यावतारसमये वैकुण्ठं वीक्ष्य शून्यवत् ॥४२॥
ये तत्र गामिनो देवा ब्रह्माद्या आधिकारिकाः ।
ज्ञात्वा परं पूरुषं तं नित्यमेवमुपासते ॥४३॥
तस्य वीर्यं समालम्ब्य रावणाद्यैरुपद्रुताः ।
विस्रस्ताः स्वाधिकारेभ्यः स्वान्ते संतापसञ्जुषः ॥४४॥
यस्य वीर्यं समालम्ब्य त्रिदशा सर्व एव हि ।
तादृशं विपदां भारं न किंचिद् गणयन्त्यहो ॥४५॥

१. एको—मथु०, बड़ो० । २. सोऽप्यस्यैष—मथु०, बड़ो० ।

स्मृत्वा यस्य धनुर्वाणौ सतां रक्षणकारकौ ।
दैत्यानामस्त्रशस्त्राणि मन्यन्ते तृणवच्च ते ॥४६॥
यस्य चक्रं महाज्वालामालादीधितिसंयुतम् ।
दैत्यस्तोमतृणारण्यदाहनोद्धुरताण्डवम् ॥४७॥
अपां तत्त्वं दरवरं यस्य पाणौ विराजते ।
यत्र मग्नास्तु दितिजा नोन्मज्जन्ति पुनः क्वचित् ॥४८॥
वायुतत्त्वमयी यस्य गदा नित्यं बलोर्जिता ।
दैतेयघनसंघट्टविद्रावणमहोर्जिता ॥४९॥
भुवनात्मकमम्भोजं यस्य पाणितले स्थितम् ।
मोहनं सर्वदैत्यानां ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥५०॥
देवानां चैव यक्षाणां गन्धर्वाणांच कन्यकाः ।
[1]राज्ञां पुण्यजनानां च मनुष्याणां च कन्यकाः[1] ॥५१॥
द्वीपान्तरस्थितानां च विचित्रजनुषां नृणाम् ।
काश्मीरादिप्रदेशस्थमानवानां गुणान्विताः ॥५२॥
पत्न्यश्च पुत्रिकाश्चैव रूपसौन्दर्यशोभिताः ।
कामलुब्धेन नितरां रावणेन दुरात्मना ॥५३॥
द्विरागमविवाहादौ येषु तेषु[2] जनादिषु ।
पतिसंयोगकालादौ प्रसभं बलिना हृताः ॥५४॥
वन्दीकृताश्चावरुद्धाः प्रत्यहं शोककर्शिताः ।
यस्य वीर्यविमर्शेन वासरं गमयन्ति ताः ॥५५॥
दीनानां नः प्रभुरेकस्त्रिलोक्यां श्रीमान् वीरो योऽग्रगण्यः प्रतापी ।
कदा समागत्य रघुप्रवीरः श्रीरामचन्द्रो मोचयिष्यत्यमुष्मात् ॥५६॥
अस्मांस्तदेकशरणाः पतिपितृभ्रातृ—[3]
पुत्रादिभिर्विरहिता हृदिशोकभाजः ।
श्रीराघवेन्द्र इह संगत एव काले
संमोचयिष्यति बलाद् बलवान् स एकः ॥५७॥

१—१. नास्ति—अयो०, रीवाँ। २. देवतासु—अयो०, मथु०, बड़ो०।
३. °पित्रपत्य°—अयो०, मथु०, बड़ो०।

नान्योऽस्माकं मोचयिता दृश्यते भुवनत्रये ।
रावणत्रिजगज्जैत्रादेकं रघुपतिं विना ॥५८॥
इति विश्वस्तचित्तास्ता भावयन्ति दिवानिशम् ।
यमेव वरशार्दूलं ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥५९॥
संप्राप्ते संकटे चापि महाभय उपस्थिते ।
संग्रामे विषमे घोरे दुर्गमे जलसंगमे ॥६०॥
राजद्वारे भयकरे तथैवाध्वनि दुर्गमे ।
क्रव्यादद्विपसर्पादौ सद्यो नाशार्थमुद्यते ॥६१॥
कान्तारे दुर्गमे चैव पर्वते सिंहसंयुते ।
भूतप्रेतपिशाचाद्यैर्जृम्भकाद्यैरुपद्रुते ॥६२॥
रामेति यस्य नाम्नैव तरन्ति विपदोऽखिलाः ।
जायन्ते निर्भया लोकाः कोऽन्यस्तस्माच्च वीर्यवान् ॥६३॥
इति ते वीर्यमाख्यातं रामस्य सुमहात्मनः ।
यज्ज्ञात्वा खलु जायन्ते अनन्यशरणा जनाः ॥६४॥
वीराय वीरवर्याय महावीर्यगुणात्मने ।
राघवेन्द्राय रामाय नित्यमेव नमोनमः ॥६५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे
षड्गुणोपाख्याने [वीर्यव्याख्यानं नाम]
त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ ते राघवेन्द्रस्य प्रवक्ष्यामि यशोगुणम् ।
जनो यद्गानमात्रेण भवबन्धात् प्रमुच्यते ॥ १ ॥
सभामण्डपमागत्य स्थिते श्रीरघुसत्तमे ।
वेदास्तापसरूपेण गायन्ति विपुलं यशः ॥ २ ॥
अनवद्यलसद्वर्णां गद्यपद्यादिरूपिणीम् ।
अवलम्ब्य गिरं तादृग्गभीरार्थविशारदाम् ॥ ३ ॥
यमकोद्भासिनीं भूयो दण्डकोदण्डमण्डिताम् ।
सरस्वतीमुपाश्रित्य सालङ्कारां गुणान्विताम् ॥ ४ ॥
सर्वलक्षणसंयुक्तां विमुक्तक्रमसंक्रमाम् ।
अभूतपूर्वविपुलां कविताख्यां तरङ्गिणीम् ॥ ५ ॥
श्रीरामचन्द्रवदनालोककौस्तुभसंस्तुताम्[1] ।
चमत्कारशतैर्युक्तां भारतीं समदर्शयन् ॥ ६ ॥

वेदा ऊचुः

श्रीखण्डद्रवशीतलं विजयते नित्यं त्वदीयं यशः
कामक्लेशमुखैरुपद्रुतममुं जीवं तमःसंयुतम् ।
संतप्तं बहुशो विपन्नमसकृत् संशीतयत्येव यः
पीयूषोपममुच्चकैस्तदभितो भक्तैर्जनैर्गीयते ॥ ७ ॥
शरच्चान्द्रीवलक्षं[2] यत् प्रकृत्या स्वादु शीतलम् ।
अपहाय जनस्तादृक् तावकं विपुलं यशः ॥ ८ ॥
कोऽन्तःसंतापसंदोहनिर्वापं[3] खलु वाञ्छति ।
इति चात्र[4] महामोह[5]व्याकुले दुर्भगे भवे ॥ ९ ॥

---

१. संप्लुताम्—मथु०, बड़ो० । २. शरच्चन्द्रविलक्ष्यं—अयो०, रीवाँ । ३. विवादे—अयो०, रीवाँ । ४. इतरत्र—अयो० । ५. अतः परं—"विवादं भजते पुनः, व्याकुले दुर्भगे चापि भागवान् जायते" इत्यधिकः पाठः—रीवाँ ।

नान्यस्त्वादृक् सुरेषु प्रतिकृतिकरणे भूरिसंतापराशेः
सर्वे त्वद्वृत्तमेव प्रलयमवधितः स्वाधिकारं भजन्ते ।
एकस्त्वं निःसमानः प्रभुवर वरणीयोऽसि जीवैः समस्तै-
रेषा ते राम कीर्तिस्त्रिभुवनजनताचित्तसंतापहर्त्री ॥१०॥

कोटिनिर्लाञ्छनेन्दूनां भास्वन्त्या प्रभयापि च ।
यद् दुर्निवारतिमिरं त्वत्कीर्त्या तन्निवर्तते ॥११॥

त्रिभुवनजनतायाश्चित्तसंतापहर्त्री
प्रसभतरमविद्याकामकर्मादिरूपम् ।
तिमिरमपहरन्ती विष्वगौज्ज्वल्ययुक्ता
विलसति तव कीर्तिः संततं राघवेन्दो ॥१२॥

क्षीराम्भोधेः समन्ताद्विलुलितलहरीलास्यलावण्यचौरी
कर्पूरक्षोदगौरी द्रुततरविसरच्चन्दनामोदयुक्ता ।
कीर्तिस्ते रामचन्द्र प्रकृतिसुमधुरा पूर्णपीयूषपूर—
प्राप्तप्राज्यप्रतिष्ठा कलयति कुमुदालोकिनीं चारुचान्द्रीम् ॥१३॥

जय जय जय देव साकेतचन्द्रश्रिया[1]तन्त्रचन्द्रद्युते[1] रामचन्द्र क्षमापाल शक्रादिदिक्पालतेजःस्फुरच्चण्डकोदण्डदण्डस्फुटोद्गीर्णवाणावली-शीर्णविद्वेषिसंघ प्रभूतप्रचण्डप्रतापप्रकाशप्रकृष्टप्रसर्पत्प्रभावप्रसारप्रभापूरित-क्ष्मातलक्षेमदाक्षुण्ण[2]कौक्षयकाक्षामलक्ष्मीक सक्षेमसोन्मादमातङ्गविश्राण-नोद्दाम दीव्यद्गुणग्राम भूदेवविश्राम भूयस्तरायाम धर्मद्रुमाराम हेराम कामाभिरामद्युते ॥१४॥

जय कविजनगीत तावत्तुलातीत[3] नित्यप्रमुदित[4]शीतद्युति-स्फीतसत्कीर्तिसंनीतसाङ्गस्वराधीतविप्राननोन्नीतमाङ्गल्यवाग्गीत खड्गस्फु-टाघातसद्यःसमुत्खातसर्वद्विषव्रात भूमण्डलायातलावण्यसंघात दोर्विक्रम-त्रातसद्धर्मविख्यात किंचिन्नवप्रातरुद्यत्पयोजातरोचिष्णवभिख्यात-पादद्वयापातनम्रद्विषत्सातदानस्फुटौदार्य[5]सद्विप्रसत्कार्य सद्वृत्तनिर्धा-

---

१–१ नास्ति—अयो० । २. °दाक्षिण्य°—रीवाँ, "अक्षुण्णमखण्डितं कौक्षेयकं खड्गो यस्य" टि०—मथु० । ३. °वाद्यकलातीत—रीवाँ । ४. °प्रमोदीत°—अयो०, मथु०, बड़ो० । ५. "किंचिन्नवं नवीनं प्रातरुद्यत् विकसितं यत् पयोजातं कमलं तद्वत् ।

र्यवीर्यश्रियावार्य[1]सौन्दर्यसत्पात्र भूयोल्लसद्गात्रचञ्चद्यशोमात्र नित्यद्युते ॥१५॥

जय जय कविजनभालभूरिस्फुरद्भाग्यभूम्येकसौभाग्यसंपत्तिसंभार-धौरेयतोद्दण्डदोर्दण्ड शुण्डासमुच्चण्डभृङ्गावलीगण्डसोद्रेकवेतण्डविश्राण[2]-नाखण्डभूमण्डलाखण्डलोग्रप्रभाजाग्रदत्युग्रहस्ताग्र[3] किंभूयसा विस्तरेण त्वया देवकीर्तिश्रिया विश्वमेतत् समस्तं कृतं निस्तमस्कं तथा कोटिनिर्ला-ञ्छनेन्दुच्छवीनां छटाभिर्न संभाव्यते तादृशी श्रीरतस्त्वं समस्तावनीपाल-मूर्द्धाग्रमाणिक्य हेरामचन्द्र क्षमापालचन्द्र जीयाश्चिरं देव जीयाश्चिरम् ॥१६॥

जय जय गुणमयकाय सर्वाधिकोच्छ्राय दीव्यत्सदाध्यायविप्रावली-दायजाताहितापायशातावलीशाय विस्फूर्जितामन्दसौरभ्यमाकन्द[4] लक्ष्मीलताकन्द पूर्णान्तरामन्द दत्तारिहाक्रन्द[5] विद्वत्सभोल्लास भूयोरसा-वास खड्गोद्भवत्रास वश्यद्विषद्दास वाणासनोत्प्रासविक्रान्तिसोद्भास[6]हेराम तत्र त्वया कीर्तिरसंस्थापि यत्रोल्लसन्तः सुधापूरपूर्णाः स्फुरन्त्युच्चैस्तुङ्ग-गङ्गातरङ्गास्तथा राजहंसावली राजते यत्र कीर्तिस्तथा स्वःपते[7] ॥१७॥

इति ते भूयसीं कीर्तिं वर्णितां कविपुङ्गवैः ।
गायन्ति देवललना विमानस्थाः स्वकेलिषु ॥१८॥
मन्दाकिनी भोगवती गङ्गा गुणवती च या ।
सा तवैव यशोराजीपुण्यतोयतरङ्गवाट् ॥१९॥

रोचिष्णु रुचिरं अभिख्यातं प्रसिद्धं पादद्वयं तस्य पातेन ताडनेन नम्रा द्विषन्तस्तेषां सातदाने सुखप्रदाने स्फुटं औदार्यं यस्य" टि०—मथु० । १. "यस्य वीर्यश्रियौ वारयितुमशक्ये" टि०—मथु० । २. "शुंडाभिः समुच्चंडो अत्युच्चो भृंगावलीयुक्तगंडो येषां ते तथाभूताः सोद्रेका मत्ता वेतंडा गजास्तेषां विश्राणनं दानं यस्य" टि०—मथु । ३. "प्रभया जाग्रद् देदीप्यमानं अत्युग्रं सर्वकार्यसमर्थं हस्ताग्रं यस्य' टि०—मथु० । ४. "विस्फूर्जितं प्रसृतं अमंदं यत् सौगन्ध्यं तस्य माकंद आम्र-वृक्षस्तत्तुल्यं" टि०—मथु० । ५. "दत्त अरीणां हाक्रन्दो हाहाकारो येन" टि०—मथु० । ६. "वाणासनं धनुः तस्योत्प्रास आकर्षणं तस्य विक्रांतिर्विक्रमस्तया विराजमानं" टि०—मथु० । ७. "यत्र सुधापूरः गंगा च यत्र हंसपंक्तिस्तत्रैव तव कीर्तिरिन्द्रस्य कीर्तिवत्" टि०—मथु० ।

उद्गायतां प्रतिपदं सुरभीकरोति
वक्राणि कल्पतरुपुण्यपरागवद् यः ।
चेतः पुनाति रुचिमुत्कुरुते श्रवःसु
जाड्यं धुनोति तनुते विपुलार्थसार्थम् ॥२०॥

श्लोकस्तादृक्तावको राघवेन्दो यन्नो गीतः शून्य एवास्ति वेदः ।
यद्वा गीतः सर्वभावातिरेकात् किंतैर्गीतैर्दुर्विदग्धैस्तथान्यैः[1] ॥२१॥

संगीयन्ते यस्य गुणा वदान्याः समस्तसौभाग्यमुदामजस्रम् ।
किं तेन गीतेन य एति मृत्युमुत्पद्यते प्रकृतिर्यस्य दुष्टा ॥२२॥

ईशावास्यमिदं सर्वं भवता गुणसिन्धुना ।
त्रैलोक्यबन्धुना राम संततं करुणात्मना ॥२३॥

सुमेरुशिखरासीना मन्दारद्रुममूलगाः ।
दिविषत्कन्यका राम गायन्ति भवतो यशः ॥२४॥

वेदैरपि न निर्णेयं यस्य नाम महद्यशः ।
के नाम तापसास्तत्र वयं वर्णयितुं क्षमाः ॥२५॥

दत्त्वा न प्रथयन्ति तज्जनमुखे शश्वद्गृहाभ्यागते ।
सानन्दं कृतसंभ्रमा इव भवन्त्याधाय कर्म प्रियम् ।
तूष्णीमासत आत्मनीतरजनस्वल्पोपकारक्रियां[2]
घण्टाघोषवदीरयन्ति दधते नोत्सेकमन्तः श्रियाम्[3] ॥२६॥

इत्याद्याः सकला गुणा विदधते कीर्तिं रघूणां हि व-
स्तत्रापि त्वमिह प्रभो विदित एवात्युत्तमः पूरुषः ।
येषामद्य[4] करोषि नाम सदलङ्कारं गुणानां हरे
तस्मात्ते गुणिनो जयन्ति हि गुणाः स्वार्थाःपरार्था अपि[5] ॥२७॥

नित्यं मारकतेषु हेमसदनालङ्कारिषु प्राङ्गणे—
ष्वासीना विदुषां स्त्रियस्त्वदमलश्लोकानुकीर्तिस्पृशाम् ।

---

१. "वेदः यत् तव यशः न उद्गीतः नो गायति तदा शून्य एव, यद्वा सर्वाधिक्येन गायति तदा तु अन्यगीतैः किं ?" टि०—मथु० । २. "आत्मनः स्वस्मात् इतरजनानां स्वल्पापि उपकारक्रिया उपकारकरणं" टि०—मथु० । ३. "उत्सेकं = दर्पं श्रियं प्राप्य उद्धता न भवन्तीत्यर्थः" टि०— मथु० । ४. तेषां—अयो०, मथु०, बडो० । ५. "किंभूता गुणा गुणिनः गुणा विद्यन्ते येषु ते परार्था परगुणगायका अपि गुणाः स्वार्थाः त्वद्गुणगायका एव" टि०—मथु० ।

मुक्ताविद्रुमहेमहीरकिरणप्रोन्मीलिताङ्गयः प्रभो
गृह्णे कर्मणि तावकं सुविषदं गायन्ति शश्वद् यशः ॥२८॥
नेन्दुः पूर्णतमोऽथ शारदनिशामध्योल्लसद्दीधिति—
र्नो वा कैरवकाननं न च सुधा संदीप्तिवन्मन्दिरम्[1] ।
नो वा शंभुशिरःसु मल्लिकुसुमस्रग्विष्णुपद्याः पयो
विश्वं भूषयते न राम भवतां यद्वद्वलक्षं यशः[2] ॥२९॥
यत्संगादशुचिः शुचिः सुमलिनोऽप्यौज्ज्वल्यवान् भासते
मूढोऽपि प्रगुणाकरः शठमतिश्चापीह सौहार्दवान्[3] ।
तत्तादृक् भवतो यशस्त्रिभुवनालङ्कारसारं जनो
हित्वान्यं यदुपासते नरपतिं लोभात् स वै दुर्भगः ॥३०॥
एके कालमहाभुजङ्गमपरित्रस्तास्तदेकौषधं
पीयूषोज्ज्वलमान्तराधिकपरीतापप्रतीकारकम् ।
श्रीमद्राघव तावकीनममलं विश्वप्रमोदप्रदम्
चेतोवश्यकरं यशः समुदयं प्रोद्गाय सुस्था बभुः ॥३१॥
नान्यो दाता न शूरो न च युवतिमनोहारिलावण्यलक्ष्मी-
र्नो विद्वान्नोपकर्ता न खलु पररुजां हारकस्तारको वा ।
प्रत्येकं रामचन्द्र त्रिजगति विरला ये गुणाः सर्व एते
तेऽमी त्वामेव लीलाऽवतरणसमुपाश्रित्य[4] शश्वज्जयन्ति ॥३२॥
धन्यो वाल्मीकिनामा जयति मुनिवरो धन्य एवाश्ववक्त्रो[5]
धन्यः श्रीमान् हनूमान् किमपि कलशजो धन्य उच्चैर्विधिश्च ।
धन्यः संकर्षणश्च त्रिभुवनभवनोद्दीपिनी वाक् च तेषां
धन्या श्रीरामचन्द्र प्रकृतिसुमधुरं त्वद्यशो ये वहन्ति ॥३३॥
यत्रैते ऋषयो भवन्ति ऋषयो विष्वक् प्रवृत्तिप्रदा-
श्छन्दोऽनुष्टुबथापि राम[6] बृहती त्रिष्टुब्[7] जगत्यादिभिः ।
त्रैलोक्योत्तरसर्वदिव्यगुणभूस्त्वंदेवता श्रीपते
शक्तिर्विश्वजनीनपापहरणं बीजं तथा कीलकम् ॥३४॥

---

१ °मन्मंदि°—रीवाँ, °मुन्मंदि°—अयो० । २. यच्चोज्ज्वलं ते यशः—अयो०, रीवाँ । ३. पीशलौहार्दवान्—मथु०, बडो० । ४. लीलावतारं समुपचितमुपा°—रीवाँ । ५. "हयग्रीव;" टि०—मथु० । ६. छन्दोभिः स्तुवतेभिराम—रीवाँ । ७. °नुष्टुब्—रीवाँ ।

त्वत्कीर्तिः सकलागमेषु विमलो मन्त्रः[1] परः कीर्तित-
स्तस्यैष प्रकृतः प्रयोगविभवः प्रोद्भाति सर्वेश्वर ।[2]
कामक्रोधमदप्रमादपिशुनस्तोमैकमुद्राकरः
सिद्धिं कामपि वाञ्छतामिह नृणामस्यैव संसाधनम् ॥३५॥
सद्यः प्रत्ययकृत् प्रभाव उदयत्येतस्य[3] लोकोत्तरो
यत्सर्वा अपि संसरेद्धि विपदो विघ्नाननेकानपि ।
श्रेयो भूरि लभेत भूतिरपि च श्रौरैहिकामुष्मिकी
के के नार्थगुणा जयन्ति जगति त्वत्कीर्तिमन्त्रे प्रभो ॥३६॥
आदौ नामैव सर्वागमनिगमगिरामित्थमेकं रहस्यं
चैतन्यानन्दरूपं तदनु च भवतो धाम नित्यप्रमोदम्[4] ।
नित्या ते तत्र लीला तदनु विजयते पूर्णकैवल्यरूपा
हंहो[5] त्वद्भक्तिभाजां फलमपि परमं साधनं त्वत्पदाप्त्यै ॥३७॥
आबाल्याद्रामचन्द्र त्वमिह विहितवानुद्धृतिं जीवराशे-
स्तामप्युद्गाय लोकाः प्रभुवर भवितारः किमग्रे न तद्वत् ।
एषा ते राघवेन्दो[6] जगति विजयते जीवजातेऽनुकम्पा-
यस्तां जानाति नान्धः स भवति विधिना वञ्चितो बुद्धिहीनः ॥३८॥

ते वर्णाः साधुवर्णाः किमपि रघुपते तत्पदं सत्पदाख्यम्
तद्वाक्यं साधुवाक्यं तदुपनतपदार्थाश्च ते सत्पदार्थाः ।
बुद्धिः सा शाब्दबुद्धिस्तदुपरि निगमा आगमाश्च प्रमाणं
यत्र श्रीरामनाम्ना तव खलु निहितं स्वात्मनः स्थानमुच्चैः ॥३९॥
वह्वालापैश्च किं तैः श्रुतिशतकशिरोभूषणैस्त्वदयशोभि-
र्ये राहित्यं भजन्ते त्वदितरदिविषत्कोटिमन्त्राणि[7] भाजः ।
यत्त्वत्कीर्त्याङ्कितं स्यात् प्रकृतिसुमधुरं दुर्लभं तत्किलैकं
वाक्यं त्वन्नामपूतं त्रिभुवनभवनध्वान्तहृद्दीपतुल्यम् ॥४०॥

---

१. "तत्र मंत्रे ऋषिः छन्दः देवता शक्तिः बीजं कीलकं जपे विनियोग-श्चेत्याद्यपेक्षितम्" टि०—मथु० । २. प्रोत्भासि सर्वेश्वरः—अयो० । ३. प्रभा उदयते तस्याशु—रीवाँ । ४. धाम प्रमोदवनं—मथु० बड़ो० । ५. हृद्या—रीवाँ । ६. राघवेन्द्र—रीवाँ । ७. मंत्राणु°—रीवाँ ।

आदौ मध्ये तथान्ते किमपि तव यशो गीयते राघवेन्दो
साम्ना ऋग्भिर्यजुर्भिर्मधुमधुरमथाथर्वभिः साभिचारैः ।
कर्म ज्ञानं च शश्वन्मुखरमुखतया वर्णयन्तोऽपि चामी
स्वाभाविक्यां क्रियायां तव महिमनिधेर्ज्ञानशक्तौ च शक्ताः[1] ॥४१॥
आदौ यत्राग्निहोत्रं गदितमथ हरे पूर्णमासः सदर्श-
श्चातुर्मास्यं पशुश्चाखिलफलकरणप्रक्रमोदारकर्मा ।
ज्योतिष्टोमाख्य उच्चैस्तदुपरि विहितः सोमपीथक्रियावा-
नग्निष्टोमः स एवं विलसति भवतो वर्ष्म यज्ञस्वरूपम्[2] ॥४२॥
आदौ त्वं पञ्चधा[3]भूस्तदनु च पुरुषो द्वादशात्मा[4] प्रदिष्टः
साङ्गोपाङ्गः सकाण्डः[5] क्रमिककृतिमयः कोऽपि पूर्वः परोऽन्यः[6] ।
विध्यर्थोल्लापमन्त्रैरविरतमुदितो नामधेयैश्च तैस्तैः[7]
सा ते शक्तिः क्रियाख्या जयति फलवती कोटिशो विस्तृताङ्गी ॥४३॥
साम्नामन्तेषु वाक्यैर्नवभिरभिहितं श्वेतकेतूपयुक्तैः
पुंसामर्थं चतुर्थं दृढतरचिदचिद्ग्रन्थिभेदेन भान्तम् ।
एकं ब्रह्माद्वितीयं निरुपमपरमानन्दचैतन्यधन्यम्
सन्तं सत्ता[8]मनन्तं जनितजगदुपादानमात्मानमीडे ॥४४॥
साङ्गस्वाध्यायसिद्धौ विधिमतविधिना[9]राधिताराधनीय—
श्रीमद्राम प्रसादात् तवविमलमनाः शुद्धसत्त्वः शरीरी ।
जानात्यङ्गीकृताभ्यामुपनिषदि गतौ तद्यथेत्यादिवाक्यैः
कार्यत्वानित्यताभ्यां जगदिदमसुखं ब्रह्मसद्भा[10]वसानम् ॥४५॥
यत्त्वक्षय्यादिशब्दादवगतमथवापामसोमेतिवाचा
तत्त्वाभूतादिवाक्यानुमतमनशनं दीर्घकालस्थितत्वम् ।

---

१. "किंभूता अमी क्रियाशक्तौ ज्ञानशक्तौ चासक्ताः कर्मणि ज्ञाने च तथैव मुख्यतया प्रतिपादनमित्यर्थः ।" टि०—मथु० । २. "अग्निहोत्रं, दर्शपूर्णमासः, चातुर्मास्यं, पशुः, अग्निष्टोम एव ज्योतिष्टोमः इति पंचधा" टि०—मथु० । ३. पूर्वश्लोकोक्तः । ४. द्वादशदिनकृतसंस्थाक इत्यर्थः । ५. काण्डः क्रियातंत्रः । ६. "अयं यज्ञः पूर्वोऽयं पर इति क्रमः" टि०—मथु० । ७. "यजेदिति विधिः वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता इति अर्थोल्लापो नाम अर्थवादः । मन्त्रश्च नाम च तैः । इषेत्वोर्ज्जेत्वा इत्यादिमंत्रः उद्भिदा यजेतेति नाम" टि०—मथु० । ८. "सन्तं सद्रूपं सत्तां सत्ताप्रदं" टि०—मथु० । ९. "विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाक्षिके सति । तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ परिसंख्येति गीयते ।" टि०—मथु० । १० °साम्नाव°—अयो० । °सत्राव°—बड़ो० ।

इत्थं दोषानुषङ्गं विषयसमुदये पश्यतो मुख्यपुंसः
स्वैरं स्वैरं विरक्तिर्भवति बलवती भुक्त्युपेक्षैकमूर्तिः ॥४६॥

शान्तो दान्तस्तितिक्षुस्तदनु च परमां मुक्तिमेवेहमानो
विक्षेपा[1]क्षुण्णचेताः श्रुतिशिखरमतारम्भविस्रम्भशाली ।
आपातज्ञातरूपं परिहृतनिखिलानर्थमानन्दसान्द्रं
सत्यज्ञानाद्वितीयं विविदिषतितरां ब्रह्मजिज्ञासुवृत्तिः[2] ॥४७॥

शुद्धिः[3]श्रीयन्त्रजातामृतरसविषयस्नेहधाराभिषिक्ते[4]
सज्जिज्ञासानुवृत्त्या समुचित[5]दशया संगते चित्तपात्रे ।
हंसा यावत् कषायाम्बरनिहितकरं दर्शयन्ती न वेला
तावन्नाभाति गर्भाश्रयतिमिरभरभ्रंशनज्ञानदीपः ॥४८॥

संन्यासं केचिदूचुः श्रवणविधिविनिश्चीयमाने विचारे
नानाकर्मानुबन्धव्यपनयनमुखेनाङ्गतामाददानम् ।
इन्द्रादेः प्राग्भवीयं कथमपि निहितं चातुरैरेनमन्ये
मन्यन्ते ज्ञानजन्मप्रतिभटदुरितध्वंसनेन प्रधानम् ॥४९॥

तस्मात् संन्यस्तकर्मा विधिवदपि शिखायज्ञसूत्रं विमुञ्चन्
कौपीनाच्छादनार्थं वसनमशिथिलग्रन्थि शोणं[6] वसानः ।
बिभ्राणो वेणुमेकं यदि मनसि रुचिर्भिक्षया कुक्षिपात्रं
कुर्वाणः पूर्णमुच्चैर्विपिनमधिवसन्नीहते ब्रह्मचिन्ताम् ॥५०॥

न्यायाभासोत्तराणामपरमुनिगिरामन्तरे संदिहानः
कृष्णद्वैपायनोक्त्या परिचितविषयैरन्यथासिद्धिशून्यैः ।
षड्भिस्तात्पर्यलिङ्गै[7]रथमुपनिषदामन्वयं ब्रह्ममात्रं
शुश्रूषुः सानुकम्पं गुरुमनुसरति श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥५१॥

---

१. चिच्छेषा—रीवाँ । २. ब्रह्मनिष्णात°—अयो० । ब्रह्मजिह्मान्य°—बडो० । ३. बुद्धिः—रीवाँ । ४. "श्रीरेव यंत्रः जलप्रवाहनिःसरणमूलस्थानं तत्र जाताः, अमृतरसो भगवद्रसः स एव विषयो यासां ताः स्नेहधाराः ताभिः क्षालिते" टि०—मथु० । ५. समधित°—अयो० । ६. सोर्णं—रीवाँ । ७. "श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यात्मकैः" टि०—मथु० ।

[1]भाषाग्रन्थात् स्वतो वा समुदयति सति ज्ञानमस्मादयोगं
पक्षे प्राप्तं निरस्यन्नियमविधितया श्रावणं वाक्यमेके ।
जल्पन्त्यन्ये[2] तु नेदं विधिरपि तु तथा ज्ञानमात्रार्थकत्वा-
त्तार्तीयीकं तु कश्चिद्विधिमनुमनुते वारयेद् यत्नमन्यम् ॥५२॥
अद्वैतात्मन्यशेषश्रुतिशिखरगतिं तत्परत्वेन बुद्ध्या
निःशङ्कं मानमेकं मनसि च विमृशन्नत्र विज्ञोपदेशात् ।
श्रौतज्ञानानुकूलं तदपि गुरुकृपासिद्धसंस्कारशुद्धि—
र्भूयस्तं युक्तितोऽपि स्वयमनुमिनुते मेयशङ्कां[3] विहन्तुम् ॥५३॥
रंहत्यंह्रीरितानां[4]मुहुरिह कलयन्नेष गत्या गतीना—
मुत्क्रान्तिक्लेशगर्भाशयविविधदशादुःखसंभेदभाजाम् ।
द्वेषावेशप्रगल्भं विषयसुखपरिष्वङ्गवैमुख्यमाय—[5]
न्नात्मध्यानं विधत्ते चिरमनुविरतं भाग्यवानादरेण ॥५४॥
धाराध्यानानुभावा[6]दपचितिमितवानन्यथा भावनायाः
संप्रज्ञाते समाधौ नियमितहृदयः सम्यगासन्नयोगः ।
प्रत्यूहव्यूहभङ्गे श्रवणमुखभवत्संस्कृतिस्वान्ततोयं
हन्ताद्वैतं महात्मा निगमपरिचितं पश्यति ब्रह्मतत्त्वम् ॥५५॥
नव्यापूर्वं विरुन्धन्[7] न परिणतपुराकर्मसंदोहदाही
प्रारब्धस्यानुरोधादणुविपुलतनूमूलमायाममृद्नन्[8] ।

---

१. 'विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाक्षिके सति । तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ परिसंख्येति कीर्तिता" व्रीहीन् जुहोतीति व्रीहीणां हवनमपूर्वतया विहितं, व्रीहीनवहन्तीत्यत्रावहननं तुषापाकरणं तत्तु नखविदलनेनापि तन्निरस्यावहननमेवेति नियमः, आत्मा वा रे श्रोतव्य इति श्रावणं श्रुत्या एव श्रोतव्य इति नियमविधिः । पंच पंचनखा भक्ष्या अत्र भक्षणं प्राप्तमन्यत्र मार्जारादावपि तत्प्राप्तं तत्रान्तिमभक्षणं निरस्यतीति परिसंख्या विधिः ।" टि०—मथु० । २. "ब्रह्मज्ञानार्थं वेदान्तश्रवणमपूर्वतया विधीयत इत्यन्ये" टि०—मथु० । ३. °मित्यशंकं—रीवाँ । ४. रंहत्यन्तर्गतानां—रीवाँ, वृंहत्यं°—बड़ो० । "वेदस्य षोडशपादास्तत्स्थो रंहतिपादाख्य एकः पादः, तदुक्तानां" टि०—मथु० । ५. °भावा°—रीवाँ । "विचारेण विषयसुखपरिष्वङ्गो विषयसुखासक्तिः तत्र वैमुख्यं विरागस्तमायन् प्राप्तः" टि०—मथु० । ६. धाराप्रवाहरूपं ध्यानं तस्यानुभवनात् शीलनात्" टि०—मथु० । ७. विरूपन्—अयो० । "नव्यं नवीनमपूर्वं यत् कर्मफलं तत् विरुंधन् अंकुरितमकुर्वन्" टि०—मथु० । ८. 'अणु सूक्ष्मं विपुलं स्थूलं यत् शरीरं तस्य मूलभूतां मायामपीडयन्' टि०—मथु० ।

भिन्दन्नज्ञानदोषावरणमयतमोदत्तसर्वज्ञभावो
ब्रह्मालोके विधत्ते कतिपयसमयान् योगिनो गौणमुक्तिम् ॥५६॥
वृत्तिर्ब्रह्मावलम्बा सकलफलभुजेरन्ततो जायमाना
मायोच्छित्त्या प्रधानं कलयति परमानन्दरूपापवर्गम् ।
पुंसो ब्रह्मत्वमेको वदति तदपरश्चेश्वरत्वेन सत्तां
श्रीव्यासो मुक्तिमात्रे प्रथममपि परां तास्विदानीन्तनीषु ॥५७॥

इत्येवं ज्ञानमुदितं ब्रह्ममायावलम्बनम् ।
फलाढ्यं त्वत्स्वरूपं तत् सर्ववेदान्तवर्णितम् ॥५८॥
भवबन्धविनिर्मुक्तौ ज्ञानशक्तिस्तव प्रभो ।
अधिकं यश एवेदं वेदवेदान्तवर्णितम् ॥५९॥
ब्रह्मापि तव रामेन्दो महिमैव सनातनः ।
यस्मिन् प्रतिष्ठितो नित्यं कविभिश्चारु वर्ण्यसे ॥६०॥
भूयः शक्तिद्वयापेतस्त्वं पूर्णः पुरुषोत्तमः ।
सर्वां रसमयीं लीलां प्रवर्तयसि संततम् ॥६१॥
अयं वापि तव श्लोको गीयते व्रजमण्डले ।
सहजानन्दिनीयुक्तस्त्वं यत्रैव विराजसे ॥६२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे षड्गुणोपाख्याने [यशोव्याख्यानं नाम] चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

●

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

[ब्रह्मोवाच]

अथ श्रियं प्रवक्ष्यामि रामस्य श्रीपतेर्द्विज ।
यया[1] संशोभितं नित्यं रघुराजनिकेतनम् ॥ १ ॥
पुरग्रामव्रजारण्यदेशवेषावलम्बिनी ।
श्रीविग्रहावलम्बा श्रीर्बहुधैवानुवर्ण्यते ॥ २ ॥

---

१. यथा—अयो०, मथु०, बड़ो० ।

पुरं तदुत्तुङ्गविशालसौधशिरःप्रविन्यस्तसुवर्णकुम्भम् ।
प्रत्युप्तरत्नोद्भवया स्वभासा नक्षत्रलोकं पिदधद्विभाति ॥ ३ ॥
प्रासादतुङ्गवलभीविविधोपक्लृप्तवातायनौघविवरान्तरनिर्गतानाम् ।
यच्चित्रशालमणिरत्नमयूखभासां संदोह आक्रमति राजपथं समन्तात् ॥४॥
गावो हरिन्मणिविशेषसमूहक्लृप्तनिर्यूहदीवितिषु च तृणसंभ्रमेण ।
उद्ग्रीविकां किमपि कुर्वत इत्युदीक्ष्य नृत्यन्ति कौतुकवशेन हि यत्र बालाः॥५॥
स्त्रीणां विलासभवनेषु मनोजकेलिसंग्रामसंत्रुटितमौक्तिकरत्नवृन्दैः ।
कीर्णैरुषः सुगृहमार्जनिकानिरस्तैराढ्या भवन्ति कणभिक्षजुषो[1]ऽपि यत्र॥६॥
सायं प्रदीप्तशुभदीपमनोहरेषु सानन्दसर्वमनुजेषु निकेतनेषु ।
श्रीःपर्यटत्यविरतं भृशमात्मवत्तामन्वेषयन्त्यखिलपौरजनेषु यत्र ॥ ७ ॥
मञ्जीरमञ्जुलनिनादविशेषवत्यः कांचिज्झणज्झणितकौतुकितस्वचित्ताः ।
क्रीडन्ति यत्र कमला इव पद्महस्ता द्वारेषु मुग्धहृदया हरिणीदृशो वै ॥८॥
श्रीरामचन्द्रविपुलोर्जितकीर्तिगाथा दैनन्दिनानुचरितानि मनोहराणि ।
गायन्त्य उन्नततरेषु निकेतनेषु संमोहयन्ति सुदृशोऽप्सरसां मनांसि ॥ ९ ॥
श्रीः संचरत्यविरतं प्रतिसद्म यत्र रत्नाङ्घ्रिपूरसविशेषरवानुलक्ष्या ।
छायावशादनुमिता करपङ्कजस्य छत्रस्रुतैर्मणिगणैरवनौ किरन्ती ॥१०॥
आनन्दवान् दशरथो नृपतिः कुमारकीर्तिव्रजं कथयतां विदुषां गणेभ्यः ।
शश्वद्ददाति मणिहेमविभूषणानि रत्नानि पूरयति तानि गृहाणि लक्ष्मीः ।११।
श्रीजानकी विरचयत्यनिशं सपर्यां साध्वीगणेन सह यत्र वसिष्ठपत्न्याः ।
स्वच्छैरलङ्कृतिभरैर्वसनाङ्गरागैर्मन्दारमाल्यनिवहैः शुभभोजनैश्च ॥१२॥
ता आशिषः प्रतिपदं विदधत्यमुष्यै साकेतलक्ष्मि बहुभाग्यवती भवेति ।
आदाय याः स्ववसनाञ्चलरोपणेन भूयः पदोः पतति सा प्रसभं सतीनाम्॥१३॥
सीतास्वयंवरकथां निमिचन्द्रलक्ष्मीं श्रीरामचन्द्रभृगुवर्यरणप्रसक्तिम् ।
तद्वीर्यसंहरणिकामुपवीणयन्ति यत्रोत्सुकेषु पुरवासिषु किन्नरेन्द्राः ॥१४॥
धर्मध्वजाः किमपि यत्र जयन्ति पौरा येषां गृहेषु सकृदेव धनाभिलाषात् ।
द्वाराणि नान्यधनिनां मुहुरुद्व्रजन्ति पूर्णाशिषामुपगता निजजन्म यावत्॥१५॥

---

१. °भिक्ष (क्षु-अयो०) पुषो—अयो०, रीवाँ ।

चित्रोपक्लृप्तरचनारुचिरेषु यत्र प्रासादशृङ्गसदनेषु सुखस्थितानाम् ।
नानाविधद्युतिमतां विहगोत्तमानां वर्णभ्रमो भवति चित्रनिरीक्षणानाम्।१६।
रत्नाङ्गणेषु धनिनां तिमिराकुलासु रात्रीषु यत्र निहिताः शुभदीपलेखाः ।
मन्दीभवन्ति किरणैरधिकप्रकाशैरभ्युद्गतैस्तलत ऊर्ध्वगतैर्नभोऽन्तम् ॥१७॥
कल्पद्रुमैः परिवृतेषु च निष्कुटेषु गुञ्जन्ति यत्र सततं समदा मिलिन्दाः ।
एकीभवन्ति ललितेन कलस्वरास्ते मन्दोपनादितमनोहरवल्लकीभिः ॥१८॥
यत्रापणेषु वणिजां बहुलाभभाजां मूर्ताः स्थिता नवनवा निधयो नवापि ।
दृश्यन्त इत्युदितमासु निशम्य यक्षा यक्षाधिपश्च वचनात्सहसोपयान्ति॥१९॥
स्वप्नेऽपि नाधिरिह वासवतामुदेति व्याधिर्न च श्रुतिपथं क्वचिदभ्युपैति ।
श्रीरामचन्द्रमुखचन्द्रनिरीक्षणेन नित्योत्सवानि दिवसानि नृणां प्रयान्ति।२०।

कम्पः केतुषु निम्नगत्वमुदके दौर्बल्यमश्वानने
दुःखं द्वेषिकुले हिरण्यविरहः स्तोमेषु[1] तुष्टात्मनाम् ।
विश्लेषप्रभवा रुजश्च रजनौ नो मानुषेष्वस्ति तत्
तस्मिन् भर्तरि यौवराज्यपदवीमध्यासमाने श्रियः ॥२१॥

देशान्तरात् कविजना धनलिप्सयामुमभ्येत्य यावदुपयन्ति सभानिषण्णम् ।
तावत्कुटुम्बजनदूतमुखादुदन्तं शृण्वन्ति सद्मनि महामणिहेमवृष्टेः ॥२२॥
येष्वद्रिगर्भविवरेषु कदापि नैव दृष्टा खनिः कनकरूपमहाधनानाम् ।
तेष्वेव ताः खलु निरीक्ष्य बभूव नृणा[2]माश्चर्यमभ्यधिकमुद्रितराजभागाः ॥
भूमावनुप्तमपि धान्यमुदाविरासीत्[3] सूर्यातपं प्रतिनिरोद्धुमभूत्पयोदः ।
उप्तं च तावदभवत् फलपाकशालि यावद्गृहीतुमलसाः कृषिका बभूवुः॥२४॥
देशोऽखिलः कनकरत्नविराजिभूषासंदोहवद्भिरनिशोत्सवमङ्गलाढ्यैः ।
नारीगणैर्नरगणैः शुशुभे विशेषात् स्वर्गो यथा ससुखपीतसुधैः सुरौघैः ।२५।
राजा स्वयं दशरथः सुखसंपदाढ्यो रामो निदेशमनुतिष्ठति तस्य नित्यम् ।
कार्यं च सर्वमनुतिष्ठति लक्ष्मणादिभ्रातृत्रयं किमपरं सुखमीदृगस्ति ।२६।
लोकत्रयी दशरथस्य परां समृद्धिमुद्वीक्ष्य पुत्रधनदारविशेषजुष्टाम् ।
प्रत्येकमात्मसदनेषु समोदमूचे श्रीरामचन्द्रगुणगानविशेषहृष्टा ॥२७॥

---

१. स्तोषेषु—मथु०, बड़ो०, स्तेयेषु—रीवाँ। २. क्लृप्त°—अयो०।
३. आविरास—मथु०, बड़ो०।

लोका ऊचुः

जानीथ तद्दशरथस्य नृपेश्वरस्य पूर्वप्रभूतमतुलं सुकृतं विशिष्टम् ।
यद्देवदानवरणे विषमे सुराणां साहाय्यमाचरितमस्य भुजद्वयेन ॥२८॥
के के न निर्भयपदं समवाप्य देवा दैत्यव्रजं जितवते[1] रघुपुङ्गवाय ।
अस्मै न वै दशरथाय शुभाशिषोऽदुर्यासामयं समभवद्भविको विपाकः ।२९।

संग्रामभूमिगत एष दुरासदानां देवद्विषां भुजबलेन बलं जहार ।
वन्दीः स्वयं दिविषदां खलु मोचयित्वा तासां शुभाशिषमुवाह बहुप्रकाराम् ३०
इत्याद्युपप्लवगणात् सततं प्रजाः स्वाः संरक्षणं स्वयमसौ नृपतिश्चकार ।
एतास्तदेनमतुलाधिकसत्फलाभिराशीर्भिरेधयितुमुत्कलिकामबिभ्रत् ॥३१॥

स्वेष्वाश्रमेषु मुनयो दितिजैर्द्विषद्भिरुद्वेजितास्तपसि विघ्नहता बभूवुः ।
तानेव[2] सुस्थहृदयानकरोन्नरेन्द्रः प्रायुञ्जताविरतमत्र शुभाशिषस्ते ॥३२॥
साध्यो निजव्रतविलोपभयात् सशोका दैत्येषु यौवनधरेषु विवृद्धिमत्सु ।
एतस्य विक्रमगुणैरभवन् विशोकास्ता आशिषः समपुषन्निह दुष्टजैत्रे ॥३३।

येऽन्ये तपस्विन उदीर्णमुनिव्रता वै गार्हस्थ्यधर्मनिरता निहिताग्निहोत्राः ।
स्वास्थ्यं चकार नृप एष स तेषु योग-क्षेमादिसंभृतिभिरुद्यदुदारवृत्तः ॥३४॥
मर्त्या मृगा अपि खगाः पशवस्तथान्ये दीना गवादय उदीत[3]भयाः परेभ्यः ।
तेषामसौ सुविपुलाभयदानदक्षः स्वस्वक्रियाकुशलताकरणो नरेन्द्रः ।३५।

ते सर्व एव नृपतेरुदयप्रकर्षं वाञ्छन्त आशिषमजस्रमुदीरयन्ति ।
तस्यैतदेवमुदितं फलमुद्विभाति यद्रामचन्द्रसदृशास्तनया जयन्ति ॥३६॥
रामो जगज्जनविलक्षणवृत्तशीलस्तादृक् च लक्ष्मण उदारगुणाम्बुराशिः ।
अन्यौ तथैव भरतोऽपि च शत्रुसूदः सर्वेऽप्युदारचरिता भरिता गुणौघैः ।३७।

जीवन्तु ते चिरममो नृपतेरुदारैरत्युन्नतैर्भवविलक्षणभागधेयैः ।
कल्याणकोटिसुकृतार्जनसंभवानां साकेतपत्तनजुषां च निजप्रजानाम् ।३८।
एतैः सुपुण्य[4]चरितैस्त्रिदशापगा च त्रैलोक्यपावनसमृद्धविशिष्टशीलैः ।
सर्वे जनाः सुकृतिनः खलु संबभूवुः श्रीमन्मुखेन्दुपरिदर्शनभूरिभाग्याः ॥३९॥

---

१. दैत्यान् जयन्ति तव ते—अयो० । २. तानेक—अयो० । तानेव—रीवाँ ।
३. नुदीत°—अयो०, रीवाँ । ४. स्वपुण्य°—रीवाँ ।

श्रीराघवेन्द्रचरितामृतपूर्णधारानित्यावगाहसुविशुद्धमनोवपुष्काः ।
साकेतवासिन इमे मनुजाः स्वभाग्यैर्धन्या इति त्रिभुवनं परिशोभयन्ति॥४०॥
भूमण्डलस्य खलु कीर्तिरसावयोध्या यत्रास्ति पुण्यचरितः पुरुषः पुराणः ।
अंशैश्चनि[तु]भि[1]रभितो भुवनं समस्तमुद्दीपयन् दिवसनायकवंशदीपः ॥४१॥
हंहो वयं खलु निजानि निकेतनानि हित्वा वसाम रघुनाथपुरीमुपेत्य ।
यत्रेन्दिराप्रतिगृहं परिबंभ्रमीति हस्तारविन्दरुचिभिर्भुवि रञ्जयन्ती ॥४२॥
किं वर्णनीयमथ वक्त्रसहस्रकेण साकेतवासिजनतालिकपट्ट[2]भाग्यम् ।
त्रैलोक्यमेव खलु भाग्यसमृद्धिमद्यच्छ्री[3]रामचन्द्रजनुषा शुभसंभृतेन ॥४३॥
या श्रीः स्वयं वसति सुस्थिरभावमाप्ता वैकुण्ठसद्मनि समस्तगुणैरुपेता ।
सा स्वात्मनो दयितमेनमिहावतीर्णं विज्ञाय तिष्ठति रघूत्तमराजधान्याम् ॥४४॥
येष्वाशयेषु पयसां न कदापि पद्मास्तेष्वत्र पद्म[4]कुलसंपदभूतपूर्वा ।
मुक्ताफलानि च भवन्ति वृहत्तमानि केलिं तथा विदधते खलु राजहंसाः॥४५॥
इन्द्रालयेऽपि न तथा सुविभाति शोभा न ब्रह्मसद्मनि न वा खलु भोगवत्याम् ।
साकेतवासजुषि नीचतरेऽपि वर्णे यादृक् बभूव नरकिन्नरवीक्षणीया ॥४६॥
धिक् तस्य जन्म विधिसृष्टिमुपेत्य येन स्वप्नेऽपि नैव समवापितमक्षिमार्गम् ।
साकेतनामनगरं सरयूतरङ्गसंशीलितानिलसमागमपूतलोकम् ॥४७॥
सैवाद्भुता पुलिनभूः सरयूतटिन्याः पानीयपुष्टदृढमूलमहावनाढ्या ।
नो वासवस्य नगरी हरिचन्दनाद्यैर्वाञ्छानुरूपफलितैः परितः परीता ॥४८॥
किं पारमेष्ठ्यपदवीं समुपेत्य कार्यं धन्यैव सा तृणजनिः सरयूतटान्ते ।
यस्यां दुरापमपि तत्सुलभं शिशुत्वे क्रीडद्रघूत्तमकुमारपदारविन्दम् ॥४९॥

प्राज्यं स्वर्लोकराज्यं सुरवरवनिता पाणिपद्मोपगूढ-
प्रोदञ्चच्चामरान्दोलनगतसुरतस्वेदखेदं विहाय ।
श्रीमत्साकेतपुर्याः परिसरसरयूसंसरत्तुङ्गवीची-
नीचीभूतैकदूर्वादलमहिमदशामात्मनः कामयामः ॥५०॥
धन्या सा मल्लिवल्ली किमपि दिविषदामप्यलभ्यैस्तपोभि-
र्भूयो भाग्यैरयोध्यापुरगतसरयूसैकतान्ते प्ररूढा ।

---

१. द्विर्भि०—बडो० । २. किलपाद°—अयो० । ३. समृद्धिमद्य—रीवाँ ।
४. सद्य°—रीवाँ ।

यस्याः पुष्पावलीभिर्विरचितमतुलं मण्डनं मैथिलीस्वै-
रङ्गैर्नित्यं बिभर्ति प्रियतमनयनानन्दसंदोहदात्री ॥५१॥
धन्यास्ते राजहंसाः सुविशदसरयूतोयसंसारशीलाः
येषां लीलाञ्चितानि स्वयमनुकुरुते मैथिलेन्द्रस्य पुत्री ।
ये वास्याः पादपद्माभरणमणिगणक्वाणमाकर्ण्य तुष्टा-
स्तादृक्शिक्षावशेन स्वयमपि दधते मञ्जुलालापलीलाम् ॥५२॥
[1]धन्यास्तेऽमी मयूराः सुरुचिरसरयूकूलकुञ्जे वसन्तो
नीलां प्रावृड्घनालीमपि निजमनसा सन्त्यनादृत्य तुष्टाः ।
येषां चक्षुःप्रमोदं विरचयति सदा कोऽपि रामाभिधानः
पीयूषाम्भोद उच्चैर्जनकनृपसुताविद्युदालिङ्गिताङ्गः[1] ॥५३॥
धन्यास्ते चञ्चरीका विकसितसरयूकूलकुञ्जद्रुमाणां
येषां चित्तस्य नाभूत् सुरतरुकुसुमामोद आनन्दहेतुः ।
क्रीडार्थं संगताभ्यां प्रतिसमयसुखं मैथिलीराघवाभ्यां
येषां घ्राणानि नित्यं निजतनुविलसत्सौरभैः संभृतानि ॥५४॥
इति श्रियं वर्णयतामयोध्यापुर्यास्तदावासिजनैकलभ्याम् ।
मनांसि तेषां मुमुहुः समन्ताल्लोकत्रयस्थानजुषां जनानाम् ॥५५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे षड्गुणोपाख्याने
[श्रीव्याख्यानं नाम] पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

१–१. अयं श्लोको नास्ति—अयो०, रीवाँ ।

षण्णवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

आख्याता रामचन्द्रस्य कीर्तिर्वेदोपवर्णिता ।
अथ ज्ञानं प्रवक्ष्यामि साक्षाद्ब्रह्मनिदर्शनम् ॥ १ ॥
अलौकिकानुभावेन ज्ञात्वा परमपूरुषम् ।
रामचन्द्रं मुनिगणाः उपजग्मुः ससंभ्रमम् ॥ २ ॥
राज्यसिंहासनासीने नृपाणां महतां गुरौ ।
देवे दशरथे सर्वे मुनयः समुपाययुः ॥ ३ ॥
कश्यपोऽत्रिर्वशिष्ठश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
अङ्गिरा भृगुरोजस्वी दुर्वासा गर्ग एव च ॥ ४ ॥
कौण्डिन्यश्च्यवनो योगी विश्वामित्रोऽथ देवलः ।
शाङ्ख्यायन[1]स्तथा शङ्खो लिखितः कण्व एव च ॥ ५ ॥
अगस्त्यश्चासितो विष्णुः शर्कराक्षो दृढव्रतः ।
वामदेवः शुकः शान्तः सुतीक्ष्णश्च पराशरः ॥ ६ ॥
विदो वत्सो जामदग्न्यो जमदग्निस्तपोनिधिः ।
सुकलश्च भरद्वाजो मुद्गलो धौम्य एव च ॥ ७ ॥
सुवर्चाः सौविदः पैलः शातनिः शाकटायनः ।
संकराक्षः शमीकश्च ऋष्यशृङ्गो महामुनिः ॥ ८ ॥
कणादः कपिलो व्यासो गौतमश्च पतञ्जलिः ।
जैमिनिः पिप्पलादश्च शाण्डिल्यो मुनिपुङ्गवः ॥ ९ ॥
वरतन्तुर्वरेण्यश्च नारदाद्याः सुरर्षयः ।
ब्रह्मर्षयस्तथा सर्वे दिव्यज्ञानविलोचनाः ॥१०॥
वशिष्ठमग्रतः कृत्वा सर्व एव समाययुः ।
तेषामासनपाद्यादिविधिभिर्नतकन्धरः ॥११॥

---

१ शांखायनः—बड़ो० ।

सपर्यां महतीं चक्रे राघवो धर्मवित्तमः ।
पूर्वं दशरथं सर्वे उपसन्ना मुनीश्वराः ॥१२॥
ततः कौतूहलाक्रान्ता रामं ददृशुरद्भुतम् ।
ते रामेणाद्भुतां पूजां कृत्वा समभिवादिताः ॥१३॥
सहर्षं च ततः पृष्टाः शुद्धान्तं नृपतौ गते ।
महता[1] संभ्रमेणैव जातहर्षाः पुराविदः ॥१४॥

श्रीराम उवाच

उन्नतं नः पितुर्भाग्यं रघुवंशस्य सर्वशः ।
आतिथ्यं यस्य गृह्णन्ति ज्ञाननेत्रा भवादृशाः ॥१५॥
योगिनो वेदवेदान्तविदो निर्धूतकल्मषाः ।
विश्वस्य गुरवः साक्षान्मौनव्रतपरायणाः ॥१६॥
पुराविदो विधिज्ञाश्च ज्ञानविज्ञानदृष्टयः ।
ब्रह्मादीनां दिविषदां पूजनीयाः समंततः ॥१७॥
यूयं वेदविदः सर्वे स्मृतिभिर्धर्मवर्तकाः ।
संगता यस्य सदनं स धन्यो गृहवान् नरः ॥१८॥
जगतः कुशलार्थाय तीर्थानां करणाय च ।
परिभ्रमथ मेदिन्यां पूज्यो देशः स सर्वदा ॥१९॥
यत्र तिष्ठन्ति कार्येण मुहूर्तमपि योगिनः ।
परावरविदः साक्षाद्योगिनो ब्रह्मदर्शिनः[2] ॥२०॥
कच्चिद् वः कुशलं दिव्येष्वाश्रमेषु तपस्विनः ।
धर्मकर्मैकहेतूनां जलादीनां सुपुष्कलम् ॥२१॥
कच्चिद् वः प्राकृतैर्लोकैः कामलोभेन संगतैः ।
एकान्तिकासनसदां[3] नोपप्लावित आश्रमः ॥२२॥
कच्चिद् वस्तपसामौग्र्यं प्रविलोक्यासहिष्णुना ।
इन्द्रेण नेर्येते विघ्नो रम्भादीनां प्रदर्शनैः ॥२३॥

---

१. सहजा°—रीवाँ। २. °दर्शनाः—अयो०, रीवाँ। ३. °पदां—बड़ो।

कच्चिद् वो यजनाद्यासु क्रियासु बहुलासु च ।
अशान्तेन समीरेण वने[1] नोद्विज्यते मनः ॥२४॥
[2]कच्चिद् वः स्वाश्रमवरेष्वारण्यैर्वारणादिभिः ।
न भज्यन्ते न पीड्यन्ते तरवो धर्मसिक्तकाः[2] ॥२५॥
कच्चिद् वः स्वाश्रमवरेष्वविप्रस्तपसो बलात् ।
साधर्म्यं समुपाश्रित्य विषादादि करोति न ॥२६॥
कच्चिद् वः कुशलिन्यस्ताः कामधेनुसमत्विषः ।
अग्निहोत्रादिसौकर्यसाधिकाः किल धेनवः ॥२७॥
कच्चित्तासामपत्येषूपद्रुतेष्वितरैर्मृगैः ।
तपस्तेजःस्वभावेन[3] युष्माकं नाभवद्रुषा ॥२८॥
जनानां कुशलं येभ्यः शान्तिश्च क्रूरचेतसाम् ।
तेषां वः कृतिनामेतदपृच्छ्यमपि पृच्छ्यते ॥२९॥
यतोऽहमादेशकरो युष्माकं ब्रह्मदर्शिनाम् ।
वाञ्छाम्यनुग्रहं शश्वत् किंचिदाज्ञाविशेषतः ॥३०॥
यदाज्ञापयथ प्रेष्यं शश्वदाज्ञाकरं च माम् ।
तत्करोमि मुनीशानाः[4] सकृद्वचनमात्रतः ॥३१॥
भवतां हि तपोविघ्नो विघ्नो भुवनसंपदाम् ।
अतस्तिष्ठथ[5] सौख्येन आश्रमेषु मुनीश्वराः ॥३२॥
एषोऽस्माकं पिता देवो भवतामेव सिद्धिजाम् ।
राज्यश्रियमुपाश्रित्य शक्तो भुवनरक्षणे ॥३३॥
इति श्रीरामचन्द्रस्य निशम्याभ्युदितं वचः ।
वक्तुं सर्वे मुनीशाना वशिष्ठं समचोदयन् ॥३४॥
तेषामिङ्गितमाज्ञाय वशिष्ठो ज्ञानलोचनः ।
उवाच वचसा रामं तोषयन् विदुषांवरः ॥३५॥

श्रीवशिष्ठ उवाच

वर्वर्ति सर्वतो वार्तं त्रैलोक्यस्यैव सुव्रत ।
विशेषतस्तापसानामस्माकं त्वयि राजति ॥३६॥

---

१. वनं—बडो० । २–२. अयं श्लोको नास्ति—अयो० । ३. स्वभावेषु—रीवाँ ।
४. °शानां—अयो०, रीवाँ । ५. तिष्ठन्ति—अयो०, रीवाँ ।

पिता तव जगद्रक्षादक्षिणो धर्मवित्तमः ।
उन्मार्गगामिनां नॄणां नित्यं दण्डयिता बलात् ॥३७॥
यूयं हि राघवाः साक्षाद्धर्मरक्षाविचक्षणाः ।
मान्धातृसगरादीनां लोके प्रोद्दीप्यते यशः[1] ॥३८॥
तेषां वंशे भवान् जातो रघुवंशैकभूषणः ।
जगतां तनुषे तोषं मुनीनां नो विशेषतः ॥३९॥
अप्येकः संभ्रमो ह्येषां योगिनां ज्ञानचक्षुषाम् ।
भवन्तमिह विज्ञाय ह्यवतीर्णं परात्परम् ॥४०॥
केनचित् कालकल्पेन पौलस्त्येन महौजसा ।
रक्षांसि सुसमृद्धत्वं प्रापितानि विशेषतः ॥४१॥
अतस्तेषां विनाशाय कालरूपी दुरासदः ।
अवतीर्णोऽस्यमेयात्मन् साक्षाद्रामेति यो[2] भवान् ॥४२॥
इतिविज्ञाय मुनयः सर्वे त्वां समुपागताः ।
अवाप्तुमतुलं ज्ञानं कर्मोपास्तिफलात्मकम् ॥४३॥
अनेकैरद्भुतैर्लिङ्गैर्भवान् ब्रह्मैव केवलम् ।
तत्पदं परमं सूक्ष्ममव्यक्तात् परतः स्थितम् ॥४४॥
इति सामान्यतो ज्ञात्वा मुनयस्त्वामुपागताः ।
सर्वोपनिषदां गुह्यं सारमर्थं विवेचितुम् ॥४५॥
यथाधिकारं सकलैर्भवानाश्रीयसे प्रभो ।
धर्मार्थिनस्त्वां धर्मार्थं सन्ततं पर्युपासते ॥४६॥
अर्थार्थिनस्तथार्थाय कामाय च तदर्थिनः ।
मुक्त्यर्थिनो जनाः शश्वन्मुक्त्यै त्वामेव संश्रिताः ॥४७॥
तेषां वयं रामचन्द्र भवबन्धविमुक्तये ।
आपन्नाः शरणं शश्वदितिप्राप्ताः स्म योगिनः ॥४८॥
ज्ञानिनां यल्लयस्थानं संततं ब्रह्मदर्शनम् ।
तद्भवान् विदितो रास किमुपेक्ष्योऽस्यतः परम् ॥४९॥
स्वात्ममायामुपाश्रित्य मोहयन् जगतो दृशम् ।
परं ब्रह्म सुखाकारं सुखाकारेण राजसे ॥५०॥

१. तेजसः—अयो०, रीवाँ। २. रामचन्द्रो—बड़ो०।

इति विज्ञाय मुनयस्त्वां लिङ्गैरेव तादृशैः ।
भवन्तं शरणं प्राप्ता यथेच्छसि तथा कुरु ॥५१॥

श्रीराम उवाच

किमेष व्यवसायो वः समभून्मुनिपुङ्गवाः ।
यदेतादृश्यभूद् बुद्धिः क्वापि नैतादृशी भवेत् ॥५२॥
व्रजन्ति यत्कर्मभिराप्तकामास्तथा परोपासनया च यत्तत् ।
ज्ञानेन साक्षात्क्रियते भवादृशैरात्मस्थितं ज्योतिरनन्तबोद्धव्यम् ॥५३॥
स्वानन्दसंपत्समुपैति यस्मिन् विश्वं समस्तं विनिमीलयन्ती ।
योगेन तद्वो हृदये प्रकाशं ब्रह्माभिधं ज्योतिरनन्तमेकम् ॥५४॥
अजस्रमुन्मीलितयोगदृष्टि प्रव्यक्तमव्यक्तपरं महस्तत् ।
उपास्यते विश्वगुरोर्विशेषादजस्रमेव प्रयतैरमीभिः ॥५५॥
अतः परं किंनु परं प्रमृग्यते तत्त्वंपदौत्कण्ठ्यधियोऽत्र संगताः ।
न ज्ञानतोऽन्यत्किमपीह साधनं तद्वो लभन्ते दृशिमात्रतो जनाः ॥५६॥
न योगतोऽन्यः खलु कोऽपि यत्नः स चास्ति वः शिष्यसुशिष्यशिष्यगः ।
किमन्यदादातुमुपागता वै मदीयमागारमुदारवृत्ताः ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

सर्वेषां मुनिमुख्यानां मतमादाय तत्क्षणे ।
जिज्ञासामनुनिर्णीय वशिष्ठः प्रत्युवाच तम् ॥५८॥

वशिष्ठ उवाच

सत्यमात्थ प्रभो राम नूनं तादृशमेव तत् ।
ब्रह्मणो दर्शनं नाम योगादिभिरवाप्यते ॥५९॥
ततश्चापि परं तत्त्वं वयं विविदिषामहे ।
प्राह विश्लेषवेलायां व्रजदेवीषु यद्भवान् ॥६०॥

देव्यो हि ता व्रजभुवस्तव रूपराशेः सौन्दर्यसारमकरन्दभरप्रमत्ताः ।
ईषद्वियोगमपि सोढुमशक्नुवन्त्यस्तत्त्वं तदेव परिचीय चिरेण तस्थुः ॥६१॥
शय्यासनादिषु कदापि निमेषमात्रमन्तर्धिमेत्य हृदि कल्पसमं विजह्रुः ।
ता एव गोपसुदृशः कथमन्यथा त्वां पारेपरार्द्धगुणराशिमृतेऽधितस्थुः॥६२॥

एतद्धि तत्त्वदुपदिष्टसुसूक्ष्मतत्त्वज्ञानप्रभावजनितामलभावभाजाम् ।
तासां मनस्त्वनुमिमीमहि सर्वकामस्वानन्दसंपदमृतं परिपोयमानम् ॥६३॥
मन्यामहे रघुकिशोर तदेव तत्त्वं यद्विप्रयोगशमनं व्रजसुन्दरीणाम् ।
तन्नः प्रवक्तुमुचितोऽसि दयाविशेषादेकं ततं यदखिलात्मतयागमेषु ॥६४॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य मुनीनामूर्द्धरेतसाम् ।
जिज्ञासावेदिनो वाक्यं वशिष्ठस्य महामतेः ॥६५॥
उवाच प्रहसन् रामो वीक्ष्य तान् मुनिसत्तमान् ।
सन्ततं स्पृहयालून् वै कर्मज्ञानातिगां[1]दशाम् ॥६६॥

श्रीराम उवाच

प्रमोदवननारीणामुपदिष्टं मया तु किम् ।
सहजप्रेमभावेन वशीचक्रुरिमा हि माम् ॥६७॥
उपदेष्टव्यमेतासु किंचिन्नैवोपपद्यते ।
एता हि फलसीमानं भजन्ते दशया स्वया ॥६८॥
पुष्टः प्रेमा जयति सुदृशां श्रीप्रमोदाटवीषु
स्वानन्दाब्धेरुदितममृतं यद्धि संस्वाद्यमानम् ।
तद्वश्योऽहं क्वचिदपि न ता मंक्षु विस्मर्तुमीहे
प्राणान् यद्वत्सततमुदितश्चेतसा धारयामि ॥६९॥
विरहं वोढुमेतासां नैव शक्तिः कदाचन ।
इत्यहं नित्यलीलास्थो रमामि स्वजनैः सह ॥७०॥
अयं हि दुर्लभो भावो यत्प्रेमा मत्स्वरूपगः ।
ज्ञानस्य च पराकाष्ठा ब्रह्मतत्त्वावबोधनम् ॥७१॥
ब्रह्मतत्त्वस्य सा सीमा यत्तदानन्दनिर्भरः ।
आनन्दनिर्भरास्यैषा सीमा यत्प्रेम तादृशम् ॥७२॥
प्राचीना मुनयोऽनेके ब्रह्मतत्त्वं परं ययुः ।
एके तेषां दधुः प्रेम मत्कृपादृष्टिवीक्षिताः ॥७३॥
सुदुर्लभतमो यस्मात्तादृशो भाव आन्तरः ।
तस्मादेवैष विरलो मदिच्छामनुरुद्ध्य हि ॥७४॥

---

१ °ज्ञानादिक—अयो०, रीवाँ ।

मद्गोचरश्रवणकीर्तनसेवनादौ यावन्न जायत इहास्य मनःप्रवृत्तिः ।
प्रेम्णः कला न खलु तावदुदेति साध्वी एकैव सर्वविषयेषु विरक्तिहेतुः ॥७५॥
कोऽप्येष रक्तिमगुणः समुदेत्य पूर्वचिद्व्योम यत्समनुरञ्जितमच्छमेव ।
प्रेमाभिधः स मम पूर्णकृपानुलभ्यस्तं ब्रह्मतत्त्वमनुगच्छति नांशतोऽपि ॥७६॥

इतिवस्तत्त्वमुदितं ज्ञानसारं परामृतम्
उपदेशमृते लभ्यं निजाशक्यैकमात्रतः ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् रामो मुनीनामनुकम्पया ।
प्रकाशयामास रूपं प्रमोदवनकुञ्जगम् ॥७८॥
शुद्धश्यामावदातं वपुषि परिलसत्कञ्जकिञ्जल्कवस्त्रं
श्रीमत्पद्मारुणाक्षं सुविलुलदलकश्रीविराजत्कपोलम् ।
कैशोरभ्राजिवेषं मधुरिमजलधिप्रेमपीयूषवर्षै-
र्दिक्प्रान्तश्रीविलासैर्मदनविटपिनं स्त्रीषु सिञ्चन्तमन्तः ॥७९॥
दोर्भ्यां वंशीं वहन्तं वदनसरसिजा[1]मोदिनीं राजहंसीं
बिम्बोष्ठस्निग्धकान्त्या प्रमुदवनवधूमानसं रञ्जयन्तम् ।
संमुष्णन्तं त्रिभङ्गीललितसुवपुषा लोचनानि प्रियाणां ।
रामं प्रेमाभिरामं ददृशुरनवधि श्रीमदानन्दमूर्तिम् ॥८०॥

केचिद्ददृशुरेवैनं बालवेषेण भूषितम् ।
नवनीतकरं रामं माङ्गल्याङ्कविराजितम् ॥८१॥
लम्बमानालकभ्राजदाननाम्बुजसुन्दरम् ।
मञ्जीरचरणाम्भोजं बिभ्रतं कटिमेखलाम् ॥८२॥
स्वर्णप्रत्युप्तशार्दूलनखराजितवक्षसम् ।
अव्यक्तकलया वाण्या मोदयन्तं स्वमातरम् ॥८३॥

केचिद् ददृशुरानन्दरूपिणं राममद्भुतम् ।
कैशोरवेषमधुरप्रसन्नमुखमञ्जुलम् ॥८४॥
प्रमोदवनकुञ्जान्तर्निविष्टं प्रियया सह ।
सर्वसौन्दर्यसदनं रक्षयन्तं स्वकाश्च गाः ॥८५॥

---

१ °सरजिता—अयो० ।

श्रीराजवेशमुदितं मोदयन्तं[1] बधूजनान् ।
कदम्बकुसुमैर्युक्तां वनमालां सुबिभ्रतम् ॥८६॥
अङ्गुलीयमणिद्योतच्छुरिताधरवंशिकम् ।
नानाकेलिपरीहासैर्गोपैर्मण्डितपार्श्वकम् ॥८७॥
केचिद् ददृशुरुद्भूतराजसंपत्तिभूषितम् ।
सिंहासनसमासीनं साकेतपुरमध्यगम् ॥८८॥
कौस्तुभोद्भासितग्रीवं मूर्तिमद्भिर्महायुधैः ।
उपासितं महाकीर्तिं योगमुद्राधरं विभुम् ॥८९॥
उदारगुणपाथोधिं षडैश्वर्यविभूषितम् ।
उन्नसं कम्बुकण्ठाढ्यं महामुकुटमण्डितम् ॥९०॥
नृत्यद्विद्याधरीवृन्दसभामण्डपमध्यगम् ।
प्रणतानेकभूपालं प्रसादसुमुखं प्रभुम् ॥९१॥
दासीकृतद्विषद्वृन्द[2]नीराजितपदद्वयम् ।
शिरोमुकुटरत्नांशुमञ्जरीभिः समन्ततः ॥९२॥
किंकुर्वाणैरनेकाब्धिद्वीपदेश्यैर्नराधिपैः ।
कृतदास्यरसावासं करुणादृष्टिवर्षिणम् ९३॥
केचिदात्मतया रामं ददृशुर्योगभावितम् ।
केचिद् ददृशुरैश्वर्यात् साकेताधिपतिं प्रभुम् ॥९४॥
केचिद् ददृशुरौत्कण्ठ्यात् सर्वेषां बन्धुवत्स्थितम् ।
ज्ञानमुद्राधरं धीरं योगिनां हृदयङ्गमम्[3] ॥९५॥
यो यथाभावसंपन्नस्तद्वत्तेन निरीक्षितः ।
अथैनं तुष्टुवुः सर्वे योगिनः शुद्धबुद्धयः ॥९६॥
पुलकाञ्चितवर्ष्माणः सर्व एव मुदान्विताः ।
बद्धाञ्जलिपुटाः स्थित्वा सर्वेऽद्भुतरसाकुलाः ॥९७॥

मुनयः ऊचुः

नमस्ते ब्रह्मरूपाय पूर्णाय च महात्मने ।
[4]सच्चिदानन्दरूपाय निजलावण्यभास्वते ॥९८॥

---

१. मादयन्तं—रीवाँ, मथु०, बड़ो० । २.—°वृन्दं—मथु०, बड़ो० । ३. गतम् —अयो० । ४-४. अयमंशो नास्ति—रीवाँ ।

अशेषगुणसंदोहभूषिताय कृपालवे ।
नानाविधलसल्लीलारसरञ्जितवर्ष्मणे ॥९९॥
हेमसिंहासनस्थाय त्रैलोक्यमपि शासते ।
स्वशक्तिभिः समेताय पुरुषाय महात्मने[1] ॥१००॥
विश्वसर्गादिकेलीभिर्ब्रह्मादीनां नियोगिने ।
धौरेयाय श्रिताशेषधर्मपालनशक्तये ॥१०१॥

परे ऊचुः

नमो रसिकवर्याय कुञ्जभूमिसुकेलये ।
मुक्ताहारपरीताय परिपूर्णरसात्मने ॥१०१॥
सर्वोद्धारप्रयत्नाय[1] निजलीलारसात्मने ।
सर्वविश्रान्तिरूपाय श्रीमद्रामाय ते नमः ॥१०२॥

अपरे ऊचुः

आविर्भाव्याखिलान् जीवान् कृत्वा च विविधाः स्थितीः ।
कुर्वते विविधाः केलीः पुरुषाग्र्याय ते नमः ॥१०३॥
अनवद्याखिलानन्दकल्याणगुणमूर्तये ।
प्रपन्नकल्पवृक्षाय नमस्ते राघवेन्दवे ॥१०४॥

अन्ये ऊचुः

अनाद्यनन्तरूपाय निर्गुणाय स्वरूपतः ।
सच्चिदानन्दरूपाय नमः कैवल्यमूर्त्तये ॥१०५॥
वर्जिताशेषरूपाय कल्पनारहिताय च ।
विश्वारामाय रामाय स्वात्मने ब्रह्मणे नमः ॥१०६॥

इतरे ऊचुः

विश्वतः पाणिपादाय विश्वतोऽक्षिमुखात्मने ।
विश्वरूपस्वरूपाय परस्मै ते नमो नमः ॥१०७॥
अथापि ममतावर्तमग्नोद्धारचिकीर्षया ।
अङ्गीकृतावताराय तारकब्रह्मणे नमः ॥१०८॥

---

१. °प्रपन्नाय—अयो० ।

ब्रह्मोवाच

इत्येवमेष निभृतं मुनिभिः समस्तै-
रभ्यर्चितः प्रणतपालनपादपद्मः ।
सद्यः प्रसादसुमुखो भगवानशेषान्
योगीश्वरान् समभिपूज्य शनैरुवाच ॥१०९॥

श्रीराम उवाच

यद्वस्तपः परिणतं सुचिरेण धीरा-
स्तेनेदृशी समभवन्मतिरात्मनीना ।
ज्ञातो यया खलु भवद्भिरहं विशेषान्-
मायां वितत्य च निजावरिकां स्थितोऽपि ॥११९॥
जातोऽधुना सुचिरचीर्णतपोविपाको[1]
युष्माकमुत्तमदृशां मम भावभाजाम् ।
मन्नित्यकेलिविषयां समवाप्य दृष्टिं
यूयं रमध्वमतुलप्रमुदाभ्युपेताः ॥९११॥
येषां सर्वतपःसिद्धिप्रत्यूहहरणक्षमः ।
अहं स्थिततमश्चित्ते तेषां चिन्ता न कापि हि ॥११२॥
धन्याःस्थ यूयं समभावमेनमवाप्य नित्यं तपसि प्रतिष्ठाः ।
पूर्णं फलं वः समजायतोच्चैरतः परं[2] तिष्ठत मत्स्वरूपे ॥११३॥
ज्ञानं परं ब्रह्मनिदर्शनं यत्प्रपञ्चनिष्ठामतिवर्तमानम् ।
तस्यापि पूर्णं फलमेतदेवमपिस्थितिर्यद्भवतां प्रयाता ॥११४॥
ब्रह्मभावमतिक्रम्य मद्भावं समुपाश्रिताः ।
विचरन्तु भवन्तो वै परानन्दपदं गताः ॥११५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे षड्गुणोपाख्याने [नामव्याख्यानं नाम] षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

●

१. °विशेष—रीवाँ । २. परे—अयो० ।

सप्तनवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एष[1] ज्ञानगुणः प्रोक्तो भगं यत्परमात्मनः ।
अथ वक्ष्यामि वैराग्यं शृणुष्वावहितो द्विज ॥ १ ॥
एकमेव हि वैराग्यं श्रीरामस्य गुणात्मकम् ।
ज्ञानिनां योगिनां चैव वृत्तिभिर्बहुधा ततम् ॥ २ ॥
आत्मारामस्य रामस्य स्वानन्दैककलाजुषः[2] ।
ब्रह्मानन्दावधिः सर्वोऽप्यानन्दो नोपरोधकः ॥ ३ ॥
भुञ्जन्ते योगिनः सर्वे रामानन्दमनेकधा ।
रामस्वात्मानन्दभोगेऽप्युदासीनवदास्थितः ॥ ४ ॥
आब्रह्मभुवनाद्यावान् भोग आनन्दगोचरः ।
सोऽस्य तुच्छवदाभाति पूर्णस्वानन्दरूपिणः ॥ ५ ॥
एतावद्योगिनोऽप्यस्ति ज्ञानिनश्च विरक्तता ।
श्रीरामे तु विशेषो यत् स्वानन्देऽपिविरक्तिमान् ॥ ६ ॥
यथावह्नेर्न संतापः संतापैकस्वभाविनः ।
जलस्य न यथा शैत्यं शैत्यमात्रस्वभाविनः ॥ ७ ॥
तथानन्दस्वरूपस्य[3] रामस्य परमात्मनः ।
नानन्दो येन रक्तिः स्यात् क्वाप्यस्य परमेशितुः ॥ ८ ॥
ईशितव्यैर्यथा जीवै रमते रामचन्द्रमाः ।
तथा न तेषु संरक्ति[4]राप्तकामस्य दृश्यते[5] ॥ ९ ॥
परब्रह्मस्वरूपस्य पूर्णानन्दपयोनिधेः ।
इयमेवास्य सततं ह्याप्तकामस्य कामना ॥१०॥
अथास्य बहुधा वक्ष्ये वैराग्यं नाम सद्गुणम् ।
यच्छ्रुत्वा योगिनोऽप्याशु विरक्तं जायते मनः ॥११॥

---

१. एवं—अयो० । २. °पुषः—रीवाँ । ३. °श्च—रीवाँ । ४. संसक्तिः—मथु०, बड़ो० । ५. भूपतेः—अया० ।

ऋषिभिर्बहुधाप्रोक्तं वाल्मीकिप्रमुखैश्च यत् ।
वैराग्यं रामचन्द्रस्य तत् ते वक्ष्यामि भूरिशः ॥१२॥

ब्रह्मानन्दमतिक्रम्य प्रेमानन्दवती प्रिया[1] ।
सा प्रिया कौशिकी नित्यं[2] तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥१३॥

सुधासुमधुरैर्नित्यं मनःसंतापहारिभिः ।
आलापैर्या वशीचक्रे तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥१४॥

खञ्जरीटकुरङ्गालिचकोरमदहारिभिः ।
वश्यकृद्रक्तरङ्गैर्या तांमुञ्चन्नैव बाधितः ॥१५॥

राकानिशाकरोद्योतपराभवसमूर्जितैः ।
राजितैर्मन्दहासैर्या तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥१६॥

अलकावलिसंवीतैर्मधुरस्मितराजितैः ।
मुखचन्द्रांशुभिर्भाति तां मुञ्चन्नैव बाधितः ॥१७॥

भुकुटीकुटिलश्रीभिश्चञ्चलापाङ्गवीक्षितैः ।
अनन्यप्रेमपात्रं या तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥१८॥

विम्बीफलारुणद्योतैर्विद्रुमाभैर्मनोहरैः ।
याधरांशुभिरुद्भाति तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥१९॥

त्रैलोक्यजयिनो नित्यं पञ्चेषोर्जयहेतवे ।
यस्याः कम्बुसमः कण्ठस्तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥२०॥

यस्याः सिन्दूरपूरेण भूषितो मौक्तिकाचितः ।
नित्यमुद्भाति सीमन्तस्तां मुञ्चन्नैव बाधितः ॥२१॥

यस्याः सीमन्तरत्नेन[3] निर्जितो मङ्गलग्रहः ।
करैररुणयत्याशास्तां मुञ्चन्नैव बाधितः ॥२२॥

पीयूषमधुराम्भोदमसृणः काममोदनः ।
यस्याः प्रोद्भाति धम्मिलस्तां मुञ्चन्नैव बाधितः॥२३॥

यस्याः वेणी समुद्भाति शृङ्गाररसराजिवत् ।
रक्तसूत्रेण ग्रथिता तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥२४॥

---

१. प्रिये—मथु०, बड़ो । २. नित्यसंयुक्ता—अयो० । ३. करसरोजेन—रीवाँ ।

आदर्श इव कामस्य समुद्भासितदीधितिः ।
मुखचन्द्रस्तुतो यस्यास्तां मुञ्चन्नैव बाधितः ॥२५॥
यस्याः सुधासरोद्भूतमृणालसदृशौ भुजौ ।
राजेते हस्तपद्माभ्यां तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥२६॥
यस्याः करौ पारिजातलुलत्पल्लवशोभितौ ।
नैवापगच्छतश्चित्तात् तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥२७॥
यस्याः कनककुम्भाभ्यां कुचाभ्यामुरसः प्रभा ।
चेतोऽवसायितुं शक्ता तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥२८॥
यस्याः सुसूक्ष्ममुदरं रोमराजिविराजितम् ।
समुद्भातितरां चित्ते तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥२९॥
यस्याः परमगम्भीरं पीयूषसरसोपमम् ।
नाभिस्थलं समुद्भाति तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३०॥
यस्यास्त्रिवलिशोभाभिः सुधास्रोतांसि सन्ततम् ।
निर्मीयन्ते विचित्राणि तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३१॥
यस्याः काञ्चीसनाथाभ्यां नितम्बाभ्यां सुशोभितम् ।
मध्यस्थलं समुद्भाति तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३२॥
कदलीकाण्डसदृशे जितशुण्डासमुच्छ्रये ।
भ्राजेते जघने यस्यास्तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३३॥
ताम्बूलसंपुटाकारं यस्याः जानु[1] मनोभुवः ।
नित्यं मादयते चित्तं तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३४॥
सुजातपद्मपत्रस्थरक्तिमश्रीहरौ पदौ ।
यस्याः नित्यं सुशोभेते तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३५॥
यस्या गतिः सुमधुरा मरालकुलगञ्जिनी ।
मनो वशयितुं[2] शक्ता तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३६॥
यस्या विग्रहलावण्यं रतिरम्भादिनिर्जयि ।
चमत्करोति हृदयं तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३७॥

---

१. पात्र°—रीवाँ । २. ऽवसायितुं—रीवाँ ।

भ्रमयन्ती करे पद्मं मन्दमन्दं च गच्छति ।
विलासवाटिका मध्ये तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३८॥
रक्तवस्त्रपरीधाना प्रवाललतिकेव या ।
अकालसन्ध्यां कुरुते तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३९॥
प्रमोदविपिने क्रीडामध्ये कौतुककारिणी ।
अग्रणीः सर्वयूथेषु[1] तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४०॥
तडिल्लतेव शुशुभे युवतीगणमध्यगा ।
या प्रमोदारण्यवीथ्यां तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४१॥
यस्याः कामविलासेन सहजानन्दिनी स्वयम् ।
अमर्षं कुरुते चित्तं तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४२॥
कदाचिद् या स्वयंकृत्वा मण्डितां स्ववपुर्लताम् ।
मानं जहार कृष्णायास्तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४३॥
अहो अत्यद्भुतं यस्यां सौभाग्यं सुविशेषतः ।
स्वयं संवर्धितमभूत् तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४४॥
अशेषललनामौलीभूता गुणवती तु या ।
आनन्दमातनोद् भूरि तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४५॥
नित्यं रासविलासादौ विस्फुरन्ती सदैव या ।
ततान मुदमत्यर्थं तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४६॥
जनकस्य गृहे या च सखीनामग्रणीः स्वयम् ।
मनोनुगा श्रीजानक्यास्तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४७॥
एकान्ते च समासाद्य प्रियमानन्दरूपिणम् ।
चकार सहजाकार्यं तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४८॥
ज्ञात्वापि सहजा यस्याः कौटिल्यं दूत्यमेवच ।
मुखदाक्षिण्यसंरुद्धा न किंचिद् वदति[2] स्वयम् ॥४९॥
तेनैव रमते साधु धूर्ता प्रियमनोरमा ।
एकान्ते च समासाद्य तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥५०॥

---

१. °भूतेषु—रीवाँ । २. बदती—अयो०, रीवाँ ।

भुशुण्ड उवाच

कदा खलु मुमोचासौ कौशिकीं दुस्त्यजामपि ।
एतन्मम विशेषेण विरञ्चे विस्तराद्वद ॥५१॥
श्रीरामचन्द्रचरितं भरितं गुणौघैः पीयूषमेव मम कर्णपुटद्वयस्य ।
त्वद्वक्त्रचन्द्रगलितं पिबतां सुराणां नो तृप्तिरुद्भवति तद्वद पद्मयोने ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

इदमाख्यानमतुलं भुशुण्ड श्रूयतां त्वया ।
रहस्यं रामचन्द्रस्य देवस्य सुमहात्मनः ॥५३॥
यदा गर्भमभूद्देव्याः सीतायाः श्रीशसंगतः ।
तदास्वयमुवाचैनां क्रीडाकारणमानुषः ॥५४॥

श्रीराम उवाच

कश्चित् तवाभिलाषोऽस्ति जनकेन्द्रस्य नन्दिनि ।
तमहं पूरयिष्यामि मय्याज्ञापय भामिनि ॥५५॥
इत्युक्ता प्रभुणा देवी जानकी चारुलोचना ।
उवाच मधुरं वाक्यमीषत्स्मितमनोहरा ॥५६॥
न किंचिद् दुर्लभं नाथ त्रैलोक्यस्थेषु वस्तुषु ।
यद्यदिच्छामि मनसा तत्[1] सर्वं संस्थितं पुरः ॥५७॥
एकस्तु मेऽभिलाषोऽस्ति हृदये बलवत्तरः ।
अरण्ययात्रासमये मिलिता या मुनिस्त्रियः ॥५८॥
मुनीनां कन्यकाश्चैव तापस्यो वनवासिनीः ।
तासां वस्त्राणि भूषाश्च भोगांश्च विविधान् विभो ॥५९॥
दातुं मया प्रतिज्ञातास्तासामाश्रमवेश्मसु ।
मण्डनानि विचित्राणि करिष्यामीतिनिश्चितम् ॥६०॥
तासां कुमारिकाणां च कुमाराणां च योगिनाम् ।
अहमुद्वाहकार्येषु संपदं कर्तुमुत्सुका ॥६१॥
दरिद्रा वनवासिन्यस्तापस्यो मुक्तभोगकाः ।
तासां भोगं प्रदास्यामि भुक्तिभूषाम्बरादिभिः ॥६२॥

---

१. नः—रीवाँ ।

इतिसंकल्पितं चित्ते पूर्वमेव मया प्रभो ।
तं पूरयाभिलाषं मे गर्भवत्या विशेषतः ॥६३॥
एवं[1] नीत्वा कानिचिद्वासराणि तासां रम्येष्वाश्रमेषूपगत्य ।
आशीः पूजां तापसीनां गृहीत्वा भूयो यास्यामीश ते राजधानीम् ॥६४॥
इति श्रुत्वा प्रियावाक्यं रामो विरहकातरः ।
कष्टेन तामादिदेश तथेति रहसि स्थितः ॥६५॥
ततः परेद्युः प्रभुणा प्रियायाः कर्तुं पूर्णं तं नियताभिलाषम् ।
उक्तो भ्राता लक्ष्मणः प्रेषणाय पुण्यस्थानेष्वाश्रमेषु प्रियायाः ॥६६॥

श्रीराम उवाच

गच्छ लक्ष्मण पारे त्वं सरय्वाः पुण्यवत्सु वै ।
तापसीनामाश्रमेषु गृहीत्वा जनकात्मजाम् ॥६७॥
तापसानां पूजनाय गच्छत्येषा तु भामिनी ।
अस्याः संकल्पितं चित्ते पूरणीयं विशेषतः ॥६८॥
नीयन्तां वस्त्रभूषान्नसंभाराः शकटस्थिताः ।
अन्ये च विविधा भोगाः कर्पूरघुसृणादयः ॥६९॥
भूरिचन्दनसंभाराः स्थाप्यन्तां शकटादिषु ।
जनकेन्द्रसुता देवी यदाज्ञायपति स्वयम् ॥७०॥
तत्सर्वं भ्रियतां भूरि तापसीनां सुखावहम् ।
ताः सर्वाः शश्वदामन्त्र्य देवी पूजयतु स्वयम् ॥७१॥
तासामाश्रमदेशेषु यात्वेषा पूजनोत्सुका ।
दंपतींस्तान् समापूज्य भवत्वाप्तमनोरथा ॥७२॥
इत्याज्ञा विद्यते भ्रातर्जानक्यास्तत्तथास्तुवै ।
भवानिदं साधयतु प्रजावत्या मनोरथम् ॥७३॥
एषा हि वनवासान्तस्तापसीस्तपसिस्थिताः ।
तत्कन्यकाः कुमारीश्च नित्यं भोगविवर्जितान् ॥७४॥
वीक्ष्य जाता सकरुणा तेन संकल्पितं हृदि ।
एताः संपूजयिष्यामि प्राप्तराज्ये प्रभावहम् ॥७५॥

---

१. स्वयं—रीवाँ ।

ततस्तु त्वरितं कार्यं चिन्ताभिलषितं व्रतम् ।
गर्भवत्या मनःकामः पूरणीयो विशेषतः ॥७६॥
अन्यथा तु कृते भ्रातर्भाविनी संततिः स्त्रियाः ।
यावज्जन्माभिलाषेण ग्रस्ता स्यान्नात्र संशयः ॥७७॥
तत्रैनां खलु संस्थाप्य दासदासीसखीजनैः ।
तूर्णमागम्यतां भ्रातर्मत्पार्श्वे प्रीतिपूर्वकम् ॥७८॥

ब्रह्मोवाच

इति भ्रातुर्निदेशेन लक्ष्मणो विहिताञ्जलिः ।
मूर्द्ध्ना तदाज्ञामादाय तस्थौ गन्तुं तदाश्रमान् ॥७९॥
तदैव त्वरितं वीरो लक्ष्मणः प्राणवत्प्रभोः[1] ।
संपाद्याखिलसामग्रीः शकटैर्भारवाहकैः ॥८०॥
अक्षय्यपटभूषान्ननानाभोगरसादिभिः ।
संभृत्य शकटांस्तूर्णं नानोपायनराशिभिः ॥८१॥
गृहीत्वा भ्रातृजायां तां मणिकाञ्चनमण्डिते ।
स्थितां महारथे देवीमनयत् तापसीगृहान् ॥८२॥
सरय्वाः अपरे पारे उटजाश्रममण्डले ।
संस्थाप्य मुनिपत्नीनां पार्श्वे जनकनन्दिनीम् ॥८३॥
उवाच लक्ष्मणो भूयः सिद्धकामां प्रजावतीम् ।

लक्ष्मण उवाच

अत्र त्वं तापसीनां वै कुरु पूजां दिने दिने ॥८४॥
यथाभिलषितैरर्थैः पटभूषासनादिभिः ।
भोगैश्च विविधै रत्नैरक्षय्यैर्भूरिसंभृतैः ॥८५॥
तव संकल्पसिद्ध्यर्थं प्रभुणा प्रतिपादितैः ।
अलभ्यैरपि सामर्थ्यात् संचितैर्भूरिवस्तुभिः ॥८६॥
अनुज्ञां देहि मे देवि गच्छाम्यार्यस्य संनिधौ ।
कृतकार्यां पुनस्त्वां हि नेष्यामि नगरीं प्रति ॥८७॥

---

१. °वल्लभः—रीवाँ ।

ब्रह्मोवाच

ततश्चाज्ञापितो देव्या जानक्या लक्ष्मणः स्वयम् ।
नत्वा तस्याः पदाम्भोजे ह्यभिवाद्य मुनीश्वरान् ॥८८॥
तापसीश्च प्रणम्यासौ ताभ्यो देवीं प्रदर्श्य च ।
रथेन तूर्णवेगेन आजगाम पुरीं प्रति ॥८९॥

सा तत्र पुण्येषु तपोवनानां रम्येषु चैवाश्रममण्डलेषु ।
सुच्छाय[1]पुण्यद्रुमशोभितेषु कुरङ्गपोतैः परिशीलितेषु ॥९०॥
अनेकशाखामृगसेवितेषु कूजद्विहङ्गव्रजनादितेषु ।
सुशीतलैः सारवतोयसंगान्मन्दानिलैः संततसेवितेषु ॥९२॥
स्वाध्यायमुच्चैः पठतां मुनीनां घोषेण रात्रिन्दिवमावृतेषु ।
नादेन शश्वच्छुकसारिकानां वेदाक्षरोल्लापव्रतान्वितेषु ॥९२॥
निरन्तरं वर्तितदीर्घसंस्थैर्महामखैः सत्रगणैश्च मुख्यैः ।
सौम्यैस्त्रिकर्माकुलऋत्विगादिगणैः कृतः स्वस्वगतक्रियेषु ॥९३॥
सा री[2]समुच्चारितये यजामहे (?) श्रौषट्वषड्वौषडादिस्वरेषु ।
महेन्द्रमामन्त्रयतां मुनीनां सुब्रह्मण्यं[3] स्वरितोच्चैः स्वरेषु ॥९४॥
स्वच्छस्फुरत्पुष्करिणीजलान्तःसमुल्लसत्पद्मसमूहसौरभैः ।
सुगन्धिताशेषसरित्तटेषु हुताज्यगन्धैश्च समन्ततो वै ॥९५॥
मनोहरैः फलितैः पुष्पवद्भिः सपल्लवच्छायततैरनोकहैः ।
मुनीन्द्रकन्याकरसिक्तबाहैः समन्ततो वीतपयन्तकेषु ॥९६॥
इतस्ततो वीक्ष्यमाणा सखीभिः साकं सुरुच्या परितः पर्यटन्ती ।
राजेन्द्रपुत्री हृदये प्रसन्ना बभूव भूयः समवाप तुष्टिम् ॥९७॥
सा संगता तापसीभिः समन्तात् संमानिता संस्तुता पूजिता च ।
श्रीरामपत्नी मुमुदे विशेषात् कृतातिथ्या तद्दिने ताभिरेव ॥९८॥
ऊचुश्चैनां मुनिदाराः समन्तादातिथ्यान्ते स्वागतादीन् विधाय ।
भक्त्या नतां राजराजेन्द्रपत्नीं सत्कृत्य चात्यन्तमनोज्ञया गिरा ॥९९॥

---

१. सुष्वाप—अयो० । २. साऋक्—रीवाँ । ३. स्वब्रह्मण्य°—रीवाँ ।

मुनिदारा ऊचुः

अहो अतीव धन्यासि जनकेन्द्रस्य नन्दिनि ।
अत्युदारचरित्रासि विश्वतः पावनैर्गुणैः ॥१००॥
तवैव पातिव्रत्येन सुभगाः सकला वयम् ।
मण्डितं भुवनं सर्वं स्त्रीकुलं च विशेषतः ॥१०१॥
चिरं जीवतु ते स्वामी शश्वद्दशरथात्मजः ।
तव सौभाग्यपुण्येन विश्वभूषणकारिणा ॥१०२॥
अवाप्नुहि परां लक्ष्मीं त्वं च लक्ष्मी रघोः कुले ।
रघोर्निमेश्च वंशस्य भूषारूपासि जानकि ॥१०३॥
अतिसम्यक् कृतं देवि भवत्या भव्यरूपया ।
आश्रमान् समुपेयुष्या वयं सर्वाः कृतार्थिताः ॥१०४॥
कस्य न स्पृहणीयासि वृत्तेन च गुणेन च ।
सफले नयने तस्या या त्वां देवि विलोकयेत् ॥१०५॥
अहो अत्यद्भुततमं शीलं ते वरवर्णिनि ।
पतिव्रतानां सर्वासां शीलनीयमिदं सदा ॥१०६॥
पत्या साकं यदा दृष्टा पुरा वननिषेवणे ।
तदावधि महोत्कण्ठा वर्द्धतेऽस्माकमुत्तमे ॥१०७॥
चिराद् दृष्टासि भाग्येन देवि त्वं नो विलोचनैः ।
अद्य नः सफलं जन्म त्वत्समागममोदतः ॥१०८॥
तापस्योऽपि वयं नाम[1] त्वया देवि वशीकृताः ।
निःस्पृहा सकले लोके त्वामेकां स्पृहयामहे ॥१०९॥
तव पुण्यकथाश्चित्रा[2] विश्वतः पावयन्ति नः ।
तापसीरपि चात्यर्थं तव पत्युर्महात्मनः ॥११०॥
युवयोः पुण्यवृत्तेन वेदगीतेन जानकि ।
पूतं पावयितव्यं च त्रैलोक्यमपि चाखिलम् ॥१११॥
यथा पुनाति त्रैलोक्ये विष्णुपादोद्भवा सरित् ।
सदैव युवयोः पुण्यलोकामृततरङ्गिणी ॥११२॥

---

१. तावत्—रीवाँ । २. गाथा—रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

निगूढं चरितं देवि भवत्या विश्वपावनम् ।
यस्य कर्णपथं नैति तस्य जन्म निरर्थकम् ॥११३॥
दिष्ट्या हतः स पापोऽद्य तव पत्या महात्मना ।
जगद्विद्रावणकरो रावणस्तपसोर्जितः ॥११४॥
तव शीलेन वृत्तेन हतः स हि खलाग्रणीः ।
जगद्दुरितरूपात्मा रावणः सकुटुम्बकः ॥११५॥
अद्य देवि प्रजाः सर्वा मोदन्ते सुकृतैस्तव ।
विदधत्याशिषः पूर्णास्ताभिस्त्वं सुखिनी भव ॥११६॥
सुराङ्गनाभिस्त्रिदशापगायास्तीरेषु कल्पद्रुमसंवृतेषु ।
पुण्यानि रुच्याणि गिरां फलानि गीयन्त उच्चैर्ननु ते यशांसि ॥११७॥
पुण्येषु तीर्थेषु च तापसानां शुभाश्रमेषु त्वरितस्वरेण ।
गायन्त्य उच्चैर्मुनिकन्यकास्त्वां तुष्यन्ति कीर्तिव्रजशुद्धमूर्तिम् ॥११८॥
अत्युद्धारगुणा लक्ष्मीर्यथा वैकुण्ठवासिनी ।
तथात्वमनवद्याङ्गि साकेतपुरवासिनी ॥११९॥
अथात्र नः सुपुण्येष्वाश्रमेषु विनोदिनी ।
यावद्गर्भप्रसवनं चिरं तिष्ठ पतिव्रते ॥१२०॥
गर्भिणीनां खलु मनो वनश्रीदर्शनोत्सुकम् ।
इह स्थित्वा प्रजायेथाः सन्तातिं वीर्यवत्तराम् ॥१२१॥
वीरसूर्भव भाग्येन रघुवंशदिवामणेः ।
तया त्वं प्रजया देवि नृपं संतोषय ध्रुवम् ॥१२२॥
यथा दशरथो राजा रामाद्यैः पुत्रवत्तमः ।
तथा श्रीरामचन्द्रोऽपि भूयाद्वै पुत्रवत्तमः ॥१२३॥
रघोः कुलस्वभावोऽयं वर्णितो विदुषां गणैः ।
लुम्पन्ति[1] कीर्तिं पूर्वेषां जाता जाता गुणोत्तराः ॥१२४॥
इति ताभिस्तुता देवी वचनैः सत्यसुन्दरैः ।
प्रत्युवाच विशालाक्षी स्मयमानमुखाम्बुजा ॥१२५॥

---

१. लुठन्ति—रीवाँ ।

श्रीजानक्युवाच

इयं हि भवतीनां वै तपसः सिद्धिरद्भुता ।
यन्नः शुभफलोदर्कः सर्वलोकविलक्षणः ॥१२६॥
अस्माकमेतदेवोच्चैर्धनं राज्यपदस्पृशाम् ।
भवतीनां तापसीनां यत्तपः समुपार्जितम् ॥१२७॥
वयं गार्हस्थ्यचिन्ताभिः संततं क्लिष्टमानसाः ।
तत्रापि भवतीनां वै दर्शनं सुकृतं परम् ॥१२८॥
एतच्च परमं पुण्यं भवतीभिर्निरूपितम् ।
स्वाश्रितानां यदस्माकमुत्कर्षोऽस्ति स एव वः ॥१२९॥
वृथा जनुर्याति गृहस्थितानां गार्हस्थ्यचिन्तापरिशीलनेन ।
तत्रापि यस्मिन् भवतीषु संगः स एव कालः सुकृतेन पूर्णः ॥१३०॥
क्व नः सदा गृह्यकृत्याकुलानां युष्माभिः स्यात्तापसीभिः प्रसंगः ।
तपोनुरागेण तृणीकृतोच्चैर्महेन्द्रलक्ष्मीः सुखसंपदाभिः ॥१३१॥
इति विज्ञाय तापस्यो युष्माकं दर्शनं मया ।
प्रार्थितं स्वामिने गत्वा पुण्यमाश्रममण्डलीम् ॥१३२॥
एतद् दुर्लभमस्माकं भवतीनां विलोकनम् ।
सर्वसार्थसमेतानां साक्षादिव तपःश्रियाम् ॥१३३॥
भाग्येन दर्शनं याता भवत्यः पुण्यमूर्तयः ।
द्रष्टुं योग्याः क्व नोऽस्माकं साक्षादिव तपःश्रियः ॥१३४॥
इति ताः परितः स्तुत्वा[1] मुनीनां धर्मचारिणीः ।
जानकी तोषयामास व्यक्तं सूनृतया गिरा ॥१३५॥
अन्योन्यं ताभिरालप्य राघवेन्द्रकुलेन्दिरा ।
पूजयामासविधिवदुपचारैरुदाहृतैः ॥१३६॥
आसनैर्भूषणैर्वस्त्रैर्मणिकाञ्चनराजिभिः ।
महार्हाभिश्च मालाभिर्हारावलिभिरुच्चकैः ॥१३७॥
स्वयं च परिधानार्हैः सुगन्धाम्बरभूषणैः ।
देश्यैः सुजातिसंपन्नैरानीतैः पत्युराज्ञया ॥१३८॥

---

१. श्रुत्वा—रीवाँ ।

तासामाश्रमसद्मानि छादितानि समन्ततः ।
वासोभिः कान्तिसंपन्नैः काञ्चनोद्योतशालिभिः ॥१३९॥
तोरणानि निबद्धानि द्वारेष्वाश्रमसद्मनाम् ।
मणिकाञ्चनमालाभिरुद्गतामलकान्तिभिः ॥१४०॥
उटजेषु मुनीन्द्राणां रोपिता विपुलध्वजाः ।
फलिता इव रत्नौघैः पर्णशालाः समन्ततः ॥१४१॥
वलिभिर्धूपदीपैश्च रत्नकुम्भैः फलान्वितैः
पूर्णैर्विशुद्धतोयेन शातकौम्भाम्बरावृतैः ॥१४२॥
पञ्चरत्नाभ्युपेतैश्च सकाञ्चनशरावकैः ।
कदलीस्तम्भरोपैश्च लसत्पल्लववल्लिभिः ॥१४३॥
रचितैः पर्णशालायां द्वारेषु विपुलाः श्रियः ।
अमरावती भोगवती वासीदाश्रममण्डली ॥१४४॥
सर्वतः कान्तिसंपन्ना सर्वतो भोग संयुता ।
राघवेन्द्रपुरश्रीश्च तत्राविरभवत्तदा ॥१४५॥
भोजिता परमान्नेन मुनयो मुनिकन्यकाः ।
मुनीनां धर्मपत्न्यश्च तथा तेषां कुमारकाः ॥१४६॥
तथान्तेवासिनस्तेषां पटभूषणसत्कृताः ।
भोजिता विविधै रत्नैः स्वादुसंतुष्टिकारकैः ॥१४७॥
उटजावलिमार्गेषु घुसृणैश्चन्दनैस्तथा ।
कर्पूरैरप्यगुरुभिस्तथा मृगमदादिभिः ॥१४८॥
द्रवीकृतैरभूत् सेको मूलेष्वाश्रमशाखिनाम् ।
इतस्ततः सौरभौघैर्व्यापिताः सकला दिशः ॥१४९॥
मृगाः शाखामृगाश्चैव येऽन्येऽत्राश्रमवासिनः ।
शुकसारीप्रभृतयस्तथैवोच्चावचां खगाः ॥१५०॥
भोजिता विविधैरन्नैः पशवः पक्षिणतस्था ।
धेनवश्च विशेषेण मुनीनां होमसाधनाः ॥१५१॥
अलङ्कृताः शुभैर्वस्त्रैर्भूषणैर्मणिकाञ्चनैः ।
भोजिता विपुलैरन्नैः सवत्सा विपुलौधसः ॥१५२॥

वत्साश्च वत्सतर्यश्च वृषाश्च शुभदर्शनाः ।
पूजिता गन्धमाल्याद्यैः पटकाञ्चनभूषणैः ॥१५३॥
भोजिताश्च विशेषेण मिष्टान्नयवसादिभिः ।
शृङ्गाण्यलङ्कृतान्युच्चैः पुष्पमालाकदम्बकैः ॥१५४॥
इत्थं प्रतिदिनं तत्र तासामाश्रममण्डले ।
पूजां विदधती देवी न्यवसज्जनकात्मजा ॥१५५॥
धर्मार्जनपरा देवी तापसीनां तपोवने ।
सानुरागमना जाता त्यक्तग्रामजनस्थितिः ॥१५६॥
[1]तासां पुत्रेषु पुत्रीषु स्निग्धचित्ता हरेर्वधूः[1] ।
चलितुं नाशकत् तस्मात् स्थानाद्राजेन्द्रकन्यका ॥१५७॥
तपस्विनां संपठतां स्वाध्यायं श्रुतिसुन्दरम् ।
कुर्वतां ब्रह्मकर्माणि यजतां प्रतिवासरम् ॥१५८॥
अनवद्यां स्थितिं वीक्ष्य प्रसन्ना जानकी वने ।
स्वच्छतोयेषु पुण्येषु तीर्थेषु च तपस्विनाम् ॥१५९॥
स्नान्ती प्रतिदिनं देवी पूजयन्ती च तापसीः ।
बहूनि वासराण्यत्र निवसन्ती निनाय सा ॥१६०॥
कुटुम्बवत्तापसीनां[2] मण्डलेषु निवासिनी ।
तासां हृदयरागस्य पात्रमत्र बभूव सा ॥१६१॥
प्रियस्य विरहेऽप्येषा तपस्विवनवासतः ।
अनुद्विग्नमना देवी चिरमाप सुनिर्वृतिम् ॥१६२॥
रामोऽप्यस्या मनोवृत्तिमाश्रमेषु तपस्विनाम् ।
सुप्रसन्नतमां वीक्ष्य प्रेषयामास नानुजम् ॥१६३॥
कानिचिद्दिवसान्युच्चैस्तत्रैव वसतु[3] प्रिया ।
इति न प्रेषयामास नेतुं लक्ष्मणमीश्वरः ॥१६४॥
कदाचिदनवद्याङ्गी तिष्ठन्ती सा तपोवने ।
कस्याश्चिदपि तापस्या मुखाच्छुश्राव जल्पितम् ॥१६५॥

१—१. नास्ति—अयो० । २. सकुटुम्बतापसीनां—रीवाँ । कुटुम्बतामाप सीता—मथु०, बड़ो० । ३. वसति—मथु०, बड़ो० ।

अहो राघववर्येण रामचन्द्रेण जानकि ।
ननु त्वं संपरित्यक्ता यतो नाकारयत्यसौ ॥१६६॥
एवं हि श्रूयते शब्दो नित्यं साकेतवासिनाम् ।
रावणस्य गृहे वासात् त्यक्ता रामेण जानकी ॥१६७॥
सभास्थितेन प्रभुणा पृष्टः कोऽपि विदूषकः ।
इत्युवाच प्रभुं धृष्टो जनतामुखजल्पितम् ॥१६८॥
असाधु साधु वा लोकः किं नो वदति संसृतौ ।
इतिपृष्टो मुहुर्देवं प्रत्युवाच विदूषकः ॥१६९॥
सर्वं खलु भवद्वृत्तं लोकः साध्विति जल्पति ।
एकमेव चरित्रं ते मन्यतेऽनुचितं जनः ॥१७०॥
अतः परं जगत्यस्मिन् दुष्टामपि निजां स्त्रियम् ।
नकोऽपि त्यक्ष्यति जनो रामं कृत्वा निदर्शनम् ॥१७१॥
परपुरुषकरेण स्पृष्टगात्रा निजांसं
मदनशरवशेनारोप्य नीता निकेतम् ।
अपिबहुदिवसौघं तत्र सा जातवासा
जनकनृपतिपुत्री स्वामिना संगृहीता ॥१७२॥
इतिस्त्रीणामसाध्वीनां भविष्यत्यवलम्बनम् ।
भर्त्रा चेत्त्यज्यते तर्हि वदेद्रामं निदर्शनम् ॥१७३॥
उपस्थितोऽयं जगति महान् धर्मस्य विप्लवः ।
स्त्रीणां स्वातन्त्र्यकरणे मूलमन्त्र इवोद्गतः ॥१७४॥
इति जल्पति लोकोऽयं द्वारि द्वारि गृहे गृहे ।
साकूतं सोपहासं च तेन क्लिश्यन्ति साधवः ॥१७५॥
इत्थं जजल्प रामेण मुहुः पृष्टो विदूषकः ।
तच्छ्रुत्वा रघुवीरस्य प्रियात्यागोन्मुखं मनः ॥१७६॥
इतितस्याः समाकर्ण्य वाक्यं जनकनन्दिनी ।
निश्चिकाय स्वमानेतुमनागमनकारणम् ॥१७७॥
अतिसंतप्तहृदया देवी प्रियचरित्रके ।
जाता व्याकुलचित्ता सा रुदन्ती करुणायुतम् ॥१७८॥

अहो किमेतत् प्रभुणा निरागसि कृतं मयि ।
स्वप्नेऽपि नानुपश्यामि व्यभिचारमहं क्वचित् ॥१७९॥
अप्युक्तं वीतिहोत्रेण साक्षाद्भगवता स्वयम् ।
सर्वैरपि सुरैस्तद्वद् गिरा च व्योमसंस्थया ॥१८०॥
तथा समस्तैर्मुनिभिस्तदा शपथपूर्वकम् ।
अहं च भगवत्यग्नौ साक्षाद्वैश्वानरेऽर्चिषि ॥१८१॥
शोधयित्वा[1] स्वमात्मानं निर्गता वीतकल्मषा ।
सर्वं विस्मृतवानेष प्रभुरद्य रघूत्तमः ॥१८२॥
अहो असह्यं हृदयस्य जातं प्रियस्य वृत्तं किमिदं ह्यकस्मात् ।
येनाहमद्धा मदसून् विहाय प्रवेष्टुमर्हा ननु पावकान्तः ॥१८३॥
किं नु कुर्वे गर्भवती प्रविशेयं शुचौ कथम् ।
कथं वा जीवितं तावद्धारयिष्याम्यहं खलु ॥१८४॥
स सर्वं कर्तुमर्होऽस्ति देवः श्रीरघुनन्दनः ।
नाहं किमपि वै कर्तुं शक्ता दुर्दैववश्यगा ॥१८५॥
स तादृक्प्रणयस्तस्य तानि वृत्तानि ते गुणाः ।
सर्वमेकपदे जातं मयि दुर्दैवमीदृशम् ॥१८६॥
अथवा पुरुषा नाम स्वभावेनैव निष्ठुराः ।
भवन्तीति स्फुटं मन्ये जानकी विधिना हता ॥१८७॥
इत्यादि विलपन्त्येषा तत्क्षणाज्जातदुर्गतिः ।
वाल्मीकिना समाश्वस्ता रुदती साश्रुलोचना ॥१८८॥

वाल्मीकिरुवाच

मा रोदीः करुणं वत्से जनकेन्द्रस्य नन्दिनि ।
प्रभुरेष स्वयं रामो वृत्तं जानाति तावकम् ॥१८९॥
न विजानाति लोकोऽयं दुर्दान्तो दैववञ्चितः ।
रामस्तु केवलं लोकमुपासीनोऽस्ति संप्रति ॥१९०॥
न कदापि च देवेशो भवतीं त्यक्ष्यति प्रियाम् ।
अलं विलप्य करुणं भवत्या स्थीयतां सुखम् ॥१९१॥

---

१. साधयित्वा—रीवाँ ।

इदं तपोवनं नाम मम तापससेवितम् ।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णमत्र तिष्ठ चिरं सति ॥१९२॥
लोकस्य लोक एवायं परिच्छेत्स्यति संशयम् ।
रामस्तु केवलं देवि निर्लेपः पद्मपत्रवत् ॥१९३॥
युवामेव विजानीथो युवयोर्महिमोत्करम् ।
स रामः श्रीपतिः साक्षात्त्वं श्रीस्तस्याङ्कभूषणे ॥१९४॥
परं[1]ब्रह्म स्वयं रामस्त्वं तदानन्दिनी प्रिया ।
शक्तिः प्रमोदविपिने सहजेति श्रुता तु या ॥१९५॥
वृन्दावने तथा राधा त्वमेव परिगीयसे ।
वैकुण्ठे च स्वयं लक्ष्मीर्जानकी जनकालये ॥१९६॥
को विजानाति देवि त्वां चरमेण स्वचक्षुषा ।
ब्रह्मादीनामपि दृशां गोचरत्वं न गच्छति ॥१९७॥
महिमा युवयोर्नित्यं वेदेन खलु गीयते ।
प्राकृतः किल लोकोऽयं किंजानाति शिवात्मिकाम् ॥१९८॥
भवतीं नामरूपाभ्यां पावयन्तीं जगत्त्रयम् ।
कोटितीर्थसमश्लोकां श्रीरामस्य परां प्रियाम् ॥१९९॥
इत्येवं तां सुसत्कृत्य मुनिर्वल्मीकसंभवः ।
निजाश्रमपदे नीत्वा लोकलक्ष्मीमवासयत्[2] ॥२००॥
एतस्मिन्नन्तरे लोला कौशिकी नाम तत्सखी ।
सीताविरहितं रामं रहःस्थाने समाययौ ॥२०१॥
चन्द्रानना चारुचकोरनेत्रा कस्तूरिकाबिन्दुविराजिभाला ।
सीमन्तरत्नद्युतिभिः समंताद्दिशः समस्ताः परिरोचयन्ती ॥२०२॥
मरालगत्या श्रितपादपद्मा मञ्जीरनादैर्जितहंसनादा ।
पादाङ्गुलीभूषणचारुचाटुकैः कलक्वणैर्लक्षितमन्दयाना ॥२०३॥
शोणाम्बरोल्लासिनितम्बबिम्बद्युतिस्फुरच्चञ्चल[3]कामचक्रा ।
सुवर्णरम्भातरुकाण्डजङ्घा करीन्द्रशुण्डाविजितोरुकान्तिः ॥२०४॥

---

१. पर°—रीवाँ । २. निवासयत्—रीवाँ । ३. चेलक°—रीवाँ ।

गम्भीरनाभीह्रदहारिशोभया सुधासरःस्पर्द्धनया हरन्ती ।
शैवालवल्ली कलरोमराजीश्रृङ्गारवल्लीमवरोपयन्ती ॥२०५॥
करीन्द्रकुम्भोच्छ्रयशालिराजद्वक्षोरुहक्षोभितलोकचित्ता ।
हारावलीगुम्फितरत्नराजीनक्षत्रमालाञ्चितवक्त्रचन्द्रा[1] ॥२०६॥
ग्रैवेयकद्योतिमहोनिरस्तदिक्चक्रवालप्रसरत्तमिस्रा ।
मरुल्लसत्पल्लवपाणिशोभा भुजद्वयीनिर्जितकन्दनाला ॥२०७॥
कराङ्गुलीचारुनखप्रभौघविनिर्जिताशेषमणिप्रचारा ।
प्रवालपङ्केरुहपत्रकान्तिन्यक्कारिणी पाणितलप्रभाभिः ॥२०८॥
पञ्चेषुकम्बुद्युतिजैत्रकण्ठी विराजिचञ्चच्चिबुकाग्ररम्या ।
संध्यातपोद्गारि सुधांशुलक्ष्मीर्विजैत्रमोष्ठद्वितयं वहन्ती ॥२०९॥
शुकास्यमुद्राकरकिंशुकाभनासाविलासिश्वसनानिलेन ।
समस्तसौरभ्यसमूहधारां प्रभूतचेतस्तृषिमुद्वमन्ती ॥२१०॥
दीव्यन्मनोभूमुकुरायमाणकपोलयुग्माञ्चितकुन्तलाढ्या ।
प्रदीप्तताटङ्कनिबद्धमुक्ताकलापताराञ्चितवक्त्रचन्द्रा ॥२११॥
समस्तसौभाग्यविभाविनीभिर्भूषाभिराभासितचारुगात्रा ।
चाम्पेयविद्युत्कनकादिजेत्री दिगन्तसंचारकलाप्रवीणा ॥२१२॥
प्रभाषमाणा किलवल्लकीव विद्योतमाना तडितां छटेव ।
संवर्धमानामृतकूलिनीव प्रसर्पमाणांशुदलैर्लतेव ॥२१३॥
व्रजे च कृष्णा सहजामुखीनां व्रजाङ्गनानां निवहेऽपि रामम् ।
प्रमोदयन्ती भ्रुकुटीविलासैर्विराजते या नयनाञ्चलैश्च ॥२१४॥
सा मन्दमन्दं समुपेत्य रामं लोकाभिरामं सुसमीक्ष्य किंचित् ।
लज्जावती नम्रमुखी चकासे साक्षाज्जयश्रीरिव मन्मथस्य ॥२१५॥
अभ्यासमासाद्य जवेन तस्थौ सा योगनिद्राविनिमीलिताक्षम् ।
श्रीराममुद्बोधयितुं चकार लीलारविन्दभ्रमणेन वायुम् ॥२१६॥
अथाक्षिणी पद्मदलाभिरामे उन्मील्य रामः समचष्ट पार्श्वे ।
तां कौशिकीं मेचकदृक्कटाक्षैः संताडयन्तीमिव[2] हृत् प्रियस्य ॥२१७॥

---

१. चन्द्रवक्त्रा—मथु०, बड़ो० । २. °मिह—रीवाँ ।

अथोवाच महायोगी रामः परमनिःस्पृहः ।
कौशिकीं तप्तहेमाङ्गीमेकान्ते सुसमागताम् ॥२१८॥

श्रीराम उवाच

किमर्थं कौशिकि प्राप्ता मत्सकाशमिहाधुना ।
रहस्यहं तपोनिष्ठस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥२१९॥

कौशिक्युवाच

इदानीं पुण्डरीकाक्ष रहितः प्रियया भवान् ।
अतोऽहं त्वां रमयितुं प्राप्तास्मि रहसि स्थितम्॥२२०॥

श्रीराम उवाच

मत्प्रिया जानकी साक्षाद्रतिकोटिमनोहरा ।
सैव चेन्मां परित्यज्य मुनीनामाश्रमं गता ॥२२१॥
कान्या मम मनो हर्तुं समर्थास्ति जगत्त्रये ।
एकपत्नीव्रतधरो नाहमन्यत्र लोलुपः ॥२२२॥
तदाज्ञावशगो भूत्वा तया सह सुसंगताम् ।
कदाचित्त्वां रमितवान् यथान्या गोपकन्यकाः ॥२२३॥
सहजाज्ञावशेनाहं रतवान् व्रजमण्डले ।
सहजा जानकी चेति रूपमेकं द्विधावपुः ॥२२४॥

ब्रह्मोवाच

विज्ञापयन्तीमपि तां कौशिकीं जानकीसखीम् ।
नोररीकृतवान् रामो महायोगेश्वरो रहः ॥२२५॥
ततः सा विमुखीभूय भग्नमाना सुदुर्मनाः ।
जानकीमेव समगात्तापसीनां समीपगाम् ॥२२६॥
अन्याश्च सकलाः सख्यः सीतायाः पद्मलोचनाः ।
कमलेशीप्रभृतयः प्रियेण सहसोज्झिताः ॥२२७॥
सीताविरहतप्तेन योगं समधितिष्ठता ।
भग्नमाना हतधियः सीतामेव समाययुः ॥२२८॥
ताः सर्वाः संगता वीक्ष्य तत्रापि[1] जनकात्मजा ।
सीता भग्नदशा वीक्ष्य प्रोवाच वचनं सती ॥२२९॥

---

१. नवापि—मथु०, बडो० ।

किमर्थं भग्नमानाः स्थःसख्यः सर्वा विनिन्दिताः[1] ।
केनापि वञ्चिताः किंनु भग्नमानीकृताश्च वः ॥२३०॥

सख्य ऊचुः

प्रभुः कमलपत्राक्षो देवो दशरथात्मजः ।
तथैव विरहोद्रेकान्नास्मानादिद्रिये सखि ॥२३१॥
वयं सर्वास्तं समेता रहस्यं तपस्यन्तं योगमुद्रां वहन्तम् ।
अनेकधा चक्रममोहनं सखि स्वभावलोलैर्नयनैर्विलोक्य ॥२३२॥
स वै धीरस्त्वां विना नेतरस्यां स्वप्नेऽपि नासक्तमना मनागपि ।
अनादृतानामिति तेन पत्या गतो मानस्त्वत्सखीनामतो नः ॥२३३॥
अतः सर्वाः दुर्मनसो बभूवुस्त्वत्संनिधानं प्राप्तवत्यःस्म तस्मात् ।
यथात्वमत्राश्रममण्डले वसस्येवं तथा वयमप्यावसामः ॥२३४॥
तीव्रेण तपसा नित्यं कर्षयन्त्यो निजं वपुः ।
श्रीरामचन्द्रचरणध्यानधारासुधाप्लुताः ॥२३५॥
नेष्यामः कतिचिदहानि ते समीपे तिष्ठन्त्यः वरमतमात्मयोगनिष्ठाः ।
सायुज्यं पुनरथ राघवेण गत्वा देहान्ते परमपदं व्रजाम शीघ्रम् ॥२३६॥
इति ताः कृतसंकल्पाः सीतासंनिधितोषिताः ।
अचीकरंस्तपस्तीव्रं कौशिकीप्रमुखाः स्त्रियः ॥२३७॥
इदमग्रे प्रवक्ष्यामि विशेषेण तवाग्रतः ।
वैराग्यस्य प्रसङ्गेन किंचिदुक्तं मया द्विजः ॥२३८॥
इति वैराग्यनामासौ भगः श्री रामचन्द्रगः ।
तुभ्यं भुशुण्ड कथितमुपलक्षणमात्रतः ॥२३९॥
योऽतिप्रियतमो दान्तो लक्ष्मणः कृतलक्षणः ।
यं विना न क्वचित्तस्थौ तं त्यजन्नैव बाधितः ॥२४०॥
यस्यानुग्रह मिच्छन्ति नित्यं श्रीरामसेवकाः ।
सखायमात्मनः साक्षात्तं त्यजन्नैव बाधितः ॥२४१॥
येन सार्द्धं समावात्सीदरण्येऽपि प्रियान्वितः ।
विनीतमात्मनो भक्तं तं त्यजन्नैव बाधितः ॥२४२॥

---

१. अनिन्दिताः—मथु०, बड़ो० ।

यः साक्षादात्मना तुल्यः प्रियो भ्राता सुहृत्तमः ।
लक्ष्मणः परमोदारस्तं त्यजन्नैव बाधितः ॥२४३॥
एकान्ते यत्र सहजा जानकी वा स्वसन्निधौ ।
तत्रापि यस्य संपर्कस्तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२४४॥
आज्ञावशो निजसुहृत् सखा साहाय्यपण्डितः ।
यो लक्ष्मणः प्रियोऽत्यन्तं तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२४५॥
विनीतो वनवासेऽपि व्रतं द्वादशवार्षिकम् ।
आज्ञानुरोधात् कृतवान् तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२४६॥
सर्वकार्येषु कुशलो धर्मात्मा प्राणसंमितः ।
अनुजश्चैव मित्रं च तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२४७॥
वनेषु पर्णशालादिसर्वकार्यविधानकृत् ।
अनुजश्चैव शिष्यश्च त्यं त्यजन् नैव बाधितः ॥२४८॥
अनुग्रहस्य प्रेम्णश्च य एकः पात्रतां गतः ।
स्थितश्च निकटे नित्यं तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२४९॥
यस्य क्षणवियोगे तु युगं कल्पायते दिनम् ।
पटान्तरेऽप्यमुक्तश्च तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५०॥
येन सार्द्धं विहृतवान् गृहेषु च वनेषु च ।
अनेकविधलीलाभिस्तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५१॥
हे लक्ष्मण सखे भ्रातः प्रियमित्रेतिचाब्रवीत् ।
यं नित्यमात्मदयितं तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५२॥
यस्यानर्घ्यतमोदारगुणसंतुष्टमानसः ।
वनेऽपि सुखितोऽवात्सीत् तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५३॥
यस्य बाहुबलेनासौ हतवान् राक्षसीं चमूम् ।
महाबलां महाघोरां तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५४॥
येनैव निहतो वाणैरिन्द्रजित्समरोद्धतः ।
सर्वदेवौघविजयी तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५५॥
यस्य वीर्यबलेनासौ प्रबलं राक्षसेश्वरम् ।
न किञ्चिद् गणयामास तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५६॥

यस्यानुभावमखिलं लौकिकं वाप्यलौकिकम् ।
स्वयं वेत्ति प्रभुर्नान्यस्तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५७॥
यस्य सौन्दर्यसारेण स्वयमेष वशीकृतः ।
आत्मसौन्दर्यतुल्येन तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५८॥
आबाल्याच्छीलितो यस्य संगः परमसौख्यदः ।
नेत्रसंतृप्तिजननः तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५९॥
अयं चास्य भगो नित्यं महावैराग्यशब्दितः ।
संप्रोक्तो बहुधा तुभ्यं भगवान् येन कीर्तितः ॥२६०॥
इत्थं ते षड्गुणाः प्रोक्ताः रामस्य सुमहात्मनः ।
श्रुत्वैतान् सर्वमाहात्म्यज्ञाता भवति भक्तिमान् ॥२६१॥
माहात्म्यज्ञानमङ्गं हि भक्तेः श्रीरामगोचरम् ।
अतस्ते बहुधा ख्याता माहात्म्यज्ञप्तये गुणाः ॥२६२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे षड्गुणाख्याने वैराग्यव्याख्यानं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

•

अष्टनवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एवं षड्गुणसंपन्ने यौवराज्यं प्रकुर्वति ।
रामे सर्वगुणारामे प्रजानां परमा मुदः ॥ १ ॥
बभूवुः परमैश्वर्यं प्रादुरासीत् प्रपश्यताम् ।
जनानां विस्मयश्चासीद्विलोक्य परमाः श्रियः ॥ १ ॥
वीर्यं च बहु तस्यासीद् यशश्च भुवनेष्वभूत् ।
राज्ञो दशरथस्यैष हृदयानन्दनोऽभवत् ॥ ३ ॥
अथैकदा रामचन्द्रे यौवराज्यासनस्थिते ।
विप्राः कोलाहलं चक्रुर्द्वारि संगत्य तत्क्षणे ॥ ४ ॥

विप्रा ऊचुः

हा हताः स्म प्रभौ रामे यौवराज्यस्थिते वयम् ।
व्याघ्रेण वनचारिण्यो गावोऽस्माकं विनाशिताः ॥ ४ ॥
अहो दशरथो राजा विरक्तो भूमिपालने ।
रामे सर्वां धुरं न्यस्य कमिदानीं वदामहे ॥ ६ ॥
निर्धनानां द्विजानां नो गावो हि परमं धनम् ।
अकस्मात्तत्क्षयं नीतं व्याघ्ररूपेण मृत्युना ॥ ७ ॥
ईदृशा बलिनो वीरा रघुनाथनिदेशगाः ।
न केनापि हतो व्याघ्रः कालरूपी गवां हि नः ॥ ८ ॥
प्रजानां पालने धर्मं जानात्येको रघूद्वहः ।
किमभाग्येन नो जातं हा हतं गोधनं बलात् ॥ ९ ॥
गोपालोऽपि हतस्तेन व्याघ्रेण पिशिताशिना ।
अहोदुर्दैवमस्माकं युवराजे रघूद्वहे ॥१०॥
अहो राम महावीर बलिनां श्रेष्ठ सत्पते ।
निर्धनाः स्म वयं जाता गावो व्याघ्रेण भक्षिताः ॥११॥
अहो - वीर नरश्रेष्ठ श्रीमन् दशरथात्मज ।
त्रैलोक्यदारिद्र्यहरे त्वयि नो दुर्गतिः कथम् ॥१२॥
घटोध्न्यः पृथुदोहास्ता गावो नः कान्तविग्रहाः ।
क्व नु दृश्या गृष्टयस्ताः समश्रृङ्ग्यः सुलोचनाः ॥१३॥
ईदृशी विपदस्माकं धेनवो व्याघ्रभक्षिताः ।
किं कुर्मः क्व व्रजामश्च दैवेनैव हता वयम् ॥१४॥
इत्युक्त्वा रुरुदुः सर्वे ब्राह्मणा जातमन्यवः ।
शुश्राव तद् दशरथो राजा प्रकृतिपालकः ॥१५॥

रामोवाच

क एते करुणाशब्दं कुर्वन्ति द्वारदेशगाः ।
रुदन्तो भर्त्सयन्तश्च शपन्तश्च विशेषतः ॥१६॥
हा हताःस्म इति क्रोशं कुर्वन्तो दैवपीडिताः ।
अहो मयि स्थिते राज्ञि रामे च युवराज्यगे ॥१७॥

प्रजानामीदृशी पीडा कथं भवति भूयसी ।
ततो दूतैः समागत्य वृत्तं तद्विनिवेदितम् ॥१८॥
ब्राह्मणानां हता गावो व्याघ्रेण गहने वने ।
इति भूयो रुदन्तस्ते विलपन्ति विपद्गताः ॥१९॥
अयोध्यावासिनः केचिद् विप्रा दैवेन पीडिताः ।
अस्थानं रोदनं ह्येतत् किंकार्यं धरणीपते ॥२०॥
अथादिशन्नृपो[1] वीरान् व्याघ्रं हन्तुं भयानकम् ।
गच्छन्तु विपिनं वीरा [2]व्याघ्रस्तिष्ठति यत्र सः ॥२१॥
गावो हि भक्षिता येन ब्राह्मणानां पुरौकसाम् ।
एतद्यनुचितं राज्ञः प्रजायाः पीडनं तु यत् ॥२२॥
ततो विनिर्गता वीरा[2] नगरात् खड्गपाणयः ।
कटिप्रवद्धतूणीराः कवचैर्व्यूढविग्रहाः ॥२३॥
नानाशस्त्राण्युपादाय भुशुण्डीपरिघांस्तथा ।
शतघ्नीस्तोमरांश्चैव चापवाणादिकांस्तथा ॥२४॥
सरय्वाः पुलिने तद्धि दुर्दर्शं गहनं वनम् ।
विचित्रश्वापदाकीर्णं शल्लकीकुलदुर्गमम् ॥२५॥
प्लवङ्गमकुलैः कीर्णं [3]तरक्षुगणसेवितम् ।
शिवानिनादभयदं वराहोत्कीर्णमुस्तकम् ॥२६॥
वारणैर्निर्गतमदैः समन्ताद्व्याप्तमन्तरा ।
व्यालोलूकगणाकीर्णं[3] महामहिषभीषणम् ॥२७॥
मांसाशिभिर्बहुविधैः पशुभिर्भूरिनादितम् ।
गिरि[4]गह्वरदुर्दर्शं विविधानोकहव्रजम् ॥२८॥
तमालसालसरलकिंशुकौघसमावृतम् ।
लतावितानसंछन्ननानाभूरुहभीषणम् ॥२९॥
राजतालीवनोद्घोषभयानकसुविस्तृतम् ।
दरीनिकेतद्विगुणद्वीपीकुलनिनादितम्[4] ॥३०॥

---

१. °दिशत्त्रयो—अयो०, रीवाँ । २—२. नास्ति—अयो० । ३–३. नास्ति—अयो० । ४–४. नास्ति—रीवाँ ।

कुञ्जान्तरपरिव्याप्ततिमिरौघभयानकम् ।
शार्दूलनिहतानेकगजमुक्ताफलावृतम् ॥३१॥
रुधिराञ्चितशार्दूल नखराङ्कगणाङ्कितम् ।
जृम्भितास्यैः क्षुधाक्रान्तैः पलाशिभिरुपावृतम् ॥३२॥
श्येनसंदोहसंछन्नगिरिकन्दरमन्दिरम् ।
लोहतुण्डैर्महाकाकैर्व्याप्यमानं समन्ततः ॥३३॥
कृतकञ्चुकनिर्मोकैः कृष्णसर्पैः समावृतम् ।
दावानलज्वलद्वृक्षशुष्ककाननसेवितम् ॥३४॥
खर्जूरविटपिस्राविमदलेपनदुर्मदैः ।
हयारिभिः समाकीर्णं शृङ्गविस्तारभीषणम् ॥३५॥
मार्जारकुलसंकीर्णं मत्तगोमायुसंकुलम् ।
ईदृशं ददृशुर्वीराः सरयूपुलिने वनम् ॥३६॥
पशूनां कदनं चक्रुर्दंष्ट्रिणां शृङ्गिणां तथा ।
आस्फोट्य सकला वीरा निपेतुर्निविडे वने ॥३७॥
अथ शैलदरीकुञ्जान्निर्ययौ सुमहोद्धतः[1] ।
वीरास्फोटकृत क्रोधो व्याघ्रोऽत्यन्तभयानकः ॥३८॥
मूर्ध्ना परिस्फुरत्पुच्छगुच्छभीषणविग्रहः ।
जिह्वाललनभीमास्यस्तडित्पुञ्जनिभाकृतिः ॥३९॥
दावानलचलन्नेत्रः कृतगुञ्जारवोद्भटः ।
महाशनिसुतीक्ष्णाग्रनखभीमप्रकोष्टकः ॥४०॥
गिरिगण्डसमुत्तुङ्गः समुच्छलनपण्डितः ।
विकटैस्तिग्मकिरणैर्नखरैः क्षोदयन् भुवम् ॥४१॥
सुदुर्दर्शदृगन्ताभ्यां मुञ्चज्ज्वालाकणावलीम् ।
अत्युत्कटाङ्गगन्धेन जनानां दृष्टिमन्धयन् ॥४२॥
कुर्वन् गिरितटग्रावस्फोटैः कटकटारवम् ।
प्रकाशयन् दिशः सर्वास्तीक्ष्णदंष्ट्राङ्कुरत्विषा ॥४३॥

---

१. निर्ययुः सुमहोद्धताः—रीवाँ ।

ललाटपट्टसंलग्नभ्रुकुटीविकटाकृतिः ।
क्षुरसंतीक्ष्णमूर्ध्वाग्रं निर्धुन्वन् रोममण्डलम् ॥४४॥
जृम्भितास्यसुदुर्दर्शः क्रूरकर्मातिनिष्ठुरः ।
सेनाकोलाहलक्रुद्धो घूर्णयन् विकटे दृशौ ॥४५॥
भासयन् वपुषा कुञ्जं काञ्चनद्युतिवर्षिणा ।
त्रासयन् सकलान् वीरान् दृष्टिपातैर्भयानकैः ॥४६॥
तमग्नियन्त्रैर्विशिखैश्च तीक्ष्णैः परश्वधैः शक्तिभिर्मुद्गरैश्च ।
जघ्नुः सर्वे वीरवराः समंताद् दूरेस्थिताः कृतशस्त्रास्त्रवर्षाः ॥४७॥
तेषां शस्त्राणि चास्त्राणि यतमानानि भूरिशः ।
निजगाल मुखेनासौ फलानीव क्षुधातुरः ॥४८॥
तद्दृष्ट्वा सुमहच्चित्रमभूद् दाशरथे बले ।
सर्वे च भयसंत्रस्ता बभूवुः सैनिका जनाः ॥४९॥
अथोत्प्लुत्य जवेनासौ पपात बलमध्यतः ।
कोष्ठानि पाटयामास[1] नखैर्निर्भिद्य वेगवान् ॥५०॥
आचक्राम बलात् कांश्चिद् वक्षसा संमचूर्णयत् ।
चरणाभ्यां तथैवान्यानाक्रम्य समताडयत् ॥५१॥
अग्रपादहताः केचिद्व्यसवः समशेरत ।
दंष्ट्राभिर्दारिताः केचित् केचिद्दीर्णोदरा नखैः ॥५२॥
निकृत्य कण्ठदेशेषु केषांचिद्रुधिरं पपौ ।
कांश्चिन्निपोथयामास देहभारेण भीषणः ॥५३॥
केषांचिल्लिलिहे रक्तं पाटयित्वोदरं रुषा ।
केषांचित् खण्डयामास चरणान् मूलदेशतः ॥५४॥
केषांचिद् भुजसंछेदं चकार स्कन्धदेशतः ।
केषांचिदच्छिनद् ग्रीवां केषांचित् कर्णनासिकम् ॥५५॥
निर्ददार बलाद्वक्षः केषांचित् कवचावृतम् ।
यत्र यत्र पपातोच्चैस्ते ते भुवि निपोथिताः ॥५६॥

---

१. पातयामास—अयो०, रीवाँ ।

केषांचिन्नाभिदेशेषु केषांचिदुदरेषु च ।
केषांचिज्जङ्घातलेषु पाटयित्वासृजः पपौ ॥५७॥
इत्थमेष क्षयं निन्ये सर्वं दाशरथं बलम् ।
पतमानानि चास्त्राणि शस्त्राणि च समंततः ॥५८॥
लाङ्गूलेनैव चिक्षेप विदीर्णास्येन जग्लिवान्[1] ।
मुखोत्थश्वासवातेन कानिचित् प्रतिजघ्निवान् ॥४९॥
विद्रुताः सैनिकाः सर्वे व्याघ्रस्य विपुलं बलम् ।
वीक्ष्य मारितशेषास्ते राज्ञोऽन्तिकमुपाययुः ॥६०॥
आचख्युः सकलं वृत्तं व्याघ्रस्य विपुलं बलम् ।
श्रुत्वा सुविस्मितो राजा बभूव किमिदं धिया ॥६१॥
रामचन्द्रस्तदाकर्ण्य निर्गतः सहलक्ष्मणः ।
धनुर्बाणौ समादाय विचिन्त्य हृदि कारणम् ॥६२॥
स गत्वा विपिनं घोरं यत्र गावो विनाशिताः ।
व्याघ्रेण घोररूपेण दुर्दर्शतरवर्ष्मणा ॥६३॥
स वीक्ष्य सहसा व्याघ्रं सटादुःप्रेक्ष्यकन्धरम् ।
पश्यतो लक्ष्मणस्याग्रे शरेणैकेन जघ्निवान् ॥६४॥
स रामवाणसंस्पर्शात् सद्योनिर्धूतकल्मषः ।
वैयाघ्रीं तनुमुत्सृज्य बभौ परमसुन्दरः ॥६५॥
पद्मपत्रविशालाक्षो दिव्यगन्धानुलेपनः ।
दिव्यवस्त्रपरीधानो दिव्यस्रग्भूषणाञ्चितः ॥६६॥
मुहुर्विद्योतयन् देहकान्तिभिः सकला दिशः ।
मुक्ताहाराभिरामेण वक्षसा विपुलौजसा ॥६७॥
विराजमानो हेमाभविग्रहः सुस्मिताननः ।
सुनासः सुकपोलाढ्यः सुग्रीवः सुष्ठुमूर्द्धजः ॥६८॥
सुदर्शनः सुरूपाङ्गस्तरुणः शोभिताकृतिः ।
दिव्यं विमानमारुह्य स्थितो व्योम्नि महेन्द्रवत् ॥६९॥

---

१. जल्पिवान्—अयो० ।

दिव्यानुचरसंवीतो दिव्यस्त्रीगणसेवितः ।
अवरुह्य विमानाग्रात् पादयोर्निपपात ह ॥७०॥
उत्थाय पुनरस्तौषीद् रामं सुन्दरविग्रहम् ।
लक्ष्मणेन युतं वीरं शापनिर्मुक्तिदायकम् ॥७१॥

पुरुष उवाच

नमस्ते राघवेन्द्राय रघूणां प्रवराय च ।
रघुवंशमहेन्द्राय रघुकीर्तिविधायिने ॥७२॥
नमस्तपनवंशाब्धिपूर्णचन्द्रमसे विभो ।
तुभ्यं परमवीराय वीरेन्द्राय च ते नमः ॥७३॥
नमस्त्रैलोक्यकल्याणनिधये पुरुषोत्तम ।
राजेन्द्रमुकुटाग्रस्थहीररुच्यपदाय ते ॥७४॥
नमस्ते यौवराज्येन त्रैलोक्यसुखदायिने ।
हेमसिंहासनस्थाय सुधीभिः सेविताङ्घ्रये ॥७५॥
नमस्त्रैलोक्यदारिद्र्यहृतये कामधेनवे ।
चिन्तारत्नसमानाङ्घ्रि नखदीधितये च ते ॥७६॥
मन्दारप्रसवामोदशालिसुन्दरकीर्तये ।
राजेन्द्रगणसेव्याय श्रीदाशरथये नमः ॥७७॥
दरिद्रजननिस्तारकारणव्रतधारिणे ।
कल्पद्रुमाय साधूनां श्रीरामाय नमोस्तु ते ॥७८॥
सर्वमङ्गलरूपाय सर्वपापहरात्मने ।
सर्वतीर्थैकरूपाय श्रीरामाय नमोनमः ॥७९॥
रामाय रामचन्द्राय रामभद्राय ते नमः ।
राघवेन्द्राय वीराय वीरेन्द्राय च ते नमः ॥८०॥
वामे जनकजा यस्य पुरतो लक्ष्मणः स्थितः ।
तद्वामे हनूमांश्चैव स रामः पातु मां सदा ॥८१॥
इतिस्तुत्वा स गीतेन सर्ववश्यविधायिना ।
तोषयामास राजीवलोचनं रघुनन्दनम् ॥८२॥
कस्त्वमेवं विधोऽसीति पृष्टो रामेण तर्हि सः ।
उवाच मुखनादेन घोषयन् सकला दिशः ॥८३॥

गन्धर्वश्चिरसंशप्तो मुनिना मन्युकारिणा ।
नाम्ना चित्रध्वजोऽस्मीश प्रसिद्धः किन्नरालये ॥८४॥
कदाचिदलकापुर्याः सविधे स्नातुमाययौ ।
स्रोतस्यलकनन्दायाः मत्तवारणसेविते ॥८५॥
मुनिं व्याघ्रमुखं नाम यथानामस्वरूपकम् ।
विलोक्य मम हासश्च संजातोऽनर्थकारणम् ॥८६॥
हसन्तं मां समालोक्य शशाप मुनिपुङ्गवः ।
अहो हससि दुर्बुद्धे मम वीक्ष्य मुखाकृतिम् ॥८७॥
व्याघ्रो भवतु वै नाम भवानपि सुदुर्मतिः ।
ममातिक्रमजातेन पापेनानेन भूयसा ॥८८॥
भक्षय त्वं वने सर्वान् पशून् विगतचेतनः ।
जाते रामावतारे तु मम शापाद्विमोक्ष्यसे ॥८९॥
रामवाणपरिस्पर्शसद्योनिर्धूतकल्मषः ।
गन्तासि स्वपदं भूयो नैवं शीलं पुनः कुरु ॥९०॥
इत्यहं तेन मुनिना शप्तो दारुणशापिना ।
वैयाघ्रीं योनिमापद्य स्थितोऽत्र चिरकालतः ॥९१॥
इदानीं राम निर्मुक्तो जातोऽस्मि त्वदनुग्रहात् ।
तथापि मम चित्तस्य ग्लानिर्नैव निवर्तते ॥९२॥
अहो मया हता गावो मनुष्याश्च विनाशिताः ।
कां गतिं नु गमिष्यामि घोरकर्मकृदीदृशः ॥९३॥
घोरस्य कर्मणो राम निष्कृतिर्नैव विद्यते ।
जन्मान्तरेऽपि तत्पापं भोक्ष्याम्येव न संशयः ॥९४॥
इतिसंरूढहृदयग्लानिरस्मि सतांपते ।
शरीरमेतत् त्यक्ष्यामि प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥९५॥

श्रीराम उवाच

मा ग्लासीर्हृदयेन त्वमधुना किन्नरोत्तम ।
मत्पादकमलस्पर्शात्तीर्णमेनोऽतिदारुणम् ॥९६॥
राक्षसा घोररूपाश्च संततं पिशिताशनाः ।
बहवो मत्पदाम्भोजस्पर्शान्मुक्तिमुपाययुः ॥९७॥

मन्नामजाप्यपरमो मम ध्यानपरायणः ।
वसन् किंपुरुषे वर्षे भजमानोऽनिशं हि माम् ॥९८॥
वर्तस्व मम भक्त्येत्थं कर्मपाशं विनिर्दहन् ।
गन्तासि मम सायुज्यं तच्चित्रध्वज मा शुचः ॥९९॥
इत्यादिश्य स गन्धर्वं नाम्ना चित्रध्वजं तु तम् ।
उवाच लक्ष्मणं वीरो गते किंनरयूथपे ॥१००॥
वैयाघ्रीं योनिमापन्नो गन्धर्वोऽयं निरीक्षितः ।
ब्राह्मणानां वने गावो यदनेन विनाशिताः ॥१०१॥
तदर्थं क उपायोऽस्ति चिन्त्यतां लक्ष्मणाधुना ।
रुदन्ति ब्राह्मणा दुःखात्तेषां दुःखं न नाशितम् ॥१०२॥

लक्ष्मण उवाच

गावः कालवशं याता व्याघ्रेण खलु भक्षिताः ।
तासां स्थाने गोसहस्रं ब्राह्मणेभ्यः प्रदीयताम् ॥१०३॥
ततो विप्रान् समाहूय गोदानाय प्रतिश्रुतम् ।
ब्राह्मणा नोररीचक्रुस्तासामर्थे सुदुःखिताः ॥१०४॥

ब्राह्मणा ऊचुः

गोभिस्त्वया प्रदत्ताभिः किं वयं करवाम भोः ।
यदि शक्तोऽसि ता एव समानय रघूद्वह ॥१०५॥
ततो रामोऽनुजं वीक्ष्य प्रोवाच वचनं स्मयन् ।
एहि लक्ष्मण गच्छावो गवां नयनहेतवे ॥१०६॥
यमस्य नगरीं यत्र प्रेतानामस्ति संस्थितिः ।
ब्राह्मणानां मनो दुःखं नान्यथा खलु नंक्ष्यति ॥१०७॥
ततो रथं समारुह्य लक्ष्मणो यत्र सारथिः ।
ययौ संयमिनीं घोरां यमस्य नगरीं हरिः ॥१०८॥
गत्वा परिसरे तस्या वादयामास राघवः ।
पाञ्चजन्यं निजं शङ्खं सर्वप्रेतविमुक्तिदम् ॥१०९॥
श्रुत्वा शङ्खरवं रम्यं देवो वैवस्वतः पुरात् ।
तूर्णं विनिर्ययौ हर्षात् श्रीरामदर्शनोत्सुकः ॥११०॥

दूरादेव रथोपस्थे संस्थितं रघुपुङ्गवम् ।
समचष्ट परं भाग्यं मन्यमानो रवेः सुतः ॥१११॥
यमः सविधमभ्येत्य रामस्य सुमहात्मनः ।
ववन्दे चरणाम्भोजं लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥११२॥

यम उवाच

अद्य मे सफलं जन्म श्रीराम तवदर्शनात् ।
अहो अनुगृहीतोऽहं भवताद्य दयानिधे ॥११३॥
अद्य मे विपुलं भाग्यं प्रेतमण्डलवासिनः ।
सकुटुम्बः कृतार्थोऽहं भवतोऽनुग्रहात् प्रभो ॥११४॥
नमः कमलकिञ्जल्कपीतकौशेयवाससे ।
साक्षाल्लक्ष्मीकलत्राय रामाय करुणाब्धये ॥११५॥
उभाभ्यां विश्ववन्द्याभ्यां वीराभ्यां भुवनत्रयम् ।
भवद्भ्यां संप्रमुदितं गुणान् गायति नित्यशः ॥११६॥
जानेऽहं पुण्डरीकाक्ष युवां वै पुरुषोत्तमौ ।
अवतीर्णौ रवेर्वंशे श्रीमन्तौ वै परात्परौ ॥११७॥
अयं स शेषो निगमत्रयात्मा विश्वंभरा येन धृता निजांशतः ।
सहस्रदीव्यत्फणमण्डलस्फुरन् महामणिद्योतविभासिताकृतिः ॥११८॥
त्वं रामचन्द्रः कमलाकलत्रः साकेतवासी नवमेघवर्णः ।
पीताम्बरोल्लासिमनोज्ञविग्रहो धनुर्धरः कामपरार्द्धसुन्दरः ॥११९॥
आजन्मरमणीयानि चरित्राणि तवाच्युत ।
गायन्ति त्रिदिवे देवा विमानाग्रेषु संस्थिताः ॥१२०॥
रोमाञ्चितवपुष्मन्तः प्रमोदपरिपूरिताः ।
भक्तिप्रकर्षसंपन्ना जयरामेतिभाषिणः ॥१२१॥
भूभारहरणारम्भः कृत एव त्वया प्रभो ।
ताडका नाशिता यस्मात् सुबाहुश्च विनाशितः ॥१२२॥
एवं हरिष्यति भवान् रावणादीनपि प्रभो ।
इति विज्ञाय देवानां वर्द्धन्ते विपुला मुदः ॥१२३॥
इति स्तुतिमुदीर्यासावानिनाय निकेतनम् ।
उभौ तौ वीरशार्दूलौ श्रीमन्तौ रामलक्ष्मणौ ॥१२४॥

तयोर्दर्शनमात्रेण तत्रत्या प्रेतमण्डली ।
कृतार्थीभूय सगमात् स्वर्गं पुण्यवतां सुखम् ॥१२५॥
ततस्तौ पूजयामास पाद्यार्घ्यादिसपर्यया ।
कृतार्थं मन्यमानः स्वं वैवस्वत उदारधीः ॥१२६॥
अवसाने सपर्याया रामः स्मितमुखाम्बुजः ।
वैवस्वतमुवाचेदं मेघगम्भीरया गिरा ॥१२७॥

श्रीराम उवाच

ब्राह्मणानां शुभा गावो व्याघ्रेण खलु भक्षिताः ।
प्रत्यानेतुमहं ता वै संप्राप्तोऽस्मि तवालये ॥१२८॥

यम उवाच

अयोध्यावासिनो ये वै नरा गावः खगा मृगाः ।
न तेषामिह संप्राप्तिर्ममदूतैर्विधीयते ॥१२९॥
स्वर्गं गच्छन्ति भूतानि साकेतपुरवासतः ।
काकाःश्वापदचाण्डाला अधमाः पापयोनयः ॥१३०॥
सरयूवातसंस्पृष्टा मुच्यन्ते सर्वपातकैः ।
ब्रह्महत्यादिभिश्चापि किमुतान्यैर्जगत्पते ॥१३१॥
न ते चरणपाथोजपरागैः समलङ्कृते ।
देशे चरन्ति मद्दूता आनेतुं पापिनोऽपि हि ॥१३२॥
अयोध्या परितो राम योजनानां चतुष्टयम् ।
सुदर्शनं भवच्चक्रं भ्रमतीव हि दृश्यते ॥१३३॥
तस्यां नगर्यां न विशन्ति घोरा मदीयदूता न कलेश्च दोषाः ।
नान्ये तथा भूतगणा भयानका विनायका यक्षवैतालकाद्याः ॥१३४॥
अयोध्यायाः परितः पुण्यभूमिः प्रमोदनामा वनराजोऽस्ति यत्र ।
तद्देवता दुःसहवेत्रहस्ता सत्वान् प्रवेष्टुं न ददाति घोरान् ॥१३५॥
प्रमोदवनवातेन दूरादेवापसारिताः ।
न प्रवेशं लभन्ते वै विघ्नानां चापि कोटयः ॥१३६॥
भूतप्रेतपिशाचाद्या जृम्भका राक्षसादयः ।
कूष्माण्डवेतालगणा ये चान्ये त्रासका गणाः ॥१३७॥

डाकिनीपूतनाद्याश्च नोपसर्पन्ति तत्र वै ।
यत्रासाते धनुष्पाणी भवन्तौ रामलक्ष्मणौ ॥१३८॥
रामेति ध्वनिमात्रेण लक्ष्मणेति च नामतः ।
मम दूता कृतास्तत्र पलायनपरायणाः ॥१३९॥
सरयूपयसा पूता अयोध्यारजसाप्लुताः ।
पापिनोऽपि नराः स्वर्गं प्रयान्तीति न संशयः ॥१४०॥
निशम्य भगवान् राम इत्थं तद्यमभाषितम् ।
चेतसा चिन्तयामास क्व नु गावो गता इति ॥१४१॥
स गोलोके विनिश्चिन्त्य तासां खलु गवां स्थितिम् ।
लक्ष्मणं प्रेषयामास स्वयमास यमालये ॥१४२॥
रामेणाज्ञप्त एवासौ लक्ष्मणः कृतलक्षणः ।
गोलोकं प्रययौ तूर्णं सुरभीकुलमण्डितम् ॥१४३॥
घटोध्नीभिः सौरभेयीवराभिर्गोभिर्व्याप्तं सिच्यमानं समन्तात् ।
वत्सप्रीतिप्रस्तुतैः सौरभाढ्यैः पीयूषवर्णैः शीतलैस्तत्पयोभिः॥१४४॥
आनन्दौघसमुल्लासिगोपगोपीजनाकुलम् ।
गवां हिंभारवैर्जुष्टं पूर्यमाणं च तर्णकैः ॥१४५॥
इतस्ततः कूर्दमानपीतवत्सकदम्बकम् ।
गोष्ठेषु सुविसर्पद्भिः प्रमत्तवृषभैर्वृतम् ॥१४६॥
ककुद्मतां बलीवर्दवराणां प्रकरैः सदा ।
पात्यमानतटप्रान्तवनभूमिविराजितम् ॥१४७॥
कलिन्दकन्यकावीचिसंगिमारुतसेवितम् ।
गोवर्धनगिरिप्रोद्यन्महाशृङ्गमनोहरम् ॥१४८॥
तत्र वृन्दावनं नाम समपश्यद्वनं च सः ।
राधावनं कृष्णवनं बलभद्रवनं तथा ॥१४९॥
व्यलोकत[1] व्रजभुवं मधुरां चात्र मध्यगाम् ।
वृन्दावनवृहद्वनप्रमुखैर्विपिनैर्वृतम् ॥१५०॥

---

१. व्यलोकयत्—अयो०, रीवाँ ।

हेमरत्नमयीं दिव्यां कुञ्जपुञ्जमनोरमाम् ।
श्रीमन्नन्दव्रजेन्द्रेण पाल्यमानां समन्ततः ॥१५१॥
श्रीयशोदानन्दपत्नीयशोगानपरायणैः ।
गोपालिकागणैर्जुष्टां पुण्यवातनिषेविताम् ॥१५२॥
दधिमन्थानघोषेण समन्ताच्च निनादिताम् ।
रोहिणीसुतसानन्दक्रीडाभाजनतां गताम् ॥१५३॥
तत्रापश्यदसौ रामं नीलमेघमनोहरम् ।
बलभद्रेण सहितं गोपालं सखिभिर्वृतम् ॥१५४॥
पालयन्तं नन्दधेनूर्वनमालामनोहरम् ।
कृष्णं कमलपत्राक्षं राधाप्रेमविघूर्णितम् ॥१५५॥
अनङ्गवाणव्यथितं गोपीप्रेमैकभाजनम् ।
गोपालिकासहस्रस्य दृक्कटाक्षैर्विराजितम् ॥१५६॥
वृन्दावनपरिसरे चारयन्तं गवां कुलम् ।
वेणुं क्वणन्तं खेलन्तं किशोरं केलिकोविदम् ॥१५७॥
तं दृष्ट्वा लक्ष्मणोऽत्यर्थं निजे हृदि विसिस्मये ।
अहो रामस्य माधुर्यं साक्षादाकलितं मया ॥१५८॥
अहो लोकस्य महिमा अहो अत्र सतां नृणाम् ।
सौभाग्यं च सुखं चैव प्रेम चातिशयोद्धुरम् ॥१५९॥
अहो अमुष्य[1] पुरुषोत्तमस्य रामस्यांशो यर्हि चापीह लोके ।
पश्यामि यस्यात्र कटाक्षपातैरुन्मत्तवद्भाति मनो वधूनाम् ॥१६०॥
अहो निसर्गो मधुरिम्ण एष यद् दृष्टमात्रो मदयन्नन्तरं मे ।
परार्द्धकन्दर्पविजैत्रमस्य माधुर्यसारं किमहं वर्णयामि ॥१६१॥
अहो अमीषां किमु भाग्यसिन्धोः समुद्गतः शारदपूर्णचन्द्रः ।
रामस्यासौ संप्रविभाति नित्यं किशोरमूर्तिर्मधुरापाङ्गवीक्ष्यः॥१६२॥

इति सचकितचेता वर्णयन् कीर्तिपुञ्जं
स्थगित इव बभूव प्रेमपीयूषपूर्णः ।

---

१. अमुष्मै—बड़ो० ।

अमुमलपत रामो दिव्यगोपालवेषः
किमपि ननु विधाय स्वागतादीन् विविक्ते ॥१६३॥
अपि ननु कुशली नस्तात आश्चर्यवृत्तो
दशरथ नृपमौलिः सौष्ठवोदार्यसिन्धुः ।
अपि च खलु जनन्या नाम कोशल्यया मे
समधिगतपुमर्थाः किन्नुलब्धाः श्रियस्ताः ॥१६४॥
सहि ननु वसुदेवो यादवानां वरेण्यः
किमपि जयति पत्नी तस्य सा देवकीर्ति ।
असुरबलसमूहैः पीड्यमानां विलोक्य
क्षितिमह मनयोर्वै द्वापरान्ते भवामि ॥१६५॥
कृतभरमधुनापि प्रोद्धतै रावणाद्यै-
र्जगदिदमवलोक्य ह्येतयोरेव वंशे ।
कृतमतिरवतीर्णो रामनामाभिराम-
श्चतसृभिरपि युक्तो मूर्तिभिः स्वाभिरुच्चैः ॥१६६॥
इत्यालपितमाकर्ण्य लक्ष्मणो भ्रातुर्ऊर्जितम् ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो रूपमाधुर्यमोहितः ॥१६७॥

लक्ष्मण उवाच

कुशली रघुराजोऽसौ पिता दशरथस्तव ।
आप्तकामा च कौशल्या त्रैलोक्यश्रीभिरालये ॥१६८॥
त्वमेवाखिललीलाभिः क्रीडसे राम सुन्दर ।
अशेषपुरुषार्थानां परां सीमानमुद्वहन् ॥१६९॥
न ते व्यक्तिं विदन्त्यन्ये ये देवासुरमानुषाः ।
त्वमेव स्वात्मनात्मानं रमयन् राम खेलसि ॥१७०॥
भक्तानां करुणाहेतोर्दर्शयस्यात्मविग्रहम् ।
चिदानन्दमयं साक्षाद् ब्रह्मणोऽप्याश्रयं तु यत् ॥१७१॥
मोहयस्यात्मनो मायां वितत्य जगदीशितुः ।
यया मोहितचित्तानां दुर्लभा व्यक्तिरीदृशी ॥१७२॥
तव लीला रसानन्दमयी सर्वमनोहरा ।
वसुदेवालये वापि श्रीमद्दशरथालये ॥१७३॥

नन्दालये वा सुखितालये वा यशोदया वापि माङ्गल्यया वा ।
विराजसे लाल्यमानो नितान्तमजस्रकेलीरसमोदमग्नः ॥१७४॥

श्रूयतां मम विज्ञप्तिरतः परमरिन्दम ।
प्रेषितोऽहं मम भ्रात्रा रामेण पुरुषर्षभ ॥१७५॥
त्वं चात्र तादृशो देव रामस्यांशो विलोकितः ।
युवां वै युवयोस्तत्त्वं जानीथो नापरो जनः ॥१७६॥
स्वकार्यमेव भृत्येन साधनीयं विशेषतः ।
प्रभुकृत्यं प्रभुर्वेत्तु प्रभूणां सेवकोऽस्म्यहम् ॥१७७॥
स्वकार्यं साधयिष्यामि यदर्थं प्रेषितोऽस्म्यहम् ।
कश्चिद् गन्धर्ववर्यो वै मुनिशापविमोहितः ॥१७८॥
वैयाघ्रीं योनिमापद्य रामराज्ये द्विजन्मनाम् ।
गाश्च वै भक्षयामास रुरुदुस्ते ततो द्विजाः ॥१७९॥
रामस्य द्वारमागत्य ततश्चुक्रोध राघवः ।
निहतः स तु शार्दूलो महाबलपराक्रमः ॥१८०॥
रामेण वाणेनैकेन बहवो येन नाशिताः ।
राज्ञा संप्रेषिता वीराः कुर्वन्तोऽपि पराक्रमम् ॥१८१॥
मोचितः स च वैयाघ्र्या[1] योनेर्गन्धर्वपुङ्गवः ।
पश्यतो मे दिवं यातो दिव्यं यानमधिष्ठितः ॥१८२॥
ततः सहस्रशो गावो द्विजन्मभ्यः प्रतिश्रुताः ।
तासामेव गवामर्थे रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥१८३॥
ब्राह्मणानां गवामर्थे याचितो विनयानतः ।
यमः प्रोवाच भगवन्नात्र ब्राह्मणधेनवः ॥१८४॥
अयोध्यायां मृताञ्जन्तून् मम दूताः स्पृशन्ति न ।
क्षणं विचिन्त्य रामेण प्रेषितोऽहमिहागतः ॥१८५॥
त्वं प्रयच्छ शुभा धेनूर्ब्राह्मणानामिहागताः ।
श्रुत्वेत्थं भगवान् कृष्णो वचनं लक्ष्मणोदितम् ॥१८६॥

---

१. वै व्याघ्र°—रीवाँ ।

प्रत्युवाच रदोद्योतैर्द्योतयन् हरितो वने ।

श्रीकृष्ण उवाच

सत्यमत्रागता गावो नन्दराजस्य वै व्रजे ॥१८७॥
रामाज्ञातः पुनर्नेया न त्वितः प्रतिगच्छति ।
नरो वा किन्नरो वापि पशुर्वा विहगोऽपि वा ॥१८८॥
प्रबला रामचन्द्राज्ञा नयेमास्तेन लक्ष्मण ।
ततः सुसत्कृतस्तेन लक्ष्मणो नन्दसूनुना ॥१८९॥
विप्राणां गाः पुरस्कृत्य पुनरागाद् यमालयम् ।
यत्र प्रतीक्षमाणेन रामेण स्थीयते स्वयम् ॥१९०॥
मार्गे सुसंगतास्तस्य देवास्त्रिदिववासिनः ।
आनर्चुः पुष्पवर्षेण पाद्यार्घ्याचमनादिभिः ॥१९१॥
गायन्तो विपुलां कीर्तिं जय रामेति चोज्जगुः ।
अकर्तुमन्यथाकर्तुं क्षमते भगवान् प्रभुः ॥१९२॥
व्याघ्रेण भक्षिता गावो नीयन्ते भूतलं पुनः ।
रामाज्ञा प्रबला तस्मात् त्रैलोक्येऽपि न संशयः ॥९१३॥
इत्थं निगदतां स्वर्गे देवानां कीर्तिगायिनाम् ।
शृण्वन् सुविपुलं घोषं लक्ष्मणः पुनराययौ ॥१९४॥
यमस्य नगरी यत्र रामचन्द्रः प्रतिष्ठितः ।
आगतं लक्ष्मणं वीक्ष्य रामः प्रीतमना अभूत् ॥१९५॥
ततस्तौ यममामन्त्र्य पूजितौ तेन सत्कृतौ ।
दिव्यं रथं समारुह्य पुरस्कृत्य गवांकुलम् ॥१९६॥
संस्तुतौ जयशब्देन देवैराकाशसंस्थितैः ।
साकेतनगरीं रम्यां तत्क्षणे समलङ्कृताम् ॥१९७॥
कुतूहलसुसंपन्नैराधावद्भिरितस्ततः ।
नरनारीगणैः कीर्णां चित्रध्वजविराजिताम् ॥१९८॥
नादितां ब्रह्मघोषेण दिव्यैर्धूपैः सुधूपिताम् ।
आनन्दभरसंपन्नां सिच्यमानामितस्ततः ॥१९९॥

सुगन्धितोयसंदोहैर्वैकुण्ठादपि शोभिताम्[1] ।
भूषिताट्टापणगृहां समलङ्कृतगोपुराम् ॥२००॥
नादितां कीर्तिघोषेण सूतमागधवन्दिभिः ।
प्रसन्नहृदयैर्लोकैराकीर्णां भूरिमङ्गलाम् ॥२०१॥
गजदानद्रवोद्रेक[2]सिक्तराजपथाङ्गणाम् ।
नारीगणसमारब्धमङ्गलोद्गीतमञ्जुलाम् ॥२०२॥
समंताज्जयघोषेण पूर्यमाण[3]दिगन्तराम्[4] ।
नवीनोत्साहसंपन्नां साश्चर्यजनकाहलाम् ॥२०३॥
एवंविधां विविशतुर्वीरेन्द्रौ रामलक्ष्मणौ ।
ततो दशरथः प्रीतः पुत्रयोर्वीरवर्ययोः ॥२०४॥
पराक्रमेण महता त्रैलोक्याश्चर्यहेतुना ।
साश्चर्यं तौ समालिङ्ग्य पुत्रस्नेहपरिप्लुतः ॥२०५॥
आनन्दनिर्भरो भूत्वा तस्थौ स्तिमितलोचनः ।
निनायान्तःपुरे तौ च भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥२०६॥
मातरस्तौ समालिङ्ग्य कौशल्याद्याः समुत्सुकाः ।
अवापुः परमां प्रीतिं विस्मयं च विशेषतः ॥२०७॥
मृता गावः समानीता इतिवृत्तं परस्परम् ।
कथयन्त्योऽवरोधस्थाः स्त्रियः साश्चर्यमानसाः ॥२०८॥
जगदुस्तत्र रामस्य कीर्तिमेताममानुषीम् ।
अथ रामं निजं पुत्रं कौशल्या विश्वमङ्गलम् ॥२०९॥
नीराजयामास मुदा स्नेहव्याप्तमनास्तदा ।
मणिमाणिक्यरत्नानि मुक्ताहेमशतानि च ॥२१०॥
परमानन्दसंपन्ना पुत्रयोर्निरमञ्छयत् ।
ततो रामः समाहूय ब्राह्मणान् दुःखपीडितान् ॥२११॥
ददौ तेभ्यो निजानीता धेनूर्व्याघ्रेण भक्षिताः ।
अबाधिता अक्षताश्च स्वप्नादिव समुत्थिताः ॥२१२॥

---

१. वैकुंठात्परामिव—बड़ो० । २. °द्रवझरी°—अयो०, मथु० रीवाँ ।
३. °माणा—रीवाँ, बड़ो० । ४. दिवंगतां—रीवाँ, दिगंबरां—अयो०, बड़ो० ।

रत्नौघैः समलङ्कृत्य दिव्यभूषाम्बरादिभिः
स्रग्गन्धपटवासाद्यैः परमानन्दनिर्वृताः ॥२१३॥
दृष्ट्वा द्विजवरा धेनूर्मुमुदुः परया मुदा ।
तुष्टुवुश्चैव वीरेन्द्रं रामचन्द्रं गुणाकरम् ॥२१४॥
परमीश्वरमेवामुं विनिश्चित्य विशेषतः ।

ब्राह्मणा ऊचुः

अहो अहो राघववर्य तावकं सुवीर्यमेतद्वचनाद्यगोचरम् ।
किं वर्णयामो वचसा जना वयं न यत्र वेदः किमपि प्रवर्तते ॥२१५॥
यशश्च ते राघवराजनन्दन स्वर्गापगापुण्यजलौघशीतलम् ।
नित्यं समुद्गाय जनास्त्रिलोकगाः स्वचित्ततापं शमयन्ति संप्रति ॥२१६॥
मान्धातृमुख्यास्तव वंशसंभवा राजान आजन्मसुपुण्यकीर्तयः ।
न त्वादृशः कोऽपि बभूव भूतले सुपुण्यनामा गदतामघापहः ॥२१७॥
कल्याणनामा जगतां मनोहरो माधुर्यसंदोहविभाविताकृतिः ।
मन्दारकल्पद्रुमपारिजातवत्सुगन्धकीर्तिर्भुवने चिरञ्जय ॥२१८॥
जयाप्रमेयद्युतिधोरणीनिधे पुमर्थसाराखिलसद्गुणाश्रय ।
प्रमोदसंदोहदसुन्दराकृते श्रीराम राजीवदलायतेक्षण ॥२१९॥
त्वयि प्रसन्ने नरलोकभूषण स्फुटं जनानां न रुजो न च क्लमाः ।
पीयूषमाप्याययसि स्वकीर्तिभिस्त्रैलोक्यसंस्थाननिवासिनो जनान् ॥२२०॥
इहावतीर्णोऽसि परः स पूरुषः श्रीरामचन्द्रोऽनन्तगुणाकरः स्वयम् ।
रक्षोगणैर्भूरि निपीडितां भुवं पदाम्बुजाङ्कैः सततं प्रमोदयन् ॥२२१॥
इतिसंस्तुवतो विप्रान् लब्धमानान् विशेषतः ।
नत्वा प्रस्थापयामास बहुमानपुरःसरम् ॥२२२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे द्विजगवानयनं नाम अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

●

नवनवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

दृष्ट्वा दशरथो राजा वीर्यं त्रिभुवनोत्तरम् ।
यशश्च रामचन्द्रस्य रहसीदमचिन्तयत् ॥ १ ॥

राजोवाच

अहो अयं देववरो मदालये समाविरासीद् द्विजदेवरक्षकः ।
आजन्मरम्याणि सुखावहानि च स्वयं चरित्राणि करोति यत् प्रभुः ॥ २ ॥
धनुर्धरः कामपरार्द्धसुन्दरः सरोजपाणिः प्रभुरेष वीक्षितः ।
रामस्तदा[1]तेन विनिश्चितः पुरा तथाह्यसौ सद्गुण[2]वानपि स्फुटः ॥ ३ ॥
अमुष्य ये पादसरोजयोस्तलं श्रयन्ति लोकाभयदानदक्षिणम् ।
न ते प्रपश्यन्ति कदापि दुर्भगं[3] विरञ्चिना भालतलेऽपि निर्मितम् ॥ ४ ॥
समर्थता सर्वगुणाढ्यतापि च त्रिलोकलोकोत्तरता च दृश्यते ।
दयालुता भक्तजनेषु च स्फुटा यदेष रूपं परमं व्यभासयत् ॥ ५ ॥
अमुष्य शश्वज्जनताशरण्ययोः पदाब्जयोर्ये शरणं व्रजन्ति न ।
त एव मूढाः स्वजनुर्वृथा दधुः सुधां समासाद्य विषं नु भुञ्जते ॥ ६ ॥
अयं किलात्मा ज्वर[4]मेनमुल्वणं भवाभिधं हन्तुमुदित्वरो भृशम् ।
य एनमेवं न विदन्ति दुर्भगास्त एव लोके ननु दैववञ्चिताः ॥ ७ ॥
अयं पुराभूदधुना च दृश्यते भविष्यतीशः पुनरेव विस्फुटम् ।
युगे युगे स्वां प्रकृतिं समाश्रितः स्वरूपमेष प्रकटीकरोति हि ॥ ८ ॥
विज्ञानमेतस्य हरत्यघं तमो मायाभिधं येन निबध्यते जनः ।
ब्रह्मेति चात्मेति च कीर्तितो गिरा स एष पूर्णः पुरुषः सनातनः ॥ ९ ॥
गुणैः स्वलिङ्गैरयमुत्प्रकाशते नचैनमज्ञाः कलयन्ति दुर्भगाः ।
निजात्मरूपेण लसन्तमीश्वरं कृपासमुद्रं क्षणतुष्टमद्भुतम् ॥१०॥

---

१. रामचन्द्रः—अयो०, मथु०, बडो० । २. तद्गुण°—मथु०, बडो० ।
३. दुर्भगां—अयो०, रीवाँ । ४. परमेन°—रीवाँ ।

अहो अमुष्यैव निजेच्छया जनो भवान्तरे संसरतीति निश्चयः ।
स्वभोगलीलाकरणे स्फुरत्कृतेः समुद्धृतोऽनेन च यः स मुच्यते ॥११॥
अचिन्त्यशक्तिर्भगवान् यदीश्वरः कथं स आत्मीयतया निबध्यते ।
तथापि भक्तैर्मनसैकगोचरो विधीयते त्यक्तभवाखिलैषणैः ॥१२॥
सुतः पतिर्बन्धुरथ प्रभुः सुहृत् सखेति नानाधिषणैः समाश्रितः ।
अयं परब्रह्मतया विनिश्चितः प्रभूतभूयोगुणरत्नवारिधिः ॥१३॥
विचित्रवीर्यस्य विचित्रकीर्तिता निर्धेर्विचित्राखिलसद्गुणाम्बुधेः ।
अमुष्य साक्षाद्भगवत्तयानिशं विराजमानस्य न किं किमद्भुतम् ॥१४॥
महोग्रतेजा महनीयसद्गुणो महामहैश्वर्यविभाविताकृतिः ।
अक्लिष्टकर्मा भगवान् कृपैकभूरभूतपूर्वर्द्धिनिधिर्विभात्यसौ ॥१५॥
अनन्तकीर्तिर्भगवाननन्तभूरनन्तबाह्वङ्घ्रिमुखोरुनासिकः ।
अनन्तकर्मा स्वगुणैरनन्तकृदनन्तनामा सततं जयत्यसौ ॥१६॥
कल्याणनामाकृतिरेष राघवः स्वभावतः सर्वजगन्मनोहरः ।
पवित्रकीर्तिर्विततागमो गुणैस्तथाप्यसौ वाङ्मनसाद्यगोचरः ॥१७॥
अमुष्य कर्माणि गुणांश्च वेदितुं तथैव संख्यातुमशक्तिरस्म्यहम् ।
तथापि किंचिद्धिषणा समुत्सुका समस्तहृत्कर्णरसायनत्वतः ॥१८॥
नितान्तमेनं समुपासते बुधाः परार्द्धनामाकृतिवीर्यवत्तया ।
त एव सिद्ध्यन्ति यथा सुरद्रुमाः स्वयं परेषां च समाश्रयोचिताः ॥१९॥
केचिन्निजात्मार्पणभक्तिभागिनो भवन्ति सिद्धाखिलकर्मसंविदः ।
त एव लीलारसमग्नमानसा भवन्ति भूयस्तमसौख्यभाजनाः ॥२०॥
परे स्वरूपात्मतया विभावितुं विभुं परब्रह्मतया गुणातिगम् ।
प्रपद्य नित्यं निजलाभतृप्तये महामहैश्वर्यममुं ममात्मजम् ॥२१॥
प्रायो न वेदा अपि शक्तिधारिणः प्रभोरमुष्य प्रभुतानिरूपणे ।
अतः समुच्चारितनेतिनेतिवागशक्तयोऽमी विरमन्ति[1] मूर्द्धनि ॥२२॥
असौ त्रिवेदीशिरसानिरूपितो महेशिता पूर्णगुणः परः पुमान् ।
गुणान् वितत्यापिच संस्थितो न तै[2]र्गुणैरसङ्गात्मतया प्रसज्जते[3] ॥२३॥

---

१. °शक्तयः श्री वीरगति—रीवाँ । °गीर्वित्माति—अयो० । "अमीवादाः, किंभूताः सम्यक् उच्चारिता नेतिनेतीति वाक् तया अशक्तिः असामर्थ्यं येषांते" टि०—मथु० । २. स तैः—रीवाँ ३. न सज्जते—रीवाँ ।

कुतूहलाविष्टतया जगज्जनाः भवन्ति वीर्यैश्चकिता इव प्रभोः ।
न तु स्वरूपं कलयन्ति तत्त्वतो मुहुस्त्रिवेदीशिरसा निरूपितम् ॥२४॥
तथाप्यसावज्ञजनोद्धृतिक्षमः स्वरूपसंसर्गगुणेन भूयसा ।
अयोमणिस्पर्शवशात् सुवर्णतां दधाति नो वेद यशो न निन्दनम् ॥२५॥

इति रहसि नरेन्द्रश्चिन्तयन् युक्तिपूर्वै-
रनुभवसमुपेतैस्तत्त्ववद्भिर्वचोभिः ।
किमपि मनसि तूष्णीमास यावत् स ताव-
न्मुनिजनसुदुरापां योगनिद्रामवाप ॥२६॥

यथा सुषुप्तौ किल सत्त्व[1]वृत्तिः साकं मनः क्वापि विलीयते भृशम् ।
तथा विलिल्येऽस्य मनो महत्यदःसमानरूपां प्रकृतिं समाश्रितः ॥२७॥

अथासौ भिन्नरूपेण ददर्श प्रकृतिं पराम् ।
साधारणीभूतगुणां सर्वतत्त्वां गुणेश्वरीम् ॥२८॥
यथान्तरिक्षे पवनः प्रवाति च न वाति च ।
समुद्भूतामनुद्भूतो तथा प्रकृतिमात्मनि ॥२९॥
प्रकृतिं समतीत्याथ स्वगुणैरेव संगतः ।
तस्थौ पुरुषरूपेण साक्षिमात्रेण संस्थितः ॥३०॥
अथ ब्रह्मणि संलीनः शुद्धेऽपहतपाप्मनि ।
अशोके विजिघत्सादिशून्ये पूर्णे परे पदे ॥३१॥

तदा क्षणं के गतोऽसौ व्यतिष्ठत्ततस्तस्यांते जजानाहमस्मि[2] ।
मुक्ताहन्तावृत्तिरस्मीति जज्ञौ त्यक्त्वास्मितां च स्वरूपावशेषः[3] ॥३२॥
महान्तमानन्दमवाप तत्पदं स्वरूपमेकं गुणशक्तिवर्जितम् ।
विकल्पहीनं जितकालसंगमं सुनिष्कलं निश्चलमात्ममात्रम् ॥३३॥
अपेतवर्णाश्रमसंविभागं गतापगाभेदमिवाम्बुराशिम् ।
अपेतभोगं निजमानन्दमात्रं परं पदं यद्धि वेदा वदन्ति ॥३४॥
संलीय तस्मिन् परमे पदेऽसौ तत्रस्थमोङ्कारमये विशुद्धे[4] ।
धाम्नि स्थितं पुरुषं संव्यचष्ट यदक्षरेति प्रवदन्ति धीराः ॥३५॥

---

१. सत्य°—अयो० । २ "अहंकारयुक्तं स्वस्वरूपं ज्ञातवान्" टि०—मथु० ।
३. "मुक्ता अहंकारवृत्तिर्येन सः, अस्मीति अहंतायुक्तमात्मानं ज्ञातवान्, अस्मितां त्यक्त्वा स्वस्वरूपेण तस्थौ" टि०—मथु०, । ४. °ऽतिशुद्धे—अयो० ।

अथाक्षरे शुद्धमनाद्यनन्तमूर्तिं चिदानन्दघनस्वरूपम् ।
व्यचष्ट रामं नवमेघनीलं तडित्त्विषा सीतया संविभातम् ॥३६॥

यथास्वपुत्रभावेन पश्यति प्रत्यहं नृपः ।
तथात्र स्वामिभावेन ददर्श नृपसत्तमः ॥३७॥

संदर्शनानन्दमिहानुभूय प्रभोर्निवृत्तात्मजबुद्धिवृत्तिः ।
अथोदतिष्ठत् सहसा ततो यथा विधूय निद्रां पुरुषः सुषुप्तिगः ॥३८॥

अहो अहं चिदानन्दमये पूर्णे परे पदे ।
निमग्नं सहसा विश्वं विनिर्धूय शुचां पदम् ॥३९॥

अहो आनन्दमहिमा यत्स्वरूपैकगोचरः ।
तत्रापि परमानन्दं राममद्राक्षमद्भुतम् ॥४०॥

यदहं[1] चिन्तयामास स्वरूपं जानकीपतेः ।
तत्तथैवेति निर्णीतं विलोक्याक्षरमध्यगम् ॥४१॥

अधुना रामचन्द्रोऽसौ परब्रह्मैव निश्चितः ।
तदेनमीश्वरं साक्षाद् व्रजामि शरणं विभुम् ॥४२॥

निश्चिनोति स्वमनसा राजा दशरथः स्वयम् ।
एकान्तसंस्थितौ प्रागाच्छरणं रामलक्ष्मणौ ॥४३॥

राजोवाच

वशिष्ठो भगवान् योगी रघूणां नः परो गुरुः ।
यदब्रूत परं तत्त्वं युवयो रामलक्ष्मणौ ॥४४॥

तत्तथैवेति निर्णीतं परं धाम युवामिति ॥४५॥

श्रीरामरामनिखिलेशगुणाभिराम रामारमारमण रम्यतनो रसेन्द्र[2] ।
भोगीन्द्रमानसविलासक राजहंस ज्ञातोऽसि तत्त्वत इति स्फुटमानतोऽस्मि ।४६।

संकर्षणामितगुणाकरयोगिवेद्य श्रीलक्ष्मण प्रकृतिसुन्दर दिव्यरूप ।
जाने युवामनुभवेन यदस्य साक्षान्नित्यं प्रधानपुरुषेश्वरतां दधानौ ॥४७॥

प्रधानं पुरुषश्चेति विश्वकारणमुच्यते ।
तयोश्च कारणत्वेन युवां स्थः परमेश्वरौ ॥४८॥

---

१. यदहो—बड़ो० । २. रसीन्द्र—मथु०, बड़ो० ।

यद्भोग्यं तत्प्रधानं हि भोक्ता पुरुष ईदृशः ।
तयोरपीश्वरः साक्षाद् भवानेव न संशयः ॥४९॥
अवस्थाभेदतो यद्वदेको नानेव दृश्यते ।
तद्वद् भवान् कर्तृकर्मकरणादिस्वरूपभाक् ॥५०॥
त्वय्येतद् दृश्यते विश्वं त्वय्येव क्रियंते विभो ।
त्वया व्याप्रियते भूयस्त्वत्त एव विभज्यते[1] ॥५१॥
त्वमेवास्य निमित्तं च तुभ्यं लीलारसात्मने ।
स्वरूपतोऽस्य संक्लृप्तिः कविभिः सुनिरूपिता ॥५२॥
प्रयोजकस्त्वं चास्यासि त्वय्येव प्राप्यते पुनः ।
समन्वयोऽस्य सर्वस्य त्वय्येवमुपपद्यते ॥५३॥
स्वात्मानं[2] विविधं सृष्ट्वा त्वमनुप्रविशस्यदः ।
ज्ञानक्रियाशक्तियुतं सर्वमेतद्विभर्षि भोः ॥५४॥

यथास्ति वाणस्य न वेधशक्तिः सा तन्मोक्तुः पुरुषस्यैव दृष्टा ।
सूत्रात्मादीनां तथा शक्तयोऽपि तवैव भूमन् परकारणस्य ॥५५॥
सर्वज्ञ एकः खलु सर्वशक्तिस्त्वमेव सर्वानधितिष्ठसि प्रभो ।
अतः समारब्धविशिष्टकार्या न तु स्वतन्त्राः प्रभवन्त्य[3]चेतनाः ॥५६॥
असंहताः यदि भूतेन्द्रियौघा मनोगुणा निर्मितौ वै विराजः ।
नाशक्नुवंस्तर्हि विभो तवाज्ञाशक्त्यान्योऽन्यं चोदिताः संहतास्ते ॥५७॥

या वै चन्द्रमसः कान्तिः कौमुदीति निगद्यते ।
सा तवैव विनिर्दृष्टा सर्वहृत्तापहारिणी ॥५८॥
पावकस्य च यत्तेजः समुद्रस्योदरे सतः ।
शोषयत्यम्भसां भारं तत्तवैव विनिश्चितम् ॥५९॥
आदित्यस्य प्रभा या वै सर्वोद्दीपनकारिणी ।
सा तवैव प्रभो राम पङ्कजोल्लासकारणम् ॥६०॥
चन्द्राग्निसूर्यनक्षत्रविद्युतां स्फुरणात्मिका ।
तवैव शक्तिरुदिता नान्यथेति विनिश्चयः ॥६१॥

---

१. वितन्यते—रीवाँ, अयो० । २. स्वात्मना—मथु०, बड़ो० । ३. प्रसभन्त्य° —रीवाँ ।

भूवार्यग्निमरुद्व्योमस्वस्मिन्नित्यं प्रतिष्ठिता ।
गन्धो रसस्तथा रूपं स्पर्शः शब्द इति श्रुतः ॥६२॥
आकाशदेशभेदेन यद्दिशामवकाशता ।
तत्त्वमेवासि नास्यां वै सर्वब्रह्माण्डसंस्थितिः ॥६३॥
अतद्व्यावृत्तिरूपेण यद्वदन्ति परागिरः ।
प्रतिषेधैकशेषाय तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥६४॥
सच्चिदानन्दगुणकं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
विलक्षणं समस्तेभ्यस्तद्ब्रह्म परमं भवान् ॥६५॥
अविद्यादोषरहितमैश्वर्यादिविवर्जितम् ।
शुद्धचिन्मात्रसंलक्ष्यं तद् ब्रह्म परमं भवान् ॥६६॥
यस्माद् भूतानि जायन्ते प्रतितिष्ठन्ति यत्र च ।
यस्मिन्नेव विलीयन्ते विभूतिस्तव तत्पदम् ॥६७॥
यस्यैककृतिरेषास्ति सत्तामात्रेण संस्थितिः ।
तद् ब्रह्म विश्वोपादानं ततोऽपि च परं भवान् ॥६८॥
वेदान्तविज्ञानवन्तः सुनिश्चितपरार्थकाः[1] ।
संन्यासयोगसंशुद्धा यतयो यद्विशन्ति च ॥६९॥
आनन्दानां च सर्वेषां श्रोतसामिव सागरः ।
यस्मिन्नेकपदे वेशस्तद् भवान् परमं पदम् ॥७०॥
विहाय निखिलं लोकमलोके[2] संव्यवस्थिताः ।
यदिच्छया यतिवरा वैराग्यं समुपाश्रिताः ॥७१॥
शब्दमात्रेण विज्ञाय स्वाराज्यपदमूर्जितम् ।
यच्छुद्धं ज्योतिषां ज्योतिरिहामुत्रार्थनिःस्पृहा ॥७२॥
छर्दितान्नसमं सर्वं[3] जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
मन्यते यदिमं[4] नित्यं तत् केन तुलयामहे ॥७३॥
आप्तकामस्य पूर्णस्य निखिलं व्याप्य तिष्ठतः ।
यस्य लीलापि वै लोके न घटेत महात्मनः ॥७४॥

---

१. °तरार्थकाः—रीवाँ । २. मल्लोके—अयो० । ३. छर्दितानिव सर्वं च—रीवाँ । ४. मन्यन्ते यतिनो—मथु०, बड़ो० ।

स्वानन्दरसभोगाय कैवल्याय च सेविनाम् ।
घटते तत् परं ब्रह्म भवान् स्वानन्दभोगवान् ॥७५॥
त्वमेव चक्षुषश्चक्षुः श्रोत्रस्य श्रोत्रमुच्यते [से ?]।
असि स्थूलस्य सूक्ष्मस्य तत् त्वमेवाधिदैवतम् ॥७६॥

या चेन्द्रियाणां विषयप्रकाशिनीशक्तिस्तथा तदधिष्ठायिनोऽमराः[1] ।
ततोऽप्यधिष्ठानगता च शक्तिस्तथैव नित्याध्यवसायशक्तिः ॥७७॥
तथैव च प्रतिसंधानशक्तिर्यद् भूतानां कारणं तामसाख्यः ।
अहंकारो राजसश्चेन्द्रियाणां स सात्विकोऽप्याधिदैवाध्यात्मिकानाम् ॥७८॥
जीवानां वा संसृतेः कारणं यत्तत्सर्वं त्वं सर्वरूपेण भासि ।
विनाशशीलेषु च वस्तुषु त्वमन्ते स्वरूपं यदवशिष्यमाणम् ॥७९॥
कार्येषु यद्वद्घटकुण्डलादिस्फुटावशेषमृत्सुवर्णादिमात्रम् ।
तद्वद्विकारेष्वखिलेषु पश्चात् स्वरूपतो यदवशिष्यते तत्त्वम् ॥८०॥

गुणास्तत्परिणामाश्च ये वै स्युर्महदादयः ।
स्वरूपभूतयाचिन्त्यशक्त्या ते त्वयि योजिताः ॥८१॥
त्वयि तेषां हि सत्त्वेऽपि स्पर्शो नैवोपपद्यते ।
यतो जीवस्य संसारस्त्वदज्ञाननिबन्धनः ॥८२॥

सर्वे भावाः कार्यरूपा यदान्ते नियोजितास्त्वद्योगमायाबलेन ।
तदा न सन्त्येव विनाशशालिनस्त्वं चात्मसत्तां न दधासि तेषु ॥८३॥

आदौ मध्ये व्यवहारस्तु तेषां भवन्नपि स्वप्नदृष्ट्येव सिद्धः ।
त्वत्सत्तातो नातिरिक्तां हि सत्तां संसाधयत्यनुशोच्योऽत एव ॥८४॥
अविद्वांसो निष्प्रपञ्चां गतिं ते सर्वात्मनामात्मनो व्यापकस्य ।
देहाभिमानेन कृतैः स्वकर्मभिर्भवन्ति जीवाः खलु संसारभाजः ॥८५॥
पटूनि संप्राप्य सदिन्द्रियाणि क्रियाज्ञानोभयगां चैव शक्तिम् ।
अहो जनो दैववशेन वञ्चितो न चिन्तयत्येष यतः स्वमर्थम् ॥८६॥
अहो अहंताममतानुबद्धो देहे तथैवानुगतेषु चैनम् ।
दुरत्ययं कालपाशं पतन्तं जानाति नैवायमतिप्रमत्तः ॥८७॥

---

१. शक्तिस्तदा तिष्ठति शायिनोमराः—रीवाँ । येऽमराः—अयो० ।

युवामशेषक्षितिभारहारकौ समस्तसाधूद्धृतिकार्यतत्परौ ।
इहावतीर्णौ मम सद्मनि स्फुटं मदात्मजौ चेति विम्डबनं मम ॥८८॥
तत्त्वा[1]मार्तजनावनाय विहितानेकाद्भुतक्रीडनं
सच्चिन्मात्रसुखाकृतिं लवणवत् स्वानन्दसंपद्घनम् ।
योगीन्द्राशयपद्मकोशमधुपं माहेन्द्ररत्नच्छविं
श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं स्वशरणायोच्चैः शरण्यं भजे ॥८९॥
आदावेवाहमद्धा पुरुषवरवृतोऽस्मि त्वयानुग्रहेण
श्रीवत्साङ्कधनुःशरादिसहितं रत्नप्रभामण्डितम्[2] ।
क्वाप्यप्राप्तं नृचेतोनयनविषयतां भासयामास सूती-
गेहेऽस्मत्सुप्रसादं प्रकृतिसुभगतां संदधानो नितान्तम् ॥९०॥
तस्मै नमोऽद्य भवते विदधामि राम ज्ञात्वा परं स्वगुणलिङ्गगणैः पुमांसम् ।
स्नेहानुबद्धहृदयोऽपि सुतेति भावान्मध्ये प्रभूततरसुप्रणयाख्य पाशः ॥९१॥
यातं वयस्त्वयि परप्रणयेन राम त्वत्केलिवीक्षणसलालसमानसस्य ।
तेनाधुना भव भयार्तशरण्य शश्वन्मां पाहि नित्यशरणागतमादिदेव ॥९२॥
तिर्यक्त्वमञ्चितवतामपि[3] राक्षसत्वं नीचां पुलिन्दयवनश्वपचादियोनिम् ।
उद्धारकस्त्वमसिराम निजप्रभावात् कस्ते श्रमो मम मनोरथपूरणेन ॥९३॥
जानामि दिव्यज्ञानेन त्वद्वृत्तेनैव राघव ।
नाधुनैवावतीर्णोऽसि मम गेहे जनार्दन ॥९४॥
प्रतिकल्पं प्रतित्रेतमेवमेव जगत्पते ।
ममालयेऽवतीर्य त्वं हंसि भूभारकारिणः ॥९५॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेत्थं रघुराजस्य पितुर्वाक्यं महार्थकम् ।
प्रजहास प्रभुः प्रीत्या रामो राजीवलोचनः ॥९६॥
मया महेशादि[4]मनोरथानामगोचरेण पितृभावे वृतोऽस्ति ।
ऐश्वर्यविज्ञानममुष्य नार्हं संकोचयत्येव च मामनेन ॥९७॥
आगत्य व्रजमध्याच्च सुखितस्यालयादहम् ।
अनयोर्वर्द्धयामास शुद्धं प्रेम किमन्यथा ॥९८॥

---

१. तत्वा°—रीवाँ । २. श्रीवत्सांकं धनुर्वाणरत्नकिरीट कुंडलमद्दिव्यरूपं—मथु०, बड़ो० । ३. निष्कर्म संचितवतामपि—रीवाँ । ४. मायामयीशादि°—मथु०, बडो० ।

तथाप्यहो ब्राह्मणानां गवानयनलिङ्गतः ।
वसिष्ठादिमुनीनां च वचनात्प्रत्ययेन च ॥९९॥
ज्ञानांशः पुनरेतस्य प्राप्तोऽभ्युदयमुच्चकैः ।
इति संचिन्तयन् देवः प्रत्युवाच महीपतिम् ॥१००॥

श्रीराम उवाच

एतद्युक्तं वचो वः सहजविनयिनं मां स्तुतिव्याजमात्रात् ।
कृत्वा स्वस्थोपदेशास्पदमवनिपते यत्त्वयैवाभ्यधायि ।
ऐश्वर्यं वैभवं चाभिहितमसदृशं तद्यथास्मासु पुत्रे-
ष्वेषा भावानुकम्पा प्रकृतिरथ तथा सर्वजीवेषु युक्ता ॥१०१॥
एषोऽहं त्वत्तनूजः परपुरुषधिया भाववन्तो भवन्तः
सौमित्री केकयीजः सुविदितयशसश्चापि साकेतलोकाः ।
एवं सर्वेऽपि चैते विमलरघुकुले श्रैष्ठ्यभाजो विभाव्याः
श्रीमद्भिः सानुकम्पैः स्वपरमपरथा दुस्तरं निस्तरेत् कः ॥१०२॥
पुंसां नैसर्गिकीयं प्रकृतिरुदयते साधुभावान्वितानां
यत्सर्वं ब्रह्मभावात्मकपरधिषणाभावितं धारयन्ति ।
संसारान्तर्निमग्नानपि समुपदिशन्त्येवमात्मस्वरूपं
जीवान्निस्तारयन्ति प्रकृतिसकरुणाः कोमलान्तः स्वभावाः ॥१०३॥
किंवा यूयं समस्ता जगदिदमखिलं चैव साकेतवास्तु
स्थूलं सूक्ष्मं तथान्यच्चरमचरमपि स्वेन रूपेण यावत् ।
तावत्कृत्स्नं प्रसिद्धं तदहमिति विमर्शात्मकेनामलेन
ज्ञानेन ज्ञाततत्त्वाः परिकरमखिलं पश्यथ ब्रह्मरूपम् ॥१०४॥
विष्णुः शुद्धावबोध[1]प्रकृतिभृदमलज्योतिराकार एकः
पूर्णः सत्योऽप्यनन्तः स्वपरसमदृशि[2]र्निर्गुणो निर्विकारः ॥
आत्मा सर्वोत्तमोऽयं सुकृतगुणगणैः स्वात्मने सर्वदेहे-
ष्वित्थं नानेन[3] भाति त्रिभुवनविभवस्यैक आधारभूतः ॥१०५॥
आकाशो वायुरग्निर्जलमवनिरसौ तत्त्वसंघात उच्चै-
राविर्भावी तिरोभाव्यथ लघु विपुलैर्वस्तुभिर्भूरिभावः ॥

---

१. °वरोध°—मथु०, बड़ो० । २. रसपद—रीबाँ । ३. °देहो संतिष्ठन्नेव—रीवाँ ।

चिन्मात्रः सन् प्रतीतः कृतमतिभिरसावेकरूपोऽप्यनेको
नित्यो नित्यः स्वयंज्योतिरपिच विषयो निर्गुणः सद्गुणश्च ॥१०६॥

एवमुक्तः स रामेण स्वात्मौदासीन्यतत्त्वतः
विनष्टविषयानेकबुद्धिस्तूष्णीं बभूव ह ॥१०७॥

गोपयित्वा निजैश्वर्यं पुत्रस्नेहानुरक्षकः ।
तमेव भावं संपुष्णन् भगवांस्तमपोषयत् ॥१०८॥

वसिष्ठाद्युपदिष्टं तदैश्वर्यादि विदन्नपि ।
तथाभूतः प्रीतमना अभूत् स प्रेममानसः ॥१०९॥

विरोधिभावोपशमं विधाय विशुद्धिभावेन निजान् विजानन् ।
यान् भावयत्येवमनुग्रहेण कस्तेषु चिन्तालव आविरस्ति[1] ॥११०॥

प्रपञ्चेऽपि स्थितान् भक्तान् मोचयित्वेव सर्वथा ।
स्वरूपबलमात्रेण रामो रमणकोविदः ॥१११॥

अथ श्रीकौशल्या परमपुरुषाग्रचस्य जननी
विशुद्धा सा लक्ष्मीः सकलसुरसंवासवसतिः ।
प्रभोर्लीलाकौतूहलपरवशस्येहितकृते
तथा लीलाशक्त्या प्रणिहितमतिः किंचिदवदत् ॥११२॥

श्रीमन्तौ रामसौमित्री गुणलिङ्गैर्निवेदितौ ।
महानुभावौ विज्ञाय स्त्रीस्वभावाद् व्यजिज्ञपत ॥११३॥

श्रीरामचन्द्राप्रमितप्रभाव प्रभाविशेषाप्तविशेषबुद्धे ।
योगेश्वरस्वान्तविचिन्त्यरूप प्रतीत एवासि निजानुभावैः।११४॥

युवां ब्रह्मादीनामपि हृदयवाचामविषयौ
पुमांसौ तावाद्यौ निजप्रकृतिमात्रेहितधरौ ।
धराभूयोभारोद्धरणकरणार्थं[2] प्रकटितौ
जनः को जानीते किमपि ननु तत्त्वं च युवयोः ॥११५॥

ब्रह्मादयो दिविषदां प्रवरा मता ये सृष्टिस्थितिप्रलयकर्मविधानशक्ताः ॥
तेऽमी युवामखिलशक्तिभृतोर्भवाद्योरंशांशमात्रविभवा विलसन्ति लोके ११६

---

१. आविरास्ते—रीवाँ। २. °हरणार्थं–अयो०, मथु०, बड़ो०।

योऽयं सहस्रनयनाननपादबाहुरेकः पुमान् भुवनसंस्थितिमूलभूतः ।
अंशो[1]ऽस्त्यमुष्य ननु सा विततैव माया तस्या इमे सविभवास्तु गुणास्त्रयस्ते ॥

तेषां लेशेन जायन्ते विश्वोत्पत्त्यादयः पृथक् ।
पुरुषः सोऽपि युवयोरंशभूतः प्रतिष्ठितः ॥११८॥

गायन्ति नो किमपि कर्म वशिष्ठमुख्या ब्रह्मर्षयः सकलवेदविदां वरिष्ठाः ।
आदाय राम खलु यन्महतीं सपर्यामौपासनाग्निमुनयः पुरुषस्य लोकात्।११९।
एवंविधानि सुबहूनि[2] भवच्चरित्राण्युद्गापयन्ति भवतः पुरुषोत्तमत्वम्[3] ।
प्राप्तास्म्यहं तदरणं भवतः पदाब्जं संसारसागरमुदीक्ष्य दुरन्तपारम् ॥१२०॥
आनन्दमात्रमथ सर्वगुणावशेषं स्वात्मानमत्र च यदि[4] प्रकटं न कुर्याः[5] ।
तद्वेदगोद्विजपुरातनधर्ममार्गः सीदेत दीर्घमिह को ह्यवलम्बनं स्यात् ॥१२१॥

तव मूर्तिरसौ धर्मश्चतुष्पाच्छ्रुतिनिर्मितः ।
तस्य संरक्षणकृते भवान् प्रकटितो भुवि ॥१२२॥

येऽन्ये महीन्द्रादय ईशमानास्तद्वीर्यमप्रतिममद्भुतमेव मत्वा ।
आत्मानमुज्झितभरं सहसा विधाय प्राप्तास्त्वदङ्घ्रिकमलं शरणाय राम १२३

आनीता भवता राम मृता गावो द्विजन्मनाम् ।
अमानुषमिदं कर्म वीक्ष्य सर्वेऽपि विस्मिताः ॥१२४॥

ममापि कामः क्रियतां जगद्गुरो स्त्रीभावतोऽहं चपला नियोजये ।
यद् भ्रातरो मे निहता सुबाहुना तान् वीक्षितुं सोत्कलिकास्मि संप्रति॥१२५॥
तान् वैष्णवान् सुन्दररूपदर्शान्[6] शोचन्त्युदश्रु प्रतिमीलिताक्षी ।
मातामही ते महतीं शुचं गता नाद्यापि शान्तिं समुपैति चित्ते ॥१२६॥
तस्याः कृतेऽहमपि शोकजुषो जनन्याः शोकातुरास्मि भृशमुद्विजतीव चित्ते ।
तद्राम शक्तिहरणे भवति स्थितेऽपि शोकः कथं नु भवतीति न वेद्मि[7] किंचित् ॥

---

१. अज्ञो—मथु०, बड़ो० । २. सुर वन्द्य—अयो० । ३. °षोत्तमस्य—अयो० । ४. यदि च—अयो० । ५. कुर्यात्—मथु, बडो० । ६. °दर्शीन्—रीवाँ । ७. बोध—रीवाँ ।

ब्रह्मोवाच

मातुर्वचः समधिगम्य शुचातुरायाः[1] तान् स्वःस्थमातुलवरान् पुरुषप्रवीरान् ।
श्रुत्वा सुबाहुसमरे निधनं समागतानानेतुमात्तकरुणः स मतिं चकार ॥१२८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे
षड्गुणाख्याने नवनवतितमोऽध्यायः ॥९९॥

●

शततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततः सलक्ष्मणो रामः सुबाहुसमरे हतान् ।
मातुलान् पुरुषश्रेष्ठानानेतुमुपचक्रमे ॥ १ ॥
रथं समास्थितो दिव्यं मषिकांचनभूषितम् ।
चराचराप्रतिहतं धनुष्पाणिः सलक्ष्मणः ॥ २ ॥
भूर्भुवस्वर्महश्चैव जनलोकमतीत्य सः ।
तपोलोकं गतो वीरो वीराणां यत्र संस्थितिः ॥ ३ ॥
दिव्यं रथं समधिरुह्य शुभासनस्थस्तूणीरबन्धनमनोज्ञकटिप्रदेशः ।
दिव्यं धनुस्ततगुणं दधदंसदेशे युक्तोऽनुजेन गगने ददृशे सुरोघैः ॥ ४ ॥
तैस्तैः स्तुतो दिविषदां प्रवरैरधीशैः शक्रादिभिः कृतमहार्हणदर्शनीयः ।
लोकान् जनेन षडतीत्य रघुप्रवीरः प्राप्तस्ततस्तपसि शूरसतीभिराढ्ये ॥५॥
यद्ऊर्ध्वरेतसां स्थानं मुनीनां युक्तचेतसाम् ।
शूराणां च सतीनां च पातिव्रत्यजुषां गृहम् ॥ ६ ॥
दिव्यैर्विमानप्रवरैर्मण्ड्यमानं[2] समंततः ।
दीप्यमानं विशेषण देवानां तनुरश्मिभिः ॥ ७ ॥
हेमाङ्गणसमाबद्धमणिश्रेणिमनोहरम् ।
पारिजातद्रुमारामपरिवीतपुरालयम् ॥ ८ ॥
विध्वस्ततिमिरस्तोममहालोकमहोदयम् ।
शूरतापससाध्वीभिः सेव्यमानं मुदावहम् ॥ ९ ॥

---

१. भृशातुरायाः—अयो० । २. मंज्यमानं—रीवाँ ।

अनेकभोगसंपन्नं दिव्यस्त्रीगणसेवितम् ।
दिव्यरूपनटीलास्यतलनादनिनादितम् ॥१०॥
पाद[1]पूररवोद्घोषकारिणीभिः सुकान्तिभिः ।
युवतीभिः सुमत्ताभिः समन्ताच्चैव भूषितम् ॥११॥
व्याकोषबहुलाम्भोजकाननैर्गुञ्जितालिभिः ।
सुशीतलमरुद्धूतपरागैर्मण्डितोदकम् ॥१२॥
रत्नबद्धमहावापीराजहंसकुलक्वणैः ।
कादम्बकुलनादैश्च संनादितदिगन्तरम् ॥१३॥
क्वचिद्वसन्तसंफुल्लमल्लीवल्लीमनोहरम् ।
विकसच्चारुचाम्पेयहेमयूथीवनावृतम् ॥१४॥
वासन्तीलतिकापुष्पसौरभाञ्चितकाननम् ।
रसालमञ्जरीवृन्दपरागसुपिशङ्गितम् ॥१५॥
मणिकुट्टिमसंक्रान्तप्रतिमैः कृतकेलिभिः ।
संकेतसद्मसु नरैर्नारीभिः कृतकौतुकम् ॥१६॥
सुगन्धशीतलमरुन्मन्दगत्या निषेवितम् ।
ईदृशं तत् तपो रामो लोकानां लोकमुत्तमम् ॥१७॥
विलोक्य रघुशार्दूलः परां मुदमवाप सः ।
मन्दाकिनीमहास्रोतःस्नानेन विगतश्रमः ॥१८॥
तत्रत्यैर्मुनिभिर्दिव्यरूपदर्शनविस्मितैः ।
दूरादेव समुद्वीक्ष्य सादरं सुसमर्चितः ॥१९॥
तपोलोकाधिपतिना संप्राप्तौ रामलक्ष्मणौ ।
श्रुत्वा प्रत्युद्यतं[2] भूयो वरिवस्याभिरादरात् ॥२०॥
गृहीतौ विनयाक्रान्तमानसेन सुदूरतः ।
संपूजितौ संस्तुतौ तौ संस्पृष्टचरणाम्बुजौ ॥२१॥
उक्तौ सविनयं चैव सपर्यान्ते कृतादरौ ।
अहो युवां पावयथ कीर्त्या लोकांश्चतुर्दश ॥२२॥

---

१. पद—रीवाँ । २. प्रत्युद्यतौ—अयो० ।

अहो अत्यद्भुताः श्लोका युवयो रामलक्ष्मणौ ।
विध्वस्ततिमिरस्तोमाः शरत्सोमातिशीतलाः ॥२२॥
यौवराज्ये स्थितेनैव भवता राम सुन्दर ।
राजादशरथेनैव रञ्जितं भुवनत्रयम् ॥२४॥
स्वर्धुनीस्पर्शमात्रेण पुनाति भुवनत्रयम् ।
निजवर्णसमुच्छ्रायैर्दूरादेव भवद्यशः ॥२५॥
धरित्र्यामवतीर्णौ स्थः पुराणपुरुषौ युवाम् ।
असुराणां विनाशार्थं गोवेदद्विजद्रोहिणाम् ॥३६॥
निजदर्शनमात्रेण पश्यतां नयनव्रजे ।
सदानन्दसुधाधारां समंतादभिवर्षथः ॥२७॥
समौ[1] कमलपत्राक्षौ सुकुमारौ मनोहरौ ।
लोकोत्तरगुणारामौ भवन्तौ रामलक्ष्मणौ ॥२८॥
यैः सादरं दृशा दृष्टौ पुष्टौ संभाषितौ श्रुतौ ।
कीर्तितौ संस्मृतौ वापि ते धन्या धरणीतले ॥२९॥
लोकोत्तरगुणैर्लिङ्गैर्लोके वां पुरुषोत्तमौ ।
विदितौ स्थस्तथाप्येते मोहिता ईशमायया ॥३०॥
अद्यैव भवतो राम प्रपद्य चरणाम्बुजम् ।
मुक्ताः किं न भवन्त्येते बद्धाः स्वाज्ञानतो जनाः ॥३१॥

येषां भवान् भवपयोनिधिदुःखवीचीसंपर्कहारिचरणाम्बुरुहप्रसङ्गः ।
ते किं भवेयुरसकृज्जनिकष्टभाजो हंहो तवैव विषमा ननु कापि माया ॥३२॥
येनासुरास्त्रिभुवनामयरूपशीलाः संतारिता अतिखला अपि घोररूपाः ।
तस्य स्वभक्तजनतारणसाधुकृत्ये को नाम राम भवति श्रम आर्तबन्धो ॥३३॥
अन्यावतारचरितेषु न यद्विभाव्यं तत्कर्म राम कुरुषे ति विचित्रमेव ।
तेनेदमप्रतिममेव दधासि राम स्वं वैभवं त्रिभुवनाभयदानदक्ष ॥३४॥
ब्रह्मा भवस्त्रिनयनो भगवान् हयास्यस्त्वत्कीर्तिपुण्यगुणगानपवित्रगाथाः ।
नो चेत्तथा प्रकटयन्ति यथा जनानामानन्दनिर्भरवपुःपुलकादिभावाः ॥३५॥

---

१. श्यामौ—मथु०, बड़ो ।

ऐश्वर्यमेतदतुलं सुनिरीक्ष्य राम लोकाभिराम भवतो यदनन्यगामि ।
कस्यापि नेश्वरतया स्थितमद्यसाक्षादित्येक एव भुवनेषु महेश्वरस्त्वम् ॥३६॥
वीर्यं तथैतदतुलं तव रामचन्द्र संतापिते त्रिभुवने यदिहासुरोघैः ।
ब्रह्मादयो दिविषदः समुपेत्य साक्षादेकं भवन्तमसकृद्विनिवेदयन्ति ॥३७॥

नमस्त्रिभुवनाधीश विश्वमङ्गलविग्रह ।
आश्रितश्रुतिगोविप्रसंपालनदृढव्रत ॥३८॥
सत्यसंकल्प सत्यात्मन् सत्यपालनसुव्रत ।
सत्यस्यापि महासत्य सत्यदेव नमोस्तुते ॥३९॥
समस्तजगदाधार नित्यप्रमितगोचर ।
निस्तारितजगत्क्लेश रघुनाथ नमोस्तुते ॥४०॥
देवदेव दयासिन्धो दीनार्तिक्षपणोद्धर ।
धर्मपाल धनुष्पाणे राघवेन्द्र नमोनमः ॥४१॥
ततस्तौ पुरुषश्रेष्ठावुदारगुणभूषणौ ।
विश्वम्भरौ समापूज्य प्रोचुस्तापससत्तमाः ॥४२॥
यदूर्ध्वरेतसो भूत्वा वयं नियमतत्पराः ।
अकृष्महि[1] तपस्तीव्रं तस्येदं फलमुत्तमम् ॥४३॥
यद् युवां दर्शनं यातौ दृशां नः पुरुषोत्तमौ ।
अनर्घ्यगुणसंदोहभूषितौ जगतां पती ॥४२॥
करुणारसपाथोधी महोदारगुणाकरौ ।
सुपवित्रचरित्राढ्यौ युवां श्रीरामलक्ष्मणौ ॥४५॥
जगद्विलक्षणौ वीरौ विश्ववन्द्यपदाम्बुजौ ।
त्रैलोक्यगीतकल्याणगुणरत्नाकरौ युवाम् । ॥४६॥
प्रधानपुरुषौ साक्षाज्जगच्चेष्टाविधायकौ ।
स्वतन्त्रेच्छौ युवां नित्यं कुरुथो विश्वनिर्मितिम्[2] ॥४७॥
सर्वेश्वरौ सर्वपुमर्थरूपौ सर्वाधिकानन्तविशिष्टवीर्यौ ।
सर्वस्य रक्षाकरणे समर्थौ रघोः कुले वामवतीर्णवन्तौ ॥४८॥

---

१. प्रकृण्वहि—मथु०, बड़ो० । १. निर्मितं जगत्—रीवाँ ।

कलाभिरंशैर्विभवैः स्वकीयैर्विराजमानौ पुरुषौ भवन्तौ ।
सर्वाद्भुतौ सर्वविलक्षणश्रीनिकेतनौ राघववीरवर्यौ ॥४९॥

वीरा ऊचुः

रणेषु दत्त्वा शिर आगता इह स्वशूरताधर्मपरायणा वयम् ।
अद्याप्नवन्तो ननु लौकिकानां फलं युवां गोचरतां यदागतौ[1] ॥५०॥

वीरसेवितपादाब्जौ वीरेन्द्रौ वीरवत्तरौ ।
निजवीर्यजगद्रक्षाविधानकुशलौ युवाम् ॥५१॥
अद्य नः सफलो लोकः सफला लोकिता च नः ।
युवां यद्दर्शनं यातौ त्रैलोक्यसुभगाकृती ॥५२॥
विश्वरक्षापदेशेन क्रीडन्तौ विमलैर्गुणैः ।
विराजेते भवन्तौ वै सतां गेयगुणाकृती ॥५३॥

वैतानिका यमुदयं सुकृतैर्लभन्ते कष्टेन भूरिकृतकर्मकुलाकुलत्वात् ।
सोऽपि प्रभो त्वदनुसंधिमृतेदुरापो ध्वस्तं फलेन हि परानुगृहीतिहीनम्॥५४॥
तन्नाशवत्यपि फले नु वृथा यतन्ते त्वद्भावहीनमनसो मनुजा जगत्याम् ।
प्राज्ञाः परे तु फलतत्त्वविदस्त्वदर्थाः कृत्वा क्रियाः कलितपूर्णफला भवन्ति।५५।

पतिव्रता ऊचुः

वैश्वानरे निजवपूंषि हविर्विधाय प्राप्ताः स्म वीरवरलोकमिमं प्रियैः स्वैः ।
सत्यस्य तस्य फलमद्य निरूढमेतद् यद्रामचन्द्र भवतो दृशिमाप्नवत्यः ॥५६॥
गोप्यः प्रमोदवनवासजुषो निपीय यत्ते सुखं कमलसारभृतं कृतार्थाः ।
नेत्रैस्तदद्य सुनिरीक्षितमस्मदीयैः किं स्यादितोऽपि सुकृतं विबुधायुषां नः।५७।
कारुण्यसागर न यर्हि नरोत्तमेन दृष्टास्त्वया कमलगर्व[2]मुषा दशा वः[3] ।
तद्वर्यमेव ननु रूपमदभ्रसारं नागीनगीपदजुषामसुरीसुरीणाम् ॥५८॥
धन्ये दृशौ पुरुषवर्य[4] भवत्सुरूप[5]माधुर्यसारमकरन्दरसं पिबन्त्यौ ।
ग्राम्यस्त्रियोऽपि वनवासजुषश्च तस्या नान्ये सुरेन्द्रकमला[6]सुनिरीक्षिकेऽपि५९

---

१. तदा°—रीवाँ । २. °वर्ग०—अयो० । ३. दशार्थं—अयो०, दृशर्त्थं—रीवाँ ।
४. °धुर्य—मथु०, बडो० । ५. °स्वरूप—मथु०बड़ो० । ६. °मबला°—मथु०, बडो० ।

धन्याः स्त्रियोऽपि सकलागमकर्महीनास्त्यक्ताधिकारविषया अपि सर्वधर्मैः ।
यास्ते मुखेन्दुममृताकरमच्छरूपं पश्यन्ति राम नयनैः कमलाधिसारैः[1] ॥६०॥
लावण्यमेतदधिकं किमु वर्णनीयं जानन्ति ता वनचरीदृश आत्तमानाः ।
या नित्यमेव कलयन्ति गवेन्द्रगेहे केऽपि कैतवगुणेन कृतानुषङ्गाः ॥६१॥
त्यक्त्वा कुलव्रतसमुद्रमनन्तपारं हित्वा त्रपानिवहपाश[2] सुपर्वजातम्[3] ।
यास्त्वां प्रपद्य विहिताखिलकर्मबन्धनाशा भजन्ति किमु ताः किल वर्णनीयाः॥
त्यक्त्वा[4] सुदुस्त्यजकुलाभिमतिं कृताशास्त्वद्वक्त्रचन्द्रपरमामृतपानमात्रे ।
ता एव गोपसुदृशो विधिशर्वमुख्यैर्देवैर्दुरापमधियान्ति तवाङ्गसंगम् ॥६३॥
एतावदेव सुधियां सुविचारणीयं किं नित्यमस्ति किमनित्यमिय[5]त्त्रिलोके ।
निश्चित्य तच्च परिशेषदृशा त्वयीश कार्या रतिर्न पुनरेति ततो विनाशम्।६४।
नित्यं सुखं जनकजानयनाभिराम यद्रामचन्द्र भवतैव भवेद्वितीर्णम् ।
यत्तु प्रसक्तपशुपुत्रधनादिभिःस्यात् तत्कालगीर्णमिति कस्य भवेत् प्रतीतिः ६५
रामेति नाम भवतो भवतापहन्तृ ये वै[6] गृणन्ति सकलाभयदानदक्षम् ।
ते कालवेगजरठीकृततुच्छसारं दुःखाकरं भवमुदस्य सुखं लभन्ते ॥६६॥
को नाम विद्वदुचितां धिषणां दधानो नित्यार्तिदे पशुसुतादिभवेऽनुषज्जेत् ।
हित्वा विषादहरणं तरणं शुचाब्धे[7] स्त्वत्पादपद्मयुगलं दिविषन्निषेव्यम्[8]।६७।
एकस्त्वमस्य भुवनस्य करोषि संस्थाः सृष्ट्यादिभिर्जनविलक्षणवीर्यराशिः ।
कोऽन्यः पुनः कमलनाभ भवेद्भवत्तः प्राप्तापदः प्रतियुगं प्रतिकर्तुमीशः।६८।
तस्मै नमोऽद्य भवते पुरुषोत्तमाय कुर्मः पुराणमुनिगीतमहागुणाय ।
दीनार्तिवृन्दहरणोद्धुरकार्मुकाय रामाय नैम्यकुलचन्द्रिकयान्विताय ॥६९॥
अस्माकमेष खलु सत्त्वफलप्रकर्षो लोकस्तपाख्य उदिताखिलसौख्यसंघः ।
सोऽप्यद्य तुच्छफलवद्विदितो नृवीर त्वद्विग्रहामृतमृतेत्वदनुग्रहाप्यम्[9] ॥७०॥

इत्येवं संस्तुतो रामस्तैस्तैस्तल्लोकवासिभिः ।
उवाच सर्वान् सुप्रीतःस्मयमानोऽनया गिरा ॥७१॥

एतावद्वो लोकसंख्या किलाभूदतःपरं परिमुच्यध्वमस्मात् ।
भवाभिधाद्दीर्घदीर्घान्महाब्धेर्मया यूयं तारिताः सर्व एते ॥७२॥

---

१. कमलापसारैः - रीवाँ । २ तपोनिवह माशु—रीवाँ । ३. °जालम्—अयो० । ४. धूत्वा—रीवाँ । ५. °मयं—अयो० । ६. एवं—रीवाँ । ७. सुधाब्धेः—रीवाँ । ८. निमेषम्—अयो० । ९. °ग्रहास्य—रीवाँ । "सोऽपि तपोलोकोऽपि तवविग्रहं विना तुच्छो दृष्टः, किंभूतं त्वद्विग्रहं तवानुग्रहेणैव प्राप्यम्" दि०—मथु० ।

न प्रमाणं साधनं वा युष्माकं समपेक्षते ।
मदनुग्रहमात्रेण मोचिता भववारिधेः ॥७३॥
ब्रह्माक्षय्यसुखं धीराः समश्नुत मदाज्ञया ।
नित्यानन्दमयं लोकं न यस्मात् पुनरागमः ॥७४॥

अथाब्रवीत् पुरुषवरो मृदुस्मितैः प्रमोदयन् मधुरसुधानुबन्धिभिः ।
तथाभिधाद्भुततमलोकनायकं कृतार्हणः[1] किमपि स तेन सत्कृतः ॥७५॥

श्रीराम उवाच

तपलोकाधिप भवल्लोके नो मातुलोत्तमाः ।
इमे समासते एवैतान्नयामोऽधुना वयम् ॥७६॥
अयोध्यानगरी राज्ञा राघवेन्द्रेण पालिता ।
यत्रास्माकं संवसतिः सर्वसौख्यप्रदायिनी ॥७७॥

ततः स दिव्ये सदने विराजितान् दिव्योपभोगैः कलितप्रमोदान् ।
तपस्विलोकाधिपदर्शितांस्तान् ददर्श रामो निजमातुलोत्तमान् ॥७८॥
ये वै पुरा पद्मभुवः सभायां सामानि गायन्तमुदग्ररोषम् ।
सुमन्तुना संकलहायमानं तपस्विनं मुनिमत्रेस्तनूजम् ॥७९॥
जहसुः साध्यनामानः केचिद् देवगणास्तदा ।
शप्तास्तेनैव मुनिना मानुषीं योनिमागताः ॥८०॥
ते वीरकर्मणा भूयस्तपोलोकनिवासिनः ।
कौशल्याया भ्रातरस्ते दृष्टा रामेण सादरम् ॥८१॥
अभिवाद्य ततस्तांस्तु सानुजो मातुलान् निजान् ।
लोकाधिपमुपामन्त्र्य स्वां जगाम स तैः सह ॥८२॥
अयोध्यानामनगरीं वसुधामण्डनायतीम्[2] ।
पुरो मातामहीमात्रोर्मातुलांस्तान् न्यवेदयत् ॥८३॥
अथ मातामही तस्य दृष्टवा पुत्रांस्तुतोष सा ।
भगिनी चैव तान् भ्रातॄंश्चिरदृष्टान् यथागतान् ॥८४॥

---

१. क्षतार्दनः—अयो० । २. °मण्डला°—रीवाँ ।

ते मातरं समाश्लिष्य पुत्रस्नेहस्नुतान्तराम् ।
भगिनीं च महामान्यां तुतुषुः स्नेहसंयुताः ॥८५॥
ते पुनः पुनरालप्य मातरं विरहक्षताम् ।
भगिनीं च प्रमोदाक्ता बभूवुः स्निग्धमानसाः ॥८६॥
ते पश्यतां रामपुरीजनानामागच्छतां व्योम[1] पथादपश्यन् ।
विशुद्धरत्नैःखचितान् विमानान् हैमान् यथापूर्वमलङ्कृतान् स्वान् ॥८७॥
अथ ते तत्क्षणादेव नीलनीरदकान्तयः ।
पीताम्बरधरा भ्राजन् मकराकृतिकुण्डलाः ॥८८॥
विशुद्धेन किरीटेन भ्राजमानमुखत्विषः ।
शङ्खचक्रगदापद्मसमुपेतचतुर्भुजाः ॥८९॥
अवाप्य रामसारूप्यं दिव्यवेषविराजिताः ।
तान् विमानान् समारुह्य स्तुवन्तो जानकीशितुः ॥९०॥
विशदा कीर्तिगाथास्ताः श्रीरामभवनं गताः ।
रामचन्द्रप्रभावेण सकलाश्चर्यकारिणः ॥९१॥
य इदमनुशृणोति मातुलानां किमपि समुद्धरणं भवाम्बुराशेः ।
रघुवरचरितं जगत्पवित्रं स तु भवति प्रिय एव राघवस्य ॥९२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे षड्गुणाख्याने मातुलोद्धारणंनाम शततमोऽध्यायः ॥१००॥

•

एकाधिकशततमो[2]ऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

यौवराज्यस्थिते रामे गुणैर्नन्दयति प्रजाः ।
लक्ष्मणे च महावीरे वहति स्वगतां धुरम् ॥ १ ॥
राजा दशरथो न्यस्य पुत्रयोरखिलां पुरीम् ।
स्वयं जगाम तीर्थानां यात्रायै धर्मभृद्वरः ॥ २ ॥

---

१. व्योम्नि—रीवाँ । २. शताधिकैकतमो—रीवाँ, नास्ति—मथु० ।

राममाहूय नृपतिर्जगाद जगदीश्वरम् ।
लक्ष्मणं च सुसत्कृत्य तीर्थयात्रार्थमुद्यतः ॥ ३ ॥

राजोवाच

अहो रघुकुलश्लाघ्यौ चरित्रैर्गुणवत्तरौ ।
युवयोर्वीर्यधनयोर्भुजे न्यस्य धराधुरम् ॥ ४ ॥
तीर्थयात्राविधिं कर्तुमुद्यतोऽस्मि विशेषतः ।
निश्चिन्तोऽहं त्वया राम जगदारामहेतुना ॥ ५ ॥
पृथिव्यां सप्त द्वीपानि तेषु वर्षाणि भागशः ।
तेषु यावन्ति तीर्थानि तानि यास्यामि सादरम् ॥ ६ ॥
आरभ्य भारतं वर्षं यावन्ति खलु भूतले ।
वर्षाणीह प्रतिद्वीपं तेषु तीर्थानि भूरिशः ॥ ७ ॥
अहं तावत् सुसंगम्य स्नात्वा दत्वा च भक्तितः ।
ब्राह्मणेभ्यो गवां कोटीः स्वर्णशृङ्गीः पयस्विनीः ॥ ८ ॥
श्रियं सफलयिष्यामि त्वद्वीर्यबलवृंहिताम् ।
भूतानामनुकम्पाश्च कुर्वन्नन्नादिदानतः ॥ ९ ॥
तेषु तेषु सुतीर्थेषु विचरिष्यामि पुण्यकृत् ।
सपत्नीकः सानुगश्च इत्थं मे निश्चला मतिः ॥१०॥
इतिश्रुत्वा पितुर्वाक्यं प्रोवाच रघुनन्दनः ।
प्रीत्या संमोदयंश्चित्तं शृण्वतामत्युदारधीः ॥११॥

श्रीराम उवाच

सप्तद्वीपवती पुण्या तत्र तीर्थानि भूरिशः ।
कानि कानि तु गम्यानि मानवैर्निजशक्तितः ॥१२॥
एतन्निर्धारय विभो वशिष्ठादिसुयोगिनाम् ।
वाक्येन राजशार्दूल यानि गम्यानि च प्रभो ॥१३॥
ततस्त्वं कुरु तीर्थानि यथागुणविशेषणम् ।
यथाद्रव्यविधानं च यथोपस्करमादरात् ॥१४॥
इतिश्रुत्वा रामचन्द्रस्य वाक्यं गुणान्वितं सत्समाख्यातधर्मम् ।
आकारयामास रघुप्रवीरो मुनीश्वरं स्वाश्रमात्तं वशिष्ठम् ॥१५॥

तं पूजयित्वा नृपतिः समागतं वशिष्ठनामानमशेषधर्मगम् ।
उवाच राजा धृतनम्रकन्धरो भक्तिप्रकर्षेण सुहृष्टरोमा ॥१६॥

राजोवाच

भगवन् मुनिशार्दूल सर्वशास्त्रसुकोविद ।
सर्वधर्मैकतत्त्वज्ञ किंचित् प्रष्टुमना अहम् ॥१७॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
तानि मे वदतांश्रेष्ठ वद विस्तरशो मुने ॥१८॥
शास्त्रेषु यानि चोक्तानि त्वादृशैः परमार्थिभिः ।
कर्तव्यानि गृहस्थैर्यान्यद्भुतानि स्थलानि च ॥१९॥
क्षेत्राणि धर्मस्थानानि महापुण्यप्रदानि च ।
तानि मे मुनिशार्दूल वेद वेदप्रमाणतः ॥२०॥
सर्वशास्त्रपुराणेभ्यः प्रमितानि भवादृशैः ।
संचीय तानि सर्वाणि प्रदर्शय महामुने ॥२१॥
तीर्थयात्रां विधानेन करिष्याम्यहमादृतः ।
रामचन्द्रस्य वीर्येण संचिताः परमाः[1] श्रियः ॥२२॥
आनीयमानाः कोशेषु अर्जयिष्यामि तत्फलम् ।
धारणेन च देहस्य करिष्ये सुकृतोद्भवम् ॥२३॥
भवादृशानां मुनिपुङ्गवानां मुखाच्छ्रुतं शास्त्रनिगूढतत्वम् ।
यदर्जनीयं सुकृतं जनेन श्रीभिः पुमर्थेन सुसंचिताभिः ॥२४॥
पुण्येन पापेन च संभवोऽस्य देहस्य तेनानिशमर्जनीयम् ।
निरन्तरं सुकृतं येन न स्यात् पुनर्मातुः कुक्षिमध्ये निवासः ॥२५॥
दिने दिने क्षीयमाणस्य चास्य किमायुषः फलमेतेन लब्धम् ।
यन्नष्टजन्मोदरमात्रभृत्यानिमग्नः स्याद्विषयसुखेषु जन्तुः ॥२६॥
पापोद्भवस्य मलमात्रभृतोऽत्यनिष्टभूतस्य देहकृतकस्य[2] कृते क आर्थः[3] ।
पापैकहेतुमुदरंभरिसेव्यमानं भोगं करोति विषयस्य घृणैकपात्रम् ॥२७॥

---

१. परम°—रीवाँ ।२. देहस्य—अयो० । "कृतक—कृत्रिमः" टि०—मथु०—बडो० । ३. "आर्थः विवेकी° टि०—मथु०, बडो० ।

तदहं वै पुरोधाय मुनिवर्यान् भवादृशान् ।
अटिष्यामि सुपुण्यानि तीर्थानि भुवि भूरिशः ॥२८॥
तानि मे गणयाशु त्वमुद्देशेन महामुने ।
आवश्यकानि यात्रायां विहितानि विशेषतः ॥२९॥
येषु स्नानेन दानेन यात्रया च विधानतः ।
नरो मुच्येत पापेभ्यस्तानि मह्यं विनिर्दिश ॥३०॥
श्रुत्वा राजर्षिवचनं प्राजापत्यो मुनीश्वरः ।
उवाच यात्राविषये तीर्थान्यावश्यकानि सः ॥३१॥

वशिष्ठ उवाच

शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि तीर्थानां विधिमुत्तमम् ।
येनाशु कृतमात्रेण चित्तशुद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥३२॥
अदौ तवैव भविकावलिदायिनीयं दिव्या पुरी परममङ्गलभूरयोध्या ।
आस्ते[1] परा सकलकल्मषनाशितोया पुण्या विभाति सरयूः सरितां वरिष्ठा ३३
सर्वेषामेव तीर्थानां गङ्गा कोटिगुणा फलैः ।
गङ्गा कोटिगुणा नित्यं सरयूर्विश्वपावनी ॥३४॥
सरयूः कोटिगुणितफलायोध्यापुरी तले ।
ततः कोटिगुणं पुण्यं स्वर्गद्वारे विशेषतः ॥३५॥
पुरा यत्र स्वयं विष्णुर्भगवान् विश्वमङ्गलः ।
विधाय विविधं कर्म भूभारहरणोद्यतः ॥३६॥
गतो वैकुण्ठसदनं तदेतत् स्थानमुत्तमम् ।
सरयूतीर्थराशिभ्योऽप्यधिकं विश्वपावनम् ॥३७॥
इदानीं चापि भगवांस्त्वत्कुले जनितो हरिः ।
विश्वमङ्गलरूपोऽसौ रामः परमसुन्दरः ॥३८॥
अत्रैव नेष्यते सर्वान् साकेतपुरमानवान् ।
पशुकीटपतङ्गाद्यान् स्वीयं प्रमुद[2]मालयम् ॥३९॥
तेनेदमुत्तमं स्थानं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ।
अत्र स्नानेन दानेन नरो मुच्येत पातकैः ॥४०॥

---

१. यस्यास्ते सकल°—मथु०, बडो० । २. प्रमोदमा°—मथु., बडो० ।

अत्र दद्यात् पितृभ्योऽपि श्राद्धमञ्जलिसंपुटम्[1] ।
गयाश्राद्धेन यत्पुण्यं तत्पुण्यं लभते नरः ॥४१॥
यं यं कामयते कामं तं तमाप्नोति नित्यशः ।
नानेन सदृशं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥४२॥
अयोध्यायां सप्तहरितीर्थान्याहुर्मनीषिणः ।
पूर्वं धर्महरिः प्रोक्तो धर्मो यत्र प्रतिष्ठितः ॥४३॥
चतुष्पादङ्गसहितो यथा सत्ययुगे सदा ।
कलिधर्मप्रवेशेन संततं नोपहन्यते[2] ॥४४॥
ततो गुप्तहरिः प्रोक्तो गुप्तो यत्र हरिः स्वयम् ।
अशेषशुभदो नृणां स्नानदानादिकारिणाम् ॥४५॥
ततो भरतपूर्वश्च हरिर्यत्रातिपावने ।
भरतो नाम राजा वः पूर्वजः सिद्धिमाप्तवान् ॥४६॥
भरतस्य यशः पुण्यं त्रैलोक्यस्यातिपावनम् ।
आख्यातं मुनिवर्यैस्तु विष्णोरिव महात्मनः ॥४७॥
अयं च भरतो नाम तव पुत्रस्तृतीयकः ।
तस्यापि नाम्ना भुवने ख्यातमेतद्भविष्यति ॥४८॥
अयं हि भगवान् साक्षात् यथा रामस्तथा गुणैः ।
कल्याणकर्मा भवने धर्मसेतुरुदीरितः ॥४९॥
ततो विष्णुहरिः प्रोक्तो विष्णुर्यत्रस्वयं स्थितः ।
समस्त दुःखहरणे भूतानामनुकम्पया ॥५०॥
विष्णुशर्मा द्विजः कश्चिदत्र दिव्येन कर्मणा ।
साक्षाल्लक्ष्मीपतेरुच्चैः हरेः सायुज्यमाप्तुवान् ॥५१॥
अथ बिल्वहरिः प्रोक्तो यत्र बिल्वफलाशनाः ।
मुनयो दीर्घतपसः परमां सिद्धिमाप्नुवत् ॥५२॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थमेतन्नाम्ना निगद्यते ।
स्नानदानविधानाद्यैः सर्वपापविनाशनम् ॥५३॥

---

१. °संयुतम्—मथु०, बड़ो० । २. नोपदृश्यते—मथु०, बड़ो० ।

ततश्चन्द्रहरिः प्रोक्तो महापातकनाशनः ।
यत्र संस्नानमात्रेण चन्द्रलोके महीयते ॥५४॥
ततश्चक्रहरिर्नाम तीर्थराजः सनातनः ।
चक्रं सुदर्शनं यत्र महापातकतारणम् ।
यत्रास्थि पतितं नणां षण्मासाच्चक्रतां व्रजेत् ॥५५॥
एतेषु तीर्थवर्येषु स्नानदानादिमात्रतः ।
नरः शुभमवाप्नोति सद्यः प्रत्ययमेवच ॥५६॥
ब्रह्मकुण्डे नरःस्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
काशी कोटिगुणं पुण्यं यत्रोत्तरवहा सरित् ॥५७॥
तत्र स्नानेन दानेन नरः कैवल्यमाप्नुयात् ।
ब्रह्मकुण्डजलस्पर्शात्कोलश्वानखरादयः ॥५८॥
काककङ्कपतङ्गाद्या अपि पापैकयोनयः ।
पशवः पक्षिणश्चापि नरा व्याघ्रादिजन्तवः ॥५९॥
ब्रह्महत्यादिपापौघैर्दूषिता अपि मानवाः ।
पापीयसीं तनुं त्यक्त्वा यान्ति नाम तथात्मताम् ॥६०॥
शङ्खचक्रगदापद्मचतुर्भुजविराजिताः ।
विमानवरमारुह्य यान्ति श्रीराममन्दिरम् ॥६१॥
अस्ति वै मगधे[1] देशे पुरं राजपुराभिधम् ।
तत्र कश्चिद् द्विजोऽधीत्य गुरोर्वेदमशेषतः ॥६२॥
तन्निन्दाचरणाज्जातो ब्राह्मणो ब्रह्मराक्षसः ।
पुरस्थमनुजान् नित्यमाविश्य कुरुतेऽसुखम् ॥६३॥
यमाविशति तस्यान्तं कुरुते ब्रह्मराक्षसः ।
बहवो नाशितास्तेन नरा नार्यश्च रक्षसा ॥६४॥
एवं प्रेतालयं जातं नगरं सर्वमेव तत् ।
विख्यातो राक्षसस्तत्र वसतीति श्रुतिर्जने ॥६५॥
कदाचिद् ब्राह्मणः कश्चिदागतस्तत्र पण्डितः ।
शास्त्रेण वाच्यमानेन श्रुतं तस्य मुखाज्जनैः ॥६६॥

---

१. मगध°—मथु०, बड़ो० ।

ब्रह्मकुण्डस्य माहात्म्यं सर्वपापविनाशनम् ।
ब्रह्मराक्षसवंशेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो निर्दशितम् ॥६७॥

तच्छ्रुत्वा तस्य वंशस्थाः पण्डितस्य द्विजन्मनः ।
अन्तिकं समनुप्राप्ताः प्रोचुरेतद्द्विजन्मने ॥६८॥

अस्माकं पूर्वजो विद्वान् गुरुनिन्दोद्भवादघात् ।
ब्रह्मराक्षसतां ब्रह्मन् प्राप्तोऽद्यापीह तिष्ठति ॥६९॥

उद्वेजयति भूतानि समाविश्य भुनक्ति सः ।
यमाविशति तस्याशु निधनं खलु जायते ॥७०॥

कलङ्किता वयं सर्वे तेनैव ब्रह्मरक्षसा ।
कथं नु मुच्यते ब्रह्मन् पातकात् सोऽतिदारुणात् ॥७१॥

कृतानि भूरितीर्थानि गयाश्राद्धं तथा कृतम् ।
न मुच्यतेऽसौ पापीयान् ब्रह्मराक्षसयोनितः ॥७२॥

प्रेतालयं कृतं तेन नगरं सर्वमेव तु ।
इति श्रुत्वा द्विजो वाक्यं ब्राह्मणानिदमब्रवीत् ॥७३॥

अस्त्ययोध्यापुराभ्यासे ब्रह्मकुण्डमिति श्रुतम् ।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥७४॥

तत्र गच्छत भो विप्रा भवनास्तस्य वंशजाः ।
तीर्थोदकैस्तर्पयित्वा श्राद्धं दत्त त्रिपिण्डकम् ॥७५॥

एकोद्दिष्टं तु प्रथमं विधाय विधिवद् द्विजाः ।
तेन पुण्यप्रभावेण प्रेतयोनेर्विमोक्ष्यते ॥७६॥

शीघ्रं कुरुत तत्कार्यं भवतां धर्म एव सः ।
किं तैः पुत्रादिभिर्जातैः यैः स्ववंश्या न मोचिताः ॥७७॥

द्विजोदीरितमाकर्ण्य ते तु चक्रुस्तथैव तत् ।
तथैव गुरुनिन्दोत्थपातकान्मुक्तिमीयिवान् ॥७८॥

सर्वैः प्रेतकुलैः सार्द्धं विमुक्तो भवबन्धनात् ।
जलाञ्जलिप्रदानेन ब्रह्मकुण्डस्य पावितः ॥७९॥

वैकुण्ठभवनं प्राप्तो विमुच्य ब्रह्मरक्षताम् ।
इति तद्विश्रुतं तीर्थं त्रैलोक्ये समभूत्तराम्[1] ॥८०॥
तदारभ्य ब्रह्मकुंण्डं सर्वोद्धारि[2] विराजते ।
गयाकोटिगुणं पुण्यं ब्रह्मकुण्डोऽत्र संभृतम्[3] ॥८१॥
किंवा तैर्बहुभिस्तीर्थैरेकमेव निषेव्यताम् ।
ब्रह्मकुण्डाभिधं तीर्थं महापापौघनाशनम् ॥८२॥
सूर्यकुण्डस्य माहात्म्यं किं वक्तव्यं जनाधिप ।
कुष्ठतोऽपि विमुच्यन्ते गलत्कुष्ठादिरोगतः ॥८३॥
सूर्यवारे नरः स्नात्वा सर्वपापैर्विमुच्यते ।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥८४॥
कामार्थी लभते काम्यं यद्यन्मनसि वर्तते ।
उपरागे व्यतीपाते स्नानदानादिकं त्विह ॥८५॥
अक्षय्यफलतां याति नात्र कार्या विचारणा ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः कुलकोटिं समुद्धरेत् ॥८६॥
एतद्दर्शनमात्रेण नरो मुच्येत पातकात् ।
सूर्योऽभिषेचितः सर्वैर्देवैरत्र पुरा नृपः ॥८७॥
ग्रहनक्षत्रताराणामधिराज्यमवाप सः ।
अक्षय्यं निहितं चात्र पुण्यं द्वादशमूर्तिना ॥८८॥
हत्यामोचनमत्रैव तीर्थमुत्तममस्ति वै ।
ऋणहत्या ब्रह्महत्या भ्रूणहत्यादिमोचनम् ॥८७॥
पिशाचमोचनं नाम तीर्थमत्रैव वर्तते ।
तस्य माहात्म्यमतुलं किमाख्येयं मया नृप ॥९०॥
गाधिसूनुर्महीपालो विश्वामित्रो महातपाः ।
ब्रह्मर्षितां परिप्राप्तुं महान्तं यत्नमाचरत् ॥९१॥
क्षात्रदेहं ततक्षासौ टङ्कैः खलु तपोमयैः ।
तपसात्यूर्जितबलो नवीनकरणोद्यतः ॥९२॥

---

१. °भूद्वरम्—मथु०, बडो० । २. सर्वोपरि—मथु०, बड़ो । ३. ब्रह्मकुण्डोत्थ-संवृतम्—अयो०, रीवाँ ।

राजर्षितां गतोऽप्येष स्पृहयामास भूतले ।
ब्रह्मर्षिपदकामेन तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥९३॥
नवीनसृष्टिसामर्थ्यं दृष्ट्वा ब्रह्मा भयं गतः ।
तमस्तौषीन्महाराज चतुर्भिर्वदनैर्विधिः ॥९४॥
स विधिं प्रार्थयामास ब्रह्मर्षिः स्यामहं विधे ।
सुदुःसाध्यप्रसादाय तस्मै विधिरुवाच ह ॥९५॥

ब्रह्मोवाच

अस्त्ययोध्या पुराभ्यासे तीर्थं मन्नामविश्रुतम् ।
तत्र गत्वा भवान् भक्त्या यज[न्]रामं सदा मखैः ॥९६॥
ब्रह्मकुण्डप्रभावेण ब्रह्मवर्चसमाप्स्यसि [ति] ।
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महातपाः ॥९७॥
ब्रह्मकुण्डतटे राममयष्ट विधिवन्मखैः ।
पत्नीयाजैस्ततश्चेष्ट्वा विधिवन्मुनिसत्तमः ॥९८॥
यज्ञाश्वभृथमारेभे भूयसा चोत्सवेन सः ।
बभूवुः संगतास्तत्र मुनयो दीर्घदर्शनाः ॥९९॥
याज्ञवल्क्यो महायोगी शुको व्यासः पराशरः ।
भृगुरत्रिर्भरद्वाजो दुर्वासा पुलहोऽङ्गिराः ॥१००॥
ब्रह्मर्षिप्रवराः सर्वे देवर्षिप्रवरास्तथा ।
नारदाद्या मुनिश्रेष्ठा राजर्षिप्रवरास्तथा ॥१०१॥
तस्मिन्नवभृथे राजन्[1] संगताः सर्व एव ते ।
विधिवत् स्नापयामासुर्ब्राह्मणाः कर्मकोविदाः ॥१०२॥
ब्रह्मवर्चसकामं ते यजमानं महाव्रतम् ।
बभूवावभृथस्यान्ते व्योमवाक् तस्य कामदा ॥१०३॥
शृण्वतामेव सर्वेषामृषीणां दीर्घदर्शिनाम् ।
ब्रह्मर्षिरसि संवृत्तस्त्वमिदानीं महातपाः ॥१०४॥
विश्वामित्र मुनीशान ऋषयोऽपि ब्रुवन्तु वै ।
ततः सर्वे ऋषिवराः तथैवोचुः सुविस्मिताः ॥१०५॥

---

१. स्नातुं—अयो०, रीवाँ ।

ब्रह्मकुण्डप्रभावेण त्वमिदानीं महाव्रत ।
तपोनिधेमहातेजा ब्रह्मर्षिरसि सर्वदा ॥१०६॥
इतिप्रोक्तः प्रभावस्ते ब्रह्मकुण्डस्य भूरिशः ।
अयोध्यायां रामपुर्यां यत्रोत्तरवहा सरित् ॥१०८॥
उपरागादिषु सदा तत्र स्नानाद्विधानतः ।
लभते सुमहत्पुण्यं कुरुक्षेत्रशताधिकम् ॥१०८॥
ऊषरः[1] पुण्यपापानामयोध्यायामिदं त्रयम् ।
स्वर्गद्वारं ब्रह्मकुण्डं गुप्तगङ्गा च भूपते ॥१०९॥
तीर्थानि सुबहून्यत्र कोटितीर्थसमान्यपि ।
तीर्थत्रयमिदं पुण्यं सर्वेभ्योऽपि विशिष्यते ॥११०॥
दिवि भूमितले वापि स्थानत्रयमिदं नृप ।
दुर्लभं सर्वदा नृणां यथैतद् गदितं मम ॥१११॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थ-यात्रायामेकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

●

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्योऽपि भगवांस्तपस्तेपे महातपाः ।
यस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं बहुधा सकलोत्तरम् ॥ १ ॥
आदित्यात् समुपश्रुत्य सूक्तानि च यजूंषि सः ।
यत्र संपाठयामास सशिष्यो बहुविस्तरम् ॥ २ ॥
ईजे च भगवान् नित्यं सौमैः संप्रतिवत्सरम् ।
तत्र तस्य तपस्थाने योगस्थाने सुसात्विके ॥ ३ ॥
यः स्नाति मनुजो गत्वा तस्य पुण्यं वदामि किम् ।
वाजपेयादिकोटीनां फलमाप्नोति तत्क्षणात् ॥ ४ ॥

---

१. आकरः—रीवाँ ।

वामदेवस्तथा दिव्यं तपश्चक्रे सुदुस्तरम् ।
तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥ ५ ॥
सोमयागशतं कृत्वा यत्फलं लभते नरः ।
तत्फलं समवाप्नोति तत्रसंस्नानमात्रतः ॥ ६ ॥
अहं वापि तपश्चर्यां विधाय विपुलां नृप ।
यत्रासादितवान् सिद्धिं तत्क्षेत्रं केन सेवितम् ॥ ७ ॥
वैवस्वतो नाम मनुर्भवतां कुलवर्तकः ।
स च तत्रैव विपुले तपस्तेपे मया सह ॥ ८ ॥
तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं किं वदामि महीपते ।
स्नानाद्दानात् पिण्डदानाज्जपाद् ब्राह्मणभोजनात् ॥९॥
विपुलं पुण्यमाप्नोति तत्क्षणादेव मानवः ।
मनुना विपुलं पुण्यं तत्र संस्थापितं नृप ॥१०॥
अङ्गिराश्चैव भगवान् यत्रेजे बहुदक्षिणैः ।
यज्ञैः साक्षाद्विधिर्यत्र ब्रह्मासीद्विश्वसृड् विभुः ॥११॥
शक्रादयस्तथा देवास्तत्तत्कर्मणि संस्थिताः ।
इष्ट्वा च बहुभिर्यज्ञैश्चक्रुरवभृथोत्सवम् ॥१२॥
तत्पुण्यं सारवं क्षेत्रं तन्नाम्नैव प्रतिश्रुतम् ।
तत्र स्नानेन दानेन नरो याति परां गतिम् ॥१३॥
ऋष्यशृङ्गश्च भगवान् यत्र त्वत्पुत्रहेतवे ।
इयाज भूरियज्ञेन तच्च क्षेत्रं महाफलम् ॥१४॥
धनुस्तीर्थं तथा[1] दिव्यं यत्र रामेण शिक्षिता ।
धनुर्विद्या महाराज दैत्यदानवनाशिनी ॥१५॥
तत्तीर्थं यत्प्रदानादिविधानैर्लोकपावनम् ।
विश्वामित्रेण मुनिना यत्र रामाय साधवे ॥१६॥
शस्त्राण्यस्त्राणि च विभो शिक्षितानि महात्मनः ।
लक्ष्मणाय च शत्रुघ्ने [घ्न-] भरताय [भ्यां] च भूपते॥१७॥

---

१. महा°—अयो० ।

मखस्थाने[1] नरः स्नात्वा सर्वपापं व्यपोहति ।
अश्वमेधादि यागानां लभेद्पुण्यं दिनेदिने ॥१८॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि वनानां वनमुत्तमम् ।
अयोध्यापरितो राजन् चतुर्विंशतियोजनम् ॥१९॥
प्रमोदवनमित्युक्तं सरयूतटसन्निधौ ।
तस्यास्तरङ्गपवनैः पावितं सर्वतोदिशम् ॥२०॥
रामलीलाविहारस्य स्थानभूतं सनातनम् ।
रामवैकुण्ठमित्युक्तं कविभिः शास्त्रकोविदैः ॥२१॥
गावः संचारिता यत्र रामेण तव सूनुना ।
सुखितस्य गवेन्द्रस्य गोष्ठं यत्र प्रतिष्ठितम् ॥२२॥
तथा श्रीनन्दनस्यापि गोपालस्य महीपते ।
राजिनीवल्लभस्यापि स्थानमत्रैव राजते ॥२३॥
तन्मण्डलं महाराज साक्षाद्वैकुण्ठमुत्तमम् ।
पदे पदेऽश्वमेधादियज्ञकोटिफलप्रदम् ॥२४॥
व्रजाङ्गना यत्र रमेश्वरस्य गायन्ति पुण्यानि यशांसि शश्वत् ।
प्रकम्पितैरुत्पुलकैर्वपुर्भी रमन्त्य उच्चैः प्रणयप्रकर्षम् ॥२५॥

राजोवाच

रामो राजकुले जातो वीर्यवान् वीरपुङ्गवः ।
कथं चारितवान् धेनूः सुखितस्य गवांपतेः ॥२६॥
एतन्मे संशयं छिन्धि तत्त्वज्ञोऽसि भवान् मुने ।
वणिजां कृत्यमेतद्वै क्षत्रस्य जनितं कथम् ॥२७॥

वशिष्ठ उवाच

स्वतन्त्रेच्छस्य रामस्य किमेतद्यदनौचिती ।
तथापि कारणं तत्र वदामि तव भूपते ॥२८॥
आविर्भूतं परमपुरुषं त्वद्गृहे श्रीरमेशं
रामं सच्चित्सुखमयतनुं ब्रह्म पूर्णप्रकाशम् ।

---

१. तत्र स्थाने—रीवाँ ।

विज्ञायोच्चैः सहजसुखदाद्व्यापिवैकुण्ठधाम्नः
प्रादुर्भूता अमुमनुगता देववाचोऽपि तास्ताः ॥२९॥
कर्मज्ञानार्चनविधिपरा ऋग्यजुःसामसंस्था
नानाकारा[1]व्रजभुवि ऋचो धेनुरूपेण जाताः ।
भक्तेस्तत्त्वं समनुभवितुं सर्वशास्त्रोत्तमाया—
स्ता रामेण स्वयमविरतं पालितास्तत्र गोष्ठे ॥३०॥
अतः परं वेदऋचः समस्ता भक्त्यैकतात्पर्यवतीः सतत्त्वाः[2] ।
जानीहि भूमीपतिसार्वभौम याधिप्रमोदाटवि संचरन्ति ॥३१॥
प्रमोदवनमेकान्ते भक्तिरूपं निशामय ।
तत्र प्रविष्टा गोरूपा ऋचो भक्तिमनुव्रताः ॥३२॥
गोपालाः सकलास्तत्र देवाश्च ऋषयोऽमलाः ।
तत्तच्छास्त्रा[3]चार्यपदं स्पृशन्तो भक्तिभाविताः ॥३३॥
काश्चिद् गुरोश्च वै धेनूर्विश्वामित्रस्य भूतले ।
रामः पालितवान् राजन् प्रमोदविपिनान्तरे ॥३४॥
कुन्दवने यथा रेमे श्रीरामः सीतया सह ।
श्रीनन्दनस्य सुतया तथा रामोऽत्र सुन्दरः ॥३५॥
एतद्रहस्यं चरितं सुपावनं रामस्य राजंस्तव पुत्रतापदम् ।
प्राप्तस्य संप्रोक्तमतीव सुन्दरं मया त्वदग्रे हृदि तद्विधारय ॥३६॥
न वाच्यमिदमन्यस्मै जनाय जनतादृशे ।
अन्यद्वै देवचरितमन्यज्ज्ञानं च लौकिकम् ॥३७॥
अक्लिष्टकर्मा भगवान् रघूत्तमस्तवात्मजो यः पुरुषः पुरातनः ।
न तस्य वीर्यं प्रविदन्ति तत्त्वतो ब्रह्मादयोऽन्यस्य जनस्य का कथा ॥३८॥
तवालये सर्वसमृद्धिसंयुते तिष्ठन्नेवायं प्रकाशान्तरेण ।
पूर्णस्वरूपो रममाण उच्चैरधिप्रमोदाटवि संविभाति ॥३९॥
मैनं प्रभुं विद्धि नृप स्वमात्मजं मायागुणैः कल्पितभूरिभावम् ।
अयं हि साक्षात् पुरुषोत्तमोत्तमः श्रीसाकेते योऽनिशं संविभाति ॥४०॥
भक्त्या त्वमुष्य परमस्य परस्य पुंसस्तीव्रं भवोद्भवमगाधमपारमेनम् ।
क्लेशं तरन्ति भविकं च सदा लभन्ते ये स्युः पदाम्बुरुहमस्य परिप्रपन्नाः ॥४१॥

१. ज्ञानाकारा—रीवाँ । २. स्वतन्त्राः—रीवाँ । ३. तत्रस्था स्वा°—अयो० ।

एतत्ते कारणं प्रोक्तं रामगोचारणे नृप ।
अवधार्य हृदा नित्यं कृतार्थो भव संततम् ॥४२॥
तत्तादृक् पुण्यमाख्यातं सुन्दरं व्रजमण्डलम् ।
माङ्गल्यावल्लभो यत्र सुखितः संप्रतिष्ठितः ॥४३॥
शरदो द्वादशानेन रामेण विहृतं पुरा ।
यत्र सौभाग्यसंपन्ने साक्षाल्लक्ष्मीनिकेतने ॥४४॥
वनानि तत्र परितो विभान्ति सुबहून्यपि ।
तयोर्मध्ये द्वादशैव मुख्यानि रघुभूपते ॥४५॥
येषु श्रीरामचन्द्रस्य तव पुत्रस्य संततम् ।
पदाम्भोरुहचिह्नानि दृश्यन्ते भक्तिमज्जनैः ॥४६॥
नित्यं च कमला यत्र मूर्तिमत्यनुगायति ।
रामचन्द्रचरित्राणि व्रजदारान् प्रगायतः ॥४७॥
एकैकं चरितं तत्र रामस्य सुमहात्मनः ।
परमानन्दसदनं मुनीनामपि मोहनम् ॥४८॥
कुञ्जपुञ्जमनोज्ञास्ताः सुपुण्यव्रजभूमयः ।
क्षणे दृष्ट्वा अपि नृणां हरन्ति त्रिजनुःशुचम् ॥४९॥
सरयूजलकल्लोलसमीरणसुशीतले ।
व्रजदेशेऽधिवसितुं को नेच्छेत वपुर्धरः ॥५०॥
तत्र पुण्यानि तीर्थानि काशीकोटिसमानि वै ।
तानि कृत्वा जनो मुञ्चेदन्यतीर्थौघवासनाः ॥५१॥
प्रथमं मञ्जुलवनं वनानामुत्तमं वनम् ।
यत्र मञ्जुलवीथीषु विपुलं विमलं सरः ॥५२॥
यत्रश्रीः सततं भाति क्रीडन्ती परया मुदा ।
नित्यं निनादितं नादैस्तस्याश्चरणपूरयोः ॥५३॥
तत्र स्नानेन दानेन वैष्णवानां च भोजनैः ।
सीतारामचन्द्रौ देवौ प्रीयेते नात्र[1] संशयः ॥५४॥

---

१. प्रीतौ नास्त्यत्र—अयो० ।

कामिकावनमुद्दिष्टं द्वितीयं सर्वकामदम् ।
यत्र लक्ष्मीकटाक्षेण हरदग्धो मनोभवः ॥५५॥
पुनरङ्गं परिप्राप्य त्रिजगज्जेतुमुद्यतः ।
तत्र स्वर्णमयीं दत्त्वा प्रतिमां कामदैवताम् ॥५६॥
पुनः स्नात्वा विधानेन सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
कुर्याच्चैव तिलाज्याभ्यां होमं श्रीरामतुष्टये ॥५७॥
भोजयेद् ब्राह्मणान् भूरि तस्य पुण्यं न गण्यते ।
तृतीयं तु प्रेमवनं यत्र श्रीव्रजयोषिताम् ।
रामचन्द्रमुखं दृष्ट्वा प्रेमाविर्भाव आगतः ॥५८॥
तत्र स्नानादिना लोको हरेः प्रेमाणमाप्नुयात् ।
येना[1]प्रेनानवाप्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ॥५९॥
तुर्यं रसालविपिनं महारसनिकेतनम् ।
रसैर्भोजयते विप्रान् यस्तत्र हरितुष्टये ॥६०॥
तस्य पुण्यस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ।
यत्र गोचारणे रामः क्षुधितान् गोपबालकान् ॥६१॥
रसालफलसंदोहैर्योगमायाविनिर्मितैः ।
कृतवान् भूयसीं तृप्तिं कल्याणगुणभूषणः ॥६२॥
पुण्यं पवित्रमतुलं महापातकनाशनम् ।
वनानामुत्तमं स्थानं भक्तानां तद्रसावहम् ॥६३॥
पञ्चमं मन्दारवनं मन्दारद्रुमसंकुलम् ।
देवदेवीगणाकीर्णं नित्योत्सवनिकेतनम् ॥६४॥
स्नानदानविधानेन संततं पापनाशनम् ।
तत्रस्थपवनस्पर्शात् पूतो भवति मानवः ॥६५॥
पारिजातवनं षष्ठं सर्वर्तुसुखसंयुतम् ।
तत्र गत्वा नरो नित्यं स्नान[2]दानादि यश्चरेत् ॥६६॥
तस्य पुण्यमनन्तं हि मेरुणापि न तत्समम् ।
तुलाकोटिस्वर्णभारैर्न तत् संभावितं भुवि ॥६७॥

---

१. यत्रा°—अयो०, रीवाँ । २. सान्न°—रीवाँ ।

सप्तमं कन्दलवनं प्रेमानन्दैककन्दलम् ।
गीयते यत्र सुन्दर्या दानलीला मनोहरा ॥६३॥
तत्र गत्वा नरः स्नायात् स्थले वापि जलेऽमले ।
वैदिकेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दधिभाण्डानि दापयेत् ॥६९॥
तुलाकोटिसमं पुण्यं जायते नात्र संशयः ।
स्वर्णादिपात्रमध्ये तु गवां दधि सुधोज्ज्वलम् ॥७०॥
सदक्षिणं प्रदातव्यं श्रीरामचन्द्रतुष्टये ।
तस्य पुण्यस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥७१॥
अष्टमं संमदवनं मनःसंमदवर्धनम् ।
गीयते यत्र सुन्दर्या मोनलीलामहोत्सवः ॥७२॥
तत्र ब्राह्मणवर्येभ्यः पटभूषणभोजनैः ।
मानयित्वा विशेषेण महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥७३॥
नवमं केशरवनं नागकेशरभूषितम् ।
यत्र स्नात्वा नरः सद्यो गङ्गास्नानसहस्रजम् ॥७४॥
महत्पुण्यमवाप्नोति तथा ब्राह्मणभोजनात् ।
अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ॥७५॥
दशमं माणिक्यवनं नवमाणिक्यमञ्जुलम् ।
सदापल्लवितं भाति रामकेलिनिकेतनम् ॥७६॥
यत्र माणिक्यनिवहैर्भान्ति मञ्जरिता द्रुमाः ।
अनेकवर्णकिरणैर्विचित्रितनभस्थला ॥७७॥
तत्र माणिक्यदानेन नरः सौभाग्यमाप्नुयात् ।
सुवर्णकलशोमध्ये दधिदुग्धादिपूरिते ॥७८॥
पञ्चरत्नं निधायाथ दद्याद् ब्राह्मणसत्तमे ।
तत्पुण्यमतुलं येन स्वर्गे लोके महीयते ॥७९॥
एकादशं पद्मवनं श्रिय एकान्तमन्दिरम् ।
शेते सीतापतिर्यत्र महालक्ष्मीनिषेवितः ॥८०॥
भोजयेत् सुबहून् विप्रान् तत्र शर्करपायसैः ।
दीर्घसत्रान् मखान् कृत्वा यत्पुण्यं लभते नरः ॥८१॥

तत्पुण्यं समवाप्नोति तत्क्षणान्नात्र संशयः ।
एकादश्यां व्रतं कृत्वा द्वादश्यां भोजयेद् द्विजान् ॥८२॥
पुण्यं सहस्रगुणितं ततोऽपि समवाप्यते ।
श्रीसीतारामचन्द्रौ च तुष्येतां तेन कर्मणा ॥८३॥
द्वादशं सौरभवनं सदा सुरभिसेवितम् ।
तत्र पुण्यसरो नाम सरसामुत्तमं सरः ॥८४॥
तत्र स्नानेन दानेन नरो मुच्येत किल्विषात् ।
पूजयेद् विविधैः पुष्पैः सीतारामौ परात्परौ[1] ॥८५॥
कोटियज्ञफलं तेन तत्क्षणाल्लभते नरः ।
वनानि द्वादशैतानि पुण्यानि मधुराणि च ॥८६॥
स्नानदानादिविधिभिः सर्वकामप्रदानि च ।
तावन्त्युपवनान्यत्र कीर्तितानि मनीषिभिः ॥८७॥
येषु स्नानादिविधिभिः कोटियज्ञफलं भवेत् ।
दद्याच्छ्राद्धानि विधिवत् पितृभ्यस्तत्र तत्र वै ॥८८॥
गयाश्राद्धसमं पुण्यं तेनाप्नोति पदे पदे ।
माधुरीकुञ्जमाद्यं स्यान्मल्लीकुञ्जं द्वितीयकम् ॥८९॥
तृतीयं मालतीकुञ्जं यूथीकुञ्जं तुरीयकम् ।
पञ्चमं लवलीकुञ्जं कालीकुञ्जं च षष्ठकम् ॥९०॥
सप्तमं लवंगीकुञ्जं केतकीकुञ्जमष्टमम् ।
नवमं मालिकाकुञ्जं रत्नकुञ्जं ततः परम् ॥९१॥
एकादशं केकि[2]कुञ्जं द्वादशं केलिकुञ्जकम् ।
एतेषु गमनादेव कोटिसोमफलं लभेत् ॥९२॥
स्नानाद्दानात्तथा ध्यानाद् रामसायुज्यमाप्नुयात्
सरयूपरितः सर्वा राजते शुद्धभूमयः ॥९३॥
तेषु वैकुण्ठरूपेण विष्णुर्वसति सर्वदा ।
शुद्धभक्त्या समाराध्य तत्र साक्षाद्रमापतिम् ॥९४॥

---

१. सीतारामचन्द्राविह—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. केलि°— अयो०, मथु०, बड़ो० ।

भुङ्क्त्वेह विपुलान् भोगानन्ते कैवल्यभाग् भवेत् ।
अयोध्यापरितो देशे पशुपक्ष्यन्त्यजा[1] अपि ॥९५॥
सर्वे चतुर्भुजा ज्ञेया इत्याज्ञा वैदिकी परा ।
नन्दिग्रामः सदा भाति साक्षान्नित्यं हरेः पदम् ॥९६॥
सुखिताख्येन गोपेन नित्यमेव समर्चितम्[2] ।
पालीग्रामः सदाभाति कोटितीर्थसमाश्रयः ॥९७॥
श्रीनन्दनो गोपराजो यत्र नित्यं प्रतिष्ठितः ।
आभीराणां च गोष्ठानि विभान्ति परितस्तयोः ॥९८॥
यत्रत्या[3] मनुजाः सर्वे देवरूपा न संशयः ।
मध्ये मञ्जुवटो नाम बहुपादविराजितः ॥९९॥
नीलकण्ठः स वै साक्षात्तस्य छाया मनोहरा ।
निषण्णास्तासु गोपाल्यो गायन्ति श्रीहरेर्यशः ॥१००॥
तद्गाननादमुदिताः कृष्णसाराः समंततः ।
तथैव सोमसवनो रामरासवटः शुभः ॥१०१॥
देवैः संप्रार्थितो रामो यत्र नाट्यमचीकरत् ।
तथा रामवटो नाम स्निग्धच्छायामनोरमः ॥१०२॥
सीतावटश्च सततं प्रोद्भाति रुचिरोच्छ्रयः ।
तथास्थाणुवटो नित्यं विभाति नवपल्लवैः ॥१०३॥
एते पञ्चवटा पुण्याः साक्षात् कल्पद्रुमाधिकाः ।
तेषां छायामुपाश्रित्य भवतापो निवर्तते ॥१०४॥
तत्र संपूजयेद् देवं राघवं सीतया सह ।
भोजयेद् वहुशो विप्रान् सिताज्यबहुपायसैः ॥१०५॥
यथोदितेन विधिना दद्याद् गाश्च पयस्विनीः ।
लभते मानवः पुण्यं मेरुशैलशताधिकम् ॥१०६॥
राजते तत्र रत्नाद्रिः साक्षाद्रत्नमयो गिरिः ।
यस्य छायां समाश्रित्य सरयू शीतलोदका ॥१०७॥

---

१. पक्षंतिजा—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. समन्वितम्—मथु०, बड़ो० ।
३. तत्रत्या—मथु०, बड़ो० ।

तथा सौगन्धिको नाम गिरिराजः प्रतिष्ठितः ।
तयोर्विधाय मनुजः प्रादक्षिण्यं विशेषतः ॥१०८॥

पृथ्वीप्रदक्षिणापुण्यं लभते नात्र संशयः ।
एकादश्यां वा द्वादश्याममायां पूर्णिमादिने ॥१०९॥

रत्नाचलं परिक्रम्य पृथ्वीदानफलं लभेत् ।
रत्नाद्रिं संपरिक्रम्य स्नात्वा श्रीरामकुण्डके ॥११०॥

सरयूं वावगाह्याथ पुनर्जन्म न विद्यते ।
सौगन्धिकं महाशैलं रामकेलीनिकेतनम् ॥
संपूज्य लक्ष्मीरमणं जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥१११॥

गत्वा द्वादश काननेषु परितः प्रेम्णा परिक्रामयन्
स्नात्वा वार्षिकवासरेषु सलिलैः पूर्णे स्थले वा जले ।
ध्यात्वा गोपवधूविहाररसिकं रामाभिधानं महः
प्राप्नोति द्रुतमश्वमेधनिवहैर्यत्पुण्यमुच्चैर्जनः ॥११२॥

तमसामवगाह्याथ वनमालाविभूषिताम् ।
मुनीनां यज्ञवाटांश्च दृष्ट्वा पुण्यनिधिर्भवेत् ॥११३॥

अयोध्यायामादिलिङ्गं गौरीकान्तं महेश्वरम् ।
अन्यानि चैव लिङ्गानि परितः सन्ति यानि वै ॥११४॥

तानि स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च तीर्थयात्राफलं लभेत् ।
तथा चण्डीं भगवतीं संपूज्य विधिवन्नरः ॥११५॥

स्नात्वा लक्ष्मणकुण्डे च कुण्डे मन्नामनिर्मिते ।
स्नात्वा दत्त्वा च दानानि तीर्थयात्राफलं लभेत् ॥११६॥

रामघट्टे नरः स्नात्वा स्वर्गद्वारेण मानवः ।
श्राद्धं दत्त्वा पितृप्रीत्यै सर्वं फलमवाप्नुयात् ॥११७॥

हनुमन्तं च सुग्रीवं लक्ष्मणं च विभीषणम् ।
अयोध्याकोटपालांश्च प्रातरुत्थाय यः स्मरेत् ॥११८॥

कल्याणं समवाप्नोति दुःस्वप्नादींश्च नाशयेत् ।
एवं यो वर्तयेन्नित्यमाजन्म सुकृती भवेत् ॥११९॥

पुरीणामथ सप्तानामयोध्या मूर्द्धगा मणिः ।
यस्याः स्मरणमात्रेण ब्रह्महत्यादि नाशयेत् ॥१२०॥

इतिश्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे[1] दशरथतीर्थयात्रायां द्व्यधिक[2]शततमोऽध्यायः ॥१०२॥

●

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

नैमिषारण्यमध्ये च तीर्थानि शृणु भूपते ।
येषु स्नानेन दानेन मानुष्यं पुण्यभाग्भवेत् ॥ १ ॥
शौनकस्याश्रमे दिव्ये गोमतीपुलिने नृप ।
यत्र सूतो मुनीन्द्रेभ्यो[3] निजगाद विशेषतः ॥ २ ॥
इतिहासपुराणानि विविधाश्चैव सत्कथाः ।
ब्रह्मतीर्थे विष्णुतीर्थे रुद्रतीर्थे च भूपते ॥ ३ ॥
स्नानं कृत्वा द्विजातिभ्यो देयानि द्रविणानि च ।
सारस्वते महातीर्थे स्नातव्यं च विशेषतः ॥ ४ ॥
अन्यानि चैव तीर्थानि तत्र[4]सन्ति सहस्रशः ।
बलदेवस्य यात्रायां यानि पुण्यानि सत्पते[5] ॥ ५ ॥
यज्ञानां विघ्नकर्तारो राक्षसा यत्र नाशिताः ।
बलदेवेन वीरेण पुरा मुशलधारिणा ॥ ६ ॥
तवात्मजेन रामेण यत्र पुण्यं यशः कृतम् ।
मुनीनां तपसो विघ्ना दानवा नाशितास्तथा ॥ ७ ॥
चिरं तत्र मुनिस्तोमा उषिता[6]जितचेतसः ।
तेषामाश्रमवर्येषु गन्तव्यं च विशेषतः ॥ ८ ॥

---

१. अयोध्यामाहात्म्ये इत्यधिकं—अयो० । "पूर्वखण्डे" नास्ति—मथु०, बड़ो० । २. त्रि०—अयो० । ३. पूतो मुनीन्द्रो यो—अयो० । ४. यत्र—अयो० । ५. सत्पतेः—मथु०, बडो० । ६. उचिता—अयो०, रीवाँ ।

गोमत्यां च नरो वारिण्याप्लुत्य गतपातकः ।
विष्णुं ध्यायेत मनसा सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥ ९ ॥
किं तेन न कृतं पुण्यं मानवेन महात्मना ।
येनेदं नैमिषारण्यं पद्भ्यां समवगाहितम् ॥१०॥
पदे पदेऽतिपुण्यानि तीर्थानि किल सन्ति वै ।
ॐकारध्वनिरत्रैव श्रूयते सततं जनैः ॥११॥
ब्रह्मणा तैजसं चक्रं विसृष्टं यत्र वै पुरा ।
क्षेत्राधिष्ठानरूपं तज्जातमत्र न संशयः ॥
शीर्णा तस्य महानेमिर्मुनीनां स्थानदायिनी ॥१२॥
निमिषेण च वै दैत्या विष्णुना नाशिताः पुरा ॥
तस्मात्तन्नैमिषं नाम तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ॥१३॥
भवतां पूर्वजो यत्र भरतो नाम भूपतिः ।
तपः कृत्वावसद् भूपः क्षेत्रपुण्यविवृद्धये ॥१४॥
तस्मिन् भरतकुण्डे तु नरः स्नात्वा विमुच्यते ।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो दुस्तरेभ्योऽपि भूपतिः ॥१५॥
तपः कृत्वावसद् भूयः क्षेत्रपुण्यविवृद्धये ।
चक्रतीर्थे च तत्रैव तीर्थानामुत्तमं स्थितम् ॥१६॥
तत्र संस्नानमात्रेण तीर्थकोटिफलं लभेत् ।
तप्तकुण्डे नरः स्नात्वा सर्वं पापं व्यपोहति ॥१७॥
गोमतीस्नानमात्रेण जनः स्यात् पङ्क्तिपावनः ।
इतिहासपुराणानामुत्पत्तिस्थानमुत्तमम् ॥१८॥
पञ्चरात्रमिह स्थित्वा विष्णुपूजापरो नरः ।
कोटियज्ञफलं लब्ध्वा भुक्त्वान्ते मुक्तिभाग् भवेत् ॥१९॥
वसन्ति देवताः सर्वा ब्रह्मा चैव चतुर्मुखः ।
तत्र प्रवेशमात्रेण धौतपापो[1] भवेन्नरः ॥१०॥
मासं चेन्निवसेत्तत्र तीर्थयात्रापरायणः ।
अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ॥२१॥

---

१. वीतपापो—रीवाँ ।

यानि तीर्थानि सर्वाणि पृथिव्यां सन्ति कोटिशः ।
तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति नैमिषारण्यमध्यतः ॥२२॥
यत्पुण्यं नैमिषारण्ये पञ्चरात्रेण जायते ।
वर्षकोटिशतेनापि नान्यतीर्थेषु तस्य तत् ॥२३॥
सरयूर्निःसृता यस्मात् तत्सरश्चापि पावनम् ।
तत्र स्नात्वा विधानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२४॥
प्रयागं च ततो गच्छेत् तीर्थराजं पुरातनम् ।
गङ्गायमुनयोर्यत्र सङ्गमो लोकविश्रुतः ॥२५॥
तत्र यद्यत्कृतं सर्वं भवेदक्षयकामदम् ।
स्नात्वा दत्त्वा द्विजातिभ्यो महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥२६॥
गङ्गाभेदे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
देवान् मुनीन् पितॄंस्तत्र तर्पयेत्तीर्थवारिभिः ॥२७॥
नरः पुण्यमवाप्नोति सोमयागशतोद्भवम् ।
तेन पुण्यप्रभावेण लोके सारस्वते वसेत् ॥२८॥
बाहुदायां[1] नरः स्नात्वा वसेत्तत्पुलिने शुचिः ।
जपपूजापरो भूप एकरात्रं समाहितः ॥२९॥
तत्पुण्यं तस्य यत्पुण्यं लक्षब्राह्मणभोजनात् ।
बाहुदा[2]तीर्थमिच्छन्ति देवाश्च पितरस्तथा ॥३०॥
गत्वा चिरनदीं भूयः स्नानं कुर्याद्विलक्षणः ।
तर्पयेत्तेन पयसा देवर्षिपितृदेवताः ॥३१॥
विमलाशोकमध्ये तु रात्रिमेकां समावसेत् ।
तेन पुण्येन राजेन्द्र दिव्यान् लोकानवाप्नुयात् ॥३२॥
भर्तृस्थानं समासाद्य कोटितीर्थस्य वारिणि ।
समाप्लुत्य नरो विद्यात् गोसहस्र फलं लभेत्[3] ॥३३॥
असीवरुणयोर्मध्ये पञ्चकोशान्तरे नृप ।
पदे पदे महातीर्थान्यासते तत्र कोटिशः ॥३४॥

---

१. बहुदायां—रीवाँ। २. बहुदा°—रीवाँ। ३. नरः—मथु० बड़ो०।

एकतो भगवान् विष्णुर्माधवः संप्रतिष्ठितः ।
अपरत्र च लोलार्कः कोटिद्वय[1]मिदं स्थितम् ॥३५॥
धनुराकारतापन्नं काशीपुरमुदित्वरम् ।
यत्र कुत्र नरः स्नात्वा कोटियज्ञफलं लभेत् ॥३६॥
मनसा चिन्तयन् काशीं महत्फलमवाप्नुयात् ।
किं पुनः स्नानदानादितीर्थयात्राविधानतः ॥३७॥
वाराणस्यां मृतो जन्तुः शाङ्करं लोकमाप्नुयात् ।
विशेषाज्ज्ञाननिष्ठश्चेन्निर्गुणां मुक्तिमाप्नुयात् ॥३८॥
तत्र संपूज्य विधिवद् विश्वेश्वरमुमापतिम् ।
कोटियज्ञफलं प्राप्य सोऽन्ततो मुक्तिमाप्नुयात् ॥३९॥
कपिलाह्रदसंस्नानान्महादेवस्य पूजनात् ।
चतुःषष्टिदर्शनाच्च राजसूयफलं लभेत् ॥४०॥
ततश्च गोमतीगङ्गासङ्गमे तीर्थमुत्तमम् ।
अग्निष्टोमादिफलदं मार्कण्डेयमहामुनेः ॥४१॥
तत्र स्नात्वा वसेत्तत्र जपहोमपरायणः ।
ब्रह्मयज्ञं विनिर्वर्त्य जनः स्यात् पङ्क्ति[2]पावनः ॥४२॥
ततो गच्छेद् गयां राजन् पितॄणां मुक्तिदायिनीम् ।
गयो नाम गिरिर्यत्र महापुण्यतमो नृप ॥४३॥
तथैव चाक्षयवटस्तत्र पिण्डान् सुनिर्वपेत् ।
स्मृत्वा स्मृत्वा नरव्याघ्र यावन्तो वै कुले मृताः ॥४४॥
ते सर्वे मुक्तिमिच्छन्ति पिण्डवापाद् गयाशिरे ।
गयापिण्डप्रदातारं प्रशंसन्ति च देवताः ॥४५॥
पितरश्च प्रशंसन्ति जातो भाग्येन नः कुले ।
येन संमोचिताः सर्वे दुस्तराद् भवसागरात् ॥४६॥
अक्षयस्य वटस्याथ मूले दत्तं तदक्षयम् ।
तत्रैव विद्यते राजन् फल्गुनाम[3]महानदी ॥४७॥

---

१. "एकस्यां कोटौ विन्दुमाधवः अपरस्यां च लोलार्कः उभयोर्मध्ये वाराणसी" टि०—मथु० । २. भक्ति°—रीवाँ । ३. फल्गुनाम—रीवाँ ।

तस्यामाचम्य विधिवत् तर्पयेत् सकलान् पितॄन् ।
अक्षयं फलमाप्नोति निजवंश्यान् समुद्धरेत् ॥४८॥
धर्मारण्ये तु तत्रैव पुण्यं ब्रह्मसरः स्थितम् ।
एकां रात्रिं वसेत्तत्र कोटियज्ञफलाप्तये ॥४९॥
महानद्यां च कौशिक्यां जनः स्नात्वा विधानतः ।
प्रदद्यात् पितृदेवेभ्यः श्रद्धायुक्त[1]स्तिलाञ्जलीन् ॥५०॥
पुण्ये ब्रह्मसरस्यद्भिरवगाह्य शुचिव्रतः ।
ब्रह्मयूपं विधानेन नरः कुर्यात् प्रदक्षिणाम् ॥५१॥
गङ्गा पुण्यनदी यत्र तस्यास्तीरे भगीरथः ।
बहुदक्षिणयज्ञौघैरीजे पुरुषसत्तमम् ॥५२॥
आप्लुत्य तत्र तीर्थे तु भोजयित्वा बहून् द्विजान् ।
सर्वस्यास्तीर्थयात्रायाः पुण्यमाप्नोति मानवः ॥५३॥
विश्वामित्रस्य राजर्षेर्ब्रह्मर्षित्वप्रदायिनी ।
कौशिकी पुण्यसलिला तस्यास्तीरे वसेद् द्विजः ॥५४॥
भूयः प्रेतशिलादौ च स्थाने तत्र व्रजेन्नरः ।
तदीयेनैव विधिना सर्वत्र श्राद्धमाचरेत् ॥५५॥
सर्वं तत्तीर्थमतुलं पितॄणां मुक्तिदायकम् ।
स्नानैर्दानैश्च विधिभिः सर्वान् संतारयेत् पितॄन् ॥५६॥
धेनुकं नाम तीर्थं च समासाद्य महीपते ।
तिलधेनूर्द्विजातिभ्यो दद्यात् सर्वविशुद्धये ॥५७॥
एकरात्रमिह स्थित्वा जपहोमपरायणः ।
तिलधेनुप्रदानेन सोमलोकमवाप्नुयात् ॥५८॥
कपिलायाः सवत्सायाः पदेषु तत्र पर्वते ।
सकृदाचम्य मनुजो धुनाति खलु पातकम् ॥५९॥
गत्वा गृद्धवटं तत्र दृष्ट्वा च शिवदं शिवम् ।
भस्मस्नायी लभेत् पुण्यं द्वादशाब्दव्रतोद्भवम् ॥६०॥
पदे सावित्रके सन्ध्यामुपास्ते यः सकृन्नरः ।
तत्र द्वादशवार्षिक्याः संध्यायाः फलमाप्नुयात् ॥६१॥

१. श्राद्धयुक्तान्—रीवाँ ।

योनिहारं स्थलं तत्र योनिसंकटमोचनम् ।
तत्र गत्वा दिने स्थित्वा न पुनर्योनिमाप्नुयात् ॥६२॥
धर्मपृष्ठे ततो राजन् स्नात्वा कूपोदकेन च ।
तर्पयेद्देवतांश्चैव मुनींश्चैव पितॄंश्च हि ॥६३॥
पीत्वा कूपोदकं तत्र सर्वपापं व्यपोहयेत् ।
मतङ्गस्याश्रमे चापि गन्तव्यं तीर्थयात्रिणा ॥६४॥
ब्रह्मतीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्माणं च समर्थयेत् ।
इष्टं तेनाश्वमेधेन तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥६५॥
गत्वा राजगृहे तत्र स्थाने काक्षीवतो[1] मुनेः ।
पक्षिण्यां नित्यकं[2] भुक्त्वा ब्रह्महत्यादिकं त्यजेत् ६६॥
मणिनागे नरो गत्वा भुक्त्वा तस्य च नित्यकम् ।
गोसहस्रफलं प्राप्य सर्वेभ्यो निर्भयो भवेत् ॥६७॥
गोतमस्य वने गत्वा स्नात्वाऽहल्या[3]ह्रदे जनः ।
अभ्यर्च्य[4] च श्रियं साक्षात्परमां श्रियमाप्नुयात् ॥६८॥
तत्र कुण्डे महापुण्ये स्नात्वा राजर्षिसत्तम ।
अश्वमेधफलं प्राप्य महतीं श्रियमाप्नुयात् ॥६९॥
स्नात्वा जनककूपे च देवगन्धर्वसेविते ।
सर्वपापविशुद्धात्मा श्रीविष्णोर्लोकमाप्नुयात् ॥७०॥
सूर्यतीर्थे नरः स्नात्वा सूर्यलोके महीयते ।
तपोवनं जनो गत्वा तपःफलमवाप्नुयात् ॥७१॥
कर्बुदायां नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
विशालायां ततः स्नात्वा सोमयज्ञ[5]फलं लभेत् ॥७२॥
धारां माहेश्वरीं सम्यगाप्लुत्य गतपातकः ।
अश्वमेधफलं लब्ध्वा नरः स्यात् पङ्क्तिपावनः ॥७३॥

---

१. कक्षीवतो—रीवाँ । २. "पक्षिणी नाम तीर्थं तत्र नित्यं नाम पक्षिपुरीषं" टि०—मथु० । ३. तस्य—अयो०, रीवाँ । ४. अभ्येत्य—मथु०, बड़ो० । ५. °याजि° —मथु०, बड़ो० ।

देवपुष्करिणीं प्राप्य नरः स्नात्वा शुचिव्रतः ।
न दारिद्र्यमवाप्नोति कदापि धरणीपते ॥७४॥
ततः सोमपदं गत्वा स्नात्वा माहेश्वरे[1] पदे ।
तत्रैव तीर्थकोट्यां च समाप्लुत्य विशेषतः ॥७५॥
पूजयित्वा कूर्मराजं विष्णुं दानवमर्दनम् ।
कोटियज्ञफलं प्राप्य वैकुण्ठे धाम्नि मोदते ॥७६॥
तत्र गच्छेद्धरिक्षेमं हरेः स्थानमनुत्तमम् ।
यत्र देवाश्च ऋषयः सदासंनिहितं हरिम् ॥७७॥
उपासते सदा भक्त्या देवदेवं जनार्दनम् ।
शालग्रामशिला यत्र प्रजायन्ते सहस्रशः ॥७८॥
विष्णोः सांनिध्यदा नित्यं पूजनात् पुण्यकोटिदा ।
तत्राभिगममात्रेण कोटियज्ञफलं लभेत् ॥७९॥
विष्णुक्षेत्रे नरः स्नात्वा विष्णुलोकं व्रजेद् ध्रुवम् ।
चतुःसामुद्रिके कूपे सकृदाचम्य मानवः ॥८०॥
देवान् पितॄंस्तर्पयित्वा पुण्यकोटिमवाप्नुयात् ।
ऋणत्रयविनिर्मुक्तो जायते तत्क्षणान्नरः ॥८१॥
ततो जातिस्मरस्थाने गत्वाचम्य यथाविधि ।
जातिस्मरत्वसंस्कारं संप्राप्नोति त्रिजन्मजम् ॥८२॥
गण्डकीकौशिकीसंगे नरः स्नायाद् यथाविधि ।
ऐहिकामुष्मिकांश्चापि सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥८३॥
ततः स्नात्वा विपाशायां शोणभद्रे महानदे ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यतेजा भवेन्नरः ॥८४॥
वटेश्वरं वामनं च गत्वाप्लुत्य[2] विशेषतः ।
भरतस्याश्रमं गच्छेन्मुनिवर्यस्य मानवः ॥८५॥
तत्र स्नात्वा च कौशिक्यां पुण्यनद्यां धृतव्रतः ।
असंख्येयं[3] फलं प्राप्य धूतपापो भवेन्नरः ॥८६॥

---

१. माहेश्वरी°—अयो०, रीवाँ। २. वामनं गत्वा तत्राप्लुत्य—अयो०, रीवाँ। ३. अगणेयं—मथु०, बड़ो०।

चम्पकारण्यमध्ये च रात्रिमेकान्ततो वसेत् ।
सुमहत्पुण्यमाप्नोति [1]तत्रेन्द्रस्य नमस्कृतेः ॥८७॥
विश्वेश्वरं शिवं पश्येत्तीर्थे गोष्ठिलनामके ।
कन्यासंवेद्यकं तीर्थं गच्छेत् पुण्यफलाप्तये ॥८८॥
तत्र गत्वा लभेत् पुण्यं कन्यादानशतोद्भवम् ।
निश्चीरासंगमे स्नात्वा दत्त्वा दानं द्विजन्मने ॥८९॥
पुण्यमक्षयमाप्नोति[1] यत्र राजन् ममाश्रमः ।
तत्रावगाहमात्रेण महायज्ञफलं लभेत् ॥९०॥
देवकूटं ततो गच्छेत् कोटियज्ञफलाप्तये ।
कौशिक्यह्रद[2] आप्लुत्य कौशिक्यां पुण्यकोटिदे ॥९१॥
विश्वामित्रं गौतमं च स्मृत्वा तत्र जितेन्द्रियः ।
पञ्चरात्रोषितश्चापि तीर्थवर्यमहाह्रदे ॥९२॥
महत्पुण्यमवाप्नोति मासतश्चाश्वमेधकम् ।
महतीं श्रियमाप्नोति तस्मात् पुण्यप्रभावतः ॥९३॥
वीराश्रमस्य मध्यस्थं कुमारमभितो व्रजेत् ।
अग्निधारं व्रजेत् पश्चाद् यत्र विष्णुसदाशिवौ ॥९४॥
शैलराजे तत्र दिव्यं पितामहसरो व्रजेत् ।
नदी कुमारधाराख्या यत्र प्रस्रविणी जवात् ॥९५॥
तत्राप्लुत्य जनो नित्यं सोमयागफलं लभेत् ।
गौरीशिखरमासाद्य स्नायात् कुण्डेषु तत्र च ॥९६॥
देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य महायज्ञफलं लभेत् ।
ताम्रारुणं ततो गत्वा वाजिमेधमवाप्नुयात् ॥९७॥
नन्दिन्यां च महाकूपे स्नात्वा कृत्वा च तर्पणम् ।
इन्द्रलोकं समासाद्य मोदते शरदां शतम् ॥९८॥
कलिङ्गा[3]संगमे चैव कौशिक्यरुणसंगमे ।
स्नानं कुर्यात् त्रिरात्रेण तत्रोपोषित आदरात् ॥९९॥

१—१. नास्ति—अयो०, रीवाँ। २. कौशिकं (क्यं—रीवाँ)—अयो०, रीवाँ। ३. कलिंका—अयो०, रीवाँ।

उर्वशीतीर्थमभ्येत्य सोमाश्रममनुत्तमम् ।
कुम्भकर्णाश्रमे चैव महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥१००॥
कोकामुखे ततः स्नात्वा भवेज्जातिस्मरो नरः ।
नन्दां च सुसमाप्लुत्य नरः स्वर्गमवाप्नुयात् ॥१०१॥
ऋषभद्वीपमाव्रज्य सरस्वत्यां समाप्लुतः ।
गच्छेदौद्दालकं तीर्थमभिषिञ्चेन्निजां तनुम् ॥१०२॥
ब्रह्मतीर्थं ततो गच्छेद्वाजपेयफलाप्तये ।
प्राप्याचम्य नरः स्नात्वा भागीरथ्यां च तर्पयेत् ॥१०३॥
पिण्डदानं च विधिवत् कुर्यात् पितृसुखाप्तये ।
निवेदिकां[२] ततो गत्वा तां सर्वजनसेविताम् ॥१०४॥
सर्वयज्ञफलं प्राप्य पूतो भवति मानवः ।
सन्ध्याकाले ततो गच्छेत् सविद्यातीर्थं उत्तमे ॥१०५॥
आचम्य विधवत् पश्चात्पूतो भवति मानवः ।
सर्वशास्त्रौघविद्यानां पारदर्शी भवेद् ध्रुवम् ॥१०६॥
लौहित्ये तीर्थराजे तु स्नात्वा विधिवदादृतः ।
करतोयां नदीं गच्छेत् कोटियज्ञफलाप्तये ॥१०७॥
[१]कपिलस्याश्रमे पुण्ये पञ्चरात्रोषितो नरः ।
वाजपेयोद्भवं पुण्यं समवाप्नोति पूरुषः[१] ॥१०८॥
ततः स्नानं प्रकुर्वीत गङ्गासागरसंगमे ।
अश्वमेधाधिकं पुण्यं तत्राप्नोति न संशयः ॥१०९॥
वैतरण्यां महानद्यां स्नात्वा दत्त्वा द्विजन्मने ।
विरजाख्ये महातीर्थे स्नानं कुर्याद्विचक्षणः ॥११०॥
ततो ज्योतिरथीशोणसंगमे स्नानमाचरेत् ।
तर्पयेत्तेन तीर्थेन देवताश्च मुनीन् पितॄन् ॥१११॥
ततः स्नायान्महातीर्थे नर्मदाशोणसंगमे ।
वंशगुल्माद्यत्र सरिन्नर्मदाख्या विनिःसृता ॥११२॥

---

२. निवेडितां—मथु, बडो० । १–१. अयं श्लोको नास्ति—अयो० ।

तत्र स्नात्वा नरः सम्यग्[1] महायज्ञफलं लभेत् ।
ऋषितीर्थं ततः स्नायात् कोशलायां रघूद्वह ॥११३॥
कालतीर्थे पुष्पवत्यां त्रिरात्रं संवसेन्नरः ।
स्नात्वा बदरिकातीर्थे वाजिमेधफलं लभेत् ॥११४॥
ततो महेरुकं गच्छेज्जामदग्न्याश्रमं नरः ।
रामतीर्थे महापुण्ये स्नात्वा दद्याद् द्विजाय गाम्[2] ॥११५॥
मतङ्गमुनि[3]केदारे स्नायात्तत्र विचक्षणः ।
श्रीपर्वते नदीतीरे गच्छेद्यत्र सदाशिवः ॥११६॥
संवसत्युमया देव्या तत्र स्नायाद्विचक्षणः ।
देवह्रदे महापुण्ये देवतीर्थे[4]सुरैर्वृते ॥११७॥
ऋषभाद्रौ महापुण्ये पाण्ड्यदेशेऽतिपावने ।
तत्र गत्वा त्रिरात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ॥११८॥
अथावगाह्य कावेर्यां पुण्यतीर्थे महाद्भुते ।
स्नात्वा दत्त्वा द्विजातिभ्यः परमां श्रियमाप्नुयात् ॥११९॥
सहस्रधेनवो येन दत्ता स्वर्णाद्यलङ्कृताः ।
तत्पुण्यं समवाप्नोति कावेरीस्नानमात्रतः ॥१२०॥
समुद्रतीरे विमले कन्यातीर्थेऽतिपावने ।
तत्रोपस्पृश्य विधिवत् पुण्यदेहो भवेन्नरः ॥१२१॥
ततो द्वीपे समुद्रस्य गोकर्णं पार्वतीपतिम् ।
देवगन्धर्वयोगीन्द्रराक्षसोरगसेवितम् ॥१२२॥
त्रैलोक्यबन्धुं भूतेशमभ्यर्च्य विधिवन्नरः ।
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा तथा द्वादशरात्रकम् ॥१२३॥
तत्र स्थित्वा महायज्ञकोटिपुण्यफलं लभेत्[5] ।
ततस्त्रिरात्रं निवसेद् गायत्रीस्थानमध्यगः ॥१२४॥
गायत्रीं चैव सावित्रीं पठेत्तत्र विशेषतः ।
स्मरेद् ब्राह्मण एवैनामन्यस्तु खलु विस्मरेत् ॥१२५॥

---

१. च पीत्वा च—अयो०, च मनुजः—मथु०, बड़ो० । २. द्विजातये—रीवाँ, ३. °मुक्ति°—अयो० । ४. ब्रह्मतीर्थे—मथु०, बडो । ५. भवेत्— अयो०, रीवाँ ।

संवर्त[1]वापिकामध्ये स्नात्वा मन्मथवद्भवेत् ।
वेणायां च ततः स्नात्वा धूतपापो भवेन्नरः ॥१२६॥
देवपित्रर्चनपरस्तस्यास्तीरे समावसेत् ।
ब्रह्मलोकं व्रजेदाशु तस्मात्[2] पुण्यप्रभावतः ॥१२७॥
ततो गोदावरी तीर्थे स्नानं कुर्यादतन्द्रितः ।
वेणायाः संगमे चैव वरदासंगमे तथा ॥१२८॥
ब्रह्मस्थूणां महापुण्यां कुशप्लवनमेव च ।
कृष्णवेणाजलोद्भूतं पुण्यं देवह्रदं तथा ॥१२९॥
ज्योतिमात्रह्रदं चैव कन्याश्रममनुत्तमम् ।
गत्वा स्नात्वा च विधिवदनन्तं पुण्यमाप्नुयात् ॥१३०॥
पयोष्णीसलिले स्नात्वा सर्वपापैर्विमुच्यते ।
दण्डकारण्यमध्ये च स्नात्वा दत्त्वा द्विजातये ॥१३१॥
शरभङ्गाश्रमं गच्छेच्छुकस्य च महाश्रमम् ।
ततः शूर्पारके गत्वा रामतीर्थे समाप्लुतः ॥१३२॥
सप्तगोदावरं गच्छेत्तत्र स्नात्वा जितेन्द्रियः ।
गच्छेद्देवचयं पुण्यं कोटियज्ञफलाप्तये ॥१३३॥
तुङ्गकारण्यमतुलं पवित्रं पापनाशनम् ।
आङ्गीरसेन मुनिना यत्र वेदाः प्रवर्तिताः ॥१३४॥
ब्रह्माविष्णुमहेशाद्यैर्यक्षदेवगणैः पुरा ।
ऋषिभिश्च महाभागैः पुनराधानपूर्वकम् ॥१३५॥
वेदा उपाकृताः सर्वे तत्पुण्यं तीर्थमुत्तमम् ।
गत्वा स्नात्वा विधानेन महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥१३६॥
मेधाविके महातीर्थे स्नात्वा दत्त्वा च भूरिशः ।
गिरिं कालञ्जरं गच्छेद् यत्र देवह्रदः शुचिः ॥१३७॥
तत्र स्नात्वा विधानेन पुण्ये देवह्रदाम्भसि ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः पुण्यलोकानवाप्नुयात् ॥१३८॥

---

१. सुवर्त°—अयो०, मथु० बड़ो० । "ऋषिवापिका" टि०—मथु० ।
२. तस्याः—रीवाँ ।

चित्रकूटाचले स्नात्वा मन्दाकिन्याः शुभे जले ।
यत्रात्रेर्मुनिवर्यस्य सुपुण्यतम आश्रमः ॥१३९॥
पितॄन् संतर्प्य विधिवत् तत्र पुण्यतमोदकैः ।
महत्पुण्यमवाप्नोति दुर्गतिं च विनाशयेत् ॥१४०॥
श्रेष्ठस्थानं ततो गत्वा समभ्यर्च्य च शङ्करम् ।
चतुःसामुद्रिके कूपे स्नात्वा चैव विधानतः ॥१४१॥
शृङ्गवेरपुरं गच्छेद् गङ्गासेवितसंनिधिः ।
स्नात्वा चैव तु गङ्गायां सर्वं पापं विधूनयेत् ॥१४२॥
गत्वा मुञ्जवटं चैव तत्राभ्यर्च्य सदाशिवम् ।
महत्पुण्यमवाप्नोति क्षेत्रस्यास्य प्रभावतः ॥१४३॥
सर्वेषामपि भूपानां यथा रघुपते भवान् ।
तथा प्रयागस्तीर्थानामिति शुश्रुम भूपते ॥१४४॥
पुष्करं च प्रयागं च कुरुक्षेत्रं तथैव च ।
गङ्गाद्वारं च नृपते मुखमेतच्चतुष्टयम् ॥१४५॥

राजोवाज

पुष्करस्य विधिं ब्रूहि माहात्म्यं च विशेषतः ।
कानि कानि च तीर्थानि तत्र सन्ति महामुने ॥१४६॥

वशिष्ठ उवाच

मनुष्यलोके राजेन्द्र तीर्थं त्रैलोक्यपावनम् ।
त्रिपुष्करमिति ख्यातं दुर्लभं यद् दुरात्मभिः ॥१४७॥
सप्तद्वीपवतीं भूमिमधितिष्ठन्ति यानि वै ।
तानि सर्वाणि तीर्थानि पुष्करे निवसन्ति हि ॥१४८॥
दशकोटिसहस्राणि दशकोटिशतानि च ।
पुष्करे सन्ति तीर्थानि येषां संख्या सुदुष्करा ॥१४९॥
यत्र संनिहितो ब्रह्मा विष्णुश्चैव सदाशिवः ।
तथैव द्वादशादित्या वसवोष्टौ महीपते ॥१५०॥
एकादश तथा रुद्रा विश्वेदेवाश्च सर्वशः ।
ऊनपञ्चाशदनिलाः साध्यास्तुषितनामकाः ॥१५१॥

भास्कराश्चैव सकला महाराजिकसंज्ञकाः ।
गन्धर्वाप्सरसो नागा यक्षराक्षसगुह्यकाः ॥१५२॥
मुनयो मानवाश्चैव तथा राजर्षयोऽखिलाः ।
दैत्याश्च दानवाश्चैव तथा ब्रह्मर्षयोऽपि च ॥१५३॥
तपस्विनो योगिनश्च दानशीला दृढव्रताः ।
पुष्करं समुपाश्रित्य परमां श्रियमाप्नुवन् ॥१५४॥
मनसा स्मृतमात्राणि पुष्कराणि मनीषिभिः ।
धुन्वन्ति सर्वपापानि त्रिसन्ध्यमवनीपते ॥१५५॥
गायत्र्या चैव सावित्र्या ब्रह्मा लोकपितामहः ।
पुष्करे निवसन्नित्यं संचिनोति परां मुदम् ॥१५६॥
ऋषयः पितरो देवा ब्रह्माणमनुसंगताः ।
तत्रासत महाराज पुण्यतीर्थेऽतिपावने ॥१५७॥
अश्वमेधादियज्ञानां तत्र पुण्यं प्रतिष्ठितम् ।
स्नानाद्दानाज्जपाद्धोमात्तथा ब्राह्मणभोजनात् ॥१५८॥
पुण्यलोकानवाप्नोति पुष्करस्य प्रभावतः ।
यत्किञ्चिदपि कर्तव्यं पुण्यमत्र मनीषिणा ॥१५९॥
सकृत्स्नानेन दानेन नरः सर्वमवाप्नुयात् ।
न दुर्गतिं व्रजेत् कांचिन्नच दारिद्र्यमाप्नुते ॥१६०॥
कार्तिक्यां च महीपाल यो नरः स्नाति पुष्करे ।
स तत्पुण्यमवाप्नोति यदक्षय्यं प्रचक्ष्यते ॥१६१॥
त्रिसन्ध्यं यः स्मरेद्राजन् पुष्कराणि दृढव्रतः ।
सर्वतीर्थाभिषेकस्य पुण्यमाप्नोति मानवः ॥१६२॥
पुष्करे स्नानमात्रेण स्त्री वा पुरुष एव वा ।
आजन्मकृतपापस्य परं पारमवाप्नुयात् ॥१६३॥
देवतानां यथा विष्णुर्ग्रहाणां तपनो यथा ।
नक्षत्राणां यथा चन्द्रो मासानां माधवो यथा ॥१६४॥
सिन्धूनां सागरो यद्वद्वर्णानां ब्राह्मणो यथा ।
तथैव सर्वतीर्थानां मुख्यं पुष्करमुच्यते ॥१६५॥

यथा समस्तकाव्यानामाद्यं रामायणं स्मृतम् ।
तथा सकलतीर्थानामाद्यं पुष्करमुच्यते ॥१६६॥
व्रीहीन् वापि यवान् वापि यो वपेत् पुष्करावनौ ।
स सर्वयाज्ञिकं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥१६७॥
पूर्णवर्षशतं येन हुतमप्यावसथ्यके ।
कार्तिक्यां पूर्णिमायां च स्नानमात्रस्य तत्फलम् ॥१६८॥
कृत्वा प्रदक्षिणं तत्र पुष्करक्षेत्रमुत्तमम् ।
सर्वयज्ञफलं प्राप्य स्वर्गे लोके महीयते ॥१६९॥
यज्ञवाटं परिक्रम्य दृष्ट्वा वाराहमीश्वरम् ।
सोमनाथं समभ्यर्च्य गत्वा च मखवेदिकाम् ॥१७०॥
घृतकुल्यां मधोः कुल्यां स्नात्वा देवनदीमिह ।
सर्वपापविशुद्धात्मा पूतो भवति मानवः ॥१७१॥
गायत्रीं चैव सावित्रीं स्मृत्वा देवीं सरस्वतीम् ।
सर्वयज्ञफलं प्राप्य पूतो भवति मानवः ॥१७२॥
जम्बूमार्गं ततो गत्वा सर्वपापं व्यपोहयेत् ।
इदं काशीसमं क्षेत्रं पुण्यं सर्वाघनाशनम् ॥१७३॥
चर्मण्वत्यां महातीर्थं जम्बूमार्गाभिधं महत् ।
पदे पदे तत्र सन्ति शिवलिङ्गानि भूमिप ॥१७४॥
तानभ्यर्च्य नमस्कृत्य सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
जम्बूमार्गं गमिष्यामि जम्बूमार्गे वसाम्यहम् ॥१७५॥
इत्येवं ब्रुवमाणोऽपि प्रातरुत्थाय मानवः ।
महत्पुण्यमवाप्नोति काशीवासशताधिकम् ॥१७६॥
जम्बूमार्गे महाराज मुनीनामाश्रमावली ।
तत्र चैव नरो गत्वा धौतपापः प्रजायते ॥१७७॥
पारिजातगिरिस्तत्र पुण्यदेशः प्रतिष्ठितः ।
तत्रैव षट्पुरं[1] नाम गिरिमध्ये प्रतिष्ठितम् ॥१७८॥

---

१. "षटकडेति भाषा" टि०—मथु० ।

बिल्वकेश्वरसंज्ञं तच्छिवलिङ्गं प्रतिष्ठितम् ।
दर्शनात् स्पर्शनात् तस्य हरेत् पापं त्रिजन्मजम् ॥१७९॥
ततः पुण्यतमां गच्छेद्देवगन्धर्वसेविताम् ।
केतुमालां च मेध्यां च समाप्लुत्य[1] विशेषतः ॥१८०॥
गच्छेत्तु रक्तदन्तायाः स्थानं परमपुण्यदम् ।
रक्तदन्तां नमस्कृत्य सुरथस्य पुरे नृप ॥१८१॥
आजन्मसंभवं पापं तत्क्षणादेव नाशयेत् ।
सुरथस्य पुरं[2] राजन् पवित्रं पुण्यवर्द्धनम् ॥१८२॥
तस्याभिगमनादेव सर्वं पापं व्यपोहयेत् ।
शिवलिङ्गसहस्राणि यत्र सन्ति पदेपदे ॥१८३॥
गङ्गारण्ये नरः स्नात्वा सर्वपापैर्विमुच्यते ।
सैन्धवारण्ययात्रान्तरेषा यात्रा प्रशस्यते ॥१८४॥
लोहार्गलं नाम तीर्थं तस्मिन् देशे प्रतिष्ठितम् ।
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च दशसोमशतं लभेत् ॥१८५॥
गालवस्याश्रमं गत्वा मृगपक्षिनिषेवितम् ।
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥१८६॥
पञ्चरात्रमिह स्थित्वा ब्रह्मचर्यपरो नरः ।
आजन्मसंभवं पापं विधुनोति न संशयः ॥१८७॥
उज्जयिन्यां पवित्राणि स्थानानि शृणु भूपते ।
येषु यात्रां सकृत्कृत्वा पुण्यभाजनतां व्रजेत् ॥१८८॥
तिस्रस्तत्र पुरीः सन्ति महापुण्यफलप्रदाः ।
आदौ ब्रह्मपुरी राजन् भवेद्विष्णुपुरी ततः ॥१८९॥
ततो महारुद्रपुरी सर्वपापप्रणाशिनी ।
यस्याः संदर्शनादेव सर्वं पापं प्रणश्यति ॥१९०॥
महाकालपुरी सर्वा यत्र सिप्रा महानदी ।
महाकालेश्वरं यत्र शिवलिङ्गं पुरातनम् ॥१९१॥

---

१. समासुत्य—अयो० । समसुत्या—रीवाँ । २. "सथूरपुरेति भाषा" टि०—मथु० ।

श्मशानमूषरं क्षेत्रं पीठं चैव वनं तथा ।
पञ्चैकत्र न लभ्यन्ते महाकालपुरीं विना ॥१९२॥
गन्धर्वाणां श्मशानं तन्महापुण्यमिति स्थितम् ।
ऊषरं पुण्यपापानां तत्रैव खलु तिष्ठति ॥१९३॥
अवन्तिका महाक्षेत्रं जनानां पुण्यवर्द्धनम् ।
हरसिद्धिशिवापीठं जपतां सर्वसिद्धिदम् ॥१९४॥
महारुद्रपुरीमध्ये कोटितीर्थं नराधिप ।
स्नात्वा दत्त्वा च विप्रेभ्यः कोटितीर्थफलं लभेत्॥१९५॥
अगस्त्येश्वरसंज्ञं तच्छिवलिङ्गमिह स्थितम् ।
गत्वा नत्वा यमभ्यर्च्य हयमेधातिगं फलम् ॥१९६॥
तत्र विष्णुपुरी मध्ये गोमतीकुण्डमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा विशेषेण पूजयित्वा जनार्दनम् ॥१९७॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुक्तो भवति मानवः ।
अङ्गप्रपाते नरः स्नात्वा पूतो भवति तत्क्षणात् ॥१९८॥
अधिसिद्धवटच्छायां स्थित्वा तत्र च मानवः ।
संसारतापनिर्मुक्तो भवेदिति न संशयः ॥१९९॥
तथा ब्रह्मपुरी मध्ये स्नायाद् भूरिफलाप्तये ।
चतुर्द्वारेषु वै तस्या यानि स्थानानि भूपते ॥२००॥
तेषु गत्वा च दत्त्वा च पुण्यं महदवाप्नुयात् ।
यत्र[1] कुत्रापि क्षिप्रायां[2] स्नात्वा दत्त्वा च मानवः ॥२०१॥
असंख्यं फलमाप्नोति सोमयागकृतं नृणाम् ।
कामधेनूद्भवैः क्षीरैर्निर्मितेयं महानदी ॥२०२॥
सुरसा मृष्टसलिला तीर्थकोटिनिषेविता ।
अथ चन्द्रसुतां गच्छेत् पुण्याश्रमनिषेविताम् ॥२०३॥
तस्यामाप्लुत्य विधिवत् प्राणायामं समाचरेत् ।
वर्षाणि शतमाचर्य तपसः प्राप्नुयात् फलम् ॥२०४॥

---

१. तत्र—रीवाँ । २. क्षिप्रायां—अयो० ।

वह्वयः सन्ति महानद्यस्तीर्थानि सुबहूनि च ।
तानि सर्वाणि रेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२०५॥
दर्शनाद्धरते पापं किं पुनः स्नानदानतः ।
रेवातीरे नरः स्थित्वा पञ्चरात्रं तपोरतः ॥२०६॥
शतवर्षकृतात्यर्थतपश्चर्याफलं लभेत् ।
तमालतरुसंछन्नं महावेतसवेष्टितम् ॥२०७॥
अनेकवनसंकीर्णं तीरमस्याः सुपावनम् ।
यस्मिन् क्षणमपि स्थित्वा पुण्यवातनिषेवितः ॥२०८॥
आजन्मसंभवैर्घोरैरंहोभिर्मुच्यते नरः ।
नर्मदासलिलस्पर्शी यत्र वाति समीरणः ॥२०९॥
स वै पुण्यतमो देशस्तपस्विजनसेवितः ।
प्रत्यक्स्रोता नदी पुण्या नर्मदा लोकपावनी ॥२१०॥
यानि तीर्थानि भुवने तानि तस्यां समासते ।
पितामहादयो देवा तथा देवर्षयोऽखिलाः ॥२११॥
सिद्धाः किंपुरुषाश्चैव तस्यास्तीरे निवासिनः ।
तत्र विस्रवसः स्थानं महर्षेः संप्रतिष्ठितम् ॥२१२॥
कुबेरो भगवान् यत्र नित्यमेव प्रतिष्ठितः ।
वैदूर्यशिखरो नाम्ना पर्वतः स हि कीर्तितः ॥२१३॥
फलिनः पुण्यवन्तश्च हरितच्छदशालिनः ।
भूरुहाः सुन्दर-छायाः सूर्यातपनिवारकाः ॥२१४॥
प्रसन्नसलिलं दिव्यं तत्रैव विपुलं सरः ।
उत्फुल्लकमलामोदसुगन्धितहरित्तटम् ॥२१५॥
सविलासरसोन्मत्तदेवगन्धर्वसेवितम् ।
विश्वामित्रस्य राजर्षेस्तत्रपुण्यतमा नदी ॥२१६॥
यस्यास्तीरे यज्ञसभामध्ये राज्ञां हि पश्यताम् ।
नहुषस्याग्रजो राजा ययातिः पुण्यकीर्तनः ॥२१७॥
यतमानः स्वर्गलोकात् पुनर्लेभे परां गतिम् ।
कक्षषेणमुनेर्यत्र सुपुण्यतम आश्रमः ॥२१

च्यवनस्य च राजेन्द्र तत्रैवाश्रम उत्तमः ।
कार्तवीर्यश्च राजेन्द्रो हैहयान्वयभूषणः ॥२१९॥
यत्र बाहुसहस्रेण रुरोध खलु नर्मदाम् ।
सहस्रधाराख्यं तीर्थं नार्मदे विश्वपावनम् ॥२२०॥
यत्र कालाग्निरुद्रश्च सततं संप्रतिष्ठितः ।
स्वाहया सहितो भाति काले काले परिस्फुटः ॥२२१॥
तत्तीर्थं च विशेषेण नार्मदं सर्वपावनम् ।
ॐकारेश्वरशैले च नर्मदा विश्वपावनी ॥२२२॥
मान्धातृनाम्ना विदितः स शैलो दुर्गभूषितः ।
मुचुकुन्दस्य यत्स्थानं सर्वदेवसमन्वितम् ॥२२३॥
यत्र गौरीसोमनाथलिङ्गं परमसुन्दरम् ।
चण्डवेगा नदी यत्र संगता रेवया सह ॥२२४॥
तत्क्षेत्रं केन तुलितं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ।
नर्मदादर्शनेनैष सद्यः शुद्ध्यति मानुषः ॥२२५॥
रात्रौ प्रवाहिनी चैषा शाङ्करीमूर्तिरुत्तमा ।
सौराष्ट्रे पुण्यतीर्थानि सुबहूनि महीपते ॥२२६॥
ऋषीनामाश्रमाश्चैव सरितः पर्वतास्तथा ।
चमसोद्भेदनं नाम्ना तीर्थानामुत्तमं स्मृतम् ॥२२७॥
प्रभासनामतीर्थं च सर्वदेवनिषेवितम् ।
उदधेस्तीर्थमाख्यातं यात्रया पुण्यकोटिदम् ॥२२८॥
पिण्डारकमहातीर्थं मुनिवृन्दनिषेवितम् ।
उज्जयन्ते गिरौ यानि तीर्थानि धरणीपते ॥२२९॥
तेषु स्नात्वा च दत्त्वा च पूर्वजानपि चोद्धरेत् ।
तपःस्थानानि दिव्यानि यत्र सन्ति तपस्विनाम् ॥२३०॥
तेषूपस्पृश्य सकृदप्यनल्पं पुण्यमाप्नुयात् ।
अथ द्वारवती साक्षान्माधवस्य महापुरी ॥२३१॥
गोमती यत्र सततं रम्या पुण्यतमा नदी ।
यादवेन्द्रस्य कृष्णस्य पुण्यं यत्र निकेतनम् ॥२३२॥

सातिधन्यतमा लोके पुण्या द्वारवती पुरी ।
अथ वक्ष्यामि ते राजन् कुरुक्षेत्रविधिं शुभम् ॥२३३॥
यत्रातिपुण्यसलिला नदी नाम्ना सरस्वती ।
उषित्वा यत्र मासं तु सर्वं फलमवाप्नुयात् ॥२३४॥
द्वारपालं महायज्ञमादौ समभिवाद्य च ।
ततोऽन्तः प्रविशेत्तत्र कुरुक्षेत्रे नराधिप ॥२३५॥
विष्णोः स्थानं ततो गत्वा महत्पुण्यमवाप्नुयात् ।
तत्र स्नात्वा हरिं दृष्ट्वा महायज्ञफलं लभेत् ॥२३६॥
परिप्लवं नाम तीर्थं ततो गच्छेन्महीपते ।
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्यः पयस्विनीः ॥२३७॥
अग्निष्टोमफलं प्राप्य स्वर्गे लोके विराजते ।
पृथिव्यास्तीर्थमभ्येत्य स्नानं कुर्याद्विधानतः ॥२३८॥
गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः ।
शालूकिनी महातीर्थं गत्वा स्नात्वा विधानतः ॥२३९॥
दशाश्वमेधिके तीर्थे स्नायात्तत्र विधानतः ।
नागानां तीर्थमभ्येत्य तत्र स्नात्वा विधानतः ॥२४०॥
अत्यग्निष्टोमजं पुण्यमवाप्नोति महीपते ।
नागलोकं परिप्राप्य मोदते दिवि देववत् ॥२४१॥
तरन्तुकं द्वारपालं प्राप्यैकां रजनीं वसेत् ।
अमितं पुण्यमाप्नोति तं नमस्कृत्य मानवः ॥२४२॥
गत्वा पञ्चनदं तीर्थं दर्शनादेव पावनम् ।
कोटितीर्थे ततः स्नात्वा सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥२४३॥
सुपुण्यमश्विनोस्तीर्थं स्नात्वा तत्र विधानतः ।
अश्विनीसुतवद्रूपं लभते नात्र संशयः ॥२४४॥
वाराहतीर्थमासाद्य मुनिवृन्दनिषेवितम् ।
कोटियज्ञफलं लब्ध्वा पुण्यकायो भवेन्नरः ॥२४५॥
भुंजावरं[1] ततो गत्वा सर्वदेवनमस्कृतम् ।
शैवतीर्थं महत्पुण्यं सुमहत्पातकं दहेत् ॥२४६॥

---

१. मुंजवटं—अयो० ।

तत्र रात्रं वसेद् धीरो महायज्ञफलाप्तये ।
स्नात्वा यक्षीं समभ्येत्य तत्रैव धरणीपते ॥२४७॥
सर्वान् कामानवाप्नोति त्रैलोक्ये कीर्तिमान् भवेत् ।
तत्र प्रदक्षिणो भूत्वा स्नायात् पुष्करसंमिते ॥२४८॥
जामदग्न्येन रामेण स्थापिते स्वानुभावतः ।
ततो रामेण वीरेण निर्मितान् क्षत्रशोणितैः ॥२४९॥
दृष्ट्वा पञ्चह्रदांस्तत्र महत्पुण्यमवाप्नुयात्[1] ।
पितरस्तर्पिता यत्र तथैव च पितामहाः ॥२५०॥
रुधिरेणैव रामेण सुमहाघोरकर्मणा ।
तैरेव च वरं दत्त्वा कृतं तत्तीर्थमुत्तमम् ॥२५१॥
तेषु ह्रदेषु विधिवत् स्नात्वा दत्त्वा द्विजन्मने ।
जामदग्न्यं समभ्यर्च्य महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥२५२॥
वंशमूलकतीर्थे च स्नात्वा वंशं समुद्धरेत् ।
कायशोधनतीर्थे च स्नात्वा कायं विशोधयेत् ॥२५३॥
लोकोद्धारमहातीर्थे स्नात्वा लोकान् समुद्धरेत् ।
श्रीतीर्थे च समाप्लुत्य परमां श्रियमाप्नुयात् ॥२५४॥
कपिलातीर्थमध्ये च सकृदप्याप्लुतो जनः ।
सहस्रकपिलादानफलमाप्नोति मानवः ॥२५५॥
सूर्यतीर्थे नरः स्नात्वा पितृदेवार्चने रतः ।
अग्निष्टोमफलं प्राप्य सूर्यलोकमनुव्रजेत् ॥२५६॥
तीर्थानामुत्तमे तीर्थे गवां भवन आप्लुतः ।
गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः ॥२५७॥
तथैव शङ्खिनी तीर्थे देवी[2]तीर्थेऽतिपावने ।
स्नात्वा दत्त्वा द्विजातिभ्यो महदैश्वर्यमाप्नुयात् ॥२५८॥
मचक्रुकं[3] द्वारपालं गत्वा तीर्थपरायणः ।
सरस्वत्यां समाप्लुत्य महायज्ञफलं लभेत् ॥२५९॥

---

१. सुमहत्पुण्यमाप्नुयात्—रीवाँ । २. देव°—रीवाँ । ३. मचक्तुकं—रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

ब्रह्मावर्ते महातीर्थे गत्वा स्नात्वा च मानवः ।
ब्रह्मलोकं समासाद्य मोदते पद्मयोनिवत् ॥२६०॥
सुतीर्थके महातीर्थे पितृदेवार्चने रतः ।
अश्वमेधफलं लब्ध्वा पितृलोके महीयते ॥२६१॥
काशीश्वरं च तीर्थेषु युवत्या सुसमाप्लुतः ।
महीयते ब्रह्मलोके सर्वदुःखविवर्जितः[1] ॥२६२॥
मातृतीर्थे च राजेन्द्र स्नात्वा दत्त्वा द्विजातये ।
अनन्तां श्रियमाप्नोति सर्वसौख्यविवर्द्धितः ॥२६३॥
गत्वा शीतवनं चैव स्नात्वा तीर्थोत्तमे जनः ।
महतीं शुद्धिमाप्नोति क्षणमात्रमपि स्थितः ॥२६४॥
श्वानलोमापहे तीर्थे स्वलोमानि निकृत्य वै ।
निक्षिपेत् तेन कायस्य महतीं शुद्धिमाप्नुयात् ॥२६५॥
दशाश्वमेधतीर्थाम्बुन्याप्लुत्य रघुसत्तम ।
कोटितीर्थावगाहस्य[2] शुद्धिमाप्नोति मानवः ॥२६६॥
सकृदाप्लुत्य राजेन्द्र तीर्थे मृगविमोचने ।
निर्धूय सर्वपापानि स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥२६७॥
ततो मानुषतीर्थात्तु क्रोशोपरि महानदी ।
आपगेतिस्मृता नाम्ना तस्यामाप्लुत्य मानुषः ॥२६८॥
श्यामाकपायसैर्विप्रान् भोजयित्वा कृताह्निकः ।
भूयांसं धर्ममाप्नोति पितृदेवार्चने रतः ॥२६९॥
कोटयस्तेन वै विप्रा भोजिताः स्युर्न संशयः ।
स्नानैर्दानैश्च होमैश्च भूयः सुकृतमर्जयेत् ॥२७०॥
ब्रह्मोदुम्बरतीर्थे च लक्ष्मणः स्थानमुत्तमम् ।
तत्र सप्तर्षिकुण्डेषु स्नायान्नियमपूर्वकः ॥२७१॥
तथा कल्पितकेदारे स्नात्वा तीर्थोत्तमे नृप ।
महतीं सिद्धिमाप्नोति कपिलस्य प्रभावतः ॥२७२॥

---

१. विवर्जिते—रीवाँ । २. °तीर्थविगाहस्य—अयो०, मथु०, रीवाँ ।

अभ्येत्य पद्मयोनिं च ब्राह्मणक्षत्रियादयः ।
पूजयेयुर्लोकनाथं ब्रह्माणं विश्वकारकम् ॥२७३॥
तेन पुण्येन राजेन्द्र ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ।
गत्वा कपिलकेदारं पापराशिं विदाहयेत् ॥२७४॥
स्नात्वा सरकतीर्थे च प्राप्य कृष्णचतुर्दशीम् ।
रुद्रं संपूज्य विधिवत् सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥२७५॥
तीर्थानि कोटयस्तिस्रो यत्र संनिहितानि वै ।
रुद्राणां कोटयश्चैव ह्रदेषु किल जाग्रति ॥२७६॥
इलास्पदं महातीर्थं तत्र स्नात्वा विधानतः ।
देवान् संपूज्य दत्त्वा च पितृभ्यः श्राद्धमुत्तमम् ॥२७७॥
वाजपेयफलं प्राप्य स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ।
किं दानं चैव किं जप्यं[1] किं तीर्थमुत्तमोत्तमम्[2] ॥२७८॥
तयोः[3] स्नात्वा विधानेन पुण्यं स्याद्दानजाप्ययोः ।
यत्र प्राप्येत राजेन्द्र कोटिदानजपादिभिः ॥२७९॥
कलश्यां[4] तीर्थतोयेन सकृदाचम्य मानवः ।
अग्निष्टोमोद्भवं पुण्यमाप्नोति नृप तत्क्षणात् ॥२८०॥
ततः पूर्वं नारदस्य तीर्थे नाजन्मनामनि[5] ।
सकृत् स्नात्वा नरो राजन् न पुनर्जन्मभाग् भवेत् ॥२८१॥
शुक्ले दशम्यामाप्लुत्य पुण्डरीकस्य वारिणि ।
वैतरिण्यां पुण्यतीर्थे स्नात्वाभ्यर्च्य महेश्वरम् ॥२८२॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो महत्पुण्यमवाप्नुयात् ।
फलकीवनमध्ये च दृषद्वत्यां समाप्लुतः ॥२८३॥
तीर्थे चाखिलदेवौघतपःस्नानैकभाजने ।
महायज्ञफलं चैव महादानफलं लभेत् ॥२८४॥
पाणिखाते नरः स्नात्वा देवतापितृतर्पणी ।
ऋषीणां गतिमाप्नोति राजसूयफलान्वितः ॥२८५॥

---

१. यज्ञं—अयो०, रीवाँ । २. °मुत्तममत्र वै—मथु०, बड़ो० । ३. तत्र-रीवाँ
४. तदस्य—रीयाँ । ५. तीर्थेन जन्मवानपि—रीवाँ ।

मिश्रके च सकृद् गत्वा स्नात्वा तीर्थेषु तत्र वै ।
मिश्रितं फलमाप्नोति सर्वतीर्थोद्भवं नृप ॥२८६॥
यत्र व्यासेन तीर्थानि सर्वाणि जगतीतले ।
आनीय स्थापितान्यद्धा तेन मिश्रमितीरितम् ॥२८७॥
पुण्यं व्यासवनं गत्वा स्नात्वा तीर्थे मनोजवे ।
असंख्यं पुण्यमासाद्य स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥२८८॥
मधुवट्यां शुभे तीर्थे देवस्थाने समाप्लुतः ।
ईश्वरीं च समभ्यर्च्य कोटिदानफलं लभेत् ॥२८९॥
कौशिक्याश्च दृषद्वत्याः संगमे सुसमाप्लुतः ।
कोटितीर्थावगाहोत्थं पुण्यमाप्नोति मानवः ॥२९०॥
व्यासस्थलीं समासाद्य पुण्यसंचयवान् भवेत् ।
व्यासोऽत्र मायया विष्णोः पुत्रशोकाभिमूर्छितः ॥२९१॥
देवैरुत्थापितः सर्वैर्ज्ञाततत्त्वः स्वयं मुनिः ।
तत्र स्नानेन दानेन पुण्यमक्षय्यमाप्नुयात् ॥२९२॥
स्नात्वा किंदत्तके कूपे तिलदायी नृपोत्तम ।
ऋणत्रयविनिर्मुक्तो लभते प्रेत्य सद्गतिम् ॥२९३॥
वेदीतीर्थे[1] सकृत् स्नात्वा अहःसु दिनयोरपि ।
लभेत् सहस्रगोपुण्यं रविलोकं च मानवः ॥२९४॥
नृगधूमे रुद्रपदे स्नात्वा संपूज्य शङ्करम् ।
नरोऽश्वमेधजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥२९५॥
कोटितीर्थे ततः स्नायात् कोटितीर्थफलाप्तये ।
गत्वा वामनके तत्र स्नात्वा विष्णुपदे नरः ॥२९६॥
वामनं चैव संपूज्य विष्णुलोके महीयते ।
कुलम्पुने सकृत् स्नात्वा कुलकोटिं समुद्धरेत् ॥२९७॥
वायुह्रदे देवह्रदे[2] शालिसूर्ये च मानवः ।
स्नानदानादिविधिभिरसंख्यं पुण्यमाप्नुयात् ॥२९८॥

---

१. देवतीर्थे—रीवाँ । २. ब्रह्मह्रदे—अयो० ।

श्रीकुञ्जं नैमिषं कुञ्जं पुण्यक्षेत्रं सुपावनम् ।
सरस्वत्याः शुभे तीर्थे तयोः स्नात्वा विधानतः ॥२९९॥
कन्यातीर्थे च राजर्षे[1] ब्रह्मणः स्थान एव च ।
सोमतीर्थे महत्पुण्यं सप्तसारस्वते तथा ॥३००॥
स्नात्वा चोशनसे तीर्थे तीर्थे कापालमोचने ।
अग्नितीर्थे महातीर्थे विश्वामित्रस्य वै मुनेः ॥३०१॥
ब्रह्मयोनौ च विधिवत् स्नात्वा दत्त्वा च शक्तितः ।
अमेयं पुण्यमाप्नोति परत्रेह च मोदते ॥३०२॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थमथ गच्छेत् पृथूदकम् ।
तत्राभिषिच्य विधिना तर्पयेद्देवतापितॄन् ॥३०३॥
आजन्मकलितं तस्य घोरं पापं प्रशाम्यति ।
अश्वमेधादियज्ञानां फलमासादयेन्नरः ॥३०४॥
भुक्तिदं मुक्तिदं चैव कामदं शुभदं तथा ।
पुण्यात्पुण्यतमं प्राहुर्नृणामेतत् पृथूदकम् ॥३०५॥
पावनं देवयजनं[2] कुरुक्षेत्रं महीपते ।
न तत्समं क्वचित्तीर्थं त्रिषु लोकेषु कीर्तितम् ॥३०६॥
सर्वस्माद्वै कुरुक्षेत्रान्महापुण्या सरस्वती ।
ततः पुण्यानि तीर्थानि तीर्थेभ्योऽपि पृथूदकम् ॥३०७॥
वरेण्यं सर्वतीर्थानां काशीकोटिफलाधिकम् ।
स्मरणाद् गमनाद्वापि स्पर्शनाद्दर्शनादपि ॥३०८॥
साक्षान्मुक्तिप्रदं तीर्थं त्रिषु वेदेषु गीयते ।
न ततश्चोत्तमं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥३०९॥
पापा अपि ततस्तत्र विमुच्येरन् न संशयः ।
दूरस्थः स्मरणेनापि तस्य शुद्धतमो भवेत् ॥३१०॥
पृथूदकान्तर्विख्यातं तीर्थं नाम्ना मधुस्रवम् ।
तत्र स्नानेन दानेन न पुनर्जन्मभाग् भवेत् ॥३११॥

---

१. राजेन्द्र—मथु०, बड़ो० । २. °यज्ञनां—अयो० ।

गच्छेत् पुण्यतमं राजन् देवीतीर्थमनुत्तमम् ।
सरस्वत्यारुणा यत्र[1] संगता लोकपावनी ॥३१२॥
त्रिरात्रमुषितस्तत्र स्नानं कृत्वा दृढव्रतः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो महायज्ञांश्च विन्दति ॥३१३॥
कुलकोटीः समुद्धर्तुं क्षमो भवति पुण्यतः ।
महच्छुभमवाप्नोति शुद्धिं च महतीं नृप ॥३१४॥
तत्र तीर्थेऽवकीर्णाख्ये चतुः सामुद्रिकेऽपि च ।
सकृदाप्लुत्य यत्पुण्यं लभतेऽह्नाय तच्छृणु ॥३१५॥
अब्राह्मणो ब्राह्मणः स्यात् पूर्वत्र जगतीपते ।
चतुःसहस्रगोदानं परत्र च लभेद् ध्रुवम् ॥३१६॥
शतसाहस्रके तीर्थे तथा साहस्रकेऽपि च ।
स्नात्वा वा सकृदाचम्य महत्फलमवाप्नुयात् ॥३१७॥
यद्यत् करोति नृपते दानव्रतजपादिकम् ।
सहस्रगुणितं पुण्यं भवतीत्यनुशुश्रुम ॥३१८॥
विशुद्धे रेणुकातीर्थे तथा तीर्थे विमोचने ।
यज्ञेश्वरे च विधिवत् स्नानदानादिभिः शुचिः ॥३१९॥
तैजसे वारुणे तीर्थे कुरुतीर्थे विशुद्धिदे ।
स्वर्गद्वारे च नरकतीर्थे च[2] ब्रह्मणः स्थले ॥३२०॥
रुद्राणीसंनिधौ चैव तथा विश्वेश्वरालये ।
पद्मनाभस्य च स्थाने तीर्थे चाखिलदैवते ॥३२१॥
तथा पावनतीर्थे च कपिगङ्गाह्रदेऽपि च ।
गङ्गाह्रदे च कूपे च त्रिकोटीतीर्थसंमिते ॥३२२॥
आपगायां स्थाणुवटे वदरीपावने तथा ।
इन्द्रमार्गे महाराज आदित्यस्याश्रमे तथा ॥३२३॥
सोमतीर्थे दधीचस्य तीर्थे सारस्वतोद्भवे ।
कन्याश्रमे संनिहत्यां संनीतायां नराधिप ॥३२४॥

---

१. यस्य—रीवाँ । यस्तु०—अयो० । २. वै—मथु०, बड़ो० ।

स्नानं दानं तथा श्राद्धं जपहोमादिकं तथा ।
यद्यत् करोति सुकृतं तत्तदक्षयतां व्रजेत् ॥३२५॥
यावन्ति सन्ति तीर्थानि पृथिव्यां पृथिवीपते ।
तानि सर्वाणि नियतं संनीतानि महात्मभिः ॥३२६॥
संनीतेति श्रुता लोके तेनेयं सर्वपावनी ।
तस्यां यः कुरुते श्राद्धं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥३२७॥
अश्वमेधसहस्रस्य स राजन् पुण्यमाप्नुयात् ।
स्नानं दानं तथा श्राद्धं तत्तद्[1] दुष्कृतनाशनम् ॥३२८॥
द्वारपालं महायक्षं मचक्रुकमनुव्रजेत् ।
अभिवाद्य परिक्रम्य यात्राफलमुवाप्नुयात् ॥३२९॥
कोटितीर्थं महीपाल गङ्गाह्रदमनुत्तमम् ।
गत्वा स्नात्वा च विधिवत् महायज्ञफलं लभेत् ॥३३०॥
कुरुक्षेत्रसमं तीर्थं पृथिव्यां नैव विद्यते ।
धर्मक्षेत्रमिति प्रोक्तं मुनिश्रेष्ठैः पुरातनैः ॥३३१॥
कुरुक्षेत्ररजःस्पर्शात् पापात्मापि दिवं व्रजेत् ।
यावन्ति सन्ति तीर्थानि कुरुक्षेत्रे तु तानि वै ॥३३२॥
मनसापि कुरुक्षेत्रं यो गच्छेत् प्रातरुत्थितः ।
तस्यापि सर्वपापानि विलीयन्ते न संशयः ॥३३३॥
ब्रह्मणो वेदिराख्याता पुण्यभूमिः सनातनी ।
पावनं देवयजनं कुरुक्षेत्रमिति स्मृतम् ॥३३४॥
यत्र ब्रह्मर्षयो राजन् देवर्षिप्रवरास्तथा ।
राजर्षयश्च राजेन्द्र पुण्यवन्तः समासते ॥३३५॥
पश्यन्ति गच्छन्ति वसन्ति ये नराः पुण्यं कुरुक्षेत्रमुपासते च ये[2] ।
तेषां जनुः सार्थकमत्र संस्थितौ[3] परे तु दैवेन सदैव वञ्चिताः ॥३३६॥
ये जनाः सततं राजन् कुरुक्षेत्रे निवासिनः ।
किं करोति यमस्तेषां पुण्यराशिनिवासिनाम् ॥३३७॥

---

१. यत्तद्—रीवाँ । २. तु वै—रीवाँ । तु ये—मथु०, बड़ो० । ३. संसृतौ—मथु०, बड़ो० ।

तरन्तुका महापुण्या रन्तुका विश्वपावनी ।
तयोर्यदन्तरे क्षेत्रं पवित्रं पापनाशनम् ॥३३८॥
रामह्रदा यत्र पुण्यास्तथा यक्षो मचक्रुकः ।
स्यमन्तपञ्चकं क्षेत्रं तयोरन्तश्च भूपते ॥३३९॥
इयमुत्तरवेदिर्वै ब्रह्मणो वन्दिता सुरैः ।
कुरुक्षेत्रमिति ख्यातं स्थानं विश्वस्य पावनम् ॥३४०॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णं सरस्वत्याभियाचितम् ।
कुरुणा यज्ञशीलेन यत्रोप्तो धर्म उत्तमः ॥३४१॥
एतदुद्देशतः प्रोक्तं मया तुभ्यं महीपते ।
कुरुक्षेत्रस्य माहात्म्यमत[1]स्तीर्थान्तरं[2] शृणु ॥३४२॥

इतिश्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थ-यात्रायां तीर्थानुकथने त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

●

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

यत्रधर्मस्तपश्चक्रे धर्मतीर्थं तदुत्तमम् ।
महाधर्मप्रदं भूप गमनात् पापनाशनम् ॥ १ ॥
स्नानदानादिभिश्चैव ज्योतिष्टोमफलप्रदम् ।
विष्णुलोकप्रदं साक्षात् सप्तविंशतिमुक्तिदम् ॥ २ ॥
ततः सौगन्धिकवनं ब्रह्मादिसुरसेवितम् ।
तपस्विनां मुनीनां च स्थानभूतं सनातनम् ॥ ३ ॥
सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोरगसेवितम् ।
तत्र गत्वा सर्वपापैर्विमुक्तो भवति क्षणात् ॥ ४ ॥
स्नात्वा प्लक्ष[3]सरस्वत्यां पितृदेवार्चने रतः ।
सर्वपापविशुद्धः सन्नश्वमेधफलं लभेत् ॥ ५ ॥

---

१. भूय°—मथु०, बड़ो० । २. प्रविस्तीर्णोत्तर—अयो० । ३. °प्लुत्य—अयो० ।

शम्यानिपातषट्के च स्नात्वा नृपतिसत्तम ।
सहस्रकपिलादानफलमाप्नोति मानवः ॥ ६ ॥
सुगन्धां शतकुम्भां च पञ्चयज्ञं च भूपते ।
गत्वा स्नात्वाप्युषित्वा च सन्तर्तिं लभते नरः ॥ ७ ॥
त्रिशूलखात[1]तीर्थे च शाकम्भर्या महीपते ।
सुवर्णाक्षीमहास्थाने धूमावर्त्ते तथोत्तमे ॥ ८ ॥
रथावर्ते च निवसेत् त्रिरात्रं नियतः शुचिः ।
स्नात्वा प्रदक्षिणीकृत्य कोटितीर्थफलं लभेत् ॥ ९ ॥
धारानदीजलैः स्नात्वा किमर्थं यमकिङ्करैः ।
भयमाप्नोति राजेन्द्र सर्वपापविवर्जितः ॥१०॥
ततो गच्छेन्महातीर्थे गङ्गाद्वारे महागिरौ ।
तत्र स्नात्वा कोटितीर्थे कोटियज्ञफलं लभेत् ॥११॥
उद्धरेत् स्वकुलं चाशु महादानफलं लभेत् ।
नागतीर्थं लभतिकां[2] गत्वा स्नात्वा च मानवः ॥१२॥
सहस्रकपिलादानफलमाप्नोति तत्क्षणात् ।
लभेच्च स्वर्गवासाय[3] पुण्यमक्षय्यमद्भुतम् ॥१३॥
गङ्गायाश्च सरस्वत्याः संगमे रघुसत्तम ।
भद्रकर्णह्रदे चैव तथा कुब्जाम्रके नृप ॥१४॥
अरुन्धती वटे चैव स्नात्वा दद्याद् यथाविधि ।
गोसहस्रफलं लब्ध्वा वाजिमेधफलं लभेत् ॥१५॥
ब्रह्मावर्तं महापुण्यं यमुनाप्रभवं तथा ।
दर्वीसंक्रमणं तीर्थं सिन्धोश्च प्रभवं नृप ॥१६॥
वेदीं च ऋषिकुल्यां च वासिष्ठं तुङ्गमेवच ।
चीरप्रमोक्षणं सन्ध्यां विद्यातीर्थं च भूपते ॥१७॥
गत्वा वेतसिकां चैव तीर्थं सुन्दरिकाभिधम् ।
ततो ब्रह्मणिकां चैव स्नायात् सुकृतकोटये ॥१८॥

---

१. °बाण°—रीवाँ । २. भूतिकां च—अयो० । ३. मासाद्य—अयो० ।

काश्मीरमण्डले पुण्या नद्यः पुरुषसत्तम ।
यासु स्नानेन दानेन सर्वैः पापैर्विमुच्यते ॥१९॥
सर्वेषां योगिनां यत्र पुण्या आश्रममण्डलाः ।
प्रत्यक्षं दृश्यते यत्र भगवान् पार्वतीपतिः ॥२०॥
मानसस्याथ सरसो द्वारं पुण्यतमं मतम् ।
ततश्चोज्जानको रम्यो यवक्रीतस्य यत्स्थलम् ॥२१॥
अरुन्धतीवशिष्ठौ च यत्रासाते तपोरतौ ।
कुशवांश्च ह्रदः पुण्यो दिव्यपद्मविराजितः ॥२२॥
भृगुतुङ्गो महाशैलो देवगन्धर्वसेवितः ।
तत्र गत्वा च स्नात्वा च पापलेशो न विद्यते ॥२३॥
वितस्ता पुण्यसलिला पापराशिविनाशिनी ।
यस्याः कूले महर्षीणां पुण्या आश्रममण्डलाः ॥२४॥
जलाचोपजला चैव सुपुण्या यमुना सरित् ।
तासु मज्जनमात्रेण नरः पापाद्विमुच्यते ॥२५॥
स गङ्गायां महानद्यां संस्नातः पुण्यकर्मकृत् ।
पञ्चरात्रं तटे स्थित्वा पुण्यदेहो भवेन्नरः ॥२६॥
तीर्थं विवसनं[1] नाम मैनाके पर्वतोत्तमे ।
अस्याधिरोहमात्रेण पुण्यकर्मा भवेन्नरः ॥२७॥
ऋषिसेव्याः पुण्यतमा नगाः कनखलादयः ।
तत्र पुण्यवहा गङ्गा सप्तर्षिगणसेविता ॥२८॥
यत्र सिद्धिं परिप्राप्तो ब्रह्मणो मानसः सुतः ।
सनत्कुमारो भगवान् पर्वत्रिदशपूजितः ॥२९॥
भृगुतुङ्गे महाराज गमनादेव पूयते[2] ।
उष्णतोयवहा गङ्गा शीततोयवहा क्वचित् ॥३०॥
तामुपस्पृश्य सकृदप्यघं विधुनुते नरः ।
मुनिः स्थूलशिरा नाम तस्य चाश्रम उत्तमः ॥३१॥

---

१. विनशनं—मथु०, बडो० । २. भूपते—अयो०, रीवाँ ।

रैभ्यस्य चाश्रमो रम्यः पुण्यतोयह्रदान्वितः ।
उषित्वैतेषु पुण्येषु पुण्यगात्रत्वमाप्नुयात् ॥३२॥
उषीरवीजं मैनाकं गिरिं श्वेतं च भूपते ।
कालशैलमतिक्रम्य ततः स्थानममानुषम् ॥३३॥
यत्र सप्तविधा गङ्गा देवदृश्या महानदी ।
स्थानं विरजसं पुण्यं यत्राग्निर्भगवान् स्वयम् ॥३४॥
मन्दराद्रिश्चन्द्रसितः कल्पद्रुममनोहरः ।
यक्षाणां वसतिर्यत्र कुबेरस्य महात्मनः ॥३५॥
अनेकशतसाहस्रसंख्या गन्धर्वपुङ्गवाः ।
यक्षेशस्य मनोमोदं कुर्वन्ति सुखमासते ॥३६॥
अनेकरूपरुचिरा नानाबलपराक्रमाः ।
मणिभद्रमुपासीना यक्षराजं महाबलम् ॥३७॥
दुर्गमाः पर्वतास्तत्र कुबेरसचिवालयाः ।
षडयोजनसमुच्छ्रायः कैलाशश्चापि पर्वतः ॥३८॥
देवगन्धर्वसिद्धौघदर्शनौत्कण्ठ्यवर्द्धनः ।
विशाला यत्र नगरी देवगन्धर्वसेविता ॥३९॥
यक्षैःकिंपुरुषैश्चापि सुपर्णैर्नागसत्तमैः
अनेकविबुधैः सेव्या कुबेरसदनोन्मुखैः ॥४०॥
यत्र गङ्गा च यमुना दिव्यस्रोतोविराजिता ।
पुण्यगन्धवहश्चापि यत्र वाति समीरणः ॥४१॥
गन्धमादननामा च गिरीणामुत्तमो गिरिः ।
दिव्यधातुद्रवोद्गारि[2]शोभमानदरीमुखः ॥४२॥
मक्षिकादंशमशकसिंहव्याघ्रविवर्जितः ।
नरनारायणौ यत्र तेपाते परमं तपः ॥४३॥
पुण्या बदरिका यत्र विशालां नगरीमनु ।
कुबेरयक्षराजस्य रम्या[3] पुष्करिणी च सा ॥४४॥

---

१. सर्वतः—रीवाँ । २. द्रवझरी—मथु०, बडो०, । ३. रमा—रीवाँ, मथु०, बडो० ।

बदरीप्रभवा यत्र महाशुभजला नदी ।
बालखिल्या महात्मानो यत्र नित्यं तपोरताः ॥४५॥
मरीचेः पुलहस्याथ भृगोरङ्गिरसस्तथा ।
सामगानेन मुखरा यत्र नित्यं शुभा दिशः ॥४६॥
दैत्यस्य नरकाख्यस्य यत्रास्थीनि समंततः ।
हिमपाण्डुरवर्णानि विकीर्णान्यभितो दिशम् ॥४७॥
पर्वतप्रतिमं श्वेतमस्थिकूटं सुरद्विषः ।
नरकस्यातुलोच्छ्रायं संततं यत्र शोभते ॥४८॥
निपातितो[1]ऽसौ देवानां देवेन सुमहीयसा ।
विष्णुना समरे जित्वा तपोवीर्यदुरासदः ॥४९॥
दशवर्षसहस्राणि येन तप्तं महत्तपः ।
प्रवीरेण पदं दिव्यमैन्द्रं संप्राप्तुमिच्छता ॥५०॥
यत्र तेनैव देवेन केशवेन महात्मना ।
जले मग्ना मही भूप उद्धृतैकेन पाणिना ॥५१॥
महाशृङ्गे समारोप्य युद्धमुग्रं ततः कृतम् ।
वराहवपुषा दैत्यं हिरण्याक्षाभिधं घ्नता ॥५२॥
तद्दिव्यं परमं रम्यं कामवर्षिद्रुमावृतम् ।
नरनारायणस्थानं गङ्गावीचिसुशीतलम् ॥५३॥
अनेकदेवसदनं गन्धर्वगणसेवितम् ।
अप्सरोनृत्यतालादिस्वरमूर्छनयाञ्चितम् ॥५४॥
विशालां बदरीं प्राप्य गङ्गास्रोतसि पावने ।
मज्जनेनात्मना शुद्धो दिव्यदृष्टिर्भवेन्नरः ॥५५॥
अमानुषे तु स्थानेऽस्मिन् मानुषो नैव गच्छति ।
मधुश्रवफला यत्र पुण्यवृक्षा मनोरमाः ॥५६॥
शीतलच्छायया युक्ता मरुल्लुलितपल्लवाः ।
विकचाम्भोजपुष्पौघाः सौरभावृतदिक्तटाः ॥५७॥

---

१. निखानितो—अयो० ।

मुनीनां दीर्घतपसां तेजसा चातिदुर्गमः ।
देशोऽसौ पावितस्तुङ्गगङ्गावीचिकदम्बकैः ॥५८॥
तपसा श्रद्धया चैव वीर्येण सुगमो गिरिः ।
गन्धमादननामात्र नरनारायणस्थितिः ॥५९॥
तयोर्दर्शनमात्रेण नरनारायणेशयोः ।
प्राग्जन्म[1] दुष्कृतं चापि विधुनोति नरैः सकृत् ॥६०॥
गङ्गायाः प्रभवं चापि यमुनाप्रभवं तथा ।
नरो दृष्ट्वा विमुच्येत महापातकराशितः ॥६१॥
नानेन सदृशी यात्रा नानेन सदृशं तपः ।
नानेन सदृशं तीर्थं नानेन सदृशं सुखम् ॥६२॥
पुण्यो हिमगिरिः साक्षात् पार्वत्या जनकः स्वयम् ।
सर्वतो हिमसंव्याप्तो विष्णुपद्याभिपावितः[2] ॥६३॥
तादृशस्तस्य पुत्रोऽपि मैनाको भूभृतांवरः ।
तयोर्दर्शनमात्रेण पापपुञ्जं पलायते ॥६४॥
मन्दरे सुन्दरे शैले कैलाशे हरसंश्रिते ।
गन्धमादनशैले च जनैर्गन्तुं न शक्यते ॥६५॥
विना तपोबलं राजन् विना विद्याबलं तथा ।
विना शौर्यबलं चैव विना शौचबलं तथा ॥६६॥
बदर्याश्रमयात्राया नान्ययात्रा प्रशस्यते ।
सर्वतीर्थमयी चैव सर्वदेवमयी तथा ॥६७॥
यात्रेयं राजराजेन्द्र राजते सर्वतोऽधिका ।
तपोवनानि रम्याणि मुनीनामाश्रमाः शुभाः ॥६८॥
अनेकतीर्थगमनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदेवसंदर्शोऽनेककुण्डावगाहनम् ॥६९॥
तप्तकुण्डेषु दिव्येषु शीतकुण्डेषु च प्रभो ।
अवगाह्य जनः सद्यो धौतपापचयो भवेत् ॥७०॥

---

१. आजन्म°—रीवाँ । २—२. °भियाचितः—रीवाँ ।

स्थले स्थले च गङ्गायाः स्रोतांसि हिमपर्वते ।
विचित्राणि मनोज्ञानि तेषु स्नानेन पूयते ॥७१॥
एकधा च द्विधा चैव त्रिधा चैव चतुर्विधा ।
पञ्चधा चैव षड्धा च सप्तधा चाष्टधा तथा ॥७२॥
नवधा दशधा चैव शतधा च सहस्रधा ।
विश्वस्य पावनी गङ्गा प्रसूता दिव्यवाहिनी ॥७३॥
तस्याः प्रवाहेषु मनोरमेषु पुण्याश्रमस्थानतटोदितेषु ।
अनेकवाटीबहुवृक्षशोभानितान्तकान्तेषु सुखावहेषु ॥७४॥
कूजद्विहङ्गोत्तमनादितेषु देवाङ्गनाकौतुककारकेषु ।
पुण्याप्सरःस्नानसुखावहेषु सुच्छायदेवद्रुमशीतलेषु ॥७५॥
क्वचिद्दरीभेदनवेगवत्सु क्वचिन्महावृक्षलतानुगेषु ।
क्वचित् स्फुटद्गण्डशैलच्युतेषु क्वचिन्महानिर्झरशोभितेषु ॥७६॥
क्वचिद्विकीर्णेषु गिरिप्रसंगात् क्वचिद्वनेषु प्रसभोदितेषु ।
नानाविधानोकहपुष्पराजीसौरभ्यसंभारविभावितेषु ॥७७॥
सहस्रधारासुषमाञ्चितेषु नृत्यत्तरङ्गावलिशोभितेषु ।
सौन्दर्यसंचारसमुद्गतेषु मन्दप्रसारेषु समुन्नतेषु ॥७८॥
उच्चावचेषु स्फुरच्छैलधातुप्रसंगतोऽनेकवर्णाश्रितेषु ।
*लताप्रतानान्तरसंगतेषु छायावहेष्वातपभावितेषु ॥७९॥
महाहिमानीद्युतिसंगतेषु सुशीतलेष्वद्भुतनादवत्सु ।
स्थले स्थले हिमशैले निमज्य पुनर्न जन्मी भवतीह लोके॥८०॥
इत्येव ते महाशौचकारिणां नृप भूयसाम् ।
तीर्थानां वैस्वरूपाणि कथितानि मनीषिणे ॥८१॥
यस्मिन्देशे यानि तीर्थानि राजन् तद्देशजै[२]र्मनुजैः कीर्तितानि ।
तानि प्रकर्तव्यतमानि भूयो विना विचारं देहपावित्र्यकामैः ॥८२॥
भूयांसि भूमौ तीर्थानि दिक्षु चैव विदिक्षु च ।
क्षेत्राणि सरहस्यानि वनानि विविधानि च ॥८३॥

---

* अतः परं १०९ अध्यायस्य ९६ श्लोकं यावत् खण्डितः पाठः—अयो० ।
२. तद्देशीयै—मथु०, बड़ो० ।

न तेषां महिमा राजन् कल्पकोटिशतैरपि ।
शक्यते कथितुं भूयो मयाचान्येन वा क्वचित् ॥८४॥
सर्वेषामेव तीर्थानामेक एव समुच्चयः ।
श्रीमद्विष्णुपदीनाम कोटिपापापहारिणी ॥८५॥
न गङ्गया समं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
यस्याः संदर्शनादेव नरकं नैव पश्यति ॥८६॥
किंपुनः स्पर्शनात् स्नानात्तथैवाचमनादपि ।
अनेकधास्य दुरितं विनिहन्ति हि जाह्नवी ॥८७॥
ॐ नमो विष्णुपद्यै ते गङ्गायै सततं नमः ।
इतिब्रुवाणोऽपि जनः सर्वं पापं व्यपोहति ॥८८॥
गङ्गाया अधिकं पुण्यं यमुनायावगाहतः ।
सप्तब्रह्माण्डभेत्री सा कालिन्दी कृष्णरूपिणी ॥८९॥
कलिन्दगिरिसंभूता कोटिपापविनाशिनी ।
यमुना शीलिता येन यमलोकं न स व्रजेत् ॥९०॥
स्मरणादेव कालिन्द्या धूतपापो विमुच्यते ।
किं पुनर्दर्शनात् स्पर्शात् स्नानादाचमनादपि ॥९१॥
इयं पुराणतमिका गङ्गातोऽपि गरीयसी ।
यमुना यमभीतिघ्नी सेविता सज्जनैः सदा ॥९२॥
एकतः सर्वतीर्थानि एकतः पुण्यकोटयः ।
एकतः सकला यात्रा यमुना चैकतःस्थिता ॥९३॥
कृष्णपत्नी कृष्णसमा कलिकल्मषनाशिनी ।
करुणामूर्तिरतुला कल्याणगणकारिणी ॥९४॥
ब्रह्मानन्दमयी साक्षात् गङ्गागुणगणोत्करा ।
प्रेमानन्दमयी पूर्णा यमुना तु स्वयं पुरा ॥९५॥
कृष्णस्य यमुनायाश्च न भेदस्तत्त्वतो मतः ।
शृङ्गाररसरूपेयं कृष्णसायुज्यदायिनी ॥९६॥
कृष्णरूपा रसमयी वनमालाविभूषिता ।
भक्तोद्धारकरा दिव्यदोलाकेलिविधायिनी ॥९७॥

नानया सदृशं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
न यात्रान्तरमेतस्या यात्रया सदृशी भवेत् ॥९८॥
सर्वत्र यमुना पुण्या स्नानादाचमनादपि ।
मथुरातलगा त्वेषा स्वयं कृष्णस्वरूपिणी ॥९९॥
तीर्थानि खलु सन्त्येव पृथिव्यां सुबहून्यपि ।
मथुरास्नानसदृशं न पुण्यं कुत्रचिन्मतम् ॥१००॥
यमुनाजलकल्लोलरमणीयमहातटा ।
मथुरादर्शनादेव मथ्नाति खलु पातकम् ॥१०१॥
वसन्ति यस्य प्रति रोमकूपमण्डानि सप्तावरणान्वितानि ।
ध्यायन्ति यद्रूपमनन्यनिष्ठास्तपःसमाधिप्रयता मुनीन्द्राः ॥१०२॥
स वै पुरुषधौरेयो यदाज्ञायां प्रवर्तते ।
स्वयं विहरते सोऽत्र भगवान् पुरुषोत्तमः ॥१०३॥
सेयं मधुपुरी धन्या पुरीणामुत्तमोत्तमा ।
प्रणवाकारतां नित्यं बिभ्रती[1] शुभगाकृतिः ॥१०४॥
अकारात्मोत्तरा कोटिरुकारात्मा स्वयं पुरी ।
मकारो दक्षिणा कोटिर्नादविन्दुकला सरित् ॥१०५॥
वृत्ता द्वादशसङ्ख्याकैर्वनैरुपवनैरपि ।
विंशयोजनविस्तीर्णमण्डलेनाभिमण्डिता ॥१०६॥
सेव्या मधुपुरी नित्यं सद्भिः कृष्णपरायणैः ।
अस्यां न कलिदोषाणां संभवोऽद्यापि दृश्यते ॥१०७॥
कृष्णलीलानिजस्थानं नरनारीगणैर्वृता ।
नित्योत्सवैर्नित्यसुखैर्नित्यप्रेमविभूषितैः ॥१०८॥
साक्षाच्चतुर्भुजाकारैराकीटपशुपक्षिभिः ।
सेविता सुखदा नित्यं धन्या सा मथुरापुरी ॥१०९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे राज्ञस्तीर्थयात्रायां चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

---

१. भ्रमन्ती—रीवाँ ।

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

राजोवाच

मथुरायां प्रसिद्धानि तीर्थानि वद मे मुने ।
येषु मज्जनमात्रेण नरः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

वशिष्ठ उवाच

वसन्ति सर्वतीर्थानि मथुरायां जनाधिप ।
सर्वदैव विशेषात्तु चातुर्मास्ये प्रशस्यता ॥ २ ॥
सप्तद्वीपवती भूमिस्तस्यां तीर्थानि यान्यपि ।
तानि सर्वाणि मथुरामायान्ति शयिते हरौ ॥ ३ ॥
कार्तिके मासि यत्पुण्यं मार्गशीर्षे निगद्यते ।
गुप्तस्नानं गुप्तदानं यत्रात्यन्तं प्रशस्यते ॥ ४ ॥
मार्गशीर्ष उषःकाले आप्लुत्य यामुनेऽम्भसि ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः कृष्णसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५ ॥
तपःसमाधिनियमैः प्राणायामायुतेन च ।
योगेनात्मैकनिष्ठानां या गतिः सा नृणामिह ॥ ६ ॥
अश्वमेधादियागोत्थपुण्यकोटिशतेन च ।
या गतिर्लभ्यते सात्र मथुरायां निवासतः ॥ ७ ॥
अस्ति तत्र रमाकान्तः केशवो नाम कीर्तितः ।
तस्य संदर्शनादेव न पुनर्जायते नरः ॥ ८ ॥
दिव्यतेजोमयी मूर्तिः केशवस्य महात्मनः ।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च तां लोकस्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥ ९ ॥
कार्तिके केशवस्याग्रे दीपमालां करोति यः ।
इहामुत्र च वै तस्य तिमिरं नैव विद्यते ॥१०॥
रविबिम्बप्रतीकाशं विमानमधिरुह्य सः ।
दिव्यतेजोमये लोके क्रीडतेऽप्सरसां गणैः ॥११॥

कृत्वा केशवदेवस्य दर्शनं सप्तजन्मजम् ।
विधुनोति नरः पापं लभेत् सायुज्यमाशु सः ॥१२॥
स्नात्वा श्रीयामुने तोये परिक्रम्य च केशवम् ।
कुलकोटिं समुद्धृत्य स्वयं विष्णुमयो भवेत् ॥१३॥
यावन्तश्चरणन्यासाः केशवस्य प्रदक्षिणे ।
तावतां वाजिमेधानां फलं प्राप्नोति मानुषः ॥१४॥
यावन्ति लोके पुण्यानि वाजिमेधादिजान्यपि ।
तावन्ति केशवार्चायास्तुलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥१५॥
अकृत्वा मथुरास्नानमदृष्ट्वा केशवं हरिम् ।
अगत्वा व्रजभूमिं च किं जन्म सफलं भवेत् ॥१६॥
शिवलिङ्गं च भूतेशं तत्रस्थं पापनाशनम् ।
विनास्य दर्शनं राजन् मथुराफलदायकम् ॥१७॥
प्रमथादीन् समादाय सर्वान् भूतगणान् सदा ।
मथुरामावसत्येष भूतेशो लोकशङ्करः ॥१८॥
दर्शनात् स्पर्शनात्तस्य पापकोटीर्विदाहयेत्[1] ।
इह भोगान् परिप्राप्य परत्र खलु मुच्यते ॥१९॥
वनानि द्वादशैवात्र तानि संग्रहतः शृणु ।
यत्र श्रीकृष्णचन्द्रस्य लीलाः सर्वाः सुखावहाः ॥२०॥
पूर्वं मधुवनं प्रोक्तं हरेः क्रीडाकरं वनम् ।
दृष्ट्वा प्रदक्षिणीकृत्य तोषयेन्मधुसूदनम् ॥२१॥
ततस्तालवनं नाम वनानामुत्तमं हि तत्[2] ।
तस्याभिगमनादेव सद्यो मुक्तिरवाप्यते ॥२२॥
वनं कुमुदसंज्ञं च महाकासारवेष्टितम् ।
उत्फुल्लकुमुदामोदसुवासितदिगन्तरम् ॥२३॥
ततः कामवनं नाम कामदं सर्वजन्मिनाम् ।
विमलोदकसंज्ञेन सरसा विमलीकृतम् ॥२४॥
वहुलावनसंज्ञं च तत्रास्ति रुचिरं वनम् ।
वहुला नाम सा धेनुः कृष्णहस्ता सुमोदिता ॥२५॥

---

१. पापकोटिर्विहायते—रीवाँ, २. हितम्—रीवाँ ।

तयाधिवासितं तस्याः खुराङ्कैरभिरोचितम् ।
अनेककुञ्जपूजाढ्यं कुसुमौघसुवासितम् ॥२६॥
ततो भद्रवनं नाम यमुनापरपारगम् ।
तस्याभिगमनाद्राजन् विष्णुप्रियतमो भवेत् ॥२७॥
खादिरं वनमाश्चर्यकरं खदिरमण्डितम् ।
यत्र शङ्खादिरं गोपीमुखाधररुचावहम् ॥२८॥
बृहद्वनं महाराज बलभद्रमुदावहम् ।
अनेकाश्चर्यसदनं कृष्णलीलारसावहम् ॥२९॥
बाललीलाविनोदेन रमते यत्र केशिहा ।
तस्याभिगमनादेव लीलारुचिमवाप्नुयात् ॥३०॥
लोहजङ्घवनं रम्यं लोहजङ्घाभिरक्षितम् ।
स्नानदानादिविधिभिर्वाजिमेधफलप्रदम् ॥३१॥
ततो बिल्ववनं नाम वनानामुत्तमं वनम् ।
तस्याभिगमनादेव कृष्णप्रेमाणमाप्नुयात् ॥३२॥
ततो भाण्डीरसंज्ञं तत् सर्वाश्चर्यमयं वनम् ।
तत्र गत्वा हरिं ध्यायेत् दिव्यलीलाविभूषितम् ॥३३॥
[1]भाण्डीरवटवृक्षस्य छायामाश्रित्य मानवः ।
विमुञ्चति परीतापं त्रिविधं हृदयस्थितम्[1] ॥३४॥
वृन्दावनं सुरुचिरं वृन्दादेव्याभिरक्षितम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण प्रारब्धमपि नाशयेत् ॥३५॥
केशिपट्टे नरः स्नात्वा दत्त्वा चाश्वं द्विजन्मने ।
न पुनर्जायते जन्तुर्मातृगर्भे सुदारुणे ॥३६॥
चीरघट्टे नरः स्नात्वा कदम्बं परिपूजयेत् ।
वासोऽलङ्कारगन्धाद्यैर्यत्र रूढो हरिः स्वयम् ॥३७॥
स्त्रीणां वस्त्राण्युपादाय स्नान्तीनां यामुनेऽम्भसि ।
दिव्यं वरं स ताभ्यश्च दत्तवान् सर्वकामदः ॥३८॥
कालीयस्य ह्रदस्तत्र यमुना स्रोतसोऽन्तरे ।
तत्रस्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधमवाप्नुयात् ॥३९॥

१–१. अयं श्लोको नास्ति—रीवाँ ।

यत्र प्राचीमुखं स्रोतः कालिन्द्या लोकपावनम् ।
तत्र स्नात्वा क्षणमपि स्थित्वा भाग्यनिधिर्भवेत् ॥४०॥
पञ्चरात्रोषितस्तत्र गोविन्दं योऽनुपश्यति ।
न तस्य लोके किमपि कर्तव्यमवशिष्यते ॥४१॥
[1]गोपेश्वराभिधं तत्र शिवलिङ्गं प्रतिष्ठितम् ।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च संपूज्य सर्वदुःखातिगो भवेत्[1] ॥४२॥
ततो गोवर्द्धनगिरिं गच्छेद्रत्नशिलामयम् ।
योजनद्वयमात्रोच्चैर्मथुरापश्चिमे स्थितम् ॥४३॥
अनेकनिर्झरस्रावमनोज्ञोपत्यकान्वितम् ।
अधित्यकासमुद्भासिरत्नशृङ्गविराजितम् ॥४४॥
द्रुमगुल्मलतावृन्दसमुल्लासिप्रसूनकैः ।
सौरभ्यहृतभृङ्गौघैः[2] पूर्यमाणं समंततः ॥४५॥
अनेककन्दरारम्यगह्वरोदीर्णपादपम् ।
निकुञ्जपुञ्जमधुरं माधुरीलतिकाञ्चितम् ॥४६॥
धातुप्रस्रवणानेकवर्णकान्तिविभूषितम् ।
सौभाग्यमिव भूमेस्तत्सर्वतो माधुरीमयम् ॥४७॥
सर्वाधिकोच्छ्रयभरेण विभूषिताङ्गं नानानिकुञ्जरमणीयमुदाररूपम् ।
कूजद्द्विजालिकुलझाङ्कृतिपूर्यमाणं भूयो दरीनिलयदीपितरत्नदीपम् ॥४८॥
सायंसमुद्गतमहामहसंचितानां नानाविधिप्रचुरदिव्यमहौषधीनाम् ।
ताभिर्निरस्ततिमिरैः स्वगृहान्तकुञ्जपुञ्जैः कुतूहलितगोपवधूसमूहम् ॥४९॥
चत्वारोऽत्र ह्रदा राजन् प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोत्तरः ।
तेषु स्नात्वा नरो गच्छेद्दिव्यं वैकुण्ठमन्दिरम् ॥५०॥
गोवर्धनं नाम गिरिं सुधन्यं यो दीपयेत् कार्तिकमासि दीपैः ।
दीपोत्सवे च त्रिदिनं विशेषान्न तस्य वै तामसलोकवासः ॥५१॥
गोवर्द्धनाद्रौ क्रियमाणमन्यैर्धन्यैर्जनैः पश्यति यः प्रदीपम् ।
सनिस्तरेत्तामसलोकवासात् व्रजेच्च शीघ्रं भगवन्निकेतम् ॥५२॥

१-१. अयं श्लोको नास्ति—रीवाँ । २. शृङ्गोच्चैः—रीवाँ ।

सर्वाश्चर्यमयो लोके श्रीमान् गोवर्द्धनाचलः ।
दृष्ट्वा परिक्रमेत्तं यः स निस्तरति दुर्गतिम् ॥५३॥
यमुनायाश्च तीर्थानि शृणुष्वावहितो नृप ।
तेषु स्नानेन दानेन न भूयो जन्मभाग्भवेत् ॥५४॥
संसारमोक्षणं नाम तीर्थं तत्रोत्तरं नृप ।
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च संसारान्मुच्यते जनः ॥५५॥
प्रयागतीर्थं तत्रैव विश्रुतं पापनाशनम् ।
स्नानदानादिभियत्र प्रयागादधिकं फलम् ॥५६॥
तीर्थं कनखलं नाम यमुनायां प्रतिष्ठितम् ।
स्नात्वा दत्त्वा च लभते फलं कनखलाधिकम् ॥५७॥
ततस्तिन्दुकतीर्थाख्यं यामुनं तीर्थमुत्तमम् ।
यत्र स्नात्वा नरो भूयो मातृयोनिं न विन्दति ॥५८॥
सूर्यतीर्थं महाराज तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ।
यत्र स्नात्वा नरो राजन् सूर्यवज्जायते रुचा ॥५९॥
ध्रुवतीर्थं विशेषेण स्नानमात्रेण शुद्धिदम् ।
निर्वपेत् तत्र पिण्डांश्च पितॄणां मोक्षहेतवे ॥६०॥
तीर्थराजाभिधं तीर्थं सर्वतीर्थौघपावनम् ।
यत्र स्नात्वा नरो राजन् महतीं शुद्धिमाप्नुयात् ॥६१॥
ऋषितीर्थं महाराज ऋषितापसमण्डितम् ।
यत्र स्नानविधानेन ऋषीणां ज्ञानमाप्नुयात् ॥६२॥
मोक्षतीर्थं महापुण्यं मथुरायां सुविश्रुतम् ।
तत्राप्लुत्य नरो राजन् भोगं मोक्षं च विन्दति ॥६३॥
कोटितीर्थाभिधं तीर्थं कोटितीर्थमयं नृप ।
स्नानदानादिभिः सद्यः पृथ्वीप्रादक्ष्यपुण्यदम् ॥६४॥
वायुतीर्थे च राजेन्द्र स्नात्वा शुद्धतनुर्भवेत् ।
यत्र सर्वजवावाप्त्यै वायुनाचरितं तपः ॥६५॥
इत्थं दक्षिणकोटिस्थान्येतानि तव भूपते ।
तीर्थान्युक्तानि सर्वाणि मया यामुनपार्थसि ॥६६॥

अथोत्तरां कोटिमधिष्ठितानि तीर्थानि राजन् शृणु मन्मुखेन ।
स्नानेन दानेन च तर्पणेन सद्यो मनुष्यस्य शुभप्रदानि ॥६७॥
आदौ संयमनं तीर्थं धारापतनकं ततः ।
नागतीर्थं ततः प्रोक्तं घण्टाभरणकं ततः ॥६८॥
ब्रह्मलोकाभिधं तीर्थं सोमतीर्थं ततः परम् ।
सरस्वतीदीपनकं[1] तीर्थानामुत्तमं नृप ॥६९॥
दशाश्वमेधसंज्ञं च तीर्थं देवर्षिपूजितम् ।
ततश्च मानसं तीर्थं विघ्नराजाभिधं ततः ॥७०॥
कोटितीर्थं ततः प्रोक्तं शिवक्षेत्रं ततः परम् ।
एषु स्नानेन दानेन नरो मुच्येत पातकात् ॥७१॥
विशेषतश्च माहात्म्यमेतेषां संप्रतिष्ठितम् ।
येषां मध्ये तु शुभदा विश्रान्तिः संप्रतिष्ठिता ॥७२॥
गतश्रमेण विप्रेण मुनिना तीर्थसेविना ।
नित्यमाराधिता पूर्वं विश्रान्तिः पापनाशिनी ॥७३॥
पुरा कंसं घातयित्वा यत्र विश्रमितो हरिः ।
निजगोपगणैः सार्द्धं दृष्टो माथुरमानुषैः ॥७४॥
देवाङ्गनाभिर्देवैश्च बलभद्रेण संयुतः ।
दृष्ट्वा[2] संपूजितश्चैव कल्पद्रुमभवैः शुभैः ॥७५॥
सात्वतैश्च जनैर्भक्तैः सानन्दमभिवीक्षितः ।
पीताम्बरधरः श्रीमान् शिखिपिच्छविभूषितः ॥७६॥
सर्वदा मथुरावासो विश्रान्तिस्नानमेव च ।
गतश्रमपरिक्रान्ति[3]स्त्रयमेतत् सुदुर्लभम् ॥७७॥
देवानामपि राजेन्द्र किंपुनर्मर्त्यवासिनाम् ।
दिने दिने महापुण्यं विश्रान्तिस्नानमाचरन् ॥७८॥
जीवन्मुक्तो भवेन्मर्त्यः स्वर्गस्थैरपि वन्दितः ।
मनसा मथुरावासं प्रातरुत्थाय मानवः ॥७९॥

---

१. °पतनकं—मथु०, बड़ो० । २. दृष्टः—मथु०, बड़ो० । ३. "गतश्रमः ऋषिविशेषस्तस्य परिक्रान्तिः प्रदक्षिणा" टि०—मथु०, बड़ो० ।

यः संस्मरति पुण्यात्मा सोऽपि धन्यो न संशयः ।
किं पुनर्ये वसन्त्यत्र विष्णुभक्तिपरायणाः ॥८०॥
भूतेश्वरं शिवं दृष्ट्वा महाविद्यां च मातरम् ।
दीर्घविष्णुं तथा नत्वा समभ्यर्च्य च केशवम् ॥८१॥
मथुरामावसन्मर्त्यो विश्रान्तिस्नानतत्परः ।
सर्वपापचयं दग्धा[1] मर्त्य एव न संशयः ॥८२॥
कोटिद्वये नरः स्नात्वा दत्त्वा चैव द्विजातये ।
यथाशक्ति सुवर्णं गां सर्वपापैर्विमुच्यते ॥८३॥
मथुरामण्डलं राजन् सर्वपापप्रणाशनम् ।
स्मरणादेव दूरस्थं पुनाति सकलं नरम् ॥८४॥
हरिस्तु पश्चिमे तत्र गोविन्दश्चोत्तरेण हि ।
पूर्वे गताश्रमो पुण्यो वाराहो दक्षिणे स्थितः ॥८५॥
तयोर्मध्ये महत्क्षेत्रं पवित्रं पापनाशनम् ।
माथुरं[2] मण्डलं नाम देवानामपि वाञ्छितम् ॥८६॥
अर्द्धचन्द्राकृति क्षेत्रं तन्मध्ये लोकविश्रुतम् ।
मण्डले सारभूतं तन्महासौभाग्यवर्द्धनम् ॥८७॥
तत्र ये मनुजाः पुण्याः पशुपक्ष्यन्त्यजा[3] अपि ।
म्रियन्ते मुक्तिभाजस्ते व्योम्नि भूमौ जलेऽपि वा ॥८८॥
न ते क्रियामपेक्षन्ते दाहाद्यां वेदविश्रुताम् ।
मथुरामरणादेव मुक्ताः कल्याणभागिनः ॥८९॥
परिक्रमन्ति ये पुण्यां मथुरां लोकवन्दिताम् ।
कार्तिके शुक्रनवमीमक्षयाख्यामुपेत्य तु ॥९०॥
न तेषां मातृगर्भान्तःप्रवेशो भवति ध्रुवम् ।
अपि पापात्पापतरास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥९१॥
अनुज्ञाय हनूमन्तं वायुपुत्रं महाबलम् ।
नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य तीर्थयात्रां समारभेत् ॥९२॥

---

१. °पापविशुद्धात्मा—मथु०, बड़ो० । २. माधुरं– रीवाँ । ३. °पक्ष्यन्तिजा—मथु०, बड़ो० ।

पद्मनाभं च देवेशं दीर्घविष्णुं महाप्रभुम् ।
देवीं वसुमतीं चैव तथा चैवापराजिताम् ॥९३॥
कंसवासनिकां देवीं वधूटीं च महेश्वरीम् ।
गृहदेवीस्तथा सर्वा वसुदेवीश्च भव्यहा ॥९४॥
गत्वा दक्षिणकोटिं च स्नात्वा संध्यामुपास्य च ।
संतर्प्य देवर्षिपितॄंस्तीर्थयात्रां समाचरेत् ॥९५॥
इछुवासां वत्सपुत्रं गत्वा पञ्चस्थलीं चरेत् ।
अर्कस्थलं प्रथमतो वीरस्थलमनुत्तमम् ॥९६॥
कुशस्थलं ततो भूयः पुण्यस्थलमतः परम् ।
महास्थलं च राजेन्द्र शिवं सिद्धिमुखं[1] तथा ॥९७॥
हयमुक्तिं ततो गत्वा गच्छेत् सिन्दूरयावकौ ।
मल्लिको समनुव्रज्य गच्छेत् कादम्बखण्डिकाम् ॥९८॥
चर्चिकस्य[2] स्पृशां चैव स्पृशां वा वर्षिखातकम्[3] ।
भूतेश्वरं महादेवं सेतुबन्धं ततो हरेः ॥९९॥
बालह्रदं महापुण्यं कुक्कुटक्रीडनं पुनः ।
स्तम्भोच्चयं तल्पगृहं देवकीवसुदेवयोः ॥१००॥
तथा नारायणस्थलं सर्वदेवालयं तथा ।
विघ्नराजं गणपतिं कुब्जिकां वामनां तथा ॥१०१॥
महाविघ्नेश्वरीस्थानं तथादेवीं प्रभावतीम् ।
संकेतकुण्डमेवापि तथा संकेतकेश्वरीम् ॥१०२॥
संकेतकेशीकुण्डं च गोकर्णं च सदाशिवम् ।
सरस्वतीं विघ्नराजं गङ्गारुद्रमहालयम् ॥१०३॥
तथैव चोत्तरां कोटिं गणेश्वरमतः परम् ।
द्यूतस्थानं तथाविष्णोर्गार्ग्यतीर्थं तथैव च ॥१०४॥
भद्रेश्वरस्य तीर्थं च सोमेशं सोमतीर्थकम् ।
सरस्वतीसंगमं च घण्टाभरणमेव च ॥१०५॥

---

१. सिद्धमुखं—मथु०, बड़ो० । २. चर्चिकाम°—मथु०, बड़ो० । ३. वर्षं—मथु०, बड़ो० ।

तीर्थानामुत्तमं तीर्थं तथा गरुडकेशवम् ।
धारापतनकं तीर्थं तीर्थं वैकुण्ठसंज्ञकम् ॥१०६॥
खण्डचैलकमेवापि तथा मन्दाकिनीमपि ।
संयमनं चासिकुण्डं नागतीर्थं तथैव च ॥१०७॥
अभिमुक्तेश्वरं चैव वैलक्षगरुडं तथा ।
गच्छेदनुक्रमेणैव परिक्रमविधौ शुचिः ॥१०८॥
एवं परिक्रम्य पुराणपूरुषं प्रियां पुरीं तां मथुराभिधानिकाम् ।
स्नात्वा च विश्रान्तिजले गतश्रमं[1] मुहुः परिक्रम्य नरो विमुच्यते ॥१०९॥
तीर्थानि सन्ति बहुशो जनपापपुञ्जदाहोद्धुराणिधरणीवलये परन्तु ।
केनोपमास्ति मथुराभगवन्नगर्याः कृष्णः स्वयं विहरति प्रणयेन यस्याम्११०
जन्मतो मरणाद्दाहाद्विवाहादुपवीततः ।
दीक्षातोऽवभृथाच्चापि स्नानाद्दानादुपोषणात् ॥१११॥
दशधा मथुरा नृणां कुरुते बहुलां श्रियम् ।
भुक्तिं मुक्तिं तथैश्वर्यं राज्यं स्वाराज्यमेव च ॥११२॥
नानया सदृशं स्थानं त्रैलोक्ये चापि विद्यते ।
तस्यां संवर्ततां नृणां कृष्णप्रेमोदयो भवेत् ॥११३॥
स्नात्वा विश्रान्तिपयसा समभ्यर्च्य च केशवम् ।
एकेनाह्ना नरो गच्छेद् दुर्लभं तद्धरेः पदम् ॥११४॥
राजन् द्रष्टास्यनेकानि स्थानानि धरणी तले ।
माथुरं मण्डलं दृष्ट्वा तृप्तिं यास्यसि चेतसि ॥११५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथ-
तीर्थयात्रायां पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

---

१. गतश्रमो—मथु०, बड़ो० ।

षडधिकशततमोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

अक्रूरतीर्थं तत्रैव विख्यातं यमुनाम्भसि ।
तस्य माहात्म्यमतुलं मया वक्तुं न शक्यते ॥ १ ॥
शेषशय्यास्थितं दृष्ट्वा भगवन्तं सनातनम् ।
यत्र प्राप मुदं पूर्णमक्रूरो नाम यादवः ॥ २ ॥
स्नानाद्दानाच्च होमाच्च पिण्डनिर्वपणात्तथा ।
विप्राणां भोजनाच्चैव ध्रुवं मुच्येत पातकैः ॥ ३ ॥
किमर्थं सेव्यते काशी कुरुक्षेत्रं च किंफलम् ।
अक्रूराख्ये महातीर्थे सकृत् स्नायाद् यदानरः ॥ ४ ॥
नातः परतरं तीर्थं पुण्यं नातः परं नृप ।
कार्तिके शुक्लद्वादश्यां यदि स्नायादिह प्रभो ॥ ५ ॥
सकृत् संस्नानमात्रेण कोटियज्ञफलं लभेत् ।
पूर्णिमायां विशेषेण स्नानदानोद्भवं फलम् ॥ ६ ॥
नरः संप्राप्य वसुधां किं नु शोचति मुक्तये ।
सकृन्मज्जनमात्रेण अक्रूरो दृष्टवान् हरिम् ॥ ७ ॥
यदंघ्रावद्रूपसंपन्नं साक्षाच्छ्रीपुरुषोत्तमम् ।
तत्तीर्थसदृशं लोके न तीर्थान्तरमिष्यते ॥ ८ ॥
ध्रुवस्थाने तथाक्रूरे कूपे सप्तसमुद्रके ।
यो नरः कुरुते श्राद्धं तस्य मुक्ताः पितामहाः ॥ ९ ॥
कालियस्य ह्रदस्तत्र यमुनायां प्रविश्रुतः ।
तत्र संस्नानमात्रेण नरो मुच्येत संसृतेः ॥१०॥
मरणान्मुक्तिमिच्छन्ति पशुपक्ष्यन्त्यजा[1] अपि ।
एकां रात्रिं तत्र वसेत् स्नानोपोषणतत्परः ॥११॥
कालियस्यैव दमनं भावयानो दिवानिशम् ।
स मुक्तो मनुजो राजन् घोरात् संसारसागरात् ॥१२॥

---

[1] पक्ष्यन्तिजा—मथु०, बड़ो० ।

नमो गोविन्ददेवाय कृष्णाय परमात्मने ।
नमो नटाय नव्याय कालियव्यालमर्दिने ॥१३॥
इत्युच्चारपरो लोकः क्षणं वृन्दावने स्थितः ।
योगिनामप्यलभ्यं तत् स्थानमाप्नोति तत्क्षणात् ॥१४॥
केशितीर्थं च तत्रैव त्रैलोक्ये विश्रुतं नृप ।
तत्र मज्जनमात्रेण निस्तुलं फलमाप्नुयात् ॥१५॥
किमर्थमश्वमेधादीन् यागानाचरसि प्रभो ।
किमर्थं पृच्छसे चैव तीर्थान्यन्यानि भूपते ॥१६॥
श्रीमद्वृन्दावने दिव्यं केशितीर्थं मुदावहम् ।
तत्र मज्जनमात्रेण चतुर्वर्गं प्रसाधय ॥१७॥
माकेशि तीर्थे विनिमज्य राजन् स्वं स्वं फलं धारय मानसे त्वम् ।
यत्संसृतौ संसरतां जनानां मुक्तिं प्रयच्छन्नपि लज्जते हृदि ॥१८॥
यत्रासुरः केशिनामा महौजाः पुरन्दराद्याखिलदेवजैत्रः ।
क्षणेन नारायणहस्तपद्मस्पर्शेन मुक्तः सहसोद्गतासुः ॥१९॥
तत्रातुले तीर्थवरे च विष्णोः पिण्डं विनिष्पात्य हितः पितॄणाम् ।
संतारयेत् स्वं कुलमेकविंशाच्छ्रद्धान्वितो ब्राह्मणभोजनाद्यैः ॥२०॥
कुरुक्षेत्रे च यत्पुण्यं गयायां चैव भूपते ।
ततोऽधिकतरं पुण्यं केशितीर्थेऽवगाहनात् ॥२१॥
केशितीर्थे सकृत्स्नात्वा दत्वा चाश्वं द्विजन्मने ।
अश्वमेधसमं पुण्यं तत्क्षणाल्लभते नृप ॥२२॥
किमर्थं सेव्यते काशी किमर्थं सेव्यते गया ।
किमर्थं च कुरुक्षेत्रं केशितीर्थे निमज्ज्य तु ॥२३॥
पशुपक्ष्यन्त्यजानामप्यत्र मुक्तिः सनातनी ।
पश्यतां सर्वदेवानां यत्र केशी विमोचितः ॥२४॥
गायन्ति निगमा सर्वे काशीजनविमुक्तिदा ।
केशितीर्थगुणान् वक्तुमशक्ता एव ते नृप ॥२५॥
गोवर्द्धने रहस्यानि स्थानानि धरणीतले ।
तानि वक्तुं न शक्तोऽहं कल्पकोटिशतैरपि ॥२६॥

यत्र सा मानसी गङ्गा देवानामपि दुर्लभा ।
तस्यां स्नात्वा च दत्त्वा च कोटियज्ञफलाधिकम्॥२७॥
फलं लभस्व राजेन्द्र कृत्वा शैलं प्रदक्षिणम् ।
अभ्यर्च्य हरिदेवं च पुनर्जन्म न विद्यते ॥२८॥
पुण्डरीकं नरो गत्वा स्नात्वा कुण्डेऽतिपावने ।
पुण्डरीकं च संयोज्य प्रयाहि हयमेधिताम् ॥२९॥
नाम्ना पापहरं तत्र कुण्डं विमलपाथसम् ।
तत्र स्नात्वा महीपाल पापं किमनुशोचसि ॥३०॥
स्नात्वा सांकर्षणे कुण्डे संकर्षणसुखप्रदे ।
यत्र स्नानेन दानेन धूतपापो भवेन्नरः ॥३१॥
इन्द्रतीर्थे नरः स्नात्वा मखस्थाने च गोदुहाम् ।
महदैश्वर्यमाप्नोति गोसहस्रं च विन्दति ॥३२॥
यत्रेन्द्रयज्ञो विहतः कृष्णेनाद्भुतकीर्तिना ।
दत्त्वा च गिरये पूजां सोऽन्नकूट इति स्फुटः ॥३३॥
गावो विप्रास्तथा देवा वैष्णवा ऋषयस्तथा ।
पूजिता नन्दराजेन यत्र कृष्णोपदेशतः ॥३४॥
तत्र संतर्प्य मनुजो देवर्षिस्वपितामहान् ।
शतसोमोद्भवं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥३५॥
स्नात्वा कदम्बखण्डान्तःकुण्डे विमलपाथसि ।
देवान् पितॄंश्च संपूज्य सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥३६॥
तत्रत्यं शिवलिङ्गं च दिव्यगोपेन्द्रपूजितम् ।
तस्य दर्शनमात्रेण कुण्डस्नानेन च प्रभो ॥३७॥
दानेन तर्पणेनापि देवर्षिपितृजन्मिनाम् ।
कोटियज्ञोद्भवं पुण्यं लभस्व नृपसत्तम ॥३८॥
अथो मानसगङ्गाया उत्तरेण प्रतिष्ठितम् ।
अरिष्टहरणं क्षेत्रं यत्रारिष्टो निपातितः ॥३९॥
हरिणा गोपरूपेण लीलामानुषवर्ष्मणा ।
वृषहत्याविनिर्मुक्त्यै तत्र क्षेत्रं विनिर्मितम् ॥४०॥

महाफलं महातीर्थं पार्ष्णिघातोद्भवं हरेः ।
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च सुवर्णं गां द्विजातये ।
आजन्मकृतपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥४१॥

राजोवाच

वृषहत्या कथं लग्ना कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ।
कथं च निर्मितं तीर्थमेतन्मे भगवन् वद ॥४२॥

वशिष्ठ उवाच

चन्द्रिकाविमले शीले रम्ये गोवर्द्धने नृप ।
कृष्ण आकारयामास राधिकां प्राणसंमिताम् ॥४३॥

श्रीकृष्ण उवाच

दृश्यतां विमलं स्थानं शरच्चन्द्रिकयान्वितम् ।
आगम्यतां प्रिये शीघ्रमत्र रंस्यावहे मिथः ॥४४॥
इति प्रियोदितं श्रुत्वा तमुवाच व्रजेश्वरी ।
ईषत्स्मितरदज्योत्स्नासुधावर्षणकारिणी ॥४५॥

राधोवाच

सत्यमुक्तं त्वया कान्त वृषः किन्तु त्वया हतः ।
तेनास्पृश्योऽसि मयका सांप्रतं ब्रह्महत्यया ॥४६॥
इति श्रुत्वा प्रियावाक्यं कृष्णो मुदितमानसः ।
उवाच मधुरं वाक्यं शीघ्रमालिङ्गनोत्सुकः ॥४७॥
सत्यमुक्तं त्वया भद्रे लोकानुश्रुतिरीदृशी ।
किन्त्वेतद्दोषनिर्मुक्त्यै करिष्ये तीर्थमद्भुतम् ॥४८॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सप्तद्वीपस्थितान्यपि ।
इहानेष्ये प्रिये तानि सर्वाणि वृषभानुजे ॥४९॥
इत्युक्त्वा वचनं कृष्णः पार्ष्णिघातेन भूतलात् ।
आविर्भावितवान् रम्यं तीर्थं विश्वस्य पावनम् ॥५०॥
कोटितीर्थमयं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
नानागुल्मलताकीर्णं दिव्यवृक्षवनान्वितम् ॥५१॥

तत्र स्नात्वा स्वयं कृष्णः परमात्मा सनातनः ।
आलिङ्गितो मुदितया राधया गोपकन्यया ॥५२॥
तद्देहकान्त्या समभूत् कुण्डमन्यन्मनोहरम् ।
राधाकुण्डमिति प्रोक्तं पुराणज्ञैर्मनीषिभिः ॥५३॥
ते कृष्णराधाकुण्डाख्ये तीर्थे सर्वस्य कामदे ।
तयोः स्नायान्नरो मूर्त्यै तीर्थयोः पुण्यरूपयोः ॥५४॥
कृष्णकुण्डे समाप्लुत्य राधाकुण्डे च मानवः ।
कोटिपापविनिर्मुक्तस्तयोः प्रियतमो भवेत् ॥५५॥
मोक्षराजाभिधं तीर्थं तत्रान्यत् सुमनोहरम् ।
दर्शनादेव लोकानां सर्वपापविनाशनम् ॥५६॥
इन्द्रध्वजाभिधं तीर्थं गोवर्धनगिरेः पुरः ।
तत्र स्नानेन दानेन न पुनर्जन्मभाग् भवेत् ॥५७॥
चक्रतीर्थं च तत्रैव पञ्चतीर्थाभिधं तथा ।
महासरः प्रविख्यातं देवानामपि वाञ्छितम् ॥५८॥
तत्र स्नात्वा च संतर्प्य दत्त्वा चैव द्विजातये ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः कुलकोटिं समुद्धरेत् ॥५९॥
पदे पदेऽत्र तीर्थानि कीर्तितानि मनीषिभिः ।
गोवर्द्धनगिरिः साक्षात्कृष्णप्रेमैकमूर्तिकः ॥६०॥
गोविन्दं कुण्डमेतस्य हृदयं परिकीर्तितम् ।
कामधेनुस्तनोद्भूतैः पयोभिः परिपूरितम् ॥६१॥
रुद्रकुण्डं गिरौ पुण्यं स्नानाद्दानाच्च पावनम् ।
पुष्पसागरनामा च तथैव सुमहानिह ॥६२॥
सरोवरः सुरुचिरः कृष्णेन विनिषेवितः ।
तस्य दर्शनमात्रेण पापपुञ्जं पलायते ॥६३॥
एवं यः कुरुते यात्रां गोवर्द्धनगिरेर्नृप ।
तस्य पापानि नश्यन्तीत्येतत्तुच्छतरं फलम् ॥६४॥
यत्र मुक्तिस्तृणसमा पुलाकं[1] ब्रह्मणः पदम् ।
कस्तस्य किल माहात्म्यं वक्तुं शक्तियुतो भवेत् ॥६५॥

---

१. पुलकं—रीवाँ ।

गोवर्द्धनगिरिः साक्षाच्चिन्तामणिमयी शिला ।
पूजनीया विशेषेण सर्वपापप्रणाशिनी ॥६६॥
गोवर्द्धनगिरेर्धूलिः श्रीकृष्णचरणाङ्किता ।
सा यस्य देहे संलग्ना यमस्तस्य करोति किम् ॥६७॥
शालग्रामशिला राजन् पूजनादेव भव्यदा ।
गोवर्द्धनशिला त्वत्र दर्शनादेव मोक्षदा ॥६८॥
नानातीर्थानि तिष्ठन्ति गोवर्द्धनशिलाश्रये ।
तां स्नापयित्वा विधिवत् प्रातरुत्थाय मानवः ॥६९॥
तत्तोयं सुसमाचम्य भक्त्या मानवसत्तमः ।
सर्वतीर्थोद्भवं पुण्यं तत्क्षणाल्लभते नृप ॥७०॥
नानेन सदृशं तीर्थं पुण्यं नानेन संमितम् ।
त्रैलोक्यपावनी यत्र शिला गोवर्धनोद्भवा ॥७१॥
एका शिला लघुतरा नृप यस्य गेहे संपूजिता कुसुमगन्धसमूहकाद्यैः ।
तिष्ठत्यविघ्नकरणी भविकौघहेतुः किं तस्य देवबहुभिः खलु तीर्थपुण्यैः ॥७२॥
चिदानन्दमयः सर्वो[1] गोवर्द्धनगिरीश्वरः ।
तस्य संदर्शनादेव कोटियज्ञफलं लभेत् ॥७३॥
तदभावे शिला[2] चैका तस्य संस्थापिता गृहे ।
तदुद्भवैर्जलैः कोशं पावयेत् पाञ्चभौतिकम् ॥७४॥
सिंहासनस्थिता शैलशिला परममञ्जुला ।
गोवर्द्धनविहारेण नित्यं योजयते हरिम् ॥७५॥
स्नानं मानसगङ्गायां सकृन्मोक्षप्रदं हरेः ।
दर्शनं गिरिराजस्य प्रादक्षिण्यं च भक्तितः ॥७६॥
त्रयमेतत्समं राजन् पुराणज्ञैः प्रकीर्तितम् ।
एकैकमश्वमेधादि महायज्ञफलप्रदम् ॥७७॥
सर्वेषु वेदेषु तथा पुराणेष्वन्येषु शास्त्रेषु रहस्यकेषु ।
गोवर्द्धनस्याचलपुङ्गवस्य संवर्णितोऽयं महिमैकदेशः ॥७८॥

---

१. चिदात्मनः सर्वेशो—रीवाँ । २. सिकता—रीवाँ ।

स्नानेन दानेन च विप्रभोज्यैः श्राद्धेन देवार्चनकोटिभिश्च ।
यत्कोटितीर्थेषु महाफलं स्याद् गोवर्द्धने तद्व्रजसि प्रतिष्ठितम् ॥७९॥
यत्र क्वचित्कुण्डजले सरोजले सुनिर्झरोत्थे च जले समाप्लुतः ।
गोवर्द्धनं प्रान्तभुवि व्रजे वनेष्वखण्डपुण्यप्रचयः प्रकीर्तितः ॥८०॥
गोवर्द्धनाद्रिभवधातुविचित्रिताङ्गो गोवर्द्धनाद्रिशिखिपिच्छकृतावतंसः ।
गोवर्द्धनद्रुमसुपल्लवभूषिताङ्गो गोवर्द्धनोद्धुरदरीगृहक्लृप्तवासः[1] ॥८१॥
गोविन्द आदिपुरुषो रमणीयलीलो राधाविभूषितमनोहरवामपार्श्वः ।
गोवर्द्धनेनिवसता मनुजेन नित्यं ध्यातव्य एष करुणावरुणालयात्मा ॥८२॥

गोवर्द्धनगिरेर्वासाद् गोविन्दसर आप्लवात् ।
दिव्यदृष्टिर्भवेन्मर्त्यः कृष्णं येन प्रपश्यति ॥८३॥
स्थानानि सन्ति भूरोणि रहस्यानि महीतले ।
गोवर्द्धनगिरेस्तुल्यं न किंचिदपि दृश्यते ॥८४॥
ततोऽतिरम्यशिखरो वरसानुगिरिर्व्रजे[2] ।
राधिकायाः पितुः स्थानं वृषभानोर्महात्मनः ॥८५॥
तस्य संदर्शनादेव जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।
यत्र गोष्ठानि रम्याणि धेनूनां सर्वतो दिशम् ॥८६॥
कुञ्जपुञ्जावृता[3]न्यद्धा गुञ्जद्भृङ्गाणि सौरभैः ।
नन्दगोपस्य गोष्ठं च गवां हंभारवैः शुभम् ॥८७॥
सर्वतः कुञ्जपुञ्जाढ्यं महामङ्गलमण्डितम् ।
वत्सैर्वेतितरोमन्थं शाद्वलेषु निषादिभिः ॥८८॥
घटोध्नीभिर्युतं गोभिर्मन्थानरवमङ्गलम् ।
गायद्गोपाङ्गनावृन्दकण्ठस्वरमनोहरम् ॥८९॥
नित्यानन्दपदं धाम नन्दगोपस्य कीर्तितम् ।
यत्र नित्यं हरेर्वासो लीलारमणशालिनः ॥९२॥
इतस्ततश्चरन्तीनां गोपीनां पादनूपुरैः ।
रमणीयतमं नित्यं नित्यकौतूहलान्वितम् ॥९१॥

---

१. °वास्तु—रीवाँ। २. ततो निवसते राजन् वरसानुगिरिं व्रजेत्—रीवाँ।
३. °दृता°—मथु०, बड़ो०।

नन्दीश्वरगिरौ रम्ये सर्वदेवमये शुभे ।
प्रतिष्ठिततमं लोके विख्यातं तीर्थमुत्तमम्[1] ॥९२॥
नन्दग्राम इति व्यक्तं नाम धाम निरूपितम् ।
अनेकैः पुण्यसलिलैः सरोभिरभितो युतम् ॥९३॥
राजधानीस्वरूपं तत् समस्तव्रजमण्डले ।
अनेकवापिकायुक्तमनेकद्रुमसंकुलम् ॥९४॥
तत्राभिगमनाद्राजन् शैलसंदर्शनादपि ।
अवगाहाच्च तीर्थानां कृष्णलीलाविचिन्तनात् ॥९५॥
विप्राणां भोजनाद्दानाद् व्रजधूलिविलेपनात् ।
माहेयस्यातिमृष्टस्य तत्रत्यस्य च भोजनात् ॥९६॥
आयान्तीनां च यान्तीनां गवां खुररजःस्पृशः[2] ।
दर्शनात् स्पर्शनाच्चापि संलापाद् व्रजवासिनाम् ॥९७॥
अनेकधा भवेन्मुक्तिस्तस्य संवासतो नृणाम् ।
व्रजभूमौ गमिष्यामि व्रजभूमौ वसाम्यहम् ॥९८॥
इत्येवं चिन्तयन्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः ।
व्रजवासोद्भवं पुण्यं लभते मानवः कलौ ॥९९॥
संकेतस्थानमुभयोरतुलं मध्यदेशगम् ।
राधाकृष्णनिजक्रीडास्थानभूतं मनोहरम् ॥१००॥
साक्षात्तत्रानुभावोऽयं लोकलोचनगोचरः ।
न स्पृशन्ति द्रुमांस्तत्र पक्षिणोऽपि वनेचराः ॥१०१॥
नच विट्कणिकास्तेषु पातयन्ति सुदूरगाः ।
गुल्मवृक्षलताद्याश्च दधते युगलात्मताम् ॥१०२॥
कदाचिच्छ्रूयते चापि मनुजैर्दिव्यमानसैः ।
मृदङ्गरवसंनादो मुरलीरवमिश्रितः ॥१०३॥
दृश्यन्ते चापि धरणौ सिन्दूराञ्जनबिन्दवः ।
यावकस्य रसश्चापि चीर्णताम्बूलिकारसः ॥१०४॥

---

१. कीर्त्तिमत्तमम्—मथु०, बड़ो० । २. °स्पृशेत्—मथु०, बड़ो० ।

प्रत्यक्षदृष्टैरित्यादयैश्चिह्नैर्जनमनोहरैः ।
राधारमणयोः क्रीडा नित्यं तत्रानुमीयते ॥१०५॥
अन्येषु च रहस्येषु स्थानेषु धरणीपते ।
द्रष्टासि तत्र प्रत्यक्षमनुभावं रहस्यगम् ॥१०६॥

नन्दीश्वरादवाग्देशे वरसानुगिरेरुदक् ।
मध्ये भूमिरजोमध्ये ब्रह्मादिसुरसेविते ॥१०७॥
उषितं कलहायन्ते काश्यादयास्तीर्थकोटयः ।
यत्र कृष्णपदाम्भोजचिह्नानि सुखमासते ॥१०८॥
गोवर्द्धनगिरौ चैव वरसानुगिरौ तथा ।
नन्दीश्वरगिरौ चैव नित्यं कृष्णस्य संनिधिः ॥१०९॥

यमुनायाः परे पारे गोकुलं कृष्णजन्मभूः ।
तस्य दर्शनमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥११०॥
कृष्णेन पूतना यत्र मोचिता बालकेलिना ।
शकटश्च तृणावर्ते यत्रैव विनिपातितः ॥१११॥
तथैव मृत्तिका यत्र भक्षिता मातृभीतितः ।
व्यादाय वदनं सर्वं ब्रह्माण्डं संप्रदर्शितम् ॥११२॥

तत्र स्नात्वा नरो याति कृष्णसायुज्यमुत्तमम् ।
यमलार्जुनपाते च नरो गच्छेद् विशेषतः ॥११३॥
तत्र स्नात्वा नरो सद्यो मुच्यते नात्र संशयः ।
कर्णवेधनकूपे च स्नायात् तीर्थौघसेविते ॥११४॥
लभते पुत्रपौत्रादीन् दीर्घमायुश्च विन्दति ।
पितॄन् संतर्प्य विधिवच्छतं तारयते कुलम् ॥११५॥

स्नात्वा भाण्डीरकूपे च भाण्डीरवटमूलगः ।
तत्रत्यं सेवमानश्च समीरं मन्दशीतलम् ॥११६॥
कृष्णलीलादर्शनार्थमधिकारं लभेद् ध्रुवम् ।
मथुरायां महाकूपे सप्तसामुद्रिकाभिधे ॥११७॥
स्नात्वा पितॄन् सुसंतर्प्य दत्त्वा च बहुलं द्विजे ।
न पुनर्जायते जन्तुर्मातृगर्भेऽतिदुःखदे ॥११८॥

यस्य क्वापि न मुक्तिः स्यात् प्रेतभावाद् गयादिषु ।
सप्तसामुद्रिकः कूपस्तं मोचयति वै द्रुतम् ॥११९॥
दुष्कृतानि समृद्धानि मेरुमन्दरशैलवत् ।
तूलराशिवदुड्डीय गच्छन्त्यत्रावगाहनात् ॥१२०॥
यावन्ति भुवि तीर्थानि सप्तद्वीपावधिस्थितौ ।
तावन्ति विमले कूपे सप्तसामुद्रिकाभिधे ॥१२१॥
एवं यः कुरुते राजन् मथुरायाः समंततः ।
यात्रां पापहरां सद्यः स किंमर्त्यः स दैवतः ॥१२२॥
मथुरामण्डलेऽन्यानि तीर्थानि धरणीपते ।
रहस्यानि क्रियार्हाणि पितृदेवार्चनादिषु ॥१२३॥
तेषु स्नात्वा च दत्त्वा च यथाशक्ति द्विजन्मने ।
न पुनर्लभते जन्तुर्मातृगर्भान्तरे स्थितिम् ॥१२४॥
मथुरामण्डले राजन् पशुपक्ष्यन्त्यजा[1] अपि ।
चतुर्भुजा एव सर्वे इत्याज्ञा जगतो हरेः ॥१२५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथस्य तीर्थयात्रायां षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

●

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

राजोवाच

तीर्थानां सारभूता या विश्वतः पावनोदका ।
यमुना भवता प्रोक्ता माथुरे मण्डले शुभे ॥ १ ॥
तस्यास्तु मे समुत्पत्तिं ब्रूहि ब्रह्मर्षिसत्तम ।
कथं हि सा समुत्पन्ना केन वा हेतुना मुने ॥ २ ॥
किं स्वरूपा च सा प्रोक्ता कुत्र चोत्पत्तिमागता ।
एतन्मे मुनिशार्दूल वद विस्तरतोऽधुना ॥ ३ ॥

१. पक्ष्यान्तिजा—मथु०, बड़ो० ।

वशिष्ठ उवाच

श्रूयतां रघुशार्दूल यमुनोत्पत्तिरद्भुता ।
नित्यापि सा हरेर्लोके शुभार्थं जगतोऽजनि ॥ ४ ॥
जाते तु सकले लोके जाते स्थावरजङ्गमे ।
जाते त्रैलोक्यसंस्थाने देवा इदमचिन्तयन् ॥ ५ ॥
अहो इदं जगत् सर्वं विष्णुना गुणिरूपिणा ।
आत्मना जनितं तावद् विचित्ररचनामयम् ॥ ६ ॥
स्वर्भूःपातालसंस्थाश्च तत्तत् स्थाने विकल्पिताः ।
देवाश्च मानुषाश्चैव राक्षसानां गणास्तथा ॥ ७ ॥
देवयोनिगणाश्चैव गन्धर्वा साप्सरःगणाः ।
नागा नगाश्च नगराण्यटव्यो वनदेवताः ॥ ८ ॥
विविधा जन्तवश्चैव स्वभावाश्च पृथग्विधाः ।
विचित्रा लोकसंस्थाश्च भूनभोमण्डले अपि ॥ ९ ॥
दिशो दिग्देवताश्चैव राशयस्तारकास्तथा ।
दृश्यते यत्र यत्रैव तत्र तत्राद्भुतं महत् ॥१०॥
लोका विचित्ररचनाः सप्ताधः सप्त चोपरि ।
द्रव्याणि चाप्यनेकानि स्वर्णरत्नादिकान्यपि ॥११॥
धातवो विविधाकारा विविधाश्च नृणां धियः ।
एतत् त्रैलोक्यमतुलं वेधसा रचितं महत् ॥१२॥
वेदानां शब्द[1]वृन्देभ्यः सर्वथा परिकल्पिताः ।
चातुर्वर्ण्यं सदाचारं चतुराश्रमसंस्थया ॥१३॥
वृत्तयश्च प्रजानां वै स्वस्वोचितविभक्तयः ।
अवलोक्य धिया पूर्वं स्वतन्त्रेण मणीषिणा ॥१४॥
हरेराज्ञावशेनैव कल्पितं सर्वमादरात् ।
अनिन्द्यं सर्वतस्तच्च कविना विश्वमूर्तिना ॥१५॥
यतो यतः प्रसर्पेत दृष्टिः सूक्ष्मार्थदर्शिनी ।
ततस्ततोऽखिलं विश्वमनन्तं प्रतिभाति नः ॥१६॥

---

१. सप्त°—रीवाँ ।

अनन्ता रचिता जीवा इत्थं भगवता स्वयम् ।
निजमायामधिष्ठाय प्रकृतिं गुणिलिङ्गिनीम् ॥१७॥
तेषां दण्डधरः कश्चिन्न जात इति चिन्त्यताम् ।
राजानो राजधानीं स्वां शासन्ति खलुदण्डतः ॥१८॥

एतावद्राज्यमतुलं विष्णोर्वै परमेशितुः ।
विना दण्डप्रदं भूत्यै कथं भवितुमर्हति ॥१९॥
इत्येका महती चिन्ता जागर्ति खलु नोत्तरे ।
अत्रोपायोऽपि तेनैव कार्योऽन्तर्यामिणा स्वयम् ॥२०॥

येनैव रचितं विश्वं सदसत्स्थूलसूक्ष्मकम् ।
तस्यैवेयं भवेच्चिन्ता सर्वे विज्ञापका वयम् ॥२१॥

स नयः स नयस्थानं स एव नयदर्शकः ।
स एव नयदाता च विश्वभूः परमेश्वरः ॥२२॥
दृष्टमेतत् पुराकल्पे दिव्येन ज्ञानचक्षुषा ।
दण्डपाणिः स्वयमभूद् भगवान् कालरूपधृक् ॥२३॥

रम्यदर्शः पुण्यवतामघानां क्रूरदर्शनः ।
शास्ता स सर्वलोकस्य पुण्यपापविवेचकः ॥२४॥
स एव चाधुनाप्यस्तु भगवान् स्वात्मना विभुः ।
यतः समस्तभूतानां भयं भवति भूरिशः ॥२५॥

भयेन न प्रवृत्ताः स्युः स्वाच्छन्द्येन जना भुवि ।
एकं मूर्ध्नि नियन्तारं मन्यमाना दिवानिशम् ॥२६॥
अन्यथा स्वेच्छया वृत्या भुवनं व्याकुलीभवेत् ।
इतिचिन्तासमाविष्टास्तूष्णीमासन् दिवौकसः ॥२७॥

वशिष्ठ उवाच

एतस्मिन्नन्तरे राजन् भगवल्लोकवासिनः ।
दिव्यपार्षदवर्यास्ते भगवन्तं विजज्ञपुः ॥२८॥
प्राणिनां पापसंभूतिमाज्ञाय महतीं हृदि ।
सर्वोपकारनिरताः करुणावशवर्तिनः ॥२९॥

पार्षदा ऊचुः

भगवंस्त्रिजगन्नाथ सर्वभूतविभावन ।
सर्वकल्याणधिषण करुणामय केशव ॥३०॥
शिवोऽसि शिवरूपोऽसि त्वमेवाशिवनाशनः ।
त्वमेकः सर्वभूतानामनुकम्पानिधे हरे ॥३१॥
बिभर्षि कौस्तुभव्याजात् करुणाङ्कुरमीश्वर ।
त्वयैव सर्वदा भव्ये स्थापनीयमिदं जगत् ॥३२॥
न तु संप्रत्यमी जीवाः क्लेशिताः पापकर्मभिः ।
विपद्यन्ते विपच्यन्ते नरके तामसौकसि ॥३३॥
अमीषां ज्ञानविभ्रंशान्नैव कर्मास्ति तादृशम् ।
येनोद्धरेयुरात्मानं नारकीं गतिमास्थिताः ॥३४॥
नापि विज्ञानसंपत्तिरमीषां जातु दृश्यते ।
भूयः संसरमाणानामविद्यापिहितात्मनाम् ॥३५॥
नाप्यमीषां समुद्धृत्यै योगोऽपि खलु दृश्यते ।
एकाकिनापि चाङ्गेन संसिद्धिं समुपागताः ॥३६॥
न तपस्तादृशं चैषु न कर्म तव तुष्टिदम् ।
न विज्ञानं ज्ञानबीजं न स्वाध्यायः क्षमा दया ॥३७॥
विनष्टा आत्मनैवामी विमूढाः कुशले पथि ।
त्वमेव स्वेच्छयामीषां हितकर्ता न चेद्भवेः ॥३८॥
भगवंस्तर्ह्यमी जीवा विनष्टा एव केवलम् ।
श्रिताः पापीयसीं वृत्तिमात्मवञ्चनकारकाः ॥३९॥
कदाचिदात्मनोंऽशेन जीवेषु करुणां दधत् ।
प्रादुर्भूयावतारादौ कुरुषे जगतां हितम् ॥४०॥
नित्यं चामलया त्रय्या कर्मज्ञानोपदेशनैः ।
विश्वचक्षुः समुन्मील्य जगतीहितमाचरः ॥४१॥
तथापि नो विजानन्ति विमूढाः स्वात्मनो हितम् ।
एषां शाश्वतिकं शश्वत् कुशलं कर्तुमर्हसि ॥४२॥
अनायासेन मुच्येरन् येन मूढा जगज्जनाः ।
किंचित् साहजिकं पुण्यं लोके प्रकटय प्रभो ॥४३॥

यत्संपर्काद्विशुद्धाः स्युः पापा अपि नरा भुवि ।
दृष्टमेतत् पुरास्माभिस्त्वत्प्रसादोत्थया धिया ॥४४॥
नीलं महस्तव विभो तीर्थरूपं द्रवामृतम् ।
जगतां शोकशमनं तव सायुज्यदायकम् ॥४५॥
बभूव कमलाकान्त यमुनेत्याख्यया स्फुटम् ।
इति विज्ञापितं तेषां निशम्य गरुडध्वजः ॥४६॥
ईषद्विहस्य भगवांस्तूष्णीमास जगत्प्रभुः ।
अथैकदा निजे लोके व्यापि[1]वैकुण्ठसंज्ञके ॥४७॥
नित्यलीलारसं पुष्णन् विरेजे भगवान् स्वयम् ।
श्रीमद्वृन्दावने रम्ये ऋतुषट्कनिषेविते ॥४८॥
महामाधुर्यभवने महासौभाग्यसागरे ।
द्रुमवल्लीवनाकीर्णे धीरमारुतसेविते ॥४९॥
वल्लवीनिवहोद्गीत[2]मञ्जुलस्वरनादिते ।
नित्योत्सवे नित्यसुखे नित्योत्साहविवर्द्धिते ॥५०॥
नित्यरासरसोल्लासे नित्यकैशोरलालिते[3] ।
नित्यं च शैशवाक्रीडे नित्यकौतूहलोदधौ ॥५१॥
नित्यकेलिरसानन्दे नित्यस्त्रीजनसंभृते[4] ।
गवां हंभारवैर्नित्यं वत्सानां कूर्दनैश्च तैः ॥५२॥
दधिमन्थनघोषैश्च स्त्रीणां नूपुरसिञ्जितैः ।
सायंप्रातः सदासौख्ये रात्रंदिवसुखव्रजैः ॥५३॥
नित्यमानन्दनिविडे महामाङ्गल्यगह्वरे ।
श्रीमन्नन्दालये तत्र भगवान् गोपिकासुतः ॥५४॥
बाललीलामतिक्रम्य कैशोरं समुपाश्रितः ।
नवीनयौवनोद्भेदप्रत्यङ्गमधुराकृतिः ॥५५॥
राधिकानयनानन्दो लावण्यगुणवारिधिः ।
संददर्श निजं रूपं कदाचिद्रहसि स्थितः ॥५६॥

---

१. व्याप्य°—रीवाँ । २. वल्लवीनां महोद्गीत—रीवाँ । ३. °लीलिते—बड़ो० । ४. संभ्रमे—मथु०, बड़ो० ।

दर्पणे चन्द्रविमले निर्जने गहने वने ।
स आत्मनः प्रतिबिम्बावलोकात् संक्षुब्धचित्तो रतितत्त्वाभिमर्शात् ।
स्त्रीरूपमात्मानमथेहमानः शुश्राव दिव्यामृतधारासहस्रैः ॥५७॥
प्रत्यङ्गमात्मानमुदीक्षमाणः संक्षुब्धचेता मन्दमन्दस्रुतोऽभूत् ।
श्रीविग्रहः कामतत्त्वेन सर्वमाविष्टः सन् द्रवतामाप तर्हि ॥५८॥
इत्थं समस्ते द्रवभावं गतेऽस्मिन् श्रीविग्रहे नीलमहस्यनन्ते ।
शिष्टो भागो भूरितरप्रभावस्तेजो दण्डाकारतां बिभ्रदासीत् ॥५९॥

अत्रान्तरे तु तत्रागात् संकर्षण उदारधीः ।
दृष्ट्वा तु तद् विस्मितोऽभूत् तेजोदण्डमयं वपुः ॥६०॥
नीलं महो द्रवमयं प्रवाहाकारतां दधत् ।
आःकिमेतदिति प्रोच्य स्मययानो मुहुर्मुहुः ॥६१॥
तत्रागाद् भगवान् ब्रह्मा सर्वविश्वसृजां पतिः ।
स्मयमानं बलं दृष्ट्वा प्रोवाच भगवान् स्वयम् ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

किं नु विस्मयसे धीमन् संकर्षण महाबल ।
एतद्भगवतः कृत्यं कृष्णस्य परमात्मनः ॥६३॥
लौकस्यैव हितं नित्यं चरतश्चरितं हरेः ।
दुष्प्रतर्क्यं सुरैः सर्वैर्जातमेवानुभूयते ॥६४॥
दण्डाकारमिदं तेजो यम एव भविष्यति ।
जगतां दण्डदानाय पुण्यपापविमोचनः ॥६५॥
दृष्टमेतत् पुरा देवैश्चिन्तां कृत्वा महीयसीम् ।
को नु दण्डयिता लोके भवेदिति विचिन्तनात् ॥६६॥
स एष जातो भगवान् लोकानां यमरूपधृक् ।
अनेन स्वच्छन्दकृतो न भविष्यन्ति मानवाः ॥६७॥
नोचेल्लोके विशीर्णः स्यात् पुण्यपापविवेचनात् ।
अतो हितमिदं स्वेन हरिणैव विनिर्मितम् ॥६८॥
अयं च नीलमहसा महनीयतमद्युतिः ।
प्रवाहो भविता साक्षाद्यमुनेत्याख्यया नदी ॥६९॥

अनायासेन जगतां पुण्यौघस्य विवर्द्धिनी ।
कृष्णप्रिया स्वयं कृष्णा सर्वेषां पापहारिणी ॥७०॥
यावन्ति भुवि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च ।
तान्यस्याः कृष्णकान्तायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥७१॥
कृष्णस्वरूपमालोक्य संक्षुब्धः कामतत्त्वतः ।
स्त्रीरूपं कामयाञ्चक्रे तेनैषा स्त्री भविष्यति ॥७२॥
यानि घोराणि पापानि ब्रह्महत्याधिकानि च ।
तान्यस्याः स्नानमात्रेण विनश्यन्ति नसंशयः ॥७३॥
किं च पापौघहारिण्यः सरितः सन्ति भूरिशः ।
गङ्गा गोदावरी चैव कावेरी च सरस्वती ॥७४॥
नर्मदा सिन्धुप्रमुखाः पयोष्णीप्रमुखा अपि ।
पुष्कराद्यानि तीर्थानि सरांसि विमलानि च ॥७५॥
स्थाने स्थाने च तालाङ्क[1] देशे देशे च भूरिशः ।
सन्त्यनेकानि तीर्थानि पापं यैः प्रविनश्यति ॥७६॥
इयं तु यमुना साक्षाद् भगवद्भक्तिवर्द्धिनी ।
यया सुलभतां याति भगवान् गोपिकासुतः ॥७७॥
अलभ्यं फलमाधत्ते कृष्णसाक्षात्कृतिं[2] स्फुटम् ।
अतोऽस्यास्तुलतां नार्हास्तीर्थानां कोटयोऽपि च ॥७८॥
इयमीदृग्गुणा लोके भविता यमुना नदी ।
कृष्णस्वरूपसलिला कलिलामयनाशिनी ॥७९॥
यत्स्वरूपेण संसिद्धेत् प्रयोजनमनुत्तमम् ।
नृणां तत्सेवमानानां संसिद्ध्यत्यनया ध्रुवम् ॥८०॥
नानया सदृशी गङ्गा न गोदा न सरस्वती ।
न नर्मदा न कावेरी न सिन्धुर्न पयोष्णिका ॥८१॥
पुष्करादीनि तीर्थानि नानया सदृशानि च ।
सरितः सागराश्चैव सरांसि च समानि नो ॥८२॥

---

१. "तालाङ्क—हे बलदेव" टि०—मथु०, बड़ो० । २. °कृतिः—मथु०, बड़ो० ।

यन्न संहरते गङ्गा न गोदा न सरस्वती ।
न नर्मदा न कावेरी न सिन्धुर्न पयोष्णिका ॥८३॥
पुष्करादीनि तीर्थानि न च हर्तुं क्षमाणि यत् ।
सरितः सागराश्चैव सरांसि च हरंति नो ॥८४॥
तत्पापं हरते नृणां यमुना स्नानमात्रतः ।
दर्शनात् स्पर्शनाच्चापि विन्दोराचमनादपि ॥८५॥
तरङ्गसङ्गिपवनात् सेवनान्नमनादपि ।
श्रवणात् कीर्तनाद्ध्यानाद् बालुकाधारणादपि ॥८६॥
तीरस्थधूलिलुठनाद् दूरादागमनादपि ।
यमुनां मनसोद्दिश्य यो व्रजेद् दूरदेशतः ॥८७॥
तस्यापि खलु मुक्तिः स्यात् काकथा तत्र मज्जतः ।
नित्यं संसेवमानस्य तीरस्थस्याच्युताग्रज ॥८८॥
शुभद्वयमिदं राम हरिणैव विनिर्मितम् ।
सर्वदेवौघविज्ञप्तिं विज्ञाय निजमानसे ॥८९॥
विश्वस्य दण्डदानाय विविक्त्यै पापपुण्ययोः ।
आत्मनैवायमत्युग्रः पुरुषस्तेन निर्मितः ॥९०॥
अन्यश्च सर्वभूतानां पापसंहरणाक्षमम् ।
यमुनेत्याख्यया लोके तीर्थतत्त्वं भविष्यति ॥९१॥
इत्युक्तवत्यजे भूयो जगाद भगवान् बलः ।
उभयोरनयोर्नाम रूपं च विधिवद्विधे ॥९२॥
विनिवर्तय विज्ञाय तत्त्वतः पुरुषोत्तमम् ।
स्थानं ताभ्यां समाचक्ष्व भवेतां यत्र संस्थितौ ॥९३॥
उभावेतौ दिव्यरूपौ द्वावेतौ यमुनायमौ ।
इत्युक्तस्तेन संप्राह विधिरेकाग्रमानसः ॥९४॥

ब्रह्मोवाच

भगवन्नप्रमेयात्मन् संकर्षण महामुने ।
त्वदाज्ञया करोम्येतौ नामरूपसमन्वितौ ॥९५॥
धामकामवरोपेतौ विश्वोपकृतये क्षमौ ।
विधास्ये वैदिकैर्मन्त्रैस्तव संपश्यतः पुरः ॥९६॥

इत्युक्त्वा भगवान् वेधास्त्रयीमूर्तिस्तपोमयः ।
दर्भमुष्टिमुपादाय कमण्डलुमहोदकैः ॥९७॥
विरोचमानं पुरतस्तेजोद्रण्डममन्त्रयत् ।
दिव्यज्ञाननिधिं मन्त्रैः प्राणजीवेन्द्रियप्रदैः ॥९८॥

ये वै प्राणा आसन् परमेश्वरस्य वीर्यं महोबलमोजश्च तेजः ।
ते प्राणास्ते बलमाभरन्तां यमाय त्वा पुण्यपापे विवेक्तुम् ॥९९॥
यो वै जीवः परमात्मानमग्रे उपावृङ्क्त प्राणशक्त्याभ्युपेतः ।
प्राणापानोदानव्यानसमानैः सजीवस्त्वा यम जीवन्तं करोतु ॥१००॥
यानीन्द्रियाण्यग्र इहाविरासन्निन्द्रस्येन्द्रावरजश्चन्द्रमसश्च ।
श्रोत्रत्वक् चक्षुर्जिह्वाघ्राणमयैस्तैरिन्द्रियैस्त्वामिन्द्रियवन्तं करोमि ॥१०१॥
य आदिकर्तुः सततं स्थिता वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणाः ।
यमाय त्वामभिवीर्यं स्पृणन्तस्त इहागत्य सुखं चिरन्तिष्ठन्तु ॥१०२॥
वाक्पाणिपादाः पायुरुपस्थ[1] एनमुपासतामधिकर्मेन्द्रियाणि ।
पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशमयानि भूतानि त्वामभितः संस्पृणन्तु ॥१०३॥
शब्दः स्पर्शो रूपरसौ गन्धस्त्वामागच्छतात् सुप्रतीकाय सम्यक् ।
श्रद्धामेधे जुषतां सर्वतस्त्वामायुष्मन्तं सुमनस्यमानाः ॥१०४॥
कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रीर्मतिर्ह्रीभिरेते वामभ्युपेयासुरर्थाः ।
वर्चस्वी त्वं सर्वदेवेषु भूया मा मा हिंसी जातवेदास्तवायुः ॥१०५॥
यमोऽसि त्वं यमनामासि शश्वत् सान्निध्यं ते संयमिन्यां नगर्याम् ।
विश्वस्मै त्वं पुण्यपापे विविच्य हितं कुर्या भगवन् कालमूर्ते ॥१०६॥
अन्तश्चरन्नस्य लोकस्य नित्यं नियन्ता त्वं दण्डपाणे भवेति ।
सत्याशिषः[2] संततं वर्द्धयामि सत्यास्ते सन्तु यजमानस्य कामाः ॥१०७॥
वर्षे वर्षे सोमयाजी त्वमास्व शताश्वमेधैस्तद्भवान् वर्द्धिषीष्ट ।
पुण्येन पूर्णां तनुमेतां कृषीष्ट त्वमस्य दिष्टप्रमितं शर्म देयाः ॥१०८॥

संवर्द्धितः स तेनेत्थं मन्त्रैः प्राणप्रतिष्ठया ।
लब्धप्राणेन्द्रियः काल उदजृम्भत तत्क्षणात् ॥१०९॥

---

१. पायूपस्था—रीवाँ । २. सत्याशिषं—मथु० बड़ो० ।

कालरात्रितमोरूपमसीमेचकविग्रहः ।
महादण्डधरो भीमः सर्वलोकान्तको महान् ॥११०॥
संज्ञासंस्थानसहितो लब्धवृत्तिः स तत्क्षणात् ।
दिव्यरूपसमोपेतो दण्डपाणिरुवाच तम् ॥१११॥

यम उवाच

नमस्ते विश्वनिर्माणवेधसे सर्वसाक्षिणे ।
सर्वशक्तिविशिष्टाय सर्वलोकप्रवृत्तये ॥११२॥
त्रैलोक्यरचनाबीजस्वप्रकाशस्वयंधिये ।
सर्वलोकैकवन्द्याय शब्दब्रह्मात्मने[1] नमः ॥११३॥
लोकेशाय वरिष्ठाय सर्वदैवतमूर्तये ।
सर्ववेदस्वरूपाय पत्ये विश्वसृजां नमः ॥११४॥
सवकर्मस्वरूपाय यज्ञाय विजितात्मने ।
सर्वयज्ञफलेशाय नमो नित्यं स्वयंभुवे ॥११५॥
तपोरूपाय तप्याय तपःफलविधायिने ।
तपःसम्प्राप्तलोकाय सुरश्रेष्ठाय ते नमः ॥११६॥
सत्त्वाय ज्ञानविस्फूर्त्यै रजसे विश्वसृष्टये ।
तमसे विश्वरूपाय त्रिगुणाय नमोस्तुते ॥११७॥
सत्याय सत्यसंकल्पनिर्मिताखिलसृष्टये ।
सत्यलोकाधिपतये नमस्ते ब्रह्मणे नमः ॥११८॥
इति संस्तूय बहुशो भगवन्तं स वेधसम् ।
स्थितः कृष्णानदीतीरे तूष्णीमास महायमः ॥११९॥

तदन्तरेणैव ततः प्रवाहात् सुमेचकात् कृष्णतनुद्रवामृतात् ।
विरोचमानाभ्युदगाद्वराङ्गना प्रकाशयन्ती हरितस्तनुत्विषा ॥१२०॥
कल्याणरूपा कमनीयविग्रहा कृष्णा किशोरी कमलाननेक्षणा ।
पूर्णा शरच्चन्द्ररुचिप्रकाशिनी प्रत्यङ्गविस्फूर्जितरामणीयका ॥१२१॥
मुक्तासरं रत्नसरं सुबिभ्रती शृङ्गारसारेण वपुःश्रियान्विता ।
प्रत्यङ्गलावण्यसुधातरङ्गिणी कन्दर्पमानन्दयितुं क्षमानिशम् ॥१२२॥

---

१. च शब्द ब्रह्मणे—रीवाँ ।

दिव्यप्रसूनस्तवकौघगुम्फितां वेणीं दधाना प्रतिपन्नमौक्तिकम् ।
सीमन्तविद्योतितरत्नपट्टिकां सद्धेमताटङ्कमिलन्मणिप्रभाम् ॥१२३॥

प्रोद्भासिसीमन्तपुरःस्फुरन्मणीभालस्थलोदारतमश्रियाञ्चिताम् ।
सौभाग्यभास्वत्तिलकाङ्कुरच्छविं सिन्दूरविन्दुप्रभवावभासिताम् ॥१२४॥

उत्तुङ्गनासामलमौक्तिकच्छविं प्रत्यग्रपङ्केरुहचारुलोचनाम् ।
श्यामायमानैरमलैः प्रसादजैः कटाक्षवृन्दैर्जगतां कृपावतीम् ॥१२५॥

संपक्वबिम्बीफलमञ्जुलाधरां दन्तावलिद्योतितमन्दहासिनीम् ।
कण्ठत्विषा मन्मथजैत्रकम्बुवत्किञ्चिच्चमत्कारभरं वितन्वतीम् ॥१२६॥

तुल्यांसबन्धक्रमराजिविग्रहां मृणालकाण्डामलमञ्जुदोर्लताम् ।
निर्णिक्तलक्ष्मीमुकुरायमाणयोः कपोलयोरस्त्यलकावलिद्युतिः ॥१२७॥

वक्षस्थलस्थस्तनपद्मकोरकप्रकामतारुण्यपदेन निर्मिताम् ।
चन्द्रावलीमञ्जुलहारसंपदा ज्योत्स्नायमानामलविग्रहच्छविम् ॥१२८॥

कुम्भीन्द्रकुम्भस्थलसंभ्रमावहौ श्रीशातकुम्भोद्भवकुम्भसुन्दरौ ।
वक्षोरुहौ काममदेन बिभ्रतीं साटोपमुज्जासितदिव्ययौवनाम् ॥१२९॥

रोमावलीमञ्जुलभृङ्गमण्डलीसंसेव्यमानामलकल्पवल्लिकाम् ।
तुङ्गोत्तरङ्गत्रिवलीतरङ्गिणीं गभीरनाभीह्रदभासितोदरीम् ॥१३०॥

शातोदरीं साधुपरीतविस्फुरत्कौशेयसोद्भासिनितम्बनिर्भराम् ।
सुवर्णरम्भासुभगोरुगौरवाद्रम्भाद्विजम्भारिबधूविजैत्रिका ॥१३१॥

अनर्घरत्नप्रवरैरुपासिता सिञ्जानमञ्जीरकराजहंसकौ ।
पद्भ्यां वहन्ती मृदुमञ्जुभामिनी स्वःकामिनी श्रीरतिदामिनीसमा ॥१३२॥

मुरारिमाराधयितुं मनोरमा सखी समालापकलापपेशला ।
भुवि प्रमोदाय भविष्णुरद्भुता शुभाधिवृन्दाटविलालनोचिता ॥१३३॥

भविष्णुरेका महिषी रमापते रमासमालोकनसौख्यकारिणी ।
वृन्दाटवीवासविहारसौख्यदा संसेवनायाखिलभक्तसंपदाम् ॥१३४॥

तां वीक्ष्य रम्यावयवां शुचिस्मितां[1] संकर्षणो ब्रह्मभवो यमस्तथा ।
सर्वे सुराः संमुदिताः स्वमानसैर्बभूवुरुत्सिक्तदृशः कुतूहलैः ॥१३५॥

---

१. सुविस्मितां—रीवाँ

अथोज्जिहानैः सुदृशोर्विलासिभिः कटाक्षवृन्दैरियमत्र पूर्ववत् ।
प्रकल्पयामास वपुर्गदाभृतः स्थानादमुष्मादुदियाय तत्क्षणात् ॥१३६॥

यस्मिन्स्थाने द्रवीभूतो भगवान् माधवः स्वयम् ।
उदतिष्ठत्ततः सद्यस्तत्कटाक्षैरवेक्षितः ॥१३७॥
स तां वीक्ष्य मुदं प्राप मुकुन्दः स्वस्य वल्लभाम् ।
अन्योन्यं च तयोरासीत्प्रेमा सिन्धुरिवोद्गतः[1] ॥१३८॥
अथोज्जगाद भगवान् प्रजापतिरवेक्ष्य तौ ।
लोकस्य शुभदानाय ज्ञात्वा कार्यं जगत्पतेः ॥१३९॥
पुरा चिन्तातुरैः सर्वदेवैरेतद्विचारितम् ।
व्यक्तं तद्भवतादर्शि सर्वान्तर्यामिणा हरे ॥१४०॥
जाताभिमां भवद्देहाद्यमुनां लोकपावनीम् ।
वीक्ष्य पापौघदहनां कृतार्थं स्याज्जगत्त्रयम् ॥१४१॥
अस्या एवाग्रजोऽयं च यमो यमयतांवरः ।
सर्वलोकविवेकाय भविता नात्र संशयः ॥१४२॥
अस्मै तु भगवन् पूर्वं मयैव सुविमर्शितम् ।
नाम धाम च कार्यं च भवांस्तदनुमन्यताम् ॥१४३॥
अस्मै च भवता देयं विनिर्दिश्य विशेषतः ।
नाम धाम स्वरूपं च यथा कार्यं सुरोत्तम ॥१४४॥

श्रीभगवानुवाच

मत्स्वरूपाविमौ दिव्यौ यमुना यम एव च ।
असौ भ्रातग्रजोऽस्त्यस्या इयं चावरजा स्वसा ॥१४५॥
सर्वैर्देवैर्मिलित्वासौ पूर्वमेव विचिन्तितः ।
तेनैष पूर्वतो ह्यस्या जात इत्यग्रजोऽभवत् ॥१४६॥
पुरीं संयमनीं प्राप्य तपसा सुसमेधितः ।
पितृलोके प्राज्यतमो राजा चैव भविष्यति ॥१४७॥
महावीर्यो महातेजा महाबलपराक्रमः ।
सर्वस्य जगतो नेता भविष्यति न संशयः ॥१४८॥

---

१. रिवाद्भुतः—रीवाँ ।

एष वक्ता शुभान् धर्मान् जगच्चक्रप्रवर्तकान् ।
कालो दण्डधरो भूत्वा त्रैलोक्यमनुशास्यति ॥१४९॥
अतोऽयं लोकयमनाद्यम एव त्वया कृतः ।
इयं यमस्यावरजा यमुनातो भविष्यति ॥१५०॥
भवान्तरे त्विमावेव सूर्यस्यात्मजतां विधे ।
प्राप्स्यतो लोककल्याणकरणायोद्यतौ सदा ॥१५१॥
कलिन्दान्द्रेः सुता चैषा भविता मार्गरोधिनः ।
कालिन्दीति ततो लोके प्रसिद्धिमनुयास्यति ॥१५२॥
जम्बूद्वीपे शुभान् लोकान् प्लावयन्ती निजैर्जलैः ।
मथुरामण्डलं गत्वा क्रमादानन्दयिष्यति ॥१५३॥
व्रजभूमिं परिप्राप्य जम्बूद्वीपस्य भूषणाम् ।
मम रासविलासादौ प्रमोदं जनयिष्यति ॥१५४॥
कलिन्दाचलमारभ्य समुद्रान्ताऽनुगामिनी ।
स्थाने स्थाने महातीर्थरूपा चैषा भविष्यति ॥१५५॥
सर्वाणि तीर्थान्यादाय सप्तद्वीपेषु यानि च ।
माथुरे मण्डले नित्यं निवत्स्यति यमानुजा ॥१५६॥
मम लीलारसावेशपरमानन्दधारिणः ।
पत्नीभावं परिप्राप्य स्वात्मानं सुखयिष्यति ॥१५७॥
इत्येवं सततं लोके ममेयं नित्यवल्लभा ।
दर्शनादेव कालिन्दी भक्तानानन्दयिष्यति ॥१५८॥
अतोऽस्यास्तुलनां लोके न तीर्थान्तरमृच्छति ।
इयं मद्देहसंभूता गङ्गा मत्पादसंभवा ॥१५९॥
वृन्दावने सर्वदेवर्षिरम्ये मद्भक्तजीवातुतमे स्थितेयम् ।
कल्लोलमाला कलिता जनानामानन्दयिष्यत्यसकृन्मनांसि ॥१६०॥
इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुस्तूष्णींभूय ततः स्थितः ।
बलदेवेन सहितः प्रविष्टो नन्दमन्दिरम् ॥१६१॥
विधिं विसर्जयामास भक्तिप्रह्वं यमं च तम् ।
तौ च तत्र स्थितौ नित्यं तस्यास्तीरे तपोरतौ ॥१६२॥

अथ तत्राभ्युपागच्छन् सर्वदेवाः सकौतुकाः ।
महादेवं पुरस्कृत्य शिवं भक्तजनप्रियम् ॥१६३॥
ब्रह्मा शिवमुवाचाथ स्तूयतां भगवंस्त्वया ।
यमुना लोककल्याणी स्वयं श्रीकृष्णवल्लभा ॥१६४॥
ब्रह्मणा प्रेरितो देवः शङ्करो लोकशङ्करः ।
तुष्टाव यमुनां देवीं नित्यं भक्तजनप्रियाम् ॥१६५॥

जय जय जय देवि कृष्णप्रिये श्राद्धदेवानुजे जन्म धृत्वा कृतार्थीकृतोग्रप्रभे[1] विश्वमाङ्गल्यभूर्नील मेघप्रभे, भूय उच्चैः कलिन्दाचलात्संभविष्णो सरित्सागराखर्वगर्वैकजिष्णो, कृपालेशविस्तारिताशेषभव्ये सुधास्वादुनीरौघनित्याभिनव्ये । दिवा दीव्यदिन्दीवरानन्दिरूपे यशोदासुतामन्दलीलाभिरूपे, सतां सर्वसंपत्तिसंदोहदाने दयोदारचित्तेति रम्यावदाने । जयाकुण्ठवैकुण्ठसंपन्निधे ॥१६६॥

जय जय यमुनेति नामश्रुतिध्वस्तपापाटवीमूलनिर्मूलने कृष्णलीलारसानन्द पुष्टान्तरे, तारिताशेषपश्वादिजीवव्रजे भुक्तिमुक्तिप्रदानैकजैत्र ध्वजे, तुङ्गवीचीघटाटोपदर्पोद्धुरे राजहंसावलिक्वाणचेतोहरद्वीपदेश प्रतिष्ठामरौघस्तुतिप्रोद्यदम्भश्छटानित्यसंरम्भिणि ब्रह्मवक्त्रोत्थतद्वर्णवेदत्रयव्यस्तभूयोयशःस्तोमसोमप्रभानाशिताशोकलोकान्धकारोत्करे । सर्वलोकोत्तरे ॥१६७॥

जय जय जय कलिकल्मषाक्रान्तसंसारनिस्तारहेतो लसद्धर्मसेतो महोदारशीले सदारम्यलीलेऽतिकल्लोललोले समारूढदोले लसद्वीचिमाले त्रसत्पापजाले चमत्कारनीरे स्फुरद्रत्नतीरे शरद्व्योमतारासमुल्लासिहारावलीराजमाने सदा साभिमाने क्वचित्कृष्णरासे समुद्यद्विलासे क्वचित्केलिकुञ्जे महासौख्यपुञ्जे क्वचिद्गोपदारेषु जाग्रद्विकारे क्वचिकृष्णसंदर्शसंजातहर्षे । हरेर्वल्लभे ॥१६८॥

जय जय जय कृष्णभक्तिप्रभावेण दूरीकृताम्भोधिराजादरे तिग्मतापत्रयावेशतप्तात्मनामन्तरङ्गे हिमानीमहाशीतले । शेषभावं सुपर्वेशभावं तथा चेशभावं विहङ्गेशभावं तथा दर्शनात्सिन्धुकन्येशभावं च दत्से

---

१. °कृतो भविष्णूष्णप्रभे—मथु०, बड़ो० ।

त्वमेका जगन्मङ्गलायोद्यता विद्रुतः श्रीपतेश्चिद्घनो विग्रहः कृष्णपत्नि पवित्रीकृतक्ष्मातला त्वं भवित्री त्रिलोकस्य कल्याणकृत् केवलानन्दरूपा कृपापूरपूर्णा जय प्रेमदे ॥१६९॥

नमः कृष्णपत्नि प्रमोदैककन्दे सदानन्दसंपत्तिसंदोहरूपे ।
नमस्तुभ्यमासेवनीये जनानां सती शोकमोहादिमूलापहन्त्र्यै ॥१७०॥

नमः सिद्धलक्ष्म्यै सति प्रेमदायै जगत्क्षेमदायै पवित्राम्बुवत्यै ।
चिदानन्दरूपस्य कृष्णस्य पत्न्यै मुनीन्द्रौघसेव्यप्रतीरक्षमायै ॥१७१॥

कलाकोटियुक्ताय कल्याणदाय त्रिवेदीशिरस्तत्त्वरूपाय तस्मै ।
दिवारात्रमुज्जागरोद्यत्प्रभावप्रवाहाय तेऽहं नमो देवि कुर्वे ॥१७२॥

मुनीन्द्रैरुपास्यं द्रवाकारमेतत् परं ब्रह्म विद्योति कृष्णाद्वितीयम् ।
चिरं भावयामि स्वरूपेण नित्यं चिदानन्दसंदोहसंपद्विधातृ ॥१७३॥

गुणा भान्ति तेनैव विद्योतमानां हरेर्यत् स्वभक्तानुकम्पाकरस्य ।
तदङ्गानुषङ्गात् सुधाशीतलस्य त्वदीयाम्भसः किन्नु वक्ष्मि प्रभावम्॥१७४॥

पवित्रं विचित्रं चरित्रं त्वदीयं महाघोरपापौघभित्यै लवित्रम् ।
रसालं विशालं सदालम्बनं ते स्वरूपं नृणां ध्यायती सर्वसिद्ध्यै ॥१७५॥

इयं पारमेशी कृपा देवि जाता समस्तावनीमानवोद्धारहेतुः ।
यदात्मा द्रवाकारतामावितोऽभूत् सुविस्तीर्णतापत्रयस्यापहन्त्र्यै ॥१७६॥

लसन्नीलरत्नप्रकृष्णप्रभायै मनोमोहतामिश्रजालापहन्त्र्यै ।
रमेशप्रसादार्तिनिर्णिक्तभासे नमस्तुभ्यमम्बान्तकस्यानुजायै ॥१७७॥

इमं ते स्तवं मन्मुखोत्थं सुवर्णं गृणीतेऽनिशं मानुषो यः प्रभाते ।
स याति स्वयं कृष्णसारूप्यमुच्चैर्हृदि प्रेमपीयूषसंदोहपूर्णः ॥१७८॥

शृण्वतां देववर्याणामित्थं तुष्टाव शङ्करः ।
यमुनां यमभीतिघ्नीमुद्यद्वीचिघटोत्कटाम् ॥१७९॥

ब्रह्मर्षिदेवर्षिवरेण्यसंघा येऽन्ये महाभागवतप्रधानाः ।
सर्वेऽपि ते तुष्टुवुर्भक्तिनम्राः समेत्य तत्रामितमोदमग्नाः ॥१८०॥

एके दूरात् प्रणेमुस्त्रिजगदघहरीं केऽपि भक्त्योपचेरुः
केचित् संकीर्त्यामासुरतुलयशसा स्वाभिमुख्यं विधाय ॥

केचित् तां वन्दमानाः सपदि जगदिरे सर्वजीवातुभूतां
सर्वैर्देवैरितीयं स्वमतिविभवतः सादरं वै गृहीता ॥१८१॥
संमानिता सा सकलैः सुरोघैर्ब्रह्मर्षिवर्यैश्च सुरर्षिमुख्यैः ।
स्वकीर्तिपाठश्रुतिजातदर्पा वीचीघटाभिः सहसोच्चचाल ॥१८२॥
वारां धाराभिरुच्चैरलमवनितलं सर्वतः प्लावयन्ती
छन्ना मन्दारमाल्यैस्त्रिदशवरकरप्रच्युतैः सौरभाढ्यैः ।
उच्चैरूर्मिच्छटाभिर्गगनतलमभिच्छादयन्ती समंतात्
सानन्दं सोरुदर्पं त्रिदशपतिपदान्मन्दमन्दं चचाल ॥१८३॥

इतिश्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे महाराज-
तीर्थयात्रायां सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

•

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

ततश्च सा तुङ्गपयश्छटाभिः प्रोद्यन्महामेघघटोरुभाभिः ।
विश्वग्विकुण्ठातनयस्य लोकमाप्लाव्य भूयो विरजामियाय ॥ १ ॥
प्रधानपरमव्योम्नोरन्तराले प्रतिष्ठिताम् ।
ब्रह्मानन्दमहानीरां मुक्तसंदोहसेविताम् ॥ २ ॥
मन्दारमाल्यस्तवकैः समंतादाच्छादितात्यच्छमहाप्रवाहाम् ।
रमाकुचाभोगयुताङ्गरागसच्छालनाज्जातविचित्रवर्णाम् ॥ ३ ॥
सुवर्णरत्नोपलबद्धकूलां मुनीन्द्रवर्गैः समुपास्यमानाम् ।
सुधारसास्वादभृशं प्रमत्तमानन्दकूजद्बहुराजहंसाम् ॥ ४ ॥
उत्फुल्लपङ्केरुहराजिराजत्परागरागाञ्चितनीरपूराम् ।
तटस्थकल्पद्रुमफुल्लपुष्पमरन्दवृन्दैः सुरभिः समंतात् ॥ ५ ॥
श्रीकृष्णवंशीनिनदानुघोषप्रेमस्रवत्कामगवीस्तनोत्थैः ।
दुग्धौघकुल्यानिवहैः समंतात् सहस्रधासंजनितैर्मिलन्ती ॥ ६ ॥

क्वचिद्वियोगस्मरतापतप्तव्रजाङ्गनारब्धसुखावगाहम् ।
चञ्चच्चिदानन्दमयप्रवाहसकेलिकोकीगणनिक्वणाढ्याम् ॥ ७ ॥
क्वचिद्ग्रहः श्रीवृषभानुकन्यासमेतनन्दात्मजदत्तमोदैः ।
तरङ्गजालैरुपनीतभूयः फुल्लाम्बुजातार्हणसंविधानाम् ॥ ८ ॥
क्वचिद्घने कुञ्जवनेऽन्तरालप्रसर्पिणीं शीतलसुप्रवाहाम् ।
क्वचिन्महाशैलदरीगृहान्तर्विभेदनोत्तुङ्गतरङ्गजालान् ॥ ९ ॥
विराजमानां महसां समूहैस्तडित्प्रकाशैर्व्रजगोपदारैः ।
अलौकिकैरर्थगणैः समेतां विमुक्त्यवस्थापरिदृश्यरूपैः ॥१०॥
ब्रह्माण्डकोषाश्रयसंततौघां मायावश्यैर्जीवसंघैरदृश्याम् ।
पारे परब्रह्मगृहप्रतिष्ठामवारगाशेषजगत्प्रतिष्ठाम् ॥११॥
तया मिलित्वा ननु दिव्यरूपया जलान्तरोद्भासितशुद्धदेहया ।
स्वयं च दिव्यं वपुरास्थिता हरेः प्रिया प्रमोदं हृदये पुपोष सा[1] ॥१२॥
प्रत्यग्रहीत् सा यमुनां समेतां सपर्यया साधु विधीयमानाम् ।
सिद्धेन्द्रसेव्या विरजा समंताद्भक्तेन्द्रसेव्यामभजत् स्वयं ताम् ॥१३॥
तरङ्गबाहून् विरजा वितत्य तयामिलन्नन्दसुतस्य पत्न्या ।
तेनैव सा सेव्यतमा बभूव तद्ब्रह्मधामस्थितमुक्तिराशेः ॥१४॥

यमुनास्पर्शमात्रेण विरजा विगतज्वरा ।
ब्रह्मानन्दमतिक्रम्य प्रेमानन्दमगाहत ॥१५॥
पाद्यार्घ्याचमनानि चैव मधुपर्कस्नानदानादिभि—
स्तामेषा समुपास्य गन्धकुसुमस्रग्धूपदीपादिभिः ।
नैवेद्यैरमृतात्मकैरपचितिं कृत्वा च नत्वा पुन—
स्तस्याः पादसरोरुहद्वयमुरुप्रेमप्रकर्षाग्रहीत् ॥१६॥
लुण्ठन्ती तच्चरणयोर्विरजा प्रेमसंप्लुता ।
तुष्टाव तामभिप्रेत्य महिषीं श्रीमुरद्विषः ॥१७॥

विरजोवाच

अयि प्रियासि प्रणयैकमूर्तेर्व्रजाधिनाथस्य सुखैकहेतुः ।
कल्याणिनी कोटिकलाविलासा कलिन्दकन्या भवती भवित्री ॥१८॥

---

१. या—रीवाँ ।

भवान्तरे सूर्यसुताभविष्णुस्त्वं मोदयिष्यत्यसकृद् गृहेशम् ।
त्रिंशच्च कोटीस्त्र्यधिका सुराणां त्वं योजयिष्यस्यमितैः शुभौघैः ॥१९॥
मन्ये कलिन्दाद्रिशिखावलस्य पिच्छावली त्वं यमुने भवित्री ।
त्वयीशि यन्नेत्रपथं गतायां पलायिता कल्मषकालसर्पः ॥२०॥
जानाम्यहं व्योमसरोजमुच्चैश्चण्डत्विषो मण्डलपुण्डरीकम् ।
विहाय संमत्तमिलिन्दपङ्क्तिः कालिन्दनीलोत्पलमेष्यसि[1] त्वम् ॥२१॥
गुञ्जास्रजः केकिकलाकलापाः पीताम्बराण्येव च वैनतेयाः ।
मातः कियन्तस्त्वयि सन्ति यान् वै मज्जन्त एते मनुजा अगृह्णन् ॥२२॥
काचस्फुरद्दर्पणपट्टिका त्वं सुनिर्मलाङ्गी यमुने विभासि ।
पुरस्थितायां ननु यद्भवत्यां पश्यन्ति नीरूपमपि स्वरूपम् ॥२३॥
प्रेमप्रकर्षात् परिरभ्य कृष्णं बभूव कृष्णा भवती स्वरूपात् ।
त्वदम्बुसंस्पर्शनमात्रतोऽपि कृष्णस्वरूपा मनुजा भवन्ति ॥२४॥
पद्मासना पद्मसमानदेहा पद्मात्मिका पद्मधरा त्वमम्ब ।
यत्पश्यतामाचमतां जनानां निमज्जतां च श्रियमातनोसि ॥२५॥
लोकोत्तरं यत्कुशलं सुभव्ये त्वय्येव[2] सर्वोपरि मुक्तिधाम्नि ।
तत्त्वत्तरङ्गप्रकरप्रसङ्गाल्लोकोऽपि संप्राप्स्यति कृष्णकान्ते ॥२६॥
त्वं विष्णुदेहादमिता विभासि गङ्गा तु सा विष्णुपदोद्गतैव ।
अतोऽम्ब तस्यास्तव चापि तौल्ये गिरः कवीनां विरला भवन्ति ॥२७॥
व्रजाङ्गनाभिर्विहरिष्यतीशस्तवैव तीरे भगवान् मुकुन्दः ।
अतः प्रशस्तेऽपि[3] भवे समस्ते करोतु कस्ते समतामुदारः ॥२८॥
न तीर्थशक्त्या न च पुण्यप्रकर्षान्न पापहृत्यामुरुसामर्थ्यभावात् ।
तव प्रशस्तिर्यमुने विदृश्यते यथाकृष्णाभिन्नरूपप्रभावात् ॥२९॥
यज्ज्योतिराद्यं कवयो गृणन्ति ब्रह्मेति सच्चित्सुखरूपमद्धा ।
तदम्ब ते धाम सनातना[4]ख्यं कृष्णप्रिये योगिनां ध्यानधिष्ण्यम् ॥३०॥
ततः परं त्वत्स्वरूपं तदम्ब प्रेमानन्दाकारतामाददानम् ।
विचित्रलीलारसकेलिपात्रं भक्तप्रमोदप्रसरैकहेतुः ॥३१॥

---

१. "व्योम एव सरः तस्माज्जातं सूर्यमण्डलमेव पुण्डरीकं कमलं विहाय त्यक्त्वा मत्तभ्रमरतुल्या त्वं यमुना कलिन्दपर्वत एव कमलं प्राप्स्यसि" टि०—मथु० ।
२. वर्वर्त्ति—मथु०, बडो० । ३. च—रीवाँ । ४. च संतताख्यं—रीवाँ ।

तस्यै नमस्ते हरिवल्लभायै व्रजाङ्गनाकौतुककारिकायै ।
श्रीनन्दसूनुस्फुटनीलरत्नप्रभाभिरामप्रचुराम्बरायै ॥३२॥
विज्ञप्तिरेका यमुने मदीया निधीयतां कर्णपुटे भवत्या ।
मदन्तरे नित्यमिहाविरोधिप्रसादपात्रं कुरुमामजस्रम् ॥३३॥
इत्युक्तवत्यां विरजायां प्रकामं तथेति तद्वाक्यमुरीचकार ।
अथ प्रसादं प्रविधाय तस्यां मृदुस्मितैर्भूरि मुदं पुपोष ॥३४॥
अथोदगाद्विरजायाः प्रवाहं निर्भिद्य कल्पान्तमरुत्सवेगा ।
घनौघसंघट्टघटाजटालैस्तरङ्गजालैर्जगतीं पुनन्ती ॥३५॥
दुरापपारे विरजाप्रवाहे महेषुवद् धावमाना जवेन ।
अलक्षिता तत्पुलिनस्थदेवैरेवं करिष्णुर्जनपापभेदम् ॥३६॥
यथा जवोऽस्या विरजाप्रवाहविभेदनेऽभूत् प्रलयानिलाधिकः ।
तथैव सर्वाशुभपापपुञ्जमहाद्रिनिर्भेदविधौ न चित्रम् ॥३७॥
निर्भिद्य सप्तावरणानि साथ ब्रह्माण्डभाण्डे सहसा विभिद्य ।
अन्तर्बहिः पूर्णतमं तमस्तत् प्रभिद्य शुद्धां भुवमाजगाम ॥३८॥

निर्भिद्य साथ वेगेन लोकालोकगिरेर्गुहाम् ।
मानसोत्तरशैलेन्द्रं निर्भिद्य समुपागता ॥३९॥

निर्भिद्य शुद्धोदसमुद्रमित्थं ततश्च दुग्धोदधिमात्तवेगा ।
निर्भिद्य सप्तार्णवनीरपूरानित्थं क्रमात् प्राप भुवोऽन्तरालम् ॥४०॥

श्वेतद्वीपपतेः स्थानमानिरुद्धस्य सागमत् ।
व्यापिवैकुण्ठलोकस्य यद्द्वारं परिकीर्तितम् ॥४१॥
अत्र सिद्धर्षिदेवौघैः स्तुता संपूजिता च सा ।
प्रेमानन्दमयीमृद्धिमतनोत् तेषु संततम् ॥४२॥

ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डगोलं समधिकजविना स्रोतसा खण्डयित्वा ।
तन्मार्गं प्राप्य वार्ताविधिभवनमथो तापसानां च लोकम् ।
प्राप्ता लोकं जनाख्यं तदनु च महर्लोकगा स्वर्गलोकम्
भूलोकं चैत्य पश्चाद् भुवमपि गतवत्यद्भुताम्भःप्रभावा ॥४३॥
लोके नारायणीये किमपि कमलया सेव्यमालोक्यमाना
पश्चाद् वैरिञ्चलोके मुनिवरनिवहैः सेविता संस्तुता च ।

संदोहैस्तापसानां सविनयमभितो वन्दिता तत्पुरस्ता-
ल्लोकस्थैः पूज्यमाना सुरतरुकुसुमामोदगर्भाम्बुनेत्री ॥४४॥
सप्तर्षिस्तोमवन्द्या ध्रुवभवनमिता तुङ्गरिङ्गत्तरङ्गै-
र्नक्षत्राणां विमानावलिमुदकभरैः सर्वतः प्लावयन्ती ।
स्वर्गङ्गाजातसङ्गा त्रिदिवपतिगजोत्तापसंदोहहर्त्री
सूर्यादींश्च ग्रहांस्तान्निजविमलगुणैर्भूरिशो मोदयन्ती ॥४५॥

मुख्ये शृङ्गे सुमेरोः सजवनिपतिता नन्दने संचरन्ती
मन्दारोत्फुल्लपुष्पस्तबकसुरभितं वारिपूरं वहन्ती ।
देवैर्गन्धर्वसिद्धादिभिरधिकतरं स्तूयमाना समंतात्
प्राप्येलावर्त्तवर्षं कनकमयमहाकूलशोभाभराढ्या ॥४६॥

इलावर्ते वर्षे कनकगिरिसच्छायतलगा
महारत्नप्रस्थप्रचुररुचिसंदोहवलिता ।
विचित्राकाराम्बुप्रवहणकरी कौतुकभरैः
परीतां गच्छन्ती दुरितशमनी भाति यमुना ॥४७॥

प्रोद्यत्कल्लोललोलप्रवहललहरीलास्यलावण्यलक्ष्मी-
र्लीलालालित्यशीला शिथिलितसुदृढोद्दामशैलेन्द्रमूला ।
काप्युच्चैः संपतन्ती जवदलितदृषद्दारुणारावकर्त्री
भिन्दाना देवदारुद्रुमवनमभितस्तीक्ष्णधाराजवेन ॥४८॥

इत्थं कौतूहलानि प्रतिपदमुदयद्वेगवद्भिः प्रवाहै-
स्तन्वाना यक्षरक्षस्त्रिदशमुनिदृगानन्दसंदोहकन्दा ।
दिव्यारण्यद्रुमोद्यन्मृदुमधुरमिलन्मारुतैर्वीज्यमाना
प्रोत्सर्पन्ती सदर्पं सुदृढगिरिदरीदारणोद्दामदर्पा ॥४९॥

विभिन्नभास्वद्विरजाप्रवाहा ब्रह्माण्डसप्तावृतिभेदकर्त्री ।
विदीर्णसप्तार्णववारिपूरपारङ्गमा संगतसर्वतीर्था ॥५०॥

कुलाचलग्रावविभेदनोग्रा सहस्रशो मार्गगता त्रिनेत्री ।
महाजवोन्मूलितवृक्षमूला क्रमेण सा प्राप कलिन्दशैलम् ॥५१॥
स्फुरन्महारत्नमहाप्रकाशैर्निरस्ततारागृहकान्तिदर्पैः ।
दिवं स्पृशद्भिः शिखरैः समंतात् प्रसह्य रुन्धानमिवेन्दुमार्गम् ॥५२॥

महामहावज्रशिलाकठोरैः समन्ततो दीर्घदृषत्समूहैः ।
विसंधिसर्वावयवं हरस्य त्रिशूलकोटचापि न भेत्तुमुर्हम् ॥५३॥
अनेकसिद्धौषधिदीप्यमानदरीगृहक्रीडितकारिणीभिः ।
देवद्रुमोत्थानिलवीजिताभिः सुराङ्गनाभिः सुनिषेव्यमाणम् ॥५४॥
महामहारत्नखनिं समंतात् सुरद्रुमारण्यमनोज्ञमध्यम् ।
नक्षत्रमालापरिशोभिनीभिरुपत्यकाभिः परितः स्फुरन्तम् ॥५५॥
सर्वाधिकोच्छ्रायशिरःसहस्रमहामहावज्रशिलौघसारम् ।
रवीन्दुजैत्रद्युतिदीपिताशं गन्धर्वलोकामितगानरम्यम् ॥५६॥
नितम्बसंलग्नमहाघनालीसौदामिनीदीधितिदीपिताङ्गम् ।
माद्यन्मयूराञ्चितचारुकेकासंभिन्नपुंस्कोकिलकाकलीकम् ॥५७॥
सर्वर्तुसंसेवितकाननौघक्रीडत्सुरस्त्रीनयनाभिरामम् ।
सहस्रशो निर्झरधोरणीभिः प्रक्षालितात्यच्छशिलाकलापम् ॥५८॥
महामहारत्नगणप्रकाशं दिवानिशोत्फुल्लसुवर्णपद्मैः ।
स्फुरत्सुधानिर्मलतोयपूर्णैः समन्ततो देवसरोभिराढ्यम् ॥५९॥
अलौकिकानेकपदार्थसार्थैः सदैव विष्वक् परिपूर्यमाणम्
मुनीन्द्रसिद्धाश्रमसंघजुष्टसुपुण्यदेशाञ्चितमध्यभागम् ॥६०॥
महेन्द्रमुख्यामरहूयमानशुभाग्निजात्यर्थसुपुण्यधूमम् ।
गन्धर्वनारीकुचकुङ्कुमाक्तप्रायःप्रवाहामलदेवखातम् ॥६१॥
इस्तस्ततः संचरतां सुरस्त्रीकदम्बकानां चरणाम्बुजेषु ।
मञ्जीरघोषैश्चकितायमानमरालबालाक्वणितातिरम्यम् ॥६२॥
क्वचित् पिशङ्गः कलहेमशृङ्गैर्माणिक्यभाभिः क्वचिदात्तरङ्गम् ।
श्यामायमानं क्वचिदभ्रसंघैः क्वचिद् द्रुमौघैर्हरितायमानम् ॥६३॥
क्वचिन्महानिर्झरवातगौरमित्थं समुद्भ्रान्तमनेकवर्णैः ।
त्रैलोक्यमाङ्गल्यविधौ विधात्रा विनिर्मितं मण्डलमुख्यमुर्व्याम् ॥६४॥

अथ तत्रागता वेगाद् यमुनादीर्घवाहिनी ।
शैलं भेत्तुं मनश्चक्रे चण्डमारुतवेगिनी ॥६५॥
यथा संवर्त्तसमये मारुतश्चण्डवेगवान् ।
तथा बभूव यमुना जविनी शैलभेदने ॥६६॥

जवात् सुसंगता तेन शैलेन यमुना सरित् ।
महावज्रौघसाराभिर्दृषद्भिः सा परापतत् ॥६७॥
योजनादात्तवेगा सा गिरिपृष्ठविदारणे ।
वियोजनपरावृत्ता बभूव निहतोद्यमा ॥६८॥
हतवेगा तु सा पश्चात् परावृत्तपयोघटा ।
पुनर्वेगं समाबध्य स्रोतसा सुसमाययौ ॥६९॥
कृत्वा महाजवं स्रोतो धृतवीर्या महोत्कटा ।
वाणवत् प्रेरयामास जलौघं वेगवत्तरम् ॥७०॥
गिरिमर्ममहावज्रशिलासंघातकर्कशम् ।
विभेत्तुमत्युदीर्णा सा महावेगप्रधाविनी ॥७१॥
जवेनागत्य लग्ना सा गिरिभित्तिसु मर्मणि ।
समुच्छलिततोयौघा परावृत्ताभवत् पुनः ॥७२॥
सलज्जां यमुनां देवीं हतवेगां हतोद्यमाम् ।
तादृशीं तां समालोक्य देवाश्चिन्तातुरान्तराः ॥७३॥
बभूवुः सकलास्तत्र निराशा दीनचेतसः ।
अहो त्रैलोक्यभव्याय जाता मङ्गलरूपिणी ॥७४॥
शुभकृत्सर्वलोकानां सर्वतीर्थसमाश्रया ।
पुण्यसारा पुण्यवहा महापुण्यविवर्द्धिनी ॥७५॥
अभाग्येनैव जगतां गिरिः प्रत्यूहतामगात् ।
कृपया देवदेवस्य गिरिं भिन्द्यान्महाजवा ॥७६॥
अनुग्रहोऽयं भूतेषु कर्तव्यो विष्णुना स्वयम् ।
स्वयमेष तदाविश्य श्रोतस्यस्याः कृपानिधिः ॥७७॥
भिनत्ति चेद् गिरिग्रावसमूहं वज्रकर्कशम् ।
तदा त्रैलोक्यपापौघप्रतीकारो भविष्यति ॥७८॥
इति चिन्तातुराः सर्वे तुष्टुवुः कैटभद्विषम् ।
समस्तदेवदेवेशं त्रैलोक्यकरुणाकरम् ॥७९॥
नमो देवाय हरये विष्णवे प्रभविष्णवे ।
दैत्यदानवरक्षौघकुलदावाग्निवर्ष्मणे ॥८०॥

चक्रतेजःप्रभासंघविदारितसुरारये ।
वायुतत्त्वमयोद्दाममहावेगगदाभृते ॥८१॥
उद्दामशक्तये तुभ्यमक्षुण्णबलवर्ष्मणे ।
जगत्प्राणप्रतीकाशप्राणाधाराय ते नमः ॥८२॥

कल्पान्तसमयोद्दाममहावातसुवेगिने ।
प्राणान्तकाय दैत्यानां विष्णवे ते नमोनमः ॥८३॥
उद्दामरयनिर्भिन्नब्रह्माण्डशतकोटये ।
करालाय महोग्राय नमस्ते हरमूर्तये ॥८४॥

वन्ध्यापुत्रमुपेति पौरुषकलाहीनोऽपि याति व्रजं
स्त्रीणां मूकतमोऽपि वक्ति गुरुवदन्धोऽपि पश्येज्जनः[1] ।
यस्येच्छानुवशात् कृपारससमासिक्ते जने जायते
किं किं नैव सुदुर्घटं विजयसे स त्वं महोदारधीः ॥८५॥

त्वं सर्गो जगतामसि स्थितिकरस्त्वं तत्त्ववृन्दस्य सत्-
तत्त्वं तद्घटनामयो विजयसे विश्वस्य भावोऽपि च ।
त्वं सर्वेष्ववशिष्यसेऽवसरतो नश्यत्सु वस्तुष्वलं
तत्तन्नामगुणस्य रूपनिलयो न त्वां विना किंचन ॥८६॥
नित्यं वेदवचांसि गोचरतमा किंचित् समाचक्षते
नित्यं प्राप्तुमतन्निरासमुखतो वाञ्छन्ति शश्वत् प्रभो ।
आरोपार्थमुदीरयन्ति च गुणान् नैर्गुण्यलक्ष्मीनिधे
नोचेत् सच्चिदखण्डसौख्यजलधौ तेषां प्रवृत्तिः कथम् ॥८७॥

ब्रह्मण्येव गिरां वृत्तिरित्थंभूता विभाव्यते ।
कुतस्तरां परेब्रह्मण्यासां वृत्तिर्हरे त्वयि ॥८८॥
नमोस्तु ते देव सदैव कुर्महे किमन्यदानन्दनिधे विधीयताम् ।
एतावतालं भवतोऽनुतोषणं मुकुन्दभक्त्येकजुषामिहात्मनाम् ॥८९॥
संप्रत्यसौ नाथ तवानुकंपया विश्वस्य माङ्गल्यविधिर्बभूव ह ।
यस्मादियं पुण्यपरम्परामयी पराविरासीमुनाभिधा सरित् ॥९०॥

---

१. पश्यत्यथान्धोजनः—मथु०, बड़ो० ।

सुधामयी सौख्यमयी रमामयी महोमयी मङ्गलधारणीमयी ।
दयामयी ऋद्धिरपूर्वगा हरे जयत्यसौ नीलरुचिस्तरङ्गिणी ॥९१॥

अनया देवदेवेश कृतार्थमखिलं जगत् ।
विनैव साधनायासैर्विना चाध्यात्मसंविदा ॥९२॥

अस्या दर्शनमात्रतो मधुरिपोर्दृष्टं स्वरूपं तव
ब्रह्मानन्दकलाधिकं कलयति प्रेमपयोदार्णवम् ।
एषा श्रीर्जगतामलौकिकतमा कल्याणसंपत् परा
पुण्यौघैः प्रवहत्यनेकदुरितध्वंसप्रगल्भोदया ॥९३॥

अस्याः संप्राप्तिमध्येऽसौ प्रत्यूहः समुपस्थितः ।
भवतोऽनुग्रहाद्विष्णो किं तु दूरीभविष्यति ॥९४॥

किं किं न दुर्घटं नाथ तवानुग्रहभावितम् ।
जायते भुवि मर्त्यानां तत्प्रसीद जनार्दन ॥९५॥

ब्रह्माण्डसप्रावरणभेदनेन विलम्बिता ।
नापीश विरजापूरतीक्ष्णतोयौघभेदने ॥९६॥

न सप्तसिन्धुतोयौघनिर्दारणनिधावपि ।
तथैवैषा कलिन्दाद्रेर्दारणे न विलम्बताम् ॥९७॥

कृपां कुरु जगन्नाथ विश्वमङ्गलविग्रह ।
विश्वपापहरात्युग्र पूर्यतां नो मनोरथः ॥९८॥

विनिर्भिनत्तु भवतां दत्तया जववत्तया ।
कलिन्दपर्वतग्रावशिलावज्रतटोत्करम्[1] ॥९९॥

विनिर्यातु ततो देवी यमुना लोकमङ्गला ।
उच्चैर्भरतखण्डस्य पावनाय पयोभरैः ॥१००॥

भवन्तु मनुजाः सर्वे धरणीतलवासिनः ।
दर्शनादेव निष्पापाः कृष्णसायुज्यलब्धये ॥१०१॥

क्रियतां च क्षणात् सर्वजम्बूद्वीपनिवासिनाम्
तीर्थानां मानसंदोहः सर्वेषां पापशान्तये ॥१०२॥

---

१. °शतोत्कटम्—मथु०, बड़ो० ।

वशिष्ठ उवाच

इति स्तुवत्सु देवेषु ब्रह्मेन्द्रगिरिशादिषु ।
सद्य आविरभूत् तत्र भगवान् कमलापतिः ॥१०३॥

शङ्खचक्रगदापद्मविभूषितकराम्बुजः ।
कौस्तुभीकञ्जकिञ्जल्कपुञ्जमञ्जुतराम्बरः ॥१०४॥

वनमालान्तरप्रोततुलसीदलसौरभैः ।
प्रविष्टैर्घ्राणमार्गेण क्षालयन् योगिनां मनः ॥१०५॥

प्रावृषेण्यघनश्यामः शीर्षरत्नावतंसभृत्[1] ।
मकराकारनिर्णिक्तकुण्डलद्वयमण्डितः ॥१०६॥

उदारविलसत्तारमुक्ताहारविभूषितः ।
लम्बमानालकभ्राजन्मधुराननपङ्कजः ॥१०७॥

स्वर्णोपवीतवलितललितोदारकन्धरः ।
कङ्कणाङ्गदरत्नोप्तकटिसूत्रमनोहरः ॥१०८॥

रामणीयकसंपत्तिसंदोहामृतसागरः ।
इत्युदारगुणोत्कर्षसुधावर्षपयोधरः ॥१०९॥

वैनतेयमयोदारमहारथमधिष्ठितः ।
दिव्यपार्षदवर्यौघसमुपासितविग्रहः ॥११०॥

सोऽवतीर्य रथात् तूर्णं वैनतेयमयाद्धरिः ।
स्तुवतां देववृन्दानां मध्ये प्रादुरभूद् विभुः ॥१११॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देवदेवं रमापतिम् ।
जयेत्यभिदधुर्देवा धृतोपायनपाणयः ॥११२॥

हरिः संभावयामास कृपादृष्ट्या सुरेश्वरान् ।
सुधाभिवर्षिणा चैव मन्दहासेन शोभिना ॥११३॥

---

१. "शीर्षे रत्नं अवतंसं च बिभर्त्तीति, उत्तंसावतंसौ द्वौ कर्णपूरेऽपि शेखरे इत्यमरः" । टि०—मथु० ।

तस्य प्रसादविशदैः कटाक्षैर्भाविताः सुराः ।
मेनिरे मुनयो देवाः सिद्धमात्ममनोरथम् ॥११४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे
यमुनोत्पत्तिर्नाम अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

●

नवाधिकशततमोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

समागतमभिज्ञाय रमाकान्तं चतुर्भुजम् ।
यमुना सहसागच्छत् प्राविर्भूय जलान्तरात् ॥ १ ॥
सा नत्वा कमलाकान्तं मेघश्यामं जनार्दनम् ।
तस्थावञ्जलिमावध्य तत्समीपे धृतेक्षणा ॥ २ ॥
तामुवाच स्मयन् देवो भगवान् कमलेक्षणः ।
हृदयान्तःसमुद्भूतकरुणामृतसुन्दरः ॥ ३ ॥

श्रीभगवानुवाच

गच्छ देवि महीं शीघ्रं देशान् पावय मार्गगान् ।
जनानां हर पापानि पश्यतामपि सुव्रते ॥ ४ ॥

यमुनोवाच

किंनु कुर्यामहं नाथ प्रत्यूहोऽयं महान्मम ।
कलिन्दगिरिरूपोऽत्र मध्येमार्गं व्यवस्थितः ॥ ५ ॥
नैनमुल्लङ्घितुमपि शक्ताहं कमलापते ।
रविवाहखुरस्पृग्भिः शिखरैर्व्यापितं दिवि ॥ ६ ॥
नापि भेत्तुमहं शक्ता स्रोतोजवविधायिनी ।
महाशनिशिलासारकर्कशावयवोन्नतम् ॥ ७ ॥

श्रीभगवानुवाच

अस्य त्वं तनया नाम्ना कालिन्दीति भविष्यसि ।
भित्वास्य हृदयं देवि विनिर्यास्यसि सुव्रते ॥ ८ ॥

कृतार्थयिष्यसि गिरेः कुलमस्य महात्मनः ।
पुत्रीभावं समासाद्य भूषयिष्यसि सांप्रतम् ॥ ९ ॥
शैलेन्द्रसुसमुत्तुङ्गं कोटिशृङ्गविभूषितम् ।
दिव्यभावसमायुक्तं नित्यं समधिवत्स्यसि ॥१०॥
नित्यं संनिहिता चात्र स्वेन रूपेण भाविनि ।
देवानृषीन् पितॄंश्चैव तोषयिष्यसि सर्वदा ॥११॥

यस्ते मनोज्ञपुलिनद्वयमध्यवास्तुस्त्वद्वारिमत्तनुमहो महितस्वरूपम् ।
संसेवयिष्यति जनः सुकृती स एव भुक्तिं च मुक्तिमनुविन्दति भक्तियुक्तः १२
या दुर्लभा दिविषदामपि सार्वलोकमैश्वर्यमुन्नतमखोद्भवपुण्यजन्यम् ।
आकल्पमेव जुषतां ननु सा भवत्याः पाथोनुषेवणकृतां सुलभास्ति भक्तिः॥१३
यावन्न गोपललनाकुचकुङ्कुमाक्तं मद्विप्रयोगभवतापहरं त्वदम्भः ।
आचामतीह मनुजो यमुने न तावन्मत्प्रेमजां स्वमनुविन्दति शश्वदार्तिम्॥१४
तत्त्वं कलिन्दगिरिराजसुतात्वमेत्य प्रादुर्भवस्व हृदयादुदपाय देवि ।
विश्वं विभूषय कुलं च गिरेरमुष्य भक्तिं परामम्रत[1]माचमतां पुषाण॥१५॥
वृन्दाटवीं तुलसिकामकरन्दवृन्दसौरभ्यसारशुभगामभिसंचरन्ती ।
उच्चैर्मदङ्गमहसां किल धोरणीव ध्वान्तापहा विजयसे यमुने कदा नु॥१६॥
यद् गोदुहां स्त्रिय इनेन्दुविजैत्रभासो बिभ्रत्यहो निरुपमां रुचिमानखादयाम् ।
यत्कोटितीर्थसुकृतप्रचय[2]प्रतीके त्वत्पाथसां जयति मज्जनजः[3] प्रभावः॥१७

यथा मेरुगिरिर्मुख्यो गिरीणां गगनस्पृशाम् ।
यथा च मन्दरगिरिर्गन्धमादन एव च ॥१८॥
हिमवांश्च यथा साक्षाद्भवान्या वन्दितो गुरुः ।
मलयश्चैव मैनाकः कैलासो द्रोण एव च ॥१९॥
गोवर्द्धनगिरिर्धन्यो विशाखगिरिरेव च ।
श्रीशैलश्च विशेषेण श्लाघनीयो यथा जनैः ॥२०॥
यथा विन्ध्यो महाशैलः कोटितीर्थनिषेवितः ।
दुर्गागिरिर्यथा चैव सर्वाश्चर्यमयो भुवि ॥२१॥

---

१. °समिति°—रीवाँ । २. प्रचुर—रीवाँ । ३. मज्जनता°—रीवाँ ।

नरायणगिरिश्चैव विष्णुपादरजोऽङ्कितः ।
यथातपनशैलश्च भासमानस्तनुत्विषा ॥२२॥
वैदूर्यपर्वतो यद्वद् रेवापातमनोहरः ।
पूर्वदक्षिणपाश्चात्योत्तरशैलवरा यथा ॥२३॥
तथायं भूभृतांश्रेष्ठः सर्वाश्चर्यनिधिर्गिरिः ।
कलयत्यखिलां लक्ष्मीमिन्द्रश्च ननु भूभृताम् ॥२४॥
कलिन्द इति तेनासौ कीर्तितो विबुधव्रजैः ।
कमनीयतमोत्तुङ्गसहस्रशिखरोचितः ॥२५॥
अशेषदेवतावासः सिद्धगन्धर्वसेवितः ।
श्वेतपीतहरिद्रक्तनानावर्णमनोहरः ॥२६॥
वशिष्ठादिमुनीन्द्राणां तपोभिः पुण्यपूरितः ।
विशेषात्त्वत्प्रवाहेण भविता कोटितीर्थभूः ॥२७॥
एवं ब्रुवाणे दिविषद्वरेण्ये रमापतौ भावितलोकभव्ये ।
तत्रातिशोभाञ्चितदिव्यवेशः कलिन्दशैलः समुपाजगाम ॥२८॥
आम्रे स्थितं केशवमेष वीक्ष्य प्रकामभक्तिप्रणतो गिरीन्द्रः ।
नीराजयंस्तुङ्गशिरोग्ररत्नैस्तत्पादपद्मद्वितयं पपात ॥२९॥
उत्थायोत्थाय शैलेन्द्रः पपात पदयोर्मुहुः ।
इत्थं विनीतवेशः स तस्थावग्रे कृताञ्जलिः ॥३०॥
तमुवाच हृषीकेशः स्मयन् मधुरया गिरा ।
जगत्कल्याणकरणीं करुणां समुपाश्रितः ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच

धन्योऽसि धन्यधन्योऽसि कलिन्दगिरिनायक ।
यस्य शृङ्गमलङ्कर्तुं यमुना स्वयमागता ॥३२॥
इयं हि भवतो जन्म परिप्राप्य शुभावहम् ।
भूषयिष्यति वै सर्वं निजतोयैर्महीतलम् ॥३३॥
तथा कुरु गिरिश्रेष्ठ यथा ते वक्षसि स्थिता ।
प्रादुर्भूय जगत्सर्वं पुनीत निजपाथसा ॥३४॥
भवान् हि शिखरैर्व्योम मूलेन च महीतलम् ।
स्थितोऽसि व्याप्य शैलेन्द्र दिशश्च परिणाहतः ॥३५॥

ग्रहनक्षत्रताराद्या न त्वामुल्लंङ्घितुं क्षमाः ।
ईदृशी तव शीर्षाणां तुङ्गता परिदृश्यते ॥३६॥
उत्तुङ्गशीर्षता चैव तथैव दृढमूलता ।
विष्वगायामिताचैव तव भक्त्या विभूषिता ॥३७॥
इयमेतादृशी भक्तिर्गोवर्द्धनगिरेरिव ।
अलङ्करोति त्वामुच्चैर्गिरिराज सतांगणे ॥३८॥
तव भक्त्यैव शैलेन्द्र नित्यं सुदृढमूलया ।
यमुना त्वां परिप्राप्ता साक्षादमृतवाहिनी ॥३९॥
आनामय शिरः स्वीयं यमुनां तत्र वासय ।
क्रीडिष्यति[1] चिरं तत्र तरङ्गकुलरङ्गिणी ॥४०॥
भित्त्वा च त्वां हृदयतः प्रकटत्वमुपैष्यति ।
त्वं चानया तनयया पूर्णकामो भविष्यति ॥४१॥
श्रुत्वा भगवतो वाक्यं कलिन्दः पर्वतोत्तमः ।
जहर्ष हृदयेऽत्यन्तं पूर्णकामोपलक्षितः ॥४२॥
उवाच च श्लाघ्यमानो वाक्यं भगवतो हरेः ।
उत्फुल्लहृदयाम्भोजो हसन् मधुरभाषितः ॥४३॥

कलिन्द उवाच

भाग्यं मम इदं जातं भगवन् दीनवत्सल ।
ईदृशं यदपत्यं स्यादपत्यरहितस्य मे ॥४४॥
यन्मूर्ध्नि संनिवसतां सततं मुनीनामाकर्णितोऽयमखिलः स मया पुरैव ।
यद्ब्रह्मपूर्णगुणमङ्गलनामधाम दुद्राव सर्वजगतामघपुञ्जहन्त्रि ॥४५॥
नीलेन दीप्तिकलितेन महो महिम्ना जानामि सैव यमुनेयमिति स्वचित्ते ।
पश्यामि भाग्यसमुदायविशिष्टवासो दृग्भ्यां रमेश भवदाकृतिनित्यमेनाम्४६
पुत्री भवत्वियमपत्यविवर्जितस्य नित्यं ममैव कुलभूषणकारिरूपा ।
एष प्रसाद उदितो भवतो रमेश नित्यं महीतलसतां च नृणां हितार्थः ॥४७॥

वशिष्ठ उवाच

अथ शुभावहमेत्य मुहूर्तकं समनुकूलशुभग्रहतारकम् ।
कुवलयेतिकलिन्दगिरेर्वधूः कमपि गर्भमधत्त गुणोत्तरम् ॥४८॥

---

१. क्रीडयित्वा—रीवाँ ।

ततः कुवलया वधूः सुखमसूत पुत्रीमिमाम्
स्फुरत्कमलकोमलावयवसंघशोभावहाम् ।
महेन्द्रमणिभासुरां कुवलयावदातच्छविम्
महीतलशुभावहं त्रिजगतां मनो मोदिनीम् ॥४९॥
तज्जन्मकाले परमोत् सवोऽभूत्संजाततौर्यत्रिकनादमोदः ।
महेन्द्रमुख्यत्रिदशोपक्लृप्तं मन्दारपुष्पप्रकरौघवर्षः ॥५०॥
शैलेन्द्रस्तां तु जानानो यमुनेत्याख्यया मुदा ।
सुखमामन्त्रयाञ्चक्रे विलोचनसुखावहाम् ॥५१॥
रूपसारं निपीयास्या गिरिर्वात्सल्यमोहितः ।
नातृप्यत् तत्र शैलेन्द्रः सुखोत्करसमाचितः ॥५२॥

अन्तःपुरे तां जननीसमीपे विराजमानां विहिताङ्गभूषाम् ।
स्त्रीणां गणोऽमन्यत मानसेषु रमापतेर्मुख्यवधूभवित्रीम् ॥५३॥
सा तासु शैलेन्द्रवधूषु वाक्यं तया ब्रुवाणा सुमुमोद चित्ते ।
जातिस्मरत्वं समवाप्य सद्यो विजानती स्वेन हरेश्चिकीर्षाम् ॥५४॥
सा बाल्य एवाधिकसौकुमार्यमाधुर्यसंपत्समुदायरम्या ।
बभूव लोकस्य मनांसि हर्तुं समर्थरूपप्रचयाचिताङ्गी ॥५५॥

शैशवं समतिक्रम्य ततः परमियं वयः ।
शोभयामास चार्वङ्गी शुभावयवसंपदा ॥५६॥
भूषितं यौवनेनास्यास्तनोः प्रथमया श्रिया ।
दिनेदिने विशेषेण काञ्चित्कान्तिकलां दधौ ॥५७॥
यौवनेन वपुस्तस्या वपुषा यौवनं तथा ।
विभूषितमभूत्तेन पुपोष परमां श्रियम् ॥५८॥
अन्योन्यशोभासंभारमभार्षीदञ्चिता गुणैः ।
सा च तद्यौवनं चैव ववृधे प्रतिवासरम् ॥५९॥

यतो यतो गच्छति शैलराजस्यान्तःपुरे यौवनभूषिता सा ।
ततस्ततो नीलसरोजराजीसंपुष्पितेवास दिनोदयेन ॥६०॥
अथाभवच्छैलपतेर्दुरन्ता चिन्ता तदुद्वाहविधौ त्रिलोक्याम् ।
नालम्भि रूपप्रतिमो यतोऽस्याः कश्चिद्वरः सर्वगुणौघसिन्धुः ॥६१॥

अथैकदा नारद आजगाम कलिन्दशैलस्य शुभं निकेतनम् ।
स पूजितस्तेन सुसत्कृतश्च माध्व्या[1] गिरा शैलपतिं जगाद ॥६२॥
अहो कलिन्दाचलराज नित्यं धन्योऽसि भूभृत्कुलभूषणोऽसि ।
यस्यात्मजा श्रीयमुना बभूव श्रीकृष्णदेहार्धमयी वरेण्या ॥६३॥

परब्रह्मस्वरूपेयं साक्षान्नीलघनाकृतिः ।
रूपसौन्दर्यसाराढ्या विभूषयति ते कुलम् ॥६४॥
शुभवर विषयेऽस्याश्चिन्तया किं तया ते
यदियमपरलक्ष्मीः सर्वसौभाग्ययुक्ता ।
हृदि कलय भवित्रीं भाविकृष्णावतारे
सकलभुवनभर्तुः श्रीपतेः पट्टराज्ञीम् ॥६५॥
जम्बूद्वीपविभूषणे शुभवने वृन्दावनाख्ये वने
दृष्ट्वा पौरुषभूषणं यदुकुलोत्तंसं विचित्रक्रियम् ।
श्रीकृष्णं कलयिष्यतीयमतुलं श्रीसंपदाढ्यं वरं
रुक्मिण्यादिषु तत्प्रियासु रुचिरा संशोभमाना गुणैः॥६६॥

इतोऽवधि क्ष्मातलवर्तिदेशान् घनौघकान्तैरुदकैः पुनन्ती ।
व्रजावनीमेत्य विराजमाना स्थास्यत्यसौ रासविलासकादौ ॥६७॥
गोपाङ्गनानां हरिविप्रयोगप्रभूतमुत्तापमिषं हरन्ती ।
वृन्दावनं श्रीपतिधाम कामं विभूषयिष्यत्यमलैर्जलौघैः ॥६८॥

इति नारददेवर्षिभाषितं मधुरं वचः ।
आकर्ण्य गिरिराट् सद्यः संपेदे परमां मुदम् ॥६९॥
इत्युदीर्य वचस्तस्मै देवर्षिः सहसोत्थितः ।
प्रणम्य यमुनादेवीं जगाम हरिमन्दिरम् ॥७०॥

यमुनारूपसौन्दर्यं जगौ स श्रीपतेः पुरः ।
क्वणयन् वल्लकीं रम्यां भक्तिरोमाञ्चिविग्रहः ॥७१॥
अथैकदा हरिस्तत्र द्रष्टुं श्रीयमुनामगात् ।
कलिन्दगिरिवर्यस्य निकेतं श्रीभरान्वितम् ॥७२॥

---

१. साध्व्या—रीवाँ ।

आसंचरन्ती विपिने मनोज्ञे कलिन्दशैलस्य मनोहरायाम् ।
उपत्यकायां लसितं समंताद्दर्दर्श कुत्रापि रथाङ्गपाणिम् ॥७३॥
परार्द्धकन्दर्पमनोज्ञरूपमिन्दीवराभ्यामिव लोचनाभ्याम् ।
कटाक्षवाणैर्हृदयं हरन्तं रत्नावतंसोज्ज्वलराजिशीर्षम् ॥७४॥
नखप्रभानिर्जितसूर्यचन्द्रद्युतिं च विद्योतितदिक्समूहम् ।
आनन्दसारावयवं समंतान्मुखेन्दुमन्दस्मितहारिणं तम् ॥७५॥

सा दृष्ट्वा कमलाकान्तं परार्द्धस्मरसुन्दरम् ।
द्रवत्वमगमद्देवी यमुना पूर्ववत् पुनः ॥७६॥
कृष्णोऽपि यमुनारूपं यथा दृष्टं पुनः पुनः ।
स्मारं स्मारं हृषीकेशो द्रवतां समुपागतः ॥७७॥
ते उभे श्रोतसी तत्र मिलित्वा विश्वपावने ।
कलिन्दहृदयं भित्त्वा विनिर्याते व्रजान्विते ॥७८॥

स पूर्वरुद्धोऽपि तदा प्रवाहस्तेनैव मार्गेण विनिःसृतोऽभूत् ।
ततस्तदेतत्त्रय[1]मेकदेशे प्रतत्य सर्वं यमुनैव जातम् ॥७९॥

ओघत्रयवती कृष्णा कलिन्दाद्रेर्विनिर्गता ।
भित्त्वा दृढां गिरेर्भित्तिं चचाल शनकैस्ततः ॥८०॥

ततो महौघा यमुना यमानुजा जगाम दर्पेण समन्दवेगा ।
अनेकशैलप्रकरान् पथिस्थान् विभिद्य साचोत्तरतः समव्रजत् ॥८१॥
इत्थं कलिन्दाचलकन्यका सा महौघसंघातजवान्विता नृप ।
स्थले स्थले तीर्थगणान् प्रकुर्वती पर्यव्रजद् देवनर्षिपूज्या ॥८२॥

विहायोत्तरदेशं सा देशं दक्षिणतोऽव्रजत् ।
काश्मीरमण्डले भूत्वा यमुना प्रभवावधि ॥८३॥
सर्वाणि[2] यामुनान्येव तानि तीर्थानि भूपते ।
त्रैलोक्यपावनानीति गदतो मे निशामय ॥८४॥
यमुनाद्वारमारभ्य यमुनोद्भेदनावधि ।
महातीर्थानि पुण्यानि यामुनानि महीपते ॥८५॥

---

१. तदद्य त्रय—मथु० बड़ो० । २. ससर्प—मथु०, बड़ो० ।

पुनन्ति स्नानदानाभ्यां स्पर्शादाचमनादपि ।
दर्शनाद्वा सुसंपर्कात्तद्गामिजनसंगमात् ॥८६॥
यमुनाप्रभवे स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
महाविष्णोः पदं स्पृष्ट्वा जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥८७॥
यमुनाप्रभवं नाम सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ।
तदेव यमुनादेव्याः प्रभवस्थानमुत्तमम् ॥८८॥
यावन्ति भुवि तीर्थानि तानि सर्वाणि भूपते ।
द्रष्टुं श्रीयमुनादेवीमाजग्मुस्तत्रसादरम् ॥८९॥
तेषां मध्ये स्फुरन्ती सा नक्षत्राणामिवेन्दुभा ।
कल्याणिनी विजयते नवनीलसमाकृतिः ॥९०॥
भूभृतां प्रवरो यत्र कलिन्दो नाम पर्वतः ।
गारुत्मतमहारत्नकोटिसानुमनोहरः ॥९१॥
तद्वने विचरन्ती सा दृश्यते दैवतोत्तमैः ।
पीताम्बरपरीधाना नवनीलघनाकृतिः ॥९२॥
यमुना यमभीतिघ्नी सर्वस्थानेषु दुर्लभा ।
स्थानत्रये तु सा नित्यं स्वयं मूर्तिमती स्थिता ॥९३॥
यमुनाप्रभवे चैव यमुनाद्वार एव च ।
वृन्दावने रामतीर्थे मथुरायां च भाविनी ॥९४॥
एषु स्थानेषु यमुना ध्यातव्या वैष्णवोत्तमैः ।
सततं भक्तिमिच्छद्भिः परं प्रेमाभिधा हरेः ॥९५॥
निविडजलदवर्णा पीतकौशेयवस्त्रा
सततमभयहस्ता दक्षिणेनाम्बुजाढ्या ।
क्रलितकनकदोला रत्नताटङ्ककर्णा
सकलसरिदुपास्या पातु कृष्णप्रिया सा ॥९६॥
इत्यद्भुतं ध्यानमुदीरयानो यत्र क्वचिन्मज्जति यामुने यः ।
तस्यापि वृन्दाटविमज्जनस्य फलं भवेच्छ्रीयमुनाप्रसादात् ॥९७॥
ततो ब्रह्महृदं नाम यामुनं तीर्थमुत्तरे ।
यत्र[1] स्नात्वा नरः सद्यो धौतपापो विशेद्दिवम् ॥९८॥

---

१. तत्र—मथु०, बड़ो० ।

स्नात्वा विष्णुह्रदे चैव यामुने तीर्थ उत्तमे ।
विष्णुभक्तिं लभेदाशु यामुने विमले जले ॥९९॥
स्नात्वा रुद्रह्रदे तीर्थे यामुने विमले जले ।
रुद्रस्यैव गतिं लब्ध्वा जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥१००॥

प्लक्षावतरणं नाम यामुनं तीर्थमुत्तमम् ।
दृष्ट्वा सारस्वतैर्यत्र देवैरवभृथं कृतम् ॥१०१॥
पुण्यमक्षयमेवात्र निहितं मज्जतां सताम् ।
तीर्थमग्निशिरो नाम पुण्यं तत्र प्रतिष्ठितम् ॥१०२॥

यत्रेष्टं राजवर्येण सहदेवेन वै पुरा ।
तस्य पुण्यप्रभावेण यमुना पुण्यवाहिनी ॥१०३॥
सहस्रदक्षिणं नाम यमुनाम्भसि भूपते ।
विख्यातं विपुलं तीर्थं राज्ञा तेनैव निर्मितम् ॥१०४॥
ब्रह्मयूपाभिधं तीर्थं यमुनायां प्रतिष्ठितम् ।
यत्र स्नात्वा च दत्त्वा च वाजपेयफलं लभेत् ॥१०५॥

चन्द्रतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
ऋषीणां बालखिल्यानां तपः स्थानं सुदुर्लभम् ॥१०६॥
तद्दिव्यं यामुनं तीर्थं दर्शनात् पापनाशनम् ।
आर्चीकपर्वते पुण्या यमुना दर्शनान्नृणाम् ॥१०७॥
त्रिशृङ्ग्यां स्नानमात्रेण पङ्क्तिपावनतां व्रजेत् ।
त्रीणि प्रस्रवणान्यत्र पुण्यानि यमुनाम्भसाम् ॥१०८॥

शन्तनुर्यत्र नृपतिः शनकश्च महीपतिः ।
स्थानं सनातनं प्राप्य नित्यं मुमुदतुर्हृदि ॥१०९॥
नरो नारायणश्चैव यत्र नित्यं प्रतिष्ठितः ।
देवताः पितरश्चैव यत्र सर्वे प्रतिष्ठिताः ॥११०॥

सुगम्भीरतमस्रोता यमुना तत्र शोभते ।
इदं प्रस्रवणं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१११॥
तद्यामुनं महातीर्थं दर्शनात् पापनाशनम् ।
यत्र धाताविधातारौ वरुणश्चालभद् यशः ॥११२॥

मखान् बहुतरांश्चक्रे तेने पुण्यं च भूतले ।
नानामहर्षिब्रह्मर्षिदेवर्षिगणसेवितम् ॥११३॥
यमुनामवगाह्यात्र महायज्ञफलं लभेत् ।
मान्धातृयज्ञवाटे च यमुना विश्वपावनी ॥११४॥
सोमकस्य च राजेन्द्र सहदेवस्य भूपतेः ।
यूपप्रणिखने तीर्थे यमुना विष्णुदुर्लभा ॥११५॥
प्रजापतेर्यज्ञवाटे यमुना देवदुर्लभा ।
पुरा वर्षसहस्रं स यत्र सत्रमवर्तयत् ॥११६॥
अम्बरीषो महाराजः क्रतून् यत्र चकार वै ।
नाभागश्चमहाभागस्तत्रस्नात्वा दिवं गतः ॥११७॥
यत्र पुण्यतमो देशो ययातेः पुण्यकर्मणः ।
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च पुण्यश्लोको दिवं व्रजेत्॥११८॥
यमुनाम्भः सरस्वत्या यत्र संमिलितं नृप ।
तत्तीर्थमतुलं लोके मयाख्यातुं न शक्यते ॥११९॥
दृषद्वती च यमुना यत्र संमिलिते उभे ।
तत्तीर्थमृषिभिः ख्यातं कोटितीर्थसमं भुवि ॥१२०॥
जमदग्निमुनेर्भूप यत्र[1]पुण्याश्रमस्थलम् ।
तत्तीर्थं यमुनावारिण्यद्भुतं विश्वपावनम् ॥१२१॥
भृगुतीर्थे महाराज सर्वपापप्रणाशने ।
आप्लुत्य यामुने वारिण्यनन्तं फलमाप्नुयात् ॥१२२॥
वितस्तायमुनासंगे सर्वपापप्रणाशने ।
सकृन्निमज्जन् मनुजः सद्भक्तिं लभते ध्रुवम् ॥१२३॥
जलाचोपजला चैव यमुनामभिनिर्गते ।
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥१२४॥
वायुतीर्थं महाराज यामुने शुभवारिणि ।
तत्र स्नात्वैव राजेन्द्र वायुतुल्यः शुचिर्भवेत् ॥१२५॥

---

१. °मुनेर्यत्र भूयः—मथु०, बडो० ।

औशीनरं तु राजानमिन्द्राग्नी अभिजग्मतुः ।
तत्र श्येनकपोतीये स्थाने तीर्थं मनोहरम् ॥१२६॥
यमुना वहते यत्र सर्वतीर्थमयी सरित् ।
तत्र स्नात्वा द्विजान् भोज्य कोटियज्ञफलं लभेत् ॥१२७॥
एवमुत्तरतो राजन् यमुना दक्षवाहिनी ।
यं यं देशमभिप्राप्य पावयामास भूपते ॥१२८॥
स स देशः पुण्यतमः स्नानदानादिकर्मसु ।
क्रतूनामुचितश्चैव विप्राणां वसतिक्षमः ॥१२९॥
यमुनापुलिने वासो यमुनाम्भसि मज्जनम् ।
यमुनाजलपानं च देवानामपि दुर्लभम् ॥१३०॥
पावयन्ती शुभान् देशान् इन्द्रप्रस्थमुपागमत् ।
तीर्थं निगमबोधाख्यं तत्र ख्यातं महीपते ॥१३१॥
तत्राश्वमेधाः शतशः सहस्रशो देवैस्तथाभूपवरैरनुष्ठिताः ।
तेनैतदत्युग्रतरं महीतले विभाति तीर्थं मुनिपुङ्गवैःस्तुतम् ॥१३२॥
तत्र स्नात्वा तथा दत्त्वा पुण्यमक्षयमाप्नुयात् ।
तुल्यं निगमबोधस्य तत्तीर्थान्तरमिष्यते ॥१३३॥
इन्द्रप्रस्थं महाराज योगिनीकोटिसेवितम् ।
वाराहीक्षेत्रमुदितं कालिका यत्र तिष्ठति ॥१३४॥
तत्र श्रीयमुनावारिण्याप्लुत्य सततं नरः ।
ऋणहत्याकरं पापं क्षिप्रमेव विमुञ्चति ॥१३५॥
पापमैहिकभोग्यं यदामुष्मिकफलं च यत् ।
स्नात्वा निगमबोधे तु सद्य एव निवर्तते ॥१३६॥
ततो व्रजेन्महापुण्ये नन्दगोपेन्द्रपालिते ।
संचरन्ती मन्दमन्दं यमुना लोकपावनी ॥१३७॥
अधिवृन्दावनं भूप बलस्य सुमहात्मनः ।
हलाकर्षणसंज्ञं तत् तीर्थं विश्वस्य पावनम् ॥१३८॥
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्योऽमितं वसु ।
लोकान् पुण्यकृतान् राजन्नाकल्पं प्राप्नुयान्नरः ॥१३९॥

मथुरामण्डले यानि तीर्थानि यमुनाम्भसि ।
तानि सर्वाणि संगम्य स्नानं दानं समाचरेत् ॥१४०॥
तस्य सर्वा तीर्थयात्रा सफला स्यान्महीपते ।
भुक्तिं मुक्तिं लभेदाशु यद्यन्मनसि वाञ्छति ॥१४१॥
ततश्च माथुरं राजन् मण्डलं सर्वसौख्यदम् ।
अतीत्य रेणुकातीर्थं यमुनायां प्रतिष्ठितम् ॥१४२॥
यत्र रामः स्वयं भाति भार्गवो लोकपूजितः ।
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च पुण्यमक्षयमाप्नुयात् ॥१४३॥
ततश्च यमुनातोये यमतीर्थं महीपते ।
सकृत्संस्नानमात्रेण यमभीतिं निवारयेत् ॥१४४॥
ऋषितीर्थं महाराज यमुनायां प्रतिष्ठितम् ।
रामतीर्थं विशेषेण जगतः पावनं मतम् ॥१४५॥
चर्मण्वत्या च यमुना नितरां यत्र संगता ।
तत्र स्नानेन दानेन नरोऽनन्तं फलं लभेत् ॥१४६॥
ततश्च देवतीर्थं तद् यमुनायां सुपावनम् ।
स्नानादेव महीपाल ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥१४७॥
विश्वेषां चापि देवानां ततो वै तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नानेन तृप्ताः स्युर्विश्वेदेवा महीपते ॥१४८॥
आदित्यतीर्थं चाप्लुत्य यमुनायां शुभावहे ।
आदित्यलोकं जयति यावत्कल्पं सुपुण्यभाक् ॥१४९॥
वसूनां सुमहत्तीर्थं यमुनायां प्रतिष्ठितम् ।
तत्र स्नानेन दानेन नरो विजयते दिवि ॥१५०॥
पराशरमुनेस्तीर्थं यमुनावारि[1]संस्थितम् ।
स्नानदानादिविधिना नरान् पावयितुं क्षमम् ॥१५१॥
वटेश्वरे महाराज यमुना विश्वपावनी ।
तत्तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतं पुण्यमन्दिरम् ॥१५२॥
दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव मथुरावत्सुपावने ।
नातः परतरं स्थानं यमुनायां प्रतिष्ठितम् ॥१५३॥

---

१. °वारिणि°—मथु०, बड़ो० ।

अतस्तत्र विशेषेण गन्तव्यं भूतिमिच्छता ।
चर्मण्वती यमुनया यत्र संपर्कमागता ॥१५४॥
स देशः सर्वदा पुण्यः सर्वकर्मणि शस्यते ।
चर्मण्वती महापुण्या स्वयमेव महीपते ॥१५५॥
किं पुनर्यमुनास्रोतःसंबन्धादुच्यतां मया ।
वेदोद्धारस्थलं नाम यामुनं तीर्थमुत्तमम् ॥१५६॥
यत्र देवाः समं वेदानधिजग्मुः परन्तप ।
तत्र श्रीयमुना साक्षान्मथुरावत् फलप्रदा ॥१५७॥
वेत्रवत्या समं यत्र यमुना संगता स्वयम् ।
तत्स्थानं सर्वदेवानां प्रभवत्वेन कीर्तितम् ॥१५८॥
यत्र देवाः पुरा चक्रुः सत्रं वै शतवार्षिकम् ।
पुण्यं च स्थापयाम्मासुस्तीर्थे लोकमुदावहम् ॥१५९॥
तीर्थराजे प्रयागे च गङ्गया सङ्गता स्वयम् ।
तत्तीर्थं वै त्रिवेणीति सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥१६०॥
तत्र यो म्रियते जन्तुर्भाग्येन धरणीपते ।
स विमुक्तिमवाप्नोति दुस्तराद्भवसागरात् ॥१६१॥
यमुनासंगमाद् गङ्गा प्रतिष्ठां महतीं गता ।
अतोऽसौ तीर्थराजाख्यः प्रयागः समुदाहृतः ॥१६२॥
प्रयजन्तेस्म विबुधा यत्र नित्यमकण्टकाः ।
प्रयाग इति तेनासौ तीर्थराजो निगद्यते ॥१६३॥
ब्रह्मवेदीतिसंप्रोक्तः पुराविद्भिर्महीपते ।
यत्र ब्रह्म स्वयं भाति शब्दरूपेण संततम् ॥१६४॥
मुनीनां पठतां ब्रह्म यत्पुण्यं नित्यवृद्धिमत् ।
तत्पुण्यं तीर्थराजाख्यं प्रतिष्ठायै विजृम्भते ॥१६५॥
दशकोटयश्वमेधानां यत्पुण्यं नित्यवृद्धिमत् ।
तत्पुण्यं तीर्थराजस्य नित्यमावपनं शुभम् ॥१६६॥
यावन्ति भुवि तीर्थानि तानि सर्वाणि भूपते ।
तीर्थराजप्रतिष्ठानि हरन्ति जगतामघम् ॥१६७॥

अतः परं महाराज यमुना गङ्गया समम् ।
देशान् पुनन्ती व्रजती प्रकटाप्रकटा क्वचित् ॥१६८॥
यत्र गङ्गासमं याता प्राकट्यं यमुना व्रजेत् ।
स तु पुण्यतमो देशः स्थातव्यमिह यत्नतः ॥१६९॥
यमुनोद्भेदमासाद्य यमुना भेदमागता ।
गङ्गायाः स्रोतसो भिन्नो यात्रात्मा प्रकटीकृतः ॥१७०॥
तत्तीर्थं सर्वदेवानां वेदनीयतमं भुवि ।
अन्योन्यमात्मना भिन्ने ते गङ्गायमुने उभे ॥१७१॥
संगते स्रोतसां भेदात् समुद्रं पयसां निधिम् ।
यमुनामागतां वीक्ष्य समुद्रो वाहिनीपतिः ॥१७२॥
योजनद्वयमात्रेण पुरस्तादाजगाम सः ।
प्रत्युत्थानाय कालिन्द्या आदरेण महीयसा ॥१७३॥
यमुना वाहिनीनाथमायान्तमभिवीक्ष्य सा ।
परावृत्ताभवत् सद्यः कृष्णपत्नीतिलज्जया ॥१७४॥
परावृत्तजवां वीक्ष्य मानिनीमिव तां ततः ।
समुद्रः प्रेषयामास गङ्गां श्रीयमुनां प्रति ॥१७५॥

समुद्र उवाच

गच्छ देवि जवादेनां यमुनां विश्वपावनीम् ।
संबोधय ततो गङ्गे मानिनीमिव तां मयि ॥१७६॥
संबोध्य सान्त्वयित्वैनामिहानय मदन्तिके ।
गङ्गा समुद्रवचनाद् यमुनान्तिकमागमत् ॥१७७॥
ततस्तां बोधयामास यदुक्तं तत्र सिन्धुना ।
सान्त्वनं वचनं शान्तं प्रसादकमनुत्तमम् ॥१७८॥

गङ्गोवाच

वाहिनीनां पतिः सिन्धुस्त्वामामन्त्रयति प्रियाम् ।
ततश्चैनमुपागच्छ प्रसक्त्या विश्वपावनि ॥१७९॥
सर्वाः समुपसर्पन्ति सरितो वाहिनीपतिम् ।
आत्मनो दयितं ज्ञात्वा त्वमप्येनमुपव्रज ॥१८०॥

इति गङ्गावचः श्रुत्वा यमुना प्राह सस्मितम् ।
अहं वैकुण्ठनाथस्य पत्नी लोकहितैषिणी ॥१८१॥
धरणीमण्डलं प्राप्ता कथं सिन्धुमुपव्रजे ।
इति तद्वचनं श्रुत्वा गङ्गोवाच सुविस्मिता ॥१८२॥
यद्येवं तर्हि यमुने समुद्रं निधिमम्भसाम् ।
कथं प्राप्तास्ति भवती पत्नी भूत्वा रमेशितुः ॥१८३॥

यमुनोवाच

समुद्रं भवती गत्वा मद्वचो ब्रूहि सादरम् ।
मार्गं मे दीयतां भद्र यथा गच्छेयमादरात् ॥१८४॥
आगता यत एवाहं तत्रैव गन्तुमुत्सहे ।
भित्त्वा त्वां पाथसांनाथ परतो गन्तुमुत्सहे ॥१८५॥
तदर्थमागता ह्यत्र दृष्ट्वा त्वां जलधे बलात् ।
तरङ्गभुजसंदोहैः परिरम्भेच्छुमागतम् ॥१८६॥
परावृत्ताभवं सद्यो लज्जया कृष्णवल्लभा ।
ततो मैवं कुरु त्वं हि कृष्णभक्तोऽसि सागर ॥१८७॥
वैष्णवानामयं धर्मो न कदापि विभाव्यते ।
परस्य पत्नीमागन्तुं यन्मनः कुरुते बलात् ॥१८८॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गङ्गा सागरमागमत् ।
यमुनोक्तं विस्तरेण सागरायाब्रवीद् वचः ॥१८९॥
समुद्रस्तत्समाकर्ण्य यमुनावाक्यमादरात् ।
भक्तिप्रह्वो ववन्दे तां कृष्णपत्नीति भावयन् ॥१९०॥
भक्त्यैव तु स तामेत्य परिजग्राह पूजया ।
पाद्यार्घ्याचमनाद्युक्तविधिसंपन्नया मुदा ॥१९१॥
तस्मै प्रसादसुमुखी कृष्णभक्तिं प्रदाय सा ।
तत्पत्नीभ्यो नदीभ्यश्च मुदा पर्यचलत् ततः ॥१९२॥
पुरोभूय समादाय स्वामिनीं भक्तवत्सलाम् ।
गृहं प्रवेशयामास प्रसादाय स आत्मनः ॥१९३॥
अनेकरत्नप्रकरप्रकाशं मुक्तावलम्बिप्रसरद्वितानम् ।
कल्पद्रुमस्तोमनिषेव्यमाणप्राकारपर्यन्तमनोज्ञमध्यम् ॥१९४॥

परिस्फुरद्दारुणलोकसंपत्कदम्बकल्याणपरम्पराढ्यम् ।
लसन्महाहर्म्यतलोर्द्धसंस्थामनोहरं फुल्लवसन्तलक्ष्मि ॥१९५॥
क्रमेण दीव्यत्सकलर्तुशोभामितस्ततो बालवधूसमेतम् ।
पदाम्बुजक्वाणितमञ्जुघोषमाञ्जीरवाद्यानुमिताच्छभित्ति ॥१९६॥
अनेकमाङ्गल्यविधिप्रसंगनृत्यन्नटीवृन्दविभूष्यमाणम् ।
धृताखिलाश्चर्यकरप्रपञ्चं तैर्वारुणैरेव जनैर्निषेव्यम् ॥१९७॥
मूर्ताभिरुच्चैः सरितांवराभिः पत्नीभिरारात् समुपास्यमानम् ।
क्वचिच्च शेषाहिमनुप्रसुप्तनारायणस्थापितसंपदाढ्यम् ॥१९८॥
तत्तादृगासाद्य समुद्रसद्म दृष्ट्वा पतिं तत्र रमापतिं स्वम् ।
संपूजिता पार्षदवर्यवृन्दैः सिन्धोश्च पत्नीभिरुदारहृद्भिः ॥१९९॥
सद्यः प्रसन्ना जलधौ बभूव भक्त्यातिनम्रे निजभर्तृदासे ।
आज्ञामुपादाय च भर्तुरेषा स्रोतोजलाढ्या परतश्चचाल ॥२००॥

इत्थं विभिद्य लवणार्णवमस्य भूयः
संवेष्टनं क्षितितलं परितः प्रपद्य ।
भित्त्वा तदग्रजलधिं च जलौघवेगा-
दन्यक्षितिं पुनरवाप कलिन्दकन्या ॥२०१॥

पुनर्भित्त्वा जलधीन् सप्तसंख्यान् सप्तद्वीपांश्चैव पाथोजवेन ।
शुद्धोदमुद्भिद्य पुनश्च याता ब्रह्माण्डभेदाद्विरजां महोर्मिम् ॥२०२॥
भित्वा पुनश्च विरजां विपुलप्रतीकां तत्पारगं हरिपुरं पुनराजगाम
वैकुण्ठनित्यसदनं परचित्सुखैकशेषस्य तस्य परमात्मन आदिमूर्तेः॥२०३॥

इत्थं च वैकुण्ठपुरं प्रवाहः प्रदक्षिणीकृत्य सदा जवेन ।
भ्रमत्यहोरात्रकमारघट्टन्यायाद्गता यत्पुनरेति शश्वत् ॥२०४॥
यातो यातो यमुनायाः प्रवाहो भूयोभूयः पुनरप्येति शश्वत् ।
न तस्य नाशो न च सिन्धौ निपातो न सूर्यभासा ग्रीष्मकालेऽपि शेषः२०५

पीयूषादधिकं येन यमुनावारि सेवितम् ।
न तस्य प्रभवेन्मृत्युर्न जरा न शुचां पदम् ॥२०६॥
चिदानन्दमयं वारि यमुनाया विशेषतः ।
पिबत स्नात मनुजा गायत ध्यायत द्रुतम् ॥२०७॥

इति नित्योपदेशेन यो भजेद्यमुनातटम् ।
कितस्य कोटिभिः पुण्यैर्जीवन्मुक्तस्य संततम् ॥२०८॥
इति ते रघुशार्दूल तीर्थयात्राप्रसंगतः ।
कथिता यमुनोत्पत्तिर्माहात्म्यगुणवृंहिता ॥२०९॥
इदं ते सर्वभक्तानां रहस्यं वृत्तमीरितम् ।
तादृशायैव लोकाय प्रकाश्यं नेतराय च ॥२१०॥
तीर्थानां चापि सर्वेषां यात्रा ते समुदाहृता ।
प्रकटानां महीलोके प्रकटानां च भूपते ॥२११॥
एवं क्रमेण सर्वेषां तीर्थानां धरणीतले ।
यात्रां विधाय भूपाल कृतकृत्यो भविष्यसि ॥२१२॥
आदौ पुलस्त्यमुनिना रचिता यथार्थं
पश्चाच्च लोमशमहर्षिवरेण यत्नात् ।
भूयो दिलीपरघुनाहुषकाम्बरीष-
मान्धातृमुख्यविबुधैश्च कृता विशेषात् ॥२१३॥
तथा त्वमपि भूपाल सपत्नीकः कुरुष्व ताम् ।
अभीष्टसिद्धिं लब्ध्वाशु भूयः कल्याणमाप्स्यसि ॥२१४॥
यस्य रामसमाः पुत्राश्चत्वारो वीर्यभूषणाः ।
भूषयन्ति कुलं नित्यं स धन्यस्त्वं रघूद्वह ॥२१५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रायां नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

दशाधिकशततमोऽध्यायः

राजोवाच

सूर्यस्य तनया देवी यमुना परिकथ्यते ।
एतन्मे वद योगीन्द्र कथं जाता रवेः सुता ॥ १ ॥
तत्रैव जन्मन्यथवा जन्मान्तरमुपेत्य सा ।
अभूत् सूर्यसुता देवी तन्मे विस्तरतो वद ॥ २ ॥

वशिष्ठ उवाच

शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि यथा सूर्यसुताभवत् ।
यमुना लोकपापघ्नी देवानां हितकारिणी ॥ ३ ॥
प्रभा छाया चांशुमती तपनी तापनी तथा ।
घना च शोषिणी चैव रोषिणी रतिका तथा ॥ ४ ॥
सुतपा वर्चसा वर्षा द्वादशैता रवेः प्रियाः ।
सर्वाः प्रसवसंपन्नाः सुभगाः सूर्यवल्लभाः ॥ ५ ॥
तासां कनिष्ठा त्वाष्ट्री या कन्या त्वष्टृप्रजापतेः ।
चिरादधृतगर्भा सा मनसा समतप्यत ॥ ६ ॥
तत आराधयामास ब्रह्माणं विश्ववेधसम् ।
प्रसवार्थं तपोनिष्ठा जायार्कस्य बभूव सा ॥ ७ ॥
निराहारा वपुःक्लेशं चक्रे यावच्छतं समाः ।
तस्यै प्रजार्थं विधिवत्तपस्यन्त्यै शतं शमाः ॥ ८ ॥
त्वाष्ट्र्यै तुतोष भगवान् विश्वकर्ता प्रजापतिः ।
वरेण च्छन्दयामास सा तुष्टं वेधसांपतिम् ॥ ९ ॥
अयाचताञ्जलिं बद्ध्वा शुभां सन्ततिमिच्छती ।
अथ कालेन रविना संगता त्वष्टुरङ्गजा ।
दधार सा गुणवती गर्भं गुरुतरं गुणैः ॥१०॥
दिव्यवर्षशतं यावत्तस्याः सदुदरान्तरे ।
ववृधे तेजसा गर्भः प्राच्यामिव कलानिधिः ॥११॥

सा पीड्यमाना भारेण त्वाष्ट्री गर्भस्य दुःखिता ।
इच्छन्ती सन्तर्ति भव्या न ददर्श तपस्विनी ॥१२॥
अन्तर्वत्न्यपि सा त्वाष्ट्री बभूवातिमनोहरा ।
विशेषाद्रूपसंपत्तिसंपन्ना स्त्रीकदम्बके ॥१३॥
तामेकदा तु भगवान् कामयानो विकर्तनः ।
वशीकृतस्तद्रूपेण संप्राप्तो रहसि स्थिताम् ॥१४॥
सहस्रेणापि किरणैस्तामेष मदनातुरः ।
आलिलिङ्ग बलेनापि नेतिनेति निषेधितः ॥१५॥
पुरुषाणां प्रवृत्तिं हि न स्त्री वारयितुं क्षमा ।
विवेकेनैव वार्यन्ते वेलयेव पयोधयः ॥१६॥
तस्याः करसहस्रेण ताप्यमाना तु साबला ।
सुस्राव शोभनं गर्भं पूर्णवर्षशताधिकम् ॥१७॥
श्यामस्तेजोमयो दण्डस्तयापूर्वं व्यदृश्यत ।
सहस्रकिरणाश्लेषाज्ज्वलितोर्वरिताकृतिः ॥१८॥
अत एव महत्तेजस्तादृशं रूपमुद्वहत् ।
जाज्वल्यमानं परितः क्रोधाविष्टमिवाद्भुतम् ॥१९॥
तदन्वदृश्यतात्युच्चैरपां सङ्घः सुतैजसः ।
कृष्ण एव सुसंजातो रन्धितो रवितेजसा ॥२०॥
गर्भस्रावं विलोक्यासौ त्वाष्ट्री लज्जान्विताभवत् ।
अहो मे वेधसा सम्यग्वितीर्णा सन्ततिः शुभा ॥२१॥
देवा अपि प्रजल्पन्ति वञ्चयन्ति च मानुषान् ।
किमेतत् सुप्रसन्नेन वितीर्णं नाम वेधसा ॥२२॥
इत्युक्त्वा वचनं त्वाष्ट्री यावच्छपति वेधसम् ।
तावदभ्याजगामैनां वेधा विश्वसृजां पतिः ॥२३॥
दृष्ट्वा विषण्णहृदयां त्वाष्ट्रीमेष जगाद ह ।
सान्त्वयन् हृदयानन्दैः शीतलैर्वचनामृतैः ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

अहो ते साध्वि सुमहान् संपूर्णोऽयं मनोरथः ।
मत्प्रसादात् पुरा देवि यदतप्यः शतं समाः ॥२५॥

तेजोदण्डस्तु पुरतो य एष परिदृश्यते ।
भविता स यमः साक्षाल्लोकदण्डधरोऽद्य वै ॥२६॥
विना दण्डधरं साक्षाद् विशीर्येताखिलं जगत् ।
अतोऽयं भगवान् विष्णुः स्वयमेवोदगाद्रवेः[1] ॥२७॥
पुण्यपापविवेकाय जगतां दण्डधारणः ।
अग्रस्तेजोमयः साक्षाल्लोकत्रितयतापनः ॥२८॥
अयं च जलसंघातो नवनीलघनाकृतिः ।
यमुनेत्याख्यया लोके भविष्यति शुभा नदी ॥२९॥
अनया सर्वलोकानां हरणीयमघं महत् ।
यत्र गङ्गादितीर्थौघैर्ह्रियते विश्वकल्मषम् ॥३०॥
येन पापेन जीवोऽसौ नित्यकैङ्कर्यतश्च्युतः ।
हरिष्यति स्वयमियं तत्पापं घोरमुल्वणम् ॥३१॥
येन पापेन मनुजैर्विस्मृतं हरिसेवनम् ।
हरिष्यति स्वयमसौ तापदं पापमुल्वणम् ॥३२॥
येऽस्यां स्नास्यन्ति मनुजाः सर्वसाधनवर्जिताः ।
तेऽपि लब्ध्वा हरेः प्रेम प्रयास्यन्ति कृतार्थताम् ॥३३॥
जम्बूद्वीपे यशश्चास्या भविष्यति विशेषतः ।
यन्न गङ्गादितीर्थानां सर्वमानुषपावनम् ॥३४॥
माथुरे मण्डले स्थित्वा श्रीमद्वृन्दावने वने ।
कृष्णाभिन्नस्वरूपेण पूजनीया जनैरियम् ॥३५॥
इत्युक्त्वा भगवान् वेधाः सान्त्वयित्वा रवेर्वधूम् ।
त्वाष्ट्रीं सन्तोषयामास सुसन्तानस्य काङ्क्षिणीम् ॥३६॥
प्राणप्रतिष्ठाविधिना यमं सर्वाङ्गसुन्दरम् ।
चकार जीविनं वेधाः सर्वत्रैलोक्यदण्डनम् ॥३७॥
यमोऽसि धर्मराजोऽसि त्वं वै दण्डधरोऽसि च ।
उत्तिष्ठ सर्वलोकानां पुण्यपापविविक्तये ॥३८॥
पुरीं संयमिनीं प्राप्य प्रेतवृन्दनिषेविताम् ।
विवेचय बलात्तत्र जगतां पुण्यपापके ॥३९॥

---

१. °वोदभूद्रवेः—मथु०, बडो० ।

प्रेताश्च कुणपाः सर्वे त्वदाज्ञाकारिणः स्फुटम् ।
एकाशीतिसहस्राणि वर्तन्तां पारिपार्श्वकाः ॥४०॥
ते नृणां म्रियमाणानां जीवमादाय सर्वतः ।
आनयन्तु भवत्पार्श्वे पुण्यपापविविक्तये ॥४१॥
किं तेषां पुण्यगुप्तानां गतीः पुण्या निदेशय ।
पापानां च गतीः पापास्तत्क्षणात् परिभावय ॥४२॥
पुण्यपापौघलेखाय नित्यं यत्नाः सुसाधकाः ।
भवन्तु चित्रगुप्ताद्या धर्मराज तवाज्ञया ॥४३॥
वक्ष्यते च शुभान् धर्मान् भवान् सर्वजगद्धितान् ।
यैः समाचरितैर्मर्त्यो न भूयः खलु ताम्यति ॥४४॥
घण्टालो नीलमेघाभो महिषस्तव वाहनम् ।
करवीरप्रसूनानां माला ते हितकारिणी ॥४५॥
कुर्वप्रतिहरं राज्यं सर्वेषामन्तरात्मदृक् ।
न त्वां विना भविष्यन्ति रहस्येऽपि जना भुवि ॥४६॥
त्वं वै स भगवान् साक्षात् प्रकटः स्वयमात्मना ।
असंकराय लोकानां पुण्यपापाधिकारिणाम् ॥४७॥
उदासीनवदासीनः साक्षी सर्वस्य जन्मिनः ।
अन्तकाले परिप्राप्ते त्वं वै प्राकट्यमेष्यसि ॥४८॥
एषा ते स्थितिरुद्दिष्टा यम धर्मभृतांवर ।
प्रणम्य मातापितरौ गच्छ त्वं दक्षिणां दिशम् ॥४९॥
इतिवादिनि लोकेशे तत्क्षणात् कृष्णपाथसः ।
उदस्थाद् यमुना साक्षाद् यमस्य भगिनी तु सा ॥५०॥
तां विलोक्य मुदं प्राप्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
इन्दीवरसमानाङ्गीं फुल्लपङ्कजलोचनाम् ॥५१॥
पद्महस्ताभयकरां जगतामुद्धृतौ क्षमाम् ।
पुराणमुनिभिः सेव्यां कृष्णाद्वैतस्वरूपिणीम् ॥५२॥
भासयन्तीं दिशः सर्वा निजदेहतडित्त्विषा ।
जातरूपप्रतीकाशतनुमण्डितभूषणाम् ॥५३॥

सा स्मयन्ती मन्दमन्दमवन्दत पितामहम् ।
तस्यै ब्रह्माशिषं प्रादाच्चिरञ्जय चिरञ्जय ॥५४॥
दत्ताशीर्ब्रह्मणा सा तु मातुः पार्श्वमुपागता ।
तां त्वाष्ट्री तोषयामास दिव्यावयवशोभिता ॥५५॥
तामुवाच स्वयं ब्रह्मा गच्छ लोकान् पथिस्थितान्
पुनन्ती निजनीरौघैः क्रमाद् देवि महीतलम् ॥५६॥
तत्र यस्तेऽन्तरा विघ्नो भविष्यति रवेः सुते ।
स नाशमेष्यतितरां निःशङ्कं व्रज भाविनि ॥५७॥

वशिष्ठ उवाच

अथामुं यमुना प्राह मन्दस्मितविराजिता ।
सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् व्रजेयमवनीतलम्॥५८॥
कार्यं तु मे निदेष्टव्यं किं नु कुर्यामहं विधे ।
कुत्र स्थास्याम्यहं ब्रह्मन् को मे भर्ता भविष्यति ॥५९॥

ब्रह्मोवाच

नृणां त्वं देवि पापानि दह ज्वालेव तार्णकम् ।
इति ते कार्यमुद्दिष्टं यमभीतिविनाशनम् ॥६०॥
माथुरे मण्डले चैव श्रीमद्वृन्दावने वने ।
स्थेयं भवत्या सततं कृष्णो भर्ता भविष्यति ॥६१॥

यमुनोवाच

कुटुम्ब एव भगवान् विरोधः स्थापितस्त्वया ।
प्रेतानां हि यमो राजा देयो मोक्षश्च वै मया ॥६२॥
यमेन के दण्डनीयाः के च मोच्या मया विधे ।
एतत्पृष्टतरं ब्रूहि विरोधः संनिवर्तताम् ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

स्नास्यन्ति ये त्वयि जनाः सततं सूर्यकन्यके ।
तेषां दण्डयिता नैव यमः स्यादिति मे मतिः ॥६४॥
कार्तिके शुक्लपक्षे च द्वितीया या भविष्यति ।
तस्यामागत्य यमुने यमस्त्वयि निवत्स्यति ॥६५॥
तस्य त्वं भोजनैर्दिव्यैर्वस्त्रालङ्कारलेपनैः ।
करिष्यसि सुखं देवि तिलकेन च शोभिना ॥६६॥

तस्यां यमद्वितीयायां ये स्नात्वा मनुजास्त्वयि ।
यमं संतर्पयिष्यन्ति नैषां दण्डयिता यमः ॥६७॥
इति दत्त्वा मतिं वेधास्तयोर्भ्रात्रोरुदारधीः ।
जगाम विष्टपं स्वीयं यमोऽपि दक्षिणां दिशम् ॥६८॥
यमुना पुनाति लोकान् महराद्यांस्ततस्तुसा ।
क्रमेण धरणीमेत्य प्लावयामास सर्वतः ॥६९॥
एवं ते राजशार्दूल कथानकमनुत्तमम् ।
यमस्य यमुनायाश्च प्रोक्तं पापप्रणाशनम् ॥७०॥
ए एवं शृणुयान्नित्यं यमुनोत्पत्तिमुत्तमाम् ।
स तीर्त्वा घोरपापानि कुशलं लभते नरः ॥७१॥
एवं कृष्णाद्भगवतः सूर्याच्चैव कलिन्दतः ।
तदुत्पत्तिं त्रिधा श्रुत्वा शुभमाप्नोति मानवः ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा तीर्थान्यशेषेण साक्षात्कथयतो मुनेः ।
स राजा रघुशार्दूलो मनश्चक्रे विशेषतः ॥७३॥
पुण्यायै तीर्थयात्रायै दानाय महतेऽपि च ।
पृथ्वीप्रदक्षिणायै च सुकृताय च भूयसे ॥७४॥
मुनिभिर्ब्राह्मणैः साकं समानवयसान्वितैः ।
वृद्धैश्च मन्त्रिप्रवरैः सुतन्यस्तकुटुम्बकैः ॥७५॥
ब्रह्मचारिभिरत्यन्तं स्वाध्यायकुशलैर्द्विजैः ।
गृहस्थैर्मुनिभिश्चैव साग्निकैः कर्मशालिभिः ॥७६॥
वानप्रस्थैस्तपोनिष्ठैः वैखानसधुरन्धरैः ।
यतिभिः सर्वसंन्यस्तैर्यैस्त्रिदण्डैकदण्डिभिः ॥७७॥
अन्यैश्च पुण्यमतिभिर्ब्राह्मणैः क्षत्रियोत्तमैः ।
नैगमैस्त्यक्तनिखिलव्यवहारश्रमैर्जनैः ॥७८॥
शूद्रैर्वैष्णवमुख्यैश्च हरिदास्यपरायणैः ।
उपासकैश्च बहुभिर्मन्त्रयोगपरायणैः ॥७९॥
अनेकशास्त्रव्याख्यानप्रवीणैर्ब्राह्मणोत्तमैः ।
साङ्गस्वाध्यायकुशलैः शब्दब्रह्मातिगैरपि ॥८०॥

अलोलुपैर्जिताहारैस्तपःकर्मकृतश्रमैः ।
स्वल्पाहारैः सदातृप्तैर्यथा संपन्नभोजनैः ॥८१॥
अयानगमनायाससहैरस्वादुभोजिभिः ।
कन्दमूलफलाहारकृतश्रद्धैस्तपोरतैः ॥८२॥
कर्षितैः कर्मनिष्ठाभिर्भोगकृत्यविवर्जितैः ।
देहकर्षणशीलैश्च गृहासक्तिविवर्जितैः ॥८३॥
वर्षवातातपहिमक्लेशकृत्यसहैर्जनैः ।
तान्निनाय नृपः सार्थे सेवका ये च तादृशाः ॥८४॥

राजोवाच

श्वस्तीर्थानि गमिष्यामि केऽनुयास्यन्ति मामिह ।
निवर्तन्तां भोजनादौ येषां स्वादुरतिर्नृणाम् ॥८५॥
येषां हृदि तपोनिष्ठा तीर्थाटनविधावपि ।
आदरस्तेऽनुवर्तन्तां मामनुद्वेगदायिनः ॥८६॥
येषां कृपीटपरिपूरणमेव मुख्यं गौणं च कायपरिकर्षणदं तपो वै ।
अत्रैव सन्तु नगरीमनुरुद्ध्यमानाः कर्मण्यथो तपसि ये च सदालसाङ्गाः॥८७॥
इत्युक्त्वा राजशार्दूलो राममामन्त्र्य मन्त्रवित् ।
लक्ष्मणं भरतं चैव शत्रुघ्नं च कृतादरः ॥८८॥
राज्यभारं प्रविन्यस्य रामे भ्रातृभिरादृते ।
वशिष्ठं च पुरस्कृत्य तीर्थान्यटितुमुद्यतः ॥८९॥
पत्नीं च कैकयीं नाम सार्थं जग्राह भूपतिः ।
कौशल्यां च सुमित्रां च रामप्रेम्णा गृहे न्यधात् ॥८९॥
प्रातरुत्थाय विधिवत्कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः ।
कृताशीर्विधिवद्विप्रैः प्रतस्थौ तीर्थनिष्ठया ॥९०॥
सोऽनुवीक्ष्य शुभान् देशान् पुण्याश्रमविभूषितान् ।
पुण्यतीर्थगुणोपेतान् तृप्तिमाप नृपोत्तमः ॥९१॥
अयोध्यां परितो गत्वा तीर्थानि सुमहान्ति सः ।
ददौ सुवर्णं विप्रेभ्यो गाश्च रत्नौघमालिनीः ॥९२॥
वासांसि रत्नभूषाश्च भूरिरत्नानि चादृतः ।
तेषु तेषु सुतीर्थेषु सत्रमाज्ञापयन्नृपः ॥९३॥

चकार विपुलं कर्म परमेश्वरतुष्टिदम् ।
वेदोक्तं वैष्णवानां च यत्कार्यं रामतुष्टये ॥९४॥
गोप्रतारे नृपः स्नात्वा सहस्राणि चतुर्दश ।
ददौ गाश्च सुवर्णानि रत्नानि विविधानि च ॥९५॥
तमसामवगाह्यासौ पुण्यकर्म नृपोत्तमः ।
आज्ञापयामास महत्सत्रं ब्राह्मणतुष्टिदम्* ॥९६॥
स्वर्गद्वारे समाप्लुत्य भोजयामास च द्विजान् ।
अनर्घ्यरत्नसहिता दक्षिणाश्च ददौ नृपः ॥९७॥
स्नात्वा नेत्रजलं पुण्यां वाशिष्ठीं सरयूं नृपः ।
पूतमात्मानमाज्ञाय दध्यौ श्रीराममादरात् ॥९८॥
श्रीरामः पुत्ररूपेण वात्सल्यरसवारिधिः ।
[1]वर्द्धयानः सदा तस्य व्यराजत हृदन्तरे ॥९९॥
रामाविर्भावमुदितः पुण्यतीर्थपरिप्लुतः ।
व्यरोचत नृपश्रेष्ठः शरच्चन्द्र इवोज्वलः[1] ॥१००॥
वशिष्ठकुण्डे नृपतिः समाप्लुत्य तपोरतः ।
प्राणायामसहस्रेण शोधयामास विग्रहम् ॥१०१॥
हरिसप्तकतीर्थेषु समाप्लुत्य नृपोत्तमः ।
कृतार्थं मन्यमानः स्वं विप्रेभ्यो बह्वदाद्धनम् ॥१०२॥
हत्यामोचनतीर्थे च तथा पैशाचमोचने ।
ब्रह्मकुण्डे च सरयूर्यत्र चोत्तरवाहिनी ॥१०३॥
सूर्यकुण्डे च गोमत्याः संगमे तीर्थराजके[2] ।
परिक्रम्य समाप्लुत्य चकार सुकृतं बहु ॥१०४॥
यत्र यत्राकरोत् स्नानं राजा रघुपतिः स्वयम् ।
तत्र तत्र द्विजश्रेष्ठा रत्नवर्षैः कृतार्थिताः ॥१०५॥
केकयी च महोदारा भरतप्रेषितं धनम् ।
वर्षन्ती विप्रवर्येभ्यो व्यचरत् स्वामिना सह ॥१०६॥

---

* १०४ अध्यायस्थ ७९ श्लोकस्योत्तरार्द्धमारभ्य इतो यावत् खण्डितः पाठः—अयो० । १—१. नास्ति—अयो० । २. °राजिते—अयो०, रीवाँ ।

एवं क्रमेण नृपतिः कुर्वंस्तीर्थावलिं जवात् ।
अभ्युपेयाय सुखितव्रजं सर्वसुखैर्युतम् ॥१०७॥
स आगतमभिप्रेत्य मित्रं दशरथं नृपम् ।
अभीयाय वृतो गोपैः सुखिताख्यो महामनाः ॥१०८॥
स तस्य घोषः सकलैः सुखैर्युतः सर्वर्तुसंवासमनोहरो महान् ।
माङ्गल्यकोदारगुणो[1]पबृंहितः श्रीरामसांनिध्यगुणेन भूषितः ॥१०९॥
प्रपश्यतो राजवरस्य मानसं चक्षुस्तथैवामृतपूरपूरितम् ।
प्रमोदयामास विशेषतः श्रिया यथा न पूर्वं सुतदर्शनेऽपि वै ॥११०॥
तामेष आनन्दकलां वितर्कयन्नभूतपूर्वां नृपतिर्मनीषया ।
जजान सद्यः सुखितव्रजागमं तद्धेतुभूतं भुवि राजसत्तमः ॥१११॥
अपूर्वानन्दसंपत्तिभावितात्मा नृपोत्तमः ।
उवाच सुखितं गोपं रामवात्सल्यभूषितम् ॥११२॥

राजोवाच

धन्यो भासि धरातलेऽत्र सुखित त्वं गोपराजः सखे
यस्यानन्दनिधिर्व्रजोऽयमसकृन्नेत्रप्रमोदाय नः ॥
वैकुण्ठेऽपि न वा भविष्यति लतासंतानगुल्मद्रुम-
श्रीमत्यत्रफलप्रसूननिवहेष्वालिङ्गिता श्रीरियम् ॥११३॥
जानाम्यत्र सदा[2] स्वयं स भगवान्तास्ते रमाकामुकः
पूर्णानन्दघनः प्रधानपुरुषौ साक्षाद्यदाज्ञावशौ ।
प्रेम्णा ते परमेण गोपनृपते बिभ्रत् सदा वश्यताम्
योऽसौ ध्यानपथेऽपि दुर्लभतरस्तेषां मुनीनामपि ॥११४॥
ब्रह्मानन्दकलामतीत्य परमप्रेमप्रमोदार्णवे
त्वं तावत् सततं सखे विहरसे श्रीराजहंसोपमः ॥
त्वत्सार्थे निवसन्ति ये प्रतिपदं ते गोदुहोप्युन्नता-
स्तेषां जन्मफलाञ्चितं न तु भवायासस्पृशां मादृशाम् ॥११५॥
किंराज्यं धरणीतलस्य किमसावानन्दलेशः सखे,
स्वर्गोवाप्यपवर्ग एति न किमप्यद्यास्मदीयं मनः ।

---

१. °मनो°—रीवाँ । २. रामः—मथु०, बड़ो० ।

संत्यज्यैकपदे समस्तमधुना सेव्यस्त्वदीयो व्रजो
यत्रत्याः पशुपक्षिणोऽपि परमं प्रेमान्तरे बिभ्रति ॥११६॥
न ज्ञानं न तपो न वा खलु मखा नो वा समाधिः सखे
नो धर्मो जपदानपूजनमुखः प्राप्तुं पदं त्वीदृशम् ।
किन्त्वेका भवतां कृपाव्रजभुवि प्राप्तास्पदानामहो
प्रेमानन्दमहार्णवोर्मिपटले नित्यं निमग्नात्मनाम् ॥११७॥
तन्मह्यं कृपयाशु गोपनृपते हस्तावलम्बेन भोः
येन स्यां सुखित त्वदीयसदनद्वार्यङ्कुरो[1]ऽपि ध्रुवम् ।
यत्रार्हनिशमाभिगच्छदनुगच्छद्भिर्व्रजावासिभिः
पादाम्भोजरजःप्रसादकमलापात्रं क्रियेऽहं क्वचित् ॥११८॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य राज्ञो दशरथस्य सः ।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा सुखितो व्रजभूपतिः ॥११९॥

सुखित उवाच

सत्यं वदसि राजेन्द्र स्वात्मौपम्याद्भवादृशाः ।
भावयन्ति परं प्रेम सर्वत्र समदर्शिनः ॥१२०॥
अद्य धन्यो व्रजोऽस्माकं धन्यं नो गोदुहांकुलम् ।
धन्ये दृशौ च संवृत्ते यदभूत्तव दर्शनम् ॥१२१॥
कच्चिद्रामः सुखी राजन्नास्ते भ्रातृभिरन्वितः ।
आनन्दयन्नयोध्यास्थान् जनान् भाग्यवतो भृशम् ॥१२२॥
कच्चित् स देशो भविकैः सूयतेऽनुदिनं नृप ।
यत्र श्रीरामचन्द्रस्य दर्शनात् सुखिता जनाः ॥१२३॥
कच्चित् प्रतिदिनं राजन्नयोध्या तस्य रोचते ।
बाल्यं नीतवतोऽस्माभिः सर्वस्वात्मनिदेशकैः ॥१२४॥
कच्चिद्रामस्य सुखदा मयूराः सुखमासते ।
येषां पिच्छावली नित्यमवतंसायते प्रभोः ॥१२५॥
कच्चिन्नः स्मरति क्वापि भोजनादौ रघूद्वहः ।
यस्य प्रियं तत्र नित्यं नवनीतं व्रजस्य मे ॥१२६॥

---

१. धार्यंकरो—अयो० ।

कच्चित् व्रजजुषो लोकान् कृपापात्रीकरोति सः ।
येषां तद्ध्यानमात्रेण गच्छत्यनुदिनं वयः ॥१२७॥
कच्चिन्मां स्मरति स्वामी राजेन्द्रकुलभूषणः ।
यस्याङ्कं मण्डयामास नीलरत्नाभवर्ष्मणा ॥१२८॥
कच्चित् कुटुम्बमध्यस्थः स्मरत्यस्मत्कुटुम्बिनीम् ।
इह संतृप्तिमानेष प्राशयन् मथितं दधि ॥१२९॥
कच्चित्तन्मनसस्तुष्ट्यै राजं स्ता राज्यसंपदः ।
अकिञ्चनेष्वेवास्मासु यस्यान्तःकरणं सितम् ॥१३०॥
कच्चिद्राजन्निमा धेनूः स्मरति प्रियकाननः[1] ।
नित्यं यासां परं प्रेम तद्धस्तस्पर्शलालनैः ॥१३१॥
लक्ष्मणस्य पुरः कच्चिद्रामो वार्तयति क्वचित् ।
प्रमोदवनलीलास्ता गोपालतनयैः सह ॥१३२॥
सत्यं यद्यपि राजेन्द्रतनयो बहुसेवकः ।
तथापि स्मरते कच्चित् सेवां नो व्रजवासिनाम् ॥१३३॥
येषामस्माकमसकौ प्रियः स्वामी सुहृत्सखा ।
अनन्यवृत्या राजेन्द्र तमेव ध्यायतां भृशम् ॥१३४॥
मग्ने दृशौ च हृदयं च महावियोगदावाग्निशीलपरितापकदम्बकेषु ।
रात्रिन्दिवं प्रमुदकाननवासिनां नो रामे प्रयातवति तत्र पुरीमयोध्याम्॥१३५॥
यद्यप्यनल्पधनसंपदुपेतमेतत् सद्मास्मदीयममुना रहितं तथापि ।
नो भाति शारदनिशाकरचन्द्रिकापि ध्वान्तायते तदनुवीक्षणकाङ्क्षिणां नः१३६
[2]धन्याःस्थ यूयमधुनास्मदुपेतभाग्याः[2] श्रीरामचन्द्रमुखचन्द्रनिरीक्षणेन ।
येषां दृशौ च हृदयानि च नित्यदृप्तान्येतावदेव जनुषः फलमर्जयन्ति॥१३७॥
किं तेन राज्यविभवेन किमाप्तवर्गैः किं भोगभोजनसुखैः सुवरैरलभ्यैः[3] ।
श्रीरामचन्द्रमधुराननचन्द्रकान्तिसंदोहपानविधुरा यदि दृक्चकोराः॥१३८॥
व्यर्थं जनुः किमपि यत्र न रामनामसंकीर्तनाश्रवणमार्गमनुप्रयाति ।
प्राप्यापि भोगमुदयाञ्चितसार्वभौमस्वाराज्यपूर्णपदवीगमनैकलभ्यम्॥१३९॥

---

१. °काननाः—अयो° । २—२. धन्या इमेऽत्र मनुजा वत भूरिभागाः—पाठां० टि०—अयो० । ३. °रपलभ्यैः—अयो० ।

भागोऽस्मदीय इतरासुलभः सखेऽसौ यद्राघवेन्द्रमुखचन्द्रसुधासमूहः ।
यं प्राप्य यूयमपि भूमिभुजः कृतार्था नो चेदकिञ्चनहितैकरसः क्व लभ्यः१४०
किंस्वित् सखे[1] विहितमस्ति परं भवद्भिर्दानं तपो मखमुखा अथवा क्रियास्ताः ।
यन्नित्यमेव पिबथ त्रिदशैरलभ्यं श्रीरामचन्द्रमुखकान्त्यमृतासवौघम्॥१४१॥
किंवा भवद्भिरखिलात्मनि सर्वभावादात्मानमप्यनिशमर्पितवद्भिरद्धा ।
प्राप्तं स्वभावगुणसिद्धममन्दभाग्यं येनेदृशः समुदयोऽजनि वस्त्रिलोक्याम्१४२
राजा स्वबाहुकरदीकृतसर्वभूपः संप्राप्तशेवधिचयो[2] धनदादपीशः ।
नित्यातिथिप्रियधनागमधन्यभाग्यः पुत्रप्रपौत्रपरिशीलितयामदक्षः[3]॥१४३॥
व्यर्थं समस्तमपि तस्य रघूद्वहस्य रामस्य नो यदि कृपातिशयोऽल्पलभ्यः[4] ।
किं तस्य देवमुनिमर्त्यगणा यशांसि संकीर्तयन्ति तव भाग्यमृतेऽस्य[5] यद्वत्१४४
देवाः सुमेरुशिखरेषु सुधारसानां भोगोद्भवं सुखमनादृतवन्त एव ।
तत्कारणं यदवधि व्रजनाथलीलासंगीतकं श्रवणमार्गमनुप्रयातम् ॥१४५॥
चेतोनिरोधसमवाप्तमुदग्रमन्तः स्वात्मप्रमोदपटलं मुनयोऽपि राजन् ।
श्रीरामचन्द्रगुणकीर्तनभव्यवश्यकर्णास्तृणीकृतमिवेह न चाद्रियन्ते ॥१४६॥
यैरेष भाग्यभवसंभृतभालपट्टैर्दृष्टः श्रुतस्त्रिभुवने मनुजैः सुधन्यैः ।
ते भोगभाजनमपास्य निकेतमन्तरस्यैव लीलितसुखेषु लयं[6] भजन्ते॥१४७॥
स्वर्गाङ्गनाधरसुधारसभोगहेतुमैन्द्रं पदं मखशतेन न कामयन्ते ।
यैरस्य पादकमलाश्रयिणी सुधातः स्वादीयसी मधुसरित् करणैर्निपीता१४८
यस्यानुभूतिगुणकीर्तनवैभवोत्थं किं वर्णयन्तु सुधियोऽपि गिरामधीशाः ।
यस्यानुभूतिमुपलभ्य महामुनीन्द्रा ब्रह्मानुभूतिसुखमप्युरु भर्त्सयन्ति ॥१४९
मन्यामहे नृपतिवृन्दशिरोमणित्वं सत्यं तव त्रिदशवर्म[7]सुखाशिषौघैः ।
शय्यासनाशनविहारविचेष्टनादौ यद्रामचन्द्रतनुसंनिधिमभ्युपेताः ॥१५०॥
एतद्वियोगरजनीषु वयं त्विदानीं ध्वान्तावृता दशदिशो न विलोकयामः ।
अत्यर्थमश्रुसरिदुद्भवमूलभूतान्यक्षीणि निष्फलजनूंषि धिगेव कुर्मः॥१५१॥
धिग्जीवनं च खलु नः फलवर्जनीयं धिक् प्राणवर्गमुरुदुःखभरं पुषाणम्[8] ।
यत्तादृशं सुखसमूहमुपेत्य दैवादेतादृशीं विधुरतां दधते दुरन्ताम् ॥१५२॥

---

१. पुरा—रीवाँ । २. ऋद्धिनिवहो—मथु०, बड़ो० । ३. वामदेशः—अयो० । ४. ह्यलभ्यः—मथु० बड़ो० । ५. °मृतस्य—मथु०, बड़ो० । ६. सुखं सुलभं—रीवाँ । ७. 'वर्य°—रीवाँ । ८. जुषाणं—रीवाँ । पुराणं—अयो० ।

जीवामहे च जगदन्तकृता यमेन स्पृश्यामहे न सकलैरपि वर्जनीयाः ।
जाताः स्म ईदृशदशाजुष एतदीयवक्रेन्दुवीक्षणकलारहिता अहो हाः॥१५३॥
किं कुर्महे खलु सखे यदसूंस्त्यजामस्तद्ग्राशिया प्रतिपदं क्रियतेऽन्तरायाः ।
नो वा त्यजाम यदि सोढुमशक्य एष वज्रोपमेन च हृदा सुहृदो वियोगः ॥
विश्लेषदुःखनिवहाशनिपातपात्रं[1] प्राणं विमोक्तुमुदिताश्च भवाम यावत् ।
तावत् प्रियस्य मुखचन्द्रमनोज्ञहासाः ध्यानाध्वना हृदिगताः प्रतिविघ्नयन्ति ॥
इत्थं निपत्य सुहृदोऽस्य वियोगतप्तसंदंशमध्यमधुनाङ्ग कदर्थयामः ।
देहेन्द्रियासुसमुदायमपारदुःखं दैवे विधौ प्रतिविधातुमपारयाणाः ॥१५६॥
राजीवलोचनविलोचनपातभाग्य[2]हीनाः प्रमोदवनवृक्षलताप्रतानाः ।
कालावसानविषमज्वलितानलेन स्पृष्ट्वा इवाद्य बहुदुर्भगतां भजन्ते॥१५७॥
श्रीरामचन्द्रमधुराधरलग्नवंशीनिर्ह्लादसंततसुधारससिक्तसिक्ताः ।
ये भूरुहा उदवहन् प्रसवानुवृद्धिमाकालिकीं त इह मम्लुरकाण्डमेव॥१५८॥
श्रीराममञ्जुलमुखेन्दुमुदीक्ष्य कान्तिपीयूषपारणजुषः सहिता बभूवुः ।
ते संप्रति प्रतिपदं प्रतिवर्द्धमानसंतापसंततिविलीनदशाश्चकोराः ॥१५९॥
ये राघवेन्द्रशुभवर्ष्मसुरद्रुमोत्थसौरभ्यसारमुपलभ्य सुखं निषण्णाः ।
यत्र क्वचिन्मधुकराः सुहिता स्त एते शश्वद्गवेषणपराः परितो भ्रमन्ति ॥
लीलावशेन विलसन्तमुपत्यकायां रत्नाचलस्य चपलैः सखिभिः समेत्य ।
या वीक्ष्य राघवमुदारगुणं कृतार्था गावोद्यता दृशिभिरश्रुनदान् सृजन्ति ॥
पीताम्बरद्युतितडिद्वति दीर्घवंशीनिर्घोषशालि निवहाङ्कित[3]मौक्तिकाल्यः ।
आनन्दसारसमुदायसुधासमूहैर्वर्षत्यजस्रमभिता व्रजकाननेषु ॥१६२॥
उन्नम्रतामुपगते नवनीलमेघे श्रीराम एव भुवि जीवनमस्ति येषाम् ।
ते चातका व्रजनिवासिजनाः सखेति किंनाम कुर्युरधुना परमार्तिभाजः ॥
किंब्रूमहे बहुतरैर्वचसां प्रसारैरेतावतैव भवता प्रमतिर्विधेया ।
अद्धा दृशोत्सव किमप्यनुभूतिरासीदेतावतैव विरहेण रघूद्वहस्य ॥१६४॥

राजोवाच

जानामि तस्य विरहान्मम तीर्थयात्रा किंरोचते मनसि तत्सविधैकतृप्ते ।
वेदोदितो विधिरपि प्रणयप्रकर्षाच्छैथिल्यमेव भजते यदि किंनु कुर्मः॥१६५॥

---

१. °निवहात्सुनिपातपत्त्रं—रीवाँ । २. °विलोचनभाग्य°—अयो० ।
३. शालिनि बलाकिनि°—मथु०, बड़ो० ।

तस्यैव तु त्रिदिववासिसुदुर्लभस्य प्रेम्णः कृते जगति तस्य चिरायुषे च ।
कर्तुं महान्ति सुकृतानि महीं भ्रमामि सोढ्वापि दुर्विषहतद्विरहार्तिभारम् ॥
युष्मादृशां च रघुवर्यवशित्वहेतुप्रेमप्रकर्षमवलोकयितुं नितान्तम् ।
जानीहि मामतुलभाग्यनिधेर्निकेतान्निष्क्रान्तमङ्ग[1] भुवि भाविततीर्थवर्यम् ॥
स्थानानि तानि मम दर्शय गोपराज श्रीरामचन्द्रचरणाम्बुजचिह्नभाञ्जि ।
संप्राप्य यैः परिचयं रचयन्ति नित्यं प्रायः सुरा अपि तनौ पुलकप्रसारम् ॥
लङ्केशसंततनिदेशकरान् बलाढ्यान् रात्रिञ्चरीप्रमुखराक्षसवृन्दवर्यान् ।
येषु स्थलेषु स ममर्द गुणाढ्यलीलास्तानि स्थलानि मम दर्शय तीर्थभक्तेः ॥
प्रायः प्रमोदवनमेतदशेषमेव श्रीरामचन्द्रचरितामृतपूरपात्रम् ।
यत्कुञ्जभूमिरजसः कणिकापि गात्रे लग्ना सुरैरसुलभां मुदमातनोति १७०
तीर्थाटनं मम फलाढ्यमभूदिदानीं त्वत्सङ्गसंजनितसंततमङ्गलस्य ।
द्रक्ष्ये प्रमोदवनमद्य भवद्भिरद्धा निर्दिष्टमिष्टरघुनन्दनसच्चरित्रैः ॥१७१॥
अद्य प्रमोदवनमञ्जुलमाधुरीणां सौरभ्यमैन्द्रवनगैर्भ्रमरैरलभ्यम् ।
घ्राणाध्वना मम मनः प्रतिविश्य कांचित् प्रेम्णो दशां किमु जनिष्यति वै यथा वः।

इत्युत्कण्ठितमानसस्य नृपतेर्वाक्यं समाकर्ण्य स
प्रीतः श्रीसुखिताभिधो व्रजपतिः पूर्वं निनाय व्रजम् ।
राजानं खलु केकयाधिपसुतासंशोभिवामं पुन—
स्तत्रातिथ्यमचीकरत्तदमुयोः साकं परीवारकैः ॥१७३॥

रघुराजो व्रजं दृष्ट्वा सर्वसंपद्भिरार्चितम् ।
गवां हंभारवैर्युक्तं पूर्यमाणमितस्ततः ॥१७४॥
कूर्दमानसुखोपेतनैचिकीचक्रवालकम्[2] ।
तर्णकैर्निष्कभरणैरलङ्कृतमितस्ततः ॥१७५॥

कुर्वद्भिर्वप्रप्रान्तेषु महाबलपराक्रमैः ।
श्वेतचन्द्रनिभैः स्थूलैर्गोबलीवर्दकैर्युतम् ॥१७६॥
प्रातर्गोदोहनोद्घोषनिनादितदिगन्तरम् ।
दधिमन्थनघोषैश्च सर्वतो मुखरीकृतम् ॥१७७॥

---

१. °मङ्गभवि°—अयो० । २. "उत्तमगोसमुदायम्" टि०-मथु०, बड़ो० ।

संफुल्लानेकलतिकालिङ्गितानेकभूरुहम् ।
अपूर्वसौरभोद्गारैः सर्वतः परिपूरितम् ॥१७८॥
गात्रगौरवसंपन्नैरापीनभरभूषितैः ।
वत्सालेहमुहुःस्निग्धैर्गृष्टिवृन्दैरलङ्कृतम् ॥१७९॥
ग्राम्यगानस्वरोल्लापमधुराननपङ्कजैः ।
स्थले स्थले गोपवृन्दैरलङ्कृतगृहाङ्गणैः ॥१८०॥
बर्हिबर्हकृतोत्तंसैर्गुञ्जामणिविभूषणैः ।
मुख्यगोपतिभिर्नित्यं गृहोत्साहेषु भूषितम् ॥१८१॥
रामप्रेमरसोन्मत्तैराभीराणां कदम्बकैः ।
लतावितानच्छायासु समारब्धकलस्वरम् ॥१८२॥
वायूपनीतमधुरतुलसीवनसौरभम् ।
कामक्रोधलोभमदमात्सर्यादिविवर्जितम् ॥१८३॥
सर्वतः कलिदोषाणामजातप्रतिवेशनम् ।
श्रीरामचरितोद्गानसुखिताभीरदारकम् ॥१८४॥
प्रतिवीथि[1]परिभ्रान्तखिन्नमुक्तिचतुष्टयम् ।
द्रुमगुल्मलतापुष्पगुच्छविश्रान्तषट्पदैः ॥१८५॥
सर्वतः कृतझाङ्कारमधुरस्वरपूरितम् ।
प्रतिसन्तानकतरुविटपस्थैर्विहङ्गमैः ॥१८६॥
सर्वतः कूजितं सर्वमुनीन्द्रगणपूजितम् ।
सर्वदेवदृगानन्दसाक्षाद्वैकुण्ठमद्भुतम् ॥१८७॥
अतिरम्यकृतानेकपुण्यसंतानशालिभिः ।
ब्रह्मादीनां दिविषदामवाङ्मनसगोचरम् ॥१८८॥
वृन्दावनाद्यष्टकेन[2]मध्याङ्गणविराजितम् ।
श्रीरामविषयानन्तप्रेमपीयूषपूरितम् ॥१८९॥
सर्वविद्वद्गुरुवरव्रजस्त्रीप्रेमचर्यया ।
सर्वतो भूषितं दिव्यरसभावविशारदम् ॥१९०॥

---

१. परिवीथी—अयो० । २. °द्यष्टकोण—मथु०, बडो० ।

क्वचिद्रामप्रियतममभिसारक्रियाकुलैः ।
प्रौढगोपालनारीभिरामन्त्रितसखीजनम् ॥१९१॥

क्वचिदन्याङ्गनासक्तिदूषितं रामकामुकम् ।
अनादृत्याकुलैर्गोपदारैरादृतदूतिकम् ॥१९२॥

[1]क्वचिद् गोचारणोद्यातरामविश्लेषमन्थरैः ।
[2]गोपालदारकैर्ध्यातप्रदोषागमसंभवम् ॥१९३॥

क्वचिदामन्त्रयद्भिः स्वान् प्रियनर्मसखीजनान् ।[1]
गोपालदारैः पूर्यमाणपुलकोद्भेदविग्रहम्[2] ॥१९४॥

क्वचित् संकेतभवने वासकं सज्जमानकैः ।
उत्कैर्गोपीजनैर्दृष्टभवनद्वारतोरणम् ॥१९५॥

क्वचित्संगम्य संकेतमनुद्वीक्ष्य रमापतिम् ।
गोपीजनैः शप्यमानसखीदूतीजनाकुलम् ॥१९६॥

अतिप्रेमगुणोत्कर्षरूपसारविभूषितैः ।
दिव्यगोपीजनैः सद्यो वशीकृतरघूद्वहम् ॥१९७॥

अनेकभावभवनमनेकाद्भुतभावनम् ।
अनेकसुखसंदोहमनेकप्रेमचर्यकम् ॥१९८॥

मुमोद नृपशार्दूलः प्रसन्नमधुराशयः ।
प्रविष्टं लौकिकातीते धाम्न्यात्मानमनन्यता ॥१९९॥

प्रविवेश ततस्तस्य सुखितस्यैव गोदुहः ।
निकेतनं नवनिधिसेवितद्वारदेशकम् ॥२००॥

प्रविष्टमानो नृपतिः सुखितालयमद्भुतम् ।
अभूत् सुखित एवासौ परमानन्दपूरितः ॥२०१॥

परोक्षमपि तत्रासौ परोक्षमपि तत्क्षणे ।
राजीवलोचनं रामं जज्ञौ नृपतिपुङ्गवः ॥२०२॥

केनाप्यद्भुतरूपेण महसा तद्गृहस्य सः ।
तृणीचक्रे निजं वेश्म राज्यसंपद्भरान्वितम् ॥२०३॥

१—१. नास्ति—अयो० । २—२. नास्ति—रीवाँ ।

तत्र माङ्गल्यका देवी महोदाराशया स्वयम् ।
अभ्यागतां केकयेन्द्रसुतामभ्युद्ययौ जवात् ॥२०४॥

श्रीरामजननीभावप्रेमभूषितया तया ।
भाषिता स्वागतं पृष्टा केकयी के न्यमज्जत ॥२९५॥

सा तया कुशलप्रश्नस्वागतादिप्रसादिता ।
अगाहततरां चित्रे परमानन्दवारिधिम् ॥२०६॥

सुखितः सुप्रसन्नास्यः पाद्यार्घादिसपर्यया ।
पूजयामास नृपतिं कोशलेन्द्रं समाहितः ॥२०७॥

दिव्याङ्गरागलेपेन रञ्जयामास तद्वपुः ।
दिव्यपुष्पमयीं मालां तुष्टस्तद्वक्षसि न्यधात् ॥२०८॥

दिव्यागुरुमयैर्धूपैर्धूपयामास तं नृपम् ।
प्रदीपराजिकां न्यस्य प्रकाशं प्रचकार सः ॥२०९॥

माङ्गल्यका करानीतैर्नवेद्यैः स्वादुभो रसैः ।
चतुर्विधैस्तमतुलैरानन्दयदुदारधीः ॥२१०॥

तथैव माङ्गल्यकयापि केकयी संतोषिता शन्तमया सपर्यया ।
तौ स्वादुना रामगवीमहौघसामपूर्वतृप्तिं पयसाभिजग्मतुः ॥२११॥

रामहस्तकमलानुलालितश्रेष्ठधेनुपयसां विकारकैः ।
भुक्ततृप्तपरिहर्षितान्तरौ भूपतिश्च महिषी च तस्य सा ॥२१२॥

प्राप्य वाङ्मनसगोचरातिगां ब्रह्मदर्शनशतांशिकां मुदम् ।
सद्य एव जनितां जगाहतुः प्रेमपूर्णहृदयौ च रेजतुः ॥२१३॥

परिवारोऽपि सकलः सान्तःपुरजनस्तयोः ।
प्राप्यातिथ्यं गोपगृहे मुमुदे परया मुदा ॥२१४॥

समाधिरुद्धचित्तानां योगिनां यः सदुर्लभः ।
सकलोपि जनस्तत्र तमानन्दमगाहत ॥२१५॥

प्राप्यानन्दसमुद्रान्तर्मज्जनं सकलो जनः ।
दधौ चमत्कृतमिव चित्तमाश्चर्यपूरितः ॥२१६॥

अनन्यहेतुकं मोदं मन्वानश्चतुरो जनः ।
असाधारणमाहात्म्यादस्तौषीद् व्रजभूपतिम् ॥२१७॥

अहो सुखित गोपेन्द्र वैकुण्ठमिव ते गृहम् ।
यत्र श्रीरामचन्द्रस्य मनः प्रापानुरागिताम् ॥२१८॥
अस्माकमार्यपुत्रस्य मनः परमशक्तिमत् ।
तेनैव तर्कयामस्त्वामनन्यविषयश्रियम् ॥२१९॥

अहो भाग्यं गोकुलस्यैव नित्यमनन्यसाधारणवृत्ति मन्महे ।
यत्र प्रीतिः श्रीमतो राघवेन्द्रकुमारवर्यस्य विशेषतोऽभवत् ॥२२०॥
अहो भाग्यं सुखित प्रेयसीनां त्वदालयाश्रयिणीनां विशिष्टम् ।
वैकुण्ठलोकेऽपि भविष्यतीयं न प्रायशः प्रेमऋद्धिः श्रियोऽपि[1] ॥२२१॥
अहो भाग्यं सुखित श्रीमतस्ते यद्रामचन्द्रस्य मनः सदा त्वयि ।
अनन्यसाधारणवृत्तिवृद्धं वशंवदं भवतः प्रेम वीक्ष्य ॥२२२॥

सहजप्रमोदविजिताश्चतुर्विधाः प्रतिवीथि यत्र विलपन्ति मुक्तयः ।
अनया श्रिया व्रजपुरस्य मन्महे त्रिजगत्पतेरपि विनिर्जिताः श्रियः ॥२२३॥
विदुषामवाङ्मनसिगोचरा इमा भुवने जयन्ति तव भाग्यसंपदः ।
ननु रामचन्द्ररतितः पराङ्मुखं क्षणमप्यदृश्यत न जातु यन्मनः ॥२२४॥
किमु कामधेनुकुलदुग्धदोहनैः किमु वा सुरद्रुमफलौघसंपदा ।
किमु रत्नवर्यविषयानुनाथनैः सततं जिता व्रजपुरस्य संपदः ॥२२५॥

सर्वसंपत्समूहेन पूर्णेऽस्मिन् सुखितव्रजे ।
आश्रयन्ति सुराः सर्वे प्रायो ब्रह्मादयस्त्वयि ॥२२६॥
अनन्यगोचरामृद्धिं वीक्ष्य व्रजपुरस्य ते ।
कस्य नो सार्वभौमस्य मनो विचकितं भवेत् ॥२२७॥
अत्र ग्राम्यजनस्त्रीणां पादाम्भोरुहनूपुरैः ।
अवहेलितका जाताश्चिन्तामणिगणा अपि ॥२२८॥
कः पृच्छति व्रजपुरे कल्पद्रुमसमुद्भवान् ।
प्रसवानल्पगुल्मादिपत्रपुष्पफलश्रिया ॥२२९॥
अत्र कामगवीजातिः परस्तात् क्रियतेतराम् ।
प्रमोददृष्टैर्गृष्टीनां गणैर्वत्सविभूषितैः ॥२३०॥

---

१. अयं श्लोको नास्ति—अयो०, रीवाँ ।

राजोवाच

यन्मामूचुस्तरां लोका अतृप्ता श्रियमद्भुताम् ।
तत्सत्यमभवत् सर्वं दृष्ट्वा स्वानुभवादपि ॥२३१॥

अस्माकमाराध्यतमोऽसि नित्यं प्राप्तं परां प्रेमरमामितीदृशीम् ।
त्वदङ्घ्रिपद्मप्रतिकूलधीजुषां किमीदृशः प्रेमलवोऽपि लभ्यः ॥२३२॥

ध्रुवं ब्रह्मादयो देवा लुठन्ति व्रजधूलिषु ।
त्वज्जनाङ्घ्रिसरोजोत्थधूलीमिश्रासु गोपते ॥२३३॥

अद्य नो जन्मसाफल्यं बभूव किमपि ध्रुवम् ।
त्वत्संगसुखपीयूषधारासु हितचेतसाम् ॥२३४॥

आब्रह्मावधि विस्तरात् कविगिरो गीर्वाणकर्णातिथेः
कीर्तेः पूर्णकलेन्दुकुन्दसदृशो यास्याम्यहं पात्रताम् ।
किंचान्यज्जनितश्रमोऽप्ययमभूदाकण्ठतृप्तस्य मे
युष्मत्संगसुखामृतेन सफलः संसारचक्रभ्रमः ॥२३५॥

अहो अपूर्वा रामस्य सिद्धिर्विजयतेतराम् ।
तत्रस्थोऽपि भवत्स्नेहान्नित्यमत्रैव दृश्यते ॥२३६॥

एतत्स्तुतिपरं वाक्यं जनानां नैव दृश्यते ।
अतस्मिंस्तत्समारोपः स्तुतिमात्रमिति स्मृतिः ॥२३७॥

प्रशंसन्ति जना यत्तु सुखित त्वां ससाक्षिकम्[1] ।
ततोऽप्यधिकमाङ्गल्यगुणसन्दोहवानसि ॥२३८॥

यतो वाचो निवर्त्तेरन् अप्राप्य मनसा सह ।
तदेतत् तव माहात्म्यं वर्णयन्तु जनाः कथम् ॥
स्वानुभूत्या तु यत्किंचिद् ब्रुवन्ति हृदि तोषिताः॥२३९॥

प्राप्यापि सुखसंदोहं यो न ब्रूयाद्यशोऽप्यलम् ।
परोपकृतिचौरस्य तस्य मूर्ध्नि भवेदृणम् ॥२४०॥

संप्रत्यसौ परिकरः सकलो मदीयः संप्रापितो हृदि मुदां प्रसरं समक्षम् ।
व्रूते व्रजं सुखितगोपपते त्वदीयं वैकुण्ठतोऽप्यधिकमेव किमत्र कुर्वे ॥२४१॥

---

1. स्वसाक्षिकं—अयो० ।

अहं तु चकितोऽस्म्यद्धा वीक्ष्य ते संपदं पराम् ।
आनन्दव्याप्तचित्तत्वान्न वक्तुं पारयामि च ॥२४२॥
यथा पश्यामि मनसि पूर्णानन्दपयोनिधिम् ।
न तथा वक्तुकामोऽपि पारये वक्तुमादृतः ॥२४३॥

अथावदत् केकयराजपुत्री माङ्गल्यकां मातरमच्छभाग्याम् ।
श्रीरामचन्द्रस्य विभोरुदग्रवात्सल्यभावाञ्चितचित्तधन्याम् ॥२४४॥

कैकय्युवाच

किं ब्रवीमि वचनेन भवत्याः कीर्तिमद्भुतकलापरिपूर्णाम् ।
तत्किमद्भुतमिह स्फुटमेवं रामचन्द्रजननीप्रवरासि ॥२४५॥
शूरो वीरः सत्यवादी मनस्वी सौन्दर्याढ्यो भास्वतोवंशभाग्यः
सर्वैराढ्यो रामचन्द्रोगुणौघैस्तद्धेतुस्ते स्तन्यपानं प्रतीतम् ॥२४६॥
कौशल्याया भाग्यराशिः प्रवृद्धस्त्वत्स्तन्योत्थः प्रादुरासीद् गुणश्च
यस्यास्वादाद्रामचन्द्रो गुणानां सर्वेषां वै पात्रतामाजगाम ॥२४७॥
अस्त्वेतावद् गौरवं तवकीनं किं वक्तव्यं सर्वमेव मया तत् ।
घोषस्यापि श्रीरियं विष्वगेव प्रयाति नो वाङ्मनोगोचरत्वम् ॥२४८॥
अपूर्वमानन्दमवापितास्मि माङ्गल्यके त्वत्पददर्शनेन ।
वैकुण्ठलोकाधिकमेतदेव स्थानं प्रपद्यास्मि विमुक्तकल्पा ॥२४९॥
भुक्तिमुक्तिकरिणीं ननु दिव्यां देविकामपि दशां जनयामः ।
चित्तमप्रमितसत्सुखवश्यं त्वत्समागम इतोऽत्र विधत्ते ॥२५०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं तत्र कुर्वाणैः कौतुकेन शुभाः कथाः ।
कैकेयीरघुशार्दूलौ माङ्गल्यासुखितौ प्रति ॥२५१॥
सुखं सुषुपतुर्घोषे समस्तस्वजनान्वितौ ।
वशिष्ठश्च महाभागः प्रणिधाय मनः स्थितः ॥२५२॥
ते तत्र सकलास्तत्त्वमद्राक्षुर्निशि निद्रिताः ।
नित्यलीलारसोपेतं रामनाम सनातनम् ॥२५३॥
अपश्यन्नद्भुतं घोषमादिव्रजसमाह्वयम् ।
कोटिसूर्येन्दुसदृशदिव्यानेकगृहान्वितम्[1] ॥२५४॥

---

१. अयं श्लोको नास्ति—अयो० ।

चिदानन्दमयाकारं प्रकाशमयमद्भुतम् ।
नित्यमेकरसं भान्तं स्वप्रकाशैकगोचरम् ॥२५५॥
सर्वतो निस्तमिस्रं च दिव्यसंस्थानभासुरम् ।
यद्वच्च सैन्धवघनं स्वरूपावयवान्वितम् ॥२५६॥
एकमेव द्विधा त्रेधा चतुर्धा भानगोचरम् ।
सर्वाश्चर्यैकसंपन्नं सर्वानन्दकलाकुलम् ॥२५७॥
कल्पवृक्षाधिकगुणैस्तरुभिः परिवेष्टितम् ।
सुवर्णवर्णस्तम्भैश्च महामरकतच्छदैः ॥२५८॥
महारत्नैकविटपैश्चिन्तारत्नप्रसूनकैः ।
सुधारत्नफलोपेतैः कोटिसूर्येन्दुभासुरैः ॥२५९॥
तन्मध्ये सुखितागारं प्रमोदवनमद्भुतम् ।
वृन्दावनाद्यष्टकोणमहागणसमुज्ज्वलम् ॥२६०॥
वल्लवीयूथसंगीतजितकोकिलनिःस्वनम् ।
सहजानन्दिनीकीर्तिचन्द्रिकौघविभासितम् ॥२६१॥
कृष्णासखीमहायूथकेलिकौतूहलान्वितम् ।
वल्लभेन्द्रयशश्चन्द्रासक्तचित्तचकोरकम् ॥२६२॥
नित्यकौतुककेलीनामालयं प्रेममन्दिरम् ।
माङ्गल्यकामहोदारवात्सल्यरसवारिधिम् ॥२६३॥
गोपीजनमनःक्षेमप्रेमदं रसवर्द्धनम् ।
दिव्यभावतरङ्गाब्धिमशोकपदमुत्तमम् ॥२६४॥
तत्र रासविलासाद्यैः क्रीडन्तं भावकोविदम् ।
कोटिलक्ष्मीसमुद्रिक्तकटाक्षशतसेवितम् ॥२६५॥
चिन्नभः[1] श्यामलतनुमतनु[2] व्यूहसुन्दरम् ।
ईषच्छैशवमत्येत्य कैशोरवयसाञ्चितम् ॥२६६॥
सहजानन्दिनीकृष्णाप्रेमपालनदक्षिणम् ।
मन्दहाससुधास्रोतोमूलवक्रसुधाकरम् ॥२६७॥

---

१. चित्प्रभुः—अयो० । २. °मनुं—अयो० ।

पीतकौशेयवसनविद्युद्रोचितविग्रहम् ।
नीलनीरदगम्भीरमहोमहिममोहनम् ॥२६८॥
गोचारणमिषोद्भूतवनकेलिविशारदम् ।
मुरलीनादपीयूषैः सिञ्चन्तं काननद्रुमान् ॥२६९॥
त्रैलोक्यसुन्दरं रामं रमणीयूथमध्यगम् ।
गोपवेशधरैर्नित्यं त्रिभिर्भ्रातृभिरन्वितम् ॥२७०॥
माङ्गल्यागृहसर्वस्वं सहजाप्राणनायकम् ।
श्रीमत्सुखितगोपेन्द्रनित्यलीलासु[1]भाजनम् ॥२७१॥
अयोध्यां च तथाद्राक्षुर्व्रजभूमिविभूषिताम् ।
रामलीलाविशेषेण भावितां प्रतिवासरम् ॥२७२॥
तद्दृष्ट्वा तत्क्षणादेते सर्व एव समुत्थिताः ।
निद्रावेशं परित्यज्य क्षणात्संजातजागराः ॥२७३॥
अब्रुवंश्च तदन्योऽन्यं दृष्टं यन्निद्रया निशि ।
अत्यद्भुतरसोपेताश्चकिता इव सर्वतः ॥२७४॥
अहो किमद्राक्ष्म निशिप्रसुप्ता विचित्र रूपं रघुनन्दनस्य ।
विचित्ररूपांश्च जनान् व्रजस्य[2] धन्यान् सदा रामविहारदृष्टीन् ॥२७५॥
तद्विद्म एवास्य रघूद्वहस्य रामस्य सर्वाङ्गसुखाकरस्य ।
नित्यासु केलीषु किमप्यजस्रं प्राकाम्यमेतत्सहसा व्यलोकि ॥२७६॥
वन्दामहे तं पुरुषोत्तमोत्तमं व्रजेन्द्रबालं रसलीलाललामम् ।
मयूरपिच्छाञ्चितचारुशीर्षं गुञ्जास्रजाभूषितवक्षसं परम् ॥२७७॥
अनुगृहीतनिजाङ्घ्रिसरोजगत्त्रिजगदार्त्तजनावनपण्डितम् ।
सरसकेलिनिधानकलानिधिं कमलकोमलनीलघनाकृतिम् ॥२७८॥
व्रजवधूनयनाञ्चितविग्रहं मुरलिकाकलकाकलिकाकरम् ।
जय जयेत्यखिलश्रुतिकीर्तितं विमलकीर्तिसुधारसवर्षणम् ॥२७९॥
तदमुमेव शरण्यमियाम वै शरणमात्मकृतार्थतया ननु ।
तदितरं मनसापि न दध्महे परममुक्तिनिधिं प्रणयातुराः ॥२८०॥
इतिजल्पन्त एवामी प्रातःकाले समुत्थिताः ।
गोपराजं पुरस्कृत्य वनयात्रां प्रचक्रमुः ॥२८१॥

---

१. नित्यलालन°—मथु०, बड़ो० । २. व्रजस्थान्—मथु०, बड़ो० ।

उत्थाय राजा प्रवरो रघूणां नित्यक्रियान्ते कृतदानसङ्घः ।
प्रणम्य गोपेश्वरपादपद्मौ वनानि गन्तुं प्रकृतो बभूव ॥२८२॥
कैकेयी च महाभागा माङ्गल्यामात्मनः पुरः ।
विधाय वनयात्रायामुपचक्राम सादरम् ॥२८३॥
राज्ञे रघूणांपतये सुखिताह्वो व्रजेश्वरः ।
व्रजं प्रदर्शयामास वनमालाविभूषितम् ॥२८४॥
केकयीं च महोदारां रामप्रेमविघूर्णिताम् ।
माङ्गल्या दर्शयामास व्रजं वनविभूषितम् ॥२८५॥
सरय्वाः पुलिने रम्ये रम्याणि विपिनानि सः ।
रसालवनमुख्यानि प्रापश्यद्धीरमानसः ॥२८६॥
तमाह गोपशार्दूलो व्रजवीक्षणसादरम् ।
तानि तानि पदान्यत्र दर्शयन् करुणाकरः ॥२८७॥

सुखित उवाच

तदिदं राजशार्दूल स्थानानां स्थानमुत्तमम् ।
यत्राद्भुतं महदभूत् तत्क्षणात् पश्यतो मम ॥२८८॥
तन्न दृष्टं त्वया राजन् न च त्वत्पारिपार्श्वकैः ।
न चान्येन च केनापि ज्ञानयुक्ताक्षिगोचरम्[1] ॥२८९॥
यस्त्वया शिशुरानीतः परमश्यामसुन्दरः ।
त्वदङ्कभूषणकरो नीलरत्नमहोनिधिः ॥२९०॥
स मदङ्कस्थिते रामे शिशौ नीलघनाकृतौ ।
तत्कालसंभवे सद्यस्तिरोभूय समाविशत् ॥२९१॥
तद्दृष्ट्वात्यद्भुतं जातं मम विभ्रान्तचक्षुषः ।
तदद्भुतसमाविष्टं मुनिर्मां समुपाययौ ॥१९२॥
भगवानत्रितनयो दुर्वासानाम नामतः ।
अहं च पृष्टवानेतदद्भुतं चकितेक्षणः ॥२९३॥
भगवन् मुनिशार्दूल संभ्रमो मे महान् हृदि ।
तद्भवन्तं विशेषेण पृच्छामि भगवन्नहम् ॥२९४॥

---

१. °मुक्ताक्षिगोचरे—रीवाँ ।

त्रिकालज्ञं मुनिवरं वेदवेदाङ्गवित्तमम् ।
जगत्कल्याणकर्तारं पादाब्जजलपावनम् ॥२९५॥
किमेतन्मुनिशार्दूल संजाततममद्भुतम् ।
नृपेण रघुवर्येण किमानीतमिदं महत् ॥२९६॥
मत्पुत्रनिर्विशेषेण यन्मया दृष्टमद्भुतम् ।
किमर्थं च मदङ्कस्थं पुत्रमाविशदागतम् ॥२९७॥
इदानीं कश्च मे पुत्रः को वा दशरथस्य च ।
स्नेहश्च मम मत्पुत्रे वर्द्धते भुवनोत्तरः ॥२९८॥
किमहं चार्पयिष्यामि राज्ञे समय आगते ।
मत्पुत्रो मे प्रियतमो न तमर्पयितास्म्यहम् ॥२९९॥
एतन्मे संशयं छिन्धि त्रिकालज्ञ महामुने ।
भवदन्यो न संदेहं छेत्ता मे भुवनेऽपि च ॥३००॥

दुर्वासा उवाच

गोपराज महाभाग शृणु मत्तः परं वचः ।
रामस्य तत्त्वं वक्ष्यामि रहस्यं देवगोपितम् ॥३०१॥
नाख्येयं यस्य कस्यापि लोके तन्माययावृते ।
ऋतस्य मूलं संछन्नमनृतेन समन्ततः ॥३०२॥
अनृता पिहिता देवा अनृता पिहिता जनाः ।
अनृता पिहिता दैत्या यक्षरक्षोगणादयः ॥३०३॥
अनृता पिहिता धीमंस्त्रयोलोकाः सनातनाः ।
अनृता पिहिताः सर्वे मुनियोगिवरादयः ॥३०४॥
सर्वं चानृतमूलं हि यद्वस्तु व्यवहारतः ।
ऋतमेकं समस्तेषु वेदेषु परमार्थतः ॥३०५॥
ऋतस्य चानृतस्यापि अन्तरं महदन्तरम् ।
भक्त्या तत्त्वं प्रविज्ञाय मुच्यते भवबन्धनात् ॥३०६॥
आदावन्ते च मतिमन्नृतमेव प्रतिष्ठितम् ।
गन्धर्वनगराकारं मध्येऽनृतसमुद्भवम् ॥३०७॥

तदप्यन्तेन संमिश्रमृतवद्भासते नृणाम् ।
[1]न केवलं स्यादनृतमृतसंयोजनं[2] विना ॥३०८॥
ऋतानृते उभे अस्मिन्नेकीकृत्यात्मसत्तया[1] ।
निर्माणमण्डकोटीनां पुरापुंसा विनिर्ममे ॥३०९॥
तत्ते ऋतं प्रवक्ष्यामि रामतत्त्वं सनातनम् ।
अशेष वस्तु राशीनां महाकारणकारणम् ॥३१०॥
पुरेदमसदेवासीच्छून्यं तत्त्वं तमोवृतम् ।
संसुप्तवदनिर्वाच्यमनीदृशमविस्तरम् ॥३११॥
मायां समुपसंहृत्य चिन्मात्रमवशेषितम् ।
कार्यजातं प्रति तदा मिलिताक्षमिव स्थितम् ॥३१२॥
स्वसत्तामात्रसततं चिदानन्दात्मकं ध्रुवम् ।
अनाविष्कृतशक्तित्वात्तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते ॥३१३॥
साक्ष्यभावादसाक्षित्वात् साक्षिणापि विवर्जितम् ।
अहं बहुस्यां जायेय प्रवर्तेय गुणान्वितः ॥३१४॥
इत्थं खलु परस्येच्छां सतीं समनुवर्त्य तु ।
चतुर्धा समभूदेकं तस्य तन्महितं महः ॥३१५॥
अक्षरं चैव कालश्च कर्म चापि तदात्मकम् ।
स्वभावश्च गुणैराढ्यः परमस्यैव मायया ॥३१६॥
यदक्षरमभूद् ब्रह्म द्विधा तदजनि स्फुटम् ।
प्रकृतिः पुरुषश्चैव कलासमुदयाञ्चितः ॥३१७॥
सहस्रशीर्षनयनः सहस्राननबाहुकः ।
सहस्रकरपादोरुः सहस्रश्रुतिनासिकः ॥३१८॥
अहमेवं भविष्यामीत्यभिध्यासहितेच्छया ।
अन्तःसमुत्थितात् सत्त्वगुणतः सृष्टिहेतुतः ॥३१९॥
तिरोहित इवानन्दे परस्मात् तद्विशिष्यते ।
सृष्टीच्छाव्यापृतः सोऽसौ भगवानेव केवलम् ॥३२०॥

१—१. नास्ति—अयो० । २. °दनृतसंभवो°—अयो०, रीवाँ ।

मुख्यजीवतया सर्ववेदान्तेष्वभिधीयते ।
अत एव चितां तत्र स्वयोग्ये चित्स्वरूपके ॥३२१॥
प्रवेशोऽस्तीति[1] कथितमौडुलोमिमतं ध्रुवम् ।
इच्छामात्रात्तिरोभावेऽप्यानन्दमयताक्षता ॥३२२॥
पुरुषावतारो भगवानतएव प्रकीर्तितः ।
तदेव ब्रह्म कूटस्थमव्यक्तमिति चोच्यते ॥३२३॥
नैरन्तर्यं सदैवास्य परमात् पुरुषोत्तमात् ।
सप्तावरणसंयुक्तकोटचण्डनिवहात्मकम् ॥३२४॥
कार्यजातं तु तत्रैव सर्वदा प्रतितिष्ठति ।
नित्यं च तदवच्छिन्नं परस्मात् पुरुषोत्तमात् ॥३२५॥
पुरुषोत्तमरूपस्य नित्याधारतया स्थितम् ।
आविर्भूते परस्मिंस्तदाविर्भूतमनेकधा ॥३२६॥
तस्यलोकस्तस्य पीठं तच्छय्या तस्य चासनम्[2] ।
नानाजीवजडाकारैराविर्भवति तद्युतम् ॥३२७॥
अत एव च ते जीवा नित्यमुक्ता उदीरिताः ।
जडा अपि च तत्रत्याश्चिन्मया एव कीर्तिताः ॥३२८॥
अन्तर्यामिस्वरूपेण हरेरन्तरुपासने ।
सद्यो[3] मुक्तौ ज्ञानिनां तच्चरणाब्जे प्रवेशनम् ॥३२९॥
पुरुषोत्तमसंज्ञस्य चरणं तत्प्रकीर्तितम् ।
अवतारस्वरूपेऽपि तथैव तद्व्यवस्थितम् ॥३३०॥
अधिदैवस्वरूपे च तद्वदेव व्यवस्थितम् ।
तथानन्दमयस्यास्य पुच्छमक्षरमीरितम् ॥३३१॥
ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठेति श्रुतिरप्याह तादृशम् ।
अक्षरत्वेनैव तस्य सेवनं ज्ञानवर्त्मनि ॥३३२॥
तज्ज्ञानात्तन्मयत्वाप्तिर्वेदान्तेषु निरूप्यते ।
यो ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवतीति श्रुतेर्मतम् ॥३३३॥

---

१. प्रवेशोसीति—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. तद्वच्छया तस्य चाक्षणा (चासनं— अयो०)—अयो०, रीवाँ । ३. सिद्धी—अयो० ।

तस्मादप्युत्तमो धीमन् श्रीरामः पुरुषोत्तमः ।
ब्रह्मानन्दात् समधिकः प्रेमानन्दो भवेद्यतः ॥३३४॥
कालेऽपि चाक्षरस्यैव स्वरूपान्तरमुच्यते ।
सर्वाकारेण भवनं यत्तत्सामर्थ्यमक्षरे ॥३३५॥
तदन्यसर्वसामर्थ्यमुक्तः काल उदीरितः ।
सर्वाधिकारसंयुक्तः सर्वदा फलसाधकः ॥३३६॥
इच्छामात्राच्चिदानन्दतिरोभावे विकल्पितः ।
सर्वानुभवसिद्धोऽपि सर्वप्रत्यक्ष एव सः ॥३३७॥
क्रियाशक्तिप्रधानोऽसौ सकलोद्भवकारणम् ।
सर्वं जगत्स्थापयित्वा स्वस्मिन् याति निरन्तरम् ॥३३८॥
अक्षरे च परे चापि न तत्सामर्थ्यमल्पकम् ।
विकृतावेव चात्यन्तं सृष्टिस्थित्यन्तभावकः ॥३३९॥
बहिर्मुखानां तु बहिर्व्यवहारेण तादृशः ।
यादृशो ज्ञानिनां शुद्धभगवत्त्वेन भासते ॥३४०॥
सच्चिदानन्दरूपोऽतः सर्वदा प्रकटत्वतः ।
भगवद्दत्तमैश्वर्यं भजते नित्यमेव सः ॥३४१॥
स सर्वापेक्षया तस्य[1] सेवकेष्वन्तरङ्गकः ।
आसुरादितमोऽन्धानां तस्यैवोपासनालयौ ॥३४२॥
प्रभोरिच्छानुसारेण क्रिया तस्य व्यवस्थिता ।
तस्याधिभौतिकं रूपं सूर्य एव न संशयः ॥३४३॥
युगाद्याध्यात्मिकं रूपमाधिदैवं स्वयं हरिः ।
इति ते संनिगदितं कालतत्त्वं व्रजेश्वर ॥३४४॥
कर्मापि चाक्षरस्यैव रूपान्तरमुदाहृतम् ।
पुंभिर्विधिनिषेधाभ्यां प्रकटीक्रियते तु तत् ॥३४५॥
हिताहितप्रदानेषु लोकानां स विशिष्यते ।
फलपर्यन्तमेवास्य प्राकट्यं समुदाहृतम् ॥३४६॥
भगवानेव तद्रूपैराविर्भूय तिरोभवन् ।
कर्मेति कीर्त्यते लोके प्रतिजीवं व्यवस्थया ॥३४७॥

१, सर्वापापक्षयात्तस्य—अयो०, सर्वा सेवया पेक्ष्या तस्य—रीवाँ ।

पूर्वापरीभावभेदाद् द्वेधा प्राकट्यमस्य च ।
कालस्यैवाङ्गमेतच्च कालस्य च वशे स्थितम् ॥३४८॥
स्वभावं तु हरेरिच्छारूपेण प्रकटः सदा ।
असाधारणतामेत्य सर्ववस्तुसमाश्रितः ॥३४९॥
जगदाकाररूपेण वर्तते जगति स्फुटः ।
तस्य पश्चाद्भागगतं सर्वमेव जगत् स्थितम् ॥३५०॥
ज्ञानकर्मगुणाश्चैव वस्तूनि बहुशस्तथा ।
सदुद्गमतिरोभावहेतवो बहवो मताः ॥३५१॥
परिणामेन कार्येण नित्यमेषोऽनुमीयते ।
अक्षराद्याश्च चत्वारो वासुदेवादिसंज्ञकैः ॥३५२॥
चतुर्भिर्भगवद्रूपैराविष्टा इति शुश्रुम ।
वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥३५३॥
चतुर्मूर्तिः स्वयं विष्णुरादिदेवस्त्रयीस्तुतः ।
महापुरुष इत्युक्तः साक्षान्नारायणो हरिः ॥३५४॥
वैकुण्ठनाथो भगवानेष एव सनातनः ।
ब्रह्मानन्दमयी तस्य रमा सर्वाङ्गसंगिनी ॥३५५॥
विशुद्धं सत्त्वमतुलं विग्रहोऽस्य प्रकीर्तितः ।
रामस्य पूर्ण एवांशः स्वयं भगवतो ह्ययम् ॥३५६॥
चतुर्विधमसौ मोक्षं सेवकेभ्यः प्रयच्छति ।
ज्ञानसंमिश्रया भक्त्या तस्य सेवा प्रकीर्तिता ॥३५७॥
सहस्रशीर्षनयनः पुरुषोऽस्यांश उच्यते ।
तस्माद्रामचन्द्रो देवः सर्वकारणकारणम् ॥२५८॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सृष्टिस्थित्यन्तकर्मणि ।
गुणावतारास्तस्यैव पुराविद्भिरुदाहृताः ॥३५९॥
तथान्ये मत्स्यकूर्माद्या अवताराः समीरितुः ।
स एव भगवान् साक्षादभूद्दाशरथे गृहे ॥३६०॥
मर्यादापालनार्थाय सतामुद्धरणाय च ।
द्विजधर्मत्रयीभूमिक्लेशसंहरणाय च ॥३६१॥

तस्याप्यात्मा स्वयं रामः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
प्रमोदवनचन्द्रो यः सनातनतया स्थितः ॥३६२॥
प्रेमानन्दमयी तस्य रमा नित्याङ्गसङ्गिनी ।
सहजानन्दिनी सैषा लीलाधिष्ठानमास्थिता ॥३६३॥
शुद्धसत्त्वाव्यवहितः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
सर्वांशैः परिपूर्णोऽसावंशित्वेनैव संस्थितः ॥३६४॥
स्वयं स भगवान् साक्षात् सर्वानन्दकलानिधिः ।
निजलीलाप्रवेशाख्यं सर्वकामफलात्मकम् ॥३६५॥
प्रेमानन्दमयं मोक्षं भक्तेभ्यो यः प्रयच्छति ।
विशुद्धभक्त्या संसेव्यः कर्मज्ञानाद्यमिश्रया ॥३६६॥
न तस्य कार्यकरणं विद्यते भुवनत्रये ।
गुणेभ्यः समतीतोऽसौ गुणावतरणोज्झितः ॥३६७॥
अन्यावतारदशया सततं परिवर्जितः ।
सर्वोदासीन एवासौ भक्तरञ्जितमानसः ॥३६८॥
निर्मर्यादमहालीलामाधुर्यरसवारिधिः ।
असतां चापि जीवानां समुद्धरणपण्डितः ॥३६९॥
निजांशोद्धृतगोविप्रश्रुतिधर्मानुरक्षकः ।
सर्वात्मनामप्यात्मासौ स्वेनैव च विशेषितः ॥३७०॥
स एष नित्यं गोपेन्द्र त्वदालयविभूषणः ।
रसभावमयीं लीलां नित्यमत्र करिष्यति ॥३७१॥
ऐश्वर्योत्थं मदं चैष निहन्तीश्वरमानिनाम् ।
यावतीर्मूललीला वै ता एवासौ करिष्यति ॥३७२॥
[1]अवतारचरित्राणि निजावेशात् करिष्यति ।[1]
सहजानन्दिनी लक्ष्मीर्हृदयं मोहयिष्यति ॥३७३॥
कोटिलक्ष्मीकदम्बान्तर्विलासं वितनिष्यति ।
नाम धाम स्वरूपं च गुणाश्चरितमेव च ॥३७४॥
नित्यमेवास्य सकलं श्रुतिवृन्दैर्निरूपितम् ।
महारासविलासेन क्रीडिष्यति वधूगणैः ॥३७५॥

१—१. नास्ति—अयो०, रीवाँ ।

नित्यश्चास्य विलासोऽयं प्रमोदवनवीथिषु ।
अस्यैव सोपि पूर्णोंऽशः कृष्णो वृन्दावनान्तरे ॥३७६॥
अन्यथान्यावतारेभ्यो माहात्म्यं किं विशिष्यते ।
रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रः सर्वमन्त्रशिरोमणिः ॥३७७॥

को विजानाति माहात्म्यं यच्च यावच्च तस्य तत् ।
रामस्यातिप्रियं नाम रामेत्येतदहर्निशम् ॥३७८॥
स्वयं जपति वै नित्यं सहजानन्दिनीसखः ।
रामस्यापि प्रियं नाम रामेत्येव सनातनम् ॥३७९॥
रात्रिन्दिवं गृणन्नेष भाति वृन्दावने स्थितः ।
यच्च कृष्णस्य सामर्थ्यं पापेन्धनविदाहने ॥३८०॥

तद्रामनामसंजापमाहात्म्यमिति निश्चितम् ।
हयग्रीवस्तथागस्त्यो मनुरत्रिश्चतुर्मुखः ॥३८१॥
कुबेरः कामदेवश्च पद्मबन्धुः सुधाकरः ।
अहं हरिर्हरश्चैव नन्दीशश्च शतक्रतुः ॥३८२॥
शुको द्वैपायनश्चैव वसिष्ठाद्याश्च योगिनः ।
नव योगीश्वराश्चैव याज्ञवल्क्यश्च गौतमः ॥३८३॥

जनकश्च तथान्ये च देवर्षिनरसत्तमाः ।
साक्षाच्छ्रीरामचन्द्रस्य नाममाहात्म्यवेदिनः ॥३८४॥
येषां तदेव सर्वस्वं प्राणपोषणमौषधम् ।
वेदशास्त्रपुराणेषु तत्त्वमेकं सुनिश्चितम् ॥३८५॥
रामेति चित्तरमणं नाम सद्यो विमुक्तिदम् ।
वाराणस्यां व्योमकेशो म्रियतां प्राणिनां ध्रुवम् ॥३८६॥

व्याचष्टे तारकं ब्रह्म रामेति द्व्यक्षरात्मकम् ।
इति ते तनयस्यास्य स्वरूपं परमं ध्रुवम् ॥३८७॥
रहस्यं सर्वदेवानां विमृश्य कथितं मया ।
नित्याविर्भूतिता चास्य प्रमोदवनमन्तरा ॥३८८॥
साकेतनाथो भगवानाविर्भूतो नृपालये ।
न तस्य रावणादिभ्यो भयं च क्वापि विद्यते ॥३८९॥

यतः कालो बिभेत्येष त्रिनेमिरखिलोद्भवः ।
तथापि प्रेमवशगो राजा दशरथाभिधः ॥३९०॥
स्वप्रेम्णा रावणाद् भूत्वा भीतो निहितवांस्त्वयि ।
जातमात्रं शिशुं सैष रामं कैवल्यनायकम्[1] ॥३९१॥
अवतीर्णं स्वलोकात् तमादायेह समागतः ।
तवाति भगवान् पूर्णः साक्षाद्रामोऽक्षरात्परः ॥३९२॥
तदैवाजनि यर्ह्येव[2] राज्ञो दशरथादभूत् ।
दासीनां श्रुतिरूपाणां नित्यानां च मृगीदृशाम् ॥३९३॥
नागीनां च नगीनां च नारीणां च मृगीदृशाम् ।
ब्रह्मादिदैवरूपाणां सुन्दरीणां स्वरूपतः ॥३९४॥
नित्यलीलानन्ददानसिद्धये भोगसिद्धये ।
प्रेमानन्दस्वरूपायाः सहजायाः परश्रियः ॥३९५॥
सह रतिविहारेण मनोभिलषितप्रदः ।
भक्तानां भूरिभाग्यानां प्रेमानन्दपदस्पृशाम् ॥३९६॥
श्रीमत्परमहंसानां न्यासिनां च परा गतिः ।
त्वयि नित्यं वसत्येष रामः प्रेम प्रमोदभृत् ॥३९७॥
दशरथस्यालये च नित्यं विहरते यथा ।
अथ काले परिप्राप्ते गन्तैष नगरीं प्रति ॥३९८॥
अवतारार्थसिद्ध्यर्थं सदा रामेति कथ्यते ।
रामस्तु त्वद्गृहे[3] स्थाता न पदं यास्यति क्वचित् ॥३९९॥
नानयोश्च मतो भेदो रामसाकेतनाथयोः ।
आत्यन्तिके ह्यभेदे हि भेदकृन्नारकी भवेत् ॥४००॥
आविश्य वै मनो नित्यं श्रीरामे पुरुषोत्तमे ।
भक्तो[4] लीलारसानन्दं यथैवानुभविष्यति ॥४०१॥
तथैव वै तस्य हृदि श्रीरामः पुरुषोत्तमः ।
अयोध्यायां रामलीलां स्वयं चानुभविष्यति ॥४०२॥

---

१. रामं चैव सेनापतिं—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. यर्ह्येष—मथु०, बड़ो० ।
३. त्वद्धृदि°—अयो० । ४. अत्र—रीवाँ ।

इत्येवमनयोस्तत्त्वं श्रीरामचन्द्रसीतयोः ।
मुनिभिः प्राक्तनैर्गीतमुच्चैः परमहंसकैः ॥
वर्णयेच्छृणुयाद्वापि सोऽपि मुच्येत संसृतेः ॥४०३॥

सुखित उवाच

इत्युक्त्वा मां मुनिवरः श्रीमानत्रितनूद्भवः ।
जगाम श्रीरामगुणान् गायन्नुच्चैः स्वमाश्रमम् ॥४०४॥
ज्ञाततत्त्वो मुनिवरादहं च परया मुदा ।
प्रेममय्या समाविष्टो बभूवैकान्ततत्परः ॥४०५॥
आसने शयने याने संक्रीडापानभोजने ।
राम एवार्पितमना बभूवाहमनन्यधीः ॥४०६॥
निपीय तद्वक्त्रसरोजसंभृतं प्रकाममाधुर्यमयं महन्मधु ।
विलीनसर्वेन्द्रियवृत्तिसंसरश्चिराय योगीव बभूव निर्वृतः ॥४०७॥
पत्नी च मे तन्मयतामवाप सा विहाय शय्यासनभोजनादिषु ।
एकान्ततो बद्धमना न किंचन विवेद वाह्यं विषयं न चान्तरम् ॥४०८॥
इत्येवमस्मास्वतदन्य[1]वृत्तिषु रामोऽपि रेमे रमणैककोविदः ।
वात्सल्यभावैकविदात्मभावो भृशं स्वरूपात् प्रणयं पुपोष च ॥४०९॥
तस्य स्वभावैकविदः सदा वयं सोऽस्मत्स्वभावं च विवेत्ति संततम् ।
जानीमहे न त्रिषु धामसु क्वचित्तच्चितरक्त्यै प्रभवेत् परोऽपि सन् ॥४१०॥
या यास्तस्य शुभा लीलास्तासां सारं वयं खलु ।
जानीमहे परस्यास्य नित्यानुग्रहभागिनः ॥४११॥
इतिश्रुत्वा दशरथो गोपराजस्य भाषितम् ।
परमानन्दपाथोधौ ममज्जातीव तत्क्षणे ॥४१२॥
धन्यं धन्यमिति प्राह गोपराजं सहानुगः ।
पपात पादयोरस्य प्रेमाविर्भावविह्वलः ॥४१३॥
दृष्ट्वा तत्स्थानमत्यर्थं गोष्ठमुख्यं सुपावनम् ।
व्रजस्य शिर एतद्वै इत्याह नृपसत्तमः ॥४१४॥
तत्स्थानदर्शनोद्भूतप्रेमोत्कण्ठः सुविह्वलः ।
कथं कथमपि स्वैरमन्यतोऽगान्नृपोत्तमः ॥४१५॥

---

१. °स्माकमनन्य°—रीवाँ ।

सुखितेन समादिष्टं मार्गमासाद्य भूपतिः ।
आदिव्रजस्थलीं पश्यंस्तुतोष परया मुदा ॥४१६॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रायां आदिव्रजागमनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

सुखित उवाच

इदं स्थानं महाराज तीर्थभूतं भवेन्नृणाम् ।
यत्र रामः स्वयं चक्रे डाकिन्या हननक्रियाम् ॥ १ ॥
यर्हि वाव मुनिश्रेष्ठो नारदो रक्षसां पतौ ।
देवगुह्यतमं कार्यं कथयामास तत्क्षणे ॥ २ ॥
लङ्काधिपः कृतक्रोधः प्रेषयामास राक्षसीम् ।
डाकिनीं लोकबालघ्नीं विचरन्तीं स्थले स्थले ॥ ३ ॥
प्रतिग्रामं प्रतिपुर प्रत्यावासं चचार सा ।
घ्नन्ती विविधरूपेण बालकान् सदतोऽदतः ॥ ४ ॥
सा ययौ कालनिर्दिष्टा व्रजे यत्र गृहं मम ।
घोरा कपटवेशेन सुन्दरी भूपकामगा ॥ ५ ॥
प्रसुप्तं पायितं मात्रा निगूढमिव पावकम् ।
दृष्टीर्जनानामाच्छाद्य तस्करी स्वकरे दधात् ॥ ६ ॥
न विद्मः कथमायाता कुतो वा पापमानसा ।
कासौ क्रूरा केन दृष्टा जग्राह प्राणजीवितम् ॥ ७ ॥
गृहकृत्ये स्थितं मात्रा दासीभिश्च तदाज्ञया ।
बालैः संक्रीडने लग्नं मया गोचारणे गतम् ॥ ८ ॥
इहत्यं वृत्तमाख्यातं बालैः कुतुकविह्वलैः ।
मृता सा सकलैर्दृष्टा बहुयोजनविग्रहा ॥ ९ ॥

अहो गोपाः शृणुतेयं सुघोरा पूर्वं दृष्टा सुन्दरो सुष्ठुवेशा ।
रामं समादाय करेण सुप्तं प्रपाययामास पयःस्तनोत्थम् ॥१०॥
रामेण रुद्धाङ्कजुषा[1] कराभ्यां निष्पीडिता वक्षसि गाढमेषा ।
मा मुञ्चमुञ्चेति चिरं विलप्य मुमोच निःश्वासमुदग्रवेगम् । ॥११॥
विवृत्य विस्तीर्णतरानुदग्रान् केशांश्च दन्तान् वदनं शिरश्च ।
दृशौ च हस्तौ चरणौ च पश्चाच्छब्देन भूमौ महता पपात ॥१२॥
ततो व्रजस्त्रीनिवहः समन्तात् कृतार्तनादः सहसा जगाम ।
ददर्श चैतां सुभयानकास्यां विस्तीर्णकेशीं पृथु लम्बोदरीं च ॥१३॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य बालानां मूढचेतसाम् ।
नैव श्रद्दधिरे गोपा अजानन्तोऽस्य वैभवम् ॥१४॥

कुटुम्बिनी च मे तस्य वात्सल्यप्रेमपूरिता ।
सहसोत्सङ्ग आरोप्य परिरेभे भयातुरा ॥१५॥
अहं च विपिनादेत्य श्रुत्वा कोलाहलं व्रजे ।
अपश्यं डाकिनीकायं बहुयोजनविस्तृतम् ॥१६॥
निशम्य सकलं वृत्तं गोपबालमुखोद्गतम् ।
बभूव परमाश्चर्यं ममापि हृदये नृप ॥१७॥

ततः कश्चित् प्रौढकल्पो गोपबालोऽब्रवीद्रहः ।
ममागत्य स्फुटं तत्र यद्वृत्तं डाकिनीगतम् ॥१८॥
श्रूयतां सुखित स्वामिन् सत्यमेतन्मयोदितम् ।
डाकिन्या वदनात्तोजो रामदेहे व्यलीयत ॥१९॥
तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं बभूव मम मानसे ।
अहो रामस्य माहात्म्यं बाल्य एवायमीदृशः ॥२०॥

ततोऽहमागत्य निकेतमात्मनो माङ्गल्यकायाः करतः सुजीवनम् ।
बालं समादाय समाश्लिषन् मुदा बभूव वात्सल्य रसोर्मिघूर्णितः ॥२१॥

गोप्यः सर्वाः प्रवीणास्ता मातरो व्रजवन्दिताः ।
आगत्य विदधू रक्षां बालस्याङ्गेषु सर्वतः ॥२२॥

---

१. रुष्ट्वांक°—मथु०, बडो० ।

अहं चाहूय विप्रेन्द्रान् मन्त्रज्ञान् सर्वरक्षकान् ।
रक्षोघ्नमन्त्रसंदोहै रक्षयामास बालकम् ॥२३॥
स्वस्ति पुण्याहमावाच्य द्विजमुख्यान् हुतानलः ।
मन्त्रपूतैर्जलैर्बालं स्नापयामास सादरः ॥२४॥
दत्त्वा च दक्षिणास्तोमं चतुर्वेदाशिषां गणैः ।
वर्द्धयित्वा शुभैर्बालं नत्वाभ्यर्च्य व्यसर्जयम् ॥२५॥
इत्यसौ डाकिनी घोरा महापातककारिणी ।
मृता स्वेनैव पापेन रामस्य च सदा शुभम् ॥२६॥
स्वकरस्पर्शमात्रेण डाकिनीं ताममारयत् ।
अतारयच्च पापेभ्यो मुक्तिं च समदात् प्रभुः ॥२७॥
निकृत्य परशुच्छेदैर्दह्यमाना तु डाकिनी ।
मुमोचातीव सौरभ्यं धूमं सर्वाङ्गतो व्रजे ॥२८॥
तदङ्गधूमसौरभ्यैर्धूपिताः सकला दिशः ।
रामाङ्गस्पर्शमात्रेण तादृक्पदमगादियम् ॥२९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दशरथतीर्थयात्रायां [डाकिनीवृत्तं नाम] एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तदन्यतो दिशं नीत्वा राजानं सुखिताह्वयः ।
उवाच वचनं भूयो रामलीलारसालयम् ॥ १ ॥

सुखित उवाच

स्थानं च तदिदं राजन् यत्र रामो व्यचूर्णयत् ।
[1]शयानोऽधःस्थितां खट्वां विधाय तिलशः क्षणात् ॥ २ ॥
दृष्ट्वा तत्रस्थितैर्बालैरूचे पूर्ववदद्भुतम् ।[1]
पुरुषो मुद्गरकरः करालवदनाकृतिः ॥ ३ ॥

१—१. नास्ति—अयो० ।

प्रांशुर्घोरतराकारो मेघमेचकविग्रहः ।
पश्यतां नः क्षणादेत्य खट्वां राक्षस आविशत् ॥ ४ ॥
खट्वेयं रामशिशुना मुहुर्मर्दयतोच्चकैः ।
चूर्णिता तिलशः कृत्वा गजदन्तमयी जवात् ॥ ५ ॥
संचूर्णितायां खट्वायां राक्षसः पुनरुद्गतः ।
दृष्टो मुद्गरमादाय धावमानोऽस्य संमुखम् ॥ ६ ॥
यावत्पातयते शस्त्रं तावद्बालपदाहतः ।
पतितोऽत्र विवृत्याङ्गं डाकिन्याः सोदरो यथा ॥ ७ ॥
भूयोऽस्य वदनात्तेजो विनिर्गम्योडुसन्निभम् ।
प्राप्य रामस्यैव वपुस्तत्क्षणेन व्यनश्यत ॥ ८ ॥
इदमद्भुतमाकर्ण्य वृत्तं रामस्य दुष्करम् ।
पूजयन्तः शिशून् सर्वान् गोपालाश्चकिता इव ॥ ९ ॥
अहं च विप्रानामन्त्र्य मंत्रै रक्षोघ्नकल्पकैः ।
अरक्षयन् मुहू राजन् सर्वाङ्गप्राणजीवनम् ॥१०॥
हुत्वाग्नौ विविधैर्मन्त्रैर्बालरक्षाविधायकैः ।
ग्रहाणां चाहुतीर्दत्त्वा स्नापितो मन्त्रिताम्भसा ॥११॥
राजिकां लवणैः सार्द्धं निर्मंक्ष्य प्राणजीवने ।
अपातयत् गोपदारा विकीर्य सर्वतो दिशम् ॥१२॥
गोपुच्छभ्रामणं चास्य विदधुः सर्वविग्रहे ।
अरक्षयंश्च फूत्कारैर्मन्त्रसिद्धमुखोद्गतैः ॥१३॥
योगिभिश्च कृतैर्नादैर्व्रजे विघ्नान् न्यवारयन् ।
मयूरपिच्छमुष्ट्या च रक्षां चक्रुः सुकातराः ॥१४॥
इत्येवं शमितो[1] विघ्नः सारिष्टः साशुभप्रदः ।
व्रजदारैर्हितपरै रामस्य शुभकाङ्क्षिभिः ॥१५॥
नारदस्य मुखाद्राजन् श्रुतं वृत्तमनन्तरम् ।
रावणप्रेषितोऽयं वै[2] विकटाख्यो महासुरः ॥१६॥
हतः स्वेनैव पापेन परापकृतितत्परः ।
बहवो निहता तेन शिशवो निद्रयावशाः ॥१७॥

---

१. एवं सक्रामितो—अयो०, रीवाँ । २. दुष्टैः—रीवाँ ।

ततश्च परमस्माभिरप्रमादैरिहस्थितैः ।
प्राणजीवनरक्षायां तत्परैर्द्धर्मतत्परैः ॥१८॥
अन्तःपुरे हिततमाः स्थापिता वृद्धमातरः ।
अप्रवेशश्च सर्वेषां यस्य कस्याप्यनागमः ॥१९॥
वहिर्निःसरणं चास्य विशेषेण विवर्जितम् ।
स्वहस्तार्वाजितं दुग्धं मम गेहिन्यपाययत् ॥२०॥
अदृष्टिभोजनं चैवमदृष्टोदकसेवनम् ।
जनसंचाररहिते देशे स्वापस्तथासनम् ॥२१॥
अवधानपरैरेभिः सर्वदा स्थापितः प्रभो ।
यतो व्रजे नः सर्वेषां रामो जीवातुरेधताम् ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा गोपपतेर्वाक्यं विस्मितो नृपसत्तमः ।
तत्स्थाने परमे तीर्थे सर्वाङ्गस्नानमाचरत् ॥२३॥
तदन्यां च दिशं तेन संप्राप्य नृपसत्तमः ।
उक्तो गोपालपतिना स्थानं निर्देश्य सादरम् ॥२४॥
इदं तत्स्थानमतुलं यत्र क्रीडन् शिशुर्भुवि ।
हृतो वात्याजवेनाभ्रं प्रापितो घोररक्षसा ॥२५॥
निहत्य गगने रक्षो गलग्रहपरासुकम् ।
अपातयच्छिलापृष्ठे विचूर्णिततनुं जवात् ॥२६॥
स वै वात्यास्वरूपेण प्राप्तो घोरतमोऽसुरः ।
निहतः स्वेन पापेन भाग्यैरेष च जीवितः ॥२७॥
इतश्च नृपशार्दूल दत्तदृष्टिर्विलोकय ।
अत्र मत्प्राङ्गणे रूढः पातितोऽनेन भूरुहः ॥२८॥
एकदा राजशार्दूल देवानां च द्विजन्मनाम् ।
आमन्त्र्य भोजनार्थाय चक्रेऽन्नानि कुटुम्बिनी ॥२९॥
व्यञ्जनानि च भूयांसि शाकानि विविधानि च ।
फलानि च सुपक्वानि नानाजातीनि मद्गृहे ॥३०॥

अनेकधा कृताः स्निग्धा[1] द्विदलाश्च विशेषतः ।
वटकाश्च पूपिकाश्च तथा पूरणपूरिकाः ॥३१॥
शष्कुल्यो मण्डकाश्चैव बहुशः खण्डमण्डकाः ।
आदर्शाश्चेन्दुसङ्काशास्तथैव जलवल्लिकाः ॥३२॥
शर्करापारिकाः स्निधा दध्यपूपाश्च भूरिशः ।
पायसापूपकाश्चैव तथा कर्पूरनाडिकाः ॥३३॥
नवनीतापूपकाश्च फेणिकाश्च महोज्ज्वलाः ।
माठिकाः[2] खाद्यपूपाश्च तथा पापचिकाः शुभाः ॥३४॥
चक्रिकाः क्षीरचक्राश्च बर्बराश्च महत्तराः ।
लड्डुकानां जातयश्च मोदकानां च जातयः ॥३५॥
सितया मण्डिताः पूपा अनेकविधपूरिकाः ।
विधाय मत्कुटुम्बिन्या सर्वतः सद्म पूरितम् ॥३६॥
घृताक्तानि सुगन्धीनि सिताक्तानि सितानि च ।
पक्वान्नानि विनिर्माय पात्राणि समपूपुरत् ॥३७॥
गतान्यहानि सप्तास्याः संविधाया विनिर्मितौ ।
पाकक्रियाप्रवीणानां प्रावीण्यं च परीक्षितम् ॥३८॥
तस्यां रात्रौ ततः सूदाः सर्वपाकान् विनिर्ममुः ।
सुशालिभक्तावरणशाकादीन् स्वादुवत्तमान्[3] ॥३९॥
अथ कौतूहली रामो बालकैः सह सर्वशः ।
विधाय सद्मनि च्छिद्रं भित्तौ पश्चिमतो दिशि ॥४०॥
पक्वान्नानि समस्तानि समादाय यदृच्छया ।
मृगान् संभोजयामास प्रमोदवनवासिनः ॥४१॥
मृगान् शाखामृगांश्चैव[4] गवयान् महिषांस्तथा ।
कोलान् गौरखरांश्चैव शुनो मार्जारकांस्तथा ॥४२॥
तरक्षून् शशजांश्चैव क्रोष्टृस्तज्जननीस्तथा ।
भल्लूकांश्चैव गौधेरान् शरभान् मूषकांस्तथा ॥४३॥

---

१. कृताभिस्सा—मथु० बड़ो० । २. माडिका—अयो० । ३. उत्तमान्—अयो०, रीवाँ । ४. सखीन् गवांश्चैव—रीवाँ ।

पक्षिणोऽनेकजातीयानाहूयाहूय कौतुकी ।
पक्वान्नैर्भोजयामास ब्राह्मणार्थोपकल्पितैः ॥४४॥
पारावतान् मयूरांश्च चाषान् परभृतांस्तथा ।
कोकिलांश्च शुकांश्चैव श्येनोलूकांश्च वायसान् ॥४५॥
ते तर्पिता रामकरोपनीतैः पक्वान्नसंघैर्मधुरैर्मनोज्ञैः ।
उदीरयन्तो निनदान् प्रजग्मुरधिप्रमोदाटविकेलिकुञ्जान् ॥४६॥

रामस्य यूथात् कोऽपि गोपालबालः संजातभेदः सहसागत्य तेभ्यः ।
निवेदयामास तदेव वृत्तं कुटुम्बिन्यै गृहकार्याकुलायै ॥४७॥
बलादुपश्रुत्य समस्तमेतत् रामस्य संचेष्टितमार्तबन्धोः ।
संजातरोषा गृहिणी मदीया पक्वान्नगेहं सहसा जगाम ॥४८॥
भाण्डागारं स्वयमेषा विलोक्य विकीर्णपक्वान्नकदम्बकं तत् ।
गृहीतयष्टिः कुपिता प्रयत्नाज्जवेन रामाभिमुखं जगाम ॥४९॥
स बालयूथस्थित एनां निरीक्ष्य सवेत्रहस्तां जननीं ताडनोद्यताम् ।
पलायितो दूरतरं जवेन सा तत्पृष्ठलग्ना व्यचलत् कृपान्विता ॥५०॥
तत्स्थानादेष बालैः पलाय्य मध्ये गृहं तत्र निलीय तस्थौ ।
गवेषयन्त्या प्रतिसद्म चामुया क्रमेण तत्रैत्य निरीक्षितः शिशुः ॥५१॥
एकान्तचारी विरुदन्नुदश्रुणी विलोचने अञ्जनपूर्णपक्ष्मणी ।
मृजन् कराम्भोजयुगेन शोभिना निकेतकोणोपगतोऽतिभास्वरः ॥५२॥
तमादाय ततो गोपी रूपातिशयभूषिता ।
न ताडितवती यष्ट्या वात्सल्यस्नेहमोहिता ॥५३॥
तमानीयाङ्गणस्थेन तरुणायुष्यशालिना ।
बबन्ध करयोर्दाम्ना बालं क्रीडनकारिणा ॥५४॥
पुनश्च पक्वान्नगृहं समेत्य निरीक्ष्यते यावदसौ वसूनि ।
तावत्समस्तं परिपूर्णमेव प्रपश्यती मुमुदे मानसेन ॥५५॥
रामश्च तेन तरुणा कल्पवृक्षसमत्विषा ।
निबद्धः करयोर्मात्रा यावदाक्षिपते गुणम् ॥५६॥
तावदुन्मूलितो वृक्ष आमूलाद् भूरिविस्तरः ।
गगनस्पर्शिविटपस्कन्धस्तुङ्गशिखाधरः ॥५७॥

तरुर्महोच्छ्रायविभूषितो जवात् सनिष्पतन्भूतलमीरितस्वनः ।
रामस्य पर्यन्तचरैः शिशुव्रजैर्निरीक्षितो भूरिफलप्रसूनधृक् ॥५८॥

तस्य निष्पततः शब्दं समाकर्ण्य जना व्रजे ।
आययुस्त्वरितं तत्र यत्र बद्धोऽनया शिशुः ॥५९॥
तन्मात्रापि तदागत्य दृष्टो बालः स्वभाग्यतः ।
शनैरुन्मोचितो वृक्षाद् दाम्ना बद्धः सुनिश्चलः ॥६०॥
पृष्टाश्च पर्यन्तचराः शिशवो गोदुहां हि ये ।
कथमेष महावृक्षः स्वयमेवान्वभज्यत ॥६१॥
ततस्ते बालका ऊचुर्यावद्रामः स्वयं मुहुः ।
गुणमाक्षिपते तावदभज्यत महातरुः ॥६२॥
तरावुन्मूलिते रामबलेनैव[1] व्रजस्त्रियः ।
तत उद्गम्य पुरुषो महानेको व्यदृश्यत ॥६३॥
द्योतमानो दिशः कान्तिसंदोहेनातिभूयसा ।
प्रांशुरर्केन्दुसंकाशो रूपसारविभूषितः ॥६४॥
रत्नहारयुतोरस्को दिव्यदेहविराजितः ।
दिव्यवस्त्रद्वयवृतो मनोज्ञः पद्मलोचनः ॥६५॥
मुहुः संस्तूय रामं स प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ।
दिव्यं विमानमारुह्य पश्यतां नः खमारुहत् ॥६६॥
गोपबालवचः श्रुत्वा नरा नार्यश्च विस्मिताः ।
चिरञ्जीवतु रामोऽयमिति सर्वे बभाषिरे ॥६७॥
गोपालिका रामचन्द्रं स्वाङ्क आरोप्य विह्वला ।
स्नेहेन लालयामासुर्महता प्राणजीवनम् ॥६८॥
अहो मद्भाग्यनिवहैरयमुर्वरितस्तरोः ।
देवतानां प्रसादेन स्वाशीर्भिश्च द्विजन्मनाम् ॥६९॥
कृतस्वस्त्ययनं बालं कृतदानं द्विजन्मने ।
चिरादङ्कं समारोप्य परिरेभे सुविस्मिता ॥७०॥

---

१. °बलैर्व्रजैः—अयो० ।

कुलदेवीं ततोऽभ्यर्च्य संपूज्य च सुखं सुरान् ।
देवताश्च पितॄंश्चैव पूजयित्वा विधानतः ॥७१॥
विप्रानाहूय सकलान् समुपामन्त्रितान् पुरा ।
सुखेन पूजयामास संतुष्टा मत्कुटुम्बिनी ॥७२॥
ततो ज्ञातीन् समाहूय नरान् नारीश्च कोटिशः ।
अवशिष्टं ब्राह्मणेभ्यो भोजयामास भूतये ॥७३॥
अक्षय्यं तदभूत् सद्म[1] पक्वान्नपरिपूरितम् ।
भुक्तं भुक्तमभूद् भूयो रामस्यैव प्रसादतः ॥७४॥
चन्दनादिभिरालिप्य ब्राह्मणान् दत्तदक्षिणान् ।
विससर्जाशिषामन्ते संतुष्टा मत्कुटुम्बिनी ॥७५॥
एवमेतत्स्थलं राजन् कोटितीर्थौघपावनम् ।
रामचन्द्रपदाम्भोजैरङ्कितं दृश्यतां मुहुः ॥७६॥

ब्रह्मोवाच

द्रुमभङ्गस्थले स्नात्वा भक्त्या दशरथो नृपः ।
अन्यतो दिशमानीय बभाषे सुखितेन सः ॥७७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दशरथतीर्थयात्रायां द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

सुखित उवाच

उत्पातान् समभिज्ञाय महाघोषे महीपते ।
शङ्कयानः शिशोर्विघ्नं गोपैः साकममन्त्रयम् ॥ १ ॥
प्रियमोदप्रमोदाद्या गोपवृद्धाः पुरातनाः ।
शुभार्थिनो मे ये सर्वे तेषां वृद्धः प्रियाभिधः ॥ २ ॥
गोपालो मतिमान् धीरो वीरः परपुरञ्जयः ।
अब्रवीन्मन्त्रमतुलं तन्निशामय भूपते ॥ ३ ॥

---

१. सद्यः—अयो०, रीवाँ ।

प्रिय उवाच

होराशास्त्रे प्रवीणोऽहं शिष्यो माण्डव्यधीमतः ।
राजनीतौ च निपुणो लोकवार्ताविचक्षणः ॥ ४ ॥
तस्मान्मम मतं पक्वं कार्यमायुष्मता सदा ।
राजलक्ष्मीमतिक्रम्य लक्ष्मीस्ते शोभतेऽधुना ॥ ५ ॥
श्रोतव्या प्रथमं नीतिस्ततो[1] धर्मस्त्वया विभो ।
ततो लोकहिताचारः सानुष्ठानप्रयोजनः ॥ ६ ॥
पथ्यं तथ्यं च यो ब्रूते स हितः स सखाजनः ।
तमेव च पुरस्कृत्य कृतं कार्यं न शीर्यति ॥ ७ ॥
संपदा सेवितं वीक्ष्य बहवो यान्ति सेवितुम् ।
तेषां स्वरूपं संस्थानं ज्ञेयं संपद्वता सदा ॥ ८ ॥
संपदि प्रायशः सर्वे घनतां यान्ति मानुषाः ।
आपत्काले विशीर्यन्ति घना इव मरुज्जवे ॥ ९ ॥
एक एव हितः श्रेयान् किमनल्पैर्हिताविदैः ।
तं राजा न त्यजेज्जातु स हि तस्यासुसंमितः ॥१०॥
संपदा नावजानीयाद्धितज्ञं मानुषं धनी ।
संपदो भूरि जायन्ते हितज्ञो विरलो जनः ॥११॥
संपन्नः पुरुषो लोके संपदं रक्षयेत् सदा ।
सुकरः सञ्चयस्तस्य दुष्करं रक्षणं पुनः ॥१२॥
एकस्य संपदं वीक्ष्य विकृतिं यान्ति वै परे ।
छिद्रान्वेषिभ्य एतेभ्यो रक्षणं कार्यमुच्चकैः ॥१३॥
संपत्सु च प्रभूतासु न कर्तव्यः स्मयो बुधैः ।
स एव तासां नाशस्य प्रकारो मुख्य उच्यते ॥१४॥
आपन्न इव संपत्सु दीनतां सर्वतः श्रयेत् ।
ईशस्य हि वशे कृत्वा संपदः सुखमेधते ॥१५॥
अन्यं न विश्वसेज्जातु संपत्सु कुशलो नरः ।
अनेकरूपतो दुष्टाः संचरन्त्यपहारकाः ॥१६॥

---

१. स्तयोर्—अयो०, रीवाँ ।

यथा प्रतिष्ठा जगति प्राणानां चापि वर्तनम् ।
तामेव संपदं नित्यं जानीयादात्मनो हिताम् ॥१७॥
हितानेव जनान् मर्म ज्ञापनीयं न भूयसः[1] ।
संपत्संरक्षणार्थाप मृग्यं संपद्वता स्थलम् ॥१८॥

यत्रस्थः संपदो भुङ्क्ते परैरपरिभावितः ।
संपद्वता स्थलं ग्राह्यमाकरादिविवर्जितम् ॥१९॥
संभावितश्रीविषये परैरुत्साद्यते चिरात् ।
साधारणे स्थले स्थित्वा साधारणतया वसन् ॥२०॥
भुञ्जीत नियतान् भोगान् सशङ्कितमनाश्चिरम् ।
धर्मं चार्थं च कामं च सेवमानोऽनिशं जनः ॥२१॥

उत्तरोत्तरतो विद्यात्तुर्ये सर्वान् नियोजयेत् ।
अह्नचर्जयेत्तथा येन रात्रौ स्वस्थमनाः स्वपेत् ॥२२॥
अर्जयेद्वयसा येन वार्द्धके सुखमेधते ।
जन्मना चार्जयेद् येन भुक्वान्ते सुखमाप्नुयात् ॥२३॥
दुःखाभावः सुखं चेति पुरुषार्थो यतो द्वयम् ।
कुर्यात् सत्पुरुषैः सङ्गं देवांशाविष्टचेतनैः ॥२४॥
असुरांशैः कृतः संगः समूलं नाशयेज्जनम् ।
धर्मं समाचरेन्नित्यं यथा संपन्नवस्तुभिः ॥२५॥

संपदां चात्मनश्चैव धर्म एवाभिरक्षकः ।
आपद्यपि जनः प्राप्तो धार्मिको नियतं भवेत् ॥२६॥
जित्वा धर्मबलात् सर्वान् भूयः प्राप्नोति संपदः ।
धर्मे येषां स्थिरा निष्ठा किं तेष्वापत् करिष्यति ॥२७॥

आपदोऽपि नृणां तेषां संपत्प्राया उदीरिताः ।
आत्मा कुटुम्बिनी पुत्रा गृहं परिजना भुवः ॥२८॥
यः सर्वमेव धर्मार्थे प्रयुञ्जीत स पण्डितः ।
यस्य धर्मे परा निष्ठा प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥२९॥

---

१. भूरिशः—अयो० ।

सर्वशास्त्रादिविद्यासु मूर्ख एव स पण्डितः ।
आत्मना फलयेज्जन्म जन्मना त्रिविधं वयः ॥३०॥

वयसा भौतिकं पिण्डं पिण्डेनात्मप्रयोजनम् ।
धर्मोऽस्य परमो वन्धुरिह चैव परत्र च ॥३१॥

न तमापत्[1] स्पृशेज्जातु यस्य धर्मे ध्रुवा मतिः ।
नातीयाल्लौकिकं वृत्तमलौकिकपरोऽपि सन् ॥३२॥

लौकिकं पालयानस्य सिद्ध्येत् सर्वमलौकिकम् ।
लोकस्य नैकदेशोऽस्ति शास्त्रं यद्यप्यलौकिकम् ॥३३॥

तथापि लोकवर्तित्वान्नियोज्योऽत्येति नैव तम् ।
यत्र यस्य स्थितिर्नित्यं सोऽनुरुध्यात् सदैव तम् ॥३४॥

प्राश्नीत मधुरं चापि न मत्स्यः सलिलाद्बहिः ।
अलौकिकी क्रिया चापि विरुणद्धि न लौकिकम् ॥३५॥

विरोधे संशयप्राप्तौ त्यज्यते शास्त्रमप्युत ।
लोकसिद्धो य आचारः स कार्यो भूतिमिच्छता ॥३६॥

परम्परायाः प्रामाण्यं प्रयोजकमनुत्तमम् ।
लोके वर्द्धयते कीर्तिं व्यवहारः सुरक्षितः ॥३७॥

क्रियते कीर्तये सर्वं तदस्य परमं वपुः ।
लौकिका यद्विनिन्दन्ति तन्निन्द्यं वैदिकैरपि ॥३८॥

एक एव शुचिः पन्थाः प्रायशो लोकवेदयोः ।
इदं मे मतमातिष्ठन् गोपराज सुखी भव ॥३९॥

त्वयैव सुखिना सर्वे सुखिनः स्म वयं यतः ।
संपत् ते संप्रति परा स्वयं रामः सुखाकरः ॥४०॥

सर्वविप्रसमूहेभ्यो गोपायैनमतन्द्रितः ।
यस्मिन् सुरक्षिते सर्वं सकलं स्याद् गवांपते ॥४१॥

तदेव रक्षणीयन्त आत्मनापि धनैरपि ।
धर्मशिक्षा[2] तु ते नित्यं धर्मनिष्ठैकवेश्मनः ॥४२॥

---

१. न यमो तं—अयो० । २. धर्मसंज्ञा—रीवाँ ।

पुनरुक्ताय तेऽस्माभु तदप्याशास्महे शुभम् ।
प्रवृत्तोऽपि हि सन्मार्गे धीमान् सद्भिः प्रवर्तयन् ॥४३॥
पूर्वप्रवृत्तिदार्ढ्याय मुहुस्तत्र नियोज्यता ।
लोकवृत्तोपदेशोऽपि व्यवहारपटोस्तव ॥४४॥
न किंचिदुपयुज्येत स्नेहात्तु प्रेरिता वयम् ।
धर्मेण लोकवृत्तैश्च नित्यं गोपाय गोपते ॥४५॥
अशेषव्रजजीवातुरामं बालमिमं प्रियम् ।
भवितायं व्रजभुवः सर्वस्या एव नायकः ॥४६॥
गोदुहां च कुलेष्वेष सुश्रियं वर्द्धयिष्यति ।
गावो वत्सास्तथानेन पालनीया विशेषतः ॥४७॥
यथा पौरन्दरी लक्ष्मीस्तृणवद्भास्यते नृणाम् ।
अलौकिकीं श्रियमयं व्रजे संभावयिष्यति ॥४८॥
यथा देशाधिनाथानां श्रीमदः शान्तिमेष्यति ।
हरिष्यन्ति वलिं भूपाः किमु वाच्यमिदं लघु ॥४९॥
इन्द्रादिमुकुटैरस्य यत्सेव्या यन्नखप्रभा ।
सर्वसौख्यफलान्येष सर्वतः संफलिष्यति ।
अपवर्गसुखं येन तृणवत्प्रतिभास्यति ॥५०॥
अभ्युद्धरिष्यति कुलानि च गोदुहां नः स्वर्गापवर्गसुखसंततिसार्वभौमः ।
माङ्गल्यमेष वितनिष्यति भूय एव स्वेच्छावशात्त्रिजगतामशुभोत्करघ्नः ॥५१
स्वर्गापवर्गस्थानेष्वप्यलभ्यं भोगमुत्तमम् ।
अयं भावयिता साक्षाद् ग्राम्याणामपि गोदुहाम् ॥५२॥
ऋद्धयः सिद्धयश्चापि भजिष्यन्ति स्वतो व्रजम् ।
अस्यैव संप्रसादेन न किंचिद् दुर्लभं च वः[1] ॥५३॥
अस्य प्रभावं मे सर्वमूचुरेकान्ततः सखे ।
मुनयः सर्ववेत्तारो योगचक्षुर्निरीक्षकाः ॥५४॥
दुर्वासा भगवानत्रिर्वशिष्ठः पुलहस्तथा ।
पुलस्त्यो नारदश्चैव याज्ञवल्क्योऽथ गौतमः ॥५५॥

---

१. नः—अयो० ।

अन्ये च दिव्यवेत्तारो मुनयः शुद्धबुद्धयः ।
ते नित्यमातिथेयत्वादातिथ्यग्रहणाय मे ॥५६॥
संप्राप्ताः सदनं नित्यं तोषिता विनयेन मे ।
तान् संतुष्टानहं वीक्ष्य पर्यपृच्छं विशेषतः ॥५७॥
सख्युस्तवास्य पुत्रस्य भाविनीं भूतिमुत्तमाम् ।
ते मामूचुर्यदेतस्य रहस्यं रूपमद्भुतम् ॥५८॥
तन्मया पार्यते[1] वक्तुं रहस्यत्वात् कदाचन ।
एतावतैव विद्धि त्वं यदसौ पुरुषोत्तमः ॥५९॥
गुहासु मायया नित्यं विहरत्यात्मसेवकैः ।
श्रीवत्साङ्कः स भगवानेष एव न संशयः ॥६०॥
यद्येनं भुवि जानीयुर्मनुष्याः पुरुषोत्तमम् ।
सर्व एव तदा लोके विमुच्येरन्न संशयः ॥६१॥
गोपायेति यदुक्तं च त्वत्पुत्रविषये मया ।
तद्वात्सल्यगुणेनैव नो चेद् गोप्तायमेव ते ॥६२॥
सङ्कटेभ्योऽतिकष्टेभ्यो रक्षिष्यत्यखिलं व्रजम् ।
भवतां सर्वसौख्यानि वितनिष्यत्यसौ ध्रुवम् ॥६३॥
निधायैनं हृदि सदा विलसन्तोऽखिलैः शुभैः ।
वर्तध्वं शरणापन्ना एनमेव नरोत्तमम् ॥६४॥
अस्य लीलाविनोदेन रञ्जयध्वं चिरं मनः ।
रक्षणं चास्य हृदये सर्वभावेन सेवनम् ॥६५॥
अत्र स्थाने महोत्पाता जातास्तेऽनेन शामिताः ।
तथापि त्यज्यतामत्र वासः स्थेयं रहःस्थले ॥६६॥
नन्दिग्रामोऽधिवासार्थं रोचते मम संप्रति ।
गुप्ताश्च प्रकटाश्चैव देवता यत्र सन्ति हि ॥६७॥
रक्षोघ्नाः देवता[2] रक्षां करिष्यन्ति शिशोस्तव ।
न तत्र राक्षसी भीतिर्देवतानां प्रभावतः ॥६८॥

---

१. तन्न प्रार्थयते—अयो० । २. सर्वदा—मथु०, बड़ो० ।

पालीग्रामश्च सविधे यत्र श्रीनन्दनो नृपः ।
तस्य पत्नी महोदारा नाम्ना श्रीराजिनी पुरा ॥६९॥
कन्यारत्नं च तद्गेहे साक्षाल्लक्ष्मीस्तु सोच्यते ।
भवित्री तव पुत्रस्य वधूरेषा न संशयः ॥७०॥
आगमज्ञास्तु मामूचुर्माण्डव्याद्या मुनीश्वराः ।
तेनाभिसंधिना तत्र विशेषाद्वास इष्यताम् ॥७१॥
श्रीनन्दनेन गोपेन मैत्री कार्या चिरं तव ।
धर्मज्ञः सुकृती विद्वान् रामभक्तः पराक्रमी ॥७२॥
तेन मैत्री चिरंजाता सर्वान् विघ्नान् हरिष्यति ।
अयमेव महांल्लाभो भविष्यति तव ध्रुवम् ॥७३॥
श्रीराजिन्या च तत्पत्न्या माङ्गल्या सख्यमेष्यति ।
एवं परस्परं स्नेहो वर्द्धमानो दिने दिने ॥७४॥
करिष्यति व्रजभुवो माङ्गल्यं सर्वतः सुखम् ।
तस्मात्तत्र सखे नित्यं विशेषाद्वासमिष्यताम् ॥७५॥
सरयूसविधे तत्र यथैवात्र विराजते ।
तत्तीरे गोधनं सर्वं न्यस्यतां गोष्ठभूमिषु ॥७६॥
हरित्तृणमयो देशः सरयूतोयशीतलः ।
बहूदको बहुफलैस्तरुभिः परिवेष्टितः ॥७७॥
परितः शकटांस्तत्र विन्यस्य सुविधानतः ।
प्राकारमिव संरच्य सर्वतो गोपरक्षितम् ॥७८॥
मध्ये शुभानि गोष्ठानि विरच्यन्तां महामते ।
समन्ताद् वेष्टयतां ग्रामस्तन्मध्ये क्रियतां गृहम् ॥७९॥
महाप्रासादसुखदं दिव्यतोरणभूषितम् ।
बहुभिः शिखरै रम्यं तुङ्गध्वजविचित्रितम् ॥८०॥
महाराजन्यवर्यस्य वासोचितमनुत्तमम् ।
यमारुह्य प्रपश्येम श्रीनन्दननिकेतनम् ॥८१॥
महोच्छ्रायं महारम्यं महाभूतिविभूषितम् ।
महाविशालं विशदं सर्वबन्धुनिवेशनम् ॥८२॥

तत्र रामस्य सुखदैश्चरितैरमृतैरिव ।
व्यगाहयन्त आत्मानं वर्तध्वमिति मे मतम् ॥८३॥

सुखित उवाच

इत्याकर्ण्य वचो रम्यं गोपवृद्धेन भाषितम् ।
सर्वेऽप्युत्कण्ठिता जाता नन्दिग्रामनिषेवणे ॥८४॥
अथ सर्वं समादाय वर्णरत्नादिकं धनम् ।
गोधनं च पुरस्कृत्य सषट्पञ्चाशत्कोटिकम् ॥८५॥
अनांस्यारुह्य गोपीभिर्नन्दिग्रामसगां नृप[1] ।
स्वं स्वं च गोधनं सर्वे पुरोधायान्वगुर्हि तम्[2] ॥८६॥
वीरपालाभिधं गोपं महाघोषाभिरक्षकम् ।
विधाय सकलैर्गोपैर्नन्दिग्राममहंगतः ॥८७॥
स देशो भवता राजन् पूर्वमेव विलोकितः ।
जलाशयेषु रम्येषु तत्रत्येषु महीपते ॥८८॥
अनुष्ठिते स्नानदाने धर्मपत्न्यानया सह ।
निरीक्षिताश्च भूपाल समंतात् कुञ्जभूमयः ॥८९॥
तत्र वृत्तानि रामस्य चरित्राणि निशामय ।
एकैकमद्भुततमं सुधातोऽप्यतिमञ्जुलम् ॥९०॥
गृहीतं हठतस्तेन वत्सानां चारणं नृप ।
सरयूरम्यतीरेषु दिव्यमारुतमञ्जुषु ॥९१॥
शुशुभे वनपालेषु दिव्यं वेशं मुदावहन् ।
लक्ष्मणाद्यनुजैः सार्द्धं लघुयष्टिधरः शिशुः ॥९२॥
तत्र तं वत्सरूपेण प्राप्तः कश्चिन्महासुरः ।
हन्तुकामः स मनसा चचार गहने वने ॥९३॥
स हरित्तृणलोभेन विवेश गहनान्तरम् ।
तत्पृष्ठलग्नः सर्वज्ञः स्वयमन्वचलत् प्रभुः ॥९४॥

---

१. °ग्राममहंगतः—अयो० । ग्राममयं नृप—मथु०, बड़ो० । २. हिताः—मथु० बड़ो० ।

यावत्प्रकाशते रूपं स्वीयमासुरभासुरम् ।
तावदादाय पदयोः प्रक्षिप्तस्तरुपङ्क्तिषु ॥९५॥
भग्नकल्पोऽपि स खलो रूपमुत्सृज्य तादृशम् ।
अतिष्ठद्व्योमचिकुरो भूमिस्थचरणाङ्गुलिः ॥९६॥
मुष्टिमुद्यम्य तं बालं यावत्ताडयतेऽसुरः ।
तावत् स्वलकुटं बालः प्राचोदयदिहासुरे ॥९७॥
गदारूपेण लगुडः प्रापतत् तस्य वक्षसि ।
विद्धो गदाप्रहारेण सद्य एव महासुरः ॥९८॥
तारकासदृशं भास्वदात्मज्योतिः समर्पयन् ।
रामस्य चरणाम्भोजे गतासुरपतद् भुवि ॥९९॥
तस्मिन् निपतिते भूमौ क्रूरकर्मणि दानवे ।
मन्दारकुसुमैर्वर्षमादितेया अचीकरन् ॥१००॥
एवं महांस्तीक्ष्णतुण्डस्तडिन्नख[1]निपातनः ।
श्येनाकारधरः क्रूरो रोरुवन्नत्यरुन्तुदः[2] ॥१०१॥
शम्पापथा घनं भित्वा[3] महानसुर आगमत् ।
चञ्चूपुटे शिशुं कृत्वा यावदुत्प्लवते[4] दिवि ॥१०२॥
तावच्चञ्चूपुटस्तस्य चूर्णभावमुपागतः ।
श्रीरामस्य प्रभावेण ततः स प्राक्षिपन्नखान् ॥१०३॥
नखा वज्राङ्गनिर्भिन्नाः सद्यो भङ्गमुपागताः ।
भग्नतुण्डो भग्ननखः पक्षतीः पर्यताडयत् ॥१०४॥
शिरीषसुकुमाराङ्गे कठिनो हृदयेन सः ।
अथ रामस्तस्य पक्षौ दोर्भ्यां पर्युदपाटयत् ॥१०५॥
चिक्षेप च फलक्षेपं बलादुपरितो भुवि ।
छिन्नभिन्नोदरः श्येनः पञ्चत्वमगमत् क्षणात् ॥१०६॥
व्योम्नः स्खलत्तारकाभं तस्यात्मज्योतिरुद्गतम् ।
व्यलीयत पदाम्भोजे रामस्य परमात्मनः ॥१०७॥

---

१. नखरांत°—रीवाँ। २. रुवन्नुत्पत्य तुंडितुं—रीवाँ। ३. झंपामिव दिवः कृत्वा—मथु०, बड़ो०। ४. उत्पतते—अयो०।

अथ वत्सगणान् रामो विकीर्णान् सर्वतो दिशम् ।
एकीकृत्य वनप्रान्तादुपावर्त्तत सौख्यकृत् ॥१०८॥
लघुमेकां वहन् यष्टिमरुणां करपङ्कजे ।
विषाणमपरे चैव काकपक्षमनोहरः ॥१०९॥
सुवर्णसूत्ररचितमुष्णीषं शिरसा दधत् ।
तदुपर्याहिताश्चित्रा मयूरवरचन्द्रिकाः ॥११०॥
त्रिकोणाकृति बिभ्राणः कटिवस्त्रं मनोहरम् ।
कटीबन्धं च मधुरं चलत्काञ्चीमणिक्वणः ॥१११॥
चरणाम्भोजसक्वाणकिङ्किणीगणशोभितः ।
वलयाङ्गदहारादिभूषागणविभूषितः ॥११२॥
स्फुरन्मकरिकापत्रभालगण्डमुखप्रभः ।
स्वल्पपादाम्बुजलसदुपानद्द्वयशोभितम् ॥११३॥
आदावन्ते च मध्ये च यूथस्य महतोऽभवत् ।
कदाचित्तार्णकस्तोमे शिशुस्तोमे[1] कदाचन ॥११४॥
कदाचित्तार्णकान् यष्ट्या प्रेरयन् मधुरस्वरः ।
कदाचिच्छिशुभिः सार्द्धं क्रीडन् विविधकेलिभिः ॥११५॥
नमद्ब्रह्ममहेन्द्रादिशिरोमुकुटकोटिषु ।
पदे पदे दिव्यवेषैर्बोद्ध्यमानोऽपि पार्षदैः ॥११६॥
विष्वक्सेनखगाधीशप्रमुखैर्वेत्रधारिभिः ।
रूपसौन्दर्यसारस्य सीमा सर्वाङ्गभूषितः ॥११७॥
बाललीलारसासक्त्या प्रस्खलत्पादपल्लवैः ।
तत्क्षणे तान् सुराधीशानपसारयतो बलात् ॥११८॥
पार्षदान् वीक्ष्य सस्मेरं वर्जयन् करचालनैः ।
विसर्जयंश्च तान् देवान् स्वस्वविष्टपवास्तवे ॥११९॥
समीपे नन्दिग्रामस्य गोष्ठभूमिषु गोदुहाम् ।
वधूभिस्तत्क्षणे गीतां मङ्गलस्वरधोरणीम् ॥१२०॥

---

१. शिखिस्तोमे—अयो० ।

उपाकर्ण्य मुदं प्राप्त ईषत्प्रहसिताननः ।
शनैर्व्रजपुरं रामो न्यविशत्तर्णकैः सह ॥१२१॥
तमुपागतमालक्ष्य गोपीनां मङ्गलस्वरैः ।
जवादभिजगामैनं मुदिता मत्कुटुम्बिनी ॥१२२॥
संभ्रमोत्फुल्लनयना पुलकाञ्चितविग्रहा ।
मुदितैर्गोदुहां दारैर्गायन्ती मङ्गलस्वरम् ॥१२३॥
सौवर्णरत्नजटिते स्वर्णपात्रे मनोहरे ।
दधिदूर्वाक्षतयुते सिद्धार्थैः सुसमन्विते ॥१२४॥
सनाथे फलपुष्पाद्यै राजिकालवणान्वितैः ।
चतुष्कं पूरयित्वान्तर्मणिमाणिक्यमौक्तिकैः ॥१२५॥
तत्र दीपं प्रविन्यस्य स्थूलकर्पूरवर्त्तिकम् ।
प्रापाभिमुखतो रामं बालानां यूथमध्यगम् ॥१२६॥
निपीय तद्वक्त्रमधूनि गोपी विमुक्तविश्लेषभवोरुतापा ।
विलोचनानां दशकोटिमेषा पुनः पुनः पद्मभवं ययाचे ॥१२७॥
वत्सवृन्दखुरोत्कीर्णधूलिधोरणधूसरैः ।
अलकैः परिवीताच्छकपोलफलकाञ्चितम् ॥१२८॥
अलिभिः सेवितोपान्तं शतपत्रमिव स्फुरत् ।
वशीकृततमस्तोमपूर्णचन्द्रमिवोज्वलम् ॥१२९॥
माधुर्यामृतपूरेण पूर्यमाणमहर्निशम् ।
विलोक्य रामचन्द्रस्य मुखचन्द्रं विलोचनैः ॥१३०॥
न तृप्तिं लेभिरे लुब्धा गोपालानां मृगीदृशः ।
प्रेमाम्बुधिप्रदाहेण कृष्यमाणा इतस्ततः ॥१३१॥
सान्निध्येऽपि वियोगार्ता[1] बभूवुः स्वस्वचेतसि ।
रूपपाने च पक्ष्माणि महाविघ्नममन्यत ॥१३२॥
अथासौ मत्कुटुम्बिन्या भाग्यसंदोहसीमया ।
वितीर्णभालतिलकः कुङ्कुमेन व्यराजत[2] ॥१३३॥

---

१. वियोगाक्ताः—मथु०, बड़ो० । २. विराजितः—अयो० ।

विशालं तस्य भालं सा गजमुक्ताफलाक्षतैः ।
आनर्च सहसोदीतमर्द्धचन्द्रमिवोडुभिः ॥१३४॥
दधिविन्दु प्रविन्यस्य रामस्य भालपट्टके ।
प्रेम्णा नीराजयामास नखादाशिखमुत्सुकाः ॥१३५॥
उच्चैर्निर्मञ्छयाञ्चक्रे दधिदूर्वाक्षतादिकम् ।
मुक्ताफलानि भूरिणि रत्नानि विविधानि च ॥१३६॥
सिद्धार्थान् लवणाक्तांश्च राजिकाः सर्वतो दिशम् ।
आत्मानं चापि सा गोपी निर्मञ्छितवती सुते ॥१३७॥
आधीन् व्याधींश्च तस्याङ्गात् कराभ्यामात्मनि न्यधात् ।
चुचुम्बे वदनं चास्य मुहुः प्रेमपरिप्लुता ॥१३८॥
बह्वमन्यत चात्मानं सर्वत्रैलोक्यतोऽधिकम् ।
अहो भाग्यस्य संपत्तिर्यस्या ईदृग्विधः शिशुः ॥१३९॥
अथो अनिर्विशेषेण लक्ष्मणाद्यनुजत्रयीम् ।
गोपी सौहार्दसंपन्ना नीराजितवती पृथक् ॥१४०॥
अहो एते भ्रातरोऽस्य सखायश्च विशेषतः ।
इति प्रेमवती तेषु नापश्यद्भिन्नया दृशा ॥१४१॥
अलङ्कृत्य ततः पुष्पमालया रामसुन्दरम् ।
अङ्कमारोहयामास तदङ्गस्पर्शनिर्वृता ॥१४२॥
गायन्ती मङ्गलं गोपी गोपीनिवहमध्यगा ।
नीलरत्नसनाथाङ्का प्रविवेशात्ममन्दिरे ॥१४३॥
शिशुभिर्भणितं श्रुत्वा वने वृत्तं यदस्य तत् ।
अत्यर्थचकितस्वान्ता ववन्दे पुरुषं परम् ॥१४४॥
अग्रतो मे शिशुं नित्यमव्याच्छ्रीमधुसूदनः ।
पृष्ठतः पातु सततं भगवान् कैटभद्विषः ॥१४५॥
वामे रक्षतु वाराहो दक्षतो नरकेसरी ।
पुरो राहुशिरच्छेदी वने सिन्धुसुतापतिः ॥१४६॥
जलशायी जले पातु स्थले वैकुण्ठनायकः ।
भुञ्जानं पातु गोविन्दः शयानं केशवोऽवतु ॥१४७॥

गच्छन्तं रक्षताद्विष्णुस्तिष्ठन्तं विष्टरस्रवाः ।
जल्पन्तं वेदकृत् पातु हसन्तं हरिरीश्वरः ॥१४७॥
रुदन्तं शार्ङ्गभृत् पातु पश्यन्तं गरुडध्वजः ।
शृण्वन्तमच्युतः पातु स्पृशन्तं च जनार्दनः ॥१४८॥
जिघ्रन्तं माधवः पातु मनस्यन्तं गदाधरः ।
हृषीकेशः स भगवान् सर्वतः पातु सर्वदा ॥१४९॥
यानि यानि स्वरूपाणि साक्षाद्भगवतो हरेः ।
तानि तान्यभिरक्षन्तु सर्वावस्थासु मे शिशुम् ॥१५०॥
वागीशो वेदविन्नाथो हयग्रीवो महाप्रभुः ।
सर्वमन्त्रपतिर्देवो रक्षत्वेनं सदैव नः ॥१५१॥
इति विन्यस्य तस्याङ्गे रामनामानि गोपिका ।
स्वयं शरणमापेदे साक्षाद्रामं परं हरिम् ॥१५२॥
अथैनं स्नपयामास समुद्वर्त्य विशेषतः ।
सुगन्धिचन्दनमुखैः कस्तूरीकुङ्कुमादिभिः ॥१५३॥
संप्रोञ्छ्य[1] सुकुमाराणि तस्याङ्गानि व्रजेश्वरी ।
कालागुरुभवैर्धूपैर्धूपयामास मूर्द्धजान् ॥१५४॥
पुनश्च समलङ्कृत्य पटभूषाम्बरादिभिः ।
सायमार्तिक्यविधिना चक्रे नीराजनादिकम् ॥१५५॥
अथाहं गोधनैः साकं व्रजं सर्वसुखाम्बुधिम् ।
विपिनान्तादुपावृत्तो वेष्टितो वृद्धबालकैः ॥१५६॥
राक्षसं पक्षिणं चोग्रमुभौ पर्वतविग्रहौ ।
व्यसू निपतितौ भूम्यां मध्येमार्गं न्यरूपयम्[2] ॥१५७॥
आःकिमेतावुभावद्री वत्सचारणकानने ।
कुतो वात्र महाशैलसंभवो दृष्टपूर्वके ॥१५८॥
इतितर्काकुलो दूरादारात् पुरुषपक्षिणौ ।
व्यसू पर्वतसंकाशौ समुद्वीक्ष्य सुविस्मितः ॥१५९॥

---

१. संप्रोक्ष्य—अयो० । २. न्यरुन्धयम्—रीवाँ ।

केनैतौ निहतौ दिनेऽद्य पुरुषश्रेष्ठेन वीरोत्तमा-
वेको राक्षस एष दृश्यत इतो भूयान् द्वितीयो खगः ।
किं वा प्राथमिकेऽद्य राघवपतेर्गोवत्ससंचारणे
विघ्नं वीक्ष्य विधिर्वधं विहितवान् व्योमस्पृशोरेतयोः ॥१६०॥

इति तर्कयन्नुपगतो व्रजान्तिके पुरमात्मनः सकलसंपदाकुलम् ।
अथ तत्र मां स्वपरगोपदारका जगदुर्द्रुतं समभिसृत्य यूथशः ॥१६१॥

गोप्य ऊचुः

दिष्ट्या ते गोपशार्दूल बालोऽभूत्पञ्चहायनः ।
दिष्ट्या गतोऽद्य विपिनं चक्रे गोवत्सचारणम् ॥१६२॥
पारम्परिकमेतद्वः कुले वृत्तं मनोरमम् ।
तदङ्ग कृतवान् रामो भविष्णुः कुलमङ्गलः ॥१६३॥
अद्य नो दीयतां भूरि मिष्टमन्नं फलैर्युतम् ।
भूषणं रत्नजटितं वस्त्राणि च महोत्सवे ॥१६४॥
पृथक् पृथक् ग्रहिष्यामस्त्वत्तो गोकुलभूपते ।
त्वद्दारेभ्यश्च सततं महोदारेभ्य आत्मना ॥१६५॥
एवमेव वितनोतु बालको धेनुचारणपणेन ते सुखम् ।
वार्द्धके विविधसौख्यसंयुतो मन्दिरे सुचिरमेधतां भवान् ॥१६६॥
एष ते सर्वसौख्यानां दाता पाता व्रजस्य च ।
सर्वदुःखप्रतीकर्ता भर्तासौ भुवनस्य च ॥१६७॥
विहितं चान्यदप्येकमद्यानेन कुतूहलम् ।
यच्छ्रुत्वा विस्मयं चित्ते सर्वेषां व्रजवासिनाम् ॥१६८॥
एकं तावन्महद्रक्षो वत्सवेषधरं गणे ।
समुद्वीक्ष्य स्वयं रामो जघान भुजविक्रमात् ॥१६९॥
श्येनवेषधरश्चैव राक्षसो बलवान् हतः ।
कुर्वन्नपि रणं घोरं रामेणातिबलीयसा ॥१७०॥
अत एष गुप्तबलवीर्यसंपदां निधिरूर्जितस्तव शिशुर्मनोहरः ।
सुचिरं जयत्वखिललोकरञ्जनः कमलाविलासभवनायितव्रजः ॥१७१॥
इति ब्रुवाणा व्रजसुभ्रुवोऽहं फलान्नवस्त्राभरणादिदानैः ।
संतोष्य सम्यग्विससर्ज भूयो माङ्गल्यगाथां बहु गापयित्वा ॥१७२॥

विलोक्य बालं रुचिरायताक्षं गोवत्ससंचारणकर्म दृष्ट्वा ।
हर्षाश्रुवैवश्यधरो भुजाभ्यां स्वाङ्कं समारोप्य तमालिलिङ्गे ॥१७३॥

समाप्य सायं गोदोहं दीपिकाभिः प्रकाशिते ।
विवेश वेश्मनि मुदा रामरत्नविरोचिते ॥१७४॥

सुपक्वानि कुटुम्बिन्या स्वादूनि विविधानि च ।
गोपराजिस्थितोऽन्नानि संप्राश्याहं सुनिर्वृतः ॥१७५॥
रामेण सहितोऽन्नानि भुञ्जानश्चैकभाजने ।
अस्य बालचरित्राणि गोपवृद्धैः कथापयन् ॥१७६॥
चुम्बितास्यः शिशोरस्य ददानः कवलं मुखे ।
आनन्दसागरे मग्नः किंचिन्नाहमचिन्तयम् ॥१७७॥

भोजनस्यावसानेऽहं दत्त्वा ताम्बूलिकां शिशोः ।
स्वयं संप्राप्य च सुखं गतः शयनमन्दिरम् ॥१७८॥
तं तत्र गोदुहां बालाः श्रावयन्त्यः कथाः शुभाः ।
अनयन्नङ्ग यामिन्या एकं यामं कुतूहलैः ॥१७९॥
एकदा तत्र सुमहत्कौतुकं दृष्टमद्भुतम् ।
तदद्य श्रूयतां राजन् कथयामि तवान्तिकम् ॥१८०॥

अचीकथन्नारसिंहीं वार्तामत्यद्भुतां पराम् ।
पुरा हिरण्यकशिपुर्दैत्योऽभूत् कश्यपात्मजः ॥१८१॥
तपसा विधिमाराध्य वरमाप महोर्जितम् ।
न स वध्यो मनुष्येण न चापि पशुना बली ॥१८२॥
नाङ्गणे न गृहे वापि न रात्रौ न च वासरे ।
न भूमौ न दिवा चापि नायुधैर्न जलादिभिः ॥१८३॥

ब्रह्मदत्तवरो दैत्यः समुत्सिक्तो महोर्जितः ।
ब्रह्मादींश्चैव शक्रादीन् स विनिर्जित्य दिग्जये ॥१८४॥
तापयामास सकलं त्रैलोक्यं परवीरहा ।
एकराजोऽभवद्वीरस्त्रिषु लोकेषु दानवः ॥१८५॥
तस्यात्मजोऽभवन्नाम्ना प्रह्लाद इति कीर्तितः ।
शान्तो दान्तो रामभक्तः क्षमावाननसूयकः ॥१८६॥

स पञ्चहायनो बालस्तस्य पित्रा नियोजितः ।
आचार्यशण्डामर्काभ्यां वर्णानां परिपाठने ॥१८७॥
पाठ्यमानोऽप्यसौ बालो बालकेषु पठत्सु च ।
नापठच्छुद्धचित्तत्वाद्धूँच्छब्दान् वृथा विदन्[1] ॥१८८॥
सिद्धं वर्णसमाम्नाये रामेत्यक्षरयुग्मकम् ।
पपाठ मुहुरेवायं ताड्यमानोऽपि बालकः ॥१८९॥
तस्य निर्बन्धमालोक्य दैत्याचार्यौ सुहारितौ ।
हिरण्यकशिपौ सर्वं प्राहतुर्विबुधद्विषि ॥१९०॥
शिक्षितोऽपि स तेनासौ करुणात्मा सुरद्विषा ।
नामन्यत वचस्तस्य क्रोधहेतुरभूत्ततः ॥१९१॥
अरेर्नाम गृणातीति स बालं पर्यतर्जयत् ।
निर्बन्धिनं[2] स तं वीक्ष्य वधार्थं सहसोद्यतः ॥१९२॥
गिरेर्निपातितं बालं धरणी पर्यरक्षयत् ।
जले निमज्जितं चैनं वरुणो हरिकिङ्करः ॥१९३॥
अग्नौ दत्तं मुमोचाग्निर्नादहच्छान्तदीधितिः ।
खड्गधाराभवत् कुण्ठा विषं दत्तं सुधाभवत् ॥१९४॥
एवमुर्वरितं बालं स्वयं स कठिनाशयः ।
हन्तुं समुद्यतो दैत्यः खड्गमादाय भीषणम् ॥१९५॥
क्व ते रक्षयिता मन्द यस्य नाम गृणासि वै ।
तं मां निर्दिश तत्साकं त्वाहं छेत्स्यामि तत्क्षणात् ॥१९६॥
जले स्थले दिक्षु दिविस्तम्भेऽत्रास्मिन् स वर्तते ।
इति प्रह्लादवचनात् स्तम्भं कर्तितुमुद्यतः ॥१९७॥
ततः प्रादुरभूत् साक्षान्नारसिंहोऽतिभीषणः ।
ज्वालामालापरीताक्षः प्रज्वलन्निव तेजसा ॥१९८॥
तडिद्भीमजटाजालो ललज्जिह्वाग्र[3]भीषणः ।
पञ्चास्यवदनो भीमः स्फुरद्वज्रनखायुधः ॥१९९॥

---

१. ह्रूंकां छब्दानथावदत्—अयो०, रीवाँ। २. निबंधनं—अयो० रीवाँ।
३. लिहज्जिह्वाग्र°—रीवाँ, लोलजिह्वा°—अयो०।

कल्पान्तपावकज्वालामालाज्वालातिभीषणः ।
कोटिसूर्यकरालाङ्गस्त्रैलोक्यभयकारकः ॥२००॥

षष्टिवर्षसहस्राणि तेनायुद्धचत् स दानवः ।
खड्गशक्त्यृष्टिपरशुभुशुण्डीपरिघादिभिः ॥२०१॥
सोऽपि चिक्षेप भगवान् दैत्येऽस्त्राणि सुभूरिशः ।
गदाचक्रासिपरशुप्रभृतीनि समंततः ॥२०२॥

विनिर्धुन्वन् जटाजालं त्रिनेत्रो नरकेसरी ।
अथ काले परिप्राप्ते प्रह्लादं सुखयन् स्वयम् ॥२०३॥
बलाद्दैत्येन्द्रमादाय संस्थाप्योरुस्थले पटुः ।
नखवज्रायुधैः सायमध्यास्यालयदेहलीम् ॥२०४॥

अपाटयत्तदुदरं प्रोच्छलद्रुधिरोक्षितः ।
जिह्वाग्रेण लिहन् प्रेम्णा प्रह्लादस्य शिशोः शिरः ॥२०५॥
तत्तेजसा सुभीमेन व्याप्तं त्रैलोक्यमन्तरा ।
नागन्तुं शक्यते देवैस्तुत्यैर्ब्रह्मादिकैरपि ॥२०६॥

अथ लक्ष्मीं पुरोधाय समाजग्मुर्दिवौकसः ।
वीक्ष्य लक्ष्मीः प्रभो रूपमपलायत पितुर्गृहे ॥२०७॥
प्रह्लादमेव त्रिदशाः पुरस्कृत्य ततो ययुः ।
अस्तुवन् विविधैः स्तोत्रैर्मन्युसूक्तादिभिः पृथक् ॥२०८॥

सामगानैश्च विविधैर्दिवि संस्था महर्षयः ।
इत्येवं कीर्तितो नाम्ना नृसिंहो भगवान् हरिः ॥२०९॥
इति मातुर्वचः श्रुत्वा शय्यास्थो रामचन्द्रमाः ।
हुङ्कारमकरोद्राजन् सर्वत्रैलोक्यकम्पनम् ॥२१०॥

अखण्डरवसंभूतवज्रनिष्पेषसंभवः ।
निर्घातनिःस्वनो घोरः कम्पयामास रोदसी ॥२११॥
तेनैव कम्पिताः सद्यः पुरग्रामव्रजाकराः ।
सौधाः पतिष्णवो[1] भूत्वा तत्क्षणात् प्रचकम्पिरे ॥२१२॥

---

१. समूहाः—रीवाँ ।

आःकिमेतदिदं जातमिति चिन्तासमाकुलः ।
अहं तत्रागतो यत्र रामः शेतेऽधितल्पकम् ॥२१३॥
तन्माता तं मुहुर्दृष्ट्वा बभाषे वचनं त्विदम् ।
किमेतद्रामचन्द्र त्वं कृतवान् प्राणजीवनः ॥२१४॥
प्रेतावेशः क्वचिद् भूतो राक्षसावेश एव वा ।
तव हुंकारशब्देन त्रासिताः सकला दिशः ॥२१५॥
शाम्यन्तु पापानि तवाखिलानि शाम्यन्तु घोराणि भयावहानि ।
शाम्यन्तु रक्षांस्यखिलानि सद्यो रक्षा तवास्तां परमस्य पुंसः ॥२१६॥
इति वत सुतमङ्कं सा समारोप्य[1] गोपी
कलयति शुभरक्षां दत्तरक्षोघ्नमन्त्रा ।
वितरति च बिभीता गोशतं यावदेषा
सरभसमुपयातस्तावदेवाहमस्याः ॥२१७॥
यथावृत्तं सप्रसङ्गमाश्रुत्य चकितोऽभवम् ।
सर्वमाहात्म्यविद्वानप्यमुहं भाव[2]मार्गणैः ॥२१८॥
एवमन्येद्युरप्येषा विनिद्रं वीक्ष्य बालकम् ।
श्रावयन्ती कृष्णवृत्तं कथयामास गोपिका ॥२१९॥
व्रजे च मथुरायां च द्वारवत्यां च केशवः ।
चकार यानि कर्माणि तानि चाश्रावयत् प्रसूः ॥२२०॥
व्रजसंबन्धिवार्तासु दीर्घं निःश्वस्य राघवः ।
मुञ्चन्नश्रूणि बहुशो ललाप शृणु तद्वचः ॥२२१॥
राधे[3] हन्तवसन्त एष समयो मा धेहि मानं मना-
गेतं चेतसि यस्य यस्य चरणद्वन्द्वानतं माधवम् ॥
द्रागुत्थापय कान्तमातुरममुं तापं समुत्सारय ।
प्रेम स्रोतसि मज्ज हेममणिना नीलेन संगच्छताम् ॥२२२॥
हे सौन्दर्यतरङ्गिणि प्रणयिनि प्राणेश्वरि प्राणदे
कन्दर्पाशुगकालकूटहरिणि प्रोद्यत्सुधाकालिके ।

---

१. शीघ्रमारोप्य—अयो०, सायमा°—बड़ो० । २. तद्भाव°—रीवाँ ।
३. सीते—अयो०, मथु०, बड़ो० ।

कर्पूरद्रवविन्दुशीलिनि चिरं मुक्त्या दृशोर्दग्धयो-
र्मानं माकुरु मानिनि प्रतिपदं दोरन्तरे स्थीयताम् ॥२२३॥
श्लाघ्यं जन्म तव प्रसादसमये पीयूषवर्षावहे
धिक् धिक् चैतदतीव तावकमनो माने विषासारिणि ।
इत्यालोच्य चिरं मनः करुणया साम्मुख्यमानम्यताम्
वैमुख्यं विजहीहि मय्यतितरां प्राणप्रिये जानकि ॥२२४॥
त्वत्कुण्डं तव विप्रयोगविपदि स्वैरं वगाह्यप्रिये
किंचित्तापभरं तनोः प्रशमयाम्यङ्गं प्रभाश्रोमयम् ।
श्रीखण्डानिलमागतं तव तनुस्पर्शभ्रमाद्राधिके
सेवेऽहं विरहातुरोऽपि नितरां चक्रे वरालिङ्गनम् ॥२२५॥
इति निःश्वस्य निःश्वस्य भाष्यमाणो मदाननम् ।
विलोक्य लज्जया सद्यो निजाननमगोपयत् ॥२२६॥
कथानिकाभिर्बह्वीभिर्नीते प्रथमयामके ।
सुप्तं प्राणधनं वीक्ष्य सुखं सुष्वाप तत्प्रसूः ॥२२७॥
ब्रह्मलोकमुपैत्यद्धा प्रसुप्तः सकलो व्रजः ।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥२२८॥
आनन्दं ब्रह्मणो लोके अनुभूय परात्परम् ।
ततः क्षणाद्विनिर्धूय प्रातर्जागर्ति वै व्रजः ॥२२९॥
दिने तु भवति स्पष्टं प्रेमानन्दकदम्बकम् ।
उभयोस्तारतम्यज्ञा व्रजवासिन एव हि ॥२३०॥
प्रातः काले व्रजस्यास्य शोभा किं वर्ण्यतां मया ।
यत्र राजन् नीरनिधेरप्याधिक्यं प्रतीयते ॥२३१॥
दधिमन्थ[1]रवोद्घोषी निनादचय[2]वीचिभृत् ।
वृषरत्नाङ्गनारत्न[3]गोपरत्नविराजितः ॥२३२॥
उदारगोपशार्दूलकल्पवृक्षविभूषितः ।
श्रीरामचन्द्रसुयशश्चन्द्रिकास्पर्शवर्द्धितः ॥२३३॥

---

१. °मन्थन°—अयो० । २. नैचिकीचय°—मथु० बड़ो० । "नैचिकी–उत्तमा गौः" टि०—मथु०, बड़ो० । ३. विचरन्नङ्गनारत्न°—रीवाँ ।

व्रजोदधिर्महीपाल सेवनीयः सदा जनैः ।
प्रेमानन्दनिदानैकभावपीयूषलब्धये ॥२३४॥

अथ नित्यसखायोऽस्य गोपतीनां कुमारकाः ।
भ्रातरो लक्ष्मणाद्याश्च प्रातः प्रेम्णोपयान्त्यमुम् ॥२३५॥
सर्वान् समागतान् वीक्ष्य तन्माता मत्कुटुम्बिनी ।
नानामाङ्गल्यवचनैः प्रबोधयति सादरम् ॥२३६॥

प्रबुद्धो मुखचन्द्रेण मञ्जुलस्मितशालिना ।
आनन्दयति सौम्येन जननीमङ्गलालयः ॥२३७॥
मङ्गलार्तिक्यविधिना नीराज्य जननी सुतम् ।
परमानन्दपाथोधिं हृदयेन विगाहते ॥२३८॥

अहं च तन्मधुरस्मिताञ्चितं[1] लुलल्ललितलसद्गुडालकम् ।
दृशा मुखं किमपि निपीय कान्तिमन्[2]न तादृशीं मुदमितरत्र संलभे ॥२३९॥
अधित्रियामास्वपि निद्रितोऽवशोऽनुभूय तद्ब्रह्मसुखं परात्परम् ।
श्रीरामचन्द्राननचन्द्रचन्द्रिकाचमत्कृतोऽहं सपदि व्यजीगणम् ॥२४०॥

गोपी प्रोद्वर्त्य रामं मृगजमलयजोन्मिश्र[3]काश्मीरकल्कैः
श्रीखण्डाक्तैः सुगन्धैः स्नपयति सलिलैः सारवैः कोटिसंख्यैः ॥
अङ्गानि प्रोक्ष्य पङ्केरुहदलसुकुमाराणि भूषाविधानैः ।
प्रत्यङ्गं मञ्जु भृङ्गारयति ननु यथा भाति कुन्दाननेन्दुः ॥२४१॥
नेत्रेऽनङ्गशरोपमे मृगदृशां दत्ताञ्जने मञ्जुले ।
कर्णौ कल्पितरत्नचारुमकराकारोल्लसत्कुण्डलौ[4] ।
[5]मूर्द्धभ्यर्हित बर्हिबर्हविहित[6]श्रीमत्किरीटाञ्चितो
नासाग्रं मधुरौष्ठचुम्बिमणिमन्मुक्तालकं श्रीमुखम्[5] ॥२४२॥

भालं कस्तूरिकया तिलकितमुदयन्मञ्जुमृगाङ्कार्धनिभं
ग्रीवा ग्रैवेयकप्रस्फुरित[7] मणिगणालङ्कृतकम्बुच्छविभृत्[8] ॥

---

१. स्मिताननं—रीवाँ। २. मात्रिकां—रीवाँ। ३. मलययोर्मिश्र—अयो०। ४. मकराकारस्फुरत्°—अयो०, मथु०, बड़ो०! ५-५. नास्ति-रीवाँ। ६. वर्हि वृंहित-अयो०। ७. विस्फुरित-मथु०, बड़ो०। ८—°लंकृतं कंबुकंठम्-रीवाँ।

गुञ्जापुञ्जाढ्यमुरो[1] मणिसरभरितं मौक्तिकमाला मिलितं[2]
प्रत्यङ्गं साधुजयत्यनवधि[3]मधुरिम्णा कलितो वेत्रकरः[4] ॥२४३॥

अथ स्वस्वगृहेभ्यस्तं द्रष्टुं गोपालसुभ्रुवः ।
सद्भोजनान्युपादाय समायान्ति मदालयम्[5] ॥२४४॥

स्वाद्यं हैयङ्गवीनं बहुतरसितयाक्तं स्फुटारुण्यमुष्णं
कृष्णाया गोः सुमिष्टं लघुसुरभि पयोऽग्नौ समावर्तितं यत् ।
तस्यैवात्यर्थरुच्यं दधिमधुरतरं पिच्छिलं दुग्धसारम् ।
पक्वान्नान्यद्भुतानि प्रसृमरघुसृणामोदकर्पूरभाञ्जि ॥२४५॥

अनेकरत्नप्रत्युप्तकाञ्चनामत्रमध्यगम् ।
भूयः समुपकल्प्यान्नान्याययुर्व्रजगोपिकाः ॥२४६॥

स तासां चित्तभावज्ञः प्रणयी रामवल्लभः ।
तदन्नमूरीकृतवान् कटाक्षाक्षेपपण्डितः ॥२४७॥

मुग्धं मातृकरोपनीतमतुलं हैयङ्गवीनाञ्चितम्
स्वाद्यं चारु चतुर्विधं तदमलं प्राश्यान्नमात्मीयकैः ।
प्रातर्गोष्ठसहस्रसंजनितगोदोहावसानागतै-
र्गोपालैरभिवन्द्यमानचरणाम्भोजो मदङ्के स्थितः ॥२४८॥

किंचित्संचरणे नभस्तलतटीमारुढमात्रे रवौ ।
गोवत्सान् पुरतो विधाय विपिनान्यापूर्य शृङ्गं ययौ ।
उन्मुक्ताः पुरतो निधाय गणशो गाः कोटिशः कोटिशो
गोष्ठेभ्यः प्रतियातवत्सु मयकादिष्टेषु गोपेष्वपि[6] ॥२४९॥

वालानां शृङ्ग संनादा रामशृङ्गध्वनेन तु ।
तत्क्षणे लक्ष्मणादीनामाविरासुः समंततः ॥२५०॥

गोप्यः शृङ्गरवं श्रुत्वा भवनेभ्यो विनिर्ययुः ।
अलभ्यदर्शनं देवैर्द्रष्टुं रामं समुत्सुकाः ॥२५१॥

अग्रे वत्सान् प्रकृतिसुभगान् यूथशः कल्पयित्वा
पश्चात्तेषां धृतखुररजा[7] गोदुहां बालसङ्घैः ॥

---

१. °ढ्यवक्षो°—रीवाँ। २. °मालाभिरामं—रीवाँ। ३. प्रत्यंगं तस्य-साधूल्लसति–रीवाँ। ४. गुंफितो वेत्रहस्तः–रीवाँ। ५. तदालयं—रीवाँ। ६. °ष्वयं—मथु०, बड़ो०। ७. °पुरजा—अयो०, मथु०, बड़ो०।

क्रीडन् गायन् कमलनयनो वादयन् चारुशृङ्गं
भूषारत्नच्छुरितवपुषा भाति भाग्यैर्व्रजेन्दुः ॥२५२॥
यैर्दृष्टो रामचन्द्रः समयमनुसृतो धेनुवत्सौघचारं
भाग्यस्तोमप्रवृद्धैर्मधुरिमहृदयावेदिभिर्दृक्चकोरैः ॥
तेषां सज्जन्मभाजां प्रतिकरणमुपाविश्य दत्तस्वरूपाः
देवाः किं नो पिबन्ति त्रिभुवनजनतादुर्लभं कान्तिपूरम् ॥२५३॥
प्रसार्य नवशाद्वलेष्वमितधेनुवत्सव्रजं
स्वयं समवयोऽञ्चितैश्चपलगोपबालैर्युतः ॥
प्रतिद्रुमलतावनं प्रतिसरित्तटं संगतः
स्वभावमधुराकृतिः किमपि केलिभिः क्रीडति ॥२५४॥
अत्र श्रीरामचन्द्रो नृपतिकुलमणे केकिरावानुकारी[1]
प्राप्ताः कामेन मत्ताः सुखयति मुदिरश्रीमनोज्ञो[2] मयूरीः ।
अत्रानूकृत्य कीशान् प्रतितरुविटपं कूर्दमानः कुमारः
साकं गोपालबालैर्विहरति नितरां कल्पकेलीकलाढ्यः ॥२५५॥
अत्र पुंस्कोकिलध्वानमनुकृत्य व्रजाधिपः ।
संवर्द्धयन्नुत्कलिकाः[3] कोकिलानां प्रकूजति ॥२५६॥
अत्रानुकृत्य प्रचलन् राजहंसकदम्बकम् ।
हंसीनां मोहयन् चित्तं क्रीडते रामचन्द्रमाः ॥२५७॥
अत्र केशरिणाविष्ट इव संदर्शयन् गतिम् ।
बभूव केकियूथानां पलायननिमित्तताम् ॥२५८॥
अत्रैकसार्थकलितः कलयन् करतालिकाः ।
सिंहान्निर्गमयामास रत्नसानुदरीगृहात् ॥२५९॥
अत्र श्रीविग्रहे मेघे म्लायतोऽक्षि[4]चकोरकान् ।
मुखशारदचन्द्रांशुपातैरानन्दयत् स्वयम् ॥२६०॥
अत्र वक्त्रेन्दुबिम्बेन ताम्यतीश्चक्रवाकिकाः ।
ग्रैवेयकमहारत्नरुचा मुक्तशुचोऽकरोत् ॥२६१॥

---

१. कोकिलावाक्प्रकारी—रीवाँ। २. वाङ्मनोज्ञो—रीवाँ। ३. वर्द्धयन् प्रेमकलिकाः—अयो०, रीवाँ। ४. श्लाघ्यतोऽपि—रीवाँ।

अत्र दूतीगणं व्यग्रं प्राप्तं व्रजपुरात् पुरा ।
मुनिभिस्तोषयामास शश्वद्विरहभञ्जनम् ॥२६२॥
अग्रतो वत्सचारेषु व्याघ्ररूपिणमागतम् ।
अमारयत् स्वयं रामस्तीक्ष्णदंष्ट्रं महासुरम् ॥२६३॥
अत्र कौतूहली रामो दृष्ट्वाजगरमाननम् ।
परीभ्रान्त्या प्रविष्टान् स्वान् प्रवृद्धाङ्गो व्यपाटयत् ॥२६४॥
अत्र वत्सहरं रामो विधिं लोकेशमानिनम् ।
प्रदर्श्य नित्यां लीलां स्वां वीतमानं चकार ह ॥२६५॥
एतत्स्थानेषु[1] नृपते कच्चिच्चेतः प्रसीदति ।
कच्चिद्वानन्यविषया जायते तावकी मतिः ॥२६६॥
इति प्रतिदिनं दधत्सुरभिवत्सचारक्रियां
दिनस्य ननु तुर्यके प्रहर आर्तिहृद्राघवः ।
विहाय वनगह्वरं व्रजपुराभिमुख्यं[2] भजन् ।
स्वयूथपरिवेष्टितो जयति दिव्यलीलानिधिः ॥२७६॥

ब्रह्मोवाच

वत्सचारणवेशेषु नृपं संतोष्य गोपतिः ।
देशान्तरान् दर्शयिष्यन् निनाय तमितोऽन्यतः ॥२६८॥
इमामानन्दाढ्यां दशरथनृपाय प्रगदितां
स्वयं श्रीगोपालव्रजनृपतिना प्रीतमनसा ।
भुशुण्ड प्रेमाढ्यां द्विजवर सदा योऽत्र शृणुया-
ल्लभेद्रामे भक्तिं स इह खलु वश्यत्वजनिकाम् ॥२६९॥
सर्वा रसमयी लीला प्रभोस्तस्य महात्मनः ।
गोपबालतया त्वेषा सद्यः संसारबन्धनुत् ॥२७०॥
तामसा मूढहृदया ग्रामवृत्तिरताः सदा ।
ईदृग्विधा अपि जना यत्राभीराः समुद्धृताः ॥२७१॥
तादृशीं तस्य लीलां तामपहायातिरोचिकाम् ।
अरोचकेन संपन्नः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२७२॥

---

१. एतेषु स्था°—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. व्रजं सुरभि मुख्यं - रीवाँ ।

एषा रघुपतेर्लीला देवेभ्योऽपि सुगोपिता ।
स्थापनीया सदा चित्ते सर्वदा फलरूपिणी ॥२७३॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दशरथतीर्थयात्रायां त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अन्यतस्तं सुसंनीय राजानं प्रेमविह्वलम् ।
उवाच सुखितो गोपो दर्शयिष्यन् प्रभोः कथाम् ॥ १ ॥

सुखित उवाच

सौगन्धिकगिरिर्नाम दृश्यतां नृपसत्तम ।
पर्वतोऽयं महान् राजन् प्रमोदवनभूषणम् ॥ २ ॥
इह देवाः सगन्धर्वा गायन्ति विमलं यशः ।
रामस्यैवाभिरामस्य कोटिकामसुखाकृतेः ॥ ३ ॥
स्नात्वा शुचिमना राममिह भावस्व भूपते ।
पादाब्जधूलिसंपर्कात् कोटितीर्थत्वमागते ॥ ४ ॥
अस्य पर्यन्तभूमीषु नवशाद्वलसंपदा ।
शोभितासु स्वयं रामो गाश्चारयति भूपते ॥ ५ ॥
जगन्मङ्गलमेतद्धि वृत्तं रामस्य संततम् ।
भाव्यते सत्परैः सद्भिर्येन चित्तस्य निर्वृतिः ॥ ६ ॥
चतुर्वेदऋचो ह्येताः सर्वकामदुघा अपि ।
आसुरं भावमाश्रित्य कदर्थ्यन्ते खलैर्जनैः ॥ ७ ॥
तासां रामः स्वयं नेता परमैश्वर्यदण्डभृत् ।
अधिकारिविभेदेन दोग्धि कामान् सतो बहून् ॥ ८ ॥

कर्म ज्ञानं तथोपास्ति[1]र्भक्तिरेतच्चतुष्टयम् ।
श्रुतिकामदुघां दुग्धं रामः पाययते निजान् ॥ ९ ॥
एकैकं स्वैकान्तवशात्प्रत्येकं फलति ध्रुवम् ।
अनैकान्त्यात्परस्याङ्गं भूत्वा च फलति ध्रुवम् ॥१०॥
प्रमोदवनमेतत्तु भक्तिरूपं समन्ततः ।
तस्य भावतृणं प्राश्य[2] प्रेमानन्दफलैव गौः[3] ॥११॥
भावघासाशना नित्यं रसपानीयपानकृत् ।
श्रुतिकामदुघां पङ्क्तिर्भक्तानां स्वेष्टदोहदा ॥१२॥
गोचारणक्रियातत्त्वमिदं ते कथितं मया ।
कीर्तितं श्रुतितात्पर्यविद्भिः सद्भिः सनातनैः ॥१३॥
सौगन्धिकगिरे राजन् परितो विततान्तरम् ।
सौगन्धिकवनं नाम वनानामुत्तमं वनम् ॥१४॥
रामस्यातिप्रियं धाम यत्रातिविमलं सरः ।
सौगन्धिकवनोल्लासरमणीयसुधाजलम् ॥१५॥
तत्र स्नाहि महीपाल दीयतां[4] धेनुराशयः ।
श्रीराममनसस्तुष्ट्यै तीर्थपूर्णफलाप्तये ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

तदग्रे चान्यतो नीत्वा राजानं गोपभूपतिः ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो मोहयन् कलया गिरा ॥१७॥

सुखित उवाच

अयं रत्नाद्रिरुद्भाति श्रीरामचन्द्रविग्रहः ।
धनुर्वाणाङ्कितततनुर्धरणीतलपावनः ॥१८॥
अष्टयोजनसोच्छ्रायश्चतुर्योजलम्बनः ।
योजनद्वयदैर्घ्येण सदामण्डितविग्रहः ॥१९॥
अनेकरत्नशिखरप्रोद्भासितदिगन्तरः ।
सूर्यचन्द्रप्रतीकाशो दिवारात्रं परिज्वलन् ॥२०॥

---

१. कर्मज्ञानतपोयोगै—रीवाँ। २. प्राप्य—अयो०। ३. फलोपत्रम्—रीवाँ। ४. धीयतां—अयो०।

अनेकौषधिसंदोहसंसेवितदरीगृहः ।
गुप्तमन्त्रसाधकैश्च मुनिभिः सुनिषेवितः ॥२१॥
अनेकाकरसंभूतिरनेकवनमण्डितः ।
अनेकद्रुमगुल्मौघलताजालाभिमण्डितः ॥२२॥

इह सरांसि तथा सरितोऽपि वै कति न सन्ति महीपतिसत्तम ।
स्नपयतो सलिलेषु तनुं निजां हृदयशुद्धिजमोदभराप्तये ॥२३॥

सहजानन्दिनीकुण्डे रामकुण्डे मनोहरे ।
अनेकमुनिसंसेव्ये स्नाहि राजर्षिसत्तम ॥२४॥
यत्र स्नानाय मुनयो देवाश्चेन्द्रादयो नृप[1] ।
वाञ्छन्ति विविधैः पुण्यैः प्राक्तनैः सुतपोभरैः ॥२५॥
किं बहूक्तेन राजेन्द्र स्नात्वा चोभयकुण्डयोः ।
मुक्तिलाभमपि प्राज्ञास्तृणवन्मन्यते हृदि ॥२६॥
परब्रह्मणि यत्प्रेम तद्वशीकारकारकम् ।
तदाशु लभते मर्त्यो नात्र कार्या विचारणा ॥२७॥
एकदाहमिह स्नात्वा सहजाकुण्डपार्थसि ।
यदपश्यं नृपश्रेष्ठ तन्न वाच्यं कथंचन ॥२८॥
प्रश्रयावनतं तु त्वां दृष्ट्वात्युत्कण्ठिताशयः ।
कथयामि स्वानुभूतमत्यलौकिकवृत्तकम् ॥२९॥
स्नातमात्रस्त्वहं राजन् दिव्यं लोकं ददर्श ह ।
अतीतं लोकसंस्थायाः कालमायाद्यगोचरम् ॥३०॥
रत्नोप्तहेमप्राकारप्रविस्तृतसुवेष्टनम् ।
कल्लोलिनीसुकल्लोलगम्भीरपरिखाञ्चितम् ॥३१॥
पारिजातवनश्रेणीपरितो भूषितान्तरम् ।
दिव्यगन्धवहोद्वातपरिपावितमद्भुतम् ॥३२॥
सूर्यकोटिस्फुरत्कान्तिदिव्यरत्नशिलाञ्चितम् ।
चन्द्रकोटिशतज्योत्स्नासमुद्भासितमुच्चकैः ॥३३॥

---

१. ऽपि च—रीवाँ ।

अत्यर्थमधुरोदीर्णदिव्यवस्तुविभूषितम् ।
विमानशतसंकीर्णदिव्यस्त्रीनिकराञ्चितम् ॥३४॥
अनङ्गवर्द्धनात्यर्थरुच्यस्त्रीगानमञ्जुलम् ।
सर्वतः सर्वदोत्साहमाङ्गल्यगुणभूषितम् ॥३५॥
परमानन्द संदोहव्याप्तमत्यर्थसुन्दरम् ।
चिदानन्दमयालोकप्रकाशितदिगन्तरम् ॥३६॥
तत्रानन्दमयं दिव्यं विपिनं तस्य मध्यगम् ।
महाकुञ्जमयं वेश्मरत्नमञ्जरितैर्द्रुमैः ॥३७॥
समन्ततः परिव्याप्तं लतामण्डपमण्डितम् ।
सप्तकक्षाभिरुचिरं महद्गह्वरमध्यगम् ॥३८॥
तत्र प्रथमकक्षायां गोपाला वीक्षिता मया ।
द्वितीयकक्षामध्यस्था वेत्रहस्ता मृगीदृशः ॥३९॥
तृतीयकक्षामध्ये च ता एव हरिणेक्षणाः ।
एवं यावन्निजगृहं सर्वकक्षासु संस्थिताः ॥४०॥
मृगीदृशश्चन्द्रवक्त्राः कनकोज्ज्वलविग्रहाः ।
साक्षात्तडिल्लताकाराः सर्वलावण्यसुश्रियः ॥४१॥
कन्दर्पकोदण्डनिभभ्रूभङ्गरुचिभूषिताः ।
अनेकभावपाथोधिवीचिविस्तारवीक्षिताः ॥४२॥
चन्द्रिकाचयसश्रीकमनोज्ञविशदस्मितैः ।
कर्पूरनिकरोद्गारसौरभ्यगुणभूषिताः ॥४३॥
कस्तूरीपत्रमकरीसुकपोलयुगश्रियः ।
अनेकरत्नसंदोहजडिताङ्गगणश्रियः ॥४४॥
कामकान्ताचमत्कारन्यक्कार[1]कररोचिषः ।
साक्षाल्लक्ष्म्य इवामन्दसौन्दर्यनिवहाञ्चिताः ॥४५॥
ततो महारत्नगृहं महासौन्दर्यभूषितम् ।
रत्नभित्तिसमुत्थांशुमञ्जरीचयमण्डितम् ॥४६॥
शृङ्गारसपत्सदनं सदारमनिकेतम् ।
अनन्तमानन्दकरं परमानन्दमन्दिरम् ॥४७॥

---

१. °निष्कार°—अयो० । °दिक्कार°—मथु०, बड़ो० ।

लोकोत्तरगुणाक्रान्तं कान्तिसन्दोहविस्तरम् ।
पुष्पतोरणसंभ्रान्तगुञ्जद्भ्रमरसंभ्रमम् ॥४८॥
कोकिलाकाकलीरम्यकान्तासङ्गीतसंगतम् ।
रणद्वीणास्वरोच्छूनमूर्च्छनानादनादितम् ॥४९॥
तत्रेन्दुबिम्बोज्ज्वलमञ्जुमण्डपे महागणिस्तम्भसहस्रमण्डिते ।
प्रोद्भासि चिन्तामणिवृन्दनिर्मिते सिंहासनं हेममयं ददर्श ह ॥५०॥
तत्र श्रीसहजारामयुगलं भासते रहः ।
अन्योन्यदर्शनानन्दनिर्निमेषविलोचनम् ॥५१॥
अन्योन्यकान्तिपटलीविलिप्तान्योन्यविग्रहम् ।
अन्योन्यस्मितमाधुर्यसुधापानपरायणम् ॥५२॥
अन्योन्यगुणसंदोहकीर्तनासक्तमानसम् ।
अन्योन्यदत्तताम्बूलवीटिकारञ्जिताधरम् ॥५३॥
स्वरकेलीविनोदेन समुद्दीपितमन्मथम् ।
अन्योन्यविग्रहादर्शबिम्बितान्योन्यविग्रहम् ॥५४॥
अन्योन्यभूषणक्षेपचातुर्यकृतवर्णनम् ।
अन्योन्यविमलश्लोकभाषणासक्तिरञ्जितम् ॥५५॥
मणिदिव्यमहारत्नस्तम्भकोत्तंसभूषितम् ।
गुञ्जाफलमहामुक्ताफलहारमनोहरम् ॥५६॥
तडिन्नवघनाकारपीतनीलपटावृतम् ।
रत्नकुण्डलताटङ्ककर्णभूषणभूषितम् ॥५७॥
श्रीवत्साङ्कमहोत्तुङ्गस्तनवक्षस्थलप्रभम् ।
महार्हरत्नकटकवलयश्रीप्रकोष्ठकम् ॥५८॥
सर्वाङ्गभूषाविन्याससमुद्दीप्तशुभाकृतिः ।
स्फुरत्तारुण्यकैशोरवयोऽवस्थाविजृम्भितम् ॥५९॥
कोटिसूर्यशशिद्योतिपादाब्जनखरोचितम् ।
प्रावृषेण्यघनश्रेणीविद्युद्वल्लीचयप्रभम् ॥६०॥
कन्दर्पकोटिलावण्यरतिकोटिप्रभाभरम् ।
तमालविटपालम्बिहेमवल्लीमनोहरम् ॥६१॥

चित्राविचित्रा[1] चेटीभ्यां वामदक्षिणपार्श्वयोः ।
दिव्यचामरयुग्मेन वीज्यमानं दिवानिशम् ॥६२॥
अन्याभिश्चालिभिर्दिव्यनानोपायनपाणिभिः ।
मुखचन्द्रचकोरीभिः समन्तात् परिवारितम् ॥६३॥
कलाचन्द्रकलाभ्यां च सिंहासनवरादधः ।
महार्हे स्फाटिके पीठे संवाहितपदाम्बुजम् ॥६४॥
रसिकासुरसाभ्यां च विधृते दर्पणद्वये ।
संवीक्ष्यमाणमनिशं निर्मलां वदनश्रियम् ॥६५॥
संभावितप्रभावं च सहसाम्राज्यसंपदा ।
कोटिब्रह्माण्डजनकमहापुरुषपौरुषम् ॥६६॥
दाम्पत्यरसपाथोधिसमास्वादनपण्डितम् ।
दिव्यभोगकलादक्षमक्षीणगुणवैभवम् ॥६७॥
इति सप्तमकक्षास्थैः सुरैर्ब्रह्मशिवादिभिः ।
अनेकसूक्तिसंदोहमुखरीकृतदिङ्मुखैः ॥६८॥
चातुर्वेद्योपनिषदां सूक्तिसंतानपल्लवैः ।
समंततः स्तूयमानं प्रसादलवलब्धये ॥६९॥
तैरेव प्रहितैः किंचिद्विज्ञप्तिविनिवेदनैः ।
महितासु हितालिभ्यामानीतैर्भृत्यपत्रकैः ॥७०॥
वाचितैः सहसाज्ञातकोटिब्रह्माण्डवृत्तकम् ।
ततः पुरुषधौरेयं प्रत्याज्ञावाक्यकारकम् ॥७१॥
कोटिब्रह्माण्डनाथानां नन्दनोक्तीरनुक्षणम् ।
ऊर्मिला जटिला प्रोक्ता गृहीत्वा सस्मिताननम् ॥७२॥
कोटिब्रह्माण्डजननं कोटिब्रह्माण्डसंस्थितम् ।
कोटिब्रह्माण्डनाशं च कोटिब्रह्महरीश्वरैः ॥७३॥
पण्डिता कोविदाभ्यां च सखीभ्यां सकराञ्जलिम् ।
निवेदितमुपश्रुत्य विलोकितपरस्परम् ॥७४॥

---

१. चित्रविचित्रा—मथु०, बड़ो० । चित्रं विचित्र—अयो० ।

श्रिया पुष्ट्या सरस्वत्या कान्त्या कीर्त्या तथैव च ।
तुष्ट्येलयोर्जया चापि विद्ययाऽविद्यया तथा ॥७५॥

शक्त्या[1] च मायया नित्यं समुपासितदृग्बलम् ।
कटाक्षवीचिसंसिक्तचैतन्यपरमामृतम् ॥७६॥
स्त्रीवेशयित्वा चात्मानं निगमैः समुपागतैः ।
सुदूरस्थ[2]सखीवृन्दे मिलित्वा दृष्टमद्भुतम् ॥७७॥
धीरोद्धतगुणग्रामगरिमाञ्चितविग्रहम् ।
तथैव धीरललितगुणग्रामसुखावहम् ॥७८॥
धीरोद्धतगुणागारविशिष्टतरवैभवम् ।
धीरप्रशान्तगुणकं योगिभिर्हृदि शोलितम् ॥७९॥
अवीक्षितानादितह्रीमायादासीविभावितम् ।
कदा मयि प्रसन्नः स्यात् प्रभुरित्यवलोकितम् ॥८०॥
अनन्तगुणमाहात्म्यमनन्तश्रीभरान्वितम् ।
अनन्तकीर्तिकलितमनन्तैश्वर्यसंयुतम् ॥८१॥
अनन्तोदारचरितमनन्तभवतारणम् ।
अनन्तश्रुतिसंगीतमनन्तज्ञानगह्वरम् ॥८२॥
ईदृशं सहजारामयुगलं वीक्ष्य मज्जने ।
तत्क्षणान्मूर्च्छितो भूत्वा जनैस्तल्पे निपातितः ॥८३॥
अहं तु तत्रैवागच्छं यत्र ध्यानं प्रवर्त्तितम् ।
सप्तमद्वारकक्षायां मूर्तिमत्या प्रवेशितः ॥८४॥
महामाणिक्यभवने गत्वा वासं सुविस्मितः ।
वन्दनं कारितो दूरात्तातः स्थानानि दृष्टवान् ॥८५॥
रासमण्डलमूर्जस्वत्कोटिसूर्यसमप्रभम् ।
क्रीडतः सहजारामौ यत्र गोपीकदम्बकैः ॥८६॥
शृङ्गारमण्डपं भास्वद् गुञ्जागारस्य मध्यतः ।
विभूष्येते सखीवृन्दैर्यत्र तौ रत्नभूषणैः ॥८७॥

---

१. सत्या—अयो०, रीवाँ। २. सद्वरस्थ°—रीवाँ।

विशालमण्डपं श्रेष्ठं दिव्यं रत्नविनिर्मितम् ।
यत्र तौ रहसि स्थित्वा विलासं कुरुते भृशम् ॥८८॥
शय्यामण्डपमुद्दीप्तदीपिकाशतभासुरम् ।
सुरतान्तविनिद्राणौ यत्रतावालिवीजितौ ॥८९॥
सुगन्धिपवनोद्वातं भाति भोजनमण्डपम् ।
यत्र तौ किल भुञ्जाते स्वाद्वन्नं तच्चतुर्विधम् ॥९०॥
केलीमण्डपमुद्भाति कोटिसूर्येन्दुसन्निभम् ।
आत्मानं पणयित्वा तौ यत्र द्यूतेन खेलतः ॥९१॥
अभ्यङ्गमण्डपं भाति सौरभोद्गारसौभगम् ।
अभ्यज्येते सखीभिस्तौ यत्र स्नेहैः सुगन्धिभिः ॥९२॥
संस्नानमण्डपं भास्वत्कोटिरत्नमरीचिभिः ।
यत्र तौ स्नपयन्त्याल्यो गङ्गाद्यास्तीर्थशक्तयः ॥९३॥
धूपमण्डपमुद्भाति धूपसौरभमण्डितम् ।
तौ मुक्तचिकुरौ यस्मिन् धूपयन्ति सखीजनाः ॥९४॥
वसन्तमण्डपं भाति यत्र स्थित्वा प्रियौ च तौ ।
पुरस्तात्पश्यतो हेमपुष्पसर्षपकाननम् ॥९५॥
ग्रीष्ममण्डपमुद्भाति हिमधामसुशीतलम् ।
अनेकजलयन्त्रौघैः सिच्यमानं समन्ततः ॥९६॥
वर्षामण्डपमुद्भाति कदम्बतरुमध्यगम् ।
यत्र स्थित्वा विलोक्यन्ते वलाकिन्यो घनालयः ॥९७॥
शरन्मण्डपमुद्भाति मल्लीकाननमध्यगम् ।
महाजलाशयोत्फुल्लकुमुदाम्भोजमध्यगम् ॥९८॥
चन्द्रज्योत्स्नाचमत्कारविपुलाङ्गणभासुरम् ।
चकोरीमयनिक्वाणजाग्रत्पञ्चाशुगोन्मदम् ॥९९॥
फुल्लसप्तच्छदामोदिनातिशीतोष्णमञ्जुलम् ।
मल्लिकाकुसुमामोदतरङ्गितसमीरणम् ॥१००॥
हेमन्तमण्डपं भाति कुञ्जगह्वरमध्यगम् ।
हसन्तीभिर्हसदिव निर्धूमाङ्गारकान्तिभिः ॥१०१॥

कर्पूरदीपिकोद्भ्रान्तं तूलगर्भपटावृतम् ।
रंगशय्यामनोहारिनिरुद्धपवनागमम् ॥१०२॥
वातायनसुसंलग्नशतखण्डमनोहरम् ।
अन्तरावर्तगम्भीरवीणामुरजनिःस्वनम् ॥१०३॥
कुन्दकाननमध्यस्थं भाते शिशिरमण्डपम् ।
तैलसौरभसंमिश्रं पुष्पसारोत्थसौरभम् ॥१०४॥
वनानि द्वादशेमानि तत्र दृष्टानि भूपते ।
गुञ्जद्भ्रमरपुष्टानि नादितानि च कोकिलैः ॥१०५॥
शुकाङ्गनासमुद्भूतसहजारामनामभिः ।
सर्वतोमुखरीभूतदिग्दलानि दिवानिशम् ॥१०६॥
वसन्तलक्ष्मीजुष्टानि पुष्पसंपत्तिभाञ्जि च ।
नवपल्लवरागेण शोभितानि समन्ततः ॥१०७॥
सुवर्णलतिकापुष्पफलपत्रसमृद्धिभिः ।
विचित्रीकृतमध्यानि हरिन्मणिनिभैर्दलैः ॥१०८॥
विचित्रपत्रजुष्टानि विचित्रसुमभाञ्जि[1] च ।
वसन्तचित्रकारेण लिखितानीव सर्वतः ॥१०९॥
इमान्येव च कुञ्जानि तत्र दृष्टानि वै मया ।
पुष्पसौरभसारौघसंपन्नानि समन्ततः ॥११०॥
रहस्यस्थानमुक्तानि रत्नमण्डपभाञ्जि च ।
उत्फुल्लनवराजीव मकरन्दसुगन्धिभिः ॥१११॥
राजहंसकुलक्वाणकलितैर्निर्मलाम्बुभिः ।
सरोभिर्मणिमाणिक्यबद्धसोपानपङ्क्तिभिः ॥११२॥
सर्वतः सेवितान्यद्धा दिव्यगोपीगणैरपि ।
वीणामृदङ्गमुरजध्वनिकाहलितानि च ॥११३॥
नवोढाकेलिजुष्टानि मध्याप्रोत्साहनानि च ।
प्रौढाक्रीडनसंदोहसर्वतोरुचिराणि च ॥११४॥

---

१. सुमनांसि—अयो० ।

तेषु दूतीसखीचेटीनर्मज्ञानां कदम्बकम् ।
अद्राक्षमहमत्यर्थदिव्यवेशसुवर्ष्मणाम् ॥११५॥
क्रियास्वनङ्गस्वाराज्यवर्द्धनीषु समाकुलम् ।
दूतानां च सखीनां च चेटकानां विटात्मनाम् ॥११६॥
नर्मज्ञानां पीठमर्दप्रवराणां कुलं तथा ।
अपश्यं स्वस्वव्यापारै रसवृद्धिविधायिनाम् ॥११७॥
क्वचिन्मानं क्वचित्तापं क्वचित्प्रेमरुषं तथा ।
क्वचित्कान्ताभिसरणं क्वचिद्दूतीप्रयोजनम् ॥११८॥
क्वचिद्वशीभूय शश्वत्तत्रैवानिशसंस्थितिम् ।
क्वचिदुत्कलिकामार्तिं क्वचिद्विरहसंभवाम् ॥११९॥
दर्शंदर्शमहं भावान् प्रेमजानत्यलौकिकान् ।
मत्तवन्मूढवज्जाड्यं प्राप्तवत्तत्क्षणेऽभवम् ॥१२०॥
नकिञ्चित् स्मृतवान् राजन् कोऽहं वा कुत आगतः ।
इत्यलौकिकभावेन संपन्नश्चकितोऽभवम् ॥१२१॥
ददर्श पुनरेवाहं सरयूं पावनीमिमाम् ।
रत्नवद्धद्विकूलाढ्यां मणिसोपानमण्डिताम् ॥१२२॥
राजहंसकुलक्रीडानिक्वणाञ्चितपूरगाम् ।
शरत्कालशशिज्योत्स्नावलक्षजलकेलिनीम् ॥१२३॥
उत्तुङ्गवीचिसंघट्टघटाताण्डवकारिणीम् ।
लोलकल्लोलपटलैश्चुम्बतीं द्यामपि स्फुटम् ॥१२४॥
श्रीरामभक्तिसंपन्नमुनिवर्याह्निकेष्वपि ।
क्षमदात्रीं प्रेमदात्रीं प्रेमानन्दमयोदकाम् ॥१२५॥
सौगन्धिकगिरिर्दृष्टस्तत्रैव सुमनोहरः ।
सौगन्धिकवनोपेतसरसीशतशोभितः ॥१२६॥
तत्रैव चैषरत्नाद्रिर्दृष्टोऽत्यर्थमनोहरः ।
सुवर्णरत्नशिखरप्रोद्भासितदिगन्तरः ॥१२७॥
अनेककन्दरावेश्मरहस्यस्थानशोभितः ।
धनुर्वाणाङ्कतेजोभिः कोटिसूर्येन्दुभास्वरः ॥१२८॥

अनेकनिर्झरस्रावशीतलग्रावमण्डितः ।
नक्षत्रमालां गगने शिरोभिः संवहन्निव ॥१२९॥
दृष्टं प्रमोदविपिनं सर्वमेतदलौकिकम् ।
दृष्टानि गोपीवृन्दानि प्रेममत्तानि सर्वतः ॥१३०॥
पालीग्रामनिवासीनि दिव्यवेशयुतान्यहो ।
दृष्टश्च नन्दनो राजन् भ्राता मे प्राणसंमितः ॥१३१॥
तत्पत्नी च महोदारा दृष्टा श्रीराजिनी मया ।
सहजानन्दिनी कन्या संशोभितसमीपका ॥१३२॥
सर्वे चिदानन्दमया अखण्डरुचिमण्डिताः ।
गोगोपगोपीनिकरास्तर्णकानां गणास्तथा ॥१३३॥
येषां दर्शनमात्रेण दिव्यो भावः प्रजायते ।
श्रीरामविषयं प्रेम वर्द्धते प्रतिवासरम् ॥१३४॥
भ्रममाणस्तेषु तेषु स्थानेष्वद्भुतकान्तिषु ।
न तृप्तिमानहं जातः पिबन्माधुर्यमुन्नतम् ॥१३५॥
सर्वत्र च मया दृष्टं सहजारामयोर्युगम् ।
कोटिनागरिकावृन्दसमुपासितमद्भुतम् ॥१३६॥
इत्यहं स्वप्नवद्दृष्ट्वा प्रबुद्धः सद्य एव च ।
विहाय मूर्च्छनामन्तरह्नायै समुपस्थितः ॥१३७॥
तद्दर्शनजसंस्कारवर्द्धिष्णुविरहव्यथः ।
गृहे वने घने शैले न क्वापि स्वस्थतां भजे ॥१३८॥
सा मे प्राणान्तकरणी महार्तिः समवर्द्धत ।
पाण्डुक्षाममुखप्रेम्णा शनैश्चित्तापवर्ष्मणा ॥१३९॥
अप्रतीकार्यमतुलं दुःखं विरहसंभवम् ।
अथ नेतुं शुको नाम योगीन्द्रः समुपागतः ॥१४०॥
निर्जनं स्थानमालम्ब्य स्थितोऽहं तेन संगतः ।
पाद्यार्घाचमनीयाद्यैः पूजयामास तं मुनिम् ॥१४१॥
पाण्डुक्षामतनुं दृष्ट्वा पृष्टोऽहं तेन योगिना ।

श्रीशुक उवाच

कच्चित्तव सुखं धीमन्नस्वस्थ इव लक्ष्यसे ॥१४२॥
अस्वास्थ्यकारणं ब्रूहि गोपराज सुखी भव ।
मादृशामतिथीनां त्वं हितोऽसि व्रजवल्लभः ॥१४३॥
तदाहं मुनिशार्दूलं स्वाधिकारणमुक्तवान् ।
ततो हसित्वा मां प्राह सूक्ष्मदर्शी महामुनिः ॥१४४॥

शुकउवाच

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि गोपराज नमोस्तुते ।
यस्य साक्षात्सीतानाथधाम ते दृष्टिगोचरम् ॥१४५॥
यन्न वेत्तुं शक्नुवन्ति मुनयो योगशीलिनः ।
तपस्विनो ज्ञाननिष्ठास्त्रिकालज्ञा अपि स्फुटम् ॥१४६॥
तत्ते रामपदं साक्षादक्षरं ब्रह्ममध्यगम् ।
प्रमोदाख्यं परं धाम दृशोर्गोचरतां गतम् ॥१४७॥
एतद्धि तस्य कृपया जातं ते गोपभूपते ।
योगिनामप्यलभ्यं यत् प्रमोदवनदर्शनम् ॥१४८॥
अचिरादेव ते भाग्यं भविता नात्र संशयः ।
सहजावल्लभो रामस्त्वद्गृहेऽवतरिष्यति ॥१४९॥
त्रिदिवेऽप्यहमश्रौषं यत्ते भाग्यं भविष्यति ।
पौलस्त्योपद्रुता देवाः साक्षाद्रामं ययाचिरे ॥१५०॥
चतुर्मुखं पुरस्कृत्य गताः सर्वे दिवौकसः ।
सरय्वाः पुलिने रम्ये कुञ्जपुञ्जे मनोरमे ॥१५१॥
तत्र प्रमोदविपने राममन्दिरमद्भुतम् ।
कोटिसूर्येन्दुसंकाशं यत्र हेममणिक्षितिः ॥१५२॥
ऐरम्मदीयमतुलं यत्रामृतमयं सरः ।
तुलसीवनवातेन वीजितं यद्दिवानिशम् ॥१५३॥
चिन्तामणिमयं यत्र साक्षाद्रामनिकेतनम् ।
सखीदासीचेटिकाद्यैः पार्षदैः समलङ्कृतम् ॥१५४॥

---

१. धाम—अयो०, मथु, बडो० ।

सखायो द्विभुजा यत्र धनुर्बाणादिभूषिताः ।
यत्र कामादिदोषाणां[1] प्रवेशो नैव विद्यते ॥१५५॥
स तस्मिन् भवने भाति कोटिब्रह्माण्डनायकः ।
रामचन्द्रो धर्ममयः साक्षात्परात्परः प्रभुः ॥१५६॥
रतिकुञ्जे रङ्गमये शयनं समधिष्ठितः ।
सीताकरसरोजाभ्यां संवाहितपदाम्बुजः ॥१५७॥
श्रीवत्सवक्षा देवेशो वनमालाविभूषितः ।
कौस्तुभोल्लासितग्रीवः सिद्धचष्टकनिषेवितः ॥१५८॥
स्फुरद्रत्नकिरीटाढ्यः श्रुत्योर्मकरकुण्डली ।
महार्हरत्नहारेण जातवक्षस्थलप्रभः ॥१५९॥
देवाभ्यां शङ्खचक्राभ्यां कौमोदक्या च शुभ्रया ।
पद्मेन चातिशोणेन[2] हरितालेन शोभितः ॥१६०॥
नन्दकेन च खड्गेन शार्ङ्गेणाद्भुतधन्वना ।
अन्यैस्तथाज्ञावशगैरायुधैः सुनिषेवितः ॥१६१॥
पीताम्बरतडित्कान्तिनीलमेघतनुप्रभः ।
साक्षान्मूर्तिधरैर्वेदैः सामादिभिरभिष्टुतः ॥१६२॥
तस्य तद्विमलं धाम प्रमोदवनमद्भुतम् ।
तत्समीपे सुराः प्राप्ताः ब्रह्माद्याः स्वस्वविष्टपात् ॥१६३॥
तुष्टुवुर्विविधैः सूक्तैश्चतुर्वेदमुखोदितैः ।
तदन्ते प्रार्थयाञ्चक्रुरार्ति स्वां विनिवेद्य ते ॥१६४॥
पौलस्त्योऽति दुराशयस्त्रिजगतां संदर्शयन् भीमतां
तीर्णो नीतिपथं सदा समजुषामस्माकमुद्वेजनः ।
वन्दीकृत्य स नः सुरेन्द्रकमलां तापं तनोत्युच्चकै-
र्दुष्टं तं प्रतिकर्तुमेव भवता सत्यं निजं स्मर्यताम् ॥१६५॥
ततः पद्मभवं प्राह व्योम्ना स भगवान् गिरा ।
उपलेभे विधिस्तां तु स्पष्टमात्मसमाधिना ॥१६६॥

---

१. देवानां—रीवाँ । २. शोभेन—अयो० ।

राजा दशरथो नाम सर्वभूपनमस्कृतः ।
रघुवंशभवः साक्षाद्धर्मात्मातिथिपूजकः ॥१६७॥
तद्गेहेऽवतरिष्यामि देवानां हितकाम्यया ।
भुवि मत्परिचर्यार्थं त्रिदशांस्त्वं समादिश ॥१६८॥
सुखितो नाम गोपालः प्रमोदवनमध्यगः ।
तद्गृहे विहरिष्यामि पूर्णं रूपमुपाश्रितः ॥१६९॥
तस्मै वितीर्णो मयका पुरा वरः स्वरूपगानन्दसुलब्धिहेतवे ।
तेनैव भाग्येन युतः स गोपतिः सत्येन चानन्यगतेन संयुतः ॥१७०॥
प्रमोदवनलीलानामयमास्वादको भुवि ।
तस्य व्रजः सर्वसंपत्समृद्धगुणभाजनम् ॥१७१॥
सदैव मम लीलानां स्थानभूतो भविष्यति ।
ब्रह्मा च तदुपाश्रुत्य यथावत्त्रिदशाञ्जगौ ॥१७२॥
तस्मात्त्वं सुखितः श्रीमान् कथयामि यथा तथा ।
त्वद्गृहे श्रीरामः साक्षादुपैष्यति न संशयः ॥१७३॥
इति योगीन्द्रवचनमाकर्ण्याहं सुनिर्वृतः ।
विरहानलदग्धोऽपि प्रतीक्षां दधदाशया ॥१७४॥
अचिराच्च तथैवासीद् यथोक्तं शुकयोगिना ।
परमानन्दरूपो मे सदनं समुपागतः ॥१७५॥
यस्य माधुर्यपाथोधिमग्नान्तःकरणः सदा ।
तृणाय मन्ये देवेन्द्रसंपदं नृपसत्तम ॥१७६॥
इति ते सहजाकुण्डमाहात्म्यं कथितं मया ।
मम यद्भाविकल्याणसूचकं स्नानमात्रतः ॥१७७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थ-
यात्रायां चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११४॥

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

राजोवाच

धन्योऽसि गोपनृपते तव भाग्यसीमा नो शक्यते बुधवरैरपि चाधिगन्तुम् ।
यद् दुर्लभं सुरवरैरपि योगिमुख्यैस्तत्ते फलं भगवता स्वयमेव दत्तम् ॥१॥
नूनं तथैव सदने प्रणयेन बद्धो रामो रमापतिरशेषसुखाब्धिरास्ते ।
केलीः कदापि कलयन् प्रकटाः कदाचिद् गुप्ताः स्वयं स भगवानणिमादिबन्धः२

भूयोऽपि नः सखे ब्रूहि रामस्यैव शुभान् गुणान् ।
मुहुर्यच्छ्रवणेनैव कृतार्थं जगतीजनुः ॥ ३ ॥
बाल्यपौगण्डकैशोरशुभे वयसि शोभितः ।
यच्चकार स्ववीर्येण गुप्तः श्रीलक्ष्मणाग्रजः ॥ ४ ॥
पदानि तानि नश्चक्षुःप्रमोदाय प्रदर्शय ।
येषु येषु स्थितो रामः सुखेन भवतां व्रजे ॥ ५ ॥

सुखित उवाच

कच्चित्त्वमुत्कलिकयातिसमाकुलोऽसि कच्चिद्रसेन सहजेन वशीकृतोऽसि ।
यन्मां नियोजयसि मित्रमुहुर्मुहुस्तत्संकीर्तने सुरवधूश्रवणाभिरामे ॥६॥

सुपर्वाणः शश्वत्त्रिदिवपुरवामाधरपुटी
सुधाहेलावन्तः सुविहितसुधानादरधियः ।
रमन्ते रामस्याप्रमितरससंवाहिनि सदा
गुणव्रातस्रोतस्यतिशयितसंमोदविवशाः ॥ ७ ॥

पश्यन् सखे व्रजपदानि सुखावहानि भर्तुः[1]र्वशीकरणकारणसौभगानि ।
सस्नाहि साधु रसवाहिनि रामचन्द्रप्रेमामृतद्रवसरस्यवगाह्य गाढम् ॥८॥

पश्येमा विपिनस्थली[2]र्नवदलश्रेणीमिलन्मञ्जरी—
पुञ्जारञ्जितमञ्जुकुञ्जलतिकालावण्यलक्ष्मीजुषः[3] ।
कूजत्कोकिलकाकली[4]कलकलक्रुद्धप्रबुद्धस्मर—
क्रीडाकृष्टधनुर्गुणध्वनितुलाझङ्कारिमत्तालयः ॥ ९ ॥

---

१. चक्षु°—मथु०, बड़ो० । २. नास्ति—अयो० । ३. °पुषः—मथु०, बड़ो० ।
४. धैय—अयो० ।

अत्र द्वादश कुञ्जभूमय इमाः कामस्य केलीगृहा-
स्तत्पूजाप्रवणत्वतो रसनिधिर्यासु प्रविष्टः पुरा ।
आदिश्यानुजमात्मनः प्रणयिनं गोधोरणीचारणे
विस्तार्य स्फुटमाधिदैविकगुणैः कालं कलानां निधिः ॥१०॥

एतास्तच्चरितस्थलीः प्रतिपदं पूताः पदैरङ्किताः
क्रीडां यासु चकार कार्मुककरः सिंहादिदुर्जीवहा ।
गोपानां शिशुभिश्चकार सहितः सम्यक्फलास्वादनात्
तृप्तो वंशिरवं समस्तजगतीसंमोहनार्थं दधत् ॥११॥

एतत्स्थलं महाराज यत्र रामः शिशुत्वतः ।
बदरीफलमास्वाद्य कुपथ्यं रहसि स्थितः ॥१२॥
तदा निवेदितं गोपबालैः श्रुत्वा सतर्जनम् ।
निषिषेध करे कृत्वा कुपिता मत्कुटुम्बिनी ॥१३॥
नाहं बभक्षेति प्रोच्य व्यादाय वदनं स्थितः ।
सा तन्मुखपुटेऽपश्यद् ब्रह्माण्डरचनामिमाम् ॥१४॥
भूतं भवद्भविष्यच्च त्रिधाकालाश्रितं जगत् ।
तद्विलोक्य चकम्पे स मेने मायामिवात्मनि ॥१५॥
क्षणाद्विस्मृतवृत्ता च प्रणयाधीनमानसा ।
अपाययत् स्तनं तस्मादङ्कमारोप्य लालनैः ॥१६॥

जगदघहरणं चरित्रमस्य प्रकृतिमनोहररूपवैभवस्य ।
श्रुतिपथमुपयातमात्रमन्तः परिपवनं च मदादिदोषराशेः ॥१७॥
मनुज इह यथा यथा शृणोति प्रसभमरोचकमस्य संक्षिणोति ।
कलयति च तथा तथा पटुत्वं परतरसूक्ष्मपदार्थवेदनाय ॥१८॥

इमानि तानि स्थानानि येषु श्रीलक्ष्मणादिभिः ।
बालकेलीं व्यधत्तासौ विविधामात्मरञ्जनीम् ॥१९॥
क्वचित्सर्वे बाला कृतपणनकौतूहलपरा
वितन्वन्तोऽन्योन्यं किमपि जयवार्तां प्रतिगणम् ।
जयी तेषां मध्ये रमणकुतुकी राम उदगात्
समस्तानां धौर्त्ये[1] परमरसविस्तारचतुरः ॥२०॥

क्वचित् पर्वे च गोपाला वेणूनेकपदे लघु ।
रणयाञ्चक्रुरत्यर्थं कन्दराद्विगुणध्वनीन् ॥२१॥
क्वचित् सर्वे मल्लयुद्धं कुर्वन्तोऽन्योन्यमुच्चकैः ।
जये पराजये चैव कौतुकं सुमहद्व्यधुः ॥२२॥
क्वचित् पक्षिगिरः[1] सर्वे क्वचित् पशुगिरो वने ।
कूजन्तं रम्भमाणाश्च चिक्रीडुर्लक्ष्मणादयः ॥२३॥
ता एता वनवीथयः सतिमिराः सान्द्रैस्तमालद्रुमै-
र्वल्लीमण्डपमण्डिता अपिहिताः कुञ्जाः कुटीकोटरैः ।
यासु क्रोडितमक्षिमुद्रणकरैः कौतूहलेनार्भकै-
रन्योन्यं व्रजगोदुहां रसवशैस्तेषां तु रामो वरः ॥२४॥
क्वचिद्वन्यफलक्षेपैः क्वचिदुत्प्लुत्य केलिभिः ।
क्वचित्करलतास्फोटैः क्वचित्कुसुमकन्दुकैः[2] ॥२५॥
ता एताः पश्य राजेन्द्र सान्द्राः काननवीथिकाः ।
उत्फुल्लमल्लिकावल्लीसौरभेण समाचिताः ॥२६॥
वत्सचारणमेतासु सरयूतटभूमिषु ।
चक्रे रामो रमणकृन्नन्दयन् हृदयानि नः ॥२७॥
एतासु सरयूकूलभूमीषु नृपसत्तम ।
गोचारणक्रियादक्षो विजह्रे लोकमङ्गलः ॥२८॥

एतेषु रत्नगिरिरम्यशिलातलेषु गोचारणश्रमित एत्य सुखाय रामः ।
मध्याह्नकालकरणीयमुपास्य भोज्यं रेमे समानवयसां निवहैः शिशूनाम् ॥२९॥

वीक्ष्य मध्याह्नमासन्नं कृपया मत्कुटुम्बिनी ।
गोपीः संप्रेषयामास विश्वस्ता भोज्यवस्तुषु ॥३०॥
कामा धामा रमा पद्मा लीला शीला सरस्वती ।
इरावती पार्वती च नवैताः पाककारिकाः ॥३१॥
रामस्य रुच्यं रसनीयमन्नं पचन्ति सम्यक्कमनीयमेव ।
तद्रत्नपात्रेषु निधाय नित्यं मुद्राङ्कितं संप्रहिणोति गोपी ॥३२॥

---

१. पाक्षीर्गिरः—रीवाँ, बड़ो० । २. कदम्बकैः—अयो० ।

समुपस्कृत्य चान्नानि चतुर्धा रसवन्ति च ।
गोपालिकाकरानीतान्यत्ति रामः सलक्ष्मणः ॥३३॥
भरतश्चैव शत्रुघ्नः सखायो वृषभादयः ।
अश्नन्ति स्वादुकारेण पात्रेष्वन्नं चतुर्विधम् ॥३४॥

शिलासु पत्रेषु फलेषु चैव पात्रेषु हैमेषु च मार्त्तिकेषु ।
चतुर्विधं स्वादुमुपस्कृतं तं संभोज्य भारं बुभुजे वयस्यैः ॥३५॥
पशुपबालकमण्डलमण्डितः सभरतः सहलक्ष्मणशत्रुहृत् ।
विमलरत्नविभूषणभूषितो विरचितामितलासकुतूहलः ॥३६॥
अध्युपत्यकमधिष्ठितो गिरेर्बालकेलिकलितश्रमः स्वयम् ।
मण्डलानि विनिवध्य गोदुहां बालकैः स शुशुभे मणीन्द्रवत् ॥३७॥
फलानि रुच्यानि सहात्र भूरि प्रकारवर्यैः शिशुभिः समृद्नन् ।
अशेषयज्ञेश उदारहासः स यज्ञभुक् क्रीडति रामचन्द्रः ॥३८॥
एवं समाप्याशनकेलिमेष प्रसन्नधीर्नागदलान्वितास्यः ।
सुरञ्जितोष्ठः शयने दलानां निषीदतिस्मावृतमण्डपेषु ॥३९॥
केचिद् गोपकुमारकाः सुकृतिनो वीणास्वनं दध्वनुः
किञ्चित्किञ्चिदुदञ्चिपञ्चमरवा[1]स्तेनुः परे मूर्च्छनाः ।
किंचित्तस्य सरोजपल्लवमृदु श्रीमत्पदाब्जद्वयम्
प्रेम्णा संममृदुः परे व्यजनजैर्वातैः प्रभुं भेजिरे ॥४०॥

ततश्चतुर्थे प्रहरे दिनस्य शुभाय सर्वव्रजवासिनां नृणाम् ।
येनाध्वनोपाववृते तमेतं पश्यन्मनोनिर्वृतिमृच्छ राजन् ॥४१॥
गोचारस्य प्रथमदिवसे सोदरस्ताडकाया-
श्चण्डो नाम्ना बहुभुजबलो राक्षसः क्रूरकर्मा ।
येऽन्येऽनेके विविधवपुषो राक्षसा बद्धकक्षा-
रामेणैते सपदि निहता बाधका गोधनस्य ॥४२॥
तेषां मुखोद्गतं तेजो ज्वलदुल्कासमाकृति[2] ।
व्यलीयत हरौ रामे साक्षात्कारणमानुषे ॥४३॥

---

१. "उच्चैरालापित पंचमस्वराः" टि०—मथु० । २. °यसाकृतिः—अयो० ।

गाश्चारयित्वा विपिनात्संनिवृत्तो रोचिः सौम्यं बिभ्रदभ्रौघनीलम् ।
गोसंदोहं स्वाग्रतः कल्पयित्वा रेजे रामो लक्ष्मणाद्यैरुपेतः ॥४४॥

गायन्तश्च हसन्तश्च खेलन्तश्चारुकेलिभिः ।
वादयन्तश्च शृङ्गानि रेजिरे सुहृदोऽखिलाः ॥४५॥

तेषां मध्येऽभिनव्याम्बुद[1]रुचिरतनुः पीतकौशेयधारी ।
गुञ्जाबर्हाभिरामो मृगमदतिलकी कुण्डलोद्द्योतिगण्डः[2] ।
वन्यैः पुष्पैरनेकैः स्रजमुरसि दधल्लिप्तधातुद्रवाङ्को ।
बिभ्रद्वंशीनिनादं नट इव शुशुभे मल्लकक्षापिधानः ॥४६॥

हसन् हासयन् गोदुहामेव बालान् ध्वनन् ध्वानयन् वंशिकां लक्ष्मणाद्यैः ।
व्रजप्राणदः शोणिपद्माङ्घ्रियुग्मो[3] व्रजं रामचन्द्रो वनादाजगाम ॥४७॥

स्वस्वप्रासादमौलीन् सुखमधिरुरुहुः सस्मिता[4] वामनेत्रा
विश्लेषं वासरोत्थं शिशमयिषुहृदः[5] सादरास्तस्य दर्शे ।
दूराद् वंशीविषाणध्वनिजनितजवाद्विस्मृताशेषकृत्याः
जातोद्वेगा इवाङ्गाभरणपटविपर्यासविन्यासवत्यः ॥४८॥

तासां वक्त्रेन्दुबिम्बैर्गगनतलमभूत् सर्वतोऽङ्कावकीर्णं
सन्ध्याभ्रारुण्यभाभिर्मिलिततनुरुचा विद्युदाभा विरेजुः ।
आलिङ्गन्त्यः समन्तात्प्रियतममसकृत्क्षिप्तनेत्रान्तभागै-
स्तारुण्योद्वेलितास्ताः सरित इव ह्रिया नैव रुद्धा गुरूणाम् ॥४९॥

रामोऽपि ताः सविनयं नयनान्तप्रोतप्रेमोदयः प्रहितसर्वविधप्रमोदः ।
संवीक्ष्य सादरमनङ्गरसेन सर्वा गोष्ठं विवेश जननीनयनाभिरामः ॥५०॥

तं मत्कुटुम्बनिधिरेत्य निपीय दृग्भ्यां संचुम्ब्य बिम्बमधुराधरमास्यचन्द्रम् ।
आरात्रिकेन विधिना प्रणयार्द्धभाजा चक्रेऽर्हयां प्रबल वत्सलभाववश्या ॥५१॥

इत्येवमेव मदनायुतकोटिरूपमाधुर्यसारजलधिः प्रतिवासरं सः ।
गोचारणं च दितिजासुरमर्दनं च चक्रे व्रजस्य च सुखं सुखदायिशीलः ॥५२॥

तमथोद्वर्तयाञ्चक्रे सुस्निग्धा मत्कुटुम्बिनी ।
उत्सौरभेण पङ्केन गर्भिता गुरुनाभिना ॥५३॥

---

१. °रुण°—रीवाँ । २. पशुखुररजसा चित्रलम्बालकास्यः–अयो०, मथु०, बडो० । ३. श्रोणिकोटीन्दुशोभा—रीवाँ । ४. सुस्मिता—अयो० । ५. "निवर्तकान्तः करणाः" टि०—मथु० ।

उष्णोदकैः स्नापयित्वा सारवैर्गर्भसौरभैः[1] ।
विमुक्ताध्वश्रमं पश्चाद् भोजयामास सा सुतम् ॥५४॥
उद्वर्तितस्नातनिषण्णभुक्तनिर्भुक्तताम्बूलदलस्य तस्य ।
सा कारयाञ्चक्र उपासिनीभिश्चित्रालये कामपि रङ्गशय्याम् ॥५५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे महाराजतीर्थ-यात्रायां व्रजागमने पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

•

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तमन्यतस्ततो नीत्वा सुखितो गोपसत्तमः ।
दर्शयामास तत्स्थानं यत्र कालाहिमोचनम् ॥ १ ॥

सुखित उवाच

स्थानं तदेतद्राजेन्द्र सरय्वाः सरसि स्फुटम् ।
कोटितीर्थमयं राजन् कालाहिर्यत्र मोचितः ॥ २ ॥

राजोवाच

वद कोऽयं कालसर्पः कस्माद्रामेण मोचितः ।
एतन्मे संशयं छिन्धि किं च तीर्थस्य कारणम् ॥ ३ ॥

सुखित उवाच

राज्ञो भगीरथस्यासीत् सचिवो वै सुलोचनः ।
राजा भगीरथश्चासीत् गङ्गार्थे वै[2] तपोरतः ॥ ४ ॥
तपस्यति प्रभौ मन्त्री स्वयं राजधुरन्धरः ।
बभूव बहुवित्तेशो तन्निधाय भुवि न्यधात् ॥ ५ ॥
यावदायाति राजेन्द्रो जाताशेषप्रयोजनः ।
तावन्मूर्तिं गतो मन्त्री राजा तं चान्वतप्यत ॥ ६ ॥

---

१. °गौर सौ°—अयो० । २. गांगतीर्थे—रीवाँ । गंगार्थे च—अयो० ।

अहो मम हितो मन्त्री कां गतिं नु गमिष्यति ।
स च वासनया तत्र निधौ सर्पोऽन्वजायत ॥ ७ ॥
अनेकफणमालाभृल्लोलजिह्वाग्रभीषणः ।
जातिस्मरो भुजङ्गोऽसौ करालतरभोगवान् ॥ ८ ॥
स तस्मिन् विपिने घोरे हरेरिच्छानुवर्तिनः ।
लिहन् वनतृणं भूमौ संचचार कदापि वै ॥ ९ ॥
तल्लीढानि तृणान्यत्त्वा काश्चिद्गावोऽस्य दैवतः ।
तत्क्षणान्मूर्च्छितास्तावै ततो वीरश्चुकोप सः ॥१०॥
मूर्छाकारणमन्विच्छंस्तासां रामः सुधानिधिः ।
ददर्श विपिने गूढं वल्मीकं तृणराशिभिः ॥११॥
तत्र कौतूहली रामः सर्वदर्शनकेलिकृत् ।
सर्पाकर्षणकृद्वाद्यं वादयामास कानने ॥१२॥
स तेन वाद्यध्वनिना विषं वमन् वल्मीकमध्यात्सहसोदसर्पत ।
तमेष पद्भ्यां सहसा समाक्रमन् मूर्द्धस्वधिष्ठाय ननर्त कौतुकी ॥१३॥
त्रुटच्छिरास्तस्य पदोपमर्दनैर्जगाद सद्यो भुजगः शिरः स्थितम् ।
भगीरथस्यास्मि दुरन्तपातको भुजङ्गयोनिं सचिवः समागतः ॥१४॥
स पूर्वजस्ते रघुवंशकेतोरितीव विज्ञाय विमोचयस्व माम् ।
निधिश्च वल्मीकगतोऽनुगृह्यतां कस्मिंश्चनार्थे विनियोजयस्व तम् ॥१५॥
तच्छ्रुत्वा रघुशार्दूलः पुत्रस्तव नृपोत्तम ।
जगाद मुक्त एवाहे[1] पादस्पर्शेन मेऽसि भोः[2] ॥१६॥
ततो विहाय सचिवस्तां योनिं दिव्यविग्रहः ।
विमानाग्रमधिष्ठाय रामं नत्वाप सद्गतिम् ॥१७॥
विलं निखन्य गोपालैर्ब्राह्मणेभ्योऽददद्धनम् ।
कोटितीर्थसमं जातं तत्खातं देवखातवत् ॥१८॥
तत्र काकोऽवगाह्याम्बु सद्यो दृष्टश्चतुर्भुजः ।
तदावधि च प्रत्यक्षं तीर्थमेतदभून्नृप ॥१९॥

---

१. एवाहिः—अयो०, रीवाँ । २. शिशोः—अयो०, प्रभोः—रीवाँ ।

ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सर्पो रामेण मोचितः ।
तद्वासरे हि खातेऽस्मिन् यात्रासोत् प्रतिवत्सरम् ॥२०॥
अहिखातं नामतीर्थमिदं यः स्नाति मानवः ।
स घोरेणापि पापेन सार्पीं योनिं न गच्छति ॥२१॥

इति ते कथितं राजन्नहितीर्थस्य कारणम् ।
रामस्य पुण्यं चरितं तव पुत्रस्य भूपते ॥२२॥
एतच्च सरयूमध्ये नागतीर्थं प्रचक्ष्यते ।
मणिमान्नाम नागो वै यत्र रामेण नाथितः ॥२३॥

नागालयेऽस्ति मणिमानितिकीर्तिताऽहि-
वर्यः शतेन शिरसी सुविराजमानः ।
तावन्मणिप्रकरदीधितिदीप्तिदीप्तो
यः सारवे सरसि निर्भय आस तार्क्ष्यात् ॥२४॥
प्रमोदवनमाहात्म्यात्तत्र वैरं न विद्यते ।
परस्परं वैरिणोऽपि निर्वैरा यत्समासते ॥२५॥
अहिशिखाबलयोरहितार्क्ष्ययोर्मृगतरक्षुकयोर्महिषाश्वयोः ।
अथ परेष्वपि तद्वदुदीक्ष्यते न कलहः प्रमुदाटविवासिषु ॥२६॥

सुखमास्ते ततो नागः सारवे सलिले ह्रदे ।[1]
कुल्यो गरलदाहेन तावत्संतापितोदकः ॥२७॥
गरोग्रदहनोद्भवप्रबलदाहनिष्क्वाथितं
ह्रदस्य कलुषीकृतं जलममुष्य जन्तूज्झितम् ।
पतन्ति दिवि योजनादुपरि यत्र याताः खगाः[2] ।
कुलायविनिवासिनो निरसवो विषज्वालया ॥२८॥

तस्मिन्ह्रदे कदाप्यस्य गावः पीत्वाम्बु मूर्च्छिताः ।
ता वीक्ष्य रामचन्द्रेण सुधादृष्ट्या सुजीविताः ॥२९॥
तत एष ह्रदं तु सारवं सहसा निर्गरलं चिकीर्षुकः ।
निपपात जवेन तज्जले भुजदण्डभ्रमभग्नतद्गृहः ॥३०॥

---

१. गृहे—रीवाँ । २. यातोऽपि वै—अयो०, मथु०, बड़ो० ।

स उत्कुपितमानसः प्रतिपदं श्वसन्नुद्गतः
प्रचण्डशतजिह्विकाललन[1]भीषणास्यव्रजः ।
कृतः सपदि निर्जवस्तदभितो भ्रमन्[2] क्रीडया
रराज रघुपुङ्गवः प्रबलबाहुदण्डोर्जितः ॥३१॥

तावदस्य सुहृदश्च सखायो रामदर्शनवियोगसुतप्ताः ।
हाहहेति विलपन्त उदीर्णाः स्वान्तशोकविवशा परिमम्लुः ॥३२॥

अथायमुदगात्तस्माद्ध्रदादुपरि सौख्यदः ।
तावत्तमेष मणिमान् भोगेन निरवेष्टयत् ॥३३॥
घन[3]ध्वान्तौघनीलेन भोगेनाहेः स वेष्टितः ।
आसीदावेगकृत्तेषां सुहृदां परिपश्यताम् ॥३४॥
नन्दिग्रामे महोत्पातान् वीक्ष्य सर्वे वयं नृप ।
आवेगान्निःसृता ग्रामं विहाय तमवेक्षितुम् ॥३५॥

तस्मिन्दिने गृह एवासुरेते गोपालका वृद्धवयोजुषो ये ।
इतीव चिन्तां हृदयेऽव्रजन्नरा नार्यश्च निःसृत्य वनं प्रविष्टाः॥३६॥

विचिन्वतोऽस्य पदवीं प्रमोदवनमध्यतः ।
आययुः सरयूतीरे यत्र रामोऽहिवेष्टितः ॥३७॥
तं पृष्ट्वा ते वयं सर्वे रुद्धजीवा इवाकुलाः ।
पतितुं सरयूवारिण्यैच्छन् मूर्छितमानसाः ॥३८॥
पततोऽस्मान् समालोक्य लक्ष्मणोनिरवारयत् ।
मन्वानो रामचन्द्रस्य प्रभावं दैववत्स्वयम् ॥३९॥

अथ क्षणेनामितशीर्षं उदचयौ महाहिसंवेष्टनतो दयानिधिः ।
ततोऽहिवर्यस्य महच्छिरःशतं पद्भ्यां समाक्रम्य फणाग्रमास्थितः ॥४०॥

नटन्नटवरोचितप्रचलिताङ्घ्रिकामश्रियः
शिरःसु कृतमर्दनः क्रमत एव तान्युच्छ्रयात् ।
अनामयदसृग्वमन्त्युपशमं गतानि स्फुटं
वयं समभिवीक्ष्य तच्चरितमन्तरा नन्दिताः ॥४१॥

---

१. °उल्वण°—अयो० । २. भवन्—अयो० । ३. वन°—अयो०, मथु०, बडो० ।

तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य वयस्यबाला[1] वीणाविषाणपणवानकभूरिघोषाः ।
उच्चैर्नटन्तमहिमूर्द्धसु कन्धलीलां भूयोऽस्य लास्यमनुकृत्य सिषेविरे गाम् ४२

इत्युपमर्द्य फणाः फणितु[2]र्नटराजोचितकेलिकलावान् ।
गोगोपीगोपतिकमनीयो विधिवन्नाट्यमशेषं चक्रे ॥४३॥

तं विलोक्य खचराः सुरदेव्यो व्योमयानमुदपास्य नमन्त्यः ।
वन्दनीयचरणाम्बुजमाराद् गीतवाद्यकलनैरुपसेदुः ॥४४॥

सिद्धर्षिदेववनिताप्सरसां समूहैर्व्योमाकुलं समजनि क्षणतः समन्तात् ।
आः साधु दण्डयति नागमसावितो[3] यङ्गीः सर्वतः समुदगाद्भुवि चाम्बरे च ॥

जीवन्नुर्वरितः स तस्य नटने काकोदर[4]ग्रामणीः
कान्ताभिः खलु मोचितो व्रजपतेः कृत्वा स्तुतिं सूक्तिभिः ।
कारुण्यामृतसागरः स भगवांस्तेनापि भूयः स्तुतः
तत्स्थानान्निरवासयत्तमुदकं चक्रे ततो निर्विषम् ॥४६॥

इति गायत[5]श्चरितमस्य भूपतेर्व्रजवासिलोकसुरवृन्दवीक्षितम् ।
विजहाति कालभुजगोद्भवं भयं पुरुषार्थसार उपसीदति ध्रुवम् ॥४७॥

ततो द्विजन्मप्रवराः शुभाशिषः प्रयुज्यमानाः खलु नः समाययुः ।
वितीर्य तेभ्यो द्रविणानि भूरिशः समागताः स्वानि गृहाणि ते वयम् ॥४८॥

प्राप्तप्राणाः कृच्छ्रतो दैवमात्राद् गोपा गोप्यो राममालोक्य हृष्टाः ।
सर्वे देवान् पूजयाञ्चक्रुरेते चक्रुर्मुक्तारत्ननिर्मञ्छनं च ॥४९॥

रामाभिषेकं विदधौ सुप्रीता मत्कुटुम्बिनी ।
द्विजाभिमन्त्रितैस्तोयैः सारवैरमृतोपमैः ॥५०॥

हुत्वाग्निं विधिवद्विप्रैर्भोजयित्वा च तान् बहून् ।
अभिषिच्य शिवं चैव तस्य भद्रं ययाचिरे ॥५१॥

गोदोहसंभवं क्षीरमुपायुञ्जन्न तद्दिने ।
रामस्य शुभमिच्छन्तः पुनर्गरलशङ्कया ॥५२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दशरथतीर्थयात्रायां
(कालियदमनं) नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६॥

---

१. तं किन्नरीपतय आत्तमृदङ्गवाद्य°—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. फणागणतुंडम्—रीवाँ । ३. रामखलानितो°—अयो०, मथु०, बड़ो० । ४. "काकोदरः सर्पः" टि० मथु० । ५. गोपतेः—रीवाँ ।

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

सुखित उवाच

इदं च विपिनं राजन्नशोकद्रुमशोभितम्[1] ।
नानावन्यद्रुमाकीर्णं पूतं रामाङ्घ्रिरेणुभिः ॥ १ ॥
अत्र विज्ञाय गोचारमनादृत्य मुनीश्वराः ।
ज्ञाततत्त्वास्तत्कृपया[2] पश्चाच्छरणमाययुः ॥ २ ॥
याज्ञवल्क्यो भरद्वाजो गौतमोऽत्रिस्तथाङ्गिराः ।
शाण्डिल्यो वरतन्तुश्च कौत्सः शातातपो भृगुः ॥ ३ ॥
अन्ये च मुनयस्तत्र सरयूतीरवासिनः ।
महत्सत्रमुपासीनाः केचिच्च क्रतुकारिणः ॥ ४ ॥
अधितस्थुर्मुनिश्रेष्ठाः सर्वे प्रमुदकानने ।
अशोकवनवाटचान्ते[3] कर्मतन्त्रक्रियाकुलाः ॥ ५ ॥
अथ गोचारणं कर्तुं रामो गोष्ठाद्विनिर्गतः ।
तुल्यवेशैर्वृतो गौपैर्गोपवेशविभूषितम् ॥ ६ ॥
गुञ्जावर्हवरावतंसमकराकारस्फुरत्कुण्डल-
श्रीमद्रत्नमहार्हमौक्तिकवरस्रङ्मेखलाभूषितः ।
विद्युत्पीतदुकूलभृन्नवघनश्रीर्मल्लकक्षाञ्चितो[4]
गोष्ठादेव पुरः स्फुरत्पशुकुलो वेणुं रणन्निर्ययौ ॥ ७ ॥
तमन्वयुर्गोपवराः समंतादनेकनामान उदारचित्ताः ।
शिखावलैरावतमेघवर्णसुकण्ठमालाधरवञ्जुलाद्याः ॥ ८ ॥
ते सर्वे विविशुर्गोपा प्रमोदविपिनं महत् ।
समंततः कुसुमितं पुष्पस्तबकचित्रितम् ॥ ९ ॥
कूजद्विचित्रद्विजनादमञ्जुलं मयूरकेकारवभूरिघोषितम् ।
समोदमत्तभ्रमरालिगानवत् समुल्लसत्कोकिलकाकलीयुतम् ॥१०॥

---

१. मंडितं—अयो० । २. ज्ञानतत्त्वान्युपायांश्च—रीवाँ । ३. °वोपान्ते—रीवाँ । ४. कच्छाञ्चितो—मथु०, बडो० ।

प्रमोदवनमध्ये तु सहजावनमद्भुतम् ।
तत्र प्रवालबर्हादिभूषणैस्तमभूषयन् ॥११॥
ततो दूरं गताः सर्वे गवां पृष्ठेषु संयताः ।
अतीत्य रत्नाद्रिद्रोणीमशोकवनमाययुः ॥१२॥
ग्रीष्मैर्भानुकरैस्तीक्ष्णैस्तापिता व्रजवासिनः ।
आतपत्रीकृत्य तरून् सरयूपरतो ययुः ॥१३॥
ते वृक्षाः पुष्पवर्षाद्यैः श्रीरामं समवाकिरन् ।
लताश्च स्तबकोत्तुङ्गस्तनमण्डलमण्डिताः ॥१४॥
ते बर्हधातुनवपल्लवभूषिताङ्गाः पत्रातपत्रतलरुद्धकठोरघर्माः[1] ।
तद्गोकुलं सरसि पाययितुं सरय्वाः सर्वे समाययुरुदारपतेः सखायः ॥१५॥
गोकुलं पाययित्वापः सारवोः स्वादु शीतलाः ।
स्वयं पपुश्चैव गोपा रामाद्या लक्ष्मणादयः ॥१६॥
अथाशोकवने प्राप्ताः पुनरेव व्रजौकसः ।
राममूचुरिदं राजन् क्षुद्भ्रातृव्येण बाधिताः ॥१७॥
हे राम हे लक्ष्मण शत्रुसूदन प्रकृष्टकीर्ते भरताग्रणीः सखे ।
सुदुःसहा क्षुत्कुरुते रुजं ततो विधीयतां तच्छमनं सुहृद्गणे ॥१८॥
उपागता नाद्य खलु व्रजात्स्त्रियो या आनयन्तेऽवसरेण[2] भोजनम् ।
मध्याह्नवेलामतियाति भास्करो विशेषतोऽद्य क्षुदुपप्लुता वयम् ॥१९॥
नास्मिन्नशोकद्रुमकानने पुनः फलानि पक्वानि गवेषितान्यपि ।
विधीयते यैः खलु वृत्तिरौदरी तदत्र संचिन्तय मण्डलाग्रणीः ॥२०॥
इति विज्ञापितो गौपैः रामः कमललोचनः ।
क्षणं विचिन्त्य प्रहसन्नुवाच रुचिरं वचः ॥२१॥

श्रीराम उवाच

शिखीबलैरावतमेघवर्णा सुकण्ठमालाधरवञ्जुलादयः ।
सर्वे वयं तु यदि यज्ञवाटिकां व्रजेयुरन्नं तदिहानयेयुः ॥२२॥
यजन्ते ब्राह्मणा ह्यत्राविदूरे क्रतुकर्मभिः ।
याज्ञवल्क्यादयो नित्यं सत्रं ये गोतमादयः ॥२३॥

---

१. °बर्हाः—अयो०—रीवाँ । २. °रेऽन्न°—मथुं०, बडो० ।

तेषां सत्रे क्रतौ यज्ञे मखे चैव व्रजन्तु ते ।
दास्यन्त्यन्नं द्विजन्मानो नो चेत्तेषां वधूर्वराः ॥२४॥
इत्यादाय प्रभोराज्ञां गोपाला वनमालिनः ।
बर्हधातुविचित्राङ्गास्तत्र गत्वा ययाचिरे ॥२५॥

गोपा ऊचुः

नमो वै द्विजवर्येभ्यो यत्तेभ्यो सत्रकर्मणि ।
मुनिभ्यो दीर्घदर्शिभ्यो हेतुभ्यो लोकशर्मणः ॥२६॥
रामेण प्रेषिता गोपाः सर्वे वयमुपागताः ।
भवतां सविधे विप्राः कार्यार्थं श्रूयतां च तत् ॥२७॥
इतो विदूरे गोचारं कुर्वन् रामः सलक्ष्मणः ।
समागतोऽशोकवने वादयन् वेणुमस्ति वै ॥२८॥
स मण्डलाग्र्यः सर्वेषां गोदुहां नः क्षुधाकुलः ।
याचतेऽन्नानि वो विप्राः पवित्राणि शुभानि च ॥२९॥
यज्ञकर्मावशिष्टानि यथासंपादितानि च ।
क्षुधितेभ्यः प्रदत्तानि साङ्गं कुर्वन्ति कर्म च ॥३०॥
इति श्रुत्वा वचस्तेषां केचिद्दीर्घाभिमानिनः ।
अनाकर्णितकेनैव भग्नाशांस्तान् प्रचक्रिरे ॥३१॥
केचिदूचुर्द्विजा गोपान् रामेणाचरितं शुभम् ।
यद्राजन्यकुले जातो गाश्चारयति कानने ॥३२॥
धात्रीपतेः सुखितस्याज्ञयासौ गृहीतगोचारणमध्यमक्रियः ।
किमन्नमन्विच्छति नो द्विजन्मनां मखोचितं ब्राह्मणभोजनोचितम् ॥३३॥
केचिन्निर्भर्त्सयाञ्चक्रुरपसर्पन्तु शूद्रकाः ।
ब्रह्मकर्म न वो दृष्टिगोचरं स्यादिति द्विजाः ॥३४॥
ततस्ते भग्नसंकल्पाः सौम्या गोपालपुङ्गवाः ।
राममागत्य सर्वेऽपि तथैवोचुर्द्विजेरितम् ॥३५॥
ततः प्रोवाच तान् रामो विहस्य कमलेक्षणः ।
पत्नीशालामनुव्रज्य तत्पत्नीर्मयि सादराः ॥३६॥
सर्वे भवन्तो याचन्तांदास्यन्त्यन्नानि ताश्च वः ।
चिरान्मयि धृतस्नेहाः प्राणेभ्योऽपि प्रियादपि ॥३७॥

कृतार्थयिष्यन्ति च ताः स्वान् पतीन् निजयोगतः ।
जन्मान्तरे च मत्कान्ता[1] सख्यमेष्यन्ति ताः स्त्रियः ॥३८॥
इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाक्यं गोपाला जातसंभ्रमाः ।
परस्तादद्यज्ञवाटस्य पत्नीशालां समाययुः ॥३९॥
तत्र गत्वार्षिपत्नीभ्यो गोपा अन्नं ययाचिरे ।
नमो वो मुनिपत्नीभ्यो व्रतिनीभ्यो मखे विधौ ॥४०॥
देयान्यन्नानि वो देव्यः क्षुधितेभ्यः पतिव्रताः ।
अशोकवनमध्यस्थः प्रेषयामास नः प्रभुः ॥४१॥
रामः सर्वगुणारामः शीघ्रमन्नं प्रदीयताम् ।
इति श्रुत्वाखिलाः पत्न्यो मुनीनां दीर्घकर्मणाम् ॥४२॥
अन्नं चतुर्गुणं स्वादु स्वहस्तपरिपाचितम् ।
आच्छाद्य प्रययुः सर्वा रामचन्द्रदिदृक्षया ॥४३॥

यत्राशोकलतानिकुञ्जभवने क्रीडन् रणन् वंशिकां
गोपालैः सवयोभिरात्तमदनन्यक्कारिलीलारसः ।
सौन्दर्यैकसुधानिधिः सुमनसां कान्ताभिरालोकितो
रामस्तिष्ठति तत्र ताः सरभसं पत्न्यो मुनीनां ययुः ॥४४॥
रुद्धास्ता मखवाटिकाशुभवनद्वारिप्रियैर्दुर्जनै-
स्तं प्रत्यूहमुदस्य रामकरुणामात्रेण संप्रस्थिताः ।
संकल्पः प्रभुहेतवे यदि भवेत्सार्थस्तदासौ न किं
सर्वानर्थनिवारणैकचतुरा यैर्ध्यात आत्मा निजः ॥४५॥

संवीक्षणीयः पशुपालमण्डलीमध्यस्थितो रामसुधानिधिर्दृशः ।
इत्थं व्यवस्य प्रणयेन संयुता मुनिस्त्रियोऽयुर्मुनिवर्जिता अपि ॥४६॥
तास्तस्य वंशीनिनदं मनोहरं दूरात्समाकर्ण्य मुनीन्द्रसुभ्रुवः ।
उद्वेगरागोदधिमग्नमानसाः शनैरशोकाटविकां समाययुः ॥४७॥

तत्र स्थितं पशुपमण्डलमण्डनाग्र्यं पीताम्बरं नवसुधाघननीलकायम् ।
पद्मेक्षणं सुरुचिरस्मितमूषितास्यं लोलालकावृतकपोलयुगं मनोज्ञम् ॥४८॥

---

१. मत्कीर्ति°—रीवाँ ।

स्कन्धेऽनुगस्य निहितोरुभुजं करेण द्वैतीयकेन कलयाभ्रमनन्तमब्जम् ।
पारे परार्धमितपञ्चशरावतारं वीक्ष्यान्तरा विनिदधुर्मुनिवर्यपत्न्यः ॥४९॥
रामः प्रसन्नमुखचन्द्रसुधास्मितौघैस्तासां मनश्चिरवियोगहुताशदग्धम् ।
आनन्दसारजलधिः स्नपयाम्बभूव जातास्तदेकहृदयाः सहसा यथामूः ॥५०॥
ऊचे प्रभुः करुणया कलयन्नशोकास्ता योगिवर्यदयिताः स्मयमान एव ।
सुस्वागतं सुवदना भवतीभिरत्र प्रीतिर्मयि स्फुरति वः सुकृतावलीनाम् ५१
मय्यात्मनि प्रियतमे प्रणयं विधाय स्वर्गापवर्गपदवीष्वपि मुक्तवाञ्छाः ।
लोकोत्तरा मम जनाः सुखमासते वै मृत्योः शिरे निजपदं सहसा विधाय ५२

धन्या भवत्यो वनिता मुनीनां निःसाधना एव फलं यदापुः ।
किं ते क्रियातन्त्रनिबद्धचित्ता युष्माकमीशाः फलवस्तुमुग्धाः ॥५३॥

कृतार्थाः स्थ भवे यूयं न पुनर्वो भवागमः ।
भवतीनां संगमेन तेऽपि यास्यन्ति तत्फलम् ॥५४॥
इत्युदीर्य वचस्ताभिरानीतं भूरि भोजनम् ।
श्लाघ्यमानः सखियुतो बुभुजे यज्ञभुक् स्वयम् ॥५५॥
ता ऊचिरे समधिगम्य महाप्रसादं
प्राणेन संप्रति न नः प्रिय मोक्तुमर्हः ।
त्वत्पादपद्मयुगमेतदमूल्यदास्यो
नित्यं यथा परिचरेम तथा विदध्याः ॥५६॥
उवाच ताः सुवदना गच्छन्तु मखवाटिकाम् ।
भवत्यः सुखमेधन्तां विनिधाय मनो मयि ॥५७॥
इतो भवान्तरे सख्यो लप्स्यध्वं वाञ्छितं फलम् ।
भूत्वा श्रीसहजादेव्या नित्यसंगा निजालयः ॥५८॥

इति वितीर्णवरो वरदेश्वरो मुनिवधूर्विससर्ज कथंचन ।
सपदि ता अपि तेन वशीकृता निजगृहाणि ययुर्ननु कृच्छ्रतः ॥५९॥

तासां ते दर्शनं प्राप्य कृतिनीनां मुनीश्वराः ।
श्रीरामं विगणय्यान्तरनुतेपुर्मुहुर्मुहुः ॥६०॥

मुनय ऊचुः

अहो किं कृतमस्माभी रामो राजीवलोचनः ।
भजन्नपि न वै भेजे प्रपन्नशरणप्रदः ॥६१॥

अहो नु तस्य वात्सल्यं पत्नीमूढान् दुरात्मनः ।
स्वयमेवानुजग्राह नास्माभिर्विदितं पुनः ॥६२॥
एता एव परं धन्याः स्त्रियोऽपि फलसाधिकाः ।
याभिश्चन्द्रमुखो रामो दृष्टो राजीवलोचनः ॥६३॥
स्वतन्त्र एष भगवान् दाता स्वर्गापवर्गयोः ।
अवतीर्णो हरिः साक्षात् सतां कल्याणहेतवे ॥६४॥
धिगस्मान् धिक् च नः सत्रं धिग्जनुर्धिक् च नः कुलम् ।
यन्नावकलितो रामः पूर्णं ब्रह्म सनातनः ॥६५॥
एतासां दर्शनं पुण्यमसतां पापनाशनम् ।
याभिर्दृष्टो दृशा साक्षाद्रामचन्द्रः स्वयं प्रभुः[1] ॥६६॥
भविष्यति महद्भाग्यमेतासां कथयैव नः ।
रामे सर्वसुखाराम्ये यत्स्याज्जन्मान्तरेऽपि धीः ॥६७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रायां व्रजागमने सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

सुखित उवाच

इदं स्थानं महाराज यत्र रामः शुभाकरः ।
गोगोपगोपिसंदोहान् दावाग्नेः पर्यरक्षयत् ॥ १ ॥
ज्योतिर्लिङ्गेश्वरं नाम लिङ्गमत्र त्रिशूलिनः ।
सर्वे कृष्णचतुर्दश्यां दर्शनार्थमुपाययुः ॥ २ ॥
गोपा गोप्यश्च सकलाः स्नात्वा वै सारवेऽम्भसि ।
सङ्कल्पव्रतमातेनुः शिवस्य वरदेशितुः ॥ ३ ॥
ते पूजयित्वा वरदं पञ्चकालमुमापतिम् ।
इहैव विपिनेऽवात्सुः सस्त्रीपशुकुमारकाः ॥ ४ ॥

---

१. रामो रामचंद्रः स्वयं—बडो० ।

अर्धरात्रे व्यतीते तु समन्ताद्विपिनं दहन् ।
उपस्थितो दाववह्निर्ज्वालाभिर्गगनं लिहन् ॥ ५ ॥
अभ्रङ्कषज्वालविशालमालादुर्दर्शरूपो विलिहन् समन्तात् ।
भस्मीकरिष्यन् पशुपां कुलानि दावानलः पर्यवृतत्[1] स तत्र ॥ ६ ॥
सुप्तानि खेचरकुलानि यदीयदेशेष्वण्डानि दावदहनेन विनिर्दहन्ति ।
त्यक्त्वा स्व[2]जीवितहितैषिण उच्चकैः खमुड्डिडिचरे सकरुणं कलितस्वनानि॥
कोला वनेवसतयो निभृतं सनिद्रा आकस्मिकेन दववह्निशिखागणेन ।
संप्लुष्यमाणवपुषः परितो भ्रमन्तः क्वापि प्रवेशमनवाप्य विनाशमापुः॥८॥
त्रस्ता दवेन करिणश्च करेणुयुक्ताश्चीत्कारिणः प्रतिरवाकुलकाननान्तः ।
शुण्डोच्छलज्जलभरेण वपुर्नितान्तमुक्षन्त एव दवदाहभृतो मुमूर्च्छुः ॥ ९ ॥
आवेजिता वनकृशानुकरालकीला मध्येऽनुधावितमपि प्रसभं न शक्ताः ।
सिंहा मृगाश्च शिखिनो भुजगाश्च यूथैरन्योन्यवैरमुदपास्य सहैव तस्थुः।१०।
वित्रासिनो मृगजपोतगणाः समन्ताद् भ्राम्यन्त आकुलधियो वनपावकेन ।
उत्सर्पता स्वजननीभिरपि प्रमुक्ता नो वर्तितुं न चलितुं च तदाङ्ग[3] शेकुः ॥
इत्थं ज्वलत्यविरतं विकरालरूपे दावानलेऽतिविकला व्रजवासिलोकाः ।
शोकाकुलीकृतधियोऽन्यविचारशून्याः श्रीराममेव शरणं सहसा प्रजग्मुः१२

लोका ऊचुः

हे राम राम रघुराम सदाभिराम
हे लक्ष्मणाग्रज सदा कुशलैकधाम ।
सर्वाधिहन् निजजनव्रजपालनेऽपि
किं सर्वशक्तिसमुपेत विलम्बनेन ॥१३॥
डाकिन्यः कालरूपं विकटविदलनं वीरवात्यासुरघ्नं
वत्साकारारिमारं भुजगगरहरं श्येनशार्दूलवारम् ।
यादोनाथाभिमानप्रसरनिरसनं शक्रकोपोपसृष्टा-
सारत्राणातपत्रं विगतिशरणदं त्वां वयं संश्रिताःस्म ॥१४॥

---

१. पर्यवृतः—मथु०, बड़ो० । २. त्यक्त्वाशु—अयो०, तत्काल°—रीवाँ ।
३. वदितुं न—रीवाँ ।

इत्थमभ्यर्थितो रामः स्वानां वीक्ष्य दवापदम् ।
उवाच यूयं सर्वेऽपि मुद्रयन्तु विलोचनम् ॥१५॥
ततः स्वयं पपौ रामो दुर्वारं दावपावकम्
क्षणान्निववृते तापः पशुपक्षिमहीरुहाम् ॥१६॥
इत्थं संशमिते दाहे दावपावकसंभवे ।
गावो गोपास्तथा गोप्यः सर्वे भद्राणि लेभिरे ॥१७॥
आकस्मिकदवोद्भूतमहानलनिवारणे ।
रामे विस्मितचित्तास्ते सर्वेऽप्यासन् व्रजौकसः ॥१८॥
तमेतमासुरं वह्निं शमयित्वा वनौकसाम् ।
क्रीडन् व्रजजनैः साकमियाय व्रजमीश्वरः ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

अथैनमन्यतो नीत्वा बभाषे गोपपुङ्गवः ।
एष भद्रवटो नाम न्यग्रोधो बहुपादपः ॥२०॥
अत्रैव निहतौ रामलक्ष्मणाभ्यां महाबलौ ।
दुस्सहो दुर्धरश्चोभौ क्रूरौ दानवपुङ्गवौ ॥२१॥
गोचारचतुरौ रामलक्ष्मणैर्भ्रातृसंगतौ ।
गोकुलानि पुरोधाय यदा गोष्ठाद्विनिर्गतौ ॥२२॥
सर्वगोपालसहितौ सर्वभूषणभूषितौ ।
तदा न्यविशतां मञ्जुप्रमोदवनमद्भुतम् ॥२३॥
ग्रीष्मेऽपि स्वगुणैरेव वसन्तायितमद्भुतम् ।
सौगन्धिकगिरिस्राविनिर्झरोदकशीतलम् ॥२४॥
सरयूजलकल्लोलसंगिमारुतशीतलम् ।
कूजत्सारसचक्राह्वकारण्डवकुलावृतैः ॥२५॥
कलहंसकृतोन्मादै राजहंसनिषेवितैः ।
सरोभिः पल्वलैः कुण्डैर्वापिकाभिश्च मञ्जुलम् ॥२६॥
वटकल्पतरुच्छायासीनपक्षिमृगाकुलम् ।
कोकिलोद्गीतमनिशं मल्लिझंकारमञ्जुलम् ॥
उत्फुल्लकमलामोदवाहित्रिविधमारुतम् ॥२७॥

तत्र प्रवालशिखिपिच्छविचित्रधातु-
गुञ्जौघभूषितवपुःसुभगाः समस्ताः ।
रामादयो विविधकेलिविनोदविज्ञा-
श्चिक्रीडुरात्तरसरञ्जनरक्तचित्ताः ॥२८॥

केचिन्ननृतुरन्योन्यमपरे युयुधुश्च ते ।
परे जगुस्तदन्ये च वाद्यानि परिदध्वनुः ॥२९॥

वंशीवेणुविषाणादीनापूर्यमधुरस्वरैः ।
सर्वतो घोषयाञ्चक्रुर्गोपा काननगह्वरम् ॥३०॥

वैदेशिकनटार्हेण वेशेन परिशोभितौ ।
श्रीरामलक्ष्मणौ तेषां मध्ये युयुधतुः परम् ॥३१॥

आहूयाहूय गोपालान् मल्लयुद्धविशारदौ ।
मध्ये मण्डपमत्यर्थमेतौ शुशुभतुर्वने ॥३२॥

क्वचिन्मण्डलमावध्य वयस्यैर्बभ्रमुश्च ते ।
क्वचिच्चैवातिमर्यादं कुल्यादीनि ललङ्घिरे ॥३३॥

क्वचिच्चिक्षेपुरन्योन्यं कन्दुकक्षेपमात्मनः ।
क्वचिदास्फोटनं चक्रुः क्वचिच्च चकषुर्जवात् ॥३४॥

क्वचिद् गोपालवीरैस्ते बाहुयुद्धविशारदाः ।
क्वचिद् वृक्षफलक्षेपैर्नियुद्धं ते वितेनिरे ॥३५॥

क्वचिन्नृसिंहवाराहवामनादयवतारणम् ।
प्रदर्शयन्तश्चत्वारो भ्रातरो रेमिरे वने ॥३६॥

एवं विक्रीडतो रामलक्ष्मणादीन् व्रजौकसः ।
तुष्टुवुः साधुवादेन हृदयोत्साहवृद्धये ॥३७॥

नटमल्लवराक्रीडा गन्धर्वा इव गायिनः ।
महत्कौतूहलं चक्रुः प्रमोदविपिनेऽन्तरे ॥३८॥

कदाचिदद्युध्यतो रामसुमित्रासुतयोरपि ।
दुर्धरो दुःसहश्चोभौ सखिवेशावुपेयतुः ॥३९॥

शिखाबलाकृतिः पूर्वो मेघवर्णाकृतिः परः ।
युद्धयन्तौ तौ चिरं ताभ्यां दूरे निन्यतुरासुरौ ॥४०॥

तत्र तावतिबलोन्मदावुभौ रामलक्ष्मणनिपातवाञ्छिनौ ।
विक्रमं बहु वितेनतुः परं नानयोर्बलमसीममीयतुः ॥४१॥
ततस्तौ वनवेगाभ्यां मुष्टिभ्यामुरसी तयोः ।
संताड्य जग्मतुर्दूरे पुनराघातदित्सया ॥४२॥
तौ मुष्टिमावध्य समागतौ पुनः पद्भ्यां गृहीत्वा बलिनौ बलेन तौ ।
न्यपातयेतां कठिने शिलातले विचूर्णिताङ्गैर्व्यसुतामुपेयतुः ॥४३॥
शिलातलं चापि तदङ्गपाततः संचूर्णितं तच्छतधाभवन्नृप ।
ततस्तयोर्मूर्द्धनि कल्पवृक्षजप्रसूनवृष्टिर्न्यपतत्सुरालयात् ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

ततोऽन्यतो नृपं नीत्वा बभाषे गोपपुङ्गवः ।
इदं स्थलं पश्य यत्र पूर्वं रामस्तृणानिलम् ॥४५॥
निपात्य दैत्यं बलिनौ क्रीडन्तं रामलक्ष्मणौ ।
सभ्रातृकौ गोपगणैर्नेक्षाञ्चक्रे गवांगणम् ॥४६॥
गोकुलं तृणलोभेन सरयूकच्छभूगतम् ।
ग्रीष्मे संतापितो भानोः किरणैराकुलीकृतम् ॥४७॥
विवेश सैकते नद्याः स्रोतसा रुचिरोज्झिते ।
इषीकानां वनं यत्र प्ररूढानां समंततः ॥४८॥
अथ सर्वे विचिन्वन्तो गोधनानि व्रजौकसः ।
खुराङ्कैर्दन्तसंदष्टघासैश्चानुगताः ययुः ॥४९॥
उपलभ्य गवां वृन्दं प्राप्तजीवा इवाभवन् ।
तावत्तृणाटवीमध्ये समन्तादुदगाद्दवः ॥५०॥
तयोर्दानवयोः कश्चित्सखा दग्धुमना व्रजम् ।
उद्ययौ ज्वालरूपेण निर्दहंस्तृणकाननम् ॥५१॥
तमुद्गतं वीक्ष्य महातृणानलं गावश्च गोपाश्च महाभयेरिताः ।
तमेव देवं शरणार्थिनो ययुर्निवेदयांचक्रुरथो भवागमम् ॥५२॥
गावो निरीक्ष्य मुखमीशितुरिन्दुचारुं
प्रोद्यम्य बालधिमतीव न रम्भमाणाः ।
दृक्संज्ञयैव जगदुर्महतीं निजार्तिं
कारुण्यकातरधियो दवहाहभीताः ॥५३॥

पाहि प्रभो प्रथमवत्प्रथयात्मवीर्यं
प्राप्तान्यनन्यशरणानि गवां कुलानि ।
अस्मांश्च केवलनिजाङ्घ्रिसरोजमूल-
विच्छेदभीतिविवशान् करुणापयोधे ॥५४॥
इत्यात्मीयरुजं वीक्ष्य रामः करुणलोचनः ।
तान् मीलितदृशः कृत्वा सहसैवापिबद्दवम् ॥५५॥
संहारिते दावकृशानुपुञ्जे गावश्च गोपाश्च ततः क्षणेन ।
सर्वेऽपि ते भद्रवहं पुरेव संप्रापितास्तेन सुखाकरेण ॥५६॥
दृष्ट्वा भद्रवटं गोपाः सर्व एव सुविस्मिताः ।
अहो अस्यानुभावोऽयं सख्युरस्माकमीदृशः ॥५७॥
इति सर्वे प्रशंसन्तः पूजयाञ्चक्रुरात्मनः ।
आत्मानं सुहृदं चैव सखायं प्रियमीश्वरम् ॥५८॥
अभिरामो वृतो गोपैर्गोधनैश्चातिहर्षितैः ।
वेणुं विरणयन्नुच्चैराजगाम व्रजं प्रति ॥५९॥
व्रजवासिन आश्रुत्य रामलक्ष्मणयोः परम् ।
विक्रमं गोपवृन्देन कीर्तितं विस्मयं ययुः ॥६०॥
अहो अयं कोऽपि विभूषितो गुणैरिहावतीर्णः पुरुषोत्तमः पुमान् ।
सतां हितायाप्यसतामपास्तये त्रयीसुधर्मद्विजगोअभीष्टदः ॥६१॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे महाराजतीर्थ-
यात्रायां व्रजागमने अष्टदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥

एकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः

इदं स्थानं महाराज यत्र रामः स्वयं हरिः ।
कुपितेन्द्रकृतां वृष्टिमरुणत् स्वातपत्रतः ॥ १ ॥
एकदाहं कर्मरतो नवान्नेन पुरन्दरम् ।
विवक्षुरारभं राजन् मखं भूरिकृतव्ययम्[1] ॥ २ ॥
संभाराः सर्वतो दिक्षु कल्पिता अङ्गणे गृहे ।
यियक्षमाणेनाहूता मर्यात्विगुचिता[2] द्विजाः ॥ ३ ॥
अधिवासनस्य पूर्वेऽह्नि रामो दृष्ट्वा ममोद्यमम् ।
उवाच धरणीपाल स्मित्वा मधुरभाषणः ॥ ४ ॥

श्रीराम उवाच

अहो तात किमेतद्वः संभ्रमः सुमहान् गृहे ।
कोलाहलः प्रतिगृहं संभारकरणे नृणाम् ॥ ५ ॥
एकैरानीतवस्तूनि स्थाप्यन्ते सेवकैः परैः ।
अन्यैस्तथैव संभारा आनीयन्ते तवाज्ञया ॥ ६ ॥
आनेष्यन्ति परे भूयोऽप्याज्ञाया वशगा नराः ।
एवमान्दोलितं विश्वं दृश्यते बहुवासरात् ॥ ७ ॥
उत्सवो वा विवाहो वा कोऽप्यपूर्वोऽथवा विधिः ।
कथ्यतां तात भवता ममापि ज्ञातुमिच्छतः ॥ ८ ॥
तदाहमूचे मर्मज्ञं निखिलागमवाचितम् ।
आरब्धोऽयं मखो राम यष्टव्यो यत्र वासवः ॥ ९ ॥
मेघानां नायकः सर्वजगज्जीवनदायकः ।
देवानामग्रणीश्चैव वज्रहस्तः पुरन्दरः ॥१०॥
यज्ञेन देवा भाव्यन्ते भावयन्ति नरान् सुराः ।
एवमन्योन्यतो भावैरसकृच्छुभमाप्यते ॥११॥

---

१. °धनव्ययम्—मथु०, बड़ो० । २. मया ते गुणिनो—रीबाँ ।

यज्ञार्थं क्रियते कर्म कष्टमप्यर्थितुं फलम् ।
अन्यत्र कर्मलोकेऽस्मिन् सर्वतो गर्हितं बुधैः ॥१२॥
प्राप्ततत्त्वोऽपि कुर्वीत कर्म वेदोदितं शुभम् ।
अकुर्वन् लौकिकं सेतुं भज्यान्नैवात्र संशयः ॥१३॥
ब्रह्मार्पणधिया वापि फलावाप्तिधियाथवा ।
लोकसंग्रहणार्थं वा कर्म कुर्वीत कोविदः ॥१४॥
इति निशम्य मयेरितमीदृशं वचनमेष समस्तनियोजनः ।
किमपि मञ्जुलहाससुधाञ्चितं विरचयन् वदनं निजगाद माम् ॥१५॥
अहो अभिहितं तात भवता गोपसत्तम ।
यथा ददर्श वेदेषु तथात्थ त्वमिदं मम ॥१६॥
एवमाचरणं पुंसां पारम्परिकमेव भोः ।
यथा गडुरिका[1]मार्गस्तथा जानीहि तत्त्वतः ॥१७॥
विविधाः कर्मणां मार्गाः पृथक् तेषां च वासनाः ।
याभिर्बद्धो याति[2] जन्तुरुच्चावचगतीर्मुहुः ॥१८॥
इज्येते देवताः सर्वाः पृथक् तन्त्रे क्रियापथे ।
ताभिर्दत्तान् भजन् भोगान् नवेत्त्यात्यन्तिकं हितम् ॥१९॥
अनित्यं कर्मणां तात फलं लोकप्रसाधनम् ।
इति विज्ञाय पुरुषो न कर्मस्वनुषज्जते ॥२०॥
यथा यथा कर्मफलानि भोगान् भुङ्क्ते जनस्तात तथा तथासौ ।
संप्रेरितो लुब्धधीरिन्द्रियेण न वै कदाचिद्भजते विरक्तिम् ॥२१॥
तस्मात्तत्त्वं विजनीयाद्यन्नित्यफलसाधनम् ।
जानन्नपि फले नित्ये कस्तावदनुषज्जते ॥२२॥
ज्ञात्वा भागवतं धर्मं नित्यानन्दफलोदयम् ।
भजस्व भवरोगैकमज्जनं हृत्प्रसादनम् ॥२३॥
त्वं तात वैष्णवान् धर्मान् साधयस्व सदाहितान् ।
गोविप्रभक्तवृन्दस्य यत्र पूजा विधीयते ॥२४॥

---

१. गरुड्डिका—रीवाँ । गडुरिका—मथु०, बड़ो० । २. वर्द्धयते—अयो० ।

किं तात कार्यमिन्द्रेण पदं प्राप्तेन सावधि ।
स्वयं रुग्णः किमन्यस्य रोगान् संनाशयिष्यति ॥२५॥
यावत्यो देवताः सर्वास्ता वेदविदि वै द्विजे ।
तस्मात् पूजय विप्रांस्त्वं वैष्णवांश्च विशेषतः ॥२६॥
गिरिरेव स मद्भक्तः[1] धनुर्वाणाङ्कभूषितः ।
पूजनीयो विशेषेण रत्नाद्रिर्जनपावनः ॥२७॥
सौगन्धिकगिरिश्चैव रत्नाद्रिश्च विशेषतः ।
वलिभिर्धूपदीपाद्यैः पूजनीया उभौ गिरी ॥२८॥
अस्माकं गोधनं यत्र वर्द्धते सुखितं सदा ।
स एव पूज्यतां तात रत्नाद्रिः सर्वदा त्वया ॥२९॥
दीप्यन्तां कन्दराश्चास्य दीपैः कर्पूरवर्त्तिभिः ।
यासु कल्पद्रुमाराममञ्जुलासु रमामहे ॥३०॥
अन्नराशिमयैः कूटैर्गिरिरेष विभूष्यताम् ।
भोज्यन्तां ब्राह्मणवरा भोज्यैः स्वादुतमैरिह ॥३१॥
पच्यन्तां मण्डकापूपपूरिकाखण्डमण्डकाः ।
वटकाः क्षीरवटकाः बटका नवनीतजाः ॥३२॥
आदर्शका माठिकाश्च चक्रिका दुग्धचक्रिकाः ।
गुह्यकाः शर्करापाराः पायसं जलवल्लिकाः ॥३३॥
पृष्ट्वाखिलान् गोपवृद्धान् पक्वान्नानि विशेषतः ।
क्रियन्तां राशिवत्तानि भोज्यन्तां तैर्द्विजातयः ॥३४॥
वैष्णवाश्च विशेषेण चातुर्वर्ण्योद्भवा जनाः ।
संबन्धिन उदासीना ज्ञातयश्च कुटुम्बिनः ॥३५॥
भूष्यन्तां भूषणैर्वस्त्रैश्चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ।
आगतस्वागताद्यैश्च तोष्यन्तामुपचारकैः ॥३६॥
एवमानन्दिता लोका विचरन्तु समन्ततः ।
कुर्वन्तु व्रजवीथीषु भूषाविधिमनुत्तमम् ॥३७॥

---

१. मम भक्तः—मथु०, बड़ो० ।

गायन्तु चापि वाद्यानि वादयन्तु शुभान्विताः ।
क्रीडन्तु व्रजसुन्दर्यः कौतूहलविधायिकाः ॥३८॥
एवमुत्साहविहितः क्रियतां तु महोत्सवः ।
आषाढस्य सिते पक्षे तृतीया पुष्यसंयुता ॥३९॥
तस्यां महोत्सवः कार्यो रथयात्रा हरेर्हि सा ।
मम जन्मदिने चापि फाल्गुन्यां च व्रजेश्वर ॥४०॥
कुरु प्रीतमनास्तात वैष्णवाराधनव्रतम् ।
कार्तिके मार्गशीर्षे च विधिवत् क्रियतामिदम् ॥४१॥
यथा सुतुष्टो भगवान् प्रयच्छेदतुलं फलम् ।
धनूराशि[1]गते चार्के दधिपायसशर्कराः ॥४२॥
निवेद्य हरये नित्यं भोज्यन्तां वैष्णवा जनाः ।
निवेद्य सीताकान्ताय यद्वैष्णवमुखे हुतम् ॥४३॥
तत्तदक्षयतां याति कल्पकोटिशतावधि ।
एवमाभाष्य नो रामः कारयामास भक्तितः ॥४४॥
गोविप्रभक्तबन्धुस्त्रीसपर्यां तां यथोचिताम् ।
रत्नाद्रेः परितो राजन् सौगन्धिकगिरेस्तथा ॥४५॥
सरयूतटभूमेश्च कृता भूयस्यलङ्क्रिया ।
स्नात्वा सर्वे गोपवराः पूजां चक्रुर्मया सह
गवां चैव द्विजानां च वैष्णवानां गिरेस्तथा ॥४६॥
दीपावलीभिः सरयूतटानि प्रदीपितानि द्रुममण्डलानि ।
शृङ्गाणि सौगन्धिकपर्वतस्य रत्नाद्रिशैलस्य च सर्वतोऽङ्गम् ॥४७॥
अधित्यका उपत्यका दरीगृहाश्च गह्वराः ।
लतावितानमण्डपाः प्रदीपकैः प्रकाशिताः ॥४८॥
बलेर्दिनं पुरस्कृत्य कार्तिके शुक्लपक्षके ।
दिने दिने गवां पूजा वैष्णवानां द्विजन्मनाम् ॥४९॥
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यराशिभिः ।
धनुर्वाणाङ्कितं शैलमलञ्चक्रुर्व्रजौकसः ॥५०॥

---

१. धनराशि—अयो०, मथु०, बड़ो० ।

प्रमोदवनदेवीभिर्गीयमानं समंततः ।
असकृ[1]द्रामचन्द्रस्य मधुरं विमलं यशः ॥५१॥
दीपमानाश्च ताः पूजाः स्वयं स बुभुजे गिरिः ।
भूत्वा पुरुषधौरेयो वृक्षशाखामहाभुजः ॥५२॥
भुक्त्वा पक्वान्नसंभारान् संतुष्टोऽदाच्छुभाशिषः ।
गोगोपगोपोनिवहैः श्रीरामो जीवताच्चिरम् ॥५३॥
दरीमुखविनिर्याताः श्रुत्वा गिरिवराशिषः ।
संतुष्टा गोदुहः सर्वे भेजिरेऽतीव विस्मयम् ॥५४॥
इत्थं समाप्य सुकृतेन बलेर्दिनं तदत्युत्सवाकलितमद्भुतचित्तहारि ।
धूर्णन्त आनन्दभरेण गोपाः स्निग्धाशयाः प्रियतमे सदनान्यभीयुः ॥५५॥

पूजाभङ्गं समालोक्य कुपितः पाकशासनः ।
प्रेरयामास जलदान्नन्दिग्रामं निमज्जितुम् ॥५६॥
गच्छन्तु कालजलदा मज्जयन्तु व्रजावनीम् ।
ये मत्तास्त्यक्तसीमानस्तान्नाशयत तत्क्षणात् ॥५७॥
अहो गौपैरमर्यादैः क्षत्रबन्धुगिरा वयम् ।
देवा अपि जगद्रक्षाकारिणो ननु लङ्घिताः ॥५८॥
तेषां द्वित्रिदिनोद्भूतं सौभाग्यश्रीमदं क्षणात् ।
हरताम्भोधराः सद्यो नाशयध्वं सगोधनम् ॥५९॥
नष्टजीवातवो नष्टदारापत्यसुहृद्गणाः ।
ज्ञास्यन्त्यात्मकृतं कर्मविपाकं क्षुद्रबुद्धयः ॥६०॥
अद्यावधि न केनापि कृतमीदृग्विकर्म च ।
यादृक् श्रीधनमत्तान्तःकरणैरेभिरञ्जसा ॥६१॥
इत्याज्ञाप्य महामेघान् पुष्करावर्तकादिकान् ।
प्रेरयामास कुपितः पुरुहूतः श्रियोन्मदः ॥६२॥
तेऽञ्जसा पर्वतप्रायाः कालजीमूतशर्कराः ।
अवाकिरन्नभोदेशं व्रजमावृत्य सर्वतः ॥६३॥

---

१. अशृण्म—मथु०, बड़ो०, ।

स्वनन्तोऽत्यर्थगम्भीरं घोषपूरितदिक्तटाः ।
तडिद्भिर्भीषणाकारा आययुः कालवारिदाः ॥६४॥
कराला: कालसदृशाः कालिकाजालदारुणाः ।
शुण्डिशुण्डासमाकारैरासारैर्मुमुचुर्जलम् ॥६५॥
उदग्रैर्मुशलाकारैर्धारासारैररुन्तुदैः ।
महीधरानुदखनन् वायुवेगेरिता घनाः ॥६६॥
धाराभिर्घोररूपाभिः खन्यमानं धरातलम् ।
अभूद्धनूंषि पञ्चाशदभूद्गर्तायितं नृप ॥६७॥
व्रजौकसस्तमालोक्य सर्वप्रलयमुत्थितम् ।
आययुः शरणं सर्वे रामस्य करुणानिधेः ॥६८॥
गावो वत्सा वत्सतर्यो रम्भमाणाः समन्ततः ।
धारासारार्दिता रामं पश्यन्ति च शुभाननम् ॥६९॥
गोपा गोप्यो व्रजजना महाकालघनार्दिताः ।
[1]कुपितेन्द्रकृतं मत्वा रामं शरणमाययुः ॥७०॥
राम राम महाबाहो लक्ष्मणव्रजजीवन ।
आबाल्याद्रक्षितानां नो विनाशोऽयमुपस्थितः[1] ॥७१॥
राम त्वच्चरणाम्बुजातविरहाद्भीता वयं संप्रति
क्रुद्धेन्द्रप्रतिमुक्तकालजलदासारातिधाराजलैः ।
हे हे नाथ भृशार्दिता व्रजजनाः कं याम जीवैषिण—
स्त्वत्तोऽन्यं शरणं महार्त्तिशमनं त्वं रक्ष नः केवलम् ॥७२॥
इतिस्वानामार्त्तिं हृदि समुपधार्य क्षितिपते
कृपासिन्धुर्बन्धुः स्वजनजनतायाः प्रभुरसौ ।
महोदारस्वान्तो दशरथ कुमारस्तव तदा
वितस्तार च्छत्रं निजमखिलरक्षाविधिपटुः ॥७३॥
छत्रं रामस्य यावज्जलधरपटली दारुणासारवर्षं
विस्तारं भूरि भेजे कठिनतरशिलावज्रपातेऽप्यशीर्यत् ।

१-१. नास्ति—रीवाँ ।

तस्याधो गोपगोपीपशुगणसहिताः सर्व एव व्रजस्थाः
पश्यन्तो रामचन्द्राननतुहिनकरं त्यक्तभीशोकमासुः ॥७४॥

एवं स पक्षपर्यन्तं[1] कुपितः पाकशासनः ।
अमुञ्चत् कालजलदैरासारं व्रजनष्टये ॥७५॥
गर्जदैरावतारूढो वर्षन् पाषाणधोरणीम् ।
व्रजस्योन्मूलनं शक्रश्चिकीर्षुरनटद्दिवि ॥७६॥

पक्षस्यान्ते निशम्य व्रजमखिलमसौ किञ्चिदप्यश्मपातै-
रक्षुण्णं रामचन्द्रामितविततमहाछत्रवर्यस्य मूले ।
जाताहङ्कारनाशस्तृणमिव लघुतां स्वस्य मन्वान इन्द्रः
पर्जन्यानां समूहं सपदि गगनगं[2] वारयामास भीतः ॥७७॥
रामस्य वीर्यादतुलाद्दुरन्तात्सभीतभीतश्चकितः पुरन्दरः ।
निश्चित्य रामं पुरुषप्रकाण्डं मुहुः स्वकार्यादनुतापमापत् ॥७८॥
रामोऽपि दृष्ट्वा प्रलयाभ्रजालं सद्यो निवृत्तं वितथोद्यमात्ततः ।
संजह्न आविंशतियोजनाधिकं विस्तीर्णमह्नाय निजातपत्रम् ॥७९॥

स्थानं च तदिदं राजन् यत्र लज्जानतो हरिः ।
आययौ शरणं रामं स्तुवन्निगमसूक्तिभिः ॥८०॥
विहाय मुकुटं यानं पादुकां छत्रचामरे ।
शुष्यता वदनेनासौ सापराधोऽभिलक्षितः ॥८१॥
धावित्वैव ततो दूराज्जगृहे पादमस्य सः ।
सापराधानामपि वै शरण्यं शरणार्थिनाम् ॥८२॥

सोऽवाङ्मुखो नामुञ्चदस्य पादौ कारुण्यवारांनिधिमानसस्य ।
उत्तिष्ठ देवेश सुधीर्भवेति तमुत्थापयामास कथंचन प्रभुः ॥८३॥
स उत्थितो वाग्वदनत्वमुज्झन्न[3]स्तौत् सुपर्वाधिप आत्तसूक्तिः ।
रत्नाद्रिसद्रत्नशिलानिषण्णं सिंहासनस्थं नृपमेव रामम् ॥८४॥
यावद्बुद्धिवितानकल्पितवचोविस्तारवाग्गुम्फनं
स्तुत्वा सर्वजनात्मभूतमखिलाधारं सुधर्माधिपः ।

---

१. वर्षर्तुपर्यन्तं—अयो० । २. च खगतं—रीवाँ । ३. मुंचन्—रीवाँ ।

स्वर्धेनुस्तनिकाचतुष्टयभवैर्दुग्धै र्बहिः संचर—
त्सौरभ्यैः सहसाभिषिच्य पुरतस्तस्थौ निबद्धाञ्जलिः ॥८५॥

स्वर्धेनुरपि सुप्रीता संस्तूयेन्द्रापराधनम् ।
क्षमाप्य सादरं पश्चादुवाचेदं महीपते ॥८६॥

एवमेव खलु निग्रहं दधत्स्वान् खलेन विदधच्च निर्भयान् ।
राम[1] धामघनवाम[2] मत्कुलं पालयंश्च शरदां शतं जय ॥८७॥

त्वं पूर्णः पुरुषोत्तमः सुविदितः कारुण्यसिन्धो मनाक्
सद्धर्मद्विजधेनुदैवतजनत्रय्यादिरक्षापरः ।
मूढस्यात्मरहस्यवेदनविधौ सामर्थ्यहीनस्य किं
न्वाग[3]श्चेतसि राम संकलयसे पुत्रस्य माता यथा ॥८८॥

इत्युक्त्वात्मानमस्य प्रणतजनशरण्याङ्घ्रिपद्मे समर्प्य
स्वर्धेनुः पातयित्वा त्रिदिवपरिवृढं दण्डवत्तत्पुरस्तात् ।
आदायाथाभ्यनुज्ञामतुलमधुरिमानन्यलावण्यपूरैः ।
सिक्तान्तर्नेत्रयोश्च प्रणयपरवशागच्छदिन्द्रेण सार्द्धम् ॥८९॥

एतत्तस्याः पयःपूरैर्जातमत्यद्भुतं सरः ।
अत्रावगाह्य नृपते लभन्ते सिद्धिमुत्तमाम् ॥९०॥

इमान्यैरावतपदचिह्नानि धरणीपते ।
मुहुर्मुहुर्विलोक्यानि साश्चर्यैर्गोपबालकैः ॥९१॥

अयं शक्रध्वजो नाम रत्नाद्रेरध्युपत्यकम् ।
ग्रामः परमसौभाग्यकमनीयतमो व्रजे ॥९२॥

रत्नाद्रेः परितो मध्ये सरांसि सरसीस्तथा ।
फुल्लेन्दीवरसंजुष्टकमलाः पश्य भूपते ॥९३॥

अत्र तीर्थानि बहुलान्यवगाहस्व सादरम् ।
संपूर्णतीर्थयात्रायाः फलं लब्धासि तत्क्षणात् ॥९४॥

अत्र नारदकुण्डाख्यं तीर्थमस्ति महीपते ।
माहात्म्यं तस्य वक्ता ते सुकण्ठो नाम गोपतिः ॥९५॥

---

१. हेराम—रीवाँ । २- "धाम शरीरं धनवत् वामं सुंदरं यस्य स तत्संबुद्धौ हेघनश्यामविग्रह !" टि०—मथु०, बड़ो० । ३. किंत्वाग—मथु०, वड़ो० ।

शिवकुण्डे नरः स्नात्वा सर्वपापैर्विमुच्यते ।
श्रीरामदर्शनाकाङ्क्षी यत्र नित्यं स्थितो हरः ॥९६॥
स्थानान्यत्र हरस्यापि श्रीरामस्य महीपते ।
निर्दिष्टानि सुकण्ठेन तानि द्रष्टासि विस्मितः ॥९७॥
रामस्यातिप्रियो धन्यः सखा विरहिणां वरः ।
सुकण्ठो नाम गोपालः शेषं ते कथयिष्यति ॥९८॥
रामस्य कैशोरचरित्रमद्भुतं प्रवक्तुमस्मीश[1] न पारये ततः ।
सुकण्ठनामानममुष्य निस्तुलं[2] सखायमादिश्य नदीं व्रजाम्यहम् ॥९९॥
कृतनित्यक्रियः स्नात्वा सरय्वा विमलेऽम्भसि ।
आनेष्ये भोज्यसंभारं तुभ्यं राजन् मुदावहम् ॥१००॥
अत्र मञ्जुवटे तावज्ज्योतिर्लिङ्गेशसन्निधौ ।
सुकण्ठेन कथां शृण्वन् सुखमास्व महीपते ॥१०१

ब्रह्मोवाच

सुकण्ठमादिश्य नृपानुशीलने जगाम गोपः सुखितेश्वराभिधः ।
सुकुण्ठराज्ञोस्तदतः परं सखे भुशुण्ड संवादमनुत्तमं शृणु ॥१०२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दशरथतीर्थयात्रायां
व्रजागमने एकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११९॥

---

१. "अस्मीत्यहमर्थे" टि० – मथु०, बड़ो० । २. निष्कलं—अयो० ।

विंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सुकण्ठो नाम[1] गोपालः सखा रामरहस्यवित् ।
कविर्वर्णनसारज्ञ उपतस्थे महीपतिम् ॥ १ ॥
तं वै दशरथः प्रेम्णा समुपामन्त्र्य सज्जनम् ।
उवाच मधुरं वाक्यं श्रोतुकामः प्रभोर्गुणान् ॥ २ ॥

राजोवाच

अये सुकुण्ठ सुमते नन्दितोऽस्मि चिरादहम् ।
सुखितेन व्रजेन्द्रेण वदता रामसद्गुणान् ॥ ३ ॥
यानि कौमारवयसि चरित्राणि व्रजे सता ।
अनुष्ठितानि रामेण तानि मे सुखितोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥
कैशोरचरितं तस्य रहस्यं लोकपावनम् ।
वक्तुं त्वामादिशदसौ सत्कविं सत्सखं प्रभोः ॥ ५ ॥
रहस्यवेदी त्वमसि रामस्याद्भुतकर्मणः ।
कथयस्व गवांपाल तच्चरित्रं रमापतेः ॥ ६ ॥
यावदायाति सुखितः स्नात्वा नीत्वा च भोजनम् ।
तावद्विनोदयतु नो भवान् रामस्य सद्गुणैः ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तो राजवर्येण सभृत्येन स गोपतिः ।
कैशोरचरितं वक्तुमारेभेऽस्य रहस्यवित् ॥ ८ ॥
शृणु भूपाल वक्ष्यामि त्वत्सुतस्यामलं यशः ।
व्रजे विहरतो राजन् रामस्याद्भुतकर्मणः ॥ ९ ॥
शैशवं समतीयाय पित्रोरानन्दनं वयः ।
अथ कैशोरवयसि मोहयन् गोपकन्यकाः ॥१०॥
अरीरमत लावण्यमाधुर्यरसवारिधिः ।
ऋतुषट्कमनोज्ञेऽस्मिन् प्रमोदविपिने रहः ॥११॥

---

१. सुकंठनामा—मथु०, बड़ो० ।

अवर्तत चिरं रामो वार्तयन् मद्विधान् सखीन् ।
श्रीनन्दस्य गोपालराजस्य तनया च सा ॥१२॥
पालिग्रामे सखीवृन्दैः[1] क्रीडतिस्म दिवानिशम् ।
सापि कौमारमभ्येत्य कैशोरवयसि स्थिता ॥१३॥
श्रीरामगुणगानैकवश्याऽभूद्वै दिवानिशम् ।
सहजारामयोर्वृत्तमभिधास्यामि ते नृप ॥१४॥
तत्र लौकिकरीत्या त्वं न भावं कर्तुमर्हसि ।
कामलीलापि राजेन्द्र निष्कामत्वकरी सताम् ॥१५॥
इति विज्ञाय रहसि श्रोतुमर्हसि सादरम् ।
ऋषयः परमहंसाश्च गुणनिःसंगमानसः ॥१६॥
मयोच्यमानं शृण्वन्ति रामकैशोरसत्कथाम् ।
सहजानन्दिनी साक्षात्प्रमोदवनगा रमा ॥१७॥
रामं रमयितुं प्राप्ता श्रीनन्दननिकेतनम् ।
तत्र तस्याः सखीवृन्दं वक्ष्यामि तव भूपते ॥१८॥
याभिः सार्द्धं रमत्येषा शृण्वन्ती रामसत्कथाम् ।
श्यामा धामा मनोरामा रामा कामा कलावती ॥१९॥
सुकेशी मङ्गलेत्यष्टौ तस्याः प्रियसखीवराः ।
सुलोचनानाम तस्याः पृष्ठे श्रीश्छत्रधारिणी ॥२०॥
उभे चामरधारिण्यौ रमणी रामणी तथा ।
ताम्बूलिकापात्रकरा पुरःस्था रतिमञ्जरी ॥२१॥
क्षोविका बन्धुरा चास्यास्ताम्बूलोद्गारधारिणी ।
केशप्रसाधनकरी कर्पूरलतिकाभिधा ॥२२॥
यावकालङ्कारकारी सुवर्णलतिकाभिधा ।
रामप्रेमभरोन्मत्ता पतत्येषा[2] क्षणे क्षणे ॥२३॥
अवलम्बनदात्र्यस्याः सखी मोदा च मोदिनी ।
पद्माभिधा सखी चास्याः सरोभ्यः पद्महारिणी ॥२४॥

---

१. सखीवृन्दैः—अयो० । २. यत्तत्प्रेषा—अयो ।

पुष्पभूषाकरी चास्याः पुष्पवत्यभिधा सखी ।
अभ्यङ्गकारिणी चास्याः कुमुदा नाम तत्सखी ॥२५॥
कुङ्कुमोपेतश्रीखण्डोद्वर्तनी मञ्जुलाह्वया ।
स्नानकर्मप्रवीणाश्च शृणु तस्याः सखीर्नृप ॥२६॥
कमलेशी घोषवती गण्डक्यप्यघवारिणी ।
कौशिकी द्युम्निका चैव वनघोषा त्विरावती ॥२७॥
स्वयं लक्ष्मीश्च नवमी दशमी सरयूः स्वयम् ।
सखीवेशं समास्थाय सेवन्ते सहजां सदा ॥२८॥
सरितश्चन्द्रवदना वशीकृतसुधोदकाः ।
चण्डवेगा सखी तस्या अङ्गप्रोञ्छनकारिणी ॥२९॥
माणिक्यहारिणी तस्याः केशधूपनकारिणी ।
हेमाङ्गदा चित्ररेखा कुङ्कुमा कुब्जिका[1] तथा ॥३०॥
चतस्रश्चतुराः सख्यो भूषाविधिविधायिकाः ।
रागिणी च सुरागा च मलया मलयावती ॥३१॥
कुङ्कुमागुरुकस्तूरी अङ्गरागविधायिकाः ।
किशोरी कृशमध्या[2] च सुमध्या च सुलोचना ॥३२॥
अमूर्वसनविन्यासपण्डितास्तत्र वर्ष्मणि ।
अनेकपत्ररचनाविचक्षणधियः सखीः ॥३३॥
रत्नाङ्गदा च सुहिता कुटिला कुटिलालका ।
आदर्शधारिणी तस्याश्चन्द्रबिम्बाह्वया सखी ॥३४॥
आः साधुवादिनी तस्याश्चित्तदेवी सखीवरा ।
कथाकथनचातुर्यवत्योऽस्याः कतिचित्सखीः ॥३५॥
विचित्रचित्रलतिका सुमुखी च सुकण्ठिका ।
मानापहरणे दक्षा नर्मसख्यः सदा हिताः ॥३६॥
सुदती शालिनी शीला सुशीला प्रेमपालिनी ।
शुकी च कोकिला रङ्गलहरी चक्रवाकिका ॥३७॥

---

१. कुब्जिका— रीवाँ । २. कृतमध्या—अयो० ।

चञ्चला चञ्चलापाङ्गी वार्ताली वृत्तवेदिका ।
पादसंवाहिनी तस्याः कमला कोकिला कला ॥३८॥

सुकला मृदुहस्ता च सुखा च सरपालिका ।
विद्याधरी महाविद्या रङ्गविद्या च भारती ॥३९॥

काव्यशास्त्रकलाकोटिशिक्षिका वै तदालयः ।
पानीयहारिणी तस्या जाह्नवी कमलावती ॥४०॥
रागविद्याविधौ तस्या गुरुः साक्षात्सरस्वती ।
तस्या भोजनदायिन्यः सख्यः कमललोचनाः ॥४१॥
अमृता च सुधाधारा पीयूषा रत्नपालिका ।
सुपाचिका स्वादुपचा सुप[1]चाद्याः शुभालयः ॥४२॥
वनेभ्यः फलदात्र्योऽस्याः फलदा फलदायिनी ।
सुफला फलिनी चैव हरिता पीतवर्णिका ॥४३॥
मञ्जुगुच्छा स्तवकिनी रत्नवल्लीमुखालयः ।
सहकेलिविनोदिन्यः पूर्वमष्टौ निवेदिताः ॥४४॥
उपवीणनकृत्तस्याः प्रवीणाभाणिकादयः[2] ।
प्रवीणा भाणिका चैव सुस्वरा कोकिलस्वरा ॥४५॥
कलविङ्की[3] कलालापा सुलापा सुलयादयः ।
मार्दङ्गिक्यः सखीवर्याः सुभगा मृदुहस्तिका ॥४६॥
गम्भीरावर्तिनी धीरा सुधीरा पटिमा[4]दयः ।
नाट्यविद्यागुरुस्तस्या मन्दगा राजहंसका ॥४७॥
कलापिनी कलापूर्णा कलहंसी कलावती ।
संगीतविद्याविषये गुरवोऽस्याः सखीवराः ॥४८॥
रङ्गलेखा नृत्यलेखा सुलेखा लोलभाषिणी ।
काव्यालापकलाविद्यागुरुरेषा[5] कलेश्वरी ॥४९॥

एवमस्याः सखीवृन्दः शुभः शुभगुणालयः ।
अन्या लोकोत्तरानन्ददायिकास्तत्सखीवराः ॥५०॥

---

१. शुभ°—अयो०, रीवाँ । २. भाविका°—रीवाँ । ३. कलाविंबी—रीवाँ । ४. पट्टिमा°—रीवाँ । ५. 'रेका—मथु० बड़ो० ।

यासां नामानि धामानि कर्माणि च शुभानि वै ।
ललिता रत्नपूर्णा च सुपूर्णा कनकावती ॥५१॥
चित्राङ्गदा कलापूर्णा स्वादुलापा ललामिनी ।
सुभाला शेवधिर्भृङ्गी शुभाङ्गी[1]सुभगा भगा ॥५२॥
किशोरी कलगाना च कुलिका षोडश त्विमाः ।
अष्टानां पार्श्वगामिन्यो रमण्यो हरिणीदृशः ॥५३॥
यासां गुणानहं वक्तुं न क्षमः कोटिवत्सरैः ।
कर्पूरिणी रत्नपूरा लवङ्गी नवलीलता ॥५४॥
सुलता वञ्जुलदला मञ्जरी रत्नमञ्जरी ।
सुमञ्जरी मञ्जुगमा सुगमा षोडशाब्दिका ॥५५॥
कुमुदाक्षी कुमुदिनी साधुवादा विशारदा ।
शारदा शरदाभोगा[2] स्मरचापा विलासिनी ॥५६॥
कन्दर्पा दलिनी[3]दामा सुदामा दामदायिनी ।
कलहंसी राजहंसी रत्नलीला लयावती ॥५७॥
लुलिता लोलिनी लोला सुलोला लोललोचना ।
एता द्वात्रिंशदाख्याताः षोडशानां च पार्श्वगाः ॥५८॥
सर्वा रूपगुणोत्कर्षयौवनोद्भेदभासुराः ।
क्षेमदा रत्नकलशी कुशला कमलेक्षणा ॥५९॥
तरङ्गिणी सैवलिनी वलिता वेल्लिता सुधा ।
वसुधा वसुधामा च सुधामा धामधारिणी ॥६०॥
धरिणी धारिणी धारा रत्नधारा स्मरातुरा ।
अनङ्गवेगिनी वेगा विलासा विततिस्ततिः ॥६१॥
क्षणप्रभा सुधा मेधा शोभना बहुलाकुला ।
कुशीलवा पुलकिनी पुलका किलकिंचिता ॥६२॥
भाविनी भावदा भव्या सुभव्या शुभवेगिनी ।
सुभावा भावमुदिता पद्मास्या पद्मकोमला ॥६३॥

---

१. सुभाङ्गिः—मथु०, बडो० । २. °भीमा—रीवाँ । ३. दालिनी—अयो० ।

कलानिधिः कोरकिणी कलाशीला शिलावती ।
मणिगर्भा हेमगर्भा चम्पकाङ्गी कुमुद्वती ॥६४॥
मयूरी मानिनी माना धन्यकालोकिनी लया ।
लज्जिता विजिता जैत्रा सुजैत्रा चारुहासिनी ॥६५॥
लासिनी लसिता लीला लीलावत्यतिसुन्दरी ।
चतुःषष्टिरिमाः सख्यो द्वात्रिंशत्पार्श्ववर्तिकाः ॥६६॥
तासां रूपं गुणं शीलं न ब्रह्मापि क्षमो भवेत् ।
अनङ्गमालिनी माला रत्नमाला रतिप्रिया ॥६७॥
रमावती रामरता रतिविम्बा रसालया ।
माधवी मधुपुष्पा च सुपुष्पा सुखपल्लवा ॥६८॥
फलिनी पुष्पिणी वाणा पुष्पवाणविमोहिनी ।
दोहिनी क्षोभिणी क्षेमा क्षेमदा प्रेमदा मदा ॥६९॥
प्रमदा सुमदा मत्ता सुमत्ता मत्तवारणा ।
हारिणी हीरकोद्योता विद्योता विद्युता द्युतिः ॥७०॥
धर्मा सुधर्मा सौरभ्या सुकर्मा कलिकावती ।
रत्नाङ्कुरा रत्नदला रत्नमाला च रत्नभा ॥७१॥
केलिनी कामिनी कान्ता सुकान्ता काममन्दिरा ।
मदिरा दीपिनी दीपा प्रदीपा दीपपालिका[1] ॥७२॥
सुपाली[2]कुलभद्रा च सुभद्रा चाथ भद्रिका ।
कन्दर्पकुल्या कल्याणी सुकेतुः सुनिकेतना[3] ॥७३॥
संकेतिनी सुखवती मोदिनी च प्रमोदिनी ।
प्रेमोदया शुभगुणा सुगुणा गुणदायिनी ॥७४॥
वल्लरी मणिवल्ली च शुभवल्ली विचक्षणा ।
सुक्षणा दक्षिणा दक्षा सुदक्षा दक्षपालिका ॥७५॥
धन्या धरा धृतिमती मदिनी मादिनी मुदा ।
विदन्ती संविदन्ती च रत्नदन्ती महोदया ॥७६॥

---

१. °मालिका—अयो०, २. सुधाली—रीवाँ, ३. °निकेतनी—अयो०, रीवाँ ।

वलिनी रत्नवल्गा च वल्गुभाषा सुभाषिणी ।
उक्तिः सूक्तिर्महासूक्तिः प्रेमसूक्तिः सुमेखला ॥७७॥
मुकुरा मुकुरालोका सुलोका लोक[1]भाविनी ।
सुताना च सुगीता च तोषिणी रसरोषिणी ॥७८॥
पुष्टिदा रत्नवर्षा च सुधावर्षा सुखप्रदा ।
कामिनी भामिनी भामा सुभामा लासकेलिनी ॥७९॥
मञ्जुस्मिता मञ्जुदर्शा मालती स्वर्णमालती ।
सुवर्णमञ्मरी भव्यमञ्जरी मधुमञ्जरी ॥८०॥
खञ्जनाक्षी चकोराक्षी पद्माक्षी पद्मसौरभा ।
कामकेशी प्रमदिनी मन्मथा मधुमन्मथा ॥८१॥
अध्यष्टविंशतिशतमेताः सख्योऽम्बुजेक्षणाः ।
चतुःषष्टचालिपार्श्वस्थाः सर्वाः शुभगुणोदयाः ॥८२॥
आसां नामानि कर्माणि सहजानामकर्मवत् ।
गीतानि सुकृतिश्रेष्ठैः पावनानि मनीषिणाम् ॥८३॥
अतो[2]ऽपि द्विगुणं चान्यन्मण्डलं हरिणीदृशाम् ।
यासां राजन् षडधिकं भाति सार्द्धं शतद्वयम् ॥८४॥
ततोऽपि द्विगुणं चान्यन्मण्डलं पद्मचक्षुषाम्[3] ।
भाति पञ्चशती यासां द्वादशाधिकसङ्ख्यया ॥८५॥
चतुर्विंशत्यधिकया सहस्रं सङ्ख्यया ततः ।
ततः सहस्राण्ययुतं नियुतं प्रयुतं तथा ॥८६॥
लक्ष्यकोटचर्बुदा खर्वनिखर्वपद्मसङ्ख्यकाः ।
सख्यः श्रीसहजादेव्या भासन्ते भुवनोत्तराः ॥८७॥
पालिग्राममहारत्नसमुद्रमणिसंनिभाः ।
तासां मध्ये कोटिचन्द्रचन्द्रिकाचारुविग्रहा ॥८८॥
चन्द्रावली[4] च चार्वङ्गी भाति श्रीसहजाह्वया ।
सैकदा सायं समये सन्ध्यादेवीं समर्चितुम् ॥८९॥

---

१. श्लोक°—मथु०, बड़ो० । २. ततोऽपि—मथु०, बड़ो० । ३. °वर्चसाम्—रीवाँ । ४. चन्द्रावती—अयो० ।

आययौ रत्नचार्वङ्गी प्रमोदवनमन्तरा ।
सखीभिश्चञ्चलाभाभिः सहिता मुदिताशया ॥९०॥

चकासन्ती चकोराक्षी चञ्चला व्यचलद् गृहात् ।
हसन्ती हासयन्ती च कुर्वती केलिमद्भुताम्,
अदीपयद्वनं देवी देहकान्त्या शुचिस्मिता ॥९१॥

चमत्कुर्वतीचञ्चलापाङ्गमोक्षैश्चकोरावलीनां मनः कर्षतीव ।
सरोजावली मुद्रयन्ती मुखेन्दुप्रकाशेन कोटीन्दुभासा स्वभासा ॥९२॥

ननु व्यरचि सा वधूरिह सुमेधसा वशी—
करणवस्तुभिस्तुहिनसीकरक्षालिता ।
विलोचनसुखावहावयवशालिनी यन्मनो
जहार हृदिसंगता सकलमङ्गतापञ्च या ॥९३॥

कलानिधिकलाहासकोटिचान्द्रीमनोहरा ।
चकोरकुलचातुर्यन्यक्कारकविलोचना ॥९४॥
सुवर्णलतिकागुच्छसमुच्छलदुरोजभाः ।
सुवर्णकदलीगर्भगर्वहृज्जघनप्रभा ॥९५॥

नवकोकनराकारचरणस्पर्शकारिणी ।
पीयूषवर्षिणी कान्तिपटलेन महीयसा ॥९६॥
सिञ्जानचञ्चरीकौघमञ्जुलालापमेखला ।
सुधातरङ्गिण्यावर्तगम्भीरोद्भासिनाभिका ॥९७॥

त्रिवलीतरङ्गतुलितोदरी रसाधिपनिर्झरी रुचिररोमराजिका ।
रतिमञ्जरीस्तवकसन्निभस्तनी चपलखञ्जरीटयुगललोललोचना ॥९८॥

पुंस्कोकिलालापकलाकलापविजैत्रकण्ठोदितमङ्गलस्वरा ।
विम्बाधरस्थानसुधासमूहसुस्वादुसूक्तिश्रवमञ्जुभाषा ॥९९॥

शरत्सुधारश्मिसहस्रकोटिमुखच्छविव्याप्तवनान्तदेशा ।
शृङ्गारगम्भीरजलाशयौघशैवालवल्लीललितालकान्ता ॥१००॥

ललामभालस्थलभासमानकस्तूरिकाविन्दुविराजिभाग्या ।
अत्यर्थरूपोदयिसर्वकालवर्द्धिष्णुतारुण्यविशेषलक्ष्मीः ॥१०१॥

भ्रुवोर्मनोभूधनुषा समानयोः प्रयुज्यदृग्वाणमनल्पविक्रमम् ।
विदारयन्ती रसिकेन्द्रमानसं लावण्यदेशाध्वरहस्यचारिणी ॥१०२॥

सर्वानवद्याचरिता विचित्रता गुणाम्बुधिश्चक्षुचकोरचन्द्रिका ।
अनर्घ्यरत्नोत्करभासुरच्छविप्रसङ्गकान्तिप्रकरप्रसारिणी ॥१०३॥
तादृग्विधाभिर्वलिताशुभालिभिर्ललामलोलाकृतिभिः समंततः ।
शिञ्जानमञ्जीरकराजहंसकध्वनिप्रसर्पच्चरणा समाययौ ॥१०४॥
कुसुमितमखिलं निरीक्ष्य देवी, प्रमुदवने सहजेश्वरी प्रसन्ना ।
सदृशतमवयोभिरालिभिः सा हृदयमचीकरदात्मना विहर्त्तुम्[1] ॥१०५॥

तस्मिन् वने महत्केलिकुञ्जाह्वं कुञ्जमुत्तमम् ।
पत्रपुष्पफलोपेतलतावृक्षौघमण्डितम् ॥१०६॥

समीरलहरीलोललुलत्पल्लवशोभितम् ।
अशोकादितरुस्तोममञ्जरीपुञ्जमञ्जुलम् ॥१०७॥
केतकीकाननोद्धूतधूलिधोरणिधूसरम् ।
उत्फुल्लकेतकामोदमाद्यन्मदनमन्दिरम् ॥१०८॥

मालतीमुकुलोन्मीलामिलन्मधुकराञ्चितम् ।
मल्लिकाकुसुमोद्गारिमधुनिर्झरसौरभम् ॥१०९॥
उत्फुल्लकुन्दसंदोहविशदीभूतमन्तरा ।
सहजादर्शनोद्भूतसुखैर्मन्दं हसत्किमु ॥११०॥

अतिमुक्ताद्यपुष्पौघसौरभ्यसुरभीकृतम् ।
रसालमञ्जरीपुञ्जरजसाञ्चितदिक्तटम् ॥१११॥
कर्णिकाकुसुमोद्भासिशोणितानङ्गमण्डपम् ।
मालिकापुष्पसंदोहविकाशविमलीकृतम् ॥११२॥

स्थलपद्मसमुल्लासवशिताहूतषट्पदम् ।
कह्लारवनसौभाग्यस्फुरद्दिव्यसरोवरम् ॥११३॥

पद्मबन्धुमहाबन्धुबन्धूककुसुमाकुलम् ।
सेवन्तिकापरिमलसमाच्छन्नदिगन्तरम् ॥११४॥

---

१. °दत्र केलिलोलम्—रीवाँ ।

दाडिमीकुसुमोल्लासलौहित्यभरशोभितम् ।
धाराकदम्बविटपविकसत्कुमोत्करम् ॥११५॥
लवङ्गलतिकामोदप्रमोदितषडङ्घ्रिकम् ।
माधवीमधुरोल्लासिपुष्पस्राविमधूत्करम् ॥११६॥
तमालकलिका[1]जालविशालसुषमाञ्चितम् ।
मधूकपल्लवरुचिप्रचयाञ्चितसौभगम् ॥११७॥
वकुलद्रुमविस्तीर्णप्रसूनकुलमण्डितम् ।
माधुरीवल्लरीवृन्दविकसत्पुष्पवृद्धिमत् ॥११८॥
उद्गच्छल्लतिकाकान्तास्तनमण्डलसंगते ।
मत्तालिचूचुकव्राते प्रस्खलद्युवमानसम् ॥११९॥
पुन्नागकुसुमोद्गारिसौरभ्यभरमादनम् ।
यूथिकामण्डपाकाण्डप्रसूनभरशोभितम् ॥१२०॥
काञ्चनारप्रसूनस्थरूपमोहितमानसम् ।
शाखाभुजगृहीतोद्यद्वल्लीसौभाग्यसूचकम् ॥१२१॥
जपाकुसुमसौरूप[2]मण्डिताशेषमण्डपम् ।
फुल्लल्कुरवकस्तोमझङ्कारिभ्रमरावृतम् । १२२॥
कुरण्टकवनोल्लासमहाशोभानिकेतनम् ।
वाणाकुसुमसंदोहसमुल्लासमनोहरम् ॥१२३॥
चण्डातिकुसुमोद्द्योतिरूपमाञ्जुल्यमादनम् ।
सदा मरुवकोत्कर्षिसौरभोद्गारमोदनम् ॥१२४॥
नानाप्रतानिनीवृन्दसमाक्रान्तमहीरुहम् ।
ललत्किशलयच्छन्ननागपुङ्गवचम्पकम् ॥१२५॥
चाम्पेयकुसुमोल्लासस्वर्णधाराभिषेकवत् ।
पाटलीपटलच्छन्नशाखाशतमनोहरम् ॥१२६॥
सप्तपर्णीपरिमलं प्रमत्तवनवारणम् ।
वरणाद्रुमभूयिष्ठं मन्दारतरुवेष्टितम् ॥१२७॥

---

१. °लतिका°—अयो० । २. °सारूप्य°—रीवाँ ।

आम्रातकद्रुमाक्रान्तं फुल्लकिंशुकभूरुहम् ।
मालूरविटपाक्रान्तफलसंदोहसुन्दरम् ॥१२८॥
कुम्भवृक्षप्रतिच्छन्नमहातिमिरसङ्कुलम् ।
प्रियङ्गुकलिकावृन्दमनोहारि समंततः ॥१२९॥
मध्ये प्रमोदविपिनं महागह्वररूपधृक् ।
विवेश सहजानन्दा सखीवृन्दसमन्विता ॥१३०॥
नवतारुण्यलीलाभिर्वेल्लन्त्यः सहजालयः ।
चिक्रीडुस्तत्र विपिने करतालपुरःसरम् ॥१३१॥
मञ्जीरभूरिनादेन नादयन्त्योऽखिला दिशः ।
वीणामधुरवादिन्यो विजहुर्मत्तमत्तावत् ॥१३२॥
अवचीय प्रसूनानि लताभ्यः काश्चनालयः ।
विदधुर्भूषणं स्वाङ्गे रतिनिर्जयकारकाः ॥१३३॥
काश्चिज्जुगुम्फुः कुसुमैर्हारान् मध्ये फलाञ्चितान् ।
काश्चिद्बकुलपुष्पेण नासिकाभरणं दधुः ॥१३४॥
वलयाङ्गदताटङ्कशिरोभूषाश्च काश्चन ।
काश्चिद्विजहिरे सख्यः प्रसूनकृतकन्दुकैः ॥१३५॥
काश्चिदुच्छालयन्ति स्म गगने कुसुमान्यलम् ।
काश्चित्परस्परं जघ्नुः प्रसूनैः कमलैरपि ॥१३६॥
काश्चित्सर्वाङ्गभूषौघं विहृत्य विदधुर्वने ।
काश्चित्करैः करान् बध्वा बभ्रमुर्गीतपूर्वकम् ॥१३७॥
तासां काञ्चीनिनादेन मोहनेन महीयसा ।
मत्तभ्रमरझङ्कारनिनदोऽभूत्तिरोहितः ॥१३८॥
कोमलालापलालित्यं तासां दृष्ट्वा वनान्तरे ।
कोकिला मौनमातेनुर्निन्दन्त्येव स्वकाकलीम् ॥१३९॥
ताः सर्वाः सहजानन्दां कुसुमैः पर्यभूषयन् ।
प्रमोदवनदेवीव सा रेजे नितरां तदा ॥१४०॥
प्रत्यङ्गं भूषितालीभिः सहजा सुखदायिनी ।
पुष्पचापं करे कृत्वा मदनं समभर्त्सयत् ॥१४१॥

तासां विहारं समचष्ट रामो मञ्जीरभूषानिनदानुघोषैः ।
लतान्तरे प्रावृतसर्वकायो द्वित्रै रहस्यैः सखिभिः समेतः ॥१४२॥
तां रोचमानां तडितां समूहे तडिद्गणेशीमिव वीक्ष्य रामः ।
अमूर्च्छदत्यन्तमनोहरैस्तत्कटाक्षवाणैर्हृदि पीड्यमानः ॥१४३॥
शिखावलैरावतमेघवर्णमुच्चैस्तदासौ सखिभिर्गृहीतः ।
सिक्तः पयोभिः सहजाविहारकुण्डोद्भवैश्चेतनतामवाप ॥१४४॥
पुनः स चैतन्यमवाप्य रामो ददर्श तस्या वदनेन्दुबिम्बम् ।
रुचां समूहैरमृतैरिवान्तः सिञ्चन्तमह्नाय चकोरनेत्रे ॥१४५॥

तदधरमधुरश्रीवीक्षणोद्भूतकाम--
ज्वरशमनमुपायं केवलं तद्विदित्वा ।
चतुरिमनिधिरालीवेशमङ्गीचकार
स्वजनसखिसमूहं द्राक्समुज्झाञ्चकार ॥१४६॥

काचिन्नीलमणिप्रभा नवसखी सर्वाङ्गभूषावृता ।
सौन्दर्येण समुज्ज्वलाङ्ग-वसना लावण्यलीलानिधिः ॥
भूत्वा तत्र कदम्बभूरुहतले तस्थौ समुत्कण्ठया ।
चक्रे श्रीसहजेतिनामजपनं कुर्वन्नृपेन्द्रात्मजः ॥१७४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थ-यात्रायां व्रजागमने विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

●

एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः

सुकण्ठ उवाच

अथ तत्रागमत् कापि रामानामप्रिया सखी ।
खेलन्ती पङ्कजं हस्ते बिभ्राणा श्रीरिवापरा ॥ १ ॥
चरणाम्भोजमञ्जीरनादेनातिपटीयसा ।
नादयन्ती दिशः सर्वाः कर्षन्ती राजहंसिकाः ॥ २ ॥

मन्दमन्दमनोहारि पादन्यासं प्रकुर्वती ।
रञ्जयन्ती वने देहकान्त्यासौ विधुदक्षया ॥ ३ ॥
अङ्गसौरभ्यलोभेन परितो विनिपातितः ।
लीलाकमलकम्पेन तर्जयन्ती शिलीमुखान् ॥ ४ ॥
स्वाभाविकेन सौरभ्यसंभारेणातिभूयसा ।
मन्दवायूपनीतेन सूचयन्ती समागमम् ॥ ५ ॥
तनुवस्त्रसमुद्गच्छदच्छच्छविकदम्बकैः ।
दीपिकेव मनोजस्य हरन्ती तमसां ततीः ॥ ६ ॥
मुखचन्द्रचमत्कारिचञ्चद्रुचिररोचिषा ।
रमयन्ती चमत्कारं चकोरीलोचनव्रजे ॥ ७ ॥
चुम्बन्तीवाचिराच्चित्तं प्रविशन्तीव चक्षुषोः ।
आलिङ्गन्तीव सर्वाङ्गं छादयन्तीव चाखिलम् ॥ ८ ॥
परिस्फुरन्तीव पुरः सृजन्तीवाद्भुतं जगत् ।
बोधयन्तीव भावौघं शोधयन्तीव मानसम् ॥ ९ ॥
क्रोधयन्तीव मदनं हेलयन्तीव हावकैः ।
उद्वेलयन्तीवानन्दं मेलयन्तीव वाञ्छितम् ॥१०॥
तां विलोक्य मुदं प्राप दूरात् कमललोचनः ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मेने वाञ्छितवस्तुनि ॥११॥
तां विलोक्य पुरः प्रोद्यन्नवनीलमणिप्रभाम् ।
अपूर्वतरुसौन्दर्यशोभिताशेषकाननाम् ॥१२॥
पुष्पपत्रभरानम्रतरुशाखावलम्बिनीम् ।
कान्तां षोडवर्षीयां मदनस्येव वल्लभाम् ॥१३॥
इन्दीवरदलोत्कर्षतनुमञ्जिममण्डिताम् ।
अन्तर्लग्नमनोजाधिविमनायितमानसाम् ॥१४॥
जपन्तीं सहजानाम मुखचन्द्रे मुहुर्मुहुः ।
तेनैव शमयन्ती च प्रदीप्तं विरहानलम् ॥१५॥
इयाय परमाश्चर्यं स्थगितेवाभवद्धृदि ।
आः केयममृतासारैः सिञ्चन्तीव विलोचने ॥१६॥

कर्पूररसधारेव शमयत्यक्षिणी नृणाम् ।
मनोरथानां संपत्तिर्मूर्तेयं विधिनिर्मिता ॥१७॥
नेदृशं भुवने रूपं क्वचिद् दृष्टं श्रुतं तथा ।
प्राणेश्वरीयं भविता व्रजस्यास्य न संशयः ॥१८॥
लावण्यमन्यदेवास्या वृत्तिरन्यैव दृश्यते ।
उत्कीर्य रूपमाधुर्यात्केनैषा प्रकटीकृता ॥१९॥
दृशौ तिरयतो दृष्ट्या नीलपङ्केरुहश्रियम् ।
सामान्यब्रह्मणो नैषा रेखा संभाव्यते मम ॥२०॥
अवतारोऽथवा कश्चिद्रूपसारस्य भूतले ।
न मानुषी न गान्धर्वी न दैवी नापि चासुरी ॥२१॥
न नागकन्या धन्यैषा नगकन्या न वा भवेत् ।
कस्य सौभाग्यभाग्येन विधिना प्रकटीकृता ॥२२॥
पश्यतां जगतामेषा चक्षुषां पुण्यधोरणी ।
कमालप्यशुभैर्वाक्यै[1]र्मनस्यानन्दयिष्यति ॥२३॥
अङ्गमेव विभूषास्याः कान्तिसंदोहभूषितम् ।
कुर्वतोऽपि विधेरेषा हस्तस्पर्शं जगाम न ॥२४॥
प्रायो मलिनतां याति लोचनस्पर्शतोऽप्यसौ ।
प्राचीनसुकृतस्तोमैरभून्मे लोचनातिथिः ॥२५॥
रूपसारसुधौघस्य साक्षादेषा तरङ्गिणी ।
तारुण्यमपि लब्ध्वैनां हर्षोत्कर्षमुपैष्यति ॥२६॥
विधेः कार्मणकर्मेव जगतां मोहनीकृते ।
नर्माणि हावभावाश्च सर्वे प्रोल्लासमाययुः ॥२७॥
कवितां तिरयत्येषा कवीनामपि वाग्मिनाम् ।
साक्षात्प्रकटतां यातः पटिमाद्य च वेधसः ॥२८॥
प्राणा वै पञ्चवाणस्य दृश्यन्ते मूर्तिकारिणः ।
मुकुरोद्भासिसर्वाङ्गी सौकुमार्यकलानिधिः ॥२९॥

---

१. °र्वीक्ष्यै°—रीवाँ ।

इहैकस्थं सर्वमेव रूपवस्तु विलोक्यते ।
चूडामणिरयं साक्षात्सहजाया अपि स्फुटम् ॥३०॥
सहजापि किमेतस्या रूपस्य प्रतिरूपकम् ।
हरेस्तन्मोहिनीरूपं गर्वहीनं करोत्यसौ ॥३१॥
स्वप्नो वा दृश्यते कश्चिद्रूपसारैकगोचरः ।
नेयमेतादृशी तु स्यादियमेवैदृशी भवेत् ॥३२॥
रूपसारमयीं भिक्षां ददात्यन्यमृगीदृशाम् ।
एषामालिङ्ग्य चार्वङ्गीमङ्गानि तु कृतार्थये ॥३३॥
आलप्य चानया श्रोत्रे जनुःफलमुपैष्यतः ।
वञ्चितेयं नु भवितानुरूपवरहानितः ॥३४॥
अतीत्य शैशवकलां यौवनं भाषते ह्यसौ ।
किं कृतं विधिनैतस्या नानुरूपो वरः कृतः ॥३५॥

उज्जीवयत्यतनुमक्षितरङ्गितेन प्लुष्टं हरेण विहितप्रतिपक्षभावा ।
बिम्बाधराश्रयिसुधारससेचनेन दिव्यस्य कस्य शमयिष्यति चित्तदावम् ॥३६
नूनं नवीनरचना जगतो विधातुर्नाद्यापि कुत्रचन संजनितेत्यवैमि ।
एनां विधाय सुकृती विधिरद्य रूपनिर्माणगोचरमनःपटिमानमैच्छत् ॥३७॥
अस्यास्त्विषा प्रमुदकाननमेतदुच्चैरुद्दीपितं शतसहस्ररवीन्दुभासा ।
देशोऽपि धन्यतम एष नितान्तमस्याः श्रीविग्रहाधिकरणत्वमुपेत्य भाग्यैः॥३८॥
धन्ये दृशौ सुकृतसारमयं बभूव जन्मैतयोः सुखकरीमुपलभ्य बालाम् ।
एनां स्पृशत्यपि विलोचनतारकाभिश्चित्ते बिभेमि मलिनीकरणं ह्युपेयात् ३९
धन्यं जनुः सफलमद्य बभूव लोके धन्यं कुलं च मम दर्शनभाग्यवत्याः ।
वेलातिगं सुखपयोनिधिमद्य रुन्धे प्रेमोदधिप्रसरवेगभरेण शश्वत् ॥४०॥
इत्यालपन्ती हृदयेन रामा वैकल्पमन्दैश्चरणक्रमैस्ताम् ।
कथंचनाङ्गानि विवोढुमीशा मुदां निधिं संनिधिगां चकार ॥४१॥
गत्वा तस्याः संनिधौ तत्र रामा प्रेमोत्कण्ठाकुण्ठिताशेषबुद्धिः ।
नत्वा नत्वा लौकिकाकारवत्त्वादात्मानं वै संततं निर्ममञ्छ ॥४२॥

हर्षाश्रुगद्गदं कण्ठं संस्तभ्योदितधैर्यका ।
उवाच वचनं रामा प्रेमस्रोतःसमुज्ज्वलम् ॥४३॥

रामोवाच

कासि त्वमत्र विजने विपिने चरन्ती
सौन्दर्यसारसमुदायमयी मृगाक्षि !
अङ्गानि तेऽभिनवनीलमणिप्रभौघ-
न्यक्कारकानि हृदयं मम मोहयन्ति ॥४४॥

त्वमङ्गकैर्मन्मथमङ्गलप्रदैरलङ्करोष्याभरणानि यानि ।
त्वदीयसौन्दर्यसुधापयोनिधौ मज्जत्यथोन्मज्जति मानसं मम ॥४५॥

त्वमस्य लोकस्य दृशां मृगेक्षणे पारेपरार्धादतिभाग्यसंपदा ।
महीतलेऽस्मिन् प्रकटत्वमागता नोचेत्क्वलोकः क्व च ते नु दर्शनम्॥४६॥

भाग्येन मम सख्यास्त्वं सखीत्वं किमु यास्यसि ।
यस्यास्तवोचितं रूपं त्रैलोक्येऽपि विलोक्यते ॥४७॥

अथवा नवनीलमेघविद्युद्घटनासंघटनापटीयसैव ।
विधिना त्वमकारि भाग्यवत्या मम सख्यः किल सख्ययोजनाय ॥४८॥

मरकतमणेर्वर्णः स्वर्णोचितः प्रतिभाति चेत्
कनकलतया योगो योग्यस्तमालतरोरपि ।
अथ समुचिता हैमी रेखापि चेन्निकषोपले
तदिह तव मत्सख्या सख्यं स्तुतये नृणाम् ॥४९॥

अथ कथय कथं करोषि कान्ते त्वमनुसवं किल कस्य नामजाप्यम् ।
स क इह पुरुषोत्तमोऽथवा स्त्री मणिरणिमादिनिधिस्तवाशये यः ॥५०॥

त्वदुरसि रसिकेऽस्ति यस्य बद्धा कनकमयी प्रतिमा गुणैर्निबद्धा ।
अनवरतमसावुपास्यमाना द्रुतवनकुङ्कुमचारुचर्चिताङ्गी ॥५१॥

यमनुसवमथो विचिन्तयन्ती विरहजतापभरेण ताम्यसि त्वम् ।
तरुणि नवशिरीषकोमलाङ्गी कमलदलायतलोचना ललामा ॥५२॥

किमलंकुरुषे कुलं स्वजन्या कतरस्ते जनकश्च का जनित्री ।
इति मे विनिवार्य संशयं त्वं मम सख्या नयनातिथिर्भवित्री ॥५३॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः प्रणयप्रणतात्मनः ।
मन्दस्मितसुधासिक्तमुवाचेदं रहोवचः ॥५४॥

नवसख्युवाच

कस्यचिद्गोपवर्यस्य तनयाहं दयावति ।
नन्दिग्रामे वसाम्यद्धा सुखितो यत्र भूपतिः ॥५५॥
जपामि विरहोत्तापशान्तये नित्यमाकुला ।
सहजानन्दिनीनाम भवत्याः खलु या सखी ॥५६॥
सैव मच्चित्तवेश्मान्तरधितिष्ठति संततम् ।
अणिमाद्यष्ट सिद्धीनामाश्रयत्वमुपागता ॥५७॥
तस्याः स्वर्णमयी चैषा प्रतिमा मदुरःस्थलम् ।
अलंकरोति रक्तेन विनिबद्धा गुणेन या ॥५८॥
उपास्यतेऽनिशं सैव भाग्यपूर्णे भवत्सखी ।
चन्दनैः कुङ्कुमक्षोदरञ्जितैः सौरभाञ्चितैः ॥५९॥
पुष्पैर्धूपैस्तथा दीपैर्बलिभिश्चोपकारकैः ।
यथा मां प्राप्नुयाच्छीघ्रं हतभाग्यकदम्बकाम् ॥६०॥

कठिनं मम मानसं दयालो रचितं वज्रकठोरसारतश्च ।
तदपारवियोगयोगकीलाकुलितं चापि सहस्रधा न दीर्णम् ॥६१॥
कठिना च भवत्सखी नितान्तं सुमनोगर्भशिरीषकोमलापि ।
हृदि यास्ति दिवानिशं विशन्ती मम विश्लेषभवं रुजं न वेत्ति ॥६२॥
इदमस्मि बिभेमि साधितिष्ठत्यनिशं [1]प्रज्वलितं वियोगिचित्तम् ।
इति तत्प्रशमाय वाष्पधारासलिलैः सेकमहर्निशं[1] करोमि ॥६३॥

नूनं तद्विरहेणासौ तनुः पञ्चत्वमेति नः ।
आशाकवचमात्रेण रक्षितं दुःखहेतवे ॥६४॥
किं कस्मै कथयाम्यद्धा प्रलापं ज्ञास्यते जनः ।
अधिष्ठिता मद्धृदये सर्वं वेत्स्यति किं न सा ॥६५॥
कामिन्यप्यस्मि कामिन्या विरहेण दुनोमि चेत् ।
तद्रूपं पश्यतां दृष्ट्या पुरुषस्य दशा नु का ॥६६॥
महत्तमिश्रव्याप्तत्वाद् दिवसो रजनीयते ।
इतीव विरहात्तप्ता वेद्मि सूर्यं सुधाकरम् ॥६७॥

१—१. नास्ति—अयो० ।

वियोगातपसंव्याप्ता रजनी दिवसायते ।
[1]इतीव शीतलोऽप्यालि चन्द्रश्चण्डकरायते ॥६८॥
राजीवविपिनं दृष्टं प्रज्वलत्पावकायते ।[1]
धूमधारायते तस्मात्तदुपर्यलिधोरणी ॥६९॥
निर्दयो ग्रामलोकोऽयं समंतात्प्रज्वलत्तमम् ।
किंशुकाटविदावाग्निर्निर्वापयति नाम्बुभिः ॥७०॥
पुरा रामेण कलितं निर्विषं सरयूजलम् ।
अकस्मादुत्थिता केयं गरलज्वालका ततः ॥७१॥
करपत्रायते नित्यं केतकीकाननं मम ।
निपतद्धृदयं तत्र द्विधा दीर्णं यदन्तरा ॥७२॥
प्राप्यापि पञ्चतामालि समीहे वपुषो दशाम् ।
तत्पदन्यासधरणौ धरणिः प्रविलीयताम् ॥७३॥
तल्लीलासरसीतोये तोयं यातु लयं ततः ।
तदादर्शतले ज्योतिरप्ययं प्रतिगच्छतु ॥७४॥
तदीयतालवृन्तेषु वायुरप्येतु मामकः ।
तद्गत्या गतिमार्गे च व्योमालयमुपेतु च ॥७५॥
अत्युत्कण्ठावशेनाहं धावं धावं मुहुर्मुहुः ।
परिरभ्य नभो नित्यं पतामि धरणीतले ॥७६॥
इन्दीवरवनैर्मिश्रा पुण्डरीकवने सखि ।
गङ्गायमुनयोः सङ्गे स्नातुमिच्छति मानसम् ॥७७॥
ईप्सति क्षिप्तविरहोच्छित्तये सुकृतोदयम् ।
किं न्वेष कुरुते विघ्नं कन्दर्पाख्यो महासुरः ॥७८॥
विश्लेषज्वालयोद्विग्नं मनश्चम्पककानने ।
प्रदीप्तानलबुद्ध्यैव सखि निर्मङ्क्तुमिच्छति ॥७९॥
विरहाग्निवृतं चित्तं किमध्यास्ते भवत्सखी ।
अनर्गलाश्रुधाराभिः सिक्ते नोपैति लोचने ॥८०॥

१—१. नास्ति – अयो० ।

संवरीतुं वियोगार्तिनाशकं गुरुसंनिधौ ।
नहि गोपाय्यते वह्निः पटे शतपुटैरपि ॥८१॥
खिद्यामि सखि देहेन संतप्ता विरहाग्निना ।
किमु कम्पमुपैम्यद्धा तुषारेणेव पीडिता ॥८२॥
अत्युच्छ्रायवतीं मनोरथमहाप्रासादनिःश्रेणिका-
मारोहादवरोहतश्च विगलद्गात्रोऽतिमात्रं भजन् ।
श्वासोच्छ्वासपरम्पराभयमहाहिन्दोलिकान्दोलितः[२]
श्रान्तः खिन्नतनुः कदापि कलये विश्रान्तिमन्तर्न च ॥८३॥
कापि पुण्यवती भामा भविष्यति नु किं भवे ।
या मल्लोचनयोः तस्या दर्शनं प्रविधास्यति ॥८४॥

रामोवाच

कदा तव तदासक्तिर्हृदयेऽङ्कुरिता सखि ।
बद्धमूलतया यस्याः परिणामोऽयमीदृशः ॥८५॥
सा वै गोपालराजस्य श्रीनन्दनमहामतेः ।
तनया सप्तकक्षाढ्यप्रासादान्तरगोचरा ॥८६॥
अहो असूर्यम्पश्यायास्तस्याः क्व नु विलोकनम् ।
यस्यास्तनुलतागन्धवहो वातोऽपि दुर्लभः ॥८७॥
आवृतं च मनस्तस्या गुरुलज्जापटान्तरे ।
यस्य वाञ्छा प्रभामात्रमपि वै वहिरेव हि ॥८८॥
वयस्यापि च का तस्या मनः प्रत्ययभाजनम् ।
छायापि न स्पृशत्येनां वारिता तनुरोचिता ॥८९॥
इत्यपूर्वतमं प्रेम तव वीक्ष्य रतिप्रभे ।
भवामि संदिहानाहं तस्या वृत्तान्तवेदिनी ॥९०॥
इत्युदीरितमाकर्ण्य सहजेशीवयस्यया ।
प्रत्युवाच वचः श्यामा स्मितज्योत्स्नासमुज्ज्वलम् ॥९१॥

---

१. सत्पुरुषैः—रीवाँ। २. °हिन्दोलितः संततम्—अयो०, रीवाँ।

नवसख्युवाच

कः संशयस्तदासक्तौ तव संजायते सखि ।
याखिलव्रजलोकस्य साक्षाल्लोचनतारिका ॥९२॥
तथापि कथयाम्यस्या रहो मम समागमम् ।
प्रेम साक्षिसमुच्छ्रायबीजप्रदमहं सखि ॥९३॥
एकदा स्वप्नगायां मय्यक्ष्णोर्मीलितरूपयोः ।
सिद्धानाड्या सुसंयुज्य तूष्णींभूते च मानसे ॥९४॥
रहस्यं मम सर्वस्वं निद्रया समदर्शि सा[1] ।
येन रूपेण दृष्टा च तद्रूपं प्रतिबोधने ॥९५॥
रम्भाकाण्डस्य तालोपरि कमलतले शारदः शीतरश्मि-[2]
स्तस्मिन्नम्भोजमग्नं सृजति मुहुरुडुस्थूलमुक्ताफलानि ।
बन्धूकं धूनयन्नुत्प्रचलति पवनो गन्धफल्या[3] कवोष्णाः
कीर्णाश्च ध्वान्तधारा हिमकरमभितः सर्वमेतल्लतायाम् ॥९६॥
सौवर्णी सापि शश्वन्नवजलदघटा विप्रयोगा कृशाङ्गी
दृष्टा क्लिष्टेव कष्टं बहुलतरमिता शुष्यती चानुवेलम् ।
वीक्ष्यैतत्संदिहाना किमिदमिति जवात् प्रष्टुमीहामि यावत्
तावत्सख्या कयाचित्कथितमियमहो कन्यका नन्दनस्य ॥९७॥
जङ्घाकाण्डस्थबाहुः करतलनिहितास्यानिशं लोचनाभ्यां
मुञ्चन्ती वाष्पविन्दून् चलदधरदला श्वासचण्डानिलेन ।
दुःखादुन्मुक्तकेशावलिवृतवदना ज्ञायतां स्विन्नगात्रा ।
श्यामायास्ते वियोगादिति तदनु च जातास्मि निद्रादरिद्रा ॥९८॥
सखि तद्दिनमारभ्य सहजानन्दनात्मजा ।
मम चित्तमधिष्ठाय स्थिता विरहनिर्भरा ॥९९॥
इति ते गदितं सख्यै तस्यां प्रेम यथाभवत् ।
स्वस्वामिन्यै निवेद्यैतद्यथोचितमिहाचर ॥१००॥

---

१. °दर्शिता—अयो० । २. कमलसरः शारदं संनिषण्णम्—रीवाँ ।
३. गन्धपूर्वः—अयो०, रीवाँ । "बन्धूकं गन्धफली नासिका" टि०-मथु०, बड़ो ।

सुकण्ठ उवाच

ततः प्रोवाच रामाख्या सखी तां श्यामविग्रहाम् । अत्यद्भुतगुणप्रेम-
वयोवेषविभूषिताम् ॥१०१॥
सखि श्यामले काप्यपूर्वा गुणैस्त्वं मम स्वामिनी भवित्री प्राणदात्री ।
परं तावदत्रैव तिष्ठ द्रुमाधः सखीं यावदानीय ते दर्शयामि ॥१०२॥

तवरूपगुणप्रेमवयोवेशादिमाधुरीम् ।
मत्तः श्रुत्वा मत्सखी ते दर्शनार्थमिहैष्यति ॥१०३॥
त्वादृशी सद्गुणैराढ्या मत्सख्या विरहातुरा ।
मयोपकरणीयासि वाञ्छन्त्या सख्यमच्युतम् ॥१०४॥
इत्युक्त्वा श्यामलां रामा किंचिदाशावलम्बिनीम् ।
कदम्बमूले संस्थाय शनैः पर्यचलत्ततः ॥१०५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रायां
व्रजागमने एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥

●

द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः

सुकण्ठ उवाच

तामुपेतां चिराद्वीक्ष्य सहजोवाच कौतुकात् ।
अये क्व नु गतारामे मामनुक्तैव कानने ॥१॥
ततश्च पुनरायाता प्रेमोत्फुल्लविलोचना ।
कश्चित्प्रियतमो लोलः किं नु दृष्टस्त्वया रहः ॥२॥
प्रत्यङ्गं पुलकाङ्कुरैस्तव तनुर्व्याप्ता वरीवर्तते ।
श्वासोच्छ्वासपरम्परा च वदने नाद्यापि ते शाम्यति ।
आर्द्रासि श्रमवारिसीकरभरैरानन्दमावेदय-
त्यन्तः स्वान्तमहो नितान्तमसकौ वक्रप्रसादस्तव ॥ ३ ॥

इति साकूतमाख्याय सहजानन्दिनी स्वयम् ।
रामं लीलारविन्देन जघान स्मितपूर्वकम् ॥ ४ ॥

रामोवाच

अलं मृषोद्येन सखि स्वभावरक्ते जने केयमलीकशङ्का ।
किंतु त्वमेकान्तचरी यदि स्यास्तदास्मि किंचिद्विनिवेदयामि ॥ ५ ॥
इत्युक्त्वा सहजानन्दां रामा चतुरिमोदधिः ।
रहो लतामण्डपान्तर्नीत्वा प्रोवाच सादरम् ॥ ६ ॥
अये सखि मम प्राणप्रिये श्रीसहजेश्वरि ।
अद्यैकमद्भुततमं किंचिदालोकितं मया ॥ ७ ॥
इतो विदूरे भात्येकं कदम्बवनमद्भुतम् ।
तत्रैकस्य कदम्बस्य मूले नीलमणिद्युतिः ॥ ८ ॥
अपूर्वतरसौन्दर्यसंदोहेन विभूषिता ।
वर्ततेऽत्यद्भुता योषित्काचित्परमसुन्दरी ॥ ९ ॥
न तादृशं रूपमिह क्षमातले दृष्टं श्रुतं वा भवतीं विहाय तु ।
अनङ्गमत्यद्भुतकान्तिसंपदा शश्वद्वशीकृत्य विभाति सा स्त्री ॥१०॥
यस्य कस्यापि गोपस्य नन्दिग्रामनिवासिनः ।
त्वन्नामजपसंसक्ता त्वद्वियोगभरातुरा ॥११॥
त्वदनुध्यानपीयूषधराशीतलमानसा ।
संपूजयति सा नित्यं काञ्चनीं प्रतिमां तव ॥१२॥
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैरपि ।
एवं संपूज्य सततं गृह्णाति चरणोदकम् ॥१३॥
सहजे सहजानन्दे श्रीनन्दनसुते प्रिये ।
इति नामशतं नित्यं गृणाति तव तुष्टये ॥१४॥
त्वत्प्रेमपावकज्वाले तया प्राणास्तृणीकृताः ।
मन्ये तां तादृशीं वीक्ष्य कार्यं सख्यं त्वया सखि ॥१५॥
चिरादुत्कलिकावत्यै दर्शनं तु प्रदीयताम् ।
नूनं तव मनस्तस्यामत्यन्तं तोषमेष्यति
कादम्बिनीव दामिन्यास्तव सा सख्यमर्हति ॥१६॥

सुकण्ठ उवाच

ततश्च सहजानन्दा नितान्तं तुष्टमानसा ।
ददौ तस्यै निजं हारं समुत्तार्य स्ववक्षसः ॥१७॥
तस्याः स्कन्धे समारोप्य निजबाहुलतां ततः ।
शनैः पर्यचलत्स्थानाद् द्वित्राभिः[1] सहितालिभिः ॥१८॥
पुष्पावचयनव्याजाच्छेषाः संगान्न्यवारयत् ।
यत्र सा नीलमणिभा मूले नीपतरोः स्थिता ॥१९॥
तत्राजगाम शनकैः सहजानन्दिनी प्रिया ।
स तु नूपुरयोर्नादं दूरादाकर्ण्य निर्वृतः ॥२०॥
अहो प्राणप्रियामद्य द्रक्ष्यामि स्वयमागताम् ।
अभूतपूर्वभाग्याभ्यां लोचनाभ्यामितीरिता ॥२१॥
ततश्च सहजा साक्षान्नवनीलमणिच्छविम् ।
कदम्बतरुमूले तां व्यचष्ट सुभगोत्तमाम् ॥२२॥
दृक्चकोरानन्दकरीं चन्द्रकान्ताममन्यत ।
यथोदितं रामया तद्रूपं कोटचधिकं ततः ॥२३॥
अथोभयोर्दृगानन्दः परस्परमवर्द्धत ।
परस्परस्यावलोक्य रूपसारं परस्परम् ॥२४॥
सहजानन्दिनी दूरात्किञ्चित्संजनितत्वरा ।
अमिलत् प्रियया सख्या कादम्बिन्यैव चञ्चला ॥२५॥
श्यामां निजप्रियतमामालिलिङ्ग चिरं सखी ।
परमानन्दपाथोधिमन्योन्यं ते जगाहतुः ॥२६॥
अथ रामातिचतुरा भावज्ञा तस्य कामिनः ।
[2]द्रागेत्याञ्चलयोर्ग्रन्थिमबध्नान्नीलपीतयोः ॥२७॥
ततोऽन्या जहसुः सख्यो ज्ञाततत्त्वाः ससंभ्रमम्[2] ।
सहजानन्दिनी चित्ते लज्जामीषद्व्यथगाहत ॥२८॥

---

१. द्वित्रिभिः—रीवाँ । २—२ नास्ति—अयो०, रीवाँ ।

लज्जाशालीननयनां वञ्चितामिव रामया ।
विलोक्य सहजां सख्यः सद्य एवेदमूचिरे ॥२९॥
अलं ते लज्जयास्थाने चित्तेऽभिलषितो वरः ।
चिरादुत्कलिकामात्रं रामोऽयं मिलितस्तव ॥३०॥
अद्यास्माकमपि क्रिया फलवती प्राप्तं फलं चक्षुषो-
र्जातश्चापि मनोरथक्षितिरुहः सम्यक्फलाढ्यः सखि ॥
यद्द्वयातं सुचिरेण तत्समभवत्कल्याणमद्यैव नो ।
यत्साक्षाद्भवतीं प्रियेण सहितां भाग्येन वीक्षामहे ॥३१॥
कादम्बिनी चपलयोरिव सत्तमालसौवर्णचारुलतयोरिव चातिधन्यः ।
वैदूर्यरत्नवरकुन्दनयोरिवाहो भूयाच्चिराय भवतोरयमेव योगः ॥३२॥
वर्षासु सेर्ष्यं किल यच्चकोरीकुलं शरत्स्वप्ययि चातकीकुलम् ।
वर्षाशरद्योगमुदावहो युवां विलोक्य तुष्टिं तनुतामुभे अपि ॥३३॥

अथैतयोः कुञ्जनिकेतनान्तरे
विवाहमह्नाय विधातुमीप्सवः ।
सखीः समामन्त्रयितुं रहस्ततः
संप्रस्थिताः काश्चन सख्य उद्धुराः[1] ॥३४॥
प्रमोदवनदेवी तु मङ्गलाह्वा ससंभ्रमम् ।
परितो रचयांञ्चक्रे कुञ्जवेश्मनि तत्क्षणे ॥३५॥
वैदूर्यरत्नमणिविद्रुमपुष्परागमुक्तामयो सपदि कुञ्जमहो चकासे ।
उत्फुल्लमञ्जरितवृक्षलतावितानशोभाचितानि विपिनानि मुदं वितेनुः ३६
सद्यो ववौ मलयचन्दनगन्धवाहस्तुङ्गोत्तरङ्गसरयूजलसंगशीतः ।
वल्लीशताकुलमहीरुहगह्वरान्तःसंचारमन्दगमनः सुखदः समीरः ॥३७॥

मण्डलाख्या तदागच्छच्छाण्डिल्यस्य मुनेर्वधूः ।
यो वै सुखितगोपस्य पुरोधाः सर्वकर्मसु ॥३८॥
सा च प्रकारयामास शशिनं पूर्णमण्डलम् ।
आत्मशक्त्या महायोगिन्यानन्दकरशीतलम् ॥३९॥

---

१. संप्रस्थितश्चास सखीव्रजस्तदा—रीवाँ ।

उदित्वरकलानाथकिरणोद्योतरञ्जितम् ।
नवपल्लवसंशोभि प्रमोदविपिनं बभौ ॥४०॥
चकोराश्चारुचन्द्रांशुचयपानविचक्षणाः ।
चमत्काराणि चित्तस्य चाटूनि समचीकरन् ॥४१॥
अथ मण्डलया नीताः सर्व एव सखीगणाः ।
गायन्तः शुभगीतानि सद्यस्तत्र समाययुः ॥४२॥
आगताश्च सखायोऽस्य प्रियनर्मवयस्यकाः ।
अहं शिखावलश्चैव मेघवर्ण उदारधीः ॥४३॥
मालाधरो मञ्जुघोष ऐरावतमुखा अपि ।
नदन्तो नादयन्तश्च वीणामुरजवल्लरीः ॥४४॥
सर्व एवोत्सवौचित्यशालिवेशविभूषणाः ।
राममानन्दयन्ति स्म सहजानन्दिनीयुतम् ॥४५॥
सर्वेषां द्विगुणो हर्षस्तक्षणात्समदृश्यत ।
सहजानन्दिनीराममिथुनं पश्यतां सताम् ॥४६॥
नवशाद्वलभूमीषु महामारकतीष्विव ।
नवपल्लवराजीभिश्चित्रमास्तरणस्तृतम् ॥४७॥
तत्र ताः कोटिशो यूथैः सख्यः कमललोचनाः ।
उपविश्य शुभं गीतं संजगुर्मधुराक्षरैः ॥४८॥

अथ नव सहकारमञ्जरीभिर्विहिततमौ सुरभिश्रियावतंसौ ।
शिरसि विनिहितौ वधूवरौ तौ सुरचितमङ्गलमूहतुस्तदानीम् ॥४९॥
पृथक्लतामण्डलसद्मनी उभे वधूवराभ्यां सहसा विरेजतुः ।
मणिस्रगुद्भावितोरणस्रजा पुष्पावलीपल्लवजालिमध्यया ॥५०॥

उदपूर्णैर्माङ्गलिकैः कलशैरभिमन्त्रितैः ।
वधूवरदृगानन्दः पुपुषे दर्शनोद्भवः ॥५१॥
सर्षपाः परितः कीर्णाः सूक्ष्मारुणमणीकणाः ।
प्रतिमानजुषः सख्यं परस्परमुपाययुः ॥५२॥

स्वाभाविककदलीखण्डन्यासैर्धूपदीपावलिभाजननिक्षेपैः ।
अतिशोभिततोरणमालाविधिभिर्नवपल्लवपुञ्जपताकाकलनैः ॥५३॥

प्रासंगिकैर्गीतनादैर्गोपीजनमुखोद्गतैः ।
शुशुभे शोभया पूर्णः सुमुहूर्तः समागतः[1] ॥५४॥
ततो रामस्य विधिना समावर्तनमद्भुतम् ।
समकारि पुरन्ध्रीभिर्ब्रह्मचर्यमहाव्रतात् ॥५५॥
यत्र स्वाध्यायमध्येतुं यास्यमानो निकेतनात् ।
श्रीनन्दनस्य बालेन श्यालेन स निर्वर्तितः ॥५६॥
श्वस्रूस्थानापन्नया गोपनार्या कयापि रामस्तोषितः सप्रतिज्ञम् ।
कन्यादानस्वीकरणाद्ब्रह्मचारी स्तुतिक्रियापटभूषादिदानात् ॥५७॥
अथ निश्चयताम्बूलदानं निशि विधानतः ।
तस्मै कृतं पुरन्ध्रीभिर्मङ्गलस्वनपूर्वकम् ॥५८॥
निश्चयताम्बूलदाने रघुपतितनयः पूर्णचित्तः प्रमोदः
साक्षाच्छ्रीनन्दनैकप्रभुवरतनयायै निगूढं सखीभिः ।
वासो भूषा बहुविधफलान्नादिवस्तूनि धृत्वा
रत्नामत्रं द्रुमदलपुरैः प्रेषयामास रामः ॥५९॥
तदा निश्चयताम्बूले दीयमाने कलस्वरैः ।
कोकिलाकामिनीलोकः काकलीभिः समुज्जगौ ॥६०॥
कलितमलिकलापभूरिभेरीनिनदभरैः परितः शुभं प्रसक्तम् ।
प्रमुदवनसुकीचकैः स्वनद्भिर्मधुरतरो मुरजव्रजो ननाद ॥६१॥
सरसः ससमागमः किलासीदुभयेषां खलु सार्थयोर्निकुञ्जे ।
अनदन् प्रणयेन यत्र गालीः करुणाम्भोनिधये रघुवर्याय ॥६२॥
कूजन्त्यः कोकिलालापैराल्यो गालीर्गुणाञ्चिताः ।
उभयोः पक्षयो राजन् पुरन्ध्र्यस्तत्र रेजिरे ॥६३॥
नान्दीमुखं विशेषेण सारिका निरवर्तयन् ।
वेदवेदाङ्गवैदुष्यविचक्षणतया स्थिताः ॥६४॥
यद्यत्कार्यतमं गूढैः प्रकटं वा सुरीतितः ।
लौकिकं वैदिकं चापि नोल्लङ्घ्य विदधुः स्त्रियः ॥६५॥

---

१. सुमुहूर्तादिनागमः—मथु०, बड़ो० ।

अथ वैवाहिके लग्ने संप्राप्ते वरपक्षगाः ।
गायन्त्यो वादयन्त्यश्च कन्यामण्डपमाययुः ॥६६॥
तत्र रत्नचतुष्के ताश्चतुष्कलशशोभिनि ।
वेदिकायां समारोप्य स्नापयाञ्चक्रुरालयः ॥६७॥
गायन्त्यः स्नानगीतानि शुभानि सुखदानि च ।
शृङ्गारमण्डपे यत्र देवी तिष्ठति मङ्गला ॥६८॥
प्रमोदविपिने वर्यास्तस्याः संनिधिमाययुः ।
तत्र शृङ्गारयाञ्चक्रुर्धूपदानपुरःसरम् ॥६९॥
दुधुवुः कालगुरुणा तस्याश्चिकुरधोरणीम् ।
स्नानार्द्राणि त्वथाङ्गानि कञ्जपत्रमृदूनि च ॥७०॥
अङ्गवस्त्रं समुत्तार्य तनौ रङ्गपटीं दधुः ।
पादयोस्तलमारभ्य शिखान्तं मण्डलं दधुः ॥७१॥
रामपक्षगताः सख्यो भूषयन्ति स्म ते प्रभुम् ।
अवतंसं दधुः पश्चाद्रसालमञ्जरीमयम् ॥७२॥
गायन्ति स्म सखीवृन्दाः सुस्वरं गीतमद्भुतम् ।
प्रमोदवनवासिन्यः कोकिलाश्च मदान्विताः ॥७३॥
अलिश्रेणीमयीं वीणां वादयन्ति स्म तत्पराः ।
उद्गुच्छ[1]स्तनशालिन्यो लताकान्ताः सखीवराः ॥७४॥
जगौ च मङ्गलां देवी प्रमोदवनदेवता ।
तस्याः स्वरेण सकलं नादितं कुञ्जमन्दिरम् ॥७५॥
अथ प्रेमहयारूढः सखीनां मण्डलैः सह ।
आययौ सुन्दरो रामः कन्यामण्डपतोरणम् ॥७६॥
प्रत्युद्ययुः सखीवर्याः कृत्वोदकलशं पुरः ।
दीपभाजनहस्ताश्च चक्रुर्नीराजनाविधिम् ॥७७॥
ततोऽभिषिषिचुः सर्वाः कलशस्थितपल्लवैः ।
अथ देवीं नमस्कार्य चक्रुरर्हणमस्य ताः ॥७८॥

---

१. उद्गच्छं—रीवाँ ।

विष्टरं पाद्यमर्घ्यं च मधुपर्कं करे दधुः ।
अथान्तःपटमानीय कन्यामानिन्युरङ्गनाः ॥७९॥
तत्रालयः काव्यकलाविचक्षणा वधूवरं चामितमङ्गलाशिषा ।
अवर्द्धयन्नृत्कलिकाशताकुलाः कुञ्जेश्वरीं च स्फुटमैरयंच्छुभम् ॥८०॥
सर्वानन्दनिधिप्रमोदविपिनश्रीभोगसंवर्द्धनौ[1]
त्रैलोक्यामितमङ्गलैकनिलयौ कुञ्जेश्वरीप्राणदौ ।
लावण्यैकनिकेतनौ कमलया नित्यं समाराधितौ
श्रीमन्नन्दननन्दिनीरघुवरौ नित्यं सुखं प्राप्नुताम् ॥८१॥
यस्याश्चारुकृपाकटाक्षविभवेनानङ्गसंदीपनम्
यस्य प्रेक्षणमात्रतो जडधियां चैतन्यलाभोऽनिशम् ।
सर्वोत्कर्षकलाकलापकलितश्रीविग्रहोद्द्योतितौ
तौ श्रीनन्दनकन्यकारघुवरौ नित्यं सुखं प्राप्नुताम् ॥८२॥
या सौन्दर्यतरङ्गिणी नयति यः सौन्दर्यरत्नाकरः ।
प्रेम्णः सारमनन्यगोचरतया जानीत एवेह यौ ।
कुञ्जागारमनोज्ञकेलिकलया लोकोत्तरश्रीयुतौ ।
तौ श्री नन्दनकन्यकारघुवरौ नित्यं सुखं प्राप्नुताम् ॥८३॥
सर्वस्वौ प्रणयप्रकर्षजमहाभावैकलक्ष्मीवतां
कल्याणैकमहास्पदौ रसिकतासन्तानसंवर्द्धनौ ।
नित्यानन्दपयोनिधी रसपतिश्रीकल्पवल्लीद्रुमौ
तौ श्री नन्दनकन्यकारघुवरौ नित्यं सुखं प्राप्नुताम् ॥८४॥
चक्षुश्चातकपोषणीं रससुधाधारं च यो वर्षति
स्वैरं चित्तचकोरिकासुखसुधासारं च या च्योतति ।
लोकातीतगुणास्पदौ तुहिनरुक्कादम्बिनीमण्डलौ
तौ श्रीनन्दनकन्यकारघुवरौ नित्यं सुखं प्राप्नुताम् ॥८५॥
छायामेत्य ययोर्भवन्ति सुजनास्तापत्रयोत्थव्यथा-
निर्मुक्ताः सततं जयन्ति च सुखस्वाराज्यलक्ष्मीभृतः ॥

---

१. संभोगश्रीवर्द्धनो—रीवाँ ।

संफुल्लप्रमुदाटवीरसवृषौ वल्लीतमालद्रुमौ
तौ श्रीनन्दनकन्यकारघुवरौ नित्यं सुखं प्राप्नुताम् ॥८६॥
प्रेमानन्दसरोजकाननमरन्दासेविभृङ्गोत्तमौ
लीलाक्षीरसमुद्रतुङ्गलहरीमालामरालाधिपौ ।
लोकानन्दनरागकाननवसन्तः काकलीकोकिलौ
तौ श्रीनन्दनकन्यकारघुवरौ नित्यं सुखं प्राप्नुताम् ॥८७॥
एका कान्तविधूदयेन कुमुदश्रेणीव मोदं दध-
त्यन्यस्ताद्रुचिचन्द्रिकाकुवलयं बिभ्रच्चिरं लोचने ।
अन्योन्याश्रयिणौ परस्परगुणग्रामाभिरामाकृती
तौ श्रीनन्दनकन्यकारघुवरौ नित्यं सुखं प्राप्नुताम् ॥८८॥

एतन्मङ्गलपद्यानामष्टकं यः शृणोति च ।
तस्य मङ्गलसंदोहो नित्यमेव प्रजायते ॥८९॥
अमङ्गलस्य लेशोऽपि न जन्मन्युपजायते ।
रामचन्द्रहृदानन्दिकुञ्जवैवाहिकाष्टकात् ॥९०॥
अथ माङ्गलिके लग्ने गजमुक्ताफलाञ्जलिः ।
परस्परस्मिन्न्यपतत् परस्परकराब्जतः ॥९१॥
वरो वधूमुखं वीक्ष्य वर्द्धिष्णुं प्रेमवारिधिम् ।
सखी नयनमन्दाक्षवेलया न्यरुणत्तराम् ॥९२॥
ह्रीणाभ्यां सहजानन्दा नेत्राभ्यां न निरीक्षितुम् ।
शशाक वरवक्त्राब्जं सखीजनकदम्बके ॥९३॥
वरः प्रवीणो मदनस्य वाणैरत्यातुरो लक्षित आलिभिर्वै ॥
वधूकरस्य ग्रहणे नितान्तखिन्नेन रोमाञ्चवता करेण ॥९४॥
विज्ञाय रामा रमणस्य भावं मनोजवाणाहतमानसस्य ॥
द्विरागमस्याशुविधिं विधाय वधूवरौ कुञ्जगृहे न्यवेशयत् ॥९५॥
तत्रानयोः प्राकृतलेशवर्जो बभूव लीलाविधिरद्भुतो यः ॥
न तं पुनर्वक्तुमहं क्षमोऽस्मि निरीक्षमाणः प्रियनर्मसख्या ॥९६॥
इत्थं तयोः कुञ्जविहार एष रामासखीनिर्मित उत्सवाढ्यः ॥
पिकीजनो[1]द्गीतयुतालिवीणां संनादमाङ्गल्यसमूहयुक्तः ॥९७॥

---

१. सखीजनो°—रीवाँ ।

ततस्ताः सकलाः सख्यः कृतकृत्या इवाभवन् ।
युगलं वीक्ष्य मुदिताः सहजारामचन्द्रयोः ॥९८॥
सहजानन्दिनीं प्राप्य सुखितेन्द्रकुमारकः ।
समस्तगोकुलस्त्रीणां मनोरथफलं ददौ ॥९९॥
अयं चातिरहस्यत्वान्न प्रकाश्यः कदाचन ।
रामस्य कुञ्जभवने विवाहः सुखसाधकः ॥१००॥
ततोऽभवद्रामचन्द्रे व्रजः पूर्णमनोरथः ।
असिद्धः स्वयमन्यासां साधयेच्छं किमन्यथा ॥१०१॥
अपारविरहाम्भोधेः पारं जातवति प्रिये ।
कृतोपकाराः सकलाः सख्यः शर्माणि लेभिरे ॥१०२
परिभ्रमन् कुञ्जवीथीषु रामो विलोकितो विमना एव पूर्वम् ।
बलीयसा विरहेणैवमुक्तः सुधाकरो राहुणेवाप कान्तिम् ॥१०३॥
इतिश्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रायां व्रजागमने द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥

त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः

राजोवाच

सहजानन्दिनी धन्या धन्यं तस्याः कुलं महत् ।
अवाप बहु भाग्येन रामस्य पदवीं यतः ॥ १ ॥
जानामि तत् परं ब्रह्म राम इत्याख्यया भुवि ।
प्रसिद्धं मम धाम्नैव योगिनामपि दुर्लभम् ॥ २ ॥
श्रीरामो रामचन्द्रो हरिरित्युक्त ईदृशैः ।
नामभिः कुरुते देवः सतां चित्तस्य पावनम् ॥ ३ ॥
करोमि किं समक्षं मे तस्य पुत्रेति भावना ।
बहुधा विनयं दृष्ट्वा पितृभक्तिर्मयि ध्रुवम् ॥ ४ ॥
असमक्षं तस्य मम माहात्म्यस्फूर्तिरद्भुता ।
ब्रह्मैव पूर्णमेतद्वै इति प्रत्यापयत्यलम् ॥ ५ ॥

इदानीं तस्य मे भावो ब्रह्मेत्येव महादृढः ।
तेन त्वां परिपृच्छामि रहस्यमपि तत्कृते ॥ ६ ॥
सहजानन्दिनी येयं प्रिया तस्य प्रकीर्तिता ।
औपपत्यं कथं तस्या गर्हितं लोकवेदयोः ॥ ७ ॥
इति मे संशयं छिन्धि भवान् श्रीरामसेवकः ।
त्वदन्यो रामलीलाया रहस्यज्ञो न विद्यते ॥ ८ ॥

सुकण्ठ उवाच

रसस्य परमा काष्ठा रामेणैवोदिता नृप ।
प्रमोदवनवीथीषु साक्षाद्विहरता स्वयम् ॥ ९ ॥
एवमेव महाराज तमपृच्छमहं प्रभुम् ।
स मे यदुक्तवान् रामस्तत्ते वक्ष्यामि भूपते ॥१०॥

राम उवाच

सखे सुकण्ठ लीला मे रसरूपा न संशयः ।
रसो नाम ममैवात्मा चिदानन्दमयो ध्रुवम् ॥११॥
यद्ब्रह्म परमं पूर्णं सच्चिदानन्दमूर्जितम् ।
रस एव तदेतद्वै महाभावैकगोचरः ॥१२॥
रस्यमानतया लोके रस इत्युच्यते बुधैः ।
परब्रह्मस्वरूपज्ञैर्मुनिभिस्तत्त्ववेदिभिः ॥१३॥
वात्स्यायनश्च भरतः शाण्डिल्यो व्यास एव च ।
नारदो भृगुरेवापि भगवांश्चतुराननः ॥१४॥
एते चान्ये च मुनयो रसशास्त्रविशारदाः ।
अग्निश्च भगवान्साक्षाद्वीतिहोत्रस्त्रयीमयः ॥१५॥
रसस्य वस्तुतो रूपं जानात्येवेति निश्चयः ।
शृङ्गारादिविभेदेन बहुधाख्यायते तु सः ॥१६॥
सर्वेषामपि भेदानां शृङ्गारः प्रवरो मतः ।
संभोगविप्रलम्भेन द्विधासौ परिकीर्तितः ॥१७॥
कामिनी कामुकश्चैव तस्यालम्बनतां गतौ ।
उद्दीपनानि बहुशो वासन्तीकोकिलादयः ॥१८॥

वासन्ती विकसत्पुष्पमरन्दद्रवनिर्झरा ।
कोकिला कोमलालापकाकलीकलितस्वरा ॥१९॥
चन्द्रिका चञ्चुरानेकचकोरचटुकारिणी ।
लतामण्डप आनन्दी मत्तालिकुलनादितः ॥२०॥
इत्यादयोऽखिला भावास्तस्योद्दीपनतां गताः ।
कामिनी परकीयैव कामुकश्चौपपत्यभृत् ॥२१॥
इत्याज्ञा रसशास्त्रस्य जानन्ति किल कोविदाः ।
रसस्येव स्वभावोऽयं नात्र शङ्का विधीयताम् ॥२२॥
वस्तुनो यस्य यो धर्म औत्पत्तिक उदीरितः ।
स एव वस्तुनस्तस्य स्वभाव इति कीर्तितः ॥२३॥
भजन्ते मम येऽतीव प्रिया आस्वादकोत्तमाः ।
ते मां रसस्वरूपेण नान्ये साधारणा जनाः ॥२४॥
रसानन्दस्वरूपां मे लीलां माधुर्यवारिधेः ।
तामास्वाद्य पुनर्नैव विषयानवगाहते ॥२५॥
एक एव[1] शुभः पन्था अत्र साधनसाध्ययोः ।
इति मत्वा सुखी भूयाः सुकण्ठ मम पार्श्वगः[2] ॥२६॥
इति श्रीरामचन्द्रस्य पूर्णस्य परमात्मनः ।
तत्त्वतो रूपमाख्याय न मुह्यामि कदाचन ॥२७॥

राजोवाच

जन्मकर्म च मे ब्रूहि सहजायाः पराश्रयः ।
पितरौ कथं नन्दयते कथं भूषयते कुलम् ॥२८॥
कथं च व्रजराजस्य राजधानीं व्यभूषयत् ।
कथं मोदयते रामं प्रमोदवनकेलिषु ॥२९॥

सुकण्ठ उवाच

माघस्य धवले पक्षे पञ्चमी शिवयोगिनी ।
पूर्वाभाद्रपदायुक्ता शुभर्क्षग्रहतारका ॥३०॥

---

१. एष—अयो० । २. पार्श्वयोः—अयो० ।

वसन्तपञ्चमीत्युक्ता सा तिथिर्विश्वमङ्गला ।
यस्यां रतिपतिः कामः पुरा प्रादुरभूत्किल ॥३१॥
तस्यां संजातमात्रायां कालोऽभूच्छुभलक्षणः ।
दिशः प्रसन्ना अभवन् सद्यो जनितमङ्गलाः ॥३२॥
आनन्दस्पर्शकृद्वातो बभौ मलयवृक्षजः ।
रमणीयतमा भूमिरभूदानन्दवर्द्धिनी ॥३३॥
अकस्मादवृधल्लक्ष्मीः प्रतिग्रामव्रजाकरम् ।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले तूर्यत्रिकभवः स्वनः ॥३४॥
आनन्दयति चेतांसि तस्मिन्नवसरे नृप ।
श्रीनन्दनो गोपराजः पालीग्रामपतिः स्वयम् ॥३५॥
स्वस्ति विप्रान् वाचयित्वा जातकं समकारयत् ।
शुभाशिषो वाचयन्तो विप्राः संजातकौतुकाः ॥३६॥
आययुर्नन्दनागारं कन्यारत्ने समुद्गते ।
सूताश्च मागधाश्चैव वन्दिनश्च शुभान्विताः ॥३७॥
विप्राः पौराणिकाः शास्त्रविद्याजीवाः सहस्त्रियः ।
ज्योतिर्विदो बुधाचार्या आर्याः सर्वकलाविदः ॥३८॥
नरा नट्यो गायकाश्च वादका नायकाश्च ये ।
नन्दनस्य गृहे तैस्तैः संमर्दः सुमहानभूत् ॥३९॥
गोपा गोप्यश्च ननृतुः सद्यस्त्यक्तेतरत्रपा ।
तेभ्यो वासांसि भूषाश्च हिरण्यं विपुलं ददौ ॥४०॥
सुश्लोक इति विख्यातोऽभवच्छ्रीनन्दनो नृपः ।
कन्यारत्नं प्रजातन्तु श्रुत्वा श्रीसुखितो नृपः ॥४१॥
रत्नानि वर्षन् घनवत् पालीग्रामं समाययौ ।
एवमानन्दसंपन्नं जन्म कृत्वा सुखान्वितः ॥४२॥
कन्याया नन्दनो गोपो यशः प्राप जगत्त्रये ।
ततश्च सहजेत्याख्या तस्याः मुनिगणैः कृता ॥४३॥
रूपं वेशो वयः शीलं सर्वं हि सहजं यतः ।
एवं संजातजन्माया श्रीनन्दनगृहान्तरे ॥४४॥

दिवसेषु प्रगच्छत्सु लावण्यमपुषत्तनौ ।
परं न भाषते किंचिन्न च पश्यति किञ्चन ॥४५॥
न शृणोति न चाश्नाति नेङ्गते न च रिङ्गति ।
दृष्ट्वावस्थां स्वकन्याया गोपालो भयशङ्कितः ॥४६॥
किमेतदस्याः संजातं जाड्यं सर्वेषु वस्तुषु ।
प्रेतावेशो भयं वापि कृत्रिमं वापि केनचित् ॥४७॥
दृष्टिर्वा मुष्टिघातो वा चलदोषोऽपि वाभवत् ।
यक्षरक्षःपिशाचादिच्छाया च दुर्ग्रहोऽथ वा ॥४८॥
प्रतिकर्तुं न शक्नोमि मन्त्रज्ञैरपि सिद्धिजैः[1] ।
किं करोमि क्व गच्छामि कश्चित् सिद्धो मिलेदपि ॥४९॥
यो मे कन्यामहारत्नं प्रकृतिस्थं करिष्यति ।
तस्मिन्नेवान्तरे रुद्रो द्रष्टुं श्रीसहजेश्वरीम् ॥५०॥
उपेतः परया भक्त्या व्रजभूमिं समाययौ ।
तत्र श्रीसुखितागारे दोलन्तं सिक्यमध्यतः ॥५१॥
व्रजस्त्रीगणमध्यस्थं रामं द्रष्टुमुपागतः ।
विधाय योषितो रूपं शिवः परमया मुदा ॥५२॥
संपन्नश्यामवपुषं रामचन्द्रमुपैक्षत ।
तत्र कृत्वा स्वरैर्गानं मूर्च्छनावृन्दमञ्जुलम् ॥५३॥
प्रेष्ठं प्रसादयामास रामं राजीवलोचनम् ।
प्रसन्नं समभिज्ञाय रामं त्रैलोक्यसुन्दरम् ॥५४॥
भूयो विज्ञापयामास सहजादर्शनाय च ।
तमुवाच स्मयन् रामो गच्छ श्रीनन्दनालयम् ॥५५॥
यत्र ते सहजानन्दा स्वयं दास्यति दर्शनम् ।
ततो नत्वा जगन्नाथं रामचन्द्रमहानिधिम् ॥५६॥
शिवः संप्रस्थितस्तस्मात्पालिग्रामं समाययौ ।
वटुवेशधरो विप्रो वसानो हरिणाजिनम् ॥५७॥

---

१. मंत्रैरपि सह द्विजैः—रीवाँ ।

कौपीनधारो जटिलः कक्ष्याविन्यस्तपुस्तकः ।
धृताषाढः[1] पूततनुर्मौञ्जीमेखलयान्वितः ॥५८॥
प्रसन्नवदनाम्भोजस्तपसा प्रज्वलन्निव ।
तं विलोक्य ततो लोकाः पालिग्रामनिवासिनः ॥५९॥
महासिद्ध इति ज्ञात्वा गोपराजं न्यवेदयन् ।
एष विप्रवरोऽस्माकं प्रतिभाति तपोनिधिः ॥६०॥
एनं प्रदर्शय सुतां गोपराज त्वमात्मनः ।
अयमस्या वपुःस्तम्भं मन्त्रवीर्येण सिद्धिमान् ॥६१॥
नाशयिष्यति हस्तं च धास्यत्यस्यास्तनौ शुभम् ।
इत्युक्त्वा गोपराजाय वटुरन्तःप्रवेशितः ॥६२॥
दूराद्विलोक्य गोपेन्द्रो नमश्चक्रे महावटुम् ।
पाद्यार्घाचमनीयाद्यैः संपूज्य कृतशक्तितः ॥६३॥
उवाच निजकन्याया वृत्तं जाड्यादिकं च यत् ।
तमुवाच स्मयन् विप्रः समानय सुतां निजाम् ॥६४॥
मह्यं प्रदर्शय ततो ज्ञास्यामि यदि कारणम् ।
कूटं मन्त्रं[2] तथा दृष्टिं मुष्टिं प्रेतादिभिः कृतम् ॥६५॥
तत्सर्वं नाशयिष्यामि कन्यां मे दर्शय प्रभो ।
एकान्ते तमथो नीत्वा श्रीनन्दन उदारधीः ॥६६॥
राजिन्यङ्कगतां कन्यां वटुवेशं न्यवेदयत्[3] ।
वटुर्विलोक्य तां बालां स्मयन्तीं मधुराननाम् ॥६७॥
श्रीरामवल्लभां बुद्ध्वा मुमोद हृदये निजे ।
उवाच गोपराजं स एनां दत्त्वा करे मम ॥६८॥
गच्छ गोपेन्द्र दूरे त्वं सभार्यः सहभृत्यकः ।
प्रयोगं मम मन्त्राणां पश्य त्वं व्रजभूपते ॥६९॥
स्तम्भमस्या हरिष्यामि तद्धेतुं च निवेदये ।
इत्युक्तो नन्दनः कन्यां समर्प्य बटवे ततः ॥७०॥

---

१. धृतदण्डः—रीवाँ। २. "कूटं—कपटकर्म, मंत्रं—वशीकरणम्" टि०—मथु०, बड़ो०। ३. निवेदयत्—रीवाँ, मथु०, बड़ो०।

दूरं जगाम विश्वस्तो मुहूर्तं स्वजनैः सह ।
तामेकान्तगतां दृष्ट्वा सहजां रामरागिणीम् ॥७१॥
रमणीमौलिमुकुटरत्नभूतां प्रभावतीम् ।
तुष्टाव मधुरैर्वाक्यैः सूक्तिभिः पार्वतीपतिः ।
ऋग्यजुःसामोपनिषत्सारैः सूक्तैः सुभाषितैः ॥७२॥

शिव उवाच

नमस्ते रामरामायै रमायै रमणात्मने ।
स्वेच्छाविलासनिधये प्रमोदवनदेवते ॥७३॥
नमः स्वेच्छाविहारिण्यै स्वेच्छाप्रकटवर्ष्मणे ।
'स्वेच्छाविमोचिताशेषप्रसन्ननिखिलात्मने ॥७४॥
परमात्मा त्वमेवात्र जीवानां बुद्धिसाक्षिणी[1] ।
अनश्नन्ती त्वमभिचाकशीति भवती परा[2] ॥७५॥
तव स्वरूपं महिमार्णवायितं सच्चित्सुखैकात्मतया प्रसिद्धिमत् ।
अतन्निरासेन वदन्ति वैदिकीर्गिरस्ततो नेतिनेतीति चोचुः ॥७६॥
यत्ते महस्त्रिगुणकेलिकलातिगं तद्—
विज्ञाय चित्तकमले विदुषां वरेण्याः ।
भूयो भवन्ति भववेदनया न विग्ना
मग्नाः सुखामृतपयोनिधिवीचिकासु ॥७८॥
कोऽन्यो विहाय भवतीं शरणं नृणां स्यात्
संसारतापनिवहेन निपीडितानाम् ।
गच्छन्त्यतो ननु भवच्छरणं विमुक्ति ।
कामाः कृपाजलनिधे सुखमाप्नुवन्ति ॥७८॥
एकैव च त्वं वचनैरनेकैर्निरूप्यसे सद्भिरनन्तबोधा ।
वेदेषु शास्त्रेषु पुराणवाक्येष्वखण्डवाक्यार्थतया प्रतिष्ठिता ॥७९॥
त्वं प्रमोदवननिकेतनस्था श्रीरामचन्द्रं रमयत्युदारैः ।
वेदत्रयोद्गीततमैरनन्तैर्गुणैर्महाभव्यगुणाधिवासे ॥८०॥
निरतिशयकृपासुधाम्बुराशे मधुरिमनिर्झरिणीरसैकधारे ।
अनुपमगुणरामणीयकाढ्ये जय जय जाग्रदमन्दमङ्गलेशि ॥८१॥

१—१. नास्ति—अयो० । २. परं—मथु०, बड़ो० ।

दरिद्रं दुःशीलं दुरधिगमनं दुःखदलितं
दुराचारं दूरे पतितमितरैर्दुर्भरतरम् ।
जनैर्मुक्तं मुक्तिप्रमुखसुखसंपत्समुदयाः[1] ।
पुमांसं सेवन्ते भगवति भवद्दृष्टिभरितम् ॥८२॥
दयादृष्टिर्मातर्जयति तव सर्वाधिकगुणा
शठानप्युद्धर्तुं प्रभवति भवाम्भोधिरयतः ।
न सांख्यं नो योगो न च तप उदग्रं न सुकृतम् ।
फलत्यद्धा तद्वद्दुरधिगममाहात्म्यजलधे ॥८३॥
असङ्ख्यब्रह्माण्डप्रकटनपटुर्यत् कमलभू—
रुपेन्द्रोऽयं नानादनुजकुलसंहारणविधौ ।
महारुद्रो रुद्रः सकलजगतां संवृतिविधौ
तदेतन्माहात्म्यं तव जननि पादाब्जरजसः ॥८४॥
निगूढं सेवन्ते चरणकमलं मङ्गलतमं
वरेण्या विद्वांसो विगतगुणसङ्गाः सुकृतिनः ।
लभन्ते ते तस्मात्कलितजनकल्याणनिवहाः
प्रभूतं सामर्थ्यं भवजलधिसंतारविषये ॥८५॥
ते द्वारवत्यां महनीयशीले मनोजचारित्रकलाविदुष्यौ ।
पूर्वाभवद्भामिनि सत्यभामा परा च सा रुक्मिणीति प्रसिद्धा ॥८६॥
अन्याश्च ता मित्रविन्दादयो या वन्दारुवृन्दारकदारवन्द्याः ।
मातस्त्वदंशा अखिलर्द्धिपूर्णा कृष्णस्य चित्तं सुखयन्त्यथो किम् ॥८७॥
सा त्वं प्रमोदविपिनेऽत्र विभासि नित्यं
कल्याणकल्पतरुसर्वगुणाभिरामा ।
निर्णीयसे त्वमत एव सुधीभिरद्धा
तन्त्रेषु चापि निगमेषु च चित्कलेति ॥८८॥
तवानन्तकलां मातरुपजीवन्ति सर्वशः ।
स्वर्गापवर्गानन्दानां ये नित्यमधिकारिणः ॥८९॥
एतावदेव जननि स्पृहणीयमर्थं त्वं पूरयिष्यसि मम त्रिजगत्पवित्रे ।
रूपेण येन जयसि प्रमुदाटविस्था रूपं तदेव जय दर्शय देवि महचम् ॥९०॥

---

१. संपद्ह्यविरतं—रीवाँ ।

रामं प्रमोदवनशारदपूर्णचन्द्रं सा त्वं चकोरयसि येन कलागुणाढ्या ।
तत्ते स्वरूपमखिलागमवागगम्यं नूनं सुदुर्लभतरं विदुषां मुनीनाम् ॥९१॥
तन्मह्यमद्य ननु दर्शय दिव्यदिव्यं केलीकलाकलितसल्ललनाललामम् ।
त्रैलोक्यदेव नरकिंनरनागकन्यासौन्दर्यसारसमुदायमयं स्वरूपम् ॥९२॥
प्राप्तोऽस्म्यहं सुखितगोपगृहे ततश्च श्रीरामचन्द्रकरुणामधिगम्य मातः ।
तातस्य ते परमभाग्यसमूहसिन्धोः श्रीनन्दनस्य गृहमेष समागतोऽस्मि ।९३।
त्वद्दर्शनं प्रमुदकाननसच्चकोरीनेत्रेषु सौभगकरं सुलभं च तेषु ।
अत्यर्थदुर्लभतरं जगतीतरेषां लब्धुं समागत इहास्मि सदैकभक्तिः ॥९४॥
जानीहि मां जननि तावकपादपद्मप्रोदञ्चदच्छमकरन्दसमूहभृङ्गम् ।
संत्यक्तसर्वविषयग्रहलालसं ते नित्यं प्रपन्नमथ नामपरं त्रिनेत्रम् ॥९५॥
सहजे सहजानन्दे सहजानन्दिनि प्रिये ।
इति ते नामपीयूषं रामस्य वदनाच्च्युतम् ॥९६॥
रहो निपीतं श्रोत्राभ्यां गृह्णामि सततं रहः ।
तेनैव कलये मुक्तिं काश्यां वै म्रियतां सताम् ॥९७॥
रामेति संमतो मन्त्रस्त्वन्नाम्ना संपुटीकृतः ।
मुक्तिदानविधौ शक्तिमुद्वहत्यनवग्रहाम् ॥९८॥

सुकण्ठ उवाच

इति स्तुत्वा विरते पार्वतीशे कृपानिधिः श्रीसहजा प्रसन्ना ।
तस्मै निजं दर्शयामास रूपं साक्षात्प्रमोदाटविगोचरं यत् ॥९९॥
पारेपरार्द्धरतिकाममनोललामं लावण्यसिन्धुलहरीनिवहाभिषिक्तम् ।
कोटीन्दुकोटिरविबिम्ब रुचिप्रकाशसंपन्नवन्नखमयूखकलापरम्यम् ।१००।
परिस्फुरच्चरणनखाच्छिखावधि स्वरूपतो मधुरिमपुञ्जमोहनम् ।
रघूद्वहप्रियतमवश्यताविधौ समर्थमुच्छ्वसितमनोजयौवनम् ॥१०१॥
ईषच्छैशवमत्येत्य नवयौवनरञ्जितम् ।
कटाक्षचालनाभ्यासपाटवैकान्तसुन्दरम् ॥१०२॥
रूपशालिपदार्थानां सर्वेषां समतास्पदम् ।
कवीन्द्रकवितोत्कर्षावहं युक्त्याद्यगोचरम् ॥१०३॥
अदर्शयत् सा प्रथमं प्रमोदवनमद्भुतम् ।
वसन्तागमसंफुल्लपल्लवारुणभूरुहम् ॥१०४॥

रसालमञ्जरीपुञ्जगुञ्जद्भ्रमरनादितम् ।
मञ्जुलद्रुमविस्तारि पल्लवारुणरञ्जितम् ॥१०५॥
वहन्मलयमारुतं सुकलकण्ठवामा[1]सुतं
सुगन्धि तुलसीदलं घनलताटवीशीतलम् ।
विनोदनविशारदं समदमानिनीशारदं[2]
समुल्लसितमाधवं[3] हृदि समुल्लसद्राघवम्[4] ॥१०६॥
विकचवकुलनागपुन्नागचाम्पेयजम्बू-
रसालद्रुमालम्बिवल्लीवितानस्फुरन्मण्डलम् ।
वकुलकुरवकतालहिन्तालकिंजालमल्ली-
तमालप्रवालस्फुरत्पत्रपुष्पप्रभापूरितम् ॥१०७॥
सफलपनसशाखिमाध्वीकसौरभ्यसंदोह-
मत्तभ्रमद्भृङ्गदम्पत्युदीर्णस्वरोन्नादितम् ।
नवकिसलयजालसंस्वादकिंचित्कषाय-
स्खलत्कण्ठनन्दोल्लसत्पञ्चमोच्चारभृत्कोकिलम् ॥१०८॥
तदन्वदर्शयद्दिव्यसखीनामष्टकं शुभम् ।
ततः षोडशकं चैव द्वात्रिंशकमनुक्रमात् ॥१०९॥
चतुःषष्टिं तद्द्विगुणं सखीवृन्दमदर्शयत् ।
एवं शतसहस्रादिसखीयूथान्यदर्शयत् ॥११०॥
चामरग्राहिणी छत्रधारिण्यादिसखीरपि ।
अन्याश्च स्नानपानादिक्रियासु सुविचक्षणाः ॥१११॥
प्रादुरासुः पश्यतोऽस्य देव्यः कमललोचनाः ।
ताभिः प्रमोदविपिनमाकुलव्याकुलीकृतम् ॥११२॥
तासां मध्ये कोटिचन्द्रसूर्यमण्डलभास्वता ।
अङ्गेन सुमनोगर्भसुकुमारतरेण सा ॥११३॥
शोभमाना रत्नभूषाभूषिता रत्नहारिणी ।
स्वयं षोडशवर्षीया तादृगालीकदम्बगा ॥११४॥
व्यतिष्ठत पुरस्तस्य सहजानन्दिनी ततः ।
चाकचक्यप्रभाजालधर्षिते इव तद्दृशौ ॥११५॥

१, °गाना°—रीवाँ। २. "मानिनीमाननिवर्तकं" टि०—मथु०, बड़ो०।
३. "माधवं = वसंतं" टि०-मथु०, बड़ो०। ४. वशीकरमाधवम्—रीवाँ।

अशक्नुवन्त्यौ सहजां द्रष्टुमित्यागते ह्यधः ।
विलोक्य सहजासख्यः शिवं सर्वा बभाषिरे ॥११६॥

सख्य ऊचुः[1]

पश्यास्मत्स्वामिनीं रुद्र यदर्थं त्वमिहागतः ।
किमधःक्षिप्तनयन आस्ते स्तब्ध इवाचलः ॥११७॥

रुद्र उवाच

स्वामिन्या वो मया सख्यो दर्शनं कर्तुमञ्जसा ।
शक्यते न वयोवेशतेजोऽतिशयकारणात् ॥११८॥
अलौकिकतमं तेजो रूपं चातिमनोहरम् ।
पश्यन्माधुर्यजलधौ मग्नोऽहं करणैः सह ॥११९॥
उन्मज्जामि निमज्जामि विपुले रूपसागरे ।
नावलम्बोऽत्र मे सख्यः प्रेमस्रोतो महारये ॥१२०॥
न पश्यामि स्थिरो भूत्वा क्षिप्तचित्त इतस्ततः ।
पश्यतो मे बलं वापि न किंचिदिह विद्यते ॥१२१॥
यदि वः स्वामिनी मह्यं निजदर्शनयोग्यताम् ।
दद्यात्तदैव शक्तः स्यामिति सख्यो विनिश्चितम् ॥१२२॥
इत्युक्त्वा पादयोः सद्यो न्यपतन्नीललोहितः ।
चिरं तत्रैव संलग्नस्ततस्तं सहजाब्रवीत् ॥१२३॥
उत्तिष्ठ भक्तशार्दूल यदर्थं त्वमिहागतः ।
तत्साधय मनाग्रुद्र कथं स्तब्ध इवासि भोः ॥१२४॥
दत्ता ते परमा दृष्टिः कृपया पार्वतीपते ।
यया च लप्स्यसेऽत्यर्थं मत्स्वरूपविलोकनम् ॥१२५॥
इत्युक्तोऽसौ सहजया दत्तदिव्यविलोचनः ।
अपश्यच्छिव उत्थाय तस्या रूपं महाद्भुतम् ॥१२६॥
अवलम्ब्य दृशं नावं रूपसागरमध्यगः ।
आलोलितो भावमयैस्तरङ्गैरपि निश्चलः ॥१२७॥
चिरमेष विलोक्यापि नातृप्यद्रूपपानतः ।

---

१. नास्ति—रीवाँ ।

अगाधरसपीयूषगम्भीरां तामममन्यत ॥१२८॥
ततो विज्ञापयाञ्चक्रे रुद्रस्तां भक्तवत्सलाम् ।
त्वं देवि नन्दनगृहे साक्षात्प्राकट्यमागता ॥१२९॥
कथं न सुखयस्येमं क्रीडन्ती कालकेलिभिः ।
रिङ्गणक्रीडनालापमन्दहासावलोकनैः ॥१३०॥
कथं जाड्यमिवालम्ब्य वर्तसे पार्श्वगा पितुः ।
अथोवाच स्मितं कृत्वा सहजानन्दिनी स्वयम् ॥१३१
अहं रामस्य विरहाज्जडीभूताखिलाङ्गकैः ।
न क्वचिद्दर्शनं कुर्वे न रमे नाभिभाषये ॥१३२॥
त्वं च मे भक्तराजोऽसि सत्यं कर्तुं वचस्तव ।
आच्छाद्य विरहं रुद्र क्रीडिष्ये बालकेलिभिः ॥१३३॥
सुखयिष्यामि जननीं चकोरीमिव चन्द्रिका ।
तातं च मयि वात्सल्यभाववन्तं भवद्गिरा ॥१३४॥
इत्यालप्य ततो रुद्रं रूपमन्तर्दधौ निजम् ।
ततः शैशवमासाद्य यथापूर्वमरोचत ॥१३५॥
एवमेषा शिवादीनां पूरयन्ती मनोरथम् ।
अतिष्ठज्जननीगेहं भूषयन्ती निजैर्गुणैः ॥१३६॥
आहूता अथ रुद्रेण गोपाः श्रीनन्दनादयः ।
गोप्यश्च राजिनीमुख्या ददृशुः सहजां ततः ॥१३७॥
क्रीडन्तीं ब्राह्मणस्याङ्के हसन्तीं सुखशालिनीम् ।
अतीव सुप्रसन्नास्यां तात तातेति भाषिणीम् ॥१३८॥
रिङ्गणाय प्रसर्पन्तीं सद्योऽपगतजाड्यकाम् ।
प्रत्युत्तरं च ददतीं हुंकारोच्चारणादिभिः ॥१३९॥
तां विलोक्य गतावेशां वटुसिद्धस्य मन्त्रतः ।
अमन्यन्त व्रजजना मुदं च प्रापुरुत्तमाम् ॥१४०॥
विप्रहस्तात्समादाय कन्यारत्नं मुदान्विताः ।
तुतुषू राजिनीमुख्या नन्दनान्तःपुरस्त्रियः ॥१४१॥
श्रीनन्दनोऽपि संतुष्टो वटुं विज्ञाय निस्पृहम् ।
आत्मानं सदनं भृत्यान् पशूंस्तस्मै न्यवेदयत् ॥१४२॥

स वटुः पूर्णकामोऽसावाशिषं समुदीरयन् ।
[1]जगाम मुदितस्वान्तः स्वस्थानं यत आगतः[1]॥१४३॥
गोपा गोप्यश्च मुदिताः पिता माता मुहुर्मुहुः ।
महान्तमुत्सवं चक्रुः क्रीडन्तीं वीक्ष्य कन्यकाम् ॥१४४॥
सर्वे निर्मच्छयाञ्चक्रुर्मुक्तारत्नमणिव्रजान् ।
स्नापयित्वा शुभैस्तोयै रक्षां चक्रुर्विशेषतः ॥१४५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थ-यात्रायां व्रजागमने त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२३॥

चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः

सुकण्ठ उवाच

सा वर्द्धमाना गोपराजस्य गेहे कलाः सर्वाः पोषयन्ती क्रमेण ।
शिशुत्वभावोचितकेलिवृन्दललामरूपा व्यरुचच्चन्द्रिकेव[2]॥ १ ॥
अतीत्य शैशवं सम्यक् तारुण्यं समुपेयुषी ।
गूढभावाञ्चिता दृष्ट्वा मात्रा गोपेन्द्रकान्तया ॥ २ ॥
तस्याश्चित्तेऽभवच्चिन्ता कोऽस्याः समुचितो वरः ।
रूपलावण्यमाधुर्यकान्तिभिस्तुल्यभावनः ॥ ३ ॥
त्रैलोक्ये दुर्लभं मन्ये तादृशं रूपमीप्सितम् ।
देवगन्धर्वमनुजमुनिवर्येषु सांप्रतम् ॥ ४ ॥
अस्याश्चातुर्यसदृशं सुतरां दुर्लभं भवे ।
अन्यत्र खलु चातुर्यमिति मे धीर्विषीदति ॥ ५ ॥
रूपमस्या अप्रतिमं सुखयिष्यति कं जनम् ।
अनर्हवरलाभे तु पश्चात्तापो भविष्यति ॥ ६ ॥
अनन्यगोचरं चास्या यौवनं रूपमण्डितम् ।
कस्य नेत्रातिथिर्भूत्वा कृतार्थत्वमुपैष्यति ॥ ७ ॥

१—१. नास्ति—अयो० । २. चन्द्रकेषु—अयो०, रीवाँ ।

इति चिन्तासमाविष्टा गोपराजनितम्बिनी ।
रहः संगम्य भर्तारमिदमूचे मनोहरम् ॥ ८ ॥
गोपेन्द्र सर्वसंपद्भिः समुपेतोऽसि संप्रति ।
एषा श्रीरिव मूर्ता ते पुत्रीभावं समागता ॥ ९ ॥

नैतादृशी सुरनरनागलोके दृष्टा श्रुता चापि मनोज्ञरूपा ।
अहो भाग्यं धरणीमण्डलस्य पुत्रीयमुच्चैः स्फुटमाविरासीत् ॥१०॥
धन्ये उभे अपि कुले तपसां समूहैर्भाग्याञ्चितैरितरलोकदुरापपुण्ये ।
यत्रेदृशी सकलसौभगभाजनं श्रीः साक्षादतुल्यसुषमानिधिराविरासीत् ॥११
धन्ये दृशौ खलु नृणां सुकृतौघभाजा मेनामशेषगुणरत्नगणाभिरामाम् ।
संपश्यतां निमिषविघ्नभराकुलेऽप्यह्नाय रूपपरमामृतपानपात्रे ॥१२॥

एषा संप्रति नाथ शैशवकलामुत्तीर्य नव्यं वय-
स्तारुण्यं वपुषा विभूषयति दृष्ट्यालापगत्यादिभिः ।
क्रीडन्ती सहिता सखीभिरसकृत्किञ्चिद्रहोबोधिता
मन्दाक्षं भवती दृशा रुचिरया वक्षो निजं वीक्षते ॥१३॥
तस्माद्विज्ञापयामोदं त्वामस्या विषये प्रभो ।
अनुरूपवयोवेशो वरः कश्चिद्विमृश्यताम् ॥१४॥
सामान्यवरयोग्यत्वं नैषा कलयते गुणैः ।
यस्यास्तनुरुचा हेमभूषणं मलिनायते ॥१५॥
इन्दीवरश्रियमियं दृग्भ्यां तिरयति स्फुटम् ।
मुखेन शारदं पूर्णचन्द्रं विजयते स्फुटम् ॥१६॥
अनुरूपेण भर्त्रासौ योजिता हंसगामिनी ।
दुहिता मेऽनवद्याङ्गी सुखयिष्यति लोचने ॥१७॥
एषा रामचन्द्रसमा वयोवेषगुणादिभिः ।
सामान्यपुरुषेणातो योजनीया न कर्हिचित् ॥१८॥
अस्याश्च सकलं तत्त्वं रुद्रो मेऽभिजगाद ह ।
ईदृशी दुहितारत्नं भाग्यैरेवाभवन्मम ॥१९॥
इत्युक्तो नन्दनः श्रीमान् राजिन्या निजभार्यया ।
अनुरूपं वरं प्रष्टुं शाण्डिल्यमुनिमाह्वयत् ॥२०॥

संपूज्य मुनिशार्दूलं त्रिकालज्ञविदां पतिम् ।
उवाच नन्दनो वाक्यं सुधाभिस्तर्पयन्निव ॥२१॥

श्रीनन्दन उवाच

भगवंस्तपसां राशे शाण्डिल्य मुनिसत्तम ।
मया विज्ञाप्यसे किंचित्सावधानमनाः शृणु ॥२२॥
सांप्रतं दुहितेयं मे[1] स्वानुरूपतयोचितम् ।
वरमर्हतिसौभाग्यसागरं जगतीतले ॥२३॥
तद्भवान् पश्यतु व्यक्तं दुहितुर्मे गुणोचितम् ।
रूपसौन्दर्यं संपन्नं वरं सत्कुलसंभवम् ॥२४॥
इह चान्यत्र च प्राज्ञ जगत्यां यत्र कुत्रचित् ।
उदारगुणसंदोहं वरमस्यै समानय ॥२५॥
एवमुक्तो मुनिर्यातो वरचिन्तासमाकुलः ।
संवर्ध्य तं शुभाशीर्भिः स्तुतः संपूजितो ययौ ॥२६॥
दैत्यदानवदेवर्षिनरकिंनरसद्मसु ।
नगनागनभश्चारिनिकेतेषु च पर्यटन् ॥२७॥
गवेषमाणो गोपेन्द्रदुहितुः सद्गुणोचितम् ।
वरं पुरुषधौरेयो नालभत्तेषु कुत्रचित् ॥२८॥
ततोऽसौ सन्निववृते मुनिर्बहुकृतश्रमः ।
अगमत्सुखिताख्यस्य गोपवर्यस्य मन्दिरम् ॥२९॥
यत्र रामः स्वयं साक्षाद्भगवान् पद्मलोचनः ।
ईषत्पौगण्डमत्येत्य कैशोरवयसि स्थितः ॥३०॥
लीलालावण्यजलधिः क्रीडते सखिभिः सह ।
नवनीलमणिश्यामः प्रकाममधुरद्युतिः ॥३१॥
पारेपरार्द्धकन्दर्पदर्पनिर्हरणोद्धुरः ।
ईषत्कटाक्षपातेन मोहयन् देवसुन्दरीः ॥३२॥
भाति भासितमाधुर्यलावण्यगुणविग्रहः ।
मन्दहाससुधासिक्तवियोगिजनमानसः ॥३३॥

---

१. दुहिता चेयं—रीवाँ ।

तत्र गोपालवर्येण पूजितः स स्तुतो मुनिः ।
रामं वीक्ष्य परं प्रीतः प्रसन्नहृदयोऽभवत् ॥३४॥
आमन्त्र्य सुखितं पश्चादागतो मुनिसत्तमः ।
श्रीनन्दनस्य भवनं यथावृत्तमवेदयत् ॥३५॥

मुनिरुवाच

शृणु गोपेन्द्र भवतो दुहितुर्घटनोचितः ।
त्रैलोक्येऽपि मया नैव दृष्टः पुरुषसत्तमः ॥३६॥
विहायैकं गुणारामं रामं राजीवलोचनम् ।
सौनासीरमणिश्यामं साक्षात्कामं मृगीदृशाम् ॥३७॥
गुणरूपवयोवेशैः सोऽस्याः समुचितो वरः ।
पूर्वमेवैष विधिना प्रायो योगो विनिर्मितः ॥३८॥
अन्यथा विहितं चात्र न वै युक्ततमं भवेत् ।
इति विज्ञाय हृदये समाचर यथोचितम् ॥३९॥
इत्युक्त्वा मुनिवर्येऽस्मिन् गते निजनिकेतनम् ।
भ्रातृभिः स्वजनैः साकं गोपराजो न्यरूपयत् ॥४०॥
त एनमूचुः संपृष्टा भ्रातरः स्वजना अपि ।
श्रीनन्दन भवांस्तावत्कुलेन परमोर्जितः ॥४१॥
अहो ऐक्ष्वाकवे वंशे भवान् जातोऽसि भूतले ।
इति विज्ञाय संबन्धः श्रीरामेण सदा भवेत् ॥४२॥
संबन्धिनो भ्रातृवर्गं तथाप्तान् सुहृत्तमान् सुखितादींश्च गोपान् ।
श्रीनन्दनः प्रणायमाततान स्वकन्यकायाः सहजाया विधानतः ॥४३॥
रसानुकूल[1]मेवासीत्तदिदं राजसत्तम ।
रसशास्त्रस्य दृष्टिर्हि परकीयैकगोचरा ॥४४॥
श्रीनन्दनस्य च ज्येष्ठो भ्रातासीन्नरनन्दनः ।
तस्यापि चासीद् दुहिता नाम्ना कृष्णेतिकीर्तिता ॥४५॥
सा वीररामचन्द्रेण योजिता धातुरिच्छया ।
यथा श्रीसहजानन्दा रूपशीलगुणादिभिः ॥४६॥

---

१. रूपानु°—मथु०, बड़ो० ।

तथैव सानवद्याङ्गी पृथक्परिकरान्विता ।
रूपसौन्दर्यसारेण रामस्य प्रेमभाजनम् ॥४७॥
उभे अपि व्रजे नित्यं गूढसापत्नभावके ।
राघवेन्द्रकुमारस्य वशीकरणकारिके ॥४८॥
पृथक्कुञ्जनिकुञ्जेषु रममाणेषु केलिभिः ।
पृथग्रासविलासादिलीलाचातुर्यभाजने ॥४९॥
यूथेश्वर्याविमौ साक्षाद्रामस्य परमे प्रिये ।
एका ज्येष्ठा कनिष्ठान्या तयोर्लीलां निशामय ॥५०॥
यदा श्रीः सहजानन्दा दिव्येन वयसा युता ।
पितुर्गेहं विहायैषा श्वशुरस्य गृहं गता ॥५१॥
तदाष्टभिर्वयस्याभिः क्रीडन्तीभिर्वने वने ।
नीयते तत आकृष्य नन्दिग्रामं मुदावहम् ॥५२॥
यत्र श्रीसुखितागारे सर्वसंपद्भरान्विते ।
विभाति कलयन् केली रामो राजीवलोचनः ॥५३॥
तत्रागतामिमां बालामोषत्कैशोरभूषिताम् ।
गृह्णाति सादरा भूत्वा माङ्गल्या सुखितप्रिया ॥५४॥
अये परमकल्याणि श्रीमद्गोपेन्द्रनन्दिनि ।
अलंकुरु ममागारं नित्यं संनिहिता भव ॥५५॥
तवागमनमात्रेण मत्सुतः पद्मलोचनः ।
अत्यर्थं भवति प्रीतो न वै दुःखमुपैति सः[1] ॥५६॥
ज्योत्स्नायसे त्वं सहजे तस्य नेत्रचकोरयोः ।
अपि तत्तनुवासन्तीविषये सुरभीयसे ॥५७॥
अथ निर्मञ्छयाञ्चक्रे [2]रत्नमुक्तामणिव्रजम् ।
सुखं प्रवेशयामास स्वागारं सर्वसौख्यदम् ॥५८॥
सर्वमाङ्गल्यसंपन्नं नानाकौतुकवर्द्धिनी ।
सा दृष्ट्वा सुखितागारं सानुरागमना अभूत् ॥५९॥
रामः श्रीसहजां वीक्ष्य प्राणजीवातुमञ्जसा ।
अभवद्विरहात्क्लोऽपि दूरात्प्राप्तमनोरथः ॥६०॥

---

१. यः--मथु०, बड़ो० । २--२. नास्ति--अयो० ।

पश्यन्नयनकोणेन सहजायाः शुभं वपुः ।
ईषन्निर्वापयाञ्चक्रे[२] ज्वलन्तं विरहानलम् ॥६१॥
अन्योन्यदर्शनोत्कण्ठाविलोलनयनावुभौ ।
आपतुः सहजारामावन्योन्यं परमां मुदम् ॥६२॥
तत्र सा पाकशालायां गता श्रीसहजेश्वरी ।
चतुर्विधव्यञ्जनेषु प्रावीण्यं समदर्शयत् ॥६३॥
अथ माङ्गल्यका देवी सादरा सहजां प्रति ।
अवोचद्वचनं प्रीता सुतस्याशयवेदिनी ॥६४॥
त्वमेव सहजानन्दे पाककर्मणि दक्षिणा ।
सुखमश्नाति मे पुत्रस्त्वत्कराब्जविनिर्मितम् ॥६५॥
अन्नं चतुर्विधं स्वादु व्यञ्जनं जनरञ्जनम् ।
त्वमेव कर्तुं जानासि सहजे परमोदये ॥६६॥
इत्युक्त्वाभ्यर्हणं तस्याः कृत्वा वाक्येन मञ्जुना ।
कारयामास सूपादि तत्करेण मनोहरम् ॥६७॥
तथा तद्बुभुजे रामो मध्याह्ने बन्धुभिः सह ।
श्लाघ्यमानः स्वादुकारं सहजाकरनिर्मितम् ॥६८॥
सुखितो गोदुहांवर्यो गोपमण्डलमण्डितः ।
अन्नं नानारसोपेतं बुभुजे भुक्तिपण्डितः ॥६९॥
सुधासाराधिकं सर्वं मन्यमानो मुदान्वितः ।
विशेषेण तदश्नाति पाचितं यद्विदग्धया ॥७०॥
श्रीनन्दनसुधारश्मेरुद्गतेयं सुहृत्तमा ।
सहजानन्दिनी चंचत्कटाक्षव्यजनानिलैः ॥७१॥
वीज्यमानतनुर्भुङ्क्ते सानन्दं सुखितात्मजः ।
इत्थं समाप्य सुखदां रसिको भोजनक्रियाम् ॥७२॥
ताम्बूलवासितमुखः शय्यामन्दिरमागमत् ।
तत्रायं सहजानन्दादृग्वाणविनिपीडितः ॥७३॥
आकुलव्याकुलतनुः [१]शय्यामालिङ्ग्य संस्थितः❀ ।
निरम्बुपल्वले यद्वन्मीनः संपरिवर्त्तते ॥७४॥

१—१. नास्ति—रीवाँ । ❀ अतः परं पूर्वखण्ड-समाप्तिं यावत् खंडितः पाठः—अयो० पुस्तके ।

तद्वदेषोऽपि शय्यायामासीन्निःसहविग्रहः ।
तदा भुक्तिक्रियान्ते तां रामानीय व्यदर्शयत् ॥७५॥
रामाय रमणोद्युक्तां सहजानन्दिनीं रहः ।
तस्यास्तरलदृक्कोणदर्शनामृतधारया ॥७६॥
ईषत्सिक्ततनुः[1] कान्तः किंचित्स्वास्थ्यमवाप सः।
अथानयोरभूत्तत्र सङ्केतः सुखवर्द्धनः ॥७७॥
प्रमोदविपिने रम्ये कामेश्वरनिकेतने ।
तत्राशोकलताकुञ्जे यत्र भद्रवटो द्रुमः ॥७८॥
माणिक्यकुसुमो रत्नफलो मरकतच्छदः ।
तत्र नौ सङ्गमो भूयादनुक्षणमहर्निशम् ॥७९॥
इत्थं झटिति संलप्य नत्वा कान्तस्य पादयोः ।
माङ्गल्यकाकराब्जेन सम्यग्भूषितविग्रहा ॥८०॥
रत्नैः मुक्ताफलैः पुष्पैर्विद्रुमैर्मणिभिस्तथा ।
वहन्ती रूपसौन्दर्यं क्रीडन्ती पुष्पकन्दुकैः ॥८१॥
हसन्ती हासयन्ती च सखीस्तुल्यवयोञ्चिताः ।
भूषयन्ती कुञ्जवीथीः कान्तिसारेण वर्ष्मणा ॥८२॥
लीलासौन्दर्यभवनं श्वसुरस्यालयं ययौ ।
यातमात्रेण सा नूनं तल्पमालिङ्ग्य मन्दिरे ॥८३॥
अतिष्ठत्सहजानन्दा हाहेति व्याधिपीडिता ।
तस्याः श्वश्रूःस्निग्धमनास्तरला नाम सत्वरम् ॥८४॥
वैद्यराजमभीप्सन्ती प्रेषयामास गोपिकाः ।
ताः सर्वतो दिशं याता वैद्यराजगवेषणे ॥८५॥
स्वयं च निर्गता गोपी शाण्डिल्यस्याश्रमं सती ।
यत्र सा मण्डला देवी तद्वधूः सिद्धयोगिनी ॥८६॥
अथ यामे तृतीयेऽह्न आगमावसरे गवाम् ।
रामः शृङ्गारितो मात्रा महासौन्दर्यवारिधिः ॥८७॥
सुवर्णवेत्रमादाय वयस्यैः सखिभिर्वृतः ।
मुक्तारत्नमणिस्तोमप्रत्यङ्गपरिभूषितः ॥८८॥

मुरलीं वादयन् मञ्जु वयस्यैः शृङ्गनादिभिः ।
रममाणो मुदा गायन् प्रतस्थौ सुखितालयात् ॥८९
प्रविश्य गह्वरे सर्वान् वयस्यान् गोपबालकान् ।
कुसुमावचयाद्यर्थमाज्ञाप्य रसिकाग्रणीः ॥९०॥

स्वयं ब्राह्मणवेशेन मण्डलान्तिकमागमत् ।
सा तं दृष्ट्वा द्विजवरं मन्त्रसिद्धं महाधियम् ॥९१॥
अब्रवीत्तरलामेष तव वध्वा शरीरगाम् ।
हरिष्यति महापीडामावेशाच्चैव रोगतः ॥९२॥
कृत्रिमाद्वापि दृष्टेर्वा सर्पाघ्रातप्रसूनतः ।
एष सिद्धोऽखिलां बाधां हरिष्यति न संशयः ॥९३॥

ततश्च मण्डलेश्वर्या विश्वस्ता भाषितेन सा ।
तरलादाय तं सिद्धं ब्राह्मणं मन्त्रकोविदम् ॥९४॥
जगाम च निजं सद्म यत्र श्रीसहजातया ।
निपीडितातिदुःखेन शय्यामालिङ्ग्य संस्थिता ॥९५॥
द्विजःसिद्धोऽथ तां दृष्ट्वा तरलायाः स्नुषां सतीम् ।
आवर्तेन विवर्तेन सर्पन्तीमधितल्पकम् ॥९६॥

बलादितस्ततोऽङ्गानि क्षिपन्तीं पाण्डुराननाम् ।
शुष्यतीमिव सूर्यांशुस्पर्शाद् ग्रीष्मलतामिव ॥९७॥
विलोक्य नाडिकां चैव ज्ञाततत्त्वोऽब्रवीदथ ।
तरले तव कल्याणि सुखेयं भाग्यभूयसी ॥९८॥

पीडिता हेतुना येन तमहं ते निवेदये ।
कृते च तत्प्रतीकारे शान्तिमेष्यत्युपद्रवः ॥९९॥
भवतां हि कुले पूर्वं कामेश्वरः सदाशिवः ।
केनापि मानितः किंचित्कस्मैचित्कारणाय च ॥१००॥
तत्कार्यं तु कृतं तेन कामेश्वरशिवेन वै ।
न च संमानितोऽत्यर्थं तेनेदं कर्मणा स्फुटम् ॥१०१॥
स्नुषायास्तवपीड़ाभूत्ततः संमानय द्रुतम् ।
कामेश्वरं वराध्यक्षं शिवं सर्वार्तिनाशनम् ॥१०२॥

प्रमोदविपिनस्यान्तस्तस्यालयमनुत्तमम् ।
अशोकलतिकाकुञ्जे तत्र प्रेष्या त्वया स्नुषा ॥१०३॥
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यवस्तुभिः ।
भूयश्च फलताम्बूलदक्षिणाभिर्दिवानिशम् ॥१०४॥
मण्डलं पूजयत्वेषा पद्मैश्चात्मकराहृतैः !
आत्मनावचितैः पुष्पैर्विरच्य विपुलाः स्रजः ॥१०५॥
फलैश्चात्मकरानीतैर्मालूरैर्बिल्वजैस्तथा ।
आत्मनैवाहृतैस्तोयैर्जलधारा विधीयताम् ॥१०६॥
एवमाराधितो देवः शङ्करः पार्वतीपतिः ।
हरिष्यत्यखिलां बाधां कामेशो वरदेश्वरः ॥१०७॥
यस्मिन् दिने सविस्रब्धं पूजारम्भो भविष्यति ।
तदेव दिनमारभ्य पीडानाशो भविष्यति ॥१०८॥
प्रातः समयमारभ्य सायंपर्यन्तमादृता ।
पूजयिष्यति कामेशं ततः शुभमवाप्स्यति ॥१०९॥
आधयो व्याधयश्चैव ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।
आवेशो भूतजा पीडा न कदाचिद्भविष्यति ॥११०॥
धनधान्यमयी लक्ष्मीर्गृहान्नापगमिष्यति ।
आयुष्यं विपुलं भोग्यं सौभाग्यं सर्वसंपदः ॥१११॥
प्रीतिः कीर्तिस्तथा तुष्टिः पुष्टिश्चापि दिने दिने ।
भविष्यति न संदेहो नूनमेतद्विधीयताम् ॥११२॥
सखीभिः सवयस्काभिः सहिता गानपूर्वकम् ।
रात्रौ जागरणं कुर्याद्विशेषात्सोमवासरे ॥११३॥
इत्येष विधिरुद्दिष्टः कामेश्वरशिवार्चने ।
अतोऽन्यथा कृते चैव विपरीतं भविष्यति ॥११४॥
अत आवश्यकं कार्यं कामेश्वरशिवार्चनम् ।
अल्पे कृते फलं भूयो येन स्यात्तद्विधीयताम् ॥११५॥
अहं चास्याः कारयिष्ये कामेश्वरशिवार्चनम् ।
परस्त्रियं न स्पृशामि स्प्रक्ष्यामि कुशमात्रतः ॥११६॥

तावच्च ते सुतो गोपः स्पर्शं नास्याः करिष्यति ।
कृते शिवकृता बाधा करिष्यति न संशयः ॥११७॥
इत्युक्त्वा चाशिषं दत्त्वा द्विजः सिद्धः प्रसन्नधीः ।
तरलां समुपामन्त्र्य यथोद्देशं यथोचितम् ॥११८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दशरथतीर्थयात्रायां व्रजागमने चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२४॥

●

पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः

सुकण्ठ उवाच

अथ कामेश्वरं शम्भुं लोकानां वरदं प्रभुम् ।
समाराधयितुं श्वश्रूः प्रेषयामास तां स्नुषाम् ॥ १ ॥
गन्धपुष्पोपहारादिसंविधां खलु भूयसीम् ।
कृत्वा हस्तेषु चार्वङ्गी सखीभिः प्रस्थिता ततः ॥ २ ॥
तस्याः सङ्गे गोपकन्या धृतकाञ्चनभाजनाः ।
धूपदीपादिकं धृत्वा प्रययुः प्रमुदाटवीम् ॥ ३ ॥
तावत्तत्र स्वयं रामो भूत्वा कामेश्वरः शिवः ।
अधिप्रमोदविपिनमशोकतरुमण्डपे ॥ ४ ॥
अतिष्ठत्सहजानन्दादर्शनोत्सुकमानसः ।
शृङ्गाररससर्वस्वो भोगभोजनलालसः ॥ ५ ॥
ताः सर्वा नूपुरारावमञ्जुलाङ्घ्रिसरोरुहाः ।
गृहीतमन्दगतयो मरालकुलजैत्रिकाः ॥ ६ ॥
श्यामा रामा मनोरामाप्रमुखा नर्मवेदिकाः ।
सख्यः कमलपत्राक्ष्यो वार्तयन्त्यः परस्परम् ॥ ७ ॥
आसेदुर्विकसद्भूरिलतातरुमनोहराम् ।
मन्दारपुष्पसौरभ्यवासितां प्रमुदाटवीम् ॥ ८ ॥

तत्र गत्वा पुष्पवत्सु वनगह्वरशाखिषु ।
पुष्पावचयनं चक्रुः पूजार्थं वरदेशितुः ॥ ९ ॥
सर्वा विहृत्य विपिने जगुरुच्चैः स्वरान्विताः ।
गायन्त्यो वादयन्त्यश्च मधुराः करतालिकाः ॥१०॥
कूर्दमानाः खेलमाना हेलमानाः परस्परम् ।
हसन्त्यो हासयन्त्यश्च नर्मोद्घाटनपूर्वकम् ॥११॥
अक्षिमुद्रणलीलाभिर्विहरन्त्यो मुदान्विताः ।
नमस्ते वरदेशाय पशूनां पतये नमः ॥१२॥
नमः पिनाकहस्ताय त्रिनेत्राय नमोनमः ।
नमः प्रमोदविपिनलतामण्डपचारिणे ॥१३॥
नमः श्रीरामभक्ताय नमः श्रीरामदायिने ।
नमस्ते घोररूपाय अघोराय दयावते ॥१४॥
घोरघोराय घूर्णाय घोरघोरतराय च ।
नमो मन्मथनाशाय नमो मन्मथवर्द्धिने ॥१५॥
नमस्त्रिजगदीशाय ईशानाय नमोनमः ।
नमो गणानां नाथाय नमो गणविहारिणे ॥१६॥
नमो गणाय सेव्याय गणपस्य प्रियाय च ।
नमो धूर्जटये नीललोहितायात्ममूर्तये ।
नमो विश्वस्य लिङ्गाय त्रिलिङ्गाय नमोनमः ॥१७॥
नमो गिरीशाय गिरि[1]प्रियाय गिरांपतेः सर्ववरप्रदाय ।
गिरैकगम्याय गिरां महिम्ने गिरामगम्याय सनातनाय ॥१८॥
नमो गण्डस्वनोद्घोषप्रसन्नाय त्रिशूलिने ।
धतूराशनमत्ताय उमासहचराय च ॥१९॥
नमस्तुङ्गशिराचुम्बिचन्द्रखण्डावतंसिने ।
त्रैलोक्यपुरनिर्माणमूलस्तम्भाय शम्भवे ॥२०॥
नमो मन्दाकिनीमल्लीमाल्यभूषितमूर्द्धने ।
नमो वेदान्तवेद्याय तपःप्रणिहितात्मने ॥२१॥

---

१. गिरः—मथु०, बड़ो० ।

नमः स्वात्मैकमुक्ताय नमः स्वानन्दशालिने ।
नमो वेदत्रयोद्गीतमूर्तये चाष्टमूर्तये ॥२२॥
नमो गुणाभिरामाय गुणातीतमितौजसे ।
गुणैर्गुप्तस्वरूपाय गुण्याय परमात्मने ॥२३॥
शुद्धाय शुद्धतत्त्वाय शुद्धस्फटिकमूर्तये ।
नीलकण्ठाभिरामाय श्रीकण्ठाय नमोनमः ॥२४॥
इतिसंस्तूय पुरतः सखीः प्राञ्जलयः स्थिताः ।
दण्डवत् प्रणतिं भूमौ चक्रुर्मुख्यपुरःसराः ॥२५॥
एतस्मिन्नन्तरे पुत्री तरलायाः सदा खला ।
ननान्दा सहजेशान्या भङ्गुरानाम नामतः ॥२६॥
पैशुन्यं समुपाश्रित्य तरलां निजमातरम् ।
समुपेत्य जवाद् दुष्टा रहसि प्रत्यबोधयत् ॥२७॥

भङ्गुरोवाच

अये मातस्तव वधूः स्त्रीचरित्रमुपाश्रिता ।
आसक्ता सुखिताख्यस्य गोपवर्यस्य पुत्रके ॥२८॥
त्वं न जानासि शुद्धात्मा[1] सा तद्विरहपीडिता ।
मिथ्या रोगापदेशेन हाहेति कुरुते मुहुः ॥२९॥
इदानीं चापि कामेशशिवपूजनकैतवात् ।
गता प्रमोदविपिनं यत्र धूर्तः स वर्तते ॥३०॥
प्रमोदविपिनं नाम तस्य लीलानिकेतनम् ।
तत्राशोकलतासद्मन्यनेन सह संगता ॥३१॥
रमते कामुको सा वै तेन प्रच्छन्नकामिनी ।
समस्तव्रजयोषाणां पातिव्रत्यापहारिणा ॥३२॥
तस्य लोचनवाणेन विद्धा हृदि महोन्मदा ।
का स्त्री न विचलेन्मातः पातिव्रत्यात्पराङ्मुखी ॥३३॥
घण्टाघोषोऽयमेतस्य श्रुतो व्रजपुरे मया ।
सर्वापि मोहिता वामा एतेन व्रजवासिनाम् ॥३४॥

---

१. त्वं जना सिद्धसिद्धात्मा—रीवाँ ।

अथचेत्त्वमिमं वृत्तं वितथं यदि मन्यसे ।
तदा मातर्निरीक्षस्व गत्वा प्रमुदकाननम् ॥३५॥
कामेश्वरस्य पूजा चेत्सत्यमेतद्भविष्यति ।
न चेद्व्यभिचरन्तीं तां वारयस्व निजस्नुषाम् ॥३६॥
इति प्रबोधिता माता महापिशुनया तया ।
प्रेषिता तरला तत्र यत्र कामेश्वरः शिवः ॥३७॥
सा प्रच्छन्नवपुर्भूत्वा गताशोकलतावनम् ।
पश्चात्कामेशलिङ्गस्य स्थिता तरलिका स्वयम् ॥३८॥
पश्यतिस्माखिलं वृत्तं सहजायाः सुखावहम् ।
यथा कामेश्वरो देवः पूजितो वरदस्तथा ॥३९॥
सा तत्र स्वकरानीतैर्गन्धैः पुष्पैः सरोरुहैः ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः कुसुमाञ्जलिभिस्तथा ॥४०॥
शुद्धाभिर्जलधाराभिः सारवीभिरखण्डितम् ।
कामेशस्य प्रियाभिश्च संविधाभिर्मुहुर्मुहुः ॥४१॥
गीतैर्वाद्यैस्तथा नृत्यैर्दण्डवन्नतिपूर्वकम् ।
भक्त्या संपूजयामास वरदं शूलपाणिनम् ॥४२॥
तस्याः पूजां समादाय सखिभिः सह निर्मिताम् ।
तेनैव साधुरूपेण द्विजसिद्धेन कारिताम् ॥४३॥
सुप्रसन्नः शिवः साक्षाद्भगवान् करुणानिधिः ।
वरेण च्छन्दयामास भूयसा वरदेश्वरः ॥४४॥
पश्यन्त्यामेव च श्वश्रूं प्रत्यक्षश्चन्द्रशेखरः ।
पार्वतीजुष्टवामाङ्गः सहजां समवोचत ॥४५॥
अयि श्रीनन्दनसुतेऽनया तव सपर्यया ।
तुष्टोऽस्मि भक्तिभावेन श्रद्धायाश्चातिरेकतः ॥४६॥
किं ते ददामि सहजे तव वश्योऽस्मि संप्रति ।
कृपयिष्यसि यस्मै त्वं सोऽपि धन्यो धरातले ॥४७॥
धन्यासि गोपकन्यैवमहो भक्तिस्तवेदृशी ।
अनया तव भक्त्याहं क्रीतोऽस्म्यत्र न संशयः ॥४८॥

धनं धान्यं च सौभाग्यमारोग्यं जयसंपदः ।
भाग्यं च विपुलं भोग्यं सुखं मङ्गलमद्भुतम् ॥४९॥
प्रियस्य चिरजीवित्वं यद्यच्च मनसेप्सितम् ।
तत्सर्वं प्राप्नुहि सदा दासदासीजनावधि ॥५०॥
यस्मिन्निकेतने धन्ये भवती प्रतिवत्स्यति ।
तस्य भाग्यं च सौख्यं च किमर्थं वर्णयाम्यहम् ॥५१॥

धन्यः स देशः सुखसंपदान्वितः सदा महामङ्गलराशिसंयुतः ।
नित्योत्सवस्तोमविशेषभूषितो भविष्यति त्वत्कृपयानुवासरम् ॥५२॥
ये वा खलास्त्वद्विषये विनिन्दकाः पैशुन्यवाचो वचनीयवाञ्छया ।
तेषां विनाशो भविता स्वदोषतस्तवानुकम्प्याश्च भवन्तु निर्भयाः ॥५३॥

त्रैलोक्ये जायतां शुभ्रं यशश्चाप्रतिमं तव ।
यद् गीयमानं मनुजैर्भुवनं पावयिष्यति ॥५४॥
वरश्च ते दीयमानः पुनरुक्तायते किल ।
यतस्त्वं स्वत एवासि वरसंदोहभूषिता ॥५५॥
पातिव्रत्यमखण्डं ते सतीनां भुवि भूषणम् ।
स्वाभाविकेन चानेन नित्यं विजयमेष्यसि ॥५६॥
दुरुक्तकारिणो दुष्टास्तवाज्ञालोपकाश्च ये ।
तेषामहं दण्डयिता सुप्रीतस्तव भक्तितः ॥५७॥
इति दत्त्वा वरं शम्भुः सहजायै मुहुर्मुहुः ।
सुप्रसन्नमुखाम्भोजस्तूष्णीमास महीपते ॥५८॥
अथ सा तरला नाम सुप्रीता वरलाभतः ।
शिवस्य पृष्टतः सद्यः स्फुटीभूय पुरः स्थिता ॥५९॥
सहजायाः पदाम्भोजे जग्रहीत्तुष्टमानसा ।
मुहुर्मुहुः प्रणम्यैनामुवाच विमलाशया ॥६०॥
अहो मे परमं भाग्यं यस्य गेहे त्वमागता ।
उभे अपि कुले धन्ये भवत्या भुवनश्रिया ॥६१॥
विभूषिते श्रीसहजे चिरञ्जीव ममाशिषा ।
धन्यं व्रजपुरं यत्र भवती मण्डनायिता ॥६२॥

अहो तव त्रिजगतां पावनं विमलं यशः ।
पार्वती सिन्धुतनया सावित्री च सरस्वती ॥६३॥
अरुन्धती नलवधूरनसूया तथा शची ।
अर्हन्ति सहजानन्दे न हि ते षोडशीं कलाम् ॥६४॥
कीर्त्या कान्त्या च भाग्येन सौभाग्येन शुभेन च ।
तथा गुणैर्महोदारैर्महिम्ना चाति भूयसा ॥६५॥
शीलेन लज्जया चापि पातिव्रत्यगुणेन च ।
तव दर्शनतो देवि देव्योऽपि कुलभूषणे ॥६६॥
भवन्ति हृदि सुप्रीताः प्रणयं च वितन्वते ।
तवावलोकनेनैव पवित्रं योषितां कुलम् ॥६७॥
किं पुनः स्पर्शसंलापसख्यसंसेवनादिभिः ।
वक्तुं च तव माहात्म्यं न क्षमास्म्यहमद्भुतम् ॥६८॥
यया त्वयानया भक्त्या तोषितः पार्वतीपतिः ।
त्वद्भक्त्या नूनमस्माकं तुष्टोऽयं वरदेश्वरः ॥६९॥
पवित्रं विमलं रम्यं यस्ते नाम ग्रहीष्यति ।
सोऽपि सर्वाभ्य आपद्भ्यो निस्तरिष्यति भूतले ॥७०॥
अद्यावधि मया स्वात्मा धन्यो भृशमन्यत ।
त्वत्संगमगुणोऽस्माकं भवितादुःखतारणः ॥७१॥
जानामि लोकत्राणाय श्रेयोवितरणाय च ।
श्रीरामस्य सहचरी श्रीस्त्वं प्रकटिता भुवि ॥७२॥
भवत्या गुणसंदोहं गृणीते शंकरः स्वयम् ।
त्वां प्राप्य मत्सुतो धन्यः सौभाग्यनिधिरेव हि ॥७३॥
चिरञ्जीव चिरं धेहि सौभाग्यं मम सद्मनि ।
चिरं विहर लीलाभिः प्रमोदविपिनान्तरे ॥७४॥
यत्र यत्र पदन्यासं करोति भवती भुवि ।
तत्र तत्रैव तीर्थानि समायान्ति स्वदेशतः ॥७५॥
यत्र यत्रेक्षणन्यासं करिष्यसि प्रसादतः ।
स्त्रियो वा पुरुषस्यापि तस्य तस्य शुभं महत् ॥७६॥

माहात्म्यवत्यनुमितासीदानीं तु विशेषतः ।
अस्मद्भाग्यमविच्छिन्नमितरैर्भुवि दुर्लभम् ॥७७॥
अस्मासु करुणां कृत्वा प्रमोदं[1] वितनिष्यसि ।
येन स्याम वयं धन्यास्त्वादृश्या स्नुषया भुवि ॥७८॥
अहो श्रीनन्दनस्यापि श्रीराजिन्यास्तथैव च ।
प्रभूतं भाग्यमतुलं मया स्तोतुं न पार्यते[2] ॥७९॥
ययोरङ्कगता भूषा भवती भाग्यभूयसी ।
आबाल्यात्परमानन्दमददाः पद्मनेत्रयोः ॥८०॥
जाने श्रीनन्दनाम्भोजे उदिता कापि वै सुधा ।
स्वजनेन्द्रियदेवानां निर्जरत्वविधायिनी ॥८१॥
जाने त्वं देवि सहजे काचिद्रुचिरचन्द्रिका ।
स्वलोचनचकोराणामेकैवानन्ददायिनी ॥८२॥
सखीलोचनपद्मानां त्वं काचिदरुणप्रभा ।
दिने दिनेऽभ्युदयिनी हर्तुं त्रिजगतां तमः ८३॥
यो वै वर्षसहस्रेणाप्यखण्डाराधनैर्नृणाम् ।
प्रसीदति न वा शम्भुर्योगिनां ध्यानगोचरः ॥८४॥
स त्वया पूर्णया भक्त्या स्ववशीभूतवत्कृतः ।
अतोऽखिलोऽपि भुवने कस्ते सादृश्यमञ्चतु ॥८५॥
आशीर्भिर्वर्द्धयामि त्वामथवा प्रणमाम्यहम् ।
इति संशयमापन्ना त्वामाशासे नमामि च ॥८६॥
एकं स्नुषेति वात्सल्यं माहात्म्यज्ञानमेकतः ।
उभयोरन्तरे नित्यं तुष्यामि च रमामि च ॥८७॥
अथ श्रीसहजानन्दे त्वमिहात्र प्रमुद्वने ।
संपूज्य देवं कामेशं विधाय सुभगव्रतम् ॥८८॥
रात्रौ जागरणं कृत्वा गीतवाद्य[3]पुरःसरम् ।
विहृत्य च सखीवृन्दैस्तुल्येन वयसाञ्चितैः ॥८९॥

---

१. प्रसादं—मथु०, बड़ो० । २. °तुलमास्तोतुं नैव पारये—रीवाँ । ३. °नाद° —मथु०, बड़ो० ।

मनोरथं पूरयित्वा समाप्य च शुभं विधिम् ।
परमानन्दसम्पन्नां वनकेलीं विधाय च ॥९०॥
जलकेलीं ततः कृत्वा क्रीडानिर्भरमानसा ।
स्वैरमागच्छ भवनमलङ्कुरु ततो मम ॥९१॥
इत्थं पुनः पुनस्तस्या क्रीडोत्कण्ठितचेतसः ।
इच्छानुरूपमाख्याय संश्लिष्य च पुनः पुनः ॥९२॥
पुनः पुनः शुभाशीर्भिरभिनन्द्य प्रियां स्नुषाम् ।
पुनः पुनः प्रणम्यैनां शिवं कामेश्वरं तथा ॥९३॥
पुनः पुनः सुसंस्तूय नत्वा संपूज्य सादरम् ।
कोटिधेनुपतेः पत्नी गृहकार्यशताकुला ॥९४॥
सखीभ्यः सहजास्नेहाद् विनिवेद्य सुरक्षितुम् ।
समाभाष्य सुसत्कृत्य तरलागान्निकेतनम् ॥९५॥
तस्यां गतायां स्निग्धायां सहजानन्दिनी स्वयम् ।
[1]कामेश्वरस्य शेषां तां सपर्यां प्रत्यपूपुरत् ॥९६॥
ततः कामेश्वरो देवः प्रहस्य समवोचत ।
अतः परं श्रीसहजे सखीभिः सहिता स्वयम्[1] ॥९७॥
लीलानिकुञ्जभवनं समलङ्कुरु सादरम्[2] ।
यत्र ते दयितो रामश्चिरात्समभितिष्ठति ॥९८॥
श्रोतुं त्वच्चरणाम्भोजनूपुरारावमादृतः ।
राजहंसकुलक्वाणं न किञ्चिदिति मन्यते ॥९९॥
पुनः पुनश्च चकितश्चाटकैरकुलध्वनौ ।
त्वत्पादाङ्गुलिभूषाणां संनादं मनुते हृदि ॥१००॥
चिरात्पुलकितैरङ्गैस्त्वदागमनवाञ्छया ।
मुहुर्मुहुः समीकुर्वन् कदम्बसुममालिकाम् ॥१०१॥
क्रुध्यत्कन्दर्पविशिखकुसुमेभ्यः परिच्युतैः ।
मकरन्दैरिव स्वेदसलिलैरार्द्रविग्रहः ॥१०२॥
मुहुस्त्वन्मिलितोत्कण्ठासंभवानन्दसीकरैः ।
पतद्भिस्तुहिनासारकणैरिव सवेपथुः ॥१०३॥

१—१. नास्ति—रीवाँ । २. साधनम्—रीवाँ ।

कूजत्सु कलविङ्केषु कलहंसकुलेषु च ।
तदङ्घ्रिभूषणध्वानध्यानात्सोकण्ठमानसः ॥१०४॥
त्वद्वियोगप्रभूतार्तिविलीनसकलेन्द्रियः ।
वाष्पाणि मुञ्चन्नेत्राभ्यामन्तस्तापभरोदयात् ॥१०५॥
तत्र गत्वा त्वमुत्तप्तमात्मनो[1] विरहाग्निना ।
श्रीरामं प्राणदयितमानन्दय मुखेन्दुना ॥१०६॥
चिरादासक्तहृदयैस्त्वयि सीदति ते प्रियः ।
एतत्तेऽनुचितं श्रीमत्सहजानन्दिनि ध्रुवम् ॥१०७॥
कृताखिला वरिवस्या मदीया प्रसन्नोऽहं स्वाशिषं ते ददामि ।
इह प्रमुद्वनकुञ्जान्तराले प्राणप्रियं राममानन्दयेति ॥१०८॥
नातः परं प्रियं किंचिन्ममापि सहजेश्वरि ।
पश्येयुः सस्पृहाः सख्यः संगतौ दम्पती युवाम् ॥१०९॥
युवां क्रीडाविनोदार्थं प्रमोदविपिनं मया ।
संरक्ष्येते श्रीरामस्य नित्यमाज्ञानुगामिना ॥११०॥
युवां लीलारसेनैताः प्रमोदवनवल्लिकाः ।
परिपुष्टतमा[2] नित्यं शोषिता विरहे च वाम् ॥१११॥
अतो द्रुतं समभिसर प्रिये प्रिये प्रियालयस्त्वदुपगमे धृतस्पृहाः ।
वृथा व्रजत्यवसर एष माधवः समुल्लसद्विपिनलतातरुव्रजः ॥११२॥
चिरं चलन्मलयसमीरसङ्गमात्समन्ततः सुरभितवृक्षवल्लरि ।
लवङ्गिकापरिमलपूरितान्तरं प्रमुद्वनं सफलय तन्वि संप्रति ॥११३॥

सुकण्ठ उवाच

एवं वदति कामेशे लीलानन्दावलोकिनि ।
मङ्गलामण्डलेश्वर्यौ सहजामुपजग्मतुः ।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दशरथतीर्थयात्रा-यामादिव्रजागमने पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥

●

---

१. तमुत्तान्तमा°—मथु०, बड़ो० । २. धुरिपुष्टितमा—रीवाँ ।

षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः

मङ्गलोवाच

जय जय सहजेश्वरि त्वद्विलासाय भाति प्रमोदाटवी मञ्जुरूपाद्य-सद्भृत्यवर्येण सद्यो वसन्तेन सम्यक्कृता चित्रलेखेन लीलापटी वाति चित्र-विचित्रद्रुमस्तोम सोमच्छन्नशाखालसन्मञ्जरीभूतभूयो रसालद्रुमालम्बि-वल्लीक्वणत्कोकिलालापरुच्या कदम्बाटवीपुष्पधावद्रजोधोरणीधूमधारानु-मीतस्मराधीशचापप्रतापानलज्वालजालायितप्रोल्लसत्किंशुका भासते ॥१॥

विकचवकुलनागपुन्नागहिन्तालतालीतमालद्रुमालीसमालीढलोलल्ल -वङ्गीलतावृन्दचञ्चदञ्चल्ललच्चञ्चरीकौघझङ्कारतारस्वराकर्णनप्रोद्यदा -नन्दखेलत्कुरङ्गीकुलाकेतकीकान[1]नोद्धूतधूलीभरज्ञातचेतोभवच्छत्रभृद्भूरि -सेनातुरङ्गाटवीटापटङ्कत्रुटद्भूरजच्छन्नदिङ्मण्डला । वञ्जुलानोकहोल्ला-सिमञ्जुस्फुरन्मञ्जरीपुञ्जरत्नोप्तशाखाहरित्पर्णपूर्णद्युतिद्योतिता संततो-ल्लासभृच्चम्पका राजते ॥२॥

मरकतमणिवर्यविद्योतिवैदूर्यविस्फारिगारुत्मतव्रातसंमिश्रनव्येन्द्रनील-प्रभाभारभास्वन्निकुञ्जाङ्गणस्पृष्टमाणिक्यमुक्ताचतुष्कासनासीनसानन्दहृ -न्मेघनादानुलासिस्फुरद्बर्हविस्तारसच्चन्द्रकस्तोमशोभावती फुल्लपङ्केरुहा-मन्दकिञ्जल्कपुञ्जसंचलद्धूलिधाराविचित्रीकृतानेककासारपातःपतद्राजहंसा-वलिक्वाणकोकीकलापातिकोलाहलोन्निद्रयञ्चेषुविद्धाखिलग्राम्यधर्माढ्यजी -वा जरीजृम्भते ॥३॥

इह विलसति कापि वल्लीलसत्तुङ्गगुच्छस्तनी [2]कापि पङ्केरुहोड्डोन-भृङ्गीवरश्रेणिवेणीधरा कापि रामाननोद्वीक्षणैकस्पृहानिर्निमेषीकृतात्यर्थ-मत्तालिनी[2]तारकोद्भासिसंफुल्लपुष्पेक्षणा कापि संफुल्लपुष्पस्मितद्योतिता कापि सत्पल्लवारक्तविम्बाधरा कापि चञ्चच्छुकीचञ्चुनासापुटद्योति-मृद्वीफलस्थूलमुक्ताफला कापि मूलक्वणन्मत्तकादम्बयुग्म[3]स्फुरत्कोमला-ङ्घ्रिद्वयीनूपुराकेलिसद्माङ्गनानामिव भ्राजते ॥४॥

---

१. अतः परं १२६ अध्यायस्य १०९ श्लोकं यावन्नास्ति—रीवाँ। २—२. नास्ति-रीवाँ। ३. °पूग°—रीवाँ।

मदाज्ञावशगेनेदं चित्रं सुरभिणा कृतम् ।
प्रमोदवनमुद्भाति मणिवैडूर्यमौक्तिकैः ॥ ५ ॥
विचित्रा[1] मणिमाणिक्यैः समंतात् कुञ्जभूमयः ।
स्वराज्ये रसराजस्य श्रिया शृङ्गारिता इव ॥ ६ ॥
क्वचिन्मरकतद्योति क्वचिद्वैदूर्यकैः स्फुरत् ।
क्वचिन्माणिक्यसंमिश्रनानारत्नविचित्रम् ॥ ७ ॥
पत्रितं पुष्पितं चैव फलितं च समन्ततः ।
हरितं चित्रितं चारु नानावर्णविराजितम् ॥ ८ ॥
पश्य प्रिये क्षणेनैतत् प्रमोदवनमीदृशम् ।
कृतं मया महामञ्जु त्वत्केलिरसपुष्टये ॥ ९ ॥
दृष्टिपातेन समलङ्कुरु तावत्समन्ततः ।
प्रमुद्वनं षड्ऋतवः शोभयन्ति प्रतिक्षणम् ॥१०॥
पृथक् पृथङ्निकुञ्जेषु गृहीतावतराः स्फुटम् ।
ऋतवः षडपि प्राप्ता युगपत्प्रमुदाटवीम् ॥११॥
स तत्र दयितो रामस्त्वदागमनकौतुकी ।
उद्वेजित इवात्यर्थं निशितैर्मान्मथैः शरैः ॥१२॥
त्वन्नूपुररवोद्घोषग्रहणाय श्रुतिद्वयम् ।
मुहुरुत्कण्ठयन्नास्ते हन्त प्राणप्रियस्तव ॥१३॥
विसृज्य मुरलीनादं विसृज्य सुहृदः सखीन् ।
विसृज्य नैचिकीवृन्दं स तत्र सखि वर्तते ॥१४॥
मया पद्मदलैः शय्या रचिता कुञ्जसद्मसु ।
नानावर्णप्रसूनाढ्या प्रान्तकिञ्जल्कभूषिताः ॥१५॥
सान्धकारेषु वल्लीनां मण्डपेषु मया सखि ।
लसन्मणिमयैर्दीपैर्दिवैव रजनीकृता ॥१६॥
न यत्र खलु सूर्यांशुसंबन्धस्तेषु सद्मसु ।
रत्नभित्तिकरस्तोमैः प्रकाशो व्यरचि स्फुटम् ॥१७॥

---

१. विचित्र°—रीवाँ ।

येषु वल्लीनिकेतेषु दुर्लभः पवनागमः ।
तेषु वातायनद्वारा कृतोऽतिसुलभो मया ॥१८॥
प्रकाशितप्रदीपाभैर्नवचाम्पेयकोरकैः ।
क्रियते परमा शोभा मध्ये कुञ्जनिकेतनम् ॥१९॥
कर्पूरागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसौरभैः ।
आयाति रुचिरो वायुः समन्तात्कुञ्जसद्मसु ॥२०॥
विलसदभिनवश्रीरोचमानं वसन्ता-
द्यृतुसमुदयलीलाभाजनत्वं प्रयातम् ॥
रसपतिबहुकेलीकौशलोद्योगबीजं
प्रमुदवनमिदानीं दृश्यतां सानुरागम् ॥२१॥

मण्डलोवाच

मया त्वत्केलिसंपत्त्यै सर्वेषां व्रजवासिनाम् ।
आच्छाद्य चित्तज्ञानानि प्रेमवृद्धिर्वितन्यते ॥२२॥
न कश्चिल्लक्ष्यते भेदो युवयोः प्रेमगोचरः ।
अभिज्ञा अपि पश्यन्ति मूढवद् व्रजवासिनः ॥२३॥
युवयोः प्रेमलेशोऽपि न कस्यचिदपि प्रिये ।
दृष्टिगोचरतां याति ततः केलिर्निरन्तरा ॥२४॥
मन्यते कुशलो गोपो भवतीं पार्श्ववर्त्तिनीम् ।
इत्यज्ञातरतिक्रीडा रमस्व प्रेयसा सह ॥२५॥
प्रत्यक्षापि त्वदासक्तिर्लग्ना श्रीरामचन्द्रके ।
न लक्ष्यते व्रजजनैरिति मे महिमा स्फुटम् ॥२६॥
दृष्ट्वापि रामदयिते नित्यं रतिमतीं स्फुटम् ।
मन्यते गोकुलेऽनन्यपातिव्रत्यं पतिस्तव ॥२७॥
चतुर्यामिमिताकारां त्रियामामपि कामिनि ।
ब्रह्मायुर्यापनोदीर्णां करिष्यामि न संशयः ॥२८॥
गुरूणां दृष्टिमाच्छाद्य मातॄणां दुष्टचेतसाम् ।
पिशुनानामपि नृणां केलीं संवर्द्धये तव ॥२९॥
रहस्यं युवयोः कान्ते देवानामप्यगोचरम् ।
इति विज्ञाय निःशङ्कं रमस्व त्वमनुक्षणम् ॥३०॥

कुञ्जे मृदङ्गसाहस्रसंभवो घोष उच्चकैः ।
पटुश्रवणयुक्तानामपि नित्यमगोचरः ॥३१॥
कुतस्तरामङ्गभूषाघोषः स्याच्छ्रुतिगोचरः ।
इति विज्ञाय रमय गीतवाद्यपुरःसरम् ॥३२॥
प्रियं त्वत्केलिसोत्कण्ठं क्षणविश्लेषपीडितम् ।
सहजानन्दिनीप्राणजीवातुं मदनार्त्तिदम् ॥३३॥
तव लीलारसाभिज्ञा तन्मात्रविहिताश्रया ।
त्वामानेतुमहं प्राप्ता सहजे सुखय प्रियम् ॥३४॥
तव केलिविनोदेन प्रमोदवनवास्तवाः ।
कलयन्ति मुदं पूर्णां पशुपक्षिगणा अपि ॥३५॥

मङ्गलोवाच

सत्यं श्री मण्डलादेवी वदतीति विचिन्तय ।
आवां हि सहजानन्दे तव लीलाप्रवर्त्तिके ॥३६॥
अथ तेऽहं प्रवक्ष्यामि गीता रामेण गाथिका ।
ऋतुषट्कं समालम्ब्य विरही याः प्रगायति ॥३७॥
शृङ्गाररससंपृक्ताः स्वयं रामेण निर्मिताः ।
आकर्ण्य सहजे गाथास्तत्परा त्वं भविष्यसि ॥३८॥
एकैकमृतुमालोक्य मण्डपेषु पृथक् पृथक् ।
सङ्कल्पयंस्त्वन्मिलनं रामो वर्णयति स्म ह ॥३९॥
अवलीढगाढपरिपाकलसन्नवलीमिलद्घनवनप्रतिमम् ।
शवलीभवत्तनुतडिद्भिरहः कवलीकरोति घनजन्मतमः ॥४०॥
जलमावृणोति जगतीं जटिलं बलमादधाति मदनो धनुषि ।
कलमालपन्ति परितः शिखिनः कलमाकुला कलयभूमिरियम् ॥४१॥
अवनी समुल्लसति कन्दलिनी धवनीपसौरभि विभाति वनम् ।
नवनीलनीरदि विरौति वियद्भवनीभवन्ति परदेशिजना ॥४२॥
हरितः स्फुरन्ति हरिताल्पतृणैः सरितः पतन्त्युभयकूलगताः ।
तरि[1]तस्करा इव घनैः पवनाः परितः शनैर्विरहिजीवहराः ॥४३॥

---

१. "तरिः = नौका" टि०—मथु०, बड़ो० ।

नयनाम्बुभिर्विरहिणां जलदाः शयनान्तराय गुणतां दधति ।
अयनान्तरञ्चति कदम्बकुलं जघनान्तरीयकतया मदनः ॥४४॥
मदनाशुगा नवकदम्बमयाः कदनानि यद्विरहिणां दधति ।
सदनानि संप्रति विहाय जनास्तदनाश्रिता न भवत प्रियया ॥४५॥

चपला क्षणं ननु चमत्कुरुते प्रपलाय्य गच्छति घनावृतिषु ।
अपलायिता नववधूरिव तन्न पलार्द्धमीहत गृहव्यवधिम् ॥४६॥
ज्वरकारणानि भृशमध्वजुषां करका लसन्ति भुवि तोयकणैः ।
स्मरकालवज्रगुलिका तुलिता परकातरोरुमधुना न कथम् ॥४७॥
हरदाहितस्मरविभूतिमहावरदायिनी कुमुदकासरुचिः ।
ज्वरदारुणाः सपदि पान्थजनाः शरदागता कथय कात्र गतिः ॥४८॥

अहिमालिकेव विगताभ्रततिर्महिमानमेति पुनरेव नभः ।
सहिमातपरुचिमुपैति विधुर्नहि मानमम्बुजदृशाद्रियते ॥४९॥
धरणी विभाति गतपङ्कचया शरणी पुनः प्रकटभावमिता ।
तरणीयतां क्वचिदुपैति सरित्तरणीभिरासदत तेन गृहम् ॥५०॥
इदुरङ्गभस्म समभाव्य तपद्भिदुरं तदभ्रमणुतूलनिभम् ।
छिदुरं विभाति तनु नाकमहो विदुरञ्जसा यदिदमिन्द्रधनुः ॥५१॥

जितरोचना नवरुचिः सुमुखी हितरोषितापि न दधाति रुषम् ।
इतरोऽपि सद्म न जहाति निजं सितरोचिषोज्ज्वलमुदीक्ष्य नभः ॥५२॥
कमलं विहाय वसुधावलये कमलङ्करोति न निशादयितः ।
अमलं विधिस्तदिदमुल्लसितं समलं कलङ्कमिषतः कुरुते ॥५३॥
करुणारवं त्यजति चक्रवधूर्वरुणालये च शयनं मधुभित् ।
अरुणास्य दृष्टिरिव जागरिता तरुणार्कमण्डलमकल्पि जनैः ॥५४॥

हरिणाङ्गना स्वपतिमाद्रियते हरिणाङ्कसंवलनमेति निशा ।
हरिणांशुना रुचिमिताः ककुभो हरिणाञ्जसेव नववल्लविकाः ॥५५॥
बलिना हिमेन कृतमन्दरुचं कलिना मुनीशमिव वीक्ष्य रविम् ।
नलिनानि लोपमुपयान्ति शनैरलिनास्यते क्वचन तद्विरहात् ॥५६॥
दिवसं तु संकुचदतिशीतवशादिव संप्रयाति रविरग्निदिशम् ।
निवसन्ति कान्तसंहिताः सुदृशः शिवसहितार्द्धगिरिजोपमिताः ॥५७॥

अजनीद्वयामविततात्र तथा रजनी दिनेन लघुतानुगता ।
व्रजनीतिनावनवरेण यथा न जनीहिता न शिशुना महती ॥५८॥
शिशिरस्पृशन् विततमिन्दुमणिर्दृशिरं धमत्पुरगफूत्कृतिभिः ।
दिशि रन्तुमेति दहनस्य रविर्निशि रङ्गमाश्रयति कामिजनः ॥५९॥
ललितं सुधाकरवदूर्ध्वदशां वलितं हिमेन रविबिम्बमभूत् ।
स्खलितं हिमं बहु कुहेलिकया पलितं दिशामिव जनैरकलि ॥६०॥
धरणीसुरादशनवैणिकतां करणीयमज्जनवशाद्दधतः ।
अरणीषु वह्निमतिमय्यकिणाभरणीभवन्ति करजागुङ्लिभिः ॥६१॥
भवनानि नैव जहितेह जनाः पवना वहन्ति न तु नर्मभिदः ।
न वनानि यान्ति मुनयोऽपि सदा हवनाय बिभ्रति रुचिं ज्वलने॥६२॥
विहिताश्रयास्थ दहनावृतिभिः पिहितामवेत नवतूलपटैः ।
स्निहितारहारपरिहारवती निहिता हृदि प्रियतमा यदि न ॥६३॥
मधुना विकासितमिदं विपिनं मधुनाशिनेव रघुवंशकुलम् ।
मधुना कुलानि मुदितान्यलिनामधुना कथं कथय कानुकथा ॥६४॥
तरवः स्फुरन्ति विविधैः कुसुमैः सरवः पिबत्यलिगणोऽत्र मधु ।
स्मरवस्तु किंचन विरौति पिकीमरवः परं विधिवशात् पथिकाः ॥६५॥
सति कानने कुसुमिते मनसा कति कामिनो न कलयन्ति मुदम् ।
रतिकामुकज्वलनदाववशादतिकातरानिह विना पथिकान् ॥६६॥
मलयानिलस्खलनलोलतलाः सलया इव प्रतिलसन्ति लताः ।
वलयानि गुञ्जदलिपुञ्जमिषात् कलयन्ति हन्त बलयन्त्य इव ॥६७॥
समदालिशालिकुसुमालिभरान्नमदाकृतिं दधति भूमिरुहः ।
क्रमदारुणे पथि निजे मदनः कमदादयं न मधुमासि जनम् ॥६८॥
स बकोऽत्र मौनमुररीकुरुते नवकोकिलोऽतिकलमालपति ।
भवकोटरे मिलति शालिफले यवकोद्रवे कथय कस्य रुचिः ॥६९॥
नवतन्दुलैरतनुभक्तिपरा यवतन्तुभिः कुसुमानि शनैः ।
अवतंसयन्ति सुरभौ स्मृतिभू सवतन्त्रनिर्णयविदो वनिताः ॥७०॥
यदनन्तषट्चरणचक्रनिभाश्छदनं यदा भ्रमसि जालनिभम् ।
नदनं पिकस्य विजयध्वनयस्तदनङ्गसैन्यपतिरेष मधुः ॥७१॥

जलमज्जनेऽधिकरुचिं जनयन् कलमद्भुतं परभृतान् विनयन् ।
नलमत्स्यकेलिकुतुकानि हरन् नलमल्पयन्निशमुपैति तपः ॥७२॥
पनसातिसौरभविशेषभरा मनसाममन्दमुदमादधते ।
घनसारचन्दनरसग्रहणेन न सादरः सकल एष जनः ॥७३॥
सविता तथा तपति हन्त यथा न वितायतेऽहनि निशीव जनैः ।
जविताश्रितः शिखिकलापभरैः सवितानको भवति भोगिगणः ॥७४॥
अहनीह शोणितपुरीव शुचौ महनीयतीव्रकटतापवशात् ।
दहनीयतामुपगता धरणिः सहनीयतां कथमुपैतु मम ॥७५॥
अवधूनयन्ति लतिकाः सुमनोभवधूलिभिर्धवलिता मरुतः ।
न वधूजनं विरहितं न मुहुर्जवधूतधीरतरुमूलशिखाः ॥७६॥
कनयन्निशामतितरामनिशं जनयन्निशावधिकदीर्घमहः ।
तनयन्नदीरुपकरोति चिरं सनयं रथाङ्गमिथुनस्य तपः ॥७७॥
जलदानशीतलतरेषु शनैर्बलदायिषु स्मृतिभुवोऽनुपधि ।
नलदालयेषु शयनं नृपबहुलदार्तयो विदधते शबराः ॥७८॥
तनुभासुरेऽभिनवमज्जनतो ननु भाग्यवानिह जनः सदने ।
अनुभावयत्यपि सुखं वनिता ननु भावनाशरणमेव मम ॥७९॥
सरसीकरोति हृदयं परितः सरसीषु मज्जनमुपास्य सुखम् ।
वरसीकरः सुममरन्दमयोऽधरसीत्कृतिश्च सुखकृत्सुदृशाम् ॥८०॥
अलकेषु शैत्यमधुना सुदृशां जलकेलिशीतलतरेषु भृशम् ।
नलकेषु शीतलनिषिक्ततरस्थलकेषु च स्मरविलाससुखम् ॥८१॥

किमहमृतुसमूहं विस्तृतं वर्णयामि
प्रसरति परितो मे तद्वियोगेन मूर्च्छा ।
यदि भवति समीपे कामिनी यामनीश-
द्युतिवदनविनोदात्तत्समस्तं सुखाय ॥८२॥
इयमियमुपयाता साङ्गनामौलिरत्नं
नहि नहि नवकुञ्जे काञ्चनीवल्लरीयम् ।
अयमुदयति तस्याः पादमञ्जीरघोषो
नहि नहि कलहंसीकान्तकेलीनिनादः ॥८३॥

जातं विस्मरणं किमेतदथवा श्वश्रूरभूद्विघ्नकृत्
किं वा कामपि कामिनीं स्वहृदये संचिन्त्य रुष्टाभवत् ।
संकेतं मम दत्तवत्यवितथं तत्किं न सा प्रेयसी
वक्रेन्दुद्युतिभिश्चिरादसुखयच्चेतश्चकोरं सखि ॥८४॥
तावत् कुर्वन्तु मोहं मे दुर्बलस्यर्तुबेधकाः ।
यावन्नायाति रक्षित्री सा सेना स्मरभूपतेः ॥८५॥
इत्थं महाकवेस्तस्य श्रुत्वा रामस्य गाथिकाः ।
तदेकनिष्ठहृदया तमेव व्रज सत्वरम् ॥८६॥

सुकण्ठ उवाच

इत्युत्साहितमानसा सपदि सा कामेश्वरस्याग्रत-
स्ताभ्यां श्रीप्रमुदाटवीश्वरतमा लीलेश्वरीभ्यां पृथक् ।
नत्वा देवमुदग्रकामवरदं यावत्प्रयात्यन्तिकं
तावन्नर्मसखी प्रियस्य लुलिता नाम्ना ततोऽभ्याययौ ॥८७॥
पुष्पभूषामत्रहस्ता सा निदेशकरीशितुः ।
उवाच सहजानन्दां स्मितमञ्जुलभाषिणी ॥८८॥

लुलितोवाच

सखि मध्यन्दिनात् किञ्चिदुत्तीर्णे रश्मिमालिनि ।
विहाय निद्रामुत्तस्थौ प्रियस्तव सविभ्रमम् ॥८९॥
संमार्जिताक्षिपक्ष्मास्यो राज्य[ज]वेशमनोहरः
शिखावलैरावणाद्यैर्निजनर्मसखैर्युतः ॥९०॥
नन्दिग्रामाद्विनिःसृत्य प्रमोदवनमागतः ।
गुञ्जन्मधुकरारावरमणीयतमद्रुमम् ॥९१॥
कूजत्कोकिलनिध्वानयुक्ताम्रतरुगह्वरम् ।
लवङ्गलतिकामोदसुवासितदिगन्तरम् ॥९२॥
पृथक् पृथङ्मण्डपेषु ऋतुषट्कनिषेवितम् ।
राजहंसकुलक्वाणमनोज्ञसरसीशतम् ॥९३॥
अथ गाः पाययित्वासौ सारवं विमलं जलम् ।
निदेश्य लक्ष्मणं तासां रक्षणाय विचक्षणम् ॥९४॥

निजनित्यसखैर्युक्तः स्वयं संकेतमागतः ।
सखि मञ्जुवटे तस्याः सख्यस्ताः संगता वयम् ॥९५॥
लुलिताहं मञ्जुलान्या कोकिला कलकण्ठिका ।
कलहंसी कलालापा मधुरा च वनप्रिया ॥९६॥
लीला शीला नवैवास्याः सख्यः कमललोचनाः ।
आसनाशनपानादौ सहचर्यः शुचिव्रताः ॥९७॥
युवयोः केलिरसिकाः कृष्णायाः प्रतिपक्षिकाः ।
संगताभिस्ततोऽस्माभिः प्रियः केलिकलापटुः ॥९८॥
भूयोऽवचययामास पुष्पाणि सखि भूरिशः ।
त्वदर्थभूषाविधये स्वयं चावचिकाय सः ॥९९॥
अवचीयातिविकचलताभ्यः पुष्पधोरणीम् ।
सखीभिर्गुम्फयामास विविधाः खलु मालिकाः ॥१००॥
जुगुम्फ चातिचतुरः स्वयमप्येष वल्लभः ।
हारकेयूररशनाकङ्कणादीन् पृथक् पृथक् ॥१०१॥
कदम्बचम्पकस्वर्णयूथिकास्वर्णजातिभिः ।
अपराजितायाः पुष्पाणि नीलोत्पलदलानि च ॥१०२॥
एकीकृत्य जुगुम्फासौ हारान् सखि विचक्षणः ।
अन्यानि चापि पीतानि नीलानि च महामतिः ॥१०३॥
संयोज्य रचयाञ्चक्रे हारकेयूरकादिकान् ।
वेणीताटङ्कावतंसकाञ्चीकङ्कणनूपुरान् ॥१०४॥
सानुरागो विनिर्माय भूषाः सर्वाङ्गगोचराः ।
इमास्ता मम हस्तेऽसावर्पयित्वा ततः सखि ॥१०५॥
सद्यः संप्रेषयामास त्वत्समीपं स्मरातुरः ।
स उवाचाति मधुरमिदं वाक्यं मम प्रियः ॥१०६॥
लुलिते परिधाप्यैता भूषास्तां प्राणवल्लभाम् ।
द्रुतमानय चार्वङ्गीमिमं देशं मनोहरम् ॥१०७॥
द्रुततरमभिसार्य तां किशोरीमपहर मद्विरहं तपार्कतप्तम् ।
सुखयतु सततं तदाननेन्दुश्चिरतरतापवहौ च दृक्चकोरौ ॥१०८॥

यथा विलम्बते कान्ता त्रपालुलितमन्मथा ।
तथावसीदन्ति मम गात्राणि विरहाग्निना ॥१०९॥
यदवधि हृदयं जहार सा मे द्रुतकनकोत्तमकान्तिगात्रयष्टिः ।
तदवधि समभूत् सखि प्रवासो मम हृदयाच्च विलोचनात् सुखस्य ॥११०॥
तन्मुखेन्दुप्रकाशेन विना सखि दिशोऽखिलाः ।
अन्धकारकुलाक्रान्ता इव संप्रति भान्ति मे ॥१११॥
इति मुहुर्मुहुरुक्तिशतेन मां स विनिबोध्य सखि त्वदुपान्तिकम् ।
प्रियतमो विससर्ज विलग्नधीस्तवपदाम्बुजनूपुरकध्वनौ ॥११२॥
नातः परं विलम्बस्ते कर्तव्यः सहजेश्वरि ।
प्रियप्रेषितभूषाभिर्भूषयित्वा तनुं व्रज ॥११३॥

सुकण्ठ उवाच

ततो विभूष्य रमणी प्रसूनाभरणैस्तनुम् ।
शनैः शनैस्ततःस्थानात् प्रतस्थौ हंसगामिनी ॥११४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथयात्रायां व्रजागमने षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२६॥

●

सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः

सुकण्ठ उवाच

ततः सखी समुदयहेममालिका समुल्लसत्सुरुचिरमध्यरत्नभाः ।
प्रकुर्वती प्रमुदवनं रुचाञ्चितं तदन्तिकं तरुणिवरा समाययौ ॥ १ ॥
स दूरतो रसिकवरो निशम्य तत्पदाम्बुजाभरणकहंसकध्वनिम् ।
वियोगजप्रचुरतरार्तिभेदिनीं तदा चिरादलभत मुत्परम्पराम् ॥ २ ॥
ततश्च तत्तनुभवकल्पवल्लरीविनिःसरत्परिमलवाट् समीरणः ।
समंततः प्रसृमर आववौ भृशं स तस्य हृन्मुदमतुलामजीजनत् ॥ ३ ॥

प्रमुद्वनं समजनि तत्समागमे महामहोत्सवनिवहस्य सूचकम् ।
निनादयन् मधुकरराजिवल्लकीं पिकस्वरैर्मुरजरवेण मिश्रिताम् ॥ ४ ॥
अवादयत् समदमयूरझल्लरीर्वनस्थलीपरिहितपल्लवांशुका ।
महीरुहां शिरसि ननर्त मञ्जरी पुराङ्गनागण उदितातिसंभ्रमः ॥ ५ ॥
प्रतानिनीसमुदितपौरकन्यका अवाकिरन् नवदलचीरभूषिताः ।
समन्ततो विकसितपुष्पलाजकैः समागता उपसहजेश्वरी सखी ॥ ६ ॥
ससुल्लसत्कुसुममरन्दधोरणीर्वहन् मुहुः कमलपरागरञ्जितः ।
समीरणः सपदि सिषेव तत्क्षणे वनस्थलीर्नवफलपुष्पभूषिताः ॥ ७ ॥
ततश्च सा तस्य विलोचनातिथिर्बभूव बाला विदिता सखीगणे ।
प्रसूनिनीनां नवकुञ्जवीरुधां कदम्बके हेमलतेव पुष्पिणी ॥ ८ ॥
तां वीक्ष्य सर्वावयवैर्विभूषितां समुत्थितोऽसौ रसिकेन्द्रशेखरः ।
चिरं तपर्त्तुप्रभवातपाकुलो निकुञ्जसाखीव नवाम्बुदावलीम् ॥ ९ ॥
ननन्द तल्लोचनचातकद्वयी सुखान्यवापुः करणानि केकिनः ।
वपुर्लताभूत् पुलकाङ्कुराचिता विलोक्य तां गौरसुधाघनावलीम् ॥१०॥

मङ्गलामण्डलेश्वर्यौ संयोज्य रमणेन ताम् ।
अभूतां प्राप्तसर्वार्थे कृतकृत्ये इव द्रुतम् ॥११॥
लुलिता पुरतस्तस्य ववन्दे द्रुतमेत्य सा ।
समञ्जुलैः स्मितैस्तासामुपकारममन्यत ॥१२॥
स तां सर्वानवद्याङ्गीं सखीनां समुदायगाम् ।
आलिलिङ्ग दृशैवान्तरानन्दभरपूर्णया ॥१३॥

तावन्योन्यं निपीय प्रचुरमधुरिमो प्रेममाध्वीकसारं
माद्यन्तौ मोदमानौ वचनरचनयान्योन्यमुत्तृप्तिभाजौ ।
जातान्योन्यस्मिताद्रौ [रुचि]रुचिरभरोल्लासिनीं पुष्पशय्या-
मध्यास्यातेनतुर्ह्रीभवकलुषहरालापलीलां किशोरौ[1] ॥१४॥
ननन्द तत्रोभयपक्षगामी सखीकलापो मिथुनं विलोक्य ।
भेजे च तत्तत्परिचर्यया तौ प्रसारिपुण्यातिशयेन युक्तः ॥१५॥

---

१. °हरां कोमलालापलीलाम्—मथु०, बड़ो० ।

सखीनां सख्यविधयो दूतीनां दूत्यसत्क्रियाः ।
आसुस्तयोर्मिलितयोः कृतार्था इव तत्क्षणे ॥१६॥
न बीजफलहारिण्या फलैः पाकमनोहरैः ।
स्वादुभिः सुरसैश्चैव कृतौ तौ सुहितौ हितौ ॥१७॥
अथाङ्गरागहारिण्या कस्तूरीकुङ्कुमादिभिः ।
कृतोऽङ्गरागः सरसस्ताभ्यां सम्यङ्निवेदितः ॥१८॥
धृतः स रामया सम्यक् सहजारामयोः स्तनौ ।
स तदङ्गातिसौरभ्यैर्द्विगुणं सुरभीकृतः ॥१९॥
ततः स्वस्वसखीवृन्दैः सहितौ विजयैषिणौ ।
द्यूतकेलिक्रियां सम्यक् चक्रतुः कुञ्जवेश्मनि ॥२०॥
तस्मिन् संजायमाने तु द्यूतकेलिविधौ मिथः ।
सहजानन्दिनो दैवाद् विजिग्ये रामकामुकम् ॥२१॥
ततस्तदालिसंदोहः संददत् करतालिकाः ।
जहास रामचन्द्रं तं यस्य द्यूते विनिर्जयः ॥२२॥
दीयतां नः पणो राम यथैवात्र प्रतिश्रुतः ।
दिशो विलोकयन्नूर्ध्वं किमास्से केलिपण्डितः ॥२३॥

सख्य ऊचुः

अहो अस्माकमीशोऽयं रामः पङ्कजलोचनः ।
जये पराजये वापि तुल्य एव न संशयः ॥२४॥
भवेदुभयथाप्यस्य जय एव न संशयः ।
जये स्यादुपरि प्रेष्ठो नीचैश्च सहजा भवेत् ॥२५॥
पराजय उपर्येषा नीचैरस्माकमीश्वरः ।
इत्याकर्ण्य वचस्तासां सहजानन्दिनो स्वयम् ॥२६॥
किञ्चदाकुञ्चितभ्रूस्ताः सासूयं वक्त्रमैक्षत ।
जघान च भृशं गौरी लीलाकुसुमकन्दुकैः ॥२७॥
अहो अलीकभाषिण्यः स्वैरमालपथ ध्रुवम् ।
इत्युक्त्वा पुनरप्येषा प्रेयसा द्यूतमारभत् ॥२८॥

जिगाय सहजानन्दा प्रेयांसमतिदक्षिणा ।
सख्यः पुनरपि प्रेयानेवास्माकं विनिर्जितः ॥२९॥
जये स्यादुपरीत्यादि गाथाः सम्यगगायत ।
पुनस्ताः केलिपद्मेन जघान सहजेश्वरी ॥३०॥
अथ ताः सहजासख्यो राममूचुः शुचिस्मिताः ।
वारद्वयं जितोऽसि त्वं सख्यास्माकं सुलोचन ॥३१॥
प्रतिश्रुतं पणं देहि पूर्वस्माद् द्विगुणं प्रिय ।
नो चेदेनां नमस्कृत्य निस्तीर्णो भव तं पणम् ॥३२॥

प्रियसख्य ऊचुः

युष्माकं स्वामिनी सख्यो विह्वलीकृत्य नः प्रियम् ।
मुर्हुर्विजयते किन्तु नैष न्यायः सनातनः ॥३३॥
चतुरङ्गवती सेना मदनस्येयमूर्जिता ।
अस्त्रशस्त्रसमुद्रेकवती नित्यं जयत्यसौ ॥३४॥
जहार हृदयं पूर्वं ततश्च नयनद्वयम् ।
ततो हृतवती धैर्यं विजयेनैव वः सखी ॥३५॥
तथापि पश्यथेदानीं विजयं नः प्रभोरपि ।
एकस्मिन्नेव वारेऽसौ हारयिष्यत्यमूं प्रियः ॥३६॥
सोत्कर्षमित्युक्तवतीं प्रियालीमधिक्षिपन्ती व्रजराजकन्या ।
विलोकमाना कुटिलैः कटाक्षैर्व्यताडयत् केलिसरोरुहेण ॥३७॥
अथैका प्रेयसो नर्मसचिवा दक्षिणा सखी ।
द्यूतकेलिक्रियानन्या जिगाय सहजासखी ॥३८॥
ततः प्रियसखीवर्गः सोत्कर्षं करतालिकाः ।
ददौ जहास चातीव जयोऽस्माकं प्रभोरिति ॥३९॥
अथ मालाकरी चित्रां पञ्चवर्णप्रसूनकैः ।
वैजयन्तीमानिनाय द्वयोः परिहितिक्षमाम् ॥४०॥
ताम्बूलहारिणी हैमं ताम्बूलामत्रमानयत् ।
ततश्च लोलनयने नीविकां पश्यति प्रिये ॥४१॥

सद्यः सख्यो विनिर्याता निकुञ्जभवनाद्बहिः ।
ततः स्वैरमभूत्केलिः स्वयं यत्र मनोभवः ॥४२॥
प्रेमैवाभवदुद्वेल आनन्दामृतसागरः ।
आविरासुर्भावमयास्तरङ्गास्तत्र निर्भरम् ॥४३॥
कटाक्षदोर्लताक्षेपप्रसाराकुञ्चनादिभिः ।
लोभयन्तो मनस्तस्य प्रेमराज्यमवर्द्धयत् ॥४४॥
पूर्वं प्रदर्श्य दौर्लभ्यं मुहुरास्वादयद्रसम् ।
इति दाक्षिण्यमासाद्य स्मरकेलीमरोचयत् ॥४५॥
स्वैरं विहरतोः कुञ्जे या शोभा समभूत्तयोः ।
सा सुधासारिणीवात्ता सखीलोचनभाजनैः ॥४६॥
कुञ्जवातायनपथप्रसारितदृगञ्चलाः ।
सख्य आस्वादयाञ्चक्रुर्माधुरीं रसवारिधेः ॥४७॥
नानाबन्धनिबन्धनाधरसुधाशीत्कारमिश्रालक-
स्तोमाकर्षणघर्षणाङ्गवलनासंमर्शनस्पर्शनैः ।
अन्योन्यं रुचिदर्शनैर्मुकुरगस्वाङ्गावलोकोद्भव-
प्रोत्साहैः सुरतक्रिया सरिदिव प्रावर्ततावर्त्तिनी ॥४८॥
रतिप्राज्यानन्दं ददति सहजायां प्रियतमे
मुदा सख्यः सर्वाः स्तिमितहृद आसन् पुलकिताः ।
पयोधारासारैर्भवजलधरं वर्षति यथा
लतायां पत्राणि स्फुटमुपलभन्ते मुदमलम् ॥४९॥
यत्सामरस्यपरमामन्दं प्रकृतिपूरुषौ ।
निषेवेते तदप्यस्य परानन्दोपजीवकम् ॥५०॥
श्रीरामे पुरुषोत्तमे सहजया साकं जुषत्यद्भुतं
निःसीमद्रुतिसामरस्यपरमानन्दं निकुञ्जान्तरे ।
जाताकस्मिकमोदसिन्धुलहरीसन्दोहमग्नात्मनां
त्रैलोक्यस्य नृणामभून्निरवधिः प्रेमोदयः क्षेमदः ॥५१॥
सर्वात्मना यः समभूत्प्रयत्नः सखीजनस्य प्रियमेलनाय ।
कृतार्थतामाप स तावदद्धा तस्मिन् प्रजाते सुरतप्रसङ्गे ॥५२॥

स्त्रीभिः स्त्रीणां वीक्ष्य पुंभिः प्रसङ्गं चित्तेऽमर्षो जायते स्वाभिलाषात् ।
तासामासीत् सहजायां रतायां रामेणान्तःप्रीतिराश्चर्यमेतत् ॥५३॥

एक एव रतानन्दः सहजाचित्तगोचरः ।
विभक्त इव सर्वासु सखीषु समजायत ॥५४॥
मञ्जीरध्वनिभिः कर्णौ त्वक्तदङ्गानिलस्पृशा ।
चक्षुषी सुरतक्रीडारूपसारविलोकनात् ॥५५॥
जिह्वा युगलनामैकरसानन्दानुभूतितः ।
नासा तदङ्गसौरभ्यैरेवं सर्वेन्द्रियव्रजः ॥५६॥
सखीनां निर्वृतिं प्राप मनोमिलनतस्तयोः ।
रामायाः सख्यघटना कृतार्थत्वमियाय च ॥५७॥
अहो लोकोत्तरगुणग्रामराशी उभावपि ।
इमौ परस्परौचित्यात् सार्थरूपौ बभूवतुः ॥५८॥
त्रैलोक्येऽस्याः समुचितवरालाभोद्भवाः शुचः ।
अशीशमन् रामचन्द्रे सहयोगमुपागते ॥५९॥
यत्तासामवलोकनेन सुरतक्रीडारसं तन्वती
किंचिच्चेतसि संचुकोच सहजानन्दा प्रियास्यङ्गगा ।
तद् भूयः सुषुमामवाप दधती तुल्यौ त्रपामन्मथौ
तेनातीव बभूव सौख्यजनिकापश्यत्सखी नेत्रयोः ॥६०॥
तस्याः सुरतकालीनकण्ठकोमलकूजितम् ।
हन्तानुकर्तुं नाशक्नोत् कुञ्जपारावतीकुलम् ॥६१॥
कदा पश्येम युगलमेकदेशस्थितं रहः ।
एषोऽधुनाभवत् पूर्णः सखीलोकमनोरथः ॥६२॥

इदमनुदिनमुत्तमं सुखं यः पिबति जनो रसिकः श्रवःपुटाभ्याम् ।
स भवति रसिकेन्द्ररामचन्द्रप्रणयरसोदधिवीचिभिर्निषिक्तः ॥६३॥
इत्थं विहृत्य रसिकेन्द्रशिरःकिरीटरत्नोत्तमेन रमणेन रसज्ञमौलिः ।
व्यत्यस्तजातरशनाभरणाभिरामारामादिभिः प्रियसखीभिरिदं बभाषे ॥६४॥

चातुर्यं सखि विस्मृतं सकलमाप्यासीस्त्वमत्युद्धता
प्राणेशि प्रणयात् प्रियेण सह संगम्यासि मुक्तत्रपा ।

एतत्ते नयनद्वयं कथयति व्यक्तं रते निर्भरं
प्रातर्मत्तमिलिन्दनर्ममरुणाम्भोजं विजेतुं क्षमम् ॥६५॥
काचित्सखी लतां वीक्ष्य सहजावृत्तमब्रवीत् ।
भ्रूसंज्ञया सखीमन्यां सूचयन्ती रहोगताम् ॥६६॥

सखि विदलिता मल्ली मत्तालिना मदशालिना
प्रतिदलमियं धत्ते तेजाङ्कुरोद्गममीदृशम् ।
विकसितलसत्पुष्पश्रेणी विमोटनतः स्फुटम्
मधुरसझरीवर्षैरार्द्रीकृत्याधिगता तनुः ॥६७॥

अस्याः पुष्पान्तराले मधुकरतरुणः कोऽपि केलीं चकार
प्रेम्णा पत्रोपरिस्थाचिरतरमपिबन्मोदमानो मरन्दम् ।
क्रीडन् रागात् परागारुणरुचिचरणन्यासचिह्नानि कुर्वन्
स्नेहेनात्तोऽनयापि प्रणयपरवशस्वान्तया सादरं सः ॥६८॥

क्रीडां क्वाप्येष कुर्वन् कमलवनपरागैः सरागं शरीरं
बिभ्रत् प्राप्तस्ततोऽस्यां कलितविहरणः स्वेच्छया भूरिभावः ।
तत्संपर्कादसावप्यतिशयितमिमं रागसङ्गैर्दधाना
किंचित्कम्पाकुलाङ्गी विरचयति चमत्कारमन्तर्ममालि ॥६९॥

एनां वीक्ष्योत्सुका अन्या अपि कुञ्जलताः सखि ।
आलिङ्ग्य भूरुहां शाखाश्चलन्त्यः किञ्चिदासते ॥७०॥
अपरोवाच साकूतमन्यां सखि विलोकय ।
मलयानिलमालिङ्ग्य स्वैरमङ्कुरिता लता ॥७१॥
आलिङ्गन् कुञ्जलतिकाः समोदो मलयानिलः ।
अत एव व्रजत्येष मन्दं मन्दं मदाचितः ॥७२॥
एवमन्योन्यमालप्य सहजारामयोर्मनः ।
मन्दाक्षवशगं कृत्वा सख्यस्ताः पुनरब्रुवन् ॥७३॥
अलं वां लज्जयास्मासु नर्मज्ञासु विशेषतः ।
भवतोः केलिचातुर्यं वीक्ष्यान्तर्मुदिता वयम् ॥७४॥
भवतोर्नित्यसंयोगं वाञ्छामः प्रेमसुन्दरम् ।
वयमेतस्य तत्त्वज्ञाश्चन्द्रस्येव चकोरिकाः ॥७५॥

सुकण्ठ उवाच

ततस्ता राममामन्त्र्य सख्यः सहजया सह ।
मुदा भद्रवटं जग्मुर्ध्यायन्त्यः प्रियसंगमम् ॥७६॥
कामराजं समापूज्य स्वागतां सहजेश्वरीम् ।
तरलानाम गोपाली जग्राह परमोत्सवैः ॥७७॥
अर्घ्यपूर्वकमानीय विशालभुवनान्तरे ।
तरला सहजानन्दां गृहलक्ष्मीममन्यत ॥७८॥
अथ तद्दिनमारभ्य तरलाया निकेतने ।
अभूत्प्रभूतं सौभाग्यं धनं धान्यं दिने दिने ॥७९॥
आरोग्यं बहुलं भोग्यं सर्वदा सर्वसंपदः ।
स्वजनानां प्रसादश्च स्वाज्ञावर्तित्वमेव च ॥८०॥
दासानां चैव दासीनां शोभावृद्धिस्तनुश्रिया ।
पुरन्ध्रीजनगीतेन सदाकौतुकमुच्चकैः ॥८१॥
गवां वत्सतरीणां च वत्सानां चेन्दुवर्चसाम् ।
संपत्तिः परमा जाता वृषाणां च सुरोचिषाम् ॥८२॥
तस्य देशस्य परितो वनं सर्वसमृद्धिमत् ।
सर्वर्त्तुसुखदं जातं पत्रपुष्पफलर्द्धिमत् ॥८३॥
यत्र श्री सहजाश्वश्वा गोधनं हरितैस्तृणैः ।
सुहितं सर्वदा भूयः प्रीतियुक्तं प्रजायते ॥८४॥
अवाप्य तरला गोपी स्वगृहेऽनन्यगां श्रियम् ।
सहजायां प्रीतिमती विशेषेण बभूव ह ॥८५॥
यस्या गृहपतिस्तत्र कुशलो नाम गोपतिः ।
दैवात् पौरुषहीनोऽभूद्रामभक्तिपरायणः ॥८६॥
स एकदा वने रामं क्रीडन्तं सखिभिः सह ।
ददर्श सरयूतीरे तरङ्गानिलसेवितम् ॥८७॥
द्विभुजं च धनुर्बाणधरं पद्मविभूषितम् ।
महामाणिक्यमुकुटं महार्हतनुभूषणम् ॥८८॥
पीताम्बरपरीधानं वनमालाधरं विभुम् ।
नवनीलघनाकारं मञ्जुलस्मितभूषितम् ॥८९॥

आबद्धरत्नरसनं महार्हाङ्गदशोभितम् ।
मुक्तासारधरं कर्णस्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥९०॥
लोलालकावलीमध्यविस्फुरन्मुखपङ्कजम् ।
तद्वामपार्श्वे च ततो ददर्श सहजेश्वरीम् ॥९१॥
साक्षात्पूर्णमहालक्ष्मीं पूर्णसर्वगुणान्विताम् ।
पूर्णेन्दुवदनद्योतां पूर्णलावण्यवारिधिम् ॥९२॥
यत्तेजसाखिलं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
अस्याः कलां जुषन्तेऽन्याः रतिप्रमुखयोषितः ॥९३॥
यस्या अंशांशसंभूतिस्तडित्सूर्यकलानिधौ ।
तां तथा रामपार्श्वस्थां दृष्ट्वातीव सुविस्मितः ॥९४॥
तुष्टाव विविधैर्वाक्यैः परमैश्वर्यभावितः ।
पूर्वभावविनिर्मुक्तो भावान्तरमुपेयिवान् ॥९५॥

कुशल उवाच

त्वं रमा परमा कान्तिस्त्वं देवि जगदीश्वरी ।
तवानन्दकलां स्पृष्ट्वा सानन्दाः सर्वयोगिनः ॥९६॥
त्वं वेदमाता विदिता सर्वविद्याधिदेवता ।
त्वां परावरभावेशीं विज्ञायासौ विमुच्यते ॥९७॥
गायत्री चैव सावित्री त्वमेव परमेश्वरी ।
यया ब्रह्मा च विष्णुश्च नीतः स्वाधीनतां स्वयम्॥९८॥
त्वमेव सिद्धजननी सिद्धानां विदुषामपि ।
वन्दनीयतमा नित्यं सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥९९॥
त्वमेव कल्पान्तकरालमूर्त्तेर्ज्वालावली भीमजटाधरस्य ।
रुद्राणि रुद्रस्य वधूः स्वरूपानुरूपरूपा प्रलयाग्निजिह्वा ॥१००॥
कलाकाष्ठादिरूपेण त्वं कालावयवेश्वरी ।
कालयस्यखिलं विश्वं स्वस्मिन्नारोप्य सन्ततम् ॥१०१॥
न ते तत्त्वं विजानन्ति ब्रह्माद्या अपि देवताः ।
प्रवृत्ताः स्वाधिकारेषु मोहितास्तवमायया ॥१०२॥

त्वं मुक्तिरानन्दकदम्बकाढ्या निःशेषदुःखानुभवेन शून्यम् ।
स्वरूपशुद्धं स्वधिकृत्य जीवं स्थिता निरूप्यानिगमान्तभागैः ॥१०३॥
त्वं ज्ञानरूपासि मुनीश्वराणां करोषि चेतः स्वत एव शुद्धम् ।
सूक्ष्मार्थसंदर्शनशक्तिरूपा त्वमेव देवर्षिकृतप्रतिष्ठा ॥१०४॥
यदेतद् व्यजृम्भत आविरञ्चिस्तम्भादितो विश्वमशेषमेव ।
तस्मिन्नुपादानतया प्रविष्टा त्वामेव सर्वत्र विलोकयन्ति ॥१०५॥

त्वां नारदाद्या ऋषयो विशेषाद् भक्तिस्वरूपां समवाप्य मातः ।
श्रीरामचन्द्रप्रियतामवाप्य जयन्ति सर्वोपरिवर्त्तमानाः ॥१०६॥
रामचन्द्रोऽसौ विदितः स्वरूपाद् रामो रमा तस्य परप्रतिष्ठा ।
त्वं देवि सद्यो विदिताभयेति निषेवणीयौ सततं भवन्तौ ॥१०७॥

भवतो नामरूपाभ्यां जगदेति कृतार्थताम् ।
इतीव भवतोर्लोके आविर्भावो विराजते ॥१०८॥
इति मे समभूज्ज्ञानं कृपया तव भाविनि ।
न चेन्मादृशजीवानां क्वज्ञानकलिकोदयः ॥१०९॥
अद्यावधि सदा भूयात्तव भक्तिर्दिने दिने ।
विवर्द्धमाना हृदये प्रेमाख्या भवरूपिणी ॥११०॥

आस्वादार्थं रसराजस्य मातः श्रीरामेणा कारि योगो मया ते ।
नो चेत्साक्षात्पूर्णपत्नी रमाख्या त्वं कस्य जायासि विना रमेशम् ॥१११॥
यद्दौर्लभ्यं स्यात्परायत्तता च पराकाष्ठा रसराजस्य सौख्या ।
तदर्थमेनं प्रभुणाकारि योगो विज्ञातं ते कृपया तत्त्वमेतत् ॥१२२॥

अथ प्रभो राम साक्षात्प्रमोदाटविकला नाथवदाम्यहं त्वां ।
इयं श्रीमन्नन्दने नेह मह्यं दत्ताहं ते नाथ सपर्ययामि ॥११३॥
त्वद्रूपसौन्दर्यमिदं निरीक्ष्य न कस्य पुंसोऽपि मनो विमुह्येत् ।
स्त्रीभावमासादयितुं च रन्तुमुत्कण्ठितं स्यात्कोटिकन्दर्प जैत्रः ॥११४॥

अतोऽहं प्रार्थये तुभ्यं यथा स्त्रीरूपमाप्नुयाम् ।
तवाधरसुधां नाथ पिबेयं तापमोचनीम् ॥११५॥
इत्युक्त्वा कुशलो गोपः पादयोरपतज्जवात् ।
परार्धरतिकन्दर्पमोहिनी युगलात्मनः ॥११६॥

रामस्तमुत्थाप्य भृशमालिलिङ्ग दयानिधिः ।
अब्रवीच्चास्मितोद्द्योतरञ्जिताधरमण्डलः ॥११७॥
धन्योऽसि मम भक्तोऽसि पूर्णस्तव मनोरथः ।
अनन्यप्रेमवृत्त्या ते वशितोऽस्मि न संशयः ॥११८॥
मद्रूपं वीक्ष्य गोपाल कस्य नो सुमितं मनः ।
साक्षादमूमुहन् विप्रा दण्डकारण्यवासिनः ॥११९॥
तेषां कामज्वरं वीक्ष्य तदा दत्तो मया वरः ।
तत एव हि मां नित्यं भजन्ति स्त्रीस्वरूपतः ॥१२०॥
वेदास्त्रिपृष्टगा वीक्ष्य मत्स्वरूपं मनोहरम् ।
मुमुहुस्तेन ते नित्यं स्त्रियो भूत्वा भजन्ति माम् । २१॥
त्वं तु गोपवर प्रेम्णा विरहज्वरपीडितः ।
निमज्ज्य सहजाकुण्डे स्त्रीरूपं समवाप्स्यसि ॥१२२॥
ततो नित्यं मया साकं विहरिष्यसि रात्रिसु ।
दिवसे तु सखा तद्वत् पुरुषः पश्यतां नृणाम् ॥१२३॥
मम लीलापरिकरे सखीभावमुपैष्यसि ।
त्वमेवाद्धा मत्समीपमानेष्यसि मम प्रियाम् ॥१२४॥

सुकण्ठ उवाच

इत्थं तस्मै गोपवराय रामो वरं दत्वा भूरि भावद्वयेऽपि ।
तेनैव साकं विजहाराभिनव्यप्रियाभावं कृपया प्रापितेन ॥१२५॥
सनिमज्य प्रेममये सहजा कुण्डपाथसि ।
बभूव रतिचार्वङ्गी कुशला नाम गोपिका ॥१२६॥
सखी चक्रगता प्रेष्ठा रामस्य सुखवर्द्धिनी ।
यथाकामं विहृत्यैषा पुरुषो भवति क्षणात् ॥१२७॥
अचिन्त्या करुणा तस्य प्रभोर्लीला रसात्मनः ।
अगोचरो मुनीनां यः क्रीडति व्रजदारकैः ॥१२८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थ-यात्रायां आदिव्रजे सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥

अष्टविंशाधिकशततमोऽध्यायः

सुकण्ठ उवाच

याश्चैवान्या व्रजगोप्यः कन्यारूपधराः शुभाः ।
गोपालानां कुले जाता देवानामङ्गनाश्च याः ॥ १ ॥
याश्च वेदऋचो जाता दिव्यस्त्रीरूपभाविताः ।
मुनिरूपा देवरूपास्तथान्याश्चैव कन्यकाः ॥ २ ॥
नगनागसुताश्चैव नरकिन्नरकन्यकाः ।
नानादेशोद्भवाः कन्याः सुखितालयमध्यगाः ॥ ३ ॥
तासां मनो रामचन्द्रे कामतत्त्वेन जृम्भितम् ।
आकुलं चैव विरहेणातिभूयसा ॥ ४ ॥
स्मरवाणसमाविद्धं न विश्रमति कुत्रचित् ।
श्रीरामरूपलावण्यवशीकृतमहर्निशम् ॥ ५ ॥
वियोगतप्तसंदेशपतितं भृशपीडितम् ।
तासामग्निः सुसंतप्ताश्चन्द्रचन्दनचन्द्रिकाः ॥ ६ ॥
परितो दववद्भान्ति पुष्पभूषितभूरुहाः ।
ज्वलिताश्च वितानिन्यो लक्ष्यन्ते ज्वलिता इव ॥ ७ ॥
काकिलानां गिरस्तासां कर्णयोः सूचिवेधनम् ।
कुर्वन्ति भ्रमराणां च गुञ्जितं हृद्रुजावहम् ॥ ८ ॥
सर्वतो ज्वलितं भाति किंशुकद्रुमकाननम् ।
भ्रमन्त्यो भ्रमरश्रेण्यो धूमधोरणसंमिताः ॥ ९ ॥

एवं वियोगा यदि सर्वतो व्रजे विलोक्य रामं प्रणयानुबन्धनम् ।
मृगीश शस्ता मिलिता रहोगता विचार्य चक्रुःफललब्धये व्रतम् ॥१०॥

दुर्वाससो महामन्त्रलब्ध्या विरहपीडिताः ।
सहजानन्दिनीं देवीं महालक्ष्मीं हि भेजिरे ॥११॥
कार्तिके चैव मार्गे च माघे वैशाखमासि च ।
पृथक् पृथक् स्वरूपेण तावेव समुपामिश्रताः ॥१२॥

सीतारामचन्द्रौ प्रेम्णा[1] कार्तिके ताः सिषेविरे ।
मार्गशीर्षे च तावेव श्रीरामं जनकात्मजाम् ॥१३॥
सीताराघवरूपेण माघे चक्रुस्तयोर्व्रतम् ।
वैशाखे च भृशं भेजुः श्रीसीतारामचन्द्रकौ ॥१४॥
एवं ताः सततं चक्रुर्व्रतमेकमनोरथाः ।
सखाः सलिले स्नात्वा श्रद्धाभक्तिसमन्विताः ॥१५॥
विरच्य सैकतीं मूर्तिं सीतारामचन्द्रात्मिकाम्[2] ।
सङ्कल्पपूर्वकं सर्वाः पूजयाञ्चक्रुरङ्गनाः ॥१६॥
आवाह्य स्थापयित्वा च सन्निधाप्य निरुध्य च ।
पादार्घाचमनीयादि मधुपर्काभिषेचनैः ॥१७॥
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकल्पनैः ।
दक्षिणाफलताम्बूलैर्नमनस्तवनादिभिः ॥१८॥
यावद्वर्षमिदं चक्रुर्यत्ता चित्तव्रजस्त्रियः ।
गीतवाद्यादिभिः सम्यक् हविष्याशनतत्पराः ॥१९॥
पूर्णे चाब्दे ततश्चक्रुरुपायनमतन्द्रितः ।
अग्निं संस्थाप्य जुहुवुस्तिलाज्यैर्विधिपूर्वकम् ॥२०॥
पूजां च महतीं चक्रुस्तथा जागरणं निशि ।
सरयूपुलिने रम्ये घने कुञ्जवने स्थिताः ॥२१॥
ततोऽर्धरात्रसमये स्त्रीणां मण्डलमध्यतः ।
अविरासीन्महालक्ष्मीः सहजानन्दिनी स्वयम् ॥२२॥
स्वच्छविद्युल्लता गौरी स्वच्छवस्त्राभिवेष्टिता ।
प्रसन्नवदनस्मेरा प्रसादरुचिरेक्षणा ॥२३॥
विराजिता चतुर्बाहु[3]र्वरदाभयधारिणी ।
भ्रामयन्ती करे पद्मं सुधाभाजनमेव च ॥२४॥
बिभ्रती सुन्दरी साक्षात्स्वर्णयष्टिरिवाद्भुता ।
साब्रवीद् व्रियतां मत्तो वयं युष्माभिरङ्गनाः ॥२५॥

---

१. सीताश्रीरामचन्द्रौभौ—रीवाँ । २. विधात्विकाम्—रीवाँ । ३. द्विर्बाहु—रीवाँ ।

व्रतेनानेन युष्माकं प्रसन्नाहं पुरःस्थिता ।
यद्यन्मनसि दुष्प्राप्यमपि तद्वो ददाम्यहम् ॥२६॥
इत्युक्त्वा सकला गोप्यः प्रेष्ठं संचिन्त्य तत्क्षणे ।
ययाचिरे वरं यस्मै व्रतमीदृक् प्रचक्रिरे ॥२७॥

गोप्य ऊचुः

त्वमाद्याः श्रीः सर्वकल्याणदात्री भक्त्या यस्मै संप्रसीदस्यमोघे ।
तत्र त्रिलोकेऽपि न दुर्लभं भवेद् यत्किञ्चनेष्टं हृदये चिन्तितं स्यात् ॥२८॥
वयं श्रीमद्दशरथराजराजकुमारकेऽस्मिन् त्रैलोक्यसारे[1] ।
आसक्तचित्ताः सततं कामवाणैः क्लिश्यामहे विप्रयोगेन चान्तः ॥२९॥
स्नेहप्रसङ्गेन वियोगवह्निर्ज्वलत्यन्तर्द्विगुणो नोऽबलानाम् ।
अन्तर्यामिन्यात्मना बुद्धिरूपा जानाति सर्वं भवती स्वेष्टदात्रि ॥३०॥
तदस्मासु त्वं वरदे संप्रसीद यथा स्वेष्टं प्रियमेनं लभेम ।
त्वमाराध्याखिललोकेष्टदात्री वरोऽस्माकं प्रिय एषोऽद्य भूयात् ॥३१॥
इत्यादिपूर्वकं ताभिर्याचिते स्वप्रिये वरे ।
उवाच सा महालक्ष्मीः स्मितद्योतितदिक्तटा ॥३२॥

महालक्ष्मीरुवाच

वितीर्णोऽयं मया भूयाद् युष्माकं कामितो वरः ।
नातः परं तद्विरहो भवतीनां भविष्यति ॥३३॥
प्रेमवश्यः प्रभुरयं दुर्लभो योगिनामपि ।
युष्माकमार्तिं संवीक्ष्य स्वरूपं दास्यति स्त्रियः ॥३४॥
मयानुमोदितश्चैव विशेषाद्वो व्रजस्त्रियः ।
स्वरूपानन्ददानार्थं समर्थोऽद्य भविष्यति ॥३५॥
इत्युक्त्वा जानकी देवी सर्वासु युवतीष्वलम् ।
आविष्टा स्वांशभागेन सद्य एव तिरोऽभवत् ॥३६॥
अथापरेद्युस्ताः सर्वाः स्नातुकामा व्रजस्त्रियः ।
अवतेरुर्वस्त्रहीनाः सारवे विमलेऽम्भसि ॥३७॥

---

१. वर्षं श्रीमद्दशरथस्यपरा न राजस्य त्रैलोक्यसारे कुमारे—मथु०, बड़ो० ।

तदा स्वयं वरदराट् रामः कमललोचनः ।
तत्र शीघ्रं समागम्य वस्त्राण्यादाय योषिताम् ॥३८॥
द्राक्तीरभूमिमन्दारमारुरोहातिकौतुकी ।
स्वरूपं दर्शयन् स्त्रीणां कोटिकन्दर्पमोहनम् ॥३९॥
सर्वास्ताः सलिलान्तःस्थाश्चीरचोरं रमापतिम् ।
विलोक्य स्मरसंक्षुब्धा ऊचुर्वचनमादरात् ॥४०॥

गोप्य ऊचुः

वयमार्ता माघमासस्य शीते प्रकम्पमानास्तव लक्ष्मीश दास्यः ।
देह्यस्माकं वसनानि व्रजेश यानि प्रभो परिधाय त्वां व्रजामः ॥४१॥
चिराय त्वद्विरहेणार्तबन्धो संतप्ताः स्म त्वामुपलभ्य चाद्य ।
वयं कृतार्थाः स्याम तन्नाथ कुर्याः कृपावलोकं नित्यमस्मासु धेहि ॥४२॥
त्वल्लब्धयेऽस्माभिरहो उपासिता तव प्रिया सापि चाभूत्प्रसन्ना ।
वृत्तं वरं त्वत्स्वरूपं दुरापं कृपावशाददददत्युदारा ॥४३॥

श्रीराम उवाच

अहो व्रजाभीरकन्या वरोऽयं सुदुर्लभो दुर्घटश्चाप्यतीव ।
मत्स्वामिन्या किन्तु यद्यो वितीर्णः सुखाय एवाभवदिन्दुमुख्यः ॥४४॥
अस्त्यत्रैकं वचनीयं विमूढा यद्यूयमेवं स्नाथ नग्नाः सरय्वाम् ।
तेनाभवत्खण्डितं वो व्रतं वै नार्यविधिः स्नानकर्मण्युदीर्णः ॥४५॥
मयानुमोदितं त्वेतदखण्डितमिहास्तु वः ।
सर्वा भवन्त्यो गृह्णन्तु वासांसि बहिरागताः ॥४६॥
ततः परस्परं बाला वीक्ष्य वक्राणि सत्रपम् ।
जहसुर्युगपत् प्रीताः कथं कार्यमतः परम् ॥४७॥

बाला ऊचुः

धूर्तोऽसि धूर्तराजोऽसि देहि वासांसि साहसिन् ।
पश्चात्ते दर्शयिष्यामो यदङ्गं द्रक्ष्यसि स्वयम् ॥४८॥

मध्या ऊचुः

कोऽसौ हास्यविधिस्त्वदीय उदितः सर्वा वयं त्वामहो
पौष्पैर्दामभिरानिबध्य सदने संस्थापयिष्यामहे ॥

माङ्गल्या यदि न स्तुतिं बहुविधां कृत्वा समुन्मोचये-
देवं तामपि संनिबध्य सहसास्माभिः प्रतीक्ष्यं बलम् ॥४९॥

प्रौढ़ा ऊचुः

यर्हि त्वं मुरलीधर व्रजवने गाश्चारयन् स्वप्रियां
संस्मृत्य स्मरबाणविद्धहृदयो मध्ये निकुञ्जं गतः ॥
तर्हि प्रेषितदूतिका परिकरो धत्से व्यथां यादृशी-
मस्मास्वप्यवधानतो नहि कथं त्वं तादृशीं पश्यसि ॥५०॥

अन्या ऊचुः

त्वामार्तबन्धुं शरणं प्रपन्नाः किमार्तिमीदृ[1]ग्द्विगुणां लभन्ते ।
आनन्दसिन्धोरमितोत्सवस्य त्वदीयमेतद्वचनीयमेव ॥५१॥
त्वयि धृतहृदयानामीदृशोऽयं विपाकः
समजनि भुवने नो यद्वियोगाग्नितप्ताः ।
नयनसलिलपूरैः पल्वलान् पूरयन्तो
गुरुजनकृतखेदाः कं नु देशं व्रजामः ॥५२॥
दृष्ट्वा दृष्ट्वा भवतो रूपमेतत्परार्द्धकन्दर्पसमूहजैत्रम् ।
दिवानिशं पीडिताः कामवाणैस्त्वदाप्यवश्याः[2] किमु कुर्मः सुखाब्धे ॥५३॥
अतस्त्वां शरणं यातास्त्वत्स्वामिन्या कृतव्रताः ।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कलितानन्यवृत्तयः ॥५४॥
भवान् वरदराड् व्यक्तं पूरयास्मन्मनोरथम् ।
यथास्मराशुगैर्नित्यं न विध्येमहि सत्रपाः ॥५५॥

अपरा ऊचुः

सर्वत्र सर्वभावेषु सर्वदा सर्ववृत्तिभिः ।
त्वमेव स्फुरितोऽस्माकं परंब्रह्मैव भाससे ॥५६॥
अतस्त्वमेव नो दुःखं हरिष्यसि मनोहर ।
इत्याशया प्रपन्नास्त्वां कुरु त्वं च यथोचितम् ॥५७॥

---

१. °मीश = मथु०, बड़ो० । २. मन्दाक्षवश्याः—मथु०, बड़ो० ।

सर्वा ऊचुः

देहि नो राम वासांसि वैदग्ध्याकर नेदृशम् ।
कर्तुमर्हसि यत्तोये कम्पेमहि विवाससः ॥५८॥
कायेन मनसा वाचा यदि त्वामीश केवलम् ।
प्रपन्नास्तर्हि कोऽयन्ते निबन्धो ह्री[1]निरासने ॥५९॥
कान्तर्द्धा[2] पुण्डरीकाक्ष्य प्राणेशस्य निजात्मनः ।
परस्परं तु सुन्दर्यो ह्रीणीमहि न संशयः ॥६०॥

राम उवाच

यदि सर्वत्र मे स्फूर्तिर्भवतीनामभूत्तदा ।
किं नु स्वपरभेदेन जिह्रेथाभीरदारिकाः ॥६१॥

रामा ऊचुः

अनीतिरेषा रघुनाथसूनो रतिं विना नग्नवधूविलोकनम् ।
ततोऽर्पयाशेषनयाम्बुराशे चीराणि नो वारिसकम्पवर्ष्मणाम् ॥६२॥

राम उवाच

विवाससो यत्सलिलावगाहनं चकर्थ वामा व्रतसुक्षामदेहाः ।
तदेतदज्ञानभवं भवत्यघं मदुक्तकर्माचरणाद्विनङ्क्ष्यति ॥६३॥
इतीरिताः सर्वविज्ञानकर्त्रा वाचामधीशेन तदाखिलात्मना ।
निगूह्य गुह्यं निजपाणिपद्मैः सर्वा वहिःस्रोतस आययुः स्त्रियः ॥६४॥

राम उवाच

यथोदिताघनाशाय नत्वञ्जलिभिरीश्वरम् ।
गृहीतनिजवासांसि यथानन्दं व्रजस्त्रियः ॥६५॥
ततस्तास्तत्पराधीनाः कृत्वा सर्वं प्रियोदितम् ।
अवापुः स्वानि वासांसि यथेष्टं च तथा वरम् ॥६६॥
सम्यक् प्रवञ्चितास्तास्तु त्याजिताश्च त्रपाभरम् ।
नर्मोपहसिताश्चैव यन्त्रपुत्तलिकायिताः ॥६७॥
अङ्गान्याच्छाद्य ताः सर्वा वासोभिर्विविधैः पृथक् ।
श्रीरामचरणन्यस्तनेत्रास्तस्थुः सुविस्मिताः ॥६८॥

---

१. हि—रीवाँ । २. °न्तर्द्धः—मथु०, बड़ो० ।

तदाहितमनःप्राणदेहात्मेन्द्रियवृत्तयः ।
तदेकानन्यसर्वस्वा आसंश्चित्रार्पिता इव ॥६९॥
ता आह भगवान् रामः स्मयमान[1] उदारधीः ।
कृतकृत्यार्थविषया इति विज्ञाय चेश्वरः[2] ॥७०॥

राम उवाच

मनोरथो वां विज्ञातो मत्स्वरूपैकगोचरः ।
स आराधितया देव्या पूर्वमेव समर्थितः ॥७१॥
न तदुक्ततमादर्थान्मदुक्तमतिरिच्यते ।
यतः सा मेऽखिलार्थानामधिपाध्यक्षरूपिणी ॥७२॥
तदाविष्टलया यूयं सर्वाः प्राप्तमनोरथाः ।
नो चेत्क्वान्याङ्गनासङ्ग एकपत्नीव्रतस्य मे ॥७३॥
किन्तु सर्वात्मभावेन ये मामेवमुपासते ।
मय्येव न्यस्तसर्वार्था तानहं सततं वृणे ॥७४॥
न व्रतं नियतं कर्म न तपो नापि धारणा ।
न ज्ञानं नापि वैराग्यं मद्रूपानन्दलब्धये ॥७५॥
किन्तु मत्सेवनं प्रेम्णा मदेकवशिताकरम् ।
तद्वान् लभेद्दुर्लभं यद्ब्रह्मशेषश्रियामपि ॥७६॥
प्रेमानन्दमयैर्भावैर्मदाराधनतत्पराः ।
यूयं मां वश्यतां नीत्वा पूर्णकामाःस्थ योषितः ॥७७॥
कल्पान्ते यं चिरतरमेत्य मत्प्रसङ्गं
मद्रूपामृतरसलाभतृप्तिमत्यः ।
कालादेः शिरसि निधाय चात्मपादौ
मत्सार्धं ननु विहरिष्यथेन्दुमुख्यः ॥७८॥
इति तासां वरं दत्वा रामः कमललोचनः ।
जगाम सखिभिः सार्द्धं वने गोचारणोद्यतः ॥७९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रायां व्रजागमने अष्टाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२८॥

१. स्मयमाना—रीवाँ । २. राघवः—मथु०, बड़ो० ।

एकोनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

सुकण्ठ उवाच

अथ रघुपतिवर्यः कोटिकन्दर्पजैत्र-
द्युतिमधुरिमसिन्धुर्बन्धुरार्तान्तराणाम्[1] ॥
अधिगतवरदानः शारदीं वीक्ष्य राकां
व्रजपुरवनिताभ्यः प्रेषयामास दूतीः ॥ १ ॥

धीमती श्रीमती ज्येष्ठा श्रेष्ठा च मधुयूथिका[2] ।
धूर्तिनी धारिणी धरा धीराधीरा धरा धृतिः ॥ २ ॥

मधुहासा मधूली च मधुभाषा[3] च मोहिनी ।
शोभिनी क्षोभिणीत्याद्या दूतिकाः शतशःप्रभोः ॥ ३ ॥
गुणवर्णनचातुर्यवन्त्यो धैर्यविहारिकाः ।
उत्कर्षख्यापनपराः पट्व्यः कमललोचनाः ॥ ४ ॥
बहुवित्तव्ययोदारा बहुभीतिप्रदर्शिकाः ।
विद्यमानेषु गुरुषु वाक्पाटवविधायिकाः ॥ ५ ॥
नीतिविद्यासु निपुणा नानाशास्त्रविचक्षणाः ।
नानाकोककलाभ्यासा दक्षिणाः प्रियवादिनीः ॥ ६ ॥
विपञ्चीकलभाषिण्य ऋतुवर्णनदक्षिणाः ।
वित्तापहारनिपुणा रतिसौख्यप्रबोधिका ॥ ७ ॥
कुलभीतिनिवारिण्यः श्रीरामरतिबोधिकाः ।
तारुण्यबलबोधिन्यो वयसः फलबोधिकाः॥ ८ ॥
एकमेव जगत्सारं[4] बोधयन्त्यो हरिंपतिम् ।
नानावेषविधायिन्यः स्वजनभ्रान्तिनाशिकाः ॥ ९ ॥

१.°रार्त्तगोपीगणानाम्—रीवाँ । २.°पुष्पिका—मथु, बड़ो० । ३.°मासा—रीवाँ ।
४. एवमेव जगत्सर्वं—रीवाँ ।

श्रीरामचन्द्रबिम्बस्य चन्द्रिका इव निर्गताः ।
देशकालवयोऽवस्थाचित्तवाक्यप्रदर्शिकाः ॥१०॥
याश्चान्या माधुरीकान्तिचातुरीप्रमुखाः प्रभोः ।
नित्यमेवातिमोहिन्याः सहजाएव[याश्च]दूतिकाः ॥११॥
माधुरी चैव कान्तिश्च चातुरी रूपरञ्जिता ।
सुषमा भारती प्रज्ञा नित्योत्साहा कलावती ॥१२॥
ताः सर्वा प्रययुर्दूत्य आज्ञामादाय मूर्द्धभिः ।
रामस्य लोकरामस्य गृहाणि व्रजवासिनाम् ॥१३॥
सर्वतः प्रेषिता दूत्यो बालानां चित्ततोषिकाः ।
एकां तु मुरलीं दूतीमगृह्णात्स्वकराम्बुजे ॥१४॥
सर्वदूतीगणश्रेष्ठां ज्येष्ठां तु मतिमत्तमाम् ।
प्रियः प्रस्थापयामास कृष्णां रामनिकेतने ॥१५॥
तत्र कृष्णा व्रजे ज्येष्ठा वयसा च गुणैरपि ।
कनिष्ठा तु ततो रामा सहजानन्दिनी तु या ॥१६॥
कृष्णाख्या वल्लभेशस्य नवनीलमणिप्रभा ।
सहजानन्दिनी साक्षाद् गौरी विद्युल्लताकृतिः ॥१७॥
परस्परसपत्न्यौ ते ऐकान्त्यात्कृतसंगमम् ।
प्रियं दृष्ट्वाथवा श्रुत्वा मानवत्यौ बभूवतुः ॥१८॥
अतस्ते वल्लभे रामो वामदक्षिणपार्श्वयोः ।
गृहीत्वा समभावेन रमते स्वेच्छया प्रभुः ॥१९॥
कृतेऽन्यथा तु न सुखं कदाचिदपि जायते ।
श्रीनन्दनस्य यो भ्राता ज्येष्ठस्तुल्यवयोगुणः ॥२०॥
तस्य पुत्री स्वयं कृष्णा प्राणेभ्योऽप्यतिवल्लभा ।
ताभ्यां कर्तुं महारासं प्रभुरैच्छत्प्रमुद्वने ॥२१॥
महाराकानिशं वीक्ष्य वरदानं च योषिताम् ।
उभौ परिकरौ रामश्चक्रे एकान्तमण्डले ॥२२॥
उभयोश्चैव या सख्यस्तथा दूत्यश्च चेटिकाः ।
नित्यसिद्धाः स्त्रियो याश्च तथा साधनसिद्धिगाः ॥२३॥

अनुग्रहैकसिद्धाश्च देवानामङ्गनाश्च याः ।
याश्च स्त्रीरूपतः प्राप्ता देवरूपा वराङ्गनाः ॥२४॥
याश्च वेदत्रयऋचः प्राप्ताः स्त्रीवेशवेशिताः ।
मुनयश्च प्रेमविद्धाः कृत्वा स्त्रीरूपमागताः ॥२५॥
नरकिन्नरनागेन्द्रनगेन्द्राणां च याः स्त्रियः ।
कुमार्यो मध्यवयसः प्रौढाश्चैव तु याः स्त्रियः ॥२६॥
ऊढाश्चैव तथानूढा रामप्रेमवशीकृताः ।
नानादेशोद्भवाश्चैव कन्यकाः सुखितव्रजे ॥२७॥
तासामानयनार्थाय प्रेषितास्तत्र दूतिकाः ।
उद्धरिष्यति ताः सर्वाः प्रेमबद्धाः समागताः ॥२८॥
लतारूपाश्च याः कान्ताः प्रमोदवनमध्यगाः ।
ब्रह्मणो मानसाज्जाताः असंख्या एव संख्यया ॥२९॥
पुरा क्षीरसमुद्राच्च लक्ष्म्या सह विनिःसृताः ।
अजातपाणिग्रहणा अदृष्टरमणाननाः ॥३०॥
तासां वयश्च रूपं च भाग्यं सौभाग्यमेव च ।
कान्तित्वं कमनीयत्वं स्त्रीत्वं वा विधिनिर्मितम् ॥३१॥
तत्सर्वं सफलीकर्तुं स्वरूपानन्ददानतः ।
प्रभुरिच्छां यदा चक्रे समाहूतास्तदैव ताः ॥३२॥
[1]मण्डलेशी महासिद्धा दाराः शाण्डिल्यशर्मणः ।
लीलाशक्तिः प्रभोरेषा वितेने निजवैभवम् ॥३३॥
लीलानुकूल्यमतनोत् सर्वभावेन भूपते ।
अतो व्रजजनाः सर्वे तस्यां रात्रावसूषुपन् ॥३४॥
येऽप्यप्रमत्तहृदया निशि जागरितव्रताः ।[1]
महाभोगबलोपेतास्तेऽपि निद्रायितास्तया ॥३५॥
मायायवनिकां विश्वग्विस्तार्य समधिष्ठिताः ।
ये च निद्रायिता लोके व्रजे रामस्य मायया ॥३६॥

१—१. नास्ति—रीवाँ ।

ते नीता ब्रह्मणो लोके त्रिपाद्यत्र प्रतिष्ठितः ।
सर्वानन्दगणस्थानमुत्तरोत्तरतोऽधिकम् ॥३७॥
यस्मिन्नेवैकतां प्राप्य मात्रानन्दाः प्रतिष्ठिताः ।
निधास्यति परे प्रेम्णि तत उद्धृत्य तानपि ॥३८॥
अथ व्रजपुरं प्राप्तः श्रीमान् राघवनन्दनः ।
गोचारणपरिश्रान्तः सायं न्यविशदालये ॥३९॥
मात्रा माङ्गल्यया सम्यग् वीक्ष्य नीराजितः सुतः ।
तत उद्वर्तितः स्नातः प्राशितोऽन्नं चतुर्विधम् ॥४०॥
स्वापितः कोमले तल्पे पादसंवाहनादिभिः ।
तास्ताः कुर्वन् कथाः सुप्तः सर्वगोचारचेष्टितः ॥४१॥
अथ राकानिशाकान्तकरैर्धवलिता भृशम् ।
उत्फुल्लमल्लिकामोदपूर्णां संवीक्ष्य सन्निशाम् ॥४२॥
अगात् प्रमोदविपिनं प्रेमानन्दरसोदधिः ।
अपश्यत् सर्वतो दृष्टां मङ्गलां मङ्गलाटवीम् ॥४३॥
सरयूसमीरलहरीलुलन्नवमल्लिकादलकलापमञ्जुलाम् ।
स्फुटमल्लिकाकुसुमसंततस्रवन्मकरन्दतुन्दिलमिलिन्दमन्दिरम् ॥४४॥
अरविन्दकाननपरागधोरणीस्मरसैन्यवाजिसुरधूलिपूरिताम् ।
नवपूर्णचन्द्रकिरणारुणीकृतप्रतिपत्रशोभिसहकारवञ्जुलाम् ॥४५॥
कुमुदाटवीसुमविकाशमेदुरामलचन्द्रिकास्मरयशःप्रपूरिताम् ।
अमृतस्रुतिस्नपितनिश्चलक्वणन्राजहंसकुलकूजितान्तराम् ॥४६॥
स्फुटसप्तपर्णमधुगन्धमत्तदिग्गजदानपूर्णपटलीनिदानतां गता-
मित्यसौममददीप्तिकारणमदनानपेक्षरतिकेलिबोधनाम् ॥४७॥
अथ तत्र सोमसवनाभिधे वटे परिभूतकल्पतरुमाधुरीभरे ।
नवनीलमारकतपत्रमञ्जुले मणिरत्नपुष्पिणि सुधाभरस्रवे ॥४८॥
गगनस्पृशि स्फुरति शारदानिलप्रविलोलपर्णविटपायुतायते ।
शतकोटिसंख्यरविचन्द्रमण्डलद्युतिभाजि शीतलतरस्फुरत्तले ॥४९॥
मणिरत्नवेदिरुदयन्त्यलौकिकद्युतिमत्यवाङ्मनसगोचरायतिः ।
रचिताक्षकोटिदलमध्यविस्फुरद्द्रुमकर्णिकाविकचपङ्कजाकृतिः ॥५०॥

सर्वतन्त्ररहस्यं तं महायन्त्रं प्रतिष्ठितम् ।
परब्रह्मार्चनस्थानं चिदानन्दमयं पदम् ॥५१॥
कालमायागुणातीतं विधिनिर्मित्यगोचरम् ।
अयं च धातुसंश्लेषमवाङ्मनसचेष्टितम् ॥५२॥
असीमकल्याणगुणमशेषद्युतिभाजनम् ।
चिदानन्दमयं पद्मं यद्वदन्ति मनीषिणः ॥५३॥
तस्य प्रान्तेऽप्यवस्थातुं ब्रह्मशेषशिवश्रियः ।
नार्हन्ति पारमैश्येऽपि किमुतान्ये दिवौकसः ॥५४॥
तस्य मध्ये स्वयं स्थित्वा सहजानन्दिनीसखः ।
व्यराजत महाराजो महासिंहासने यथा ॥५५॥
कालकोटिसमापूर्णे मण्डले चन्द्रमा यथा ।
मानसोत्फुल्लपद्मान्तर्महामधुकरो यथा ॥५६॥
कोटिबिम्बमये बिम्बे साक्षाद्दिनमणिर्यथा ।
कोटिसिद्धिमये सिद्धासने योगीश्वरस्तथा ॥५७॥
मणिनूपुरयुग्माढ्यविस्फुरत्पादपल्लवः ।
यावकद्युतिसंदोहद्योतिपादाङ्गुलीगणः ॥५८॥
नानावर्णलसच्चीरनाट्यकक्ष[1] मनोहरः ।
मणिकिङ्किणिकाचारुमेखलादामसुन्दरः ॥५९॥
पञ्चवर्णप्रसूनाढ्यवनमालाविराजितः ।
वैजयन्तीमिलन्मञ्जुमुक्तादामश्रियाञ्चितः ॥६०॥
पञ्चवर्णमहारत्नदीर्घमालाव[2]लम्बितः ।
कौस्तुभाख्यमणिद्योतकोटीन्दुरविदीधितिः ॥६१॥
विचित्रकञ्चुकश्रेष्ठकस्तूरीकुङ्कुमाञ्चितः ।
रत्नाङ्गदलसद्बाहुरुद्दामकटकप्रभः ॥६२॥
निर्णिक्तमुकुराकारकपोलफलकद्युतिः ।
नासाश्रीनिहितोत्तुङ्गगजमुक्ताफलच्छविः ॥६३॥

१, °नरकच्छ°—मथु० बड़ो० । २. °मालांस°—मथु० बड़ो० ।

माधुर्यसिन्धुमध्यस्थमकराकारकुण्डलः ।
तन्माणिक्यप्रभापूरच्छुरिता[1]लकधोरणिः ॥६४॥
कस्तूरीपत्ररचितमध्यत्विड्दिव्यमौक्तिकः ।
कस्तूरीतिलकोद्भासिसद्रत्नतिलकालिकः ॥६५॥
भालोच्चैर्निहितोत्तुङ्गमाणिक्योभयतोगते ।
आकर्णलग्नविमलगजमुक्तालते वहन् ॥६६॥
बिम्बाधरप्रभोद्रेक[2]रञ्जिताशेषकाननः ।
चन्द्रबिम्बचमत्कारिचकोराभविलोचनः ॥६७॥
कोटीन्दुरविरत्नोप्तमहामुकुटरोचितः ।
मुकुटाग्रततानेककेकिपिच्छावलीधरः ॥६८॥
तत्संलग्नमहामञ्जुगुञ्जापुञ्जस्रजान्वितः ।
सर्वाङ्गभूषणोद्योतनिरस्ततिमिरोदयः ॥६९॥
सुधावर्षिनवोन्नम्रश्रीविग्रहवलाहकः ।
स्मितैः कुसुमिताः कुर्वन् केलिकुञ्जलताः शतम् ॥७०॥
त्रिविधैर्नयनालोकैर्वनभूमीरुहां ततीः ।
अनेकमणिमाणिक्यमयूखाङ्कुरमञ्जरीः ॥७१॥
उद्भावयन् युवापीनव्यायतोरःस्थलद्युतिः ।
लावण्यस्यापि लावण्यं माधुर्यस्यापि माधुरी ॥७२॥
सौभाग्यस्यापि सौभाग्यं श्रियोऽपि महतीं श्रियम् ।
रूपस्यापि महद्रूपं भूषाणामपि भूषणम् ॥७३॥
स्वैरेव सहजैरङ्गमहोभिर्महिमाञ्चितैः ।
मुष्णन् उष्मरुचेरिन्दोरपि मुष्णन् रुचां मदम् ॥७४॥
अशेषभुवनोद्दीप्तः शृङ्गारजयदीपकः ।
गोपीदृष्टिचकोराणामानन्दायैकचन्द्रमाः ॥७५॥
वियोगनैशतिमिरं क्षपयन्निव भास्करः ।
कलासमूहविश्रामधामदर्शितचेष्टितः ॥७६॥

---

१. °द्योतिता°—रीवाँ । २. °प्रभोत्कार°—रीवाँ ।

विनिबद्धां कटितटादादाय मुरलीमसौ ।
पाणिभ्यामङ्गुलीयांशुसाङ्गुलिभ्यामनेकधा ॥७७॥

मधुराधे च विन्यस्य पूरयन्मुखजैः स्वरैः ।
विलोलपल्लवाभाभी रन्ध्रानङ्गुलिभिः स्पृशन् ॥७८॥

वामबाहुलसद्वामकपोलफलकाञ्चितः ।
भूयो मुरलिकामर्शकिञ्चिन्मुकुलिताननः ॥७९॥

दक्षिणेन पदाक्षिप्तवामपादस्त्रिभङ्गभृत् ।
अनङ्गकोटिसौन्दर्यविजित्वरसमुद्यमः ॥८०॥

जगौ जगन्मोहनकर्मदीक्षितां शृङ्गारवापीं कमलालिझङ्कृताम् ।
लीलासुधासागरराजहंसिकानिक्वाणिनीं कोमलकाकलीमसौ ॥८१॥

तन्नादास्वादसंजातकर्मणां तरसागमाः ।
प्रमोदवनगास्तूष्णीमभवन् पशुपक्षिणः ॥८२॥

आविश्य मङ्गला देवी सकलां प्रमुदाटवीम् ।
अपिबद्राममुरलीपीयूषरसधोरणीम् ॥८३॥

प्रमुद्वनलतावृक्षविटपान्तरपातिनी ।
वृष्टिः सुधासीकराणामदृश्यत समन्ततः ॥८४॥

रससंपद्वासनाभिरवासितहृदोऽप्यलम् ।
ईयुः शुष्कश्रोत्रियाद्या रसिकत्वं तदा क्षणे ॥८५॥

प्रेमानन्दरसाभिन्नशब्दाद्वैतमयं जगत् ।
तस्मिन् क्षणे समभवद्रामवंशीनिनादने ॥८६॥

द्वापरान्ते तथा कृष्णः कर्ता वृन्दावनेऽवयम् ।
अथैव भगवान् रामश्चकार मुरलीध्वनिम् ॥८७॥

प्रमुद्वने सर्वसंपत्समृद्धिसमुदायिनि ।
नादृश्यत तरुः कश्चिच्छुष्कपत्रोपसेवितः ॥८८॥

तदाकर्ण्य व्रजे वामा मुरलीस्वररञ्जितम् ।
प्रेमानन्दपयोराशौ न्यमज्जन्नाशिरःशिखम् ॥८९॥

उन्मज्योन्मज्य मज्जन्ति तदा स्मर[1]महोदधौ ।
वक्षोजतुम्बिकायुग्ममवलम्ब्यापि सादरम् ॥९०॥
ज्वलन्नपि हृदि स्मेरस्तासां विरहपावकः ।
अलिप्यत विशेषेण स्नेहेन द्विगुणीकृतः ॥९१॥
अथ प्राणप्रियप्रेष्ठसंयोगस्पृहया ततः ।
उत्तेरुर्व्रजवामाक्ष्यो रागसागरपाथसः ॥९२॥
त्यक्त्वा व्रजपुरं सर्वाः प्रतस्थुः प्रियसंनिधौ ।
नगैरिव तरङ्गिण्यो गुरुभिर्नापि विघ्निताः ॥९३॥
रणच्चरणमञ्जीरैश्चटुकाङ्गुलिभूषणैः ।
माणिक्यकिङ्किणीशालिमेखलादामभिस्तथा ॥९४॥
वलयानां कङ्कणानां समूहैर्गतिचञ्चलैः ।
मणिहारैश्चन्द्रहारैरन्योन्यवलनोद्धुरैः[2] ॥९५॥
सुवर्णरत्नताटङ्कैः शाटीपटकदम्बकैः ।
शब्दायमानैः परितः कुञ्जवीथीरबोधयन् ॥९६॥
मुखेन्दुभिश्चकोरीणां केशपाशैश्च केकिनाम् ।
नूपुरैः कलहंसानां करिणां गतिविभ्रमैः ॥९७॥
काञ्चीकलापैरलिनां मध्यैः केसरिणां तथा ।
कण्ठनादैः कोकिलानां चातकानां तनुत्विषा ॥९८॥
कुचयुग्मैश्च कोकीनां भोगिनां रोमराजिभिः ।
व्याहारैः शुकवर्याणां रुन्धन्त्यः कानने गतिम् ॥९९॥
आननैश्चक्रवाकानां मध्येन करिणां तथा ।
कचैः काकोदराणां च चातकानां मुखत्विषा ॥१००॥
शुकानां करभूषास्थवैदूर्यमणिभिस्तथा ।
मध्येमार्गं च संप्राप्ताः सृजन्त्यः सुमहद्भयम् ॥१०१॥
मर्दयन्त्यः पदैर्भोगान् विषफूत्कारभीषणान् ।
हरन्त्यस्तिमिरस्तोमं कूजयन्त्यो वनस्थलीः ॥१०२॥

---

१. °न्मज्य वामां यो मज्जन्ति स्मर°—मथु०, बड़ो० । २. मणिहारैरथान्योन्यसंमर्दबलमुद्धुरैः—रीवाँ ।

पूजयन्त्यः पदाम्भोजैः प्रमोदवनभूतलम् ।
पूरयन्त्यः सौरभौघैः सहजैः काननावलीम्[1] ॥१०३॥
इन्दीवरमयं लोलनेत्रैः शृङ्गाररोचकैः ।
चन्द्रबिम्बमयं चारुमुखमण्डलकोटिभिः ॥१०४॥
राजहंसमयं मन्दक्वणत्पादाब्जनूपुरैः ।
कचैः केकिमयं चैव देहकान्त्या तडिन्मयम् ॥१०५॥
फुल्लचाम्पेयकमयं समन्ताच्चन्द्रिकामयम् ।
स्वर्णद्रवमयं चैव कुर्वन्त्यः सर्वतो वनम् ॥१०६॥
प्राप्तास्ताः सकला गोप्यः सहजानन्दिनीपतिम् ।
यद्वत्सुधातरङ्गिण्यः सुगम्भीरसुधाम्बुधिम् ॥१०७॥
श्रीरामदर्शनानन्दनिर्वृत्ता हृष्टचेतसः[2] ।
मध्ये प्रमोदविपिनं विरेजुर्व्रजयोषितः ॥१०८॥
तं[3] वेष्टयित्वा रमणं सहजानन्दिनीवरम्[4] ।
स्थितास्तमालप्रवरं सुवर्णलतिका इव ॥१०९॥
अनुजग्राह ताः सर्वाः प्रियस्त्रैलोक्यसुन्दरः ।
पीयूषवर्षणामन्दहासेनोद्दीपयन् दिशः ॥११०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्ड-संवादे दशरथतीर्थयात्रायामादि-व्रजागमने एकोनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥

---

१. °वलीः—रीवाँ। २. श्रीरामचन्द्रवदनचन्द्रदर्शननिर्वृताः—मथु०, बड़ो०।
३. ता—मथु० बड़ो०। ४. °वशम्—मथु० बड़ो०।

त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

सुकण्ठ उवाच

उवाच ताः स्मितज्योत्स्नाधूतविश्लेषतापिकाः ।
वक्रोक्तिकवितावेधाः श्रीरामो मोदयन्मनः ॥ १ ॥

श्रीराम उवाच

अहो हि साहसं स्त्रीणां भीरूणां दृष्टमद्भुतम् ।
यद्यूयं त्यक्तसर्वस्वा गोकुलान्मामुपागताः ॥ २ ॥
स तादृक्षः पन्था लुलितरसनाभीमभुजगी-
सहस्रैराकीर्णस्तिमिरपटलीभीषणतरः ।
अतिक्रान्तः कान्ताः कथमिव तदप्यस्तु कुलजा
रसज्ञा दुर्वाचां विषजलनिधिर्नैव सुतरः ॥ ३ ॥
अनैकान्त्यं याताः कथमिव वतागारपतिभि-
र्यतो दासीदासद्रविणसुतसंबन्धकुशलम् ॥
इतीदं युष्माकं क इव पुरुषः शंसतु गुणान्
समाख्यातुं यत्राहमपि लघुशक्तिः समभवम् ॥ ४ ॥
इदानीमप्यस्त्वक्षतकुलकथानां किमपि वः
कुलं वोढुं कालो व्रजत निगमान् पालयत भोः ॥
मुहूर्तं तु स्थित्वा मम सविध आभीरदयिताः
गुणैर्मुक्ता दोषान्तरिततनवो भास्यथ भुवि ॥ ५ ॥
कुलं शीलं दाक्ष्यं स्वजनविभवो गौरवगुणाः
स्वरूपाद्या मां वै वशयितुमलं नैव जगति ॥
परं त्वेकं प्रेम प्रभवति वशीकारविधये
ममात्यन्तक्षेमप्रवितरणदक्षस्य सुदृशः ॥ ६ ॥
तदेतेन प्रेम्णा सहजरमणीयेन सुदृशो
वशोऽहं युष्माकं कथयत भयं किंतु करवै
तथा कार्यं किन्तु प्रसरति कलङ्को न च यथा
कुलं वा नो भज्येन्न च भवति लज्जापगमनम् ॥ ७ ॥

अतो वो मद्वीक्ष्यावधिरयमजस्रं विलसतु
प्रियाः प्रेमाक्षेमाकर इति विमृश्यैव मनसि ॥
व्रजन्तु स्वस्थानं न पुनरिह मत्पार्श्वविषये
चिराय स्थातव्यं तदिदमपि बुध्या विमृशत ॥ ८ ॥

राकाहिमकरद्योतद्योतितां[1] रजनीमिमाम् ।
वीक्ष्यापसर्पततमां परपूरुषपार्श्वतः ॥ ९ ॥
स्त्रीणां हि निर्मितो धर्मो विधिनायं सनातनः ।
न वै यत् परपुंयोगप्रशंसा क्वचिदीक्ष्यते ॥१०॥

तदा वः प्रमदाः सत्यं मया दत्तो महान् वरः ।
भोगः स्वर्गापवर्गेषु यदिष्टं तत्तु गृह्यताम् ॥११॥
अहं राम इति ख्यातो रामास्त्रिभुवने नृणाम् ।
अकृष्टैः कर्मभिर्नूनं रमयामि यतो मनः ॥१२॥
न मदाचरितं कश्चिद् विगातुं क्षमते जनः ।
येन स्वस्यैव दोषेण तथा कुर्वन्नधो व्रजेत् ॥१३॥
एका च मे सहचरी सहजानन्दिनी प्रिया ।
तया निर्दिष्टविषये ममात्यावश्यकी कृतिः ॥१४॥

नूनं गच्छत सद्भार्या न च स्थातुमिहोचिताः ।
धवलं वः कुलं नो वा तदङ्कयितुमर्हथ ॥१५॥
अहमात्मात्मनां वामा यदि प्रियतमोऽस्मि वः ।
जने स्वपतिरूपे तन्निःशङ्कं रमत स्त्रियः ॥१६॥
असाधारणता वा चेन्मयि युष्माभिरीक्षिता ।
तदर्यनेनैव रूपेण सदा भावयताबलाः ॥१७॥
अतिमात्रमुदीक्ष्यापि रूपं मम मृगेक्षणाः ।
विहाय कामनां बाधां सुखं वर्तध्वमङ्गनाः ॥१८॥
जानामि मत्प्रणयिनामहं दुःखमयं तमः ।
तन्निरासाय सततं मुखचन्द्रं प्रदर्शये ॥१९॥

१—सन्ततां—रीवाँ ।

श्रुत्वा श्रोत्रपुटैश्चिरं रसनया संकीर्तनैश्चेतसा
ध्यानैः संपरिपाकमृच्छति मम प्रेम्णा प्रमेयातिगे ।
संप्राप्नोति ततश्च दर्शनसुखं जीवश्चिराद् दुर्लभं
तन्मात्रेण कृतार्थतामुपगतो नान्यत्र कुर्यात् स्पृहाम् ॥२०॥

अथ यान्यपतिस्पृहा स्त्रिया भुवने सा तु विनिन्दिता बुधैः ।
इति चेतसि संविमृश्य वः स्वपतिः सेव्यतमः परः पुमान् ॥२१॥
कल्याणमेष्यथ यथोदितधर्मकृत्याःसंत्यागतो मुदमवाप्स्यथ नो तदर्हाः[1] ।
लोकोत्तरामितगुणप्रकरास्पदानामेतावतालमुपदेशनिदेशनेन ॥२२॥

इति वो धर्मसर्वस्वं मया निगदितं मुहुः ।
सावधानतया ज्ञात्वा करिष्यथ यथोचितम् ॥२३॥
इति श्रुत्वा प्रभोर्वाक्यं सर्वास्ता व्रजयोषितः ।
गिरा निवर्तनं बुद्ध्या बभूवुः परमाकुलाः ॥२४॥
त्यक्तः साहजिको धर्मो यस्यार्थे लोक एव च ।
स चेत्त्यजेत् कमधुना शरणं याम पूरूषम् ॥२५॥

इत्थं विमृश्य सकलोद्यमसंघसारवैतथ्यसंजननजातमहार्तिमग्नाः ॥
सद्यो विनष्टनिखिलाशतया विवर्णन्यञ्चन्मुखा अतनुतापनिपातदेहाः॥२६॥
दावाग्निशीलननितान्तमहोष्णवातसंपत्तिभिः सुपुरुषश्वसनैः स्पृशन्त्यः ।
बिम्बोष्ठमात्तसुषमान्तरतापताम्यच्चित्ताः सुनिःसहतनूद्वहनः प्रसक्ताः ॥२७

एवं वुवीत[2] कथमेष न इष्टसंगः
प्राणप्रियः सखिवरः सुहृदात्मभूतः ।
इत्थं विचिन्त्य मुहुराहितशोकमङ्घ्रि-
जाङ्गुष्ठकोणकुटिला लिलिखुर्धरित्रीम् ॥२८॥

यच्चिन्तया किमपि नीतसमस्तयामाः
कामान्धकारपिहिताखिलबोधमार्गाः ।
तस्मिन् पराङ्मुखतया वदतीदमेवं
शून्याशयाः सकलगोपसुता बभूवुः ॥२९॥

---

१. गन्ता मुदं प्राप्स्यथ नो तदार्हा— रीवाँ। २. ब्रवीति—रीवाँ।

ऊचुः स्वरमणं सर्वा रामं कमललोचनम् ।
ज्ञात्वा पुरुषधौरेयं दुःखसंतारदायकम् ॥३०॥
यन्नो निदेशयसि वीरवरार्तिहर्तः स्निग्धास्त्वदेकविषयव्रतबन्धनद्धाः ।
बद्धाशयास्त्वयि चिरात्पुरुषप्रकाण्डे तत्ते विगर्हिततमं समुदारपाणे ॥३१॥
यदस्माभिः परित्यज्य त्वत्पादाब्जद्वयेऽर्पितम् ।
तच्चेतसापि न वयं प्रक्ष्यामो धर्मकोविद ॥३२॥
अपि या लौकिकी प्रीतिस्तस्या अपि जगत्प्रिय ।
त्वामेवास्पदमालोच्य प्रपन्नाः शरणं हरे ॥३३॥
ये त्वां विहाय सुहृदं परात्मानं परायणम् ।
इतरत्र हृदा रक्तास्ते जनाः स्म वयं न च ॥३४॥
यन्मूलमानन्दकदम्बकस्य विहाय यत्तुच्छमशेषमेव ।
यस्यांशतश्च स्पृहणीयमेव तमेव देवं स्म गतिं प्रपन्नाः ॥३५॥
त्यत्क्वापि दूरं स भवान् गतिर्नः सत्किङ्करीः स्वप्रणयानुविद्धाः ।
नित्यप्रपन्नाखिलपालनोत्थं प्राणं विहास्यत्यखिलान्तरात्मन् ॥३६॥
अथो इमाः स्वप्रणयागता नः कैङ्कर्यकर्मोद्यमनैकनिष्ठाः ।
आर्ता विशेषादवतो वतोच्चैर्यशस्तवातीव भवेद्बलिष्ठम् ॥३७॥
इत्यन्योन्यं नर्मसूक्तैर्मनोज्ञैराभाष्य गोप्यः स च गोकुलेन्दुः ।
रेमुर्निकुञ्जेषु कलाविशिष्टैः केलिप्रकारैः प्रणयप्रसक्तैः ॥३८॥
अनन्यधिषणा ज्ञात्वा कायेन मनसा गिरा ।
रामाः सभगवद्रामोऽदधद्वेषं मनोहरम् ॥३९॥
यावतीर्लौकिकीः क्रीडाः कामिनीनां च कामिनः ।
ताः सर्वा अभवंस्तत्र शृङ्गारपरिपोषिकाः ॥४०॥
विलोचनैर्निर्निमेषैरीक्ष्यमाणः प्रियाननम् ।
विसस्मरुर्विरहजं तापं ता व्रजयोषितः ॥४१॥
समवर्धतमाधुर्यसागरः सहजापतेः ।
सकामनेव चात्मानं दर्शयन् व्रजसुभ्रुवाम् ॥४२॥
पूरयामास स प्रेयान् कामकेलिरसस्पृहाम् ।
तासां वदनपद्मानि चञ्चरीक इव प्रियः ॥४३॥

अपिबद्रूपमाधुर्यमकरन्दरसग्रहः ।
कपोलयोश्चिबुकयोरधरे नेत्रयोः पृथक् ॥४४॥
अचुम्बदानन्दनिधिर्धन्या आभीरकन्यकाः ।
आलिङ्गन्त्यो मुमुदिरे लताः कल्पतरुं यथा ॥४५॥
श्रीरामस्याङ्गसंस्पर्शादानन्दामृतसागरे ।
ममज्जुः सकला वामा अर्द्धोन्मीलितलोचनाः ॥४६॥
एवमानन्दिताः कान्ताः प्रियेणामृतकेलिनीः ।
यथान्योन्यं जहुः क्लेशं सापत्न्यामर्षसंभवम् ॥४७॥
विरेजिरे विविधविलासशालिनीः प्रियाङ्कगा व्रजवरवामलोचनाः ।
लसत्सुधाजलधरमध्यसंगता यथाद्भुतास्तडित उदित्वरा त्विषः ॥४८॥
प्रियस्य पाणिद्वितयेन योषितो निजं समायोज्य करद्वयं पुरः ।
भ्रमन्त्य आसादितकेलिसंभ्रमा बभुर्यथाम्रैश्चपलाः सुलालिताः ॥४९॥
क्रीडत्य उच्चैर्दयितस्य संगमे व्रजाङ्गनाः प्रेममनोभवेरिताः ।
मञ्जीरनादेन निकुञ्जवीथिका उद्घोषयामासुरिवात्तजागराः ॥५०॥
ताः कुञ्जमन्दारलताकदम्बकाद्विकासिपुष्पाण्यवचीय योषितः ।
विभूषयामासुरनङ्गजित्वरं प्रत्यङ्गमानन्दितमात्मनः प्रियम् ॥५१॥
उष्णीषकञ्चुकपटीकटिबन्धनाद्यैः प्रेष्यैर्यथोचितमशेषवपुःस्थलेषु ।
संभूषितः प्रियतमो विबभौ[1] विशेषान्मूर्तो वसन्त इव पुष्पमयः सुगन्धिः ॥५२॥
राकानिशाकरकरप्रकरोज्ज्वलायां रात्रौ कृतातिशयितस्मरकेलिरेषः ।
पुष्पावतंसकलितः शुशुभे शुभाङ्कच्छत्रं वहन्निव मनोभव एकराज्यः ॥५३॥
प्रियोऽपि भूषयामास प्रेमवश्यमना वधूः ।
अपचीय प्रसूनानि लताभ्यो ललितानि सः ॥५४॥
पादाङ्गुल्याभरणरसनादाममञ्जीरहार-
स्रक्ताटङ्काङ्गदवलयिता कङ्कणोत्तंसकाद्यैः ।
प्रत्यङ्गं ताः किमपि रचनावद्भिराकल्पवृन्दै—
राभूष्यासौ सपदि कृतवान् कुञ्जसंफुल्लमल्लीः ॥५५॥

---

१. विभवैः—रीवाँ ।

लतिकाभूरुहांश्चैव विपुष्पीकृत्य कामुकः ।
कामिनीः पुष्पिताश्चक्रे चित्रं प्रेम्णो गुणाढ्यता ॥५६॥

अन्योन्यालापसंदर्शनवलनमुखासक्तिदृक्चुम्बनाद्यैः
जातः केलिप्रकर्षो मदनमदमनुज्जृम्भितानां प्रियाणाम्[1]
येन प्राग्भूरिभुक्तौ विरहभवसमुत्तापसंदोह आसां
प्रत्यस्तो वल्लरीणामिव घनसमये ग्रीष्मकालीन ऊष्मा ॥५७॥
ददान आनन्दममेय[2]मन्तः कुर्वाण उच्चैर्विविधाः सुकेलीः ।
ततोऽपि न श्रान्तिलवं प्रयातो मेने स ताभिः पुरुषप्रकाण्डः ॥५८॥
यावन्तो वै कामशास्त्रे प्रकाराः केलीनां ते तत्क्षणे प्रादुरासुः ।
माधुर्याब्धौ चातुरीपुञ्जपात्रे तस्मिन् क्रीडत्यङ्गनामौलिरत्नैः ॥५९॥
चन्द्रश्चान्द्रीचन्द्रिकाचन्दनद्रुस्पर्शी वायुर्मल्लिकानां विकासाः ।
उद्वेलन्तः सारवाम्भस्तरङ्गा जातोल्लासाः कैरवाणां कलापाः ॥६०॥
एकैकस्य श्रीर्महत्याविरासीत् कालस्याज्ञामाधिदैवस्य लब्ध्वा ।
सर्वस्येशे सर्वसंपन्निधाने तस्मिन् कुर्वत्यात्मवर्गेण केलीम् ॥६१॥

एवं तास्तेन कान्तेन रममाणा रमान्विताः ।
रूपसौभाग्यवर्गेण पूर्णा आसन् मृगीदृशः ॥६२॥
ततश्च भगवान् रामः प्रिया सौभाग्यरञ्जितः ।
दिदर्शयिषुरासान्तः क्रीडन्नेव तिरोदधौ ॥६३॥

कस्याश्चिद्भुजसंपुटवर्त्ती, कस्याश्चित्करसक्तकराब्जः ।
कस्याश्चित्प्रिय उरसि शयानः कस्याश्चित्सविधस्थित एव ॥६४॥
कस्याश्चिन्मुखचुम्बनलग्नः कस्याश्चित्परिरम्भनिमग्नः ।
कस्याश्चिद्दर्शनरससक्तः कस्याश्चिद्वचनामृतरक्तः ॥६५॥
कस्याश्चित्कचगुम्फनकारी कस्याश्चिन्मुखदर्पणधारी ।
कस्याश्चिच्चन्दनरसरञ्जी कस्याश्चित्पदपावकसंगी ॥६६॥
कस्याश्चिन्मधुरोदकपायी कस्याश्चित्ताम्बूलकदायी ।
कस्याश्चित्कञ्चुकपरिधायी कस्याश्चिन्मणिहारनिधायी ॥६७॥

---

१. वधूनाम्—मथु० बड़ो० । २. °ममन्द°—मथु०, बड़ो० ।

कस्याश्चिद् बह्वनुनय[1]भाषी कस्याश्चित्कुसुमस्रग्भूषी ।
कस्याश्चिद्व्यजनैः श्रमनाशी कस्याश्चित्पदसंवाहनकृत् ॥६८॥
कस्याश्चिद्रशनागुणभञ्जी कस्याश्चित्परिचरणव्यञ्जी ।
कस्याश्चिन्निविडस्तनगञ्जी कस्याश्चिदवलोकनरञ्जी ॥६९॥
कस्याश्चिद्विरचितगुणगानः कस्याश्चिन्निर्मितपरिधानः ।
कस्याश्चित्परतोऽञ्चिततानः कस्याश्चित्कृतभूषणदानः ॥७०॥

कयापि च सह रतिकेलीं कुर्वन् कयापि चाक्षैर्निभृतं क्रीडन् ।
कयापि सह कुसुमान्यवचिन्वन् कयापि सह परिहासं तन्वन् ॥७१॥
कयापि हेलित इति परितप्यन् कयापि संक्ष्वेलित इति लुभ्यन् ।
कयापि मोहित इति संक्षुभ्यन् कयापि संस्तोभित इति मुह्यन् ॥७२॥

कामपि वक्षसि रहसि दधानः कामपि सस्मितमालपमानः ।
कामपि मानान्मोचयमानः कामपि हृदये शोचयमानः ॥७३॥
कामपि रूपमदादवगणितः कामपि किंचित्परुषं भणितः ।
कयापि खलु ताडितोऽब्जहनितः कथाप्युदस्तः पदयोः पतितः ॥७४॥

इत्थं सौभाग्यमत्ताभिः स्वेशः प्राकृतवन्मतः ।
ताभ्यः प्रियायाः सौभाग्यमभिव्यक्तुं तिरोदधे ॥७५॥
पश्यन्त्य एव सद्यस्तमपश्यन्त्यः सुलोचनाः ।
विस्मिता इव ता जाता विरहोत्तप्तविग्रहाः ॥७६॥
इतो भविष्यति प्रेयानितः खलु भविष्यति ।
इतो भविष्यति क्रीडन्नित्याशापाशकैश्चिताः ॥७७॥

पदोच्चैर्मानशब्देन नादात्प्रत्युत्तरं प्रियः ।
तदा गवेषयामासुर्वनादेत्य वनान्तरम् ॥७८॥
बभ्रमुर्विपिने वामा विचिन्वन्त्यो विशेषतः ।
प्रतिकुञ्जं द्रुमतलं प्रियान्वेषणकातराः ॥७९॥
वृक्षान् लतास्तथागुल्मान् भ्रमरीश्चैव कोकिलान् ।
पद्मानि सरसीश्चैव राजहंसान् तदङ्गनाः ॥८०॥

---

१. बहुनूपुर—रीवाँ ।

वनानि खं मरुत्वन्तं तेजस्तोमं वसुन्धराः ।
पृच्छन्त्यः परितः कान्तं मृगयन्त्योऽपि गोपिकाः ॥८१॥
न लेभिरे यदा स्वेष्टं सखायं सुहृदं च तम् ।
आत्मनः प्राणदयितं तदा स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥८२॥

जय जय जय पारेपरार्द्धं पञ्चशरावतारिन् निरवधिमधुरिमोद्रेक-वशीकृतत्रिभुवनजनमानसमहामहोमहिममनोमोहन मानिनीमाननिरासन भ्रूशरासनप्रयुक्तलोचनविशिखनिर्भिन्नमनस्वितमुकुलजावधूमनोधैर्य कठिन-तरसंनाह परस्तादकाण्डविरहवेदनासंवर्द्धनवदनावलोकलज्जावतीलोचन-लज्जालवलोपन लावण्यभवन[1] मधुराधरसुधारससंदोहसुहितसमुद्दृप्त-दुर्वंशजधृतानेकविवरवंशिकाकलितकलकाकलीकलाकुलितारिबलकुलका-मिनीकलापललितमुखचन्द्र मञ्जुलस्मितलवकवलिताबलाजनहृदयमहो-दार दयासिन्धो दीनजनैकबन्धो[2] निजचरणकमलपरागपूरपरिपूतप्रमोद-वनवसुधाविलुण्ठदनेकगीर्वाणवरवितीर्णविपुलाभय प्रभो ॥८३॥

सकलगुणग्रामाभिराम सुभगाभीरकुलजलधिविवर्द्धनकुमुदबन्धो मुदिताखिलजनलोचनचकोर परमानन्दसुधाधारासारनवाम्बुवाह प्रियतम प्राणजीवन स्वेष्टसुहृत् सखे सकलमङ्गलालय माङ्गल्यालय नीलमणे जगज्जनदुःखजालमहातमोभिदजागरूक श्रीविग्रह नमस्तव शरणागत-जनतावनगृहीतव्रताभ्यां स्वभावारुणाभ्यां चरणाभ्याम् ॥८४॥

अपि च पूर्वमेव रक्षिताः स्म समस्तव्रजजनैः सह कुपितेन्द्रनिर्मुक्त-प्रलयपयोधरप्रबलशंबरासारसहाशनिसंपातभीत्यकाण्डज्वलदुज्ज्वलज्वाला-जालजटिलशुष्काटवीहुताशमहाहिगरसंचारजमहाविपदादिमहद्विपद्भ्यः परमदारुणाच्च निजविप्रयोगसमुद्भवप्रलयकालानलात् किं पुनरपि वित-नोषि तादृशमेव निजान्तर्द्धि[3]विवर्द्धमानमतिदुःसहमनलं वियोग-नामानम् ॥८५॥

---

१. लावण्यमधुधुरा°—रीवाँ । २. निजजनैकबन्धो—इत्यधिकं—रीवाँ ।
३. °न्तर्हित—मथु० बड़ो० ।

अपण्यदास्यश्चैवं तव संयोगपरमाह्लादभरेण विस्मृतात्मस्वरूपास्त्वयैव लोकोत्तरनिरवधिसंपदालयेन वितीर्णपरमतममदःसौभाग्यमासादितवत्यो मदाविष्टमानसाः स्म जाताः तदेव निदानमीदृग्गवेषणयाप्यलब्धमधुरमन्दहासोन्मीलितप्रमोदमहोदारमुखचन्द्रावलोकस्य तव विरहविततवेदनार्णवस्य ॥८६॥

अहो निःसीमतपःसंकलनतत्पराणां मुनीनामप्यन्तःकरण एव स्वात्मानं प्रकाशयसि न वा क्व पुनरीश सकलकामफलभोगभोजयित्रीभिरिह केलिभिः परमकल्याणगुणप्रसूनभरभाजनत्रिभुवनसभाजनगोचररोचमानस्वरूपानन्ददानम् ॥८७॥

तद्यथा भूतपूर्वमेव करुणारसकलितं मनः कुर्वन्निजानन्यसामान्यमहौदार्यगाम्भीर्याद्यखिलस्वरूपानुबन्धितो गुणान् विमृशन् संलापयेथाः[1] परमावद्यशतमलीमसतमानपि निजविप्रयोगानलदन्दह्यमानमानसान् प्रणयमाधुरीपरीपाक[2]प्रकटितस्वसौभाग्यमदानपि स्वजनान् न खलु महाराजोऽप्यर्थिनामौचितीं चेतसि निधाय वितरति तद्योग्यताधिकतरमर्थं समर्थोऽसि च त्वमेवास्य निजमुखानवलोकनमहादारुणदारिद्र्यसंहरणे ॥८८॥

अहो कठिनतास्य हृदयदुराशयस्य यत् क्षणमपि शरत्समुदितसंपूर्णतुषारकरकोटिपराभवोद्धुरत्वन्मुखचन्द्रचन्द्रिकाचमनविधुरेऽपि लोचनचकोरद्वयेऽचिराच्छतधाविदीर्यामन्दमलयानिललहरीभिरुड्डीय त्वच्चरण[3]कमलपरागसराग[4]महीरजः कणैर्नैव मिलति त्वदुरःस्थलमण्डलमहामधुरमालोचितप्रसूनप्रसवसौभाग्यभाजनवनलता भूत्वा प्ररोढुमपेक्षतेषा[5] ॥८९॥

अये मनसिजमदहरणमहोद्धुरमाधुरीमहाम्बुराशे सहजसौभाग्यभाग्यभासितप्रभाषितभालपट्टप्रकटितमहोमहोदय मोदयतमां[6]त्वत्संगैककृतार्थताजुष इदानीमिहावस्थातुं[7] निःसहान् प्राणान् ॥९०॥

---

१. रसं पालयेथाः—रीवाँ। २. प्रणयमाधुरीपाक—रीवाँ, प्रणयपरीपाक—मथु० बड़ो०। ३. तव चरण°—मथु० बड़ो०। ४. परागमही°—रीवाँ। ५. "अपेक्षते" नास्ति—मथु० बड़ो०। ६. °महामोदपते नुगृहाण मां—रीवाँ। ७. इदानीमहमवस्थाति—मथु० बड़ो०।

प्रायः प्रेयसैवेदं कार्मणपांसुपटलमिव विस्तारितं प्रेम येन पुरःस्थमपि वस्तु विषयीकर्तुमशक्नुवतीनां नितान्तमारुण्यरोचनरुचिरञ्जिते गलदनर्गल-जलधाराधौतविमलवपुषां व्रजाभीरदारिकाणां लोचने शंतमस्तवालोकः परमकदर्थितदृक्कोरकानां नः पद्मिनीनामिव दिवसपरिवृढस्य ॥९१॥

अहो कृपाकन्दलिताशयोऽददाद् भवान् स्वमात्मानमपीश दुर्लभम् ।
वयं पुनः स्पष्ट[1]खलाशयाः स्त्रियो मदाविलास्त्वय्यपि वक्रतां दधुः ॥९२॥

क्वापीदृशः[2] पौरुषसारभूषणः स्वभावदुष्टे कुटिलेऽधमे जने ।
भवेदनन्यं हितमेव संदधन्महामहोदारगभीरमानसः ॥९३॥

जयामितप्रेमसुधामहोदधे जय प्रमोदाटविचारुचेष्टित ।
जय प्रपन्नाशयशर्मकृद्धरे जय प्रमोदाटविचन्द्र पाहि नः ॥९४॥

सुरा नराः किन्नरयक्षपन्नगा नगाः खगा मौनधराश्च योगिनः ।
रमन्ति ये त्वय्यतुलप्रमोदे तेनैव ते नाम जगत्सु कीर्तितम् ॥९५॥

गायन्ति ते नाम यशः सुराङ्गना नभोङ्गणे मङ्गलकारि पावनम् ।
विमानवर्येषु विभूषिताः स्थितास्तृणीकृतस्वामृतभोगभोजनाः ॥९६॥

वैमानिकानां हृदयानि कर्षता महत्तमो नाशयता जगत्त्रये ।
सुरापगातीर्थसहस्रपाविना भवच्चरित्रेण विभूषितो व्रजः ॥९७॥

विभूषितं ते वपुषा जगत्त्रयं महामहैश्वर्यमहोऽतिभास्वता ।
समूर्तिकन्दर्पसहस्रशोभिना महायशःसौरभसारशालिना ॥९८॥

तव प्रपत्तिः सकलार्तिहारिणी समस्तकल्याणकदम्बकारिणी ।
परन्त्वलभ्या भुवि सान्यसाधनैर्विना तवानुग्रहमीश मानिनाम् ॥९९॥

यावन्मदश्चेतसि संभृतो नृणां कुलस्वरूपाभिजनादिसंभवः ।
तावत्त्वमत्यन्तमिहासि दुर्लभो निष्किञ्चनानां प्रणयैकगोचरः ॥१००॥

व्रजाधिहन्ता प्रमुदाटवीविधुर्माङ्गल्यकाभागनिधिर्भवान् प्रभो ।
स्वविप्रयोगाद्विधुरस्य कामिनीजनस्य दैन्यं दल इन्दिरापते ॥१०१॥

येषां त्वमानन्दनिधे समीपगो दुःखान्तकृद्दर्शनदानकोविदः ।
तेषां नृणां प्राग्भवभूरितन्त्रितं न शक्यतेऽद्धा सुकृतं निरूपितम् ॥१०२॥

---

१. सृष्ट°—रीवाँ । २. क ईदृशः—मथु०, बड़ो० ।

नमो नमो दीनजनावनात्मने नमो नमः स्वाश्रितदैत्यनाशिने ।
नमो नमः स्वाभयदानकर्मणि स्फुटान्तदीक्षाय विभो तवाङ्घ्रये ॥१०३॥

इति तास्तोष्टुवन्त्यस्तं विवृद्धविरहापदः ।
तथाप्यलब्धदृशयो रुरुदुः करुणं स्त्रियः ॥१०४॥
अथ तासां प्रभूतार्तिनाशनाय सतां पतिः ।
आविरासीत् स्मेरमुखः प्रमोदवनचन्द्रमाः ॥१०५॥
ताः स्थिताः सरयूतीरप्रभूतवनगह्वरे ।
दृष्ट्वैव तं समुत्तस्थुः सद्यः प्राप्ताः सुजीवनाः ॥१०६॥
वामतः सहजानन्दा दक्षिणे श्यामसुन्दरी ।
उभे अपि प्रिये शश्वत् सर्वसंदोहसेविते ॥१०७॥
बिभ्राणः परमोदारस्मितसौन्दर्यशोभितः ।
उभयोरपि दाक्षिण्यान्मनोरञ्जनपण्डितः ॥१०८॥
वामपार्श्वस्थितां वामां दृष्टिदानेन मोदयन् ।
दक्षिणस्थां तु हस्ताब्जव्यापारैर्विकलाशयाम् ॥१०९॥
करेणैकेन सततं लीलाकमलकोरकम् ।
भ्रामयन् मुखचन्द्रेण द्योतयन् सकला दिशः ॥११०॥
कटौ सुकाञ्चिकां[1] विभ्रन्नानारत्नविचित्रिताम् ।
उच्चैः पीताम्बरं विभ्रदंसयोरा[2]ततं शुभम् ॥१११॥
महार्हरत्नप्रत्युप्तकेकिपिच्छावतंसभृत् ।
असावसक्तरुचिरप्रियादक्षिणबाहुकः ॥११२॥
नवीनोल्लाससंशोभि पुण्डरीकविलोचनः ।
कल्याणगुणसंदोही मन्दिरामन्दविग्रहः ॥११३॥
माणिक्यवर्यसुभ्राज[3]न्नासापुटमनोहरः ।
अनर्घ्यरत्नरसनाचारुकेसरिमध्यकः ॥११४॥
भूषामुकुटविद्योतध्वस्तकुञ्जतमोभरः ।
लसत्कौस्तुभरत्नाढ्यकण्ठग्रीवविराजितः ॥११५॥

---

१. सुकछिनीं—मथु०, बड़ो० । २. °द्वंश्याधारा—रीवाँ । ३. मणिवर्यसुत्रि भ्राज°—मथु० बड़ो० ।

प्रसादसुमुखो देवो युगपत्ताभिरीक्षितः ।
उत्थानस्वागतार्हाभिः संभाव्य प्राणजीवनम् ॥११६॥
आनन्दविकचैरक्षिकमलैः पर्यपूजयन् ।
आतस्तरुः प्रियायास्मै सोत्तरीयासनानि ताः ॥११७॥
रञ्जितानि सुगन्धीनि कुचकाश्मीरकर्दमैः ।
आवृत्य च स्थिताः सर्वास्तारा इव कलानिधिम् ॥११८॥
वैदूर्यमिव रत्नानि तमालं स्वर्णवीरुधः ।
भक्तिस्वरूपसिद्धान्तप्रश्नाक्षरनिरूपणैः
अन्योन्यं समभूत्तत्र समालापः सुखावहः ॥११९॥

गोप्य ऊचुः

विहाय लोभं दम्भं च भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
कच्चित्प्रसीदसि न वा वदस्वैतद्विनिर्णयम् ॥१२०॥

श्रीभगवानुवाच

शुद्धमिश्रविभेदेन भजनं द्विविधं मम ।
त्रिविधं मिश्रमाख्यातं ज्ञानोपासनकर्मभिः ॥१२१॥
शुद्धमेकविधं प्रोक्तमित्थं भक्तिविनिर्णयः ।
ज्ञानमुख्यं तु भजनमङ्ग ज्ञानस्य मुख्यता ॥१२२॥
भवेत्तद्वान्ममात्मैव नात्र कार्या विचारणा ।
उपासनामपि तथा भजनेनैव साधयेत् ॥१२३॥
तया संस्तुतचित्तस्तु ज्ञानमेवाधिगच्छति ।
तथा कर्मापि भजनात् साङ्गं कुर्वन्ति केचन ॥१२४॥
तेषामुपासनार्थाय कर्मैव भवति स्फुटम् ।
सर्वत्र पञ्चधा मुक्तिः फलं भवति गोपिकाः ॥१२५॥
मया सह तु यो भोगः सर्वकामफलात्मकः ।
संशुद्धभजनेनैव प्राप्यते व्रजयोषितः ॥१२६॥
मत्स्वरूपान्यथाप्रेक्षा[1] वर्जितः प्रणयोर्जितः ।
भजनात्मा महान् योगः स लभ्यः कृपया मम ॥१२७॥

---

१. °रूपेतरापेक्षा°—मथु० बड़ो० ।

अथवा भवतीनां वै प्रसादात्सुलभो भवेत् ।
साधनानि तु सर्वाणि यत्र पूर्त्ति व्रजन्ति हि ॥१२८॥
अथ युष्माकमाकूतं सख्यो विदितमेव मे ।
भवत्यः खलु मन्निष्ठा[1] भजन्त्यो मां दृढव्रताः ॥१२९॥
भवतीनां प्रियो नित्यं तेनाहं संस्थितो वशे ।
अथ प्रत्युपकाराय नालमस्मि चराचरे ॥१३०॥
तेनोपढौकितः सख्यः स्वात्मैव सुचिरं मया ।
अनेन विहरिष्यध्वं मृत्युमूर्द्धपदाब्जकाः[2] ॥१३१॥
एवमन्योऽपि चेत् कश्चिन्मां भजेन्मृगलोचनाः ।
तस्याप्यहं स्वमात्मानं दास्ये नैवात्र संशयः ॥१३२॥
सर्वात्मभावयुक्तेन प्रेम्णा तेन व्रजाङ्गनाः ।
अमूल्यक्रीत एवाहं युष्माकं करयोः स्थितः ॥१३३॥
परमात्मैकलभ्यत्वमात्मनो व्यञ्जयन्नहम् ।
तिरोहितेन रूपेण युष्माकं प्रेम दृष्टवान् ॥१३४॥
[3]अहो हि सख्यो युष्माकमार्त्तिरेषा वियोगजा ।
स्पृष्ट्वा ममापि चात्मानं स्थानस्थितमचालयत्[3] ॥१३५॥

गोप्य ऊचुः

क्व ते स्थानं सुनिहितं सुखितेन्द्रकुमारक ।
इति वेदितुमिच्छामः कथयस्व कृपानिधे ॥१३६॥

भगवानुवाच

यत्र मत्प्रेमनिरता मम दासा मदात्मकाः ।
भजन्ते मां परं वेद्यं तत्र नित्यं वसाम्यहम् ॥१३७॥
शृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च परस्परहितैषिणः ।
स्मरन्ति यत्र मां भक्तास्तुष्यन्ति प्रीतमानसाः ॥१३८॥
तत्राहं सततं सख्यस्तिष्ठामि परया मुदा ।
सर्वात्मभावयुक्ताश्च सेवन्ते यत्र मां जनाः ॥१३९॥

---

१. खल्वतिक्लिष्टाः—मथु०, बड़ो० । २. कृत्वांघ्री मृत्युमूर्धनि—मथु०, बड़ो० । ३–३. नास्ति—रीवाँ ।

नाहं वैकुण्ठभवने तिष्ठामि सविधे श्रियः ।
मम स्थानं परं नित्यं प्रमोदविपिनं महत् ॥१४०॥
इति ज्ञात्वा भजत मां मुदा सर्वात्मभावतः ।
अहमेव फलं धन्याः सर्वभोगसुखाय वः ॥१४१॥

ततश्च भगवान् रामस्तास्तदा प्राणसंमिताः ।
आनिनाय स्वयं देवो विहर्तुं मण्डलोत्तमम् ॥१४२॥
तत्र सोमवटस्याधः कोटिसूर्येन्दुभासुरम् ।
पञ्चवर्णमहारत्नमणिमाणिक्यमण्डितम् ॥१४३॥

वटशाखान्तसंस्रावि सुधा संपातशीतलम् ।
प्रेमानन्दपदं नित्यं प्रेमसाम्राज्यभाजनम् ॥१४४॥
राकासुधाकरकरद्विगुणीकृतरोचिषम् ।
कुञ्जद्रुमलतागुल्मगोचरद्युतिदीपितम् ॥१४५॥

अनेकरत्नसंभ्राजत्कमलावलिभूषितम् ।
रचितानेकमाणिक्यचतुष्करुचिरद्युतिम् ॥१४६॥
अनेककुञ्जविटपिमञ्जरीकृतदीधितिम् ।
समन्ततः समुद्भासि गगनस्पृक्प्रभाभरम् ॥१४७॥
अक्षरानन्दमध्यस्थप्रेमानन्दरसालयः ।
भावानन्दमयं दिव्यनृत्यगीतादिसेवितम् ॥१४८॥
तत्रस्थः शुशुभे रामो दिव्यगोपीकदम्बगः ।
अलौकिकं परिप्राप्य नृपः सिंहासनं यथा ॥
प्रभावोत्साहकान्त्यादिसहजानन्तशक्तिभिः ॥१४९॥

रामस्योभयपार्श्वगे परमया कान्त्या स्फुरनयौ मुदा
देवी श्रीसहजेश्वरी परकला कृष्णाभिधे वल्लभे
रेजाते रसनायकस्य सविधे सौवर्णवैदुर्यभा-
संदोहाक्तमुदावली इव दृशोः कल्याणसंवर्धिके ॥१५०॥

तयोः सखिवरास्तत्र यथापूर्वं विराजिताः ।
शुशुभुर्मण्डलश्रेष्ठकान्तिसंदोहभूषिताः ॥१५१॥

अथ तत्र महारासः प्रवृत्तो मण्डलोत्तमे ।
रामस्य व्रजरामाणामन्योन्यस्य सुखावहः ॥१५२॥
कदाचित्सहजासार्द्धं कदाचित्कृष्णया सह ।
अनृत्यद्रामरसिकः शक्तिद्वयसुशोभितः ॥१५३॥
एकस्य नन्दिनी शक्तिः परा सा चित्कलात्मिका ।
उभाभ्यां सहितो रामो विरेजे रासमण्डले ॥१५४॥
कदाचित् सहजासख्यः स्वस्वामिन्या सहान्विताः ।
कदाचिद्रामसुन्दर्यः सख्यः स्वस्वामिनीयुताः ॥१५५॥
नरीनृत्यन्तेस्म रासे दर्शयन्त्यो विशेषतः ।
स्वस्वचातुर्यसंदर्भमन्योन्यं विजिगीषवः ॥१५६॥
कलासमूहेन विभूषिताङ्ग्यः स्त्रियः समस्ताः परिणाहिभासः ।
उत्साहयन्ति स्म मनः प्रियस्य तस्मिन् महारासरसप्रसङ्गे ॥१५७॥
प्रभाभिरामाः परिभूतकामाः पूर्णेन्दुधामान इव त्रियामाः ।
सुवर्णदामान इवातिभामा बभुः सरामा व्रजवासिरामाः ॥१५८॥
बभौ नवेन्दीवरदामकोमलः कलाविशेषात् सललामतां दधत् ।
प्रमोदकारी वनितासु वल्लभोऽमृतप्रवर्षीव लतासु वारिदः ॥१५९॥
नृत्यगीतादिजातीनां संगीतादिभिदाजुषाम् ।
यदाधिदैविकं रूपं तदाविरभवत्तदा ॥१६०॥
सार्द्धं रामविलासिना परमया प्रीत्या नटन्त्योऽबलाः
कन्दर्पोद्भवकर्तरूपसुषमासारा उदाराशयाः ।
नव्येनामृतवारिदेन सहिते व्योम्नि भ्रमन्त्यो यथा
विद्युदच्छश्रिया उदीर्णमहसो रासे विरेजुस्तराम् ॥१६१॥
तासां नूपुरमेखलावलयिकापादाङ्गुलीभूषणा-
ध्वानक्षुब्धरसाम्बुरासिलहरीसंदोहनादोपमः ।
रासः प्राङ्गणतः समुल्लसितवानाब्रह्म सद्मावधिः
प्राप्तः प्रेमबलात् समाधिमहरद्योगीश्वराणामपि ॥१६२॥
विहाय शम्भुर्वत योगनिद्रां चचाल योगात् स ततस्तदानीम् ।
तदङ्कगापर्वतराजपुत्री क्षुब्धाशयाभूद्रसमात्रवश्या ॥१६३॥

महेन्द्रलोके रसिकेन्द्रवंशीनिनादसौख्यातिमिते प्रजायते ।
पुलोमजावल्लभबाहुयन्त्रगताप्यतिक्षोभमवाप लौल्यात् ॥१६४॥

इत्थं सर्वपतिव्रताकुलमनःसंक्षोभलोलाधरे
श्रीमद्राममहारसेन्द्रमुरलीनादे तदा जाग्रति
शब्दाद्वैतमयानि यद्यपि जगन्त्यासुः परं त्रीण्यपि ।
स्वेच्छातः खलु सूक्ष्मदर्शनवता[1]मेवोपलम्भोऽभवत् ॥१६५॥

स्वर्णाद्रेरधिकन्दरं सुरमुनिश्रेष्ठाः सुसंविह्वलान्
ब्रह्मानन्दसमुद्रसान्द्रलहरीनिर्भग्नचित्ता अपि ।
सद्यः श्रीरघुवंशजस्य मुरलीनादं श्रवःसंपुटै-
राकर्ण्यामितविप्रयोगजननीं प्रेम्णो दशां लेभिरे ॥१६६॥

रसिकेन्द्रमनोज्ञवंशिकाध्वनिमाकर्ण्य गलत्समाधयः ।
सनकादिमहामुनीश्वरा विरहापद्गतचेतसोऽभवन् ॥१६७॥

अनृत्यन् नृत्यचतुरा अगायन् गानकोविदाः ।
आलापनिपुणाः कान्ता आलपन् रासमण्डले ॥१६८॥
चक्रुरुद्धटनं[2] काश्चित्तत्क्रियाकुशलाशयाः ।
रामस्तु सर्वनिपुणः सर्वं चक्रे क्रमागतम् ॥१६९॥

द्वयोर्द्वयोर्मध्यगतो विलासी रेजे प्रियास्कन्धगतोर्ध्वबाहुः ।
तास्त्वेकहस्तं दिवि नर्तयन्त्यः प्रियस्य नाभौ चलदन्यहस्ताः ॥१७०॥

इत्थं परस्पराबद्धबाहूनामन्तरे प्रियः ।
तडिद्द्वितयमध्यस्थो रेजे नीलघनो यथा ॥१७१॥
कदाचित्समसंख्येन स्वरूपेण विराजितः ।
मोदयामास सर्वास्ता दर्शितानन्यगामितः ॥१७२॥
दर्शनस्पर्शनालापचुम्बनालिङ्गनादिभिः ।
चक्रे रसिकशार्दूलः सर्वासां कामपूरणम् ॥१७३॥

अङ्घ्री मञ्जीरमञ्जुध्वनिकुशलतमौ नाटयन् भूप्रदेशे
प्रोद्भूतात्यद्भुतश्रीर्मदनमदभरं मर्दयन्नङ्घ्रिपातैः ।

---

१. दर्शनमुदा°—रीवाँ । २. °रुत्तरणं—रीवाँ ।

नासाभ्रूलोचनोष्ठावयवविचलनोदारचातुर्यमञ्छन्
किञ्चित्किञ्चिन्निषिञ्चन् युवतिजनमनोविप्रयोगौघपात्रम् ॥१७४॥

कोटीन्दुद्योतिकोटिद्युमणिरुचिलसत्केकिपिच्छावतंस-
च्छायामालोक्यनृत्यन्नमितगुणगणैर्भूरिगर्वायमाणः ।
पादन्यासाननेकांस्तदनु च बहुशो हस्तजांश्चैव तन्वन्
रामो रामाभिरामाकृतिरपि जगतां मोहयन् मानसानि ॥१७५॥

अखेलत् खेलनकलापण्डितो मण्डितोऽमरैः ।
खेचरीभिर्वीक्ष्यमाणः किशोरवरशेखरः ॥१७६॥

प्रोद्यन्मञ्जीरनादाः कटितटरसनालोलघण्टीनिनादाः ।
केयूरान्दोलनश्रीमधुर[1]भुजलताः कङ्कणाध्वानवत्यः ।
लीलालोलाल काली वलित मुखरुचः कोकिला काकलीभिः ।
कूजन्त्यः कण्ठदेशे कलविधुतिकलाभिर्नभो भूषयन्त्यः ॥१७७॥

पद्भिर्भूम्याक्रमणविधिषु प्रस्फुरद्भूरिभङ्ग्यो
हस्तैरुच्चावचगतिमतो हस्तकान्दर्शयन्त्यः ।
भ्रूदिग्भङ्गैः स्मितविलसितैर्भावकान् भावयन्त्यो
लीलालोलाञ्चलपटपरिव्यक्तवक्षोजशोभाः ॥१७८॥

नृत्यार्थोद्भावितबहुपरीवर्तनावर्तनाद्यै-
र्गत्युत्कर्षैस्त्रुटिमिव तनोर्मध्यभागे नयन्त्यः ।
गण्डाभोगप्रतिफलनगा[2]नर्घ्यताटङ्कशोभाः
शश्वन्नृत्यश्रमजलकणार्द्रीभवद्वक्त्र पद्माः ॥१७९॥

नृत्यादिष्टाः शिथिलितकचग्रन्थिशोभाविशेषाः
काञ्चीवस्त्रोद्ग्रथनविवशाःसंभ्रमेणालसाङ्ग्यः ।
स्निग्धस्वान्तप्रियतमभुजाक्रान्तिसत्कान्तिभाजः
काञ्चिल्लक्ष्मीं पुपुषुरबला रासचक्रान्तरस्थाः ॥१८०॥

स्वस्वलोचनवक्त्रभ्रूकरव्यापारभाजनम् ।
कुर्वन्त्यो रमणं रामाः स्वरमेव विजह्रिरे ॥१८१॥

---

१. °मदुर°-- रीवाँ । २. द्युतिफनभवा°—रीवाँ ।

कदाचिन्नाट्यसावेशा गानाविष्टा कदाचन ।
उभयोरप्यभावेऽभूद्रहःकेली परस्परम् ॥१८२॥
परस्याः क्रियमाणास्तानाज्ञाप्य परया स्त्रिया ।
स्वस्वाभिमतलाभेन सर्वा मत्तदृशोऽभवन् ॥१८३॥

तं तादृशं रतिपुषं पुरुषप्रकाण्डमासाद्य कान्तमतुलं व्रजवामनेत्राः ।
तद्बाहुदण्डसविशेषगृहीतकण्ठ्यः केलीकलाकुलितमत्तह्रदे विजह्रुः ॥१८४॥
अंसे स्थितः प्रियभुजः परतः कुचान्तं संसक्त आत्तकुटिलक्रमआतुरत्वात् ।
मर्मस्पृशि प्रकटितास्फुटकण्ठनादाश्चक्रेऽखिलामृगदृशः स्खलितोरुवीर्याः ॥
ताः कान्त संगमवशेन सुविह्वलाङ्ग्यः सन्नृत्यगीतभवदिष्टतयालसाश्च ।
संस्तम्भितुं ननु पदा स्ववपुर्नशेकुः पार्श्वस्थिते प्रियमतीव तदालिलिङ्गुः ॥

इत्थं सर्वा प्रिततमे भरं न्यस्य सुनिर्भरम् ।
स्वच्छन्दं गोदुहां दारा विजह्रुः श्रीप्रमुद्वने ॥१८७॥
दृष्ट्वा भगवतः केलीं महारासाभिधां नृप ।
चन्द्रमा लज्जितो भूत्वा रूपगर्वोपवर्जितः ॥१८८॥
आत्मानं चन्द्रसरसि न्यमज्जयदुदाशये ।
अनन्धकारितं वीक्ष्य सर्वे देवा नभस्तलम्[1] ॥१८९॥
आययुर्ब्रह्मणः पार्श्वे ब्रह्मा सर्वैः सुरैः सह ।
आययौ भगवान् यत्र गोपीभिः सह नृत्यति ॥१९०॥
दृष्ट्वा रघुपतेः केलीमानन्दरसनिर्भराम् ।
चन्द्रं च चन्द्रिकाश्चैव हृदयैरवमेनिरे ॥१९१॥
अथ स्नानसमायातगोपीपादाब्जसंगमम् ।
प्रसादं प्राप्य सहसा चन्द्रः स्वस्थो दिवङ्गतः ॥१९२॥
सर्वाश्चन्द्रसरस्तोयैः स्नात्वाभ्युक्ष्य परस्परम् ।
कृत्वा च पद्मकिञ्जल्कलीलाद्यैर्भूषणं तनौ ॥१९३॥

प्रातः प्रबोधसमये वनितावजस्य लग्नाशया यदधि[2]गन्तुमनीहमानाः ।
आमन्त्र्य रामरमणं सहजादि युक्तास्तस्याज्ञया स्वसदनाभिमुखा बभूवुः १९४

---

१. नभस्थलम्—रीवाँ । २. यदपि°—मथु०, बड़ो० ।

तासां वै गेहपतयो नाद्रुह्यन् किंचिदप्युत ।
जानन्त एव मनसि स्वस्वसंनिधिवर्तिनीः ॥१९५॥

राजोवाच

ध्रुवं समागता गोप्यो रामस्य खलु संनिधौ ।
कथं नु पतयोऽजानन् स्वस्वसंनिधिवर्तिनीः ॥१९६॥
एतन्मे ब्रूहि रामस्य सखे नूनं सुकण्ठ भोः ।
यत्रैश्वर्यगुणव्यक्तिर्जायते हृदये सताम् ॥१९७॥

सुकण्ठ उवाच

उक्तमेतत् पुरा तुभ्यं राजमौलिमणे मया ।
लीलाशक्तिः प्रभोरस्य मङ्गला सिद्धयोगिनी ॥१९८॥
दुर्घटं सुघटं कुर्याद्घटेताघटितं तथा ।
रामलीलाविनोदार्थं त्रैलोक्यमपि मोहयेत् ॥१९९॥
तया विमोहिताः किं किं नाभिपश्यन्ति जन्तवः ।
लीलानुकूलतां नित्यं संपादयति सा व्रजे ॥२००॥
तदर्थसिद्धयोगिन्याः सर्वे चाज्ञाकरा व्रजे ।
प्रियस्यापि प्रियायाश्च लीलापरिकरोऽखिलः ॥२०१॥
शक्त्यैव सिद्धयोगिन्या भवेत् संघटितो वने ।
अतस्ता एव ते जानन् स्वस्वसंनिधिवर्त्तिनीः ॥२०२॥
वनाधिदेवता देवी मङ्गला नाम संततम् ।
लीलार्हं कुरुते सैव प्रमोदवनमुत्तमम् ॥२०३॥
मङ्गला नाम देवीयं सर्वदा सिद्धयोगिनी ।
लीलाधिदेवतेशस्य त्रैलोक्यस्यापि मोहिनी ॥२०४॥
मङ्गलायै नमो नित्यं प्रमोदवनमङ्गले ।
नमस्ते रामरमणचित्तरञ्जनराशये ॥२०५॥
नमस्ते मङ्गलादेव्यै व्रजमण्डलमोहिनि ।
पूर्णमण्डलचन्द्रायै रामलीलैकशक्तये ॥२०६॥

---

१. °स्तयैव—मथु० बड़ो० ।

नमः श्रीसहजादेव्यै रामस्याह्लादशक्तये ।
नमः प्रेमरसानन्दरूपिण्यै रामभक्तये ॥२०७॥
नमो रामस्य चिच्छक्त्यै चेतयन्त्यै सतां मनः ।
कृष्णायै नीलरत्नाभश्रीविग्रहलसद्रुचे ॥२०८॥
नमः श्रीरामचन्द्राय लीलानन्दरसात्मने ।
प्रमोदवनचन्द्राय परब्रह्मस्वरूपिणे ॥२०९॥
नमो रासविलासादिलीलानन्दरसाब्धये ।
कोटिकामाभिरामाय रामाय रमणात्मने ॥२१०॥
इत्यष्टकं प्रातरुत्थाय राजन् पठेत् सदा प्रेमरसानुरक्तः ।
नेत्रे समुन्मील्य रसाम्बुराशेरानन्दलीलां पश्यति सद्य एव ॥२११॥
अलं कर्मायासैरलमलघुसायासतपसा[1]
अलं योगैः साङ्गै[2]रलमथ बहुज्ञानविभवैः ।
परप्रेमानन्दप्रसरपरिपूर्त्येकजनिकां
प्रभोर्लीलां ध्यायन् दलितभवबन्धो विजयते ॥२१२॥
इति ते सर्वमाख्यातं यथा रामो रसात्मकः ।
आदिव्रजे विहरति प्रेमाक्तैः स्वजनैः सह ॥२१३॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रायां आदिव्रजागमने त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सुकण्ठ उवाच

एकदा नारदो राजन् देवर्षिर्भक्तपुङ्गवः ।
सनत्कुमारस्य मुखादश्रौषीत् सहजेश्वरीम् ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

रामस्यातिप्रिया धन्या सहजानन्दिनी स्वयम् ।
आदिलक्ष्मीरसौ ज्ञेया भक्तिरूपा सनातनी ॥ २ ॥

---

१. सायासकतनैः—रीवाँ । २. तथैवालं योगैः—मथु० बड़ो० ।

तस्याः प्रसादमासाद्य यो नरो भजते तु ताम् ।
स रामभक्तिं लभते प्रेमाख्यां भवरूपिणीम् ॥ ३ ॥
नान्यथा लभते मर्त्यो दुर्लभां दैवतैरपि ।
रामभक्तिर्मुनिश्रेष्ठ कल्पकोटिशतैरपि ॥ ४ ॥
आदिव्रजे निवसति तत्रस्थान् संप्रपूजयन् ।
स एव तत्प्रसादस्य प्राप्तं भवति नेतरः ॥ ५ ॥

नारद उवाच

सहजानन्दिनी नाम कासौ रामस्य वल्लभा ।
वदैतस्याः समुत्पत्तिं भगवन् शृण्वतो मम ॥ ६ ॥
ततो धाम गुणान् वृत्तवृन्दं मे सर्वशो मुने ।
यस्याः प्रसादमासाद्य रामभक्तिं लभेज्जनः ॥ ७ ॥

सनत्कुमार उवाच

सा नित्या वल्लभा तस्य प्रेमानन्दमयी परा ।
अमुना भावरूपेण नित्यं रामे प्रतिष्ठिता ॥ ८ ॥
नामधामस्वरूपेण यथा रामस्तथैव सा ।
प्रमोदवनगा नित्यं रमते रमणान्विता ॥ ९ ॥
तथापि तस्याः संस्थानं रहस्यं कथयामि ते ।
यद् गोप्यं सर्ववेदेषु नाख्येयं यस्य कस्यचित् ॥१०॥
सर्वधामशिरोरत्नं प्रमोदवननामकम् ।
राजते रामवैकुण्ठं सहजायाः परं पदम् ॥११॥
ततश्च देवकार्यार्थं साकेतेऽसाववातरत् ।
आविर्भाव्य निजं धाम परं प्रमुदकाननम् ॥१२॥
अयोध्यां परितो देशश्चतुर्विंशतियोजनः ।
प्रमोदवनमुद्दिष्टं श्रीरामस्य परं पदम् ॥१३॥
आविर्भूतं प्रियं[1] रामं विज्ञाय सहजेश्वरी ।
अवातरत् स्वयमपि रसानन्दशरीरिणी ॥१४॥
सुखितो नाम गोपेन्द्रस्तद्गृहे राम उद्भवः ।
श्रीनन्दनस्य गोपस्य गृहे श्रीसहजेश्वरी ॥१५॥

---

१. परं—रीवाँ ।

परकीयारसप्रेमपुष्ट्यर्थमवतारिणी ।
विजहार प्रियेणैषा नित्यं प्रमुदकानने ॥१६॥
नित्या रसमयी लीलाः सहजारामयोर्जनः ।
गायन् शृण्वन् पठंश्चैव श्रावयन् विदुषांगणे ॥१७॥
ततः संजातया भक्त्या भवबन्धात् प्रमुच्यते ।
लभते तत्परिकरे कृपयान्तःप्रवेशनम् ॥१८॥
सहजानन्दिनी तत्र कोटिचन्द्र[1]समद्युतिः ।
श्रीरामलोचनद्वन्द्वचकोरद्वयतोषिणी ॥१९॥
कोटिकोटिसखीयूथतारकामध्यचन्द्रिका ।
नवयौवनसंपूर्णलावण्यरसवारिधिः ॥२०॥
परार्द्धरतिनिर्जैत्रमाधुर्यरसरञ्जिता ।
अपीच्यतमुरु[2]ग्रामकल्याणकुलमण्डिता ॥२१॥
महामहार्हवसनरत्नालङ्कारभूषिता ।
वनकेलिरतिक्रीडासमुत्कण्ठितमानसा ॥२२॥
सर्वानुभावभवना विभावनिवहात्मिका ।
परकीयारसप्रेमसामग्री साधनात्मिका ॥२३॥
दौर्लभ्यद्योतिनी नित्यं प्रेमशातौघ[3]वर्द्धिनी ।
नानाहावैश्च भावैश्च मनो मोदयतेऽस्य सा ॥२४॥
य एतस्या गुणांल्लोके शृणुयाद् रहसि स्थितः ।
तस्य तद्रूपतो नूनं रामभक्तिः प्रजायते ॥२५॥
सहजा सहजेत्येवं रामरामेति कीर्तयन् ।
मुच्यते भवबन्धेभ्यो महाकलुषतोऽपि च ॥२६॥
तस्मात्कीर्तयतां नित्यं नारद प्रीतिपूर्वकम् ।
क्वणयन् नाम वीणायां सद्यो निर्वृति[4]मेष्यसि ॥२७॥
इति श्रुत्वा तु देवर्षिः सहजादर्शनोत्सुकः ।
श्रीरामसहजास्थानमादिव्रजमुपाययौ ॥२८॥

---

१. इग्दु'—रीवाँ । २. °तनुरुचि°—रीवाँ । ३. यशोलोभ°—मथु०, बड़ो० ।
४. सधीर्निवृति°—रीवाँ ।

प्रमोदविपिनं पूर्णं सर्वर्तुसुखसंपदा ।
ददर्श तत्र विमलं पद्मखण्डविराजितम् ॥२९॥
सहजानन्दिनीचारुचरणाब्जरजोऽङ्कितम् ।
रामप्रेमोत्थविरहमज्जद्व्रजवधूजनम् ॥३०॥
हंससारसचक्राह्वकादम्बकुलनादितम् ।
रमणीयं सरस्तस्मिन् स्नातुकाम[1] उपागमत् ॥३१॥
तत्र यावन्निमज्यासावुदतिष्ठन्मुनीश्वरः ।
तावत्तत्राभवद्दिव्ययोषित् सौभाग्यशालिनी ॥३२॥
सञ्जातरूपसौन्दर्यगर्वाङ्कुरमनोहरा ।
ततो निःसृत्य सरसः स्त्रीवस्त्रं परिधाय च ॥३३॥
अपश्यद्रामलीलाभिर्व्याप्तं प्रमुदकाननम् ।
प्रमोदवनवातेन वीजिता साभवत्तथा ॥३४॥
अन्तःप्रेममयीं वृत्तिं दधती चकिताभवत् ।
क्वाहं कुतः समायाता क्व यास्यामीति विभ्रमात् ॥३५॥
नाशकद्धृदयं रोद्धुं न शशाक च तर्कितुम् ।
ततो रुरोद साक्रोशं सा वामतनुरुच्चकैः ॥३६॥
न किंचिज्जानती कर्तुमेकान्ते निर्जने वने ।
ततस्तस्मिन् वने काचित् सहजायाः सखीगणात् ॥३७॥
विनिर्मुक्ता सखी प्राप्ता पुष्पावचयकर्मणि ।
वर्तमाना सुवेषाढ्या वस्त्रालङ्कारभूषिता ॥३८॥
सा वीक्ष्य वामां रुदतीमेनां प्रोवाच सौहृदात् ।
किमर्थं वत रम्भोरु रोदिषीह प्रमुद्वने ॥३९॥
स्वयूथतः परिभ्रष्टा प्रायस्त्वं वामलोचने ।
मा रोदीस्त्वामहं तत्र प्रापयिष्यामि भीरुकाम् ॥४०॥
इत्थमाश्वासिता सा तामुवाच मुनिरूपिणी ।
अहं हि सहजारामदर्शनार्थं समत्सुका ॥४१॥

---

१. °कर्मा—रीवाँ ।

अतो मां प्रापय परं यत्र तौ संप्रतिष्ठितौ ।
ततः सा तां समादाय यूथेश्वर्यै न्यवेदयत् ॥४२॥
सापि चान्यां स्वयूथेशीं सा चान्यां सापि चेतराम् ।
एवं क्रमेण सा नीता भाग्येन च सुभक्तितः ॥४३॥
मुख्ययूथेश्वरीं श्यामां सहजायाः प्रियां सखीम् ।
सा तां दृष्ट्वाभिनव्याङ्गीं पप्रच्छ हृदि विस्मिता ॥४४॥
कासि त्वं वद वामोरु वसतिः क्व च ते पुरे ।
साब्रवीन्ननु मां विद्धि यां कांचिद् व्रजवासिनीम् ॥४५॥
सहजारामयोर्नूनं दर्शनार्थे समुत्सुकाम् ।
दर्शयिष्यसि चेत्त्वं तौ तदिष्टं मे करिष्यसि ॥४६॥
संस्थाप्य[1] द्वारि तां श्यामा महतः कुञ्जसद्मनः ।
अन्तर्गत्वा प्रभोरन्तस्त[2]दागममवेदयत् ॥४७॥
प्रवेश्यतामन्तरिति प्रभोराज्ञामवाप्य च ।
श्यामान्तः सप्तमीं कक्षामानिनाय ततस्तु सा ॥४८॥
कयाचिद्वेत्रधारिण्या निरुद्धाभिनवत्वतः ।
श्यामाब्रवीद्वेत्रहस्तामियमन्तः प्रवेश्यताम् ॥४९॥
आज्ञा श्रीरामचन्द्रस्य वेत्रहस्ताब्रवीत्ततः ।
इदं श्रीसहजादेव्याः कुञ्जसद्म मनोहरम् ॥५०॥
नात्र श्रीरामचन्द्रस्य स्वातन्त्र्यं सखि विद्यते ।
ततः श्यामाब्रवीद् गत्वा सहजारामयोरिमाम् ॥५१॥
रामः श्रीसहजावक्त्रं ददर्श करुणानिधिः ।
प्रियस्याभिप्रायतश्च सहजाज्ञापयत् सखीम् ॥५२॥
आनयस्वेह तां श्यामे प्रियस्याज्ञा गरीयसी ।
ततस्तामानिनायासौ मुनिं स्त्रीवेशधारिणम् ॥५३॥
तं तथावेशिनं दृष्ट्वा जहास सहजेश्वरी ।
वदनांशुच्छटाजालैर्द्योतयन्ती निकुञ्जकम् ॥५४॥

---

१. संशय्य—रीवाँ, २. प्रभोरन्ति तदा°—रीवाँ ।

ततः कौतूहलेनासौ पप्रच्छ कपटस्त्रियम् ।
कस्मिन् ग्रामे वसस्यद्धा[1] किं च ते नाम कामिनि ॥५५॥
ततस्तद्दर्शनोद्भूतप्राचीनस्मृतिमानयम् ।
अहं नारदसख्यस्मीत्येवमुत्तरमब्रवीत् ॥५६॥
ततः श्रीसहजादेवी प्रोवाच स्मितपूर्वकम् ।
दृश्यतां प्रिय नैतस्य मुनेरद्यापि निर्गतः ॥५७॥
पूर्वजन्मोत्थसंस्कारस्तन्नात्र स्थातुमर्हति ।
ततो रामः स्वयमपि स्मित्वा प्रोवाच नारदम् ॥५८॥
मुनिपुङ्गव यद्भक्तिप्रसादस्तेऽजनि स्फुटम् ।
यदत्र रहसि प्राप्तः परन्त्वद्यापि नो गता ॥५९॥
वासना पूर्वदेहोत्था तन्नात्र स्थातुमर्हसि ।
स्वनाम्नैवाङ्किते[2] कुण्डे प्रेमचर्यां चरन् रहः ॥६०॥
चिरं तिष्ठ व्रजजनपादपद्मरजो वहन् ।
ततः कालेन भविता संपूर्णस्ते मनोरथः ॥६१॥
इत्याज्ञप्तः स रामेण सख्या निःसारितस्ततः ।
स्थिते नारदकुण्डेऽत्र प्रेमचर्यामुपाश्रितः ॥६२॥
संदर्शनं तस्य कर्तुं भवानुपगमिष्यसि ।
तावदायाति गोपेन्द्रो गृहीत्वा भोज्यसंविधाम् ॥६३॥
ततो जगाम नृपतिर्नारदं द्रष्टुमानसः ।
परिवारगणैः साकं तीर्थयात्रासु निष्ठितः ॥६४॥
स्नात्वा नारदकुण्डस्य सुधास्वादुतमे जले ।
पीत्वा च पङ्कजश्रेणीपरागौघविचित्रितम् ॥६५॥
सस्त्रीकः परिवारेण सहितो नृपसत्तमः ।
महतीं मुदमापासौ तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥६६॥
स तत्तटमधिष्ठाय तिष्ठन्तं मुनिपुङ्गवम् ।
सर्वभक्तगणश्रेष्ठं ददर्श खलु नारदम् ॥६७॥

---

१. कस्मिंस्त्वं निवसस्यद्धा—रीवाँ । २. कृते—रीवाँ,

अग्रहीत् तस्य चरणौ प्रश्रयावनतो नृपः ।
भक्तराज इति ज्ञात्वा ननाम च मुहुर्मुहुः ॥६८॥

राजोवाच

अहो ते मुनिशार्दूल भाग्यं किं वर्ण्यते मया ।
यस्त्वं ददर्श तामाद्यामादिलक्ष्मीं रमापतेः ॥६९॥
प्रियेण संगतां सम्यग् रामेण प्रेयसानिशम् ।
तस्याः कृपाकटाक्षेण भक्तिस्ते नित्यमूर्जिता ॥७०॥
दर्शनात् तव भक्तस्य नृणां प्रेमाङ्कुरो भवेत् ।
अहोऽहं त्वां प्रपन्नोऽस्मि भक्तिलाभसमुत्सुकः ॥७१॥

नारद उवाच

अहो नृपतिशार्दूल किं पूजयसि मां वृथा ।
[1]कुत्र लब्धा मया भक्तिरस्य नित्यविलासिनः ॥७२॥
भवेज्जनः क एतस्य रामस्य स्नेहभाजनम् ।
तस्यानुग्रहतः किंचिद् भविष्यति किमद्भुतम् ॥७३॥

राजोवाच

विलोक्य रूपमेतस्य विनयप्रश्रयं तथा[1] ।
साक्षाद्भवति वात्सल्यं मम भूयो विवृद्धिमत् ॥७४॥
पश्चात्तु तस्य माहात्म्यं स्मारं स्मारं रमापतेः ।
सद्यो विनष्टवात्सल्यो भवामि मुनिसत्तम ॥७५॥

नारद उवाच

धन्योऽसि यस्य ते रामे जायते प्रेम वृद्धिमत् ।
माहात्म्यज्ञानमुचितं तस्य वै परमात्मनः ॥७६॥
नूनं नृपतिशार्दूल त्वयि भूयाननुग्रहः ।
यत्स्वं श्रीरामचन्द्रस्य चुचुम्ब मुखपङ्कजम् ॥७७॥
तस्य मूर्द्धन्युपाघ्राय समालिङ्ग्य च तद्वपुः ।
दूरादायान्तमालोक्य गृह्णसि स्वाङ्कमध्यतः ॥७८॥

१—१. नास्ति—रीवाँ ।

ईदृशोऽस्य सदा भावो ब्रह्मादीनां सुदुर्लभः ।
भावेऽस्मिन्नमृताम्भोधौ मग्नस्तिष्ठ चिरं नृप ॥७९॥
अपास्य सर्वमाहात्म्यमैश्वर्यो[1]द्भूतमद्भुतम् ।
पुत्रवात्सल्यभावेन रञ्जितो भव भूपते ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

ततो नत्वा मुनिश्रेष्ठं शिवकुण्डं गतो नृपः ।
तत्र स्नात्वा शिवोऽप्यास नारीरूपधरः क्षणात् ॥८१॥
ततोऽसौ योग्यतां प्राप्य सहजानन्दिनीसखीम् ।
रामं लीलारसोपेतं ददर्श तदनुग्रहात् ॥८२॥
तत्र स्नात्वा नृपो दत्त्वा विप्रेभ्यो बहुलं धनम् ।
मुदा परमया युक्तो भूयो मञ्जुवटं गतः ॥८३॥
सुकण्ठाद्या यत्र गोपाः प्रभोरेकान्तसेवकाः ।
आसते परमप्रेमपुलकाङ्कुरविग्रहाः ॥८४॥
तैरेव संगतो राजा परमानन्दनिर्भरः ।
पुनः श्रीरामचन्द्रस्य वार्तयन् विशदान् गुणान् ॥८५॥
यावदास मुहूर्तेन तावत्सुखित आगतः ।
सारवे विमले तोये कृतनित्यक्रियो बुधः ॥८६॥
गृहीत्वा भोज्यसंभारं प्रसादं श्रीरमापतेः ।
तेनासौ तर्पयामास राजानं परिवारकैः ॥८७॥
अन्तःपुरपरीवारं वाह्यांश्च नृपसेवकान् ।
कैकेयीं नृपतिं चैव तोषयामास गोपतिः ॥८७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रा-यामादिव्रजागमने एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३१॥

१—सीतापतेः—रीवाँ ।

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ मञ्जुवटच्छायामध्यास्य नृपसत्तमः ।
व्रजवासिकरानीतभोजनैस्तृप्तिमाचरत् ॥ १ ॥
सर्वैः परिकरैः सार्द्धं कैकेय्या सहितो नृपः ।
दधिभिश्चन्द्रसुस्निग्धैर्दुग्धैश्चावर्तितैर्मुहुः ॥ २ ॥
सिताक्तैस्तद्विकारैश्च तत्रान्नैः पायसादिभिः ।
प्रकारसंविधाभिश्च बभूव सुहितो भृशम् ॥ ३ ॥
उवाच नृपशार्दूलः सुखितं गोदुहां पतिम् ।
अहो मे नेदृशी तृप्तिः कदाचिदपि चाभवत् ॥ ४ ॥
राजभोगैरविरसैर्भोजनैश्च पृथग्विधैः ।
सोऽयं भवत्करस्यैव माहात्म्यं सुखिताधिप ॥ ५ ॥
यत्र श्रीरामरसिको मनस्तोषकरान् रसान् ।
भुञ्जानः सुहितो जातस्तत्रान्यस्य तु का कथा ॥ ६ ॥
माहात्म्यं सुखिताधीश देवानामपि दुर्लभम् ।
आस्वाद्य मम चित्तस्य जायते प्रीतिरद्भुता ॥ ७ ॥
अलौकिकं वतेदं नो भोजनं सुखितेश्वर ।
परमानन्दजननं मनःप्रीतिविवर्द्धनम् ॥ ८ ॥
अहो अपूर्वा सामग्री मनःप्रीतिविवर्द्धिनी ।
अहो वतैतच्चातुर्यं किमपि व्रजवासिनाम् ॥ ९ ॥
अहो आनन्दसंदोहो हृदये मेऽभिवर्द्धते ।
एवं प्रीतिं दधद्राजा बुभुजे व्रजमण्डले ॥१०॥
अथ वक्ष्यामि षट्त्रिंशच्छाकभेदान् हरिप्रियान् ।
यैः स्वयं सुहितो राजा प्रीतिमानभवद् व्रजे ॥११॥
भर्जितं च भडित्रं च राज्यात्तं मधुरान्वितम् ।
तथा चणकचूर्णाक्तक्वथिता वटकास्तथा ॥१२॥

तथैव पक्ववटिकाः क्वथिता मधुराम्लयोः ।
पर्पटास्तिलवट्यश्च कूष्माण्डवटिकास्तथा ॥१३॥
कर्चरीपत्रवटिका वटकाश्चन्द्रसेनकाः ।
तथा ते दधिमध्वक्तास्तथा शिखरिणीरसः ॥१४॥
शिखरिण्याश्च वटिका वासोन्ध्यावर्तितास्तथा ।
मलायी राजिका वोजी खण्डला द्विदलापि च ॥१५॥
आचारोद्गोलका[1]श्चैव लवणो मधुरोऽम्लकः ।
तथा सुखदकोलुञ्जी तथा कच्चटिकापि च ॥१६॥
तथा फलस्य वटका भ्रष्टक्वाथोदधिप्लवाः ।
काञ्जिका चापि माहेयं दुग्धमार्वाजितं तथा ॥१७॥
षट्त्रिंशदिति विख्याता व्यञ्जना रामसुप्रियाः ।
उक्ताः श्रीसहजादेव्या सुपचायै प्रियालये ॥१८॥
षट्पञ्चाशद्धरेर्भोगाः समाख्यातास्तु नामतः ।
भक्तं श्वेतं च पीतं च मिष्टमम्लावटीयुतम् ॥१९॥
दध्यक्तं पायसं रोटी वाटीस्थूली च पूरिका ।
कोचोटिका वेष्टानिका परिवेष्टाश्च मङ्कुकाः ॥२०॥
अपूपिका लुञ्चिकाश्च माल्यपूपास्तथैव च ।
आदर्शः स्थपटी माठा गुह्यकाः खाद्यकास्तथा ॥२१॥
तथा सार्करपाराश्च तथैव जलवल्लिकाः ।
सेवविन्दुकमुद्गालचुण्डमोहनलड्डुकाः ॥२२॥
शतपत्रं घृतवरं नवनीतवटास्तथा ।
तथा दधिवटाश्चारु कलिकाः फेणिकास्तथा ॥२३॥
तथैव क्षीरवटका दधिरोटास्तथैव च ।
पापची सीरिका चैव तथा मोहनथालकाः ॥२४॥
लम्पासिका च मिष्टाम्ला कंशारः खण्डमण्डलाः ।
कर्पूरनाडिका चैव तथा कर्पूरमञ्जरी ॥२५॥

---

१. आचारो झोलकश्चैव –रीवाँ ।

मेवातिका चक्रिका च शुष्कवटचुस्किरा तथा ।
समोषा स्वर्गमध्या च खर्जूराः पेटकास्तथा ॥२५॥
वटेली त्रिगिणी चैव तथा सौगन्धिकीति च ।
एते श्रीरामचन्द्रस्य प्रियभोगा रसावहाः ॥२७॥
श्रीमत्सहजया सख्यै सुपचायै प्रबोधिताः ।
तानास्वाद्य महाराजः प्रीतिमानभवद्धृदि ॥२८॥
व्रजवासिकरानीतैः श्रीरामस्य प्रियैस्तथा ।
फलैः प्रमोदवनजैः परां प्रीतिमवाप सः ॥२९॥
प्रीणयित्वा नृपं गोपः सर्वगोपजनैः सह ।
स्वयमप्यतुलं भोज्यं भोक्तुमाज्ञां गृहीतवान् ॥३०॥
तथा सुकण्ठनामानं श्रीमद्रामसखं नृपः ।
पुनः पप्रच्छ यत्किंचिद्गोपीनां स्नेहवृत्तकम् ॥३१॥
राज्ञा सदैव संयुक्तः सुकण्ठः प्रीतमानसः ।
उवाच स्नेहवाक्यानि गोपीनां रामगोचरे ॥३२॥

सुकण्ठ उवाच

यदि गाश्चारयित्वासौ सायमेति व्रजालयम् ।
तदा तद्विरहव्याप्ता ब्रुवन्तिस्म व्रजाङ्गनाः ॥३३॥

गोप्य ऊचुः

अयमेति सख्य द्रुत आदृताशयः स्निहिपुष्टिदक्षिणमनाः सुकामुकः ।
नयने निभालयत चापलान्विते लसता श्रिया किमपि पूरितान्तरे ॥३४॥
सुषमाभरेण किमपीव घूर्णिते मदनस्य मानदमनाय पण्डिते ।
न चकोरखञ्जनसरोजधोरणी तुलनामवाप्तुमुचितानयोः क्वचित् ॥३५॥
अयमङ्गनाजनमनोज्ञवृत्तकः क्वणयन्मुखेन मुरलीं यदालयः ।
किमपि प्रगायति रतिस्पृशो गुणान् वदत श्रुतिष्वयति कीदृशी दशा ॥३६॥
अनवेक्षितेक्षणपुरस्थवस्तवः स्थिरतन्व उत्तभितकर्णलोचनाः ।
हरिणाङ्गना अपि विहाय निर्भरं रतिमादृताः किमपि खल्वचिन्तयन् ॥२७॥
अयमुद्भ्रमद्भ्रुकुटिलायतेक्षणो मुकुलीकृताननविधुस्त्रिभङ्गधृक् ।
अपि वामबाहुगतवामगण्डभृत् करयुग्मकाधरपुटस्थवंशिकाम् ॥३८॥

यदि सख्य आकलयति[1] स्वरामृतैर्हृदयस्य का वत दशा विलोक्यताम् ।
विरहार्णवे चिरतरं विमज्जति प्रसभोद्धृतं वहिरेति शून्यताम् ॥३९॥
वयमात्तकोटिकुसुमेषु माधुरीमदसंहृतिः सहजवेषविभ्रमैः ।
रमणो मनोज्ञमुरलीमुखं दधद् यदि सख्य एति विपिनाद् व्रजोन्मुखः ॥४०॥
कुलजागणो वत विहाय हृत्त्रपां सदनं च शीलमतनुस्पृहावशः ।
सहते हतेहजनजन्यनिन्दनं न तु कष्टमस्य विरहोद्भवं महत् ॥४१॥
अयमालयो विशति गोष्ठमण्डलीं यदि सस्मिताननविलोललोचनः ।
कलितत्रिभङ्गललिताकृतिः पथि क्वणयन् मुखेन मुरलीमहोद्धुरम् ॥४२॥
तदपास्य धामसुतभर्तृसौहृदं विरहातुरः किमपि धावति स्फुटम् ।
कुलजागणोऽपि कुलटोचितक्रियः क्वचनाम्बरं क्वचन भूषणं तनोः ॥४३॥
अयमेति धेनुखुरधूलिधोरणोपरिधूसरालकसुपिच्छमाल्यभृत् ।
यदि नर्तयन्[2] भृकुटिमङ्गनागणे मधुरस्मितं स्पृशति लोचनं ततः ॥४४॥
तदसौ तदा तु सुषमावलोकनो न किमप्यवैति परिमोहिताशयः ।
निमिषान्तरे नु शयनान्तरे लुठन् परिवर्तनैः क्षपयते निशां कथम् ॥४५॥
अयमेव देवगणसेविताङ्घ्रिकः कमलाविलासभवनोत्तमाकृतिः ।
यदि धूनयन् कुलकथां मृगीदृशामित आदधाति चरणौ स्वतोऽरुणौ ॥४६॥
तदमुष्य पश्यत गतिं किमालयो हृदयानि मार्दयति धैर्यवन्त्यपि ।
किमुताधिरोहयति मन्मथद्रुमं कुलकामिनीनिवहचित्रभूमिषु ॥४७॥
अयमीक्षणोपगतिरेति संमुखं मुखरीकृताधरगवंशिकाकरः ।
ध्रुवमालयो झगिति यर्हि लोचनैर्विनयन् मनस्वितमकामिनीमनः ॥४८॥
ननु तर्हि पश्यत सखीजनाङ्गनामनसो दशां विरहसिन्धुमज्जनः ।
मदमोहमूर्छितकशङ्किता भयश्रमदैन्यधैर्यमुखभावचित्रिता ॥४९॥
अयमुन्मुखो व्रजपुरस्य वर्तते वत पुष्पनिर्मितमनोज्ञभूषणः ।
मुरलीरवेण मदनप्रजागरं कलयन् प्रतिप्रमदमुच्चकैर्यदि ॥५०॥
तदमुष्यवक्त्रविधुदर्शनोद्भवैरमृताम्बुभिर्ज्वलितमात्मनो हृदि ।
शमयन्ति काश्चन वियोगपावकस्निहिसंगमद्विगुणकीलवर्द्धनम् ॥५१॥

---

१. सम्यगाकल°—रीवाँ । २. तेजयन्—रीवाँ ।

अयमागतो विशदवल्गुमोहनस्मितमाधुरीभिरभिपूरिताननः ।
यदि पश्यति प्रणयपूर्वमालयः किमु तर्हि वाच्यमदसीयवृत्तकम् ॥५२॥
स्वरतो हरिण्य इव मोहिताशयाः परितोऽभिवेष्ट्य ननु योषितः स्थिताः ।
सुखपूर्वकग्रहणयोग्यविग्रहाः स्थिरतामगुर्जनितचित्तविक्लवाः ॥५३॥
अयमालयः समुपयाति काननाद् यदि पुष्पवर्हगिरि[1]धातुचित्रितः ।
नटवर्यवेशकमनीयतां दधद्बुधवर्ण्यनूतनकिशोरतागुणः ॥५४॥
चकमेऽस्य काप्युरसि सज्जितुं दृढं तृषमेति कापि मुखमाशु चुम्बितुम् ।
स्वपितुं च कापि शयनेऽमुनालषद् पतितुं च कापि पदयोरचीकमत् ॥५५॥
अयमेकवीर उदयं दधद् भुवि प्रतिवासरं विरचयन् यशः सितम् ।
सुखितस्य धेनुपरिपालनव्रतो रिपुवर्गकालननिबद्धकक्षकः ॥५६॥
दिवसस्य संपरिणतौ विधुर्यथा दिनतापनाशनपटुः[2] समागतः ।
व्रजलोकमङ्गलनिधिर्व्रजेश्वरो व्रजमोहनो व्रजपतिर्व्रजाधिपः ॥५७॥
अयमाकुलीकुरुत आत्मनो रुचा रतिहेतुना स्मरपरार्द्धजैत्रिणाम् ।
त्रिदिवाङ्गनाजनवियोगवर्द्धनो भुवनोत्सवाकरचरित्रवर्द्धनः ॥५८॥
नटयत्यजस्रमबला वियोगिनीः प्रणयाख्यसूत्रसितशालिभञ्जिकाः ।
ग्रहतोऽङ्गणेऽङ्गणत आश्रिता गृहं विचरन्ति निःश्रमणिकाट्टदेहलीः ॥५९॥
अयमाश्रितावनविचक्षणोऽपि सन् विविधार्तिसंहरणपण्डितोऽपि सन् ।
अबलाजनं सखि वितीर्य चित्तभूषालहस्तयोः स्वयमुदासिताशयः ॥६०॥
नहि नः स खल्ववति तादृशीः सतीः पुरुविप्रयोग परमार्तिभागिनीः ।
अपि नास्य कीर्तिरतुलान्यथा भवत्यवनौ न चापि विगुणोऽस्य वर्द्धते ॥६१॥
अयमालयः परिगतौ दिनस्य चेदुपयन् व्रजं व्रजनरेन्द्रलालितः ।
निजलोचनान्तकलया निमन्त्रयत्यबलागणं निजनिकुञ्जकेलये ॥६२॥
तदिमाः[3]प्रतीत्य सकला अपि स्त्रियो निजगेहकार्यपटलानुबन्धनम् ।
सहसा विहाय दयितस्य तुष्टये ननु भूषयन्ति तनुमात्तविभ्रमाः ॥६३॥
अयमक्षिकोणगतिभिर्निमन्त्रिता व्रजसुभ्रुवः सुखयति प्रियोत्तमः ।
यदि तर्हि तास्तदनुचिन्तनावशाद्विवशाशया दधति पीडनं तनौ ॥६४॥

---

१. मुख्यवर्णिह°—रीवाँ । २. °यापनवटुः—मथु० बड़ो० । ३. त्रिदिशं—रीवाँ ।

करयोः पदे चरणयोः करद्वये कटिगं गले गलगं कटौ[1] न्यधुः ।
श्रवणे दिशन्ति नयनाञ्जनं दृशोरधरोचितद्युतिमलक्तकं दधुः ॥६५॥
अयि कान्त गाढमुरसि त्वमास्यतां नयनद्वयान्नविचलत्वमद्भुतः ।
अपि नो गृहाण विरहाब्धिमज्जनीः स्वकरावलम्बविधिना स्वभावतः ६६
यदपीश षोडश कलाः प्रदर्शयन् परिपूर्ण एव स भवान् विलोक्यते ।
तदपि स्त्रियः सुकुटिलाः कलानिधिं विकलं स्वभावभजनं विनान्यगुः॥६७॥

सुकण्ठ उवाच

इतिवर्णितरूपोऽयमाभीरवरदारकैः ।
विवेश गोष्ठं सायाह्ने पूर्णमाधुर्यमण्डितः ॥६८॥
गोदोहपात्रं करयोर्निधाय व्रजाङ्गना रामविलोकनोत्सुकाः ।
विगाढ सायं समयान्धकारसहायभाजः स्म विशन्ति गोष्ठम् ॥६९॥
तत्रान्योन्यं दिनजविरहोन्मोकसम्यक्प्रकाशं
स्निग्धालापेक्षणमिलनसंप्रश्नसंमाननाद्यैः ।
स्पर्शास्पर्शप्रभवकलनाचुम्बनालिङ्गनादयैः
कश्चित्केलीरस उदयते निर्जितानङ्गवाणः ॥७०॥
यावच्चित्ताभिलाषं व्रजवरवनिता गोष्ठभूषु प्रियेण
स्वच्छन्दं संविहृत्यामृतसमपयसा पूर्णपात्राणि हस्ते ।
बिभ्राणा ज्ञाततत्त्वा प्रणयिपरसखी जातनर्मेतिहासाः
स्वासोच्छ्वासानुलक्ष्यप्रचुरविहरणा आत्मधामानि जग्मुः ॥७१॥
य एतदानन्दनिधेः शृणोति सायं प्रवेशं विपिनाद्व्रजान्तः ।
निर्धूय सर्वान् हृदयस्य कामान् रामानुरागं समुपैति लोकः ॥७२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्राया-
मादिव्रजागमने द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३२॥

१. कटिमंडले च गलगण्डयोः—रीवाँ ।

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

भुक्तोत्थितस्तदा गोपराजः शेषं रमापतेः[1] ।
प्रसादतुलसीपत्रैर्मुखं संशोध्य दिव्यधीः ॥ १ ॥
आजगाम नृपश्रेष्ठं श्रीमन्मञ्जुतरोस्तले ।
वार्तयन्तं सुकण्ठेन रामसम्बधिनीः कथाः ॥ २ ॥

सुखित उवाच

कच्चिन्नृपतिशार्दूल श्रुतं सम्यक् सुकण्ठतः ।
कच्चित्तव मनस्यासीत् प्रसादः शृण्वतः परम् ॥३॥
अयं पुरुषवर्यस्य रामस्यामितकर्मणः ।
सखा सुहृद्रहस्येषु समक्षः सकलेष्वपि ॥ ४ ॥
या यास्तस्य शुभा लीलाः सतां गोपा सुपावनीः ।
वाह्याभ्यन्तरभेदेन वेदितास्ताः सुकण्ठकः ॥ ५ ॥
रहस्यविद्रामचन्द्रस्य लीलानां रसवेश्मनाम् ।
समुच्छलत्परप्रेमधारास्नपितचेतसाम् ॥ ६ ॥
यासां स्वरूपं विज्ञातुं ब्रह्माद्या अपि देवताः ।
नालं सहस्रवदनो यत्र शब्दोऽप्यमुह्यत ॥ ७ ॥
पारे वाङ्मनसं तस्य वृत्तमेकैकमद्भुतम् ।
आनन्दस्य पराकाष्ठा यत्र सम्यक् प्रतिष्ठिता ॥ ८ ॥
यस्मै कृपायति त्वेष दास्यन् स्वप्रेम दुर्लभम् ।
तस्य प्रकाशयत्यन्तर्लीलामानन्दरूपिणीम् ॥ ९ ॥

राजोवाच

सत्यमेतत्कथयसि गोपराज सतां भुवि ।
दुर्लभः प्रेमसम्बन्धो रामस्याद्भुतकर्मणः ॥१०॥

---

१. सीतापतेः—रीवाँ ।

धन्यास्ते तत्र यूयं प्रमुदवनलतापुष्पसौरभ्यसारै-
र्विष्टैर्घ्राणाध्वनीतस्तुलसिपरिमलैः शोधिताशेषदेहाः ।
लीलामानन्दरूपामनुभवयभवे भावुकैकान्तधाम्नो
रामेन्दोः सत्प्रमोदाटविविहृतिकलामण्डलाखण्डितस्य ॥११॥

भवतां ये च पार्श्वस्थाः प्रेमानन्दशरीरिणाम् ।
तेऽपि प्रेमकलाभाजो भवन्ति भुवि मानवाः ॥१२॥
अलौकिकी प्रेमवृद्धिः प्रमोदवनवासिनाम् ।
चन्दनानामिव तरून् गन्धः स्पृशति मानवान् ॥१३॥
कर्मोपास्तिज्ञानमार्गेषूत्तरोत्तरतः शुभे ।
सर्वेषां शुभकृत्प्रेम भवतामूर्जितं महत् ॥१४॥
भवतां भावपाथोब्धौ निमज्जति सतां मनः ।
प्रेमरत्नवरप्राप्तिहेतवे सुखहेतवे ॥१५॥
सुकण्ठस्य मुखोद्गीर्णं प्रेमचारित्रकं प्रभोः ।
श्रुत्वा गोपालराजाद्य मयि प्रेमाङ्कुरोऽभवत् ॥१६॥
त्वदादेशात् सुकण्ठो मे कृपयामास गोपते ।
रहस्यं रामचरितं चक्रे मत्कर्णगोचरम् ॥१७॥
शितिकण्ठादपि श्रेष्ठः सुकण्ठो रामवल्लभः ।
ब्रह्मानन्दादपि श्रेष्ठः प्रेमानन्दरसो ह्ययम् ॥१८॥
भावेनानुगृहीतोऽस्मि त्वया सुखितवित्तम ।
भवतां कृपया रामः स्वरूपं कलयिष्यति ॥१९॥
गोपलीलापरिकरे क्रीडन्तं विश्वसुन्दरम् ।
सर्वाङ्गणे स्थितं रामं कदा द्रक्ष्यामि चक्षुषा ॥२०॥
केकिपिच्छकृतोत्तंसं गुञ्जाहारविभूषणम् ।
लीलारसानन्दमयं रामं द्रक्ष्यामि वै कदा ॥२१॥
प्रमोदवनमध्यस्थं परं ब्रह्म रसात्मकम् ।
भक्तप्रेमानुरागेण प्रकाण्डं कलये कदा ॥२२॥
अपि भूयोऽपि मे ब्रूहि प्रमोदवनमध्यतः ।
धामानि रामचन्द्रस्य समाख्यातानि लीलया ॥२३॥

अतः परं यानि शुभानि लोके रामश्चरित्राणि चकार खेलन् ।
आख्याहि तानि प्रचुराणि विद्वद्वरेण्य गुण्यानि मनोरमाणि ॥२४॥
सुखिताधिप ऊचिवान् पुनः शृणु राजेन्द्र निगद्यते मया ।
चरितानि बहूनि सत्पतेर्व्रजभूम्यां वसतोऽत्र मद्गृहे ॥२५॥
बाल्यपौगण्डकैशोरेष्वाख्यातानि मया पुरा ।
शिष्टानि ते तथावोचत् सुकण्ठोऽत्र समागतः ॥२६॥
अन्यानि ते पुनर्वक्ष्ये यावत् साकेतमागतः ।
एकदाहं सिताष्टम्यां चण्डिकामर्चितुं गतः ॥२७॥
श्मसानस्थां श्यामलेशानीं साक्षान्महिषमर्दिनीम् ।
रात्रावुपोषितः स्नातः पूजयित्वा हरप्रियाम् ॥
चकार चोत्सवं तत्र गीतवाद्यपुरःसरम् ॥२८॥
तत्प्रीतये द्विजवरेभ्य उपागतेभ्यो
गाः स्वर्णरत्नवसनानि वितीर्य भूरि ।
अन्नानि पायसमुखानि च भोजयित्वा
हुत्वाधिवह्नि समदां बहु दक्षिणाश्च ॥२९॥
कुटुम्बं भोजयित्वा च दधिदुग्धफलादिभिः ।
शाकं गोपवरैस्तत्र निशीथात् परतः स्वयम् ॥३०॥
सुप्तं मां कश्चिदुरणः समागत्य पदेऽग्रसत् ।
तेन ग्रस्तपदः क्रोशन् प्रबुद्धोऽहं निशान्तरे ॥३१॥
दृष्ट्वा महाजगरमग्निशिखाप्रदीप्तनेत्रद्वयं प्रचलदुद्भटविस्फुलिङ्गम् ।
भीतोऽहमार्तकरुणारवपूर्णवक्त्रश्चुक्रोश तेन परितो ब्रजवासिनां गणः[1] ३२
स च तैर्हन्यमानोऽपि लोष्ठाश्मलकुटादिभिः ।
नामुञ्चन्मां ततो रामः स च स्वयमुपागमत् ॥३३॥
कृतमच्चरणग्रासं पदा स तमताडयत् ।
आराधितेन मुनिभिरहल्याशापहारिणा ॥३४॥
स्पृष्टमात्रः स तेनाङ्घ्रिकमलेन महानतिः ।
नीचां तां योनिमुत्सृज्य दिव्यं रूपमवाप ह ॥३५॥

---

१. °वासिनोऽगुः—मथु० बड़ो० ।

तमुवाच हसन् रामः कथं भोः कामसुन्दरः ।
कस्माच्चैतादृशीं योनिमापन्नः प्राणिभीषणीम् ॥३६॥
अब्रवीत् स तमानम्य नमस्ते पुरुषोत्तम ।
त्वदङ्घ्रिकमलोद्भूतप्रसादान्मोचितोऽस्म्यहम् ॥३७॥
अहल्या मोचिता येन स्वस्य प्रस्तरभावतः ।
भगीरथस्य सचिवः सर्पभावाच्च मोचितः ॥३८॥
तथान्यो दुष्टकालाहिः सारवे सलिले वसन् ।
मोचितो घोरसंसाराद् गरुड़ाच्चापि निर्भयः ॥३९॥
अन्ये च बहवः प्राप्तास्त्वामेव हि दयानिधे ।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा मोचिता घोरसंसृतेः ॥४०॥
तदेव तेऽङ्घ्रिकमलमतिमानसं व्यथाहरं कलिकलुषापहं मे[1] ।
महातुरस्येह ममोपकारं कृपावशात् समजनि भूरि भव्यदम् ॥४१॥

स्वभावस्ते नाथ त्रिभुवनमहाक्लेशहरणं
नृणां भूयः श्रेयोवितरणमहाव्यूहदलनम् ।
महामोहध्वंसोऽशुभविदलनं कालभयहृत्
कियानेष स्वामिन् तव मम समुद्धारणविधिः ॥४२॥
अहं चन्द्रमुखो नाम गन्धर्वप्रवरः प्रभो ।
व्योमयानं समारूढश्चचार विदिशो दिशः ॥४३॥
वनिताभिः सेव्यमानो माध्वीकग्रहणोन्मदः ।
रूपसौन्दर्यमत्तश्च कुलस्याभिजनोन्मदः ॥४४॥
क्वचिद्वै दत्तशर्माणमात्रेयं मुनिपुङ्गवम् ।
दिगम्बरतनुं वीक्ष्य स्वात्मारामं जहास ह ॥४५॥
तस्योपस्थमहं नग्नं विरूपतरदर्शनम् ।
लीलाकमलपत्रेण छादयामास दुर्मतिः ॥४६॥
समोपहसितः क्रोधाच्छशाप मुनिरात्मधीः ।
एवं कुटिलचित्तस्त्वं सार्पं वपुरुपैष्यसि ॥४७॥

---

१. भो—मथु०, बड़ो० ।

ज्ञात्वा प्रसादितश्चासावब्रवीत् करुणाकरः ।
श्रीरामचरणस्पर्शात् प्रकृतिं स्वामुपैष्यसि ॥४८॥
अनुग्रहः कृतस्तेन मुनिना शापकैतवात् ।
चराचरगुरुः साक्षाद्यतो दृष्टो भवानिह ॥४९॥
नमस्ते पुरुषाग्र्यायापौरुषप्रतिमौजसे ।
पुरुषार्थचतुष्कैकदायिने शुभदायिने ॥५०॥
अगाधबोधभवनमगाधानन्दसागरम् ।
लोकवत्केलिकैवल्यं त्वामहं शरणं गतः ॥५१॥

पारेपरार्द्धनवपञ्चशरावतारं श्रीमत्प्रमोदवनशारदपूर्णचन्द्रम् ।
आभीरिकानयनजीवनदानदक्षं नित्यं नमामि रघुवर्यं परं भवन्तम् ॥५२॥
त्वत्पादपद्मपरिरम्भणतो मयाप्तं स्वं रूपमीश रघुपुङ्गव नाधुनाहम् ।
यास्यामि पूर्ववदलंमदमन्धकारं त्वामेव भक्तिरसभावधरो भजिष्ये ॥५३॥
हित्वा विमानमुरुमानमनङ्गमत्ताः [1]विद्याधरीशतकभोगविमोहमूलम् ।
त्वामच्युतात्मगतिदायिनमेकमीशं सेवेय सैव भवतान्मतिरप्रमत्ता[1] ॥५४॥

इत्येवमप्यस्तु तवाधुना प्रभोरनुग्रहोऽनन्यजनैकसंमुखम् ।
त्वामेव सेवे रघुपुङ्गवाशिषं प्रपूरयाशेषवरप्रदानकृत् ॥५५॥
ब्राह्मं पदं प्राप्य विरञ्चिरीश्वर स्वामात्मनः क्षेमनिधिनिभालयम् ।
संसेवते कीर्तयते चतुर्भिःशस्यैः क्षणे विस्मरति क्वचिन्न सः ॥५६॥

असौ घोरस्वरूपोऽपि संसारविषभूरुहः ।
त्वामीश सेवमानानां विभाति गुणवन्नरः ॥५७॥
इति स्तुत्वा चिरं देवं वियोगभयकातरः ।
नत्वा नत्वा तदादिष्टो जगाम दिशमुत्तराम् ॥५८॥

अवाप्य हिमशैलस्य करा रत्नप्रदीपिताः ।
एकान्ततः समासीनश्चिन्तयामास तं प्रियम् ॥५९॥
तच्चिन्तनभरप्रेम परमाह्लादतुन्दिलम् ।
भक्तियोगमुपासीनस्तस्थौ त्यक्तपरिग्रहः ॥६०॥

१—१. नास्ति—रीवाँ ।

यस्य रामचरणाम्बुजातयोर्भाग्यतोऽजनि शुभंकरी रतिः ।
तस्य सर्वविषयानुशीलनं तुच्छवत्स्फुरति पूर्णचेतसः ॥६१॥
य इमां शृणुयाद्रामगुणकीर्तनगां कथाम् ।
सोऽपि मुच्येत संसारात् यथा चन्द्रमुखाह्वयः[1] ॥६२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रा-यामादिव्रजागमने त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३३॥

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सुखित उवाच

किमत्र दुर्लभं लोके प्रसन्ने निखिलेश्वरे ।
किञ्चापि दुर्लभं राजन्नु प्रसन्ने परे प्रभौ ॥ १ ॥
अथापरां प्रभोर्लीलां शृणु राजर्षिसत्तम ।
महौदार्यगुणो यस्यामुद्देशेन स्फुटीकृतः ॥ २ ॥
अस्ति वै सूरिशर्मेति द्विजो वै मिथिलापुरे ।
अयाचितोपपन्नेन प्राणान् संजीवयन् गृहे ॥ ३ ॥
दरिद्रो दुर्बलः श्रान्तो व्यवहाराक्षमोऽधनी ।
दिनस्य तुर्ये भुञ्जानो यथासंपन्नमेव सः ॥ ४ ॥
तस्येन्दिरावती नाम भार्या क्षुत्क्षामविग्रहा ।
सा चार्थानामसंबन्धाद्धास्यमाना कुटुम्बिभिः ॥ ५ ॥
तपस्विनी महोदारा यथासंपन्नमेव सा ।
अर्धं निवेद्य विप्राय तदर्धं पतिपुत्रयोः ॥ ६ ॥
शिष्टं स्वयं सदा भुङ्क्ते इति सा प्रतिवासरम् ।
कुर्वती विप्रभार्या सा निर्वाहं सुतपस्विनी ॥ ७ ॥

---

१. °मुखाद्विषः—रीवाँ ।

एवं तयोराचरतोः कन्या जाता विधेर्वशात् ।
दरिद्रस्य पितुः कन्या मास्तु कस्यापि वै विधे ॥ ८ ॥
इति प्रार्थयतोरेव कन्या सा निरुजा भवत् ।
कृतनामक्रिया सातु नाम्ना चन्द्रमती धृता ॥ ९ ॥
दिने दिने वर्द्धमाना बभौ परिणयोचिता ।
अथ चिन्तातुरा जाता माता तस्यास्तपस्विनी ॥१०॥

इन्दिरावत्युवाच

अतः परं किं कर्तव्यं जातासौ तनया मम ।
प्रबुद्धोद्वहनौचित्यं बिभ्रती सुस्मिताननां ॥११॥
दारिद्राया मम सुतां कः खलूद्वोढुमिच्छति ।
अतोऽस्या दुर्लभो भर्ता समुदाये द्विजन्मनाम् ॥१२॥
मिलितोऽपि स्वापतेयं[1] विना सर्वक्रियावहम् ।
योजनीयोऽनया सार्द्धं कथमुद्वाहकर्मणि ॥१३॥
क्रियया चापि शाकादिर्भोजनीयः कथं खलु ।
इतिचिन्ताप्रदग्धायां न किंचिदुपतिष्ठते ॥१४॥
येन सा पतिसंबन्धं कारणीया पतिम्वरा ।
अथैकदा महासार्थस्तदाश्रममुपेयिवान् ॥१५॥
मद्गृहाद् गच्छतां पूर्णकामानां धनिनां नृणाम् ।
याचकानां गुणवतां सूतमागधवन्दिनाम् ॥१६॥
विप्राणां वेदविदुषां श्रीरामोपगतश्रियाम् ।
आनन्दिनां वार्तयतां रामस्य शुभगान् गुणान् ॥१७॥

जना ऊचुः

अहो साक्षाद्रामो जयति सुरवृक्षः क्षितितले
वितन्वन् सर्वेभ्यः सकलमसकृद्वाञ्छितफलम् ।
मनस्तुष्टचा युक्तः कलयति समूहं सुमनसां
द्विजांस्तत्तच्छाखा समुदयसुसंस्थाश्च सुखयन् ॥१८॥

---

१. "स्वापतेयं = धनं" टि०—मथु०, बड़ो० ।

रामो दाता राम एवास्ति पाता
रामो नामैकोऽर्थिनां सोऽभिरामः ।
इन्द्रश्चन्द्रः सूर्य ईशः कुबेरो
रामस्यांशा रचिता वेधसैव ॥१९॥

चिदानन्दागारं भुवनभयहारं नतिकृता-
मपारं संसारं हरति सविकारं सनिरयम् ।
महामेघश्यामं सदयमभिरामं नयनयोः
प्रकामं स्वारामं विरमयत रामं निज हृदि ॥२०॥

रामश्चेत्सर्वचेतोरमणगुणगणैराढ्य आनन्दरूपः
साक्षात्संसेवितस्तर्ह्यपरनृपतिभिः सेवितैः किं खलु स्यात् ।
नो रामः सेवितश्चेत् त्रिभुवनसुखदानन्दकेलीनिधानं
कारुण्यस्यार्णवस्तर्ह्यपरनृपतिभिः सेवितैः किं खलु स्यात् ॥२१॥

इत्थमालपतां तेषां सुवाक्यानि परस्परम् ।
दरिद्रयेन्दिरावत्या श्रुत्वा पत्ये निवेदितम् ॥२२॥

इन्दिरावत्युवाच

इह खलु वर्तते प्रमुदकाननराज इति प्रथितयशा
भुवि प्रणयिनां प्रणयन् कमलाः ।
अधिगतमङ्गलालय उदारकराम्बुरुहः
स जयति रामचन्द्र उदयं दधदस्खलितः ॥२३॥

तमुपसर प्रिय प्रणयिनोवचनादपि ते
सुजनितयानया क्षतमयाचितकं सुतया ।
अथ यदिमां वरे समुपयोज्य भवेः सुकृती
पुनरपि तादृगेव सहजं व्रतमस्तु सदा ॥२४॥

इत्युक्तः प्रियया विप्रः प्रमोदवनमाययौ ।
फलपाणिः प्रभुं द्रष्टुमितश्चेतश्च धावति ॥२५॥
तदा स चिन्तयामास ब्राह्मणोऽयाचितव्रती ।
कथं नु खलु रामस्य सविधे याचितास्म्यहम् ॥२६॥

अपि मद्वचने वाणी देहीत्यद्यावधि क्वचित् ।
नावतीर्णा साद्य कथं प्रादुर्भावमुपैष्यति ॥२७॥
इति चिन्ताज्वरोत्तप्तः पथि श्वासं समुत्सृजन् ।
निषसाद तरोर्मूले श्वासेन शुष्ककण्टकः ॥२८॥
तत्र प्राप्तः स्वयं रामोऽवतीर्णः प्रार्थितार्थदः ।
स यावदुत्थितोऽपश्यदग्रे पुरुषमुत्तमम् ॥२९॥
अदृष्टपूर्वसौन्दर्यसंपदं निस्तुलं त्विषा ।
सर्वाङ्गरुचिरं दिव्यवेशं राजीवलोचनम् ॥३०॥
सूरिशर्मा द्विजः पीत्वा तन्मुखं पद्ममञ्जुलम् ।
अवाप मुदमत्युच्चैर्नानुभूतां पुरा क्वचित् ॥३१॥

सूरिशर्मोवाच

कस्त्वं भोः पुण्डरीकाक्ष सुबाहो पुरुषर्षभ ।
रामं द्रष्टुमहं प्राप्तस्त्वां दृष्ट्वा मुदितोऽस्म्यहम् ॥३२॥
आजानुबाहुः सुखदः सुरूपः समूढवक्षाः कमलारुणाक्षः ।
स्मिताननः शोभितरत्नचूडः प्रत्यङ्गभूषारुचिभास्वरस्त्वम् ॥३३॥
दारिद्र्यानलतप्तोऽपि त्वां दृष्ट्वा शीतलोऽस्म्यहम् ।
जाने नृणां शोकनुदो विधिना त्वं विनिर्मितः ॥३४॥
तव नाम कुलं शीलं श्रोतुमुत्कण्ठितोऽस्म्यहम् ।
आख्याहि कृपया धीमन् यदि योग्यं मम श्रुतेः ॥३५॥

श्री भगवानुवाच

रामस्यानुचरः कश्चिदस्म्यहं निर्जने वने ।
नियुक्तः स्वप्रतिनिधिरतिथीनां समाहितौ ॥३६॥
वने स्वादुतमान्यस्मिन् फलन्ति विविधानि च ।
तर्पयाम्यतिथीनेतैः सारवेण च पाथसा ॥३७॥
एतावन्मम कर्तव्यं तदादेशादितोऽधिकम् ।
स एव कर्तुमुचितः सर्वसामर्थ्यसंयुतः ॥३८॥
स देवोऽद्य स्वयं यातः कामेश्वरमुपासितुम् ।
रक्ताशोकलताकुञ्जे निभृतः क्वापि वर्तते ॥३९॥

सूरिशर्मोवाच

अहो राममहं द्रष्टुमिहायातः प्रमुद्वने ।
कदा तद्दर्शनं लप्स्ये क्व च तन्मह्यमावद ॥४०॥

श्रीभगवानुवाच

न याति कुञ्जभवनाद् बहिरेषु वनेष्वसौ ।
दर्शनाकाङ्क्षिणो लोका बहवो विफलं गताः ॥४१॥
सुस्वादूनि फलान्येतान्यशान सुहितो भव ।
सारवं सलिलं पीत्वा तृप्तो गच्छ यथागतम् ॥४२॥

सुखित उवाच

इत्युक्तः स्वयमेवासौ रामेण निभृतात्मना ।
अयाचितव्रतध्वंसभीतस्तुष्टोऽभवद् द्विजः ॥४३॥
अद्यावधि व्रतं नित्यमक्षतं मम मौनिनः ।
विधिना पालितं यस्माद्रामो न मिलितो मम ॥४४॥
करिष्ये कन्यकायास्तु विवाहं येन केनचित् ।
वन्यैः फलैः पल्लवैश्च पूजयिष्ये सुतापतिम् ॥४५॥
पुष्पैः सुतां भूषयित्वा हरिद्राग्रन्थिभिस्तथा ।
यस्य कस्यापि विप्रस्य करिष्ये करगामिनीम् ॥४६॥
फलपल्लवपुष्पेषु सत्सु नाना वने वने ।
स्वयमेवोपपन्नासु वेदमन्त्रकुशास = ॥४७॥
किमन्याभिः संविधाभिः कन्य. .. भुवि ।
यदर्थं श्रीदुर्मदान्धान् याचन्ते दीनया गिरा ॥४८॥
अहं स्त्रियोपदेशेन स्वाश्रमाच्चपलीकृतः ।
तथापि रक्षितं धात्रा मदीयं नियतं व्रतम् ॥४९॥
इत्युक्त्वा हृदयेनासौ विप्रस्तामुपदां ददौ ।
तस्मै पुरुषवर्याय प्रोवाच च वचो मृदु ॥५०॥
मदाश्रमफलान्येतान्यागते रघुनायके ।
मन्नाम्ना प्रतिपाद्यन्तां मदाशीश्च निवेद्यताम् ॥५१॥

तेनायाचितदत्तानि फलानि सुरसानि सः ।
प्राप्य पीत्वा च सुरसं सारवं विमलं पयः ॥५२॥
तमामन्त्र्य नरश्रेष्ठं परमापोच्यदर्शनम् ।
स्वाश्रमाभिमुखो विप्रः प्रतस्थौ वै प्रमुद्वनात् ॥५३॥
अथापश्यदसौ दूरात् स्वाश्रमस्थानमाकुलम् ।
सुवर्णरत्नप्रासादैर्वैजयन्तैरिवाद्भुतः ॥५४॥
तपनांशुसमाद्योतद्योतितैर्भवनोत्तमैः ।
चित्रध्वजपताकाभिः शिखरैः स्वर्णरञ्जितैः ॥५५॥
शातकुम्भजकुम्भैश्च मणिस्तम्भैश्च शोभनैः ।
वैदूर्यरत्नकिरणद्योतिताभिश्च भित्तिभिः ॥५६॥
अनेकैश्चित्रशालैश्च वाजिशालाभिरन्ततः ।
गजैः पर्वतसंकाशैः शुण्डालैर्हेमभूषितैः ॥५७॥
मदच्युद्भिर्हलरदैः स्वर्णकम्बलधारिभिः ।
दिव्यस्त्रीणां समुद्गीतैर्विष्वक् कोलाहलीकृतम् ॥५८॥
वेष्टितं गजशालाभिः समन्तात्सुसमाकुलम् ।
कालागुरुभवैर्धूपैः परिव्याप्तनभस्तलम् ॥५९॥
सरोभिः सरसीभिश्च फुल्लपङ्कजराशिभिः ।
गृहारामैश्च पुष्पाणां वाटिकाभिरलङ्कृतम् ॥६०॥
ततो वितर्कयामास मुनिः संजातसंशयः ।
किमिदं कस्य च स्थानं यातो वा मतिविभ्रमः ॥६१॥
अहो स्वप्नं प्रपश्यामि दिङ्मोहो वा ममाजनि ।
देशः खलु स एवायं नाश्रमो दृश्यते कुतः ॥६२॥
क्वाभूद् दैववशात् सा मे पर्णशाला लघीयसी ।
दृश्यन्ते चात एवामी दूरादाश्रमपादपाः ॥६३॥
हरिन्मणिमयैः पत्रैः पुष्पैर्मणिमयैरपि ।
फलैरमृतपाकाढ्यैर्विविधैश्चापि काञ्चनैः ॥६४॥
तस्मिन्नेवाथ देशे वै श्रीरन्या दृश्यते त्वसौ ।
विचित्रैर्विविधैर्गेहैः सुधया धवलीकृतैः ॥६५॥

रजताचलसंकाशैः सुमेरुगिरिसन्निभैः ।
द्रक्ष्यामि चाग्रतो गत्वा किमेतदजनि स्फुटम् ॥६६॥
अथायं सविधे गत्वा ददर्श नगरोत्तमम् ।
तदा शुशोच मनसा हतः केन ममाश्रमः ॥६७॥
क्व चाभविष्यत् सा नाम भार्या मे निर्धना सदा ।
किं करोमि क्व गच्छामि कं नु पृच्छामि संप्रति ॥६८॥
अहो नगरवास्तूनां प्रभासंचरतां नृणाम् ।
एषां प्रभावमालोक्य धर्षिते इव चक्षुषी ॥६९॥
एवमाशङ्कमानोऽसौ ददर्श वरवर्णिनीः ।
प्रेषिता इन्दिरावत्या प्रेष्या भवनदासिकाः ७०॥
ता आलोक्य प्रियं प्राप्तं कृताञ्जलय आदरात् ।
बवन्दिरेऽभिवाञ्छन्त्यः कृपालोकममुष्य वै ॥७१॥
नीराजयित्वा कर्पूरदीपिकाभिः समंततः ।
निर्मञ्छ्य मुक्तामाणिक्यसमूहैस्तारकोर्जितैः ॥७२॥
ऊचुरेनं महाभाग प्रासादाग्रे प्रविश्यताम् ।
यत्रेन्दिरावती देवी ध्यायन्ती त्वां गृहोपरि ॥७३॥
वलभीं तुङ्गजालस्था पुरवीथीर्विलोकते ।
तया संगम्य विप्रेन्द्र भुङ्क्ष्वैनां परमां श्रियम् ॥७४॥
श्रीरामचन्द्रचरणोपगमप्रसादादासादितां सुमहतीं वत भूतिमेनाम् ।
दृष्ट्वा कुरुष्व सफलां भृशमाश्रितेभ्यो देहि प्रकाशय यशो विपुलं जगत्सु ॥

इत्युक्तो विप्रवर्योऽसौ ताभिरत्यन्तमादृतः ।
तत्क्षणे प्राप वै तादृक् भोगार्हां विपुलां श्रियम् ॥७६॥
महेन्द्र इव दुर्धर्षः कन्दर्प इव सुन्दरः ।
चन्द्रवत्कान्तसंदोहभूषितस्तेजसा रविः ॥७७॥
व्यरोचत महाबाहुर्भोगार्हपटुतायुतः ।
यद्दिने प्रस्थितो विप्रो रामचन्द्रदिदृक्षया ॥७८॥
स्वाश्रमात्स्वस्त्रियाज्ञप्त आसीत्तद्दिन एव वै ।
रात्राविय परा लक्ष्मीर्वैकुण्ठनगरोचिता ॥७९॥

सा प्रातरिन्दिरावत्या दृष्टा विस्मितचित्तया ।
सापि श्रीरिव संजाता महासौन्दर्यभूषिता ॥८०॥
वीक्ष्यात्मानं परं प्राप्ता विस्मयं भवनानि च ।
सर्वतश्चकिताक्षीव पश्यन्ती चिरमास सा ॥८१॥
अथ विप्रवरः प्राप्तो महाप्रासादमन्दिरम् ।
दूरादालोकितः पत्न्या महासौभाग्यभूषितः ॥८२॥
दृष्ट्वैवालिङ्गितः प्रेम्णा भूयः प्राप्ताभिलाषया ।
स्नातः स्रग्गन्धभूषाद्यैर्भूषितः प्रीतमानसः ॥८३॥
भुक्तश्च विविधैर्भोज्यैः सार्वभौमनृपोचितैः ।
एकान्ते सुसमासीनस्तया सार्द्धं वरासने ॥८४॥
सुवर्णरत्नप्रासादे मणिदीपप्रदीपिते ।
महार्हे चारुपल्यङ्के गजदन्तैर्विनिर्मिते ॥८५॥
दुग्धफेनोज्ज्वले तल्पे सोपधानेऽतिशोभने ।
पट्टराज्ञ्या सहासीनः साक्षान्नृपवरो यथा ॥८६॥
अचिन्तयत्तदा तत्र ब्राह्मणस्तुष्टमानसः ।
विस्मयं च परं प्राप्तो वीक्ष्य स्त्रियमनन्यगाम् ॥८७॥

सूरिशर्मोवाच

नूनं स राम एवासीद् दृष्टोऽयं[यः] पुरुषो मया ।
अतिमात्रं कृपायुक्तो मादृशे शरणागते ॥८८॥
तं विहाय पुमान् कोऽन्य ईदृशः स्यान्मनोहरः ।
दृष्ट्वैव मे मनो जह्रे महतीमापदं तथा ॥८९॥
उदार चूड़ामणिना दीनोऽहं भूपतिः कृतः ।
अहो मया तदैवासौ न ज्ञातः पुरुषोत्तमः ॥९०॥
इदानीं तु प्रभावेण ज्ञातो रामः स एव हि ।
ईदृग्विधो भवेद्दाता न भूतो न भविष्यति ॥९१॥
कृपाकटाक्षमात्रेण चक्रे शक्रपुराधिपम् ।
अयाचितोऽपि यत्प्रादादयाचितः किमदास्यत ॥९२॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां नूनमेष परः प्रभुः ।
तमेतं कोऽनुयाचेत तुच्छमैहिकवैभवम् ॥९३॥

यः स्वयं भुक्तिमुक्त्यादिदानोदारकराम्बुजः ।
परमेष प्रार्थनीयस्तत्पदाम्भोजभक्तये ॥९४॥
भक्त्या प्रसन्नो भगवान् स्वरूपमपि यच्छति ।
मानुषं भावमास्थाय स्वयं स भगवान् परः ॥९५॥
जगतां शोकशमनो महाकल्याणदायकः ।
सतामुद्धारकः साक्षादसतां कुलनाशकः ॥९६॥
नूनमेष स्फुटो लोके पूर्णः श्रीपुरुषोत्तमः ।
क्रीडति स्वजनैः सार्द्धं रञ्जयन् प्रमुदाटवीम् ॥९७॥
ज्ञाततत्त्वो जनस्तस्य चरणौ शरणं व्रजेत् ।
स आशु लभते मुक्तिं घोरात् संसारसागरात् ॥९८॥
यस्मै कृपयति त्वेष चिदानन्दमहोधनः ।
स एव धन्यो जगति तन्मायामोहिते नरः ॥९९॥
न ब्राह्मं पदमूर्जितं स्पृहयते वैरिञ्च्यधिष्ण्यं महत् ।
स्वाराज्येन विराजितं न वसुधासंपूर्णराज्यश्रियम् ॥
यस्तस्याङ्घ्रिसरोजयोः करुणया संतीर्य मोहार्णवं
लब्ध्वा भक्तिमथोर्जिताम[1]सुलभां शश्वत्कृतार्थो भवेत् ॥१००
नमतस्मै भगवते अचिन्त्यानन्तशक्तये ।
महापुरुषरूपाय रामाय परमात्मने ॥१०१॥
त्रिगुणातीतरूपाय सच्चिदानन्दकेलये ।
परापरपरेशाय नमो रामाय वेधसे ॥१०२॥
अहो ते गाम्भीर्यं पुरुषवर माहात्म्यजलधे
क ईष्टे देव त्वामतुलमवगाढं त्रिजगति ।
मुनीन्द्राणां श्रेष्ठा अपि परमहंसाः कृतधियो
न ते पारं प्राप्तुं दधति न तु सामर्थ्यमुचितम् ॥१०३॥
अनन्तस्त्वं मायातिगवपुरनन्तास्तव गुणा
नराकारं ब्रह्म त्वमुदयसि यद्धाम परमम् ।

---

१. °मखंडिता°—मथु०, बड़ो० ।

अतद्व्यावृत्या त्वं श्रुतिभिरभिधेयं तु किमपि
स्फुटं नेतीति त्वां जगदुरवशा अन्तत[1] इमाः ॥१०४॥
किं त्वां याचेय भगवन् भोगस्वर्गापवर्गदम् ।
त्वत्स्वरूपानन्दमात्रे रुचिरस्तु जगत्पते ॥१०५॥
इत्यसौ पूर्णसर्वार्थः संजातप्रणयः प्रभो ।
ध्यायमानस्तमेवान्तर्विषयेभ्यो न्यवर्तत ॥१०६॥
कस्मैचिद् द्विजवर्याय कन्यां सोपस्करं ददौ ।
तं भूपस्तोषयामास रामदत्तैर्महाधनैः ॥१०७॥
सुवर्णमणिरत्नौघैर्वासोभिर्वाजिभी रथैः ।
पुर एव स्वके तत्र जामातरमवासयत् ॥१०८॥
संपाद्य विविधान् भोगान् बहुमानपुरःसरम् ।
ब्राह्मणान् पूजयामास तया परमया श्रिया ॥१०९॥
आगतानतिथीन् नित्यं मुनीन् तत्त्वार्थवेदिनः ।
भक्तान् परमहंसांश्च महाभागवतान् जनान् ॥११०॥
रामेण दत्तां तां भूतिं रामस्यार्थे महामनाः ।
व्ययीकुर्वन् सदा रेजे[2] सूरिशर्मा द्विजाग्रणीः ॥१११॥
भार्यया चेन्दिरावत्या कथंचिदनुरञ्जितः ।
तस्या एवानुरोधेन विषयान् बुभुजे रतः ॥११२॥
दर्शयन्नात्मनासक्तिं रामासक्तमनोगतिः ।
विषयापनुदं भोगं विषयाणां चकार सः ॥११३॥
यतो यतः संस्पृहा स्यात् तं तं पूरयति स्म ह ।
भोगं विषयसंदोहेष्वलिप्तश्चास स स्वयम् ॥११४॥
एवं शीलयमानोऽसौ गार्हस्थ्यं परया श्रिया ।
निष्ठामौपशमीं प्राप्तो यया सद्योपसृज्यते ॥११५॥
इहैव परमं ज्ञानं परमानन्दरूपिणः ।
परात्मनः श्रीरामस्य स्वरूपमात्रगोचरम् ॥११६॥

---

१. जगदुरवशिष्टं तत—रीवाँ । २. समारेजे—रीवाँ ।

लब्ध्वा द्विजः सूरिशर्मा निर्विद्य सहसैव स ।
विविच्य तत्पदं सूक्ष्मं विवेश सदसत्परम् ॥११७॥
एवमेव नृपश्रेष्ठ बहवः पुण्यभागिनः ।
लेभिरे तत्परं धाम रामाख्यमभिरामकम् ॥११८॥
तेनैव दत्तया दृष्ट्या श्रीरामेण दयालुना ।
जानीयात्तत्स्वरूपं वै यतो भूयो न संसरेत् ॥११९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रा-यामादिव्रजागमने चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३४॥

पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सुखित उवाच

गोकुले सर्वतः सौख्यैः प्लाव्यमानेऽतिशोभने ।
रामस्य चरणाम्भोजप्रसादात्कुशलान्विते ॥१॥
गृहे गृहे नरा नार्यो नानाकौतुकसंयुताः ।
गायन्ति क्रीडया युक्ताः खेलन्ति च रमन्ति च ॥२॥
हसन्ति सुखसंदोहैर्हासयन्ति परस्परम् ।
स्थले स्थले शुभैर्वाक्यैर्विश्वङ्मुखरिता दृशः ॥३॥
गोप्यो रामप्रेमवश्याः सदनुग्रहपूरिताः ।
पश्यन्त्यो रूपमाधुर्यं मोदन्ते व्रजवीथिषु ॥४॥
गोपवृद्धाश्च मुदिता रामदर्शनमात्रतः ।
पूर्णाभिलाषाः सर्वेऽपि गायन्ति विमलान् गुणान् ॥५॥
सखायो रामचन्द्रस्य भाग्यभाजनतां गताः ।
परमानन्दमुदिता स्तुष्यन्ति च परस्परम् ॥६॥
एवमादिव्रजे सर्वे शोभासंपत्समन्विते ।
अगादसहमानोऽसावसुरो वृषभाकृतिः ॥७॥
पीडाकरः परुषनाद उदग्रशृङ्गः कीलाकरालनयनो भयकृज्जनानाम् ।
क्रूरप्रचारखुरविक्षतभूमिभागः कल्माषकायविजिताभ्रघटाकलापः ॥८॥

पापीयसीं मतिं विभ्रदभ्रोत्कर्षणशृङ्गभृत् ।
पुच्छाग्रभ्रामणोद्घातघातितोडुकदम्बकः[1] ॥९॥
ककुद्मान् विकरालाङ्गः शब्दापूरितदिङ्मुखः ।
अगादादिव्रजं शब्दैर्भीषयन् भङ्गुरेक्षणः ॥१०॥
गोष्ठानि तेन शृङ्गाभ्यां विभिन्नानि समंततः ।
विहाय गावो गोपालाः सर्व एव पलायिताः ॥११॥
रम्भणैस्तस्य भयदैर्दूराद् गावो वृषा नराः ।
कुर्वन्तिस्म सकृन्मूत्रं समीपं तस्य को व्रजेत् ॥१२॥
गर्भिणीनां स्रवेद् गर्भो यस्य निर्घोषशब्दतः ।
खुरोद्धूतैर्धूलिभरैर्नभश्चैवान्धकारितम् ॥१३॥
तं वज्रकठिनोत्तुङ्गविषाणोत्पाटिताम्बरम् ।
वीक्ष्य बिभ्युर्व्रजे लोका गोपा गोप्यो गवां गणाः ॥१४॥
त्रायस्वास्मान्[2] राम रामेति सर्वे शब्दं चक्रुस्तेजसा तस्य पूर्वम् ।
वित्रस्तात्मान[3]स्ततो रामचन्द्रः कृत्वातेषामभयं पर्यतिष्ठत् ॥१५॥
पीताम्बरेण विनिबद्ध्य कटिं स वीर आस्फोटयंस्तलरवेण भुजौ नितान्तम् ।
पार्श्वस्थगर्जदनुजांसधृतैकबाहुरन्येन बाहुविटपेन तमाजुहाव ॥१६॥
सक्षुब्धधीस्तद्भुजास्फोटशब्दैः सुकर्कशैराहतकर्ण आरात् ।
संजातरोषस्तपनारुणाक्षः शृङ्गं समुद्धृत्य विनिर्धुवत् शिरः ॥१७॥
रामस्याभिमुखोऽभ्येत्य क्रूररावी महासुरः ।
शृङ्गाभ्यां तं समुद्धर्त्तुमैच्छत् सुकठिनाशयः ॥१८॥
स तं जग्राह पाणिभ्यां शृङ्गयोरति[4]दारुणम् ।
व्यनुदत् प्रातिलोम्येन धनुर्विंशतिकोपरि ॥१९॥
स तत्र न्यपतद् भूमौ रामबाहुबलेरितः ।
कम्पमानश्च सर्वाङ्गं स्वेदतोयेन पूरितः ॥२०॥
पुनरुत्थाय वेगेन निश्वसन्नतिरोषणः ।
ज्वालावलीढनयनस्तिर्यक् क्रूरं विलोकयन् ॥२१॥

---

१. घातिद्रुमकदं°—रीवाँ । २. °स्वाद्य—रीवाँ । ३. विश्र ब्धात्मा°—मथु० बड़ो० । ४. गूढं गोपति°—रीवाँ ।

मुञ्चन्नसृगपाङ्गाभ्यां क्रोधतामसमानसः ।
पुच्छमुद्यम्य सहसा भूयोऽभिमुखमापतत् ॥२२॥

तं संनिगृह्य बलवान् सविषाणयुग्मे संभ्राम्य दिक्षु धरणौ विनिपात्य धीमान् ।
आक्रम्य चाशु चरणेन गले ममर्द प्रोत्पाट्य शृङ्गमुरुरोषवशाज्जघान ॥२३॥

सोऽसृग्धारां वमन् वक्रे पश्चाद्विण्मूत्रमुत्सृजन् ।
विक्षिपंश्चरणानुच्चैः पर्यस्तविवशेक्षणः ॥२४॥
कष्टं प्राणान् समुत्सृज्य जगाम यमसादनम् ।
विबुधास्तुष्टुवुर्व्योम्नि रामं विक्रमशालिनम् ॥२५॥
ववृषुः पुष्पवर्षाणि जगुर्गन्धर्वनायकाः ।
चाटुकारैर्जयेत्यूचुः सर्वतो देवतागणाः ॥२६॥
कश्यपस्य सुतो दैत्यो रत्नाचलदरीशयः ।
त्रासकः[1] सर्वदेवानां रामेण निहतो बलात् ॥२७॥
तस्मिन् वने मृगास्तस्थुः पक्षिणो मनुजाः सुखम् ।
हते महाबलीवर्दरूपधारिणि दारुणे ॥२८॥
गोपा जयजयेत्यूचुर्मुनयः सिद्धचारणाः ।
तस्मिन् विनिहते दैत्ये महाबलपराक्रमे ।
ऊचुः स्म रावणं गत्वा दैत्यदानवराक्षसाः ॥२९॥
पौलस्त्यनन्दन श्रीमंस्त्वयि लोकान् प्रशासति ।
हन्यन्ते मर्त्यरूपेण दैत्यदानवराक्षसाः ॥३०॥
तव सेना महाराज हन्यते मर्त्यरूपिणा ।
एतद्धचनुचितं विद्धि तवास्माभिर्निवेदितम् ॥३१॥

रावण उवाच

जानामि मानवः कश्चिद्रघुवंशेऽभवद् भुवि ।
जनकस्य सुता येन ब्यूढा भङ्क्त्वा विभोर्धनुः ॥३२॥
स एव हन्ति दैतेयान् दानवान् राक्षसानपि ।
अबला एव हन्यन्ते हन्तव्यः सबलेन सः ॥३३॥

---

१. क्रोशकः—रीवाँ ।

इत्युक्त्वा रावणः क्रोधाद्विससर्ज सुरद्विषः ।
रामे प्रेषितवानेष सुघोरं नाम राक्षसम् ॥३४॥
भो राक्षसचमूनाथ बलवीर्याधिको भवान् ।
गच्छत्वयोध्यां यत्रास्ति रामो दशरथात्मजः ॥३५॥
तं विद्धि राक्षसानीकद्रुहं हरधनुर्द्रुहम् ।
बहवो निहितास्तेन स्थानस्थेनैव चासुराः ॥३६॥
शत्रुर्दूरात्प्रतीकार्यो यावदायाति नान्तिकम् ।
बद्धमूलः पुनर्हन्यादात्मानं बलसंवृतः ॥३७॥
इत्युक्त्वा प्रहितस्तेन राक्षसानीकनायकः ।
एकाकी बलदृप्तोऽसौ खमार्गेण तमाययौ ॥३८॥
दृष्ट्वा प्रमोदविपिनं राक्षसः फलितद्रुमम् ।
परां मुदमवापैष उवास बहुवासरम् ॥३९॥
रामस्याभिमुखो भूष्णुः प्रतीक्षन् समयं स्थितः ।
विलूनयन् वनं सर्वं भीषयन् पशुपक्षिणः ॥४०॥
शब्दं करोति गहने दरीप्रतिरवोत्कटम् ।
त्रासयत्यखिलान् दुष्टो दुर्दर्शविपुलाननः ॥४१॥
विमोटच फलसंदोहमत्ति मारयते पशून् ।
एवं सोऽत्यनयं कुर्वन्नुवासात्यन्तदारुणः ॥४२॥
नैतस्मिन् विपिनोद्देशे कोऽपि गच्छति मानुषः ।
पलायन्तेऽस्य शब्देन दूरादेव नरा मृगाः ॥४३॥
एकदा भगवान् रामस्तत्र क्रीडनकौतुकी ।
आजगाम गवांवृन्दैर्गोपैश्च परिवारितः ॥४४॥
वेणुं विरणयन् वक्त्रे वीतभीर्बालकेलिकृत् ।
तलशब्दैस्तालिकाभिर्वने कोलाहलं दधौ ॥४५॥
तेषां तं निनदं श्रुत्वा वीतनिद्रः सराक्षसः ।
आजगाम बलोद्रिक्तो हुंकारोच्चारभीषणः ॥४६॥
गर्जयन्निव कान्तारं तर्जयन्निव गोकुलम् ।
कुर्वन्निव तडित्पातं भूपृष्ठं दारयन्निव ॥४७॥

भीषणो धूमधूम्राङ्गः करालज्वाललोचनः ।
उल्कामुखो ललज्जिह्वस्तडित्वानिव तोयदः ॥४८॥
अद्य मेऽवसरो जातः करिष्ये तृप्तिमुत्तमाम् ।
मर्त्यानामामिषैः स्निग्धैः स्वामिकार्यं च साधये ॥४९॥
एवं विचिन्त्य हृदयं प्राप्तो गोपालमण्डले ।
यत्र वेणुं क्वणन् रामः क्रीडते सखिभिः सह ॥५०॥
गोपा अस्य वपुर्वीक्ष्य दंष्ट्राभिर्भीषणाननम् ।
तिर्यग्भ्रुकुटिदुर्दर्शं तत्रसुर्मण्डले स्थिताः ॥५१॥
केचिच्चकम्पिरे गोपाः केचित्सिस्विदुरङ्गकैः ।
केचिद्विवर्णवदना भयेनासुर्गवांदुहः ॥५२॥
गावो वीक्ष्य सुदुर्दर्शं मुखज्वालासमुद्गिरम् ।
विहाय शाद्वलं सर्वं वने भीता विदुद्रुवुः ॥५३॥
इत्थं क्रीडारसं भिन्दन् रामस्याद्भुतकर्मणः ।
आजगामासुरः कोपान्मण्डलीं वीक्षयन्निव ॥५४॥

दृष्ट्वा भयेन संभ्रान्तान् गोपालान् गोकदम्बकान् ।
उवाच भगवान् रामः स्वानां भीतिं हरन्निव ॥५५॥
गोपाला मा विभित भोः किं भयं वो मयि स्थिते ।
गोकुलं रक्षत प्राज्ञा यावदेनं निहन्म्यहम् ॥५६॥
इति गोपान् समाश्वास्य वद्धपीतपटः कटौ ।
राक्षसस्याभिमुखतस्तस्थौ रामः स्मयन्निव ॥५७॥
उवाच तस्मै बलवानवगण्य विशेषतः ।
किमन्यैस्त्रासितैर्मूढ मामेहि त्वां निहन्म्यहम् ॥५८॥
ततः स मुष्टिमाबध्य रामस्याभिमुखं द्रुतः ।
आगत्य च बलाद्रामं जघानोरसि मुष्टिना ॥५९॥
स तस्य वज्रसदृशं मुष्टिघातं प्रसूनवत् ।
उवाह निजपाणिभ्यां जग्राह च भुजौ रिपोः ॥६०॥
सोऽपि रामस्य दोर्दण्डौ जग्राहोभयपाणिना ।
युयुधाते तत उभौ मल्लाविव जयैषिणौ ॥६१॥

अन्योन्यं बाहुचलनैरन्योन्यं शीर्षघट्टनैः ।
अन्योन्यं जानुनिष्पेषैरन्योन्यं तलताडनैः ॥६२॥
परिरभ्योन्मर्दनैश्च वियुज्य परिघट्टनैः ।
वक्षस्यायोज्य मथनैर्युध्येते बलिनौ मिथः ॥६३॥

बाहुयुद्धे पराभूतो वियुज्य दितिजः स्थितः ।
दंष्ट्राकरालवक्त्रेण भीषयन्निव दूरतः ॥६४॥
रामोऽथ तमभिद्रुत्य जघानास्मै चपेटया ।
सोऽतिमात्रं तया सम्यग् जुघूर्णे परिपीडितः ॥६५॥

अथैनं मुष्टिना भूयो यावत्ताडयते हृदि ।
तावद् गृहीत्वा पदयोर्भ्रामितः सर्वतो दिशः ॥६६॥
ततो हन्त बलं कृत्वा पातयामास भूतले ।
पद्भ्यां च पोथयामास यथा प्राणैर्वियुज्यते ॥६७॥
तं तथा व्यसुमालोक्य तत्याज बलिनांवरः ।
सोऽपि मीलितदृक् प्राणैर्वियुक्तो भीमदर्शनः ॥६८॥
अदृश्यत गवांधुग्भिर्हर्षितैर्गतसाध्वसैः ।
वज्रोपमपदाघातत्रुटिताशेषविग्रहः ॥६९॥

व्यादाय वदनं भूमौ पतितस्तत्क्षणान्मृतः ।
प्रसारितायततरपाणिपादोऽन्धु[1]लोचनः ॥७०॥
धूलिधूसरसर्वाङ्गो मुक्तकेशकदम्बकः ।
ध्वस्तास्थिपञ्जरः सद्यो गिरिगण्ड इव च्युतः ॥७१॥
तां वीक्ष्य विस्मिताः सर्वे गोपाः संजातसंभ्रमाः ।
उक्त्वा जयजयेत्येनं तुष्टुवुर्व्रजनायकम् ॥७२॥

अथ संक्रीडमानास्ते पुरस्कृत्य गवांकुलम् ।
मध्ये रामं लक्ष्मणं च वेष्टयित्वा खिलाः स्थिताः ॥७३॥
पाययित्वा पशून् सर्वान् सारवं विमलं जलम् ।
पद्मादिभिः कृताकल्पाः कूर्दमानाः समेधिताः ॥७४॥

---

१. °पादोर्ध्व°—रीवाँ । 'अन्धुः—कूपः' टि०—मथु०, बड़ो० ।

वनान्तात् संनिवर्तन्त संकुलीकृत्य धैनुकम् ।
हसन्तो हासयन्तश्च वादयन्तो विषाणिकाः ॥७५॥

दूरादुद्यम्य दोषं दिशि दिशि दययान्दोलयित्वा दुकूलं
दर्पादाहूय दम्यान् नयनजलजयोर्दीव्यतो द्वीपद्वीपे[1] ॥
दैत्यद्वेषी दिनस्य द्युतिभृदुपरतो दिव्यदावादुपेतो
दत्तां दीप्तिं दुरापां दधदुरसि दृढं दाम वो दाशरथ्यः ॥७६॥

रत्नाद्रेः प्रान्तदेशे तु क्षममासीन्मनोहरम् ।
सुघोरशमनं नाम तीर्थं घोराघनाशनम् ॥७७॥

तत्र राजन्न यः स्नायात्सुघोरशमने ह्रदे ।
तस्यादिव्रजयात्रायाः सुघोरः फलमश्नुते ॥७८॥

तस्मात् तत्र विशेषेण गन्तव्यं धर्मकोविदैः ।
स्नात्वा दत्त्वा द्विजन्मभ्यः प्राप्नुयात्सकलं फलम्॥७९॥

पादाघातैर्यदा दैत्यः पोथितोऽपि समंततः ।
न ममार गलोद्देशे रुद्धप्राणो बहून् क्षणान् ॥८०॥

अथोवाच स्वयं रामः कथं न मृयसे खल !
मत्पादघातैर्नितरां पोथितोऽपि धरातले ॥८१॥

दैत्यः सुघोर ऊचे तं मुक्तिर्मे राम दीयताम् ।
तदाहं विसृजाम्येतच्छरीरं झटिति प्रभो ॥८२॥

राम उवाच

यद्यादिव्रज एतस्मिन् यात्रार्थं पर्यटिष्यति ।
अयं त्वद्वधदेशेऽत्र नोपेष्यति यदाऽसुर ॥८३॥

यात्राफलं तदा तस्य तुभ्यमेव भविष्यति ।
तेन पुण्येन दितिज विमुञ्च स्वकलेवरम् ॥८४॥

इति श्रुत्वा सदैतेयस्त्यक्त्वा प्राणान् दिवं गतः ।
अतो राजन् विशेषेण सुघोरशमनं व्रजेत् ॥८५॥

रामस्याज्ञां पालयता कर्तव्यं तीर्थमुत्तमम् ।
सुघोरशमनं नाम देवखातं महाह्रदम् ॥८६॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रायां-
मादिव्रजागमने पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३५॥

---

१. °देशे—मथु०, वडो०।

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सुखित उवाच

अथैकदा होलिकायां रामो राजन्यवेषधृक् ।
हसन् गायन् सखीवृन्दैर्विजह्रे लोकमङ्गलम् ॥१॥
दूरादाशासु कलयन् शब्दाद्वैतमयं जगत् ।
कलैर्मुरलिकानादैः प्रमोदवनमध्यगः ॥२॥
केलिधूलीभरेणामूः सर्वा एवानुरञ्जयन् ।
काश्मीरक्षोदसलिलैरार्द्रीकृतवराम्बरः ॥३॥
दत्तगालिभिरेताभिर्विभीतो हासपूर्वकम् ।
स्वयं च ताः सोपहासं गालीभाजनतां नयन् ॥४॥
एवं परस्परं तत्र संप्रवृत्ते कुतूहले ।
रामेण मोहिता गोप्यो मुरलीमञ्जुगीतिभिः ॥५॥
डंफांश्च वादयाञ्चक्रुर्गोपाला अतिहर्षिताः ।
वीणावेणुमृदङ्गोत्थः[1] पस्पर्श गगने रवः ॥६॥
लक्ष्मणस्य शुभा गोप्यः सुन्दर्यः कमलेक्षणाः ।
भरतस्य च वीरस्य शत्रुघ्नस्य च सादराः ॥७॥
एकत्र तस्मिन् दिवसे मण्डलानां चतुष्टयम् ।
बभूव विहरद्भूयो लज्जाभयविवर्जितम् ॥८॥
श्रीरामपक्षगा गोप्यो याश्च लक्ष्मणपक्षगाः ।
उभयोः पक्षगा याश्च ददुर्गालीं परस्परम् ॥९॥
एवामापूर्यमाणेऽस्मिन् समाजे वरयोषिताम् ।
वेणुं बिभ्रत्क्वणन् रामो जहार सुदृशां मनः ॥१०॥
अनन्यचित्तास्ता सर्वा मधुमत्ता इव क्षणम् ।
तस्थुर्वेणुरवाकृष्टा रामवक्त्रेन्दुदर्शनाः ॥११॥
अथ तद्गीतनादेन मोदिता व्रजसुभ्रुवः ।
स्खलन्नीव्यो गलद्वस्त्रा विस्रस्तकबरस्रजः ॥१२॥

---

१. मृदङ्गानां—मथु०, बड़ो० ।

पतन्मुक्ता मणिलता विगलत्तनुभूषणाः ।
स्वं परं चैव न विदुः सर्वाः संमत्तवत्स्थिताः ॥१३॥
विचित्रास्तास्तथा दृष्ट्वा कश्चिद्यक्षगणाधिपः ।
माणिक्यतिलको नाम कुबेरस्य प्रियः सखा ॥१४॥
तत्राजगाम कामान्धः संवीक्ष्य व्रजकामिनीः ।
हठात् संप्रेरयामास नेतुमात्मनिकेतम् ॥१५॥
मुमूर्षुः सोऽतिचपलः कामेन विकलीकृतः ।
यावत्प्रेरयति स्वैरं तावच्चुक्रुशुरङ्गनाः ॥१६॥
हा राम हा रमण लक्ष्मण दीनबन्धो
हा शत्रुहन् भरत क्वासि दयैकसिन्धो ॥
युष्मान्नितान्तमवमत्य खलः स्मरान्धः
कोऽयं बलान्नयति नो हठिनं घ्नतैनम् ॥१७॥
इत्थं वनान्तः स्वजनार्तशब्दं निशम्य ते प्राणविपत्समेतम् ।
रामादयो वेणुनिनादसक्ताः सर्वाः परित्यज्य समन्वधावत ॥१८॥
उपेत्य गोपिकावृन्दैर्भ्रातरः संबभाषिरे ।
अलं भयेन पद्माक्ष्यः प्राप्ता स्म भयहारकाः ॥१९॥
संदृष्ट्वा तान् परिप्राप्तान् शरणागतपालकान् ।
त्यक्त्वा वृन्दं व्रजस्त्रीणां गृहीत्वासून् पलायत ॥२०॥
रामः संरक्षणार्थाय गोपीनां लक्षणादिकान् ।
संस्थाप्य भ्रातरः सर्वान् स्वयं चौरमधावत ॥२१॥
पलायनपरश्चौरो यत्र यत्रान्वधावत ।
तत्र तत्रान्वगाद्रामः साक्षात्काल इव द्रुतः ॥२२॥
तमुत्तरस्यां दिशि धावमानं, यक्षाधिपं कालमिवाप्रसह्यम् ।
दधार रामो बलवान् प्रगृह्य, कच्चेषु तादृक्खलनिग्रहार्हः ॥२३॥
पशुवत्तस्य मूढस्य दिव्यरत्नयुतं शिरः ।
जहार रामो भगवान् स्वानां प्रियचिकीर्षया ॥२४॥
आदाय तस्य तिलकस्थितं रत्नमुदित्वरम् ।
आययौ विक्रमनिधिः सुहृदां यत्र मण्डलम् ॥२५॥

लक्ष्मणाय मणिं प्रादाद्भानुमण्डलभासुरम् ।
प्रशसंसुस्तमेतेन विक्रमेण सुहृद्गणाः ॥२६॥

स्थानं तदस्त्युत्तरतः प्रमुद्वनं, सुतीर्थभूतं शुचि सर्वपावनम् ।
पलायमानं वनितापराधिनं बलेन यक्षं निजघान यत्र सः ॥२७॥

यक्षप्रमोचनं नाम तत्रास्ति सुमहत्सरः ।
तत्र स्नात्वा महीपाल सर्वयात्राफलं लभेत् ॥२८॥

एवं व्रजे निवसतो रघुपुङ्गवस्य भूरणि सन्ति चरितानि दिनेदिनेऽस्य ।
साधीयसीं हृदयकर्णरसायनैर्यैः कालुष्यमाशु विधुनोति नरः स्वचित्ते ॥२९॥

व्रजमण्डलमङ्गलालयस्त्रिजगल्लोकतमोमलापहः ।
चरितामृतसागरः प्रभोर्जयति प्राणनकृत् सतां सदा ॥३०॥

यानि यानि चरित्राणि चकारेह सतांगतिः ।
तानि तानि मया तुभ्यं कीर्तितानि महीपते ॥३१॥

इत ऊर्ध्वं व्रजजनप्राणं जीवातुविग्रहम् ।
रामचन्द्रमितो नेतुं मन्त्री संप्रेषितस्त्वया ॥३२॥

आगता घनसंकाशा गजेन्द्रास्ते पदच्युतः ।
प्राणापाये व्रजस्थानां कालस्यानुचरा इव ॥३३॥

आगता पञ्च धाराभिरार्द्रयन्तो धरातलम् ।
वाजिनो वै वियोगाग्नेः विस्फुलिङ्गा इव त्विषा ॥३४॥

आगतास्ते रथवरास्त्रासयन्तो मनांसि नः ।
वियोगदुःखराजस्य यानानीव भयङ्कराः ॥३५॥

चतुरङ्गवतीं सेनां निभाल्य व्रजवासिनः ।
अहो किमिदमित्येवं विचेरुर्भयसंयुताः ॥३६॥

अतः परं या व्रजवासिनां दशा, नितान्तमाभाषितया तवालम् ।
स्वचेतसा वेत्तु स एव वल्लभो यस्यानिशं दुर्विषहो वियोगः ॥३७॥

वाष्पतोयतरङ्गिण्यः कति नो रचितास्तदा ।
बहुबन्धकृता विघ्नाः कति नो घटिता जनैः ॥३८॥

शपथैः कति नो वाचः प्रभवे विनिवेदिताः ।
प्रतिकूले विधौ सर्वं प्रतिकूलमभूत्तराम् ॥३९॥

इयति विरहभारे रामचन्द्रप्रियस्य
प्रसभनिपतितेऽन्तर्गोष्ठमात्माश्रितेषु ।
लघुरिव हृदि लग्ना यातना कापि याम्या
प्रसृतवहलकीलो भ्राष्ट्रवह्निश्च सोऽन्यः ॥४०॥
वर्णितुं नैव सा शक्या वेदना व्रजवासिनाम् ।
मग्नानां निजसौख्येषु किं तया प्रोक्तया नृप ॥४१॥
अहो यावद्वर्णितुं वै तवाग्रे तावद्राजन् वर्णितुं नैव शक्यम् ।
प्रसादतः किंतु तस्यैव सर्वं पुरस्थवत्स्फुरितं मे विशेषात् ॥४२॥
तथैवास्य सुकण्ठस्य प्रसादात्तस्य राधसः ।
सर्वं पुरःस्थं चरितं रामचन्द्रस्य जायते ॥४३॥

राजोवाच

युवयोरेव संजातः प्रसादोऽयं गवांपते ।
एतन्मे कारणं किन्तु कथ्यतां सुखिताधिप ॥४४॥

सुखित उवाच

सरस्वती वेदमाता स्वपित्रा ब्रह्मणा सह ।
विचारं समनुप्राप्ता तत्त्वं राजन्निशामय ॥४५॥

सरस्वत्युवाच

सारं सर्वेषु लोकेषु वेदेषु गुणवत्सु च ।
चरित्रं रामचन्द्रस्य नित्यानन्दरसालयम् ॥४६॥
वर्णितं सत्सूरिवरैर्विशेषात् सारवेदिभिः ।
वाल्मीकिनाप्यगस्त्येन हयग्रीवेण धीमता ॥४७॥
शिवेन योगनाथेन शम्भुना शूलपाणिना ।
हनुमता वायुना च लक्ष्मणेन च सीतया ॥४८॥
अन्यैश्च मुनिभिस्तात देवैश्च प्राप्तभक्तिभिः ।
किंतु निःशेषतो नैव कश्चिज्जानाति तद्गुणान् ॥४९॥
भूयस्तस्य चरित्रं च रहस्यं योगिनामपि ।
न ज्ञातुं शक्यते तात बहुजन्मकृतं तु तत् ॥५०॥

राज्य[ज]वेशमुरीकृत्य सुखितस्य व्रजे वसन् ।
चकार यानि पुण्यानि चरित्राण्यखिलेश्वरः ॥५१॥
तानि गुह्यतमान्येव शुभानि च विशेषतः ।
कथं ज्ञेयानि कविभिर्वर्णनीयानि वा कथम् ॥५२॥
चक्रे द्वादशवर्षेषु वासं सुखितगोपतौ ।
तत्रत्यास्तस्य लीलास्तु वाल्मीकिर्न निबद्धवान् ॥५३॥
मूलचारित्ररूपत्वाद्रहस्यत्वाच्च सर्वतः ।
तत्साक्षात्करणे तात क उपायोऽस्ति तद्वद ॥५४॥
यदुक्त्वा समवाप्नोति जन्मनः फलमुत्तमम् ।
भक्ताश्चैवानुगृह्येरन् शुकाद्या योगवित्तमाः ॥५५॥
इति प्रोक्तं सरस्वत्या निशम्य भगवान् विधिः ।
क्षणं विचिन्त्य प्रोवाच सरस्वत्यै विशेषतः ॥५६॥
आराधय तदर्थं त्वं राममेव सनातनम् ।
सहजाप्राणदयितमङ्गप्रत्यङ्गसुन्दरम् ॥५७॥
तदनुग्रहतः किंचित् ज्ञानं तव भविष्यति ।
येन तस्य चरित्रं ते गोचरत्वमुपैष्यति ॥५८॥
त्वद्गोचरत्वं संप्राप्य ममापि प्रतिभास्यति ।
इत्युक्त्वा भारती देवी स्वलोके ब्रह्मणा पुरा ॥५९॥
रामं समाराधयितुं प्रमुद्वनमुपागमत् ।
तमसासरयूतीरे निवसन्ती दिने दिने ॥६०॥
आरराध प्रभुं रामं सहजावल्लभं हरिम् ।
यथा तुष्यति राजीवलोचनो रामया सह ॥६१॥
एकदा भगवाँस्तस्याः कामं पूरयितुं स्वयम् ।
आजगाम प्रसन्नात्मा रामः सहजया सह ॥६२॥
सा तमालोक्य सहजावल्लभं राममीश्वरम् ।
दण्डवत्पतिता भूमौ भक्त्या संजातया हृदि ॥६३॥
उत्थाय च ततो देवमिदमाह सरस्वती ।
तव लीला रसमयी कालमायाद्यगोचरा ॥६४॥

सा मे गोचरतां यातु प्रार्थयामि पुनः पुनः ।
राजरूपेण भवता कृपा मयि विधीयताम् ॥६५॥

राम उवाच

मम लीलारसानन्दो देवानामपि दुर्लभः ।
तस्याधिकारी सुखितः सुकण्ठश्च भविष्यति ॥६६॥
मम भक्तान् समालोक्य यत्रैतौ कथयिष्यतः ।
तत्र त्वं संनिधौ भूत्वा सर्वं श्रोष्यसि भामिनि ॥६७॥
आदिव्रजे तु या लीला मम लीलारसात्मनः ।
अतः सा प्रकटीभूता भविष्यति न संशयः ॥६८॥
सुखितो नाम गोपालो दृष्ट्वाप्यैश्वर्यमद्भुतम् ।
पुत्रस्नेहपरीतात्मा माधुर्यं बहुमन्यते ॥६९॥
सुकण्ठश्च सखा नित्यं मदीयः पद्मलोचनः ।
मम रासविलासादिलीलासाक्षी सुहृत्तमः ॥७०॥
एतौ रहस्यगां लीलां लोकेऽस्मिन् स्फुटयिष्यतः ।
ततश्च त्वं समाकर्ण्य ब्रह्मणे कथयिष्यसि ॥७१॥
ब्रह्मा ममात्यन्तभक्तभुशुण्डाय गदिष्यति[1] ।
एवं भुशुण्डो भगवान् दाल्भ्याय कथयिष्यति ॥७२॥
स चाख्यास्यति संप्राप्य कृपां लोमशशर्मणे ।
एवमादिव्रजे जाता मल्लीला व्यक्तिमेष्यति ॥७३॥
इत्थमाख्याय भगवान् सरस्वत्यै तपः फलम् ।
जगाम वल्लभायुक्तो रन्तुं श्रीमत्प्रमुद्वने ॥७४॥
एवं राजन् विजानीहि सरस्वत्यै यथा प्रभुः ।
कृपां चकार चावाभ्यां कीर्तितास्तद्गुणा यतः ॥७५॥
तीर्थस्थानप्रसंगेन मया तुभ्यं प्रकीर्तितम् ।
चरितं रामचन्द्रस्य कालमायादयगोचरम् ॥७६॥
अनर्हं यन्मया वक्तुं शृङ्गारैकान्तमद्भुतम् ।
तत्ते सुकण्ठगोपालः प्रोवाच श्रीपतेः सखा ॥७७॥

---

१. भक्ते भुशुण्डे कथयिष्यति—मथु०, बड़ो० ।

इत ऊर्ध्वमयोध्यायां विचरन् प्राणजीवनः ।
चकार यद्यच्चरितं तत्स्वयं वेत्सि भूपते ॥७८॥
सरस्वत्यास्तु तपसा प्रसादात्तु रमापतेः[1] ।
सर्वं पश्यामि चरितं पुरःस्थविषयोपमम् ॥७९॥
गत्वायोध्यां पुरीं रामो विश्वामित्रेण योगिना ।
प्रार्थितो यज्ञरक्षार्थं गमिष्यति तदाश्रमम् ॥८०॥
आदौ स ताडकानाम्नीं राक्षसीं निहनिष्यति ।
ततो मखस्यान्तरायान् राक्षसान् संहरिष्यति ॥८१॥
ततो जनकराजस्य मिथिलां प्रतियास्यति ।
तत्र शम्भोर्धनुर्भङ्गं कृत्वा सीतां पणीकृताम् ॥८२॥
पाणिग्रहेण विधिना ग्रहीष्यति च सादरम् ।
तत्र भार्गवतेजोऽयं तेजसा संहरिष्यति ॥८३ ।
ततो विजयवानेष पुनः साकेतमेष्यति ।
महान्तमुत्सवं तत्र करिष्यन्त्यस्य मातरः ॥८४॥
दृष्ट्वा सीतायुतं रामं सुखमेष्यन्ति मानवाः ।
एवमस्य कियान् कालः सीतासौख्येन यास्यति ॥८५॥
ततो यदा भवान् राजन् कर्ता महाभिषिञ्चनम् ।
तदा केकयराजस्य पुत्र्या याच्यं वरद्वयम् ॥८६॥
भरते राज्यतिलकं रामनिर्वासनं वने ।
तदासौ भगवान् रामः सर्वत्र समदर्शनः ॥८७॥
निजलीलारसं पुष्णन् प्रस्थास्यति ततो वने ।
त्रिरात्रं सलिलं प्राश्य चतुर्थेऽह्नि फलाशनः ॥८८॥
ततो गङ्गां समुत्तीर्य चित्रकूटमुपैष्यति ।
तत्रास्माभिः समं तस्य संगमो भविता हरेः ॥८९॥
स तत्र भगवान् वीरः पश्यतामेव नस्तदा ।
दिव्यं धनुः समादाय सन्धास्यति शरद्वयम् ॥९०॥

---

१. सीतापतेः—रीवाँ ।

जिहन्म्येष विराधाद्यान् राक्षसान् भुवनद्रुहः ।
करोम्येतत्सतां रक्षाविधानं विधिनामुना ॥९१॥
इत्युक्त्वा दीर्घशब्देन मुमोच विशिखद्वयम् ।
प्रमोदवनमायातः स्वयं सीतानुजान्वितः ॥९२॥
तौ शरौ रोदसी भाभिर्द्योतयन्तौ दिशस्तथा ।
महाघोरं वनं प्राप्य जज्ञाते रामलक्ष्मणौ ॥९३॥
प्रभा तु साभवत् सीता तद्विलोक्यान्तरिक्षगाः ।
देवाः किमेतदित्यन्तर्विस्मयं प्रापुरुत्तमम् ॥९४॥
ततो वनचरैर्दृष्टौ गच्छन्तौ पथि निर्भयौ ।
खड्गिनौ बद्धतूणीरौ चापहस्तौ श्रियान्वितौ ॥९५॥
विराधाद्यान् महाघोरान् हत्वा राक्षसपुङ्गवान् ।
गोदातीरस्थितान् विप्रान् रक्षन्तौ विचरिष्यतः ॥९६॥
एवं क्रमेण यास्येते रम्यं पञ्चवटीवनम् ।
तत्र सूर्पनखा नासाकर्णकृन्तनपूर्वकम् ॥९७॥
तत्पृष्ठगान् महाघोरान् राक्षसान् संहरिष्यति ।
महापराक्रमयुतान् खरादीन् खलदारुणान् ॥९८॥
दण्डकावनमध्ये च कल्याणं वितनिष्यतः ।
तच्छ्रुत्वा तस्य चरितं रावणः क्रोधमेष्यति ॥९९॥
ततो मारीचसहितो रथमास्थाय रावणः ।
प्राप्तः[1] पञ्चवटीं यत्र सीता रामश्च लक्ष्मणः ॥१००॥
मारीचं मृगवेषेण वेशयित्वा स मायया ।
तत्पृष्ठतो गते रामे लक्ष्मणे तस्य पृष्ठतः ॥१०१॥
आश्रमं शून्यमालोक्य भूत्वा कपटतापसः ।
जहार रावणस्तूर्णं सीतां छायामयीं स्त्रियम् ॥१०२॥
सीता नु गार्हपत्याग्नौ प्रविष्टा श्रीः स्वयंभवा ।
ततो राम उपावृत्तो लक्ष्मणेन सह प्रभुः ॥१०३॥

---

१. यात :—मथु०, बड़ो० ।

दर्शयन् मानुषीं लीलां विरहार्तोऽभवद्वने ।
तावन्निमित्तमासाद्य देवः क्रीडनकौतुकी ॥१०४॥
हतवान् स कुलं रक्षो देवकार्यार्थसिद्धये ।
विभीषणाय भक्ताय लङ्कां दास्यति तत्र सः ॥१०५॥
साधयित्वा देवकार्यं पावकेन समर्पिताम् ।
सीतामादाय विनयो पुनः साकेतमागतः ॥१०६॥
तस्मिन् प्रसङ्गे हनुमत्सुग्रीवाद्यैः कपीश्वरैः ।
उपास्यमानचरणः प्रभुर्विजयतेतराम् ॥१०७॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं चरितं सहजापतेः ।
श्रोतव्यं कीर्तितव्यं च ध्येयं चैव सतां सदा ॥१०८॥
प्रमोदविपिने तस्य नित्यलीलेति भावय ।
अयोध्यायां चित्रकूटे तथान्यत्र प्रिये स्थले ॥१०९॥
नैमित्तिकी पुनर्लीला धर्मग्लानिनिमित्तजा ।
भूभारहरणार्था च सापि सद्भिर्विचिन्त्यते ॥११०॥
एकैकं तस्य चरितं कर्णपीयूषमेव हि ।
निपीय विबुधाः सर्वेऽप्यजरामरतां ययुः ॥१११॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रायां आदिव्रजागमने षट्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१३६॥

सप्तत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एवमाकर्ण्य नृपतिः सुखिताद् गोदुहांपतेः ।
कर्णपीयूषरस्यं तद्रामेन्दुचरितं शुभम् ॥ १ ॥
सद्यःपुलकिताशेषदेहः संप्रीतमानसः ।
उत्फुल्लनयनद्वन्द्व इदमूचे स्मिताननः ॥ २ ॥

राजोवाच

धन्योऽहमादिव्रजवासिनां वः पादाब्जरेणुप्रकरेण पूतः ।
दृष्ट्वा परां स्नेहदशाममीषां संजातशिक्षः सहसा कृतार्थः ॥३॥
युष्माकं कृपया शश्वद्वर्धमानरसोदयः ।
कामप्यवस्थां बिभ्राणस्तिष्ठामि धरणीतले ॥ ४ ॥
युष्माभिः सह संगम्य दृष्ट्वा चादिव्रजस्थलीम् ।
रामप्रेमकथाः श्रुत्वाधुना किं तीर्थयात्रया ॥ ५ ॥
समाप्तान्यसमाप्तानि यानि तीर्थानि गोपते ।
तानि मे सफलान्येव भवतां संगमात्रतः ॥ ६ ॥
दानं व्रतं वा हवनं तपो वा करोमि यद्यत् सुकृतं व्रजेन्द्र ।
तन्निष्ठयाहं स्पृहयामि शश्वन्नित्योदयं जानकीरामचन्द्रयोः ॥ ७ ॥
एतावत्तीर्थयात्रायाः फलं सुकृतमूर्जितम् ।
यद्रामचन्द्रविषये परा प्रीतिः प्रवर्द्धताम् ॥ ८ ॥
अनुजानीहि मां भद्र शेषां यात्रां समापितुम् ।
चिराय दुःसहं मन्ये रामस्य विरहं हृदि ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

सहजारामलीलानां तानि तानि विलोक्य सः ।
स्थानानि रम्यरूपाणि परमानन्दमन्वभूत् ॥१०॥
गोपीनां चैव रामस्य [1]विहारस्थानमद्भुतम् ।
रासस्थानं रतिस्थानं[1] विरहस्थानमेव च ॥११॥
दानलीलारसस्थानं मानलीलारसस्थलम् ।
सङ्केतविषयस्थानं कुञ्जानि च पृथक् पृथक् ॥१२॥
दृष्ट्वा दशरथो राजा परमप्रेमविह्वलः ।
आनन्दनिर्भरो भूत्वा ससुहृत्परिवारकः ॥१३॥
जगाम नृपशार्दूलः सरयूस्रवणं सरः ।
तत्र स्नात्वा स विधिवत् कौशिकीं पुण्यवाहिनीम् ॥१४॥

१—१. नास्ति—रीवाँ ।

जगाम तत्र आगत्य तमसां सरयूं तथा ।
गोमतीं जनपापघ्नीं संगमे चोभयोरिह ॥१५॥
ब्रह्मावर्तं महातीर्थं यत्र स्नात्वा विशेषतः ।
दत्त्वा ब्राह्मणवर्येभ्यो गाः सुवर्णं महद्धनम् ॥१६॥
स ततः प्रस्थितो राजा नैमिषारण्यमुत्तमम् ।
स्नानदानफले लब्ध्वा संभोज्य[1] ब्राह्मणान् बहून् ॥१७॥
एवं क्रमेण समगात्तीर्थराजं नृपोत्तमः ।
यत्राश्वमेधो विहितो ब्रह्मणा दैवतैः सह ॥१८॥
सर्वे च निर्जरा यत्र वेदान् प्राप्य सुहर्षिताः ।
तत्र स्नात्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रादाद्बहुतरं धनम् ॥१९॥
पुलहस्याश्रमे गत्वा कृतातिथ्यः स तेन च ।
तत्रत्ये तीर्थे आप्लुत्य प्रसन्नहृदयोऽभवत् ॥२०॥
हरिक्षेत्रे समाप्लुत्य श्रुत्वा पुण्ययशो हरेः ।
गोमत्यां चैव गण्डक्यां विपासाशोणभद्रयोः ॥२१॥
स्नात्वा दत्त्वा च द्रविणं ब्राह्मणेभ्योऽभवच्छुचिः ।
ततो वाराणसीं गत्वा स्नात्वा च मणिकर्णिकाम् ॥२२॥
देवं विश्वेश्वरं दृष्ट्वा पर्यपूजच्छुभेच्छया ।
असीवरुणयोर्मध्ये यानि तीर्थानि सन्ति वै ॥२३॥
तानि सर्वाणि विधिवदाचचार नृपोत्तमः ।
ततश्च स गयास्थानमयासीन्नृपसत्तमः ॥२४॥
पितृभ्यः पिण्डदानं च कृत्वा तत्रातिहर्षितः ।
ततः क्रमेण संप्राप्तो गंगासागरसङ्गमे ॥२५॥
कपिलस्याश्रमे गत्वा स्नात्वा च विधिसंयुतः ।
रामप्रसादसंप्राप्त[2]दिव्यदृष्टिर्व्यलोकत ॥२६॥
हाटकेश्वरसंज्ञं तच्छिवलिङ्गं हिरण्मयम् ।
आप्लुतः सागरे राजा कुर्वन् पृथ्वीप्रदक्षिणाम् ॥२७॥

---

१. संपूज्य—रीवाँ । २. °प्रसादत. प्राप्त°— मथु० बड़ो० ।

पुरुषोत्तमसंज्ञं तत् सिद्धक्षेत्रमुपागमत् ।
नीलमाधवमालोक्य शङ्खचक्रादिभूषितम् ।
तत्रत्यैर्वैष्णववरैः संगतो मुनिपुङ्गवैः ॥२८॥
रामस्वरूपं निगमत्रयस्तुतं तेभ्यः समाकर्ण्य नृपोऽतिहर्षितः ।
जगत्पतेर्नीलगिरीशितुः शुभं प्रसादमास्वाद्य सुतृप्तिमानभूत् ॥२९॥
ततः कुर्वन् सुतीर्थानि महेन्द्राचलमागतः ।
तत्रोपस्पृश्य सलिलं ददर्श भृगुनन्दनम् ॥३०॥
एकविंशतिधा येन निःक्षत्रा धरणी कृता ।
वरेण्यं तपसां राशिं तमवन्दत भार्गवम् ॥३१॥
सप्तगोदावरीं गत्वा स्नात्वा च विधिपूर्वकम् ।
वेणां पुण्यां नदीं यातः कृष्णया सह संगताम् ॥३२॥
आप्लुत्य विधियत्तस्यां स्नात्वा पम्पासरस्यपि ।
आप्लुतो भीमरथ्यां च ब्राह्मणेभ्योऽददाद्धनम् ॥३३॥
स्वामिनं स महासेनं दृष्ट्वात्यन्तं मुदान्वितः ।
श्रीपर्वतं जगामाथ यत्र साक्षादुमापतिः ॥३४॥
तीर्थानि द्राविडे देशे यानि कानि च भूपतिः ।
आप्लुत्य विधिना स्नातो[1] वेङ्कटाद्रिं ददर्श सः ॥३५॥
कामकोटिपुरीं गत्वा स्नात्वा च नृपसत्तमः ।
ययौ काञ्चींनाम पुरीं विष्णोरपि शिवस्य च ॥३६॥
कावेरीं स समाप्लुत्य सरित्कुलनमस्कृताम् ।
श्रीरङ्गपट्टनं नाम विष्णोर्धाम व्यलोकत ॥३७॥
यत्र साक्षाद्रमाकान्तः सर्वदेवनिषेवितः ।
आस्ते जगत्त्रयस्यैष कल्याणगुणसागरः ॥३८॥
ऋषभाद्रिमुपव्रज्य पुण्यश्लोको नराधिपः ।
हरेःक्षेत्रविशेषेण स्नानदानादिपूर्वकम् ॥३९॥
कृत्वा यात्रां मनोवृत्ति प्रसादजननीं ततः ।
दक्षिणां मथुरां गत्वा शुश्राव चरितं हरेः ॥४०॥

---

१ विधिनिष्णातो—मथु०. बड़ो० ।

यत्र रामः पुराक्रीडन् द्राविडीभिः सह स्वयम् ।
भक्ताभिर्वरवामाभिर्दिव्यरासविलासकैः ॥४१॥
मथुरायां दक्षिणस्यां गीयमानं मनस्विभिः ।
मुनिभिः कोविदैश्चापि श्रुतरामयशोऽद्भुतम् ॥४२॥
सेतुबन्धेश्वरं दृष्ट्वा स्नात्वा दक्षिणसागरे ।
अमन्यत पुराजातं रामस्याद्भुतचेष्टितम् ॥४३॥
नित्यतां च स्वरूपस्य तथा नाम्नश्च कर्मणः ।
अन्यानि चैवास्य विभोः पुरावृत्तानि सैक्षत[1] ॥४४॥
सर्वत्र दक्षिणे देशे रामस्य यशसाङ्कितान् ।
वीक्ष्य पुण्यतमान् देशान् मुमुदे कैकयीपतिः ॥४५॥
सेतुबन्धे कृतस्नानो द्विजन्मभ्योऽददाद्बहु ।
हिरण्यं द्रविणं धेनूर्वासांसि विपुलाशयः ॥४६॥
कृतमालां नदीं पुण्यां सिद्धगन्धर्वसेविताम् ।
दृष्ट्वा स्नात्वा च विधिना स्वतनुर्बहु [ह्व] मन्यत ॥४७॥
ताम्रपर्णीं ततो गत्वा द्रविडावनिभूषिणीम् ।
विलुनज्जलकल्लोलैर्मिलन्तीं दक्षिणार्णवे ॥४८॥
कुलाद्रिं मलयं दृष्ट्वा निर्झरेष्ववगाह्य च ।
दिव्यानि वीक्ष्य लिङ्गानि शिवस्य परमात्मनः ॥४९॥
भूयः सुकृतसाराणि व्यतनोत् तत्र तत्र सः ।
दृष्ट्वा कन्यां कुमारीं च संपूज्य च स्वभक्तितः ॥५०॥
रामस्य पुत्रभूतस्य प्रार्थयामास वैभवम् ।
भूयः सुकृतसाराणि व्यतनोत् तत्र तत्र सः ॥५१॥
नत्वा कन्यां कुमारीं च संपूज्य च स्वभक्तितः ।
ततोऽनन्तपुरेऽगच्छत् तत्र पञ्चाप्सरं सरः ॥५२॥
दृष्ट्वा स्नात्वा च विधिवद्विष्णुप्रीतिस्पृहाधरः ।
सत्रिलक्षमदाद् धेनूस्तीर्थेऽमुष्मिन् शुभावहे ॥५३॥

---

१ संस्मरन्—रीवाँ ।

कृत्वा यथोक्तद्विगुणपरिच्छदसमन्वितः ।
केरलेषु च तीर्थानि रामपादाङ्कितानि सः ॥५४॥
बभ्राम नृपशार्दूलश्चिन्वन् पुण्यमसंख्यकम् ।
गोकर्णमगमद्राजा यत्र संनिहितः शिवः ॥५५॥
तत्र स्नात्वा तीर्थजलैः पूजयामास शङ्करम् ।
आर्यादेवीं समालोक्य महापूजामचीकरत् ॥५६॥
समुद्रद्वीपमध्यस्था सा सर्वजनकामदा ।
तत्र सूर्यसुतां तापीं समपश्यन्नृपोत्तमः ॥५७॥
स्नात्वा दत्त्वा द्विजन्मभ्यः कृतार्थं स्वममन्यत ।
पयोष्णीं पुण्यसलिलां कलिपापापहारिणीम् ॥५८॥
दृष्ट्वा च नृपतिस्तत्र स्नानाचमनकर्मसु ।
ब्राह्मणेभ्योऽयुतं धेनूरददद्विमलाशयः ॥५९॥
पञ्चरात्रं स्थितस्तत्र पूजयन् द्विजदेवताः ।
निर्विन्ध्यां च महापुण्यदर्शनस्पर्शनाचमनाम् ॥६०॥
विलोक्य समुपस्पृश्य पुण्यं भाग्यं च लब्धवान् ।
ययौ स दण्डकारण्यं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥६१॥
नानामुनिगणाकीर्णां पुण्यपुञ्जविवृद्धिमत् ।
तत्र रेवाभिधां पुण्यां नदीं पुण्यजनार्चिताम् ॥६२॥
माहिष्मतीं पुरीं रत्नविस्फुरच्चारुकामिनीम् ।
अनेकाद्भुतसंपन्नामनेकशतमङ्गलाम् ॥६३॥
अनेक शिवलिङ्गाढ्यां ददर्श नृपपुङ्गवः ।
तस्यां स्नात्वा पुण्यतमैर्जलैस्तापमलापहैः ॥६४॥
शिवलिङ्गानि चापूज्य बभूव प्रियमानसः ।
दृष्ट्वा वैडूर्यशैलं च देवतागणसेवितम् ॥६५॥
स्नात्वा ब्रह्मद्रवमये तीर्थे चामरकण्टके ।
मनुतीर्थे समालोड्य शरीरं विगतज्वरः ॥६६॥
तत्र नत्वाभ्यर्च्य शिवमात्मानं बह्वमन्यत ।
अम्बिकावनयात्रां च कृत्वा संपूज्य चाम्बिकाम् ॥६७॥

सरस्वतीमुपस्पृश्य भूयः संशुद्धमानसः ।
कुर्वन् बहूनि तीर्थानि द्विजन्मभ्योऽददद्धनम् ॥६८॥
अर्जयानश्च सुकृतं कीर्तिं च त्यागसंभवाम् ।
प्रतिस्थानं प्रतिक्षयं ब्रह्मसत्रं समादिशन् ॥६९॥
शृण्वन् यशांसि रामस्य पूजयानो हरं हरिम् ।
दृढं बीजं वपन् पुण्यं धरण्यां धरणीपतिः ॥७०॥
क्रमेण कुर्वंस्तीर्थानि प्रभासक्षेत्रमागमत् ।
यत्र श्रीयादवेन्द्रस्य स्वेच्छया सर्वयादवैः ॥७१॥
अन्योन्यमौशलाच्छापात् प्रहृत्यात्मा विनाशितः ।
यत्राश्वत्थतले विष्णुः शयानः स्वयमच्युतः ॥७२॥
भिल्लेन निहतः पादे बभूवान्तर्हितः क्षणात् ।
तस्मिन् क्षेत्रे सर्वदेवनित्यस्थाने महाद्भुते ॥७३॥
संपूज्य शङ्करं देवं सर्वान् देवानपूजयत् ।
तत्र ब्राह्मणवर्येभ्यो यादवानां तथोन्नतिम् ॥७४॥
विनाशं ब्रह्मशापाच्च श्रुत्वा विस्मित आस सः ।
मेने च ब्राह्मणान् सर्वदेवेभ्योऽत्यधिकं भुवि ॥७५॥
सर्वभूतानुग्रहार्थमवतीर्णः स्वयं हरिः ।
अथासौ श्रद्धया युक्तो जगाम द्वारकापुरीम् ॥७६॥
यत्र श्रीद्वारकेशस्य मन्दिरं सर्वकामदम् ।
षण्मासाज्जायते यत्र शंखो मानवमस्थ्यपि ॥७७॥
यत्र गर्जति चाम्भोधिर्हरन् पापानि जन्मिनाम् ।
तत्र गत्वा महानद्यां गोमत्यां धौतविग्रहः ॥७८॥
ददौ ब्राह्मणवर्येभ्यो गाः सुवर्णं धनं बहु ।

भुशुण्ड उवाच

श्रुतं परात्परं रामं द्वारकायां तु[1] राघवम् ।
भावयामास नृपतिरेतन्मे त्वं वद प्रभो ॥७९॥

---

१. द्वारिकाधीशात्—मथु०, वड़ो० ।

ब्रह्मोवाच

प्रभासक्षेत्रमध्येऽस्य दुर्वासा मुनिपुङ्गवः ।
वेदव्यासेन मुनिना वार्तयन् विविधाः कथाः ॥८०॥
मिलितः सोमनाथस्य निषण्णौ तौ तु पार्श्वतः ।
दृष्ट्वा स रघुशार्दूलो ववन्दे तौ यथाक्रमम् ॥८१॥
स्वागतं कुशलप्रश्नमातिथ्यं बहु संविधम् ।
राज्ञः सपरिवारस्य चक्रतुस्तौ प्रसादिनौ ॥८२॥
तयोस्तादृक् परं प्रेम दृष्ट्वा नृपतिभूषणः ।
उवाच प्रश्रयन्नन्तः प्रसन्नहृदयो नृपः ॥८३॥

राजोवाच

किमत्र कुरुतः स्थाने विजने ब्रह्मवित्तमौ ।
किंस्वित्परात्परं तत्त्वं युवां भावयतस्तराम् ॥८४॥
अहो वां स्वामिनौ सिद्धौ सर्वज्ञौ विदितार्थकौ ।
न किंचिद् युवयोरत्र भवत्यविदितं मुनी ॥८५॥
[1]सौराष्ट्रे पञ्चरत्नानि नदीनारीतुरङ्गमाः ।
द्वारका यादवेन्द्रस्य सोमनाथश्च पञ्चमः[1] ॥८६॥

व्यास उवाच

एतस्य ऋषिवर्यस्य सूनोरत्रेर्महात्मनः ।
मुखाम्बुजाद्विगलितं शृण्मो रामकथामृतम् ॥८७॥
तदेव परमं वेद्यं सारात्सारं जगत्त्रये ।
सर्वोपनिषदां वेद्यं सर्वानुभवगोचरम् ॥८८॥
आत्मारामधुरीणानामात्मरूपेण भासुरम् ।
एकधानेकधा चैव व्याप्य भूतानि संस्थितम् ॥८९॥
रामः स्वयं स भगवान् सकलागमानां तत्त्वं मुनीन्द्रहृदयातिगनित्यरूपः ।
यस्य प्रमोदवनसंज्ञमनन्तमेव धामाक्षरं तपनकोटिरुचा समेतं ॥९०॥
सर्वावतारगणमूलमनन्तमाद्यं यद्रूपमादिकवयः सततं गृणन्ति ।
ब्रह्मेति बृंहणतया च बृहत्वतश्च स्वात्मेति भूरिभगवानिति सुप्रसिद्धम् ॥९१॥

१—१—नास्ति—रीवाँ ।

भूमाभिधः पुरुष एतदशेषलोकसंस्थामयावयववान् सकलात्मभूतः[1]।
अंशोऽस्य सोऽपि गदितः सहितः प्रकृत्या तेनोत्तमा जयति तस्य पराविभूतिः ९२

एवं व्यस्तसमस्ताभ्यां स्वरूपाभ्यां स्वयं प्रभुः ।
विभाति सकलैर्वेदैरेको रामः प्रशस्यते ॥९३॥
एवमस्य मुनीन्द्रस्य मुखादाकर्ण्य तत्त्वतः ।
स्वरूपं रामचन्द्रस्य विस्मयो मे महानभूत् ॥९४॥
भक्तिर्मम पुनश्चैव रामचन्द्रे सतां गतौ ।
भूयो वृद्धिमतीतेन संवादोऽत्रावयोरभूत् ॥९५॥
जायमाने तु संवादे रामचन्द्रैकगोचरे ।
आवयोः संशयोच्छित्यै नाभसी वागभूदिह ॥९६॥
"सर्वश्रीरामचन्द्रेति वेदसारं परात्परम् ।
येऽन्ये कृष्णादयः सर्वेऽप्यवताराहृसंख्यकाः ॥९७॥
रामस्यैव कलांशास्ते त्ववतारी रघूत्तमः ।
एवं प्रमुदवनस्यैव कला वृन्दावनादयः ॥९८॥
तथा सीता पराशक्तेरंशा राधादयः स्त्रियः ।
तथा सरय्वाश्चैव कलाः श्रीसूर्यतनयादयः" ॥९९॥
इति श्रुत्वा गिरं व्योमीं निष्ठा नौ समभूद् दृढा ।
एवं श्रीरामचन्द्रेति ध्यायतोः सुहितात्मनोः ॥१००॥

राजोवाच

धन्यौ युवां मुनिवरौ विदितेशतत्त्वौ
भक्त्या प्रभूतपुलकाङ्कुरशालिदेहौ ।
सङ्गाद्ययोरखिलजीवकदम्बकस्य
भाग्यं भवे भवति तत्परतत्त्वलाभात् ॥१०१॥
नमो दुर्वाससे तुभ्यं योगीन्द्राय महात्मने ।
रामभक्तिमहासद्मस्तंभरूपाय तद्विदे ॥१०२॥
यस्यानुग्रहमासाद्य तत्रादिव्रजधामगाः ।
आतुरा गोपवनिताः सहजामन्त्रमाप्नुवन् ॥१०३॥

---

१. संस्थाप्यवान् सकललोकजनात्मभूताः—रीवाँ ।

सहजामन्त्रतन्त्रादितत्त्वं लब्ध्वा व्रजाङ्गनाः ।
साक्षाच्चक्रुः परानन्यां तामेव परदेवताम् ॥१०४॥
ततश्च ता वशीचक्रुस्तस्या करुणया परम् ।
प्रमोदवनचन्द्रं तं रामचन्द्रं परात्परम् ॥१०५॥
इति शुश्रुम योगिभ्यो भगवन्नत्रिसंभव ।
माहात्म्यं तव तादृग्वै तत्ते कुर्मो नमोनमः ॥१०६॥
नमः सत्यवतीसूनो तुभ्यं विदितवेद्यक ।
यस्य वागमृताम्भोधिः सेव्यः परमहंसकैः ॥१०७॥
यस्य सूनुः शुको नाम योगीन्द्रः परमात्मवित् ।
प्लावयत्यखिलं लोकमात्मज्ञानोपदेशनैः ॥१०८॥
जातं सर्वं तीर्थयात्राफलं मे क्षेत्रेऽस्मिन् वै युवयोर्दर्शनेन ।
यद्वाञ्छन्तः सकलं त्यज्य पूर्वे युक्ताःप्राज्ञाः काननं शीलयन्ति ॥१०९॥

दुर्वासा उवाच

आवयोः परमं तत्त्वमनुभूय सतोरिह ।
निष्ठाविवर्द्धनाय त्वं किंच ब्रूहि महीपते ॥११०॥

राजोवाच

किमहं वेद्मि सर्वज्ञौ कथं च मम वाक्यतः ।
स्वभावसिद्धा युवयोर्निष्ठा संपरिवर्त्तते ॥१११॥

दुर्वासा उवाच

सर्वं त्वं वेत्सि भूपाल यद्वेद्यं योगिनामपि ।
यस्यात्यलं भूषयति स्वयं स भगवान् परः ॥११२॥
यस्य संदर्शनं लभ्यं न कोटया तपसामपि ।
त्वया वै क्रियमाणं स जानाति प्रेमलालनम् ॥११३॥
त्वदङ्कनीलरत्नस्य रामस्य परमात्मनः ।
अद्भुतानि चरित्राणि गायन्ति मुनयो भुवि ॥११४॥
अहो भाग्यं नृपते तावकीनं, किमस्माभिः कथ्यतां योगशीलैः ।
संदर्शनस्पर्शनालापशश्वदेकासनस्थितिसंभोजनाद्यैः ॥११५॥

राजोवाच

जानामि न ब्रह्मतया परमात्मतयापि च ।
भगवत्त्वेनापि चैनं रामं प्रेमैकभाजनम् ॥११६॥
पुत्रेति परवात्सल्यप्रेम्णा परमसुन्दरम् ।
तं सेवे सर्वलोकैककल्याणगुणभूषणम् ॥११७॥
जानामि नास्य भावस्य कलामपि च षोडशीम् ।
वैराग्यं वा तपो वापि ज्ञानं वा ब्रह्मगोचरम् ॥११८॥

ब्रह्मोवाच

एवमालप्य योगिभ्यां ताभ्यां स नृपसत्तमः ।
प्रतस्थौ द्वारकापुर्यां ज्ञाततत्त्वो विशेषतः ॥११९॥
ततः स राघवेन्द्रे च पराभक्त्या प्रसन्नधीः ।
पञ्चरात्रं द्वारकास्थो भावयानः परं पदम् ॥१२०॥
शैलं रैवतकं नाम दृष्ट्वा तत्तीर्थराशिषु ।
उपस्पृश्य शुभाश्चापः प्रादक्षिण्यक्रमादगात् ॥१२१॥
स्नात्वा पञ्चनदं राजा ददानः स्वर्णगोधनम् ।
उपस्पृश्य रयः सिन्धोरगात्काश्मीरमण्डलम् ॥१२२॥
तत्र दिव्यानि तीर्थानि यात्रयित्वा नृपोत्तमः ।
कुरुक्षेत्रं ततोऽगच्छत् प्रसन्नः शुचिमानसः ॥१२३॥
स्नात्वा जले सरस्वत्याः सिद्धदेवर्षिसेविते ।
रामह्रदेषु पुण्येषु समुपस्पृश्य भक्तितः ॥१२४॥
पृथूदकमगाद् भूयः काशीकोटिफलाधिकम् ।
यमुनातीर्थवर्येषु स्नानं चक्रे सभक्तितः ॥१२५॥
गङ्गाद्वारमगाद्भूयः पुण्यं विश्वस्य पावनम् ।
वसुधाराजले स्नात्वा ब्राह्मणेभ्योऽददाद्धनम् ॥१२६॥
विशालां नगरीं गत्वा तपोवनशुभाध्वना ।
दृष्ट्वा बदरिकास्थानं केदारं चाव्रजत्ततः ॥१२७॥
ततस्तुषारपटलैराकीर्णेन पथा नृपः ।
तदा कांश्चिद् द्विजान् भृत्यान् बभाषे रघुनन्दनः ॥१२८॥

राजोवाच

निवर्त्यतामितो लोका ये भोक्तारोऽन्नमुत्तम् ।
यस्याभिलाषा भोग्येषु ये वस्त्राद्यभिलाषुकाः ॥१२९॥
येषां मनः सुखे नित्यं तपस्युद्वेगिनश्च ये ।
त इतः प्रतिगच्छन्तु ममायोध्यां शुभां पुरीम् ॥
तत्र रामो महावीरः पालयिष्यति तान् जनान् ॥१३०॥

जना ऊचुः

न कश्चिदेतेषु जनेषु राजन् विना भवन्तं क्वचिदासितुं क्षमः ।
आपद्गतौ वा तपसि स्थितौ वा ये त्वामजस्रं परिवार्य तस्थुः ॥१३१॥
अस्ति यद्यपि रामेन्दुः सर्वेषां सुखदायकः ।
तथापि वयमेकं त्वां नित्यमेव भजामहे ॥१३२॥

अतो वयं सुखलोभेन न त्वां विहाय साकेतपुरीं यियासवः ।
यत्पार्श्वगा केकयराजकन्या तपोयुता कुरुते राजयात्राम् ॥१३३॥
विजनेषु महारण्येष्वन्नवर्जेषु भूपते ।
सर्वसौख्यविवर्जेषु भीतिस्थानेषु संततम् ॥१३४॥
फलपत्रादिरहितेष्वपि शीतातपादिभिः ।
उद्वेजिता अपि परं स्थास्यामस्तव संनिधौ ॥१३५॥
भवान् नृपतिशार्दूल यया गत्या भविष्यति ।
सैवास्माकं गतिर्हीष्टा सुखं वा दुःखमेव वा ॥१३६॥
धिगेव केवलं तान्वै राजन् वृत्त्याधमान् नरान् ।
ये सुखे स्वामिसंपृक्ता दुःखेष्वेतं जिहासवः ॥१३७॥
न ते समुन्नतां भूतिं स्वामिनः प्राप्नुवन्ति हि ।
क्षेमेण तेषां चित्तानि विकृतानि प्रकुर्वते ॥१३८॥
ये पुनर्दुःखिता दुःखे सुखेषु सुखिताशयाः ।
भूरि भाजनतां यान्ति ते नराः स्वामिना समम् ॥१३९॥
ये पुनर्ब्राह्मणा लोके क्षेत्रे भूयस्तपस्यति ।
अलसा भुञ्जते भोगान् हास्यास्ते तत्समीपगैः ॥१४०॥

तस्माद्वयं महाराज क्षणं न त्वां तितिक्षवः ।
तीर्थयात्रां समाप्यैव द्रष्टारः स्वं स्वमालयम् ॥१४१॥
योऽयं जन्मादितः कृत्वा मरणान्तं प्रपालकः ।
तं विहाय महीपाल सुखलोभाद् व्रजाम किम् ॥१४२॥
उक्त्वैवं प्रस्थिताः सर्वे तस्य सङ्गे महीपतेः ।
अयोध्यावासिनो लोका ये पूर्वं पृष्ठगामिनः ॥१४३॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा योषित एव च ।
संबन्धिनश्च सुहृदो भृत्याः सख्यजुषो जनाः ॥१४४॥
युवान ईषत्तरुणा वर्षायां सोऽल्पगामिनः ।
चित्तोत्साहं पुरस्कृत्य दिव्यं स्थानं दिदृक्षवः ॥१४५॥
केकयी च महाभागा कोमलाङ्घ्रिसरोरुहा ।
हिमार्ता संकुचन्नासा गच्छती त्यक्तभोगकाः ॥१४६॥
पृष्टस्थीकृतराज्यश्रीः सर्वसौख्या तपस्विनी ।
महातुषारपवनैरुद्विग्नस्थिरमानसा ॥१४७॥
पृष्ठतो निजभर्तारमनुयान्ती सुधीरहृत् ।
महत्यास्तीर्थयात्रायाः सिद्धलक्ष्मीरिवाद्भुता ॥१४८॥
स भूपतिस्तत्र तत्राद्विराजेऽश्रौषीत् पुरादिग्विजयप्रसङ्गे ।
समागतस्यारिनुदो महौजसो रामस्य लोकाशयरञ्जनान् गुणान् ॥१४९॥
अत्र देवैर्विरञ्च्याद्यैर्दृष्टो रामः सकौतुकः ।
संस्तुतः पूजितश्चारु प्रसूनैर्नन्दनोद्भवैः ॥१५०॥
अत्र गन्धर्वकन्याभिः कोटिकन्दर्पसुन्दरः ।
पुरुषप्रकाण्डो दृष्टः स्खलन्नीविगलत्पटम् ॥१५१॥
अत्र देवाङ्गनाश्चैनं दृष्ट्वा सादरमानसाः ।
स्वागतैः कुशलप्रश्नैः क्षणं चक्रुर्विलम्बनम् ॥१५२॥
अत्र सज्जीकृतधनुः कांश्चिद् गन्धर्वपुङ्गवान् ।
वीरान् मुहुर्योधितवांस्तेभ्यो रत्नानि चाददात् ॥१५३॥
अत्र दृष्टः शिवेनासौ कैलाशाचलवासिना ।
प्रसाद्यानीतः सदनं भक्त्या संपूज्य संस्तुतः ॥१५४॥

अत्रैनं त्रिदशा वीक्ष्य लङ्केशभयविद्रुताः ।
विश्रब्धा विक्रमगुणैः परां प्रीतिमुपाययुः ॥१५५॥
अथ देवमुनिः साक्षान्नारदोऽभ्यागतः प्रभुः ।
तं ववन्दे स्वयं रामः परामृष्य मुहुर्मुहुः ॥१५६॥
श्रुत्वा मुनीन्द्रवचनाद्विशालाख्यां वरस्त्रियम् ।
प्रगृहीतव्रतां स्वार्थे चकमे केलिपण्डितः ॥१५७॥
इत्येवमादीनि यशांसि शृण्वन्नृणां महाशैलदरीगृहाणाम् ।
निजात्मजश्लोकगृहीतचेता ययौ गिरीन्द्रं ननु गन्धमादनम् ॥१५८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथ-
तीर्थयात्रायां गन्धमादनप्रवेशो नाम षट्त्रिंशाधिकशत-
तमोऽध्यायः ॥१३६॥

●

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भुशुण्ड उवाच

ब्रह्मन् कासौ विशालाख्या वरस्त्री पुण्यकर्मकृत् ।
स्वार्थे धृतव्रतो यां वै चकमे रामचन्द्रमाः ॥ १ ॥
एतन्मे ब्रूहि सर्वज्ञ व्रतं रामकथाश्रयम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण पूयेताखिलपातकी ॥ २ ॥
एतद्रहस्यं वरपक्षिराज वक्ष्याम्यहं त्वच्छ्रवणामृताभम् ।
चरित्रमस्याद्भुतमीश्वरस्य रामस्य लोको नरमाधुरीनिधेः ॥ ३ ॥
प्रमोदवनमध्ये तु सहजानन्दिनीपतिम् ।
श्रुत्वा वशीकृतं रामं तथैव स्वगतैर्गुणैः ॥ ४ ॥
अक्षुभ्यत्सिन्धुजा चित्ते मम नाथः स मत्करात् ।
हा गतः कथमेवं त्वमिति चिन्ताकुलाभवत् ॥ ५ ॥

ततः स्वयं वशीकर्तुं वल्लभं कमलालयम् ।
आरराधोग्रतपसा परमात्मानमव्ययम् ॥ ६ ॥
द्वीपे क्षीरसमुद्रस्य महाघोरवनालये ।
वसन्ती विगताहारा चचार परमं तपः ॥ ७ ॥
ऊर्ध्वदृष्टिस्तपर्तौ सा पञ्चाग्निवेदिमध्यगा ।
वर्षर्तौ जलधाराभिः सिच्यमाना महाघनैः ॥ ८ ॥
महाप्रचण्डवातोर्मिमहामुशलवृष्टिवाट् ।
शीततौ जलमध्यस्था तपस्यन्ती महत्तपः ॥ ९ ॥
मिताहारा शुष्कपर्णाशना पवनभक्षिणी ।
परित्यक्ताखिलाहारा घोरं नियममास्थिता ॥१०॥
परन्तु द्रुह्यती देवीं सहजानन्दिनीं ततः ।
देवं शीघ्रं वशीकर्तुं न शशाक समुद्रजा ॥११॥
अथ कश्चिन्मुनिर्भक्तः सहजाया रहस्यवित् ।
रामलोकं जिगमिषुर्गोलोकादुपरिस्थितम् ॥१२॥
सौवरो नाम विप्राग्र्यस्तत्रागात् प्रेमपुष्टिमान् ।
सहजा सहजेत्याख्यां रामरामेति चोद्गिरन् ॥१३॥
तमागतमुदीक्ष्यासौ धृतेर्ष्यां तनयाम्बुधेः ।
स्वागतं कुशलं प्रश्नं न चकार हरिप्रिया ॥१४॥
ऊचे च वचनं घोरं क्रोधप्रस्फुरिताधरा ।
सापत्न्यभावदोषेण दुष्टात्मा स्त्रीस्वभावगा ॥१५॥

अहो जनास्तां व्यभिचारदुष्टां गायन्ति किं नन्दनगोपकन्याम् ।
प्रायः परस्त्रीविषयेऽनुरक्तिं प्रभोरपि ख्यातुमथावतीर्णाम् ॥१६॥

इति निर्भर्त्स्य निर्भर्त्स्य जगादोच्चैः तपःस्थिता ।
तच्छ्रुत्वा स मुनिः क्रुद्धः स्वामिन्याः पादसेवकः॥१७॥

सौवर उवाच

तस्यास्तत्त्वं न जानासि कमले किं तपस्यसि ।
जन्मान्तरे तपो घोरं सविवेकं फलिष्यति ॥१८॥

इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रः सा घोरमचरत्तपः ।
ततो व्योम्न्यभवद्वाणी तपस्यन्त्या वने श्रियः ॥१९॥
अनाराध्य मम प्रेष्ठां सहजानन्दिनीं प्रियाम् ।
पूर्णाभिलाषा कमले भवती न भविष्यति ॥२०॥
अतो जन्मान्तरं लब्ध्वा मत्प्रिया सेवकालये ।
द्वितीया सहजेव त्वं मां वशीकर्तुमर्हसि ॥२१॥
ततः सा समभूदीर्ष्यां परित्यज्य पराश्रियः ।
गन्धमादनशैलस्य कन्या सर्वाङ्गसुन्दरी ॥२२॥
विशालाक्षीति युक्तेन नाम्ना ख्यातिं गता भुवि ।
कमला नाम तत्पत्नी तस्या अङ्कमरोचयत् ॥२३॥
दीव्यती कान्तिपटलैर्दिव्यरूपविराजिता ।
श्रीरामस्य वशीकारं कर्तुं समुचिताभवत् ॥२४॥
तस्यां तु पुष्यमाणायां देहभासा दिने दिने ।
वराय चिन्तामकरोत् पर्वतो गन्धमादनः ॥२५॥
क्वचित्तां नारदोऽद्राक्षीत् पितुरङ्कगतां शिशुम् ।
लक्षणैरेनमाहाथ भवित्रीं हरिवल्लभाम् ॥२६॥
आदिदेश पितुर्भक्त्या प्रणतस्य महीभृतः ।
सोऽचिन्तयत्तदा शैलो धन्योहं यस्य मे सुता ॥२७॥
साक्षाद्वै रामचन्द्रस्य प्रिया भूष्णुः प्रवर्द्धते ।
कोऽन्यो मत्तः शुभजनिर्भवेऽस्मिन् प्रेमभक्तिभृत् ॥२८॥
मम नान्दीमुखाः सर्वे पितरस्तुष्टिमन्वगुः ।
श्रुतं दत्तं तपस्तप्तं यत्किंचित्सुकृतं मम ॥२९॥
अत्यर्थं फलमासाद्य जातं त्रिभुवनेऽतुलम् ।
इत्युत्कण्ठावशं चित्तं कुर्वन् शैलो मुहुर्मुहुः ॥३०॥
ननन्द परमप्रीतः परसौभाग्यमण्डितः ।
नवशाद्वलसंदोहस्फुटप्रेमाङ्कुरोद्गतः ॥३१॥
ततः शैशवमत्येत्य तारुण्यं नाम सद्वयः ।
प्राप्तायां श्रीविशालायां रूपभारमभूत्तनौ ॥३२॥

करयोः पादयोश्चैव जङ्घयोरुदरे कटौ ।
त्रिवलौ रोमराजौ च श्रिया पुष्टा बभूव सा ॥३३॥
यौवनारम्भसंभारमन्दमन्दगमाङ्गणे ।
रराज चञ्चला बाला विद्युद्वल्लीव सा त्विषा ॥३४॥
पितुर्गृहमुपेतेभ्यः श्रीरामगुणधोरणीः ।
सूतमागधवन्दिभ्यः सा शुश्राव प्रतिक्षणम् ॥३५॥
अथास्याः सर्वदा रामं शृण्वन्त्याः पुरुषोत्तमम् ।
बद्धमूलोऽभवच्चित्ते प्रेमा तन्मात्रगोचरः ॥३६॥
सखीभिरुपनीतेषु चित्रेषु रघुपुङ्गवम् ।
पश्यन्ती पूर्णपुलकाङ्कुरमङ्गं बभार सा ॥३७॥
अथ श्रीरामविषयः प्रेमा परिणतो हृदि ।
असूत विरहं घोरं पाण्डुताक्षामताकरम् ॥३८॥
एतस्मिन्तन्तरे रामो हयमेधे महीपतेः ।
आज्ञया प्रस्थितो वीरः कुर्वन् दिग्विजयं क्रमात् ॥३९॥
तुषाराद्रिमतिक्रम्य संप्राप्तो गन्धमादनम् ।
धनुर्धरो रथध्वानैः कन्दराः प्रतिनादयन् ॥४०॥
स रथादवतीर्यास्य वने शार्दूलशालिनि[1] ।
देवदारुद्रुमाकीर्णे पिहिते चन्दनद्रुमैः ॥४१॥
आजगाम महारम्ये कामश्चैत्ररथे यथा ।
चिक्रीडे भगवांस्तत्र प्रमोदविपिनं स्मरन् ॥४२॥
रहितः सीतया तत्र वियोगी मदनातुरः ।
देवोद्यानद्रुमलतादर्शनोद्दीपिताशयः ॥४३॥
तत्राजगाम सा बाला कोटिरत्यङ्गनासमा ।
सखीभिः सहिता यूथे क्रीडन्ती तडिदुज्ज्वला ॥४४॥
बोधयन्तीव शृङ्गारं क्रोधयन्तीव मन्मथम् ।
रोधयन्तीव चित्तानि योधयन्तीव लोचने ॥४५॥

---

१. गह्वरे वनशालिनि—मधु०, बड़ो० ।

तासां पादाब्जमञ्जीरनादैस्ताः कुञ्जभूमयः ।
कन्दराः प्रतिशब्देन व्याप्ता आसन् समंततः ॥४६॥

तासां बलयमञ्जीरभूषणध्वानधोरणीम् ।
श्रुत्वा रामरस [से]न्द्रस्य हृदये चुक्षुभे स्मरः ॥४७॥

ता आगतास्तत्र कुरङ्गनेत्राः संपूजनार्थे ननु पार्वतीशयोः ।
वनेऽत्र पुष्पाण्यवचेतुमादृता लतावितानान् विविशुः समेताः ॥४८॥

लताभ्यो भूरुहेभ्यश्च पुष्पाण्यादाय ता यदा ।
ययुर्लीलासरः स्नातुं सर्वाः पङ्कजलोचनाः ॥४९॥

जलकेलिं प्रकुर्वाणा मज्जनोन्मज्जनादिभिः ।
अकम्पयन् मृगदृशः पद्मिनीनां वनानि ताः ॥५०॥

तासां मध्ये वरस्त्रीणां विशालाक्षी मनोरमा ।
स्नानकालोचितं वेषं बिभ्राणा व्यरुचत्तराम् ॥५१॥

जलार्द्रसूक्ष्मवस्त्रेण देहलग्नेन सा तदा ।
प्रत्यङ्गलक्ष्यसुषमा दृष्टा रामेण गुप्ततः ॥५२॥

लतावितानसंछन्नविग्रहो लग्नया दृशा ।
प्रत्यङ्गं सुषमां तस्या व्यचष्ट रसिकोत्तमः ॥५३॥

तद्रूपलावण्यविमोहिताशयो बभूव रामः स्थगितान्यवृत्तिकः ।
विमूढकल्पो जनकाधिपात्मजामहानुरोधेन विवृद्धकामः ॥५४॥

जलोत्तरात्सा निःसृत्य परिधाय दुकूलिकाम् ।
पद्महस्ता बभौ साक्षाच्छ्रीरिवाम्बुधिनिर्गता ॥५५॥

सा दैववशतः सर्वान् वर्जयित्वा सखीजनान् ।
इच्छन्ती विजनं स्थानं तस्य सन्निधिमागमत् ॥५६॥

अथ पूजोपकरणहस्तैः साकं सखीजनैः ।
विशेषदेवतागारं कुञ्जगह्वरमध्यगम् ॥५७॥

तस्मिन् वृषमतिक्रम्य गता सा शिवसन्निधौ ।
तुष्टाव विविधैः स्तोत्रैः पार्वत्या सह शङ्करम् ॥५८॥

विशालाक्ष्युवाच :—

नमो देवेवर्याय ते पार्वतीश त्रयीसूक्ति[1]संस्तुल्यरूपाय देव ।
जटाजूटखेलत्सुपर्वाथिगोर्मिच्छटाधौतदिव्यस्फुरद्विग्रहाय ॥५९॥

---

१. °शक्ति°—रीवाँ ।

नमो नीलकण्ठाय ते वामदेव त्रिभिर्देववर्यैरुपास्याय शश्वत् ।
गुणैस्तैस्त्रिभिर्विस्तृताशेषसृष्टिप्रविष्टात्मने विश्वरूपाय तस्मै ॥६०॥
नमः सच्चिदानन्दरूपाय नित्यं शिवायासुरध्वंसकर्मैककर्त्रे ।
महोग्राय कल्पान्तवह्न्यस्त्रतेजोमहाभैरवेशाय ते व्योमकेश ॥६१॥
नमोऽशेषगीर्वाणराजीशरण्यप्रपन्नार्तिहन्त्रङ्घ्रिपद्मद्वयाय ।
गिरीशाय गौरीसखायेश्वराय त्रिनेत्राय भव्यात्मने ते नमः ॥६२॥
त्वमुर्वी त्वमापस्त्वमग्निर्महेश त्वमेवासि वायुस्त्वमाकाशरूपः ।
त्वमस्यध्वरस्त्वं पुमानादिकर्ता न तत्त्वं न यत्सर्वरूपप्रकाशः ॥६३॥

अन्तरात्मासि सर्वेषां नमस्ते नीललोहित ।
जानासि मानसां वृत्तिं त्वमेवाखिलबुद्धिदृक् ॥६४॥
अतस्त्वयि प्रार्थनं मे पुनरुक्तायतेतराम् ।
त्वमेव पूरणे शक्तः कामानां सर्वकामद ॥६५॥
तथापि स्त्रीस्वभावेन प्रेरिता चञ्चलाशया ।
याचे वाचा प्रकटया त्वामहं योगिनीपते ॥६६॥
मन्मनः क्वापि पुरुषप्रकाण्डे विश्वसुन्दरे ।
संलग्नं संततासक्त्या सुलभं कुरु तं प्रभो ॥६७॥
इति संस्तूय गिरिशं विशाला समपूजयत् ।
गन्धपुष्पोपहारादिसंविधाभिर्मुहुर्मुहुः ॥६८॥
कपोलनादैः करतालिकाभिः कलामनोहारिकलस्वरैश्च ।
सन्तोष्यभक्त्या भविकप्रदेशं भवं भवानीसहितं विशाला ॥६९॥

निरगाद्बहिरागारं ततः सा कुञ्जगह्वरात् ।
सखिभिः सहिता क्रीडन्निकुञ्जभवनाङ्गणे ॥७०॥
कश्चित्प्रसूनसंदोहैः कृत्वा कन्दुकधोरणीम् ।
उच्छालयन्त्यो गगने विरेजुर्हरिणीदृशः ॥७१॥
काश्चित्परस्परं पुष्पैस्ताडयन्त्यो मृगेक्षणाः ।
चिक्रीडुः पुष्पधनुषः कामिन्य इव सोत्सवः ॥७२॥
काश्चित्परस्परं हस्तैर्हस्तानाबध्य सत्वराः ।
भ्रमन्त्यो मण्डलं कृत्वा तडिद्रेखा इवारुचन् ॥७३॥

काश्चिन्ननृतुरुद्रिक्ताश्चातुर्यमदतोऽङ्गनाः ।
काश्चिज्जगुः स्वरैः कण्ठे पुष्णन्त्यो वल्लकीध्वनिम् ॥७४॥
व्यचष्ट तासां तां शोभां गीतनृत्यादिकालिकीम् ।
रामः कुतूहलाविष्टो लतान्तरितविग्रहः ॥७५॥
सदैव वसतः सर्वान् दर्जयित्वा सखीजनान् ।
इच्छन्ती विजनं स्थानं तस्य सन्निधिमागमत् ॥७६॥
तत्रातिगह्वरे कुञ्जे लतापुञ्जविधानके ।
निर्विशङ्कमना भूत्वा विवेश तरुणी स्वयम् ॥७७॥
तत्रापश्यत्पुरुषवरमत्यद्भुतश्रीनिकेतं
शश्वन्मन्दास्मितलवसुधाविन्दुभिर्मोहयन्तम् ।
स्निग्धापाङ्गं कुटिलनयनालोकनिर्भिन्नचित्तम् ।
साक्षाच्चेतोभवमिव मनोनिघ्नयन्तं मनोज्ञम् ॥७८॥
तां विलोक्यागतप्राणा पूर्वजन्मस्मृतिं गता ।
निश्चिकाय विशालाक्षी साक्षाद्रामं स्वकं[1] पतिम् ॥७९॥
सा कुञ्जमध्यगावोचदनुयायिसखीजनान् ।
अपूर्वोऽत्र मया सख्यो दृष्टः कश्चिद्विहङ्गमः ॥८०॥
विश्रब्ध इव मां[2] वीक्ष्य भवतीभिः सकौतुकम् ।
शब्दैरुच्चाटनीयोऽसौ तन्नेहा गच्छतालयः ॥८१॥
इत्थं निषिध्य सर्वास्ता वयस्या गान्धमादनी ।
समीपमभजत्तस्य पुंवरेण्यस्य निर्जने ॥८२॥
स तामेकान्तगां दृष्ट्वा दैवात्प्राप्तां तडित्त्विषम् ।
पुलकाङ्कुरलिप्ताङ्गो बभूव स्तम्भवान् परः[3] ॥८३॥
तमुवाच विशालाक्षी कामह्रीभयमिश्रितम् ।
अन्तः कुञ्जकुटीरस्य नयन्तं चित्तमोहनम् ॥८४॥
ननु कोऽसि किंस्विदिह कोऽपि निर्जरः पुरुषप्रकाण्ड कथयात्मनोऽभिधाम् ।
तदनु स्ववंशमतुलं गुणोज्ज्वलं वद तत्पुरः स्वगुणविक्रमादिकम् ॥८५॥

---

१. रामचन्द्रं—मथु०, बड़ो० । २. विश्रब्धेव इमं—रीवाँ । ३. स्तम्भवत्स्थिरः—मथु०, बड़ो० ।

ननु वेद्मि पुंवर स एव किं भवान् हृदयेन यश्चिरतरान्मया धृतः ।
रामचन्द्र रविवंशभूषणो रघुनाथ उत्तमचरित्रचित्रितः ॥८६॥
मुनिपुङ्गवेन ननु नारदेन मे पुरुषप्रकाण्ड भवता समं न किम् ।
विधिरीरितः शुभकर ग्रहस्य यद्वितनोषि तृप्तिमतुलीविलोकनात् ॥८७॥
नवनीलरत्नमहनीयमाधुरीमहिमोर्जितं तव वपुर्विलोक्यते ।
विदितोऽसि नर्मग वयस्ययार्पितं तव चित्रलेख प्रतिदृष्टया मया ॥८८॥
न च जायते मम भयं तवाननं सुसमीक्ष्य नाभ्यसितपुंपतेः कचित् ।
हृदि वर्द्धतेऽपि च पुराजने स्मृतिर्ननु भुक्तपूर्व इव दृश्यसे क्वचित् ॥८९॥
परपुरुषं रहसि वीक्ष्य चक्षुषा न विभेमि नापि च दुनोमि चेतसा ।
तदनन्य एव विदितो भवानसि स्मृतिरप्यवेदि ननु पूर्वजन्मजा ॥९०॥
इयदेव साहसमपूर्वपूरुषे त्वयि यत्सुविश्वसिमि पूर्वभुक्तवत् ।
तदुपासितुं किमपि पृच्छ्यसे रहः कुशलस्वरूपकुलधामनामसु ॥९१॥
यदि नो भवान् भुवनभूषणाकृते भृशमन्य एव भुवने भविष्यसि ।
तदपीह नौ रुचिरमस्तु संगतं क्षणपञ्चकालपनवृत्तपूर्वकम् ॥९२॥
भवतानवद्यगुणवारिराशिना किमपि स्वभावमधुरेहितस्पृशा ।
जगदेकभूषणवरेण संगतं समवाप्य किं न गुणवत्यहं भवे ॥९३॥
विधिनापि नाविह सुनिर्जने वने सुसमागमोऽद्य समपादि किं कृते ।
मम वा तवैव उभयोः सुखाय वा भवनस्य वापि भुवनत्रयस्य वा ॥९४॥
यदि चित्रलेखपरमानुभूतितो व्यभिचारमेष्यति न तेऽवलोकनम् ।
वरमालिका तदनु मामकी तव कण्ठदेशयुतलब्धसौभगा ॥९५॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य तस्याः श्रीरामचन्द्रमाः ।
उवाच मधुरं वाक्यं संकोच्य सहजस्वरम् ॥९६॥
यश्चित्रलेखगो दृष्टस्त्वया कोऽपि पुमान्नवः ।
स एवाहमिह प्राप्तः पितुस्तव निकेतनम् ॥९७॥

परं भवन्त्या परया युवत्या धृतः किमर्थं हृदये स तन्वि ।
स्ववक्षसा सुभ्रु धृतोऽन्यया यः स्वातन्त्र्यसंस्पर्शविवर्जितात्मा ॥९८॥
तत्कण्ठगा ते वरमलिकापि भूत्वा नु कां सिद्धिमुपेष्यतीह ।
पूजाविधौ दैवतमूर्तिकण्ठस्थिता तु माला मनसेप्सिताय ॥९९॥

यदा जनः कोऽपि भवेदधीनः कस्यापि न स्यात् स तदा स्वतन्त्रः ।
न तेन कार्यं किमपीह लोके विक्रीततुल्यः खलु तस्य चात्मा ॥१००॥
विभासि लोकोत्तररम्यरूपा त्रैलोक्यसारा मधुरस्वभावा ।
अनेकसत्पुण्यपरंपराभिः प्राप्यासि केनाप्यनुरूपपुंसा ॥१०१॥
यन्नारदस्त्वाह मुनीन्द्रवर्यस्तन्नो मृषा स्यादिति संप्रतीतिः ।
यो रामचन्द्रः[1] पुरुषोऽखिलात्मा यं कंचिदाकारमनुप्रविष्टः ॥१०२॥
इतीरिते भास्करवंशभूषारत्नेन रामेण भृशं विशाला ।
अभूत्प्रभूतार्तिसमुद्रमग्ना विहाय तत्पारममन्यमाना[2] ॥१०३॥
चिरं विनिःश्वस्य सगद्गदेन कण्ठेन सा वक्तुमपारयन्ती ।
अपारखेदार्पितचित्तवृत्तिः शून्याशयाङ्गुष्ठविलेखितक्ष्मा ॥१०४॥
उवाच धैर्यं हृदयेऽवलम्ब्य हेनाथ नैवं शरणागतायाः ।
तिरस्कृतिं कर्तुमिहोचितोऽसि भूत्वापि काकुत्स्थकुलेऽवतीर्णः ॥१०५॥

युष्माकमन्वयभवाः पुरुषाः कथाया-
मार्कर्णिताः स्वशरणागतपालनाय ।
आत्तव्रताः स खलु तेषु भवान् भवेऽस्मिन्
मामाशयाविरहितां न कुरुष्व नूनम् ॥१०६॥

भूमन्नथापि यदिमां त्वमशुल्कदासीं
नाङ्गीकरिष्यसि तदा विरहाग्निदग्धम् ।
सद्यः कलेवरमिदं मम भस्म भूत्वा
प्रोड्डीय मारुतजवात्तव वर्त्म यातु ॥१०७॥

तेनापि नाथ तव कोमलपादपद्म-
संचारसंभवसुधारसशैत्ययोगात् ।
संशामिताखिलवियोगमहोष्मतायाः
संगोद्भवेन च सुखेन समेधिता स्याम् ॥१०८॥

---

१. रामचन्द्राख्यः—मथु०, बड़ो० । २. लग्नाशया तत्पदयोश्चिराय—मथु० बड़ो० ।

पञ्चत्वमेतु तनुरस्य च भूतवर्गः
स्वस्वप्रकृत्युपगतः किमु तत्र दुःखम् ।
तत्रापि ते चरणपद्मपरागधूली-
संपृक्तमेव पुनरन्यदुपैतु मह्यम् ॥१०९॥
भोक्ष्ये चिराय किमपि प्रथमं वियोगं
पश्चात्तु संगममुपेत्य सुखानि लप्स्ये ।
देहान्तमप्युरुतरार्तिजुषं सहिष्ये
नाहं क्षमास्मि विरहं सुचिराय बोढुम् ॥११०॥
किंवा प्रभो किमपि यद्भवितुं कलार्हं
तन्मे भविष्यति किमेतदनूदितेन ।
पृच्छामि ते पुरुषवर्य जनेन केन
स्वातन्त्र्यभावविभवस्तवलुप्तकल्पः ॥१११॥
त्वं वीरवर्य वशगोऽसि जनस्य यस्य
तस्यैव पादकमलं सहसा प्रपद्य ।
आराधयामि स च तेन ततः प्रसन्न-
स्त्वद्रूपलाभवरदानकरो न किं स्यात् ॥११२॥

श्रीराम उवाच

यद्येवं निश्चितं चित्ते त्वया सुन्दरि सर्वथा ।
तदा सुसिद्ध एवासौ तव कामोऽविलम्बितम् ॥११३॥
अथाख्याहि स्वयं चापि निज नाम कुलादिकम् ।
औचितीं समभिज्ञाय ततः कार्यं विधीयते ॥११४॥

विशालोवाच

अहमस्य गिरेः पुत्री नाम्ना यो गन्धमादनः ।
अनेकदेवगन्धर्वमुनिसिद्धौघसेवितः ॥११५॥
यस्य गह्वरदेशेषु कुञ्जपुञ्जेषु सर्वतः ।
गुञ्जद्भ्रमरजुष्टेषु पुष्पवल्लीयुतेषु च ॥११६॥
गायन्ति किन्नराः साकं वनिताभिः कलस्वरम् ।
मोहयन्तो वनमृगानुत्तब्धश्रुतिचक्षुषः ॥११७॥

यस्य काञ्चनमाणिक्यरत्नशृङ्गेषु भूरिषु ।
संचलन्तो जलधराः कांचिच्छोभां वितन्वते ॥११८॥
यस्य रत्नमयैः शृङ्गैर्दिग्भागाः संप्रकाशिताः ।
विभ्रत्यकाण्डसंभूतां शारदीं चन्द्रिकामिव ॥११९॥
सर्वर्तुसुखसंपन्नः सर्वदेवर्षिवल्लभः ।
सर्वतीर्थमयो नित्यं पिता मे गन्धमादनः ॥१२०॥
नाम्ना च मां विशालेति वदन्त्यभिजनाः स्फुटम् ।
नारदोक्तिवशादाशां चिरात्त्वयि दधाम्यहम् ॥१२१॥
तस्य दिव्यदरीवेश्मरत्नदीपप्रकाशितम् ।
अधिष्ठाय मया भोगान् भुङ्क्ष्व निःशङ्कमानसः ।१२२।
इत्युक्तः स तयावोचत् स्वभावमधुरस्मितः ।
आराधयतरां सुभ्रु प्रमोदविपिनेश्वरीम् ॥१२३॥
सहजानन्दिनीं नाम्ना वरदेशीं ममप्रियाम् ।
अतुल्यरूपमाधुर्यलावण्यगुणनिर्भराम् ॥१२४॥
यस्याः प्रसादमासाद्य व्रजे गोपालदारिकाः ।
मां लेभिरे वरं सर्वाः कृतकृत्या इवाभवन् ॥१२५॥
प्रयाहि चेतस्तरुणीं भवतीं राजकन्यकाम् ।
विचिन्वन्ति चिरात्सख्यस्त्वामस्मिन् निर्जने वने ॥१२६॥
त्वया समाराधितया सहजानन्दया त्वहम् ।
बोध्यमानस्तव वशे भविष्यामि न संशयः ॥१२७॥
इत्युक्त्वा तेन वीरेण विसृष्टा सा विशालिका ।
चित्तमाधाय तत्सङ्गे देहमादाय निर्गता[1] ॥१२८॥
पुनः पुनर्विचलितचारुकन्धरं विलोकयन्त्यतनुवशा स्वपृष्ठतः ।
अपारतन्मधुरिममोहिताशया गता कथं कथमपि कुञ्जगह्वरात् ॥१२९॥

तत्र तां सुचिरात्सख्यो विचिन्वन्त्यः सुसंगताः ।
ऊचुः शैलेन्द्रतनये क्वगता भूरि यत् क्षणम् ॥१३०॥

---

१. निर्ययौ—मथु०, बड़ो० ।

क्व स पक्षी मनोहारी यो वै त्वां विप्रलब्धवान् ।
कथं च तन्वि करगस्तवैष स्याद्वने रतः ॥१३१॥
एहि शैलेन्द्रपुत्रि त्वं निःसृतासि चिराद्गृहात् ।
किं वदिष्यन्ति ते माता पिता च प्रेमवांस्त्वयि ॥१३१॥
काश्चित्तस्या मुखज्योत्स्नामीषदानन्दनिश्चिताम् ।
दृष्ट्वा संभावयामासुरकस्मात्प्रीतिकारणम् ॥१३३॥
काश्चिदन्तर्गतं तस्या आलक्ष्य विरहव्यथाम् ।
चक्रुर्मनोरथोपेतप्रियसंगमभावनाम् ॥१३४॥
काश्चित्सुचिरमालक्ष्य तस्या अन्यमनस्कताम् ।
जज्ञुः कश्चिदिहैतस्याः पुमान् दृष्टो भवेदिति ॥१३५॥
सर्वास्ताः सस्मितालापैः कुर्वन्त्यः प्रेमसंकथाम् ।
आययुः कन्यका रम्यं शैलराजस्य मन्दिरम् ॥१३६॥
तामामन्त्र्याखिलाः सख्यः स्वानि स्वानि गृहाण्यगुः ।
एकान्ते सा ततस्तस्थौ कन्या शुद्धान्तवेश्मनि ॥१३७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डिसंवादे पूर्वखण्डे दशरथ-
तीर्थयात्रायां गन्धमादनगमने सप्तत्रिंशाधिक-
शततमोऽध्यायः ॥१३७॥

अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

विजह्रे भगवान् रामो गन्धमादनपर्वते ।
विशालां हृदये कृत्वा रूपलावण्यभूषिताम् ॥ १ ॥
विरहिण्याः परं तस्याः विरहेणोत्थितव्यथः ।
उपत्यकासु संफुल्लपाटलद्रुमराजिषु ॥ २ ॥

अधित्यकासु विपुलशिलाप्राङ्गणभूमिषु ।
शिखरेषु लसन्नानाधातुचित्रितमूर्तिषु ॥ ३ ॥
कुञ्जेषु पुष्पितानेषु भूरुहस्थगितालिषु ।
कूजत्कोकिलसंमिश्रशिखण्डिध्वनिशालिषु ॥ ४ ॥
गह्वरेषु लतास्तोमविहिताङ्गैरनोकहैः ।
आच्छादितेषु संलक्ष्य तपनातपकान्तिषु ॥ ५ ॥
संपातिनिर्झरा एव प्रतिध्वनिनिनादिषु ।
[1]दरीषु दीर्घदीर्घासु ज्वलित्यौषधिकान्तिषु ॥ ६ ॥
अनेकरत्नकिरणद्योतितासु समंततः ।
काननेषु च संफुल्लवृक्षवाटीसुगन्धिषु[1] ॥ ७ ॥
लक्ष्मणेन द्वितीयोऽसौ विजह्रे लोकमङ्गलः ।
तत्रत्यवनदेवीभिः स्तूयमानो महायशाः ॥ ८ ॥
उपवीणित आनन्दमग्नैर्गन्धर्वपुङ्गवैः ।
पूजितो मुनिभिर्देवैर्दिव्यभावोपचारकैः ॥ ९ ॥
क्वचित्सरःसु संफुल्लपद्माकरसुगन्धिषु ।
राजहंसकुलक्रीडारमणीयजलोर्मिषु ॥१०॥
क्वणच्चक्राह्वकादम्बकारण्डवकुलेषु च ।
जलकेलिरसं बिभ्रन्महामत्त इव द्विपः ॥११॥
क्वचिद्गह्वरकुञ्जेषु श्रीखण्डौघसुगन्धिषु ।
प्रफुल्लचम्पकाराम[2]स्वर्णयूथीविराजिषु ॥१२॥
मन्दानिल[3]समुद्धूतकेतकीवनधूलिषु ।
वसन्त इव पुष्पौघमण्डनं वपुषा दधत् ॥१३॥
नानावर्णप्रसूनाढ्यां वनमालां मुदा वहन् ।
दृष्टो गन्धर्वकन्याभिः किशोरः केलिकोविदः ॥१४॥
कोटिकन्दर्पसुभगः किरीटी रत्नमेखलः ।
कौस्तुभोद्भासितोरस्कः कमनीयतमाकृतिः ॥१५॥

१—१. नास्ति—रीवाँ । २. चंपकारण्य—मथु० बड़ो० । ३. महानिल—मथु०, बड़ो० ।

क्वचिद्योगीन्द्रवर्येषु तपस्यत्सु सुसंगतः ।
ब्रह्मानन्द[1]परीतेषु प्रेमानन्दरसं पुषन् ॥१६॥
चचार तैः सप्रणयंस्तुतः संपूजितश्च सः ।
क्वचिद्देवैर्मुदा दृष्टो गन्धमादनवासिभिः ॥१७॥
अयं नः कार्यकृद्राजा इति सादरमर्चितः ।
क्वचिद्दिव्यधनुर्विभ्रन्निषङ्गी कवचावृतः ॥१८॥
चचार मारयन् घोरानसुरान् दैवतद्रुहः ।
तन्महाकन्दरान्तस्थान् सर्वस्यापि भयानकान् ॥१९॥
इत्थं देवप्रियं कुर्वन् भगवान् रघुपङ्गवः ।
विचचार गिरौ तस्मिन् सानुजो गन्धमादने ॥२०॥
रामशङ्खस्वनं श्रुत्वा समागाद् गन्धमादनः ।
महार्हरत्नाभरणविविधोपयथा[पपदा]न्वितः ॥२१॥
गजरत्नैरश्वरत्नैः सहितो भक्तिसंयुतः ।
बहुपूजोपकरणहस्तैर्भृत्यैः समन्वितः ॥२२॥
तंधातुताम्रमधुराधरपाणिपादमत्युन्नतं सुरमहीरुहदीर्घबाहुम् ।
मुक्तौघमण्डितशिलापरिणाहिवक्षो देशं जगाम गिरिराडिति रामचन्द्रः२३
सोऽवन्दतास्य चरणौ शिरसा समेत्य
प्रह्वोऽतिभक्तिविलसत्पुलकाय्यकायः ।
श्रीरामचन्द्रमिति चेतसि साधुवाक्यै-
र्निश्चित्य चाद्रिरयजत् महतार्हणेन ॥२५॥
उवाच परमानन्दपरीतहृदयो गिरिः
निवेद्य तच्चरणयोरात्मानं धीमतांवरः ॥२६॥

गन्धमादन उवाच

यश्चेतसा योगिभिरीश चिन्त्यसे समाधिवश्येन्द्रियसंयतात्मभिः ।
स्वयं स साक्षाद्भगवानयं भवानस्मादृशं भाग्यवशेन गोचरः ॥२७॥
क्व मे शिलाकोटिसुकर्क शंमनो महाभिमानी जडभावभावितम् ।
क्व ते महायोगमुनीन्द्रदुर्लभं संदर्शनं नाथ तमोमलापहम् ॥२८॥

---

१. ब्राह्मणेषु—रीवाँ ।

कृपैव ते केवलमन्यसाधनव्रजानपेक्षा भगवन् गरीयसी ।
ययाञ्जसा भूरिसमाधिसाधनैरलभ्यमाप्नोति भवन्तमीदृशः ॥२९॥
नमस्त्रयीधर्मपथद्रुहोऽसुरान्निगृह्णतेऽद्धानुगृहीतसाधवे ।
अनेकधानिर्मितविश्वगुप्तये विश्वात्मने ते परमाय राघव ॥३०॥
इति संस्तूय संपूज्य निवेद्य विविधोपदाः ।
गजाश्वरत्नमुख्यानि वसूनि च समर्प्य सः ॥३१॥
मुहुर्मुहुस्तच्चरणौ लोचनाभ्यां परामृशन् ।
शिरसा हृदयेनापि संवहन् संमुमोद सः ॥३२॥
स्मयावलोकेन मदीयमानसं कृत्वा विशुद्धं विरजस्तमोमलम् ।
पदारविन्दद्वयचिह्नसंयुतं वपुस्तदीयं च विधाय मङ्गलम् ॥३३॥
विसर्जयामास तमार्तबान्धवस्तस्मिन् क्षणेऽसौ दुहितुः कृते प्रभुम् ।
विज्ञापयामास मुनीन्द्रभाषितं संस्मृत्य चित्तेन तु दीनमानसः ॥३४॥
तस्य विज्ञापनं रामो मञ्जुस्मितविलोकनैः ।
अङ्गीचकार भगवान् दृशोः पीयूषवर्षणैः ॥३५॥
अथास्य दुहितुर्वेश्म भगवान् नारदोऽभ्यगात् ।
तं पूजयित्वा पाद्याद्यैः रहसीदमुवाच सा ॥३६॥

विशालोवाच

मुनीन्द्र त्वाभिपृच्छामि तद्ब्रूहि कृपया मयि ।
कथं नु सहजानन्दा प्रमोदवननायिका ॥३७॥
आराध्या मयका ब्रह्मन्निति मे प्रतिबोधय ।
स्तवैर्वा पूजनैरन्यसाधनैर्वा विशेषतः ॥३८॥

नारद उवाच

आराधयतमां शीघ्रं तामेव सहजेश्वरीम् ।
श्रीरामदयितां नित्यं प्रमोदविपिनश्रियम् ॥३९॥
यदि रामस्वरूपे ते निमग्नं नितरां मनः ।
सहजाराधनादन्यत्साधनं नात्र विद्यते ॥४०॥
येन स्तवेन रामस्य विरहेणार्त्तमानसाः ।
आदिव्रजनिवासिन्यस्तुष्टुवुर्गोपयोषितः ॥४१॥

तमेतत्ते प्रवक्ष्यामि स्तवं सर्वार्थसाधकम् ।
सहजानन्दिनीशीघ्रप्रसादजननं भुवि ॥४२॥
प्रमोदकाननस्यान्तरशोकद्रुममण्डपे ।
श्रीरामविरहेणार्त्ता इदमूचुर्व्रजाङ्गनाः ॥४३॥

गोप्य ऊचुः

नमो नित्यलीलारसानन्दरूपे प्रमोदाटवीकुञ्जवीथीविनोदे ।
व्रजाधीशसूनोर्वियोगार्त्तिहन्त्रि स्फुटप्रेमभक्त्या कृते देवि तुभ्यम् ॥४४॥
पराणां परायै परानन्दमूर्त्यै प्रपञ्चातिगामिस्वरूपाद्भुतायै ।
नवांशुप्रभाकोटिचन्द्रार्कभासे नमो नन्दनापत्यरत्नाय तुभ्यम् ॥४५॥
नमोऽशेषकल्याणसंपद्गुणायै नमो वाङ्मनोभ्यां सदागोचरायै ।
नमो निर्गुणायै निराकारिकायै नमस्ते परप्रेमसंपत्समृद्ध्यै ॥४६॥
जयस्येकरूपा तथानेकरूपा जगद्रूपिणी सर्वधीवृत्तिरूपा ।
परार्द्धस्मरप्रेयसी चारुरूपाप्यरूपा परा चित्कला त्वं विभासि[1] ॥४७॥
परब्रह्मरूपा पराविश्वसृष्टेस्तथा विश्वमूर्तिर्विचित्राकृतिः सा ।
परप्रेमभृत्सच्चिदानन्दरूपा ततो विश्वरूपा विधात्री परा त्वम् ॥४८॥
नमस्तेऽस्त्वविच्छिन्नसच्चित्सुखैकानुभूत्यै प्रभूत्यै विभूत्यै परस्य ।
प्रभोः सर्ववेदान्तगम्यस्य या त्वं[2] परानन्दसच्चित्कलायै च तुभ्यम् ॥४९॥

मात्रानन्दस्वरूपायै परानन्दैकमूर्तये ।
निरुपाधिस्वरूपायै परस्यै ते नमो नमः ॥५०॥
नमो ब्रह्मशिवाराध्यपादपद्मनखत्विषे ।
सर्वदेवमयानन्तरूपायै ते नमो नमः ॥५१॥
सर्वविश्वोदयस्थानसंहारकरुणात्मने ।
समस्तदुःखहारिण्यै सहजायै नमो नमः ॥५२॥
सहस्रशीर्षापुरुषरूपायै ते गुणात्मने ।
एकांशविश्वरूपायै सर्वोर्ध्वायै[3] नमोनमः ॥५३॥

---

१. चारुरूपा सरूपाप्यरूपा परा चित्कला त्वं—मथु०, बड़ो० । २. गम्यस्य रामस्य या त्वं—रीवाँ । ३. सर्वोद्धर्त्यै—रीवाँ ।

त्रिपाद्ब्रह्मस्वरूपायै विश्वातिक्रान्तवर्चसे ।
समस्तविश्ववर्य्यै ते सहजायै नमोनमः ॥५४॥
अनन्तशक्तिरूपायै नित्यायै नित्यतृप्तये ।
अचिन्त्याद्भुतरूपायै ज्ञानमूर्त्ते नमोनमः ॥५५॥
सन्मात्रवेद्यरूपायै चिन्मात्रपरशक्तये ।
आनन्दमात्ररूपायै परस्यै ते नमोनमः ॥५६॥
नितान्तनिःप्रपञ्चायै सप्रपञ्चात्ममूर्तये ।
योगिध्येयस्वरूपायै ध्यानमूर्त्ते नमोनमः ॥५७॥
नमः सावयवायै ते निरावयवमूर्तये ।
[1]परिणामस्वरूपायै तथाऽपरिणतात्मने[1] ॥५८॥
नमो निःशब्दरूपायै नमस्ते शब्दमूर्तये ।
नमो विवर्तरूपिण्यै परिणामात्मने नमः ॥५९॥
नमः कूटस्थरूपायै नमो बीजैकमूर्त्तये ।
नमः प्रकृतिरूपायै नमस्ते पुरुषात्मने ॥६०॥
परतत्त्वस्वरूपायै परमाकाशमूर्त्तये ।
समस्तशक्तिरूपायै रामपत्न्यै नमोनमः ॥६१॥
त्वमिच्छारूपिणी पूर्वं त्वमादिज्ञानरूपिणी ।
त्वमेव वयुनं नाम परस्य ब्रह्मणः कला ॥६२॥
त्वमीश्वरी क्रियारूपा सृष्टिस्थित्यन्तरूपिणी ।
त्वं विद्या त्वमविद्याभूस्त्वं परा चापरा तथा ॥६३॥
सदसद्व्यक्तिरूपा त्वमव्यक्तं त्वं महानसि ।
त्वं प्रवृत्तिः प्रतिष्ठा त्वं ह्यविद्याशक्तिरुत्तमा ॥६४॥
शान्तिस्त्वं शान्त्यतीता च परा त्वं सूक्ष्मरूपिणी ।
त्वमेव समना देवि त्वमेवास्युन्मनाभिधा ॥६५॥
नानाकारेण यद्दृश्यं विश्वं स्थावरजङ्गमम् ।
भूतं भवद् भविष्यच्च तत् त्वमेवासि सुन्दरि ॥६६॥
त्वं लक्ष्मीस्त्वं शिवा गौरी त्वं सावित्री जगत्प्रसूः ।
त्वं शची त्वमसि स्वाहा त्वं संहारिण्य[2]नुत्तमा ॥६७॥

१—१. नास्ति—रीवाँ । २. रुद्राणी ह्य°—रीवाँ ।

त्वं तामसी मूर्तिरसि त्वमेव खलु भार्गवी ।
त्वं सदागतिराकाशस्थानगा प्राणदेवता ॥६८॥
त्वमेव सर्वसंपत्तिस्त्वमैश्वर्यस्वरूपिणी ।
त्वं रोहिणी शशाङ्कस्य त्वं संज्ञा चण्डरोचिषः ॥६९॥
त्वं रात्रिर्दिवसस्यान्ते यज्ञमूर्तेश्च दक्षिणा ।
त्वं भुक्तिरूपिणी साक्षात्त्वं मुक्तिर्भवबन्धनुत् ॥७०॥
अकुतोभयरूपा त्वं शुद्धचिन्मात्ररूपिणी ।
'त्वं कालकलनाकारा विश्वसर्गप्रवर्तिका ॥७१॥
स्त्रीनामाङ्कितवस्तूनां त्वमाकारसमर्पिणी ।[1]
सर्वदेहेषु भूतानां षट्चक्राधाररूपिणी ॥७२॥
चक्रान्तरस्था चिन्मूर्तिस्त्वं चित्रा सूक्ष्मतन्तुगा ।
त्वं विश्वभासिनी भव्या स्त्रीपुंभावभिदामयी ॥७३॥
त्वत्स्वरूपावगमने[2] महोपनिषदामपि ।
भयाद्वाचो मौनमासुर्नेतिनेत्याचचक्षिरे ॥७४॥
मनसश्चैव वाचश्च यत्र वृत्तिर्न विद्यते ।
अतद्व्यावृत्तिरूपेण बोधयन्त्यत एव हि ॥७५॥
यद्रूपं यत्परं ब्रह्म चित्प्रकाशमयं स्वतः ।
तत्रानन्दस्वरूपेण त्वमेव प्रतितिष्ठसि ॥७६॥
अणोरणीयसी त्वं हि महतश्च महीयसी ।
विरुद्धसर्वधर्माणामाश्रयादुक्तगोचरा ॥७७॥
तत्पदार्थस्वरूपा त्वं त्वंपदार्थस्वरूपिणी[3] ।
उभया भेदरूपा च त्वमेव परमेश्वरि ॥७८॥
तव लीलाप्रपञ्चस्य विश्वस्यास्य त्वदात्मनः ।
अनिर्वाच्यं स्वरूपं ते त्वं तदा कथमुच्यताम् ॥७९॥
यावन्ति खलु तत्त्वानि विभिन्नानि परस्परम् ।
तेषामभेदज्ञानाय बुद्धिस्त्वदवलम्बिनी ॥८०॥

१–१. नास्ति–रीवाँ : २. तस्यरूपाव°–रीवाँ। ३. तत्पदानि त्वमेवासि तत्पदार्थस्वरूपिणी ।—रीवाँ ।

त्वं ददासि यशो लोके भावेन भजतां नृणाम् ।
ऐश्वर्यं सुकवित्वं च पाण्डित्यं चार्थशब्दयोः ॥८१॥
वीर्यं धैर्यं च गाम्भीर्यं ज्ञानं विज्ञानमेव च ।
धान्यं धनं प्रभूतिं च पुत्रपौत्रादिसंततिम् ॥८२॥
स्वाराज्यमाधिपत्यं च सर्वं यज्ञफलं तथा ।
ब्रह्मात्मैक्यफलां विद्यामैहिकामुष्मिकं सुखम् ॥८३॥
अनायासेन जायन्ते फलान्येतानि देहिनाम् ।
कामयन्ते च यं कामं लभन्ते तं तमेव च ॥८४॥
सम्यगाराधितादम्ब[1] त्वत्पादाम्बुरुहद्वयात् ।
अतिदुर्लभमप्यर्थं लभन्ते मानवा भुवि ॥८५॥
काले काले त्वमेवाम्ब प्रादुर्भूय स्वरूपतः ।
सतां संरक्षणं धत्से शमनं चासतामपि ॥८६॥
प्रमोदवनलीलानामधिष्ठात्री विराजसे ।
शृङ्गारकल्पवल्ली त्वं श्रीरामरमणप्रदा ॥८७॥
अस्माकं हृदयं चिराय सहजे रामे मनोहारिणि
प्रेम्णा शक्तिमुपेत्य दीर्घविरहज्वाले वियोगानले ।
दाघं तेन दिने दिनेऽतिविषमानङ्गज्वरव्याधिना
संतप्यामह इत्यतः सुखनिधिं त्वामाश्रिताःस्मो वयम् ॥८८॥
महद्रहस्यमस्माकं रामाख्यं दीयतां धनम् ।
त्वदेककरगं मातः सुलभं त्वत्प्रसादतः ॥८९॥
इति ते मुहुरेव याच्यते प्रमदारण्यविहारनायिके
विरहाधिविपन्निवृत्तये शरणं त्वां वयमातरागताः ॥९०॥
त्वदेकवशगो रामः सदास्मभ्यं प्रदीयताम् ।
त्वमाविश्य जगत्सर्वं सहजे परिदीव्यसि ॥९१॥
तव सौभाग्यमतुलं सदृशं केन वर्ण्यताम् ।
इति विज्ञाय भक्तेषु करुणां कर्तुमर्हसि ॥९२॥

---

१. देवि—रीवाँ ।

इति तासां स्तुवन्तीनां मध्ये श्रीसहजेश्वरी ।
प्रादुरासीत् प्रसन्नात्मा साशोकद्रुममण्डपात् ॥९३॥
पद्मं दक्षिणहस्तेन वामेन दधती वरम् ।
शारदेन्दुसहस्राभ[1]वदनद्युतिदीधितिः ॥९४॥
तडित्कोटि प्रकाशाङ्गी[2] मञ्जुलस्मितशालिनी ।
सर्वावयवभूषाढ्या दृशो पीयूषवर्षिणी ॥९५॥
जपाकुसुमसंकाशरक्ताम्बरसमावृता ।
संध्येव पूर्णचन्द्रांशुसंदोहद्युतिदीपिता ॥९६॥
तस्या मुखेन्दुकिरणैर्दीपिताः सकला दिशः ।
उत्तानचञ्चवश्चासन् प्रमुद्वनचकोरिकाः ॥९७॥
सर्वा एव नमश्चक्रुः सहजानन्दिनीं स्त्रियः ।
श्रीरामविषयं कामं मेनिरे सफलं च ताः ॥९८॥
सर्वाः गोपालवनिताः संबोध्य सहजेश्वरीम् ।
उचाव वचनं प्रीताः प्रसादसुमुखाकृतिः ॥९९॥

सहजानन्दिन्युवाच

अस्तु वो गोपसुन्दर्यः सफलोऽयं मनोरथः ।
अचिरादेव लप्स्यध्वं रामेण रमणं सह ॥१००॥
नातः परं वः प्रियविप्रयोगो बाधिष्यते निश्चिनुतैवमन्तः ।
एतासु रात्रीषु मनोजमग्नास्तारुण्यमेतत् सफलं कुरुध्वम् ॥१०१॥
इति दत्त्वा वरं ताभ्यः सुप्रीता सहजेश्वरी ।
आविवेश निजांशेन सर्वा एव व्रजाङ्गनाः ॥१०२॥

नारद उवाच

त्वमप्येवं विशालाक्षि समाराधय भक्तितः ।
तामेव सहजेशानीं सर्वकामवरेश्वरीम् ॥१०३॥
तस्याः सुवर्णघटितां प्रतिमां हृदये वह ।
गन्धपुष्पादिभिर्नित्यं संपूजय मुहुर्मुहुः ॥१०४॥

---

१. °सहस्रस्य—रीवाँ । २. °प्रकाशासौ—रीवाँ ।

अचिरादेव ते वश्यो रामचन्द्रो भविष्यति ।
प्रसादात्सहजादेव्याः प्रमोदविपिनाश्रयः ॥१०५॥

ब्रह्मोवाच

उपदिश्य विशालाक्षीं सहजानन्दिनीव्रतम् ।
ययौ सपदि देवर्षिर्वल्लकीं क्वणयन् दिवि ॥१०६॥

इतिश्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रायां गन्धमादनगमने अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८॥

•

ऊनचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततश्च सा विशालाक्षी श्रीमद्रामेन्दुलिप्सया ।
नारदोक्तेन विधिना सिषेवे सहजेश्वरीम् ॥१॥
अथैनां सुप्रपन्ना सा प्रादुर्भूय पुरः स्थिता ।
वरेण तोषयामास यथोक्तेन[1] वरप्रदा ॥२॥
ततश्च भगवान् राम उवाचानुजमादरात् ।
गच्छ लक्ष्मण शीघ्रं त्वं शैलेन्द्रं गन्धमादनम् ॥३॥
तस्मै मद्योग्यकन्यार्थं गत्वा याचस्व मद्गिरा ।
श्वोभूते तां विवाह्येतो गच्छावो भूरिसंपदा ॥४॥
आर्यस्य वाक्यमादाय लक्ष्मणो बुद्धिमत्तरः ।
जगाम शैलवर्यस्य पुरं मणिपुराभिधम् ॥५॥
रत्नवैदूर्यकनकप्रासादवरशोभितम् ।
इन्द्रनीलमणिद्योतिलसत्स्फटिकगोपुरम् ॥६॥
कल्पद्रुमलतोत्तुङ्गध्वजराजितमन्दिरम् ।
रत्नचत्वरविश्रान्तवणिग्विक्रीतमौक्तिकम् ॥७॥
[2]वीप्सामिवालकापुर्या वसतिं सर्वसंपदाम् ।
पर्यायमिव नाकस्य निर्मितं विश्वकर्मणा ॥८॥

---

१. °यथेप्सित—रीवाँ । २. "वीप्सा पुनरुक्तिः" टि०—मथु० ।

गङ्गाप्रवाहसंशोभिपरिखामध्यभासुरम् ।
ज्वलद्दिव्यमहावप्रस्पर्धितार्केन्दुमण्डलम् ॥९॥
रत्नशालासुविश्रान्तगायद्गन्धर्वमण्डलम् ।
स्वर्गादपि मनोहारि सर्वदेवगणाकुलम् ॥१०॥
रत्नप्रासादशिखरच्छविच्छुरितवारिदम् ।
प्रतिहर्म्यनदच्चारुमुरजध्वनिगर्जितम् ॥११॥
महार्हरत्नखचितं गृहभित्तिमनोरमम् ।
जनैः संदिग्धनक्षत्रप्रतिबिम्बसमुज्ज्वलम् ॥१२॥
दिव्यौषधिप्रकाशेन तमिस्रास्वपि भासुरम् ।
कृताक्षेपभयानर्हरत्नदीपप्रदीपितम् ॥१३॥
नित्यं यौवनसंपन्नदिव्यपौरजनाकुलम् ।
कन्दर्परतिसौन्दर्य[1]नरनारीगणोर्जितम् ॥१४॥
परमानन्दनिर्निद्रसदा जाग्रन्महाजनम् ।
हावभावमनोहारिदिव्यस्त्रीकुलसंकुलम् ॥१५॥
संतानकतरुच्छायाविश्रान्ततरुणाध्वगम् ।
नित्योत्साहसमापूर्णनित्योत्सवविवर्द्धितम् ॥१६॥
नित्यानन्दसमूहाढ्यश्रृङ्गाररससेवितम् ।
मञ्जीरनादमधुरचलद्विद्याधराङ्गनाम् ॥१७॥
नृत्यगीतसमासक्तक्रीडत्पौरजनाकुलम् ।
क्रीडन्नवनिधिस्तोमसंमर्दरुचिरापणम् ॥१८॥
सरसीशतसंफुल्लस्वर्णरत्नसरोरुहम् ।
ग्रहारामसदादीव्यत्प्रसन्नकुसुमाकरम् ॥१९॥
तत्र गत्वा स शैलस्य मन्दिराभिमुखो ययौ ।
समस्तपौरलोकानां हृदयानि हरन् भृशम् ॥२०॥

तं कोटिमन्मथललामकिशोरवेशं [2]नव्येन्द्रनीलमणिमञ्जुलकोमलाङ्गम् ।
आजानु विस्तृतभुजं वृषपीवरांसं विस्तीर्णवक्षसमुदारमनोज्ञहासम्[2] ॥२१॥

---

१. कन्दर्पमात्र सातंकं-पा०, "सातंकं नाम सभयमित्यर्थः" टि०—मथु०, बड़ो० । २ – २ नास्ति—रीवाँ ।

माधुर्यसागरमनन्तरजं रमेशाद्रामाभिकाममभिरामलसन्मुखेन्दुम् ।
प्रातःसमुल्लसितनव्यसरोजनेत्रं सौमित्रिमीक्ष्य मुमुदुर्नयनानि नृणाम् ॥२२॥
तमायान्तमभिप्रेत्य गन्धमादनपर्वतः ।
अभ्यागत्य बहिर्गेहादग्रहीद्बहुसादरम् ॥२३॥
प्रवेशितस्तेन सरत्नसौधे महार्हसिंहासनमास्थितोऽभूत् ।
पाद्यादिसर्वार्चनसंविधान्ते संदिष्टमार्येण जगाद वाक्यम् ॥२४॥

लक्ष्मण उवाच

श्रूयते भवतः कन्या रत्नभूता जगत्त्रये ।
तामार्यो याचते प्रीत्या कुर्वंतस्त्वं यथोचितम् ॥२५॥
श्रुत्वा शैलपतिर्वाक्यं लक्ष्मणस्य महात्मनः ।
मुमुदेऽतीव हृदये यथोचितवराप्तितः ॥२६॥

गन्धमादन उवाच

अहो मे महती भाग्यसंपद्विजयतेतराम् ।
यत्साक्षाद्भगवान् रामो मम मान्यो भविष्यति ॥२७॥
जानाम्यहं युवां भूमौ नव्येन्दीवरसुन्दरौ ।
भ्रातरौ देवकार्यार्थमवतीर्णौ नरोत्तमौ ॥२८॥
पुराणपुरुषौ साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरौ ।
भवांस्तदक्षरं ब्रह्म रामः श्रीपुरुषोत्तमः ॥२९॥
एकमेव परं ब्रह्म रामो लोके प्रकाशते ।
अनन्तकालरूपस्त्वं शेषः संकर्षणोऽव्ययः ॥३०॥
रामचन्द्रः परंधाम परात्परमुदाहृतम् ।
यद्ब्रह्म पूर्णगुणकं परमानन्दमन्दिरम् ॥३१॥
स मां जामातृरूपेण तोषयिष्यति राघवः ।
अहो मे परमं भाग्यं लोके गास्यन्ति मानवाः ॥३२॥
यद्भाग्यं सरितांपत्युर्यद्भाग्यं जनकस्य च ।
तदेव भाग्यमतुलं ममापि खलु दृश्यते ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

ततः स रत्नगर्भाख्यां पत्नीमाहूय पर्वतः ।
उवाच ननु ते पुत्र्या विवाहः समुपस्थितः ॥३४॥

यः स्वयं भगवान् पूर्णः परो रामः स्वयं हरिः ।
सोऽपि दाशरथे गेहे जामाता ते भविष्यति ॥३५॥
पुरन्ध्रीवर्गमाहूय सुमुहूर्त्ते शुभे दिने ।
कन्यारत्नमिदं योग्यं रामाय प्रतिपाद्यताम् ॥३६॥

रत्नगर्भोवाच

जनकस्य सुता तस्य भूपतेः प्रथमा वधूः ।
सैवास्य पट्टमहिषी भविष्यति न संशयः ॥३७॥
मत्सुतां सुकुमाराङ्गीं रूपेणाप्रतिमां भुवि ।
निषेदुषीमधस्तस्याः कथं सोढुमहं क्षमे ॥३८॥
अतो निवेद्यतामेष जामाता भवता प्रभो ।
यथोत्कर्षो न भज्येत मत्सुतायाः शशिश्रियः ॥३४॥
इत्युक्त्वा शैलराजं सा पुरन्ध्रीवर्गमाह्वयत् ।
कर्तुं वैवाहिकीं सर्वां सविधां शुभवासरे ॥४०॥
स तथेति प्रतिश्रुत्य लक्ष्मणं विससर्ज वै ।
स आगत्येप्सितं कार्यं सिद्धमार्ये व्यजिज्ञपत् ॥४१॥
अथ वैवाहिके लग्ने चन्द्रवृद्धिसमन्विते ।
तिथौ जामित्रयुक्तायां सबन्धुर्गन्धमादनः ॥४२॥
वैवाहिकीं शुभां दीक्षां चकार मुदिताशयः ।
सर्वतो भूषितं पार्श्वमुभौ तस्य पुरं नवम् ॥४३॥
द्रक्ष्यामोऽद्य स्वयं रामं भाग्यं नश्चक्षुषामिति ।
पौराणां हृदये भूयस्युत्कण्ठा समवर्द्धत ॥४४॥
अथोत्तराफाल्गुनीसु चन्द्रयुक्तासु तद्दिने ।
मैत्रे मुहूर्ते सुभगा भूषयन्तिस्म कन्यकाम् ॥४५॥
मङ्गलाभ्यङ्गमातेनुस्तस्याः सुभगयोषितः ।
लोध्रकल्केन तत्प्रोञ्छ्य कालेयोद्वर्तनं दधुः ॥४६॥
मणिवैदूर्यमुक्ताभिर्निर्मिते चारुचित्रिते ।
चतुष्के तां समारोप्य स्नापयामासुरङ्गनाः ॥४७॥
ततः सुवर्णकुम्भस्थैर्जलैस्तूर्यपुरःसरम् ।
स्नानं कृत्वा विशुद्धाङ्गी पटं परिदधौ नवम् ॥४८॥

मणिस्तम्भचतुष्केण शोभमाने वितानिनि ।
विहिते वेदिमध्ये तां निन्युर्दिव्यासनान्विते ॥४९॥
धूपितागुरुधूपेन तस्याश्चिकुरधोरणी ।
दूर्वामधूकदाम्नोच्चैर्बद्धा सुभगया ततः ॥५१॥
विलिप्य शुक्लागुरुणा तदङ्गं सुभगाः स्त्रियः ।
गोरोचनापत्रभक्त्या चित्रितुं समचीकरन् ॥५१॥
सुवर्णवर्णैर्मृदुभिः कर्णार्पितयवाङ्कुरैः ।
विलम्बितालकौ तस्याः कपोलौ परिरेजतुः ॥५२॥
स्वाभाविकरुचा रक्तौ तस्याः कमलकोमलौ ।
चरणौ रञ्जितौ स्त्रीभिर्यावकेन विशेषतः ॥५३॥
इन्दीवरदलाकारे नवखञ्जनमञ्जुले ।
कालाञ्जनेन नयने रञ्जनं समवापतुः ॥५४॥
सुवर्णमणिभूषाभिः प्रत्यङ्गं सा विभूषिता ।
विरेजे नववल्लीव वसन्तागमपुष्पिता ॥५५॥
सर्वाङ्गभूषितामेतामादर्शफलकं स्त्रियः ।
दर्शयामासुरानन्दभरमञ्जुस्मिताननाम् ॥५६॥
यापत्यरत्नजननाद् भुवि रत्नगर्भा
सा गन्धमादनवधूः कमताभिधाना ।
तद्भालमार्द्रहरितालमनःशिलाभ्यां
चक्रे विवाहतिलकान्वितमञ्जुलाभ्याम् ॥५७॥
बबन्धोर्णामयं सूत्रं प्रेमवाष्पाकुलेक्षणः ।
वैवाहिकीं शुभां दीक्षां सूचयामास तत्करे ॥५८॥
सा विरेजेतरां बाला नवीनक्षौमवासिनी ।
चन्द्रिकोच्छ्रायविपुलाकलेव सितरोचिषः ॥५९॥
प्रणमय्य ततो माता पूजिताः कुलदेवताः ।
प्रणामं कारयामास साध्वीनां कुलयोषिताम् ॥६०॥
शिवस्य गिरिजेव त्वमेहि सौभाग्यमूर्जितम् ।
रामस्येति सतीलोकाः प्रायुङ्क्तः परमाशिषः ॥६१॥

सुहृद्बन्धुसमाजस्थस्तत्पिता गन्धमादनः ।
वैवाहिकेऽखिले कृत्ये सज्जः स ब्राह्मणैः सह ॥६२॥
आस प्रतीक्षमाणोऽथ रामचन्द्रवरागमम् ।
तावत्सोऽपि स्ववधूभिर्भूषितः कुञ्जमण्डपे ॥६३॥
सातकुम्भमयैः कुम्भैः स्वर्गङ्गाजलसंभृतैः ।
स्नापितो देवकन्याभिः पुत्रो दशरथस्य सः ॥६४॥
दध्यौ कर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमागुरुनिर्मितम् ।
अङ्गरागं शुभं रामो विवाहोत्सवदीक्षितः ॥६५॥
नवाम्रमञ्जरीपत्रपारिजातप्रसूनकैः ।
शुशुभे शेखरे बिभ्रद्वसन्त इव मूर्त्तिमान् ॥६६॥
भाले गोरोचनापत्रं दधार रसिकोत्तमः ।
वहन्नुदयकालीनमष्टमीशशिनं घनः ॥६७॥
तिलकं हरितालस्य रेजे तद्भालमण्डले ।
रोहिणीवाङ्कमारूढा विलसत्यष्टमी विधोः ॥६८॥
सुवर्णमणिमाणिक्यभूषणैर्भूषिताम्बरः ।
प्रसन्नतारकाजालं कलयन्निव तोयदः ॥६९॥
सौवर्णसूत्रघटितमुष्णीषं शिरसा दधत् ।
विरेजे छुरितं विष्वक् चूडामणिमरीचिभिः ॥७०॥
सकञ्चुकं वहन्नव्यं सुवर्णगुणनिर्मितम् ।
रेजे तडिद्वितानेन विलिप्त इव वारिदः ॥७१॥
कटिबन्धं दधद्रामो निस्त्रिंशेन समन्वितम् ।
वीरो मूर्त इव भ्राजदुत्साहःस्थायिसंगतः ॥७२॥
जानकीहृदयानन्दं सहजाचित्तमोहनम् ।
भ्रात्रोपनीते मुकुरे स्वमात्मानं ददर्श सः ॥७३॥
"सुभगे शिर आरोह शोभयन्ती मुखं मम" ।
इति मन्त्रेण मुकुटं दधौ वैवाहिकं वरः ॥७४॥
वाचयित्वा सुपुण्याहं वसिष्ठाद्यैर्मुनीश्वरैः ।
नीराजितः स्ववधूभिर्जयघोषपुरःसरम् ॥७५॥

स उच्चैःश्रवसं नाम वासवेन समर्पितम् ।
अश्ववर्यं समारुह्य प्रतस्थौ श्वसुरालयम् ॥७६॥
तमनुप्रस्थितो वीरः सौमित्रिः शुभदर्शनः ।
मनोभवमिव प्रेम्णा प्रहृष्यन् कुसुमाकरः ॥७७॥
तमनु प्रस्थिता देवा विधिशक्रशिवादयः ।
ऋषयश्च वशिष्ठाद्या जयमन्त्रयुताः पुरः ॥७८॥
गीर्वाणवनिताश्चानु प्रस्थिताः शुभगीतिभिः ।
कालोचितं प्रागायन्त्यो देवकन्यागणैः सह ॥७९॥
चक्रुरप्सरसो नृत्यमुर्वशीप्रमुखाः पथि ।
जगुर्गन्धर्वपतयः सताललयमूर्छनाः ॥८०॥
तूर्यघोषो महानासीन्महामाङ्गलिकः पथि ।
यथा जलधरोद्घोषैरगर्जन् कन्दरा गिरेः ॥८१॥
शङ्खवीणामृदङ्गानां दुन्दुभीनां समंततः ।
पटहानां झर्झराणां संघर्षोऽभूत् परस्परम् ॥८२॥
नारदस्तुम्बुरुश्चैव श्रीरामस्य पुरो गतौ ।
निजां वैणिकतां तत्र सफलां चक्रतुर्मुनी ॥८३॥
माङ्गल्यतूर्यघोषेण विमानपथचारिणा ।
आकारितः शुभोद्वाहं द्रष्टुं स्वर्गपुरीजनः ॥८४॥
तस्यातपत्रं जगृहे भगवान् पद्मबान्धवः ।
उच्चैः शुशोभ शीर्षस्थमुक्तादामविलम्बि तत् ॥८५॥
पार्श्वयोः गङ्गयमुने सिषेवाते रघूद्वहम् ।
चामरग्राहिणीभूय हित्वा नद्यात्मकं वपुः ॥८६॥
ब्रह्मा वैकुण्ठनाथश्च तं शनैरभ्यगच्छताम् ।
जयेति धीरया वाचा वर्द्धयन्तौ मुदं परम् ॥८७॥
सुमुहूर्तेन शैलस्य प्राप्तो मणिपुरं पुरम् ।
उपकण्ठस्थितैः पौरैर्दृश्यमानो मितादरम् ॥८८॥
प्रत्युज्जगाम तं शैलः सुहृद्भिर्बन्धुभिः सह ।
गजाश्वरथपादातैः पथिसंमर्दयन् बलैः ॥८९॥

स वेदितो जगद्भर्ता जामात्रा हृदि लज्जितः ।
आराधितः पुरा येन स दूरात्सहजापतिः ॥९०॥
स तं प्रवेशयामास समृद्धं निजमन्दिरम् ।
भूषितापणसौधस्थपौरकन्याजनेक्षितम् ॥९१॥
तदानीं पुरसुन्दर्यो दृष्ट्वा रूपं वरस्य तत् ।
बभूवुर्धन्यजन्मानः सफलायतलोचनाः ॥९२॥
काचिदालोकमार्गेण द्रष्टुं रामं समागता ।
उद्वेष्टनगलन्माल्यान् बद्धु केशाश्च नाशकत् ॥९२॥
काचित्प्रसाधिकाहस्तादाक्षिप्यैवार्धरञ्जितम् ।
पादं गलद्रसं भूमावङ्कयामास तत्क्षणे ॥९४॥
साञ्जनैकेक्षणा काचिन्निरञ्जनपरेक्षणा ।
शलाकां दधती हस्ते वातायनमुपागमत् ॥९५॥
काचित्प्रस्खलितां नीवीं दधत्येककरे वधूः ।
नाशक्नोद्वद्धुमालोकमार्गन्यस्तायतेक्षणा ॥९६॥
काचित् स्तनन्धयं त्यक्त्वा व्रजन्ती रामवीक्षणे ।
प्रस्नुताभ्यामुरोजाभ्यां सिषेच पदवीं वधूः ॥९७॥
तासां मुखसहस्रेण कान्तिमण्डलशालिना ।
गवाक्षाः परितो रेजुः सेन्दुबिम्बा इव स्फुटम् ॥९८॥
पताकाकोटिसंछन्नं द्वारेष्वाबद्धतोरणम् ।
समङ्गलं प्रतिपदं रामः पुरमुदैक्षत ॥९९॥
सर्वेन्द्रियवती[1] वृत्तिः पौराणां रामदर्शने ।
सर्वात्मना नेत्रयुग्मे प्रविष्टाभवदातुरा ॥१००॥
अथो मणिपुरस्त्रीणां मुखेभ्यो निर्गता गिरः ।
शुश्राव रामचन्द्रस्ताः सोत्साहद्विगुणाशयः ॥१०१॥
उचितमिदममुष्य प्राप्तये श्रीविशाला
भृशमचरदनल्पं सेवनं दैवतस्य ।
ननु चरणसरोजेऽप्यस्य दास्यं दुरापं
किमिति कुसुमचापस्पर्द्धिनोऽस्याङ्कशय्या ॥१०२॥

---

१. °सर्वेन्द्रियाणां या—रीवाँ ।°

युगमिदमनुरूपं रूपलावण्यकान्ति
प्रभृतिगुणसमूहैश्चेत्स नायोजयिष्यत् ।
तदखिलकमनीयां सर्वलोकोत्तरां च
श्रियमनुपमरूपां किं विधाता व्यधास्यत् ॥१०३॥
ननु लवणिमसिन्धोरस्य रूपेण कामः
परिभवमुदवाप्य स्वान्तसंक्रान्तलज्जः ।
त्रिनयननयनाग्नौ स्वं वपुः संजुहाव
क्व नु खलु भुवनेऽस्मिन् जीवनं मानहानौ ॥१०४॥
गिरिपरिवृढ एष प्राप्य संबन्धमेनं
सकलभुवनमध्ये लप्स्यति कीर्तिमग्र्याम् ।
धरणिधरणकार्या दर्पणं स्वस्य पुत्र्याः
पुरुषगणवरेऽस्मिन् प्राप्स्यतीज्यां प्रतिष्ठाम् ॥१०५॥
वैकुण्ठराड्दत्तहस्तः सोऽवतीर्य हयोत्तमात् ।
शैलेन्द्रसद्मनः कक्षां प्राप ब्रह्मपुरःसरम् ॥१०६॥
तमनु त्रिदशाः सर्वे शर्वशक्रपुरोगमाः ।
आलये शैलराजस्य प्राविशन् कलितोत्सवाः ॥१०७॥
अग्रे समागत्य सरत्नगर्भया नीराजितः साक्षतपात्रहस्तया ।
ततोऽभिषिक्तः सुभगाशिरःस्फुरत्सुवर्णकुम्भोदकबिन्दुपल्लवैः ॥१०८॥
रामाय शैलो विधिवत् स्थापयित्वा शुभासनम् ।
त्रिः प्रोच्य दर्भघटितं विष्टरं संन्यवेदयत् ॥१०९॥
सरत्नमध्यं मधुपर्कमुत्तमं निवेद्य गव्यं मधुमद्विधानतः ।
कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गरोचिषो ददौ दुकूलेऽभिनवे वराय सः ॥११०॥
अथान्तःपटमानीय वरवध्वोर्यथा विधिः ।
गोत्रोच्चारः समभवद्वसिष्ठाद्यैर्मुनीश्वरैः ॥१११॥
अथारुणाङ्गुलिहस्तं विशालाक्ष्याः सुकोमलम् ।
शैलराजोपनीतं स जग्राह रघुपुङ्गवः ॥११२॥
रोमाञ्चितोऽभवद्धस्तो विशालायाः स तत्क्षणे ।
रामस्य स्वेदमभजत् करस्तद्ग्रहणक्षणे ॥११३॥

मङ्गलाशीर्गिरामन्ते शुभे लग्ने परस्परम् ।
परस्परस्य शिरसि चक्रातेऽक्षतपातनम् ॥११४॥
उर्दचिषमथो वह्नि त्रिःपरिक्रम्य दम्पती ।
लाजहोमं प्रचक्राते कृतशिक्षौ पुरोधसा ॥११५॥
एष तेऽतिशुभो वह्निर्विवाहं प्रति साक्ष्यताम् ।
भजते पुर एतस्य मदुक्तमवधारय ॥११६॥
अयोध्यानाथपुत्रेण रामेण सह भामिनि ।
धर्मचर्या त्वया कार्येत्युक्तं वाक्यं पुरोधसा ॥११७॥
अश्मेव त्वं स्थिरेत्येनामश्मानमधिरोपिताम् ।
ददर्श रामो भगवानीषत्कौतूहलस्मितम् ॥११८॥
भर्त्रा प्रदर्श्यमाणं सा ध्रुवं दृष्ट्वोन्नतानना ।
कथंचिद् दृष्ट इत्याह लज्जया वक्तुमक्षमा ॥११९॥
पाणिग्रहप्रयोगान्ते तौ भक्तिनतविग्रहौ ।
प्रणेमतुः सुरान् सर्वान् पद्मसंभवपूर्वकम् ॥१२०॥
ते तामखण्डसौभाग्यमङ्गलाशीःप्रयोजकाः ।
ज्ञाततत्त्वाः सुराः सर्वे जज्ञुर्लक्ष्मीं जगत्प्रसूम् ॥१२१॥
चतुरस्रमहाविद्याकनकासनमास्थितौ ।
आर्द्राक्षतारोपपूर्वं मन्त्राशीर्भिः प्रतोषितैः ॥१२२॥
मुक्ताफलाक्षतैर्देवा मन्त्राशीर्वादपूर्वकम् ।
सिषेविरे कृतोत्साहा विशालारघुपुङ्गवौ ॥१२३॥
अथ स्वयं महालक्ष्मीः रामचन्द्रसमीपगा ।
पद्मातपत्रं दधतां सिषेवे दम्पती शुभौ ॥१२४॥
अस्तौत् स्वयं तन्मिथुनं वेदरूपा सरस्वती ।
मायामयस्वरूपेण तदप्यल्पतरं तयोः ॥१२५॥
अथ सर्वान् समाजस्थान् विसृज्य त्रिदशाधिपान् !
वधूमादाय हस्तेन कौतुकागारमन्वगात् ॥१२६॥
उपेतस्वर्णकलशं कालागुरुसुधूपितम् ।
कर्पूरदीपद्युतिमत् वलूप्ततल्पंमहीतले ॥१२७॥

गवाक्षविवराक्रान्तसखीलोचनवीक्षितौ ।
तौ दम्पती रहोवृत्तं चक्राते संचरत्त्रपम् ॥१२८॥
अथ प्रभाते वसुधानरेन्द्रो जामातरं सोत्सवमाशयित्वा ।
तत्सार्थगांश्च त्रिदशान् समेतांस्तथा सुहृद्बन्धुगणान् शुभान्नैः ॥१२९॥
अथ शक्त्यधिकं शैलः पारिवर्हमकल्पयत् ।
येनायोध्यापतेः सद्म प्राङ्गणं च प्रपूरितम् ॥१३०॥
हिमकर्पूरगौराणां धृतस्वर्णमणिस्रजाम् ।
ऐरावतसजातीनां सहस्रं दन्तिनामदात् ॥१३१॥
द्विसहस्रनवाम्भोदपटलश्यामविग्रहाः ।
क्षरन्तो दानवारीणि वितीर्णास्तेन वारणाः ॥१३२॥
पञ्चधाराप्रवीणानां महाम्भोनिधिगामिनाम् ।
अयुतं वाजिरत्नानामदादुद्वाहपर्वणि ॥१३३॥
स्यन्दनानि महार्हाणि प्रभूतधनवन्ति च ।
अयुते द्वे सुसंनह्य समदात् पर्वताधिपः ॥१३४॥
दासीनां च सहस्रे द्वे समदात् समलङ्कृते ।
सुवर्णमणिभूषाभिरदाद्वैवाहिकोत्सवे ॥१३५॥
धनं च विपुलं तस्मै सुवर्णाख्यं महोर्जितम् ।
संभारान् दश मुक्तानां मणीनां समदाद् गिरिः ॥१३६॥
इत्थं संतोषितस्तेन जामाता तनयाकृते ।
आदरं बहुलं चक्रे संमाननपुरःसरम् ॥१३७॥
शङ्खभेरीमृदङ्गाद्या अवाद्यन्त मुहुर्मुहुः ।
वरवध्वोर्मङ्गलाय तदानीमुत्सवावहाः ॥१३८॥
क्रमता रत्नगर्भास्या पर्वतो गन्धमादनः ।
तयोः प्रकाशयामास स्वरूपमिति शुश्रुम ॥१३९॥
यदक्षरं ब्रह्मविदामगम्यं वेदान्तवाक्यैर्बहुधा प्रतीताम् ।
यत्रैव तत्प्रेमवतां प्रवेशस्तद्वै प्रमोदाख्यवनं ददर्श ॥१४०॥
चिन्तामणिमयी भूमिः कल्पवृक्षलतावृता ।
तन्मध्ये मन्दिरं दिव्यं सहस्रस्तम्भशोभितम् ॥१४१॥

मणिमाणिक्यवैदूर्यमुक्तारत्नसुनिर्मितम् ।
कोटिसूर्येन्दुसंकाशं मुकुरामलदीधिति ॥१४२॥
सुवर्णकुम्भशिखरप्रत्युप्तमणिभासुरम् ।
तत्र रत्नमये पीठे विराजितमुरुप्रभम् ॥१४३॥
सुधांशुमणिरोचिष्णुदिव्यच्छत्रविरोचितम् ।
पीताम्बरधरं देवं पुण्डरीकसुलोचनम् ॥१४४॥
नवीननीरदश्यामं कुटिलालकशोभितम् ।
किरीटप्रभया कोटिमणिमाणिक्यमिश्रया ॥१४५॥
समन्ततो दीप्यमानं तरुणार्कप्रभामयम् ।
मन्दस्मितमनोहारि मुखेन्दुद्युतिदीपितम् ॥१४६॥
सर्वाङ्गसुन्दरं श्यामं तुलसीवनमालिनम् ।
आजानुविपुलोद्दण्डभुजाभ्यां रुचिराकृतिम् ॥१४७॥
अरालभ्रुकुटीचारुलोचनान्तकृतस्मरम् ।
कुण्डलाङ्गदमाणिक्यकटकाभरणोर्जितम् ॥१४८॥
मेखलासक्तवैदूर्यप्रभारोमावलिद्युतिम् ।
तुङ्गनासासुशोभाढ्यकपोलमुकुटश्रियम् ॥१४९॥
कम्बुकण्ठमनोहारिपृथुवक्षःस्थलाञ्चितम् ।
आज्ञावशंवदैः सर्वैरायुधैः समुपासितम् ।
अणिमाद्यैः सिद्धिसङ्घैः सेवितं सर्वदैवतम् ॥१५०॥
मूर्तिमद्भिश्चतुर्वेदैः स्तूयमानं समन्ततः ।
महोपनिषदुद्गीतं शब्दब्रह्म परं महः ॥१५१॥
रामचन्द्रस्य भक्तोऽसौ शैलराजः सदानतः ।
तमभीष्टमसौ रामं पश्यन् विस्मितमानसः ॥१५२॥
जाया च तस्य साध्वी सा तथारूपमुदैक्षत ।
विशालां च परां लक्ष्मीं पद्महस्तामपश्यताम् ॥१५३॥
ततः संस्तूय विधिवत्तौ गिरिर्दिव्यदम्पती ।
पुरीं प्रस्थापयामास तामयोध्याभिधां पराम् ॥१५४॥
रामस्ताभ्यां परां भक्तिं दत्त्वा संप्रीतमानसः ।
आगामित्रेताख्ययुगे सौगन्धिकगिरिं व्यधात् ॥१५५॥

यस्य प्रमोदविपिने नित्यं वासो भविष्यति ।
श्रीरामसहजाप्रेमपरिरञ्जितचेतसः ॥१५६॥

ततस्तौ स्यन्दनं दिव्यमास्थितौ त्रिजगत्पती ।
विशालारामरमणौ स्वामयोध्यां प्रतस्थतुः ॥१५७॥

गन्धमादन एवायं रामो रमणकोविदः ।
रमते श्रीविशालाक्ष्याः कैश्चिदद्यापि वीक्षितः ॥१५८॥

इति शुश्रुम योगिभ्यः पुराविद्भ्यः परं यशः ।
रामस्य भक्तवश्यत्वं यत्रानेन स्फुटीकृतम् ॥१५९॥

कमता रत्नगर्भाख्या तस्य भार्या महात्मनः ।
तनयायामतिस्निग्धा विशालायां विशेषतः ॥१६०॥

यदा प्रस्थातुमारेभे राम उद्वाह्य तां रमाम् ।
तदा भृशं वियोगार्ता रुरोद विपुलाश्रुभृत् ॥१६१॥

तदा तयो रत्नगर्भागन्धमादनशैलयोः ।
प्रेम्णा निबद्धहृदयो रामस्तत्रैव तस्थिवान् ॥१६२॥

अद्यापि यत्र सद्भक्तैर्दृश्यते रमणं दधत् ।
विशालाक्षीपरप्रेमरसकेलिविनोदवान् ॥१६३॥

एवं दशरथो राजा शुश्राव विशदं यशः ।
गीयमानं सुरवरैर्गन्धमादनपर्वते ॥१६४॥

तत्र गत्वा महातीर्थेष्ववगाह्य नृपोत्तमः ।
त्रिस्रोतसः शुभां धारां दृष्ट्वोपस्पृश्य निर्वृतः ॥१५५॥

आगतं निजजामातुः पितरं गन्धमादनः ।
निशम्य प्रश्रयन्नन्तःपुरः प्रत्युद्ययौ गिरिः ॥१६६॥

तयोर्मिलनमत्रासीद् भूपतीन्द्रगिरीन्द्रयोः ।
बहुगौरवसंपन्नं बहुप्रणयमन्दिरम् ॥१६७॥

मिलित्वा नृपवर्यन्ते शैलराजः शुभाशयः ।
निनाय मन्दिरं स्वीयं बह्वातिथ्यविधानकृत् ॥१६८॥

तं प्रीणयित्वा बहुसंविदाभिस्तथानुचर्यानिरतं महीन्द्रम् ।
ननाम भक्त्यावनतो महीन्द्रो रामस्य भाग्यैकनिधिः पितेति ॥१६९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रायां गन्धमादनगमने एकोनचत्वारिंशाधिकशततमोध्यायः ॥१३९॥

चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततः प्राप्य महात्मानं गन्धमादनपर्वतात् ।
श्रुत्वा श्रीरामचन्द्रस्य शैलराजेऽमलं यशः ॥१॥
धारामलकनन्दाया रामकीर्तिसमुज्ज्वलाम् ।
अवगाह्य महीपालो हिमवन्तं विलोक्य च ॥२॥
हिमवच्छैलदुर्गेषु कृत्वा तीर्थाटनं बुधः ।
तुतोष हृदयेऽत्यन्तं वशिष्ठादिपुरस्कृतः ॥३॥
एकाशीतिसहस्राणि तावल्लक्ष्यमितानि च ।
तावत् कोटिमितान्यत्र तीर्थानि हिमपर्वते ॥४॥
गुप्तानि च प्रकटानि क्षमायां सन्ति ब्रह्माविष्णुरुद्रात्मकानि ।
अन्येषां चैवामराणां गृहाणि पुण्यानि तीर्थानि जयन्ति यानि ॥५॥
तानि सर्वाण्यरुन्धत्याः पतिना योगदृष्टिना ।
निर्दिष्टानि पुरो भूयः कारितानि चकार सः ॥७॥
वर्षेषु तेषु व्रजतां मुनीनां निवहेन सः ।
वर्णितानीव लक्ष्याणि यशांसि परमात्मनः ॥७॥
प्रियस्य सुतरूपस्य सत्यसन्धस्य सुश्रियः ।
रामचन्द्रस्य शुश्राव तेनासीदतिनिर्वृतः ॥८॥

अथ सोऽवातरच्छैलराजात्सुकृतमण्डितः ।
कूर्माचलपथेनैव कुर्वन् भूमिप्रदक्षिणाम् ॥९॥
कौशिकीं विततस्रोतां स्नात्वा सत्पुण्यसंचयी ।
ईशानादिक्रमेणैव मोरङ्गगिरिमागमत् ॥१०॥
नेपालेश्वरमालोक्य गुह्येशीं संप्रणम्य च ।
ततः प्रदक्षिणां कुर्वन् पुण्यां यात्रां क्रमेण सः ॥९१॥
कामरूपेश्वरं गत्वा कामाक्षीं समवातरत् ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा मायया परमात्मनः ॥१२॥
भग्नमानाः कृताः सर्वे तामेवाद्यां प्रतुष्टुवुः ।
तां नत्वा संप्रशंस्योच्चैर्ययाचे स्वसुतोदयम् ॥१३॥
इत्थं परिक्रमन् भूमीं तत्र तत्र महायशाः ।
इयाज सोमैर्नृपतिरन्यैश्च क्रतुभिर्भुवि ॥२४॥
वशिष्ठाद्यैर्मुनिवरैरुपदिष्टाखिलाः क्रियाः ।
भूपः क्रमेण पुण्यानि स्थानानि वरयोगिनाम् ॥१५॥
पर्यटन् मिथिलां प्राप्तो यत्र नैम्यो मनस्विराट् ।
जनको नाम योगीन्द्रः सोऽस्मै प्रत्युद्ययौ नृपम् ॥१६॥
भूयः संमानितं कृत्वा स्तवनाद्यैर्महीपतिः ।
गृहं प्रवेशयामास विद्वद्भिः परिवारितः ॥१७॥
मुनिभिर्याज्ञवल्क्याद्यैः सर्वैर्विज्ञातवेद्यकैः ।
उवाच जनको भूपः प्रसाद्य रघुपुङ्गवम् ।
श्रीरामाख्यपरब्रह्मजनिभाग्यमहोदयम् ॥१८॥

जनक उवाच

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि रघुवंशशिखामणे ।
यस्य ते श्रीरामः साक्षादवतीर्णः परः पुमान् ॥१९॥
राजन् राममवेहि त्वं परमात्मानमद्वयम् ।
विश्वोपादानमतुलं बीजं परमकारणम् ॥२०॥
कल्याणगुणसंपन्नं भक्तानामभयंकरम् ।
यज्ज्ञात्वा न पुनः किञ्चिज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥२१॥

पिबंस्तस्य च[1] वक्त्रेन्दुमाधुर्यरसमद्भुतम् ।
सफलं कुरु राजेन्द्र स्वं चक्षुरुदयत्स्पृहम् ॥२२॥

वशिष्ठ उवाच

युवामेव भवे धन्यौ राजन् निमिरघूद्वहौ ।
ययोः प्रसन्नो भगवान् पूर्णः श्रीपुरुषोत्तमः ॥२३॥
त्वयि सा श्रीर्जन्मवती यदेकांशावलम्बनात् ।
त्रैलोक्येऽखिलवस्तूनि श्रीमन्त्यूर्जस्वलानि च ॥२४॥
ब्रह्मानन्दकला पूर्णा प्रेमानन्दकलानिधिः ।
जानकी प्रोच्यते विद्वन् वेदैरपि विशेषतः ॥२५॥
या स्वयं परमा लक्ष्मीः श्रीः पद्मवनवासिनी ।
गायत्री चैव सावित्री मेधा प्रज्ञा प्रभामयी ॥२६॥
विद्याधीर्धारणायुक्ता चेतना ह्रीर्धृतिः स्मृतिः ।
तस्याः प्रभावं विज्ञातुं स्वयमीष्टे तदीश्वरः ॥२७॥
स साक्षाद्भगवान् पूर्णः पुरुषोत्तमशब्दितः ।
परब्रह्मस्वरूपोऽस्य राज्ञो भूषयते गृहम् ॥२८॥

अतो युवां निमिरघुवंशभूषणौ परं यशो वितनुथ आत्मनोर्भुवि ।
अगोचरं मुनिजनमानसस्मयत्तदुत्तमं युगलमवाप्तचक्षुषौ ॥२९॥

दशरथ उवाच

नाहमस्य निमिचन्द्रभूपतेः षोडशीमपि कलां समाश्रये ।
यस्य योगबलमेतदद्भुतं दृश्यते सुविजिताखिलेन्द्रियम् ॥३०॥
अहो अयं महाराजस्तृणवन्मन्यतेऽखिलम् ।
राज्यं सुखसमृद्धिं च विगणय्य स्थितो मुदा ॥३१॥
नास्यानुबन्धनं राज्यं न समृद्धिः परं सुखम् ।
अनित्यमखिलं मत्वा योगमन्तःश्रितो ह्ययम् ॥३२॥
भगवन् मुनिशार्दूल प्राजापत्य तपोनिधे ।
याज्ञवल्क्यप्रसादेन सिद्धोऽसौ भुवि भूपतिः ॥३३॥

---

१. धयानस्तस्य—मथु० बड़ो० ।

यत्तत्त्वमेकं मुनयो वदन्ति वेदेषु शास्त्रेषु च यन्निरूढम् ।
तदस्य हस्तामलकं पुरः स्फुरत्यात्मात्मनात्मात्मभिदा विमुक्तम् ॥३४॥
अस्यात्मदृष्टेरिदमर्द्धमङ्गं महात्मविद्यानलकीलदग्धम् ।
अर्धं पुनश्चारुकुरङ्गनेत्राकराम्बुजैः शीलितपादपद्मम् ॥३५॥
अस्यैव शिक्षां समवाप्य विद्वान् योगी शुको नाम महामुनीन्द्रः ।
बभूव लोके गुरुरात्मविद्याप्रवर्तको रामगुणप्रकाशकः ॥३६॥
इत्थं परं शुश्रुम योगचर्याममुष्य वै सत्कृतलोकवृत्ताम् ।
नो चेन्मुनीन्द्रैरपि दुष्करं यत्तत्को नु सेवेत विषं सुधां च ॥३७॥
अमुं स्वदेहं विगतात्मभेदं कैवल्यशीलं समवाप्ततत्त्वम् ।
विशिष्यते तत्पदलिप्सयैव मुनीन्द्रवर्याः परिवार्य तस्थुः ॥३८॥
तेषामेष ब्रह्मविदां नवानामन्तर्मोदं जनयन् वैष्णवाग्र्यः ।
स्वज्ञानविज्ञानविविक्तबुद्धिरास्ते परंब्रह्मविचिन्तयानः ॥३९॥
येऽन्ये मुनीन्द्रा इह याज्ञवल्क्यमुख्या इमे तेष्वयमात्तशासनः ।
तथापि पुण्यैश्चरितैः स्वकीयैस्तान् शिक्षयन्नेष विराजतीव ॥४०॥
अतोऽस्य योगीन्द्रवरस्य सेवां विधाय शाश्वत्कतिचिद्दिनानि ।
अधिक्रियेऽहं परमार्थभूतं तत्तत्त्वमावेदितुमात्मनोऽन्तः ॥४१॥
इत्युक्तवति राजेन्द्रे तस्मिन् स निमिचन्द्रमाः ।
उवाच किमपि स्मेरवदनाम्भोजसुन्दरः ॥४२॥

जनक उवाच

अये नृपतिशार्दूल किमवाप्तव्यमस्ति ते ।
यस्य चेतो भृतं श्रीमद्रामप्रेमपरामृतैः ॥४३॥
न कर्मणा नो तपसादितो वा विज्ञानतो[1] नाप्युपासाभिरद्धा ।
यत्प्राप्यते तत्पदमाप्तवानसि त्वं तत्परब्रह्मरसानुभूत्या ॥४४॥
जानामि ते सुखितो गोपराजो लीलारसानन्दपदं विविच्य ।
आदिव्रजे प्रोक्तवान् यद्रहस्यं गिरामभिज्ञोत्तमवैदिकीनाम् ॥४५॥
ततोऽस्ति नानन्तपदं मुनिष्वपि ब्रह्मज्ञानावाप्तिसाम्राज्यवस्तु ।
यत्प्रेमसिन्धौ रासलीलारसेऽस्ति शिवोऽपि यल्लब्धमना जहौ तपः ॥४६॥

---

१. नो विज्ञानतो वा न ज्ञानतो—मथु०, बड़ो० ।

यदस्यासौ परमोदारलीला प्रेमामृतालङ्कृत आत्मवश्यः ।
श्रियः सहस्रं रमयन् नृत्यगानकौतूहली क्रीडति रामचन्द्रः ॥४७॥
तदा किं तद्गुणितानन्दमात्रं ब्रह्मत्वमाहैतदवाप्तिसाधनैः ।
ज्ञानादिभिस्तत्कृपयैव किंचिद् भुक्तं हि तत्त्वं पशुपालदारैः ॥४८॥
भवान् राजन् रसिकेन्द्रलीलामाधुर्यमावत्सलभावमाप्तवान् ।
ततः किमन्यत् स्पृहयस्युदारधीर्ब्रह्माभिधं पदमेतद्विभूति ॥४९॥
सर्वानन्दपदं तस्य प्रेमानन्दं सुदुर्लभम् ।
अवाप्य स्पृहते केन नमितानन्दकं बृहत् ॥५०॥
मीमांसितोऽयमानन्दस्तत्त्वोपनिषदा क्वचित् ।
वित्ताढ्यां भुवमारभ्य ब्रह्मपर्यन्तमूर्तितः ॥५०॥
आनन्दानां तु सर्वेषां विश्रामो यत्र दृश्यते ।
रसानन्दमयाकारः पुरुषोत्तमशब्दितः ॥५२॥
सा गतिः सा परा काष्ठा भक्तानां स्निग्धचेतसाम् ।
यस्य स्वधामैव बृहदित्यद्धा श्रुतिरवोचत ॥५३॥
स्थाने तवेयं मतिरूर्जिता भो यस्यात्मजः श्रीपुरुषोत्तमः परः ।
स्वमायया मानुषवत्प्रतीयते बिभर्ति लीलारसमात्मनैव यः ॥५४॥
पाणिग्रहोत्सवे राजन् रामोऽभून्मद्गृहातिथिः ।
यर्हि तत्सेवनं त्यक्त्वा योगनिष्ठोऽभवं तदा ॥५५॥
तन्मायया मोहितात्मा जानंस्तं प्राकृतोपमम् ।
अप्रकाशितमाहात्म्यं योगमेवान्वगामहम् ॥५६॥
तदा तद्योगनिष्ठायां पर्यवस्थितमात्मना ।
स्थिरकायं नतग्रीवं भ्रुवोर्मध्यस्थलोचनम् ॥५७॥
मामात्मानन्दनिरतमनुभावयितुं स्वयम् ।
स्वरूपं रामचन्द्रोऽभूद्गोचरो योगसंविदि[1] ॥५८॥
तदापश्यमहं दिव्यामयोध्यां नगरीं नृप ।
ब्रह्मानन्दमयीं साक्षाद्दिव्यवैकुण्ठरूपिणीम् ॥५९॥

---

१. परो योगो हि मद्धृदि—रीवाँ ।

चिन्तामणिमयीं भूमिं दिव्यरत्ननिकेतनाम् ।
ज्वलत्प्राकारमध्यस्थां सूर्यकोटिप्रभामयीम् ॥६०॥

तत्र कल्पद्रुमस्तोमनानानिष्कुट[1]संवृतम् ।
अद्राक्षं दिव्यभवनं मणिहेमविनिर्मितम् ॥६१॥

सहस्रस्तम्भसंशालि नानाशिखरभूषितम् ।
नानासखिसखीवृन्दैरन्वितं दिव्यपार्षदैः ॥६२॥

तत्र सिंहासनं दिव्यं नानारत्नमयं ध्रुवम् ।
कोटिचन्द्रार्कसंकाशं विस्फुरत्कोटिदीधिति ॥६३॥

तत्र परात्परं साक्षाद्रामचन्द्रं जगत्प्रभुम् ।
सीतालक्ष्मीसहचरं चिदानन्दघनाकृतिम् ॥६४॥

अमुमेव यथाकारमद्राक्षं द्विभुजान्वितम् ।
त्वां च तत्र महाराजस्थितमव्ययशासनम् ॥६५॥

त्वत्कुमारममुं देवं प्रसन्नं शुभगाकृतिम् ।
रत्नकल्पमनोहारिप्रावृषेण्यघनोपमम् ॥६६॥

रत्नकुण्डलसंसेव्यसुन्दरश्रवणद्वयम् ।
अर्द्धचन्द्रस्फुरद्भालकस्तूरीतिलकाञ्चितम् ॥६७॥

पीताम्बरधरं देवं मन्दस्मितशुभाननम् ।
सुनसं विस्फुरच्चारुकपोलफलकान्वितम् ॥६८॥

विस्फुरद्रक्तकटकं श्रीवत्सललितोरसम् ।
सुवर्णसूत्ररचितकटिबन्धविराजितम् ॥६९॥

लसद्दिव्यकिरीटाढ्यं रत्नमालाविभूषितम् ।
वनमालाधरं धीरं केयूरमणिदीपितम् ॥७०॥

विस्फुरद्रत्नकटकं श्रीवत्सललितोरसम् ।
सुवर्णसूत्ररुचिरकटिबन्धविराजितम् ॥७१॥

लम्बलीनमहारत्नविस्फुरन्नाभिमण्डलम् ।
निषेव्यमानं मूर्त्ताभिः समस्तायुधशक्तिभिः ॥७२॥

---

१. "निष्कुटाः आरामाः" टि०—मथु०, बड़ो० ।

स्तूयमानं समन्ताच्च वेदैर्मूर्तिधरैः पृथक् ।
सनकाद्यैर्नारदाद्यैर्मुनिभिः पर्युपासितम् ॥७३॥
दिशांपतिभिरानम्रकन्धरैर्भक्तिसंयुतैः ।
ब्रह्माद्यैर्लोकपालैश्च विविधस्तुतिभिः स्तुतम् ॥७४॥
कालेनापि च मूर्त्तेन पर्युपासितमादरात् ।
भक्तैरनेकैः स्वाकारैः पर्युपासितविग्रहम् ॥७५॥
इत्यहं योगनिद्रायामपश्यं राममद्भुतम् ।
दृष्ट्वा च विपुलैः स्तोत्रैः स्तुवतां [रस्तौष]च यथामति ॥७६॥
ततो झटिति[1] तद्दिव्यदर्शनाह्लादसंयुतः ।
व्युत्थाय किमिदं दृष्टमिति तर्काकुलोऽभवम् ॥७७॥
ततो निश्चीय मनसा परब्रह्म सनातनम् ।
रामचन्द्रं चिदानन्दविग्रहं त्रिजगत्प्रभुम् ॥७८॥
विश्वात्मानं च विश्वस्य वन्द्यं स्वप्रियमद्वयम् ।
स्वरूपानन्दनिरतं योगिध्येयं सतांगतिम् ॥७९॥
प्रपन्नोऽहं प्रभुं साक्षादन्तर्योगविवर्जितः ।
वहिः सेवाधिकारेण पर्युपास्य निरन्तरम् ॥८०॥
तदावधि न मे योगे निष्ठाभून्नृपसत्तम ।
अमुमेव बहिः सेवे श्रीरामं चिद्घनाकृतिम् ॥८१॥
आनन्दमयमद्वैतं लीलारसिकमीश्वरम् ।
भक्त्या सुलभपादाब्जं दुर्लभं योगिनामपि ॥८२॥
स ते नृपतिशार्दूल पुत्रतां प्राप्तवान् परः ।
कथं भुवि न धन्योऽसि श्लाघ्यस्त्वं योगिनामपि ॥८३॥

हेलालालित एष ते निधिसमो रामोऽङ्कमाभूषय-
न्नानन्दामृतकन्दलः प्रतिपदं पुष्णाति लीलारसम् ।
यत्पादाम्बुजविस्फुरन्नखमणिज्योत्स्नाप्रकाशोद्यमम् ।
साक्षाद्ब्रह्म परं यदन्तिमगिरा नेतीति वेदा जगुः ॥८४॥

---

१. झगिति—मथु० बड़ो० ।

अहो तव महद्भाग्यमप्राप्यं सर्वयोगिनाम् ।
यस्याङ्कभूषणो रामः परापरपरो हरिः ॥८५॥
अहो हि धन्या कौशल्या श्रीरामजननी स्वयम् ।
ब्रह्मोपनिषदो यस्याः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥८६॥
युवामेव परं धन्यौ भवेऽस्मिन् भूतिमत्तरौ ।
संश्लाघनीयमाहात्म्यौ त्रिवेदीशिरसामपि ॥७७॥
आस्तां रामस्य महिमा वेदस्तं वर्णयेत् कथम् ।
युवयोरेव माहात्म्यं वक्तुं शक्तिर्न दृश्यते ॥८८॥
सर्वदेवमयी देवी कौशल्या विश्वमङ्गला ।
भवान् भूपशिखारत्न शुद्धसत्त्वैकविग्रहः ॥८९॥
प्रपञ्चातीतमाहात्म्यौ त्रिजगन्मङ्गलौ युवाम् ।
महोपनिषदां तत्त्वं ययोः पुत्रत्वमागमत् ॥९०॥
इत्युक्तवन्तं निमिचन्द्रमादराच्छ्रीरामभक्तिप्रवणान्तराशयम् ।
उवाच वीरो रघुवंश[1]धूर्धरः स्वयं स सीतासुरहस्यसारवित् ॥९१॥

राजोवाच

तवोचितैवेयमुदारवस्तुगा मतिर्वरेण्या निमिवंशपुङ्गव[1] ।
यस्यात्मजा सा स्वयमद्भुता रमा प्रसन्नपङ्केरुहकोषवासिनी ॥९२॥
यदंशांशसमुद्भूतिर्दृश्यते भुवनत्रये ।
चन्द्रसूर्यतडिद्वह्निज्योतिश्चक्रप्रभामयी ॥९३॥
लक्ष्मीः गौरी गिरा गङ्गा गौतमी गणदेवता ।
गायत्री चैव सावित्री स्वाहा भूरुर्वशी शची ॥९४॥
स्त्रीसंनिवेशि यद्वस्तु तत्सर्वं स्वयमेव सा ।
परापरपराकारा तव पुत्री न संशयः ॥९५॥
तस्याः स्वरूपं विज्ञातुं न वेदाः प्रभवन्ति हि ।
इत्यचिन्त्यस्वरूपत्वं तस्या एव जगुः स्फुटम् ॥९६॥
परार्द्धाधिकनामा सा परार्द्धाधिकरूपिणी ।
तथाप्यनामरूपा सा चित्रं श्रुतिभिरीर्यते ॥९७॥

१—१. नास्ति—रीवाँ ।

सर्वावताररूपेण सैव कर्त्रीति भासते ।
अकर्त्री च स्वरूपेण चित्रं कथमिवेर्यताम् ॥९८॥
पाणिग्रहे श्रीरामस्य तस्यास्तत्त्वमजानता ।
मया सा त्वत्सुते[1]त्यद्धा दृष्टा प्राकृतभावतः ॥९९॥
तदा ममान्तरं मोहं विधूय कृपया स्वयम् ।
अनुभावितवत्यद्धा स्वरूपं रामवल्लभा ॥१००॥
दृष्टा मयामृतपयाः सरयूः सुकान्तिरुद्य[2]त्सहस्रशतयोजनविसृतात्मा ।
संपूर्णशारदतुषारमरीचिरोचिः संश्यर्द्धवर्द्धिष्णुतरङ्गसान्द्रा ॥१०१॥
कल्लोलजालजलकेलिकलाविधूतवेलावनावलिमहीरुहपुष्पकीर्णा ।
आनन्दमग्नमुदितान्तरमीननक्रग्राहौघकच्छपकुलाकुलतोयचक्रा ॥१०२॥
तस्यान्तरे विपुलकल्पलतापरीतकल्पद्रुमैः परिवृतं मणिहेमहर्म्यं ।
उत्तुङ्गतोरणसहस्रनिबद्धपुष्पस्रग्गन्धमाद्यदलिपुञ्जसुगुञ्जिताढ्यम् ॥१०३॥
वैदूर्यहीरमणिनिर्मितदीर्घभित्तिविद्योतिदीधितिवितानविराजमानम् ।
विश्वक्तं स्फटिकरत्नशिलानिबद्धनिःश्रेणिकाशतसहस्रविरोचमानम् १०४
रत्नोपलप्रकरसद्रचनाविचित्रबद्धाङ्गणेन्द्रमणिपद्धतिशोभमानम् ।
प्रोद्भासिनव्यमणिकुट्टिमरश्मिजालविध्वस्तनैशतिमिरोज्ज्वलरत्नदीपम् ॥
प्रोद्यन्महामणिरुचा मुकुरायमाणस्तम्भावलीशतसहस्रसुमण्डपाढ्यम् ।
वातायनायनविनिःसरदच्छरत्न[3]ज्योत्स्नाविमिश्रकटकद्युतिसुप्रकाशम् १०६
अट्टालजालविपुलाङ्गणभूप्रभाक्तनिर्यूहलग्नमणिरत्नमरीचिकान्तम्[3] ।
गोपानसीशतसहस्रनिषण्णमत्तपुंस्कोकिलध्वनिमहामुखरीकृताशम् ॥१०७॥
सूर्येन्दुकान्तविपुलोपलहेमवापिपीयूषवारिसुविलासिमरालयूथम् ।
लीलासरःसलिलफुल्लसुवर्णपद्मगुञ्जत्प्रमत्तमधुलिट्पटलेन पूर्णम् ॥१०८॥
संफुल्लनिष्कुटमहीरुहकल्पवल्लीहल्लीसकानुरति[4]विस्तृतमल्लिवल्लि ।
नित्योल्लसल्ललितपुष्पसुवर्णयूथीसंज्ञानमण्डपशतावृतकाननान्तम् ॥१०८॥
आरामधामगतदिव्यमनेकजातिपक्षिप्रकूजितमनोभवमूलमन्त्रम् ।
दिव्याङ्गनाजनगखोद्गुतमङ्गलाढ्यसंगीतगीतनिनदैः परिपूरिताशम्।११०।

---

१. वै स्नुषे°—मथु०, बड़ो० । २. °मृतमयाः सरसः सकान्ति°—रीवाँ ।
३—३. नास्ति—रीवाँ । ४. "हल्लीसकं—परस्परहस्तबंधनं" टि०—मथु०, बड़ो० ।

कौतूहलात्तकुसुमायुधतन्त्रचारुसंचारणप्रणयिनीकृतसख्यवृत्यम् ।
स्वस्वामिनीप्रणयपोषणबद्धचित्तदूतीसखीविविधचेटकचेटिकाख्यम् ॥१११॥
तालस्वरप्रचुरमूर्छनगीतिदक्षस्वःकामिनीनिवहकूजितकण्ठनादम् ।
आलापलापकलसंकलनप्रकीर्णगायन्महागुणवतीगणगानरम्यम् ॥११२॥
वीणावतीनिवहवाद्यकलानुपृक्तमार्दङ्गिकीकरकुतूहलवाद्यनादम् ।
मानार्पणप्रवणपाणविकीकलापस्पर्द्धाविहप्रवरमौरजिकीकलाढ्यम् ॥११३॥

नित्योत्सवप्रमुदिताशयसस्पृहालीसंचारितप्रचुरकामकलाविनोदम् ।
नित्यर्तुराजविविधोत्सवभाजनं तच्चिच्चक्रवर्त्तिमहिषीपदमाविभाति ११४
तन्मन्दिरे मणिसुवर्णमये समंतात्संतानकद्रुमतले मधुवातपूते ।
सूर्येन्दुकोटिकिरणावलिरोचमानं सिंहासनं किमपि तद्विपुलं विभाति ११५

तन्मध्यगं विपुलसौरभपूरपूर्णं
विष्वक्प्रसारिसुयशोमकरन्दवृन्दम् ।
आनन्दतुन्दिलमिलिन्दकदम्बकाढ्यं
सम्यग्विभाति सुविकासिविलासपद्मम्[1] ॥११६॥

तत्पद्मा[2]सनमध्यस्था वरदाभयपाणिनी ।
हेलालीलादिभिर्हावैर्मूर्त्तिमद्भिरुपासिता ॥११७॥
कोटिशारदपूर्णेन्दुवदनद्युतिमण्डिता ।
ज्योत्स्नापूरकिरच्चारुरदनांशुयुतस्मिता ॥११८॥
नखचन्द्रचयज्योत्स्नाचकोरीकृतचेतसाम् ।
स्वर्वधूनां समूहेन संततं समुपासिता ॥११९॥
स्वभावारुणरोचिष्णुलसच्चरणपल्लवा ।
मञ्जीरकिङ्किणीजालपादगुल्फविराजिता ॥१२०॥
अणिमादिमहासिद्धिसेविताङ्घ्रिरजोभरा ।
प्रसादसुमुखी नित्यं महासाम्राज्यरञ्जिता ॥१२१॥
सुवर्णकदलीकाण्डमञ्जुलोरुविराजिता ।
उन्मीलन्मेखलादाममणिमञ्जुमरीचिभाः ॥१२२॥

---

१. विलाससद्म—मथु०, बड़ो० । २. यत्पद्मा°—रीवाँ ।

सुनिम्ननाभीकुहरच्छातनील[1]मणिप्रभा ।
त्रिधाबद्धवलिभ्राजत्तनिमाकलितोदरी ॥१२३॥
नीवीनीलमणीन्द्राभा विस्फुरद्रोमराजिमा ।
सातकुम्भलसत्कुम्भकुम्भिकुम्भसमस्तनी ॥१२४॥
माणिक्यकम्बुकण्ठस्थग्रैवेयकविभाञ्चिता ।
सुवर्णसूत्रग्रथितमणिहारविराजिता ॥१२५॥
तडिद्वर्णसमुन्नद्धकुचकञ्चुलिकाञ्चिता ।
सुवर्णवल्लरीचारुबाहुद्वयविराजिता ॥१२६॥
मणिविद्रुमशाखाभकराङ्गुलिगणप्रभा ।
करपद्मनखद्योतजितनक्षत्रमण्डला ॥१२७॥
स्फुरत्करतलन्यस्तरङ्गविन्द्विन्द्रगोपभाः ।
गण्डमण्डलसंक्रान्तमणिताटङ्कदीधितिः ॥१२८॥
ताटङ्करश्मिच्छुरितविततालकवल्लिका ।
फुल्लच्चिबुकपुष्पान्तर्नीलविन्दुमिलिन्दभाः ॥१२९॥
श्रीरामकामतापारिसुधाधीर[2]शुभाधरा ।
मञ्जुलाधरमाणिक्यजितबिम्बफलद्युतिः ॥१३०॥
स्मितज्योत्स्नासमुद्भिन्नबिम्बाधरमणिप्रभा ।
शुकचञ्चूपराभूतिचतुरोर्जितनासिका ॥१३१॥
नासाभरणमाणिक्यतडिताधरपल्लवा ।
खञ्जत्खञ्जनचातुर्यमञ्जुसाञ्जनलोचना ॥१३२॥
विशालभालफलकरोचनातिलकद्युतिः ।
शीर्षमाणिक्यसुषमाजितचन्द्रार्कदीधितिः ॥१३३॥
धम्मिल्लतिमिरस्तोमवन्दीकृतरविप्रभाम् ।
सीमन्तरेखां दधती सिन्दूरपरिपूरिताम् ॥१३४॥
सन्ध्याशोणाम्बरस्थानां नक्षत्राणां विजित्वरीम् ।
सिन्दूरपूर्णसीमन्तरत्नमालां प्रबिभ्रतीम् ॥१३५॥

---

१. °नीवी°—मथु०, बड़ो० । २. कामनार्यारिशुभाधार—रीवाँ ।

साक्षात्कल्पलतां यद्वद्वसन्तागमपुष्पिताम् ।
सर्वाङ्गभूषारुचिरां भक्तानामभयङ्करीम् ॥१३६॥
चेतयन्तीं दृशा जीवान् परतत्त्वविमोहितान् ।
निराकारपरब्रह्म साकारप्रतिपादिकाम् ॥१३७॥
भूरिसप्तमभागस्थसिंहासनविराजिताम् ।
करुणार्णवपाथोधिलहरीदृग्विचेष्टिताम् ॥१३८॥
तत्वात्मिकाश्च परितो देवताः पर्युपासते ।
सखीवेषधराः सर्वाः सुन्दर्यः परितःस्थिताः ।
नानोपायनहस्तास्ताः श्रीमुखे निहतेक्षणाः ॥१३९॥
रामोऽपि सखिवेशेन वेशयित्वा निजां तनुम् ।
सहजानन्दिनीस्थानं ब्रजतीति विनिश्चयः ॥१४०॥
रसस्य या पराकाष्ठा सात्रैवहि प्रतिष्ठिता ।
अत एव रसानन्दरूपेणैनां जगौ श्रुतिः ॥१४१॥
इत्यहं तत्करुणया दृष्ट्वा तद्रूपमुत्तमम् ।
सुप्तोत्थित इवाश्चर्यसागरे निममज्ज ह ॥१४२॥
तदा दुर्वाससा प्राप्तं रहस्यं सकलं मया ।
विज्ञातं तस्य कृपया मन्त्रतन्त्रादिपूर्वकम् ॥१४३॥
सोऽहं विमुक्तसंदेहो विचरामि महीतले ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो जानन् सीतामयं जगत् ॥१४४॥
सा विद्या सर्वतत्त्वैकवेदनोपायरूपिणी ।
सैव वेद्यं परं तत्त्वं तदुपास्त्या विमुच्यते ॥१४५॥
इति ते सर्वमाख्यातं संक्षेपेण मया प्रभो ।
सीताया यत्परं तत्त्वं दुर्ज्ञेयं योगिनामपि ॥१४६॥
रहस्यं किल वेदानां तन्त्राणां च विशेषतः ।
नाख्येयं यस्य कस्यापि पुरोराज्ञां महामुने ॥१४७॥
[सै] षा तवात्मजा ब्रह्मरूपिणी चित्सुखाश्रया ।
महिमानमतो ज्ञातुमीश्वरा न चतुर्विदः[1] ॥१४८॥

---

१. नैव सामगा ऋग्यजुर्विदः—मथु० बड़ो० ।

चित्सुखाकृतेर्जन्महेतुना वन्दनीयतामेषि योगिनाम् ।
स्वात्मसंविदानन्दसागरे मग्नमानसो मुक्त एव भोः ॥१४९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे
दशरथतीर्थयात्रायां मिथिलागमनेएकचत्वारिंश-
दधिकशततमोऽध्यायः ॥१४१॥

●

द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

जनक उवाच

कृपा मयि परा तस्या यदाभूत्सा ममात्मजा ।
परंतु तत्त्वविज्ञाने मूढकल्पोऽस्मि भूपते ॥१॥
शुकेन योगिमुख्येन तन्माहात्म्यं निवेदितम् ।
श्रुत्वापि मूढकल्पोऽहं वात्सल्ये मग्नमानसः ॥२॥
जानामि सीतां रामस्य सहजानन्दिनीं प्रियाम् ।
प्रमोदवनराजेशीं परब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥३॥
तथापि पितृभावेन ग्रस्तज्ञानस्य मे प्रभो ।
दुर्वाससा ते यत्प्रोक्तं तत्तत्वं वद राघव ॥४॥
अपि मे ब्रूहि तत्तत्वं मन्त्रं तन्त्रपुरः सरम् ।
यज्ज्ञात्वा मोहपाशेन नावृतः स्यां कदाचन ॥५॥
किं मन्त्रं किं पुनस्तन्त्रं किंच तन्मन्त्रसाधनम् ।
केन ज्ञानेन विज्ञाता सहजानन्दिनी भवेत् ॥६॥
एतन्मे वद राजर्षे मतं दुर्वाससो मुनेः ।
क्रोधनः स मुनिः प्रष्टुमशक्यो यन्मया ध्रुवम् ॥७॥
ब्रजे गोपालबालानां विरहोच्छेदनं विधिम् ।
प्रोवाच किं ते दुर्वासा इति शुश्रुम भूरिशः ॥८॥

राजोवाच

प्रश्रयावनतं दृष्ट्वा मां दुर्वासा महामुनिः ।
प्रोक्तवानखिलं तत्त्वं रहस्यं यद् गिरामपि ॥९॥

प्रणवो भुवनेशानी कमला काम एव च ।
सहजानन्दिनी ङेन्तं स्वाहान्तो द्वादशाक्षरः[1] ॥१०॥
हिरण्यगर्भ एतस्य मुनिश्छन्दोऽस्त्यनुष्टुभम् ।
सहजानन्दिनी देवी देवता ब्रह्मरूपिणी ॥११॥
लक्ष्मीर्बीजं त्रपा शक्तिः कामाढ्यं कीलकं स्मृतम् ।
षोढा कृत्वा मनुं कुर्यात् कराङ्गन्यासमेव च ॥१२॥
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि यत्प्रोक्तं मेऽत्रिसूनुना ।
कलितं योगिमुख्यैर्यत्स्वचित्तकमले पुरा ॥१३॥
प्रमोदवनसद्मान्तरशोकवनवासिनी ।
मणिहेमलसद्दिव्यसिंहासनविराजिता ॥१४॥
तस्योपरि महापद्मे मत्तभ्रमरसेविते ।
अष्टपत्रे शुभे दिव्ये सख्यष्टकसमन्विता ॥१५॥
रक्तांशुकपरीधाना वराभयलसत्करा ।
महोपनिषदां वृन्दैः स्तूयमाना समंततः ॥१६॥
कटाक्षालोकमात्रेण संजीवितमनोभवा ।
तडित्पुञ्जलसत्कान्तिः कोटिचन्द्रसमानना ॥१७॥
कोटिसूर्येन्दुवह्न्याभा तेजोरूपा सनातनी ।
दक्षबाहुलतापाशावष्टब्धरघुपुङ्गवा ॥१८॥
सस्मितेक्षणकल्लोलैर्मोदयन्ती रघूद्वहम् ।
अनेककोटिब्रह्माण्डसृष्टिस्थितिलयात्मिका ॥१९॥
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपिणी ब्रह्मरूपिणी ।
एवं भूता सदा ध्येया प्रमोदवननायिका ॥२०॥
प्रातरुत्थाय शिरसि ध्यायेद् गुरुमनन्तकम् ।
सहस्रदलपद्मान्तःपूर्णामृतकरप्रभम् ॥२१॥
वराभयकरं शान्तं सर्वदैवतरूपिणम् !
प्रसन्नमुखपाथोजं गन्धमाल्याम्बरावृतम् ॥२२॥

---

१. "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सहजानन्दिन्यै स्वाहा" इति द्वादशाक्षरो मंत्रः । —टि० मधु०, बड़ो० ।

चन्द्रबिम्बे हंसपीठे संस्मरेद् भृशमादरात् ।
पञ्चतत्त्वमयैः शस्तै[1]र्गन्धाद्यैः परिपूजयेत् ॥२३॥
इत्थं मानसपूजान्ते सहजां हृदि भावयेत् ।
यथोक्तध्यानमार्गेण सच्चिदानन्दविग्रहाम् ॥२४॥
ततो योन्या नमस्कृत्य पूजयेन्मानसार्चया ।
ततः क्षमापयेद्देवीं श्लोकमेनमुदीरयन् ॥२५॥
रामप्रेमानन्दसंदोहरूपे प्रत्यक्चैतन्यप्रकाशाखिलाङ्गि ।
विश्वव्यापिन्यद्वितीये परेशि क्षन्तव्यो मे देवि पूजापराधः ॥२६॥
इत्युदीर्याखिलं विश्वं तन्मयं भावयेद्धृदि ।
ततो मूलाधारपद्मे भावयेत् कुण्डलीमयीम् ॥२७॥
चतुर्दलं तत्र पद्मं सिन्दूरारुणसुन्दरम् ।
तत्कर्णिकागतं दिव्यं स्वयंभूलिङ्गमुद्यतम् ॥२८॥
शङ्खावर्तक्रमात्तस्य वेष्टिनीं दृष्टसूत्रतः ।
सार्धत्रिवलयाकारां सर्वतत्त्वस्वरूपिणीम् ॥२९॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिसुशीतलाम् ।
कोटिपावकविद्योतां जीवशक्तिं सनातनीम् ॥३०॥
तां चेतयित्वा प्रणवेन मूलमन्त्रेण वा चक्रविभेदरीत्या ।
नीत्वा सहस्रच्छदनं समंतात्प्रकाशमानां महसांभरेण ॥३१॥
उल्लासिता शेषसरोरुहान्तःप्रसर्पदंशुप्रकरप्रसारम् ।
संयोजयेच्चिन्मयधाम्नि तस्मिन् स्रवत्सुधापूरविलीनगात्राम् ॥३२॥
संयोगजन्मामृतवारिधारासंस्नातसर्वावयवानवद्यः ।
तिष्ठेच्चिरं चिन्मयसामरस्यप्रमोदधाराविनिमग्नचित्तः ॥३३॥
ततस्तां भुजगीरूपां मूलप्रकृतिरूपिणीम् ।
जीवशक्तिं यथास्थानं स्थापयेत्सुखितान्तरः ॥३४॥
ततः स्मरेत्कामपि हंसविद्यां चिद्रूपदीपाकृतिमप्रमेयाम् ।
हंसोमुनिश्छन्द उदीर्यतेऽस्या अव्यक्तगायत्रसमाह्वयं च ॥३५॥

---

१. नित्यैः—मथु०, बड़ो० ।

हंसात्मिका राजति देवतास्या हंबीजमुक्तं स इतीह शक्तिः ।
तत्कीलकं सोऽहमिति प्रसिद्धं वेदादितत्त्वं स्वर इत्युदात्तः ॥३६॥
मोक्षैकहेतोर्विनियोग उक्तः कुर्यात् षडङ्गं विहितस्थलेषु ।
सूर्यात्मसोमात्मनिरञ्जनात्मज्योतिर्निराभासतराभिधाना ॥३७॥
तथैव चाव्यक्तमनन्तमेतास्तद्देवताः संगदिताः पुराणैः ।
ध्यानं परं रूपमनन्तमाद्यं स्वानन्दबोधाकृति हंसरूपम् ॥३८॥
द्युशीर्षकं दिक्श्रवणं खं च नाभिः सूर्येन्दुनेत्रं बसुधातलाङ्घ्रि ।
अशेषलोकावयवं समंतात्सर्वत्रगं तत्पुरुषप्रतीकम् ॥३९॥
ध्यायन्ति यद्योगिन आत्मबुद्ध्या त्रिनेमिचेष्टावदुपासनीयम् ।
तंषट्शतैरभ्यधिकैर्कविंशसहस्रसंख्याकमशेषजाप्यम् ॥४०॥
आरभ्य सूर्योदयमाद्वितीयोदयं दिवारात्रिकृतं स्वभावात् ।
गणेश्वरे ब्रह्मणि विष्णुरुद्रजीवेश्वरश्रीगुरुषूपपाद्य ॥४१॥
श्वासक्रियावर्तितहंसमन्त्रमयं जपं भूय उपाददीत ।
स्वात्मानमत्युग्रविभाविभातं सिद्धासनाध्यासनदिव्यरूपम् ॥४२॥
अन्तःसमाधिप्रभवप्रभौघसुपाटलं चेतसि भावयानः ।
पुरस्तथा पार्श्वयुगे च पृष्ठेऽप्युपर्यधः श्रीसहजां विजानन् ॥४३॥
कृत्वा नमस्कारशतं च भूयो विमुक्तमात्मानमनुस्मरेत ।
श्वासानुसारेण पदं धरण्यां निधाय तस्यै प्रणतिं च कुर्यात् ॥४४॥
नमो भुवे सागरमेखलायै समस्तशैलस्तनमण्डलायै ।
श्रीरामपत्न्यै जगतां जनन्यै श्रीस्वेष्टदेव्यै सहजाजनन्यै ॥४५॥
नमो नमस्तेऽस्तु पुनर्नमस्ते संसारयात्राप्रतिपादिकायै ।
मत्पादसंस्पर्शमिमं क्षमस्व निजेष्टदेवीं विधिनार्चयिष्ये ॥४६॥

इत्येवं कृतसंकल्पः समुत्थाय सुसंयतः ।
[1]देहशौचविधानेन विदध्यान्मन्त्रसिद्धये ॥४७॥
ततो जनेन बिभ्रता बहिः शरीरशोधनम्[1] ।
क्रियेत दन्तधावनक्रिया क्रमोदिताध्वना ॥४८॥

१—१. नास्ति—रीवाँ ।

जातौ शैखरिकाति[1] सौरभलसच्चाम्पेयजम्बूमुखे-
ष्वेकं कंचिदुदञ्चितक्षितिरुहं संगम्य संप्रार्थितम् ।
वेदादिस्थतडित्पदोत्तरधृतस्वाहाणुना छेदये
त्वत्काष्ठं तपनाङ्गुलं सुललितं दन्तावलीधावने ॥४९॥

तं कामबीजेन ततोऽभिमन्त्र्य संक्षालयित्वोभयदन्तपङ्क्तीः ।
जिह्वां लिखेद्दीपशिखानुकारां वाग्वादिनीमन्त्रमुदीर्य भूपः ॥५०॥
प्रक्षाल्य निक्षिप्य च दन्तकाष्ठं श्रीबीजतोयेन मुखं विशोध्य ।
मूलेन कुर्याच्च सकृद्विशुद्धि खानि स्पृशेदाचमनं विधाय ॥५१॥

पूर्वं विनिर्माय मलापकर्षणं श्रीखण्डयुक्तामलकीसुकल्कम् ।
स्नायात्ततः सरयूनिर्मलोदकैः संकल्प्य वेदोदिततान्त्रिकाभ्याम् ॥५२॥
अस्त्राभिमन्त्रितमृदं करयोर्गृहीत्वा संमन्त्र्य चास्त्रमनुना शिखया विशोध्य ।
उच्चार्य मूलमभिमन्त्र्य तनौ विलिप्यन् मूर्द्धादिपादयुगलान्तमुपासकेन्द्रः ५३

संमुखीकरणनाममुद्रया प्राणरोधनपुरःसरं ततः ।
संनिमज्य सकृदुत्थितः पुनः संस्थितः पयसि नाभिमात्रके ॥५४॥

प्राणायामत्रितयकरणाच्चानुकृत्वा षडङ्गं
चक्राकारे पयसि पुरतः कल्पयित्वा च तीर्थम् ।
सूर्यं प्रार्थ्याङ्कुशकलनया भेदयित्वा च तीर्थं
कुर्यात्तीर्थावहनविधिना तत्र तीर्थप्रवेशम् ॥५५॥

श्रीतीर्थशक्तिं तपनस्य मण्डलात्तत्र प्रविष्टां विधिवद्विचिन्तयेत् ।
पञ्चाशदर्णां सुविचिन्त्य सरयूं संमन्त्रयेत्तन्मनुना च सप्तधा ॥५६॥

आलोड्य च भुवनेश्या सुधाणुना तत्सुधीकृतम् ।
अवगुण्ठ्य कवचमनुना संरक्ष्यास्त्रेण तर्पयेत् सहजाम् ॥५७॥
साङ्गां सावरणां तां समस्तपरिवारवर्गसहितां च ।
अभिमन्त्रितेन पयसा संतर्प्य च सप्तधा त्रिधा शतधा ॥५८॥

स्नायात्तच्चरणारविन्दविगलत्पीयूषपूरद्रवैः
संतापत्रयहारिभिर्विधुहरब्रह्मादिभिः सेवितैः ।

---

१. सैवरिका—रीवाँ । "शैखरिका = अपामार्गः"—टि० मधु०, बड़ो० ।

ब्रह्माण्डोदरमध्यवर्त्तिविलसत्संपूर्णतीर्थास्पदैः ।
सद्यो मार्जितसर्वमानसमलैस्तीर्थौघसारैर्जलैः ॥५९॥
मन्त्रस्नानमथोच्यते पदयुगं प्रक्षाल्य मन्त्रं पठ-
न्नाचान्तो विधिवत्पुनर्दशदिशः स्थानं च संशोधयेत् ।
अस्त्रं न्यस्य समस्तहस्ततलयोः श्रीमूलमन्त्रक्रमात्
कुर्यान्न्यासविधीन् स्वमन्त्रविहितानित्युक्तवानत्रिजः ॥६०॥
स्नानं मानसमुच्यते शतगुणं मन्त्रादपि स्नानतो
देवीं श्रीसहजेश्वरीं द्युतिमतीं व्योम्नि स्थितां भावयेत् ।
स्नायात्तच्चरणारविन्दनखरुग्ज्योत्स्नामलैर्वारिभिः
सत्तीर्थैर्निजदेहसूक्ष्मविवराविष्टैस्तनुं क्षालयेत् ॥६१॥
विचिन्तितश्रीसहजापदाम्बुजश्रीमन्नखांशुप्रकरप्रदाहजैः
पयोभिरासिच्य तनुं सुनिर्मलः षट्चक्ररूपां मनुजो विचिन्तयेत् ॥६२॥
एकं नरः स्नानमुपास्य जायते गंगादितीर्थावलिपावनोचितः
विशुद्धचित्तो विरजा धृताम्बरो मूलेन कुर्यात्तिलकं हरेः पदम् ॥६३॥
ॐ स्वाहेति त्रिराचम्य गृह्णन् वामकरे जलम् ।
लं वं रं यं हमित्येतैर्मूलमन्त्रैर्विशोधयेत् ॥६४॥
क्षालयेन्मूर्द्धदेशं स्वं गलितोदकविन्दुभिः ।
कृत्वा दक्षकरे वारि समाकृष्य च वामया ॥६५॥
देहान्तः पापसंदोहं तेन संक्षाल्य तत्क्षणाद् ।
रेचयेत्कलुषीभूतं दक्षया नासया सुधीः ॥६६॥
पुरो ज्वलद्वज्रशिलामध्ये वारि विनिःक्षिपेत् ।
ॐ घृणिः सूर्य आदित्य ॐ मित्यर्घं निवेदयेत् ॥६७॥
सूर्यायार्घं त्रिधा दत्त्वा सहजायै त्रिधा ततः ।
अर्घं दद्यान्मूलमन्त्रसमुच्चारणपूर्वकम् ॥६८॥
"ॐ सहजायै विद्महे रामपत्न्यै च धीमहि ।
तन्नः सीते प्रचोदयात्" गायत्रीं शतधा जपेत् ॥६९॥
देवानृषीन् पितॄंश्चापि संतर्प्य सहजेश्वरीम् ।
साङ्गां सावरणां तोयैर्मूलमन्त्रेण तर्पयेत् ॥७०॥

कृतसन्ध्यातर्पणश्च तत आदाय पाणिना ।
पुष्पाणि जलकुम्भं च पाददृष्टिर्गृहं व्रजेत् ॥७१॥
प्रक्षाल्य पादावाचम्य सहजापूजनालये ।
द्वारदेवीः क्रमेणैव पूजयेद्गन्धमुख्यकैः ॥७२॥
आदौ गणेशं विघ्नेशं शङ्खपद्मौ ततः परम् ।
गङ्गां च यमुनां चैव सावित्रीं च सरस्वतीम् ॥७३॥
अणिमाद्या महासिद्धिर्लक्ष्मीनारायणौ तथा ।
देहलीं वास्तुपुरुषं कालं पञ्चमुखं तथा ॥७४॥
प्रतीहारीं वेत्रहस्तां सुप्रसन्नमुखस्मिताम् ।
त्वरितां पूजयेद् भूयो निधीशं वाक्पतिं तथा ॥७५॥
संकोच्य वामचरणं विघ्नेभ्यो निर्गमं ददत् ।
प्रविशेत्सहजादेव्याः पूजासद्म शशिप्रभम् ॥७६॥
तत्र त्रिकोणवृत्तोपर्यासनं विनिवेश्य तु ।
वाचांयमश्चोपविशेत् सिद्धासनपुरःसरम् ॥७७॥
उत्सारयेच्च त्रिविधान् विघ्नानक्षतमार्गणैः ।
विचिन्त्य वह्निप्राकारं परितो वाहुबीजतः ॥७८॥
ततो भूतानि संशोध्य शरीरस्थानि साधकः ।
निर्दह्य पापपुरुषं प्राणान् संस्थापयेत्तनौ ॥७९॥
सहजानन्दिनीभूत्वा सहजानन्दिनीं यजेत् ।
सहजानन्दिनीभक्तिं प्राप्तुकाम उदारधीः ॥८०॥
आत्मानं रक्षयित्वा च मूलमन्त्रेण साधकः ।
कुर्यान्न्यासविधीन् सर्वान् मन्त्रसाधनकामुकः ॥८१॥
प्रणवं शिरसि यस्य द्वितीयं बीजमानने ।
तृतीयं च चतुर्थं च वाह्वोर्न्यसेद्विचक्षणः ॥८२॥
ततश्च स्तनयोर्न्यस्य पंचमं षष्ठमक्षरम् ।
सप्तमं हृदि विन्यस्य न्यसेज्जंघाद्वयेऽक्षरम् ॥८३॥
एकादशं द्वादशं च न्यसेत्पादद्वये सुधीः ।
एकैकं मातृकावर्णं मूलमन्त्रपुटीकृतम् ॥८४॥

न्यसेत् समस्तगात्रेषु मन्त्ररूपत्वकामुकः ।
शीर्षे मुखे नेत्रयुगे कर्णयोर्नासिकाद्वये ॥८५॥
गण्डयोर्दन्तपङ्क्त्योश्च ओष्ठयोश्च यथाविधि ।
जिह्वामूले च ग्रीवायां स्वरान् षोडश विन्यसेत् ॥८६॥
काद्यान् दक्षिणबाहौ च पञ्चस्थानेषु विन्यसेत् ।
चाद्यांस्तथा वामबाहौ टाद्यान् दक्षपदे न्यसेत् ॥८७॥
ताद्यान् वामपदे न्यस्य पफौ कुक्षिद्वये न्यसेत् ।
बकारं पृष्ठगे वंशे भकारं नाभिमण्डले ॥८८॥
मकारं चोदरे न्यस्य यकारं हृदये न्यसेत् ।
रकारं दक्षिणे स्कन्धे लकारङ्ककुदि न्यसेत् ॥८९॥
वकारं वामस्कन्धे च हृदादिदक्षदोष्णि शम् ।
हृदादिवामबाहौ षं हृदादिदक्षपादके ॥९०॥
सकारं विन्यसेद्धीमान् हृदादिवामपादके ।
हंकारं विन्यसेत् लं च हृदयादावधोऽङ्गके ॥९१॥
हृदयादाशिरोऽन्तं च क्षकारं विन्यसेदिति ।
क्रमो क्रमाद्विधायेत्थं साक्षान्मन्त्रमयो भवेत् ॥९२॥
अमुं न्यासविधिं कृत्वा वाक्पतिर्जायते नरः ।
अमुना न्यासवर्येण संग्रामे रामलक्ष्मणौ ॥९३॥
बज्राङ्गतां परिप्राप्य रावणादीन् विजिग्यिरे ।
अमुना न्यासवर्येण दक्षशप्तः पुरा शशी ॥९४॥
विजित्य राजयक्ष्माणं संपूर्णकलतामगात् ।
ततश्च प्राणानायम्य मूलमन्त्रेण वै त्रिधा ॥९५॥
कराङ्गन्यासमाचर्य जपेन्मूलं समाहितः ।
तेजोमयं जपफलं सहजानन्दिनीपदे ॥९६॥
समर्पयेत्ततो रामभक्तिं याचेत बुद्धिमान् ।
ततः प्रमोदविपिनं भावेयदतिगह्वरम् ॥९७॥
सन्तानकतरुच्छन्नं पारिजातद्रुमावृतम् ।
कल्पवृक्षसमाकीर्णं कुसुमाकरसेवितम् ॥९८॥

नानापुष्पलताकीर्णं वहत्त्रिविधमारुतम् ।
श्रीखण्डवाटिकारम्यं मलयानिलसेवितम् ॥९९॥
प्रमत्तकोकिलोद्घुष्टं प्रकूजच्छुकसारिकम् ।
गुञ्जद्भ्रमरगुञ्जाढ्यं मयूरकलनादितम् ॥१००॥
सुवर्णरत्ननिश्रेणिसरसीशतशीतलम् ।
रत्नार्ककिरणोद्द्योतसंफुल्लकमलाकरम् ॥१०१॥
सर्वर्तुगुणसंसेव्यं सर्वानन्दनिकेतनम् ।
तन्मध्ये भावयेद्दिव्यमशोकतरुकाननम् ॥१०२॥
कल्द्रुमलताकुञ्जमण्डपान्तरगह्वरम् ।
तत्र चिन्तामणिमयं योगपीठं विभावयेत् ॥१०३॥
कोटिसूर्येन्दुसंकाशं नानारत्नविचित्रितम् ।
रत्नप्रभावता तेन रमणीयतमं सदा ॥१०४॥
तत्र श्रीसोमसवनं वटवृक्षं विचिन्तयेत् ।
हरिन्मणिमयैः पत्रैः परिच्छन्नं समंततः ॥१०५॥
सुवर्णस्तम्भरुचिरं सुवर्णविटपाञ्चितम् ।
माणिक्यसमसंशोणपल्लवव्रजपूरितम् ॥१०६॥
चिन्तामणिप्रसूनाढ्यं सुधापाकलसत्फलम् ।
विचित्ररत्नकिरणविलसन्मञ्जरीकुलम् ॥१०७॥
मन्दानिलललत्पर्णं सुधासीकरवर्षणम् ।
तन्मूले भावयेद्दिव्यं रत्नसिंहासनोत्तमम् ॥१०८॥
मणिमाणिक्यकिरणव्रातसंछन्नमद्भुतम् ।
तस्योपरि महापद्ममष्टपत्रं मनोहरम् ॥१०९॥
तत्र क्लृप्तासनां देवीं सहजानन्दिनीं स्मरेत् ।
श्रीरामप्रेमनिरतां प्रेमानन्दस्वरूपिणीम् ॥११०॥
दिव्यवेषसखीहस्तचामरद्वयमध्यगाम् ।
शीर्षे सुवर्णदण्डाढ्यमाणिक्यच्छत्रधारिणीम् ॥१११॥
रत्नमाणिक्यभूषाढ्यां रामालिङ्गितविग्रहाम् ।
पादाम्बुजनखज्योत्स्नापरब्रह्मप्रकाशिनीम् ॥११२॥

दिव्यस्वर्गवधूमौलिविलुण्ठत्पादपल्लवाम् ।
शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिः समंतात्पर्युपासिताम् ॥११२॥
सिद्धिभिश्चाणिमाद्याभिः सुदूरात्सुनिषेविताम् ।
कोटिलक्ष्मीप्रकाशैश्च स्वात्मरूपैरुपासिताम् ॥११३॥
अभिन्नदेवलोकेशैरुत्तररूपैरुपासिताम् ।
सर्वावताररूपैश्च मत्स्याद्यैः सुनिषेविताम् ॥११४॥
कोटिलक्ष्मीशिरोमौलिगिराचार्यैः समंततः ।
शब्दब्रह्मस्वरूपज्ञैः समंतात्पर्युपासिताम् ॥११५॥
तनुप्रभापरिव्याप्तकोटिब्रह्माण्डमण्डपाम् ।
चराचरजगद्योनिं चराचरजगन्मयीम् ॥११६॥
किंकुर्वाणसखीदूतीचेटीगणनिषेविताम् ।
सर्वाङ्गभूषाललितां कटाक्षोज्जीवितस्मराम् ॥११७॥
भ्रुकुटीतर्जितोद्भूतकलां कालस्य कालिनीम् ।
कालशक्तिप्रदां लोके कालागोचरकेलिनीम् ॥११८॥
कालस्य कलनारूपां कलनादमनोहराम् ।
प्रेमानन्दमयीं साक्षाद्भावयेत्पीठनायिकाम् ११९॥
नित्यं निधुवनानन्दश्रीरामाङ्कविलासिनीम् ।
महापद्मसमुल्लासिकर्णिकामध्यवासिनीम् ॥१२०॥
श्यामाधामादिभिर्विष्वक् सखीभिः संख्ययाष्टभिः ।
निषेवितपदाम्भोजां तन्मात्रदत्तदृष्टिभिः ॥१२१॥
पीठं संपूजयेत्तस्याः कुसुमाक्षतचन्दनैः ।
प्रत्येकं पीठशक्तीश्च भावयित्वार्चयेत् क्रमात् ॥१२२॥
आधारशक्तिप्रकृतिं च कूर्मं कालाग्निरुद्रं भुजगेशशेषम् ।
वाराहमाद्यं धरणीं सुधाब्धिं माणिक्यपोतं विकचारुणाब्जम् ॥१२३॥
मणिद्वीपं ततो वेश्म चिन्तामणिमयं महत् ।
पारिजाततरुं मूले विततां रत्नवेदिकाम् ॥१२४॥
मणिपीठं महायोगपट्टासनमनन्तरम् ।
तस्योपरि सखीवृन्दं गोपालगणमेव च ॥१२५॥

सौभाग्यवस्तुवसनालङ्कारादिकमेव च ।
कुरङ्गपोतान् हंसांश्च मयूरान् कोकिलानपि ॥१२६॥
शुकांश्च सारिकांश्चापि परितो मत्तवारणान् ।
क्रीडतस्तुरगांश्चापि नरयानानि भूरिशः ॥१२७॥
नरनारीगणांश्चापि गानस्तुतिपरायणान् ।
तेषां मध्ये महादिव्यरूपवेशवयोऽन्विताम् ॥१२८॥
किशोरीं कामिनीरत्नमौलिभूतां कृपावतीम् ।
कोटिलक्ष्यंशिनीं सीतां सहजानन्दिनीं स्मरेत् ॥१२९॥
अथ यन्त्रं प्रवक्ष्यामि यथोक्तमत्रिसूनुना ।
सहजानन्दिनी यत्र नित्यं संनिहिता परा ॥१३०॥

विन्दुं चतुष्कोणमथो वसुच्छदं कलाम्बुजं तद्द्विगुणं तथाम्बुजम् ।
ततोऽपि भूयो द्विगुणं सरोरुहं लसच्चतुःषष्टिसखीजनाकुलम् ॥१३१॥
ततोऽपि भूयो द्विगुणं सरोरुहं ततश्च जाग्रद्रुचिमण्डलत्रयम् ।
ततस्त्रिरेखां धरणीपुरं भवेद्यन्त्रं मनोज्ञं सहजात्मकं विदुः ॥१३२॥

पुरतः सन्निवेश्याथ यन्त्रराजं मनोहरम् ।
पूजयेद् गन्धपुष्पाद्यैर्यथासंपन्नवस्तुभिः ॥१३३॥
अथवा विततेपट्टे सौवर्णे राजते तथा ।
ताम्रे वा विलिखेद्यन्त्रमष्टगन्धेन मानवः ॥१३४॥
ततश्च मूलमन्त्रान्ते पुष्पाञ्जलिं विनिःक्षिपेत् ।
अथान्तर्यजनं कृत्वा बाह्यं यजनमाचरेत् ॥१३५॥
सहस्रदलमारभ्य कण्ठान्तं साधकोत्तमः ।
पात्राणि भावयेत्प्रेमामृतपूर्णानि वै क्रमात् ॥१३६॥
सामान्यार्घं तथा कुम्भे गुरोश्चार्चनभाजनम् ।
श्रीपात्रं च विशेषार्घं सर्वदैवत्यमेव च ॥१३७॥
पञ्चैतानि प्रविन्यस्येत्तत्तत्स्थानेषु साधकः ।
सामान्यार्घं विशुद्ध्याख्ये चक्रे षोडशपत्रके ॥१३८॥
कुम्भं च विन्यसेद्योगी महाविन्दुसरोवरे ।
गुरुपात्रं भ्रुवोर्मध्ये आज्ञाचक्रे मनोहरे ॥१३९॥

श्रीपात्रं पूर्णचन्द्रान्तरमृता[1]पूरपूरितम् ।
विशेषार्घं यत्र गुरोः पादुकाख्यं परं पदम् ॥१४०॥
मनसा विन्यसेत्पाद्यं बुद्ध्यार्घं प्रविधाय च ।
अहङ्कारेणाचमनं मधुपर्कं च चेतसा ॥१४१॥
विज्ञाने स्नानपात्रं च प्रविन्यस्य यथाविधि ।
पञ्चप्राणादिषु तथा गन्धादीन् पञ्च विन्यसेत् ॥१४२॥
अथ वृत्त्या करेणैव पूजयेद्धृदयाशये ।
प्रमोदविपिनादीनि हृदयेव परिचिन्तयेत् ॥१४३॥
गुहायां प्रमोदवनं निहितं बहु विस्तृतम् ।
पूज्यपूजकयोस्तस्मिन्नेकाधिकरणस्तथा ॥१४४॥
अन्तरात्मा परः पूज्यः सहजानन्दिनी स्वयम् ।
पूजकश्च सदा तत्र जीवात्माहंपदार्थकः ॥१४५॥
तयोस्तत्रैव विषये नित्यं संनिहिता स्थितिः ।
नाह्वानं स्थापनं नो वा नापीह संनिरोधनम् ॥१४६॥
संमुखीकरणं नैव तत्र क्वचिदपेक्षितम् ।
नित्यं यत्र स्थितः साक्षादीश्वरो जीवबुद्धिदृक् ॥१४७॥
तमेनमर्चयेद्भक्त्या नित्यं मानसवस्तुभिः ।
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यवस्तुभिः ॥१४९॥
बुद्धिरूपां तदा देवीं मनःपीठेऽर्चयेन्मुदा ।
ततस्तां वहिरावाह्य चक्रपीठे समर्चयेत् ॥१४९॥
यावन्मानसपूजायां न भवेत्सुस्थिरा मतिः ।
तावत्कथं विधीयेत वाह्यपूजनमुत्तमे ॥१५०॥
पुष्पाञ्जलिं समादाय करकच्छपिकास्थितम् ।
वहन्नासा पुटात्तस्मिन् परतत्त्वं समानयेत् ॥१५१॥
सहस्रदलमध्यान्तर्यत्तत्त्वं शिरसि स्थितम् ।
परमात्मस्वरूपेण विश्वं व्याप्य च संस्थितम् ॥१५२॥

---

१. संभृता°—रीवाँ ।

तत्तत्त्वं सहजानन्दा स्वेष्टदेवीस्वरूपकम् ।
हृदि संनीय संपूज्य मानसैरुपचारकैः ॥१५३॥
पुष्पाञ्जलौ ततः प्राप्तं ध्यात्वा चक्रे निधापयेत् ।
तत आवाहनं कुर्यात् स्थापनं संनिधापनम् ॥१५४॥
संनिरोधनमेवापि संमुखीकरणं तथा ।
सकलीकरणं चैव अवगुण्ठनमेव च ॥१५५॥
अमृतीकरणं चैव तत आप्यायनं तथा ।
परमीकरणं चापि प्राणप्रतिष्ठितिस्तथा ॥१५६॥
सर्वत्रैवाभिपूर्णाया देवताया प्रपूजने ।
सादरं संमुखीभावमावाहनमिहोच्यते ॥१५७॥
विभोर्निवेशनं यन्त्रे स्थापनं कथितं बुधैः ।
पूजां प्रपूजमानां तु गृहीत्वानुग्रहादिके ॥१५८॥
कर्तुं सामर्थ्यमस्यास्तु तत्सान्निध्यं प्रचक्षते ।
आकर्मकाण्डपर्यन्तं सान्निध्यं हि विभोश्च यत् ॥१५९॥
ससंनिरोध उद्दिष्टो भक्तितो मन्त्रवित्तमैः ।
आनन्दायतनं तत्त्वं सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥१६०॥
तदत्र सकलं व्याप्तं ध्येयं स्यादवगुण्ठनम् ।
सकलीकरणं नाम सर्वैस्तेजोभिरेकताम् ॥१६१॥
अङ्गानामङ्गिना सार्द्धं विदध्यादमृतीकृतम् ।
क्षमा तस्यापराधानां विज्ञेया परमीकृतिः ॥१६२॥
अपरिच्छिन्नतत्त्वस्य परिच्छिन्नत्वभावनम् ।
तेऽपराधाः समुद्दिष्टा इति शास्त्रविनिश्चयः ॥१६३॥
पीठे देवीं प्रतिष्ठाप्य सकलीकृत्य वा पुनः ।
मूलमन्त्रेण दर्भोदैस्त्रिवारं प्रोक्षयेद् बुधः ॥१६४॥
आप्यायनमिदं प्रोक्तं मन्त्रविद्भिर्विचक्षणैः ।
जीववाक्चित्तदृक्रूपश्रोत्रघ्राणप्राणप्रतिष्ठया ॥१६५॥
देवतां सहजानन्दरूपिणीं रामवल्लभाम् ।
तन्त्रपीठे प्रतिष्ठाप्य ततः संपूजयेद् बुधः ॥१६६॥

पाद्यार्घाचमनीयं च स्नानं वसनभूषणम् ।
गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्याचमनानि च ॥१६७॥
ताम्बूलमथ च स्तोत्रं तर्पणं च नमस्क्रिया ।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांस्तु षोडश ॥१६८॥
उपचारेषु यत्किंचिद् दुर्लभं साधनं भवेत् ।
तत् सर्वं मनसा ध्यात्वा पुष्पक्षेपेण कल्पयेत् ॥१६९॥
सहजावामभागे तु दद्यान्मूलेन चासनम् ।
पौष्पं दारुमयं वास्त्रं कौशं तैजसमेव च ॥१७०॥
आसनं पञ्चधा प्रोक्तं देवताप्रीतिकारकम् ।
सुगन्धिपुष्परचितं पौष्पं तत्समुदाहृतम् ॥१७१॥
निष्कण्टकं दारुमयं चन्दनादिविनिर्मितम् ।
वास्त्रं कार्पासकौशेयकम्बलादि प्रकीर्तितम् ॥१७२॥
सप्तविंशति दर्भाणां वेण्यग्रे गन्थिभूषिता ।
विष्टरं सर्वयज्ञेषु लक्षणं परिकीर्तितम् ॥१७३॥
तैजसं स्यात्सुवर्णादि लोहशीसादिवर्जितम् ।
एके चार्ममपीच्छन्ति मृगव्याघ्रचादिकाजिनम् ॥१७४॥
पाद्यं तु पादयोर्दद्यान्नमोमन्त्रेण मन्त्रवित् ।
श्यामाकदूर्वाकमलविष्णुक्रान्ताजलैरिदम् ॥१७५॥
स्वाहामन्त्रेण देवेश्याः अर्घं दद्याच्छिरोपरि ।
गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपैः ॥१७६॥
अर्पयेत् सहजेशान्या एतदर्घ्यं प्रकल्पयेत् ।
आचमनं मधुपर्कं च स्वधामन्त्रेण वै मुखे ॥१७७॥
जातीलवङ्गकङ्कोलैर्भवेदाचमनं शुभम् ।
माक्षिकं शर्करा सर्पिः दधिक्षीरयुतं तथा ॥१७८॥
मधुपर्कं कल्पयित्वा प्रदद्याद्विधिपूर्वकम् ।
सर्वतः क्षौद्रमधिकं दधि सर्पिः सितासमम् ॥१७९॥
जलं तत्सर्वतः स्वल्पं मधुपर्क उदाहृतः ।
पुनराचमनं दद्यादद्भिरेव स्वधाणुना ॥१८०॥

गन्धादिभिः कारयेत्स्नानं वाससी परिधापयेत् ।
भूषणानि ततो दद्याद्रत्नाद्याभरणानि च ॥१८१॥
चन्दनं मलयोत्पन्नमनाघ्रातं सुशीतलम् ।
कर्पूरागुरुकस्तूरीहिमाम्बुक्षोदितं शुभम् ॥१८२॥
अनन्यार्पितमच्छिद्रं पूतं पुण्यं नवं शुभम् ।
गुणचन्दनसंयुक्तं नानागन्धमनोहरम् ॥१८३॥
पत्रं वा यदि वा पुष्पं फले नेष्टमधोमुखम् ।
दुःखदं तत् समाख्यातं यथोत्पन्नं तथार्पणम् ॥१८४॥
विनापुष्पाञ्जलिमयं नियमः परिकीर्तितः ।
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु चक्रे पुष्पं निवेदयेत् ॥१८५॥
जटामांसी लोहवाणचन्दनागुरुकैस्तथा ।
कर्पूरैः कुङ्कुमापृक्तैर्धूपं दद्यान्मनोहरम् ॥१८६॥
धूपभाजनमस्त्रेण प्रक्षाल्याभ्यर्च्य हृदाणुना ।
अस्त्रेण पूजितां घण्टां वादयन्धूपयेद् बुधः ॥१८७॥
घृतप्रदीपः प्रथमस्तिलतैलसमुद्भवः ।
सार्षपःफलनिर्यासजातो वा वारिजोद्भवः ॥१८८॥
दधिजश्चान्द्रजश्चैव दीपाः सप्त प्रकीर्तिताः ।
तैजसं राजसं वापि मार्तिकं दारुजं तथा ॥१८९॥
अश्मजं वापि दीपेषु पात्रमेवं प्रकल्पयेत् ।
सणं वादरकं जीर्णं वस्त्रं मलिनमेव वा ॥१९०॥
उपभुक्तं न दद्यात्तु वर्तिकार्ये कदाचन ।
वर्त्या कर्पूरगर्भिण्या सर्पिषा तिलजेन वा ॥१९१॥
आरोप्य दर्शयेद्दीपानुच्चैः सौरभशालिनः ।
पारावतभ्रमाकारं दीपं नेत्रादि दर्शयेत् ॥१९२॥
दक्षिणे सर्पिषा दीपस्तिलतैलेन वामतः ।
सितावर्तिर्दक्षिणतो रक्ता वर्तिस्तु वामतः ॥१९३॥
दीपकालेऽञ्जनं चापि प्रदद्यान्नेत्ररञ्जनम् ।
तैजसेषु च पात्रेषु सौवर्णे राजते तथा ॥१९४॥

ताम्रे वा प्रस्तरे वापि पद्मपत्रेऽथवा पुनः ।
यज्ञदारुमये वापि नैवेद्यं कल्पयेद् बुधः ॥१९५॥
सर्वाभावे तु माहेयं स्वहस्तघटितं यदि ।
यद्योग्यमर्घपात्रेण तन्निधाय निवेदयेत् ॥१९६॥
पायसं कृसरं दद्याच्छर्करागुडसंयुतम् ।
आज्यं दधिमधून्मिश्रं सहजायै स्वभक्तितः ॥१९७॥
कन्दुपक्वं स्नेहपक्वं घृतसंयुक्तपायसम् ।
मनःप्रियं च नैवेद्यं दद्यात् स्वादुतमं मुहुः ॥१९८॥
ताम्बूलं च सकर्पूरं नालिकेरं सशर्करम् ।
पायसं संस्कृतं चैवमार्द्रकं लवणान्वितम् ॥१९९॥
सतण्डुलं तिलं चैव श्रीफलं फलमुत्तमम् ।
करञ्जं बकुलं चैव तालं खर्जूरमेव च ॥२००॥
अन्यानि च सुगन्धीनि स्वादूनि च फलानि च ।
निधाय स्वर्णजे पात्रे साधारं तत्र मण्डले ॥२०१॥
निधाय चतुरस्रे च संस्कुर्याच्छास्त्रमार्गतः ।
अस्त्रमन्त्रेण संप्रोक्ष्य चक्रमुद्राभिरक्षितम् ॥२०२॥
वायुबीजेन संशोध्य वह्निबीजेन तं दहेत् ।
अमृतीकृत्य तत्सर्वं मूलमन्त्रेण तत्पुनः ॥२०३॥
स्पृशन् कराभ्यां विधिवदष्टधा चाभिमन्त्रयेत् ।
धेनुमुद्रां प्रदर्श्याथ गन्धपुष्पैः समर्चयेत् ॥२०४॥
तत्त्वाख्यमुद्रया देव्यै नैवेद्यानि निवेदयेत् ।
चुलुकं विधिवद्दद्याद् ग्रासमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥२०५॥
सुमञ्जुलां वामदोष्णा विकचोत्पलसन्निभाम् ।
प्रदर्शयन् दक्षिणेन प्राणादीनां प्रदर्शयेत् ॥२०६॥
स्पृशेत्कनिष्ठोपकनिष्ठिके द्वे साङ्गुष्ठमूर्ध्नां प्रथमेह मुद्रा ।
तथापरा तर्जनिमध्यमे स्यादनामिकामध्यमिके च मध्या ॥२०७॥
अनामिकातर्जनिमध्यमे स्यात्तद्वच्चतुर्थी सकनिष्ठिका च ।
स्यात्पञ्चमी तद्वदिति प्रतिष्ठाः प्राणादिमुद्रा निजमन्त्रयुक्ता[1] ॥२०८॥

---

१. तथामहोल्लासकरी परेश्याः—रीवाँ ।

प्राणापानसमानोदानव्यानास्तारपूर्वकः ।
चतुर्थ्याग्निवधूयुक्ताः प्राणमन्त्राः स्मृता अमी ॥२०९॥
क्षणं विमृश्य मतिमान् दद्याद् गण्डूषकं ततः ।
अमृतापिधानमसि स्वाहेति मनुनामुना ॥२१०॥
अन्ते च चुलुकं दत्त्वा दद्यात्ताम्बूलमुत्तमम् ।
एलालवङ्गकर्पूरजातीफलसमन्वितम् ॥२११॥
तमालदलकर्पूरपूगभागतरङ्गितम् ।
विशेषार्घ्याम्बुना सिच्य दद्यात्सर्वोपचारकान् ॥२१२॥
ततश्च मूलमन्त्रेण त्रिवारं तर्पयेत् सुधीः ।
गृहीत्वाज्ञां महादेव्याः परिवारान् समर्चयेत् ॥२१३॥
षडङ्गमर्चयेद्विन्दौ ततः श्रीरघुपुङ्गवम् ।
प्रमोदवनमेवापि पूजयेद्गन्धपुष्पकैः ॥२१४॥
माता श्रीराजनी पूज्या पिता श्रीनन्दनस्तथा ।
सहजा मोदिनी सीता जानकीति चतुष्टयम् ॥२१५॥
चतुरस्रे समापूज्य धूपदीपौ निवेदयेत् ।
श्यामा धामादिका अष्टौ संपूज्या अष्टपत्रके ॥२१६॥
ततस्ता द्विगुणाः सख्यः संपूज्या अरुणांशुकाः ।
षोडशाब्जे[1] महापद्मे ताः प्रसिद्धा महाव्रजे ॥२१७॥
ततस्ता द्विगुणाः पूज्या [2]द्वात्रिंशत्पत्रपङ्कजे ।
ततोऽपि द्विगुणाः सख्यः संपूज्या अरुणांशुकाः ॥२१८॥
ततोऽपि द्विगुणाः पूज्याश्चतुःषष्टिदलाम्बुजे ।
ततोऽपि द्विगुणाः पूज्या[2] अष्टविंशाधिकंशतम् ॥२१९॥
आसां नामानि सर्वासामादिव्रजनिकेतने ।
प्रसिद्धान्येव जातानि रूपं च सहजात्मकम् ॥२२०॥
वराभयकराः सर्वाः पूज्या दिव्यविभूषणाः ।
तद्बहिर्भूपुरे पूज्या इन्द्राद्या दश गोदुहाः ॥२२१॥

---

१. षोडशादि°—रीवाँ । २—२. नास्ति—रीवाँ ।

तदायुधानि दिव्यानि क्रमतः परिपूजयेत् ।
अशोकविपिनं पूज्यं पूज्यः कल्पतरुस्तथा ॥२२२॥
पुष्पवाणं रतिं चैव तन्मध्ये परिपूजयेत् ।
चिन्तामणिमयं पूज्यं हेमसिंहासनं तथा ॥२२३॥
प्रीतिं च पूजयेच्छ्रीमत्सहजानन्दिनीपुरः ।
कदम्बविपिनं पूज्यं वसन्तं परिपूजयेत् ॥२२४॥
ततो ग्रीष्मादिकान् रम्यान् षड्ऋतून् परिपूजयेत् ।
गौरवर्णा रतिः प्रोक्ता प्रीतिः श्यामा प्रकीर्तिता ॥२२५॥
सहजायास्ततो वामे रामान्तरितविग्रहाम् ।
कृष्णां नाम व्रजेशानीं पूजयेद् गोपदारिकाम् ॥२२६॥
इत्थं संपूज्य सहजानन्दिनीं रासनायिकाम् ।
रसेश्वरीं रामयोषां साङ्गां सावरणां तथा ॥२२७॥
गन्धपुष्पं तथा धूपं नैवेद्यं भूय एव हि ।
पूजान्ते कल्पयेद्भक्त्या ततो होमं तु कारयेत् ॥२२८॥
सौरभेयघृताहुत्या नित्यहोमो विधीयते ।
काम्यहोमं प्रवक्ष्यामि यथोक्तं मुनिना पुरा ॥२२९॥
मालतीजातिवल्लीभिर्घृतपूर्णे हुताशने ।
होमयेत्प्रयतो मन्त्री वागीशत्वफलाप्तये ॥२३०॥
जपापुष्पैर्घृतयुतैः करवीरैश्च होमतः ।
मोहयेत्त्रिजगद्योषाः सहजामन्त्रजाप्यतः ॥२३१॥
कर्पूरं कुङ्कुमं चैव मृगनाभिविमिश्रितम् ।
हवनात्कुरुते मन्त्री मन्त्रिणे विजयं ध्रुवम् ॥२३२॥
पाटलैर्हवनाल्लक्ष्मीं चञ्चलां स्थिरयेद् गृहे ।
श्रीखण्डचन्दनं चन्द्रमगुरुं मन्त्रहोमतः ॥२३३॥
नरनागेन्द्रदेवानां पुरन्ध्रीर्वशमानयेत् ।
क्षीरं मधु दधि प्राज्यमाज्यं चैव विधानतः ॥२३४॥
पृथग्घुत्वा लभेदायुर्धनमारोग्यमिन्दिराम् ।
क्रमेण हवनात्क्षीरमधुभ्यां मृत्युनाशनम् ॥२३५॥

दधिमाक्षिकहोमेन सौभाग्यं धनमाप्नुयात् ।
सितया केवलं होमो वैरिस्तम्भनकारकः ॥२३६॥
होमो दधिमधुक्षीरलाजाभिर्मन्त्रपूर्वकः ।
महादुष्टवशीकारो होमो नीलोत्पलैर्भवेत् ॥२३७॥
होमेन श्वेतकमलैर्लभते भारतीं श्रियम् ।
लभेद्धनं च सौभाग्यं कल्हारगणहोमतः ॥२३८॥
मातुलिङ्गौघहवनात् क्षत्रियान्वशयेत् क्षणात् ।
नारङ्गहोमतश्चैव वैश्यान् वशयति ध्रुवम् ॥२३९॥
कूष्माण्डहोमतः शूद्रान् वशयेन्नात्र संशयः ।
द्राक्षाफलैर्लक्षहोमात्सिद्ध्यष्टकमवाप्नुयात् ॥२४०॥
रम्भाफलानि लक्षन्तु हुत्वा भूमिपतीन् दश ।
वशीकुर्यान्महामन्त्री नात्र कार्या विचारणा ॥२४१॥
खार्जूरलक्षहोमेन वशयेद्विंशतिं नृपान् ।
पक्वतालफलैर्हुत्वा लक्षमन्त्रं यथाविधि ॥२४२॥
चतुःसमुद्रां धरणीं वशयेन्नात्र संशयः ।
पक्वैः सस्यैः फलैर्होमो लक्षमात्रेण भूपतीन् ॥२४३॥
क्षत्रियांश्चैव वैश्यांश्च वशयेन्नात्र संशयः ।
तिलाज्यहवनात् सर्वकार्यसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥२४४॥
राजिकालवणाभ्यां तु होमो दुष्टान् वशं नयेत् ।
गुग्गुलस्याहुतीर्दत्त्वा सर्वरोगं विनाशयेत् ॥२४५॥
कुङ्कुमैर्हवनात् सद्यस्त्रैलोक्यं वशगं भवेत् ।
चन्दनैर्हवनात् सर्वान् वैरिणो वशमानयेत् ॥२४६॥
रक्तैश्च चन्दनैर्हुत्वा स्त्रीपुंसो वशयेद् भुवि ।
कर्पूरहवनाद्वाचं वशयेन्नात्र संशयः ॥२४७॥
कस्तूरीहोमतो वश्या भवेयू राजमन्त्रिणः ।
तिलतण्डुलहोमाच्च शान्तिवर्भति भूयसी ॥२४८॥
शर्करागुडहोमाद्वै सर्वकार्यार्थसाधनम् ।
सिताघृतान्वितं हुत्वा पायसं जातवेदसि ॥२४९॥

वशीकुर्यात् त्रिभुवनं धान्यसिद्धिश्च जायते ।
सोपस्करैश्च वटकैरुपसर्गान् विनाशयेत् ॥२५०॥
जपाकुसुमहोमेन जगद्वश्यं प्रजायते ।
मोगरैर्वाणपुष्पैश्च तथा वकुलपुष्पकैः ॥२५१॥
हवनाल्लभते भूयः सौभाग्यं नात्र संशयः ।
साङ्गधूपस्य होमेन सौभाग्यं निस्तुलं लभेत् ॥२५२॥
जम्बू फलानां होमेन स्त्रियो वश्या भवन्ति हि ।
कूष्माण्डहोमतो वश्या भवेयुर्दैत्यकन्यकाः ॥२५३॥
श्रीफलैरतुलां लक्ष्मीं लभते नात्र संशयः ।
इक्षुदण्डैः सुखावाप्तिस्तद्रसस्य तु होमतः ।२५४॥
नारिकेलजलैर्वापि वशयेद्राजकन्यकाः ।
केवलं घृतहोमात्तु वरदाः सर्वसिद्धयः ॥२५५॥
अथ होमीयवस्तूनां मानमुक्तं मनीषिणा ।
पुष्पं समग्रं जुहुयात्तिलांश्च शतसंख्यया ॥२५६॥
तथैव राजिकाश्चापि लाजा मुष्टिप्रमाणतः ।
घृतं [1]गगनमानं च चुलुकं पय आहुतिः ॥२५७॥
अन्नग्रासमिदं हव्यं खण्डैः स्थूलफलं हुनेत् ।
रम्भाफलं चतुःखण्डमखण्डं लघुचेद्भवेत् ॥२५८॥
नारिकेलस्य खण्डं च स्थूलं कुर्यान्मनःप्रियम् ।
प्रतिपर्वेक्षुदण्डं च द्राक्षाफलमशेषतः ॥२५९॥
नारङ्गं चैव खार्जूरं गुग्गुलं च तथैव हि ।
क्रमुकस्यार्धशो होमः कुङ्कुमं चन्द्रसंज्ञकम् ॥२६०॥
कस्तूरी गुञ्जया हव्यं चन्दनं क्रमुकोन्मितम् ।
एवं होमं विनिर्वर्त्य यथेष्टं फलमाप्नुयात् ॥२६१॥
सहजानन्दिनीमन्त्रसाधनात् किं न जायते ।
एकेनैवाखिलं कार्यं जायते मङ्गलं भुवि ॥२६२॥

---

१. गद्याण°—मथु० बड़ो० ।

किमर्थमन्यमन्त्राणां साधनं क्रियते जनैः ।
ऐहिकामुष्मिकं सर्वं तन्मन्त्रेणैव जायते ॥२६३॥
सहजानन्दिनीरामौ परिचर्य[1] कदाचन ।
न देवतान्तरं सेव्यं स्वर्गमोक्षाद्यवाप्तये ॥२६४॥
तुलसीपत्रजां मालां वैजयन्तीं विधाय तु ।
ये रोपयन्ति सहजानन्दिनीरामवक्षसि ॥२६५॥
पूजान्ते सुलभस्तेषां तत्प्रसादोऽति[2]दुर्लभः ।
पद्माक्षमालया जप्त्वा सहजानन्दिनीमनुम् ॥२६६॥
दशांशं चानले हुत्वा सुरभीघृतधारया ।
तत्क्षणाद्देवतां वश्यां कुरुते नात्र संशयः ॥२६७॥
चतुर्णामपि बीजानां साधनं पृथगीरितम् ।
प्रणवं लक्षमावर्त्य कुशग्रन्थिस्रजो बुधः ॥२६८॥
किंशुकैर्हवनं कुर्यात् सर्वज्ञो जायते भुवि ।
तत्र ध्येया महेशानी ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ॥२६९॥
नानायुधधरा साक्षाद्विश्ववन्द्य[3]स्वरूपिणी ।
एवं द्वितीयबीजं च लक्षमावर्त्तयेद् बुधः ॥२७०॥
रुद्राक्षमालया पश्चात्तिलाज्यहवनं चरेत् ।
यद्यत् कामयते कामं तत्तदाप्नोति मानवः ॥२७१॥
तत्र ध्येया च सहजा कर्णस्वर्णोरुकुण्डला ।
पीनवक्षोरुहा स्थूलमुक्ताहारविभूषणा ॥२७२॥
मल्लीकुसुमधम्मिल्ललीलालोलविलोचना ।
चन्द्रानना रक्तकाञ्ची सर्वाभरणभूषिता ॥२७३॥
[4]तथा तार्त्तीयबीजं च लक्षमावर्तयेद् बुधः[4] ।
स्रजा पद्माक्षमय्या च पद्माक्षैर्होममाचरेत् ॥२७४॥
महतीं श्रियमाप्नोति तत्र ध्यानं विशिष्यते ।
श्वेताम्बुजस्थिता ध्येया जातरूपसमाकृतिः ॥२७५॥

---

१. परित्यज्य—मथु० बड़ो० । २. °दोऽपि—मथु०, बड़ो० । ३. विश्वस्तप° —मथु० बड़ो० । ४—४. नास्ति—रीवाँ ।

तथैव तुर्यबीजं च लक्षमावर्तयेद् बुधः ।
स्रजा विद्रुममय्या तु होमं रक्ताम्बुजैश्चरेत् ॥२७६॥
ध्यानं कुर्याद्विशेषेण रक्तभूषाम्बरावृतः [ताम्] ।
रक्ताशोकलताकुञ्जमण्डपान्तरगोचराम् ॥२७७॥
महासौभाग्ययुक्तः सन् कामवन्मोहयेज्जगत् ।
य इत्थं साधनं कुर्यात्कामबीजस्य मानवः ॥
इति ते सहजामन्त्रसाधनं सम्यगीरितम् ॥२७८॥
नातः परं कर्म जगत्त्रयेऽपि विराजते यत्र भवन्ति सद्यः ।
आयास[1]वर्जं खलु सिद्धयोऽष्टो भुक्तिश्च मुक्तिश्च करस्थितैव ॥२७९॥
प्राप्य मोक्षपदे[2]सीतां सहजानन्दिनीं हरेः ।
वल्लभां सुमहोदारां कामार्थान् को नु याचते ॥२८०॥
यत्काम्यमपि चात्रोक्तं देवतान्तरवारणात् ।
सहजायामेव नृणां चित्तस्यावेशसिद्धये ॥२८१॥
एवमाराध्य तां साक्षात्करुणामृतपुष्कलाम् ।
प्रार्थयेत् परमं प्रेम श्रीरामपदगोचरम् ।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रायां मिथिलागमने द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४२॥

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एकं तयोः सुसंवादः समभून्मिथिलापुरे ।
ततः स नैम्यमामन्त्र्य स्नात्वा च कमलेश्वरीम् ॥ १ ॥
योगिवर्यैः सुसंगम्य जनकस्य पुरस्थितैः ।
परमप्रीतहृदयो भूत्वा प्रेमैकनिर्भरः ॥ २ ॥

---

१. आगांसि—रीवाँ । २. मोक्षोपदेशीं—मथु०, बड़ो० ।

आदिव्रजस्यातुल्यत्वं ज्ञातुकामो जनेश्वरः ।
उत्तीर्य गंगां यमुनां मथुरामण्डलं ययौ ॥ ३ ॥
प्रागान्नन्दव्रजं[1] स्निग्धैर्जनैः सर्वत आवृतः ।
तत्र गत्वा सुमधुरां मथुरां समुदैक्षत ॥ ४ ॥
यत्र श्रीकेशवः साक्षाद्योगिध्येयपदाम्बुजः ।
यमुनाकेलिनी यत्र तरङ्गनिकरावृता ॥ ५ ॥
प्रसन्नसलिला कूजद्राजहंसकुलाकुला ।
दक्षिणां कोटिमारभ्य स्फुरदुत्तरकोटिका ॥ ६ ॥
तत्र स्नात्वा महाराजस्तीर्थे विश्रान्तिसंज्ञके ।
ददौ सहस्रं लक्षं च धेनूनां विपुलौधसाम् ॥ ७ ॥
दश सोमान् चकारोच्चैर्भूपो दक्षिणयान्वितान् ।
भूर्यन्नान् भूरिहव्यांश्च भूरिसंभारकल्पितान् ॥ ८ ॥
अत्र स्नात्वोभयोः कोटयोः कुरुक्षेत्राधिकं फलम् ।
लब्धं ज्ञात्वा सहृदयो बभूव प्रीतमानसः ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा केशवदेवं च शिवलिङ्गं प्रणम्य च ।
महाविद्यां पीठराज्ञीं दृष्ट्वातिसुखितोऽभवत् ॥१०॥
ततो दत्त्वा कुरुक्षेत्रे गया[2]धिकफलप्रदे ।
ध्रुवक्षेत्रे महाक्षेत्रे पितृभ्यः श्राद्धमुत्तमम् ॥११॥
दृष्ट्वा दक्षिणभागस्थं श्रीमद्वाराहमूर्जितम् ।
नत्वा स्तुत्वा सुसंपूज्य धन्यमात्मानमप्यवैत् ॥१२॥
तत उत्तरकोटिस्थं गोकर्णेश्वरमीश्वरम् ।
संपूज्य विधिवद्राजा यातः सुप्रीतमानसः ॥१३॥
एवं तीर्थाटनं कुर्वन् दक्षिणोत्तरकोटिगः ।
उवास पञ्चरात्राणि मथुरायां जनाधिपः ॥१४॥
एकदा रजनौ सुप्तो जागरान्तमुपागतः ।
नातिनिद्रश्च भूपालो मध्यसंधिर्व्यवस्थितः ॥१५॥

---

१. यत्र नन्दव्रजः—मथु०, बड़ो० । २. °यात्रा—रीवाँ ।

रामस्यांशकलं कृष्णं सीतांशं राधिकां तथा ।
स्वस्यांसं वसुदेवं च कौशल्यांशं च देवकीम् ॥१६॥
अयोध्यांशं मथुरां वै प्रमोदांशं तु वृन्दिकाम् ।[1]
ततः प्रबुद्धः सपदि प्रसन्नहृदयो रघुः ॥१७॥
वशिष्ठादिमुनीन्द्रेभ्यः सर्वमाख्यातवान्नृहः ।
तेषां वशिष्ठो भगवान् पुराणमुनिरब्रवीत् ॥१८॥
रामांशो भगवान् कृष्णः सीतांशा राधिका सती ।
नान्यथा दण्डकारण्यवासिनां स्यान्मनोरथः ॥१९॥
[2]ये रामं प्रार्थयाञ्चक्रुस्तद्रूपरमणार्थिनः ।
तेभ्यो रामोऽवदत् प्रीतः कृष्णावतरणे फलम्[2] ॥२०॥
त ऊचुर्नान्यरूपेण रमणेच्छा रमापते ।
सोऽवदत्तांस्तदाकारो भविष्यामहमेव हि ॥२१॥
अनेनैव स्वरूपेण रमयिष्यामि वोऽबलाः ।
इत्युक्त्वा भगवान् रामो[3] विससर्ज मुनीश्वरान् ॥२२॥
तस्माद्भूमिभृतां श्रेष्ठः सत्यसन्धः परात्परः ।
तेनैव हि स्वरूपेण रतवान् मुनिरूपिणीः ॥२३॥
परात्परेशं श्रीरामं विद्धि स्वात्मजमव्ययम् ।
जनोऽयं नैव जानाति मोहितस्तस्य मायया ॥२४॥
एवमुक्तो वशिष्ठेन प्रीतो दशरथो नृपः ।
व्रजदर्शनसोत्कण्ठो जगाम मधुकाननम् ॥२५॥
केकयेन्द्रसुतायुक्तो वशिष्ठादिपुरस्कृतः ।
सह सर्वजनैः सार्धं कुर्वन् कौतूहलं महत् ॥२६॥
प्रविष्टमात्रो मधुकाननेऽसौ ददर्श योगीन्द्रवरं शुकाख्यम् ।
जगाद यो रामपरान् सुधर्मान् संसारपाथोनिधिपोतरूपान् ॥२७॥

---

१. अतः परम्—"प्रमोदवनस्यांशकलं वृन्दावनमपश्यत्तथाचनृपसत्तमः" इत्यधिकः पाठः—मथु०, बड़ो० । २—२. नास्ति—रीवाँ । ३. इति दत्वा वरं रामो—रीवाँ ।

तं व्याससूनुं करुणावतारं श्रीरामतत्त्वैकविदं मुनीन्द्रम् ।
दृष्ट्वा महाप्रेमरतः स राजा मुमोद सर्वावयवाङ्कुराढ्यः॥२८॥
तस्यार्हणं महच्चक्रे पाद्यादिभिरुदारधीः ।
उवाच मधुरं भक्त्या विनयानतकन्धरः ॥२९॥

राजोवाच

भगवन् मुनिशार्दूल दिदृक्षोर्मे व्रजावनिम् ।
भवता सह संबन्धः परं निःश्रेयसायनम् ॥३०॥
गोदोहमात्रं भवतो दर्शनं दुर्लभं भुवि ।
यः साक्षाद्भगवानेव भासि लोकानुकम्पया ॥३१॥
स मे भवान् भक्तियुताय विद्वन् ब्रवीतु माहात्म्यमशेषमस्य ।
व्रजस्य पूर्वं भगवद्वशिष्ठमुखाच्छ्रुतं चापि विशिष्टवेद्यम् ॥३२॥
आदिव्रजः कथं कोऽत्र व्रजश्च वद कः पुनः ।
कथमत्रोभयोर्ब्रह्मन् प्रादुर्भावोऽभवत् पुरा ॥३३॥
रामस्य वद महात्म्यं परस्य च मुनीश्वर ।
उभयोस्तारतम्यस्य यद्भेदो वा स्वरूपयोः ॥३४॥
वनानां महिमानं च ब्रूहिविद्वन्नशेषतः ।
कथं च यात्रा कर्तव्या को विधिः किं फलं तथा ॥३५॥

श्रीशुक उवाच

अये राजन्नतिधन्योऽसि यत्ते स्वयं च रामो भगवान् सुतोऽभूत् ।
पश्यन्ति यं योगिन आत्मतत्त्वे ज्ञानप्रकाशं न तु साक्षात्स्वरूपम् ॥३६॥
स ते परब्रह्मनिधिः स्वयंभूः श्रीराम आस्ते तनयो निकेतने ।
विभूषयन्नात्मगुणप्रकाशनैस्त्रैलोक्यमानन्दसुधार्णवः प्रियः ॥३७॥
स त्वं विमुक्तसंसारबन्धनैरात्मवित्तमैः ।
गोपोऽसि रघुशार्दूल रामचन्द्रप्रसंगतः ॥३८॥
द्रष्टुमिच्छामहे राजंस्त्वां सदा योगिनो वयम् ।
यस्य गेहमलंकुर्वन् परब्रह्म विलोक्यते ॥३९॥
तस्यैव प्रभुवर्यस्य रामस्य परमात्मनः ।
आज्ञया त्वामनुप्राप्तं विद्धि मां बुद्धिमत्तम ॥४०॥

आदिव्रजस्य यात्रा ते सुखितेन फलीकृता ।
व्रजस्य यात्रा सुकृतं मया सार्द्धं फलिष्यति ॥४१॥
आदिव्रजस्यांशश्चेति व्रजमेवमवेहि भोः ।
हेतुं तस्य ब्रवीम्यद्धा सावधानोऽवधारय ॥४२॥
धात्रा विज्ञापितः पूर्वं प्रमोदवननायकः ।
भूमिभारावतारार्थं द्वापरान्तेऽप्यवातरत् ॥४३॥
कल्पे कल्पे तथा नित्यं रामस्यांशकलामयः ।
बभूव भगवान् बालः कृष्ण इत्यभिधीयते ॥४४॥
यदा यदा हि लोकेऽस्मिन् जायते धर्मसंकटः ।
तदा तदा स्वयं रामोऽवतरत्यात्मधामतः ॥४५॥
तस्य धाम परं तद्वै प्रमोदवननामकम् ।
यत्ते सुखितगोपालो दर्शयामास चिन्मयम् ॥४६॥
यत्ते रहसि संजातं गोचरं स्वात्मसंविदि ।
तत्प्रमोदवनं नाम राजन् विज्ञातमेव ते ॥४७॥
अवतीर्णे परिकरैः सार्द्धं रामे रमापतौ ।
प्रमोद विपिनं चापि यथास्थानमवातरत् ॥४८॥
पद्माकारं[1] प्रमुदविपिनं रामचन्द्रस्य साक्षा-
त्प्रेमानन्दप्रगुणमगुणं निर्विशेषं निरीहम् ।
वन्द्यं वृन्द प्रभृतिसुभग द्वादशारण्यमुख्य
पुण्यं धन्यं क्षितिनिवसतामक्षतं धाम रम्यम् ॥४९॥
एतदानन्द भवनं[2] सदा विपिनमद्भुतम् ।
प्रमोदविपिनं पश्य परब्रह्मरसालयम् ॥५०॥
अस्ति प्रयोजनं रामः सानु बन्धो बभूव यत् ।
भवतैः सह शुभां लीलां दण्डकारण्यवासिभिः ॥५१॥
योगिनो मुनयः शान्ताः श्रमणा ऊर्द्धरेतसः ।
तपस्विनो वातरशना ब्रह्मचर्यव्रते स्थिताः ॥५२॥

---

१. सुखप्रकारं—रीवाँ । १. प्रमानन्दाद्यमितकगुणं—रीवाँ । २—घनं—रीवाँ ।

अग्नेः कुमाराः कृतिनः षष्टिसाहस्रसंख्यकाः ।
दृष्ट्वा नटन्तं रामेन्दुं सहजानन्दिनीसखम् ॥५३॥
प्रमोदविपिनस्येन्द्रं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ।
चुक्षुभुः कामयानास्ते रूपलुब्धाः स्मरार्दिताः ॥५४॥
स्वाश्रमाणां परिसरे यदा रामः समागतः ।
तदाह्याराधयञ्च क्रुर्मुनयः सहजान्वितम् ॥५५॥
तेभ्यो प्रसन्नो भगवान् रामो राजीवलोचनः ।
अनेनैव स्वरूपेण रमयास्मान् रमापते ॥५६॥

दृष्ट्वा तमेवं मधुराधरप्रभासंमिश्रमञ्जुस्मितचन्द्रिकाञ्चितम् ।
मुखेन्दुमानन्दनिधेः स्मरार्दिताः स्वतेजसा नाथ वयं बभूविमः ॥५७॥
यदावधि त्वं प्रिययानया विभो प्रमुद्वनाभ्यन्तरकुञ्जवेश्मनि ।
दधद्विलासान् रसनिर्भराश्रयान् विलोकितोऽस्माभिरहो तदावधि ॥५८॥
दुर्मनो नः क्षुभितं स्मरेषुभिर्महावियोगानलकीलकीर्तितम् ।
तवाधरा धारसुधारसे क्षणात्प्र विस्मृतं तत् खलु तादृशं तपः ॥५९॥
अहो असि त्वं प्रकटः पुमान् परः परार्द्धकन्दर्पमनोहराकृतिः ।
कुलाबला धैर्यविलोपनोद्धुरो विलोलविस्तीर्णविलोचनेषुभिः ॥६०॥
कथं नुताः संप्रति गोपयोषितो जीवन्ति विश्लेषवशात्त्वया विना ।
यासां पतिश्चापि मतिर्गतिर्भवान् स्वरूपतः केलिरसं वितीर्णवान् ॥६१॥
तस्माद्वयं नाथ विमोहिताशया नितान्तमाराध्नुम कामतत्त्वतः ।
स्त्रीभूयसंभूय भवन्तमादराद्वरं वरेण्यं वरयाम वल्लभम् ॥६२॥

इति ते वित्रपा[1] नाथ वाचा याचामहे स्फुटम् ।
एतावानेव चास्माकं वरोन्यंऽयेन किमस्ति नः ॥६३॥

श्रीशुक उवाच

इति निवेदिते पावकात्मजै र्मुनिभिरात्मनः कामिते वरे ।
कमललोचनो जानकीमुखं किमपि वीक्ष्य तान् प्रत्युवाच सः ॥६४॥

---

१. निस्त्रपं—मथु० बड़ो० ।

श्रीभगवानुवाच

इदं हि वो लुब्धमनस्त्वमद्भुतं जितेन्द्रियाणां सततं तपस्विनाम् ।
यत्कामवाणेन पराजितान्तरा अस्वोचितंवर्णयथात्मवित्तमाः ॥६५॥
अनर्हमेतच्च भवद्भिरीरितं न वै पुमान् कामयते पुमांसम् ।
यद्योगशक्त्यापि भविष्यथस्त्रियस्तथापि लौल्यं विदुषामनर्हम् ॥६६॥
समाधिनावेश्यमनो मयि स्थिरं येसम्यगानन्दमवाप्य निर्वृताः ।
तरन्ति ते वै न चिराद् भवार्णवं लभन्ति भोगं च चिरं रसात्मकम् ॥६७॥
स्मरन्ति शृण्वन्ति च कीर्तयन्ति ये ध्यायन्ति बुद्ध्याद्यभिदं सदैवमाम् ।
ते यान्ति तद्ब्रह्मरसं सनातनं न तु स्वरूपेण मयाङ्गसङ्गिताः ॥६८॥
एकैव सा मेऽस्ति सदाङ्गसङ्गिनी लक्ष्मीः सरोजान्तरकोशवासिनी ।
नान्या च मेऽतीव विमोहनक्षमा नित्यानुकूलस्य मितैकभाषिणः ॥६९॥

शुक उवाच

इत्युदीरितमीशस्य श्रुत्वा ते मुनयस्तदा ।
तस्थुर्विवर्णवदना चिरं संतापकातराः ॥७०॥
ऊचुश्च सुचिराच्छोकसागरादुद्धृताशयाः ।
मैवं वादीर्नरश्रेष्ठ हानं विज्ञापनस्य नः ॥७१॥
त्वयि प्रकामं पुरुषप्रकाण्डे विज्ञापना विफला यदि स्यात् ।
भवेत्तदा किं निगमो नशोच्यस्तवैव निःश्वासतया प्रसिद्धम् ॥७२॥
अमोघं याचनं नाथ त्वयि सर्ववरास्पदे ।
अन्ततोऽपि न मोघं नः प्रार्थनं संभविष्यति ॥७३॥
अपि निर्बन्ध एवास्ति तवास्मासु यदाह नः ।
तदा वयं दैवहीनाः करिष्यामः शृणुष्व तत् ॥७४॥
भवद्वियोगानलकीलजालैः संपाद्य शुद्धं भसितं शरीरम् ।
तवैव पादाम्बुजवर्त्म रुद्ध्वा स्थास्याम आनन्दनिधेः समंतात् ॥७५॥
तेनाप्यहो आकुलिता भविष्यन्त्यस्मद्विपक्षा इव ते सपक्षाः ।
तदर्हसि प्राणपते वरीतुं नितान्तमस्मानखिलस्पृहायते ॥७६॥
इतिनिर्बन्धमाकर्ण्य तेषां रामो वरप्रदः ।
उवाच प्रहसन् मन्दं कामनाः पूरयन्निव ॥७७॥

श्रीभगवानुवाच

अशक्यो दातुमप्येष भवतां कामितो वरः ।
चिरेण सेत्स्यति प्राज्ञास्तावत्तिष्ठत मद्गिरा ॥७८॥

मम या प्रेयसी लक्ष्मीरेषा नित्याङ्गसंगिनी ।
तामाराधयमाणानां कालोऽयं यातु वो द्विजाः ॥७९॥

आगामिनि तु तत्त्वज्ञाः कल्पे सारस्वताभिधे ।
यद्विंशके द्वापरान्ते व्रजे गोप्यो भविष्यथ ॥८०॥

तदाहमपि युष्माकं कामलीलारसं मुहुः ।
अनुपूरयितुं प्राप्स्याम्यनेनैव स्वरूपतः ॥८१॥

तदा वंशीधरं तं मां रासलीलारसानयम् ।
भवन्तः सङ्गताः सर्वे भविष्यन्ति मुनीश्वराः ॥८२॥

त्यक्त्वा गृहापत्यपतिस्वधर्मं मदेकचित्ताः मम रूपकृष्टाः ।
स्वात्मान मङ्घ्रौ मम संनिवेद्य चिराय रंस्यध्व इहैव धाम्नि ॥८३॥

तदाहमात्मनः सर्वलीलोपकरणान्वितम् ।
प्रमोदवनमाधास्ये जम्बूद्वीपे महीतले ॥८४॥

सरय्वाः पुलिने तद्धि भविष्यति भुवि स्फुटम् ।
मनुष्यपशुपक्ष्यादि परमानन्दकन्दलम् ॥८५॥

तावद्यूयं मुनिश्रेष्ठा मदनुस्मृतितत्पराः ।
अस्याश्च सहजेशान्या मन्त्रजापपरायणाः ॥८६॥

मत्प्रमोदवनक्रीड़ाकीर्तनश्रवणादिभिः ।
नयन्तः कालमखिलं श्रीमद्वैष्णवसेवकाः ॥८७॥

भुञ्जाना मद्भुक्तशेषं शुभान्नं मद्दत्तस्रग्गन्धवस्त्रादियुक्तम् ।
विभ्राणाः श्रीजानकीपादपद्मप्राप्तप्रज्ञाः कालमायाद्यवश्याः ॥८८॥

पठन्तो राघवं रामं शृण्वन्तो राघवंमतम् ।
ध्यायन्तो राघवं धाम मत्स्वरूपमवाप्स्यथ ॥८९॥

मद्विप्रयोगसंभूता महती वेदना च वः ।
नैषा बाधिष्यते प्रज्ञा सुखे स्थास्यथ भूतले ॥९०॥

एवं कालं समुत्तीर्य महारासमुत्सुकाः ।
प्राप्य सारस्वतं कल्पं व्रजे गोप्यो भविष्यथ ॥९१॥
तवाहं वो मोदयिष्यामि धीरा दत्त्वा वरं सर्वकामोपभोगम् ।
दत्त्वापरं कालमायादिमूर्द्ध्नि क्रीडिष्यध्वं मान्मथैर्दिव्यभोगैः ॥९२॥
श्रीश्चैषा[1] सहजानन्दा वृषभानुव्रजेशितुः ।
धर्मपत्न्यां कीर्तिदायां राधा नाम्ना भविष्यति ॥९३॥
तद्भ्राता चन्द्रभानुश्च गोपालो धर्मकृत्सदा ।
सुखदानाम तत्पत्नी तस्यां कृष्णा भविष्यति ॥९४॥
नाम्ना चन्द्रावली सा तु ज्येष्ठा राधा मृगीदृशः ।
उभे अपि पृथग्भावैर्यूथेश्वर्यौ भविष्यतः ॥९५॥
आदिव्रजनिवासिन्यो याश्चैवान्या मृगेक्षणाः ।
ऋग्यजुःसामऋग्रूपा देवरूपाश्च प्राग्भवे ॥९६॥
ऋषिरूपास्तथैवान्या देवगन्धर्वकन्यकाः ।
नगनागनरोद्भूताः प्रमोदवनरासगाः ॥९७॥
ताः सर्वास्तत्र मत्सार्थे कृत्वावतरणं पृथक् ।
महारासे सुसंगम्य रंस्यन्ते वै मया सह ॥९८॥
मुदिता मोदयिष्यन्ति महामाना मनोजिताः ।
तां केलीं वीक्ष्य गगने वैमानिक्योऽपि देवताः ॥९९॥
तथैवाप्सरसो देव्यो गलन्नीव्य श्चलांशुकाः ।
मोहमेष्यन्ति विवशाः स्थगिताश्च विशेषतः ॥१००॥

श्रीशुक उवाच

इति तान् समुदीर्येशो वरदानमभीप्सितम्[2] ।
पूजितः संस्तुतो भूयो दण्डकारण्यवासिभिः ॥१०१॥
सर्वानामन्त्र्य योगीन्द्रान् स्वरूपनिरतान् द्विजान् ।
जगाम सह सौमित्रिः सीतासेवितपार्श्वकः ॥१०२॥
इति ते कथितं राजन् कृष्णलीलासमुद्भवम् ।
योऽसौ रामस्तव सुतस्तस्यांशो वसुदेवजः ॥१०३॥

---

१. श्रीसखी—रीवाँ । २. वरं दत्त्वा भविष्णुकम्—मथु०, बड़ो० ।

तं सेवमानः परया भक्त्या संयोजिताशयः ।
मुच्यते कर्मपाशेभ्यो नित्यं लीलारसं स्पृशेत् ॥१०४॥
समासव्यासयोगेन सर्वोऽपि निगमः स्फुटम् ।
राममेवाह नियतं प्रधानपुरुषेश्वरम् ॥१०५॥
यत्प्राप्नुवन्ति सद्भक्ता भजन्तो नियतं प्रभुम् ।
तत्कीर्तितं श्रुतिगणै राम एव परं पदम् ॥१०६॥
न रामात् परतः किंचित्तत्त्वमस्ति निरूपितम् ।
श्रुतिभिश्चाप्युपनिषद्गणैः सर्वान्तभाषणैः ॥१०७॥
स एव भगवान् नित्यं माधुर्यमेचकद्युति ।
श्रीराजरूपमास्थाय क्रीडन्तं सरयूतटे ॥१०८॥
एवं यो वेत्ति निखिलं तत्वं श्रीरामसीतयोः ।
स तत्प्रेमरसं प्राप्य विमुक्तः सुखमश्नुते ॥१०९॥
यद्ब्रह्मेति श्रुतं वेदैः सर्वदैकरसस्फुटम् ।
निर्गुणं च निराकारं तद्धाम परमं हरेः ॥११०॥
अतस्तत्र व्रजन्त्येव भक्त्या आयासवर्जिताः ।
ज्ञानिनामिव नैतेषामायासस्तत्र जायते ॥१११॥
अयोध्यारामवैकुण्ठवर्षकिम्पुरुषादिषु ।
प्रमोदवनसह्याद्रि[1] चित्रकूटाचलादिषु ॥११२॥
यत्र यत्र स्थितो रामस्तत्र तत्र ध्रुवं स्थितम् ।
सर्वेऽवतारा यावन्तः स्तुवन्त स्तद्यशः पृथक् ॥११३॥
मध्यसिंहासने देवः सीतया सहितो मुदा ।
सर्वप्रसादसुमुखः सर्वाधिष्ठानतां गतः ॥११४॥
दक्षिणे लक्ष्मणयुतो वामे चादिश्रियान्वितः ।
पुरो हनुमत्सुग्रीवसुपर्णाद्यैः सुसंस्तुतः ॥११५॥
महामहिमसंदोहैः कोटिब्रह्माण्डनायकैः ।
प्रसादाकाङ्क्षिभिर्विष्वक् स्तूयमानो मनोहरः ॥११६॥

---

१. सप्ताद्रि—मथु०, बड़ो० ।

विराजते त्रयीशब्दस्तुतिभाजनतां गतः ।
शरदिन्दुयशःशुभ्रं प्रमोदवनविश्रमः ॥११७॥

ब्रह्मोवाच

इत्यन्योन्यं कृतालापैरन्योन्यं मिलनोत्सुकैः ।
मुनीन्द्रराजेन्द्रवरौ वनानि द्रष्टुमीयतुः ॥११९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दशरथतीर्थयात्रायां व्रजागमने त्रिचत्वारिंशदधिकः शततमोऽध्यायः ॥१४३॥

•

चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततो मधुवनं वीक्ष्य शुकः प्राह जनेश्वरम् ।
इष्टं मधुवनं पश्य राजन् सर्ववनोत्तमम् ॥१॥
अस्य संदर्शनादेव मुक्तपापो भवेद्ध्रुवम् ।
यत्र वायुः सुखस्पर्शः पुनाति भुवनत्रयम् ॥२॥
अत्र दिव्यं सरो राजन् यत्र स्नानेन माधवः [राघव] ।
सर्वतीर्थावगाहोत्थं पुण्यं प्राप्नोति तत्क्षणात् ॥३॥
संप्राप्य माघपूर्णायां यत्फलं तीर्थराजके ।
तत्फलं लभते मर्त्य इहोपस्पर्शमात्रतः ॥४॥
सहस्रवर्षवासेन यत्काश्यां फलमाप्यते ।
तत्फलं लभते मर्त्यः सकृत्स्नानादिह ध्रुवम् ॥५॥
ये धर्मकर्मभिर्हीना दुष्टात्मानो नराधमाः ।
तेषां मधुवनं स्नानान्नरकार्त्तिर्न जायते ॥६॥
अत्र देवे हरौ सुप्ते उषितुं तीर्थकोटिभिः ।
आगम्यते स्वस्थानेभ्यो यमुनायां च भूपते ॥७॥
तेनात्र कीर्तिता यात्रा तस्मिन् काले विशेषतः ।
पुण्यकोटिप्रदा राजन् कृष्णप्रीतिविवर्द्धनी ॥८॥

इदं वनं महाराज कृष्णलीलानिकेतनम् ।
अत्र स्थित्वा क्षणं साक्षाद्भावय श्रीपतिं हृदि ॥९॥
वल्लवीप्राणमध्यस्थं केकिपिच्छविभूषितम् ।
ध्यात्वा मधुवने कृष्णं भूयस्तत्प्रेमसंयुतः ॥१०॥
कीर्तयेन्मधुराः केलीः शृणुयाच्छ्रावयेदपि ।
तत्क्षणात् परमानन्दो हरिस्तस्य विवर्द्धते ॥११॥
कृत्वा भक्त्या हरेः पूजां वैष्णवान् पूजयेद्बहून् ।
एकादश्यां विशेषेण रात्रौ जागरणं चरेत् ॥१२॥
प्रातर्मधुयुतां धेनुं दद्याद्ब्राह्मणसत्तमे ।
मधुपात्रं च सौवर्णं पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥१३॥
भोजयेत् पायसैराज्यः शर्करापूपसंयुतम् ।
समिद्धे पावके चापि तिलाज्यैर्हवनं चरेत् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

एवं शुकोचितं राजा प्राप्य तीर्थफलं महत् ।
जगाम तालविपिनं वनश्रीसुमनोहरम् ॥१५॥

श्रीशुक उवाच

इदं तालवनं नाम वनानानुत्तमं वनम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण कर्तव्यं नावशिष्यते ॥१६॥
वर्षासु सुप्ते गोविन्दे स्नात्वात्र नियतं नरः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा कृष्णप्रेम लभेद् ध्रुवम् ॥१७॥
अत्र च धेनुको नाम कामरूपो महासुरः ।
गोचारणे हतः सद्यः कृष्णेन क्रीडता वने ॥१८॥
अत्र ब्राह्मणवर्येणभ्यो धेनूः कनकदक्षिणाः ।
दत्त्वा कृष्णार्पणधिया भूयो निःश्रेयसं लभेत् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

तत्तथा विधिवत्कृत्वा राजा दशरथः शुचिः ।
जगाम कौमुदं नाम वनं लीलानिकेतम् ॥२०॥

श्रीशुक उवाच

इदं राजन् दृश्यतां कृष्णकेलिविनोदनं विपिनं कौमुदाख्यम् ।
अत्र स्नात्वा भक्तियुक्तो मनुष्यो मनःशुद्धिं लभते तत्क्षणेन ॥२१॥
भाद्रे कृष्णैकादशी या भवेद्वै तस्यां स्नात्वा भक्तियुक्तो विशेषात् ।
कृष्णप्रेमानन्दसंदोहमाशु लभेत शुद्धेन हृदा मनुष्यः ॥२२॥

अथाभ्यर्च्य हरिं साक्षाद्भगवन्तं रमापतिम् ।
तुलसीदलमालाभिस्तोषयेद् दत्तभूषणम् ॥२३॥
शरत्पूर्णनिशापूर्वयामेऽथ वृषभानुजाम् ।
कृष्णं च फुल्लकुमुदैर्भूषयित्वा नमेन्मुहुः ॥२४॥
अश्वमेधसहस्राणां फलमाप्नोति मानवः ।
अत्र मुग्धा गोपकन्या सहिता भानुकन्यया ॥२५॥
ग्रीष्मरात्रौ सरो मध्ये स्नात्वा कुमुदपुष्पकैः ।
हाराङ्गदादिभूषाभिर्भूषयित्वा निजां तनुम् ॥२६॥
परस्परं रमन्तस्म तत्कृष्णः केलिकौतुकम् ।
लतिकान्तरितो दृष्ट्वा व्यमुहत् प्रेमसायकैः ॥२७॥
रहःस्थानमिदं राधामाधवौ यत्र केलतः ।
अनेकविधलीलाभिर्दिव्यभूषणभूषितौ ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

यथोदितं तत्र विधाय राजा स्नानादि दानान्तमशेषकर्म ।
संपूजयामास विशुद्धचित्तः श्रीराधया युक्तमनन्तगोतम् ॥२९॥

कीर्तनश्रवणाभ्यासशीलः कृष्णगुणव्रजे ।
प्रविष्टं हृदयं कृत्वा तत्रैवोवास ती निशाम् ॥३०॥

ततोऽव्राजीद्बहुलाया वनं स संफुल्लकानोकहश्रेणिरम्यम् ।
गायन्ति यत्र भ्रमराः पिकाश्च लीलायशः श्रीवृषमानुजायाः ॥३१॥

श्रीशुक उवाच

इदं पश्य वनं राजन् कृष्णक्रीडानिकेतनम् ।
गुञ्जद्भ्रमरपुञ्जाढ्यं मत्तपुंस्कोकिलाञ्चितम् ॥३२॥

लतागह्वरसंछन्नं तिमिरस्तोमसंकुलम् ।
तमालविटपस्तोमैः श्यामताकलितं क्वचित् ॥३३॥
नृत्यन्मत्तमयूरनादितमलं पुंस्कोकिलानां रुतै-
रुद्घुष्टं वनदेवतासमुदयत्कण्ठस्वरानन्दितम् ।
उत्साहैकविवर्द्धनं मृगदृशां दृष्टिप्रमोदावहम्
नित्यं शीतलमन्दसौरभमरुत्संसेव्यमेतद्वनम् ॥३४॥

अत्रदिव्यसरोवारिण्याप्लुत्य सुविशुद्धधीः ।
जहाति त्रिविधांस्तापान् श्रीकृष्णैकान्तमानसः ॥३५॥
अत्र सारसचक्राह्वकादम्बकुलकेलिभिः ।
हृतचित्तैर्गोपबालैः पर्यवियत माधवः ॥३६॥

वाला ऊचुः

कृष्ण कृष्णत्र विपिने क्रीडितुं नो हृदुत्सुकम् ।
जलकेलीं करिष्यामः संफुल्लनवपङ्कजैः ॥३७॥
स्थलकेलीं ततो मित्र कर्तुं योग्यात्र कानने ।
वसन्तलक्ष्म्या सततं स्थीयतेऽत्र यतः सखे ॥३८॥

अत्र माधव शाखोटसालतालादिभूरुहाः ।
पचेलिमफलाः कान्ता नम्रशाखाशिफाः स्वतः ॥३९॥
अत्रायं मारुतः कृष्ण मन्दारद्रुमसंगतः ।
सौरभाणां लहरिभिर्नित्यं मोदयते मनः ॥४०॥

अमी जलाशयचराः पक्षिणो हंसकादयः ।
कूजन्ति किमपि स्वैरं मधुरं मधुरं हरे ॥४१॥
अतोऽत्र शृङ्गवेण्वादिवादित्रगणधोरणम् ।
विहाय निभृतं कृष्ण श्रूयतां पक्षिकूजितम् ॥४२॥
नानास्वरनिनादाढ्यं नाना मूर्छनमूर्छितम् ।
नाना रागकलामिश्रं मत्ताः कूजन्ति पक्षिणः ॥४३॥
एतेऽनुशिक्षिताः प्रायो गोपीनां कण्ठजैः स्वरैः ।
अथात्र संचरन्तीनां क्रीडन्तीनां मिथो वने ॥४४॥

इति श्रुत्वा स भगवान् गोपबालैरुदीरितम् ।
विजहार वने ह्यस्मिन्[1] शृण्वन् पक्षिगणारुतम् ॥४५॥
नवशाद्वलनिर्मुक्तधेनुमण्डल उदयतैः ।
गोदुहां बालकैः कृष्णो रेमे रम्ये जले स्थले ॥४६॥
इहैव राजशार्दूल बहुलानाम कापि गौः ।
धृता व्याघ्रेण विपिने सत्यं कृत्वा व्रजं गता ॥४७॥
आश्वास्य शिशुकं वत्सं क्रीडन्तं गोपमण्डले ।
सखीभ्यस्तं संनिवेद्य निषिद्धापि च सा मुहुः ॥४८॥
सत्येन वचसा बद्धा भूयो व्याघ्रान्तिकं मता ।
परितुष्टस्ततो व्याघ्रः कामरूपी स सत्यतः ॥४९॥
मुमोच तां यथास्थानं व्रजेति बहुलां सतीम् ।
तस्या सत्य प्रभावेण तद्देशस्य जनेश्वरः ॥५०॥
प्रजाभिः सहितः स्वर्गं समगात् सुवृतोर्जितम् ।
बहुला सत्यपुण्येन धेनवः पशुपक्षिणः ॥५१॥
सर्वेऽपि शाश्वतं स्थानं जग्मुः सुकृतसंगताः ।
एवमेतद्वनं राजन् परमाश्चर्यसंयुतम् ॥५२॥
स्थीयतामत्र रात्र्येकं स्नानदानपुरःसरम् ।
पूज्यतां भगवान् विष्णुर्गोपरूपी जगत्प्रभुः ॥५३॥
तुलसीमञ्जरीपत्रैः रत्नकोटिफलाधिकैः ।
ततश्च वैष्णवा विप्राः पूज्यन्तां सुसपर्यया[2] ॥५४॥
एवं सुकृतसंयुक्तः कुर्ववन्ध्यं दिनं त्विदम् ।
यथोक्तं विदधौ राजा मुनिना तेन संगतः ॥५५॥
तां रात्रिमनयत्तत्र कीर्तनश्रवणान्वितः ।
ततो गोवर्द्धनगिरिमगाद्भूपति पुङ्गवः ॥५६॥
शिखरैर्व्याप्य गगनं तिष्ठन्तं सुमनोहरम् ।
नानाकुञ्जनिकुञ्जाढ्यं नानागह्वरसुन्दरम् ॥५७॥

---

१. तस्मिन्—रीवाँ । २. संतर्पय सपर्यया—रीवाँ ।

नानाधातुभिराकीर्णं नानापक्षिगणाकुलम् ।
नाना निर्णर संपात निर्ह्रासुमनोहरम् ॥५८॥
क्रीडद्गोपाङ्गनावृन्दपादनूपुरकूजितम् ।
अनेकाश्चर्यभवनं नवशाद्वलभूषितम् ॥५९॥
सौरभाढ्यमरुद्वीचिनिषेवितवनाकुलम् ।
मृगपक्षिगणाकीर्णं मत्तकोकिलनादितम् ।
गुञ्जद्भ्रमरसंदोहसानन्दलतिकाञ्चितम् ॥६०॥
प्रसन्नपीयूषजलाभिराम नानासरः फुल्लसुवर्णपद्मम् ।
कादम्बचक्राह्वयराजहंसकलक्वणैः श्रोत्रपुटाभिरामम् ॥६१॥
वीक्ष्यास्य हरिदासस्य गिरेरद्भुतरूपताम् ।
उवाच मुनिशार्दूलो राजानं रघुपुङ्गवम् ॥६२॥
राजान्नयं गिरिवरो हरिदासमुख्यो यः सेवते हरिमजस्रमशेषभावैः ।
तत्स्थावरोऽप्ययममन्दचिदेकरूप आनन्दमग्नतनुरुत्पुलकोऽङ्कुरौघै[1]: ॥६३॥
पुण्यक्षेत्रं महागुह्यं रहस्यं परमं भुवः ।
मथुरातः पश्चिमस्यामष्टक्रोशोपरि स्थितः ॥६४॥
चत्वारि तत्र तीर्थानि पूर्वादिक्रमतो नृप ।
ऐन्द्रं याम्यं वारुणं च कौबेरं सुमनोहरम् ॥६५॥
भूमेर्भाग्य[2]स्वरूपोऽयं श्रीमद्भगवतः प्रियः ।
कदाचिदत्र लीलास्थः श्रूयते रजनौ ध्वनिः ॥६६॥
कदाचिदस्य शिखरे द्योतयन्तोऽभितो दिशः ।
दृश्यन्ते दीपका दिव्या मनुजैर्मुक्तिमार्गिभिः ॥६७॥
कदाचिदत्र पवनो राधाकृष्णाङ्गसंगमी ।
अन्यलौकिकसौरभ्यैर्भरितो वाति वीचिवत् ॥६८॥
कदाचिच्चात्र सिन्दूर कज्जलालक्तकाङ्किताः ।
ताम्बूलोद्गारशोणाभा दृश्यन्ते मसृणाः शिलाः ॥३९॥
दर्शनं हरिदेवस्य तापत्रयनिवारणम् ।
ये कुर्वन्ति जना भक्त्या वन्द्यन्ते ते सुरैरपि ॥७०॥

---

१. °हृदयाम्बुरुहः फलौघैः—मथु०, बड़ो० । २. भक्ततत्त्व°—रीवाँ ।

अत्रैव मानसी गङ्गा तस्यां स्नात्वा नराधिपः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः कुलकोटिं समुद्धरेत् ॥७१॥
पुण्डरीकं च संपूज्य देवपित्रतिथींस्तथा ।
अश्वमेधोद्भवं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥७२॥
तथा प्रसन्नसलिले श्रीकुण्डेऽस्मिन् महीपते ।
तथा साङ्कर्षणे तीर्थे संकर्षणसुरक्षिते ॥ ७३ ॥
इन्द्रतीर्थे चातिपुण्ये स्नात्वा कुर्वंत तर्पणम् ।
कुण्डे कदम्बखण्डस्थे प्रसन्नसलिलाशये ॥७४॥
स्नात्वा पितॄन् सुसंतर्प्य यथेष्ठं शुभमाप्नुयात् ।
दृष्ट्वा देवगिरिं पुण्यं स्नात्वा च विधिवन्नरः ॥७५॥
अतुलं पुण्यमाप्नोति दैवतैर्वन्द्यते च सः ।
रुद्रकुण्डे चातिपुण्ये स्नात्वा रुद्रं प्रणम्य च ॥७६॥
त्रिजन्मजं धुनोत्याशु पातकं धरणीपते ।
कृतेऽरिष्टवधे चैव यत्कुण्डं राधया कृतम् ॥७७॥
तत्र चारिष्टतीर्थे च कृष्णकुण्डे च भूपते ।
स्नात्वा दत्त्वा च विप्रेभ्यो राधिकां प्रीणयेन्नरः ॥७८॥
मोक्षराजाभिधे तीर्थे तथा चन्द्रव्रजाभिधे ।
चक्रतीर्थे पञ्चतीर्थे स्नायात् सर्वशुभाप्तये ॥७९॥
तीर्थानि विचरेदह्नि रात्रौ कुर्याच्च जागरम् ।
एकादश्यां निराहारो द्वादश्यां प्रातरुत्थितः ॥८०॥
स्नात्वा संनिर्वपेत्पिण्डान् तर्पयेत् पितृदेवताः ।
भोजयेद् विप्रसंदोहं पायसेन विशेषतः ॥८१॥
देवान् गाश्चैव संपूज्य विशिष्टं फलमाप्नुयात् ।
परिक्रमे च विधिवद्गोवर्द्धनगिरिं हरेः ।
अश्वमेधशतोद्भूतं पुण्यमाप्नोति मानवः ॥८२॥
अमान्नकूटोत्सवसुप्रसंगे दृष्ट्वा हरिं दुःखहरं जनानाम् ।
कृत्वा च यात्रां विधिवत्प्रदीपैः प्रदीपयेत् सर्वतः शैलराजम् ॥८३॥

जुहुयाच्च सुहव्यानि समिद्धे जातवेदसि ।
अलङ्कृतं गवां वृन्दं पूजयेद्वत्सकैः सह ॥८४॥
ब्राह्मणानतिथीन् प्राप्तान् पूजयेत् पटभूषणैः ।
भोजयेद्विविधान्नानि प्रसादाच्छ्रीहरेस्तदा ॥८५॥
स्वयं च प्राप्य स्वादूनि कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
कोट्यश्वमेधजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥८६॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थ-यात्रायां व्रजागमने चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४४॥

पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

शुकोक्तमाकर्ण्य रघूद्वहस्तथा विधायगोवर्द्धनशैलयात्राम् ।
स्नातश्च तीर्थेषु विधानतस्तदा जगाम काम्याभिधमुत्तमं वनम् ॥ १ ॥
शुकोक्त्या तत्र निर्णीय तीर्थानां तत्त्वमुत्तमम् ।
बभ्राम स्नानदानादिकुशलः पुण्यमर्जयन् ॥ २ ॥
विमलोदे महाकुण्डे विशेषेण निमज्जितः ।
ददौ ब्राह्मणमुख्येभ्यः सुवर्णाङ्काश्च भूयसीः ॥ ३ ॥
ततो वृतो वशिष्ठाद्यैः पुरस्कृत्य शुकं तथा ।
वरसानुगिरिं प्राप बृषभानुपुरं हि यत् ॥ ४ ॥
दिव्यकुञ्जे निकुञ्जाढ्यं कन्दरागह्वराश्रयम् ।
अनेकशिखरोच्छ्रायं दृष्ट्वा प्रीतमना अभूत् ॥ ५ ॥
तत्र संपूजिता राधा साक्षाद् वृन्दावनेश्वरी ।
कृष्णेन सहिता तेन ददौ भक्तिं सुनिश्चलाम् ॥ ६ ॥
वृषभानुसरस्तोयैः प्रक्षालिततनुस्तदा ।
अध्वश्रमं सुनिर्मुच्य विश्रान्तोऽभूज्जनैस्सह ॥ ७ ॥

तत्र तं मुनिशार्दूलः शुको योगीन्द्रसंमतः ।
उवाच सुप्रसन्नास्यः श्रृण्वतां सर्वयोगिनाम् ॥ ८ ॥

श्रीशुक उवाच

अहो ते राजशार्दूल भाग्यं वक्तुं न शक्यते ।
श्रीरामस्य प्रसादेन दृष्टवानसि वै व्रजम् ॥ ९ ॥
तत्रापि कृष्णस्वामिन्या एतत् पितृनिकेतनम् ।
वृषभानुपुरं नाम दृष्टवान् भक्तिसंयुतः ॥१०॥
इदं सरः सूर्यसरः प्रसिद्धं राधापितुः प्रीतिविवर्द्धनं च यत् ।
बृन्दावनेशीजलकेलिपात्रं निमज्यास्मिन् संसृतिर्नाशमेति ॥११॥
कृष्णप्रेमोदये जाते ब्रह्मानन्दोपसर्जने ।
कृतकृत्यो भवेदाशु व्रजदर्शनमात्रतः ॥१२॥
इतो विदूरे संकेतस्थानमस्ति मनोहरम् ।
तद्दृष्ट्वा मनुजव्याघ्र न भूयः संसृतिं व्रजेत् ॥१३॥
ततो नन्दीश्वरं पश्य कृष्णस्थापितमन्दिरम् ।
एतान्यतिरहस्यानि स्थानानि धरणीतले ॥१४॥
नाल्पपुण्येन राजेन्द्र दृश्यन्ते संसृताविह ।
यत्र नित्यं हरेः क्रीडा न विश्राम्यति राधया ॥१५॥
वरसानुगिरिश्चैव तथा नन्दीश्वरो गिरिः ।
उभयोरन्तरे कृष्णक्रीडास्थानं सुदुर्गमम् ॥१६॥
यत्र भूमिरजो मध्ये श्रीकृष्णचरणाङ्किते ।
लुण्ठन्ति ब्रह्मशर्वाद्यास्त्रिदशा भक्तिकामुकाः ॥१७॥
इदं रहस्यं राजेन्द्र व्रजभूमेर्विलोक्यते ।
नन्दालयश्च संकेतो वरसानुरिति त्रयम् ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

कृतार्थयित्वा संजन्म तत्र राजा रघूद्वहः ।
जगाम खादिरं नाम वनानामुत्तमं वनम् ॥१९॥
तद्दृष्ट्वा विधिवत्स्नात्वा दत्त्वा दानादि भूरिशः ।
उवासैकां निशं राजा हरिकीर्तनतत्परः ॥२०॥

ततः शेषशयं विष्णुमपश्यद्ध्रुवमोचनम् ।
यः क्षीरसागरतटे शेते कमलया सह ॥२१॥
पूजितो यः पुरा देवो नन्दाद्यैः कृष्णसंयुतैः ।
संपूज्य तं विधानेन भार्यया सह भूपतिः ॥२२॥
स्नात्वा क्षीरसमुद्रे च प्रससाद निजे हृदि ।
ततो वृन्दावनं द्रष्टुमियाय शुकसंगतः ॥२३॥

श्रीशुक उवाच

इदं वृन्दावनं राजन् भुवः कीर्तिविवर्द्धनम् ।
अत्र चीराणि गोपीनां जहार भगवान् हरिः ॥२४॥
विधित्सुर्व्रतसंपूर्तिं महावरदराट् स्वयम् ।
अत्र वंशीवटतले वेणुवाद्यं विधाय च ॥२५॥
आजुहाव हरिः सर्वा गोपिकाः काममोहिताः ।
महारासं ततस्ताभिश्चक्रे त्रैलोक्यमोहनम् ॥२६॥
अत्रैव कालियो नाम कालसर्पो जलाशये ।
नाथितो देवदेवेन निर्विषा च कृता सरित् ॥२७॥
अत्रैव निहतः केशी कृष्णेन क्रीडता वने ।
तत्क्षेत्रं कोटिगुणितं काश्या अपि विशिष्यते ॥२८॥
अत्र संक्रन्दनं नाम तीर्थमस्ति पुरातनम् ।
यत्र स्नात्वा च दत्त्वा च वाजिमेधफलं लभेत् ॥२९॥
अदैव योगपीठाख्यं स्थानमस्ति मनोरमम् ।
नानावल्लीद्रुमाकीर्णं चन्द्रकोटिप्रभामयम् ॥३०॥
तत्र सिंहासन दिव्यं पारिजाततरोस्तले ।
तेजोमयं ज्वलत्कान्तिसहस्रकिरणैर्वृतम् ॥२१॥
प्रभासमुदयव्याप्तधरणीगगनान्तरम् ।
सर्वानन्दपदं जाग्रत्कालमायाद्यगोचरम् ॥३२॥
तत्र सख्यष्टकवृता श्रीमद्वृन्दावनेश्वरी ।
राधिका नियतं भाति श्रीमद्गोविन्दपार्श्वगा ॥३३॥
कामलीला गुणवती सौन्दर्यरसमञ्जरी ।
माधुर्यमधुरोद्रिक्ता कान्तिपीयूषवीचिका ॥३४॥

रसा सौरभवासन्ती कीर्तिप्रद्योतचन्द्रिका ।
मञ्जुला चञ्चलापाङ्गी व्रजण्डलमण्डना ॥३५॥
तां सेवते सदा कृष्णः कामकेलिप्रसूनकैः ।
स्मितचन्दनगन्धेन परिरम्भणधूपकैः ॥३६॥
कटाक्षदीपमालाभिर्नैवेद्यैरधरामृतैः ।
तयोर्नित्यविहारेण सर्वा आनन्दिता व्रजे ॥३७॥
चन्द्रावलिप्रभृतयो याश्चान्या गोपदारिकाः ।
तयोरेव प्रीतिवश्याः सकला व्रजनायिकाः ॥३८॥
तस्याश्चरणपाथोजरेणुलाभार्थमिन्दिरा ।
तपः करोति सततं वैकुण्ठस्वामिनी स्वयम् ॥३९॥
तस्या ध्यानपरा नित्यं पार्वती शिवसन्निधौ ।
शिवः संकीर्तयत्येनां तन्त्रैर्मन्त्रैश्च भूरिशः ॥४०॥
आराधयन्ति तां काश्चिद् गोप्यो नन्दव्रजे स्थिताः ।
तासामियं दिशत्याशु लीलासाम्राज्यमुत्तमम् ॥४१॥
नास्यास्तत्त्वं विजानन्ति ब्रह्माद्या अपि देवताः ।
वेदान्ताश्च रहस्यानि तामेव निर्दिशन्ति हि ॥४२॥
एतद्युग्मं चिदानन्दमयमद्वैतमद्भुतम् ।
आत्मनो हृदये राजन् स्थापयित्वा सुखी भव ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

दृष्ट्वा वृन्दावनं राजा क्रीडास्थानानि तानि सः ।
भावयानो नन्दसूनुं पञ्चरात्रमुवास ह ॥४४॥
अथ तं शुकयोगीन्द्र उवाच मधुरं वचः ।
यमुनातीरगां तस्मै निर्देष्टुं[1] वनराजिकाम् ॥४५॥
यमुनापरपारे तु भद्राख्यं वनमद्भुतम् ।
स्नानदानादिभिर्भूयस्तत् कोटिगुणपुण्यदम् ॥४६॥
गमनादेव वै तत्र पुनात्यासप्तमं कुलम् ।
कृष्णस्यैकान्तिकीं लीलां भावयेत्तत्र भक्तिमान् ॥४७॥

---

१. निर्दिष्टां--रीवाँ ।

अस्ति बिल्ववनं दिव्यं यत्र गोचारणे हरिः ।
सहितो गोपबालाद्यैर्मुदितः क्रीडतेऽनिशम् ॥४८॥
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च सुवर्णं गाः सहस्रशः ।
भोजयेत् ब्राह्मणान् राजन् श्रीकृष्णप्रीतये सुधीः ॥४९॥
लोहजङ्घवनं चास्ति लोकातीतगुणान्वितम् ।
तस्मिन् गमनमात्रेण पातकौघः पलायते ॥५०॥
भाण्डीरं नाम च वनं रामकृष्णाभिरक्षितम् ।
दृष्ट्वा चालौकिकं स्थानं कृष्णप्रेम विवर्द्धते ॥५१॥
प्रलम्बाख्योऽसुरस्तत्र रामेण निहतः पुरा ।
आरोप्य स्कन्धयोरेनं यूथादग्रे नयन् रिपुः ॥५२॥
तत्र गत्वा वटस्याधः[1] क्षणं स्थित्वा च मानवः ।
मन्दानिलं सेवमानो मुञ्चते तापमान्तरम् ॥५३॥
भाण्डीरवनकुप्यास्ता आपो ब्रह्मद्रवामृताः ।
स्नात्वा पीत्वा च मनुजो लभते कृष्णभावनाम् ॥५४॥
एतेषु वनवर्येषु रामकृष्णौ रसात्मकौ ।
सखिमण्डलमध्यस्थौ कुरुतः क्रीडनं मिथः ॥५५॥

महावनं नाम वनं तदस्ति कृष्णस्य बाल्याचरितस्थलं यत् ।
ब्रह्माण्डतीर्थे मनुजोऽत्र भक्त्या स्नायान्मृदं यत्र जघास कृष्णः ॥५६॥
यत्रामुना मुद्रितलोचनेन सा पूतना नाम हतास्ति राक्षसी ।
तां क्रूरबुद्धिं जननीपदं ददौ स्तन्यप्रदानेन महानुभावः ॥५७॥
बभञ्ज यस्मिन्[2] यमलार्जुनौ हरिः श्रीमातृहस्तोद्य[3]दुलूखलासितः ।
कृपाम्बुधिस्तौ च मुमोच बन्धनात् संसारपाशादुपयात इच्छया ॥५८॥

एवं बहूनि चित्राणि चरित्राणि चकार सः ।
बाल[4]लीलारसं पुष्णन् कौतुकी पुरुषः परः ॥५९॥
यानि संगीयमानानि यशोरूपाणि भूतले ।
पुनन्ति बहुधा लोकान् तीर्थरूपाणि संततम् ॥६०॥

---

१. वनस्यान्तः—रीवाँ । २. सोऽस्मिन्—रीवाँ । ३. श्रीमान् वानाद्य°—रीवाँ । ४. बहु°—रीवाँ ।

ब्रह्मोवाच

ततो जगाम धर्मात्मा वनं पुण्यं महावनम् ।
तमुवाच शुको दृष्ट्वा वनं निर्दिश्य तत्तदा ॥६१॥
इदं श्रीगोकुलं रम्यं नन्दगोपस्य भूपते ।
परमानन्दभवनं कृष्णक्रीडारहःस्थलम् ॥६२॥
अस्य दर्शनमात्रेण जनः कैवल्यमश्नुते ।
प्रेमानन्दं लभेदाशु ब्रह्मानन्दपदोपरि ॥६३॥
स्नात्वा दत्त्वा द्विजन्मभ्यः सुवर्णं दक्षिणामपि ।
तत्कोटिगुणितं पुण्यं फलतीति विनिश्चयः ॥६४॥
यानि यानीह तीर्थानि पारेऽवारे च भूपते ।
न तानि वर्णितुं शक्यान्यतिकल्पशतैरिह ॥६५॥
एतेषां महिमानं तु स्वयं वेत्ति रमापतिः ।
धन्येयं माथुरी भूमिः स्वैरेव समलङ्कृता ॥६६॥
अस्याः स्वरूपं माहात्म्यं गुणान् वेत्ति हरिः स्वयम् ।
मथुरामण्डलभुव इति वेदैर्विनिश्चितम् ॥६७॥
अस्या भुवः परं पारं हरिर्जानाति निश्चितम् ।
हृते गोवत्सके पाले[1] प्राप्य गोवत्सतामपि ॥६८॥
हरिर्जघास रम्याणि तृणानि व्रजमण्डले ।
गोवत्सतां परिप्राप्य को वेत्ति स्वादुमीदृशम् ॥६९॥
अहो आनन्दरूपस्य लोकस्यास्य परन्तप ।
न भूमितलसंस्पर्शः कमलस्येव वारिणि ॥७०॥
इह यस्य जर्नुहरिभावनया समुपैति विशिष्टसुखौघभुजा ।
स न मुक्तिपदं स्पृहणीयमपि स्पृहयत्यमृताश इवान्नजलम् ॥७१॥
इति मे मतिरस्ति भृशं सुदृढा यमुनाजलवीचिविलोलमरुत् ।
तटकुञ्जकुटीरगृहं भजतो न रमापतिधाम मुदे मनसः ॥७२॥

---

१. यां लेढि वै रसनया—मथु०, बड़ो० ।

ब्रह्मोवाच

इति व्रजं दर्शयित्वा राज्ञे दशरथाय सः ।
तस्मिन्नेव निकुञ्जान्तः पश्यतोऽन्तर्दधौ शुकः ॥७३॥
असौ मुनिर्नित्यविलासदर्शने कुतूहली श्रीजनकात्मजायाः ।
सखीपदं प्राप्य निकुञ्जराज्ये प्रियेण साकं रमते सदैव ॥७४॥
एवं हि यः प्रेमरसं गरिष्ठमाप्नोति सीतारमणे निरन्तरम् ।
न तस्य संसारदवाग्निवायुर्महोग्रतीक्ष्णोऽप्यनुबाधते वपुः ॥७५॥
नैके शुष्कं ज्ञानमिच्छन्तिविज्ञाः कुतः कर्मोपासनासाधनानि ।
येषां चेतः प्रत्यहं मोदतेऽन्तो रामप्रेमानन्दसंदोहपूर्णम् ॥७६॥
प्रेमानन्दमयी मुक्तिः प्राप्यते तत्कृपावशात् ।
साधनैर्लभ्यते सान्या ब्रह्मानन्दपदात्मिका ॥७७॥
तच्छुकाद्रघुशार्दूलो ज्ञाततत्त्वो रमापतेः[1] ।
प्राप्य प्रेमरसानन्दं क्षेममुत्कृष्टमात्मनः ॥७८॥
एवं कृताखिलमहीतलतीर्थयात्रापुण्यप्रकर्षसुविशुद्धमना महीपः ।
श्रीराममङ्गलगुणानभिलाषुकात्मा साकेतपत्तनमुपैतुमथाचकाङ्क्ष ॥७९॥
पुरग्रामारण्यप्रकरसुरहस्यस्थलगणा-
नटित्वा श्रीरामप्रणयविनिबद्धो दशरथः ॥
जनुः सार्थं कृत्वा करचरणचक्षुःफलमसौ
समादायायोध्यां ससुखमगमद्रामकलिताम् ॥८०॥
यत्र यत्र गतो राजा तीर्थयात्रापरायणः ।
तत्र तत्रैव शुश्राव रामस्य यशसां भरम् ॥८१॥
ददर्श व्यापकं रामं सर्वतीर्थेषु सुस्थितम् ।
तत्सामान्यविशेषाभ्यां विश्वमेवावृतं यतः ॥८२॥
पुलस्त्येन कृता यात्रा श्रूयते ग्रन्थदर्शने ।
तथा सोमकृतां तीर्थयात्रां प्राहुः पुराविदः ॥८३॥
मनोश्च धर्मशीलस्य लोमशस्य मनीषिणः ।
धौम्यस्य च वशिष्ठस्य पराशरमुनेरपि ॥८४॥

---

१. सीतापतेः—रीवाँ :

अन्ये च पृथिवीपालाः पुण्यात्मानो महौजसः ।
प्रदक्षिणेन धरणीं विचेरुर्मुनिसत्तमाः ॥८५॥
राष्ट्रपालाभिधो वैश्यः सर्ववैश्यशिरोमणिः ।
बभ्राम धरणीं सर्वामर्जयन् सुकृतं बहु ॥८६॥
ऋषयः सिद्धगन्धर्वा राजानश्चक्रवर्त्तिनः ।
बहवो बभ्रमुस्तीर्थेष्वयजंश्च यथामति ॥८७॥

नैतादृशी केनचित्तीर्थयात्रा चीर्णा पुरा भूपतिना द्विजेन वा ।
वैश्येन वा सर्वसमृद्धिभाजा कृता यादृश्यमुना राघवेण ॥८८॥

आसीन्नैवासमुद्रक्षितितलवलये कोऽपि दीनो धनेन
क्लिष्टो वा वैरिपीडापरिमुदितमना नापि कश्चिच्चिरायुः ॥
त्यागाद्दोष्णोर्बलाच्चाप्यतुलतरतपःपुण्यसंपूरणाच्च ।
प्राज्यानन्दं ददानो व्यचरत भुवने तीर्थयात्राक्रमेण ॥८९॥

अवतीर्णे सीताकान्ते साक्षाच्छ्रीपुरुषोत्तमे ।
अपूर्वा श्रीरभूद् भूम्यां तामपश्यद्रघूद्वहः ॥९०॥
रमणीयतमां शोभां पश्यन् भूमण्डलस्य सः ।
तत्कारणं हृदा मेने श्रीशावतरणं तदा ॥९१॥
मथुरामण्डलं सर्वं यात्रयित्वा रघूद्वहः ।
सरयूतीर्थनियमं समाप्य सुखितोऽभवत् ॥९२॥

शतं ग्रामान् समदाद् द्वे च कोटी घटोध्नीनां स्वर्णभूषावृतानाम् ।
गवां मुक्तारत्नभारांस्तथा त्रीन् पूर्णान्मिदैर्वारणान् विंशतिश्च ॥९३॥

द्वे सहस्रे तथाश्वानां स्यन्दनानां सहस्रकम् ।
दासीनां रत्नभूषाणां चत्वारि च शतानि सः ॥९४॥
एवं विप्राय विधिवद्दत्त्वा रघुकुलोद्वहः ।
वाचयामास विप्रेभ्यः स्वस्ति पुण्याहमेव च ॥९५॥

भूयसीं दक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रमाणवित् ।
ततः प्रतस्थौ स महद्दण्डकाक्षेत्रमुत्तमम् ॥९६॥

यस्मिन् भृगुपतिः सक्षात्तपस्यति महातपाः ।
तत् क्षेत्रममितं[1] भूमौ गुह्यस्थानं प्रकीर्तितम् ॥९७॥
तत्र च संगतो रामो ब्रह्मक्षेत्रमयोऽपि सन् ।
अवतीर्णो रामचन्द्रे ब्रह्ममात्राऽवशेषकः ॥९८॥
उपशान्तमतिर्वीरो निवृत्तक्रोध ईश्वरः ।
अवलम्ब्य तपस्तिष्ठन् पुण्यक्षेत्रमुदारधीः ॥९९॥
तं वीक्ष्य रघुशार्दूलः सहसा विनयान्वितः ।
तुष्टाव प्राञ्जलिर्भूत्वा भार्गवं तपसां निधिम् ॥१००॥
नमस्ते भृगुवर्याय ब्रह्मक्षत्राय तेजसे ।
रमणाद्रामचन्द्राय वीरेन्द्राय तपोऽग्नये ॥१०१॥
यस्य ते भृगुशार्दूल कुठारः सूर्यदर्शनः ।
आसुरक्षत्रियतमस्तोमांश्चिक्षाय विश्वतः ॥१०२॥
भृगूणां वंशदीपस्य यस्य ते तपसां निधेः ।
तेजोऽग्नौ सुसमिद्धेऽगादर्जुनोऽपि पतङ्गताम्[2] ॥१०३॥
येन त्वया भार्गव सार्वभौम सद्वीपशैला वहुकाननेयम् ।
मही सुवर्णाद्रियुता द्विजेभ्यस्त्रिसप्तदत्ता निजपुत्रिकावत् ॥१०४॥
भुवं वितीर्णं भुवि दैवतेभ्यो विज्ञापयस्त्वं तपसे पर्णशालाम् ।
विधित्सुकामो जलधिं ययाचे स्थलं कियत्तापसवासयोग्यम् ॥१०५॥
बहूनि वीर्याणि तव प्रशस्तान्यह्नाय नो वै सुशकानि वक्तुम् ।
अनुग्रहस्ते जगतां शुभाय क्रोधः पुनः कालवत्संक्षयाय ॥१०६॥
कोट्यः कियन्त्यश्चमरातपत्रभाजां नृपाणां भवता विभिद्य ।
कुठारधाराञ्चलकालजिह्वया वधावशेषै रुधिरोदविन्दुभिः ॥१०७॥
ब्रह्मन् कुरुक्षेत्रमधिष्ठितस्त्वं समन्ततः पञ्च सरांस्यकार्षीः ।
पितॄन् सुसंतर्प्य च यानि सद्यश्चकार पुण्योदमयानि तैर्वृतः ॥१०८॥

तानि तीर्थानि कवयो गृणन्ति भृगुसत्तम ।
समन्तपञ्चकेत्याख्यावन्ति पुण्यानि भूतले ॥१०९॥

---

१. प्रथितं—रीवाँ । २. गतिं गतः—रीवाँ । ३. तिलधात्रिकावत्—मथु० बड़ो० ।

दृष्टानि चोपस्पृष्टानि स्नातानि च मया मुने ।
अनन्तपुण्यलाभाय तस्मात्संदर्शनं तव ॥११०॥

श्रीपरशुराम उवाच

स्वस्त्यस्तु ते रघुकुलामितकीर्तनस्य राजंस्त्रिलोकजनमङ्गलमन्दिरस्य ।
पुण्येन यस्य हरिरप्रमेयः पुत्रत्वमाप धरणीभरनाशनाय ॥१११॥

स्वच्छाशयः कीर्तिसुधोदपूर्णस्त्वं भूतले पुण्यसरोवरोऽसि ।
चत्वारि पद्मानि यतोऽभ्युदीर्णत्रैलौक्यतापैकरुजानि राजन् ॥११२॥
महोदधिस्त्वं महनीयकीर्तिर्यतोऽभ्युदैत् पूर्णकलः सुधांशुः ।
त्रयीचकोरीहृदयैकहर्षिविद्वत्समूहैककुमुद्वतीशः ॥११३॥
जानासि तत्त्वं किमु तस्य राजन् रामस्य राजीवविलोचनस्य ।
यत्तत्त्वविज्ञानविचिन्तनेन नेतीति वेदा जगदुर्मुखेन ॥११४॥

महोपनिषदः सर्वा एकं रामं प्रचक्षते ।
न सामान्यावतरणं विद्धि रामं रसाश्रयम् ॥११५॥
कथ्यतां नाम केनापि निःशेषं तस्य वैभवम् ।
तत्त्वतोऽप्यधिकं राजन्नुदेत्य विदितं गिराम् ॥११६॥
यस्यैकसत्तया व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तादृशी भूयसी राजन् तस्य सत्ता विजृम्भते ॥११७॥
किमर्थं तीर्थयात्रायै अटितोऽसि[2] वनाद्वनम् ।
तमेव किं न सेवेथाः सर्वसेव्यपदाम्बुजम् ॥११८॥
यदाश्रितमहीपालसनकाद्यैर्मुनीश्वरैः ।
अकुतोभयमिच्छद्भिः कालमायादिमूर्द्धगम् ॥११९॥

ब्रह्मोवाच

स तस्य भाषितं श्रुत्वा भार्गवस्य तपस्विनः ।
प्रसन्नहृदयो राजा ज्ञात्वात्मभवने हरिम् ॥१२०॥
निमज्य रेणुकातीर्थे यमुनायां विशेषतः ।
तत्पुरश्च महातीर्थे यत्रोत्तरवहार्कजा ॥१२१॥

---

१. सकैकेयिहृदैकहर्षि—रीवाँ । २. भ्रमितोऽसि—रीवाँ ।

न तत्तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं शक्यं सुरैरपि ।
परशुराममुखाच्छ्रुत्वा स्नातवांस्तस्य वारिणि ॥१२२॥
दत्त्वा तत्र द्विजन्मभ्यो वेदविद्भ्यो धनं बहु ।
जगाम तेन मार्गेण वटेश्वरमरिन्दमः ॥१२३॥
यमुनायां महत्तीर्थं पुण्यं स्थानं पिनाकिनः ।
चकार तदपां तीरे[1] दश सोमान् यथा विधि ॥१२४॥
तोषयित्वा द्विजांस्तत्र सुवर्णमणिभोजनैः ।
प्रतस्थौ पूर्णसर्वार्थस्तामयोध्यां निजां पुरीम् ॥१२५॥
तस्याभिजग्मुः परतः कुमारा रामादयः स्वर्णरथाधिरूढाः ।
कृत्वा पुरो विप्रकुले श्रुतिज्ञं महार्हयानप्रवराधिरूढम् ॥१२६॥
राज्ञा सार्थं प्रययुर्योगिमुख्या नानादेशाश्रमवास्तव्यशीलाः ।
निजां पुरीमध्युषितुं समन्तादत्यादरेणोपनीता मुनीन्द्राः ॥१२७॥
ते वै प्रतिग्रामसीमं सुमन्त्रैर्निमथ्याग्निं नित्यमिष्ट्वा यजन्तः ।
प्रापुः कथंचिद्दिवसैःकियद्भिर्नृपस्य भक्त्या महतादरेण ॥१२८॥
तेषां वेदं पठतां ब्रह्मघोषो दूरादश्रूयत[2] ब्राह्मणानाम् ।
ततो रथस्य ध्वजकोविदारं[3] रामादयो वीक्ष्य तदावतेरुः ॥१२९॥
महत्या सेनया युक्तः पुरोधाः पुरतो गतः ।
कृत्वा प्रणामं भूपस्य प्रसाददृशमग्रहीत् ॥१३०॥
ततो रामादयः सर्वे कुमारा भक्तिसंनताः ।
रथोपस्थस्थितस्यैव जगृहुश्चरणौ पितुः ॥१३१॥
ते प्रणम्य महाराजं यथापूर्वं यथाक्रमम् ।
वद्ध्वाञ्जलीन् पुरस्तस्थुस्तोषयामासुरस्य हृत् ॥१३२॥
अवतीर्य रथात् सद्यो राजा दशरथः सुतान् ।
आलिलिङ्ग प्रमोदेन परिपूर्णतमाशयः ॥१३३॥
दृष्ट्वा रामस्य वदनं कोटिचन्द्रामृतद्युति ।
प्रमोदसागरो राज्ञ उल्ललास हृदन्तरे ॥१३४॥

---

१. च दयावर्ती—रीवाँ । २. दूरात् सुश्रूयत—रीवाँ । ३. ध्वजमुच्चविदूरात् —रीवाँ ।

रामः पितुः प्रश्रयेणावनम्रो दिशोस्त्रपाभारगभीरदृष्टिः ।
भक्तिप्रपन्नो निजभावदर्शनाज्जहार माहात्म्यदृशं नृपस्य ॥१३५॥

भक्त्याचरणजैर्भावैर्माहात्म्यज्ञोऽपि भूपतिः ।
मुमोह रामचन्द्रस्य परतत्त्वे पुराश्रुते ॥१३६॥

यदस्य तत्त्वं श्रुतिभिर्विमृग्यते परात्परं सच्चिदानन्दसान्द्रम् ।
ध्यानावधानैः कथमप्यगोचरं तदस्य वात्सल्यधिया न लक्ष्यते ।१३७।

रामं प्रदर्शयामास राजा तानृषिपुङ्गवान् ।
साकेतपुण्यवासाय येऽस्य सार्थे समागताः ॥१३८॥

शापानुग्रहसामर्थ्यवन्तः सन्तः शुभाशयाः ।
यायजूकाः शास्त्रविदो वेदशाखाप्रवर्तकाः ॥१३९॥

तन्त्रमन्त्रादिकुशला विशुद्धज्ञानदृष्टयः ।
आययुर्भूपतेर्भक्त्या निवासाय महापुरे ॥१४०॥

केचिद्विशुद्धधिषणा विदिताखिलार्था विज्ञाय पूर्णपुरुषं तमिहावतीर्णम् ।
तद्भक्तिभावसुधया स्नपितान्तरङ्गाः साकेतपत्तननिवासधियोपजग्मुः।१४१।

ते वीक्ष्य राममविताखिलमार्तबन्धुं परात्परं द्विभुजमद्भुतमादिदेवम् ।
सीतारमारमणचारुकलानिकेतं ब्रह्मानुभूमुदधिकांमुदमापुरन्तः ॥१४२॥

ते राघवेन्द्रतनयैर्विनयेन भक्त्या भूयोऽभिवादितपदा मुनयो वरेण्याः ।
आशीःसुधाजलभरैः स्नपयाम्बभूवुरेनानशेषभवभव्यकरान् पुमग्र्यान् १४३

एके सूक्ष्मधियोजज्ञुरेनान् विदितवेद्यकाः ।
रममाणान् सरयूतीरे नित्यं च सखिभिः सह ॥१४४॥

एके रामं हृदा जज्ञुर्भगवन्तं स्वयं हरिम् ।
लीलारसालयं नित्यं लक्ष्मणाद्याख्यया स्फुटम् ॥१४५॥

केचिद्रामं विदुः साक्षादक्षरात्मानमद्वयम् ।
लक्ष्मणं कालरूपं च भरतं कर्मरूपिणम् ॥१४६॥

शत्रुघ्नं च स्वभावाख्यं जगतः पालनोद्यतम् ।
एवं स्वमत्यनुसृता विदुरेनान् मुनीश्वराः ॥१४७॥

कश्चिद्रामं विशालाक्षं पुरुषोत्तमशब्दितम् ।
विदन्नपि प्रेममुग्धं प्रियं निजममन्यत ॥१४८॥

रामः सर्वान् मुनिवरान् वशिष्ठाद्यान् प्रणम्य च ।
सप्रेमदृष्टिपातेन सर्वांस्तोषितवान् हृदि ॥१४९॥

अथ स्वभर्त्रा सह धर्मचारिणीं या तीर्थ[1]यात्रातपसि प्रसक्ताम् ।
तां केकयेन्द्रस्य सुतां सुमातरं प्रणेमुरङ्घ्रयोरुपगत्य सर्वे ॥१५०॥

सा रामादीन् शुभाशीर्भिरानन्दितवती पृथक् ।
हृदा च भरते स्निग्धां दृशं स्थापितवत्यसौ ॥१५१॥

अथ पितुराज्ञया दशरथस्य महाविदुषः
सपदि कुमारका रथचतुष्टयमारुरुहुः ।
श्रुतिगणघोषपूर्वकमथ प्रययुर्नगरीं
ध्वजपटचित्रितोच्चतरसौधशिरोरुचिराम् ॥१५२॥

नृत्यन्तस्तुरगास्तत्र सेनायां दिव्यभूषणाः ।
शोभयाञ्चक्रुरवनीं वत्सा इव विवस्वतः ॥१५३॥

मदेन मन्दगतयो वारणाः परवारणाः ।
घण्टाघोषनिनादेन जगर्जुर्जलदा इव[2] ॥१५४॥

रथानां गच्छतां घोषैर्घनगम्भीरमञ्जुलः ।
छादयामास हरितो राज्ञः पुरनिवेशने ॥१५५॥

अथो अयोध्यापुरवीथिमार्गाः श्रीखण्डवारिक्षरणेन सिक्ताः ।
सुधूपिता मन्दमरुद्विलोलैः कालागुरूत्थैरतिनीलधूपैः ॥१५६॥

नीपप्रसूनप्रकरप्रसङ्गी समीरणः शीतलमन्दवाही ।
आनन्दयामास चिरेण भूपं समागतं तं नगरीप्रवेशे ॥१५७॥

पौराःसुमृष्टमणिभूषणभूषिताङ्गा नव्याम्बराणि दधतो हरिचन्दनाक्ताः ।
आलापसुप्रकटमोदसमूहसिन्धुमग्नाः कुतूहलयुताः पुरतः समीयुः ॥१५८॥

नागर्यो वनिताः सर्वाः सभूषिततनुत्विषः ।
केकयेन्द्रसुतां द्रष्टुकामाः पुरत आययुः ॥१५९॥

प्रादक्षिण्यं भुवः कृत्वा तीर्थयात्रां विधाय च ।
तद्दर्शनं पुण्यमिति नागरा दर्शनार्थिनः ॥१६०॥

---

१. सत्तीर्थ°--मथु०, बड़ो० । २. जग्मुर्जलधरा इव—मथु० बड़ो० ।

अभीयुः संमुखं तस्य महासुकृतवर्ष्मणः ।
तेनापि दृष्ट्या सर्वे ते पुण्यया सुसमीक्षिताः ॥१६१॥
स राजभवनं प्राप पुरीं पश्यन् सुसंस्कृताम् ।
नरनारीगणाकीर्णां केतुध्वजपताकिनीम् ॥१६२॥
तोरणेषु सुविन्यस्तकदलीकाण्डशोभिताम् ।
उदपूर्णलसत्पूर्णकुम्भदिव्यफलान्विताम् ॥१६३॥
सोत्साहगायद्वनितागीतनादमनोरमाम् ।
आच्छादितां चित्रपटैर्ब्रह्मघोषेण नादिताम् ॥१६४॥
पुष्पतोरणमालाभिर्द्वारेषु विहितश्रियम् ।
विभूषितापणपथां शृङ्गाटककृतश्रियम् ॥१६५॥
आभूषितानन्दितसंचरज्जनां प्रसन्नगन्धर्वकुलस्वरान्विताम् ।
मुनीन्द्रवृन्दैः क्षणसंगमाखिल[1]द्विजेन्द्रराजीपरिवारितां पुरः ॥१६६॥
विवेश भवनं राजा प्रासादशतसंकुलम् ।
वलभीतुङ्गमूर्धाग्रसौधराजिविराजितम् ॥१६७॥
वातायनसमासक्तदिव्यस्त्रीमुखचन्दिरम् ।
रत्नभित्तिसुसंक्रान्तसूर्यांशुद्योतदीपितम् ॥१६८॥
तुङ्गतोरणविन्यस्तविचित्ररचनायुतम् ।
निवासमिन्दिरादेव्या निधिसमर्दशालिनम् ॥१६९॥
वैजयन्तमिवानेककौतूहलसमन्वितम् ।
नदत्तूर्यसमुद्घोषप्रतिनादविशारदम् ॥१७०॥
राजदम्पत्तिसंवीक्षासमुत्कण्ठितमानसैः ।
नरनारीगणैर्विष्वगाकीर्णं महसोन्नतम् ॥१७१॥
कलानिधिकलावृन्दैः सर्वतो नटितं यथा ।
रविमण्डलबिभ्राजत्कमनीय तमद्युतिम् ॥१७२॥
प्रविष्टो दिव्यभवनं ब्रह्मघोषपुरःसरम् ।
मुनीन्द्रान् पुरतः कृत्वा भक्तिवश्यान् विदुत्तमान् ॥१७३॥

---

१. मुनीन्द्रवृन्देक्षणसंगताखिल°—मथु०, बड़ो० ।

स तान् संमानयामास प्रथमं सुसपर्यया ।
पुण्याहं वाचयामास महार्हैर्द्विजसत्तमैः ॥१७४॥
कौशल्या च सुमित्रा च केकयेन्द्रसुतां सतीम् ।
परिरभ्यांशतः पुण्यं प्रापतुस्तैर्थयात्रिकम् ॥१७५॥
अथो समेतं तिसृभिर्वधूभिः सपुत्रसंपद्बहुसौभगाभिः ।
द्विजोत्तमामन्त्रजलैर्नरेन्द्रं महाभिषेकेण शुशोधुरेनम्[1] ॥१७६॥
कृतानि सर्वतीर्थानि पुण्यानि सुमहान्ति च ।
तवाङ्के सुस्थिरीभूय तिष्ठन्तु धरणीपते ॥१७७॥
आसमुद्रान्तधिष्ण्यानि पुण्यतीर्थानि यानि ते ।
दृष्टानि चोपस्पृष्टानि वसन्त्वङ्केषु तानि ते ॥१७८॥
इत्थं तीर्थाभिषेकेण राजानं महिषीयुतम् ।
सिषिचुर्ब्राह्मणवराः पल्लवैर्मन्त्रवज्जलैः ॥१७९॥
तीर्थयात्राभिपूर्त्यर्थं तेभ्योऽदाद्दक्षिणामसौ ।
हिरण्यं गाः सुवासांसि रत्नानि विविधानि च ॥
ते प्रसन्नहृदो विप्रा ब्रुवाणाः परमाशिषः ॥१८०॥
अथ राजाधिपो राममब्रवीद् भक्तिसंनतः ।
उद्दिश्य तान् मुनिवरान् नानादेशाश्रमागतान् ॥१८१॥

राजोवाच

एते मे मुनयः प्राणा जीवितादपि च प्रियाः ।
योगक्षमं विधायैनान् पुरीवासाभिलाषुकान् ॥१८२॥
संस्थापय सदा राम भक्त्या चैवादरेण च ।
कृत्वाश्रमवरानेभ्यः प्रयच्छ सुमहामते ॥१८३॥
वनेष्वयोध्यापर्यन्तशोभितेषु ततेषु च ।
स्थापयैनान् महाभाग योगक्षेमं विधाय च ॥१८४॥
साग्निकाः केऽपि मुनयः केऽप्यन्तर्निहिताग्निकाः ।
तेभ्यो यथोचितं राम स्थानानि प्रतिपादय ॥१८५॥

---

१. शुशोधुरक्षणम्—रीवाँ ।

नोद्विजन्ते यथा राम मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ।
तथा त्विमे संनिवेश्या यथास्थानं महामते ॥१८६॥
रघूणां संपदो नूनं ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।
सुखायैवेति विमृशन् यथोचितमुपाचर ॥१८७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे राज्ञ आगमने पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४५॥

•

षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथायं मुनिवर्यांस्तान् निर्दिश्य तपसां निधीन् ।
रामाय कथयामास राजा प्राणप्रियान् द्विजान् ॥ १ ॥

राजोवाच

अयं स गौतमो नाम परमर्षिस्तपोनिधिः ।
यं स्मृत्वा प्रविशन् ग्रामे सुखमाप्नोति पूरुषः ॥ २ ॥
अस्य सत्तर्कवचनैर्लोके शास्त्रं प्रवर्तते ।
यस्य ज्ञानं विना नैव संजायेत पदार्थधीः ॥ ३ ॥
अस्मायाश्रमसंस्थानं विधायात्र समर्पय ।
अत्रासौ सहशिष्यैस्तु मोदतां तपसांनिधिः ॥ ४ ॥
सपत्नीकः सपुत्रोऽसौ सशिष्यो यत्र तिष्ठति ।
तत्र क्षेमं भवेन्नित्यं प्रजानां राष्ट्रभूपयोः ॥ ५ ॥
आयासश्च शरद्वांश्च सौभाण्डो मुनिसत्तमः ।
तथा दीर्घतमानाम करेणुपालिरेव च ॥ ६ ॥
वामदेव उतथ्यश्च कक्षीवान् मुनिसत्तमः ।
एतेऽस्य परिषन्निष्ठा मोदयन्ति मनो मम ॥ ७ ॥
सर्वे विदितवेद्याश्च त्रिकालज्ञा महाधियः ।
तत्रैव दर्शनाकांक्षात्यक्तनानानिजाश्रमाः ॥ ८ ॥

किमप्येतेऽभिजानन्ति त्वामेव विधिसंमितम् ।
अतः सर्वे परित्यज्यायोध्यावासाभिलाषुकाः ॥ ९ ॥
उतथ्य औशिजश्चैव बृहदुक्थो महामुनिः ।
अङ्गिराश्च भरद्वाजो गर्गो रूक्षायणः कपिः ॥१०॥
एते त्वच्चरणाम्भोजसमीपे वासकामुकाः ।
मुनयो दीर्घतपसः कर्मतन्त्रक्रमोद्धुराः ॥११॥
विष्णुवृद्धस्तथा कण्वो हरितश्च रथीतरः ।
मुद्गलः पुरुकुत्सश्च त्रसदस्युर्महामुनिः ॥१२॥
अजमीढो विरूपश्च भार्म्यश्च तार्क्ष एव च ।
कौत्सः पैङ्गिस्तथा शङ्खोदाभिर्भीमगवस्तथा ॥१३॥
पृषदश्वोऽष्टदंष्ट्रश्च सर्वेऽङ्गिरसा अमी ।
द्विजा ज्ञातरहस्याश्च सर्वज्ञा त्वयि सस्पृहाः ॥१४॥
एतेभ्य आश्रमस्थानान्यत्र संपत्फलादिभिः ।
युक्तानि बहुसस्यानि देहि संप्रति राघव ॥१५॥
अयं च भगवानत्रिर्वेदविद्वान् महातपाः ।
दर्शनेनैव शुभदः स्थाप्यतामिह संनिधौ ॥१६॥
गविष्ठिरो वाधृतक आर्चनानस एव च ।
पूर्वातिथिर्मुनीशानो मुनिश्रेष्ठो धनञ्जयः ॥१७॥
सुमङ्गलश्च श्यावश्च एते चात्रेयसंज्ञकाः ।
मुनिवर्या रामचन्द्र भवद्दर्शनकाङ्क्षिणः ॥१८॥
एभ्य आश्रययुक्तानि वनानि प्रतिपादय ।
बहुसस्यफलाढ्यानि बहुदिव्यजलानि च ॥१९॥

अयं स कश्यपो नाम भगवान् सर्वदर्शनः ।
विदिताखिलवेद्यश्च विज्ञातात्मा तपोनिधिः ॥२०॥
सरयूतीरविपिने बहुधान्यफलान्विते ।
अस्मै शुभाश्रमं राम प्रतिपाद्य समादिश ॥२१॥
नैध्रुवश्चैव रैभ्यश्च शाण्डिल्यो भगवानयम् ।
असितो देवलश्चैव कश्यपाश्रमपार्श्वगाः ॥२२॥

अयं वशिष्ठो भगवान् कुले नोऽनुग्रहान्वितः ।
यस्य मे तीर्थयात्रायां संगो भूयानभूत्तराम् ॥२३॥
अस्य विज्ञानगोष्ठीभिर्नीतिगोष्ठीभिरेव च ।
क्षणतुल्यानि यातानि दिनानि मम भूरिशः ॥२४॥
कौडिण्य उपमन्युश्च मुनिश्चैव पराशरः ।
साकल्य ऐन्द्रप्रमदो भरद्वान् मुनिसत्तमः ॥२५॥

एते वशिष्ठस्य महामुनीन्द्रवर्यौघमान्यस्य मनस्विनो भृशम् ।
समीप एवाश्रममण्डलेषु संस्थापनीयास्तव रामचन्द्र ॥२६॥
त्वद्दर्शनानन्दविधूतसर्वतपश्चर्यास्त्वत्पदाम्भोजनिष्ठाः ।
त्वामेव शश्वत्किमपि विदन्ति एते स्थास्यन्ति पुर्यामिह संनिकृष्टा ।२७।

अयं स भगवान् राम विश्वामित्रो महामुनिः ।
त्वामभिज्ञाय साकेते वस्तुमिच्छति शाश्वतम् ॥२८॥
अस्यैते पार्श्वगा राम मुनीन्द्रा वै तपोधनाः ।
येषां दर्शनमात्रेण प्रजा राष्ट्रं च वृद्धिमत् ॥२९॥
औदलो देवरातश्च मधुच्छन्दाश्च रोहितः ।
अष्टकोरौक्षकश्चैव रैवणो गाथितस्तथा ॥३०॥
देवश्रवा देवरसो भगवान् कामकायनः ।
कात्य आत्कील आजश्चाप्याघमर्षण एव च ॥३१॥
आश्मरथ्यः पूरणश्च वाधूलो बहुमन्त्रवित् ।
हर्यश्वो वेणुरेवापि शालङ्कायन एव च ॥३२॥
रोहिणः काथकश्चैव क्राथको वेदवित्तमः ।
बहुलोमा हुतश्चैव तथा हिरण्यरेतसः ॥३३॥
सुवर्णरेताः कापोतरेतसो घृतकौशिकः ।
एते त्वद्दर्शनाकाङ्क्षाविस्मिताशेषलौकिकाः ॥३४॥
निवास्यैनान् सदा राम विश्वामित्रस्य संनिधौ ।
सुखादाश्रमदेशेषु बहुशस्यफलेषु च ॥३५॥
अगस्त्यो भगवानेष सर्वेषां प्रीतिवर्द्धनः ।
दिव्येन तपसा यस्य मुनयो विस्मिता हृदि ॥३६॥

अश्मवाहः सामवाहः सोमवाहस्तथैव च ।
यज्ञवाहश्चैध्मवाहो मुनिवर्यो दृढच्युतः ॥३७॥
दर्भवाहश्च भगवान् सप्तैते परिषद्द्विजाः ।
राम त्वद्दर्शनाकाङ्क्षाविस्मृताशेषसत्क्रियाः ॥३८॥
पुलस्त्यो भगवानेष सर्वज्ञो वेदवित्तमः ।
यस्य सत्तीर्थचर्यायां तीर्थतामगमन्मही ॥३९॥
अयं च पुलहो नाम भगवान् विदितार्थकः ।
वरेण्यः सर्वयोगीन्द्रसंसदां तपसां निधिः ॥४०॥
अयं क्रतुर्महायोगी मुनीन्द्रः सुरहस्यवित् ।
अमीषां शुद्धरूपाणि स्थानानि सरयूतटे ॥
कृत्वा त्वं देहि रामेन्द्र प्रजानां शुभहेतवे ॥४१॥
अयं शुको नाम महामुनीन्द्रः श्रीरामपादाम्बुजभक्तिचित्तः ।
वेद्याखिलार्थागमसारवेत्ता गुरुर्मुनीनां विविधोपजीव्यः ॥४२॥
इमौ महामुनी राम हिमचर्बहिमोदकौ ।
नित्यं समाधिनिरतौ जिताहारौ जितेन्द्रियौ ॥४३॥
इमौ विदितवेद्यार्थौ मुनीन्द्रेशौ गणेश्वरौ ।
अयं स कौत्सो भगवान् वेदवेदाङ्गपारगः ॥४४॥
अयं स वामरथ्याह्वो मुनीन्द्रः सर्ववेदवित् ।
यौक्तिको नाम योगीन्द्रो मुनिरेष समाधिभृत् ॥४५॥
अयं स जातूकर्णाख्यो मुनिर्वेदार्थसारवित् ।
तपसा यस्य सर्वेऽपि मुनयो विस्मयं ययुः ॥४६॥
अयं स सांकृतिर्नाम मुनीन्द्रो विजितेन्द्रियः ।
तपोनिधिर्ज्ञाननिधिः सर्वकर्मविशारदः ॥४७॥
गौरवीतो मुनिरयं सर्वधर्माभिरक्षकः ।
सर्वशास्त्रार्थसिद्धान्तवेत्ता निष्णातमानसः ॥४८॥
अयं शातातपो नाम मुनिः सच्चरिताशयः ।
अयं स पूतिमाषाख्यो मुनिरिन्द्रस्तपस्विनाम् ॥४९॥
लौगाक्षिरेष भगवान् तपस्वी ज्ञानवारिधिः ।
अयमुद्दालको नाम महर्षिर्वीतकल्मषः ॥५०॥

अमीषां मुनिवर्याणां पृथक् स्थानानि निर्दिश ।
सगृहाः साग्निहोत्राश्च यथातिष्ठेयुरध्वरैः ॥५१॥
तेऽमी राम महामान्या महाशास्त्रार्थवेदिनः ।
कर्मतन्त्रैककुशलाः स्मृतिमार्गप्रवर्तकाः ॥५२॥
आहिताग्नय आचारसंपन्ना [1]दीक्षितोत्तमाः ।
शापानुग्रहकर्तारः श्रद्धावन्तोऽनसूयकाः ॥५३॥
ज्ञानविज्ञानसंपन्ना नाना[1]शास्त्रप्रवर्त्तकाः ।
गोत्रप्रवरकर्तारो नानावंशविधायकाः ॥५४॥
प्रवृत्तिमार्गनिपुणा निवृत्तिसुविचक्षणाः ।
तक्षकाः कर्मपाशानां सत्संगतिविचक्षणाः ॥५५॥

तेऽमी सहापत्यगृहाग्निहोत्रैः समागतास्त्वां रघुवंशकेतो ।
विज्ञाय तत्त्वं किमपि प्रकृष्टं त्वामेव याताः शरणाय राम ॥५६॥
किं जानते चेतसि रामचन्द्र त्वामेत आसादितसत्तपःफलाः ।
त्वमेव तद्वत्स महानुभावो न तावकं कश्चन वेत्ति तत्त्वम् ॥५७॥

यत्र यत्र मया राम गतं तीर्थानुयात्रया ।
तत्र तत्रैव मुनय उपासांचक्रिरे हि माम् ॥५८॥
तव माहात्म्यसारं तु प्रविज्ञाय रघूत्तम ।
मामाद्रियन्तो मुनयः परिवार्यावतस्थिरे ॥५९॥
उपासेऽहं मुनीनेतान् मुनयो मामुपासते ।
भवन्तमभिसंधाय श्रीराम किमहं ब्रुवे ॥६०॥

भगवान् जामदग्न्यो मे तवयत्तत्त्वमूचिवान् ।
तद्विज्ञातुं न शक्नोमि वात्सल्येन समावृतः ॥६१॥
माहात्म्यमेकतो राम तावकं मुनिभिर्मतम् ।
अनुकर्षत्येकतो मां वात्सल्यं प्रेम बुद्धिमत् ॥६२॥
माहात्म्यं ज्ञानवात्सल्यप्रेम्णोरभ्यन्तरे गतम् ।
मामकं मानसं राम काममालोकितं मुहुः ॥६३॥

१—१.नास्ति—रीवाँ,

तवैव तत्त्वं विज्ञातुं संग्रहीता मया ह्यमी ।
नानाश्रमेभ्य आनीय मुनयो दिव्यदर्शनाः ॥६४॥
एतेभ्यो रमणीयानि स्थानानि यशसांनिधे ।
स्वाश्रमाणि पवित्राणि सरय्वास्तटयोर्द्वयोः ॥६५॥
प्रभूतफलपुष्पाणि सुपुण्यसलिलानि च ।
शाकपत्रादियुक्तानि बहुसस्यानि सर्वतः ॥६६॥
पशुपक्षिसुविश्रामसौख्यदानि समंततः ।
निरामयानि रम्याणि तपोयोग्यानि नित्यशः ॥६७॥
यज्ञोपद्रवदुर्जीवरहितानि विशेषतः ।
सुवास्तूनि सुशालानि विशालानि समंततः ॥६६॥
शूद्रम्लेछादिसांनिध्यवर्जितानि सुदूरतः ।
लतामण्डपयुक्तानि निकुञ्जाढ्यानि सर्वतः ॥६९॥
निरुद्वेगानि वर्षासु ग्रीष्मेषु शिशिराणि च ।
शिशिरेऽर्कातपाढ्यानि योगक्षेमवहानि च ॥७०॥
जनैर्जानपदैर्नित्यं नोपमर्दीकृतानि च ।
नगर्या नातिसामीप्यनातिदूरत्ववन्ति च ॥७१॥
अमीषामृषिबालानां यत्र सौख्यं प्रजायते ।
तथा महर्षिपत्नीनामयत्नसुखदानि च ॥७१॥
नामीषामृषिवर्याणां भोगेऽस्त्यभिरुचिः क्वचित् ।
अतः स्वभावतस्तानि भोगदानि विधापय ॥७३॥
नैषां सुखेन संतोषो नोद्वेगो दुःखयोगजः ।
परतत्त्वज्ञानविद्भिः सर्वं सममुदीक्ष्यते ॥७४॥
अस्माकं तु सदा धर्मो यदमीषां सुखोदयः ।
न तत्रोद्योग एतेषामतो मुक्ति विचारय ॥७५॥
यथा स्वभावसिद्धानि स्थानानि स्युर्निरन्तरम् ।
एषां निःस्पृहचित्तानां मुनीनां वसतामिह ॥७६॥
फुल्लपङ्कजरम्याणि गुञ्जद्भ्रमरवन्ति च ।
सरांसि परितः सन्तु मुनीन्द्राणामुपाश्रमम् ॥७७॥

संफुल्लमल्लिकाशाली चन्दनस्पर्शसौरभी ।
मन्दो वायुः सदा वातु मुनीन्द्राणां तपोवने ॥७८॥
एषामाश्रमपर्यन्तस्निग्धकाननवीथिषु ।
कुसुमाकर आनन्दी सदा तिष्ठतु राघव ॥७९॥
रामरत्नमयी भूमिः सुवर्णधनघट्टिता ।
अस्त्वेषामाश्रमस्थाने दैवादेवोपसेदुषी ॥८०॥
लतिकाश्च प्रसूयन्तां सुवर्णदलधोरणीः ।
हरिन्मणिमयीः शाखा बिभ्रतां भूरुहाः स्फुटम् ॥८१॥
पीयूषपाकरुचिरां बिभ्राणः फलधोरणीः ।
पोषयन्तु सदा वृक्षा मुदं स्वर्गेऽपि दुर्लभाम् ॥८२॥
वीणानिनादरुचिरं स्वनन्तु वनकीचकाः ।
मन्दानिलसुसंस्पृष्टां विभ्राणा रन्ध्रधोरणीम् ॥८३॥
कलमालपतादुच्चैः कोकिलानां कलापिनाम् ।
मुनीनामाश्रमे राजी हृत्कर्णसुभगध्वनिम् ॥८४॥
इति लोकोत्तरा शोभा स्वाभाविक्याश्रमावनौ ।
प्रादुर्भूय सदा राम तिष्ठतादिति मे मतिः ॥८५॥
फलपत्रसुमस्तोममभिव्याप्यसुधारसः ।
सदोपसीदतु मुनीन् वैराग्यतपसां निधीन् ॥८६॥
अत्रोपसीदतान्नित्यं कर्पूरागुरुसौरभी ।
कुसुमाकरसंशाली मनोहारी समीरणः ॥८७॥
सर्वात्मना राजवर्योपभोग्या त्वदाज्ञातो निर्मिता मायया ते ।
सदा संपत्संविधा तिष्ठतां वै मुनिस्थानेऽभ्यर्हिता रामचन्द्र ॥८८॥
नैतामेते विजानन्तु संविधां राजदुर्लभाम् ।
अन्यथास्मत्कृतां ज्ञात्वा त्यजेयुर्निःस्पृहा अमी ॥८९॥
अथो अमीषां हृदयानि राम त्वद्दर्शनानन्दसुधारसाय ।
चिरं स्पृहावन्ति रघूत्तमेन्दो तमेव कामं प्रतिपूरयादृतः ॥९०॥

श्रीराम उवाच

तथ्यं वदसि राजेन्द्र शुभाय जगतश्च नः ।
प्रसन्नचित्ततामीषां परब्रह्मैकवेदिनाम् ॥९१॥

पठद्भिः शर्वरीशेषेऽभ्युत्थाय मुनिभिः पृथक् ।
समस्तराष्ट्रकल्याणं क्रियतेऽमीभिरक्षयम् ॥९२॥
गोदोहमात्रं यत्रैते तिष्ठन्ति परमर्षयः ।
तत्स्थानं कुर्वते तीर्थं गीयमानं पुरातनैः ॥९३॥
किंनाम तव राष्ट्रस्य महिमा तात वर्ण्यताम् ।
अजस्रं यत्र स्थास्यन्ति मुनयोऽमी तपोधनाः ॥९४॥
तीर्थपादाः शुभाचाराः सर्वे विदितवेद्यकाः ।
वेदार्थकल्पतरवः स्थास्यन्तीह शुभायनाः ॥९५॥
अहो अमीषां सुखदं स्थानमेतत् स्वभावतः ।
अयोध्यापुरपर्यन्ते प्रमोदवनसंज्ञकम् ॥९६॥
विद्धि राजन् निजं स्थानं सरय्वाः कूलयोर्द्वयोः ।
साक्षाच्छ्रीरामधामैव प्रमोदवनमद्भुतम् ॥९७॥
स्वभावादेवात्र क्षितिरतुलचिन्तामणिमयी
सवर्णैः संबद्धा हरितमणिबद्धाखिलपथा ।
तदन्तःसंपाती दिवसपतिमारीचनिकर-
श्चमत्कारं धत्ते कमपि जनतालोचनहरम् ॥९८॥
अमुष्यां भुव्युच्चैस्तरव उदिता स्वादुरफलाः ।
स्फुरन्मल्लीवल्लीप्रसरनिभृतावेष्टितभुजाः ।
शरद्यम्भःसंस्पर्शनसमुदितानन्दविभवः
समीरोऽयं वाति प्रचुरपरमामोदभरितः ॥९९॥
स्वाभाविकमतो राजन्नत्रत्यानां महत्सुखम् ।
यत्सुखं नैव वैकुण्ठे लभन्ते विष्णुपार्षदाः ॥१००॥
मोदिष्यन्ते मुनीशाना इह प्रेमसुधाप्लुताः ।
स्वभावसिद्धो महिमा कोऽप्यस्यैव विराजते ॥१०१॥
अस्मिन्निव सतां स्थाने कामः क्रोधो भयं मदः ।
मात्सर्यमानदम्भाद्यचिन्तादुःखामयादयः ॥१०२॥
स्वत एवोपशाम्यन्ति ये दोषा मोहसंभवाः ।
प्रकाशते परं ज्ञानं परतत्त्वैकगोचरम् ॥१०३॥

नन्दव्रजोऽपि चास्यैव कोऽप्यंशश्चित्सुखाकृतिः ।
रहस्यं केलिसदनं कृष्णस्य कथमन्यथा ॥१०४॥
एतत्सुखमयं धाम मामकं परमेष्टदम् ।
यद्धित्वा न लभेऽन्यत्र त्रैलोक्याधिकवैभवम् ॥१०५॥

अतः प्रमोदविपिनमित्युक्तं सुमहर्षिभिः ।
सनकादिभिराप्तश्रीमुखतः श्रुतवैभवम् ॥१०६॥
एतावज्जन्मनः सारमेतावच्च वपुःफलम् ।
यत्प्रमोदवने वासं प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ॥१०७॥

यन्नित्यं सच्चिदानन्दं परब्रह्म सनातनम् ।
तदत्र वसतः पुंसां गोचरीभवति स्फुटम् ॥१०८॥
इति विज्ञाय सेवन्ते प्रमोदवनमद्भुतम् ।
मुनयः शास्त्रतत्त्वज्ञा भक्तिलाभाभिलाषुकाः ॥१०९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् रामः प्रणम्य मुनिसत्तमान् ।
आश्रमाणि विनिर्दिश्य स्थापयामास तत्पुरैः ॥११०॥

ते पूर्वदक्षिणप्रत्यगुत्तराशासमाश्रिताः ।
स्वस्वाश्रमनिकेतस्था अलंचक्रुरलंपुरीम् ॥१११॥
पिबन्तः सारवं वारि प्रमुद्वनफलाशनाः ।
भावयन्तो रामचन्द्रं सानुजं जानकीयुतम् ॥११२॥

पश्यन्तः प्रत्यहं पूर्णप्रेमानन्दसुधाभरैः ।
परमात्मपदद्वन्द्वं भक्त्यालभ्यममुष्य वै ॥११३॥
विस्मृतात्मतपोयोगा वहिर्योगपरायणाः ।
तस्थुः सुखमयोध्यायामृषयः शुद्धबुद्धयः ॥११४॥

ते कालेन भविष्यन्ति सहजारामपार्श्वगाः ।
यथाधिकारं मुनयः सखीदासीपदाश्रिताः ॥११५॥
इयं हि परमा मुक्तिर्भक्तानां तत्कृपोद्भवा ।
नित्यलीलामण्डलान्तः प्रवेष्टव्या सुदुर्लभा ॥११६॥

सर्वकामफलभोगरूपिणीं यां जगुः किमपि तैत्तिरीयकाः ।
सोऽश्नुतेऽखिलसुखं विपश्चितो ब्रह्मणा सहित इत्यलंवचः ।११७।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे महर्षिजन-संस्थापनंनाम षट्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१४६॥

॥ इतिश्री आदिरामायणे पूर्वखण्डः समाप्तः ॥

●

---

१. बड़ो०—श्रीसहजानन्दिनी जयति । विक्रमसंवत् १९९० श्रीशालिवाहन शक १९४५ माघमासेशुक्लपक्षे तृतीयायां गुरुवासरे वटपत्तननिवासिना रेवाशंकर तनूजेन पुरुषोतमशास्त्रिणा आदर्शपुस्तकमनुसृत्य ग्रंथस्य लेखनक्रमः समाप्ति नीतः संशोधितश्च । यादृशं दृष्टं तादृशं स्वीकृत्य शास्त्रीपुरुषोत्तमरेवाशंकर शर्मा स० द० पो० ता० ८-२ सन् १९२४ मु० बडोदरा